भाईजी

पावन स्मरण

भाईजी : पावन स्मरण

भगवान्‌की विशिष्ट विभूति

सार्वभौम गृहस्थ संतप्रवर

नित्यलीलालीन भाईजी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

की

पुण्यस्मृति

प्रधान सम्पादक

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज

सम्पादक

पं० चिम्मनलाल गोस्वामी • डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह

प्रथम पुण्यतिथिपर

न्योछावर

इक्कीस रुपये

विशिष्ट प्रति : इक्यावन रुपये

प्रकाशक

श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान,

पो० गीतावाटिका, गोरखपुर ।

प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ७०७३ २८ ।

श्रीराधाकृष्णाभ्या नम

सम्पादकका निवेदन

'भाईजी : पावन स्मरण' ग्रन्थका सम्पादन करते हुए मुझे कितनी ही बाते स्मरण आ रही है। वार्द्धक्य-अवस्थामें स्वभावतः ही स्मृति क्षीण हो जाती है; परंतु भाईजीके साथ मेरा जो दीर्घकालका स्नेह-सम्बन्ध रहा है, वह मेरी स्मृतिके मणिकक्षमे आज भी उज्ज्वलरूपमे विराजमान है। यह स्मरण-ग्रन्थ उनके मर्त्य-जीवनके कतिपय दुर्लभ सम्पर्कोपर प्रकाश डालेगा, इसमे संदेह नही। जिन लोगोने उन्हे निकटसे देखने तथा जाननेका सुयोग प्राप्त किया है, उनकी लेखनीके आलोकसे एक महान् व्यक्तित्वको सर्वसाधारणकी दृष्टिके सम्मुख स्थापित करना ही इस ग्रन्थका परम लक्ष्य है। जो लोग उनपर श्रद्धा करते थे, स्नेह करते थे, वे श्रद्धाकी अञ्जलि सजाकर उनकी अमर स्मृतिको पुष्पोपहार अर्पित कर रहे है। इससे भाईजीके समग्र चरित्रका महत्व किस अंशमे प्रस्फुटित हो पाया है, इसका निर्णय सहृदय पाठक ही अपने विचारके मानदण्डसे कर सकेंगे।

'हनुमानप्रसाद पोद्दार' एक नाममात्र नही, वस्तुतः एक महान् आदर्शका प्रतीक है। सेवा, लोक-कल्याण और देश-प्रेम--ये त्रिविध गुण उनमे मूर्त होकर विकसित हुए थे। उनका ऐसा जीवन था, जो क्रमशः एक ध्रुव परिणतिकी ओर अग्रसर होता है। कालक्रमेण बीज एक विशालाकार वनस्पतिकी शाखाओके विस्तारमे, काण्डकी सबल, ऋजु और ऊर्ध्वमुखी गतिमें, पत्र-पल्लवोंकी श्याम-शोभाके द्वारा कितने ही विहंगमो और कितने ही श्रान्त पथिकोके गाढ़ स्नेहका आश्रय बन जाता है। बीजके हृदयमे आकाङ्क्षाका जो अङ्कुर है, वही एक दिन विशाल महीरुहकी परम परिणतिमे प्रकाशित हो जाता है। भाईजीके हृदयमे एक ही आकाङ्क्षा थी, जिसने लोक-मङ्गलकी सफल सार्थकताके मार्गमे चलते हुए जीवनको परम ऐश्वर्यमय बनाया था। जीवनमे प्राप्य क्या है? ऐश्वर्य नही, ख्याति, सम्मान और सुख भी नही--मात्र सेवा। मनुष्यमात्रके प्रति वास्तविक प्रेम--उनके दुःखको अपना दुःख समझकर, उन्हे कल्याण-मार्गमे स्थापित करना ही उनका उद्देश्य था। जीवोपर दया, जीवको जीव समझकर नही, उन्हे अपना समझकर, आत्माका आत्मीय समझकर सेवा करनेकी इच्छा उनके मनमे बराबर जाग्रत् रहती थी। यह इच्छा स्वभाव--धर्मके रूपमे उनके अन्तस्तलमे विकसित हुई थी। उन्होने 'स्व'-भावके अनुसार इस महान् वाणीको हृदयंगम कर लिया था--'जीवे दया करे जेइ जन, शेई जन सेवीछे ईश्वर।'--'जो जीवोपर दया करते है, वे ईश्वरकी ही सेवा करते है।'

सेवाका जो परमादर्श हमारे शास्त्रग्रन्थोमे निर्दिष्ट है, वह देहके प्रति अहं-बोध, मनके प्रति अहं-बोध आदि क्षुद्र भावोके रहते हुए हो नही सकता। जब मनुष्य सम्पूर्णरूपेण निरहकार होकर अपनेको श्रीभगवान्के यन्त्ररूपमे अनुभव करता है और एकमात्र भगवत्सत्ता ही सर्वत्र विराजित है--इस प्रकारके बोधमे सर्वदा जागरूक रह सकता है, केवल उसी समय यथार्थरूपमे सेवा और कल्याण-कर्ममे अपनेको लगानेका अधिकार पाता है। मुझे प्रतीत होता है कि इस प्रकार सेवाका अधिकार बहुत ही कम महापुरुषगण पा सकते है। भगवत्साधनाके अङ्गरूपमे इस प्रकारका सेवाधिकार प्राप्त होनेके पहले निःस्वार्थ सेवा भी जीवनका एक महान् आदर्श है, इसमे कोई सदेह नही।

भाईजीकी जीवनधाराके साथ मेरा जो परिचय-प्रसङ्ग रहा है, उससे यह अनुभव हुआ कि वे एक अत्यन्त निरहंकार एवं परहित-निरत महान् पुरुष थे। उन्होने सेवा तथा लोक-कल्याणको साधनाके अङ्गरूपमे ग्रहण करते हुए निरालस्य हो निष्काम कर्म तथा निःस्वार्थ सेवामे जीवन अर्पित किया था। सेवा तथा कर्मके अङ्गरूपमे आचरित सभी कृत्य उनकी साधनाकी ही पुष्टि करते थे। देशको स्वतन्त्र करनेकी प्रेरणा, 'कल्याण'-सम्पादन, साहित्य-रचना, साहित्यप्रेम, अपनी मातृभाषाकी सेवा आदि नाना प्रकारके कर्मोद्यम तथा सबसे ऊपर भारतवर्षके सनातनधर्मकी परम्परा तथा ऐतिह्यकी रक्षा, उसके प्रचार तथा प्रसारकी नव-नव कार्यप्रणालियाँ--सभी उनकी

भगवन्मुखी भावनाकी क्रमिक परिणतिकी भिन्न-भिन्न दिशाएँ थीं और उसी रूपमें ये उनके निकट प्रतिभात होती थीं। अतः जीवनके नानाविध कर्मोद्यम उनकी साधनाके अन्तराय न होकर उसके परिपूरक बन गये थे।

हमारे देशमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी महापुरुषोंके जीवन-वृत्त सुलभ नहीं हैं। दिव्य आत्माओंकी स्वभावतः ही जीवनके नाना प्रकारके जागतिक तथ्योंसे उदासीनताके कारण उनकी लोकयात्रासे सम्बद्ध बहुत-सी महत्त्वपूर्ण बातें उन लोगोंके भी कर्णगोचर नहीं हो पातीं, जो उनके सांनिध्यमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त करते हैं। जो कुछ अन्य स्रोतोंसे जाना भी जा सकता है, वह कल्पनारञ्जित होनेसे असत्य अथवा अर्द्ध-सत्यके रूपमें प्रस्तुत होनेके कारण विकृत हो जाता है। अतः उनके माध्यमसे महापुरुषोंके व्यक्तित्वको पहचाना नहीं जा सकता। इस सम्बन्धमें एक और बाधा यह है कि महापुरुषगण संसारके कोलाहलसे निवृत्त होकर किसी निभृत निराले स्थानमें साधन-जीवनके ध्येयकी प्राप्तिके लिये नीरवतामें कालयापन करते हैं। साधारण मनुष्य उनका संधानतक नहीं पा सकते। यदि कोई व्यक्ति सौभाग्यवश उनके सानिध्यमें जाता भी है तो उस समय प्रायः उसका लक्ष्य रहता है इहलौकिक याचना, ऐहिक सुख विपत्ति-निवारण और आधि-व्याधिकी ज्वालाके उपशमकी कामना; इन्हें छोड़कर वह भगवत्कृपाका भी अभिलाषी नहीं होता। उसकी दृष्टि जीवनकी स्वल्प परिधिमें सीमित रहती है। अतः उसके निकट भूमाके आनन्द तथा अखण्ड माधुर्य-रसास्वादनकी कल्पना भी एक अलीक स्वप्न-सदृश है। संसारी मनुष्योंके निकट उनका दुःख और वेदना जितनी सत्य है, भव-सागरसे त्राण करानेवाली परमानन्दमयी मुक्ति उतनी सत्य नहीं। सामान्यतः लोग सांसारिक सुख चाहते हैं उन्हें अन्य किसी वस्तुकी अभिलाषा नहीं होती। इसके विपरीत जो सत्य स्थिति है महापुरुषगण अपने साधन-बल तथा भगवत्कृपासे उसे उपलब्ध करते हैं। वे इस दुःख-समुद्रका मन्थन करके अमृतके नित्यलोकमें उपनीत होते हैं और इस प्रकार अपने जीवनको मृत्युंजय बना लेते हैं। उनका लक्ष्य रहता है जीवनको मृत्युसे अतीत भूमिमें पहुँचाकर एक विशेष दृष्टिसे पुनर्वार संसारकी ओर प्रसन्न नेत्रोंसे देखना। उस समय जीवन स्वयं ही उनके समक्ष एक विशेष तात्पर्य लेकर उपस्थित होता है—दुःखान्यपि सुखायन्ते विषमप्यमृतायते। नोद्वेजन्ते च संसारो यत्र सार्थं न शङ्कर ॥

एक परमसत्ता विश्वके प्रत्येक अणु-परमाणुमें व्याप्त है। विश्वके सब रूप उसीके रूप हैं। उसका प्रकाश अनन्त सूर्योंकी किरणोंसे भी अधिक तेजस्वी है, किंतु मायाके आवरणसे आवृत रहनेके कारण वह जीवोंके द्वारा दृश्य नहीं है। सहस्रांशु होते हुए भी वह अन्धकारमें आवृत-जैसी रहती है। अतः बद्ध जीव इसे देखते हुए भी नहीं देख पाता ज्ञात होते हुए भी वह उसके निकट चिरकालके लिये अज्ञात ही रह जाती है। जब भगवत्कृपासे आवृत दृष्टि उन्मुक्त हो जाती है, तब अनन्त प्रकारके भेद, मान तथा माताका जगत् विलुप्त होकर एक नित्य सदोदित दृष्टिका उदय होता है। उस समय उस परम भक्तके निकट जो कुछ भी प्रतिभात होता है वह परमेश्वरके प्रकाशमान रूपके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। परमभागवतोंको तब यह जगत् एक सविशेषरूपमें दृष्टिगोचर होता है—भोक्तैव भोग्यभावेन सदा सर्वत्र संस्थितः।—'एकमात्र भोक्ता परमेश्वर ही भोग्यरूपमें निरन्तर सर्वत्र विद्यमान हैं।' उस समय सर्वभूतमें भगवद्रूप और भगवान्‌में सब कुछ देखकर उनका हृदय एक अपूर्व प्रेम-रसमें आप्लुत हो जाता है। वैष्णव कवि श्रीकृष्णदास कविराज 'चैतन्य-चरितामृत'में इस भावका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

> महाभागवत देखे स्थावर-जंगम। ताँहा ताँहा हय तार श्रीकृष्ण-स्फुरण ॥
> स्थावर-जंगम देखे ना देखे तार मूर्ति। सर्वत्र हय निज इष्टदेव-स्फूर्ति ॥

'महाभागवत स्थावर-जंगम जो कुछ देखते हैं, उसमें उनको श्रीकृष्णका स्फुरण होता है। वे स्थावर-जंगम नहीं देखते, उनकी (श्रीकृष्णकी) मूर्ति देखते हैं और तब उन्हें सर्वत्र निज इष्टदेवकी स्फूर्ति होने लगती है।'

भाईजीकी साधना जीवनके प्रथम चरणमें ही आरम्भ हो गयी थी। उसीसे स्फूर्ति ग्रहण कर असंख्य कल्याण-कर्मोंमें अपनेको सर्वदा व्यापृत रखकर उन्होंने अपना जीवन भगवत्सेवामें अर्पित कर दिया था। रसमय भगवान्‌के अपूर्व लीला-रसका आस्वादन करते हुए उन्होंने अपने अन्तरङ्ग जीवनके सामान्य क्रमको लोकनेत्रोंसे

अलक्ष्य एवं अत्यन्त संगोपित रखा। मेरी धारणा है कि वे 'श्रीकृष्ण-रस-भावित-मति' थे। उसी भावनाके र निरन्तर निमग्न रहकर वे जगत्के सभी कार्य करते रहे।

इस ग्रन्थमे भाईजीके स्वरूपका जैसा निरूपण हुआ है, वह वस्तुतः उनका बाह्य रूप ही है। उनका आन्तरिक रूप कैसा था—यह वर्णनका विषय नहीं, आभास तथा इङ्गितसे ही जाना जा सकता है। इसका किंचित् परिचय 'स्वरूप-चिन्तन'के अन्तर्गत संगृहीत सस्मरणात्मक निबन्धोसे मिल सकता है। 'श्रद्धार्चन' अध्यायसे यह ज्ञात होगा कि देशके सभी श्रेणियो एवं वर्गोके महानुभावोने कितने भावप्लुत हृदयसे उन महापुरुषके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन सर्मापित किये हे। उनके कर्मजीवनके सम्बन्धमे जानकारी प्राप्त करनेके लिये 'जीवनयात्रा' शीर्षक अध्यायमे कुछ सामग्री उपहृत है। इसके अतिरिक्त ग्रन्थके विभिन्न अध्यायोमे भाईजीके व्यक्तित्वके विषयमे श्रद्धालुओके द्वारा अभिव्यक्त विचारोसे भी पर्याप्त प्रकाश प्राप्त होगा। उनके लोक-संग्रहपरक जीवनकी आलोचना विशेषरूपसे 'लोकाराधन'मे निबद्ध है। ग्रन्थके अन्तिम अध्याय 'अमर सदेश'मे संकलित भाईजीके मूल शब्दोसे पाठकोको उनकी विचारधारासे अन्तरङ्ग परिचय एवं उद्बोधन प्राप्त हो सकेगा। ग्रन्थके आरम्भमे 'इष्ट-वन्दन'के पश्चात् महापुरुषके स्वरूप एवं उसके अलौकिक माहात्म्यका स्वल्प दिग्दर्शन कराया गया है। सम्पूर्ण ग्रन्थका इसी परिप्रेक्ष्यमे आस्वादन करना चाहिये।

दिव्य-धामको प्रस्थान करनेके पूर्व भाईजीने मेरे परमस्नेह-भाजन एव शिष्य डॉ० भगवतीप्रसाद सिहको अपने सामान्य जीवनका अन्तरङ्ग तथा विशद परिचय बताया था। वह एक पृथक् ग्रन्थके रूपमे यथासमय प्रकाशित होगा। अत उसमे विस्तारसे वर्णित प्रसङ्गोका इस ग्रन्थमे सकेतमात्र करके संतोष किया गया है।

भाईजीके विशाल मानसकी भाँति ही उनके स्नेहियों, श्रद्धालुओ तथा कृपापात्रोका एक विराट् समुदाय देश-विदेशमे व्याप्त है। प्रस्तुत ग्रन्थके लिये उनमेसे अनेक महानुभावोने श्रद्धाञ्जलि, सस्मरण, काव्य, निबन्धादि भेजकर हमे कृतार्थ किया है। हम उनके हृदयसे कृतज्ञ है। श्रीअरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरीकी परम पूजनीया माताजीका मङ्गलमय आशीर्वाद इस ग्रन्थके लिये प्राप्त हुआ है। उससे इस ग्रन्थकी मङ्गलमयतामे वृद्धि हुई है। पूजनीया माताजीके चरणोमे हमारा मस्तक नत है। ग्रन्थके आकारकी सीमाको दृष्टिमे रखते हुए समस्त प्राप्त सामग्रीको स्थान देनेमे असमर्थता रही है। कतिपय रचनाओका यथायथ सशोधन भी करना पडा। प्राप्त सामग्रीका एक वृहदश ग्रन्थके अङ्गीभूत होनेसे रह गया। उनके श्रद्धालु एवं सुधी लेखकोके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करते हुए हम क्षमाप्रार्थी है। सम्पादन-कार्यमे मेरे प्रिय अन्तेवासी श्रीचिम्मनलाल गोस्वामी ('कल्याण'-सम्पादक) और डॉ० भगवतीप्रसाद सिहने जिस निष्ठासे योगदान किया है, वह भाईजीके साथ उनके घनिष्ठ अन्तरङ्ग सम्बन्धके अनुरूप ही है। इसके लिये वे धन्यवादके पात्र है।

'श्रीराधामाधव सेवा-सस्थान', गोरखपुरके संचालकोके हम विशेषरूपसे कृतज्ञ है, जिन्होने इस महान् ग्रन्थके सयोजन एवं प्रकाशनका भार लेकर भाईजीके यशः-सौरभके प्रसारमे अपनी अमूल्य सेवाएँ अर्पित की। साथ ही 'ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी'के व्यवस्थापकोके भी हम आभारी हे, जिनके अथक अध्यवसायसे यह इतने सुरुचिपूर्ण रूपमे प्रस्तुत हो सका। इनके अतिरिक्त इस ग्रन्थकी अवतारणामे निमित्त बननेवाले भाईजीके ज्ञात-अज्ञात सभी श्रद्धालुओके प्रति हमारा इन शब्दोके साथ विनम्र निवेदन है कि अपनी हंस-बुद्धिमे वे इसके अन्तर्गत प्राप्त यत्किंचित् सदंश ग्रहणकर परमार्थ-लाभ करे।

चैत्र कृष्ण १० सं० २०२८,
मॉ आनन्दमयी आश्रम,
वाराणसी

गोपीनाथ कविराज

(गोपीनाथ कविराज)

यह क्षुद्र प्रयास

सृष्टिके अनादि प्रवाहमे जगत्मे असख्य सत हो चुके है, जिनमेसे अधिकांशके नाम भी विस्मृतिके गर्भमे लीन हो गये है। जितने महापुरुषोका आशिक जीवनवृत्त वर्तमान इतिहासके पन्नोमे सुरक्षित है, उनकी ओर जब हम दृष्टि डालते है, तब ऐसा लगता है कि उनका जीवन-क्षेत्र अधिकाशमे एकदेशीय अथवा सीमित ही रहा है। उनमेसे कोई ज्ञानी, कोई भक्त, कोई कर्मठ, कोई विरक्त, कोई लोकसग्रही, कोई विविक्तसेवी, कोई भजनपरायण, कोई उपदेशक, कोई विद्वान्, कोई निरक्षर, कोई कवि, कोई लेखक, कोई विचारक, कोई वक्ता, कोई अपरिग्रही, कोई दानी, कोई भिक्षुक, कोई धनवान्, कोई सर्वथा त्यागी और कोई राजसी ठाटमे रहनेवाले, कोई योद्धा और कोई सर्वथा अहिसक रहे है। ऐसे सत जगत्मे बहुत कम हुए है, जिनका जीवनक्षेत्र बहुमुखी अथवा व्यापक रहा हो। श्रीभाईजीका व्यक्तित्व ऐसा था, जो अनेक दृष्टियोसे समृद्ध था। वे धनी न होनेपर भी बहुत बडे दानी थे। उन्होने लोकसेवाके लिये भी कभी एक पैसा किसीसे नही मॉगा, न कभी पैसेके लिये कोई अपील ही निकाली, जब कि उन्होने अपने जीवनमे अभावग्रस्त व्यक्तियोकी, लोकहितकारिणी सस्थाओकी तथा अकाल, बाढ, भूकम्प, अग्निकाण्ड आदि दैवी प्रकोपोके शिकार हुए पीडित प्राणीमात्रकी सेवामे करोडो रुपये खुले हाथो व्यय किये।

जाति, समाज अथवा धर्मका भेद तो कभी उन्होने किया ही नही। उनका द्वार सभी जातियो, सभी वर्गो, सभी सम्प्रदायो एव सभी धर्मावलम्बियोके लिये खुला था। विचारोकी दृष्टिसे यद्यपि वे स्वय कट्टर सनातनी हिदू थे, फिर भी किसी भी सम्प्रदायसे उनका विरोध तो था ही नही, सभी सम्प्रदायोके प्रति उनकी आदरबुद्धि थी, सभी सम्प्रदायवालोके लेखोको वे सम्मानपूर्वक 'कल्याण'मे स्थान देते थे। राजनीतिके किसी भी दलके साथ उनका साक्षात् सम्बन्ध न होनेपर भी सभी दलवालोके साथ उनका प्रेमका सम्बन्ध था और आवश्यकता होनेपर वे सबकी तन-मन-धनसे सहजरूपसे सहायता करते रहते थे। राजनीतिसे सर्वथा अलग रहनेपर भी उन्हे राजनीतिक विषयोका प्रचुर ज्ञान था और समय-समयपर देशके सामने आनेवाली विविध समस्याओको सुलझानेके लिये वे 'कल्याण'के माध्यमसे बडे ही सुन्दर और सर्वमान्य आध्यात्मिक समाधान प्रस्तुत करते थे। उच्चकोटिके प्रेमीभक्त होनेके साथ-साथ वे आदर्श कर्मी, ज्ञानी एव योगी भी थे। शरीरसे वे कितने असङ्ग थे, इसका पता लोगोको उनकी अन्तिम बीमारीके समय चला। जिन दिनो उनके निवासस्थानमे बिजली नही थी, उन दिनो ज्येष्ठ-आषाढकी गर्मीमे भी वे सम्पादन अथवा लेखन-कार्यमे इतने तल्लीन रहते थे कि उन्हे गर्मीका भान ही नही होता था, यद्यपि उनके शरीरसे पसीना चूता रहता था। योगकी चरम स्थितिके दर्शन उनकी भाव-समाधिमे सुलभ थे।

सतके लिये यह आवश्यक नही है कि वह विद्वान् अथवा लेखक भी हो। श्रीभाईजी परमोच्चकोटिके सत होनेके साथ उच्चकोटिके लेखक, कवि एव ग्रन्थकार थे। यो तो सतके जीवन, उनके अस्तित्व, उनके श्वास-प्रश्वास, उनके दर्शन, स्पर्श एव सम्भाषणसे, उनके शरीरका स्पर्श प्राप्त की हुई वायुसे ही जगत्का मङ्गल होता है, परतु श्रीभाईजीने तो अपने प्रौढ विचारो, अपनी ओजस्विनी वाणी तथा अपनी शक्तिशालिनी लेखनीसे भी असख्य पथभ्रष्टोको पथ दिखाया, जिज्ञासुओकी ज्ञान-पिपासा शान्त की, भक्तोको भक्तिका मर्म समझाया, ज्ञानमार्गियोको ज्ञानका रहस्य बताया। उच्चकोटिके लेखक एव शास्त्रमर्मज्ञ विद्वान् होनेके साथ-साथ पत्रकारिताके क्षेत्रमे भी उन्होने सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया तथा सस्ते-से-सस्ते मूल्यमे उच्चकोटिके लोक-कल्याणकारी आध्यात्मिक एव नैतिक साहित्यको अत्यन्त अल्पमूल्यमे जनसाधारणको सुलभ कराके सत्साहित्य-प्रचारकी दिशामे भी बहुत बडा कार्य किया। चोटीके साहित्यिक, कवि, लेखक एव विचारक प्राय लोक-व्यवहारसे अनभिज्ञ होते है। परंतु हमारे श्रीभाईजीका व्यवहारपक्ष भी सबल था। उनका व्यापारविषयक ज्ञान, हिसाब-किताबमे पटुता तथा सार्वजनिक

स्थाओके संचालन और सेवाकार्योंके संगठनका अनुभव भी कितना बढ़ा-चढ़ा था—इसका परिचय हमे उन
ारा चलायी गयी तथा उन्नतिके शिखरपर पहुँची हुई अनेक संस्थाओके निरीक्षणसे प्राप्त होता है।

सतत साधनाके द्वारा ज्ञान, भक्ति एवं योगके क्षेत्रमे सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करनेके बाद उनके लिये कोई
र्त्तव्य शेष नही रह गया था। परंतु इन महान् उपलब्धियोको प्राप्त करनेके बाद भी उन्हे संतोष नही हुआ।
ान, योग और भक्तिकी जो दुर्लभ स्थिति उन्हे प्राप्त थी, उसका लाभ अधिक-से-अधिक लोगोंको मिले, जगत्के
ोहग्रस्त जीव भी इस प्रकारकी स्थितिपर विश्वास करके इस ओर अग्रसर हो—इसके लिये वे व्याकुल थे और
ीवनके अन्तिम क्षणतक वे जीवोको सर्वभूतसुहृद्, अकारणकरुण, करुणावरुणालय भगवान्की ओर उन्मुख करनेके
लये सचेष्ट रहे।

गङ्गातटपर जाकर एकान्त-सेवनकी, संन्यास लेनेकी अथवा केवल भजन-स्मरण, भगवच्चिन्तनमे ही जीवन
बितानेकी वृत्ति कई बार प्रबलरूपमे जाग्रत् होनेपर भी श्रीभाईजी लोकसंग्रहकी भावनासे अन्ततक कर्मक्षेत्रमे ही
रहे और एक अनासक्त गृहस्थका जीवन उन्होने बिताया। इस रूपमे उन्होने न जाने कितने ब्रह्मचारियो, वानप्रस्थो
एवं संन्यासियोकी सेवा की। वे स्वयं संन्यासी नही हुए, परंतु उनके सम्पर्कसे कई अच्छे विद्वान् तथा संस्कारी
महानुभाव संन्यास-ग्रहण कर अपने जीवनको सफल बना चुके हैं।

इसके अतिरिक्त वे अनेक भाषाविद् थे। प्राचीनता एवं अर्वाचीनताका अद्भुत समन्वय उनमे था। वे नियम-
पालनमे कठोर, पर दूसरोके लिये परम उदार थे, गृहस्थ होते हुए भी विदेह थे, भारतीय संस्कृतिके मूर्तिमान्
स्वरूप थे, उनका जीवन धर्मकी व्याख्या था, सबको मान देनेवाले किंतु स्वयं अमानी थे, सारा उत्तरदायित्व
सँभालते हुए भी अपना किसी प्रकारका अधिकार नही मानते थे। अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्णकी भाँति उनका
जीवन सभी दृष्टियोसे आदर्श एवं पूर्ण था। वे आदर्श पिता थे, आदर्श पति थे, आदर्श पुत्र थे, आदर्श मित्र थे,
आदर्श बन्धु थे, आदर्श सेवक थे, आदर्श आत्मीय थे, आदर्श स्नेही थे, आदर्श सुहृद् थे, आदर्श गुरु थे, आदर्श
शिष्य थे, आदर्श साधक थे, आदर्श सिद्ध थे, आदर्श प्रेमी थे, आदर्श कर्मयोगी थे, आदर्श ज्ञानी थे, आदर्श गृहस्थ
थे, आदर्श लेखक थे, आदर्श संगठनकर्त्ता थे—इस प्रकार सभी आदर्शोंका समन्वितरूप था उनका जीवन। ऐसे
सर्वमान्य महामहिमामय महामानवके इतनी विविधताओसे परिपूर्ण जीवनके विषयमे इस छोटे-से ग्रन्थमे कितना क्या
समाविष्ट किया जा सकता है—यह सहजरूपसे अनुमान लगाया जा सकता है। फिर उनका परिवार तो देश-विदेशमे
सर्वत्र फैला हुआ है। अपने दीर्घ-जीवनके ७९ वर्षोंमे देश-विदेशके करोड़ो-करोड़ो व्यक्तियोके जीवनसे उनका प्रत्यक्ष-
अप्रत्यक्ष परिचय एवं सम्पर्क हुआ है। उन सब श्रद्धालु एवं प्रेमी बन्धुओको हम इस आयोजनकी सूचनातक नही
भेज पाये हैं। अतएव एक सीमित संख्याके श्रद्धालुओ-स्वजनोकी भाव-कुसुमाञ्जलिका संग्रहमात्र यह 'पावन स्मरण'
है और यह स्मरण भी हुआ है अपनेको पवित्र एवं धन्य बनानेके लिये—'निज गिरा पावन करन कारन राम
जसु तुलसी कह्यो।'

भगवान्ने चाहा तो भविष्यमे इसी प्रकारकी और वस्तुएँ प्रकाशमे लायी जा सकेंगी।

गीता वाटिका, गोरखपुर

चिम्मनलाल गोस्वामी
भगवतीप्रसाद सिंह

संस्थानकी ओरसे

'श्रीराधामाधव सेवा-सस्थान'के मन्त्री होनेके नाते इस ग्रन्थके सयोजकरूपमे 'भाईजी पावन स्मरण' नामक यह पत्र-पुष्प विश्वरूप प्रभुकी अर्चनाकी दृष्टिसे उसके सम्मुख रखते हमे वस्तुत अत्यन्त सकोच हो रहा है। पूज्य भाईजी तो निस्सदेह परम पावन हैं; परतु जब हम अपनी ओर दृष्टि डालते हैं, तब ऐसा लगता है कि योग्यता, शक्ति और अधिकार तो बहुत आगेकी बातें हैं—हमारी अपावन बुद्धिके माध्यमसे हुआ यह सयोजन हमारे अत्यन्त जाग्रत् मलिनतम अहकारके क्रियाशील रहनेके कारण—उनके निरञ्जन, निर्मल, परमविशुद्ध स्वरूपको निश्चय ही अभिव्यक्त नहीं कर पाया है, इस संकोचके कारण हम सचमुच विश्वरूप प्रभुके सम्मुख क्षमा-प्रार्थी होकर ही खडे हैं।

वास्तवमे सत अचिन्त्य महाशक्तिकी स्वरूप-लीला होते हैं। इसलिये सत-तत्त्व एक अत्यन्त गम्भीर रहस्य है। वह मनसे अतीत है। अत जबतक मन-बुद्धिका निरोध नहीं हुआ है, सत-चरित्ररूप निर्मल गङ्गाजलका सस्पर्श सम्भव ही नहीं। फिर जितनी व्याख्या, स्मरण, मनन है, वह तो मन-बुद्धिको लेकर ही है। इसीलिये पूज्य श्रीभाईजीके चरित्रको अनेकोने अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार ही देखा है—और श्रीभाईजी भी सभीको उनकी अपनी दृष्टिके अनुसार ही दिखायी पडे हैं। प्रत्येककी दृष्टि भिन्न है। किसी समाज-सुधारकने उनमे महान् समाज-सेवीको देखा है, किसी संगठनकर्त्ताने उनमे सगठन-कौशलकी चरम सीमाके दर्शन किये हैं, किसीने उनमे सेवा-भावना मूर्त होती पायी है, किसीने उदारता, किसीने करुणा, किसीने वात्सल्य, किसीने दयालुता, किसीने विद्वत्ता, किसीने वक्तृता, किसीने सेवा-परायणता, किसीने शास्त्रोकी उद्धारकता आदि गुणोको उनमे मूर्तिमान् होकर विराजित देखा है। एकने कहा—'उन-जैसा गुरुसेवक कोई नहीं रहा—यह उनका महान् गुण था।' दूसरेने कहा—'वे ब्रह्मण्य थे, भक्ति-श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोकी पूजा करते थे।' तीसरेने कहा—'वे सर्वथा गर्वहीन थे—उनमे कहीं गर्व, मद या अभिमान था ही नहीं।' श्रीभाईजीको लोगोने लोकनायकके रूपमे देखा, आप्तकामके रूपमे देखा। किसीने कहा—'वे पूर्ण थे, फिर भी लोकसग्रहके लिये शुभकार्य किया करते थे।' किसीने उन्हें सदा निष्काम पाया। किसीने उन्हें ममताशून्य देखा तो किसीने दीन-दुर्बलोके बन्धुके रूपमे उनके दर्शन किये। किसीने उन्हें लोकसेवकके रूपमे देखा एव उनकी दीर्घ आयुका अधिकाश भाग धर्म-सस्थापनार्थ कर्म करनेमे ही व्यतीत होते पाया।

पूज्य श्रीभाईजी योगी थे, ज्ञानी थे, भक्त थे, रसिक थे, भावसिद्ध थे। वे गो-सेवक थे, परमनीतिज्ञ थे, विद्वान् थे, सम्पादक थे, वाग्मी थे। साख्य, योग, वेदान्त, उपासना, राजनीति, समाजनीति—सबके व्याख्याता थे। ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कर्मसन्यास, नैष्कर्म्य, सर्वधर्मसन्यास, द्वैत-अद्वैत—सभी मतोके तत्त्व, रहस्य आदि सबके जाननेवाले थे। कहाँतक कहें, इस ग्रन्थमे हम देखेंगे कि सबके मतोमे भिन्नता होते हुए भी सबने अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार भाईजीरूपी निर्मल आरसीमे अपनी-अपनी विलक्षण ध्येय छविके दर्शन किये हैं।

परतु फिर भी हमे अत्यन्त विनीत भावमे यही कहना है—ये सब दर्शन मनके अनुगामी हैं। और पूज्य श्रीभाईजी वह तत्त्व थे, जिसका साक्षात्कार मनको अतिक्रम करनेपर ही होना सम्भव है। वास्तवमे अचिन्त्य भगवत्कृपासे हममेसे कोई भी निर्वितर्क समाधिसे पूज्य श्रीभाईजीका स्वरूप-साक्षात्कार करनेके बाद व्यवहार-भूमिमे उतरकर उसका विवरण ग्रन्थरूपमे प्रस्तुत कर पाता, तभी वह विवरण सत्यके अतिनिकट होता, यद्यपि वह विवरण भी विकल्पमय ही होता। क्योकि सतका साक्षात्कार वहाँ होता है, जहाँ मन नहीं रहता। वह निर्विकल्प स्थिति है। और तत्त्वका वर्णन होता है वाक्योसे, जिनमे मन-बुद्धिकी आवश्यकता है। जो कुछ भी चिन्त्य है, वह महान्-से-महान् होकर भी दृश्य ही है—'इद' ही है और संत दृश्य नहीं—'इद' नहीं, द्रष्टा है, इसीलिये वह निर्लेप है, असङ्ग है, अदृश्य है, अगम्य-अगोचर है। सतकी बडी-से-बड़ी महिमा कहकर भी हम उस पूर्ण अपरिच्छिन्न पुरुषोत्तमको किसी शब्द-सकेतकी परिधिमे सीमित करते हैं, इसलिये उसे 'लघु' ही करते

है। सचमुच हमे इस विचारसे अत्यधिक ग्लानि है कि इस 'पावन स्मरण'से हमने पूज्य श्रीभाईजीकी अपरिच्छिन्न महिमाको सीमित—बहुत ही संकुचित कर दिया है। इस गुरुतर अपराधको विश्वरूप प्रभुके सम्मुख हम निस्संकोच स्वीकार करते हे।

भारतीय वाङमयमे तो 'सत' शब्द महामहिमाका परिद्योतक है ही, अग्रेजी भाषामे भी 'Saint' शब्द ईश्वरताका ही वाचक है—

'The English word Saint is derived from the Latin epithet 'sanctus', which represents the Greek *hagios* and the Hebrew *qādosh*. These words *sanctus*, *hagios*, *qādosh*, were applied to God himself '

(The Penguin Dictionary of Saints)

संतमे ईश्वर ही क्रियाशील रहता है। मलिन देहात्मबोध और कर्त्तृत्वाभिमान तो तभीतक है, जबतक प्राकृत अहंकार है। श्रीभाईजीमें यह मलिन अहंकार सर्वथा विलीन हो गया था—उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो चुकी थी। पूज्य श्रीभाईजी अपने जीवनकालमे ही कर्मातीत अवस्थाको प्राप्त कर चुके थे।

इस अवस्थाके बाद श्रीराधामाधवकी जिनपर विशेष कृपा होती है, उनका भावराज्यमे प्रवेश हो जाता है और वहाँ रह जाते हे केवल श्रीराधामाधव और उनकी प्रेममयी लीला। भक्त उस लीलामे प्रवेश करके लीलामय बन जाता है। उस भक्तकी भगवन्मयी स्थितिका कुछ आभास मिलता है श्रीभाईजीकी निम्नाङ्कित पंक्तियोमे—

तुम हो यन्त्री, मै यन्त्र, काठकी पुतली मै, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥

× × ×

क्या करूँ, नही क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हे, सो प्रिय विहार॥

जहाँतक हमारी त्रुटियोका प्रश्न हे—वे अनन्त है, अपार है, और यह भी कहूँ तो अतिशयोक्ति न होगी कि हममे त्रुटि-ही-त्रुटि है और इस 'पावनस्मरण'मे भी अवश्यमेव हमारे क्रियाशील अभिमानने त्रुटियाँ भर दी है। फिर भी भगवद्भक्त भगवत्स्वरूप ही होते है—वे त्रुटि नहीं देखते, मात्र भाव देखते है। जो भावसे, कुभावसे—किसी भी प्रकारसे भक्तोका सेवन करते हे, वे भगवत्कृपा-पात्र तो अवश्य ही हे। क्योकि नारदजी-जैसे महापुरुषोने कहा है—लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव—भगवान्‌की अपार अहेतुकी कृपासे ही महापुरुषोका सङ्ग प्राप्त होता है।'

हमारे इस प्रयासमे उचित योग्यताका अभाव अवश्य हे, परतु हमारा भाव यही है—

'तदेव साध्यताम्, तदेव साध्यताम्॥ (नारद-भक्तिसूत्र ४२)

'उन भक्त महापुरुषके चरणोकी पावन-रजकी ही साधना की जाय—उनका ही अनुसरण-अनुचिन्तन निरन्तर किया जाय।' इसके अतिरिक्त हमारा वश ही क्या हे? मन-बुद्धिकी दुर्भेद्य सीमाओको हम लाँघ नहीं सकते। ब्रह्मानुभूति, आत्मानुभूति तो दूर, कुत्सित तमोगुण-रजोगुणके आवेशमे भ्रमित हम पामर जीवोंने सतोगुणी शान्तिका भी स्पर्श नहीं किया है। इस दयनीय अवस्थामे पड़े, अशान्त, विषय-विह्वल निकृष्टतम देहाभिमानी हमारे-जैसे परमाधम जीवोका आधार उन महापुरुषकी हेतुरहित कृपामात्र ही है। वही हमारा एकमात्र सम्बल, एकमात्र सहारा, एकमात्र भरोसा, एकमात्र पाथेय है। हमने तो यही जाना है कि हमारे लिये तीर्थ पूज्य श्रीभाईजी हैं, लीलाधाम पूज्य श्रीभाईजी हैं और हमारे-जैसे अनन्त जीवोको तारनेके लिये ही वह भगवत्कृपा-भागीरथी इस विग्रहमें पूज्य श्रीभाईजीके नाम-रूपको लेकर अवतरित हुई थी। इस भागीरथीके अतिरिक्त हमारा आश्रय, आश्रयस्थान है ही क्या? हम अपनी अच्छी-बुरी—सभी क्रियाएँ उनके चरणोंमें अर्पित कर चुके हैं। इस दृष्टिसे

संस्थानकी ओरसे

'श्रीराधामाधव सेवा-सस्थान'के मन्त्री होनेके नाते इस ग्रन्थके सयोजकरूपमे 'भाईजी पावन स्मरण' नामक यह पत्र-पुष्प विश्वरूप प्रभुकी अर्चनाकी दृष्टिसे उसके सम्मुख रखते हमे वस्तुत अत्यन्त संकोच हो रहा है। पूज्य भाईजी तो निस्सदेह परम पावन है, परतु जब हम अपनी ओर दृष्टि डालते हैं, तब ऐसा लगता है कि योग्यता, शक्ति और अधिकार तो बहुत आगेकी बातें हैं--हमारी अपावन बुद्धिके माध्यमसे हुआ यह सयोजन हमारे अत्यन्त जाग्रत् मलिनतम अहकारके क्रियाशील रहनेके कारण--उनके निरञ्जन, निर्मल, परमविशुद्ध स्वरूपको निश्चय ही अभिव्यक्त नही कर पाया है, इस संकोचके कारण हम सचमुच विश्वरूप प्रभुके सम्मुख क्षमा-प्रार्थी होकर ही खडे है।

वास्तवमे सत अचिन्त्य महाशक्तिकी स्वरूप-लीला होते हैं। इसलिये सत-तत्त्व एक अत्यन्त गम्भीर रहस्य है। वह मनसे अतीत है। अत जबतक मन-बुद्धिका निरोध नही हुआ हैं, सत-चरित्ररूप निर्मल गङ्गाजलका सस्पर्श सम्भव ही नहीं। फिर जितनी व्याख्या, स्मरण, मनन है, वह तो मन-बुद्धिको लेकर ही है। इसीलिये पूज्य श्रीभाईजीके चरित्रको अनेकोने अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार ही देखा है--और श्रीभाईजी भी सभीको उनकी अपनी दृष्टिके अनुसार ही दिखायी पडे हैं। प्रत्येककी दृष्टि भिन्न है। किसी समाज-सुधारकने उनमे महान् समाज-सेवीको देखा है, किसी सगठनकर्त्ताने उनमे सगठन-कौशलकी चरम सीमाके दर्शन किये है, किसीने उनमे सेवा-भावना मूर्त होती पायी है, किसीने उदारता, किसीने करुणा, किसीने वात्सल्य, किसीने दयालुता, किसीने विद्वत्ता, किसीने वक्तृता, किसीने सेवा-परायणता, किसीने शास्त्रोकी उद्धारकता आदि गुणोको उनमे मूर्तिमान् होकर विराजित देखा है। एकने कहा--'उन-जैसा गुरुसेवक कोई नही रहा--यह उनका महान् गुण था।' दूसरेने कहा--'वे ब्रह्मण्य थे, भक्ति-श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोकी पूजा करते थे।' तीसरेने कहा--'वे सर्वथा गर्वहीन थे--उनमे कहीं गर्व, मद या अभिमान था ही नहीं।' श्रीभाईजीको लोगोने लोकनायकके रूपमे देखा, आप्तकामके रूपमे देखा। किसीने कहा--'वे पूर्ण थे, फिर भी लोकसग्रहके लिये शुभकार्य किया करते थे।' किसीने उन्हे सदा निष्काम पाया। किसीने उन्हे ममताशून्य देखा तो किसीने दीन-दुर्बलोके बन्धुके रूपमे उनके दर्शन किये। किसीने उन्हे लोकसेवकके रूपमे देखा एव उनकी दीर्घ आयुका अधिकाश भाग धर्म-सस्थापनार्थ कर्म करनेमे ही व्यतीत होते पाया।

पूज्य श्रीभाईजी योगी थे, ज्ञानी थे, भक्त थे, रसिक थे, भावसिद्ध थे। वे गो-सेवक थे, परमनीतिज्ञ थे, विद्वान् थे, सम्पादक थे, वाग्मी थे। साख्य, योग, वेदान्त, उपासना, राजनीति, समाजनीति--सबके व्याख्याता थे। ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, कर्मसन्यास, नैष्कर्म्य, सर्वधर्मसन्यास, द्वैत-अद्वैत--सभी मतोके तत्त्व, रहस्य आदि सबके जाननेवाले थे। कहाँतक कहें, इस ग्रन्थमे हम देखेंगे कि सबके मतोमे भिन्नता होते हुए भी सबने अपनी-अपनी दृष्टिके अनुसार भाईजीरूपी निर्मल आरसीमे अपनी-अपनी विलक्षण ध्येय छविके दर्शन किये है।

परतु फिर भी हमे अत्यन्त विनीत भावसे यही कहना है--ये सब दर्शन मनके अनुगामी हैं। और पूज्य श्रीभाईजी वह तत्त्व थे, जिसका साक्षात्कार मनको अतिक्रम करनेपर ही होना सम्भव है। वास्तवमे अचिन्त्य भगवत्कृपासे हममेसे कोई भी निर्वितर्क समाधिसे पूज्य श्रीभाईजीका स्वरूप-साक्षात्कार करनेके बाद व्यवहार-भूमिमे उतरकर उसका विवरण ग्रन्थरूपमे प्रस्तुत कर पाता, तभी वह विवरण सत्यके अतिनिकट होता, यद्यपि वह विवरण भी विकल्पमय ही होता। क्योकि सतका साक्षात्कार वहाँ होता है, जहाँ मन नही रहता। वह निर्विकल्प स्थिति है। और तत्त्वका वर्णन होता है वाक्योसे, जिनमे मन-बुद्धिकी आवश्यकता है। जो कुछ भी चिन्त्य है, वह महान्-से-महान् होकर भी दृश्य ही है--'इद' ही है और संत दृश्य नहीं--'इद' नहीं, द्रष्टा है, इसीलिये वह निर्लेप है, अनङ्ग है, अदृश्य है, अगम्य-अगोचर है। सतकी बडी-से-बडी महिमा कहकर भी हम उस पूर्ण अपरिच्छिन्न पुरुषोत्तमको किसी शब्द-सङ्केतकी परिधिमे सीमित करते हैं, इसलिये उसे 'लघु' ही करते

है। सचमुच हमे इस विचारसे अत्यधिक ग्लानि है कि इस 'पावन स्मरण'से हमने पूज्य श्रीभाईजीकी अपरिच्छिन्न महिमाको सीमित--बहुत ही संकुचित कर दिया है। इस गुरुतर अपराधको विश्वरूप प्रभुके सम्मुख हम निस्संकोच स्वीकार करते है।

भारतीय वाङ्मयमे तो 'संत' शब्द महामहिमाका परिद्योतक है ही, अंग्रेजी भाषामे भी 'Saint' शब्द ईश्वरताका ही वाचक है--

'The English word Saint is derived from the Latin epithet 'sanctus', which represents the Greek *hagios* and the Hebrew *qādosh*. These words *sanctus*, *hagios*, *qādosh*, were applied to God himself '

(The Penguin Dictionary of Saints)

संतमें ईश्वर ही क्रियाशील रहता है। मलिन देहात्मबोध और कर्त्तृत्वाभिमान तो तभीतक है, जबतक प्राकृत अहंकार है। श्रीभाईजीमे यह मलिन अहंकार सर्वथा विलीन हो गया था--उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति हो चुकी थी। पूज्य श्रीभाईजी अपने जीवनकालमे ही कर्मातीत अवस्थाको प्राप्त कर चुके थे।

इस अवस्थाके बाद श्रीराधामाधवकी जिनपर विशेष कृपा होती है, उनका भावराज्यमे प्रवेश हो जाता है और वहाँ रह जाते है केवल श्रीराधामाधव और उनकी प्रेममयी लीला। भक्त उस लीलामे प्रवेश करके लीलामय बन जाता है। उस भक्तकी भगवन्मयी स्थितिका कुछ आभास मिलता है श्रीभाईजीकी निम्नाङ्कित पक्तियोमे--

तुम हो यन्त्री, मै यन्त्र, काठकी पुतली मै, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥

× × ×

क्या करूँ, नही क्या करूँ--करूँ इसका मै कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हे, सो प्रिय विहार॥

जहाँतक हमारी त्रुटियोका प्रश्न है--वे अनन्त है, अपार है, और यह भी कहूँ तो अतिशयोक्ति न होगी कि हममे त्रुटि-ही-त्रुटि है और इस 'पावनस्मरण'मे भी अवश्यमेव हमारे क्रियाशील अभिमानने त्रुटियाँ भर दी है। फिर भी भगवद्भक्त भगवत्स्वरूप ही होते है--वे त्रुटि नही देखते, मात्र भाव देखते है। जो भावसे, कुभाव-से--किसी भी प्रकारसे भक्तोका सेवन करते है, वे भगवत्कृपा-पात्र तो अवश्य ही है। क्योकि नारदजी-जैसे महापुरुषोने कहा है--'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव--भगवान्‌की अपार अहैतुकी कृपासे ही महापुरुषोका सङ्ग प्राप्त होता है।'

हमारे इस प्रयासमे उचित योग्यताका अभाव अवश्य है, परतु हमारा भाव यही है--

'तदेव साध्यताम्, तदेव साध्यताम्॥' (नारद-भक्तिसूत्र ४२)

'उन भक्त महापुरुषके चरणोकी पावन-रजकी ही साधना की जाय--उनका ही अनुसरण-अनुचिन्तन निरन्तर किया जाय।' इसके अतिरिक्त हमारा वश ही क्या है? मन-बुद्धिकी दुर्भेद्य सीमाओको हम लाँघ नही सकते। ब्रह्मानुभूति, आत्मानुभूति तो दूर, कुत्सित तमोगुण-रजोगुणके आवेशमे भ्रमित हम पामर जीवोने सतोगुणी शान्तिका भी स्पर्श नही किया है। इस दयनीय अवस्थामे पडे, अशान्त, विषय-विह्वल निकृष्टतम देहाभिमानी हमारे-जैसे परमाधम जीवोका आधार उन महापुरुषकी हेतुरहित कृपामात्र ही है। वही हमारा एकमात्र सम्बल, एकमात्र सहारा, एकमात्र भरोसा, एकमात्र पाथेय है। हमने तो यही जाना है कि हमारे लिये तीर्थ पूज्य श्रीभाईजी है, लीलाधाम पूज्य श्रीभाईजी है और हमारे-जैसे अनन्त जीवोको तारनेके लिये ही वह भगवत्कृपा-भागीरथी इस विश्वमें पूज्य श्रीभाईजीके नाम-रूपको लेकर अवतरित हुई थी। इस भागीरथीके अतिरिक्त हमारा आश्रय, शरणस्थल है ही क्या? हम अपनी अच्छी-बुरी--सभी क्रियाएँ उनके चरणोमे अर्पित कर चुके है। इस दृष्टिसे

यह 'पावन स्मरण' अवश्यमेव उन कृपावतारकी कृपाकी अजस्रधाराको बहानेमे निमित्त बन जाय--हमारी यह याचना उन कृपालुके द्वार अवश्य खटखटा रही है।

हमारा विश्वास है--भक्तका दर्शन-स्पर्श, चिन्तन-मनन--सब कुछ भगवान् ही होता है। उसकी दृष्टि अमोघ होती है। हम सभीमे, सम्पूर्ण दृश्यवर्गमे उन्होने जिस अपने आराध्यकी झाँकी देखी है, वह उनकी दृष्टि-की अमोघ सत्यता हमे ही नही, जिन-जिनपर उनकी दृष्टि पडी है, उन सबको अवश्य-अवश्य--निश्चय ही प्रभुमे, श्रीकृष्ण-कृपा-महासमुद्रमे विलीन कर ही देगी। विलम्ब मात्र कालका है; किंतु हमारा अविश्वास, हमारी अयोग्यताएँ और हमारे द्वारा पद-पदपर होनेवाले भक्तापराध भी हमारे कल्याणको बहुत अधिक कालतक रोक पानेमे असमर्थ है, अक्षम है--यह निस्सशय है। तो हम आह्वान करते है उनका, जो हमारे स्वरमे स्वर मिला सके, सम्मिलित हो सके हमारे इस प्रेम-कीर्त्तनमे, जिसे हमने इस 'पावन स्मरण'के रूपमे केवल प्रारम्भ भर किया है--इसका पर्यवसान तो वे स्वय है।

वे कृपामूर्ति किसीकी अयोग्यताको, बडे-से-बडे अपराधको, अनन्तानन्त पापोकी ढेरीको, सर्वथा नही देखेगे--देखेंगे केवल भावको और किनारे पडे प्राणियोको उनके अनन्तकृपा-सागरमे उठती एक लहर निश्चय ही अपने-मे आत्मसात् कर लेगी--वह यह करनेमे पूर्णतया समर्थ है।

अन्तमे मेरा इतना निवेदन और है कि हमने चरम तत्त्वको नही जाना, श्रीकृष्णको नही जाना, ब्रह्मको नही जाना; घोर अज्ञानी, महान् पातकी, सर्वथा अयोग्य, अपराधी एव निम्नतम कोटिके जीव हम है--इसे खुले हृदयसे स्वीकार करनेमे हमे कोई हिचक नही है। हमने देखी है पूज्य श्रीभाईजीकी केवल सासारिक मूर्ति--उनका प्राकृत कलेवर। उसमे सनिहित तत्त्वके प्रति हम पूर्णतया अधे रहे है। परतु हमारी आँखोने उनकी आँखो-मे आत्मीयता, उनके शब्दोमे अपनेपनसे भरी वात्सल्यमय शब्दराशि, उनके स्पर्शमे प्रेमसे छलकती रोमाञ्चमयी कोमलता देखी है, सुनी है, पायी है। बस, यही हमारी धरोहर है और इसी पावन अमोघ भावनाको लेकर इस 'पावन स्मरण'के प्रकाशनका आयोजन सस्थानने किया है।

हमारे इस दुर्बल प्रयासको साकार रूप प्राप्त हुआ है श्रीराधामाधवकी अहैतुकी कृपाके साथ महामहिम ऋषिकल्प मनीषी प० श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयके आशीर्वादसे। श्रीकविराज महाशयने इस ग्रन्थका कृपापूर्वक सम्पादन कर हमे गौरवान्वित किया है। अत्यधिक रुग्णावस्थामे भी जो श्रम उन्होने किया है, वह पूज्य श्रीभाईजीके प्रति उनके विशेष स्नेहाकर्षणका ही परिचायक है।

श्रद्धेय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, 'कल्याण'-सम्पादकके भी हम आभारी है, जो सुदीर्घकालतक पूज्य श्रीभाईजीके अनन्य सहयोगी रहे है, जिनको अनुजके रूपमे श्रीभाईजीका स्नेह प्राप्त हुआ है और जिन्होने अपनी अत्यधिक व्यस्त दिनचर्यासे समय निकालकर इस ग्रन्थके सम्पादनमे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। श्रीगोस्वामीजी महाराज सस्थानके सरक्षक भी है।

डा० श्रीभगवतीप्रसादसिहजी रीडर--हिंदी-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालयके भी हम आभारी हैं, जिनके अथक प्रयाससे ग्रन्थका सम्पादन सुचारुरूपसे सम्भव हो सका है।

इसके अतिरिक्त उन सभी स्वजनोके हम हृदयसे कृतज्ञ है, जिन्होने इस महत्कार्यमे हमारा सहयोग किया है, इस ग्रन्थकी सुन्दर सज्जामे सहायता करके हमारे प्रयासको सफल बनाया है।

श्रीराधामाधवकी कृपा हम सबपर नित्य सतत बरसती रहे।

विनीत
कुंजविहारी पालड़ीवाल
मन्त्री
श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान

२२ मार्च, १९७२
गीतावाटिका,
गोरखपुर

श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान—एक परिचय

नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके कतिपय श्रद्धालुओ, मित्रो, प्रेमियो एव स्वजनोने श्रद्धेय श्रीभाईजीका आशीर्वाद लेकर महाशिवरात्रि सवत् २०२४ वि० के दिन गोरखपुरमे 'श्रीराधामाधव सेवा-सस्थान'की स्थापना की थी। इस सस्थाके विपयमे श्रीभाईजीने लिखा है—'श्रीराधामाधव सेवा-सस्थान' एक सस्था है जिसके उद्देश्य बहुत अच्छे है और जहातक सदाचार, त्यागयुक्त साधन, नियमित जीवन और सेवाका क्षेत्र है, वहाँतक मै उसको बहुत उपादेय समझता हूँ। ··· 'सस्थान'के लिये साधन-नियम मेरेहीद्वारा निर्देश किये हुए है।'

इस सस्थानके तीन प्रमुख उद्देश्य है—

(१) आध्यात्मिक तथा सास्कृतिक कल्याण—अर्थात् श्रीराधामाधवके प्रति विशुद्ध, नि स्वार्थ एव आत्म-समर्पणसे पूर्ण भक्तिका प्रचार-प्रसार करना।

(२) समाज-सेवा—अर्थात् दिव्य प्रेम एव आनन्दके मूर्तिमान् विग्रह श्रीराधामाधवका प्राणिमात्रमे दर्शन करते हुए यथावश्यक उपकरणो—अन्न, वस्त्र, जल, औपध, आर्थिक सहयोग, आवास आदिके द्वारा उनकी सेवा करना।

(३) स्वस्थ एव सत्साहित्यका प्रकाशन एव प्रचार—अर्थात् आध्यात्मिक एव सास्कृतिक पुनरुत्थानके लिये, विशुद्ध भक्ति-पक्षके प्रचारके लिये, अनैतिक प्रवृत्तियोके उन्मूलन एव नैतिकताके विकासके लिये प्राचीन और नवीन सत्साहित्यका सग्रह, सरक्षण, प्रचार एव प्रकाशन करना।

परमश्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवन, कार्य, वाणी एव लेखनीद्वारा व्यावहारिक साधनाका तथा 'श्रीराधामाधव'की उपासनाका एक ऐसा सरल तथा निरापद स्वरूप प्रदर्शित किया है, जिसको अपनाकर चलनेवालोका नैतिक स्तर निरन्तर उन्नत होता जाता है और वे सासारिक भोगोके दलदलसे—नीच कामके चङ्गुलसे निकलकर मोक्षको भी लघु बना देनेवाले विशुद्ध भगवत्प्रेम-राज्यमे अनायास ही प्रवेश पा सकते है। अतएव उपर्युक्त तीन उद्देश्योके अन्तर्गत कार्य करनेके साथ ही श्रीभाईजीके जीवन, कृतित्व एव साहित्यके प्रचार एव प्रसार कार्यको सस्थान प्राथमिकता देता है।

श्रीभाईजीका प्रामाणिक जीवन-वृत्त

है। इसके अतिरिक्त सस्थान श्रीभाईजीके ग्रन्थोका देश-विदेशकी विभिन्न भाषाओमे प्रामाणिक अनुवाद तैयार करवाकर प्रकाशित करनेका प्रयत्न कर रहा है। कई पुस्तकोके अनुवाद प्रकाशित भी हो चुके है। सस्थानके प्रकाशनोका एकमात्र उद्देश्य भक्तिभावका एव सत् साहित्यका प्रचार है।

पाक्षिक पत्रिका 'सत्सग-सुधा'

सस्थानसे एक पाक्षिक पत्रिका भी निकलती है, जिससे श्रीभाईजीके, श्रीजयदयालजी गोयन्दका एव स्वामी चक्रधरजी महाराज (पूज्य बाबा) के अप्रकाशित बडे ही महत्त्वपूर्ण साहित्य प्रकाशमे आ रहे है। इस पत्रिकाका नाम है—'सत्सग-सुधा' अर्थात् सत्सग-सुधाका वितरण करनेवाली पत्रिका। इसका वार्षिक शुल्क १२) है। प्रत्येक अङ्कमे ८ से १० पृष्ठ रहते है और पूरी पत्रिका साइक्लोस्टाईल्ड रहती है। इसके प्रत्येक अङ्कमे परमश्रद्धेय श्रीसेठजीके अप्रकाशित पुराने सत्सगके महत्त्वपूर्ण छोटे-छोटे प्रसङ्ग, परमपूज्य श्रीभाईजीके सच्चे साधको एव अपने स्वजनोको लिखे गये अप्रकाशित पत्रोमेसे दैनिक जीवन एव साधनामे सहायक, भगवत्कृपा, प्रेम एव विश्वासकी अपूर्व अनुभूत बाते एव परमपूज्य बाबाकी लेखनीसे निस्सृत आस्तिकभावको परम सुपुष्ट करनेवाले प्रेरणात्मक प्रसङ्ग, परमपूज्य श्रीभाईजीद्वारा रचित पद आदि ऐसी अलभ्य एव उपयोगी सामग्री दी जाती है। पत्रिकाका वर्ष श्रीराधाष्टमीसे श्रीराधाष्टमीतक होता है। इस पत्रिकाके सपादक है श्रीकृष्णचन्द्र अग्रवाल जिन्होने विगत ३० वर्षोसे श्रीभाईजीकी सेवामे अपना जीवन समर्पित कर रखा है।

अखण्ड हरिनाम-सकीर्तन

सस्थानकी ओरसे परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके निवासस्थान गीतावाटिकामे विगत तीन वर्षसे अखण्ड हरिनाम-सकीर्तन चल रहा है। नवद्वीपके बगाली भाई बहुत ही मधुर स्वरमे कीर्तन करते है। ध्वनि विस्तारक यन्त्र द्वारा मधुर नाम रस सुधाका अनायास सभीको पान कराया जाता है। सस्थाकी इस प्रवृत्तिका निर्देश पू० श्रीभाईजी द्वारा हुआ था और वे इसके जीवन पर्यन्त बडे प्रशसक रहे।

सस्थाका सचालन

सस्थान एक रजिस्टर्ड धार्मिक सस्था है। इसका सचालन एक न्यास-मडल द्वारा होता है।

इसके सरक्षक है—प० श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी। आप गत चालीस वर्षोसे श्रीभाईजीके साथ परमनिष्ठा एव शान्तभावसे 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' एव गीताप्रेसकी सेवा करते रहे है और अब श्रीभाईजीके तिरोधानके पश्चात् इन कार्योके सचालनका पूरा उत्तरदायित्व आप ही वहन कर रहे है।

न्यास-मडलकी अध्यक्षा है परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी इकलौती पुत्री श्रीमती सावित्री देवी फोगला, जो स्वय श्रीराधामाधवकी साधनामे निष्ठ है तथा समर्थ पिताकी भाँति निरभिमान, विनयशील, परोपकारनिरत, आध्यात्मिक भावापन्न एव त्यागसम्पन्न है।

न्यासके उपाध्यक्ष है श्रीरामप्रसादजी दीक्षित, अवकाश-प्राप्त निबन्धक, उच्च-न्यायालय, उत्तर प्रदेश, जिन्होने श्रीभाईजीके नित्यलीलालीन होनेके साथ ही सर्वोच्च न्यायालयके एरियर्स कमीशनके सचिव पदका त्याग इस पावन निश्चयके साथ कर दिया कि वे श्रीभाईजी तथा परम पूज्य बाबा द्वारा निर्दिष्ट आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करते हुए जीवनके शेष क्षण भगवत्-आराधनामे व्यतीत कर सके।

इस न्यास-मडलके मत्री श्रीकुजबिहारी पालडीवाल है और कोषाध्यक्ष श्रीराधेश्याम पालडीवाल। श्रीभाईजीके दौहित्र एव उत्तराधिकारी श्रीसूर्यकात फोगला इस न्यास-मडलके सक्रिय सदस्य है।

न्यास-मडलके सभी सदस्य श्रीभाईजीके परम आत्मीय एव कृपापात्र है और उन्हीके आशीर्वादका सम्बल लेकर बडी निष्ठाके साथ उन्ही द्वारा निर्दिष्ट सेवामे तत्पर है।

विषय-सूची

इष्ट-वन्दन

महापुरुषका स्वरूप और माहात्म्य

श्रद्धार्चन

स्वरूप-चिन्तन

जीवन-यात्रा

क्रम-सं०   पृष्ठ-सं०

लोकाराधन

अमर संदेश

चित्र-सूची

भाईजी
पावन स्मरण

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म।
तुम ही मेरे सकल सुख सदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म॥

तुम्हीं एक, बस, आवश्यकता; तुम ही एकमात्र हो पूर्ति।
तुम्हीं एक सब काल, सभी विधि, हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति॥

तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान।
आठो पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान॥

●

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

महाभाव-रसराज-वन्दना

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥

आश्रय आलंबन दोउ, विषयालंबन दोउ।
प्रेमी प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख सुखिया दोउ॥

लीला आस्वादन निरत महाभाव रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं रचि बिचित्र सुठि साज॥

सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचित्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥

श्रीराधा माधव चरन बंदौ बारंबार।
एक तत्व दो तनु धरे, नित रस-पारावार॥

श्रीभाईजीका प्रिय श्रीकृष्ण-स्तवन

मूक करोति वाचाल पङ्गु लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥

'जिनकी कृपा गूँगेको वाचाल बना देती है और पङ्गुको पर्वत लाँघनेकी सामर्थ्य प्रदान कर देती है, उन परमानन्दस्वरूप माधवकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वन्दे मुकुन्दमरविन्ददलायताक्षं कुन्देन्दुशङ्खदशनं शिशुगोपवेषम् ।
इन्द्रादिदेवगणवन्दितपादपीठं वृन्दावनालयमहं वसुदेवसूनुम् ॥

'जिनके कमलके समान विशाल नेत्र है, दाँत कुन्द (बेलाके फूल), चन्द्रमा और शङ्खके समान शुभ्रवर्णके है, जिनके पादपीठकी इन्द्रादि देवगण भी वन्दना करते हैं, गोपबालकके रूपमे वृन्दावनकी भूमिमे विचरनेवाले वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी मै वन्दना करता हूँ।'

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासिकर्णं विकसितनलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहास्यम् ॥
कनकरुचिदुकूलं चारुबर्हावचूलं कमपि निखिलसारं नौमि गोपीकुमारम् ॥

'जिनका नवीन जलधरका-सा श्यामवर्ण है, जिनके कान चम्पाके फूलोंसे अलकृत है, जिनका मन्द मुस्कानसे युक्त मुख खिले हुए कमलके समान है, अपने श्रीअङ्गोपर जो स्वर्णकी-सी कान्तिवाला पीताम्बर और मस्तकपर मोरपखका मुकुट धारण किये हुए है, उन—सबके सारभूत किन्ही अनिर्वचनीय गोपीकुमारका मैं स्तवन करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात् पर किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

'जिनके दोनो हाथ बाँसुरीसे शोभा पा रहे है, श्रीअङ्गोकी कान्ति नूतन मेघके समान श्याम है, साँवले अङ्गपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है, लाल-लाल ओठ पके हुए बिम्बफलकी सुषमाको छीने लेते है, सुन्दर मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा है और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान मनोहर प्रतीत होते है, उन भगवान् श्रीकृष्णके सिवा दूसरा कोई भी परम तत्व है—यह मैं नहीं जानता।'

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं
ज्योतिः किंचन योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते ।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनेषु यत् किमपि तन्नीलं महो धावति ॥

'यदि योगीलोग ध्यानके अभ्यासमे वशमे किये हुए मनके द्वारा किसी निर्गुण और निष्क्रिय परम ज्योतिका साक्षात्कार करते है तो करते रहे, हम तो चाहते है—यमुनाके किनारे वह जो कोई अनिर्वचनीय साँवला-सलोना तेज दौडता-फिरता है, वही हमारे नेत्रोमे चिरकालतक चमत्कार (विस्मयपूर्ण उल्लास) उत्पन्न करता रहे।'

●

श्रीराधाकृष्णाभ्या नम

महापुरुषका स्वरूप और माहात्म्य

(शास्त्रोंमें)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः । मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः । सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति । शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् । अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥

(गीता १२ । १३-१९)

भगवान् कहते है—

'जो पुरुप सब भूतोमे द्वेप-भावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहकारसे शून्य, सुख-दु खोकी प्राप्तिमे सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला हे, तथा जो योगी निरन्तर सतुष्ट है, मन-इन्द्रियोसहित शरीरको वशमे किये हुए है और मुझमे दृढ निश्चयवाला है—वह मुझमे अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नही होता और जो स्वय भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नही होता, तथा जो हर्प, अमर्प, भय और उद्वेगादिसे रहित है—वह भक्त मुझको प्रिय है। जो पुरुप आकाङ्क्षासे रहित, वाहर-भीतरसे शुद्ध, चतुर, पक्षपातसे रहित और दु खोसे छूटा हुआ है—वह सब आरम्भोका त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है। जो न कभी हर्पित होता है न द्वेप करता है, न शोक करता है न कामना करता है और जो शुभ तथा अशुभ सम्पूर्ण कर्मोका त्यागी हे—वह भक्तियुक्त पुरुप मुझको प्रिय है। जो शत्रु-मित्रमे और मान-अपमानमे सम है तथा सर्दी, गर्मी और सुख-दु खादि द्वन्द्वोमे सम है और आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस-किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमे सदा ही सतुष्ट है और रहनेके स्थानमे ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुप मुझको प्रिय है।'

❀ ❀ ❀

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् । अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥
मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् । मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥

मदाश्रया कथा मृष्टा शृण्वन्ति कथयन्ति च । तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतस॰ ॥
त एते साधव साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिता । सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्य. सङ्गदोषहरा हि ते ॥

(श्रीमद्भागवत० ३ । २५ । २१–२४)

भगवान् कपिलदेव माता देवहूतिसे कहते हे—

'माता ! जो सुख-दु खमे सहनशील, करुणापूर्ण-हृदय, सबका अकारण हित करनेवाले, किसीके प्रति कभी भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्तस्वभाव, साधु भाववाले, साधुओका सम्मान करनेवाले हे, मुझमे अनन्यभावसे सुदृढ भक्ति करते है, मेरे लिये समस्त कर्म तथा स्वजन-बन्धुओको भी त्याग चुके हे, मेरे परायण होकर मेरी पवित्र कथाओको सुनते, कहते और मुझमे ही चित्त लगाये रहते है, उन भक्तोको ससारके विविध प्रकारके ताप कोई कष्ट नही पहुँचाते । साध्वि ! ऐसे सर्वसङ्ग-परित्यागी महापुरुष ही सत होते है, तुम्हे उन्हीके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये, क्योकि वे आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोको हरनेवाले होते हे ।'

❀ ❀ ❀

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति । विष्णोर्मायामिद पश्यन् स वै भागवतोत्तम ॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधिया यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रै ।
ससारधर्मैरविमुह्यमान. स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधान ॥

न कामकर्मबीजाना यस्य चेतसि सम्भव॰ । वासुदेवैकनिलय स वै भागवतोत्तम. ॥
न यस्य जन्मकर्मभ्या न वर्णाश्रमजातिभि । सज्जतेऽस्मिन्नहम्भावो देहे वै स हरे॰ प्रिय ॥
न यस्य स्व पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा । सर्वभूतसम शान्त स वै भागवतोत्तम ॥

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि य. स वैष्णवाग्र्य ॥

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदता पुन स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कताप ॥

विसृजति हृदय न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाश ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्म. स भवति भागवतप्रधान उक्त ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । २ । ४८–५५)

योगीश्वर हरिजी राजा निमिसे कहते है—

'राजन् ! जो श्रोत्र-नेत्र आदि इन्द्रियोके द्वारा शब्द-रूप आदि विषयोका ग्रहण तो करता हे, परतु अपनी इच्छाके प्रतिकूल विषयोसे द्वेष नही करता और अनुकूल विषयोके मिलनेपर हर्षित नही होता—उसकी यह दृष्टि बनी रहती है कि यह सब हमारे भगवान्‌की माया—लीला हे, वह उत्तम भागवत है । ससारके धर्म हे—जन्म-मृत्यु, भूख-प्यास, श्रम-कष्ट और भय-तृष्णा । ये क्रमश शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिको प्राप्त होते

ही रहते है। जो पुरुष भगवान्‌की स्मृतिमे इतना तन्मय रहता है कि इनके वार-वार होते-जाते रहनेपर भी उनसे मोहित नही होता, पराभूत नही होता, वह उत्तम भागवत है। जिसके मनमे विषयभोगकी इच्छा, कर्मप्रवृत्ति और उनके बीज—वासनाओका उदय नही होता और जो एकमात्र भगवान् वासुदेवमे ही निवास करता है, वह उत्तम भगवद्भक्त है। जिसका इस शरीरमे न तो सत्कुलमे जन्म, तपस्या आदि कर्मसे तथा न वर्ण, आश्रम एव जातिसे ही अहभाव होता है, वह निश्चय ही भगवान्‌का प्यारा है। जो धन-सम्पत्तिमे अथवा शरीर आदिमे 'यह अपना है और यह पराया'—इस प्रकारका भेदभाव नही रखता, समस्त प्राणि-पदार्थोमे समस्वरूप परमात्माको देखता हुआ समभाव रखता है तथा प्रत्येक स्थितिमे शान्त रहता है, वह भगवान्‌का उत्तम भक्त है। बडे-बडे देवता और ऋषि-मुनि भी अपने अन्त करणको भगवन्मय बनाते हुए जिन्हे ढूँढते रहते है—भगवान्‌के ऐसे चरणकमलोसे आधे क्षण, अथवा पलक पडनेके आधे समयके लिये भी जो नही हटता, निरन्तर उन चरणोकी सेवामे ही लगा रहता है—यहाँतक कि कोई स्वय उसे त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मी दे तो भी वह भगवत्स्मृतिका तार जरा भी नही तोडता, उस राज्यलक्ष्मीकी ओर ध्यान ही नही देता, वही पुरुप वास्तवमे भगवद्भक्त—वैष्णवोमे अग्रगण्य है, सर्वश्रेष्ठ है। रासलीलाके अवसरपर नृत्य-गतिसे भाँति-भाँतिके पद-विन्यास करनेवाले निखिल-सौन्दर्य-माधुर्य-निधि भगवान्‌के श्रीचरणोके अङ्गुलि-नखरूप मणियोकी चन्द्रिकासे जिन शरणागत भक्तजनोके हृदयका विरहजनित सताप एक वार दूर हो चुका है, उनके हृदयमे वह फिर कैसे आ सकता है, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर सूर्यका ताप नही लग सकता। विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण अघराशिको नष्ट कर देनेवाले स्वय भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नही छोडते है, क्योकि उसने प्रेमकी रस्सीसे उनके चरण-कमलोको हृदयमे वॉध रखा है, वास्तवमे ऐसा ही पुरुप भगवान्‌के भक्तोमे प्रधान होता है।'

❀ ❀ ❀

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्। शीत भयं तमोऽप्येति साधून् संसेवतस्तथा ॥

निमज्ज्योन्मज्जता घोरे भवाब्धौ परमायनम्। सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम्। धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम् ॥

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः। देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥

(श्रीमद्भागवत ११। २६। ३१–३४)

भगवान् श्रीउद्धवजीसे कहते है—

'उद्धव! जिसने उन सत पुरुषोकी शरण ग्रहण कर ली, उसकी कर्मजडता, ससारभय और अज्ञान आदि सर्वथा निवृत्त हो जाते है। भला, जिसने अग्निभगवान्‌का आश्रय ले लिया, उसे क्या कभी शीत, भय अथवा अन्धकारका दुख हो सकता है? जो इस ससार-सागरमे डूव-उतरा रहे है, उनके लिये ब्रह्मवेत्ता और शान्त-स्वभाव सत एकमात्र आश्रय है—वैसे ही, जैसे जलमे डूबते हुए लोगोके लिये दृढ नौका। जैसे अन्नसे प्राणियोके प्राणकी रक्षा होती है, जैसे मै आर्त प्राणियोका एकमात्र आश्रय हूँ, जैसे मनुष्यके लिये परलोकमे धर्म ही एकमात्र पूंजी है—वैसे ही ससारसे भयभीत लोगोके लिये सत-जन ही परम आश्रय है। जैसे सूर्य आकाशमे उदय होकर

लोगोको जगत् तथा अपनेको देखनेके लिये नेत्रदान करता है, वैसे ही सत पुरुष अपनेको तथा भगवान्‌को देखनेके लिये अन्तर्दृष्टि देते है। सत अनुग्रहशील देवता है। सत अपने हितैषी सुहृद् है, सत अपने प्रियतम आत्मा है, अधिक क्या, सतके रूपमे स्वय मै ही प्रकट हूँ।'

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षु सर्वदेहिनाम् । सत्यसारोऽनवद्यात्मा सम सर्वोपकारक ॥
कामैरहतधीर्दान्तो मृदु शुचिरकिंचन । अनीहो मितभुक् शान्त स्थिरो मच्छरणो मुनि ॥
अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमाञ्जितषड्गुण । अमानी मानद. कल्पो मैत्र कारुणिक कवि ॥

(श्रीमद्भागवत ११।११।२९–३१)

'उद्धव ! मेरा भक्त कृपाकी मूर्ति होता है, वह किसी भी प्राणीसे वैर नही करता, वह सव प्रकारके सुख-दु खोको प्रसन्नतापूर्वक सहन करता है, सत्यको जीवनका सार समझता है, उसके मनमे किसी प्रकारकी पापवासना कभी नही आती। वह समदर्शी और सवका भला करनेवाला होता है। उसकी वुद्धि कामनाओसे कलुषित नही होती। वह इन्द्रियविजयी, कोमलस्वभाव ओर पवित्र होता है, उसके पास अपनी कोई भी वस्तु नही होती। किसी भी वस्तुके लिये वह कभी चेष्टा नही करता, परिमित भोजन करता है, सदा शान्त रहता है। उसकी वुद्धि स्थिर होती है, वह केवल मेरे ही आश्रय रहता है, निरन्तर मननशील रहता है। वह कभी प्रमाद नही करता, गम्भीर-स्वभाव और धैर्यवान् होता है। भूख-प्यास, शोक-मोह और जन्म-मृत्यु—इन छहोपर विजय प्राप्त किये रहता है। वह स्वय कभी किसीसे किसी प्रकारका मान नही चाहता और दूसरोको सम्मान देता रहता है। भगवत्सम्वन्धी वाते समझनेमे वडा निपुण होता है और सभीके साथ मित्रताका वर्ताव करता है। उसके हृदयमे करुणा भरी रहती है और भगवत्तत्वका उसे यथार्थ ज्ञान होता है।'

❀ ❀ ❀

परतापच्छिदो ये तु चन्दना इव चन्दना । परोपकृतये ये तु पीड्यन्ते कृतिनो हि ते ॥
सन्तस्त एव ये लोके परदु खविदारणा । आर्तानामार्तिनाशार्थं प्राणा येषा तृणोपमा ॥
तैरिय धार्यते भूमिर्नरैः परहितोद्यतैः।

(पद्मपुराण, पाताल० ९७।३२–३४)

'जो चन्दन-वृक्षकी भाँति दूसरोके ताप दूर करके उन्हे आह्लादित करते है तथा जो परोपकारके लिये स्वय कष्ट उठाते है, वे ही पुण्यात्मा है। ससारमे वे ही सत है, जो दूसरोके दु खोका नाश करते है तथा पीडित जीवोकी पीडाको दूर करनेके लिये जिन्होने अपने प्राणोको तिनकेके समान निछावर कर दिया है। जो मनुष्य सदा दूसरोकी भलाईके लिये उद्यत रहते है, उन्होने ही इस पृथ्वीको धारण कर रखा है।'

❀ ❀ ❀

उपकृतिकुशला जगत्स्वजस्रं परकुशलानि निजानि मन्यमानाः।
अपि परपरिभावने दयार्द्राः शिवमनसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥

दृषदि परधने च लोष्टखण्डे परवनितासु च कूटशाल्मलीषु।
सखिरिपुसहजेषु बन्धुवर्गे सममतय. खलु वैष्णवा. प्रसिद्धाः॥

गुणगणसुमुखाः परस्य मर्मच्छदनपराः परिणामसौख्यदा हि।
भगवति सततं प्रदत्तचित्ताः प्रियवचनाः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥

स्फुटमधुरपद हि कसहन्तुः कलुषमुषं शुभनाम चामनन्तः।
जय-जय-परिघोषणां रटन्त. किमुविभवा. खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥

हरिचरणसरोजयुग्मचित्ता जडिमधियः सुखदुःखसाम्यरूपाः।
अपचितिचतुरा हरौ निजात्मनतवचसः खलु वैष्णवाः प्रसिद्धाः॥

विगलितमदमानशुद्धचित्ता· प्रसभविनश्यदहंकृतिप्रशान्ता.।
नरहरिममराप्तबन्धुमिष्ट्वा क्षपितशुचः खलु वैष्णवा जयन्ति॥

(स्क० वै० पु० मा० १०।११०–११४, ११७)

'समस्त विश्वका उपकार करनेमे ही जो निरन्तर कुशलताका परिचय देते है, दूसरोंकी भलाईको अपनी ही भलाई मानते हे, शत्रुका भी पराभव होता देखकर उनके प्रति दयासे द्रवीभूत हो जाते है तथा जिनके चित्तमे सबका कल्याण बसा रहता है, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध है। जिनकी पत्थर, परधन और मिट्टीके ढेलेमे, परायी स्त्री और कूटशाल्मली नामक नरकमे, मित्र, शत्रु, भाई तथा बन्धुवर्गमे समान बुद्धि है, वे ही निश्चितरूपसे वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध है। जो दूसरोकी गुणराशिसे प्रसन्न होते और पराये दोषको ढकनेका प्रयत्न करते है, परिणाममे सबको सुख देते है, भगवान्मे सदा मन लगाये रहते तथा प्रिय वचन बोलते है, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध है। जो कसहन्ता भगवान् श्रीकृष्णके पाप-हारी शुभ नामसम्बन्धी मधुर पदोका जाप करते और जय-जयकी घोषणाके साथ भगवन्नामोका कीर्तन करते है, वे अकिंचन महात्मा वैष्णवके रूपमे प्रसिद्ध है। जिनका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोमे निरन्तर लगा रहता है, जो प्रेमाधिक्यके कारण जडबुद्धि-सदृश बने रहते है, सुख और दुःख दोनो ही जिनके लिये समान है, जो भगवान्की पूजामे दक्ष है तथा अपने मन और विनययुक्त वाणीको भगवान्की सेवामे समर्पित कर चुके है, वे ही वैष्णवके नामसे प्रसिद्ध है।' मद और अभिमानके गल जानेके कारण जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया हे, अहकारके समूल नाशमे जो परम शान्त—क्षोभरहित हो गये हैं तथा देवताओंके विश्वसनीय बन्धु भगवान् श्रीनृसिहजीकी आराधना करके जो शोकरहित हो गये है, ऐसे वैष्णव निश्चय ही उच्च पदको प्राप्त होते हैं।'

❀ ❀ ❀

सुजन समाज सकल गुन खानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥
साधु चरित सुभ चरित कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेंहि जग जसु पावा ॥
मुद मगलमय सत समाजू । जो जग जगम तीरथराजू ॥

× × ×

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेंहि जतन जहाँ जेंहि पाई ॥
सो जानब सतसग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसगत मुद मगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
बिधि हरि हर कवि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
बदउँ सत समान चित हित अनहित नहिं कोइ ।
अजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगध कर दोइ ॥

× × ×

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाही । पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहि त्यागहि नीती । सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥
जप तप व्रत दम सजम नेमा । गुरु गोंविद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना । बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दभ मान मद करहि न काऊ । भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥
गावहि सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला ॥

× × ×

बिषय अलपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी । लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया । मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी । भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन । साति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री । द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहि जासु उर । जानेहु तात सत सतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहि । परुष बचन कबहूँ नहि बोलहि ॥
निदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मदिर सुख पुंज ॥
सत हृदय नवनीत समाना । कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं सत सुपुनीता ॥

(रामचरितमानस)

●

भक्त-चरितकी उपादेयता

परशुरामपुरीस्थ श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज

भक्त-चरितके अनुशीलनसे प्राणियोके मनोमन्दिरमे भगवद्भक्तिकी भावना विकसित होती है। यह भक्त-चरितानुशीलनरूप साधन जितना सुगम, सरल और सुन्दर है, उतना ही महत्वशाली भी है। भगवान् भी भक्त और उनके चरितकी पद-पदपर प्रशसा करते है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥ (श्रीमद्भा० ११।१४।१५)

'उद्धव! मुझको ब्रह्मा, शकर एव सकर्षण (भैया बलदाऊ) तथा लक्ष्मी—ये इतने प्रिय नही लगते, जितने आप और आप-जैसे भक्त लगते है, कारण मेरे भक्त मुझको अपनी आत्मासे भी बढकर प्रिय है।' क्योकि—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।२४)

'मेरा प्रेमी भक्त कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी लज्जा छोडकर गाता और नृत्य करने लगता है। उसकी वाणी गद्गद और चित्त द्रवित हो जाता है। वह अपनी इन विचित्र चेष्टाओसे समस्त लोकको पवित्र करता रहता हे।'

चाहे साधारणजन भक्त और उमकी चेष्टाओके महत्वको न जान पाये, परतु भक्तकी प्रत्येक चेष्टामे विश्वहित निहित रहता है। भक्तजन समस्त भुवनको किस प्रकार पवित्र करते रहते है, वह प्रकार भी भगवान्ने स्वय ही बतला दिया है—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥ (श्रीमद्भागवत ११।१४।१६)

'निरपेक्ष, शान्तचित्त, किसी भी प्राणीसे वैर न रखनेवाला एव प्रत्येक प्राणीमे समानरूपसे मुझको व्याप्त देखनेवाला, मननशील मेरा अनन्य भक्त जहाँ-जहाँ जाता है, सदा-सर्वदा मै उसके पीछे-पीछे चलता हूँ। किसलिये? उसकी चरण-रजसे पवित्र करनेके लिये।' कोई पूछे—'किसको पवित्र करनेके लिये?' तो भगवान् कहते है, 'मेरे अदर अनन्त ब्रह्माण्ड है उनमे अनन्त प्राणी रहते है, उन सबको मै अपने भक्तोकी चरण-रजसे पवित्र करता रहता हूँ।

उक्त १५वे तथा १६वे श्लोकका पद्यानुवाद कृष्णगढनरेश महाराजा राजसिंहजीकी रानी तथा भक्तवर नागरीदासजीकी विमाताने इस रूपमे प्रस्तुत किया है—

सिव लछमी विधि आत्म मो, हलधर धर बड़ सक्त।
ये ऐसे प्रिय नाहि मुँहि, जैसे प्रिय मो भक्त॥
कछु न चाह जिन भक्त कै, अधिक सुबोलत नाहि।
समदिष्टी है किहूँ से वैर नहीं मन माहि॥
तिन के पीछे मैं चलौं, पद-रज राखौं सीन।
दरसन करि तन तृप्त हूँ, कवहूँ विस्वा वीन॥
कोटि-कोटि ब्रह्माड है मेरे उदरहि मध्य।
भक्त-चरन-रज सौं करौं तिन्हैं पवित्र प्रनिध्य॥

भगवान् सर्वाधार, सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर होते हुए भी यह प्रकट करते है—

अह भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रिय ॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६३)

अर्थात् 'सर्वस्वतन्त्र होकर भी मै उन भक्तोके तो अधीन ही हूँ, जिन साधु भक्तोने मेरे चित्तको वशमे कर रखा है, इसीलिये वे मुझको प्रिय लगते है।' भगवान्‌को भक्त किस प्रकार वशमे कर लेता है, इस रहस्यको भी भगवान् प्रकट कर देते है—

मयि निर्बद्धहृदयाः साधव. समदर्शिन॰।
वशीकुर्वन्ति मा भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पति यथा ॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६६)

'समदर्शी भक्त पहले अपना चित्त मुझमे लगा देते है, फिर उसीके द्वारा मेरे चित्तको उसी प्रकार आकर्पित कर लेते है—जैसे पतिव्रता स्त्री अपना तन-मन-धन—सर्वस्व पतिदेवके अर्पण करके उसके चित्तको अपने वशमे कर लेती है।' फिर तो—

साधवो हृदय मह्य साधूना हृदय त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाह तेभ्यो मनागपि ॥ (श्रीमद्भा० ९।४।६८)

'जव साधुहृदय भक्त अपना हृदय मुझको दे देते है, तव मुझे भी अपना हृदय उनको देना अनिवार्य हो जाता है, इस लेन-देनसे भक्त और मुझमे ऐसी घनिष्ठता हो जाती है कि फिर मुझसे अतिरिक्त उनको कुछ दिखायी ही नही पडता और उनके अतिरिक्त फिर मुझको कुछ नही सुहाता।' बस, इसी कारणसे भगवान्‌को भक्तोके इच्छानुसार आविर्भाव-अन्तर्भाव करना पडता है और इसी प्रकार अनेको अवतार धारण करने पडते है। इसी आशयको आद्याचार्य श्रीनिम्बार्कभगवान्‌ने—**'भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहाद्।'** (वेदान्तकामधेनु)

—इस वाक्यमे प्रकट किया है। अर्थात्—

भक्तवत्सल भगवान् भक्तके इच्छानुसार विग्रह धारण करके उनका उसी प्रकार सरक्षण करते है, जैसे अवोध शिशुकी प्रसन्नताके लिये माताको उसके हठ आदिकी रक्षा करनी पडती है।

इसीलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी आदि भक्त कवियोकी—

'राम ते अधिक राम कर दासा ॥'

—इत्यादि सूक्तियाँ भी सगत ही है।

श्रीनारायणदास (नाभा)जीने तो भक्त-चरितके अनुशीलनका स्पष्ट ही फल प्रकट किया है—

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर नाम वपु एक।
इन के पद बंदन किएँ नासत विघ्न अनेक ॥

भक्ति (साधन), भक्त (साधक), भगवत (साध्य), गुरुदेव (साधयिता)—इन चारोमे नामादिका भेद अवश्य हे, कितु ये इतने सनिकट है कि इनके कलेवरमे विभेद प्रतीत नही होता। फलप्रदातामे भी चारो समान है अर्थात् मुक्तिरूप फल देनेमे चारो ही वरदहस्त हे।

अतएव जो सुख-शान्ति भगवच्चरित्रके अनुशीलनसे मिलती हे, वही सुख-शान्ति भक्तोके चरित्रोका अनुशीलन करनेसे प्राप्त होती है।

●

भगवद्भक्तोंकी महिमा

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

भगवान्के भक्त भगवत्स्वरूप ही होते है। उनकी मन-बुद्धि लीलामय भगवान्मे ओत-प्रोत रहती है और मन एव बुद्धिद्वारा ही इन्द्रियादिका व्यापार परिचालित होता है। इसलिये भक्तोके कार्य-कलाप और विचार-व्यापारको भी भगवान्की ही लीलाके तुल्य समझना चाहिये। जैसे भगवान्के धाम, लीला-क्षेत्र आदि तीर्थस्थल है, उसी प्रकार भक्तोके निवास-स्थान और कर्म-क्षेत्र भी तीर्थ ही बन जाते है।'

भगवान् प्रेमके कारण भक्तोके पीछे-पीछे घूमा करते है। उनके सुख-दुःखमे अपना सुख-दुःख मानते है। उनके लिये अपनी आन-बान और स्वय श्रीलक्ष्मीजीतककी चिन्ता नही करते। भक्तोकी मान-मर्यादा और सुख-दुःखको अपना समझनेका तो उन्होने मानो अटल व्रत ही ले रखा है—

हम भगतन के भगत हमारे।
सुन अरजुन ! परतिग्या मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥

ऐसे महामहिम, भाग्यवान् और भगवत्स्वरूप भक्तोके स्मरण-ध्यानमात्रसे ही पाप-राशि भस्म हो जाय, मुक्ति दासीकी तरह पीछे-पीछे घूमे और प्रभुके चरणोमे अचल मति, रति और गति प्राप्त हो जाय तो कौन-सा आश्चर्य है। भगवान्की तरह महापुरुषोके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है। उनके स्वरूपका ध्यान करनेसे उनके भाव, गुण और चरित्र हृदयमे आ जाते है, उनका स्वरूप चित्तमे अङ्कित हो जाता है और जैसे प्रकाशके आते ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही भक्तोके चरित्र-गुणादिकी स्मृति अन्तःकरणमे आते ही समस्त कलुषको नष्ट कर देती है।

भगवान्के भक्तोकी महिमा अनन्त और अपार है। श्रुति-स्मृति-इतिहास-पुराण आदिमे जगह-जगह उनकी महिमा गायी गयी है, किंतु उसका किसीने पार नही पाया। वास्तवमे भक्तोकी तथा उनके गुण, प्रभाव और सङ्गकी महिमा कोई वाणीके द्वारा गा ही नही सकता। शास्त्रोमे जो कुछ कहा गया है अथवा वाणीके द्वारा जो कुछ कहा जाता है, उससे भी उनकी महिमा अत्यन्त बढकर है।

गङ्गा-यमुना आदि तीर्थ तो स्नान-पान आदिसे पवित्र करते है, किंतु भगवान्के भक्तोका तो दर्शन और स्मरण करनेसे भी मनुष्य तुरत पवित्र हो जाता है, फिर भाषण और स्पर्शकी तो बात ही क्या है। तीर्थोमे तो लोगोको जाना पडता है और वहॉ जाकर लोग स्नानादिसे पवित्र होते है, किंतु महात्माजन तो श्रद्धा-भक्ति होनेसे स्वय घरपर आकर पवित्र कर देते है। श्रद्धापूर्वक किया हुआ महापुरुषोका सङ्ग भजन और ध्यानसे भी बढकर है।

जो मनुष्य महापुरुषोके तत्वको समझकर उनका सङ्ग करता है, वह स्वय दूसरोको पवित्र करनेवाला बन जाता है।

सत्पुरुषोका सङ्ग बडे रहस्य और महत्वका विषय है। श्रद्धा और प्रेमपूर्वक सत्सङ्ग करनेवाले ही इसका कुछ महत्व जानते है। पूरा-पूरा रहस्य तो स्वय भगवान् ही जानते है, जो कि भक्तोके प्रेमके अधीन हुए उनके पीछे-पीछे फिरा करते है।

इसलिये अपना कल्याण चाहनेवाले मुमुक्षु पुरुषोको चाहिये कि महापुरुषोके सङ्ग और उनकी सेवा करनेकी अथक चेष्टा करे। भगवत्प्राप्ति और उनके चरणोमे अनपायिनी रति-लाभ करनेका सरस और सरल साधन केवल यह ही है।

प्रेमी भक्तका अलौकिक माहात्म्य

'शिव'

येषा सस्मरणात् पुसा सद्यः शुद्धयन्ति वै गृहा ।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभि ॥ (श्रीमद्भा० १ । १९ । ३३)

'जिन भगवद्भक्तोके स्मरणमात्रसे (स्मरण करनेवालोके केवल मन ही नही) गृहस्थोके घर तत्काल पवित्र हो जाते है, फिर उनके दर्शन, स्पर्श, पाद-प्रक्षालन और आसन-दानादिका सौभाग्य मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है।'

भक्तकी बडी महिमा है। भक्तका दर्शन, स्पर्श, चरणसेवन, उपदेश-श्रवण, आज्ञा-प्राप्ति और आज्ञापालन आदिका सुअवसर मिल जाय, तब तो कहना ही क्या है, भक्तका स्मरण भी पाप-नाशक, पुण्योत्पादक और भगवत्-प्रीतिदायक है। यहाँतक कि भक्तोके द्वारा स्पर्श किये हुए भूमि, जल, गृह, चौकी, बर्तन, वस्त्र, आसन, माला, पादुका आदि जड पदार्थोका सङ्ग भी परम पुण्यजनक और कल्याणकारक है। पृथ्वीमे आनेके लिये प्रार्थना करनेपर पापनाशिनी श्रीगङ्गाजीने भगीरथसे कहा था—'मै इस कारण भी पृथ्वीपर नही जाऊँगी कि सब लोग आकर मुझमे अपने पाप धो डालेगे, फिर मै उन पापोको कहाँ धोऊँगी ?' ऐसा ही प्रश्न श्रीजाह्नवीने स्वय भगवान्‌से किया था, तब भगवान्‌ने उनसे स्पष्ट कहा था—

पापानि पापिनो यानि तुभ्य दास्यन्ति स्नानत. । मन्मन्त्रोपासकस्पर्शाद् भस्मीभूतानि तत्क्षणात् ॥
पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्यान्यपि च जाह्नवि । मद्भक्तानां शरीरेषु सन्ति पूतेषु सततम् ॥
मद्भक्तपादरजसा सद्य. पूता वसुधरा । सद्य' पूतानि तीर्थानि सद्य पूतो जगत्तथा ॥
मामेव नित्य ध्यायन्ते ते मत्प्राणाधिका प्रिया । तदुपस्पर्शमात्रेण पूतो वायुश्च पावक. ॥
(श्रीब्रह्मवैवर्त०, कृष्णजन्म०, अ० १२९)

'जाह्नवी ! पापीलोग तुम्हारे अदर स्नान करके जो पाप तुम्हे देगे, वे सारे पाप मेरे मन्त्रकी उपासना करनेवाले भक्तोके स्पर्श, स्नान और दर्शनसे उसी क्षण भस्म हो जायँगे। पृथ्वीमे जितने भी पवित्र तीर्थ है, मेरे भक्तोके पुनीत शरीरमे वे सभी निरन्तर निवास करते है। मेरे भक्तोकी चरणधूलिका स्पर्श होते ही पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है और सारे तीर्थ तथा जगत् पवित्र हो जाते है। जो नित्य मेरा ही ध्यान करते है, वे मुझको प्राणोसे भी अधिक प्रिय है, (औरोकी तो बात ही क्या) वायु और अग्नि भी उनके स्पर्शमात्रसे पवित्र हो जाते है।' धर्मराज युधिष्ठिरने भक्तशिरोमणि श्रीविदुरजीसे कहा था—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूता स्वयं विभो ।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्त.स्थेन गदाभृता ॥ (श्रीमद्भा० १ । १३ । १०)

'प्रभो ! आप-सरीखे भगवद्भक्त स्वय तीर्थरूप है, (पापियोद्वारा कलुषित किये हुए) तीर्थोको आपलोग अपने हृदयमे विराजित भगवान् श्रीगदाधरके प्रतापसे पुन पवित्र तीर्थ बना देते है।'

जैसे नदी समुद्रमे मिलकर समुद्र बन जाती है, उसी प्रकार भक्त भी अपना तन-मन-बुद्धि-अहकार—सब कुछ प्रियतम भगवान्‌के समर्पण कर भगवान्‌के साथ तन्मय हो जाता है। ऐसा भक्त साक्षात् भगवत्स्वरूप ही होता है। वह जहाँ भी रहता है, वहाँका तमाम सूक्ष्म और स्थूल वातावरण शुद्ध हो जाता है। ऐसे ही भक्तोके द्वारा भगवान्, भगवन्नाम, भगवद्भक्तिकी महिमा बढती है।

भक्त जिस पृथ्वीपर बैठते है, जिस जलाशय या नदीमे स्नान करते है, वही पवित्र तीर्थ बन जाता है। भक्त जो कुछ करते है, वही आदर्श 'सत्कर्म' माने जाते है, भक्त जो कुछ अपने अनुभवकी बाते बतलाते है, वे ही 'सत्-शास्त्र' होते है। तीर्थ, कर्म और शास्त्र अनेक है, पर जिस तीर्थके साथ भक्तका सयोग होता है, वह 'सत्-तीर्थ', जिस कर्मसे भक्तका सयोग होता है, वह 'सत्कर्म' और जिस शास्त्रमे भक्तकी वाणी होती है, वही 'सच्छास्त्र' बन जाता है—

'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि ।' (नारदभक्तिसूत्र ६९)

भक्तके मनसे जिस वस्तुका स्पर्श हो जाता है, वह भी पवित्र हो जाती है, क्योकि उसके मनमे निरन्तर भगवान्का निवास रहता है। जड वस्तुएँ भक्तका स्पर्श पाकर पतितोको पावन करनेवाली बन जाती है। भक्तका सस्पर्श पाकर वातावरण पवित्र हो जाता है। नारदजीने भक्त और भगवान्मे भेदका अभाव बतलाया है—

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ।' (नारदभक्तिसूत्र ४१)

भगवान्के भक्त भगवत्स्वरूप ही है। जो भक्तोका सेवन करते है, वे भगवान्का ही सेवन करते है। भक्त भगवान्के हृदयमे बसते है और भगवान् भक्तके हृदयमे। भगवान्ने कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदय त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ (श्रीमद्भा० ९। ४। ६८)

'साधु मेरे हृदय है और मै उनका हृदय हूँ। वे मेरे सिवा और किसीको नही जानते और मै उन्हे छोडकर और किसीको नही जानता।' भरत रामको भजते है और राम भरतको—

'भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही ॥'

श्रीभगवान्ने प्रेमस्वरूपा गोपियोके सम्बन्धमे कहा है—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्या मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम् । जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः ॥

'हे अर्जुन ! मेरा माहात्म्य, मेरी पूजा, मेरी श्रद्धा और मेरे मनकी बात तत्त्वसे केवल गोपियाँ ही जानती है, और कोई नही जानता।'

ऐसे प्रेमी भक्तोमे और भगवान्मे क्या अन्तर है। भगवान्के वचन है—

'ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥' (गीता ९। २९)

'जो प्रेमसे मुझको भजते है, वे मुझमे है और मै उनमे हूँ।' ऐसे भक्त भगवत्प्रेममे इस प्रकार तल्लीन रहते है कि वे अपने बाह्यरूपको भूलकर साक्षात् भगवत्स्वरूपका अनुभव करने लगते है।

ऐसे प्रेमी भक्तोका आविर्भाव देखकर पितरगण प्रमुदित होते है, देवता नाचने लगते है और यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है—

'मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवता. सनाथा चेय भूर्भवति ॥' (नारदभक्तिसूत्र ७१)

भक्तोका आविर्भाव सभीके लिये शुभ होता है, क्योकि उनके सभी कर्म स्वाभाविक ही लोक-कल्याणकारी होते है। उनके प्रभावसे लोगोमे धर्मके प्रति श्रद्धा बढती है, पितृकार्य और देवकार्योमे विश्वास उत्पन्न हो जाता है। इससे धर्मपथसे डिगे हुए लोग पुन धर्ममार्गपर आरूढ होकर यज्ञ, दान, श्राद्ध, तर्पण आदि कर्म करने लगते है, जिससे देवता और पितरोको बडा सुख मिलता है। भक्तके आगे-पीछेके कई कुल तर जाते है, इसलिये अपने कुलमे भक्तको उत्पन्न हुआ देखकर पितरगण अपनी मुक्तिकी दृढ आशासे हर्षोत्फुल्ल हो जाते है। पद्मपुराणमे कहा है—**'आस्फोटयन्ति पितरो नृत्यन्ति च पितामहाः। मद्वशे वैष्णवो जात. स नस्त्राता भविष्यति ॥'**

"पितृ-पितामहगण अपने वशमे भगवद्भक्तका जन्म हुआ जानकर 'यह हमारा उद्धार कर देगा'—इस आशासे प्रसन्न होकर नाचने और ताल ठोकने लगते है।"

मचले हुए दर्शनाकाङ्क्षी भक्त किसी भी बातसे सतुष्ट नही होते, अत स्नेहमयी जननीकी भाँति उन्हे अपनी गोदमे खिलाकर सुखी करनेके लिये सच्चिदानन्दघन भगवान् दिव्यरूपमे साक्षात् प्रकट होते है। इस प्रकार भक्तके आविर्भावको ही भगवान्के प्राकटयमे कारण समझकर देवतागण भी नाचने लगते है और भगवान्के प्राकटयसे पृथ्वी भी सनाथा हो जाती है।

पद्मपुराणमे भक्तके दर्शनका महत्व बतलाते हुए कहा गया है—

सर्वे धन्यतमा ज्ञेया विष्णुभक्तिपरायणाः। तेषां दर्शनमात्रेण महापापात् प्रमुच्यते ॥
उपपातकानि सर्वाणि महान्ति पातकानि च। तानि सर्वाणि नश्यन्ति वैष्णवाना च दर्शनात् ॥

पावका इव दीप्यन्ते ये नरा वैष्णवा भुवि । विमुक्ता. सर्वपापेभ्यो मेघेभ्य इव चन्द्रमा. ॥
ससारकर्दमालेपप्रक्षालनविशारद । पावनः पावनाना च विष्णुभक्तो न सशय· ॥

(उत्तर० १३१ । १७–१९, २३)

'जो विष्णुभक्तिपरायण––भक्त हैं, उन सबको धन्यतम जानना चाहिये। उनके दर्शनमात्रसे महान् पापोसे छुटकारा हो जाता है। जितने उपपातक और महापातक है, सब वैष्णव भक्तोके दर्शनसे ही नष्ट हो जाते ह। पृथ्वीमे वैष्णवगण अग्निकी भाँति देदीप्यमान है, वे मेघमुक्त चन्द्रमाकी भाँति समस्त पापोसे मुक्त होते हे। भगवान्के भक्त वैष्णवगण ससाररूप कीचडके लेपको धोनेमे बडे निपुण है और पवित्रोको भी पवित्र करनेवाले हैं–– इसमे सदेह नही है।'

दर्शनस्पर्शनालापसहवासादिभि क्षणात् । भक्ता पुनन्ति कृष्णस्य साक्षादपि च पुल्कसम् ॥

'भगवान् श्रीकृष्णके भक्तका क्षणमात्रका दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप ओर सङ्ग साक्षात् चण्डालको भी पवित्र कर देता है।'

ऐसे भक्तोके आदर-सत्कार आदिका महत्व दिखलाते हुए भगवान् शकरने पद्मपुराणमे कहा है––

एवमभ्यर्चयेद् विष्णु यावज्जीवमतन्द्रित । तदीयाश्च विशेषेण पूजयेत् सर्वथा शुभे ॥
आराधनाना सर्वेषा विष्णोराराधन परम् । तस्मात्परतर देवि तदीयाना समर्चनम् ॥
अर्चयित्वापि गोविन्द तदीयान्नार्चयेत्पुन । न स भागवतो ज्ञेय. केवल दाम्भिक. स्मृतः ॥
पुमास्तस्मात्प्रयत्नेन वैष्णवान् पूजयेत् सदा । सर्व तरति दु खौघ महाभागवतार्चनात् ॥

(उत्तर० २५३ । १७५–१७८)

'कल्याणि ! इस प्रकार जीवनभर सजग रहकर भगवान् विष्णुका और उनके भक्तोका विशेषरूपसे पूजन करे। देवि ! आराधनाओमे भगवान् विष्णुकी आराधना श्रेष्ठ है, और भगवान्की आराधनासे भी उनके भक्तोकी आराधना श्रेष्ठतर है। जो मनुष्य श्रीगोविन्दकी पूजा करके भी उनके भक्तोकी पूजा नही करता, उसे भक्त नही जानना चाहिये, वह केवल दम्भ करता है––पूजाका ढोग करता है। अतएव मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक सदा वैष्णवोका पूजन करना चाहिये। महाभागवतोकी पूजासे मनुष्य समस्त दु खोसे तर जाता है।'

स्वय श्रीभगवान्ने तो यहाँतक कह दिया है––

ये मे भक्तजना पार्थ न मे भक्ताश्च ते जना ।
सद्भक्ताना च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मता ॥ (आदिपुराण)

'अर्जुन ! जो लोग मेरे भक्त है, मात्र वे ही मेरे भक्त नही है, मै तो उन्हे श्रेष्ठतम भक्त मानता हूँ, जो मेरे भक्तोके भक्त है।'

भगवान् तो अपने भक्तोके इतने प्रेमी हे, उनपर इतने मुग्ध हे कि स्वय उनकी भक्ति, सेवन-चिन्तन-ध्यान करते है। भक्तोका ऐसा कौन-सा काम हे, जिसे करनेमे भगवान् कभी हिचकते हो। भक्तका छोटे-से-छोटा काम भी वे अपने हाथो करते है और उसमे उन्हे वैसा ही सुख मिलता हे, जैसा राजराजेश्वरी जननीको अपने उदरजात शिशुकी नगण्य-से-नगण्य सेवा अपने हाथो करनेमे। सच्ची बात तो यह हे कि भगवान्की सगुण-लीलामे प्रधान हेतु हे ये भक्त ही। भक्तोके लिये ही भगवान् 'प्रेमी' हे, अन्यथा तो वे केवल सर्वातीत ब्रह्म, सर्वव्यापी परमात्मा या सर्वशक्तिमान् सर्वलोकमहेश्वर ईश्वरमात्र हे। भगवान्के प्रेमावतार और भगवान्की प्रेमभरी लीलाएँ भक्तोके निमित्तसे ही होती हैं। भक्त ही भगवान्की भक्तवत्सलता, भृत्यवश्यता, भक्त-भक्तिमत्ता, प्रेमिकता आदि दिव्य भावोको प्रकट कराते हैं। श्रीमद्भागवतमे मुनि शुकदेवजीने भगवान्को 'भक्तभक्तिमान्'––भक्तोका भक्त वतलाया है––'**एव स्वभक्तयो राजन् भगवान् भक्तभक्तिमान्** ।'

भगवान्‌ने अपने भक्तोंकी महिमाका बखान करते हुए श्रीमद्भागवतमें अपनेको भक्तकी चरणरजकी इच्छासे सदा उनके पीछे-पीछे घूमनेवाला और 'भक्तके अधीन' बतलाया है—

'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।' (श्रीमद्भा० ११।१४।१६)

'उस भक्तके पीछे-पीछे मैं सदा-सर्वदा इसलिये घूमा करता हूँ कि उसकी चरण-धूलि उड़कर मुझपर पड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ।'

'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।' (श्रीमद्भा० ९।४।६३)

'ब्राह्मणदेवता! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है।'

भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भक्तराज भीष्मपितामहका ध्यान करते युधिष्ठिरने देखा था। यह भक्तकी महिमा है। भगवान् अपने भक्तके गौरवमें अपना गौरव मानते हैं, इसलिये स्वयं सदा भक्तका गौरव बढ़ाते रहते हैं—

तत्परो हि प्रियो नास्ति कृष्णस्य परमात्मनः।
भक्तप्राणो हि कृष्णश्च कृष्णप्राणा हि वैष्णवाः। ध्यायन्ते वैष्णवाः कृष्णं कृष्णश्च वैष्णवांस्तथा॥
(नारदपाञ्चरात्र)

'परमात्मा श्रीकृष्णको भक्तोंसे प्यारा कोई नहीं है। भक्त श्रीकृष्णके प्राण हैं और वैष्णवोंके प्राण श्रीकृष्ण हैं। वैष्णवलोग श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं और श्रीकृष्ण वैष्णवोंका ध्यान करते हैं।'

भगवत्सङ्गीके सङ्ग तथा चरणधूलि आदिका अद्भुत माहात्म्य है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥ (श्रीमद्भा० १।१८।१३)

'भगवत्सङ्गीका सङ्ग यदि लवमात्रके समयके लिये मिलता हो, तो उसकी तुलना यहाँके भोगोंकी तो बात ही क्या, स्वर्गसे भी नहीं होती, वरं अपुनर्भव—मोक्ष—सायुज्य मुक्तिसे भी नहीं होती।' 'भगवत्सङ्गी'का अर्थ है—भगवानमें अनुरक्त, आसक्त भगवानका सङ्गी, भगवान्‌का प्रेमी, गोपीभावापन्न।

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥ (श्रीमद्भा० ५।१२।१२)

संतके दृष्टिपथकी कामना

सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृतानुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः ।
महात्मभिर्मामवलोक्यतां नय क्षणोऽपि ते यद्विरहोऽतिदुस्सहः ।। (आलवन्दारस्तोत्र)

'जिन्होंने आपके स्वरूपको एक बार देखनेकी इच्छासे उत्तमोत्तम भोग और मुक्तिको भी तृणके समान त्याग दिया है तथा जिनका क्षणभरका भी वियोग आपको अत्यन्त असह्य है, ऐसे संत-महात्माओंके दृष्टिपथमें मुझे डाल दीजिये ।'

संतका निवास-स्थल

गामे वा यदि वारञ्ञे निन्ने वा यदि वा थले ।
यत्थारहन्तो विहरन्ति तं भूमिं रामणेय्यकम् ।।

(धम्मपद ७ । ९)

'चाहे ग्राम हो चाहे वन हो, चाहे जलमय या सूखा स्थल हो, वह स्थान आनन्दमय है, जिसमें संत निवास करते हैं ।'

संत-मिलन

सो दिन लेखे जा दिन संत मिलाहिं ।
संत के चरन-कमल की महिमा मोरे बूते बरनि न जाहिं ।।
जल-तरंग जल ही ते उपजै, फिर जल माहिं समाहिं ।
हरि में साध, साध में हरि हैं, साध से अंतर नाहिं ।।
ब्रह्मा बिसुन महेस साध सँग पाछे लागे जाहिं ।
दास 'गुलाल' साध की संगति, नीच परम पद पाहिं ।।

—संत गुलाल साहब

सच्चे संतका स्पर्श करें

विश्वास करें—'हम चाहे मलिन-से-मलिन प्राणी क्यों न हों, केवल मैलेकी तरह हममें दुर्गन्ध ही क्यों भरी हो, बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर, केवल बदबू आ रही हो, पर 'संत' नामकी वस्तु इतनी पवित्र है, इतनी सरस है कि उसका स्पर्श होते ही हम बिल्कुल उसी ढाँचेमें ढल जायँगे । आग क्या यह देखती है कि यह मैला है ? मैला आगमें पड़ा कि सारा-का-सारा अंगारा बन जायगा । हम मिलें, उसमें मिलें, अपनी सारी मलिनता, सारी दुर्गन्ध लेकर मिलें । दिन-रात उसके इशारेपर चलनेकी चेष्टा करें, दिन-रात सोचें—'संत कितने कृपालु हैं !' दिन-रात यह विचार करें—'कृपामय ! तुम्हारी कृपा ही मुझे भले अपना ले, मुझमें तो बल नहीं ।' दिन-रात नाम लें, चलते-फिरते नाम लें । इससे बड़ी सहायता मिलेगी । दिन-रात यही इच्छा करें कि संतका सङ्ग नहीं छूटे । दिन-रात यही सोचें—संतके लिये परिवार, संतके लिये इज्जत यदि बाधक है तो संतके चरणोंमें इनको भी समर्पण कर देना है । इसका यह अर्थ नहीं कि संन्यासी बन जाना है । बाहर कपड़ा रँगकर भी क्या होगा ? परंतु यह नितान्त सत्य है कि सर्वस्वकी आहुति देनेके लिये तैयारी मनसे ही करनी पड़ेगी । बाहरका ढाँचा ज्यों-का-त्यों रहकर मन बिल्कुल खाली हो जायगा, तभी हमारी अभिलाषा पूर्ण होगी । यदि किसी संतकी दृष्टि—अमृतमयी दृष्टि, अमोघ दृष्टि पड़ चुकी है तो हमारे लिये परवाना काटा जा चुका, परंतु हम यदि अपनी ओरसे देनेके लिये—जिसकी चीज है, उसकी ही चीज उसको लौटानेके लिये तैयार हो जायँ, अर्थात् अपनी ममता उठाकर सबपर उसका अधिकार मान लें, तो फिर शीघ्र-से-शीघ्र कृपा प्रकाशित हो जायगी ।

—'एक संत'

●

जगद्गुरु शंकराचार्यका सत्कार पत्नी एवं पुत्री सहित

श्रीश्रीआनन्दमयी माँके साथ

पू० श्रीहरिबाबाजीकी सन्निधिमें

परम पूजनीया माँ आनन्दमयी
का
सूत्रमय संदेश

हनुमानप्रसाद बाबा अपनी सत्क्रियामें निजस्वरूप लक्ष्यकी धारामें प्रकाश तो देते ही रहे। छोटी बच्ची तो सदा ही बाबाके पास--भगवान् विश्व, विश्वातीत नित्ययोग परब्रह्म परमात्मा है न !

जनजनार्दन सत्संगसमारोह--आनन्द।

वाराणसी
१४.३.१९७२

माँ आनन्दमयी

मूर्धन्य मनीषी

श्रद्धार्चन

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

(ऋग्वेद १० । १५१ । ५)

'हम श्रद्धाको प्रात काल, मध्याह्नकाल और सायकाल बुलाते रहेंगे । हे श्रद्धे ! हमे इस लोकमें सर्वदा श्रद्धावान् वनाये रहो ।'

विहारके एक कोनेमे ढेभवा नामके गाँवमे सन् १९४६ मे अखिल भारतीय धर्मसघका महाधिवेशन हुआ था। उसकी अध्यक्षताके लिये हमारा उत्तरभारतमे प्रथम वार जाना हुआ। जाते तथा आते समय मै गीता-वाटिका, गोरखपुरमे उनके ही आतिथ्यमे रहा। इसी अवसरपर मेरा पोद्दारजीसे प्रथम परिचय हुआ। वैसे तो कर्णाटकके एक कोनेमे निवास करते हुए वाल्यकालसे ही 'कल्याण'के सचित्र विशेषाङ्कोके द्वारा मैं उनके व्यक्तित्वसे सूक्ष्मरूपेण परिचित था। इसके वाद अनेक स्थानोमे अनेक प्रसगोमे वह परिचय वढता ही गया।

श्रीपोद्दारजीका भारतीय-सस्कृति-रक्षणका महाकार्य जीवनके अन्तिम क्षणतक चलता रहा। उनका शिष्ट, सात्विक तथा धार्मिक साहित्यका सवर्धन और वितरण निश्चय ही अनुपम एव सर्वानुकरणीय है। भारतमे ही नही, विश्वमे भारतीय आध्यात्मिक साहित्यको दूर-दूरतक पहुँचानेमे वे सफल रहे। भगवद्भक्ति, गोभक्ति, राष्ट्र-प्रेम, गुरुजनोमे आदरभाव, सात्विक प्रेमभाव, सन्निष्ठा आदि सद्गुणोके वे आदर्श रूप कहे जा सकते है। सस्कृति-सरक्षण और पीडित जीवोकी सहायताके सम्पूर्ण क्षेत्रमे ही वे प्रेरणास्रोत है ही, किंतु गोरक्षा-कार्यमे तो उनकी तन्मयता और सगठन-शक्ति देखकर लोग चकित रह जाते थे।

उनकी महायात्रासे भारतीय सस्कृतिकी अपूरणीय क्षति हुई है। भगवान् उनके अनुयायियोको अवशिष्ट कार्योको पूरा करनेकी शक्ति प्रदान करे। इति शम्।

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्द तीर्थजी महाराज
शारदापीठ, द्वारकापुरी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजीकी प्रशसामे जो कुछ कहा, सुना, लिखा जाय, वह अधिकाधिक भी अत्यल्प है।

वे ईश्वर, धर्म, राष्ट्र, सभ्यता, सस्कृति, आचार-विचार, परम्परा आदि भारतीय विभूतियोके अनन्य उपासक थे। उनकी श्रद्धा, भक्तिभावना और निष्ठा असाधारण थी। हिन्दूधर्म, हिन्दूसभ्यता तथा हिन्दू-सस्कृतिकी सेवाके लिये सर्वश्रेष्ठ 'कल्याण' मासिक पत्रिका एव अग्रेजी 'कल्याण-कल्पतरु'के माध्यमसे राष्ट्रकी जो सेवा उन्होने अपने जीवनमे की, वह दूसरा कभी कर नही सकता। 'कल्याण'के मासिक एव विशेष अकोद्वारा उन्होने प्राचीन भारतीय वैदिक वाङ्मय, तन्त्रशास्त्र, इतिहास, पुराण आदिके अन्तर्निहित रत्नोको न केवल रत्नपरीक्षको-के लिये, अपितु सर्वसाधारणके लिये सुलभ वना दिया। जिन ग्रन्थोकी सत्ताका भी पता लोगोको नही था, उनके दर्शन, मनन, पठन-पाठन तथा निदिध्यासनका अवसर योग्य विद्वानोको और विज्ञ विचारकोको उनके अथक परिश्रमसे सुलभ हुआ। भारतके लिये यह उनकी सवसे वडी देन सदा-सर्वदा अविस्मरणीय रहेगी।

पोद्दारजीका निश्छल, निष्कपट, छल-छिद्र-पाखण्डरहित स्वभाव उनकी सौम्यमूर्तिके प्रथम दर्शनमे ही सव लोगो-के समक्ष प्रकट हो जाता था। आवाल-वृद्ध, नर-नारी, राजा-रक, धनी-गरीव, शिक्षित-अशिक्षित, साधारण-असाधारण—सभी व्यक्तियोको वे समान रूपसे प्रिय लगते थे। उनके मुखपर अप्रसन्नता अथवा क्रोधकी छाया शायद ही कभी किसीने देखी होगी। सवको सव समय वे प्रसन्न मुद्रामे ही उपलब्ध होते थे और उसी अवस्थामे अपरिचित व्यक्तिसे भी वे ऐसे घुल-मिलकर वाते करने लगते थे जैसे वर्षो पुराने परिचित मित्र परस्पर वार्तालाप करते हो। उनमे मिलनेवाले सभी ऐसी प्रसन्न मुख-मुद्रामे उनके यहाँसे लौटते थे, मानो अपना मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर चुके हो।

काम करनेकी शक्ति तो इस युगमे भगवान्ने मानो अकेले उनको ही दे दी थी। लेखन, भाषण, सम्पा-दन, काव्यकला आदि सभी साहित्यिक प्रवृत्तियोके वे धनी थे। जिस काममे जुट जाते थे, उसे पूरा किये विना उन्हे चैन नही पडता था। वे भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्धके प्रमुख सैनिकोमे रहे। साथ ही धार्मिक, सामाजिक आन्दोलनोमे भी वे किसीसे पीछे नही रहे। हिन्दूकोड-विरोधी आन्दोलनका सफल सचालन उन्होने किया। गोहत्यावदी आन्दोलनका कोई ऐसा विभाग नही था, जिसमे सदैव उनका सक्रिय सहयोग न रहा हो।

अपने इन सद्गुणो और सत्कर्मोके द्वारा निश्चय ही उन्हे सद्गति प्राप्त हुई, इसमे सदेह नही। फिर भी कर्तव्यबुद्धिसे उनकी शाश्वत शान्ति और शाश्वत सुखके लिये मै अपने इष्टदेव अनाथनाथ, दीनानाथ, जगन्नाथ, भगवती विमलाम्बा एवं चन्द्रमौलीश्वरके चरणारविन्दोमे हार्दिक प्रार्थना करता हूँ।

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज
गोवर्धनपीठ, जगन्नाथपुरी

● ● ●

अनासक्त कर्मयोगी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीय चिन्तन-परम्पराकी अमूल्य निधि थे। वे सहज वैष्णव-वृत्ति एव मधुरा-भक्तिके जीवन्त प्रतीक थे। गीताप्रेस और उसके प्रकाशन तथा 'कल्याण' पत्रिका पोद्दारजीके पावन व्यक्तित्व और कृतित्वके चिरस्मरणीय गौरव-स्मारक है। उन्होने अपनी लेखनीके माध्यमसे कोटि-कोटि जनमे आध्यात्मिकताका अलख जगाकर उनका पारमार्थिक हित-चिन्तन किया। उनकी इहलीला-समाप्तिसे हुई अपार क्षति अपूरणीय है।

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी महाराज
ज्योतिष्पीठ, बदरिकाश्रम (उत्तराखण्ड)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको हम बहुत दिनोसे जानते है। वे हमारे पास बराबर आया-जाया करते थे। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सनातनधर्म और हिन्दू-जातिके महान् रत्न थे। सनातनधर्मके शीर्षस्थ नेताओने जब हिन्दूकोड बिलका घोर विरोध करना प्रारम्भ किया, तब उसमे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका भी बडा सहयोग रहा। उन्होने सभी बडे-बडे अधिवेशनोमे पधारकर अपने भाषण दिये और खुलकर हिन्दूकोडका विरोध किया। जिस समय श्रीकरपात्रीजी महाराजके नेतृत्वमे गोहत्याके विरोधमे आन्दोलन चला, तब उसमे भी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पूर्ण सहयोग रहा। उन्होने तन-मन-धनसे उसमे पूरा-पूरा साथ दिया। जिस समय भारतमाताके अग-अग खण्ड-खण्डकर पाकिस्तान बनानेकी सोची गयी, तब पाकिस्तान-बननेके विरोधमे जहाँ हमलोगोने आन्दोलन छेडा तो उसमे भी वे हमारे साथ रहे। जो भी सनातनधर्मका, हिन्दूधर्मकी रक्षाका कार्य होता था और देश-धर्मकी रक्षाका जो भी प्रश्न सामने आता था, श्रीपोद्दारजी उसमे अग्रणी रहते थे और उनकी रक्षाके लिये तन-मन-धनसे साथ देते थे। जिस समय गोरक्षा-आन्दोलनमे प्रदर्शनके समय निरपराध साधु-सतोके ऊपर गोले बरसाये गये थे, तब हमारे बराबर ही उसी मचपर पोद्दारजी भी थे। श्रीकरपात्रीजी जब गोरक्षा-आन्दोलनमे जेल गये, और जब उनके ऊपर जेलमे कुछ दुष्टलोगोके द्वारा मार पडी, तब तुरत पोद्दारजी तिहाड जेलमे उन्हे देखनेके लिये गये। वे गो-ब्राह्मणोके अनन्य भक्त थे।

वे वर्णाश्रमधर्मको माननेवाले थे और शास्त्रविश्वासी थे। जहाँ वे शास्त्रविश्वासी थे, वहाँ उन्होने कई ऐसी आश्चर्यजनक घटनाएँ स्वय देखी थी, जिनसे उनका शास्त्रोकी बातोमे पूर्ण विश्वास हो गया था। उनकी बम्बईमे एक पारसी प्रेतसे भेटकी घटना बडी आश्चर्यजनक है। स्वय पारसी प्रेतने उनके सामने प्रकट होकर उनसे बाते की थी और उनसे अपने उद्धारके लिये गया-श्राद्ध करानेकी माँग की थी। बादमे पोद्दारजीने अपने किसी आदमीको भेजकर उस पारसी प्रेतका गया-श्राद्ध कराया था, जिससे उसका उद्धार हो गया था। तबसे वे श्राद्ध बडी श्रद्धासे किया करते थे और उनका शास्त्रोकी बातोमे पूर्ण विश्वास हो गया था। उनके द्वारा देशमे सनातनधर्मका बडा प्रचार हुआ है। इसे कौन भुला सकता है ?

जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज

● ● ●

'कल्याण'के ओजस्वी सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके असामयिक परलोकगमनसे सनातन-धर्मका एक स्तम्भ टूट गया। वे उच्चकोटिके विद्वान् होनेके साथ धर्म तथा देशके कर्मठ सेवक थे। भारतके स्वतन्त्रता-आन्दोलनमे उन्होने सक्रिय भाग लिया था। इसी तरह गोरक्षा-आन्दोलनमे भी वे अपना पूरा योग प्रदान कर रहे थे।

उनका स्वभाव सरल था। अपनी लोकप्रियतापर गर्व या घमड उन्हे छूतक नही पाया। वे श्रीराधा-रानीके अनन्य भक्त थे। 'श्रीराधाष्टमी-महोत्सव' वे वडे उल्लाससे मनाया करते थे। इस अवसरपर उनके भाषण मननीय होते थे। 'सत्सग-वाटिकाके विखरे सुमन' शीर्षकसे प्रकाशित होनेवाले उनके उपदेशोके मननसे वहुतोको सतोष और शान्ति प्राप्त हुई है। उनके-जैसे योग्य और निर्भीक व्यक्तिकी आज वडी आवश्यकता थी, पर कुटिल कालने हमसे उन्हे छीन लिया।

उनका शरीर भले ही न रहा, क्योकि शरीरका नाश अवश्यम्भावी है, पर उनके विचार चिरकालतक लोगोको प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करते रहेगे। उनके द्वारा चलाये गये कार्यको हम जारी रखे और आगे वढाये, यही उनका सच्चा स्मारक होगा।

स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज

● ● ●

भारतीय धर्म और सस्कृतिका गाय, गीता और गगा—त्रैविक्रम-पादकल्प—इन तीन वस्तुओमे समावेश है। भारतीयोके ये निरतिशय श्रद्धाविन्दु हैं। भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने अपने जीवनमे इन तीनो पादोको विश्वमे सुस्थिर करनेमे अपना सारा पुरुषार्थ लगा दिया और एक परम भागवत-सा जीवन जिया। गोरक्षा-आन्दोलनके समय उनके इस रूपका मुझे विशेष साक्षात्कार हुआ। ऐसे व्यक्तिका समाजसे उठ जाना समाजकी वहुत वडी क्षति है।

उदासीन-सम्प्रदायाचार्य महामण्डलेश्वर श्रीगगेश्वरानन्दजी महाराज

● ● ●

हमारे वीचसे प्रभु-विश्वासी, उदार तथा परम स्नेही प्रिय भाईजी चले गये। वे क्या थे? कहाँसे आये?—इसे तो वे ही जाने, पर प्रेमीजनोके वे सर्वस्व थे। उनके जीवनसे प्रभु-प्रेमकी अविचल निष्ठाकी प्रेरणा भक्तजनोको प्रेरित करती रहती थी। वाह्य दृष्टिसे तो उनके निधनसे वडी ही क्षति हुई है, पर वास्तवमे तो भक्तोकी भक्ति सतत ज्यो-की-त्यो उनके प्रेमियोको शक्ति प्रदान करती रहती है। उनकी साधना सदैव हमलोगोके साथ है। उनके दिखाये हुए पथपर दृढ रहना है, और उसीसे हम सवकी उनके साथ अभिन्नता हो सकती है। शरीर तो सदैव ही अलग था, अव वह सदाके लिये अलग हो गया। उनकी मधुर उदारता हृदयको पीडित करती है। वे तो अपने धाममे वडे ही आनन्दमे हैं, उनके वियोगसे भोले भक्तोका हृदय पीडित है। सर्वसमर्थ प्यारे प्रभु भक्तोको अपनी आत्मीयता एव मधुर स्मृति प्रदान करे, जिससे वे अपने पथ-प्रदर्शक श्रीभाईजीसे सदैव अभिन्नताका अनुभव करे। यही मेरी सद्भावना है। अधिक वोला नही जाता, हृदयकी मधुर पीडा कण्ठको अवरुद्ध करती है।

स्वामी श्रीशरणानन्दजी

● ● ●

हम जितने दिन 'कल्याण-परिवार'मे रहे, भाईजीसे एक होकर। उनसे कितना तादात्म्य हो गया था, इसकी एक घटना सुनिये। श्रीजयदयालजी गोयन्दका भरी सभामे भाईजीकी प्रशसा करने लगे। मैंने देखा—भाईजी-का मुख लटक गया, वे उदास हो गये। मैंने वही, उसी समय खडे होकर सवके सामने गोयन्दकाजीसे कह
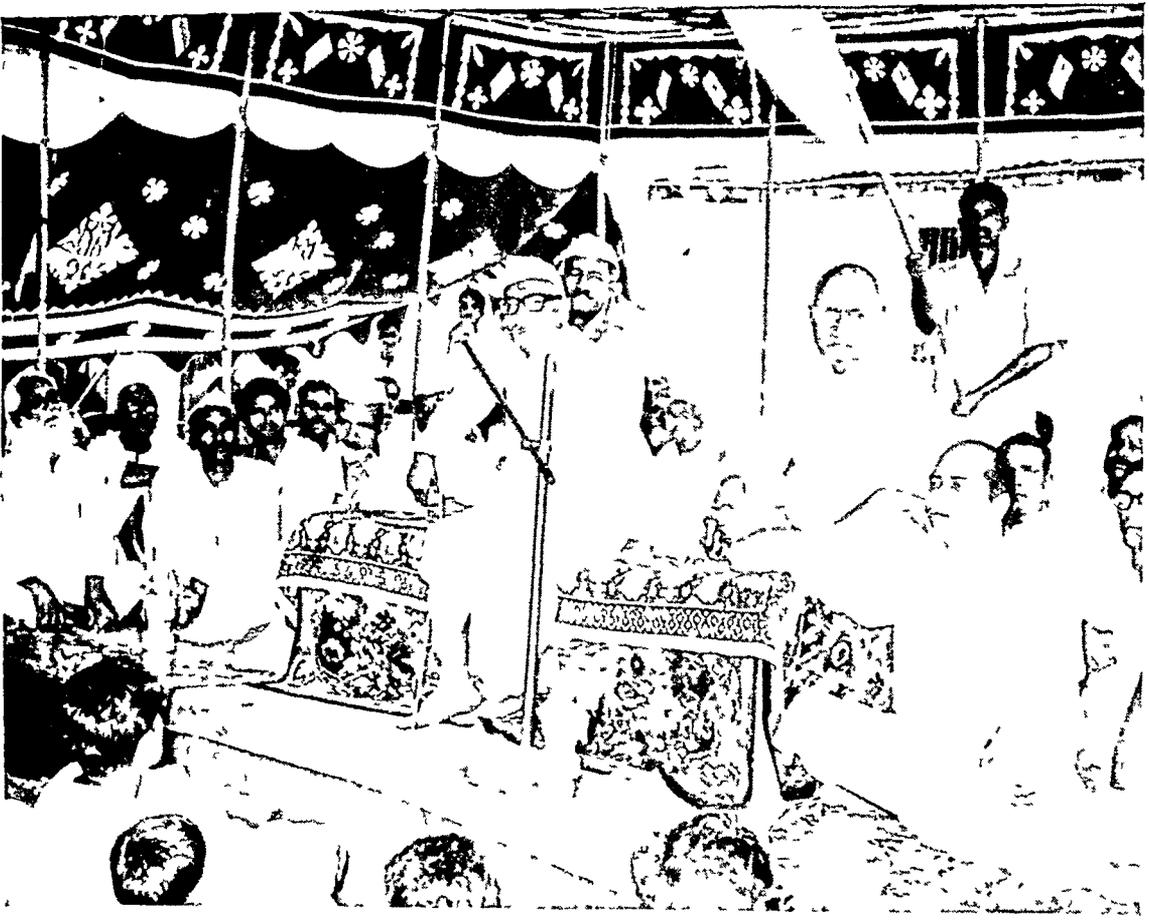
अन्तर्गृह चिकित्सा खण्डके उद्घाटन समारोहमें उत्तरप्रदेशके
मुख्यमंत्री श्रीचन्द्रभानु गुप्तके साथ

श्रीमती सुचेता कृपलानीके साथ

महन्त श्रीदिग्विजयनाथ एवं सर सुरेन्द्रसिंह मजीठियाके साथ

श्रीकृष्ण जन्मभूमि मथुरामें श्रीकृष्णमन्दिर उद्घाटनके
अनन्तर श्रीकृष्ण-तत्त्वकी व्याख्या करते हुए

दिया कि आप भाईजीकी प्रशसा मत कीजिये । मुझे ऐसा लग रहा था मानो भाईजीकी प्रशसा मेरी ही प्रशसा है और उसके कारण मुझे सकोच हो रहा हो । अब जब उन्ही भाईजीके सस्मरण लिखानेका मन होता है, तब हृदयमे एक पीडा होती है कि मै क्या अपना ही सस्मरण लिखाऊँ ?

एक दूसरी बात और है, मैने अपनी आँखोसे भाईजीके नित्यलीलालोकगमनको नही देखा । मुझे अब भी ऐसा ही लगता है कि वे इसी धराधामपर है और मेरे वैसे ही भाईजी है । मै कोई काम करता हूँ तो एक बार यह विचार भी उदय होता है कि जब मेरा यह काम भाईजीको ज्ञात कराया जायगा तो उन्हे कैसा लगेगा ? वे आज भी चुपचाप मेरे मनमे गुप्त-प्रकट रहकर मेरी प्रवृत्तियो और निवृत्तियोमे सचालन-सहयोगका काम करते रहते है । उन्होने मेरे अन्तस्तलके सूक्ष्मतम प्रदेशमे ऐसा प्रवेश कर लिया है, स्थान पा लिया है—उनकी मानसी मूर्ति ऐसी प्रतिष्ठित हो गयी है कि मुझे यह विश्वास ही नही होता कि आपलोगोके कथनानुसार वे कही नित्यलीलालोकमे चले गये है ।

मुझे इस बातका दु ख रहा और है कि इन तीस वर्षोमे आपलोगोने हमारे ही जैसे मानव—एक अर्थमे महामानव भाईजीको न जाने क्या-क्या बना दिया और उन्हे कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दिया । इसीकी यह अन्तिम परिणति है कि आपलोग कहते है कि वे नित्यलीला-लोकमे चले गये । मैं दावेके साथ कहता हूँ और सत्य-सत्य कहता हूँ कि वे यहाँसे उडकर किसी परलोकमे नही गये है, हमारे हृदयमे, हमारे साथ, हमारे नित्यके व्यवहारमे वे हमे अपरोक्ष है और हमे इसका किचित् भी आभास नही होता कि वे अब यहाँ उसी रूपमे नही है ।

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती

● ● ●

हिन्दुत्वके स्वाभिमानी श्रीपोद्दारजीने अपना समस्त जीवन हिन्दूधर्म और सस्कृतिके प्रसारमे समर्पित कर दिया था । आपकी सेवाओके प्रति सारा हिन्दू-ससार चिरऋणी रहेगा । आप अपनेमे स्वय एक सस्था थे । 'कल्याण' मासिक एव गीताप्रेसके अनेको धार्मिक प्रकाशनोके माध्यमसे आपने हिन्दू-तत्वज्ञानका बोध सारे ससारको कराने-का प्रयास किया । आप निर्धन, असहाय तथा निराश्रितोकी आशाके एकमात्र केन्द्र थे तथा आप समाजके इन वर्गोकी सदा सहायता करते रहते थे । धर्मप्राण जनताके भी आप प्रेरणाकेन्द्र बने रहे । देशके स्वाधीनता-सग्राममे भी आपका योगदान अतुलनीय रहा ।

आज जब सब ओरसे हिन्दुत्वपर आघात हो रहा है, उस समय हिन्दू-जगत्को आपकी नितान्त आवश्यकता थी । पोद्दारजीका निधन अत्यन्त ही दु खदायी घटना है ।

गोरखनाथपीठासीन महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज
गोरखपुर

● ● ●

भगवान् महावीरने चार प्रकारके पुरुष बतलाये है—

१ कुछ व्यक्ति समुद्रको तैरनेका सकल्प करते है, पर गोपदको तैर पाते है ।
२ कुछ व्यक्ति गोपदको तैरनेका सकल्प करते है, पर समुद्रको तैर जाते है ।
३ कुछ व्यक्ति समुद्रको तैरनेका सकल्प करते है और उसे तैर जाते है ।
४ कुछ व्यक्ति गोपदको तैरनेका सकल्प करते है और उसे ही तैर पाते है ।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तीसरी कोटिके व्यक्ति थे । उनका सकल्प उत्पत्ति और निष्पत्ति दोनोमे क्षमताशील था । उन्होने अपने जीवनमे महान् सकल्प किये और सफलतापूर्वक उन्हे आकार दिया । मेरी मान्यताके अनुसार वैदिक धर्मकी बहुमुखी सेवा करनेवाले ऐसे व्यक्ति आसपासकी शताब्दियोमे विरल ही हुए है ।

वे आध्यात्मिक पुरुष थे । प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो सघर्षोमे मैने उनकी आध्यात्मिकताको यथार्थ रूपमे पाया । वे समन्वयवादी थे । सभी भारतीय धर्मोके प्रति उनके मनमे आदरका भाव था । उन्होने जीवनभर वैदिकधर्म और साहित्यकी अमूल्य सेवाएँ की, फिर भी उनका धर्म उदार और व्यापक दृष्टिकोणसे पुष्ट था । 'कल्याण'के विशेषाक-प्रकाशनके समय हमारे साधु-साध्वियोके लेखोके लिये उनका अनुरोध आ ही जाता। मैं इसे उनकी उदार और व्यापक दृष्टि ही मानता रहा हूँ ।

'अग्नि-परीक्षा' काण्डके अवसरपर कन्हैयालालजी दूगड उनसे मिले थे । उस समय उन्होने स्थितिको साम्यभावसे निरूपित किया और उस अवाछनीय प्रसगमे सर्वथा अरुचि प्रदर्शित की। उन्हे यह कार्य पसद नही था कि जैन और सनातन-धर्मके बीच कोई खाई पडे ।

आज वे इहलौकिक जीवनमे नही है । उन-जैसे अनासक्त कर्मयोगी, अध्यात्मनिष्ठ समन्वयकारी और ऋषितुल्य व्यक्तिका केवल स्मृतिगम्य हो जाना स्मृतिके लिये सुखद नही है। पर विश्वकी अनिवार्य परिणतिको मानकर हम उनकी पवित्र आत्माके उन्नयनकी कल्याणमयी कामना ही कर सकते है ।

आचार्य श्रीतुलसी

● ● ●

[परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके महाप्रयाणके पश्चात् परमपूज्य श्रीगुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिव गोलवलकर, सरसघ-चालक, 'राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ'के तीन पत्र प्राप्त हुए हैं। तीनो पत्रोका मुख्य अश नीचे दिया जा रहा है। श्रीभाईजीके प्रति श्रीगुरुजीकी कैसी श्रद्धा एव आत्मीयता रही है, पाठक उसका स्वय अनुभव करे।]

(१) कल रात्रिमे आकाशवाणीसे श्रद्धेय भाईजीके पार्थिव देह त्यागकर भगवच्चरणोमे विलीन होनेका समाचार प्रसृत किया गया । यह धक्का देनेवाला वृत्त मुझे बतलाया गया । श्रीभाईजीका जीवन इतना पुनीत, राष्ट्रभक्ति, धर्मनिष्ठा और परमात्माके श्रीकृष्णरूपमे उत्कट अविचल भक्तिसे ओत-प्रोत था कि उनका इहलोकसे गमन, परम सौख्यमय चिरन्तन भगवल्लोकमे प्रवेश और श्रीभगवत्सानिध्यमे चिरनिवासके रूपमे ही हुआ है—यह मेरी श्रद्धा है । अत उनके लिये शोक नही—शोक तो हम सब जो पीछे रहे हैं, उनकी दशापर है कि हमलोगोके सम्मुख अब वह जीता-जागता कर्म-भक्ति, योग-ज्ञान एव माधुर्यसे परिपूर्ण आदर्श नही रहा ।

अब उनके जीवनका आदर्श अपने जीवनमे उतारनेका प्रयत्न करते हुए उनके धर्म-जागरणकार्यको निरन्तर आगे बढानेमे अपनी-अपनी योग्यता तथा प्रवृत्तिके अनुसार लगा रहना—यही उनके प्रति श्रद्धा अभिव्यक्त करनेका उचित मार्ग होगा। उनके धर्म-जागरणकार्यका साधन—श्रीगीताप्रेस एव 'कल्याण'-प्रतिष्ठान अपने वैशिष्ट्यके साथ चलते-बढते रहे, इस हेतु सब धर्मप्रेमियोको—विशेषकर श्रद्धेय श्रीभाईजीके प्रति आदरभाव रखनेवालोको दत्त-चित्ततासे सचेष्ट होना—सचेष्ट रहना शोभनीय होगा ।

मुझे विश्वास है कि यह सब होगा ।

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पवित्र स्मृतिमे शतश वन्दन ।

× × ×

(२) श्रद्धेय भाईजीने नश्वर शरीरका त्याग कर भगवत्सानिध्य प्राप्त किया । उनकी पावन स्मृतिमे एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थके रूपमे कुछ शब्द-सुमन अर्पण करनेका निश्चय होकर उस सम्बन्धमे मेरे पास भी पत्र आया है, पर मेरी बहुत बडी कठिनाई है कि जिनके सम्बन्धमे मेरे मनमे अपार श्रद्धा और प्रेम होता है, उनका वियोग होनेपर हृदयपर गहरा आघात होता है और यद्यपि मै अपने कर्तव्य करता रहता हूँ, वह घाव रिसता ही रहता है और जब कभी उनके विषयमे कुछ सोचने-कहनेका प्रसग उपस्थित होता है, उस घावकी वेदना असह्य हो उठती है। फिर शब्द सूझते नही । विचार कुण्ठित-से हो जाते है । मन एक अवर्णनीय व्यथासे अभिभूत हो जाता है।

आपका पत्र आनेपर ऐसी ही असहनीय पीडाका फिर जागरण हुआ है। जिनके प्रेमसे, आशीर्वादसे कार्य करते समय निश्चिन्तता तथा उत्साहका अनुभव करता था, वे अब प्रत्यक्षमे दिखायी नही देंगे—यह सोचकर मन बेचैन हो उठा है। अशरीरी, अव्यक्तरूपसे अपना प्रोत्साहन और आशीष वे दे ही रहे हैं, यह सत्य होते हुए भी एक देहधारीके लिये इस विचारसे सतोष होना कठिन है।

इस कारण मै सबसे क्षमा-याचना करता हूँ। सम्भव है कि और कुछ समय बीतनेपर मनोभावोपर इतना नियन्त्रण कर सकूँगा कि अन्त करणके भाव शब्दोमे उतारकर श्रद्धेय श्रीभाईजीकी स्मृतिमे उन्हे अर्पण कर सकूँगा। आज तो भावावेग अतिप्रबल है। विचार-शब्द बिल्कुल अवरुद्ध हैं। क्या करूँ? बार-बार क्षमा-याचना करता हूँ। सबको सश्रद्ध प्रणाम कर क्षमाकी याचना करता हूँ।

× × ×

(३) श्रद्धेय श्रीभाईजीके सम्बन्धमे कोई लिख सकनेवाला लिखे और दीर्घकालतक लिखता ही रहे, तो भी उसे यही कहना पडेगा कि 'तदपि तव गुणाना पार न याति'। फिर मेरे-जैसे लेखनमे अनभ्यस्त और पूज्य श्रीभाईजीके स्मरणसे व्यथितचित्तताके कारण मूककी क्या अवस्था होती होगी, इसकी कल्पना आप कर सकते हैं। इसको सोचकर आप मुझे क्षमा करे।

श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

● ● ●

श्रीभाईजीके निधनसे सनातनधर्मका एक अद्वितीय स्तम्भ गिर गया, रसोपासनाका एक सरस स्रोत सूख गया तथा भक्तोकी रहनीका आदर्श लुप्त हो गया। उनके जानेसे धार्मिक जगत्की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति असम्भव है।

श्रीराधाभावभावितान्त करण श्रीभाईजी गीतोक्त विभूतिमत्सत्वोमेसे थे। श्रीप्रह्लादजीने श्रीमद्भागवतमे कहा है—

'यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुरा।'—जिन बडभागी पुरुषके जीवनमे भगवद्भक्ति होती है, उनके पास देवतागण ज्ञान-वैराग्य आदि सद्गुणोके साथ उपस्थित रहते हैं। श्रीभाईजीमे भक्तोके पूर्ण लक्षण विद्यमान थे। 'सबके प्रिय सबके हितकारी। दुख-सुख सरिस प्रससा गारी॥'—मानसोक्त लक्षण उनमे सदा देखनेको मिले।

"सबहि मानप्रद आपु अमानी"—यह चौपाई उन्हीमे पूर्णरूपेण घटती थी। भारतके करोडो लोगोकी उनपर अपार श्रद्धा थी। करोडो लोगोको भगवच्चरणानुगामी बनानेके लिये महत्वपूर्ण धार्मिक पुस्तकोका जिस अलौकिक प्रतिभाके साथ उन्होने सम्पादन किया, वह सर्वथा अविस्मरणीय रहेगा।

उनके सरल एव सरस जीवनको देखनेमात्रसे भावजगत्मे लोग प्रवेश कर जाते थे। श्रीराधाष्टमीका ऐतिहासिक महोत्सव जिसने देखा होगा, उसको ज्ञात ही होगा कि भाईजी कितने उच्चकोटिके महापुरुष थे। श्रीराधाष्टमीके महोत्सवका दर्शन मैने भी गोरखपुरस्थित गीतावाटिकामे किया है। उस दिन वहाँ साधारण जीव भी आनन्दराज्यमे प्रवेश कर श्रीराधाभावका दर्शन कर लेता था।

धार्मिक जगत्मे सरस भक्ति—श्रीराधाभावका वितरण उन्होने जिस उदारतासे किया, उसका दूसरा उदाहरण अब दुर्लभ है। गोरक्षा-अभियान-समितिकी बैठकोमे उनसे महत्वपूर्ण परामर्श प्राप्त होता था। देशके अनेको धार्मिक आन्दोलनोमे उन्होने सक्रिय सहयोग प्रदान किया। किंतु पद-प्रतिष्ठासे सर्वथा दूर रहकर वे अपनी साधनामे ही तल्लीन रहे। आज उनका स्थूलशरीर हमारे समक्ष नही है, किंतु उनका यशोविग्रह सदा हमारे बीच रहेगा।

स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज
लक्ष्मण-किला, अयोध्या

● ● ●

श्रीपोद्दारजीका निधन हमारे लिये अत्यन्त ही दु खदायी है। इस क्षतिकी पूर्ति होना असम्भव है। श्रीपोद्दारजीने सस्कृति एव धर्मके प्रचार तथा प्रसारमे जो योगदान किया है, वह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। हम कामना करते है कि जो काम श्रीपोद्दारजीने प्रारम्भ किया, वह अन्ततक चलता रहे।

मुनि श्रीसुशीलकुमारजी महाराज
नयी दिल्ली

● ●

तर्कशास्त्राद्विनिष्क्रान्त नीतिशास्त्रमिति स्थिति ।

'वस्तुस्थिति यह है कि तर्कशास्त्रसे नीतिशास्त्रका प्राकट्य हुआ है।'

—लक्ष्मीनारायणके इस वचनानुसार नीतिके प्रचारके लिये तर्कशास्त्रका प्रचार आवश्यक है। परन्तु तर्कशास्त्रमे तो 'अवच्छेदकावच्छिन्न' आदि शब्दोकी वहुलता है, अत वह व्यावहारिक कैसे हो सकता है? इस वातपर जव मै विचार करने लगा तो स्वर्गीय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार महोदयद्वारा प्रकाशित एव सम्पादित मासिकपत्र 'कल्याण'का श्रीमद्भागवताङ्क मेरे लिये मार्गदर्शक हो गया। वहाँ—

भावन ब्रह्मण स्थान धारण सद्विशेषणम् ।
सर्वसत्त्वगुणोद्भेद पृथिवीभेदलक्षणम् ॥
(भा० ३ । २६ । ४६)

इस श्लोकमे 'सद्विशेषणम्' इस पदकी व्याख्या श्रीधराचार्यने इस प्रकार की है—'सताम् आकाशादीना विशेषणम् अवच्छेदकत्वम् इति' (सत् अर्थात् आकाश आदिका विशेषण—अवच्छेदक होना)—इस व्याख्याके अनुसार ही हिन्दी भाषामे किया गया अनुवाद मेरे लिये महान् आनन्ददायक हुआ। केवल इतना ही नही, अपितु—'अवच्छेदक कठिनस्पर्शवत्तया भासमान पार्थिव वस्तु द्रवद्रव्यात्मक तैजस वायवीय नाभसादि वा वस्तु अवच्छिन्नपदार्थ ।' इस प्रकार लोकोत्तर रूपसे श्रीमद्भागवतद्वारा प्रमाणित सत्य हिन्दी भाषामे उतर आया है। इसकी ओर मासिक पत्र 'कल्याण'के प्रसादसे दैवात् मेरी दृष्टि गयी। इसलिये हम नैयायिकोपर पोद्दार महोदयका यह महान् उपकार हुआ है।

इसी प्रकार अनेक उपयोगी विशेषाङ्कोको प्रकाशित करके पोद्दार महोदयने आस्तिक-समुदायको ऋणी वना लिया है, इसमे लेशमात्र भी सदेह नही है।

पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्राविड
वाराणसी

● ● ●

श्रीपोद्दारजी सदैव राष्ट्रीय भावनाओसे भावित रहे। भारतीयताके ह्रासपर उन्हे क्षोभ था। उसके रक्षार्थ उन्होने यावज्जीवन प्रयास किया। उनकी याद सदियोतक वनी रहेगी।

स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'
वेद-सस्थान, नयी दिल्ली

● ● ●

दिसम्वर १९३४ की वात है, सुदूरपूर्वके देशोकी अपनी सास्कृतिक प्रचार-यात्रासे लौटते हुए मुझे श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दारके दर्शन करने, कुछ दिनके लिये उनके यहाँ ठहरने एव उनका सौजन्य-भरा आतिथ्य ग्रहण करनेका अवसर मिला था। उसके पश्चात्, यद्यपि मैं पुन कभी उनसे मिल नही पाया, तो भी उनके उदात्त व्यक्तित्वका जो प्रभाव मुझपर पडा था, वह स्थिररूपसे वना रहा। इस वीचमे उन्होने गीताप्रेस एव 'कल्याण'

का जो अद्‌भुत सगठन और विकास सम्पन्न किया तथा उनके माध्यमसे जो प्राचीन भारतीय धर्म एव संस्कृतिकी गहरी और चतुर्दिग्-व्यापिनी सेवा की, वह आज किसको विदित नहीं है ? उनके भक्तिभाव, बुद्धिबल एव कार्य-कौशलकी यह अमर कहानी चिरकालपर्यन्त व्यापक मानवताके सेवार्थ अपने आपको प्रस्तुत करनेके लिये आगे बढनेवाले युवक-हृदयोको उभारती तथा नया-नया उत्साह प्रदान करती रहे, यही श्रीभाईजीके प्रति मेरे प्रेम-प्रवण हृदयकी शुभ कामना है ।

आचार्य विश्वबन्धु
विश्वेश्वरानन्द सस्थान, होशियारपुर

● ● ●

श्रीभाईजी 'सत्य' एव 'धर्म'के सच्चे तथा विशुद्ध प्रतिनिधि थे । आजके अनीश्वरवादी भौतिकताके युगमे उन-जैसा व्यक्ति मिलना कठिन है, जिन्होने ऐसे युगमे रहकर लोगोके समक्ष पवित्र जीवनका आदर्श प्रस्तुत किया और उन्हे वैसा ही जीवन बितानेकी शिक्षा दी । सभी धर्मप्रेमी घरोमे उनका नाम सूक्ति-सदृश स्मरण होता है । उनके परलोकगमनसे वस्तुत धार्मिक चेतनाके क्षेत्रमे एक महान् रिक्तता उत्पन्न हो गयी है । निष्ठा, कर्तव्यभावना, उत्तरदायित्व, मोहकता एव साधुता उनके व्यक्तित्वकी अनुपम विशिष्टताएँ रही है । निश्चय ही उनके कलेवरमे भगवदीय रश्मि विद्यमान थी ।

स्वामी कृष्णानन्द
डिवाइन लाइफ सोसाइटी, ऋषिकेश

● ● ●

I have known the late Shri Hanuman Prasad Poddar through his writings in the 'Kalyan' for more than three decades and I can say that Shri Poddarji's was a life of total dedication to an uplifting and noble cause, a fine example of what a true Hindu can aspire to be I wish the Veneration Volume all success

HIS MAJESTY THE KING OF NEPAL

[मैं तीन दशकोसे भी अधिक समयसे श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारको 'कल्याण'मे प्रकाशित उनके लेखोके माध्यमसे जानता हूँ और मैं कह सकता हूँ कि श्रीपोद्दारजीका जीवन एक उत्थानकारी और महान् उद्देश्यके प्रति पूर्ण समर्पित था—एक सच्चा हिन्दू जो कुछ बननेकी आकाक्षा कर सकता है, उसका सुन्दर उदाहरण था । मैं श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थकी पूर्ण सफलताकी कामना करता हूँ ।

महाराजाधिराज श्रीनेपालनरेश]

● ● ●

Shri Hanumanprasad Poddar has done memorable services to the cause of Hinduism and it is but right that his services should be suitably recognised

C. RAJAGOPALACHARI

[श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने हिन्दू-धर्मकी स्मरणीय सेवाएँ की है । यह सर्वथा उचित है कि उनकी सेवाओको उपयुक्त ढंगसे सम्मानित किया जाय ।

श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी]

● ● ●

'कल्याण'के सम्पादक और गीताप्रेसके सचालक-प्रकाशक स्वर्गीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने अपने प्रकाशनोके माध्यमसे भारतीय साहित्यकी, विशेषकर धार्मिक साहित्यकी मूल्यवान् सेवा की है। आजकल धर्मनिरपेक्षताके नामपर धर्म-ग्रन्थोकी उपेक्षा करनेका रिवाज-सा अपने देशमे चल पडा है। सर्व-धर्म-समभावके विकासके लिये आवश्यक यह है कि हम अपने धर्मके साथ-साथ अन्य धर्मोके साहित्यका भी सम्यक्रूपसे अध्ययन-मनन करे। भारतीय होनेके नाते अपनी सभ्यता और सस्कृतिका इतिहास अपने धार्मिक साहित्यके अध्ययनसे ही हम जान और समझ सकते है। इस दृष्टिसे यदि देखे तो गीताप्रेसने अपने धर्मग्रन्थोको वृहत् पैमानेपर प्रकाशित और प्रचारित कर एक महत्वपूर्ण सेवा-कार्य किया है और इसका मुख्य श्रेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साधनापूर्ण समर्पित जीवन एव व्यक्तित्वको है।

ऐसे समर्पित आत्माके प्रति हार्दिक श्रद्धाके भाव व्यक्त करते हुए मैं यह आशा रखता हूँ कि उनके उत्तराधिकारी, उनकी ही भाँति, समर्पण-बुद्धिसे सत्साहित्यके प्रकाशन-प्रचारका कार्य जारी रखेगे और उसे अधिकाधिक जन-सुलभ बनानेका प्रयत्न करते रहेगे।

जयप्रकाश नारायण

● ● ●

I am glad to know that the friends and admirers of the late Sri Hanumanprasadji Poddar are bringing out a commemorative volume in his honour As founder-editor of the renowned monthly, the 'Kalyan', Shri Poddar's services to the cause of revival of our culture will be remembered for long In making available at a nominal price religious texts with commentaries to the millions, he has rendered unique service towards popularization of our scriptures through Hindi I hope that the good work done by him will be continued with the same zeal This will be the best way to keep his memory alive

V V GIRI
President of India

[मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके मित्र एव प्रशसकगण उनके सम्मानमे एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। सुप्रसिद्ध मासिक 'कल्याण'के सस्थापक-सम्पादकके रूपमे श्रीपोद्दारद्वारा हमारी सस्कृतिके पुनरुत्थानके निमित्त की गयी सेवाएँ दीर्घकालतक स्मरण की जायेगी। नाम-मात्रके मूल्यपर लाखो लोगोके लिये धार्मिक ग्रन्थोको व्याख्यासहित उपलब्ध कराकर उन्होने हिन्दीके माध्यमसे हमारे धर्म-ग्रन्थोको लोकप्रिय बनानेमे अद्वितीय सेवा की है।

मुझे आशा है कि उनके सत्कार्योका क्रम उसी उत्साहसे जारी रखा जायगा। उनकी स्मृतिको जीवित रखनेका यह सर्वोत्तम साधन होगा।

वराह व्यकट गिरि, भारतके राष्ट्रपति]

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार-श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थके लिये सम्मिश्र भावनासे ये पक्तियाँ लिख रहा हूँ। श्रीपोद्दारजी आदर्श मानव थे। अपने जीवनमे उन्होने सर्वथा परोपकार किया और दूसरोकी भलाई चाही। आध्यात्मिक ज्ञानके प्रसार-हेतु उन्होने जो बहुमूल्य कार्य किया, वह 'कल्याण'के पाठक भली-भाँति जानते है। चन्दनकी भाँति वे स्वयको घिसकर दूसरोको सुगन्ध देते रहे। ऐसे असाधारण मानवके अपने बीचसे उठ जानेसे दुःख होना स्वाभाविक ही है। परतु आनन्द भी इस बातका है कि उनके किये हुए कार्योकी सुगन्ध एव स्मृति आज भी
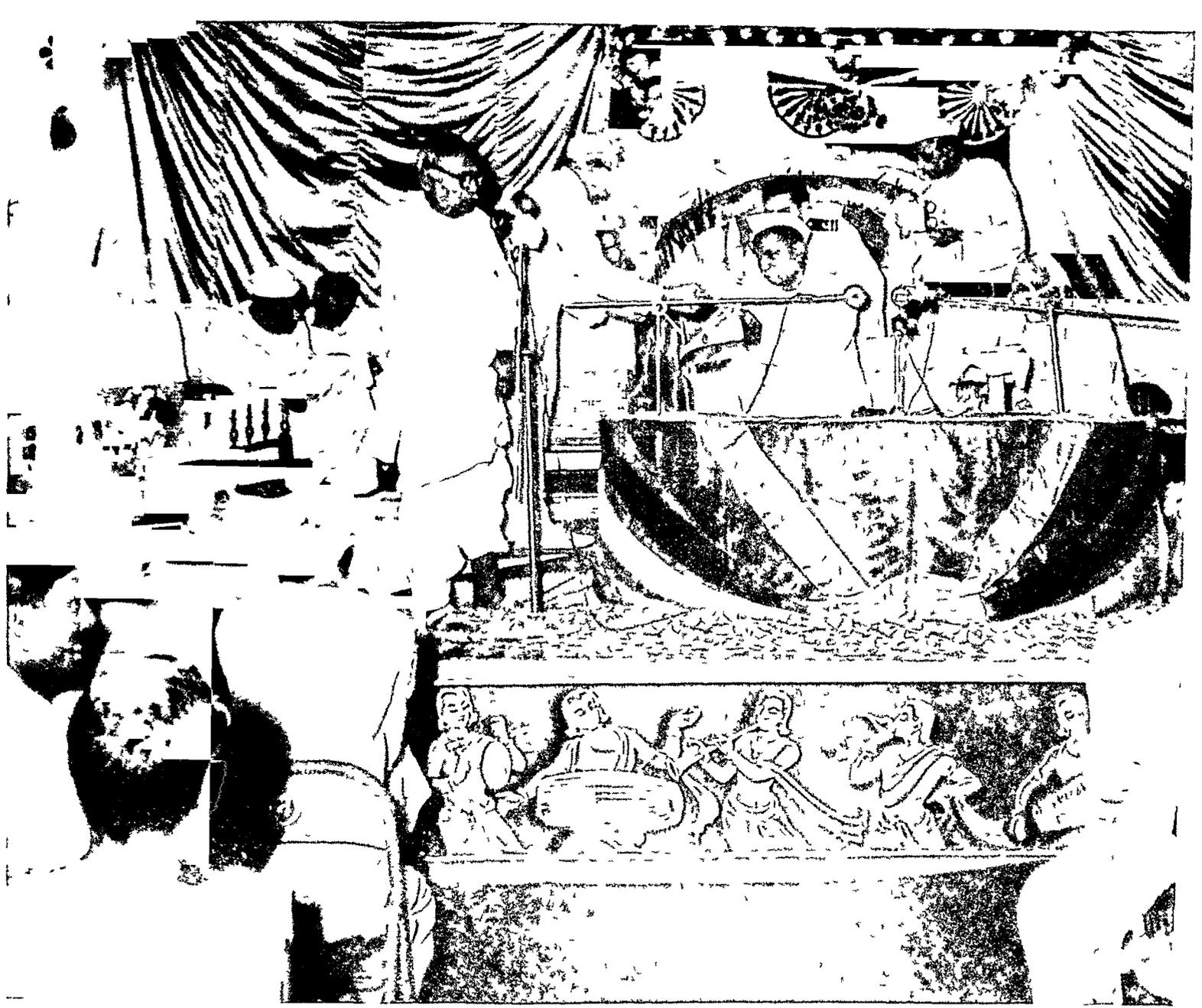
गीताप्रेस मुख्यद्वारके उद्‌घाटन समारोहमें राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादका स्वागत भाषण करते हुए

पं० श्रीजवाहरलाल नेहरूको गीताप्रेसके प्रकाशनोका उपहार प्रदान करते हुए
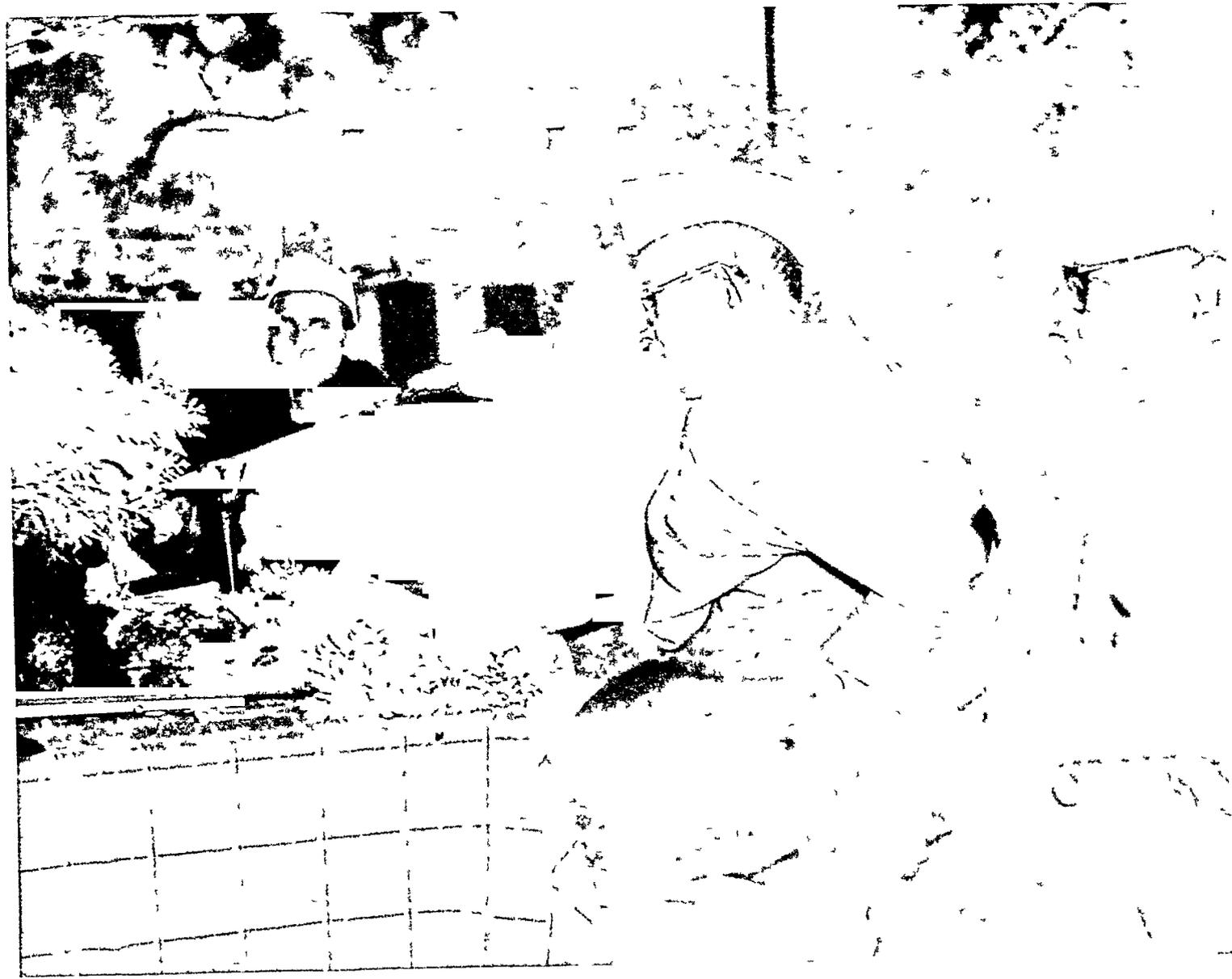
श्रीकन्हैयालाल माणेकलाल मुंशीके साथ

हमे उल्लसित करती है । इसी कारण मैने प्रारम्भमे कहा है कि सम्मिश्र भावनासे मै ये पक्तियाँ लिख रहा हूँ । हमारी सस्कृति जो आज भी जीवित है और फलती-फूलती है, निस्सदेह उसका श्रेय श्रीपोद्दारजी-जैसे महापुरुषोको है ।

मैं आशा करता हूँ कि यह श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ हमे सदैव प्रेरणादायक होगा ।

गोपाल स्वरूप पाठक
उपराष्ट्रपति

● ● ●

Sriman Hanuman Prasad Poddar was one of the luminaries in the field of cultural and spiritual renaissance of the country He was held in high esteem by all those who came in contact with him and by the countries who knew him through 'Kalyan' and the Gita Press He began from scratch and built up the Press and Kalyan as integral parts of the spiritual India His was a life of 'tapasya' dedicated to building up the Gita Press and making its publications available to the largest section of our population The publications were priced at an incredibly low price so that even the poorest with a taste could afford He exuberated enthusiasm and confidence despite many trials and tribulations. These were born out of the fact that his cause was noble and he was completely dedicated to it with a missionary zeal

The great tribute that can be paid to this noble soul is to continue the work that was so dear to him

G S DHILLON
Speaker, Lok Sabha

[श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दार देशके सास्कृतिक एव आध्यात्मिक पुनर्जागरणरूप गगनके एक देदीप्यमान ज्योति पुञ्ज थे । उनके सम्पर्कमे आनेवाले सभी लोगो एव 'कल्याण' तथा गीताप्रेसके माध्यमसे उनसे परिचित अन्य देशोके श्रेष्ठ सम्मानके वे पात्र थे । गीताप्रेस और 'कल्याण'को अत्यन्त सामान्य स्थितिसे प्रारम्भ करके आध्यात्मिक भारतके अविच्छेद्य अगके रूपमे प्रतिष्ठित करनेका श्रेय पोद्दारजीको है । उनका जीवन तपस्यामय था, जो गीताप्रेसके निर्माण और उसके प्रकाशनोको वहुजन-सुलभ वनानेके प्रति समर्पित था । रुचि होनेपर दरिद्र-से-दरिद्र व्यक्ति भी उन्हे खरीद सके, इस दृष्टिसे प्रकाशनोका मूल्य इतना कम रखा गया कि उसपर विश्वास करना कठिन है । कठिन परीक्षाओ तथा कष्टोके उपरान्त भी वे उत्साह और विश्वासके अटूट खजाने थे । वे गुण उनके उद्देश्यकी महानता और उसके प्रति उनके एकनिष्ठ एव निष्काम समर्पणके सहज परिणाम थे ।

जो कार्य उन्हे इतना प्रिय था, उसे गतिमान् रखना ही उस महान् आत्माके प्रति श्रेष्ठ श्रद्धाञ्जलि है ।

जी० एस० ढिल्लो, अध्यक्ष, लोकसभा]

● ● ●

I am glad to know that a book is being brought out in commemoration of the yeoman services rendered by Shri Hanuman Prasad Poddarji to the community I have great pleasure in sending my best wishes for the success of your endeavours

H R GOKHALE
Minister of Law and Justice, Government of India

[मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा समाजके प्रति की गयी महान् सेवाओकी स्मृतिमे एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है । आपके प्रयासकी सफलताके लिये अपनी श्रेष्ठतम शुभ कामनाएँ भेजनेमे मुझे बडी प्रसन्नता हो रही है ।

एच० आर० गोखले, मन्त्री, भारत सरकार]

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्मानमे श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित करनेके आपके सकल्पसे मुझे सतोष हुआ ।

श्रीभाईजीने जिस प्रकार अपने जीवनको जाति, धर्म, समाज, देश और साहित्यकी सेवामे खपा दिया था, वह अनुकरणीय है और आपका यह प्रयास उसके अनुरूप ही है ।

श्रीभाईजीके सम्पर्कमे आनेवाले व्यक्तियोमेसे ऐसा कौन होगा, जिसपर श्रीभाईजीके व्यावहारिक और साधनात्मक जीवनकी छाप न पडी हो और उसने उनसे कुछ ग्रहण न किया हो ।

कृपा कर उनकी स्मृतिमे मेरे ये तुच्छ श्रद्धा-सुमन स्वीकार कीजिये ।

राजबहादुर
मन्त्री, भारत सरकार

● ● ●

It is but fitting that a volume venerating Shri Hanumanprasadji is brought out The various ways in which he has helped the people in enlightening their minds are remarkable His contribution to the revival of Indian glory is so great that he could truly be called another personality like Hanuman of Ramayana fame The Gita Press at Gorakhpur has become the fountain-head of various publications—epics, Upanishads and other relevant religious literature It is now a mighty stream of Indian culture and religion The Gita Bhavan on the banks of the Ganga at Rishikesh is another sentinel beckoning man to God All these institutions are being run with such devotion and efficiency that everyone who visits them gets permanently impressed

The true tribute we could pay to Sri Hanumanprasadji is to help the continuance of these institutions

K HANUMANTHAIYA
Minister of Railways, Government of India

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी स्मृतिमे श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थका प्रकाशन सर्वथा उचित है । जनमानसको प्रबुद्ध करनेके लिये पोद्दारजीद्वारा अपनाये गये विभिन्न साधन अत्यन्त अभिनन्दनीय हैं । भारतके गौरवकी पुन स्थापनामे उनका योगदान इतना अप्रतिम है कि उन्हे रामायणकालीन हनुमानका प्रतिरूप माना जा सकता है । गोरखपुरका गीताप्रेस विभिन्न प्रकाशनो—महाकाव्यो, उपनिषदो एव अन्य उपयोगी धार्मिक साहित्यका उत्स बन गया है और आज तो यह भारतीय धर्म और सस्कृतिका एक शक्तिशाली स्रोत है । मनुष्यको भगवान्की ओर मोडनेवाला दूसरा प्रहरी है—ऋषिकेशका गगातटस्थ गीताभवन । ये सभी सस्थाएँ इतनी निष्ठा एव निपुणतासे सचालित होती हैं कि वहाँ जानेवाला व्यक्ति स्थायीरूपसे प्रभावित हो जाता है ।

इन सस्थाओको चलते रखनेमे सहायता प्रदान करना ही श्रीहनुमानप्रसादजीके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी ।

के० हनुमन्थैया, मन्त्री, भारत सरकार-]

● ● ●

Very happy to learn that you are bringing out a Veneration Volume to pay our homage to the memory of Sri Hanuman Prasadji Poddar.

Unluckily for me, I never happened to meet Sri Poddarji and whenever I came to Gorakhpur and visited Gita Press, either he was ill or he was away and, therefore, I had no chance of meeting him But I am quite familiar with his work. He was greatly responsible for popularizing religious literature among the younger men, and the Gita Press and the KALYAN magazine are the legacy left to us by him—the eloquent monuments of his vision and devotion to our ancient DHARMA. The Gita Press is a household word in all the Hindu families and I do want the Gita Press and the KALYAN to maintain that lofty idealism set by Poddarji.

I pay my homage to the memory of the great Sant who left something solid and spiritual for us to feel proud of May his memory ever inspire us.

B GOPALA REDDI.
GOVERNOR, U P

[यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी स्मृतिमे श्रद्धा समर्पित करनेके लिये आप एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं ।

मेरा दुर्भाग्य कि मै श्रीपोद्दारजीसे कभी नही मिल पाया और जब कभी मै गोरखपुर पहुँचा और गीताप्रेस देखने गया, तब या तो वे अस्वस्थ थे या कही बाहर गये हुए । अत उनसे भेटका कोई अवसर मुझे नही मिला । परतु मै उनके कार्यसे पूर्णतया परिचित हूँ । नवयुवकोमे धार्मिक साहित्यको लोकप्रिय बनानेमे उनका विशेष योगदान रहा है । गीताप्रेस तथा 'कल्याण'को वे हमारे लिये दायभागके रूपमे छोड गये हैं और ये दोनो उनकी सूझ और हमारे प्राचीन धर्मके प्रति उनकी निष्ठाके बोलते प्रतीक हैं । सभी हिन्दू परिवारोमे गीताप्रेस एक सबके मुँहपर रहनेवाला शब्द बन गया है । मेरी एकान्त अभिलाषा है कि श्रीपोद्दारजीद्वारा स्थापित उच्चादर्शको गीताप्रेस एव 'कल्याण' सदैव बनाया रखे ।

मैं उन महान् सतकी स्मृतिमे अपनी श्रद्धा समर्पित करता हूँ, जो हमलोगोके लिये ऐसी ठोस एव आध्यात्मिक सम्पदा छोड गये हैं, जिसके लिये हम गौरवका अनुभव करते हैं । श्रीपोद्दारजीकी स्मृति हमे सदा प्रेरणा प्रदान करती रहे ।

बी० गोपाल रेड्डी, राज्यपाल, उत्तरप्रदेश]

● ● ●

पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका पार्थिव देह पचतत्वोमे विलीन हुआ हे । उनका सुयश अजर-अमर है । भारतीय सस्कृतिके वे महान् दीप-स्तम्भ थे । आध्यात्मिक विचार और सस्कारके प्रचार-प्रसारमे उनका योगदान चिर-स्मरणीय रहेगा । गीताप्रेस और 'कल्याण' भविष्यमे भी अखिल विश्वका कल्याण करनेमे समर्थ रहे, यही प्रार्थना है ।

श्रीमन्नारायण
राज्यपाल, गुजरात

● ● ●

मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप भाईजीके सम्मानमे एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं । अपने सुदीर्घ जीवनकालमे भाईजीने मानव-मात्रकी अनेक प्रकारसे सेवा की और भारतीय सत-परम्पराका

सर्वोत्कृष्ट प्रसाद सर्वजनके लिये उपलब्ध किया। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित उनके अनेक ग्रन्थोमे हमे इस अति प्राचीन देशके ऋषियो और महात्माओका जो ज्ञानामृत पान करनेको मिला है, वह स्पृहणीय है। उनका लोकसग्रही व्यक्तित्व हम सभीको निरन्तर प्रेरणा देता रहता है। सम्पूर्ण मानवजाति उनकी सेवाओंके लिये उनका स्मरण सदैव कृतज्ञतापूर्वक करती रहेगी। ऐसे महापुरुषकी कीर्तिको काल भी शेष नही कर सकता।

मैं आपके इस प्रयासकी सफलताकी कामना करता हूँ।

सत्यनारायणसिंह
राज्यपाल, मध्यप्रदेश

● ● ●

Shri Hanumanprasadji Poddar was one of the truly great men of Bharat He believed in doing his duties without the least desire for material reward or fame He was a true Karmayogi

As long as 'Kalyan' and Gita Press continue to serve the nation, Shri Poddarji will be remembered in every State, in every town, and in every nook and corner of India

The fact that even in this age India can produce a great man like him is a tribute to the strength and richness of our civilisation

July 17, 1971

SHANTI S DHAVAN
Governor, West Bengal

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतके वास्तविक महान् पुरुषोमेसे थे। भौतिक प्रतिदान अथवा ख्यातिकी रचमात्र भी कामना न रखते हुए अपना कर्तव्य पूरा करनेमे ही उनकी आस्था थी। वे एक सच्चे कर्मयोगी थे।

जबतक 'कल्याण' और गीताप्रेस राष्ट्रकी सेवा करते रहेंगे, भारतके प्रत्येक प्रदेश, प्रत्येक नगर और प्रत्येक कोनेमे श्रीपोद्दारजी स्मरण किये जायेगे।

यह तथ्य कि इस युगमे भी भारत उन-जैसे महापुरुषको जन्म दे सकता है, हमारी सस्कृतिकी सामर्थ्य एव सम्पन्नताका परिचायक है।

शान्तिस्वरूप धवन, राज्यपाल, पश्चिम-बगाल]

जुलाई १७, १९७१

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका नाम उन महापुरुषोमे लिया जायगा, जो भारतीय सस्कृति और सभ्यताके पोषक और प्रचारक रहे है। जिस तरह उनकी सस्कृति और साधनामे रुचि थी, उसी तरह वे स्वभावसे भी मृदुल थे। 'कल्याण'के माध्यमसे वे जनजीवनको अपनी विचारधारासे प्लावित करते रहे। पोद्दारजीका भारतीय दर्शन और सभ्यताके प्रति जो प्रेम था, उसका गीताप्रेस एक जीता-जागता स्मारक बना रहेगा। मैं इस विचारके साथ उन्हे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

देवकान्त बरुवा
राज्यपाल, बिहार

● ● ●

श्रीपोद्दारजीने धार्मिक चेतना एव समाज-सेवाके क्षेत्रमे मूल्यवान् कार्य किया । 'कल्याण' तथा गीताप्रेस, गोरखपुरके माध्यमसे उन्होने भारतीय जनताकी जो सेवाएँ की है, उनके लिये वे चिरस्मरणीय रहेगे। भारतकी धार्मिक, आध्यात्मिक एव सास्कृतिक धरोहरके प्रसार एव व्याख्याके रूपमे उनके द्वारा किया गया कार्य आगे भी चलता रहेगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

मोहनलाल सुखाड़िया
मुख्य मन्त्री, राजस्थान

२ अप्रैल, १९७१

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)की पुण्य स्मृतिमे सस्थानकी ओरसे श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिये हम वधाई देते हैं ।

गीताप्रेसके सचालन और 'कल्याण'के प्रस्थापन तथा प्रकाशनने पोद्दारजीको अमर बना दिया है । राष्ट्र-भाषाकी जो भी समृद्धि उनके द्वारा हुई, उसके लिये सारा देश युग-युगतक उनका आभारी रहेगा । हिन्दीके साहित्य-भण्डारको जो अनमोल रत्न उन्होने 'कल्याण'के द्वारा प्रदान किये है, वे समस्त देश और जगत्‌के लिये चिर-कल्याणरूप तथा उसके वर्तमान तथा भावी जीवनके लिये मङ्गलमय हो गये हैं। उनके समान नि स्पृह धर्मसेवी, समाजकी सेवा करनेवाला और सबसे बढकर आध्यात्मिक साधक कहाँ मिल सकेगा ।

उनके पार्थिव शरीरके उठ जानेसे अपूरणीय क्षति हुई है, पर वे अपने त्यागमय जीवनसे जो हमे दे गये, वह हम सबके श्रेय और प्रेयका सवर्द्धन करता रहेगा ।

कमलापति त्रिपाठी
मुख्य मन्त्री, उत्तरप्रदेश

● ● ●

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'कल्याण'के सस्थापक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी पुण्य स्मृतिमे एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया है ।

श्रीपोद्दारजी धार्मिक विचारोके व्यक्ति थे, जिन्होने जीवनभर समाज-सेवा एव देश-सेवाका महान् कार्य सहज एव शान्त मनसे किया। आपने 'कल्याण' एव गीताप्रेसके अन्य प्रकाशनोके माध्यमसे भारतीय सस्कृति, देश एव समाजकी उल्लेखनीय सेवाएँ की है ।

मै श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थकी सफलताकी कामना करता हूँ ।

बसीलाल
मुख्य मन्त्री, हरियाणा

● ● ●

Shri Hanuman Prasadji was a great asset to our country His services towards his motherland will be remembered always We are proud that he hailed from Bikaner

Maharaja and Maharani Bikaner

[श्रीहनुमानप्रसादजी हमारे देशकी एक अमूल्य निधि थे । मातृभूमिके प्रति उनकी सेवाओको सदा स्मरण किया जायगा । हमलोगोको गर्व है कि वे बीकानेर अचलके थे ।

बीकानेरके महाराजा श्रीकर्णीसिंहजी एव महारानी]

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके निधनसे हिन्दू-जाति और सनातन-धर्मावलम्बियोने अपना एक अदम्य उत्साही सरक्षक खो दिया है। गीताप्रेस और 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने नैतिक अभ्युत्थान और सनातनधर्मके प्रचार-प्रसारका जो महत्कार्य किया, वह उनके यश शरीरको सदैव अक्षुण्ण रखेगा। पोद्दारजी एक महान् भक्त, धर्म-पालक और सदाचारके प्रतिष्ठापक थे। दीन-दु खियोके प्रति उनके मनमे सदैव दया रहती थी। 'कल्याण' और गीताप्रेसके विभिन्न प्रकाशनोकी देश-विदेशमे जो इतनी लोकप्रियता बढी, वह उन्हीके अध्यवसायका फल है।

विभूतिनारायण सिंह, काशीनरेश

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोक-गमनसे हमे हार्दिक दु ख हुआ है। वे हरिभक्त, धर्मनिष्ठ, परोपकारी एव अत्यन्त सज्जन पुरुष थे। आरम्भसे ही उन्होने धर्मपरायणताका लक्ष्य रखते हुए 'कल्याण' पत्रका सुचारु रूपसे सचालन किया, हिन्दूधर्मका जनहितमे प्रचार किया तथा अपनी देख-रेखमे गीताप्रेससे धार्मिक ग्रन्थोका प्रकाशन कर धर्मके तत्वको घर-घर पहुँचाया। उनका धर्म-सेवाका महान् कार्य सदा स्मरणीय रहेगा।

सीनियर महारानी
करौली (राजस्थान)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी चले गये। इतना लोकोपकार जो वे करते थे, उसका क्या होगा? सत्सग तो निर्जीव हो गया। ससार पापके गड्ढेमे डूबता जा रहा है। उससे निकालनेके प्रयत्न करनेवाले तो वे ही थे। अब कोई नही है।

श्रीमनोहर कुमारी
कुँवरानी सीतामऊ राज्य (म० प्रदेश)

● ● ●

Shri Hanumanprasadji Poddar was a person who believed in and lived religion in its true sense The institutions of the Gita Press and the religious monthly 'Kalyan' are the results of his dedication The literature that he has produced in the Press is of such great value and importance that the future generations in this country, who may have any regard for real religion, will learn a lot from it and will be greatly benefited He dedicated his whole life to put before the society our great cultural heritage in order that the country is built up again on sound foundations of our culture and that it reaches a height greater than it had reached in the hoary past

The different editions of the Gita, the Ramayana and the Great Upanishads, which have been published in millions and in the form of cheap and nice books, will be the best memorial of Sri Hanuman Prasadji for centuries to come They are living memorials of his love for the Vedic religion, our ancient culture and the great future of this country

I am very happy to learn that a Veneration Volume is being issued to pay homage to the great services that this noble son of India has rendered to the country No country can rise to greatness, strength and lasting prosperity, materially and

spiritually, without a sound base of religion guiding the human mind. This has been very effectively supplied through the Gita Press and will, I am sure, continue to be supplied in future

MORARJI DESAI

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार वह व्यक्ति थे, जिनकी धर्ममे सच्ची आस्था थी और जिन्होने सच्चे अर्थमे धर्ममय जीवन बिताया। गीताप्रेस और धार्मिक मासिक 'कल्याण'-जैसी सस्थाएँ उनके समर्पित जीवनके परिणाम है। उन्होने गीताप्रेससे जो साहित्य प्रकाशित किया है, वह इतना बहुमूल्य तथा महत्वपूर्ण है कि इस देशकी वे भावी पीढियाँ, जिनके मनमे सच्चे धर्मके प्रति कुछ भी सम्मान होगा, इससे वहुत कुछ सीखेगी और प्रचुर लाभ उठायेगी। उन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन हमारी महान् सास्कृतिक परम्पराको समाजके समक्ष प्रस्तुत करनेमे समर्पित कर दिया, जिससे कि हमारे राष्ट्रका पुनर्निर्माण हमारी सस्कृतिकी सुदृढ नीवपर हो सके और वह अत्यन्त प्राचीनकालमे प्राप्त गौरवसे भी अधिक गौरव प्राप्त करनेमे समर्थ हो।

सस्ती तथा सुन्दर पुस्तकोके रूपमे लाखो-लाखोकी सख्यामे प्रकाशित गीता, रामायण तथा महान् उपनिषदोके विभिन्न सस्करण शताब्दियोतक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सर्वोत्तम स्मारक बने रहेगे। वैदिक धर्म, हमारी प्राचीन सस्कृति एव इस देशके महान् भविष्यके प्रति उनके प्रेमके ये जीवित स्मारक है।

मुझे यह जानकर वडी प्रसन्नता है कि भारतके इस महान् सपूतके द्वारा देशके हितमे की गयी महान् सेवाओके प्रति श्रद्धा समर्पित करनेके लिये एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है। मानव-मस्तिष्कके मार्ग-प्रदर्शक धर्मके सुदृढ आधारके बिना कोई भी देश भौतिक एव आध्यात्मिक दृष्टिसे महानता, शक्ति तथा स्थायी समृद्धि प्राप्त नही कर सकता। गीताप्रेसने इसकी प्रभावशाली ढगसे पूर्ति की है और मुझे विश्वास है कि भविष्यमे भी इसकी पूर्ति होती रहेगी।

मोरारजी देसाई]

● ● ●

Sri Hanuman Prasad Poddarji is one of the greatest sons of India in recent times Though we attained freedom from foreign yoke, sufficient efforts have not yet been made to re-establish our culture, which is based on simplicity, service and sacrifice, character, conduct and spiritualism Neither our religion nor philosophy nor even morality is taught in the schools and colleges and the idea of a secular state has been misinterpreted and the exclusion of these subjects from the curricula in the educational institutions is the result Our children are being brought up in a materialistic civilization All education is directed to one purpose, *i e*, of giving a means of living to young men All science is directed towards increasing creature comforts of a human being We are in a conflict of civilizations The western materialistic civilization is fast overpowering us and has shaken our spiritualistic culture to its foundation The laws of the jungle once again are being adopted by human beings Violence, struggle for existence, survival of the fittest, the strong oppressing the weak have become the order of the day Though we won freedom from the mighty British empire, basing our struggle on truth and non-violence and spiritual force, we are using violence against one another for the cause of domestic peace internally, and externally to maintain our freedom Faith in the

effectiveness of spiritual force has almost disappeared and faith in armaments and brute force has taken its place Oneness of humanity is being talked of, but in practice, this has been thrown to the winds The world is now divided into compartments and domination and exploitation are the ideals before the big powers

In this world of today, Sri Poddar has rendered a very valuable service through the Gita Press by disseminating our religious and philosophical ideals inculcating the idea of oneness in the universe According to the Gita, the universe is one and that is none other than God The true spirit of Hinduism is to see God in the universe and to worship God by service to his creatures in a spirit of detachment The idea of service has now receded to the background and self has taken its place His monthly journal 'Kalyan' has reached almost every home in Northern India and it is both instructive and interesting Books that he has been publishing, though really costly, have been made available at a nominal price It is one's fault if he does not get these books and read them to his advantage If in Northern India, there is spiritualism yet, amongst the masses, it is largely due to the literature and religious books that the Gita Press has been publishing under the guidance and supervision of Sri Hanuman Prasad Poddar

I had been in correspondence with him and appreciating his work for over 20 years I came into more intimate contact with him when about 5 years ago we founded the Chaturdham Veda Bhawan Trust, of which Sri Biswanath Das is the Secretary and Sri Poddar agreed to be the Joint Secretary They made me its titular President Sri Poddar practised what he preached I found in him a highly religious and pious personality His one aim had been to revive our culture in our land It is now afflicted by disorder all relating to the acquisition of property and wealth Once again we have to restore peace in our land This can be achieved only through the revival of our culture, which substitutes service for domination and giving charity for exploitation In Sri Poddar there was a visible growth of both these spiritual practices Gandhiji won freedom for our land and wanted to establish Rama-Rajya by his constructive approach He was himself a great devotee of God That work has been continued by Sri Poddarji He spent his last days in meditation With him we are losing one of our most religious and pious persons and selfless workers for the cause of our religion, philosophy and culture But I am sure that his soul has found an abiding place in God

I trust and hope that the activities of the Gita Press will be continued in the same spirit in which Sri Poddar worked it and it will carry on propaganda for our religion, our spiritualism and our culture, and make all our people united

M ANANTHASAYANAM AYYANGAR
Ex-Governor

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार आधुनिक भारतकी महत्तम विभूतियोमे है। हमने विदेशी दासतासे मुक्ति प्राप्त की, किंतु हमारी सस्कृतिकी पुन स्थापनाके हेतु पर्याप्त प्रयत्न नही किये गये, जिसके मूल आधार सादगी, सेवा, त्याग, सदाचार एव आध्यात्मिकता है। विद्यालयो और कालिजोमे न तो धर्मकी, न दर्शनकी और न सदाचारकी ही शिक्षा दी जाती है। धर्मनिरपेक्ष राज्यका गलत अर्थ लगा लिया गया है, जिसके फलस्वरूप शिक्षण-सस्थाओके पाठ्यक्रमोसे इन विषयोको अलग रखा गया है। हमारे बच्चे भौतिक सभ्यतामे पल रहे है। सारी शिक्षा एक ही उद्देश्यकी ओर प्रेरित है और वह है——नवयुवकोको जीवन-निर्वाहका साधन सुलभ करना। सम्पूर्ण विज्ञानका विनियोग मनुष्यके शारीरिक सुख-साधनोको बढानेमे हो रहा है। हम दो विरोधी सभ्यताओके सघर्षसे घिरे हुए है। पश्चिमी जडवादी सभ्यता हमको तेजीसे अभिभूत करती जा रही है और इसने हमारी आध्यात्मिक सस्कृतिकी नीवतक हिला दिया है। मनुष्य एक बार पुन. 'जिसकी लाठी उसकी भैंस'के सिद्धान्तको अपना रहा है। हिंसा, जीवन-सघर्ष, मत्स्य-न्याय, बलवान्द्वारा दुर्बलका पीडन दैनिक व्यवहारके अङ्ग बन गये है। यद्यपि सत्य, अहिसा तथा आध्यात्मिक शक्तिको अपने सघर्षका आधार बनाकर हमने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यसे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त की है, हम देशके भीतर घरेलू शान्ति बनाये रखनेके लिये तथा बाह्य आक्रमणसे अपनी स्वतन्त्रताको बचानेके हेतु एक दूसरेके विरुद्ध हिंसाका उपयोग कर रहे है। आध्यात्मिक शक्तिकी क्षमतापर हमारी आस्था प्राय लुप्त हो चुकी है तथा शस्त्रास्त्रो एव पाशविक बलमे हमारी आस्था हो गयी है। चर्चा तो की जाती है मानवमात्रकी एकताकी, परतु व्यवहारमे इसका परित्याग कर दिया गया है। ससार आजकल गुटोमे वँट गया है तथा आधिपत्य एव शोषण बडे राष्ट्रोके आदर्श हो गये है।

आधुनिक जगत्मे गीताप्रेसके माध्यमसे विश्वमे एकताकी भावना जाग्रत् करनेवाले हमारे धार्मिक एव दार्शनिक आदर्शोका प्रचार कर श्रीपोद्दारने बहुमूल्य सेवा की है। गीताके अनुसार विश्व एक है और वह भगवान्से भिन्न कुछ नही है। हिंदूधर्मका वास्तविक ध्येय है विश्वमे भगवद्दर्शन करना और अनासक्त भावसे जीवमात्रकी सेवाके द्वारा भगवान्की आराधना करना। सेवाकी भावना अब पीछे हट गयी है और इसका स्थान 'स्व'की भावनाने ग्रहण कर लिया है। उनका मासिक पत्र 'कल्याण' उत्तर भारतके प्राय प्रत्येक घरमे पहुँच चुका है और यह शिक्षाप्रद तथा रुचिकर दोनो ही है। उनके द्वारा प्रकाशित पुस्तके, वास्तवमे बहुमूल्य होने पर भी, नाममात्रके मूल्यपर सुलभ कर दी गयी है। यदि कोई व्यक्ति इन्हे प्राप्त नही करता और पढकर इनसे लाभ नही उठाता तो दोष उसीका है। यदि उत्तर भारतकी जनतामे अभीतक आध्यात्मिकता बनी हुई है, तो यह अधिकाश श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके निर्देशन एव देखरेखके अन्तर्गत गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्यके कारण है।

मेरा २० वर्षोसे उनके साथ पत्र-व्यवहार रहा है और मै उनके कार्योका प्रशसक रहा हूँ। मै उनके निकट सम्पर्कमे लगभग ५ वर्ष पूर्व आया, जब हमलोगोने 'चतुर्धाम वेद-भवन न्यास'की स्थापना की, जिसके मन्त्री श्रीविश्वनाथदास है और श्रीपोद्दारने सयुक्त मन्त्री बनना स्वीकार किया। उन लोगोने मुझे इसका अध्यक्ष बना दिया। श्रीपोद्दार जो कुछ कहते थे, उसके अनुसार आचरण भी करते थे। मैने उन्हे उच्चकोटिके धार्मिक एव पुण्यात्मा पुरुषके रूपमे पाया। उनका एकमात्र उद्देश्य अपने देशमे अपनी सस्कृतिको पुनरुज्जीवित करना रहा है। यह देश इस समय धन-सम्पत्तिकी लालसासे होनेवाली अव्यवस्थाका शिकार हो रहा है। एक बार पुन हमे अपने देशमे शान्ति स्थापित करनी है। यह हमारी सस्कृतिके पुनरुद्धारसे ही सम्भव है, जो अधिकारके स्थानपर सेवा तथा लूट-खसोटके स्थानपर दानशीलता सिखाती है। श्रीपोद्दारमे आध्यात्मिक आचरणके दोनो पक्ष अत्यन्त विकसित अवस्थामे लक्ष्य किये जा सकते थे। गाधीजीने हमारे राष्ट्रके लिये स्वतन्त्रता प्राप्त की और वे अपनी रचनात्मक प्रणालीद्वारा 'रामराज्य' स्थापित करना चाहते थे। वे स्वय भगवान्के एक बडे भक्त थे। श्रीपोद्दारजीने उस कार्यको आगे बढाया। उन्होने अपना अन्तिम समय ध्यानमे बिताया। उनके परलोकगमनसे हमने एक अत्यन्त धार्मिक एव पुण्यात्मा पुरुष तथा अपने धर्म, दर्शन तथा सस्कृतिका एक नि स्वार्थ सेवक खो दिया है। परतु मुझे विश्वास है कि उनकी आत्मा भगवान्मे नित्यलीन हो गयी है।

मुझे आशा एव विश्वास है कि गीताप्रेसका सेवाकार्य उसी भावसे चलता रहेगा, जिस भावसे श्रीपोद्दारजीने उसका सचालन किया था तथा उसके द्वारा हमारे धर्म, अध्यात्म और सस्कृतिका प्रचार जारी रहेगा और हमारी राष्ट्रीय एकताको वल मिलेगा।

एम्० अनन्तशयनम् अय्यगार
भूतपूर्व राज्यपाल]

● ● ●

अपने सम्मानित मित्र श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके देहावसानसे मार्मिक दुख हुआ। उनके जानेसे देश, साहित्य, समाजकी वडी ही क्षति हुई है। एक अपूर्व विभूति हमारे वीचसे उठ गयी। उनके जैसे देशभक्त तथा धर्मपरायण सज्जनका आजके ससारमे मिलना असम्भव है। उन्होंने कितना काम किया, कितनोको शिक्षा दी, इसका हिसाब लगाना कठिन है। ईश्वरसे प्रार्थना है—उनका सुन्दर कार्य सुचारुरूपसे चलता रहे।

२३ मार्च, १९७१

श्री श्रीप्रकाश
भूतपूर्व राज्यपाल

● ● ●

Possibly 'Gitanka' in Hindi long ago was the first voluminous edition in the series of several 'Ankas' which Sri Hanuman Prasadji started I remember his writing to me not merely to send an article but to give him some names from Karnataka, competent enough to write on the great theme 'Gita' I sent him three or four names and one or two articles

This effort of Sri Poddar was at once indicative of his approach to the Gita as the most important and universal text which could attract the attention of all Indians, and of his attempt to invite Indians from different regions to write on the 'Gita'

It is needless to say that 'Gitanka' was a grand success and led to several other 'Ankas' in the same series Most of them are rich mines of good articles written by eminent men and full of illustrations, coloured and other The printing has always been good and the types used bold enough to be read even by neo-literates

Another important occasion I remember is about an exhibition of the editions and commentaries on the Gita in several languages I remember to have counted about 550 or so, that was again a novel idea of Sri Poddarji

'Kalyan' in Hindi has been always a very popular devotional monthly, with a few illustrations thrown in The 'Kalyana-Kalpataru', which is in English, is as popular among the English-knowing public

The most outstanding and monumental work of Shriman Poddarji is, however, the expansion and stabilization of a huge organization, with the Gita Press as the nucleus and the printing and publication of the Gita as the basic activity Of course, when

compared to the Bible Society or its ramifications, and the translation of the Bible into 125 languages, and the annual sale of the Bible to the tune of ten million, this work seems small, when we take into consideration the fact that the Gita is the Bible of the Hindus, numbering 450 million

Even to achieve what late Poddarji did, he had to undergo great stresses and strains. This shows that there is no dearth of effort on the part of devoted and dedicated workers, but there is something wanting in the mental make-up of the people One wishes that the newer generation of Hindus would appreciate the efforts already made and have the ambition of seeing that the Gita in respective languages becomes a prized and necessary possession of everyone, not only in India but even abroad. The depth as well as simplicity of the Gita, its profoundity as well as its universality, its appeal to the heart as well as to the head, justifies such an attempt Sri Poddar has shown the way and the best and the highest tribute to him would be to continue and expand the line of action taken by him so that the message of the Gita reaches every human heart and head, and enlightens men and women everywhere

R R. DIWAKAR.
Ex-Governor.

[श्रीहनुमानप्रसादजीद्वारा चलायी गयी नाना विशेषाङ्कोकी परम्परामे बहुत दिन पूर्व प्रकाशित 'गीताङ्क' सम्भवत. सबसे पहला सुविशाल अङ्क था, जिसमे, मुझे स्मरण है कि उन्होने मुझे केवल एक लेख भेजनेके लिये ही नही लिखा, अपितु 'गीता'-जैसे महान् विषयपर पर्याप्त क्षमतापूर्वक लिख सकनेवाले कर्नाटक-क्षेत्रके कुछ व्यक्तियोके नाम भी माँगे थे। मैने उन्हे तीन या चार नाम तथा एक या दो लेख भेजे थे।

श्रीपोद्दारके इस प्रयाससे दो बाते स्पष्ट हुई—एक तो यह कि वे गीताको एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एव सार्वभौम ग्रन्थ मानते थे, जिसकी ओर सभी भारतवासियोका आकर्षण सम्भव है और दूसरी बात यह कि उन्होने इसके द्वारा गीतापर अपने विचार प्रकट करनेके लिये भारतके विभिन्न क्षेत्रोके विद्वानोको आमन्त्रित किया।

यह कहनेकी आवश्यकता नही कि 'गीताङ्क'को भव्य सफलता मिली तथा उसके अनुसरणमे उसी शृङ्खलामे अनेक अन्य अङ्क भी प्रकाशित हुए। उनमेसे अधिकाश सुविख्यात व्यक्तियोद्वारा लिखित अच्छे लेखोकी बहुमूल्य खान हैं और रगीन तथा अन्य चित्रोसे परिपूर्ण हैं।

छपाई सदैव उत्कृष्ट रही है तथा उपयोगमे लाये गये टाइप पर्याप्त बडे, जिन्हे नव-शिक्षितजन भी पढ सके।

दूसरा महत्वपूर्ण अवसर जो मुझे स्मरण है, वह है—गीताके विभिन्न भाषाओमे प्रकाशित सस्करणो एव टीकाओकी प्रदर्शनी। मुझे याद है कि मेरी गणनाके अनुसार उनकी कुल सख्या ५५० या उसके लगभग थी। श्रीपोद्दारजीकी यह दूसरी नयी सूझ थी।

कुछ एक चित्रोसे युक्त हिदी 'कल्याण' सदैव एक अत्यन्त लोकप्रिय भक्तिप्रधान सचित्र मासिक पत्र रहा है। आग्ल भाषामे प्रकाशित 'कल्याण-कल्पतरु' अग्रेजी जाननेवाले लोगोमे समानरूपसे जनप्रिय है।

श्रीमान् पोद्दारजीका सर्वाधिक विशिष्ट एव स्मरणीय कार्य एक महान् सगठनका विस्तार एव सुदृढीकरण है, जिसका केन्द्रस्थल गीताप्रेस तथा मुख्य कार्य गीताका मुद्रण एव प्रकाशन है। निस्सदेह बाइबल-सोसाइटी अथवा इसकी शाखाओ और १२५ भाषाओमे बाइबलके अनुवाद तथा एक करोडकी सख्यामे बाइबलकी वार्षिक बिक्रीकी तुलनामे यह कार्य अल्प-सा प्रतीत होता है, विशेषत जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि गीता ४५ करोड़ हिदुओकी बाइबल है।

फिर भी श्रीपोद्दारजीने जो कार्य किया, उसीको सम्पन्न करनेके लिये उन्हे एडीसे चोटीतकका पसीना एक करना पडा । इससे यह ज्ञात होता है कि निष्ठावान् तथा समर्पित-जीवन कार्यकर्त्ताओके प्रयासकी कमी नही है, परतु जनताके मानसिक गठनमे किसी तत्व-विशेषका अभाव है । हमारी यही आकाक्षा है कि नयी पीढीके हिंदू पूर्वकृत प्रयत्नोका आदर करे और इस बातकी महत्वपूर्ण अभिलाषा करे कि विभिन्न भाषाओमे गीताकी पुस्तक प्रत्येक भारतीयके ही नही, अपितु बाहरके लोगोके भी हाथमे एक बहुमूल्य और आवश्यक सम्पत्तिके रूपमे पहुँच जाय। गीताकी गम्भीरता और सुगमता, उसकी गहनता और सार्वभौमता तथा मानवीय मस्तिष्क एव हृदयकी आवश्यकताओकी उसके द्वारा जो पूर्ति हो रही है—इन सब बातोको देखते हुए इस दिशामे हमारा प्रयत्न उचित ही होगा। श्रीपोद्दारजीने इस दिशामे हमारा मार्ग-दर्शन किया है और उनके प्रति सर्वोत्तम तथा सबसे ऊँची श्रद्धाञ्जलि यही होगी कि उनके द्वारा चलायी गयी कार्य-पद्धतिको चालू रखा जाय और उसका विस्तार किया जाय, जिसमे गीताका सदेश प्रत्येक मानवीय हृदय तथा मस्तिष्कतक पहुँच सके और सभी देशोके नर-नारियोको उसके द्वारा प्रकाश मिल सके।

श्री आर० आर० दिवाकर
भूतपूर्व राज्यपाल]

● ● ●

I am happy that I am called upon to join the offering of homage to the late Sri Hanuman Prasadji Poddar, the founder-editor of 'Kalyan', Gita Press, A philosopher and thinker, he was a person who knew clearly where the interest of the Indian Society lay I can recapitulate two interesting meetings Instinctively a business man, it was hardly to be expected that he could detach himself from his business and find solace and comfort in his sole activity of conveying and communicating the message of our culture through what is now a household word in the spiritual literature of India, the 'Kalyan'

The essential message of Vedanta is sometimes grasped at the intellectual level, but it is very difficult to grasp its meaning unless it is well digested and this cannot be done unless one can reach the inner depths of his true nature

We have in India various schools of thought There is a school of thought where knowledge is emphasised, another where devotion to God is emphasised, still another where detachment in action is emphasised and yet another where Yoga is emphasised The intention behind all these has been first to enable one to come in touch with the lofty endeavour made by our seers of the past, next to enable him to sublimate his senses, then to realize true nature then to conquer contradictions in his life and finally realize the ultimate Truth This approach is common to all This is the great message of Vedanta, which 'Kalyan' has tried all these years to disseminate

I think that in this field the contribution of Sri Hanuman Prasadji Poddár will rank as one of the noblest efforts of a human personality

U N DHEBAR

[मुझे प्रसन्नता है कि गीताप्रेससे प्रकाशित होनेवाले 'कल्याण'के सस्थापक-सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके प्रति श्रद्धार्पणरूप यज्ञमे सम्मिलित होनेके लिये मुझको आमन्त्रित किया गया है। श्रीपोद्दारजी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हे दार्शनिक एव विचारक होनेके नाते यह स्पष्ट ज्ञात था कि भारतीय समाजका हित किस बातमे सनिहित है। मुझे उनके साथ मिलनके दो रोचक प्रसङ्गोका स्मरण है। निसर्गत व्यापारी होनेके कारण उनसे यह आशा करना कठिन था कि वे अपने व्यापारिक कार्योसे अपनेको अलग कर सकेगे और भारतीय आध्यात्मिक साहित्यमे सुप्रसिद्ध 'कल्याण'के माध्यमसे, जिसका नाम आज घर-घरमे लोगोके मुँहपर है, हमारी सस्कृतिके सदेशके प्रचार एव प्रसारके एकमात्र कार्यमे ही उन्हे सुख एव सतोष प्राप्त हो सकेगा।

वेदान्तका सारभूत सिद्धान्त कभी-कभी बौद्धिक स्तरपर समझमे आता है, लेकिन जबतक इसको भलीभाँति आत्मसात् न किया जाय, इसका गूढ अर्थ समझना कठिन है और यह तबतक सम्भव नही, जबतक एक व्यक्ति अपने यथार्थ स्वभावकी आन्तरिक गहराईतक नही पहुँचता।

भारत मत-मतान्तरो और विचारधाराओकी बहुलताका देश है, जहाँ एक विचारधाराके अनुसार 'ज्ञान' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, दूसरीके अनुसार ईश्वर-भक्ति, तीसरीके अनुसार कार्यमे अनासक्ति, और चौथीके अनुसार योग। इन सभीका उद्देश्य क्रमश. ऋषियोद्वारा प्रचीन कालमे किये गये महान् प्रयासोसे मनुष्यको अवगत कराते रहना, उसे इन्द्रियोका परिष्कार करनेमे समर्थ बनाना, यथार्थ स्वरूपका ज्ञान कराना, द्वन्द्वोपर विजय प्राप्त कराना और अन्ततोगत्वा महान् सत्यकी प्राप्ति कराना है। यह दृष्टिकोण सभी विचारधाराओमे समानरूपसे ग्राह्य है और यही वेदान्तका महान् सदेश है, जिसे प्रचारित करनेका प्रयास 'कल्याण'ने आजतक किया है।

मेरे विचारसे इस क्षेत्रमे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सेवा मानवकृत सर्वश्रेष्ठ प्रयासोके बीच स्थान पायेगी।

यू० एन्० ढेबर]

● ● ●

श्रीपोद्दारजी एक महान् आत्मा थे। उनका जीवन इतना महान् और जनोपयोगी था कि प्रत्येक व्यक्ति अपनेको उनसे व्यक्तिगतरूपसे परिचित-सा अनुभव करता था।

श्रीपोद्दारजीने धार्मिक तथा सास्कृतिक क्षेत्रमे मानव-समाज तथा विशेषकर हिंदू-समाजकी जो सेवा की है, उसके लिये हमारा समाज उनका चिरऋणी रहेगा।

'कल्याण' उनके जीवनको सदैव स्मरण कराते रहनेवाला हमारा मार्गदर्शक रहेगा। यह उनके ही परिश्रमका फल है कि 'कल्याण' आज देशकी सीमासे आगे बढकर दिनोदिन लोकप्रियता अर्जित कर रहा है।

काशीप्रसाद पाण्डेय

अध्यक्ष, विधान-सभा, मध्यप्रदेश

● ● ●

'कल्याण'के 'वेदान्ताङ्क'से मैं उसका ग्राहक हूँ। सन् १९४२ मे मै श्रीभाईजीके पैतृक-स्थान रतनगढ भी गया था। वहाँ मैंने श्रीभाईजीकी सतत साधनाका प्रत्यक्ष दर्शन किया। उस अवधिमे मैने देखा—श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर अखण्ड श्रीहरिनाम-सकीर्तन चल रहा है और श्रीभाईजी उसकी सँभाल करते रहते है। सायकाल प्रवचन करते है तथा दिनभर 'कल्याण'का सम्पादन, लेखन और जिज्ञासुओका मार्गदर्शन करते रहते है।

इसके साथ ही सकटग्रस्त प्राणियोके सहायतार्थ अनेक प्रकारके राहतकार्योको गति देनेमे भी श्रीभाईजी दत्तचित्त रहते थे। द्वितीय महायुद्धके भयसे त्रस्त होकर कलकत्ता आदिसे आये लोगोको भी उनसे सान्त्वना एव सहयोग प्राप्त होते रहते थे।

श्रीभाईजीने मुझे जीवनमे पालनीय नियम वतलाते हुए कहा था—'प्रभुका भजन जीवनभर चलता रहना चाहिये। यह कोई ऐसी चीज नही है, जिसे एक बार करके रख दिया जाय। भजन करनेवाले व्यक्तिको अपनी आजीविकाके सम्वन्धमे दूसरोकी दया एव दानपर निर्भर न रहकर स्वय परिश्रम करना चाहिये। उसका व्यवहार ऐसा होना चाहिये, जिससे दूसरे प्रेरणा ले सके।' भाईजीका वह मार्गदर्शन आजतक मेरे निजी एव सार्वजनिक जीवनके लिये प्रेरक रहा है।

इसके पश्चात् मैंने उनके दर्शन गीता-भवनमे किये। उन दिनो मैं मजदूरोके सगठन-कार्यमे मुख्यरूपसे सलग्न था। प्रेरणा देते हुए एक दिन श्रीभाईजीने अपने प्रवचनमे कहा—'मजदूरोका उचित जीवनस्तर निर्माण करना चाहिये। उत्पादनमे वृद्धि तथा अनुशासनका पालन—दोनो वहुत आवश्यक हैं। मजदूरोमे तथा मालिकोमे परस्पर द्वेष एव कटुता नही होनी चाहिये, आपसी सद्भाव रहना चाहिये। उभय पक्षोमे सघर्षके स्थानपर आपसी सहयोगको प्रोत्साहन दिया जाय।' श्रीभाईजीका यह उपदेश मैने सदैव अपने सामने रखा है और इससे मुझे अपने दायित्वोको निभानेमे वडी प्रेरणा प्राप्त होती रही है।

श्रद्धेय श्रीभाईजी महान् प्रतिभाके धनी थे। उनके सम्पर्कमे आनेवाला उनसे प्रभावित हुए विना नही रह सकता था। उनके आत्मीयतापूर्ण मधुर व्यवहारकी छाप सम्पर्कमे आनेवालेपर अवश्य पडती थी। उनके लेखो और प्रवचनोसे अनगिनत लोगोको श्रेष्ठ जीवनकी प्रेरणा मिली, हजारो साधकोको उनके ससर्गसे शान्ति-लाभ हुआ। यद्यपि श्रीभाईजी पार्थिव शरीरसे हमारे मध्यमे नही रहे, तथापि उनकी सर्वतोमुखी साधना चिर-कालतक मानव-जातिके उत्थानका पथ प्रशस्त करती रहेगी।

श्रीगगाराम तिवारी
मन्त्री—लोकनिर्माण तथा गृहनिर्माण, मध्यप्रदेश

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे भारतीय सस्कृतिकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति सम्भव नही है। उन्होने मासिक पत्र 'कल्याण'द्वारा हिंदू-धर्म और हिंदू-जातिकी जो सेवा की है, उसे देश भुला नही सकता। श्रीपोद्दारजीका श्रीशास्त्रीजी एव उनके परिवारके साथ वहुत घनिष्ठ सम्वन्ध रहा है।

श्रीमती ललिता शास्त्री

● ● ●

Although my coming into contact with late Sri Hanumanprasadji Poddar was very brief while I was in U P, he was a very dynamic person and was carrying on the work of publishing the religious monthly, the 'Kalyan', and the publication of cheap and beautiful editions of the Gita, the Ramayana and the great Upanishads I am glad that you are going to bring out a Veneration Volume in his memory

I bow to the great soul and wish your efforts every success

LILAVATI MUNSHI
Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay

[उत्तर प्रदेशमे रहते समय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा सम्पर्क अत्यन्त अल्पकालिक रहा। वे एक महान् कर्मयोगी पुरुष थे और वे धार्मिक मासिक पत्र 'कल्याण' तथा गीता, रामायण और महान् उपनिषदोके सुन्दर एव सस्ते सस्करणोके प्रकाशनका कार्य कर रहे थे। मुझे प्रसन्नता है कि आप उनकी स्मृतिमे एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है।

उनकी महान् आत्माके प्रति प्रणति निवेदित करती हुई मै आपके प्रयासकी सर्वाङ्गीण सफलताकी आकाक्षिणी हूँ।

लीलावती मुशी
भारतीय विद्या-भवन, बम्बई]

● ● ●

'जो पूर्णताकी परिणति है, वही पुरुष पुरुषोत्तम है, जहाँ विश्रान्तिका विश्राम भी विलीन हो जाता है।'

श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी उन्ही पूर्ण पुरुषोत्तमके उपासक पुरुषोत्तम थे। उनका सुयश अमर है। उनके व्यावहारिक एव साधनात्मक जीवनका वास्तविक स्वरूप उनके लोकसग्रह-व्यक्तित्वसे हम सबको उपलब्ध हुआ है। दरअसल हम कितने भाग्यशाली है कि ऐसे साधकोकी योगसाधनाओका विशुद्ध सुमधुर नवनीत हमने पाया है।

भारतीय सस्कृतिका प्राण आत्माकी अमरतामे समाया हुआ है। श्रीपोद्दारजी भारतीय सस्कृतिके दीपस्तम्भ थे। भारतीय सस्कृतिको अनेक रूपमे जाग्रत् और सजीव रखनेकी साधना करते हुए आत्मार्थी श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी स्वय आत्मलीन हो गये। उनके प्राण उसीमे समाविष्ट हुए है, ऐसा समझकर हमे यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि अपने सम्पूर्ण जीवन-कालमे उन्होने जो श्रेयस्की साधना की है, वह अब अधिक प्राणवान् होगी। उनके द्वारा जो कर्म और साधनाका क्रम अखिल भारतमे स्थापित हुआ है, वह अधिक सशोधित रूपमे निष्ठापूर्वक सतत चालू रहे।

इसी तरह गीताप्रेसके द्वारा भारतके धार्मिक ग्रन्थो और साहित्यका विशुद्ध रूपसे जो प्रकाशन होता रहा है, वह भी देश-काल-परिस्थितिके अनुरूप आवाल-वृद्ध सभीको स्वधर्मका बोध एव प्रेरणा सतत देता रहा है। उसी प्रकार उसका अत्यन्त सतर्कता, पवित्रता और सर्वात्मचिन्तनपूर्वक उत्तम प्रकाशन निरन्तर होता रहे और वह देश-काल-परिस्थितिके अनुरूप सकल जनोकी आत्मोन्नतिके लिये और राष्ट्रके उत्थानके लिये सदा समयोपयोगी सिद्ध हो।

यही चिरस्मरणीय पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पावन स्मृतिमे सर्वान्तर्यामीसे आन्तरिक प्रार्थना है।

बहिन मदालसा नारायण
राज्यपाल भवन, अहमदाबाद

● ● ●

अपने भाईजी चले गये। दो-तीन बार गोरखपुरमे उनके दर्शन पाये। उक्त घटनाको १८–२० वर्ष होते है। मुझपर गहरी छाप पडी थी—भाईजीकी ऋजुता और परम स्निग्ध विनम्रताकी। अपार विद्वत्ताके साथ वह निर्दोष, निष्कलङ्क, निरहकारता देख उनके सामने सिर झुक जाता। सम्पत्तिके साथ वह मधुर सेवाभाव, अथक परिश्रमकी शक्ति, तितिक्षा कितनी लावण्यमयी हो सकती है—इसके दर्शन भाईजीमे पाये।

एक बार उन्हे देखा था स्वर्गाश्रममे भी। वहाँ कुछ समय रही थी। सतोमे भाईजीकी अनन्य श्रद्धा थी और सतोकी भी उनके प्रति अनन्य आत्मीयता थी।

'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने भारतीयोकी जो सेवा की, वह अजोड़ है। उससे आर्य-सस्कृतिका गौरव बढा। वैदिक दर्शनोका तेज निखर गया। सत-साहित्य मुसकरा उठा। 'कल्याण'के वे कीमियाकार कूच कर

गये। कलमके कुशल धनी उठ गये। अब हम उस शारदाके लाडले बेटेको अपने बीच कभी नही पायेगे, यह भान होते ही हृदय विकलतासे भर आता है।

भाईजी सदेह समन्वयमूर्ति थे। मुझ-जैसी अकिंचन, अज्ञानी, अनाश्रमी बहिनपर भी उनका निश्छल वात्सल्य बरसता रहा। भाईजी थे मर्मज्ञ, रसिक भक्त।

बहुमुखी प्रतिभा, उन्मेषशालिनी प्रज्ञा, प्रेमी हृदय एव उदारताके धनी भाईजी चले गये। 'कल्याण'-परिवारके दु खमे मैं शामिल हूँ।

बहिन विमला ठकार
शिवकुटी, अर्बुदाचल (राजस्थान)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी हमारे युगके साहित्यिक जीवनके उन निर्माताओमेसे थे, जिन्होने न केवल अपनी रचनाओके द्वारा ही साहित्यकी सेवा की, वरन् जीवनका कोई भी क्षेत्र ऐसा नही है, जिसमे वे कुछ-न-कुछ हमे देकर न गये हो। उनके उत्तम विचार तथा आदर्श एव उनका व्यक्तिगत जीवन सहस्रोको प्रेरणा प्रदान करेगा और लाखोको भारतीय सस्कृति और सभ्यतामे रुचि पैदा करायेगा। उनका सादा जीवन तथा दु खियोके प्रति सदा सहानुभूति रखनेवाला व्यक्तित्व हमारी नजरोके सामनेसे कभी ओझल नही हो सकेगा। वे 'कल्याण'के द्वारा जो भारतीय सस्कृतिकी सेवा कर गये है, वह उनको सदैव अमर बनाकर रक्खेगी।

चन्द्रभानु गुप्त
लखनऊ

● ● ●

The name of Sri Hanumanprasadji Poddar will remain ever fresh in the memory of his countrymen through the valuable services which he has rendered to the country Through the medium of 'Kalyan' he strengthened the background of Vedic culture and made it popular among millions of Hindus People like him are the ballast of the society in which they live They supply the necessary corrective to the society and nurture it with a stamina which they alone can introduce His death is a great loss not only to the readers of 'Kalyan' but to all those who are proud of their culture and heritage I join his numberless friends in paying him my humble tribute

S K PATIL,
Bombay

[श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम राष्ट्रके प्रति की गयी उनकी बहुमूल्य सेवाओके कारण देशवासियोके मनमे सतत स्मरणीय रहेगा। 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने वैदिक सस्कृतिकी पृष्ठभूमिको सुदृढ बनाया और लाखो हिदुओमे इसका प्रचार किया। उन-जैसे व्यक्ति अपने समाजके मुख्य आधार होते है, वे समाजको यथोचित निर्देश प्रदान करते है और ऐसी आन्तरिक शक्तिसे उसका पोषण करते है, जो केवल उन-जैसे महान् पुरुषोमे ही होती है। उनके निधनसे केवल 'कल्याण'के पाठकोकी ही नही, बल्कि उन सभीकी महान् क्षति हुई है, जिन्हे अपनी सस्कृति और परम्परापर गर्व है। उनके सख्यातीत मित्रोके साथ मै भी उन्हे अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

एस० के० पाटिल
बम्बई]

● ● ●

हृदयसे अत्यन्त निकट होते हुए भी मै भाई हनुमानप्रसादजीको वास्तवमे दूर-दूरसे ही देखता-जानता रहा। बहुत वर्ष बीत गये, एक बार भाई हनुमानप्रसादजीके साथ मै गायोके लिये प्रचुर घासकी खोजमे निकला था और हमलोग तत्कालीन ग्वालियर राज्यान्तर्गत शिवपुरकलाँतक पहुँचे थे। वे दिन मुझे ज्यो-के-त्यो याद है। कितनी लगन थी भाई हनुमानप्रसादजीमे गो-सततिकी सेवा करनेकी—उस अकालके समयमे गोमाताकी प्राण-रक्षा करनेकी।

जहाँतक मैने समझा है, भाई हनुमानप्रसादजीमे भक्ति, ज्ञान, कर्म—तीनोका समन्वय था। वे भक्तिसे ओत-प्रोत थे, यह उनकी किसी भी रचनासे जाना जा सकता है। वे विशेष पण्डित थे, इसका प्रमाण 'कल्याण'के विशेषाङ्कोमे मिल सकता है और वे कल्याणकारी कर्ममे तो प्रतिक्षण लीन रहते ही थे। उनके स्वभावकी सरलता, उनकी सौम्यता, उनकी करुणा—सब अनुकरणीय थी। वे विनय और नम्रभावके तो अवतार-से थे। उनका सेवा-भाव अनुपम था। कीर्ति-प्रसिद्धिकी कामनाने उनका स्पर्श भी किया हो, ऐसा नही लगता। भाई हनुमानप्रसादजीके निधनसे सनातनधर्मका एक स्तम्भ उठ गया। जैसे गोमाताके विषयमे भले-भले लोगोकी बुद्धि तर्क-वितर्कसे पीडित होती रहती है, वैसे ही धर्मके नामसे भी कई सज्जन नाक-मुँह सिकोडते देखे गये है। आजके युगमे अन्ध-परम्परा तो नही चल सकती, पर किसी भी कारणसे धर्मके प्रति आस्थाका उठना हितकर नही हो सकता। भाई हनुमानप्रसादजीका कार्य-कलाप धर्मके प्रति आस्था बढानेवाला था।

हीरालाल शास्त्री
अध्यक्ष—वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

● ● ●

परम भागवत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोकगमनसे सनातनधर्मका जबरदस्त पुरस्कर्ता, कल्याण-पथका पथिक और मार्गदर्शक, प्रगतिशील हिंदू-धर्मका जाग्रत् पृष्ठपोषक और भारतीय राष्ट्रीय समाजका एक प्रबुद्ध नागरिक उठ गया। वे ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सहयोगी और उसके बाद उनकी भगवद्भक्ति-परम्पराके सचालक रहे। उनके निधनसे मुझे आज इन दोनो महानुभावोका अभाव एक साथ बुरी तरह खटक रहा है। लगभग ४५ वर्षोसे मेरा उनका स्नेह-सम्बन्ध रहा। उनके जैसे सरल, सहृदय, परदुखकातर, निरभिमानी विरले ही होते है। वङ्ग-भङ्ग-आन्दोलनके दिनोमे वे कलकत्तेके अपने अन्य समवयस्क राजस्थानी मित्रोके साथ ब्रिटिश सरकारके कोप-भाजन हुए थे। धनिक परिवारके होते हुए भी उन्होने लक्ष्मीकी अपेक्षा नारायणकी सेवाको जीवनमे सर्वाधिक महत्व दिया। कई पुस्तके लिखी। हिंदू-धर्मका उनका अध्ययन गहरा था। वे जो कुछ लिखते, उसपर भगवान्के प्रति निष्ठाका रग चढा रहता। राजस्थानी ही नही, सारे हिंदू-समाजमे उनके प्रति स्नेह, श्रद्धा, आदर रखनेवालोकी सख्या कम नही है। उन सभीको आज यह अनुभव हो रहा है कि हमारा एक सच्चा सखा, आप्त पथदर्शक ससारसे चला गया। उनके निश्छल और धार्मिक जीवनकी स्मृति और स्फूर्ति हमारे जीवनको श्रेयोऽर्थी बनानेमे सहायक हो।

हरिभाऊ उपाध्याय
गाधी-आश्रम, हटुडी (अजमेर)

● ● ●

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्पर्कमे आनेका मुझे जब भी अवसर मिला, तब उनके निस्वार्थ और आत्मीयता तथा उदारतासे भरे व्यवहारका मेरे मनपर बहुत प्रभाव पडा। वे एक निस्पृह समाजसेवी व्यक्ति थे। गोरखपुर, देवरिया, बस्तीके बाढ-पीडित क्षेत्रोकी निर्धन जनताको निशुल्क कम्बल-भोजन-वितरण तथा आवाससे बराबर सहायता किया करते थे। उन्होने कुष्ठ-आश्रम तथा अनेक सामाजिक सस्थाओकी स्थापना तथा सचालन-कार्य किया। इतना सब करते हुए भी उनमे अभिमान तथा ख्याति-प्राप्तिकी कोई लालसा नही थी।

श्रीपोद्दारजी सादे जीवन और उच्च विचारके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उन्होंने समाज-सेवा और भगवत्कृपाके अतिरिक्त ससारमे किसी बातकी कामना नही की। उन्होंने साधु-जीवन ही व्यतीत किया।

उन-जैसे नि स्पृह और परम उदार समाजसेवीके पुनीत कार्य लोगोके लिये सदैव ही अनुकरणीय रहेगे।

—चौधरी चरण सिह
लखनऊ

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरा अपने राजनीतिक जीवनमे सामाजिक तथा धार्मिक पक्षको लेकर सम्पर्क रहा है।

श्रीभाईजी गीताप्रेसके आध्यात्मिक प्रकाशन और 'कल्याण'के सम्पादक ही नही, वरन् प्राण थे। उन्होंने गीताप्रेस एव 'कल्याण'द्वारा भारतीय सस्कृतिको देशके कोने-कोनेकी जनतामे फैलाया तथा विदेशमे भी इसका प्रचार किया। इतना ही नही, उन्होंने प्राकृतिक और दैवी आपदाओके समय गोरखपुर जनपदकी अपार सेवा भी की। धार्मिक जगत्मे उनके महान् सुकृत्य श्रद्धापूर्वक स्मरण किये जायेगे।

उनके व्यावहारिक आदर्श और यथार्थ सद्गुण भविष्यमे आनेवाली पीढीके लिये ज्योति स्वरूप मार्गदर्शक होगे।

श्रीमती सुचेता कृपलानी
लखनऊ

● ● ●

When I was the President of the Hindu Mahasabha, I had the privilege to come into close contact with Sri Hanuman Prasadji Poddar It was my great privilege to come into contact with that selfless devotee of our culture and tradition It was my privilege to go to the Gorakhnath Temple, of which my colleague, Mahant Digvijaynathji, was the custodian, and it was also my privilege to go to the Gita Press, which has acquired the position of universal interest The Gita Library comprised many editions of Bhagvadgita and I remember that the Gita Press had already issued more than six million copies of the Bhagavadgita The number must have now reached the figure of many crores

The manner in which the Gita Press published and broadcast the greatest book in our ancient religion and preached the eternal lessons uttered by our Lord has strengthened the faith and reverence of our people

Actually due to the devotion of Sri Hanumanprasadji we realized that Gita was made not only for monks and ascetics but, it was meant for every hearth and home in this country

We hope that the 'Kalyan' will be preaching the truths of the Gita, Ramayana and the great Upanishads and will help to build up the moral and spiritual character of our people May the great soul of our true friend, Sri Poddarji, continue to inspire our men and women and help them to realize the great truths of our eternal religion and culture

N. C CHATTERJEE
Chairman, Committee of Review of Rehabilitation
Work in West Bengal

[जब मैं हिन्दू महासभाका अध्यक्ष था, मुझे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निकट सम्पर्कमे आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपनी सस्कृति एव परम्पराके उन नि स्वार्थ उपासकके सम्पर्कमे आना मेरे लिये एक बडे सौभाग्य-का विषय था। यह मेरा सौभाग्य था कि मै गोरखनाथ मन्दिरमे गया, जिसके सरक्षक मेरे सहयोगी महन्त श्रीदिग्विजयनाथ थे। और यह भी मेरे सौभाग्यकी बात थी कि मै गीताप्रेस गया, जिसने सार्वभौम प्रियपात्रताका स्थान प्राप्त कर लिया है। गीता-पुस्तकालयमे भगवद्गीताके अनेक सस्करण विद्यमान थे और मुझे स्मरण है कि गीताप्रेस उस समयतक ही भगवद्गीताकी साठ लाख प्रतियाँ प्रकाशित कर चुका था और अब तो वह सख्या कई करोड हो गयी होगी।

जिस ढगसे गीताप्रेसने हमारे प्राचीन धर्मके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थका प्रकाशन एव प्रसारण किया और हमारे प्रभुके श्रीमुखसे निस्सृत शाश्वत शिक्षाओको प्रचारित किया, उसने हमारे देशवासियोको श्रद्धा और विश्वासकी दृढता प्रदान की है।

वस्तुत श्रीहनुमानप्रसादजीकी निष्ठासे हमने जाना कि गीताकी रचना केवल साधुओ और सन्यासियोके लिये ही नही हुई थी, अपितु वह इस देशके घर-घरके लिये प्रणीत हुई थी।

हमे आशा है कि 'कल्याण' गीता, रामायण और महान् उपनिषदोमे निहित सत्यका उपदेश करता रहेगा और हमारी जनताके नैतिक तथा आध्यात्मिक चरित्र-निर्माणमे सहायक होगा। हमारे सच्चे मित्र श्रीपोद्दारजीकी महान् आत्मा हमारे नर-नारियोको प्रेरणा देती रहे और अपने सनातन धर्म और सस्कृतिके महान् तथ्योका साक्षात्कार करनेमे सहायता करती रहे—यही प्रार्थना है।

एन्० सी० चटर्जी
अध्यक्ष—पश्चिम बगाल पुनर्वास-कार्य-समीक्षा-समिति]

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके निधनसे हिंदू-धर्म और हिंदू-सस्कृतिका एक महान् अध्वर्यु उठ गया। विश्वमे हिंदू-धर्मके प्रचार तथा प्रसारके लिये श्रीपोद्दारजीने आजीवन प्रयत्न किया, जो हमारे राष्ट्रीय इतिहासमे सदैव सुरक्षित रहेगा। श्रीपोद्दारजी सादा जीवन और उच्च विचारकी जीती-जागती प्रतिमा थे। उन्होने अपनी स्वार्पण-साधनासे गीताप्रेस और 'कल्याण'को एक महान् सस्थाका रूप दे दिया। उनके देहावसानसे राष्ट्रकी अपूरणीय क्षति हुई है। उनके जीवन-कार्यको आगे बढाकर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि व्यक्त कर सकते हैं।

अटलबिहारी बाजपेयी
अध्यक्ष—भारतीय जनसघ

● ● ●

आदरणीय भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके देहावसानसे आध्यात्मिक जगत् एव हिंदू-समाजकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति नही हो सकती। सम्पूर्ण देश तथा विदेशोमे भी हिंदूधर्मके महान् सिद्धान्तोके प्रचार एव प्रसारमे, सत्साहित्यके प्रकाशन तथा प्रसारमे गीताप्रेसके माध्यमसे उन्होने जो सेवा की है, वह अनेको सस्थाएँ मिलकर भी नही कर सकेगी। गीतोक्त निष्कामकर्मके वे मूर्तिमान् स्वरूप थे।

व्रजनारायण व्रजेश
अध्यक्ष—अखिल भारत हिंदू-महासभा

● ● ●

श्रद्धेय श्रीभाईजीका परलोकगमन मानवमात्रकी अपरिमित हानि है। एक असामान्य भगवद्भक्त, कर्मयोगकी साकार मूर्ति, करुणाके सागर, विनम्रताकी विभूति, नि स्वार्थ प्रेमके प्रतीक, ज्ञानके गणेश और सेवाके आदर्श उठ गये। हम उनके वियोगकी असह्य वेदनासे पीडित है।

नानाजी देशमुख
मन्त्री—भारतीय जनसघ

● ● ●

श्रीयुत हनुमानप्रसाद पोद्दारजी धार्मिक जगत्के एक उज्ज्वल रत्न थे। वे स्व-धर्म, स्व-सस्कृति और हिंदू-समाजके परम हितैषी एव नि स्वार्थ सेवक थे। 'कल्याण' और गीताप्रेसके द्वारा उन्होने आस्तिकवाद, आध्यात्मिकता एव स्व-सस्कृतिके प्रचार और उसके सरक्षणमे अपना मूल्यवान् योग दिया था। 'कल्याण' और गीताप्रेसके द्वारा की गयी उनकी सेवाएँ भुलायी न जा सकेगी। 'कल्याण'ने भोगवादपर आधारित पाश्चात्त्य सस्कृतिके अभिशापोसे देशवासियोकी रक्षा करनेके लिये प्रचुर उपयोगी साहित्य प्रदान किया है, जिसका एकमात्र श्रेय श्रीपोद्दारजीको है। वे स्वयमे सस्था थे।

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि स्वतन्त्र भारतके माथेसे गो-हत्याका कलङ्क धोया जाय। गोरक्षाके महान् कार्यमे उनका सक्रिय सहयोग गो-भक्त जनताके लिये वहुत वडा वरदान था। क्या हिंदू-समाज श्रीपोद्दारजीके गोरक्षासम्वन्धी विचारोको मूर्त्तरूप दे सकेगा?

ईसाई मिशनरियोकी राष्ट्र-विरोधी प्रगतियोके सम्वन्धमे भी वे वडे चिन्तित रहा करते थे। श्रीपोद्दारजी यह जानते थे कि विदेशी मिशनरियोके धर्म-परिवर्तनसम्वन्धी कुचक्रोसे हिंदू-समाजकी भारी क्षति हो रही है।

मेरे साथ पत्राचारमे उन्होने अपनी इस चिन्ताको व्यक्त किया था। आर्यसमाज गो-हत्यावदी-आन्दोलनमे सक्रिय भाग लेता हुआ एव विदेशी मिशनरियोके देश-द्रोहात्मक कुचक्रोसे सदैव हिंदू-समाजको जगाता हुआ अपने कर्त्तव्यका पालन करता रहा है। श्रीपोद्दारजीके निधनसे आर्य-जगत् अपने एक वडे सहायकसे वञ्चित हो गया है।

रामगोपाल शालवाले
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
नयी दिल्ली

● ● ●

भारतवर्षका अतीत समृद्धिशाली एव गरिमामय रहा है। विविध परिस्थितियोसे पूर्ण अपने इतिहासके दीर्घ प्रवाहमे भी इस देशकी सस्कृतिकी देनमे एक एकता एव शक्ति सनिहित है। जव कभी भी विदेशी प्रभाव अथवा प्रतिकूल सस्कृतियोने चुनौती दी, उनसे अभिभूत होनेके स्थानपर उसने उन्हे आत्मसात् करनेकी चेप्टा की। ऐसे सभी सघर्षोकी परिणति मानवीय आत्माके निमित्त नये समन्वय तथा उपलब्धिके नये स्तरोके रूपमे हुई।

जव भारत विदेशी शासनके अन्तर्गत आया, यह आशङ्का थी कि हमारी सस्कृति पश्चिमी सस्कृतिके प्रभावमे लुप्त हो जायगी। हमारे इतिहासके ऐसे सकटपूर्ण क्षणोमे दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न महापुरुषोका अवतरण हुआ। उन्होने पुन एक वार ससारको स्मरण कराया कि हमारे महात्माओ एव ऋषियोका तत्व-ज्ञान अति प्राचीन कालकी भाँति आज भी उतना ही ठोस है। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन समर्पित जीवनवाले कार्यकर्त्ताओकी श्रेणीमे आते है, जिन्होने सास्कृतिक नवचेतना जाग्रत् की और हमारे आध्यात्मिक मूल्यवान् तथ्योको आधुनिक शव्दावलीमे व्यक्त किया।

श्रीपोद्दारजी युवावस्थामे क्रान्तिकारियोके प्रभावमे आये और भारतीय स्वातन्त्र्य-सग्राममे कूद पडे। स्वातन्त्र्य-सैनिकके रूपमे क्रान्तिकारी आन्दोलनमे सक्रिय भाग लेनेके कारण वे जेल गये और बगालसे निष्कासित कर दिये गये।

शनै-शनै श्रीपोद्दारको यह विश्वास होने लगा कि लोगोके नैतिक एव आध्यात्मिक पुनरुत्थानके बिना राजनीतिक स्वतन्त्रताका कोई अर्थ नही होगा। वे धर्मोन्मुख हो गये और उन्होने सुप्रसिद्ध मासिक 'कल्याण'का सम्पादन एव प्रकाशन आरम्भ किया। उनके निर्देशनमे गीताप्रेस तथा 'कल्याण' हमारी राष्ट्रीय सस्थाएँ बन गयी, जिन्होने भारतके सदेशको देशकी सीमा पारकर विश्वभरमे करोडो लोगोतक पहुँचाया है।

श्रीपोद्दारजी सस्कृत, अग्रेजी तथा अन्य अनेक भारतीय भाषाओके भी अच्छे ज्ञाता थे। उन्होने हमारे धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थोका सरल एव सुबोध भाषामे अनुवाद किया-कराया तथा उन्हे सामान्य जनके लिये साध्य मूल्यमे उपलब्ध किया। मोटर गाडियोद्वारा उन्होने इन प्रकाशनोको सुदूरवर्ती नगरो एव गाँवोतक पहुँचाया। धार्मिक पुस्तकोके प्रकाशनमे प्रमुख होनेके कारण उन्होने प्रकाशन-क्षेत्रमे क्रान्ति ला दी। उन्होने अपने प्रकाशनोको व्यापारिक सिद्धान्तोकी दृष्टिसे नही, बल्कि ज्ञान और विद्याका विस्तार करनेवाले साधनोके रूपमे देखा।

जीवनमे श्रीपोद्दारजीने आत्मोत्सर्ग और त्यागसे एक ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया। ससारकी भव्य उपलब्धियो तथा सम्मानकी ओर ध्यान न देकर उन्होने सतका जीवन व्यतीत किया। सास्कृतिक मूल्योके पुनरुद्धार तथा जन-समाजकी आध्यात्मिक उन्नतिकी दिशामे उनका अमूल्य सहयोग सदैव गर्व एव कृतज्ञताके साथ स्मरण किया जायगा।

सूरज भान
कुलपति, पजाब विश्वविद्यालय

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हिंदी-भाषियो और दूसरोके लिये भी सदा स्मरणीय रहेगे। 'कल्याण'का प्रवर्तन और गीताप्रेसका सवर्द्धन करके उन्होने धार्मिक साहित्य सभीके लिये सुलभ कर दिया—यह एक बहुत बडी घटना है। सच तो यह है कि पोद्दारजी एक सस्था हो गये थे और यद्यपि आज वे सशरीर नही है, तो भी उनका काम जीवित है। यह बहुत बडी उपलब्धि है।

मुझे श्रीपोद्दारजीसे मिलनेका सौभाग्य कभी प्राप्त नही हुआ, किंतु मै उनकी निर्भीकताका कायल हूँ। राष्ट्रपिता महात्मा गाधीके प्रति अगाध श्रद्धा और प्रीति रखते हुए भी उनके ऐसे विचारोकी, जो भारतीय परम्पराके अनुकूल नही थे, उन्होने समय-समयपर 'कल्याण'मे आलोचना करनेमे सकोच नही किया। यह मामूली साहसका काम नही था।

प्रभुसे प्रार्थना है कि पोद्दारजीकी कृति अक्षुण्ण रहे और उनकी कीर्ति चिरस्थायी।

सत्येन्द्रनारायण अग्रवाल
कुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय

● ● ●

भाई हनुमानप्रसादजीसे मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना और घरेलू रहा है। उनसे मैंने पढा भी है। हमारे परिवारके साथ उनका व्यापार-धधा भी चलता रहा। समय बदला, पूर्व-पुण्य जगे और दुनियादारी, व्यवहार और व्यापार छोडकर वे सेवामे लग गये। उनके विचारोमे प्राचीनतम धर्मशास्त्र और आधुनिकतम विज्ञान दोनोका पूरा मेल था। विनोबाजी—जैसे आधुनिकतम विचारोवाले सत्पुरुषपर भी उनकी अपार श्रद्धा थी। साहित्यकी उनकी

अखण्ड साधना थी। मैं उनका पुरुषार्थ देखता हूँ तो चकित रह जाता हूँ। 'कल्याण'-जैसे मासिक पत्रकी, जिसमे नया विज्ञान शायद ही मिले, एक लाख पैंसठ हजार प्रतियाँ प्रतिमास प्रकाशित होना भारी पुरुषार्थ माना जायगा। गीताप्रेसकी पुस्तकोकी घर-घर पहुँच, इतनी बिक्री और कीमत भी इतनी कम—इतनी सस्ती कि जिसका मुकाबला न 'सस्ता-साहित्य-मण्डल' कर पाया, न 'सर्व-सेवा-सघ'—सचमुच प्रशसनीय है।

भाई हनुमानप्रसादजी एक आत्मनिष्ठ पुरुष थे। हमेशा आत्मामे लीन रहते थे। सतत १६ से १८ घटेतक काम करना उनका नित्य-नियम था। कामके अलावा अन्य कोई विश्राम होता है, यह उनको मालूम ही नही था। गोरक्षा-आन्दोलन चला तो उसमे अधिकांश आर्थिक भारकी व्यवस्था भाई हनुमानप्रसादजीने की। वे नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे। उनका जीवन त्याग-तपस्यामय रहा।

राधाकृष्ण बजाज
अध्यक्ष—सर्व-सेवा-सघ प्रकाशन,
वाराणसी

● ● ●

Sri Hanuman Prasad Poddar was an old friend of mine He has rendered unique services in the spread of religious literature His passing away has distressed me greatly

G D BIRLA

[श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मेरे एक पुराने मित्र थे। उन्होंने धार्मिक साहित्यके प्रचारके क्षेत्रमे अद्वितीय सेवाएँ की हैं। उनके निधनसे मुझे बहुत दु ख हुआ है।

घनश्यामदास बिरला]

● ● ●

पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजीके जीवनकी विशिष्टताओ एव दैवी गुणो—करुणा, स्नेह आदिसे सम्बन्धित घटनाओंके बारेमे लिखना अत्यन्त कठिन है।

मैं उनके सम्पर्कमे लगभग ३० साल पहले आया और तभीसे उनका मेरे ऊपर अगाध प्रेम और स्नेह रहा। वैसे हमारे पूरे बिरला-परिवारका उनसे निकटका सम्बन्ध रहा है।

श्रीहनुमानप्रसादजी सदैव इस बातका विशेष ध्यान रखते थे कि सामनेवालेको किस बातसे प्रसन्नता होगी। मिलनेवालोके मनमे कोई कष्ट या व्यथाकी अनुभूति न हो, वे यही सोचते थे। सारे धर्मोको प्रभुका स्वरूप मानकर —उन्हे एक ही सत्यको उपलब्ध करानेवाले विभिन्न मार्ग समझकर वे उनके प्रति समान आदरभाव रखते थे।

अपने स्वरूपको उन्होने सदा गौण ही रखा। उनका व्यक्तित्व तथा सरलता, कोमलता, पर-दु खकातरता आदि गुण सर्वविदित हैं। हिंदूधर्म और सस्कृतिकी 'कल्याण द्वारा उन्होने जो सेवा की, वह लोकविश्रुत है तथा वह चिरस्मरणीय रहेगी। गीताप्रेससे प्रकाशित रामायण और गीताके द्वारा जो जन-कल्याण हुआ है, वह शब्दोमे व्यक्त नही किया जा सकता।

उनके परलोक-गमनमे देशकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कठिन है।

बसन्तकुमार बिरला
कलकत्ता

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे एक ऐसी रिक्तता आ गयी है, जिसकी पूर्ति होना सर्वथा असम्भव है। नि स्वार्थ एव निष्ठायुक्त सेवाद्वारा वे गीताप्रेस, 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रूपमे अपने स्थायी स्मारक छोड गये है, जो भारतीय सस्कृति और 'इडॉलाजी' (भारतीय विद्या)के क्षेत्रमे और अधिक शोध-कार्यके निमित्त जाज्वल्यमान आदर्श प्रस्तुत करते रहेगे।

दीन-हीनोके प्रति स्नेह एवं प्रेम, धार्मिक सहिष्णुता तथा मानव-सेवाके उनके गुण चिरस्मरणीय रहेगे। भारत तथा भारतीय जन-मानसके गौरवको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये हमे उनके इन गुणोका दृढता तथा साहसके साथ अनुसरण करना चाहिये।

भारतीय धर्मशास्त्रोमे निर्धारित परम्परागत पवित्र सिद्धान्तोके प्रचारमे अपने अपरिमित ज्ञानके फलस्वरूप किये गये कठिन एव अथक परिश्रमके कारण श्रीपोद्दारजी सदैव स्मरण किये जायँगे।

डा० सर सुरेन्द्रसिह मजीठिया
सरदारनगर, गोरखपुर

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके साथ मेरा बहुत ही पुराना परिचय है। उनके जीवन और व्यवहारको मुझे निकटसे देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिससे मेरा जीवन अप्रत्यक्ष रूपसे अवश्य ही प्रभावित हुआ है।

श्रीभाईजी मानवताकी साक्षात् मूर्ति थे। उनके माध्यमसे धार्मिक, सास्कृतिक और लोककल्याणकारी साहित्यकी जो त्रिवेणी प्रवाहित हुई, उससे कोटि-कोटि मानवोको प्रेरणा और आन्तरिक शान्ति मिली। जाति, धर्म, देश और राष्ट्रीयताकी सकुचित परिधि उन्हे बॉध न सकी। प्राणिमात्रके प्रति उनकी आत्मीयताका प्रवाह अजस्र था। जाने-अनजाने, देशी और विदेशी अनेक व्यक्तियोको उनका अनुदान प्राप्त होता रहा है। सच्चे आध्यात्मिक पुरुष होनेके कारण वे सदैव आत्म-प्रशसा तथा आत्म-विज्ञापनसे दूर रहे। उनके सभी सेवाकार्य सहज-रूपसे चलते रहे।

'कल्याण' तथा गीताप्रेसके अनेक प्रकाशनोसे भारतीय सस्कृति और धर्म-भावनाका प्रसार देश-विदेशमे फैला और उसका श्रेय केवल आपको ही है। भाईजीके विना 'कल्याण'की कल्पना करना भी मानो कठिन-सा प्रतीत होता है। त्यागकी महान् गरिमाको सुरक्षित रखकर जिस प्रकारकी नि स्पृह सेवाका उदाहरण आपने अपने जीवनके अन्ततक प्रस्तुत किया, वह किसी अन्य व्यक्तिके द्वारा असम्भव है।

श्रीभगवान् और उनकी भक्तिके प्रति उतनी अटूट सेवा दुर्लभ ही है। इन शब्दोके साथ मै अपनी श्रद्धाञ्जलि श्रीभाईजीके श्रीचरणोमे अर्पित करता हूँ।

पद्मपति सिहानिया
कानपुर

● ● ●

श्रीभाईजीके बारेमे जितना कुछ कहा जाय, थोडा है। वे एक महापुरुष थे एव अपना समय भगवान्की आराधना एव उनकी चर्चामे लगाते थे। उनके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे भी मिलता रहता था। कलिकालमे ऐसी विभूतियाँ कम है। उन्होने देशकी जो अमूल्य सेवा 'कल्याण'के माध्यमसे की है, उसे कोई भी भुला नही सकता। उनका निरपेक्ष भाव सर्वविदित है। उनके बीच-बचावसे कई व्यक्ति अपने घरेलू मामलोको भी सुलझा-कर विवादग्रस्त स्थितियोको दूर कर सकनेमे समर्थ हुए है।

वे सादा जीवन, उच्च विचारके प्रतीक थे—यदि ऐसा कहे तो अत्युक्ति नही होगी। प्रेम, सादगी, सरलता एव सद्भावनासे रहकर ईश्वरमे आस्था रखनेवाले ऐसे व्यक्ति कम ही मिलते है।

श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ जिन उद्देश्योको समक्ष रखकर निकाला जा रहा है, उनकी पूर्ति हो—यही कामना हे।

नरसिंहदास बाँगड
कलकत्ता

● ● ●

भाई श्रीहनुमानप्रसादजीके साथ मेरा परिचय उस समयसे है, जब वे एक तरफ तो कलकत्तामे व्यापार करते थे और दूसरी तरफ क्रान्तिकारी लोगोके कामोमे सक्रिय भाग लेते थे—उनकी मदद करते थे। १९१६मे सरकारकी दृष्टि—कोपदृष्टि उनकी गतिविधियोपर पडी और उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया। वृत्ति उनकी सदा ही सात्विक थी, लेकिन भगवद्-भक्तिका चस्का उनको जेलमे लगा। थे वे एक व्यापारी, बनने गये देशभक्त और निकले ईश्वरभक्त होकर।

भाईजीका प्राय पूरा जीवन ही परमार्थमे लगा। हिदू-शास्त्रोके प्रकाशन और प्रचार-प्रसारका काम जितना उन्होने किया, उतना दूसरे किसीने नही किया है और यह इतने सुलभ मूल्यपर हुआ कि घर-घरमे ग्रन्थ पहुँच गये। इसका सारा श्रेय श्रीभाईजीको ही है।

कोई भी दीन-दुखी उनके पास आता था या किसीका कोई पत्र ही आ जाता था तो वे उसे निराश नही करते थे। आर्थिक दृष्टिसे भाईजी कोई धनी नही थे, लेकिन दीन-दुखियोके लिये वे कुवेरके समान थे। परदुखकातर, मिलनसार, हँसमुख, उदारमना, शास्त्रोके ज्ञाता और पैनी बुद्धिवाले व्यक्ति थे वे। सवत् १९९६के अकालमे मेरा भी उनके साथ राजस्थानमे भ्रमणका काम पडा था। नजदीकसे देखनेपर पता लगा कि वे जो काम करते है, उसे कितनी दृढतासे करते है। भाईजीके परलोक-गमनसे अनेक लोगोका सहारा टूट गया है, वे अपनेको निराश्रित अनुभव करते है। भाईजीके पार्थिव शरीरका अन्त हुआ है, लेकिन उनका यश और कीर्ति जगत्मे लोगोको सदा-सदाके लिये प्रेरणा देती रहेगी। उनके प्रति मेरी शत-शत श्रद्धाञ्जलि।

भागीरथ कानोडिया
कलकत्ता

● ● ●

परम भागवत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पुण्य स्मृतिमे श्रद्धासुमनाञ्जलि-ग्रन्थ-प्रकाशनका आपका सत्सकल्प सर्वथा सराहनीय ही नही, अपितु लोक-कल्याणार्थ अति आवश्यक भी है। अज्ञान, मोह, विभ्रम तथा आसुरी वृत्तियोके वन्धनोसे उवरनेके लिये ज्ञान एव भक्तिकी गङ्गामे डूवना पडता है। निश्चय ही ईश्वरीय प्रेरणासे यथोचित समयपर दैवी सम्पदाओमे विभूपित महात्मा पृथ्वीपर अवतरित होकर अपने जीवन-वृत्तरूपी गङ्गाको प्रवाहित करते है। दिव्य-विभूतिपाद पूज्य पोद्दारजी भी उसी परम्पराकी एक महत्वपूर्ण दीप्तिमान् कडी थे। उनके रूपमे श्रीमद्भगवद्-गीताका स्थितप्रज्ञ, भगवत्प्रियभक्त मानो सशरीर दिशाओको आलोकित कर रहा था। 'कल्याण'के रूपमे उनका कृतित्व समस्त हिदू-धर्मानुयायियोको किवा मानवमात्रको कल्याण-मार्गका शाश्वत प्रदर्शन करता रहेगा।

वीस वर्ष पूर्व पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजीने मुझे प्रथम साक्षात्कारमे ही अपने व्यक्तित्वसे अभिभूत कर दिया था। तदुपरान्त मैं उनका सतत स्नेह-भाजन वना रहा, यह मेरा सौभाग्य है। वे मेरे परम श्रद्धेय रहे। उनको स्मरण करनेकी विधि हे—उनके सदुपदेशोके अनुसार जीना, और उसका अर्थ है—अपनेको ही लाभान्वित करना। वे भगवदाकार होकर औरोके लिये मोक्ष-प्रणाली प्रशस्त कर गये हे। सनातनधर्मके साथ ही श्रीपोद्दार-जीका विमल यश चिरस्थायी वना रहेगा।

गिरधारीलाल मेहता
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार परम भागवत एव निष्काम कर्मयोगी महापुरुष थे। उनका सारा जीवन श्रीराधा-माधवकी भक्तिसे भरा था। साहित्य-सेवा, समाज-सेवा, राष्ट्र-सेवा, गीताप्रेसकी सेवा, 'कल्याण'-का सम्पादन आदि सभी कार्य श्रीभाईजीके लिये भक्ति-भावनाके ही एक अङ्ग थे।

धर्म एव सस्कृतिकी जो अमूल्य सेवा श्रीभाईजीने की है, उसके लिये सम्पूर्ण मनुष्य-जाति उनकी ऋणी रहेगी। आजके युगमे धार्मिक भावोका प्रचार करना वहुत कठिन है। इस कार्यको एक साधक, त्यागी एव चरित्रवान् व्यक्ति ही कर सकता है। श्रीपोद्दारजीके निर्मल चरित्र, साधु-स्वभाव, परोपकार-वृत्ति एव निरभिमानताके कारण ही 'कल्याण'की लोकप्रियता वढती रही।

श्रीभाईजी सवके साथ आत्मीयतासे मिलते थे। उनके स्नेहभरे स्वभावको एव सरल व्यक्तित्वको किसीके लिये भी भुलाना असम्भव है। उनका अपना व्यक्तिगत जीवन कुछ भी नही रह गया था। सारा जीवन ही—उनका उठना-वैठना, सोना-जागना—सभी प्रभुको समर्पित था। ऐसे समर्पित-जीवनको पाकर हमारा देश सचमुच गौरवान्वित हुआ।

श्रीभाईजीका पावन चरित्र एव उनकी धार्मिक अटूट निष्ठा हमारे लिये प्रकाश-स्तम्भ है। इस समय और भी अधिक आवश्यकता है कि हम सव उनसे सत्प्रेरणा प्राप्तकर अपने जीवनको भक्तिमय, धर्ममय, सेवा-परायण एव लोकोपकारी वनाये। महापुरुषोका चरित्र-गान एक तीर्थयात्रा है। श्रीपोद्दारजीके चरित्रको स्मरण करना, उनके कार्यो एव भावनाओको याद करना अपने जीवनको उन्नत वनाना है।

लक्ष्मीपति सिहानिया
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजी-जैसे महाप्राण व्यक्ति राष्ट्रमे ही नही, अपितु विश्वमे भी दुर्लभ है। हमारे परिवारका तो उनके साथ घनिष्ठ सम्वन्ध था। उनका अभाव सर्वदा खलता रहेगा। भाईजीने समाज एव राष्ट्रको धार्मिक सिद्धान्तोका पालन करनेका आदर्श मार्ग प्रदर्शित किया। हमारे पास शव्द नही है, जिनसे उनकी गुणगाथा पूर्णरूपसे अङ्कित की जा सके।

श्रद्धेय भाईजीका अनेक व्यक्तियोसे सम्पर्क था और वे सभीसे प्रेम करते थे, परतु हम जव भी उनका दर्शन करने जाते थे, तव ऐसा लगता था कि वे हमसे ही सर्वापेक्षा अधिक स्नेह करते थे। यह उनकी महानता थी। उनके दर्शन और साधन-सम्वन्धी उपदेशका श्रवण करके हमारे-जैसे ससारलिप्त जीवोके मनमे भी एक वार शान्ति जरूर आ जाती थी।

वे इतने उदार और दयालु थे कि लोग उनके पास जो भी इच्छा लेकर जाते थे, उसकी पूर्ति हो जाया करती थी।

मेरी समझमे ऐसे दुर्लभ महापुरुष जीवोका कल्याण करने हेतु कभी-कभी ही भगवदिच्छासे ससारमे आते है और भगवदिच्छानुसार कार्य सम्पन्न करके परमधाम चले जाते है।

श्रीभाईजीने जीवोके कल्याणके लिये दृढ निष्ठापूर्वक भगवद्भक्तिका नियात्मकरूपसे प्रचार-प्रसार किया, जिसे अपनाकर हम सहजमे ही अपना कल्याण कर सकते है।

हनुमानप्रसाद धानुका
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजी एक महान् व्यक्ति थे। उन्होने जीवनभर मानव-जातिकी एव हिंदू-सस्कृति और सनातनधर्मकी महती सेवा की हे । वे कई भापाओके ज्ञाता तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे । श्रीभाईजीका साहित्य उनकी स्मृतिको चिरस्मरणीय वनाये रखेगा । ऐसे महान् व्यक्तिकी स्थान-पूर्ति होनी सम्भव नही। मेरे प्रति श्रीभाईजीका जो प्रेम था, वह वरावर याद रहता है।

दामोदर लाल जयपुरिया
वम्वई

● ● ●

श्रीभाईजीके उठ जानेसे भारतीय सस्कृतिका एक महान् व्यक्तित्व उठ गया। वे अपनेमे अकेले थे। उनका स्थायी कार्य उनका जीवन्त स्मारक है। उन्होने धर्म-भारतीकी अतुल सेवा की। उनके अभावको मै व्यक्तिगत क्षति मानता हूँ।

(पद्मश्री) पोद्दार रामावतार अरुण
समस्तीपुर

● ● ●

श्रीपोद्दारजीका नि स्वार्थ सेवाभाव एव तपोनिष्ठ जीवन समाज तथा देशके लिये एक जाज्वल्यमान नक्षत्र-की भाँति रहा। उनके निधनसे हिदूधर्म एव सस्कृतिकी अपूरणीय क्षति हुई हे।

गिरधरदास मूँधडा
कलकत्ता

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार धार्मिक एव आध्यात्मिक प्रेरणाके महान् स्तम्भ थे । उनके परलोक-गमनसे जो अपूरणीय क्षति हुई है, उसकी पूर्ति अभी अथवा वादमे भी कभी कदाचित् ही हो सकेगी। आज हम कितने अकिंचन हो गये हैं। यद्यपि भगवान्के आदेशानुसार उनका नश्वर शरीर इस ससारसे ओझल हो गया है, तथापि मेरा विश्वास है कि उनका आध्यात्मिक स्वरूप सभी आस्तिक एव नास्तिक जनोको समानरूपसे अव भी प्रकाश देता रहेगा।

विश्वेश्वरदास दमानी
मद्रास

● ● ●

पूज्य श्रीभाईजीने अपने द्वारा लिखित तथा सम्पादित साहित्यसे सनातनी समाजको सुसगठित और पुष्ट किया है तथा विदेशोमे भी सनातनधर्मके प्रति लोगोको आस्थावान् वनाया है । श्रीभाईजीके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि उनके साहित्यको पढना, उसपर अमल करना तथा उसके प्रचार-प्रसारके लिये सतत प्रयत्नशील रहना ही है। साहित्य ऐसी चीज है, जिससे मनुष्यमे परिवर्तन आता है। नवयुवकोको चाहिये कि वे श्रीभाईजीके लेखो तथा गीताप्रेमसे प्रकाशित साहित्यकी ओर रुचि रखे। इससे उन्हे जीवनकी प्रत्येक दिशामे सफलता मिलेगी।

ताराचन्द सराफ
प्रधान मन्त्री—सर्वदलीय गोरक्षा महाभियान समिति,
कलकत्ता

● ● ●

श्रीपोद्दारजी बहुत बडे व्यक्तित्वके धनी साधुहृदय पुरुष थे। वास्तवमे, उनमे कुछ दैवी शक्ति थी, जिससे उनकी आकृति अत्यन्त प्रभावकारी और आकर्षक दिखायी पडती थी। जो भी व्यक्ति उनकी ओर देखता, वह अति सम्मान और श्रद्धासे उनके सामने नत हुए बिना नही रह सकता था। दूसरी छाप जो उनकी मुझपर पडी, वह यह थी कि वे सदैव प्रत्येक व्यक्तिकी भरसक सहायता करते थे, चाहे वह उनसे घनिष्ठरूपसे सम्बन्धित हो या न हो। उन्होंने भारतीय धर्म और साधनाके प्रचार-प्रसारके निमित्त महान् सेवाएँ की है।

गजानन्द खेतान
कलकत्ता

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सनातनधर्मकी एक जीती-जागती संस्थाके रूपमे चिरस्मरणीय रहेंगे।

वे उच्चकोटिके विद्वान्, साधक, प्रवचनकर्ता, लेखक, कवि, सम्पादक, सार्वजनिक कार्यकर्ता, नेता और सर्वोपरि सबके सुहृद्, सबके सच्चे अर्थमे 'भाईजी' थे।

उनके द्वारा अगणित लोगोका प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूपसे उपकार हुआ है।

उनकी रचनाएँ वर्तमान पीढीको ही नही, अपितु भावी पीढियोको भी सदा प्रकाश देती रहेंगी।

गो-रक्षा-आन्दोलनके वे प्राण थे। भारतकी अनेक धार्मिक और सार्वजनिक लोकोपकारी संस्थाओको उनसे सक्रिय सहयोग और प्रेरणा मिलती रहती थी। अध्यात्म-विद्याके प्रचार और प्रसारके वे एक महान् शक्तिशाली स्रोत थे।

इन सब बातोसे भाईजी सबके हृदयपर छा गये थे। उनके सम्पर्कमे आनेवाले सभी वर्गोके लोग उन्हे अपना सुहृद् समझकर गौरवका अनुभव करते थे।

वास्तवमे भाईजीका जीवन आदर्श, अनुकरणीय और सफल रहा।

गोविन्दलाल बाँगड़
कलकत्ता

● ● ●

श्रीपोद्दारजी इस कुतर्कग्रस्त एव नास्तिकता-प्रधान युगमे अपने साधना-सिद्ध, शुद्ध, सरल, सात्विक जीवनसे 'कल्याण' और गीताप्रेसके माध्यमसे निष्ठापूर्वक सनातन-धर्म-प्रचारकी दिशामे असाधारण कार्य कर गये है। वे अनन्य हरिभक्तिपरायण परम भागवत थे। उनके रिक्त स्थानकी पूर्ति करनेवाला अब कोई दृष्टिपथमे नही आता। मेरे वे पुराने सत्यस्नेही थे।

झाबरमल शर्मा
भूतपूर्व सम्पादक, 'कलकत्ता समाचार'

● ● ●

भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार गोमाताके परमभक्त थे। उनके लिये मेरे हृदयमे सदा विशेष सम्मान रहा है और यह इसीसे समझा जा सकता है कि सन् १९४३मे प्रकाशित मेरा ग्रन्थ 'ब्रजभाषाका व्याकरण' उन्हींको समर्पित [illegible]। महर्षि मालवीय, राजर्षि टण्डन तथा पोद्दारजीको ही मैंने ग्रन्थ समर्पित किये है। इसीसे समझिये कि [illegible] किस कोटिमे रखता था।

आचार्य किशोरीदास वाजपेयी

● ● ●

श्रीपोद्दारजीका मेरे प्रति गहरा स्नेहभाव था। वे मेरे लिये श्रद्धेय थे। उनके जैसा पावन व्यक्तित्व बहुत कम देखनेमे आता है। अपने सिद्धान्तोको उन्होंने स्वय आचरित करके दिखा दिया था। उनका हृदय नवनीतके समान कोमल था। स्वभाव बालोचित सरल और सबके प्रति मैत्रीपूर्ण, तथा करुणासे आप्लावित। परोपकार-वृत्ति निश्छल और सहज। हरि-भक्तके और लक्षण ही क्या हो सकते है ?

जीवनके अन्तिम दिनोमे काफी दिनोतक उनका स्वास्थ्य अच्छा नही रहा, तथापि वे 'स्वस्थ' थे अर्थात् अपने आपमे स्थित थे। जीवन उनका सतत साधना करते हुए स्थितप्रज्ञका हो गया था। क्रोध और द्वेषको उन्होने जीत लिया था। उनके साथ जिसका किसी बातमे मत नही मिलता, उसके प्रति भी वे मैत्रीभाव रखते थे। भगवद्-भक्ति उनके रोम-रोममे एकरस हो गयी थी। हृदय उनका सरल और सरस था। किसीको दुखी नही देख सकते थे। अन्तरसे करुणाका स्रोत सदा बहता रहता था।

गीताप्रेसके द्वारा उन्होने बडे महत्त्वका काम किया—प्राचीन ग्रन्थोको शुद्ध रूपमे और सुलभ मूल्यमे प्रकाशित-प्रसारित करके। 'कल्याण'का सम्पादन करते-करते वे स्वय 'कल्याणमूर्ति' बन गये थे। भारतीय धर्म और सस्कृतिको उनके देहावसानसे निस्सदेह अपूरणीय क्षति पहुँची है।

मेरे साथ उनका जो स्नेहभाव था, उसे शब्दोमे कैसे व्यक्त करूँ ? लगभग ४५ वर्षोसे मै उनके स्नेहका भाजन रहा। जब 'प्रेमयोग' गीताप्रेसमे छप रहा था, तब मुझे उनका सत्सङ्गलाभ तीन सप्ताहतक मिला था। तबसे हमारी आत्मीयता बढती ही गयी। पिछले दिनो ऋषिकेशमे जब उनसे मिलना हुआ, तब क्या पता था कि वही हमारी अन्तिम भेट होगी। आशा करनी चाहिये कि गीताप्रेस और गीता-भवन तथा अन्य सस्थाएँ उनसे अदृष्ट प्रेरणा लेती रहेगी, क्योकि वे ही उनकी पुण्य-स्मारिका है। मै बन्धुवर हनुमानप्रसादजीको अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

वियोगी हरि

● ● ●

आधुनिक कालमे हिंदू-विचारधारा और सस्कृतिको समुन्नत करने और उसका प्रचार करनेमे जितना काम श्रीहनुमानप्रसादजीने किया, उतना किसी अन्यने नही किया है। वास्तवमे हम उनके बडे ऋणी है और उनके अतिप्रिय उच्चादर्शोको अपने सामान्य ढगसे आगे बढानेका प्रयास करके हम उनके ऋणसे केवल कुछ अशतक मुक्त होनेकी आशा कर सकते है।

प्रो० आर० एन्० दाण्डेकर
भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इस्टीच्यूट,
पूना

● ● ●

श्रीभाईजीके परलोक-गमनसे बडा ही दुखी हुआ हूँ। वे सच्चे अर्थमे धार्मिक महापुरुष थे। उनके चले जानेसे उनका स्थान सदाके लिये रिक्त हो गया हे।

राय कृष्णदास
भारत कला भवन, वाराणसी

● ● ●

श्रीभाईजी मुझ-जैसे कितनोको अनाथ करके चले गये, इसका लेखा सख्याकी परिधिमे नही आता। क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ? आज हिंदी-हितैषियोका सचमुचका सरक्षक उठ गया। श्रीभाईजी भारतके सचेतक, सरक्षक एव पूज्य नेता थे।

जवाहरलाल चतुर्वेदी
सूरसागर कार्यालय, मथुरा

● ● ●

श्रीभाईजी इस विकट कलिकालमे एक दिव्य पुरुष थे—एकदम निरीह, निर्लिप्त तथा निस्सङ्ग। धर्मकी आत्मा उनके विविध कार्योमे अभिव्यक्त होती थी। उनका जीवन अध्यात्ममार्गपर चलनेवालोके लिये प्रकाशपुञ्ज था। भगवान् हमे उनके जीवनके आदर्शको समझने तथा आचरणमे उतारनेकी क्षमता प्रदान करे।

पं० बलदेव उपाध्याय
वाराणसी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तको तथा 'कल्याण' मासिक पत्रके द्वारा पवित्र प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सनातनधर्मकी जो अमूल्य सेवाएँ की है, वे चिरस्मरणीय रहेगी। जीवनके अन्तिम वर्षोमे श्रीपोद्दारजीने भारतीय सस्कृतिके आधार एव मूलस्रोत वेदोकी रक्षाके उद्देश्यसे उसके अध्ययन-अध्यापनके लिये 'भारतीय चतुर्धाम वेदभवन न्यास'की स्थापनामे बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया तथा उसके कार्यको सँभाला और आगे बढाया। इससे उनकी दूरदर्शिता एव भारतीय सस्कृति तथा धर्मकी रक्षाके प्रति प्रगाढ प्रेम प्रदर्शित होता है। यद्यपि श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दारका पार्थिव शरीर अब नही रहा, तथापि उनकी कृति अमर रहेगी। श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दारका हृदय भगवद्भक्तिसे ओत-प्रोत था, अत वे स्वय कृतकृत्य थे। उनके जीवनका अधिकाश भगवद्भक्तिके प्रचार तथा लोककल्याणके स्थायी पुण्यकार्योमे बीता। उन्होने जो कुछ किया, उससे परमार्थ-पथके पथिकोका सदा पथ-प्रदर्शन होता रहेगा तथा प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी।

विद्यादेवी
सचालिका—श्रीभारतधर्म महामण्डल,
वाराणसी

● ● ●

पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजीकी स्मृति आते ही मन सहसा कह उठता है कि भगवान्‌ने स्वय ही श्रद्धेय पोद्दारजीके रूपमें जन्म लेकर धर्मसंस्थापन किया है—'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।' आधी शताब्दीके लगभग 'कल्याण मासिकके द्वारा पुण्यश्लोक पुरुषने जो अध्यात्मका संवर्धन किया, वह सर्वविदित है। आज जहाँ कहीं भी धर्मकी [illegible] है, वह 'कल्याण'के प्रकाशके रूपमें श्रीपोद्दारजीकी धर्मध्वजा कीर्ति प्रसृत है। उनकी सौम्य मूर्ति तथा [illegible] विश्वासकी स्मृति हम सबको आह्वान करती है कि उनके प्रशस्त किये [illegible] आगे ले जायँ जिससे [illegible] भारत फिरसे [illegible] न फँस जाय।

डा० [illegible]
[illegible]

● ● ●

श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी पोद्दार चले गये। उनके जानेसे एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है, जिसकी पूर्ति कदापि नही हो सकती। उनकी-सी आत्मीयता कहाँ मिलेगी ? वास्तवमे उनके निधनसे मानवताका एक शक्तिशाली स्तम्भ टूट गया, भारतीय सस्कृति रक हो गयी। उन-जैसे सत्पुरुषकी आजके युगमे बहुत ही आवश्यकता थी।

पोद्दारजीके जीवनका आरम्भ एक क्रान्तिकारीके रूपमे हुआ था। उनमे तडप थी कि देश स्वतन्त्र हो। क्रान्तिकारीके रूपमे उन्होने बडा महत्वपूर्ण कार्य किया, अनेक यातनाएँ सही। आगे चलकर उनका झुकाव अध्यात्मकी ओर हुआ तो उस क्षेत्रमे भी उन्होने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। 'कल्याण', गीताप्रेस और गीताप्रेसके प्रकाशन उनके यशस्वी जीवन और उदात्त विचारोके प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनकी आन्तरिक इच्छा थी कि देशवासी शुद्ध और प्रवुद्ध वने। वे भारतीय सस्कृतिके परम उपासक थे और अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक उसका सदेश देते रहे।

पोद्दारजीकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि उनका हृदय अत्यन्त स्पन्दनशील था। उनके निकट सम्पर्कमे आनेका हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनके कितने ही पत्र हमे मिले। उन पत्रोमे हमे उनके हृदयकी धडकन निरन्तर सुनायी देती थी।

उनकी उदारताकी तो सीमा ही नही थी। वे किसीको कष्टमे नही देख सकते थे और कष्ट-पीडितोकी सेवामे तन-मन-धनसे सलग्न रहते थे।

सब उन्हे 'भाईजी' कहकर सम्बोधित करते थे और वे सच्चे अर्थोमे सबके बडे 'भाई' ही थे। ऐसे प्यारसे मिलते थे कि हृदय गद्गद हो उठता था।

उनके जानेपर आज भी विश्वास नही होता। यह नश्वर शरीर किसीका भी अमर नही है, पर कुछ ऐसे व्यक्ति होते है, जिनकी भौतिक कायाके ओझल हो जानेपर भी वे सदा जीवित रहते है। भाईजी उन्हीमेसे एक थे। हमलोगोपर और 'मण्डल'पर उनका असीम अनुराग था। ऐसा जान पडता है, मानो हमारे परिवारका एक बहुत ही प्रियजन चला गया।

यशपाल जैन
सस्ता साहित्य-मण्डल,
दिल्ली

● ● ●

यद्यपि मेरा श्रीपोद्दारजीसे साक्षात्कार कभी नही हुआ था, तथापि गीताप्रेसके प्रकाशनो एव 'कल्याण'का पाठक होनेके नाते उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति मेरे मनमे भरी है। वैसे तो यह प्रभुकी लीला है कि जो इस जगत्मे आता है, उसे जाना ही होता है, परतु श्रीहनुमानप्रसादजी अपने पीछे ऐसे पद-चिह्न छोड गये है, जो ससारके कर्मठ व्यक्तियोका मार्गदर्शन करते रहेगे।

मैने तो गीताप्रेसके प्रकाशनोसे बहुत कुछ प्राप्त किया है। हिदू-समाजमे प्रचलित अद्वैतवादसे मतभेद रखते हुए भी श्रीपोद्दारजीके कार्यसे अपने विचारो एव तदनुसार लिखित लेखोमे अमूल्य सहायता पाता रहा हूँ। श्रीपोद्दारजीका कार्य चलता रहना चाहिये।

गुरुदत्त उपन्यासकार
दिल्ली

● ● ●

श्रीपोद्दारजी जीवन्मुक्त महामानव थे। उनका व्यावहारिक जीवन उनके आध्यात्मिक जीवनसे पृथक् नही था—गीताके साख्ययोग, कर्मयोग और भक्तियोगकी त्रिवेणीमे स्नात था। वे यश शरीर और अम्लान कृतित्वसे अमर है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व विराट् थे।

देवदत्त शास्त्री
हिंदी साहित्य सम्मेलन,
इलाहाबाद

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी भारतीय सस्कृति और धर्मकी एक अमूल्य निधि थे। सनातनधर्मके लिये उन्होने विश्वकोषका कार्य किया। एक वडे व्यापारीने अपना व्यापार बदकर परमत्यागी श्रीसेठ जयदयालजी गोयन्दकाके साथ हिंदू-धर्म, विशेपतया सनातन-धर्मके लिये जो लेखन और प्रकाशनका कार्य किया है, वह भारतवर्षके इतिहासमे स्वर्णाक्षरोसे अङ्कित है और रहेगा।

मानवमात्रके जीवनको आलोक देनेवाले और उसका पथ-प्रदर्शन करनेवाले गीता ज्ञान और साहित्यको साधारण-से-साधारण जनतातक पहुँचानेका जो कार्य उन्होने किया है, वह आज वडे-से-वडे धन-सम्पत्तिशाली और अन्य व्यक्तिके लिये भी सम्भव नही। सात सौ श्लोकोकी शुद्ध छपी गीता दो पैसे मूल्यमे साधारण-से-साधारण व्यक्तिको मिल सके, इससे वढकर जनसेवाका कार्य और क्या हो सकता है?

'कल्याण' मासिक पत्रिका, जिसमे विज्ञापन नही होता, एक लाख पैसठ हजारकी संख्यामे भारत और विदेशोमे धर्म-प्रचारका जो कार्य कर रही है, श्रीपोद्दारजीके ही अनुरूप है।

भारतीय धर्म और सस्कृतिके प्रचार-प्रसारका उनके द्वारा जो महान् और व्यापक कार्य हुआ, वह मानव-कार्य नही, अपितु दैविक कार्य है। उनमे एक दैविक शक्ति और प्रतिभा थी। ईश्वरने ऐसी पवित्र आत्माको जहाँ अपने चरणोमे शरण दी है, वहाँ उनसे हमारी प्रार्थना है कि उनके द्वारा जलायी गयी ज्योतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिये गीताप्रेसके सचालकोको शक्ति प्राप्त हो।

डा० गोस्वामी गिरधारीलाल
मन्त्री—सनातन-धर्म प्रतिनिधि सभा, नयी दिल्ली

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, जिन्हे लोग 'भाईजी'के नामसे जानते थे, गीताप्रेसके प्राण थे। उनकी प्रेरणा एव प्रयत्नसे हिंदूधर्मकी अनेक पुस्तके सस्ते दामोपर गीताप्रेससे प्रकाशित हुई है। कई पुराण, जो उपलब्ध नही थे, जैसे विष्णुपुराण, अब प्राप्य है। महाभारतका मूलसहित हिंदी अनुवाद भी उपलब्ध नही था, वह भी अब प्राप्य है। इसी प्रकार बहुत-से उपनिषद् भी निकले है। श्रीपोद्दारजीके प्रयाससे गीताप्रेसने अपना कार्यक्षेत्र बहुत बढाया है। श्रीपोद्दारजी हिंदूधर्मके उन स्तम्भोमे थे, जिनके कारण भारतमे धर्मका विशेष प्रचार हुआ है। मैंने भी उनके भाषण गीता-भवन, ऋषिकेशमे सुने थे। प्राय वे भगवान्की भक्तिपर ही बोलते थे। उनके भाषणमे प्रेमका पर्याप्त पुट रहता था। उनके भाषण इतने हृदयग्राही होते थे कि उठनेको जी ही नही चाहता था।

मुझे एक बार उनसे व्यक्तिगत वार्तालापका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे इतने सरल थे कि यह जानना कठिन था कि ये इतने बडे व्यक्ति है। इनके व्यवहारमे सौम्यता, मृदुलता तथा गम्भीरता कूट-कूटकर भरी हुई थी। वे मुझसे बडे ही प्रेमसे इस प्रकार मिले, जैसे कोई आत्मीय स्वजन हो।

मैं प्राय तीस वर्षोसे 'कल्याण'का ग्राहक हूँ। इस अवधिमे बहुत-से ऐसे लेख 'कल्याण'मे निकले, जिनका मेरे जीवनपर बहुत प्रभाव पडा।

डा० राय गोविन्दचन्द
[illegible], वाराणसी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका परिचय यदि किसी एक शब्दमे देना हो तो हम उन्हे विना किसी तर्क-वितर्कके 'धर्ममूर्ति' कह सकते हैं। शास्त्रमे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय-निग्रह आदि जो धर्मके लक्षण कहे गये है, श्रीपोद्दारजीमे उन सवका पर्याप्त मात्रामे विकास दीख पडता था। आजके युगमे कोई व्यक्ति धर्मके एक लक्षणको भी आत्मसात् कर पाये, यह कितना कठिन है। प्रत्येक धर्मभीरु पुरुष अपने जीवनसे इसका अनुभव कर सकता है। राष्ट्रकी परिस्थिति ऐसी हो गयी है और नित्य नये वननेवाले कानूनोका ताना-वाना इतना जटिल वन गया है कि सर्वात्मना चाहता हुआ भी कोई व्यक्ति पापसे सर्वथा अस्पृष्ट नही रह पाता। परिस्थितियाँ उसे कुण्ठित कर देती है—वह 'एक ओर कुआँ तो दूसरी ओर खदक' देखकर दोनोमेसे किसको चुने ? एक वार एक वडे सुप्रसिद्ध महात्माने हमसे कहा था—"शास्त्रोमे कलिकालका वर्णन करते हुए जो यह लिखा गया है कि इस युगमे राजा और प्रजा—सव चोर हो जायेंगे, उसे पढकर हम सोचते थे कि हम क्यो चोर होगे ? हम हर्गिज चोर नही होगे। परतु परिस्थिति हमे भी चोर वननेके लिये विवश कर देती है। कुम्भ-पर्वपर जानेवाले यात्रियोके लिये सरकारी आज्ञा थी कि 'हैजेका टीका अवश्य लगाओ।' हम अपवित्रताके कारण उसे लगाना नही चाहते थे। हमारे एक भक्त डाक्टरने झूठमूठ टीकेका प्रमाण-पत्र लिखकर हमारे ब्रह्मचारीको दे दिया। यह ठीक है कि हमने स्वय कुछ नही कहा, तथापि हमे यह तो विदित ही था कि झूठे प्रमाण-पत्रसे हम यात्रा कर रहे है। क्या यह चोरी नही है ?" ऐसी ही अनेक परिस्थितियोमे पडा आजका धर्मभीरु व्यक्ति जाने-अनजाने क्या-क्या करता रहता है—यह प्रसङ्गान्तर है। धर्मराज युधिष्ठिर भी परिस्थितिके चक्करमे पडकर अर्द्ध सत्य 'अश्वत्थामा हत' कहनेको विवश हो गये थे। क्रय-विक्रयको तो 'सत्यानृत' नामसे ही स्मरण किया गया है। ऐसी परिस्थितिमे वैश्यजातिसमुत्पन्न और गीताप्रेस-जैसी महान् धार्मिक सस्थाका नियन्त्रण करते हुए भी श्रीपोद्दारजी पैनी दृष्टिसे देखनेवाले छिद्रान्वेषियोकी गृध्रदृष्टिमे भी कहीपर सत्यसे च्युत लक्षित नही हो सके। अत वे एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति कहे जा सकते है। उनका अनुद्वेजक व्यवहार तो सभी आत्मीयजन पदे-पदे अनुभव करते थे। सम्प्रति सभी वर्गके लोग उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते दीख पड़ते है। यह 'अहिंसा'-प्रतिष्ठाका ही फल है।

आजके युगमे जीवनभर 'अह ब्रह्मास्मि'का उपदेश देनेवाले अधिकाश महात्मा भी शरीरके व्यामोहमे पडकर प्राय अशुद्ध दवा खाते हुए ही अस्पतालोमे मरते हैं। परतु वर्षोसे अस्वस्थ रहते हुए भी श्रीपोद्दारजी अपने 'शौच'-सम्वन्धी नियमपर दृढ रहे।

यद्यपि वे एक विश्वविख्यात धार्मिक पत्रके सम्पादक थे, समस्त भारतके निवासी ही नही, प्रवासी भारतीय भी उनके स्वागतमे पलक-पाँवडे विछाते थे, तथापि अपने इस महत्वका गर्व उन्हे कभी स्पर्शतक नही कर सका। वे 'अमानी मानदो मान्य' के प्रत्यक्ष निदर्शन थे। ब्रह्मण्यता उनके रोम-रोममे व्याप्त थी। हमने कभी उनको अप्रिय सत्य वोलते किवा 'अनृतप्रिय' वोलते नही देखा। निश्चय ही वे योग-साधक थे, वे जीवनकालमे सदैव धर्मनिष्ठ रहे और सम्प्रति अपनी वह अमर कीर्ति छोड गये हैं, जो अनन्तकालतक धर्म-मार्गके पथिकोको 'चरैवेति चरैवेति' की प्रेरणा प्रदान करती रहेगी। हम ऐसे धर्ममूर्ति व्यक्तिके प्रति अपनी श्रद्धा-सुमनाञ्जलि अर्पण करते है।

माधवाचार्य
दिल्ली

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार महोदयका आत्यन्तिक वियोग वहुत दुखजनक है। उन्होने 'कल्याण'के माध्यमसे जनताको अन्तर्वहिर्निश्छलता, उदारता तथा धर्मदृढताका पाठ पढाया था। वे देशभक्ति, जनतासे प्रेम, छलका त्याग, भगवद्भक्ति, धार्मिक साहित्यसे प्रेम, हिंसा-द्वेषादिसे दूरीभाव, गोभक्ति आदिकी दीक्षासे जनताको दीक्षित करते थे। उन्होने 'कल्याण'द्वारा सनातनधर्मकी वडी सेवा की। उन्होने कभी किसीका मन नही दुखाया। किसीके मतका खण्डन करना वे पसद नही करते थे। उन्होने प्रयत्न किया कि किसी भी मत या सम्प्रदायके अनुयायी उनसे वुरा न माने।

उन्होने सबसे प्रेम करना सिखाया। वे अहकारहीन, दयामूर्ति, तपोमूर्ति और मानवताके सच्चे पुजारी थे। उन्होने जनताकी नस-नसमे आस्तिकता तथा ईश्वर-परायणताका बीज बोया।

अन्तिम समयमे तीव्र पीडा होनेपर भी उन्होने हिसाजन्य दवाओका इजेक्शन अपने स्वजनो एव डाक्टरोके बहुत कहने-सुननेपर भी नही लगवाया। उन्होने प्राणोकी परवाह न करते हुए, तीव्र पीडा सहते हुए भी हिसाको ——चाहे वह परोक्ष ही क्यो न हो——अपनाना स्वीकार नही किया।

श्रीपोद्दारजी आत्मप्रशसासे कोसो दूर रहते थे। उनके गुण बहुत है, उन सबका पूर्ण वर्णन नही किया जा सकता। प्रभुसे प्रार्थना है कि ऐसे सत्पुरुष जनताको सन्मार्गपर लानेके लिये यदा-कदा अवतीर्ण होते रहे।

दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वत
प्राचार्य, रामदल सस्कृतमहाविद्यालय
दिल्ली

● ● ●

एक ही व्यक्तिमे इतने भव्य गुणोका इतनी प्रचुर मात्रामे सगम, जितने श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमे मिलते थे, सर्वथा दुर्लभ है। भारतवर्ष एक पवित्र देश है, जो स्वय भगवान्‌के बार-बार अवतारसे परिष्कृत होता रहा है। ससारके किसी अन्य देशमे स्वय भगवान्‌ने अवतार नही लिया है। फिलिस्तीनमे उन्होने अपने पुत्र ईसाको ईसाई धर्मका उपदेश देनेके लिये भेजा। अरबमे उन्होने अपने पैगम्बर मोहम्मदको भेजा। परतु भारतवर्षमे उन्होने स्वय अवतार लिया और केवल एक बार नही, बार-बार।

अनेको पुण्यश्लोक व्यक्ति भारतवर्षमे पैदा हुए है। ससारमे अन्यत्र कही भी इतने पुण्यश्लोक व्यक्ति नही हुए। जिन असख्य महापुरुषोने भारतमे जन्म लिया, उनमेसे वाल्मीकि, व्यास, शकर, रामकृष्ण, विजयकृष्ण गोस्वामी, सतदास बाबाजी आदि केवल कुछ चुने हुए महापुरुषोकी सूचीमे हम भव्यप्रकाशयुक्त नक्षत्ररूप महात्मा जयदयालजी गोयन्दका एव महात्मा हनुमानप्रसादजी पोद्दारको सम्मिलित कर सकते है। भारतवर्षके धार्मिक जीवनमे इन दो व्यक्तियोके कार्योका सम्यक् मूल्याङ्कन असम्भव है। इन्होने हिदी धार्मिक मासिकपत्र 'कल्याण'की स्थापना की, जिसकी ग्राहक-सख्या १,६५,००० हो गयी है। इतनी बडी ग्राहक-सख्याके अल्पाशका भी दावा कोई दूसरी धार्मिक पत्रिका नही कर सकती। मासिक अङ्क सुन्दर लेखो तथा भव्य चित्रोसे भरे होते है। इसके अतिरिक्त इसके विशेषाङ्क स्वय एक बहुमूल्य पुस्तकालय-सदृश है, जिसके अन्तर्गत गीता, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराणादिका समावेश है।

महात्मा हनुमानप्रसादजीने गोरक्षा-आन्दोलनमे सक्रिय भाग लिया। कोई भी सत्कार्य उनके योगदानसे वञ्चित नही रहा है। वे स्वदेशकी विदेशी जूएसे मुक्ति हेतु जेल गये तथा नजरबदीकी यातनाएँ सही। आश्चर्य इस बातका है कि वे इतने-सारे काम कैसे सँभाल पाते थे। लबी बीमारियोके बावजूद वे प्रत्येक नेक एव उत्तम कार्यको करनेकी चेष्टा करते रहे। अब भगवान्‌ने उन्हे अपनी गोदमे ले लिया है। हमलोगोपर श्रीपोद्दारजीद्वारा सस्थापित एव सचालित सस्थाओको जीवित रखने एव विशेषतया नयी पीढीमे धार्मिक भावनाका सचार करनेका कार्यभार आ पडा है।

बसन्तकुमार चट्टोपाध्याय
कलकत्ता

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सहज वैष्णव वृत्तिके आनन्दी महाजन थे। निकले थे क्रान्तिका अलख जगाने और जगाने लगे अलख निरञ्जन। शस्त्रोसे झकृत कानोमे मधुराभक्तिकी पायले गूंजने लगी। यदि क्रान्तिकी अन्तिम परिणति मुक्ति है तो पोद्दारजी थे उसके जीवन्त प्रतीक। इस अर्थमे वे और श्रीअरविन्द समानधर्मा थे। उनकी अनासक्तिके असख्य उदाहरण है। भारत सरकारने जब उन्हे 'भारतरत्न'की उपाधिसे अलकृत करना चाहा, तब भी वे अनासक्त रहे, उसे स्वीकार नही किया। 'कल्याण' ही नही, गीताप्रेसके सभी प्रकाशन पोद्दारजीके कृतित्वके पावन पर्याय है। उनकी इहलीला समाप्त हो गयी। मुक्तिका दाता स्वय मुक्त हो गया! लेकिन मुक्तिदाताकी मुक्ति कैसी? वह तो अनादि है, अनश्वर है!

गोविन्दप्रसाद केजरीवाल
सह-सम्पादक, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान'

• • •

मैं महामानव पूज्य पोद्दारजीके उन अभागे कृपा-पात्रोमेसे हूँ, जिन्हे इस बुढापेमे उनके बिछुड जानेका असह्य सदमा बर्दाश्त करनेको मजबूर होना पडा है।

पूज्य पोद्दारजी न केवल एक सफल पत्रकार थे, प्रत्युत प्रकाण्ड पण्डित और प्रतिष्ठित ग्रन्थकार भी थे। उनकी भाषाशैली बडी ही प्रभावोत्पादिनी थी। वे विषयको समझानेमे बहुत दक्ष थे। गूढ शास्त्रीय विषयोको भी वे एक रोचक कहानीकी तरह समझा देते थे।

पूज्य पोद्दारजी परम निष्ठावान् भक्त थे, भक्तोमे भी वे बहुत ऊँचे दर्जेके भक्त थे। शुद्ध आहार-विहार और आचारमे वे पूर्ण निष्ठावान् थे। जो कहते थे, उसपर पूरा-पूरा अमल करते थे। सहिष्णुता और सहृदयताकी वे सजीव मूर्ति थे। मैत्री और करुणाके वे अवतार थे और गरीबोके मददगार। वे सही मानोमे महामानव थे, परमभागवत और देशभक्त। देशकी स्वतन्त्रताके सेनानी थे। 'कल्याण'का सम्पादन करते-करते वे स्वय ही 'कल्याण-स्वरूप' हो गये थे।

सबसे पहले उनके दर्शन मैने आजसे लगभग ५० वर्ष पूर्व कलकत्ताके गोविन्दभवनमे किये थे। उनका बाह्य और भीतरी स्वरूप एक ही था। प्राणिमात्रके लिये उनके हृदयमे स्नेह और प्यार था।

वे 'पूर्णपुरुष' थे। वे इन्सानमे भगवान्को देखते थे, इन्सानकी सेवा पूजाकी भावनासे करते थे और उसमे दिन-रात लगे रहते थे। कितने लोगोकी उन्होने सेवा की, कितने लोगोने उनके सगसे अपना जीवन सफल बनाया —इसका हिसाब लगाना असम्भव है।

गुरादित्ता खन्ना
अमृतसर

• • •

लगभग पैतीस वर्षोसे मेरा श्रीपोद्दारजीके साथ प्रेमका सम्बन्ध रहा है। इस अवधिमे उनसे पत्र-व्यवहार भी होता रहा है। उनके पत्र बडे ही मधुर और स्नेहभरे होते थे। वे मेरे आत्मीय-जैसे बन गये थे। वर्तमान भीषण परिस्थितियोमे गीताप्रेस, 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु'द्वारा जन-मानसको धर्म और सस्कृतिकी ओर मोडना उन्हीका काम था। उनकी यह महान् सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। हिंदू-धर्मके प्रेमी, भक्त और प्रचारक होनेपर भी वे सभी मजहबी और साम्प्रदायिक सकीर्णताओसे ऊपर थे। अपने दिव्य गुणोसे वे इस पृथ्वीको देवके समान ही अलकृत करते रहे। उनके परलोक-गमनसे देश-धर्मकी महान् हानि हुई है।

ताराचन्द पाण्ड्या
झालरापाटन सिटी

• • •

श्रीपोद्दारजीने राष्ट्र-भारती हिंदी और सनातन भारतीय संस्कृतिके प्रचार-प्रसारके लिये आश्चर्यजनक कार्य किया है। पत्रकारितामे उनकी सफलता अद्वितीय रही है। 'कल्याण'के द्वारा उन्होने लाखो-करोडोका जन-कल्याण किया है। भक्ति और संतत्वका जो प्रवाह उन्होने बहाया, वैसा इस युगमे शायद ही किसीने बहाया हो। हम सबको सत्प्रवृत्तिके लिये उनमे निरन्तर प्रेरणाएँ मिलती रहेगी।

साहित्य-वाचस्पति डा० बलदेवप्रसाद मिश्र
राजनादगाँव

● ● ●

श्रीभाईजीके जानेसे मैं गल गया हूँ। लगता है—जैसे जीवनका प्रदीप बुझ गया है। चारो ओर अँधेरा है, जानता हूँ—अन्धकार और काँटोके बीच भी चलना तो पडेगा ही, पर जैसे निष्प्राण हो गया हूँ। भाईजीपर लिखनेको कई बार लेखनी उठायी, पर जैसे व्यथा भी बोलना न जानती हो—मौन हो गयी हो। हारकर रख दी।

मैं जीवनके ४५ वर्ष उनसे दूर रहकर भी जैसे उनके सतत सानिध्यमे रहा हूँ। उनका स्नेह मेरे जीवनपर छा गया था—जैसे मुझमे वही बोलता था, वही लिखता था। कभी-कभी ही मिलना होता था, पर वह मिलना भी क्या मिलना था—मैं तो बोल भी नही पाता था और वे सब-कुछ समझ जाते थे। न जाने कितना उन्होने मेरे लिये किया है। अब जैसे उनके बिना जीवनकी कल्पना ही नही होती। काल ही इस दुखको समेटेगा।

रामनाथ 'सुमन'
प्रयाग

● ● ●

'नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नम'

जिनके परम पावन, परम मङ्गलमय चरणयुगलके सानिध्यका अलभ्य लाभ गत चालीस वर्षोसे अखण्ड भावसे बना रहा, जिनकी पवित्र गोदमे बैठकर भक्तिका ककहरा सीखनेका सौभाग्य मिला, जो मुझ-जैसे भूलभरे, धूलभरे शिशुको सदा अपनी अहैतुकी प्रीतिमे नहलाते और बहलाते रहे, जिन्होने सहसा एक देवोत्थान-एकादशीकी मङ्गलमयी वेलामे ऋषिकेशकी गङ्गामे मेरा हाथ भगवान्‌के हाथोमे देकर 'मच्चित्त सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिप्यसि'का महामन्त्र सुनाया, जो मेरे लिये जीवन, प्राण और सर्वस्व थे, है और रहेगे—अपने उन्ही परम पूजनीय भाईजीके चरणोमे मैं अपनी कोटि-कोटि प्रणति निवेदित करता हूँ। जिनका पार्थिव शरीर भले ही हमसे ओझल-सा हो गया प्रतीत होता है, परतु जो सदा-सर्वदा हमारे साथ है, सर्वत्र और सर्वदा हमारी सार-सँभाल रखते है, जो सचमुच मानव-रूपमे साक्षात् श्रीहरि थे, अपने उन्ही परमाराध्य, पूज्यचरण, पुण्यश्लोक श्रीभाईजीके चरणोमे सभक्ति और प्रीतिपूर्वक कोटि-कोटि प्रणति निवेदित करता हूँ।

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
गया

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे धार्मिकाध्यात्मिकोका, अध्यात्म-प्रचारका और साधकोके अवलम्बका एक प्रबल ज्योतिर्मय स्तम्भ ढह गया।

गृहस्थ रहते हुए श्रीभाईजी अद्भुत आदर्श सत थे। उनके जैसा विनम्र, व्यवहारनिपुण, सर्वत्र भगवद्-दृष्टि रखनेवाला सत लोकमे दुर्लभ है।

'कल्याण'को उन्होने जन्म दिया, पाला, बढाया और देशका सर्वश्रेष्ठ पत्र बनाया।

उनका विपुल साहित्य, उनकी सरल सुबोध तुलसी-साहित्यकी टीकाएँ, उनकी कविताएँ और भजन, उनके 'शिव' उपनामसे लिखे 'कल्याण-कुञ्ज'के उत्प्रेरक उपदेश साधकोके सदा प्रेरक-सहायक रहे है।

गीता, भागवत, रामचरितमानसके प्रचारमे उनका अथक उद्योग ही था कि ये ग्रन्थ भारतके घर-घरमे पहुँच गये।

श्रीभाईजी विद्वान् थे, देश-भक्त थे, हिदूधर्मकी रक्षाके प्रधान प्रेरणा-स्रोत एव प्रचण्ड आश्वासन थे।

साधकोको सत्प्रेरणा, सुझाव, मार्ग-दर्शन उनसे निरन्तर मिलता रहा।

कही वाढ हो, अकाल हो तो श्रीभाईजी, कोई धर्मपर आपत्ति हो तो श्रीभाईजी, किसी साधकको मार्ग न सूझे तो श्रीभाईजी—पूरे देशमे उनकी सहायता, उनकी ज्योति, उनका आश्वासन दीर्घकालसे अवलम्बन रहा और वही महाछाया प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष अव कालने ढहा दिया।

मुझे तो उन्होने अपने सगे छोटे भाई-जैसा स्नेह दिया है। वे नही हे—यह सोचकर ही हृदय हाहाकार करता है।

वे महापुरुष नित्य श्रीगोलोकविहारीके निजी परिकर थे—उनके लिये कोई शुभ कामना क्या करेगा।

सहस्र-सहस्र जनोके वे अपने सगे—अपने थे। उन सवके साथ अपनी भी अश्रुकी थोडी वूँदे उनके पावन पदोमे चढाता हूँ।

सुदर्शनसिह 'चक्र'

● ● ●

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक सफल तथा यशस्वी पत्रकार थे। 'कल्याण'-जैसे सुरुचिपूर्ण, सत्साहित्य-परक तथा धर्मप्रधान पत्रका दीर्घकालतक निष्ठापूर्वक सम्पादन कर जो ख्याति और लोकप्रियता उन्होने प्राप्त की, वह अविस्मरणीय है। उन्होने धर्म-ग्लानि-ग्रस्त समाजमे धर्मके प्रति नयी चेतना और नया उत्साह उत्पन्न किया। इस निमित्त उन्होने वहुत-सा साहित्य प्रकाशित किया। भाईजी आदर्श पत्रकार और वडे दृढव्रती थे। यदि दृढ सकल्प न होता तो इतना महान् कार्य कभी सम्पन्न नही कर पाते। वे भगवद्भक्त ही नही, पूरे सत थे, उनकी पत्रकारिता सतवृत्तिसे प्रेरित और अनुप्राणित थी। भाईजीने पत्रकारोके सामने यह आदर्श उपस्थित किया कि देश-सेवा और समाज-सेवाका अपना एक ध्येय निर्धारित कर ले और फिर उसीकी पूर्तिमे तन-मनसे लगे रहे। यदि नि स्वार्थ भावसे त्यागपूर्वक सेवा-कार्य करना है तो 'सतवत्' निर्वाह और व्यवहार करना चाहिये।

यह वात उल्लेखनीय हे कि वडे-वडे विद्वानो तथा सत-महात्माओका सक्रिय सहयोग भाईजीको प्राप्त था, तभी तो 'कल्याण'के पाठकोको उत्तमोत्तम लेख पढनेके लिये सुलभ होते रहे। प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमे वृहदाकार विशेषाङ्कोके प्रकाशनका आयोजन 'कल्याण'की एक विशेषता रही है। उसके विशेषाङ्क, सुपाठ्य सामग्रीसे परिपूर्ण, अपने विषयके 'ज्ञान-सागर' होते है, और वे सभी पठनीय ही नही, सग्रहणीय भी होते है। 'कल्याण' और उसके इन विशेषाङ्कोके द्वारा भाईजीने हिंदूधर्म और सस्कृतिका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार तथा पुनरुज्जीवन किया।

भाईजीकी सेवाओद्वारा गीताप्रेस एक महान् प्रकाशन-सस्था वन गयी—ऐसी पुण्य सस्था, जिसने सस्कृतका वहुत-सा अक्षय ज्ञान-भडार राष्ट्रभाषा हिदीमे सुलभ कर दिया। वाल्मीकि-रामायण और महाभारत-जैसे वडे-वडे ग्रन्थ ही नही, भगवद्गीता तथा अन्य अनेक उपनिषद् एव पुराण हिदी जगत्को उपलव्ध हुए। भारतीय धर्म, सस्कृति, तत्वज्ञान आदिका प्रचार-प्रसार करना तथा प्राचीन भारतीय वाङमयको राष्ट्रभाषामे प्रस्तुत करना भाईजीके जीवनका ध्येय—'मिशन' वन गया। वे जीवनभर वडी निष्ठाके साथ इस सत्कार्यमे सलग्न रहे। वे स्वय वडे भगवद्भक्त थे। उनका जीवन धार्मिकता एव भक्ति-भावनासे ओत-प्रोत था। लेखनीके भी धनी थे वे। छोटी-वडी अनेक पुस्तकोका उन्होने प्रणयन किया। धार्मिक विषयोपर उनके प्रवचन भी होते रहते थे। वहुत-से स्त्री-पुरुष भाईजीके भक्त वन गये थे। भाईजी अहर्निश भगवान्मे तल्लीन रहते थे।

पोद्दारजी बहुत सौम्य प्रकृतिके पुरुष थे और उनमे बडी सहृदयता एव विनम्रता थी। वे सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी ही नही, बडे व्यवहारवादी भी थे। जनसेवामे उनका बडा विश्वास था, तभी तो बाढ अथवा अकालसे पीडित जनताको सहायता पहुँचानेके लिये गीताप्रेसका एक सगठन बन गया था। सरल जीवन और उच्च विचारके वे प्रतीक थे। भाईजी बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे। ऐसे सतपुरुष और आदर्श पत्रकारकी पुण्य-स्मृतिके प्रति हम अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते है और नतमस्तक होकर उनका अभिवादन करते है।

शंकरदयालु श्रीवास्तव
भूतपूर्व सम्पादक–'भारत',
इलाहाबाद

● ● ●

ससारमे जब-जब धर्मकी ग्लानि होती है, तब-तब भगवान् अवतार लेते है। उनके पास कुछ मुक्त आत्माएँ भी रहती हे। भगवान् उनके द्वारा भी धर्मकी रक्षा कराते है। श्रीपोद्दारजी ऐसी ही आत्माओमेसे थे, जिन्होंने ऐसे कठिन समयमे जीवनपर्यन्त धर्मकी रक्षा की। धर्म-रक्षाका यह कार्य उन्होने 'कल्याण'द्वारा सम्पन्न किया, जो विश्वभरमे प्रसिद्ध है।

श्रीस्वामीजी महाराज
श्रीपीताम्बरापीठ, दतिया

● ● ●

श्रीपोद्दारजी श्रीभुवनेश्वरी माँके अनन्य भक्त थे। अपने स्वजनो-मित्रो आदिके समक्ष शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक–किसी भी प्रकारकी कठिनाई आ जानेपर वे उन्हे श्रीभुवनेश्वरी माँकी शरण लेनेको कहते थे और उसके निवारणके लिये माँके अनुष्ठान, पुरश्चरण, होम-हवन आदि कराते रहते थे। उनकी जीवन-यात्रामे ऐसे अनेक प्रसङ्ग हैं।

वे अपनी जीवन-यात्रामे सनातन वेदधर्मके सिद्धान्त हृदयमे दृढ करके तदनुसार जीवन-व्यवहार करते रहे। उनकी परोपकार-वृद्धि और गुप्त सेवा भी बड़ी विलक्षण थी। उनका लक्ष्मीपतियोसे सदा यही कहना था— 'भगवान्‌की दी हुई लक्ष्मीको भगवान्‌के अर्पण करना ही कर्त्तव्य है।' उनसे उपकृत मनुष्योके हृदयमे उनकी स्मृति चिरकालतक रहेगी।

आचार्य श्रीचरणतीर्थजी महाराज
भुवनेश्वरीपीठ, गोण्डल

● ● ●

श्रीभाईजीके इस जगत्मे न रहनेसे धर्मके सभी क्षेत्रोमे भयकर अभाव एव अन्धकार छा गया है। सनातन भागवत-धर्मको श्रीभाईजीके न रहनेसे भयकर ठेस लगी है। श्रीभाईजी कृतकृत्य थे। वे इस समयके श्रीराधातत्त्वके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता थे। असख्य प्राणियोको 'कल्याण'-पथमे ले चलनेमे श्रीभाईजी कभी थकते नही थे। श्रीभाईजीके स्नेह-जलसे सिञ्चित उनका परिवार बहुत विशाल है। वे सबके निजी आत्मीय थे। उनके ओझल होनेसे धर्म-कर्म एव भक्तिमे लगे हुए जन-जनके हृदयमे कितनी टीस है इसका नाप-तौल होना सम्भव नही।

स्वामी श्रीचक्रपाणिजी महाराज
नारायण-आश्रम, वृन्दावन

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका सारा जीवन भारतीय संस्कृति और हिंदू-धर्मके रक्षणके लिये अर्पित था। उन्होंने जीवनपर्यन्त त्याग और परिश्रमसे, अपने साहित्य तथा आचरणसे भारतीय जीवनको उन्नत बनानेकी प्रेरणा दी है। वे एक सत्यनिष्ठ तथा सदाचारी मानव थे, जिनके निधनसे देशकी अपूरणीय क्षति हुई है।

भारत साधु समाजके कार्यक्रमो तथा उद्देश्योके प्रति उनकी बडी निष्ठा थी। गो-सेवा और गो-रक्षा तथा हिंदूधर्मके विकासमे उनका महान् योगदान सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

स्वामी श्रीहरिनारायणानन्दजी
भारत साधु समाज, नयी दिल्ली

● ● ●

बाल्यकालसे ही मैं एक नम्र साधनाका जीवन जी रहा हूँ। सबके प्रति मेरी आत्मीयता और आन्तरिक स्नेह है, किंतु साधना और अनुभूतिके सम्बन्धमे मैं अत्यन्त कठोर हूँ। साधारणत मै किसीको भी अपने हृदयमे आने ही नही देता, फिर बैठानेका प्रश्न ही कहाँसे हो ? हजार छन्नोसे छननेके बाद ही कोई मेरे हृदयमे प्रवेश पा सकता है। मैं सन् १९४६से श्रीपोद्दारजीके परिचयमे हूँ। वे इस युगके श्रेष्ठ मनीषी थे—सूर्यके प्रकाशकी तरह सम्पूर्ण विश्वमे, कम-से-कम भारतमे तो यह सर्वजनमान्य, सर्वधर्म और सम्प्रदायोसे स्वीकार्य सत्य ही नही, परम सत्य है।

जैनमुनि श्रीकनकविजयजी महाराज
वाराणसी

● ● ●

जीवनमे केवल सात दिन ही महामहिम श्रीभाईजीकी समीपताका अलभ्य लाभ प्राप्त हुआ था। वह अनुपम समागम मेरे अवशिष्ट जीवनमे चिर-स्मरणीय ही रहेगा।

मुझे उन दिनो ऐसा लगता था कि गीतावाटिका मानो 'श्रीराधावाटिका' ही है। मेरी चाह है कि श्रीभाईजीकी समीपताका ही अनुभव 'स्वप्नेऽपि' होता रहे।

समालोचना, निन्दा, परदोष-दर्शनरूपी मलिनतासे मन सम्मार्जित होकर श्रीभाईजीको गौण न बनाता हुआ, अनन्य—अव्यभिचारी भावसे उनकी अमृतवर्षिणी वाणीका ही समास्वादन करता रहे। उनके अन्तरङ्गतम स्वरूपका अनुभव करते हुए मेरे लिये 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' ही सतत पठनीय विषय रह जाय। उनका प्रेममय महोज्ज्वल आदर्शपूर्ण दिव्य जीवन मुझे उपासना-मार्गमे अद्भुत एव अप्राकृत अनुरागकी ओर समार्कर्पित करते हुए चिर समय-तक प्रकाश-प्रदान करता रहे।

मैं इसी अभिलाषाकी पूर्ति करनेकी प्रार्थना करते हुए श्रीभाईजीके चरण-कमलोमे श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

श्रीबालकृष्णदासजी महाराज
वेणुविनोद-कुञ्ज, वृन्दावन

● ● ●

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार चले गये, अब वे भगवान्‌के नित्य-परिकर हो गये। उनसे मेरा सम्पर्क सन् १९४८ ई० मे हुआ था। मैं 'कल्याण'मे लेख देने लगा। आपके द्वारा हमारे सनातनधर्मके महान्-महान् कार्य हुए हैं। आपके द्वारा समाज, धर्म, देश तथा धर्मग्रन्थोके उत्कर्षकी बडी सेवाएँ हुई है। आपकी सौम्यता, उदारता एव गम्भीरता अत्यन्त सराहनीय थी।

श्री श्रीकान्तशरणजी महाराज
अयोध्या

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोकगमनसे हमको गहरा धक्का लगा। हमारे बीचसे सास्कृतिक भाग्याकाशका एक ज्योतिर्मय नक्षत्र सदाके लिये अस्त हो गया——विपत्तिग्रस्तके लिये वह करुणाविगलित कोमल हृदय, आश्वासन-भरी मृदुल, मधुर एव सत्यसे परिपूरित वाणी तथा उदारताका उज्ज्वल प्रतीक विनम्र व्यक्तित्व हमारे बीचसे सदाके लिये अदृश्य हो गया। किसी सास्कृतिक सकटके अवसरपर 'कल्याण'के माध्यमसे प्राप्त होनेवाले उनके सतुलित किंतु निर्भीक और प्रभावशाली उद्बोधनसे देश सदाके लिये वञ्चित हो गया। जिनका उनके साथ कभी किसी प्रकारसे थोडा भी सम्पर्क रहा, वे सभी अपने सच्चे सुहृद्के वेदनाभरे वियोग-सागरमे सदाके लिये डूब गये है। उनसे जिन असख्य लोगोको भगवत्प्रेमकी मधुर प्रेरणा प्राप्त होती थी, उनका तो एक प्रबल आधार ही ढह गया है। वास्तवमे देशके लिये सत्प्रेरणाका एक प्रबल स्रोत ही सूख गया है। सनातनधर्मके अमिट रगमे रँगा हुआ, विविध प्राकृतिक प्रकोपोसे पीडित प्राणियोके लिये परमोदार तथा भक्तो और स्वजनोके लिये मधुर-प्रेममय वह व्यापक व्यक्तित्व अब कहाँ मिलेगा? श्रीपोद्दारजीका अभाव राष्ट्रकी अपूरणीय क्षति है।

स्वामी सोमेश्वरानन्द
श्रीपञ्चमन्दिर, बीकानेर

● ● ●

भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे सारा देश स्तम्भित है। धार्मिक जगत्मे सर्वत्र शोककी लहर व्याप्त है। पोद्दारजी हिंदू-धर्म तथा हिंदू-सस्कृतिके सच्चे प्रतीक थे। वे पहले एक क्रान्तिकारी नेता थे। भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राममे उनका योगदान सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेगा। जीवनपर्यन्त हिंदू-धर्म और हिंदू-सस्कृतिके उत्थानके लिये उन्होने अथक परिश्रम किया। गीताप्रेसद्वारा हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिको जन-जनके हृदयतक पहुँचानेका महान् कार्य उन्होने किया, जो भारतीय इतिहासमे स्वर्णाक्षरोमे लिखा जायगा। सनातन हिंदू-धर्मकी प्रतीक गोमाताकी सेवा एवं रक्षामे वे सदैव तत्पर रहते थे। श्रीपोद्दारजी-जैसे धर्म-प्रेमी, देश-भक्त, क्रान्तिकारी, कर्मठ कार्यकर्ता एव सर्वजनप्रिय महान् आत्माके तिरोभावसे देश एव विशेषकर धार्मिक जगत्को अपूरणीय क्षति पहुँची है। देश, सनातनधर्म तथा जन-कल्याणके उनके महान् कार्य सदा-सर्वदा स्मरणीय रहेगे।

स्वामी आनन्द
महामन्त्री—भारत साधु समाज

● ● ●

श्रीभाईजीके महाप्रयाणसे हृदयको गम्भीर वेदना हुई है। विश्वमे इस जीवन्मुक्त आध्यात्मिक नेताकी पूर्ति कदापि नही हो सकेगी। पुराणो-शास्त्रोमे 'अजातशत्रु' शव्द केवल पढते भर थे, परतु हमने तो इन अपने 'अजात-शत्रु' भाईजीके दर्शन ही नही किये, वरन् इनके सग हम बैठे, सोये, खाये, पीये और रहे। हमने अनुभव किया है कि ये वास्तवमे अजातशत्रु, जीवन्मुक्त, अवतारी ही थे। क्या ज्ञानी-विद्वान्, क्या प्रेमी-भक्त, क्या नीतिक-नेता, क्या धनी और क्या निर्धन——सभी यह कहते है कि 'भाईजी' हमसे अपार प्रेम करते थे। वे तो नित्यमुक्त थे ही——उनके पाञ्चभौतिक कलेवरके दर्शनोका अभाव सदैव जन-जनके हृदयमे खटकता रहेगा।

स्वामी सदानन्द सरस्वती
परमार्थ निकेतन, स्वर्गाश्रम

● ● ●

श्रीमान् हनुमानप्रसादजी पोद्दारने भारतीय सस्कृतिकी सुरक्षाके हेतु श्रीमद्भगवद्वचनामृत गीता एव इतिहास-पुराणादिको शुद्ध हिंदी भाषामे अनुवाद-सहित प्रकाशित करके तथा 'कल्याण' नामक पत्रिकाका सम्पादन

करके प्राचीन महर्षियोंके गौरवकी रक्षा की है। वे सनातनधर्मधुरधर, आस्तिक-भावनिष्ठ एव कर्मवीर थे। दूसरोंके उत्पीडनको देखकर रन्तिदेवके समान 'परदु:खासहिष्णु' थे। विनम्रता, क्षमाशीलता एव प्रियवादिताके आदर्शस्वरूप थे। श्रीमद्भागवत, रामचरितमानस आदि धार्मिक ग्रन्थोका सस्ता प्रकाशन कराके उन्होंने घर-घरमे भागवतधर्मका प्रसार किया। वे निर्मद, निर्मल अन्त करणके थे। उन्होने अपने सुस्वभावके कारण अनेक सत-महात्माओंके भी हृदयोको जीत लिया था। उन्होंने ऐसा असाधारण कार्य किया कि जिससे वे देश-विदेशोमे विख्यात हो गये। जिनका सब-कुछ दूसरोंके लिये, विद्या सत्कर्मके लिये और चिन्ता भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रके रूप-गुण-लीलाके चिन्तनकी थी, ऐसे महान् परोपकारी, मृदुभाषी विद्वान्के उठ जानेसे देशकी विशेषकर सनातनधर्मकी महान् क्षति हुई है। उसकी पूर्ति असम्भव-सी प्रतीत होती है। कहा भी है—

दानाय लक्ष्मी सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्मविनिश्चयाय।
परोपकाराय वचासि यस्य वन्द्यस्त्रिलोकीतिलक स एक ॥

श्रीवैष्णवपीठाधीश्वर श्रीविट्ठलेशजी महाराज
गोपाल मन्दिर, मथुरा

● ● ●

भारतीय सस्कृति और साहित्यके समर्थ समुद्धारकके रूपमे श्रीपोद्दारजीकी सेवाएँ चिरकालपर्यन्त देदीप्यमान रहेगी। इस सस्थाके सस्थापक स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजसे लेकर हमारे वर्तमान ट्रस्टी-मण्डलतकके प्रति उनका वयोवृद्ध आप्तजन-जैसा सद्भाव बना रहा। प्रसङ्गानुसार उनका महत्वपूर्ण मार्गदर्शन हमको प्राप्त होता रहता था। उनके वियोगसे हमे बहुत दु ख हुआ है। उनके सभीकार्यव्रतोका सुचारुरूपसे निर्वहन और विकास होता रहे—यही हमारी कामना है।

त्रिभुवनदासजी
सस्तु साहित्य वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद

● ● ●

अनादि कालसे यह भगवदीय विधान रहा है कि कभी दैवी बल बढता है, कभी आसुरी बल। लेकिन दोनोमेसे एकका सर्वथा विनाश नही होता। दुनियामे किसी भी वस्तुका महत्व तब होता है, जब उसका प्रतिद्वन्द्वी सामने हो। दिनका महत्व रातसे है एव अमृतका विषसे। सत्-असत्, सुख-दु ख, लाभ-हानि, राग-द्वेष, शीत-उष्ण आदि यावत् द्वन्द्वात्मक पदार्थोका समुदाय ही तो ससार है। एक घटता है तो दूसरा बढता है। इनका सतुलन बनाये रखनेके लिये भगवान् योग्य व्यक्तियोको समय-समयपर भेजते रहते हैं। आजसे ५० वर्ष पूर्व कलिकालके विकराल मुखमे कवलित-प्राय त्रिपादपगु सनातनधर्म लँगडाकर चल रहा था। भारतीय ज्ञान-विज्ञानकी अथाह राशि अन्धकारमे पडी हुई थी। जनता आत्म-विस्मृत-सी होकर दीपकमे पतगकी तरह केवल भौतिक प्रकाशको ही सर्वस्व मानकर इस ओर दौड रही थी। 'इस स्थितिमे गीताके माध्यमसे ही विश्वका कल्याण हो सकता है'—इस ईश्वरेच्छाके फलस्वरूप 'गीताप्रेस'की स्थापना हुई। उक्त उद्देश्यकी सफलताके लिये मन-कर्म-वचनसे पवित्र, भगवान्के अनन्य भक्त, गीताके रहस्यवेत्ता, निष्काम कर्मयोगी एव आदर्श महापुरुषोकी आवश्यकता थी। इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका जन्म हुआ था। अतएव भगवान्ने उन्हे इस कार्यमे जोड दिया।

श्रीपोद्दारजीका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। वे स्वत विनीत, सनातनधर्मके परम रहस्यवेत्ता, समस्त प्राणियोंको भगवत्स्वरूप देखनेवाले, परम भगवद्भक्त और गीताप्रेसके आधार-स्तम्भ थे। पोद्दारजीने हिंदू-धर्मके

प्रचारमे अपने जीवनका सर्वाश ही लगा दिया था। वे अत्यन्त त्यागी और तपस्वी थे। कही भी हो, गीताप्रचार-के सदेशमात्रसे ही उनके हृदयमे हर्षका समुद्र उमड़ पडता था।

अधिक क्या, उनके जीवनका लक्ष्य ही विश्व-कल्याण था। धर्मसे, सदाचारसे, विनयसे, कर्त्तव्यनिष्ठासे, भगवत्प्रेमसे विश्वका कल्याण होगा——यही उनकी दृढ मान्यता थी। ऐसी महान् आत्माका जन्म विरल ही होता है। उनकी कृतियाँ और आदर्श चिरकालतक हमारा पथ-प्रदर्शन करते रहेगे।

स्वामी ईश्वरानन्द सरस्वती
गीताप्रचार आश्रम, काठमण्डू (नेपाल)

● ● ●

श्रीभाईजीके शरीर, मन, प्राण, आत्मा विश्वके कल्याणाय, जगद्धिताय ही थे। आप एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे। जाति-धर्म-समाज, देश तथा साहित्यादिके विभिन्न क्षेत्रोमे आपकी अतुलनीय नि स्वार्थ सेवाओसे जनमण्डली प्रभूत उपकृत, आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे परममुग्ध और अन्तर्हृदयसे कृतज्ञ है। उनके सदृश सबके आत्मस्वरूप अर्थात् काय-मन-वाक्यसे अहिसक, सत्यपरायण, निर्लोभी, परोपकारी, नि स्वार्थी, सदा पवित्र, सेवाप्रिय, तपस्वी एव विश्वप्रेमी, श्रेष्ठ महापुरुष पृथ्वीपर विरल ही है। जिनमे इन सब गुणोका समावेश होता है, उनके शरीर——स्थूल या सूक्ष्म अथवा कारण——सभी परिशुद्ध है। इस प्रकार जिनका व्यावहारिक जीवन परिशुद्ध एव परम पवित्र है, सचमुच वे महापुरुष है, उनका चित्त स्वत ही ईश्वरके प्रति नमनशील है। अवश्य वे महापुरुष साधक, ईश्वरपरायण और परमभक्त बनते है। वर्तमान शरीर पाकर ठीक-ठीक वैराग्यवान्, विश्वका हितकारी होते हुए जो सर्वकारण-कारण प्रभुमे आत्मसमर्पण कर चुकते है, वे महापुरुष जीवन-कालमे ही मुक्त है और अन्तमे नित्यलीलालीन होकर सर्वदाके लिये जन्मरहित हो जाते है। ये ही पुरुष साधकोके अनुकरणीय है। इसी प्रकारका आदर्श जीवन था हमारे भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका।

श्रीयोगप्रकाशजी ब्रह्मचारी
कापिलमठ, मधुपुर

● ● ●

सस्कृति और पाण्डित्यकी मूर्तिके रूपमे सम्मानित महात्मास्वरूप श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पुण्य एव मधुर स्मृतिके प्रति विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना स्वर्णिम अवसरके साथ-ही-साथ बडे आनन्दका विषय है। वे पाण्डिचेरी-आश्रम-स्थित महान् योगी श्रीअरविन्द, राष्ट्रपिता महात्मा गाधी और भारतके अनेक विद्वानोसे सम्बद्ध रहे। वे श्रीरामकृष्ण परमहसदेवके शिष्य, पूज्यचरण तथा महतो महियान् स्वामी विवेकानन्दके आध्यात्मिक भ्राता पूज्यचरण श्रीमत्स्वामी अभेदानन्दजी महाराजके मित्र भी थे।

पोद्दारजीका जीवन समर्पण और धार्मिक निष्ठाका जीवन था। उन्होने अपना नि स्वार्थ जीवन शिक्षा और सस्कृतिके निमित्त उत्सर्ग कर दिया। ससार उनका और उनके मूल्यवान् धार्मिक-सास्कृतिक पत्र 'कल्याण'का ऋणी है। गीताप्रेस, विभिन्न शास्त्रोके अनेक मूल्यवान् प्रकाशन, ऋषिकेश-स्थित गीता-भवन और अन्य अनेक परोपकारी कार्य श्रीपोद्दारजीको युगोतक अमर बनाये रहेगे। यह सत्य है कि साधारण मनुष्य सासारिक वैभव तथा आनन्दके आकर्षणसे मोहित हो जाते है। उन्हे अज्ञानकी वेडियोको हटानेके लिये प्रेरणा और पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता पडती है। इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिये सभी युगोमे महान् सतगण वुद्धि और ज्ञानका दीप जलाने और जनताको

सदाचार तथा मोक्षका मार्ग दिखानेके लिये अवतरित होते है। हमे यह कहनेमे कोई हिचकिचाहट नही है कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन्ही नि स्वार्थी पथ-प्रदर्शको और प्राणिमात्रके मित्रोमेसे एक थे। मानवमात्रका हित करनेके निमित्त करुणायुक्त उनका जीवन एक परम उद्देश्यसे प्रेरित था। मेरे मनमे उनके प्रति बडा सम्मान है। उनकी पुण्य तथा अमर स्मृतिमे उन्हीकी कृपासे मुझे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका यह अवसर मिला है।

स्वामी प्रज्ञानन्दजी
कलकत्ता

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार धर्मप्राण भारतके एक समुज्ज्वल रत्न थे, पारस-मणि थे । आजके युगमे जव भारतीय सस्कृतिका ह्रास हो रहा है, श्रीपोद्दारजीका देहावसान वहुत वडा दु खद अभाव है। यद्यपि उन्होने गीताप्रेस और 'कल्याण'के माध्यमसे विश्वको इतना कुछ दिया है कि उसका सम्वल प्राप्त करके प्रत्येक मनुप्य अपने गन्तव्य पथपर अग्रसर हो सकता है, तथापि उनके अगणित-गुण-गरिमा-सम्पन्न शरीरके साक्षात्कार और सत्सङ्गसे उनके प्रेमियोको जो परम लाभ मिलता था, वह अव कहाँ मिलेगा ?

श्रीपोद्दारजीके जीवनमे पर्वत-जैसी ऊँचाई और समुद्र-जैसी गहराईका अद्भुत समन्वय था। फिर भी उनमे अहकारका कहीं लेश भी नही था। वे छोटे-वडे सभीके 'भाईजी' और गोस्वामी तुलसीदासजीके शव्दोमे 'सवके प्रिय, सवके हितकारी' थे। उन्होने यथासम्भव सदा-सर्वदा सवको सुख पहुँचानेकी चेप्टा की, कप्ट कभी किसीको भी नही दिया। आज उनको खोकर कितने नर और नारी भ्रातृविहीन, मित्रविहीन, प्रेमीविहीन और सर्वस्वविहीन हो गये हैं—इसकी गणना नही की जा सकती।

मै पुण्यसलिला गङ्गा-माताके पुनीत तटपर निवास करनेवाले स्वर्गाश्रमके सभी साधुओ, कार्यकर्त्ताओ, अध्यापको और छात्रो आदिके साथ श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पुनीत चरणोमे अपनी भावभीनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

स्वामी अचलानन्द सरस्वती
स्वर्गाश्रम

● ● ●

श्रीभाईजीके जानेसे भारतवर्षके लिये ही नही, प्रत्युत विदेशोके लिये भी धर्म, भक्ति और ज्ञानके प्रकाशसे युक्त एक महान् पुरुपका अभाव हो गया है। अनेक व्यक्ति हुए है, जिन्होने अनेक प्रकारसे देशकी सेवा की है, तथापि श्रीपोद्दारजीके गमनसे सार्वजनीन, नित्यसुखके दाता, ज्ञानका निष्पक्ष वितरण करनेवाले, राजा-प्रजा—सभीके परम हितकारक तथा गृहस्थवेषमे एक सच्चे महात्माका तिरोभाव हो गया। उनके अभावसे सभीका मन व्याकुल हो रहा है। अधिक क्या लिखूं ? अव तो यही कहना है—

अन्यथा शरण नास्ति त्वमेव शरण मम। तस्मात् कारुण्यभावेन प्रसीद परमेश्वर ॥

दण्डी स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती
वृन्दावन

● ● ●

'कल्याण'के यशस्वी सम्पादक, विचार और व्यवहार दोनोमे सनातन सस्कृतिके कट्टर अनुयायी, परम आस्तिक, भक्तप्रवर श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका पार्थिव कलेवर यद्यपि नही रहा, तथापि उनके गुणोकी सुगन्धसे युगोतक आनेवाली पीढी सुवासित रहेगी। आजके युगमे उनके जैसा कर्तव्यनिष्ठ आदर्श जीवन मरुभूमिमे गङ्गाकी धाराके समान ही समझना चाहिये। सनातनधर्मकी रक्षा और व्यापक प्रचारका जो कार्य उन्होने किया तथा गीता, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक ग्रन्थोको सरल भाषानुवाद-सहित छापकर सस्ते-से-सस्ते मूल्यमे प्रत्येक हिंदूके घर पहुँचानेका जो स्तुत्य कार्य उन्होने किया, उसके लिये धार्मिक जगत् सदैव उनका कृतज्ञ रहेगा।

अपने परिचितो और अन्तरङ्ग मित्रोमे पोद्दारजी 'भाईजी'के नामसे प्रसिद्ध थे। यह नामकरण अकारण नही था। उनके हृदयका वात्सल्यभाव और सभीकी सहायता करनेको तत्पर रहनेकी भावना ही मानो इस नाममे प्रतिफलित थी। उन्होने अपने द्वारसे किसीको कभी निराश नही लौटाया। निराश्रितोको ऐसा कल्पवृक्ष अव कहाँ मिलेगा ?

विनयकी तो भाईजी साक्षात् प्रतिमूर्ति ही थे। अभिमानसे कोसो दूर और दुर्दर्पकी कालिमासे सर्वथा अलिप्त।

प्रेमाचार्य शास्त्री, साहित्याचार्य
धर्मधाम, दिल्ली

● ● ●

गङ्गा पाप शशी ताप दैन्य कल्पतरुस्तथा।
पाप ताप तथा दैन्य हन्ति सज्जनसगम ॥

हमारे श्रद्धेय भाईजीका जीवन भी विश्वके छिपे हुए एक लोकोत्तर गृहस्थ सतका आदरणीय एव अनुकरणीय जीवन रहा है। धर्मरक्षा एवं गो-सेवा तो उनके जीवनके पवित्र व्रत ही थे। उनके दीर्घ जीवनकालमे गरीव, दीन-दुखी एव असहाय भाई-वहिनोका गुप्तरूपसे जो सरक्षण हुआ है, उसका उल्लेख करना नितान्त असम्भव है। वर्तमान शताब्दीमे अपनी परम दीनतामय लेखनीसे तथा श्रीराधाष्टमी आदि महोत्सवोद्वारा उन्होने श्रीराधातत्वका जो प्रचार-प्रसार किया है, वह सबके समक्ष है। यही भाईजीके जीवनकी साध थी। अपनी अलौकिक बुद्धि-चातुरीसे 'कल्याण'के द्वारा जगत्के भक्त, भावुक एव बुद्धिजीवियोकी जो सेवा उन्होने की है, उससे समस्त जगत् सदैव चिर उपकृत रहेगा।

साधू ऐसा चाहिये, दुखै-दुखावै नाहि।
फूल-पात तोडै नही, रहै वगीचे माहि ॥

—यह दोहा तो आपके गृहस्थ-जीवनमे अक्षरश चरितार्थ रहा है।

प्रेममे कोई पथ नही है। आकर्षण होनेपर चिन्तन करते रहना—यही प्रेमका पथ है। इसमे कोई विधि-निषेध नही है। वस, प्रियतम-सयोग ही आनन्द है। इस भक्ति-सिद्धान्तको अपने जीवनमे भाईजीने मूर्तिमान् करके दिखाया था। किसी एक सम्प्रदायका आपके जीवनमे आग्रह नही था, सभीका समान आदर था, तथापि 'तृणादपि सुनीचेन' इस चैतन्य-पथके तो आप साकार विग्रह थे। मैने अपने 'भागवत-सप्ताह-प्रवचन'के अवसरपर गोरखपुरमे आपके शरीरमे अष्ट सात्विक भाव 'कम्प-अश्रु-पुलकादि'को स्वाभाविक रूपसे देखा है।

श्रीपोद्दारजी-जैसी विभूतियोका आविर्भाव श्रीहरिके सकल्पसे ही होता है। जगत्-सेवा-कार्य कराके श्रीरासेश्वरी-ने उन्हे अपनी निजसेवामे वुला लिया है। आपके अभावकी पूर्ति असम्भव प्रतीत हो रही है।

श्रीनाथजी शास्त्री, पुराणाचार्य
वृन्दावन

● ● ●

श्रीभाईजीके न रहनेके कारण हृदयको बडा आघात पहुँचा है। उनके सत्कार्योका वर्णन करना असम्भव है।

वैद्य रामनारायण शर्मा
वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजीका जीवन जाति, समाज और देशके लिये उस दीपककी भाँति था, जो अन्धकारको चीरकर प्रकाशसे मार्गको दिखाता है। ऐसे ही महान् पुरुषोकी साधना तथा कर्मठताके कारण भारतवर्षका सिर गर्वसे हिमालयकी भाँति दुनियामे ऊँचा है। उनके शरीरके चले जानेपर भी उनके विचार एव कार्य जनताको मार्ग दिखाते रहेगे। उनके विचार जितना ही जनतामे फैलेगे, उतना ही उसका कल्याण है। श्रीपोद्दारजी एक युगप्रवर्तक महापुरुष थे।

मुनि हरिमिलापीजी
हरिद्वार

● ● ●

मैं मात्र एक साधनारत सामान्य व्यक्ति हूँ। मुझे यह ज्ञात नही है कि अध्यात्म-मार्गमे इस समय मेरी क्या स्थिति है। अत पुण्यश्लोक महात्मा-स्वरूप अपने प्रिय 'भाईजी'के सम्बन्धमे, जिन्हे लाखो व्यक्ति सम्मान एव स्नेह करते है, कुछ लिखते समय मेरा हाथ काँपता है। मेरे जीवनके प्रथम ३० वर्ष अपनी आध्यात्मिक साधनाको चालू रखनेके लिये आश्रय एव सरक्षणकी खोजमे वाहरी ससारमे व्यतीत हो गये। अब ३३ वर्षसे अधिक हुए जब श्रीभाईजीके सरक्षणमे मुझे अपेक्षित आश्रय प्राप्त हुआ था और उन्होने मुझे विना किसी प्रकारकी विघ्न-बाधाके अपनी साधनाका निश्चित कार्यक्रम चालू रखनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की थी, मेरा हृदय भाईजीके प्रति कृतज्ञतासे सरावोर है।

इतने वर्षोकी अपनी सुदीर्घ एव कठोर साधनाके उपरान्त भी मेरे अनुभव उच्चकोटिके नही है, उल्लेखनीय नही है। अतएव साधना-क्षेत्रमे निरन्तर प्रगति करते रहने एव प्राप्तव्यको प्राप्त करनेके लिये मुझे नित्यलीला-लीन श्रीभाईजीके स्नेहयुक्त आशीर्वादकी आवश्यकता है।

मै अनुभव करता हूँ कि श्रीभाईजी माँ भगवतीके, जिन्हे हम राधा और त्रिपुरा कहते है, कुछ विशेष प्रियजनोमेसे थे। मैं इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्धमे और कुछ लिखनेमे सक्षम नही हूँ। जब कभी भी मै उनसे मिलता, उनकी सदैव यही सम्मति रहती—'अपना समय एव मन सदैव माँ भगवतीमे लगाये, अन्य सभी चिन्ता तथा विचारोको त्याग दे।' मैं अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलिके रूपमे उनकी सम्मतिका सदैव अनुसरण करनेके प्रयासमे रत हूँ।

ब्रह्मचारी रामचन्द्रन्
गीतावाटिका

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने धर्म-हेतु कार्य किया, सदैव धर्ममय जीवन विताया और केवल धर्ममे ही साँस लेते रहे। वे ज्ञान, कर्म और भक्तिकी सजीव तथा पवित्र त्रिवेणी थे। उनमे दोषरहित एव कुशल कार्यसम्पादनकी सूक्ष्मदर्शिता, गम्भीरता एव गहन निष्ठाका अद्वितीय समन्वय था। वे युवावस्थामे एक निर्भीक स्वातन्त्र्य-सैनिक और गोवध-विरोधी आन्दोलनके अग्रणी सेनानी थे। धर्म उनके जीवनका परमोद्देश्य बन

गया था। गीताप्रेस, 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा लाखोंकी सख्यामे मुद्रित शास्त्र, धर्म एव इतिहास-पुराणादिके सैकडो प्रकाशन पोद्दारजीके अमर यश और नामकी घोषणा करते रहेगे। वे इसके सर्वथा अधिकारी थे। हमे स्मरण है कि लिखनेमात्रसे उन्होने दक्षिण-अमेरिकाके लोगोके लिये गीताकी सैकडो प्रतियाँ नाममात्रके मूल्यपर प्रदान की थीं। उनका जीवन धर्म-हेतु समर्पित था। वे धर्मको मनुष्यका एक मित्र मानते थे—ऐसा मित्र जो मृत्यूपरान्त भी साथ देता है। ऐसे धर्मनिष्ठ महापुरुषके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना प्रत्येक सनातनीका पुनीत कर्त्तव्य है।

शिशिरकुमार सेन
सम्पादक 'ट्रुथ'
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजीके तिरोधानसे देशने एक महान् भक्त और मनीषी खो दिया है—भारतीय सस्कृतिके भव्य प्रासादका एक ज्योतित मणिदीप बुझ गया है। श्रद्धेय भाईजी आस्था और नैतिकताके पर्यायवाची बन गये थे। वे जीवन्मुक्त थे।

कन्हैयालाल सेठिया
सुजानगढ (राजस्थान)

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोकगमनसे हृदय विह्वल है। विश्वने अपना प्यारा धार्मिक प्रेरणाका स्रोत खो दिया, गीताप्रेसने अपना आश्रय गँवा दिया, 'कल्याण'ने अपना सर्वस्व लुटा दिया। मैंने जिसे अनुपम श्रद्धा दी, जिसने मुझे भरपूर प्यार दिया, आदर दिया, उसके हृदयमे किन-किन महान् भावनाओका समावेश था, इसे श्रीहरि ही जान सकते है। प्रभु गीताप्रेस एव 'कल्याण'को श्रीभाईजीकी सतत छाया प्रदान करे।

श्रीकृपाशंकरजी रामायणी
नूरपुर (प्रतापगढ)

● ● ●

यह ससार अनन्त-कल्याण-गुण श्रीभगवान्‌की अद्‌भुत लीला है। इसमे प्रत्येक व्यक्ति अपना-अपना अभिनय पूराकर काल-यवनिकामे समा जाता है। सामान्यत प्रत्येक जीवको मृत्युपर्यन्त ही इस ससारमे स्थान मिलता है, मृत्युके पश्चात् जगत् उसको भूल जाता है। लेकिन उन महापुरुषोके बारेमे बात उल्टी है, जिन्होने किसी-न-किसी प्रकारसे मानव-जीवनपर अपना प्रभाव डाला है। दुनिया उन्हे उनके जीवन-कालकी अपेक्षा परलोकगमनके बाद ही ज्यादा याद करती और आदर देती है।

श्रीभाईजी ऐसे ही महापुरुष थे। आज वे परम धाम पहुँच गये हैं, लेकिन जनहृदयमे वे जीवित है। दुनियाके आदर-भावमे, भक्त-हृदयोकी मधुर-स्मृतिमे, वे चिरजीवी हैं। श्रद्धासमन्वित विनम्र भावसे भक्तजन उन महापुरुषके श्रीचरणोमे भाव-सुमन समर्पित करते रहेगे।

दैवी गुण-सम्पन्न श्रीभाईजीकी महिमाका वर्णन नहीं किया जा सकता। हम उन महामानवके कल्याणगुणो-का स्मरण करे तथा उन्हे अपने जीवनमे अपनानेकी कोशिश करे, इसीमे हमारी सफलता है। पूज्य भाईजीका मधुर स्मरण हमारे हृदयको पवित्रता प्रदान करे और प्रेम-मधुर बनावे, भगवान्‌से यह प्रार्थना है।

श्रीपोद्दार भाईका हृदय ईश्वर-प्रेम तथा मनुष्य-प्रेमसे पूर्ण था। सचमुच उनका हृदय एक 'प्रेम-समुद्र' था। ईश्वरप्रेम ही वे अपने जीवनका लक्ष्य और परम पुरुषार्थ समझते थे। 'कल्याण' तथा गीताप्रेसके विविध प्रकाशनोके रूपमे उन्होने जो साहित्य प्रदान किया है, उसमे उनके हृदयमे उठनेवाली भक्तिकी लहरे है, श्रीश्यामसुन्दरके चरणारविन्दमे समर्पित अपने हृदयकी प्रेम-कहानी है। भक्ति-मार्गावलम्वी पाठकगण भाईजीके भक्ति-साहित्यसे अत्यधिक प्रभावित होते आ रहे है। आपने ईश्वरोपासनाके रूपमे ही साहित्योपासना की है। साहित्य-सेवा-रूपी तपस्या आपने ईश्वर-दर्शनके लिये ही की। साहित्यकी सेवाके द्वारा श्रीपोद्दारजी जगत्के माया-मोहमे फँसे हुए, अपने लक्ष्यको भूलकर जीवन वितानेवाले जीवोको भगवान्के अभिमुख कर उनका उद्धार करते रहे है। वे वारवार चेतावनी देते रहे—

'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निवोधत'

'हे नरवीर! उठो, जाग्रत् हो जाओ, अपने लक्ष्यको प्राप्त करो, तवतक कही ठहरो मत।' लक्ष्य-प्राप्तिकी ओर, आत्मधाम पहुँचनेतक, अन्तर्मुख यात्रा करनेकी यह पुकार श्रुति-स्मृतियोमे हम सुनते आ रहे है। स्वामी विवेकानन्दने हमे इसे सुनाया है और आज यही पुकार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे हम सुन रहे है। प्राचीन ऋषि-मुनियोकी यही पुकार है, यही अनन्त-कल्याणगुण श्रीश्यामप्रभुकी पुकार है, भगवान्के प्रियतम भक्त श्रीनारद ऋषिकी पुकार है, गीता माताकी पुकार है, 'भक्ति-सूत्र'की पुकार है।

अपने अन्तर्मुख आध्यात्मिक जीवनसे, साहित्योपासनासे, स्वभावविशिष्टतासे, वहुमुखी प्रतिभासे, श्रीभाईजीने न केवल भारतीय सस्कृतिका पुनरुद्धार किया, वल्कि विश्वके कोने-कोनेमे आत्मीयता एव मानव-धर्मका सदेश पहुँचाया। इस प्रकार भगवद्भावसे जीव-सेवा करके वे भगवत्प्रेमका सदेश मानव-जातिके लिये छोड गये है। उन मनुष्य-प्रेमी एव ईश्वर-प्रेमीकी अमर कहानी दुनिया आज गा रही है। कल्याण-गुण-निधि भाईजीकी लोक-कल्याणकारक प्रेमधारासे हम सब आप्लावित हो जायँ, यही अन्तिम प्रार्थना राधापति श्रीश्यामगोपालके चरणारविन्दमे है। प्रात स्मरणीय श्रीभाईजीके श्रीचरणोमे ये श्रद्धा-सुमन समर्पित है।

श्रीमती सावित्रीदेवी मेनन, एम्० ए०
अभेदाश्रम, त्रिवेन्द्रम्

● ● ●

'कल्याण'के प्रारम्भिक वर्षसे ही एक लेखकके रूपमे मेरा श्रीपोद्दारजीसे जो परिचय हुआ था, वह इन ४५ वर्षोमे वढता ही गया। एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्वको अगाध आध्यात्मिकताके सानिध्यसे जो आस्तिकता, विश्वास और सहज सेवाकी उमडती भावना मिली, उसे श्रीपोद्दारजीने आत्मसात् किया और फिर 'कल्याण'द्वारा समाज और राष्ट्रके उन्नयनके सतत विकासमे लगा दिया। उनकी सौम्यता और शालीनता अद्भुत थी। पत्रोतकमे वह अपना प्रभाव डालती थी। गीताप्रेसके विशाल और भव्य प्रकाशनोद्वारा धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रमे उनका योगदान इस अर्ध-शताव्दीमे अप्रतिम रहा। हिदू-सस्कृतिके प्रचार-प्रसारमे उनकी वरावरी करनेवाली हस्तियाँ इस अर्ध-शताव्दीमे थोडी ही मिलेगी।

आजकी विभ्रान्ति और सक्रान्तिमे आदरणीय श्रीपोद्दारजीके जीवनकी प्रकाश-रश्मियाँ अधिकाधिक छिटके और गुमराही अँधियारेको कम करे!

वालकृष्ण वलदुवा
कानपुर

● ● ●

पोद्दारजीके निधनसे मुझे गहरा आघात लगा है। उनका स्नेहपूर्ण व्यवहार मुझे सदा स्मरण रहेगा। मेरे पत्रका उत्तर वे सदैव देते रहे। 'कल्याण'का नियमित पाठक होनेके कारण उनके आकर्षक व्यक्तित्वकी छाप मेरे जीवनपर इतनी गहरी पडी कि आज भी उनका साकार व्यक्तित्व मेरे चर्म-चक्षुओसे तिरोहित नही हो पा रहा है। मेरे परिवारके प्रत्येक व्यक्तिका 'कल्याण'के माध्यमसे उनसे गहरा लगाव है।

गीताके 'निष्काम कर्मयोग'की साकार प्रतिमास्वरूप श्रीपोद्दारजी राष्ट्रकी अमूल्य निधि थे। सनातनधर्म और हिंदू जाति उन्हे पाकर कृतार्थ हो गयी थी। आज उनका पार्थिव शरीर हमारे मध्य नही है, किंतु अपने यशस्वी कार्योद्वारा वे सदैव स्मरणीय रहेगे।

ब्रह्मानन्द शर्मा
एन० ए० एस० कालेज, मेरठ

● ● ●

श्रीभाईजीके जानेसे देशकी एक वडी क्षति हुई है। ऐसे आदर्श मानव विरले ही होते है। उनकी सेवाएँ वहुत ही महान् एव स्मरणीय रही है।

अगरचंदजी नाहटा
वीकानेर

● ● ●

तीस वर्षोसे कुछ अधिक समय हो गया होगा जव भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीका वनस्थलीमे आगमन हुआ था। उसका हेतु था अकाल-पीडितोकी सहायता करना, खासकर गोमाताके लिये घास-चारेकी व्यवस्था करना। उस समय उनकी कर्मनिष्ठा देखकर मै चकित हो गयी थी। वादमे मेरा उनसे साक्षात्कार नही हुआ, पर कृपा करके वे मेरे पास 'कल्याण' प्रतिमास भिजवाते रहे। 'कल्याण'के माध्यमसे मैने उनके प्रगाढ भक्तिभावको पहचाना। भाईजीके द्वारा 'कल्याण'के अनेक विशेषाङ्क समय-समयपर मेरे देखनेमे आते रहे और मेरा वह देखना मुझे समुद्रमन्थन-सा लगता रहा। आज यह लिखते समय मुझे मार्मिक वेदना होती है कि भाईजीका कुछ नया लिखा हुआ अव मेरे देखनेमे नही आ सकेगा। पुरानी सव सामग्रीके अवलोकनसे अवश्य ही उनकी स्मृति मेरे हृदय-पटलपर अङ्कित होती रहेगी। इन वाक्योंके साथ मैं श्रीभाईजीके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि सादर समर्पित करती हूँ।

श्रीमती रतनशास्त्री
उपाध्यक्ष,
वनस्थली विद्यापीठ

● ● ●

श्रीपोद्दारजी मेरे धर्मके भाई थे। भैया क्या थे और क्या नही थे? वे तो मेरे सव कुछ थे, भैयाके सहारे ही मेरी जिदगीकी नौका आजतक चल रही है। उन्होने मुझ वे-सहाराको सहारा दिया, मुझ गरीव अवलाकी पिता वनकर परवरिश की और माताकी तरह वे मेरा दुलार करते रहे। उनको मैंने माता, पिता तथा भाई—इन तीनों रूपोंमे देखा है। भैया मेरे अन्नदाता परमेश्वर थे। वे ही मेरे अँधेरे जीवनका उजाला थे। भैयाने मुझे कभी पराया न जाना। उन्हे हर तरहसे मेरी फिकर रहती थी। वे दीन-दुखियोके परमात्मा थे,

अन्नदाता परमेश्वर थे। जिस तरह भगवान् श्रीकृष्णजीने सुदामाको चाहा, उसी तरह भैयाने मुझे चाहा। भैयाने कभी जात-पाँतका फर्क न जाना। वे सनातनी हिंदू महात्मा थे, परतु उनका स्नेह, उनकी कृपा मेरे लिये अनमोल थी। उन्होने मुझे कभी मुस्लिम न माना, वे मुझे अपनी सगी वहिनकी भाँति और मेरे हर सकटको अपना समझकर सहायता करते रहे। उन्होने कभी मुझे निराश न होने दिया। हर समय, हर दुखमे वे भगवान् श्रीकृष्णका अवतार वनकर मुझ द्रौपदी वहिनके रक्षक वने रहे।

भैयाका जीवन हमारे लिये उस रोशनी देनेवाले दीयेकी मानिन्द है, जो खुद जलता है और दूसरोको रोशनी देता है। भैयाने भी अपना तमाम जीवन हम-जैसी अनाथ अवलाओ, दीन-दुखियो-गरीवोकी सेवामे विता दिया। वे वडे ही कृपालु और दयालु थे। भैयाने जिस किसीको दान दिया, उस दान देनेकी खवर उन्होने लोगोको तो क्या, अपने वाँये हाथको भी न होने दी। भैया एक महान् महात्मा, ऋषि थे, जो हजारो नर-नारियो और वच्चोको सत्य रास्तेपर चलाते थे, वे हजारो-हजारो इन्सानोके मार्गदर्शक थे। उनका जीवन चन्दनकी लकडीके समान था, जो हरेकको खुशवू देता था। भैया क्या थे? वे महात्मा भी थे, हमारे रक्षक भी थे, अन्नदाता भी थे। उन्होने सबकी मनसे, धनसे सेवा की। वे जगत्को भगवान्की अनमोल देन थे। भैयाका प्रेम गङ्गा नदीकी तरह पवित्र था, विशाल था, और गहरा था।

भैया आज चले गये—हमारा सर्वस्व खो गया है, हमने अनमोल रत्न खो दिया है। वह नायाव मोती छिन गया। वह उजियाला हमे अँधेरेमे छोडकर लुप्त हो गया। भैया, काश! भगवान् तुम्हे हमारी आयु देते। भैया, तुम जुदा नही हुए हो, तुम जिंदा हो, देखो, तुम्हारी आत्मा हमारेमे समायी हुई है। भैया, जवतक यह दुनिया रहेगी, तवतक तुम्हारा नाम अमर रहेगा। भैया, तुम हजारो भक्तोके दिलोमे समाये हुए हो, हर नर-नारीके दिलमे माता-पिता, वन्धु वनकर समाये हुए हो। भैया, हमारे रोम-रोममे तुम्हारा उपकार वसा हुआ है। हम तुम्हारे वताये हुए सच्चाईके पथपर चलेंगे, उस मार्गपर अपना जीवन अर्पण कर देगे। भैया, तुम्हारे चरणोमे यह गरीव दुखिनी वहिन श्रद्धाके फूल चढाती है।

वहिन शिरीन हैदरअली बोहरी
वेगमपेठ, शोलापुर

● ● ●

यद्यपि मैं श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका वहुत कम वार दर्शन कर सका था, तथापि उन्हे जानने, उनके प्रति सम्मान एव स्नेह-प्रदर्शनका मुझे एक वार अवसर प्राप्त हुआ था। उनकी विनम्रता तथा सभी धर्मोके सतोके प्रति आदरकी भावनाको देखकर मैं चकित रह गया। दीन-दुखी लोगोके प्रति उनके प्रेम और भगवान्मे उनके विश्वाससे मैं वहुत प्रभावित हुआ। वे अपने कमरेमे ईसाका भी एक चित्र रखते थे, जिससे उनके उदार दृष्टिकोणका परिचय मिलता है।

पी० जे० चाण्डी
सयुक्त अधीक्षक,
कुष्ठ-सेवाश्रम, कालीकट

● ● ●

श्रीभाईजीके जीवन और कार्यसे गत पीढीकी भाँति नयी पीढीके भी वहुत-से लोग प्रेरणा प्राप्त करेंगे। यह मेरा परम सौभाग्य रहा है कि उनके गोरखपुर-वासके प्रारम्भसे ही मैं उनके कुछ परोपकारपरक कार्योंसे सम्वद्ध रहा हूँ। मुझे अव भी उनके साथ अपनी प्रथम भेटका स्मरण है, जव हमलोग साथ-साथ गोरखपुरके

इर्द-गिर्द बाढ-पीडित लोगोमे गल्ला बॉटनेके लिये निकले थे। उसके बाद भी हम दोनोके मनमे एक दूसरेके प्रति बडा सम्मान था और मुझे हर्ष है कि अनेक मानव-हितके कार्योमे उन्होने मुझे अपना मित्र एव सहकर्मी समझा।

एम० ओ० वार्की
अवकाश प्राप्त प्राचार्य,
सेट ऐण्ड्रूज कालेज, गोरखपुर

● ● ●

वर्तमान शताब्दीके प्रारम्भिक कालमे सनातनधर्मको भीषण आघात पहुँच रहा था। हमारे धर्मके शाश्वत सत्य कुछ ही महात्माओके हाथमे थे। सामान्य जनताको हमारे धर्मके प्रस्थानत्रय--उपनिषदो, गीता तथा ब्रह्मसूत्रका दर्शनतक दुर्लभ था। दूसरी ओर बाइबल और ईसाई धर्मकी पुस्तके उन्हे उन्हीकी भाषामे सहज प्राप्त थी। अत आश्चर्यकी बात नही कि ये लोग ईसाई धर्मको ग्रहण करने लगे। ऐसी ही सकटकी घडीमे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हमारे बीच रक्षकके रूपमे अवतरित हुए।

जनतामे धर्मका प्रकाश फैलानेके लिये भगवान्ने श्रीपोद्दारजीको चुना था। उन्होने घर-घर प्रस्थान-त्रय और महापुराणोको पहुँचाया।

श्रीपोद्दारजी सच्चे वैष्णव और भगवत्कृपामे विश्वास करनेवाले व्यक्ति थे। वे जानते थे कि जो कुछ भी कोई व्यक्ति पा सकता है, वह केवल भगवत्कृपासे ही। व्यक्तिको कोई श्रेय नही, वह तो केवल प्रभुके हाथमे साधनमात्र है।

वे भगवान् श्रीकृष्णके भक्त थे। उन्होने गोपी-प्रेमपर एक पुस्तिका हिंदीमे लिखी, पीछे उसका अग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ। इसमे गोपी-प्रेमको, जिसका प्राय गलत अर्थ लगाया जाता है, बडे ही सुन्दर ढगसे समझाया गया है। गीताप्रेसमे मुद्रित गीता और विष्णु-सहस्रनाम नाम-मात्र मूल्यपर बिकते है। 'कल्याण'की भाँति अग्रेजी पत्रिका--'कल्याण-कल्पतरु' अग्रेजी-भाषी लोगोमे जनप्रिय है। धर्मशास्त्रोपर हिंदीमे लिखी गयी टीकाओका अग्रेजी अनुवाद 'कल्याण-कल्पतरु'मे प्रकाशित हुआ। इस प्रकार श्रीभाईजीने निष्ठापूर्ण एव नि स्वार्थ कार्यके द्वारा सनातनधर्मको साधारण व्यक्तितक पहुँचाया। वे उदार-हृदय थे। उन्होने कभी किसी दूसरे धर्मकी आलोचना नही की। उनका ध्यान सनातनधर्मतक सीमित था। इसलिये उनका विरोध नही हुआ। ख्याति और गौरवसे अपनेको अलग रख वे सदैव सादा जीवन बिताते थे। लेकिन ये दोनो--ख्याति और गौरव--उनका अनुगमन करते थे। सभी उनसे प्रेम और उनका आदर करते थे।

उनके माध्यमसे प्रभुने सनातनधर्मको पुनर्जीवित किया। उन्हे सौपा गया काम पूरा होनेपर भगवान्ने उन्हे वापस बुला लिया। हमे उनका काम चालू रखना है। उनके निधनसे हुई हानिकी मात्रा शब्दोमे व्यक्त नही की जा सकती।

जिस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भागवतके माध्यमसे वर्तमान है, उसी प्रकार पोद्दारजी गीताप्रेस और इसके मासिक 'कल्याण'के माध्यमसे जीवित रहेगे। हमारे धर्मरक्षकोके मध्यमे उन्हे उचित स्थान प्राप्त हो चुका है। उनके द्वारा प्रदर्शित प्रेम और आत्म-समर्पणकी भावना इस जीवनके दु खोसे पार पानेमे हमारी सहायक बने।

के० पी० प्रभाकरन् नायर
निजी सचिव,
पूज्यपाद श्रीसद्गुरुजी श्रीअभेदानन्दजी महाराज
अभेदाश्रम, त्रिवेन्द्रम्

● ● ●

अनैतिकताके तूफानमे पडे मानवता-जलयानोको नैतिकता-प्रकाश-स्तम्भ बनकर आजीवन सच्ची राह कौन सुझाता रहा है ?

अनास्था एव नास्तिकताकी आँधियो-पर-आँधियाँ आनेपर भी अडिग, आस्थावान् एव अविचल आस्तिकके रूपमे यह कौन सदा दर्शन देता रहा है ?

सकीर्णता-साम्प्रदायिकताकी दलदलमे असीम औदार्य एव विश्वप्रेमका नित्य-प्रफुल्ल कमल बनकर यह कौन खिलता रहा है ?

मानव अमानव नही, मानव बनकर, ईश्वरत्वको प्राप्त करे, चिर-कृतकृत्य हो—यह प्रेरणा स्वय मानव बनकर व्यावहारिकरूपमे प्राणिमात्रको पल-पल कौन देता रहा है ?

जन-जनको उसके तन-मनकी—कान ही नही—मन लगाकर सुन, सच्चे जीसे सच्ची सलाह दे, जगत्को अपूर्व आत्मीयतासे—सहज सहृदयतासे चिर-परिचित यह कौन भरता रहा है ?

भक्ति-भावनाकी मन्दाकिनी बनकर रस-विहीन एव शोक-सतप्त जनोको नित्यानन्द-भरा रस-स्नान यह कौन कराता रहा है ?

तत्त्व-ज्ञानके मोती ये किसकी लेखनीसे अविरल बिखरते रहे हैं ? कर्त्तव्यप्रेरणाके पुष्प ये किसकी लेखनीसे सतत झडते रहे है ?

ध्यान लगाकर, समाधिस्थ-से हुए देखे तो सभी प्रश्नोके उत्तरमे 'कल्याण'–सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका दिव्य-विग्रह सहज सामने आ जाता है।

नमन ! शत-शत बार नमन ! 'भाईजी'-जैसे आत्मीयतापूर्ण सम्बोधनद्वारा सम्बोधित किये जानेवाले उस चिर-प्रेरणा-प्रद, नित्यानुकरणीय, दिव्य-भव्य व्यक्तित्वको नमन !

हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'
दिल्ली

● ● ●

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जना ।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रय मुमोच निर्विद्य कुत कलेवरम् ॥
(श्रीमद्भागवत १।४।१२)

नैमिषारण्यमे ब्रह्मसत्रमे विराजमान परीक्षित्के स्मरणसे दु खी श्रीशौनकादिक ऋषिगणोने सूतजीसे प्रश्न किया—'भगवदीय उत्तमश्लोकपरायण जन जगत्के कल्याणार्थ जीते है, सासारिक सुख-भोगके लिये नही। फिर महाराज परीक्षित्ने क्यो निर्वेदवश देहत्याग किया ?' इस कथनसे स्पष्ट है कि ऐसे महापुरुष भगवत्प्रेरणावश ही विशेष कार्यके लिये आते है एव भगवदाज्ञा सम्पादित कर चले जाते है।

यही तथ्य श्रीपोद्दारजीके साथ भी जुडा हुआ है। मुझे स्मरण है, 'श्रीभागवत-भवन'के शिलान्यास-समारोहमे उन्होने उदार, धनी, धर्मप्राण जनताका आह्वान करते हुए आदेश दिया था कि 'वे अपनी सचित सम्पत्ति भागवत-धर्मवर्द्धन-कार्यमे लगाये, अन्यथा यो ही लुट जायगी।' आज उन्हीके उपदेशोका फल है कि श्रीकृष्णजन्मभूमि मथुरामे भव्य 'श्रीमद्भागवत-भवन'का निर्माण चल रहा है।

जिस प्रकार मनुस्मृतिकारने स्वय आचरण कर हमे उपदेश दिया, उसी प्रकार श्रीपोद्दारजीने सर्वदा स्वधर्मका आचरण कर उपदेश दिया।

श्रीकपिलदेवजीने माता देवहूतिजीके समक्ष भागवतोके जो लक्षण निरूपित किये है, 'कृपालुरकृतद्रोह' इत्यादि अथवा 'मय्यनन्येन भावेन भक्ति कुर्वन्ति ये दृढाम्'—सभी पोद्दारजीमे घटते थे। 'इष्टे स्वारसिको राग परमाविष्टता' का भाव श्रीभाईजीमे देखा जाता था।

उन्होने सद्गृहस्थोके घर-घरमे, गरीब-अमीर—सबके यहाँ, यही नही अन्यधर्मावलम्बियो तथा विदेशोमे भी गीता, रामायण एव धर्मग्रन्थोको बिखेर दिया है। आज भले उनका पाञ्चभौतिक शरीर नही है, परतु कीर्तिरूपसे वे इस धरापर विराजमान है। 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

नित्यानन्द भट्ट भागवतव्यास
वृन्दावन

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार भाईजीके चले जानेसे देशकी बहुत बडी क्षति हुई है। उस क्षतिके पूर्ण होनेकी कोई सम्भावना नही है। श्रीपोद्दारजीने जातीयता, धर्म, समाज-कल्याणकी भावना एव साहित्यका प्रचार देशके कोने-कोनेमे करके राष्ट्रकी बहुत बडी सेवा की। वे हमे सदाचारका उपदेश देते रहे और सत-महात्माओके हृदयरूपी कमलको सर्वदा विकसित करते रहे। वर्तमान युगमे सनातनधर्मकी नौकाको खेनेवाले एकमात्र भाईजी ही थे।

भाईजी सज्जनोके सच्चे भाई थे, उनके समक्ष बडे-बडे सत-महात्मा एवं विद्वान् जाकर अपने विचारोको रखते थे। देश-विदेशकी अनेक भाषाओके पवित्र ग्रन्थोके विचारोको वे 'कल्याण'मे प्रकाशित करते थे। इससे हिंदी भाषाकी बडी उन्नति हुई। श्रीभाईजीके समान नि स्वार्थ भावसे सेवा करनेवाला दूसरा व्यक्ति आज देशमे दिखलायी नही पड़ता।

श्रीभाईजीका व्यवहार इतना सुन्दर एव मधुर था कि वह दूसरोके हृदयको अपनी ओर बरबस आकृष्ट कर लेता था। शास्त्रोमे कहा गया है—

उदारचरिताना तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

वैसे ही भाईजीको यह जगत् कुटुम्बवत् ही प्रतीत होता था। श्रीतुलसीदासजीकी यह चौपाई उनके उदार गुणोको हमेशा याद दिलाती रहती है—

होहि कुठायँ सुबधु सहाए।
ओडिअहिं हाथ असनिहु के घाए॥

ऐसे कठोरकालमे भाईजी सद्ग्रन्थोका प्रचार करके देशको सत्पथका मार्ग हमेशा दिखाते रहे। सत्कार्य करते हुए लोगोको सत्कार्यकी प्रेरणा देते रहे।

हमारा भाईजीसे पुराना सम्पर्क रहा है। मैंने उनके यहाँ गीतावाटिकामे पद्रह दिन रहकर सत्सङ्गका लाभ उठाया, और वे अपने उदार स्वभाव और ब्रह्मण्यताके कारण तन, मन, धनसे हमारी सेवा करते थे। भाईजी अपने यशसे अमर है और उनका यश चिरकालतक जगत्का कल्याण करता रहेगा।

श्रीभाईजीका हृदय राधाकृष्णके प्रेमरससे सराबोर था। हमारा विश्वास है कि हमलोगोका हित करनेके लिये भगवान्के आदेशसे वे आये थे और अपना काम करके वे जहाँसे आये थे, वही चले गये।

श्रीभाईजी कल्पवृक्ष-स्वरूप थे। उनकी कीर्ति अवर्णनीय है।

नारायणकान्त व्यास
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार भारतके जाने-माने ख्यातनामा महापुरुष थे। गो-वधबदी आन्दोलनके विशाल आयोजनके अवसरपर वे बम्बई पधारे थे। उस समय उन्होने जो मनोमोहक, सारगर्भित और विद्वत्तापूर्ण प्रवचन दिया था, जनतापर उसकी गहरी छाप पडी थी।

श्रीपोद्दारजी बिल्कुल देहभावसे रहित, निरहकारी, कर्तव्यपरायण और महान् कर्मयोगी थे। 'कल्याण'की डेढ लाखसे ऊपर प्रतियाँ प्रकाशित हो रही है, यह उनकी विद्वत्ता, कार्यदक्षता एव अटूट निष्ठाका ही प्रतीक है।

आपने पुस्तकोद्वारा धर्मका प्रचार इतना सुलभ और सरल बना दिया कि निर्धन एव कम आयवाले व्यक्ति भी उसका लाभ ले सके। यह देखकर आश्चर्य होता है कि हिंदी अनुवाद-सहित गीता ढाई आनेमे मिलती है। श्रीपोद्दारजी आजके युगमे सफेद कपडोमे रहनेवाले एक दिव्य महापुरुष थे, जिनके आदर्श जीवन एव कार्य हमे सदा प्रेरणा देते रहेगे।

हरिकिशनदास अग्रवाल
बम्बई

● ● ●

श्रीभाईजी और श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी युगल जोडीने हिंदू-धर्मकी और हिंदू-समाजकी जो सेवा की है, उसका मूल्य कौन आँक सकता है? कितने लोगोके साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध था, कितने लोगोकी उन्होने सहायता की है, इसका हिसाब तो शायद स्वय उन दोनोको भी नही मालूम होगा। गुप्त सहायता, व्यक्तिगत परामर्श आदिकी बात जाने दीजिये, प्रकटरूपमे उनका प्रकाशन-कार्य ही इतना महान् है कि उसे देखकर बरबस सिर झुक जाता है। गीता, रामायण, महाभारत आदि आर्षग्रन्थोको सर्वसुलभ बनाना, इतना सस्ता करना कि गरीब-से-गरीब पाठक भी उन्हे प्राप्त कर सके, अपने आपमे एक बहुत बडा काम है।

मै व्यक्तिगतरूपसे ऐसे बहुत-से अधिकारी व्यक्तियोको जानता हूँ, जो पैसा न होनेके कारण इन ग्रन्थोसे लाभ न उठा सकते थे। ऐसे लोगोके बारेमे जब कभी भाईजीको पता लगता, तब पुस्तके 'उपहार-स्वरूप' उनके पास पहुँच जाती और वह भी इस तरह मानो लेनेवाला उन्हे स्वीकार करके भाईजीपर उपकार कर रहा हो। उनमे कामकी लगन थी, कार्यक्षमता थी, और इन दोनोके साथ जो चीज साधारणत नही दिखायी देती, वह भी थी—विनय।

एक आर्यसमाजी होनेके नाते बचपनमे मुझे भाईजीके लिये जरा भी आकर्षण न था। एक बार सुना, उनकी टोली कीर्त्तन करनेवाली है। लडकपन तो था ही, सोचा—चले, तमाशा देख आये। लेकिन उस तमाशेका ऐसा गम्भीर प्रभाव पडा कि आज पैंतीस-चालीस वर्ष बाद भी भाईजीकी मुद्राको भुलाया नही जा सकता। कीर्त्तन क्या था, अमृत-वर्षा थी।

उनके बारेमे लिखनेको बहुत कुछ लिखा जा सकता है। यही इच्छा उठती है कि गीताप्रेस श्रीभाईजीके पथपर चलता हुआ भगवान्की सेवामे अधिक-से-अधिक लगा रहे, मत-मतान्तर-वाद आदिसे ऊपर उठकर शुद्ध-रूपसे भगवान्की निश्छल सेवा करे और दूसरोको भी प्रेरणा देता रहे। यही भाईजीको सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।

श्रीरवीन्द्रजी
सम्पादक—'पुरोधा' एव 'अग्निशिखा', पाण्डिचेरी

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीके परलोकगमनसे हिंदू-समाजकी अपूरणीय क्षति हुई है। उन-जैसे तपोनिष्ठ, निरहकारी, अनासक्त, धर्म-सेवी महापुरुष ससारमे बहुत ही दुर्लभ है। वे आधुनिक भारतमे हमारी सास्कृतिक फुलवाडीके अद्वितीय पुष्प थे।

जगदीश्वरसे प्रार्थना है कि उन-जैसे निष्काम धर्म-सेवी आत्माओको जन्म दे, ताकि श्रीपोद्दारजीका भारतके अभ्युत्थानका अधूरा स्वप्न पूर्ण हो सके।

हरबंशलाल ओबेराय
निदेशक—सस्कृति विहार, राँची

● ● ●

सनातनधर्मके अनन्य सेवक, विश्वविश्रुतकीर्ति श्रीभाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार यद्यपि पार्थिव शरीरके रूपमे आज हमलोगोके बीच नही है, तथापि विश्वमे सनातन सस्कृतिके प्रचारके लिये प्रारम्भ किया गया उनका महान् कार्य 'कल्याण' एव 'गीताप्रेस'के रूपमे आज भी जन-जनके समक्ष उनके विराट् व्यक्तित्वका परिचय दे रहा है।

पाश्चात्त्य शिक्षा-दीक्षित नेताओके प्रभावसे जो नास्तिकता एव स्वच्छन्द आहार-विहारकी प्रवृत्ति देशमे फैलने लगी थी, स्कूल-कालेजोके विषाक्त वातावरणसे देशमे जो जहर फैल रहा था, उसके विरुद्ध सशक्त साहित्यके सृजन एव प्रचारका श्रेय श्रीपोद्दारजीको ही है। 'वर्तमान शिक्षा' नामक उद्बोधक पुस्तिका प्रकाशितकर पोद्दारजीने देशके भावी नवयुवकोको पतनके गर्तकी ओर जानेसे रोकनेके लिये प्रबल प्रयत्न किया। अपने समयमे यह पुस्तिका बडी लोकप्रिय सिद्ध हुई। इसके बाद तो गीताप्रेसकी ओरसे जो सृजनात्मक एव प्रेरणादायक साहित्य तथा गीता, रामायण, पुराण, महाभारत आदि सनातन साहित्यके सस्ते और प्रामाणिक सस्करण निकलकर भारत ही नही, विश्वके कोने-कोनेमे पहुँचे—यह सर्वविदित तथ्य है।

पोद्दारजीके जीवनका उत्तरार्ध सर्वथा देश एव धर्मको समर्पित हो गया था। वे एक व्यक्ति नही, किंतु सस्थारूप हो गये थे। देशके किसी भी भागमे दैवी आपत्ति आयी कि पोद्दारजी उसके प्रतिकारकर्त्ताओकी श्रेणीमे सबसे आगे पाये जाते थे। कोई धार्मिक आयोजन हो, पोद्दारजी उसके बने-बनाये सरक्षक थे। गोरक्षाभियान चला तो सर्वसम्मतिसे उसके कोषाध्यक्ष पोद्दारजी हुए। अभियान-समितिके पास कोष चाहे न था, परतु उनको कोषाध्यक्ष बनाकर गो-हितैषी-जन आश्वस्त हो गये कि अब पैसेके अभावमे कार्य न रुकेगा। हुआ भी यही। पैसेके अभावमे गोरक्षा-आन्दोलन नही रुका। ऐसे लोकप्रिय, सनातन सस्कृतिके प्रबल प्रचारक एव श्वेत वस्त्रोमे रहनेवाले महान् सतके चले जानेसे धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्रोमे अपूरणीय रिक्तता आ जानी स्वाभाविक है।

श्रीकण्ठ शास्त्री, एम० ए०, एम० ओ० एल्०
सम्पादक—'लोकालोक' मासिक

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार देशके ऐसे महान् व्यक्ति थे, जिनके जीवनका एक विशिष्ट उद्देश्य था और उस उद्देश्यको उन्होने जीवनमे पूर्णतया चरितार्थ करके दिखाया। देशमे आध्यात्मिक वातावरणके विस्तारमे श्रीपोद्दारजीका नाम एव कार्य सदा स्मरण किये जायँगे। उन्होने गीताप्रेसकी धार्मिक पुस्तको और 'कल्याण' पत्रके माध्यमसे धार्मिक और सास्कृतिक जागरणका महान् कार्य किया। वे स्वय सस्था थे।

रामगोपाल माहेश्वरी
सचालक—'नवभारत' नागपुर

● ● ●

परम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीके परलोकगमनसे केवल भारतवर्षने ही नही, समस्त धार्मिक जगत्ने एक महान् निधिको खोया है। वे एक ऐसी निधि थे, जिसका पर्याय इस युगमे प्राप्त होना यदि सर्वथा असम्भव नही तो परम दुर्लभ अवश्य है। जहाँतक मैने उनके व्यक्तित्वका अध्ययन किया, वे एक परम भागवत, महान् आत्मा, परम विरक्त एव निष्काम कर्मयोगी थे। उनका सारा जीवन परोपकारमे ही बीता। धन-वस्त्रादिक देकर दु ख-दारिद्रयको दूर करना भी अवश्य परोपकार नामसे अभिहित हो सकता है, किंतु श्रीभाईजीका परोपकार वह परोपकार है, जिसके द्वारा उपकृत होकर जगत्के असख्य जीवोने इस क्षण-भगुर जगत्के भोग-पदार्थोको लात मारकर समस्त दु खोके मूल माया-बन्धनसे छुटकारा पाया और परमानन्दमय परमार्थपदकी प्राप्ति की है। अनेक भूले-भटके अशान्त जीवोको सत्-शास्त्रोके अध्ययन करनेका सुअवसर श्रीभाईजीके 'कल्याण'से प्राप्त हुआ और उनका जीवन परमार्थ-पथका पथिक बन गया।

उनकी लेखनी एव वाणीमे एक महान् शक्ति थी। उसका कारण यही था कि वे जो कहते थे, लिखते थे, स्वयं भी वैसा ही आचरण करते थे। अति प्रखर विद्वान् होते हुए भी वे विद्याभिमानशून्य, परम विनीत एव सरल स्वभावके थे। जिस समय मैं श्रीचैतन्यचरितामृतका हिंदी अनुवाद कर रहा था, मुझे उनके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बँगला-साहित्यके विषयमे, विशेषत श्रीचैतन्यचरितामृतके कुछ भक्तिसिद्धान्तोपर बहुत देरतक विचार-विमर्श हुआ। मैंने अनुभव किया कि उनकी श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्ण-चैतन्यके सिद्धान्तोमे पूर्ण निष्ठा थी एव उन्हे श्रीचरितामृतके अनेक पयार कण्ठस्थ भी थे।

सत्-शास्त्रोकी प्रचार-सेवाके लिये वे भगवद्धामसे यहाँ पधारे थे और उस सेवाको सम्पन्नकर पुन नित्य-लीलामे ही वे निस्सदेह लीन हो गये है।

श्यामलालजी हकीम
सम्पादक—'श्रीहरिनाम',
वृन्दावन

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके चले जानेसे अध्यात्म-जगत् सूना हो गया है। उन्होने 'कल्याण'के माध्यमसे धार्मिक जगत्मे बडी-से-बडी क्रान्ति की, गीताप्रेससे बडे-से-बडे भारतीय ग्रन्थ सस्ते मूल्यमे प्रकाशित करके आस्तिक भावोका प्रचार किया। श्रीपोद्दारजी भाषण और लेखनमे भी बडी प्रतिभा रखते थे। वे रुग्णावस्थामे भी जितना कार्य करते थे, उतना स्वस्थ व्यक्ति भी नही कर सकता। वे कर्मयोगी भक्त थे।

गोपालदत्त शर्मा, ज्योतिःशास्त्री
मण्डावा (राजस्थान)

● ● ●

भाईहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन असाधारण पुरुषोमेसे थे, जिनका व्यक्तित्व लेखनीका विषय उतना नही है, जितना अनुभवका। इस बातके वे सभी लोग साक्षी है, जिन्हे क्षणभरके लिये भी उनके सम्पर्कमे आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वे स्वभावसे इतने सरल और स्नेही थे कि प्रत्येक व्यक्ति उनके निकट आते ही उनसे बन्धुत्वका अनुभव करने लगता था। वे वास्तवमे जगत्-बन्धु थे। इसीलिये लोग उन्हे 'भाईजी' कहकर पुकारा करते थे। जनमात्रके दु खमे दु खी होना उनका नैसर्गिक गुण था। महात्मा गाधीके प्रिय गीत 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जो पीड पराई जाणे रे' के अनुसार वे सच्चे वैष्णव थे।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोकके अनुसार स्वय सर्वमान्य होते हुए भी वे अमानी थे और हृदयसे सबका सम्मान करते थे। अपने असाधारण व्यक्तित्वसे प्रभावित असख्य लोगोके हृदय-सम्राट् होते हुए भी वे अपनेको सबसे तुच्छ मानकर सबकी सेवामे तन-मनसे नियुक्त रहते थे। इतनेपर भी यदि कोई उनके साथ कटु व्यवहार करता था तो 'तरोरिव सहिष्णुना'का परिचय देते थे।

भाई हनुमानप्रसादजीके निधनसे जो क्षति हुई है, उसका मूल्याङ्कन करना आसान नही। सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, राजनीतिक और साहित्यिक—सभी क्षेत्रोमे उनका योगदान असाधारण रहा है। इसलिये इन सभी क्षेत्रोमे हम उस क्षतिका अनुभव करते रहेगे। पर सबसे अधिक उस क्षतिका अनुभव करेगे 'कल्याण' पत्रिकाके देश और विदेशोके असख्य पाठक, जिन्हे उनसे प्रेरणा मिलती रहती थी और जो आधुनिक जगत्मे छाये नास्तिकता, निरङ्कुशता, निर्लज्जता और निराशावादिताके घटाटोप अन्धकारमे उन्हे एक आलोक-स्तम्भके रूपमे देखते थे।

हम उन्हे श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकते है उन कल्याणकारी कार्योमे लगे रहनेके लिये कृतसकल्प होकर, जो उन्हे प्राणोसे भी अधिक प्रिय थे और जिनमे वे आजीवन तन-मनसे लगे रहे। वे है—

(१) आस्तिकवाद और सनातनधर्मका प्रचार
(२) गिरी हुई नैतिकताके मूल्योका सस्थापन
(३) भारतीय सस्कृतिका सरक्षण
(४) गोवध-निवारण
(५) सस्ते और सुन्दर धर्मग्रन्थ एव पत्रिकाओका प्रकाशन
(६) भक्तिका प्रसार और
(७) हरिनाम-सकीर्तनका प्रचार

डा० अवध बिहारी लाल कपूर
वृदावन

● ● ●

पूज्य श्रीभाईजी अद्भुत कोटिके परम भागवत तथा निष्ठावान् थे। इस ससारमे जैसे नामदेव, तुकाराम, एकनाथ आदि सत हो चुके है, वैसे ही श्रीभाईजी थे और उनकी निष्ठा उन सतोसे कम नही थी। श्रीभाईजी सिद्धान्तके पक्के थे। वे दूसरेकी सम्पत्तिको विपके समान समझते थे। परोपकारके कार्योके लिये भी वे जिसको अच्छी तरह जानते थे तथा जो उनको अच्छी तरहसे जानता था, उसीके साथ अर्थका सम्पर्क रखते थे। उनके पास परोपकारके लिये अर्थ भेजनेवाला वडे हर्षसे, सशयरहित होकर भेजता था, कारण, वह जानता था कि पूज्य श्रीभाईजीके हाथसे हमारी पाई-पाई अच्छे कार्यमे लगेगी। उनकी दैनिक क्रिया सच्चे भक्तोके माफिक थी, इसे हमने गोरखपुरमे रहकर अनुभव किया था। हमारी समझसे उनके लिये जो कुछ कहा जाय, वह थोडा है।

पूज्य श्रीभाईजी और पूज्य श्रीहरिवावाजीके रूपमे इस ससारसे दो दीपक बुझ गये। हमने थोडा 'भक्तमाल' देखा है। मगर पूज्य श्रीभाईजी एव पूज्य श्रीहरिवावाजीकी भक्तिके विषयमे लिखना हमारी सामर्थ्यसे वाहर है। दोनो महात्माओके चरणोमे मै दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। दोनो महापुरुष इस दासको अपना आशीर्वाद दे, जिससे इसका मन भी प्रभु-चरणोमे अधिक-से-अधिक लगे।

सेठ आत्मासिह जेस्सासिह
वम्बई

● ● ●

श्रीपोद्दारजी भारतकी उन श्रेष्ठतम विभूतियोमे एक थे, जिन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय सस्कृति, इतिहास एवं साहित्यको सार्वजनिक भापामे अत्यन्त सरल पद्धतिसे जन-जनतक पहुँचानेमे विताया। हम ऐसे

महापुरुषका चरितानुसधान करते हुए आत्म-विभोर हो जाते है। इन महापुरुषका समग्र जीवन-व्यापार अनुपम प्रेरणाका स्रोत बना रहेगा।

हरिराम अग्रवाल
इलाहाबाद

● ● ●

गोलोकवासी लाला हरदेवसहायजीके साथ गोरक्षा-आन्दोलनमे सलग्न रहनेके कारण मुझे अनेक बार पूज्य श्रीपोद्दारजीके पास जाने और उनके दर्शन करनेका सुयोग प्राप्त हुआ। श्रद्धेय भाईजीने गोरक्षा-आन्दोलनमे जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है, वह कभी भुलाया नही जा सकेगा। वे अत्यन्त उदारवृत्तिके महापुरुष थे। उनके पाससे कोई व्यक्ति निराश नही लौटता था। मै उनके स्नेह और कृपाको कभी नही भुला सकूँगा। उनके निधनसे राष्ट्रकी भारी क्षति हुई है। मै उनके प्रति अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

सुखदेव सिह
दिल्ली

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके जानेसे 'कल्याण'-परिवारकी ही नही, समूचे हिंदूसमाजकी अपरिमित हानि हुई है—धर्म-परायण जनतापर वज्रपात हुआ है।

मा० पा० डेग्वेकर
सगठन मन्त्री—विश्व हिंदू-परिषद्

● ● ●

आजके चारित्र्यशून्य और धर्मग्लानिके वातावरणमे पोद्दारजी दीपस्तम्भ-से खडे थे। उनका निःस्वार्थ और निरपेक्ष सेवाभाव सदैव अध्यात्मकी ओर मार्गदर्शन करता रहा, मानो उनके जीवनमे अध्यात्म ही साकार हुआ था। उनका परलोकगमन समाजमे एक प्रकारका अभाव उत्पन्न कर गया है, किंतु उनकी प्रेरणा हमको हमेशा सत्कार्यों-की ओर प्रवृत्त करेगी। वे स्वय मुक्त थे और अपने जीवनसे उन्होने अन्योको भी मुक्तिकी ओर अग्रसर किया।

श्रीपोद्दारजीने वाङ्मयरूपसे जो अपार उपदेश-भडार हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, वह अक्षय है। आजके युगमे उनका 'कल्याण' अवश्यमेव कल्याणकारी सिद्ध हुआ है। वह स्फूर्ति भूली नही जा सकेगी। इतना सस्ता साहित्य और वह भी किसी प्रकारके विज्ञापनोके विना—इस कार्यकी दैवी गुण-सम्पदाकी ओर निर्देश करता है। उनके द्वारा सम्पादित धर्म-प्रचार और प्रसार इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ है कि उससे हमारे असख्य भले-भटके भाई-बहन ठीक रास्तेपर आये है।

जशपुरनगर-स्थित 'कल्याण-आश्रम'पर तो श्रीपोद्दारजीका आन्तरिक प्रेम एव कृपा रही। उनका शुभा-शीर्वाद हमारा आत्मबल बन चुका है। 'कल्याण-आश्रम' पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी पावन स्मृतिमे हमेशाके लिये नतमस्तक है—ऋणी है।

र० के० देशपाडे
अध्यक्ष,
'कल्याण-आश्रम'
जशपुरनगर, रायगढ

● ● ●

श्रीभाईजीके परलोक-गमनसे अत्यन्त दुख हुआ। धर्ममार्गपर चलनेवालोका प्रेरक और पथ-प्रदर्शक सूर्य अस्त हो गया। मेरे तो वे परम आत्मीय थे और मुझपर वडी कृपा रखते थे। उनके स्नेहकी छत्रछाया बहुत दूरसे भी सासारिक तापोके कष्टको सुसह्य बना दिया करती थी। उनके विना मै अपनेको सर्वथा निराधार अनुभव कर रहा हूँ। परमात्माके सतत स्मरणका उनका आदेश ही अब तो एकमात्र अवलम्ब रह गया है।

बिरदीचन्द पोद्दार
नागपुर

● ● ●

श्रीपोद्दारजी परम धार्मिक, परोपकारी, सहृदय एव परम विद्वान् व्यक्ति थे। उन्होने अपना समस्त जीवन दूसरोका दुख सुनने एव उनकी भलाई करनेमे ही व्यतीत किया। वे भगवान्‌के प्रेमी और गोरक्षा-आन्दोलनके प्रमुख सेनानी थे। हिंदी भाषाके प्रति उनका अगाध प्रेम था। देशके लिये स्वतन्त्रता-सग्राममे भी उन्होने बहुत बडा कार्य किया था। उनके निधनसे धार्मिक जगत् एव देशकी जो महान् क्षति हुई है, उसकी पूर्ति निकट भविष्यमे कदापि सम्भव नही है।

हरिकृष्ण झाझडिया
कलकत्ता

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके परलोक-गमनसे हमारे देश और समाजकी अवर्णनीय क्षति हुई है, देशके सभी मनीषी इसे स्वीकार करते है। भाईजीका समस्त जीवन मानव-कल्याणसे ओत-प्रोत रहा है। उन्होने गीताप्रेससे अनेक धार्मिक, आत्मज्ञानसे परिपूर्ण अलभ्य ग्रन्थोका प्रकाशन कर हिंदू-धर्म एव हिंदू-सस्कृतिके सरक्षणमे बहुत बडा योगदान किया है, जिसे भुलाया नही जा सकता। उनके व्यावहारिक तथा साधनात्मक जीवनके वास्तविक स्वरूप एव लोक-सग्रही व्यक्तित्वसे देश और विदेशके असख्य पाठकोने प्रेरणा प्राप्त की है।

'कल्याण'के माध्यमसे भारतीय सस्कृति और साधनाके महत्वका विश्वके कोने-कोनेमे प्रचार-प्रसार करके भारतीय सस्कृति, धर्म तथा आत्मज्ञानकी ओर जन-मानसका ध्यान आकृष्ट करनेमे भाईजीने अद्वितीय काम किया है।

भाई हनुमानप्रसादजीके सरल व्यवहार एव मिलनसारतापर उनसे साक्षात्कार करनेवाले मुग्ध रहते थे। जहाँ पोद्दारजी एक कुशल व्यवसायी तथा अनुभवी सचालक एव सम्पादक थे, वही सद्‌वृत्ति, परिपक्व ज्ञान, चरित्र-निष्ठा एव आत्मज्ञानसे भी वे परिपूर्ण थे। यही कारण था कि भगवद्‌भक्त, आत्मज्ञानी, उच्चकोटिके विचारक एव तत्त्वज्ञानी साधु-संतो तथा विद्वानोका समागम सदा ही उनके यहाँ हुआ करता था। उनके सुकार्योका वर्णन अथवा मूल्याङ्कन करना सम्भव नही। वे देश और समाजपर अपनी अमिट छाप छोड गये है, जो सहस्रो वर्षोतक हमारे मानस-पटलपर अङ्कित रहकर प्रेरणा देती रहेगी।

उन्होने जिस मशालको जलाकर मानवमात्रका मार्ग-दर्शन किया है, वह जलती रहे---इसके लिये हमे सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

किशोरीलाल ढांढनिया
कलकत्ता

● ● ●

श्रीभाईजीने धार्मिक पुस्तकोके लेखन एव प्रकाशनका जो काम किया है, उससे हिंदू-सस्कृतिके उन्नयनमे बहुत बडा सहयोग मिला है।

श्रीभाईजी एक उदारमना परोपकारी भगवद्भक्त थे। उनके हृदयमे स्वार्थ कभी नही रहा। वे जब भी मिलते थे, अत्यन्त प्रसन्नचित्त नजर आते थे। किसीकी बुराई वे कभी नही करते थे, अपितु यथासम्भव दूसरोकी भलाई ही करते थे। मैं एक बार श्रीमोहनलालजी जालानद्वारा निर्मित स्कूलके उद्घाटनके अवसरपर रतनगढ गया था। उस समय श्रीभाईजी वहीपर थे। मैं उनसे उनकी हवेलीपर मिलने गया। उनका मैने अत्यन्त सादगीपूर्ण रहन-सहन देखा। वे वहाँ भी भगवत्-चिन्तनमे रहते थे। उनके लिखनेकी शैली अत्यन्त प्रभावपूर्ण थी। उनके द्वारा लिखी हुई पुस्तकोसे जनसाधारणका एव देशका बहुत उपकार हुआ है। भाईजीने अनेक विषयो-पर अच्छी धार्मिक पुस्तके लिखी है, जिन्हे पढनेसे हमारी धार्मिक विचार-धाराको बडा बल मिलता है।

श्रीभाईजीका शरीर आज हमारे बीच नही है, लेकिन वे जो काम कर गये है, उनसे वे अमर रहेगे।

राधाकृष्ण कानोडिया
कलकत्ता

● ● ●

परमपूज्य भाईजीके सम्बन्धमे क्या लिखूं, क्या न लिखूं ? मैं तो उनका ही था। उनका पितृतुल्य वात्सल्यप्रेम जीवनभर भूल न सकूंगा। आज मैं अनाथ हो गया हूँ। भविष्यमे क्या होगा, यह श्रीराधामाधव ही जाने। वैसे हमारे परिवारका श्रीभाईजीसे सन् १९२३-२४से घर-जैसा सम्बन्ध था। मेरे ताऊजी श्रीबिहारीलालजी पोद्दार एव मेरे पिताजी श्रीजमनादासजी पोद्दारने श्रीराधाधाम, बरसानामे जो मन्दिर, भवन, बाग एव अन्य स्थान सन् १९३७-३८मे निर्माण करवाये थे, उसमे श्रीभाईजीकी प्रेरणा ही हेतु थी।

श्रीभाईजीके स्वभावकी यह बडी विचित्रता थी कि जिसे उन्होने एक बार अपना कह दिया, उसे जीवनभर अपना मानते रहे, कभी उसके व्यवहार एव बर्तावको नही देखा।

दिल्लीमे 'श्रीराधिका सेवक समाज'की स्थापनामे श्रीभाईजीका आशीर्वाद एव परामर्श मुख्य रहा है।

हम सबका परम कर्त्तव्य है कि श्रीभाईजी जो मार्ग बता एव दिखा गये है, उसपर चले और मानव-जीवन-के चरमलक्ष्यको प्राप्त करे।

कपूरचन्द पोद्दार
सस्थापक—श्रीराधिका सेवक समाज,
दिल्ली

● ● ●

भक्त-शिरोमणि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे हिंदू-सभाज और हिंदू-सस्कृतिके एक पुनरुद्धारकका अभाव न केवल सनातनधर्म-प्रेमियोको अनुभव हो रहा है, प्रत्युत उन सभी व्यक्तियोको यह रिक्तता अनुभव हुए बिना न रहेगी, जिन्हे हिंदू-धर्म और मानव-धर्मसे कुछ भी लगाव है। उन्होने केवल धार्मिक क्षेत्रमे ही अपनी प्रतिष्ठा स्थापित नही की, बल्कि सामाजिक एव मानवीय क्षेत्रोमे भी उनकी सेवाओको आनेवाली पीढियाँ सदा आदरसे स्मरण करती रहेगी। उन्होने पश्चिमके प्रभावसे निरन्तर पतनोन्मुख भारतीय समाजको गीताके आदर्शोका पाठ पढाकर न केवल पतनसे रोकनेका श्लाघ्य प्रयत्न किया, प्रत्युत भौतिकतावादी पश्चिमको भी गीताकी अमूल्य आध्यात्मिकतासे प्रत्यक्षरूपमे प्रभावित किया।

उनके निधनसे भारतीयताका एक आधारस्तम्भ, एक सम्बल हमारे बीचसे उठ गया।

वैद्य ओकारप्रसाद शर्मा
दिल्ली

● ● ●

पूज्य भाईजीके निधनसे भारतकी ही नही, विश्वकी धार्मिक जनताको भारी ठेस लगी है। 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु'से भाईजीने विश्वभरमे प्राचीन ज्ञान-भक्तिका जो सागर बहाया है, वह श्रीराधामाधव उसी प्रकार बहाते रहे, जिससे कोटि-कोटि जन लाभान्वित होते रहे।

गीताप्रेसके द्वारा सस्ती एव सरल धार्मिक पुस्तके लाखोकी सख्यामे प्रकाशितकर उन्होने वर्तमान कलियुग-को सतयुगका रूप दिया—यह धार्मिक इतिहासमे स्वर्णाक्षरोमे लिखा जायगा।

हम सब उनके चलाये मार्गपर चलते हुए अपनी एव जन-मानसकी सेवा करे तो मेरी समझमे यह सबसे उचित श्रद्धाञ्जलि होगी।

नाथूराम पोद्दार
मन्त्री—राजस्थानी हरियाणवी समाज,
दिल्ली

● ● ●

विश्वके सभी धर्मोमे सनातनधर्म सबसे पुराना धर्म है। इसमे जितने शास्त्र एव स्मृतियाँ है, उतने अन्य धर्मोमे उपलब्ध नही है। प्राचीन ग्रन्थ प्राय सस्कृतमे है। उनका सुबोध हिंदीमे अनुवाद तैयार करवाकर प्रकाशित करना बहुत ही महान् कार्य है। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने यह सब कार्य किया। वास्तवमे उनके जीवनका यह एक महान् लक्ष्य रहा। श्रीपोद्दारजीकी यह सनातनधर्मके लिये बहुत बडी देन है। श्रीपोद्दारजीने देशवासियोकी आर्थिक क्षमताका भी ध्यान रखा। इसलिये प्रकाशन इतने कम मूल्यपर लोगोको उपलब्ध कराये कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हे आसानीसे खरीदकर पढ सके। सनातनधर्मकी ऐसी सेवा इस युगमे और किसीने नही की। श्रीपोद्दारजी इस प्रकारके आदर्शके प्रमुख प्रेरक एव प्रसारक थे। हमारे देशका ढाँचा अब ऐसी करवट बदल रहा है कि इसमे इस प्रकारके नि स्वार्थ भावसे कार्य करनेवाले कैसे रह सकेगे। श्रीपोद्दारजी-जैसे व्यक्ति अब इस देशको कहाँ मिलेगे ?

श्रीपोद्दारजीके कार्योकी प्रशसा शब्दोमे नही की जा सकती, उनके प्रति हम केवल हृदयसे ही श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर सकते है।

ब्रजभूषण
प्रधान, हिंदुस्तानी मरकटाइल एसोसिएशन,
दिल्ली

● ● ●

प्रभु-प्रेरणासे समय-समयपर इस ससारमे ऐसे महापुरुषोका प्रादुर्भाव होता रहता है, जिनके दर्शनमात्रसे महान् पातकी भी अपना तामसी स्वभाव छोडकर परम सात्विक हो जाते है। पूज्य श्रीभाईजी ऐसे ही परम सत थे। उनके सङ्ग एव आशीर्वादसे 'गरल सुधा', 'गोपद सिन्धु' तथा 'अनल सितलाई' हो जाते थे—यह बात मै अपने अनुभवके आधारपर लिख रहा हूँ। उनके प्रवचन सुननेसे न जाने कितने व्यक्तियोके जीवनमे परिवर्तन आया है। मेरे जीवनपर उनके प्रवचनका बहुत प्रभाव पडा है।

श्रीभाईजीका जीवन–'परहित सरिस धरम नहि भाई'का ज्वलन्त उदाहरण था। उन्होने अपना सर्वस्व जाति, धर्म, समाज एव देशपर न्योछावर कर दिया था। हमलोग दिल्लीमे प्रतिवर्ष 'श्रीभगवन्नाम सकीर्तन महा-सम्मेलनका' आयोजन करते है। यह महोत्सव पूज्य श्रीभाईजीकी ही देन है। श्रीभाईजीकी विमल कीर्ति ससार सदा गाता रहेगा।

हजारीलाल कौशिक
सस्थापक—श्रीभगवन्नाम सत्सग समाज,
दिल्ली

● ● ●

भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार अब नही रहे। एक दुर्लभ विभूति हमारे बीचसे उठ गयी। उनका जीवन जाह्नवीकी धाराके सदृश पवित्र था। सहस्रो वर्षोसे सचित भारतीय धर्मशास्त्रोकी अपार और अमूल्य निधिको 'कल्याण'के माध्यमसे कोटि-कोटि जन-मानसके लिये सहज और सुगम बनाना भाईजी-जैसे तपस्वी व्यक्तिके लिये ही सम्भव था। हनुमानप्रसादजीके कार्यकी तुलना यदि किसी अन्य महापुरुषके कार्यसे की जा सकती है तो वे केवल रामभक्त हनुमान् ही हे। जिस प्रकार सिन्धुको लाँघकर महादेवी सीताकी खोज लेनेमे हनुमान् सक्षम और सफल बने, उसी प्रकार जन-मानसकी समझसे परे सस्कृत-भाषाकी अतल गहराइयोमे खो जानेवाली और काल-पटलके पीछे समा जानेवाली प्राचीन भारतके ऋषि-मुनि और मनीषियोकी लेखनीद्वारा प्रकाशित भारतीय सस्कृतिकी अमूल्य धरोहरको ढूंढ लाना भाईजीके ही बूतेकी बात थी। उनकी लेखनीसे निकलनेवाले एक-एक वाक्यके पीछे एक-एक मन्त्रका बल रहता था। पाठक जैसे-जैसे उनके लेखोको पढता, एक स्निग्ध शान्ति उसके तन-मनको सराबोर करती जाती थी। भाईजीका साहित्य सदियोतक उनकी याद हमे दिलाता रहेगा। उनका कार्य और उनका साहित्य ऐसे अद्भुत स्मारक है, जो आसेतु-हिमाचल सर्वत्र घर-घरमे 'कल्याण'की प्रतियोमे विराजमान है। राजस्थानके एक अनूठे रत्न, भारतके एक महान् सपूत और एक सच्चे मानवके रूपमे भाईजीका सदैव पुण्यस्मरण होता रहेगा। भारतकी कोटि-कोटि धर्मप्राण जनता नतमस्तक हो उनका श्रद्धार्चन करती है।

सत्यनारायण तुलस्यान
मन्त्री—राजस्थान भारती, दिल्ली

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरी प्रथम भेट १९३२-३३मे गोरखपुरमे हुई, जब भारतीय प्रशासनिक सेवामे आनेके बाद अपने सेवाकालके प्रथम वर्षमे मैं गोरखपुरमे नियुक्त हुआ। दैवप्रकोपसे उस वर्ष गोरखपुर जनपदमे भीषण बाढ आ गयी। गोरखपुर शहरको भी उससे खतरा होने लगा। श्रीहनुमानप्रसादजीके नेतृत्वमे गीताप्रेसने गृहविहीन हजारो-हजारो लोगोकी बडे प्रभावशाली ढगसे सेवा की। उसकी सेवा करनेकी पद्धति सर्वथा आडम्बररहित थी।

जिस ढगसे यह जन-सेवाका भाव काम कर रहा था, उसके कारण सरकारकी ओरसे चालू की गयी सेवा-सस्थाओ (—जो मेरे अधिकारमे थी) और गीताप्रेस-सेवादलके बीच पूर्ण सहयोगके साथ सेवा-कार्य हुआ। उस समय श्रीपोद्दारजीसे मेरा जो सम्पर्क हुआ, वह बढकर व्यक्तिगत, घनिष्ठ मित्रता तथा आदरकी भावनामे परिणत हो गया। बादमे मेरे विवाहोपरान्त जब मेरी पत्नी मेरे पास गोरखपुर आ गयी, तब वह भी श्रीपोद्दारजीकी नि स्वार्थ भावना तथा मानवमात्रके प्रति दयाभावसे आकर्षित हुई। यद्यपि तीन-चार वर्षोमे मैने गोरखपुर छोड दिया, तथापि मैने उनसे सम्पर्क बनाया रखा और जब कभी वे दिल्ली आते, मैं उनके दर्शन अवश्य करता। मेरा उनके अनेक अन्तरङ्ग मित्रो तथा सहयोगियोसे भी परिचय है। मै तथा वे सभी लोग यह अनुभव करते है कि श्रीपोद्दारजीके निधनसे मानव-हितकी भावनाको महती क्षति पहुँची है। इन दिनो जब हम बँगला-देशकी शरणार्थी समस्यासे क्षुब्ध है, मुझे बहुधा उनका स्मरण हो आता है—विशेषकर उस प्रकारकी सहायताके लिये, जो वे अपने प्रभावक्षेत्रमे आनेवाले अनेक व्यक्तियोके स्वेच्छापूर्ण प्रयासोके फलस्वरूप जुटाते रहते थे। निस्सदेह यह उनका दृढ धार्मिक विश्वास ही था, जो उनके जीवनको अपने भाई-बहिनोकी ऐसी नि स्वार्थ सेवाके लिये प्रेरित करता था। गीताप्रेसके कार्योका पथ-प्रदर्शन एव निर्देशन कर उन्होने असख्य लोगोको जो लाभ पहुँचाया, उसका मूल्याङ्कन करनेके लिये मेरे पास शब्द नही हैं।

एस० रगनाथन
कम्प्ट्रोलर तथा आडीटर-जनरल
भारत सरकार, नयी दिल्ली

● ● ●

श्रीभाईजी प्राचीन भारतकी महान् सांस्कृतिक परम्पराकी एक अन्तिम तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कडीके सदृश थे। उन्हे गृहस्थ-जीवनमे भी निस्स्वार्थपरता एव पवित्रताके सर्वप्रसिद्ध प्रतिनिधि 'विदेह'की श्रेणीमे रखा जा सकता है। इस महान् सतसे मेरा सम्वन्ध गत सन् १९५४ ई० के प्रयाग-कुम्भसे था। भारतीय अध्यात्मवादको उनकी सवसे वडी देन यह है कि उन्होने हिंदू-धर्मके मूल तत्त्वोका प्रचार, शास्त्रोमे वर्णित पद्धतिका उपदेश करने मात्रसे न करके, अपने जीवनमे आचरण करके किया है। वे धर्मको केवल विश्वासकी नही, अपितु आचरणकी वस्तु मानते थे। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है, जो धर्मके अनुसार आचरण करता है। हजारो लोग गोरखपुर-स्थित उनके निवास-स्थान 'गीतावाटिका'मे जाते और उनके विद्वत्तापूर्ण उपदेशोके समान ही उनके जीवनकी आचरण-पद्धतिसे प्रेरणा प्राप्त करते थे। हम अव कभी भी उनके जीवनके शान्त, सतुलित एव सयमित स्वरूपका दर्शन कर आनन्दका अनुभव नही कर पायेगे—इस विचारसे हमे वडी पीडा हो रही है। किंतु 'कल्याण' एव अन्य साहित्य हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेगे। यह कहना सर्वथा उपयुक्त होगा कि 'भाईजी' 'कल्याण' और गीताप्रेस-के समस्त प्रकाशनोकी प्रतिमूर्ति थे और वे सभी भाईजीकी प्रतिमूर्ति थे। श्रीपोद्दारजीने गोरखपुरको भारतके भौगोलिक एव सास्कृतिक मानचित्रपर मोटे अक्षरोमे प्रतिष्ठित कर दिया है। भारतभरमे गोरखपुरवासी सरलतासे पहचाना जा सकता है, क्योकि वह गीताप्रेसके प्रकाशनोके केन्द्र गोरखपुरका निवासी है। हिंदू-विचारधारा और दर्शनमे सम्बद्ध ग्रन्थोकी वाढ निस्सदेह मीलके पत्थरके समान सदा पथ-प्रदर्शनका कार्य करती रहेगी।

राधा मोहन
अवकाश-प्राप्त आयुक्त एव जज
प्रयाग

● ● ●

श्रीभाईजीके परलोकगमनसे भूमण्डलसे धर्मका साक्षात् सूर्य अस्त हो गया। उनके हृदयमे सबके प्रति महान् करुणाका उत्स था। उनके लिये कोई भी पराया नही था, सभी अपने थे। उनके पाससे दुःखी-से-दुःखी प्राणी भी सुखकी असीम निधि लेकर लौटता था। वे अजातशत्रु थे—उनके समीप आते ही शत्रुताकी भावना भी आत्मीयता—मित्रताकी भावनामे परिणत हो जाती थी। ऐसे दैविक गुणोकी जीती-जागती मूर्तिका अव हमे दर्शन कहाँ होगा? हमारे अभाव—व्यथाओका, हमारे हृदयकी कलङ्क-कालिमाका अव कहाँ परिक्षालन होगा?

श्रीभाईजी युगस्रष्टा थे—उनके साथ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और करुणाका एक युग समाप्त हो गया। नारदजीने, भक्ति-तत्त्वका विवेचन करते हुए, जिन व्रजगोपियोके प्रेमका उदाहरण दिया है—पूज्य श्रीभाईजी उसी श्रीराधा-माधव-प्रेम-तत्त्वके मूर्तरूप थे।

श्रीभाईजीके तिरोधानसे हम अनाश्रय हो गये है। अव तो उनकी गुण-गाथा ही हमारे लिये अवलम्व है।

नारायणप्रसाद शर्मा
इन्दौर

● ● ●

'कल्याण' मासिक पत्रिकाके सम्पादक तथा सनातनधर्मके मेरुदण्ड भाईजीके चले जानेमे हम जितने भी आस्तिक फौजी भाई हैं, उन सवको सूना-सूना-सा लग रहा है। भाईजी इस कठिन समयमे, जव कि सनातन हिंदूधर्म चतुर्दिक् आक्रमणोका शिकार है तथा हम आस्तिकजन भयाक्रान्त हैं, अपने हृदयग्राही लेखो और विचार-पूर्ण निवन्धोसे भावुकजनोको सर्वदा परमार्थपथपर अग्रसर होनेकी स्थिर प्रेरणा प्रदान करते रहे हैं। इनके निधनसे हिंदूराष्ट्रका अजेय योद्धा, गोभक्त, हिंदुत्वनिष्ठ लेखक, मानवतावादी तथा राष्ट्रीयतावादी महापुरुष चला गया। उनके अभावकी पूर्ति असम्भव है।

श्रीविनय ठाकुर 'अहियारी'
तथा समस्त फौजीभाई

● ● ●

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी पार्थिव देहको त्यागकर नित्यलीलालीन हो गये । परतु आज भी उनकी सहज सौम्य एव मधुर मूर्ति हमारे मानस-पटलपर अङ्कित होकर हमारा मार्गदर्शन कर रही है।

भाईजीकी पैतृक भूमि रतनगढ (राजस्थान)के निवासी होनेका हमे सौभाग्य प्राप्त है। इसलिये भाईजीके निकट सम्पर्कमे आनेका मुझे अनेक वार सुअवसर मिला है।

श्रीभाईजीके निर्देशनमे मुझे कई सस्थाओकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस नाते पूज्य भाईजी-की अलौकिक एव चामत्कारिक निर्णायक प्रतिभाका आभास मुझे मिलता रहा है। जब कोई उलझनभरी समस्या सामने आती थी और लगता था कि उसका कोई समाधान नही हो सकता, तब पूज्य भाईजी ऐसा सहज एव सर्वसम्मत हल निकाल लेते थे कि सभी दग रह जाते थे।

किसी भी दीन-दुखीकी कष्ट-गाथा सुनकर भाईजीका नवनीत-सम मृदुल हृदय द्रवित हो उठता, वाणी गद्गद और नेत्र सजल हो जाते थे। वह सौम्य मर्ति हमारे हृदयोको आलोकित करती रहे और हमे सत्पथपर लगे रहनेकी सतत प्रेरणा देती रहे।

श्यामसुन्दर लाल
अधिवक्ता, रतनगढ

● ● ●

करोडो आस्तिको, भक्तो और श्रद्धालुओके भजनीय श्रीहनुमानप्रसादजीके नामके पूर्व 'स्वर्गीय' शब्दका प्रयोग करते हुए जी न जाने कैसा हुआ जा रहा है।

वे भारतके लिये स्वर्गका सदेश लेकर आये थे । साधारण जीवनके भीतर असाधारण शक्ति छिपाये थे, एक आदर्श महामानव और सच्चे कर्मयोगी थे। 'कल्याण'के द्वारा उन्होने इस देशका ही नही, विदेशोके भी असख्य नर-नारियोका कल्याण किया है। धार्मिक जगत्मे उनकी यह लोक-सेवा अविस्मरणीय रहेगी।

पूज्य पोद्दारजीके पवित्र नाम और यशसे तो मै बहुत पहलेसे ही परिचित था । परतु उनके पावन दर्शन नही हो सके, इस वातका खेद मुझे सदैव रहेगा।

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका दुखद निधन सम्पूर्ण हिंदू-ससारकी एक महान् दुर्घटना है । अपने जीवनकालमे उन्होने धर्म, सस्कृति और साहित्यकी जो सेवा की, वह अनिर्वचनीय है। पोद्दारजी अपने आपमे एक महान् सस्था थे। धार्मिक साहित्य-क्षेत्रमे पोद्दारजीके उदयके पहले एक अभावकी स्थिति थी। देशमे धार्मिक साहित्यके प्रकाशन-सस्थान उँगलियोपर गिने जाने योग्य थे। धर्म-ग्रन्थोकी प्राप्ति विरल और व्ययसाध्य थी। धर्मप्राण जनताके हृदयमे इस महान् देशके आर्षग्रन्थोको अपनी मातृभाषामे ही पढनेके लिये छटपटाहट थी। पोद्दारजीने समयकी माँग पहचानी और अपने देशकी जनताको ऐसे ग्रन्थरत्न भेट किये, जिनकी मुद्रणसम्बन्धी स्वच्छता, सुन्दरता और शुद्धता देखकर भारतीय जन-मानस कृतकृत्य हो गया और जो स्वल्पमूल्यजनित सुलभताके कारण घर-घर पहुँच गये। भाईजी अनन्य हरिभक्तिपरायण परम भागवत थे। वे नम्रताकी मूर्ति थे। उनका जीवन त्याग–तपस्यामय था।

वे हिंदू-हिंदी-हिंदुस्तानके अनन्य सेवक तथा सनातनधर्मके निष्ठावान् पुजारी थे। उनकी तरह निस्वार्थ सेवा करनेवाले विरले ही होते है।

मैं ऐसी महान् विभूतिके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

प्रकाशचन्द चोपडा
अमृतसर

● ● ●

निर्मलहृदय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार मानवता और सनातनधर्मके सच्चे सेवक थे। विश्वनियन्ता श्रीनारायण-मे उनका निरन्तर सम्पर्क रहा। भौतिक जगत्मे उनके कार्यकी इतिश्री नही हुई है और वह तवतक अनवरतरूपसे गतिशील रहेगा, जवतक निष्ठावान् व्यक्ति उनका दायित्व वहन करते हुए 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा गीता-प्रेसके अन्य प्रकाशनोद्वारा धर्म तथा जीवनको दिशा-निर्देश करते रहेगे।

एन० कनकराज अय्यर
कोट्टैयूर, मद्रास राज्य

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोक-गमनसे देशने एक महान् आत्माको खो दिया है। इतना ही नही, वल्कि हमारी महान् हिंदू-सस्कृति भी अपने एक महान् व्याख्यातासे हाथ धो वैठी है। श्रीपोद्दारजी सनातनधर्मके आलोकवाही पथ-प्रदर्शक थे। उन्होने आदर्श हिंदू-जीवनकी शिक्षा दी और जीवनपर्यन्त आदर्श हिंदू-जीवन विताया। दो वर्ष पूर्व मैं और मेरी पत्नी उनसे ऋषिकेशमे मिले थे। हमलोगोके प्रति उन्होने जो अतिथि-सत्कार, सम्मान एव प्रचुर प्रेम प्रदर्शित किया, उसकी स्मृति अभी भी हरी है। उनके निवास-स्थानपर हमलोगोने कुछ भजन उन्हे सुनाये थे। अश्रुपूरित नयनो तथा आभायुक्त मुखमण्डलसे उन्होने उनका रस लिया। उनके पर-लोकगमनसे हुई क्षति अपूरणीय है। एक महान् आत्माका भगवद्धाम-गमन हुआ है। ऊर्ध्वलोकसे ही उनकी आत्मा हमे आशीर्वाद देती रहे। जिस पवित्र कार्यके निमित्त उन्होने अपना जीवन एव सर्वस्व दे दिया, उसे हम जीवित रखे। उनका परिवार कुछ सदस्योतक ही सीमित नही था, समस्त विश्व उनका परिवार था। उन्होने इस ससार और इसमे निवास करनेवाले मानवमात्रको आस्था-सम्पन्न वनानेका अथक प्रयत्न किया। उनके अभावमे सम्पूर्ण विश्व अकिंचनतर हो गया है। हम सभी ऐसी चेष्टा करे कि वे जो आदर्श स्थापित कर गये है, जीवनको उमीमे ढालें।

डा० वी० राम आयंगर
वगलोर

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी श्रीकृष्णचरणोमे लीन हो गये, यह जानकर मन अत्यधिक विचलित हुआ है। वे जव कलकत्तामें थे, तभीसे मैं उनसे परिचित हूँ। कलकत्ता विश्वविद्यालयमे, 'वगीय-साहित्य-परिपद्'मे एव अन्य प्रति-ष्ठानोमे उनसे मिलनेका सुयोग हुआ था। वे वँगला-साहित्यके, विशेपत वैष्णव-पदावलीके परम अनुरागी और उसके भावोतक पहुँचनेवाले पुरुप थे। सन् १९०५मे 'वङ्ग-भङ्ग-आन्दोलन'के समय उनके साथ आन्दोलनमे योग देनेका मुझे सुयोग हुआ था। उस समयकी 'अनुशीलन समिति', युवक तथा विद्यार्थियोकी नि स्वार्थ देश-प्रीति तथा 'वन्दे मातरम्' और गीताके मन्त्रोसे अनुप्राणित वीर वङ्गसतानोके मृत्यु-वरणसे उनका चित्त देश-प्रेमकी निष्ठा और गीता-अनुरागसे भर उठता था। ऐसा लगता है कि वही भाव उनके गीताप्रचारका उत्स रहा है।

कुछ वर्ष पूर्व गोरखपुरमे 'निखिल भारत वङ्ग साहित्य सम्मेलन' हुआ था। मै उस सम्मेलनमे सम्मिलित हुआ था। मैं श्रीभाईजीसे मिला। उन्होने मुझे प्रतिनिधि-आवासपर ठहरने नही दिया और वलपूर्वक अपने घर ले गये एव स्वय अपने हाथोसे परम आदरके साथ खिलाना-पिलाना आदि किया। यह घटना मेरे जीवनमे चिर-स्मरणीय एव सग्रहणीय रहेगी।

आज वे हमारे मध्य नही है, तथापि उनका नाम और कार्य भारतवासीमात्र सर्वदा स्मरण करेगे।

श्रीज्योतिपचन्द्र घोप
सम्पादक, निखिल-भारत-वगभापा-प्रसार-समिति
अगरतल्ला (पूर्वबंगाल)

● ● ●

हिंदुओके घर-घरमे कम-से-कम मूल्यमे धार्मिक पुस्तकोको पहुँचानेके लिये उनका प्रकाशन करके देनेवाला तथा अनेक लोगोको ईसाई बननेसे बचानेवाला महात्मा हमारे बीच नही रहा। विदेशोमे आज जो हम हिंदूधर्मके प्रति इतनी आस्था देख रहे है, वह सब श्रीपोद्दारजीके साहित्य-प्रचारका फल है। वे गृहस्थरूपमे योगी थे। उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि उनके कार्योको सुचारुरूपसे सचालित रखनेमे ही होगी।

कालीदास बसु, एडवोकेट
कलकत्ता

● ● ●

मुझे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निर्वाणसे गहरा धक्का लगा है। उनके निधनसे हिंदू-धर्मने एक जीवन्त शक्तिको खो दिया है। मैने उनके रूपमे अपना समादरणीय मित्र, गम्भीर दार्शनिक और निर्भ्रान्त पथ-प्रदर्शक खो दिया। उनके निधनसे हुए रिक्त स्थानकी पूर्ति दीर्घकालतक नही हो सकेगी।

एस० लक्ष्मीनरसिंह शास्त्री
सम्पादक—'कामकोटिवाणी'
काञ्चीपुरम्

● ● ●

मुझे और हमारी सस्थाके सभी सदस्योको आदरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे बडा धक्का लगा। ऐसे समयमे, जबकि जनताके नैतिक स्तरकी नीव हिल रही है, देशको उनके निधनसे महान् क्षति पहुँची है।

वी० अप्पाकुट्टी
कस्तूरबा गाधी कन्या गुरुकुलम्
वेदारण्यम् (तमिलनाडु)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी-जैसी विभूतिका उठ जाना एक अपूरणीय अभाव है। वे मानवताके सच्चे प्रतीक थे। योगेश्वर श्रीकृष्ण और श्रीराधा उनके रोम-रोममे समाये हुए थे। 'कल्याण'का ४४ वर्षतक सम्पादनकर उन्होने हिंदी पत्रकारिताको एक नयी दिशा प्रदान की है। उन्होने सर्वधर्म-सम्मानकी भावनाका लोगोमे सचार किया है। उन्होने लाखो लोगोको धर्मके प्रति आस्थावान् बनाया है। लाखो नर-नारी नास्तिकसे आस्तिक बन गये, यह सब 'कल्याण'का ही प्रभाव था। देश और समाजके लिये उन्होने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। उनका जीवन धन्य था।

वेंकटलाल ओझा
मन्त्री—हिंदी समाचारपत्र सग्रहालय, हैदराबाद

●

अश्रु-तर्पण

तुमने किसको कितना अपनाया, माना,
सबने अपनेको ही सबसे प्रिय जाना।
तुम मानवताकी थे उदार परिभाषा,
जिसमे न कहींकी भेद-भावकी भाषा ॥

उरकी भाषाको बिना कहे पढ़ते थे,
अकथित प्रश्नोके समाधान गढते थे।
दुख-दर्द दूसरोके सुन करके रोते,
थे शुष्क न होते तब करुणाके सोते ॥

तुम माधवकी मुरलीके मोही स्वर थे,
श्रीराधाके मञ्जीर मनोज्ञ मुखर थे।
तुम रागभक्ति-रसके अक्षय सागर थे,
तुम श्रीराधा थे या नटवर नागर थे ?

तुमने विषको भी मीठा शर्बत देखा,
परमाणु-सदृश पर-गुणको पर्वत लेखा।
तुममें दैवी विभूतिके गुण छाये थे,
तुम मानवमे भगवान उतर आये थे ॥

तुम भक्तवृन्दके भाल-तिलक-कुंकुम थे,
अर्थीकी आशाओके कल्पद्रुम थे।
धीरज, अखण्ड विश्वास अटूट तुम्हारा,
मैत्री-मुदिता-करुणाकी अविरल धारा ॥

सबमे सर्वत्र सदा ईश्वरका दर्शन,
परहित-चिन्तन, गम्भीर विचार-विमर्शन।
तुम व्यापक हरि हो गये, हार आँसूका,
श्रद्धासे अर्पित सुमन चार आँसूका ॥

रामनारायणदत्त शास्त्री

सहस बार वन्दन

लिया जन्म जिसने, अटल मृत्यु उसकी,
खिला पुष्प जो भी, मिटा एक दिन है।
सभी इसमे गतिमय, नही स्थिर है कुछ भी,
विलय और उद्भवकी क्रीडा चिरन्तन।
अमर ध्रुव अखण्डित भला कौन-सा कण ?
अमिट रेख किसकी बनी शेष अबतक ॥

धरापर किरण एक उतरी अनोखी,
घटेगा प्रखर तेज तपका न जिसके।
युगोतक तिमिर-खण्डको भेदकर जो,
करेगी अँधेरा जगत-पथ प्रकाशित।
यश.दीप जिसके गगनमे जलेंगे,
दिशाएँ अमर गीत गाती रहेंगी ॥

बिना सार तनसे दिया सार जगको,
बिना स्वार्थ जो हित हुए दूसरोके।
महारासमे लीन हो, छोड़ दी वह
तप.पूत, निर्मल, जराजीर्ण काया।
जगद्बन्धु, कल्याण-साधक, व्रतीका,
शरण याचकोका, सहस बार वन्दन ॥

त्रिलोकीनाथ 'व्रजवाल'

'ज्यों-की-त्यों धर दीनी चदरिया'

रग-रूपकी, चमक-दमककी
इस मायावी दुनियामें
श्रीपोद्दारजीको
जाननेवाले, माननेवाले
हतप्रभ हैं, लाखो-करोड़ो
उनके अवसानपर ।
कोटि-कोटिको सत्य-अहिंसाका,
जीवन-सफलताका, मार्ग 'कल्याण'का
बतलानेवालेने, बिना दागके
ज्यो-की-त्यो धर दीनी चदरिया ।
उनकी कृतियाँ
राह दिखायें भूले-भटकोको
—यही अञ्जलि अर्पित है ।

मोतीलाल सुराणा

क्या उपहार दूँ

भावनाके पुष्प
क्या उपहार दूं ?
भावनाके दूत !
अब नित्यलीलालीन हो
शुद्ध चिन्मय देहसे
बढते रहो उस लोकतक
मधुर भावापन्न—
श्रीहरि-राधिका
कबसे जहाँ
पुण्य-प्रेरित
भक्त-सेवित
निज मधुर मुस्कान-सह
—करते प्रतीक्षा !

आचार्य सर्वे

श्रद्धाञ्जलिः

यत्सद्यत्नपयोनिधिप्रमथनोद्भूतो यशश्चन्द्रमाः
स्वैः कल्याणमयैः करैः सुखयते तापत्रयाप्तं जगत् ।
यद्गीतासुविचारचारुचरिताचारप्रचारोद्यम
आकल्पं सुयशःप्रशस्तिकलितो यूपोपमः स्मारकः ॥ १ ॥

'जिनके उत्तम यत्नरूप क्षीर-सागरके मन्थन करनेसे जो यशोरूप चन्द्रमा प्रकट हुआ, वह अपनी कल्याणमयी किरणोसे त्रितापतप्त जगत्‌को सुखी बना रहा है, तथा जिनका श्रीमद्भगवद्गीतानुसारी सुन्दर विचारो एवं चारु चरित्रके द्वारा सदाचारके प्रचारका उद्योग कल्पपर्यन्त सुयश-प्रशस्ति-भूत यज्ञीय यूपके समान महान् स्मारकके रूपमे स्थिर रहेगा,—

चारित्र्ये हनुमानिव प्रमुदितासिद्धौ प्रसादोपमः
पुन्नाम्नो नरकस्य दारणपटुः सर्वस्य कल्याणकृत् ।
इत्थं स्वानुगतार्थनामविदितो 'भाईति'-सञ्ज्ञोज्ज्वलः
सोऽयं श्रीहनुमान् प्रसादसहितो यातो दिवं साम्प्रतम् ॥ २ ॥

'जो सदाचारके पालनमे श्रीहनुमान्‌जीके समान प्रख्यात और प्रमुदिता नामक सिद्धिके विषयमे साक्षात् भगवत्-'प्रसाद'रूप थे, इसी प्रकार जो 'पु' नामक नरकके विदारण करनेमे समर्थ, अथच सबका कल्याण करनेमे प्रवृत्त थे—इस प्रकार जिनके नामके 'हनुमान्', 'प्रसाद' और 'पोद्दार'—तीनो ही शब्द अन्वर्थ थे, वे कल्याण-पत्र-सम्पादक, आत्मीय जनोमे 'भाईजी' नामसे विख्यात श्रीहनुमानप्रसादजी सम्प्रति दिव्यधामवासी हो गये।'

माधवाचार्य शास्त्री

●

विजयते हनुमत्प्रसादः

कल्याणमस्तु जगतामिति यस्य चित्त
नित्य निरन्तरमभूत्प्रणयावलीढम् ।
'कल्याण'सज्ञकतथार्थकपत्रिकाया.
सम्पादको विजयते हनुमत्प्रसाद ।। १ ।।

'किस प्रकार जगत्का कल्याण हो, इस चिन्तनमे ही जिनका मन नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक लगा रहता था, सार्थक नामवाली 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादक वे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सर्वत्र विजय प्राप्त करे।

तद्दर्शन नयनयोरभवत् सुधा मे
तद्भाषण समभवन्मयि पुष्पवृष्टि ।
पूजोपचारविरहेऽप्यभवत्तदीय
शिष्टोचिताचरणमेव विधि समग्र ।। २ ।।

'उनका दर्शन मेरे नेत्रोके लिये अमृतरूप था, उनका भाषण मुझे अपने ऊपर फूलोकी वर्षाका सुख देता था, पूजन-सामग्री न होनेपर भी उनका शिष्टाचार ही पूजाविधिको पूर्ण करता था।'

सम्पादका कति न सन्ति न सन्ति तास्ता
किं पत्रिका कलियुगोन्नतये नियुक्ता ।
'कल्याण'मेव किल केवलमेकल तत्
यत्कारण भवति सत्ययुगोन्नतीनाम् ।। ३ ।।

'सम्पादक भी अनेक है, कलियुगकी उन्नतिमे सहायक पत्रिकाएँ भी अनेक प्रचलित है, किंतु सत्ययुगकी उन्नतिमे सहायता देनेवाली पत्रिका तो एकमात्र 'कल्याण' ही है।'

धर्म सनातन इहैति पर प्रतिष्ठा—
पात्र न निन्द्यवचसा भवतीतरोऽपि ।
'कल्याण'मेव जयतादिह पत्रिकासु
सम्पादकेषु जयताद्धनुमत्प्रसाद ।। ४ ।।

'यह पत्रिका इतर धर्मोकी निन्दा न करती हुई सनातनधर्मकी प्रतिष्ठा-वृद्धि करती हे। पत्रिका-शिरोमणि 'कल्याण' और सम्पादक-शिरोमणि श्रीहनुमानप्रसादजीकी सर्वदा विजय हो।'

दण्डिस्वामी सुखबोधाश्रम

एक चाह

नियतिका नाटक निरन्तर चल रहा है।
दीप जो मैंने जलाया, बुझ गया क्यों ?
दीप जो मैंने बुझाया, जल गया क्यों ?
था यही कलतक खड़ा उत्तुङ्ग पर्वत।
आज सागरके दृगोंमे ढल गया क्यों ?

कुछ नही पर एक परिवर्तित हुआ है।
दृश्य नव है और पिछला टल रहा है ।। नियतिका नाटक०

मानता मुझसे मिला जो नेक है वो।
या कहूँ फिर नेकमें भी एक है वो ।।
कर्म-रत, सद्वृत्ति है, वो न्याय-प्रिय है।
या कहूँ फिर न्यायका भी टेक है वो ।।

कसक, तड़पन, एक आँधी बन रही है।
आजका यह दृश्य कितना खल रहा है ।। नियतिका नाटक०

जानता हूँ, कालकी गति वेगमय है।
है जहाँपर लय, वहीं निर्माण भी है ।।
जहाँ पीड़ा-रुदन, आह-कराह भूपर।
वहीं हास-विलास, दुखसे त्राण भी है ।।

पर बिछुड़ना नियतिका ही ध्येय है जब।
मन कसक उरमें छिपाकर जल रहा है ।। नियतिका नाटक०

जानता हूँ, क्षमा करना काम ही है।
गुरुजनोंकी बुद्धिका परिणाम ही है ।।
तो क्षमाकी याचना ही क्यों करूँ मैं।
जो हुई त्रुटियाँ कई, वो ज्ञात ही हैं ।।

चाह केवल है, रहे सानन्द अब वो।
विघ्न सारा सामने ही जल रहा है ।। नियतिका नाटक०

'शेखर' गोरखपुरी

●

अर्पण

श्रीराधा-माधव प्रिय परिकर
लीला-लोक-विहारी ।
हो जन-जनके वन्दनीय तुम,
हे कल्याण-प्रसारी ॥ १ ॥

मूर्त्तिमान कलि कठिन कालमें
नाम-महत्त्व-प्रणेता ।
भक्ति-मार्गके, धर्म-कर्मके
उद्धारक नचिकेता ॥ २ ॥

'श्रद्धा एव अर्जनीया', यह
है शास्त्रोंकी वाणी ।
प्राप्त कर चुके थे तुम निश्चय
वह श्रद्धा कल्याणी ॥ ३ ॥

पुण्य-प्रसाद उसी श्रद्धाका
प्राप्त सभीको होवे ।
चचल मन चचलता खोकर
विषय-वासना धोवे ॥ ४ ॥

राधा-माधव-युगल-चरण-रति--
का कर पाये अर्जन ।
स्मृतिमे पावन इसी हेतु, है
अर्पित यह श्रद्धार्चन ॥ ५ ॥

जा० ला० श्रीवास्तव

एते गुन जामे, सो संत।
श्रीभागवत मध्य जस गावत श्रीमुख कमला-कंत॥
हरि कौ भजन, साधु की सेवा, सर्ब भूत पर दाया।
हिंसा-लोभ-दंभ-छल त्यागै, बिष सम देखै माया॥
सहन-सील, आसय उदार, चित धीरज, धर्म-बिवेकी।
सत्य बचन, सब कौ सुख दायक, गहि अनन्य ब्रत एकी॥
इंद्रियजित, अभिमान न जाके, करै जगत कौ पावन।
'भगवतरसिक' तासु की संगति तीनौ ताप नसावन॥

○

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

परमविशुद्ध संत श्रीभाईजी

स्वामी श्रीसनातनदेवजी

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

एक वार किसीने श्रीगोसाईंजीकी उक्त अर्द्धालीका उच्चारण करते हुए पूज्य श्रीउडिया वावाजी महाराजसे पूछा--'सत कौन और विशुद्ध सत कौन ?' श्रीमहाराजजी बोले--'जो केवल ज्ञानी हो, वे 'सत' और जो ज्ञानी-ध्यानी दोनो हो, वे 'विशुद्ध सत' कहे जा सकते है ।'

यह था एक परम विरक्त, ब्रह्मनिष्ठ सतशिरोमणिका निर्णय । परतु जो ज्ञानी-ध्यानी ही नही, सर्वथा निष्काम कर्मयोगी और अनन्य भगवत्प्रेमी भी हो, उन्हे क्या कहा जाय ? ऐसे थे हमारे परम श्रद्धेय नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ।

उनकी ज्ञाननिष्ठाके विषयमे क्या कहा जाय ? 'कल्याण'मे सर्वदा ही सभी सम्प्रदायो-का समानरूपसे आदर किया गया है। ऐसी समदृष्टि सर्वाधिष्ठानभूत समग्र ब्रह्ममे पूर्ण निष्ठा हुए विना कैसे हो सकती है ? जिनकी यह निस्सदिग्ध धारणा होती है कि एक ही परम और चरम तत्त्व विभिन्न-मतावलम्बियोके अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार विभिन्न रूपोमे भास रहा है, उन्हीकी ऐसी समन्वित और उदार दृष्टि होनी सम्भव है । साधनभेद और दृष्टिभेदके कारण जिस एकके विपयमे अनेक भेद जान पडते है, वह स्वय उन मतभेदोका विषय होकर भी सभी प्रकारके मतवादोसे असस्पृष्ट है। उसका ठीक-ठीक आकलन किसी भी मतके द्वारा नही हो सकता। इसीसे श्रुति कहती है--**'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः'** (केनोपनिषद् २ । ३) अर्थात् 'उस तत्त्वके विषयमे जिसका कोई मत नही है, वह उसे जानता है और जिसका मत है, वह नही जानता ।'

वस्तुका प्रतिपादन किसी दृष्टिकोणके आधारपर ही होता है। परतु जो किसी भी दृष्टिका विषय नही हो सकता, प्रत्युत सम्पूर्ण दृष्टियाँ जिसकी दृग्य है, उसका प्रतिपादन किन शब्दोमे किया जाय ? अत प्रत्येक प्रतिपादनका उद्देश्य किसी भी प्रकार उस प्रकारकी योग्यताके साधक-को दूसरी ओरसे हटाकर अपने लक्ष्यकी ओर उन्मुख करनेमे ही है । इस उद्देश्यकी पूर्ति तो प्रत्येक मतवादके प्रतिपादनद्वारा होती है। अत वे सभी वन्दनीय है । परतु तत्त्वका यथार्थ वोध तो उसीको होता है, जिसका अपना कोई दृष्टिकोण नही रहता और जो सभी प्रकारके अभिनिवेशोके आग्रहसे मुक्त होकर तत्त्वकी ही अनन्य शरण हो जाता है। उसीको ये परमा-त्मदेव वरमाला पहनाकर वरण करते है और अपना यथार्थ रहस्य वता देते हैं । इसीसे श्रुतिका कथन है--**'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।'** (मुण्डक ३ । २ । ३) अर्थात् 'जिसे यह आत्मा वरण करता है, उसीको इसकी प्राप्ति सम्भव है और उसीके प्रति यह अपने स्वरूपको प्रकट कर देता है ।'

इस प्रकार उस चरम लक्ष्यकी ओर ले जानेमे तो सभी मतवाद उपयोगी है, परतु उसकी उपलब्धि तभी होती है, जव साधक सभी प्रकारके मतवादोसे मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार नदीको पार करनेमे तो छोटी-वडी सभी प्रकारकी नौकाएँ उपयोगी है, परतु उस तटपर पहुँचते तभी है, जव अपनी-अपनी नौकाको त्याग दिया जाता है। हॉ, जो नदीके पार हो जाता है, उसके लिये तो सभी नौकाएँ समान हो जाती है। इसी प्रकार यथार्थ तत्त्वदर्शीके लिये सभी मतवाद समाप्त हो जाते है। यही स्थिति थी श्रीभाईजीकी।

श्रीभाईजीका ध्यानाभ्यास तो तभी आरम्भ हो गया था, जव उन्होने शिमलापालमे भगवन्नामजपके द्वारा अपनी आध्यात्मिक साधनाका श्रीगणेश किया था। आरम्भमे उन्होने श्रीविष्णुभगवान्का ध्यान किया। फिर अचिन्त्य होकर निर्गुण-निराकार तत्त्वमे स्थिति प्राप्त की और फिर श्रीव्रजनवयुवराज एव वृन्दावनेश्वरीकी युगलमूर्ति उनके हृदयाकाशमे आविर्भूत हुई। उनके लिये किसी भी प्रकारका ध्यान अनायास और सहजसिद्ध था। अपने परमपवित्र साधनामय जीवनके अन्तिम चरणोमे तो उनके लिये भगवल्लीलाओमे प्रवेश और भावसमाधि भी सामान्य वात थी। श्रीराधा-माधव सर्वदा उनके हृदय-प्राङ्गणमे क्रीडा करते थे और वे अपना कोई सकल्प न होनेपर भी भावसमाधिमे तल्लीन हो जाते थे। श्रीयुगलसरकार ही उनकी चर्चाके विषय रह गये थे। लेख, कविता और व्याख्यान आदिमे उन्हीकी चर्चा होती थी। इस प्रकार कृष्णमय होकर ही उन्होने श्रीकृष्णकी नित्यलीलामे प्रवेश किया।

श्रीकृष्णप्रेम ही उनका जीवन था। श्रीकृष्णके लिये उनकी वाणी और लेखनी मुखरित हो उठी थी। उन्होने जो कुछ कहा और जो कुछ लिखा, उसमे श्रीराधा-माधवका उज्ज्वल प्रेम छलछलाता था। उस लिखने और बोलनेमे भी उनका अपना कर्तृत्व नही था। उनके द्वारा मानो स्वय श्रीकृष्ण ही लिखते और बोलते थे। एक पदमे उन्होने इसका सकेत किया है—

लिखता-लिखवाता वही, करता-करवाता वही।
पता नही, क्या गलत है, पता नही, क्या है सही।।

इस प्रकार उनके द्वारा श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाओका जो उज्ज्वल स्वरूप प्रकट हुआ, उसने न जाने कितने भगवत्प्रेमियोको आनन्दविभोर कर दिया। तत्त्वदर्शी महापुरुष निखिल अनात्मवर्गका निषेध करके जिस परमतत्त्वका निषेधावधिरूपसे साक्षात्कार करते है, वही सच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म है। श्रुतिने 'रसो वै स' कहकर उसे रसस्वरूप वताया है। प्रेमियोकी दृष्टिमे उस रसब्रह्मकी सरसता ही भगवल्लीला है। अत वहाँ लीलानायक, लीलापरिकर, लीलाधाम और लीलाविलास—सभी रसस्वरूप है। श्रीभाईजी इसे 'रसाद्वैत' कहते थे। इस रसाद्वैतकी अनुभूति तत्त्वदर्शी ही कर सकते है। जो तत्त्वदर्शनकी शान्तिमे रमण नही करते, उन्हीको भगवदनुग्रहसे इस परम दिव्य रसविलासकी अनुभूति होती है। यह जीवका पुरुषार्थ नही, भगवान्की अनुग्रहशक्तिका वरदान होता है। वही ज्ञानोत्तरा पराभक्ति है। जवतक भोग और मोक्षकी स्पृहाका लेश भी शेष रहता है, तवतक इस अद्भुत रसविलासका आविर्भाव नही होता, अत यह स्थिति जीवन्मुक्तोके लिये भी दुर्लभ है।

यह दुर्लभ स्थिति श्रीभाईजीको सर्वथा सुलभ थी। तथापि उनके द्वारा जनसाधारणकी

सेवा भी असाधारण रूपसे होती थी। जनता-जनार्दनकी पीडा उनकी अपनी पीडा थी। किसीके भी अभाव या दु:ख-दर्दको देखकर उनका करुणापूर्ण हृदय बेचैन हो जाता था। वे तन, मन, धनसे उसे सुखी करनेका प्रयत्न करते थे। उसकी आवश्यकतापूर्तिके लिये वे जो कुछ देते थे, उसे उसीकी वस्तु समझते थे। उन्हे तो उसमे अपने प्रियतमकी ही झाँकी होती थी, और जिस तन, मन और धनके द्वारा वे उसकी सेवा करते थे, उसपर भी उन्हे अपने प्रियतमका ही अधिकार जान पडता था। उन्हे अपना माध्यम बनाकर उनके प्रियतम अपने ही उपकरणोद्वारा अपनी ही पूजा करते थे। इस प्रकार आरम्भमे जो निष्काम कर्मयोग था, अब वह प्यारे प्रभुकी आत्मपूजा ही हो गयी थी। वे केवल अपने प्रियतमके रसविलासके निरीह यन्त्रमात्र रह गये थे और इसे अपना परम सौभाग्य अनुभव करते थे। श्रीरासेश्वरीजीके मुखसे अपने प्राणप्रियतमके प्रति उन्होने जो कुछ कहलाया है, वह वास्तवमे उनका अपना जीवन था। नीचे वे वाक्य उद्धृत किये जाते हैं—

तुम हो यन्त्री, मै यन्त्र; काठकी पुतली मै, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
मै करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र; न कोई अहंकार।
मन मौन—नही, मन ही न पृथक; मै अकल खिलौना, तुम खिलार॥
क्या करूँ, नही क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हे, सो प्रिय विहार॥

× × ×

कर दिया क्रीडनक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल॥
इतना जो मै यह बोल गयी, तुम जान रहे—है कहाँ कौन।
तुम ही बोले भर सुर मुझमे मुखरा-से, मै तो शून्य मौन॥

प्रियतमकी प्रसन्नताके लिये लाखो दु:खोसे घिरा रहना भी उन्हे परम सौभाग्य जान पडता था। लाखो अपमान भी उन्हे वरदान जान पडते थे, निरन्तर उनके वियोगमे तडपते रहनेमे भी प्रसन्नता थी और मरनेमे भी मौज थी। वे कहते हैं—

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दुखसे, हे प्रियतम!
तो लाखों अतिशय दुःखोंसे घिरी रहूँगी मै हरदम॥
किंचित्-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान।
तो लाखों अपमानोंको मै मानूँगी प्रभुका वरदान॥
यदि प्यारे! मेरे वियोगमे मिलता कही तुम्हे आराम।
कभी नही मिलनेका मै व्रत लूँगी, मेरे प्राणाराम!
मेरा मरण तुम्हे यदि देता हो किंचित्-सा भी आश्वास।
तो मै मरण वरण कर लूँगी, निकल जायगा तनसे श्वास॥

कहाँतक कहे, उनका जीवन पूर्णतया अपने प्रियतमको समर्पित था। प्रियतम ही उनके मङ्गलमय पार्थिव कलेवरके द्वारा अपनी प्रिय प्रजाका पोपण और पूजन कर रहे थे। इस विपयमे उन्होने जितना लिखा है, उसे कहाँतक उद्धृत किया जाय। प्रियतम ही आत्मा, अनात्मा, ससार और परमात्माके रूपमे प्रकट होकर यह रसमयी क्रीडा कर रहे है। यह सव इन्हीका अद्भुत आत्मविलास है। जीव आत्मतत्त्वका बोध होनेपर भववन्धनसे मुक्ति प्राप्त करता है, निप्काम-भावकी पुष्टि होनेपर भोगोसे विमुख होकर, विश्वात्मासे योगयुक्त हो शक्तिसम्पन्न होता है और परमात्मामे प्रेम होनेपर भक्तिरसकी अनुभूति प्राप्त करता है। इस प्रकार मुक्ति, शक्ति और भक्ति ही जीवनके चरम लक्ष्य है। इनमे एककी प्राप्ति होनेसे ही जीव कृतकृत्य हो जाता है। परतु श्रद्धेय भाईजीमे तो इन तीनोका ही अद्भुत समन्वय था। अत उन्हे 'परमविशुद्ध सत' कहना अत्युक्ति न होगी।

●

श्रीकृष्णप्राण भगवद्भक्त

एक सम्मान्य स्वामीजी

अपने विद्यार्थी-जीवनमे पढा हुआ एक श्लोक है—

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कठिनी सुसम्भ्रमाद्यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम॥

'गुणीजनोकी गणना आरम्भ होते ही जिसके नामपर अत्यन्त गौरवबुद्धिसे लेखनी नही पडती, उस पुत्रसे भी यदि माता पुत्रवती मानी जाय तो वन्ध्या कैसी स्त्री कही जायगी?'

इस श्लोकका यदि यथाश्रुत अर्थ लिया जाय तो वडी समस्या खडी हो जायगी। गुणियोमे सर्वाग्रगण्य व्यक्ति तो एक ही हो सकता है। तव क्या एक समयमे केवल एक व्यक्तिकी माता ही पुत्रवती होनेका गौरव प्राप्त कर सकेगी? फिर, गुणी तो विभिन्न प्रकारके होते है। उनमेसे किस प्रकारके गुणी यहाँ अभिप्रेत है? साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान, अध्यात्म, धर्म आदि अनेको गुणोके कारण व्यक्तियोको गुणी कहा जा सकता है और उनके क्षेत्र सर्वथा विभिन्न होनेके कारण उनमे परस्पर कोई तुलना नही हो सकती। अत हमे उस गुणका निर्णय करना होगा, जिसके कारण व्यक्ति सर्वश्रेप्ठ गुणी होनेका गौरव प्राप्त कर सकता है।

वास्तवमे सर्वमान्य गुण वह हो सकता है, जिसके द्वारा अपना और अपने सम्पर्कमे आनेवाले व्यक्तियोका जीवन निरतिशय और निस्सीम समृद्धि प्राप्त कर सके। ऐसा तभी हो सकता है जव व्यक्ति अपने क्षुद्र व्यक्तित्वसे ऊपर उठकर विभु और शाश्वत जीवनसे अभिन्न हो जाय। किसी भी प्रकारके व्यक्तित्वका अभिमान रहते स्पर्धा, असूया, मोह और पक्षपात आदि दोषोकी निश्शेष निवृत्ति नही हो सकती और इन दोपोका लेश रहते हुए किसीको वास्तविक शान्ति एव समृद्धिकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो जीवनमे 'भगवदीयता'का

अवतरण ही सबसे श्रेष्ठ गुण है। 'भगवदीयता' का अर्थ है— जीवन भगवन्मय हो जाय। ऐसे महापुरुषके लिये सारा विश्व भगवत्स्वरूप हो जाता है। उसकी अपने द्वारा जो-जो चेष्टाएँ होती है, वे सब भगवत्प्रेरित ही होती है और विश्वके सम्पूर्ण व्यापार भी उसे भगवान्‌के लीलाविलास ही जान पडते है। उसकी दृष्टिमे भगवान्‌से भिन्न किसी भी व्यक्ति, वस्तु या व्यापारकी कोई सत्ता नही रहती। जैसे हमारे स्वप्न-जगत्‌मे हमे जो कुछ प्रतीत होता है, वह सब हमारा ही भावनात्मक लीलाविलास होता है—वहाँके जड-चेतन सभी पदार्थ, प्राणी तथा उनके द्वारा होने-वाले सभी शुभाशुभ कार्य और उनके सुख-दु खमय भोग केवल हमारे चित्त-चाञ्चल्यकी ही अठखेलियाँ होती है, उसी प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व और इसके व्यापार एव उपभोग एकमात्र उन विश्वाधार विश्वात्माकी ही स्वच्छन्द क्रीडाएँ है।

जिस महापुरुषमे ऐसी दृष्टि उन्मीलित हो जाती है, वास्तवमे वही सच्चा गुणी है। ऐसे गुणी जन अपनी दृष्टिमे एक या अनेक नही होते। वे तो सब कुछ भगवत्स्वरूप ही देखते है। उनकी दृष्टिमे भगवान्‌के सिवा अपनी या किसी अन्यकी कोई पृथक् सत्ता नही होती। अत उनमे ऐसा कोई तुलना या तारतम्यका भाव भी नही रहता। ससार जिसे अत्यन्त निकृष्ट और घृणाके योग्य समझता है, वह भी उन्हे भगवत्स्वरूप जान पडता है। वे उसकी भी यथोचित सेवा करते है। किसीसे भी घृणा नही करते, सभीका आदर करते है और मन-ही-मन सबकी वन्दना करते है—

'प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्।'

परतु दूसरोकी दृष्टिमे तो उनका पृथक् व्यक्तित्व भासता ही है और वे ही उन्हे गुणियो-मे अग्रगण्य मानते है। इस भावका जिन-जिन व्यक्तियोमे भी अवतरण हो, वे सभी सर्वमान्य और सर्वाग्रगण्य होते है। अवश्य ही अपने-अपने भाव और श्रद्धाके अनुसार विभिन्न व्यक्ति और समाजो-मे विभिन्न महापुरुषोको सर्वाग्रगण्य माना जाता है, परतु स्वदृष्टिमे तो वे सब एक ही तत्त्वमे प्रति-ष्ठित होते है। अत विभिन्न अनुयायियोकी दृष्टिमे उनमे भले ही भेदका भास हो, परतु उनकी अपनी दृष्टिमे तो एकमे सब और सबमे एककी ही उपलब्धि होती है। इसलिये वहाँ एक और अनेकका भेद नही होता। सब एककी ही विभूतियाँ है और सर्वरूपमे एक ही क्रीडा करता है। अत वहाँ भेदके लिये कोई अवकाश ही नही होता।

हमारे श्रीभाईजी ऐसे ही भगवत्प्राण महापुरुष थे। उनके शरीर और अन्त करणसे भी ससारकी महती सेवा हुई। यदि ऐसे महामानवके शरीरसे कोई विशेष व्यापार होता दिखायी न दे, तब भी वह उतना ही वन्दनीय होता है, क्योकि उसकी अपनी दृष्टिमे अपने व्यक्तित्वका कोई विशिष्ट स्थान नही होता, सब शरीर एकमात्र श्रीभगवान्‌के ही होते है। अत जिसके द्वारा जो भी सेवा हो रही है, वह केवल श्रीभगवान्‌की अहेतुकी कृपाका ही लीला-विलास है। सब यन्त्र है और श्रीभगवान् यन्त्री है। सब उन्हीके सकल्पसे विभिन्न व्यापारोमे प्रवृत्त हो रहे है। अत उनके अस्तित्वमे किसी प्रकारकी सकुचित भावना भी नही है। उनकी यह लीला सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वभौम है। यह सदासे चल रही है और सदा चलती रहेगी। जीवन और मरणका भी वहाँ कोई प्रश्न नही है। ये भी उनकी अलौकिकी लीलाके ही विलास है। श्रीभाईजीके शब्दोमे ही देखिये—

मरना-जीना मेरा कैसा, कैसा मेरा मानापमान।
हैं सभी तुम्हारे ही प्रियतम ! ये खेल नित्य सुखमय महान ।।

अत हमे यहाँ श्रीभाईजीके द्वारा हुए अनेक सेवाकार्योकी चर्चा करके उन्हे किसी सीमित कलेवरमे सकुचित कर देनेकी आवश्यकता नही है। वे भगवन्मय थे और उनकी दृष्टिमे भगवान् श्रीकृष्णके सिवा और किसीकी कोई सत्ता नही थी। उन्हीके शब्दोमे सुनिये——

कृष्ण उठत, कृष्ण चलत, कृष्ण शाम-भोर है।
कृष्ण बुद्धि, कृष्ण चित्त, कृष्ण मन विभोर है॥
कृष्ण रात्रि, कृष्ण दिवस, कृष्ण स्वप्न-शयन है।
कृष्ण काल, कृष्ण कला, कृष्ण मास-अयन है॥
कृष्ण शब्द, कृष्ण अर्थ, कृष्ण ही परमार्थ है।
कृष्ण कर्म, कृष्ण भाग्य, कृष्ण ही पुरुषार्थ है॥
कृष्ण स्नेह, कृष्ण राग, कृष्ण ही अनुराग है।
कृष्ण कली, कृष्ण कुसुम, कृष्ण ही पराग है॥
कृष्ण भोग, कृष्ण त्याग, कृष्ण तत्वज्ञान है।
कृष्ण भक्ति, कृष्ण प्रेम, कृष्ण ही विज्ञान है॥
कृष्ण स्वर्ग, कृष्ण मोक्ष, कृष्ण परम साध्य है।
कृष्ण जीव, कृष्ण ब्रह्म, कृष्ण ही आराध्य है॥

एव——

मेरे द्वारा बोल रहे है केवल मेरे वे भगवान।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मुरलीकी तान ।।
मेरे जीवनमे है अब तो एकमात्र उनका ही स्थान।
अत उन्हीकी होती मुझमे क्रिया नित्य सब क्षुद्र-महान ।।

ऐसे 'कृष्णप्राण' श्रीभाईजी वास्तवमे गुणिगणमे अग्रगण्य थे। उनके कारण अवश्य उनकी जननीकी कोख सफल हुई। श्रीगोसाईजी जगदम्बा श्रीसुमित्राजीके भावोको व्यक्त करते हुए कहते हैं——

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुबर-भगत जासु सुत होई ।।

श्रीभाईजी सचमुच 'श्रीकृष्णप्राण भगवद्भक्त' थे। उनकी दृष्टिमे ससारके सभी भगवदीय सिद्धान्तोका अद्भुत समन्वय था। इसलिये उनमे कोई मताग्रह या साम्प्रदायिक सकोच भी नही था। ऐसे महाभागवत महापुरुष ही गुणिगणमे अग्रगण्य होते है।

●

आध्यात्मिक भारतके मेरुदण्ड

श्रीमज्जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य स्वामी श्रीशान्तानन्दजी महाराज

'भाईजी' शब्दका स्मरण आते ही मेरे सम्मुख उनका स्वरूप साक्षात् उपस्थित हो जाता है—मासल काया, भरा-पूरा मुखमण्डल, उन्नत ललाट, चश्मेके भीतर आध्यात्मिक चिन्तनमे लीन आँखे। भाई हनुमानप्रसाद रुद्रावतार हनुमानजीके साक्षात् विग्रहके समान प्रतीत होते थे। निरन्तर जप करते रहनेके कारण उनकी वाणीसे अपूर्व मधुरिमा टपकती थी। उनका समस्त जीवन साधनामय रहा। उन्होने ऐहिक अभ्युदय एव पारलौकिक नि श्रेयसकी प्राप्ति करके वैदिक आदर्शोका जीवन्त उदाहरण सर्वसाधारणके सम्मुख रखा। गृहस्थ-धर्म एव त्याग-धर्म—दोनोके बीच अलौकिक सामञ्जस्य स्थापित किया। उनका जीवन गृहस्थो और सन्यासियो—दोनोके लिये समानरूपसे प्रेरणा-स्रोत रहा। 'परहित सरिस धरम नहि भाई'—यही उनकी जीवन-व्यापी साधनाका मुख्य प्रेरणा-स्रोत था। उन्होने कथनी, करनी और रहनीको अपने जीवनमे एकरूप कर दिया था। आत्मश्लाघा करनेकी कौन कहे, दूसरोके मुखसे उसे सुनना भी वे पसद नही करते थे। लोग उनके इस स्वभावसे भलीभाँति परिचित थे, अत उनकी प्रशसा उनके सम्मुख करनेका साहस नही करते थे। वे गम्भीरताकी साकार प्रतिमा थे। उन्होने अपने वहिर्जगत् और अन्तर्जगत्को एकरस कर दिया था।

मेरा भाईजीके साथ सम्पर्क सन् १९३३से था। पारमार्थिक कार्योके निमित्त मुझे वाहर जाना पड़ता था। यदा-कदा उनके पारमार्थिक सत्सङ्गका शुभ अवसर प्राप्त होता था। उस सत्सङ्गमे उनके अगाध पाण्डित्य, विशद ज्ञान और अपरोक्षानुभूतिकी त्रिविध धारा प्रवाहित होती थी। वैसे तो उन्होने इतने विशाल आध्यात्मिक साहित्यका सृजन किया है कि उसीमे निमज्जित होकर साधक अपनेको कृतकृत्य कर सकता है, पर उनके सत्सङ्गकी वात दूसरी ही थी।

उनका व्यक्तित्व सर्वाङ्गीण और स्वभाव अत्यन्त मृदुल था। उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्वमे निर्मल ज्ञान, अनुपम वैराग्य और अनन्य भक्तिकी त्रिवेणी अहर्निश प्रवाहित होती रहती थी। उनके सहज प्रेम, निष्कपट व्यवहार, वालकोचित्त सरलता, महती गम्भीरता, अपूर्व नि स्पृहता, दीन-दु खियोके प्रति करुणा, सभी धर्मो एव सम्प्रदायोके प्रति सहिष्णुता, अन्याय एव अनीतिके प्रति कठोरता, मानवमात्रके ही नहीं, अपितु जीवमात्रके लिये स्नेह आदि सात्विक गुणोका स्मरण कर मेरा चित्त सात्विक भावोसे अभिभूत हो जाता है। मानवताके वे अनुपम आदर्श थे। उनके जीवनके अक्षय भडारसे जिज्ञासुओकी जिज्ञासा, भावुकोकी सद्भावना, प्रेमियोके प्रेम, सदाचारियोके सदाचरण, अर्थार्थियोकी अर्थ-पिपासा, भक्तोकी भक्ति-भावना, त्यागियोके त्याग, साधकोकी साधना तथा चिन्तकोके चिन्तनकी सदैव तुष्टि, पुष्टि एव क्षुधा-निवृत्ति होती रही। इस प्रकार उनका उदात्त जीवन असख्य लोगोका पथ-प्रदर्शक रहा।

एक वारका सस्मरण मुझे कभी विस्मृत नही होता । मै प्रयागसे ज्योतिर्मठकी आध्यात्मिक यात्रापर था । साथमे अनेक लोग थे । ऋषिकेश पहुँचकर वही रुक गया । दूसरे दिन गङ्गा पारकर ज्यो ही उतरा, श्रीभाईजी मिल गये । सत्सङ्गका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । प्रसङ्गवश मुझसे 'सत-महिमा'पर कुछ प्रवचन करनेका आग्रह किया गया । मैने लगभग आधे घटेतक प्रवचन किया । मेरे प्रवचनके अनन्तर, उसी प्रसङ्गपर भाईजीने सामान्य श्रोताओके सम्मुख जिस मार्मिक, ओजस्वी और हृदयस्पर्शी शैलीमे भाषण दिया, उससे मै आश्चर्य-विभोर हो गया । मुझे ऐसी अनुभूति हुई, मानो मेरे ही भावो, विचारो एव अनुभूतियोको साहित्यकी नवीन अलकारात्मक शैलीमे गुम्फित करके रख दिया गया है । उनका अन्त करण स्फटिकमणिके समान निर्मल था । उन्होने अत्यधिक स्नेहसे मेरे और आश्रमके सारे समाचार पूछे । विदा होते समय उन्होने निष्कपट स्नेहसे अपने नेत्रोसे जो अश्रुजल वरसाये, उससे मुझे अनुभव हुआ, जैसे वे अत्यधिक स्नेहसे मेरा अभिषेक कर रहे है ।

भाईजीने अपनी अनुभूतिमयी सरस तथा साथ ही गम्भीर आध्यात्मिक कृतियोद्वारा जन-मानसके आध्यात्मिक सस्कारोको सुसस्कृत किया है । इस दृष्टिसे उन्होने राष्ट्रकी अद्भुत सेवा की है । वे आध्यात्मिक भारतके मेरुदण्ड है । उन्होने राष्ट्रकी आध्यात्मिक कुण्डलिनी शक्तिका उत्थान किया । उनकी यश -सुरभि भारतके आध्यात्मिक-जगत्मे मह-मह महक रही है । ऐसे सात्विक गुणोसे ओत-प्रोत पुरुषको पाकर 'कल्याण-परिवार' कृतकृत्य हुआ । हमारी मङ्गल-कामना एव आशीर्वाद है कि भाईजीके पावन चरित्रको आदर्श वनाकर लोग सुखी, सच्चरित्र, कर्त्तव्य-निष्ठ, परदु खकातर, विनयी, विवेकी, अहकारशून्य, लोकोपकारी, भक्त, त्यागी एव नि स्पृह वने ।

•

रहो सदा पर-हित-निरत, करो न पर-अपकार ।
सबके सुख-हितमे सदा समझो निज उपकार ।।
सबमे है श्रीहरि बसे, यह मन निश्चय जान ।
यथाशक्ति सेवा करो सबकी, तज अभिमान ।।
हरिकी ही सब वस्तु है, हरिके ही मन-बुद्धि ।
हरिकी सेवामें लगा, करो सभीकी शुद्धि ।।

—श्रीभाईजी

•

श्रीभगवान्‌के अलौकिक अनुपम यन्त्र

महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथ महाराज

मेरे गुरुदेव नित्यलोकगत पूज्यपाद श्रीरामदयाल मजूमदार बावाने सन् १९२७के आसपास एक दिन 'कल्याण'की एक प्रति हाथमे लेकर मुझे कहा—'देखो, गोरखपुरसे 'कल्याण' नामक एक मासिक पत्रिका निकली है। कैसे सुन्दर चित्र है! चित्र देखकर प्राण भर जाते है।' तभी मैंने पहले-पहल 'कल्याण'का नाम सुना था। सम्भवत एकाध वर्ष पूर्व ही 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ हुआ था।

इसके वाद अध्यापक-जीवनमे गीताप्रेससे भक्त-चरित, सत-अङ्क आदि मँगाकर उनको पढता, जिससे यथेष्ट आनन्द प्राप्त होता। 'कल्याण'की भाषा संस्कृत-गर्भित होनेके कारण, उसे समझनेमे मुझे विशेष असुविधा नही होती थी।

कुछ समय पश्चात् मैंने १० महीनेका मौनव्रत लिया। उसी अवधिमें 'कल्याण'का 'भक्ताङ्क' प्रकाशित हुआ। एक भक्तने मेरी लिखी हुई 'दाशरथिस्मृतिभूषण'की जीवनी उसमे प्रकाशनार्थ भेज दी और श्रीपोद्दारजीने उसे प्रकाशित कर दिया। मौनव्रत पूरा होनेपर हमने लेख देखा और यहीसे पोद्दारजीसे हमारा परिचय हुआ। पीछे सम्भवत १९५३मे उनके प्रथम दर्शन हुए।

उन दिनो मै मौन रहता था। उस मौनकालमे मैंने गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोका वङ्गानुवाद किया था। कुछ पुस्तकोका अनुवाद मै पहले भी कर चुका था। उस समय मनमे गीता-प्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम करनेकी प्रेरणा हुई। १९५५मे मैंने मौन त्याग दिया और विभिन्न स्थानोमे नाम-प्रचार करते हुए गोरखपुर जाकर गीताप्रेसके द्वारपर दण्डवत् प्रणाम किया। श्रीपोद्दार वावाने साथ रहकर पूरा प्रेस दिखलाया। श्रीपोद्दारजीका अकृत्रिम सहज प्रेम भूलनेकी वस्तु नही है। उनके प्रेमने चिरकालके लिये हृदयपर अधिकार जमा लिया है।

श्रीपोद्दार वावाके शरीरके आश्रयसे हमारे प्रभुने जो अपूर्व शास्त्र-प्रचार एव धर्म-प्रचार-की लीला की है, वह न कभी हुई है और न होगी। ऐसे सतके चरणोमे मस्तक अपने-आप नत हो जाता है। मनुष्य मन्दिरके द्वारपर देवताको प्रणाम करते है, इसीलिये कि मन्दिर श्रीभगवान्‌का मन्दिर है, मन्दिरके द्वारपर प्रणाम करनेपर देवदर्शनका अधिकार-लाभ होता है। श्रीभगवान्‌के धर्म-प्रचारके अनुपम यन्त्र श्रीपोद्दार वावा थे—उनके हृदयपर अधिकार करके श्रीभगवान् स्वय ही कार्य कर रहे थे, उनके भीतर और वाहर श्रीभगवान् ही विद्यमान थे। श्रीपोद्दार वावा मुक्त थे। इस प्रकारका शास्त्र-प्रचार एव धर्म-प्रचार देहाभिमानीद्वारा नही हो सकता। गैस वत्तीकी मैटल (mantle) भस्म हो जानेपर ही प्रकाश फैलाती है।

पीछे मैंने पुन मौनव्रत ले लिया और उस अवधिमे श्रीपोद्दार वावाकृत भाषाटीकाकी सहायता लेकर मैंने श्रीरामचरितमानसका वङ्गानुवाद किया। उस अनुवादको मैंने श्रीपोद्दार वावा और श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीके नामसे उत्सर्ग किया। उत्सर्ग-पत्रमे मैंने लिखा—

श्रीश्रीगुरवे नम

अनन्त करुणा-पारावार पुरुषोत्तम श्रीभगवान् दो अलौकिक अनुपम यन्त्रो को लेकर इस दारुण कलियुगमे सर्वत्र जो धर्म-प्रचार, श्रीनाम-प्रचार और शास्त्र-प्रचार कर रहे है, इस प्रकारके प्रचारकी वात मैने किसी इतिहासमे, पुराणमे नही देखी, अथवा किसी धर्म-प्रचारकने इस प्रकार विश्वव्यापी धर्म-प्रचार किया हो—यह नही सुना। श्रीभगवान्के सुन्दर उदित दो रमणीय चन्द्र—परमप्रेमभाजन अशेषश्रद्धास्पद 'कल्याण-सम्पादक' श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार महाशय और श्रीयुत चिम्मनलालजी गोस्वामीके पवित्र नामपर उनके अति प्रियतम 'श्रीरामचरितमानस'का वङ्गानुवाद उत्सर्ग किया ।

—सीतारामदास

१९६४मे मै पुन गोरखपुर गया। श्रीपोद्दार वावाने मुझे अपनी गीतावाटिकामे ठहरानेकी सादर व्यवस्था की। उनके सानन्द सप्रेम व्यवहारकी कोई तुलना नही थी। श्रीपोद्दार वावाके साथ तवसे वरावर पत्र-व्यवहार होता रहा ।

इस सर्वहारी युगमे सनातनधर्मकी रक्षा तथा विश्वका परम कल्याण करनेके लिये ही श्रीभगवान्की इच्छासे श्रीपोद्दार वावाके शरीरका आश्रय लेकर 'कल्याण' मासिक पत्रका आविर्भाव हुआ है। दु ख-शोक-रोग-ज्वाला-यन्त्रणासे सतत सतप्त, पथ-भ्रान्त असख्य नर-नारी 'कल्याण'-की शान्त, स्निग्ध, सुशीतल छायामे विश्राम प्राप्तकर कृतार्थ हुए है और हो रहे है। आश्चर्यकी वात है कि इस कलि-कलुष-कलुषित, शास्त्र-धर्म-विवर्जित समयमे सनातन शास्त्र और धर्मका प्रचार करनेवाले 'कल्याण'की ग्राहक-सख्या डेढ लाखसे ऊपर है ।

सन् १९६९के अप्रैल मासमे मै पुन ऋषिकेश गया। श्रीपोद्दार वावा वहाँ थे। मे उनका साक्षात्कार करने गया। उस समय उनके पेटमे भीषण शूल था, पर मेरा सत्कार करनेके लिये उन्होने इसकी तनिक भी परवाह नही की, न किसीसे कुछ कहा। वे आनन्दपूर्वक मिले। वाते हुई, कीर्त्तन-सत्सङ्ग हुआ। उन्होने श्रीठाकुर-सेवाके लिये प्रचुर मात्रामे फल दिये और मुझे विदा करनेके लिये घाटतक आये। मै उस समय नही समझ पाया कि वह विदा अन्तिम विदा थी और यह भी उस समय समझमे नही आया कि उनके पवित्रतम प्रेममय भुवन-मङ्गल श्रीविग्रहको फिर देख न पाऊँगा। यह दर्शन इस जन्मका अन्तिम दर्शन था।

श्रीपोद्दार वावा चले गये—लाखो-लाखो भक्त-प्रेमियोको रुलाकर वे नित्यधामके वासी हो गये। जिस धार्मिक, चरित्रवान्, प्रेमी, तपोनिष्ठ, मधुरभाषी, सज्जनानुरागी, परमभक्त, आदर्श पुरुषको हमने खो दिया, उसकी जगत्मे कोई उपमा नही थी। जैसे सागरकी उपमा सागर, आकाशकी उपमा आकाश है, उसी प्रकार हमारे श्रीपोद्दार वावाकी उपमा हमारे पोद्दार वावा थे। मेरा यह दृढ विश्वास है कि गोलोकमे श्रीराधागोविन्दके साथ नित्यलीला-निरत श्रीपोद्दार वावाकी करुणाकी धारा 'कल्याण' और 'कल्याण-प्रेमी' जनोके मानसमे अजस्र प्रवाहित हो रही है और सदा होती रहेगी।

●

विश्वबन्धु श्रीभाईजी

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज

मनसि वचसि काये प्रेमपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

(श्रीभर्तृहरि)

एक वार कलकत्तेमे एक वडे विद्वान् पण्डितजीने भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके आनेपर उनका हँसते-हँसते स्वागत करते हुए कहा था—'आइये वाल, वृद्ध, युवक, स्त्री, पुत्री—सभीके समानरूपसे भाईजी !'

यह वात कही तो विनोदमे थी, किंतु यह अक्षरश सत्य थी। वडेसे लेकर वूढेतक, वालकसे लेकर युवकतक, स्त्री-पुरुष—कोई भी क्यों न हो, सव उन्हे 'भाईजी'के नामसे पुकारते थे। यहाँतक कि उनकी पुत्री सावित्रीको भी हमने उन्हे भाईजी कहते सुना है। श्रीजयदयालजी गोयन्दका, जिन्हे वे गुरुवत् मानते थे, वे भी वात-वातमे कहा करते थे—'भाईजीसे पूछ लो, इस विषयमे भाईजीकी क्या सम्मति है। 'भाई, मै क्या वताऊँ ? भाईजी जो कहे, वही करो।'

'भाईजी' उनका सार्थक नाम था। वे समस्त विश्वके भाई थे, सुहृद् थे, सच्चे वन्धु थे। जिनका उनके साथ थोडा-सा भी सम्पर्क रहा होगा, वही जानता होगा—उनमे कितनी आत्मीयता थी। किसी एक ही मानवमे एक साथ इतने सद्‌गुणोका समावेश होना अत्यन्त ही कठिन है। जो उन्हे अपना सुहृद् मानता था, वह यदि किसी विपत्तिमे फँसा होता, उसे किसी प्रकारका दुःख होता, तो उसे उनके समीप जानेपर अवश्य ही शान्ति मिलती थी। जैसा श्रीभगवान्‌ने अपने सम्वन्धमे अर्जुनसे कहा है—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥'

वचनोसे तथा द्रव्यादिसे उनकी सहायता करते और धीरेसे कानमे कह देते—'कृपया किसीसे यह वात कहियेगा नही।' उनके यहाँसे विमुख स्यात् ही कोई लौटा हो।

यह कितना भारी त्याग है कि निरन्तर सवकी मनसा-वचसा-कर्मणा सहायता करते रहना और उसके वदलेमे कुछ चाहना तो दूर, उसे किसीके सामने प्रकट भी न होने देना। उनके पास नित्य ही वहुत-से पत्र आते। प्राय सभीके पत्रोका उत्तर दिलानेकी चेष्टा रखते थे। वे उत्तर क्या होते थे, सूत्र होते थे। उनमेसे वहुत-से पत्र तो 'कामके पत्र' नामसे 'कल्याण'मे निकलते ही रहते थे। अव उनके सभी पत्रोका प्रकाशन होना चाहिये। वह साहित्य-की एक स्थायी सम्पत्ति होगी।

अपने आत्मीय परिचित वन्धुओपर तनिक-सा सकट देखते ही वे तुरत दौड पडते। मेरा तो उनसे लगभग ४०-४२ वर्षोसे अपने आत्मीय वन्धु-जैसा घनिष्ठ सम्वन्ध था। वे कितना अधिक मेरा आदर करते और कोई वात समझानी होती तो उसे कितनी नम्रतासे, कितनी सरलतासे, कितनी आत्मीयताके साथ समझाते कि उसे टालनेका साहस ही नही होता था। जव भी मै स्मरण करता, वे तुरत उपस्थित हो जाते। वास्तवमे वे मेरे सखा, सचिव, सेवक, परामर्शदाता, पथ-प्रदर्शक—सव ही रहे है। उनके सम्वन्धकी अनन्त स्मृतियाँ मेरे हृदयमे निहित हे।

सर्वप्रथम वे मुझे तीर्थराज प्रयागमे कुम्भके अवसरपर मिले थे। तव उन्होने कुम्भके अवसरपर प्रयागराजमे गीताज्ञानयज्ञका आयोजन किया था। उसमे भारतके सुप्रसिद्ध गायनाचार्य श्रीविष्णु दिगम्वर तथा अन्यान्य महात्मा एव विद्वान् समुपस्थित थे। श्रीहरिवावाजी भी आये हुए थे। झूसीकी ओर श्रीगौरीशकरजी गोयन्दकाका क्षेत्र लगा था, उसीमे श्रीहरिवावाजी ठहरे थे। उन्हीसे मिलने वे आये थे। तवतक 'कल्याण'को प्रकाशित हुए कुछ ही वर्ष हुए थे। मेरा उनसे पत्र-व्यवहार तो 'कल्याण'के निकलनेके समयसे ही था, किंतु भेट प्रयागमे ही हुई। उस समय उनका कोई-कोई वाल पकने लगा था। मैंने हँसीमे कहा था—'मै समझता था, हनु-मानप्रसाद पोद्दार कोई धनिक, गोरे, सुन्दर, सजे-धजे, मान-सम्मानके इच्छुक, किशोर व्यक्ति होगे। ये तो श्यामवर्ण, खिचडी वालवाले, सर्वथा 'देहाती' वेषधारी, सीधे-सादे सत-सदृश व्यक्ति निकले।' यथार्थमे वे गृहस्थ-वेपमे सत ही थे। एक पत्रमे उन्होने अपने लिये 'सफेद-वस्त्रधारी सन्यासी' शव्द लिखे है। कपडे रँगने मात्रसे ही कोई सत नही हो जाता। वे सादे-स्वच्छ कपडोमे भी सत थे। जिन दिनो मै हसतीर्थ झूसीमे अनुष्ठान करता वीमार हुआ, वे तुरत दौडे आये। जव राम-लीलाके सम्वन्धमे मै पकडा गया, तो सुनते ही प्रयाग आ गये। परमहस वावा राघवदासजीको साथ लेकर टडनजीसे मिले। जेलमे मुझसे मिलने गये। फिर महामना मालवीयजीसे, पतजीसे, किदवईजीसे और न जाने किस-किससे मिलकर जवतक मुझे छुडवा नही लिया, उन्हे चैन नही पडा। कितने महान् थे वे!

उनकी एक-एक वातको स्मरण करके हृदय भर आता है। उनकी आत्मीयताकी अनन्त

स्मृतियाँ मेरे हृदय-पटलपर लिखी हुई हैं। उन सबको लिखना चाहूँ तो एक वहुत वडा ग्रन्थ वन जायगा। फिर भी वे पूरी-की-पूरी लिखी जा सकेंगी, इसमे सदेह है।

उनमे एक वडा भारी गुण था—वे हमारे दोषोको जानते हुए भी हमलोगोसे प्रेम करते थे। किसीके दोषोको जहाँतक होता, भरसक प्रकट नही करते थे। अनेक प्रसङ्ग ऐसे आये, जव कि मै उनसे अत्यधिक नाराज हो गया, अपनी वातपर अड गया। उन्होने पैर पकडकर, रोकर, विनय करके मुझे शान्त किया। पीछे जब मेरा आवेश कम हुआ, तव मुझे पता चला कि दोष मेरा ही था। मेरा जो आदर्शवादी बननेका आग्रह था, वह मेरे अभिमानका ही द्योतक था।

प्राय मेरे सभी आन्दोलनोमे उन्होने मनसा-वाचा-कर्मणा सहयोग दिया और मुझे प्रसिद्ध करनेमे उन्होने अपनेको गौरवान्वित समझा। हमने जो चौदह महीनेका 'अखण्ड नाम-जप-साधन-यज्ञ' किया, जिसमे सभी साधक जप-कीर्त्तन करते हुए मौनी, फलाहारी रहकर अनुष्ठान करते थे, उसका उन्होने 'कल्याण'के द्वारा यथेष्ट प्रचार किया। अपने यहाँसे चार साधक भेजे, जिनमे प्रेस-व्यवस्थापक गङ्गावाबू भी थे। पोद्दारजी समय-समयपर झूसीमे मेरे पास ठहरते थे। साधकोको वार-वार लिखते रहते थे—'महाराजजीकी समस्त आज्ञाओका अक्षरश पालन करते रहना।' अनुष्ठानकी समाप्तिपर, जो कि महामना मालवीयजीके करकमलोद्वारा हुई थी, आप झूसी आये और कई दिनोतक रहे।

इसके परचात् आपने कहा—'ऐसा ही एक वर्षका अनुष्ठान आप गोरखपुरमे कराइये।' इसके लिये आपने सव व्यवस्था की। किंतु अपना नाम कही भी नही दिया। सव मेरे ही नामसे करते रहे। हमारे साथ १०-१२ साधक थे। सवके ठहरने, खाने-पीने और सवारीका कैसा प्रवन्ध किया, वे सव वाते जव याद आती हैं तो हृदयमे हूक-सी उठती है। उन दिनो कैसा सुन्दर सत्सङ्ग होता था! न जाने कितने अच्छे-से-अच्छे विद्वान् बैठकर भगवत्-चर्चा किया करते थे। **'ते हि नो दिवसा गताः'**—हाय, वे हमारे दिन चले गये और ऐसे गये कि फिर लौटकर नही आनेके!

मै उनसे मिलने उनके पैतृक स्थान रतनगढ गया था। मुझसे बोले—'कुछ दिन रतनगढ रहिये।' मैने कहा—'क्या रहे? तुम्हारे यहाँ इतने सेठ लोग है, कोई उत्सव नही कराते?' वडे ही उत्साहके साथ धीर-गम्भीर भावसे बोले—'जव चाहे, जैसा चाहे, उत्सव कराइये।' मैने कहा—'इस वर्ष नव-सवत्सर-उत्सव तो हमे मुजफ्फरनगरमे करना है, फिर कभी देखा जायगा।' वे बोले—'शुभस्य शीघ्रम्'। नवसवत्सर-उत्सव यही कीजिये, या १५ दिन यहाँ, १५ दिन मुजफ्फरनगर।' तुरत निश्चय हुआ और उनके सकल्पसे रतनगढका उत्सव इतना भारी और सफल हुआ कि मारवाडके सभी लोग कहते थे कि ऐसा उत्सव 'न भूतो न भविष्यति।' वड़े-वडे धनिकोके वच्चे, जिनमे कई करोडपति भी थे, दर्शकोके जूते उठानेसे लेकर झाडू देना, पखा झलना आदि छोटी-से-छोटी सेवा करनेको सर्वथा प्रस्तुत रहते थे। धनिक-समाजपर कितना भारी उनका प्रभाव था, यह दृश्य मैने १५ दिन रतनगढमे रहकर ही देखा। उन दिनो द्वितीय महायुद्धके कारण अधि[illegible] मारवाडी सेठ कलकत्ता छोडकर अपने प्रान्तमे आ गये थे। वे भाईजीको प्राणोसे

अधिक प्यार करते और भाईजी उन सुकुमार किशोर बच्चोके कधोपर हाथ रखकर, जैसे अत्यन्त स्नेहशील पिता अपने प्यारे पुत्रोसे बात करता है, वैसे उन्हे छोटी-से-छोटी, नीची-से-नीची सेवाके लिये आज्ञा देते और वे करोडपति-लखपतियोके सुकुमार कुमार बडे उल्लासके साथ उन आज्ञाओका पालन करते। भाईजी जिसे आज्ञा दे दे, वह उसमे अपना बडा सौभाग्य समझता।

हँसमुख इतने थे कि बात-बातपर हँसते रहते। मेरी जिस बातको भी देखते, उसीपर ठहाका मारकर हँस पडते। रतनगढमे शोभायात्रा निकली। वहाँ मरुभूमि होनेसे ऊँट बहुत है। मै ऊँटपर उल्टा बैठकर नगर-कीर्त्तनमे निकला। मेरा मुख ऊँटकी पूँछकी ओर था। मार्गभर मुझे देखकर खिलखिलाकर हँसते ही गये। जब किसी छोटे बच्चेके गलेसे सोनेकी जजीर उतारकर मै स्वय पहिन लेता और बच्चा रोने लगता तो वे हँसते-हँसते उसे गोदमे लेकर पुचकारते और कहते—'कह दे बच्चा, आप ही इसे पहिन लीजिये।' ऐसी उनकी अनन्त स्मृतियाँ है, जो अब देखनेको न मिलेगी। क्या सामाजिक, क्या राजनीतिक, क्या धार्मिक, क्या साहित्यिक—हमने जो-जो भी आन्दोलन किये, भाईजीने उनमे सक्रिय सहयोग दिया। जब हमारी 'गो-हत्या-निरोध-समिति' बनी, तब आप उसके कोषाध्यक्ष हुए और आपने सब प्रकारसे उसको सँभाला। जब हमारा गो-व्रत हुआ, तब भी वे पधारे और उन्होने हमको सब प्रकारसे उत्साहित किया। उस आन्दोलनमे कितना व्यय हुआ, कहाँसे आया, मुझे कुछ पता नही। भाईजी ही सब प्रबन्ध करते रहे। कहाँसे करते थे, किससे लेते थे—इसे वे ही जाने। पर सब काम सुचारुरूपसे चलते रहे, कही भी अभावका अनुभव नही हुआ।

यह बात गोरक्षा-आन्दोलनके सम्बन्धमे ही नही है, जितने भी परोपकार-सम्बन्धी कार्य हुए—वे चाहे महामना मालवीयजीद्वारा हुए हो, गाधीजीद्वारा, परमहस बाबा राघवदासद्वारा अथवा श्रीगोलवलकरजी या अन्य लोगोके द्वारा हुए, उन सबमे भाईजीका हाथ रहता था और वे मुक्तहस्त होकर विशालताके साथ सहयोग देते थे। दूसरोके दोषोको न देखते हुए, परोपकार-भावनासे, गुप्तरीतिसे सतत पर-हितमे निरत रहना—यही उनका असि-धारा-व्रत था। कलतक जो हमारे साथ हँसते, खेलते और कार्य करते रहे, आज वे भौतिक शरीरसे हमे दिखायी नही देते, यही कष्टप्रद कालकी क्रूर चेष्टा है। उन कालस्वरूप कृष्णके पाद-पद्मोमे प्रणाम करते हुए श्रीभाईजीके प्रति मै अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ।

अद्यैव हसितं गीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम्॥

•

अद्वितीय महापुरुष

महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीभजनानन्दजी सरस्वती

हमारा और भाईजी पोद्दारजीका सम्बन्ध ४५ वर्षोसे रहा। वे मुझे अपना मानते थे और मै उन्हे अपना मानता था। कई वार 'गीतावाटिका'मे जानेका मौका मिला। भाई पोद्दारजी-से अनेक वाते सीखी। न तो उन सभी वातोका स्मरण है और न लिख ही सकता हूँ। आजसे करीव ३० साल पहले गीतावाटिकामे जाना हुआ, तव हमने भाईजीसे कहा—'भाईजी, मै कुछ प्रचार भी करता हूँ और अपना साधन भी।' भाईजीने कहा—"भगवान् श्रीकृष्णने (गीता १८। ६८-६९मे) कहा है कि 'जो पुरुष मुझसे परम प्रेम करके यह परम रहस्यमय 'गीताशास्त्र' मेरे भक्तोसे कहेगा, वह निस्सदेह मुझे ही प्राप्त होगा। न तो इससे वढकर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योमे कोई है और न इससे वढकर मेरा अत्यन्त प्यारा इस पृथ्वीमे दूसरा कोई होगा।' पर साथ ही इस वातका भी ध्यान रखे कि कही इस प्रचारके अभि-मानी न वन जायँ। यह भी ध्यान रखे कि अपना साधन कभी न छूटे।"

उस समय श्रीभाईजीने यह भी कहा था—

पण्डित और मसालची, इनको दीखत नाहि।
औरन को कर चाँदनी, आप अँधेरे माहिं॥

उस समय एक और वात उन्होने कही, वह वडे रहस्यकी है—

यह भी देख, वह भी देख, देखत-देखत ऐसा देख।
कि मिट जाय धोखा, रह जाय एक॥

जवसे 'परमार्थ-निकेतन' वना, प्राय प्रतिवर्ष उनसे कुछ-न-कुछ सत्सङ्ग हो ही जाता था। हम उन्हे आदर देने लगते तो वे वडे सकुचित हो जाते थे। एक वार उन्होने कहा—'महा-राजजी, आप उलटी गङ्गा न वहाया करे।' हमने कहा—'उलटी गङ्गा भगवान्‌के चरणोमे पहुँचेगी और सीधी गङ्गा खारे समुद्रमे।' सुनकर भाईजी खिलखिला उठे। कहने लगे—'हम आपसे हार गये।'

'गीता-भवन' और 'परमार्थ-निकेतन'वालोसे जव कभी कोई मतभेद हो जाता था, तव वे सदा सत्यका पक्ष लेकर आपसका मतभेद दूर करके परस्परमे प्रेम-व्यवहार स्थापित कर दिया करते थे। उनके सद्व्यवहारको देखकर सभी उनसे प्रभावित थे। किसीके प्रति उनके मनमे ईर्ष्या-द्वेष नही था। सभीको भगवद्रूप समझकर वे यथोचित सद्व्यवहार करते थे। उनकी करनी और कथनी एक-जैसी थी। जैसा कहते थे, वैसा स्वय भी करते थे। हिंदू-धर्म, समाज एव आध्यात्मिक प्रचारके लिये जो सेवाएँ उन्होने अपने शरीरसे, अपनी वाणी एव लेखनीसे की, वे

सदा चिरस्मरणीय रहेगी। अपनी सेवासे उन्होने सवको ऋणी वना लिया। वे भगवान्की विभूति थे। जैसे मै समझता हूँ कि वे मुझसे सर्वापेक्षा अधिक प्रेम रखते थे, वैसे ही उनसे सम्वन्धित सभी समझते होगे कि उनसे ही वे सवसे अधिक प्रेम रखते थे। यही महापुरुषोका लक्षण है। उनमे एक विशेषता और थी, जो दूसरोमे कम देखनेमे आती है। वह यह कि वे कठिन-से-कठिन समस्या आ जानेपर भी विचलित नही होते थे। वडे धैर्य एव शान्तिपूर्वक सभी समस्याओको सुलझाया करते थे। वे वडे कर्मनिष्ठ भक्त महापुरुष थे। उनका जीवन इतना व्यस्त रहता था कि शायद ही किसीका उतना व्यस्त जीवन हो। वृद्धावस्था, रुग्णावस्थामे भी वे वरावर सम्पादन और लेखन-कार्य करते रहे और कार्य करते-करते परमधामको चले गये। इस युगमे ऐसा महापुरुष होना कठिन है। गीताके १२वे अध्यायमे भक्तके—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सतत योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।

—आदि जो-जो लक्षण श्रीभगवान्ने कहे है, वे सव लक्षण उनमे थे। वाते अनेक है, वैसे महापुरुषोके सम्वन्धमे कोई क्या लिख सकता है।

यद्यपि वे दृश्यमान रूपमे हमलोगोके बीचमे नही रहे, तथापि उनके स्मरणमात्रसे हम सव देशवासियोको उनसे प्रेरणा मिलती रहेगी। परमपिता भगवान्से प्रार्थना है कि उनके वताये हुए रास्तेसे उनके पदचिह्नोका अनुसरण करते हुए देशवासी अपना जीवन सफल वनाये।

●

हमे प्रभु! दो ऐसा वरदान।
तन-मन-धन अर्पण कर सारा, करें सदा गुण-गान॥
कभी न तुमसे कुछ भी चाहे, सुख-सम्पति-सम्मान।
अतुल भोग परलोक-लोकके खीच न पायें ध्यान॥
हानि-लाभ, निन्दा-स्तुति सम हो, मान और अपमान।
सुख-दुख, विजय-पराजय सम हो, वन्धन-मोक्ष समान॥
निरखें सदा माधुरी मूरति, निरुपम रसकी खान।
चरण-कमल-मकरन्द-सुधाका करे प्रेमयुत पान॥

—श्रीभाईजी

●

श्रीशिवानन्द आश्रम ऋषिकेशमें भारतीय संस्कृतिका संदेश देते हुए
पार्श्वमें श्रीचिदानन्दजी एवं श्रीकृष्णानन्दजी महाराज

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीसे गोरक्षाके प्रश्नपर विचार-विनिमय

श्रीशुकदेवानन्दजी तथा अन्यान्य संतगणोंके समक्ष प्रवचन
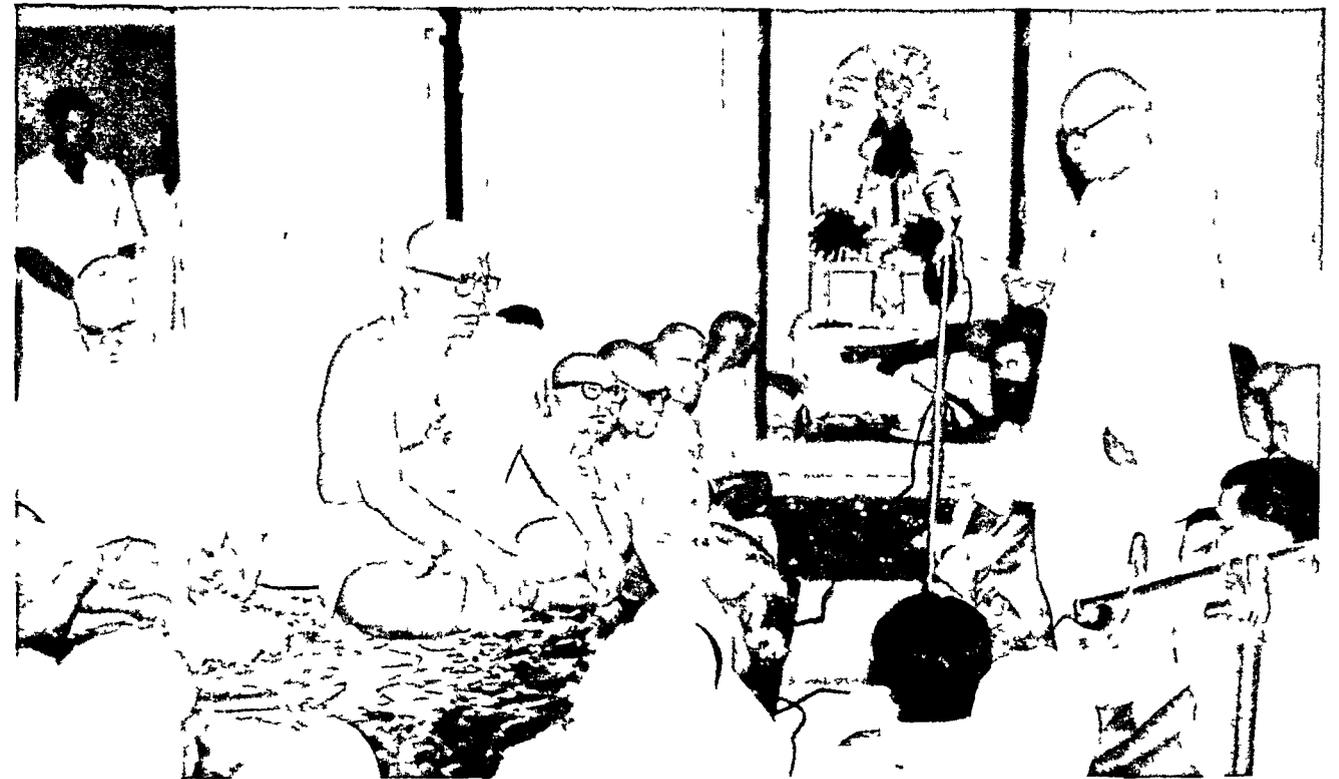
श्रीकृष्ण जन्मभूमि मथुरामें
श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वतीकी उपस्थितिमें श्रीकृष्णमहिमा पर प्रकाश डालते हुए

हमारे सुहृद् एवं स्वजन

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराज

हमारे सुहृद् एव स्वजन श्रीभाईजीके गोलोकधाम-गमनसे हमे वडी पीडा हुई । यह धार्मिक जगत्की अपूरणीय क्षति है ।

' 'कल्याण'के तीसरे वर्ष (सन् १९२९)के विशेषाङ्क 'भक्ताङ्क'को पढकर भाईजीसे मिलनेकी इच्छा हुई । उस समय मनमे कल्पना होती—'भाईजीकी आँखे सर्वदा बद रहती होगी, मुखमण्डलसे ज्योति निकलती होगी, गौर वर्ण होगा, सबसे अलग रहते होगे, न जाने क्या-क्या विशेषताएँ उनमे होगी । हमसे न जाने कितने दूर होगे ।' मिलनेकी उत्कण्ठा इतनी तीव्र हुई कि रुपये-पैसेका ख्याल न करके खाली हाथ जैसे था, वैसे ही चल पडा । दोहरीघाट स्टेशनतक रेलवेसे गया और वहाँसे गोरखपुर करीव २० मील पैदल ।

उन दिनो भाईजी गोरखनाथके समीपवाले वगीचेमे रहते थे । पहले मै गीताप्रेस पहुँचा और वहाँसे पैदल चलकर वगीचे आया । जब मै वहाँ पहुँचा तो भाईजी वहाँसे प्रेस जा चुके थे । गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजीसे कुछ वातचीत होती रही । ६-७ घटे वाद करीव ८ वजे रात्रिको भाईजी प्रेससे लौटे ।

मुझे देखते ही भाईजीने इस प्रकार मुझे पकड़कर गलेसे लगा लिया, जैसे मै उनका कोई चिरपरिचित होऊँ । शान्तिसे बैठ जानेके बाद मैने पूछा—'भगवान्मे प्रेम कैसे हो ?'

भाईजी बोले—

उमा राम सुभाउ जेहि जाना । ताहि भजन तजि भाव न आना ॥

इसके वाद दो-दो, तीन-तीन मिनटपर एक-एक वाक्य बोलते—'भगवान्का स्वभाव कितना दयालु है । वे अपने सेवकोके अपराधपर दृष्टि नही डालते ।' इत्यादि वाते घटोतक होती रही । बीच-बीचमे भाईजीके नेत्रोसे आँसू गिरते थे और मुझे भी रोमाञ्च हो आता था । वस, यही भाईजीका प्रथम दर्शन था । मै तीन-चार दिन गोरखपुर रहा । भाईजीने कहा कि आपको अवकाश हो तो यहाँ कुछ दिन रहिये । परतु मै उस समय ठहर नही सका । भाईजी अपने घरके हो गये । न उनके मुखपर कोई ज्योतिर्मण्डल था, न आँखे हर समय बद रहती थी । वे तो हमे वैसे ही मिले, जैसे भाई भाईसे मिलता है । वे हमसे दूर नही थे, वहुत निकट थे, परतु हमको इसका क्या पता था ।

गोरखपुरसे श्रीभाईजीके शील, स्वभाव, प्रेम और सहानुभूतिकी स्मृति लेकर तीन-चार दिन वाद मै घर लौट आया । भगवत्प्राप्तिके लिये व्याकुलता वढी ।

कुछ अनुष्ठान किये, कुछ-कुछ सफलता मिली, हृदय-मस्तिष्क कुछ निर्मल हुआ, भक्ति और वेदान्तमे एक साथ ही प्रवृत्ति हुई । घरसे भगा तो नर्मदातटके लिये, परतु झूसीमे ब्रह्मचारी

श्रीप्रभुदत्तजीने रोक लिया। उस समय वहाँ 'अखण्ड सकीर्तन महायज्ञ'का द्वितीय षाण्मासिक उत्सव प्रारम्भ हुआ ही था। कुछ ही दिनोमे मै वहाँ 'साधक'से 'कथावाचक' हो गया। लोगोसे परिचय बढा—गीताप्रेससे आये हुए साधक—गङ्गावावू, रामजीदासजी वाजोरिया एव पुरुषोत्तम सिहानियासे भाईजीके सम्वन्धमे कभी-कभी वाते होती। भाईजीकी ओर मेरा आकर्षण बढने लगा। उन दिनो मैने श्रीभाईजीको एक पत्र लिखा, जिसका उन्होने वहुत सुन्दर उत्तर भी दिया।

अर्धकुम्भीके अवसरपर भाईजी झूसी आये, किंतु वे दो-तीन दिन ही वहाँ रह पाये। मुझसे कोई विशेष वातचीत न हो पायी, क्योकि उन्हे वहाँपर अवकाश वहुत कम था और मै उस समय मौन था। इसलिये केवल १०-५ मिनटके लिये केवल शिष्टाचार-की कुछ वाते हुई और भाईजी वहाँसे वापस गोरखपुर चले गये। झूसीका अनुष्ठान समाप्त होनेपर अयोध्या, ऋषिकेश, दिल्ली एव चित्रकूट होता हुआ आषाढ शुक्ला ११, स० १९९३को मै गोरखपुर 'गोयन्दका गार्डन'मे पहुँच गया। अव इसका नाम 'गीतावाटिका' है। मेरे साथ ग्वालियरके वावा रामदासजी एव प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी अपनी-अपनी मण्डलियोके साथ थे। वहाँ एक वर्षका 'अखण्ड सकीर्तन महायज्ञ' प्रारम्भ होनेवाला था। यहीसे हमारी और श्रीभाईजीकी घनिष्ठता प्रारम्भ हुई।

× × ×

मै जव 'कल्याण'-परिवारमे एक सदस्य था, श्रीउडियावावाजी महाराजके दर्शन करने गङ्गातटपर कर्णवास आया। वावा बोले—'क्यो शान्तनु! वहाँ सव ठीक है?' मैने कहा—'हाँ महाराज! सेठजीकी निष्ठा वडी पक्की है। भाईजी वडे भक्त हैं। हमसे वहुत प्रेम भी करते है।' वावाने कहा—'अच्छा शान्तनु! मै तुम्हे एक कथा सुनाता हूँ।'—

'एक थे महात्मा, सर्वथा विरक्त साधु! विचारशील और त्यागी। वे गाँव-गाँव, ठाँव-ठाँव कहते-फिरते—'कही कब्र है, कब्र?' गृहस्थ उनका अभिप्राय समझ नही पाते थे। एक थे गृहस्थ ज्ञानी, असङ्ग और निष्ठावान्। वे समझ गये और अपने घरकी ओर उँगली दिखाकर बोले—'महाराज! कब्र तो यह है, कही मुर्दा भी है?'

साधुने अपने शरीरको मुर्दा वताया और उनके घरमे घुस गये। उनके लिये एकान्त कमरेकी व्यवस्था हो गयी। वे किसीसे मिलते-जुलते नही थे। एकरस वारह वर्ष बीत गये। एक दिन गृहस्थके घर चोर घुसे। लाखोकी सम्पत्ति समेटकर जाने लगे। साधुके मनमे आया—'मैने वारह वर्षतक इसकी रोटी खायी। मेरी आँखोके सामने इसकी चोरी हो जाय, क्या यह उचित है? मेरा कुछ भी कर्तव्य नही?'

वे चोरोके पीछे लग गये और जगह-जगह कोपीन फाड कपडे वाँध दिये। जिस कुएँमे चोरोने सम्पत्ति डाली, उसे पहचान लिया। दूसरे दिन साधुके वतानेपर चोर पकडे गये और सम्पत्ति मिल गयी।

स्वस्थ और शान्त होनेपर एक दिन गृहस्थने साधुसे प्रश्न किया—'महाराज! मुर्दा सच्चा या कब्र?'

वे बोले—'कब्र सच्ची, मुर्दा झूठा।' और वे वहांसे विरक्त होकर निकल पडे।

बाबाके इस उपदेशको मैंने सन्यासकी प्रेरणा समझी। सचमुच भाईजी और उनके परिवारसे घनिष्ठता बढती जा रही थी। मैंने सन्यास अपनी आनुवशिक घर-गृहस्थीसे नही, भाईजीके परिवारसे ही लिया।

× × ×

एक दिन भाईजीके पास एक व्यक्ति आया। भाईजीसे बोला—'मेरी बीमार पत्नी अस्पताल-मे है, सहायता दीजिये।' उन्होने सहायता दी। कुछ दिन बाद आकर बोला—'अस्पतालमे उसे बच्चा हुआ है, सहायता दीजिये।' तब भी दी। कुछ दिन बाद फिर आकर कहने लगा—'हालत खराब है, कुछ और दीजिये।' तब भी दी। पाँच-दस दिन बाद पुन आया और बोला—'मर गयी, अन्त्येष्टि कैसे करे?' फिर भी दी। फिर कहा—'घर जानेके लिये किराया चाहिये।' फिर भी दी।

किसीने पूछा—'भाईजी, यह कैसा आदमी है? कोई ठग लगता है।'

भाईजीने कहा—'मुझे पहले दिनसे मालूम है। न पत्नी बीमार, न बच्चा हुआ, न अस्पताल, न मृत्यु। किंतु जब यह मेरे सम्मुख आकर बैठता है, तब लगता है कि इसने पूर्व-जन्ममे मुझे कोई ऋण दे रखा था। इसका मैं ऋणी हूँ और वही चुका रहा हूँ।

भाईजीके मनमे यह भाव ही नही था कि 'मैं इसपर उपकार कर रहा हूँ।' ठगके प्रति दुर्भावकी तो बात ही क्या।

× × ×

एक दिन मुझसे भाईजीने कहा—'पण्डितजी! भगवान्‌की स्मृति सदा नही रहती। वे बीच-बीचमे भूल जाते है।'

मैंने कहा—भाईजी! यह विस्मृति भी तो वे ही देते हैं। उन्होने गीतामे कहा है—'मत्त स्मृतिर्ज्ञानमपोहन च।'

'विस्मृति भी वे ही देते हैं'—भाईजीने दुहराया और उनके नेत्रोसे अश्रुधारा चलने लगी, शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे भावविभोर हो उठे।

•

हटते नही एक पल भी वे मुझे छोड़कर प्रियतम श्याम।
सोते-जगते, खाते-पीते, हरदम रहते पास ललाम॥
नित्य दिखाते रहते अपनी अति पवित्र लीला सुखधाम।
बाहर-भीतर, तनमें-मनमें देते रहते सुख अविराम॥

—श्रीभाईजी

•

गृहस्थ महात्मा

श्रीरामदत्तजी पर्वतीकर (वीणा महाराज)

परमपूज्य प्रात स्मरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोक-गमनसे दास अत्यन्त दु खी हुआ। उनके वियोगसे इस जगमे सभीको, विशेपत भारतवासी जनताको अत्यन्त हानि पहुँची है। गीताप्रेसद्वारा अमूल्य ग्रन्थोके प्रकाशन तथा उनके बहुविध इतर परोप्रकारी कार्योका प्रकाश श्रीसूर्यनारायणके प्रकाशकी तरह फैला हुआ है। उसके बारेमे कुछ लिखना सूर्यको प्रकाश दिखाने-जैसा ही है। श्रीभाईजी तो नि सशय प्रात स्मरणीय है। उनका स्वभाव तथा कार्य उच्चकोटि-के साधु-सतो-जैसा ही था। वे गृहस्थके वेषमे थे, फिर भी उन्होने बडे-बडे दाढी-जटा-दण्डधारी महात्माओसे भी उच्च कार्य कर दिखाया है, लोगोका बहुत ही उपकार किया है। दासने जब-जब उनके दर्शन किये, तब-तब उनमे नये-नये सद्‌गुण दिखायी पडे। सबसे पहले उनके दर्शन दासने प्रयागराजके कुम्भ-मेलेमे १९५४मे किये थे। कुम्भ-मेलेमे श्रीगीताप्रेसका स्वतन्त्र शिविर लगा था। कई बार दास कैम्पमे जाता था और जब-जब जाता, तब-तब श्रीपरमपूज्य पोद्दारजी-को अलग-अलग परोपकारी कार्योमे सलग्न देखता था, जैसे—कभी यज्ञ करानेमे तत्पर, कभी अखण्ड कीर्तनको प्रोत्साहन देते हुए, कभी अतिथियोकी सेवामे तत्पर तथा कभी महात्माओके प्रवचनोका आयोजन करके विनय एव सम्मानपूर्वक एकचित्तसे श्रवण करते हुए। अत्यन्त भक्ति-विभोर होकर भगवान्‌के प्रेममे अश्रु बहाते हुए उनके दर्शन कइयोने किये होगे। भगवान्‌के लिये आँसू बहाना उच्चकोटिके भक्तोका लक्षण है। कण्ठका गद्‌गद होना, शरीरका रोमाञ्चित होना इत्यादि लक्षणोसे साधनाकी पराकाष्ठा व्यक्त होती है। श्रीभाईजीके इन सब गुणोका बहुत-से महात्माओने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। एक उच्चकोटिके महात्मा गत अर्द्धकुम्भीके समय प्रयाग-मेलेमे ‘श्रीराघवेन्द्र स्वामी मिशन कैम्प’मे मेलेके अधिकारीके सामने कह रहे थे—“श्रीभाईजी सभीके सुहृद् है। अपरिचित व्यक्ति भी अपना दु ख उनके सामने प्रकट करता है तो वे सगे भाईकी भाँति ही उसका दु ख दूर करने लगते है। यही हेतु है कि सब लोग उन्हे ‘भाईजी’ कहकर सम्बोधित करने लगे।” गरीबोको अनेक प्रकारके दान देना, अनाथोको अन्न-वस्त्रादिसे उपकृत करना इत्यादि अनेक प्रकारके सद्‌गुण उनमे स्वाभाविक थे। बहुत परोपकार करके भी वे उसे थोडा मानते तथा अपने सुकृतका प्रदर्शन नही करते थे। अपनी महत्ताका प्रदर्शन या ढिढोरा पिटवानेके लिये यह परोपकार नही था। किंतु सर्वान्तिर्यामी श्रीहरिके प्रीत्यर्थ ही उनका कार्य आदर्श कर्मयोगी जनकराजाके जैसा रहा। धन्य है ऐसे गृहस्थ महात्मा—‘परोपकाराय सता विभूतय’।

कुम्भ-मेलेके पश्चात् उनके दर्शन गीतावाटिका (गोरखपुर)मे हुए। उस समय वे अपना महत्त्वपूर्ण कार्य छोडकर कमरेसे बाहर आये और वयमे दासके पितातुल्य और ज्ञानमे वृद्ध होने-पर भी दासके पैर छूकर दासको लज्जित किया। फिर अपना सब कार्य छोडकर परमपूज्य स्वामीजी

महाराज श्रीराधाबाबाकी कुटियाके पास ले गये और श्रीस्वामीजी महाराजको बाहर बुला लाये। और भी लोगोको इकट्ठा किया। दाससे वीणापर कीर्त्तन करवाया और आप भी जोर-जोरसे कीर्त्तन करने लगे। पीछे एक बार ऋषिकेशमे भी ऐसा ही प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। दास बदरीनाथ जा रहा था। स्वामी श्रीशिवानन्दजी महाराजके आश्रममे गङ्गाजीके उस पार एक दिन रुकना पडा। श्रीभाईजीको किसीने खबर दी तो अपने व्यक्तिको भेजकर उन्होने दासको बुला लिया। वहाँ अपने कमरेमे ले गये। उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक नही था, फिर भी कीर्तन करवाया। श्रीस्वामीजी महाराज उस समय मौन थे। भाईजी बैठे और कीर्त्तनके पश्चात् वीणा-वादन सुनने लगे। जहाँ विशेष कलापूर्ण मीड-तान इत्यादि सुनते थे, वहीपर 'वाह' निकलती, जिससे सिद्ध होता है कि वे उच्चकोटिके सगीत-मर्मज्ञ थे। सभी सम्प्रदायोके प्रति उनका आदर-भाव था। इससे श्रीभाईजीकी गुण-ग्राहकता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। वे दासका भी बहुत सम्मान करते थे।

परमपूज्य श्रीभाईजीने उस समयके राज्यपाल श्रीविश्वनाथदासजी तथा श्रीब्रह्मचारीजी महाराज इत्यादिके साथ अविश्रान्त परिश्रम करके चारो प्रमुख धामोमे तथा अन्य स्थानोमे वेद-भवनोकी स्थापना की है। जब-जब श्रीबदरीनाथ-जैसे दुर्गम स्थानोमे छात्रोसे वेदघोष सुना जाता है, तब-तब उनकी महत्ता बार-बार स्मरण होती है।

विश्वके कोने-कोनेमे गीता-रामायणादि ग्रन्थोका प्रचार करके भारतीय सस्कृतिकी सुरक्षा करनेका अधिकाश श्रेय श्रीभाईजीको ही है। अविश्रान्त परिश्रमके कारण स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर भी अपने प्राणोपर खेलकर वे कार्यमग्न रहे। अन्ततक उनकी इस महान् परोपकारी कार्यके प्रति लगन सभीको विदित है। श्रीभाईजीके शरीर छोडनेके कुछ ही दिन पहले दासने उन्हे अपना 'श्रीमद्भागवतगान' ग्रन्थ दिखाया था। हिदी भाषासे अनभिज्ञ होते हुए भी श्रीबदरी-नाथकी कृपासे दासने बोलचालकी भाषामे उसे गानके रूपमे बनाया था। उसे देखकर श्रीभाईजी बोले—'यद्यपि इसकी भाषा प्रचलित हिदीसे भिन्न है, फिर भी इसका भाव (दशमस्कन्धका समश्लोकी भाव ठीक) श्लोकानुसार है।' इतना ही नही, उन्होने उस ग्रन्थको गीताप्रेससे प्रकाशित कर दिया और दासको बहुत प्रोत्साहित किया। दास तो उन्हे देवताका ही अवतार मानता है, जो लोक-कल्याणार्थ भगवत्कार्यके लिये पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। उनके परमपूज्य चरणारविन्दोमे दासके बारबार दण्डवत् प्रणाम।

●

प्रभु मेरे रहते नित पास।
प्रभु देते नित दिव्य प्रकाश॥
प्रभुसे होता प्रेम-विकास।
प्रभुसे बढ़ता मन उल्लास॥
प्रभु पूरी करते मम आस।
प्रभुमें मेरा दृढ़ विश्वास॥

—श्रीभाईजी

●

वैदिक संस्कृतिके महान् प्रचारक

आचार्य प्रभुपाद श्री ए० सी० भक्तिवेदान्त स्वामीजी महाराज

श्रीपाद हनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा वडी ही आत्मीयताका सम्वन्ध था। मै उनके अनुज-जैसा हूँ और वे मेरे दादा--वडे भाई है। वे मुझे वडे भाईका ही स्नेह देते थे। मेरी उनसे प्रथम भेट सन् १९६२मे हुई थी, जव मुझे अपने श्रीमद्भागवतके प्रथम भागके प्रकाशनके निमित्त कुछ आर्थिक सहयोगकी आवश्यकता थी। श्रीमद्भागवतके भावोको अग्रेजीमे व्यक्त करनेकी मेरी शैली उन्हे वहुत रुचिकर प्रतीत हुई। उन्होने कहा--'मै इस प्रकारका कार्य करवाना चाहता था, आपने यह कर दिया। आपका यह प्रयास वहुत उत्तम है।' उन्होने मुझपर वडी कृपा की और उन्हीके द्वारा 'डालमिया चेरिटेबल ट्रस्ट'से मेरा परिचय हुआ और मेरे श्रीमद्भागवतके प्रथम भागके प्रकाशनमे उक्त न्याससे आशिक सहायता प्राप्त हुई। पश्चिमी देशोमे वह मेरे धार्मिक कार्य-कलापोका प्रारम्भिक काल था, क्योकि १९६५ ई० तक अपने श्रीमद्भागवतके तीन भाग प्रकाशित होनेके वाद ही मैं अपनी पुस्तकोके सहारे पश्चिमी देशोकी यात्रापर जा सका। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे मुझे वहाँ कुछ सफलता भी मिली। पश्चिमी देशोमे अपने भावो-विचारोके प्रचारकी प्रारम्भिक अवस्थाओमे मुझे कठिन सघर्ष करना पडा। मुझे श्रीमद्भागवत आदि अपनी पुस्तकोका ही भरोसा था। मैं भाईजीका वडा अनुगृहीत हूँ कि उन्होने अनेक प्रकारसे मेरा सहयोग किया। 'कल्याण'मे मेरे कार्य-कलापोका विस्तृत परिचय प्रकाशित कर उन्होने उसके प्रति विशाल जनसमुदायकी रुचि जाग्रत् की। श्रीभाईजीका यह मेरे कार्योके प्रति विशेष सहयोग था।

भगवान्‌के सेवकके रूपमे मनुष्यको उसकी स्वाभाविक स्थितिका वोध कराना मानव-समाजकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एव हितकारी सेवा है। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्टरूपसे कहा है कि 'वेदोके अध्ययनका उद्देश्य भगवान्‌को जानना है।' हिंदी भाषामे भारतीय शास्त्रोका दूर-दूरतक प्रचार कर श्रीभाईजीने मानव-समाजकी महती सेवा की है। इसके फलस्वरूप गीताप्रेस जगत्प्रसिद्ध हो गया। पुराणो, ब्रह्मसूत्र, महाभारत, रामायण तथा उपनिषद् आदिको अत्यन्त प्रामाणिक एव सुन्दर अनुवादसहित प्रकाशितकर उन ग्रन्थ-रत्नोको पोद्दारजीने वडा लोकप्रिय वनाया है। यह उनकी वहुत वडी सेवा है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिष्य-परम्पराके मतानुसार इन ग्रन्थोका अग्रेजी-रूपान्तर करके मैं पोद्दारजीके पथका अनुसरण कर रहा हूँ और यह प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है। सभी वैदिक धर्मशास्त्रोका अग्रेजी-रूपान्तर करनेके लिये मेरे पास पर्याप्त साधन नही है, परतु इस कार्यकी वडी आवश्यकता है। इस वैदिक सास्कृतिक प्रचार-कार्यमे मे श्रीपोद्दारजीका पूर्ण सहयोग चाहता था, परतु इसी बीच वे भगवच्चरणोमे लीन हो गये।

मेरी मासिक पत्रिका "Back to Godhead" अग्रेजी, फ्रेच, जापानी, जर्मनी और हिंदी आदि भाषाओमे प्रकाशित होती है। अभी हालमे स्पैनिश तथा डच भाषामे भी प्रकाशित हुई है।

प्रतिमास पाँच लाखसे अधिक प्रतियोका मुद्रण ससारव्यापी वितरणके लिये हो रहा है, परतु अभी रूसी, चीनी, यूनानी, हिब्रू आदि अनेको भाषाएँ ऐसी है, जिनमे इसका प्रकाशन प्रारम्भ नही हुआ है। विश्वभ्रमणके पश्चात् अपने अनुभवके आधारपर मै निश्चितरूपसे यह कह सकता हूँ कि ससारमे वैदिक सस्कृतिकी बडी आवश्यकता है और इसकी पूर्ति महामन्त्र 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे'के कीर्त्तनसे ही हो सकती है। थोडे ही समय-मे हमारे लघु प्रयासोके द्वारा 'हरे कृष्ण ' महामन्त्र ससारप्रसिद्ध हो चुका है। ग्रामोफोनके रेकार्डो, चित्रो, पुस्तको आदिके द्वारा इसका इतना प्रचार हुआ है कि अनेको घरोमे 'हरे कृष्ण ' महामन्त्रके रेकार्डके साथ नियमित कीर्त्तन तथा नृत्य होता है।

जब मै गोरखपुर गया, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार बडे कृपालु एव स्नेहशील आतिथेय सिद्ध हुए। भाईजीने अपने सुरम्य उद्यान 'श्रीकृष्णनिकेतन'मे हमारे आवासकी व्यवस्था की। भोजन, ठाकुरसेवाका पूरा प्रबन्ध उनकी ओरसे था। वही प्रतिदिन कीर्त्तन-सत्सङ्ग होता था। सैकडो लोग वहाँ पधारकर हमारे भक्तोके साथ सत्सङ्ग सुनते तथा भगवान्‌की आरतीमे सम्मिलित होते थे। श्रीभाईजी 'अन्तरराष्ट्रीय श्रीकृष्ण-भावनामृत-प्रचार-सघ'के महान् समर्थक थे और 'कल्याण'के माध्यमसे तथा व्यक्तिगत सम्पर्कद्वारा वे इसका प्रचार करते रहते थे।

कृपालु हनुमानप्रसादजीसे भेट करनेके लिये मै उनके आवास-स्थान गीतावाटिकामे गया, परतु वे रोग-शय्यापर थे। अत विस्तारपूर्वक उनसे बात नही हो सकी। मेरी यह आन्तरिक कामना थी कि वे अतिशीघ्र रोगसे मुक्त हो जायँ और 'हरे कृष्ण.. 'के इस जगद्व्यापी प्रचार-कार्यमे पूर्णतया सम्मिलित हो जायँ, परतु भगवान्‌की कुछ और ही इच्छा थी। श्रीभाईजी हमलोगोको छोडकर चले गये।

●

अति आश्चर्य बदल दी तुमने मेरी दृग-पुतली, प्राणेश !
दीख रहे अब मुझको तुम सर्वत्र सभीमे, हे हृदयेश !
मानवकी क्या बात, सुरासुर, पशु-पक्षी, सब कीट-पतंग।
जल-थल-अनल-अनिल-नभ——सब ही एक तुम्हारे ही श्रीअङ्ग ॥
वृक्ष-लता-गिरि-कूट, नद-नदी, दिशा-सूर्य-शशधर-नक्षत्र।
मुझे दीखते तुम प्रियतम, जीवनके जीवन, नित सर्वत्र ॥
सबका स्पर्शित पवन, सभीका पद-रज अमल परम पावन।
सदा समादरणीय, सदा शुचि सेवनीय, मम मनभावन ॥

——श्रीभाईजी

●

हिंदी, हिंदुत्व एवं हिंदुस्थानके महान् पुजारी

महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज

ससारमे अनेक देशभक्त हुए है, वीर हुए है, भक्त हुए है, सत-महात्मा हुए है, कवि, लेखक, पत्रकार तथा जनसेवक हुए है, कितु ऐसे पुरुष विरले ही उत्पन्न हुए है, जिनमे ये सव गुण एक साथ प्रस्फुटित हुए हो।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऐसे ही सौभाग्यशाली पुरुष थे। उनमे एक साथ ऐसे अनेक गुण विद्यमान थे कि उनके सम्पर्कमे जो भी एक वार आता था, वह उनकी प्रेम-डोरसे बँध जाता था। उनमे अञ्जनीसुवन वीर हनुमानजीकी ही भाँति तीक्ष्णबुद्धि, अटूट भगवन्निष्ठा एव सेवाकी भावना विद्यमान थी। वीरता एव धैर्यमे भी वे अद्वितीय थे। राजस्थानकी पवित्र धरतीको भाग्यशाली वनाकर उन्होने बगाल प्रदेशको अपनी लीलाभूमि वनाया और ब्रिटिश साम्राज्यको भारतसे उखाड फेकनेका प्रयास किया। फलत कई वार उन्हे कारागारकी कठोर यातनाएँ भोगनी पडी। उन्हे निर्वासित जीवन भी व्यतीत करना पडा। उनकी गतिविधियोपर भी वार-वार रोक लगायी गयी, कितु उन-जैसे महान् पुरुषोकी भावनाएँ यातनाओसे आजतक न तो दबी है और न दवायी जा ही सकती है। भाईजी अपने विचारोपर सदैव ही दृढ रहे। आगे चलकर तो उनक झुकाव पूर्णरूपेण धर्मकी ओर हो गया। फिर भी वे किसी-न-किसी रूपमे स्वातन्त्र्य-सग्राममे सहयोग देते रहे। वैसे तो श्रीभाईजी गोरखपुर नगरमे ही रहते थे, कितु वे गोरखपुर और उत्तरप्रदेशकी ही नही, अपितु भारतवर्षकी उन महान् विभूतियोमे है, जिन्होने अपने ज्ञान, कर्म, भक्ति एव साधनासे इस धरतीको पावन किया है। उनकी विनयशीलता, भक्तिभावना, परदु खकातरता एव शीलका जव भी स्मरण आता है, मन उन्हीमे खो जाता है। उनका चरित्र परम उज्ज्वल एव गीतोक्त दैवी-सम्पदाका भडार था। उनमे साधनका वल, आध्यात्मिक अनुभव, त्याग, तप, प्रौढ विचारशक्ति, वेद-शास्त्रोका अध्ययन एव मनन जैसा था, वैसा अन्यत्र नही प्राप्त होता। वे सनातनधर्मके प्राण और भक्तिके मूर्तिमान् स्वरूप ही थे। गीतावाटिकामे प्रतिवर्ष आयोजित श्रीराधाष्टमी-महोत्सव तथा समय-समयपर आयोजित धार्मिक सत्सङ्ग-समारोहोमे उनकी अविरल एव निश्चल भक्ति देखते ही वनती थी।

श्रीभगवान् गोरक्षनाथकी तपोभूमि गोरखपुरमे स्थापित गीताप्रेसके माध्यमसे भाईजी आजीवन धार्मिक-आध्यात्मिक जगत्की सेवा करते रहे। उपनिषद्, इतिहास, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीरामचरितमानस, सत-साहित्य आदि महत्त्वपूर्ण भारतीय वाङ्मय एव हिंदूधर्मसे सम्वन्धित प्राय सभी धर्मशास्त्रोका उन्होने गहन मनन किया था। उनका विश्वास था कि भारतीय जन अपनी आध्यात्मिक धरोहरके वलपर ही जीवित रह सकते है। अतएव उन्होने इन लुप्तप्राय ग्रन्थोको अनवरत प्रयत्न करके पुन प्रकाशित कराया। आवश्यकतानुसार उन्होने इन

ग्रन्थोकी टीका और व्याख्या भी प्रस्तुत की। उनके द्वारा प्रकाशित एव सम्पादित 'कल्याण' मासिक पत्रिकाने विश्वके कोने-कोनेमे पहुँचकर अँधेरेमे प्रकाशकी किरणोका कार्य किया है। सोये, भूले-भटके और विभ्रमित हिदुओको उन्होने 'कल्याण'के माध्यमसे जाग्रत् किया है और उन्हे स्वदेश एव स्वधर्मपर मर मिटनेकी प्रेरणा प्रदान की है। देश एव विदेशका कोई भी आस्तिक परिवार ऐसा न होगा, जहाँ 'कल्याण'ने पहुँचकर आत्मोत्थान एव परोपकारके कार्योमे सहयोग न प्रदान किया हो। पत्रकारिता एव लेखन-जगत्मे उन्होने जो कीर्तिमान स्थापित किया है, उसकी कोई समता नही दिखायी पडती। उनका पत्र 'कल्याण' ही एकमात्र ऐसा पत्र है, जिसकी भारतसे बाहर भी पर्याप्त माँग है। विश्वका कदाचित् ही कोई ऐसा देश हो, जहाँ 'कल्याण'की माँग न हो। अपनी कुशल लेखनी एव सम्पादन-कलासे उन्होने धार्मिक, सांस्कृतिक और लोककल्याणकारी साहित्यका जिस प्रचुर मात्रामे सृजन किया है, उसे जिज्ञासु विद्वान् एव अध्यवसायी पाठकके लिये जीवनभर श्रम करके भी पढ पाना कठिन है। उसे आद्योपान्त समझ पाना और तदनुकूल आचरण कर पाना तो अत्यन्त दुष्कर है। सचमुच गीताप्रेस एव 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने हिदी, हिदू एव हिदुस्थानकी जो अप्रतिम सेवा की है, वह चिरकालतक स्मरण की जाती रहेगी।

श्रीभाईजी हिदी भाषाके अनन्य प्रेमी थे, साथ ही उन्हे देवभाषा सस्कृतसे भी विशेष प्रेम था। इतना ही नही, उन्हे बॅगला, गुजराती, मराठीका भी अच्छा ज्ञान था। उनके साहित्यका अवलोकन करनेसे इस वातका पता चलता है कि उनकी लेखनी केवल एक सफल लेखक एव साहित्यकार वननेके लिये नही उठी। वे एक विशेष उद्देश्यको लेकर आये थे और आजीवन उन्होने उसे पूर्ण करनेके लिये अपनी लेखनीका उपयोग किया। उनका मुख्य उद्देश्य सुप्त और गौरवविस्मृत सम्पूर्ण हिदू-समाजको सगठित करने और जगानेका था। वास्तवमे उन्हे स्वदेश एव स्वधर्म दोनोसे अटूट प्रेम था। वे हिदू, हिदुत्व एव हिदुस्थानके महान् पुजारी थे। मेरे पूज्य गुरुदेव ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्रीमहन्त दिग्विजयनाथजी महाराजसे उनका अत्यन्त ही निकटका सम्पर्क था। श्रीभाईजीकी विनम्रता, उदारता, सदाशयता एव विद्वत्तासे पूज्य गुरुजी महाराज वहुत प्रभावित थे। श्रीभाईजी गुरुजनोके प्रति वडी श्रद्धा एव आदरबुद्धि रखते थे। वे जव भी सत श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्यायजीसे मिलते थे, तव चरण छूकर उनको प्रणाम करते थे और उनके समक्ष कुर्सीपर न बैठकर भूमिपर विछी दरीपर बैठते थे। जव कभी उनसे आग्रह किया जाता था कि वे वरावर कुर्सीपर बैठे, तव वे नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार कर देते थे और कहते थे—'गुरुजनोके चरणोके समीप बैठना ही हिदू सस्कृति है।'

स्वातन्त्र्योत्तर कालमे भी जव हमारी सरकारने हिदुत्वविरोधी कार्य किया, श्रीभाईजीने सदैव ही उसका विरोध किया। जिस समय मुस्लिम-तुष्टिकरण नीतिका अवलम्वन करके काग्रेसी नेता पाकिस्तान स्वीकार करने जा रहे थे, तव भाईजीने उसका प्रवल विरोध किया था और चेतावनी दी थी कि 'यह पाकिस्तान भारतके लिये सदा-सर्वदाके लिये एक वहुत वडा कॉटा वन जायगा'। नोआखालीमे जव १९४६ ई० मे हिदुओके रक्तसे होली खेली गयी, भाईजीकी आत्मा रो उठी। उस समय उन्होने महामना मालवीयजीका अन्तिम सदेश लाखोकी

सख्यामे छपवाकर वितरित कराया था। 'हिंदू कोड विल'का भी आपने विरोध किया था और कहा था कि सरकारको हमारी धार्मिक व्यवस्थामे हस्तक्षेप नही करना चाहिये।

श्रीभाईजी साधु-सतो, महात्माओ, ब्राह्मणो तथा विद्वानोके भक्त एव प्रेमी थे और उनकी मुक्त हस्तसे सहायता किया करते थे। निर्धन, अनाथ विद्यार्थी उनसे सदैव ही यथेष्ट सहायता प्राप्त किया करते थे। उन्होने अनेक कन्याओके विवाहके लिये द्रव्यकी व्यवस्था की। देश, धर्म एव परोपकारके कार्योमे वे सदैव ही रुचि लेते थे।

श्रीपोद्दारजी देशकी जनताके सच्चे हितैषी थे। वे सवके मित्र एव वन्धु थे। इसीलिये लोग उन्हे 'भाईजी'के नामसे सम्बोधित किया करते थे। 'भाईजी' शब्द अत्यन्त ही आत्मीयता-पूर्ण सम्बोधन है। उन्होने 'कल्याण'का 'हिंदू-सस्कृति-अङ्क' प्रकाशित करके ससारको एक वार पुन भारतकी अमूल्य थाती एव आध्यात्मिक परम्पराकी ओर आकर्षित एव नतमस्तक होनेके लिये विवश किया।

उन्होने सितम्वर १९७० ई० मे मेरे पूज्य गुरुदेवकी प्रथम पुण्यतिथिपर आयोजित श्रद्धाञ्जलि-सभाकी अध्यक्षता करते हुए कहा था—'हिंदुत्वमे ससारके कल्याणकी भावना निहित है। भारत जव कभी विश्वमे एक गौरवशाली राष्ट्रके नाते खडा होगा, तव हिदुत्व ही उसका आधार होगा।' उन्होने यह भी घोषणा की थी—'ससारको यदि सच्चा सुख और शान्ति प्रदान करनेकी सामर्थ्य किसीमे है तो वह केवल हिंदू-धर्ममे ही है।' हिदुत्वको साम्प्रदायिक कहने-वालोको फटकारते हुए उन्होने कहा था—'कोई सिद्ध करे कि हिदुत्वने ससारकी या देशकी क्या हानि की है?' वे सच्चे अर्थमे देशके एव हिदू-जातिके 'भाई' थे। उनका परमात्मासे निकट सम्पर्क था। उनका ध्यान और ज्ञान दोनो ही अत्यन्त महान् थे। उनका सौजन्य, शिष्टता, नम्रता, मृदुता एव हिदुत्वपर अभिमान इतिहासमे वेजोड है। भाईजी-जैसे महान् पुरुष इतिहासमे विरले ही उत्पन्न हुए हैं। उनमे कवित्व और ऋषित्व साथ-साथ प्रस्फुटित हुए थे। उन्हे भगवच्चरणोमे लीन हुए एक वर्ष व्यतीत हो रहा है, किंतु ऐसा आभास होता है कि वे आज भी जन-मानसमे समाये हुए हैं। उनका नाम और उनका कार्य अलौकिक था। हिदू-समाजपर उनका भारी उपकार है। उनकी स्मृतिको शीघ्र भुलाया नही जा सकता। उन्होने हिंदू-समाजपर अपने महिमामण्डित व्यक्तित्व एव कृतित्वकी जो अमर छाप छोडी है, वह 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' विद्यमान रहेगी।

●

किया कृपा कर प्रभुने मुझको अपना चिर सेवक स्वीकार।
रहा न प्राणि-पदार्थ किसीका मुझपर अब कुछ भी अधिकार॥
मेरा भी उठ गया सहज अधिकार सभी परसे अनिवार।
एकमात्र मैं सेवक प्रभुका, केवल प्रभु मेरे भर्तार॥

—श्रीभाईजी

●

अप्रतिम भगवद्विश्वासी

परमपूजनीय गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर

लगभग २५ वर्ष हो गये है। अपने नित्यके भ्रमणमे मै गोरखपुर गया था। गोरखपुरका नाम योगिराज गोरखनाथजीके कारण प्रसिद्ध है। उन महायोगीके कारण पुनीत वने स्थानको देखनेकी इच्छा थी ही। वह पूर्ण कर सका और उस दर्शनसे हृदयमे पवित्र भावकी अनुभूति कर सका। परतु विगत कई वर्षोसे गोरखपुर और एक कारणसे विख्यात है। वह है श्रीगीताप्रेस और उससे प्रकाशित मासिक 'कल्याण' एव अन्य धर्मग्रन्थ। यह प्रतिष्ठान, जहाँसे नाममात्र मूल्यपर श्रेष्ठतम ग्रन्थ उपलब्ध किये जा रहे है, कैसा है, उसे कौन चलाता है—इन वातोका कौतूहल हृदयमे वहुत समयसे रहा। उसे चलानेवाले महानुभावोके नाम तो पढे ही थे, परतु प्रत्यक्ष उनका दर्शन नही हुआ था। वह चिरप्रतीक्षित सुअवसर उस समय गोरखपुर जानेपर प्राप्त हो सका।

किसी भी प्रतिष्ठानकी सफलता मात्र उसके उद्देश्योसे प्राप्त नही होती, केवल धनकी प्रचुरतासे भी नही होती, यद्यपि उत्तम उद्देश्य और प्रभूत धनकी आवश्यकता अमान्य नही की जा सकती। पुनीत उद्देश्य, पवित्र, सात्विक श्रद्धासे प्रदत्त धन और सबसे महत्त्वका साधन—उस उद्देश्यकी पूर्तिके हेतु उस पवित्र धनका सदुपयोग करनेवाला दीर्घदर्शी, योजनाकुशल, ध्येयनिष्ठ सचालक—जिसने उस प्रतिष्ठानके लिये अपना तन-मन-धनादि सब समर्पित कर दिया हो—इन तीनोका सयोग ही सफलताका कारण होता है। गीताप्रेसमे इन तीनोका एक समन्वय है। गीताप्रेसका धर्मप्रचारका विशुद्ध उद्देश्य, ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिका शुद्ध धन-प्रदान और श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके समान धर्मनिष्ठ, कर्मठ सचालक—इनका अभूतपूर्व सयोग—एक अभूतपूर्व वायुमण्डल बनाता हुआ अनुभव होता है।

मेरे सहयोगियोने श्रद्धेय भाईजीसे मिलनेकी योजना बना रखी थी। ठीक समयपर मैने उनके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त किया। एक मध्यम कदकी प्रसन्नवदन मूर्ति मेरे सम्मुख उपस्थित हुई। सौम्यता—माधुर्य उनके शब्दोसे टपकते थे। प्रत्येक शब्दमे धर्मके प्रति अपार श्रद्धा, समाजके प्रति कारुण्यभाव, प्रखर राष्ट्रभक्ति और सबकी महान् प्रेरक, श्रीभगवान्के चरणकमलोमे प्रगाढ भक्ति अभिव्यक्त हो रही थी।

इसके पश्चात् मैने अनेक वार उनके दर्शन किये। वर्तमान परिस्थिति— धर्मश्रद्धाका ह्रास, नीतिमत्ताका ह्रास, विशुद्ध राष्ट्रभक्तिकी न्यूनता, अपने समाजकी विच्छिन्नता तथा इन सबके परिणामस्वरूप अविवेकका प्रादुर्भाव इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयोपर उनके प्रौढ विचार सुने। भगवद्भक्ति, गो-भक्तिका साक्षात्कार उनके शब्द-शब्दसे होता हुआ अनुभव किया। गोवशकी हत्या, उसकी दुर्दशासे वे अति व्यथित रहते थे। भिन्न-भिन्न साधु-महात्माओको

अपने-अपने अलग मार्गसे चलते देख तथा उनमे सम्पूर्ण समाजकी उन्नतिके हेतु सामञ्जस्यकी न्यूनताको देखकर वे व्यथित तथा चिन्तित थे। परतु इस मनोव्यथा एव चिन्ताके होते हुए भी सर्व-कल्याणकारी श्रीभगवान्‌के प्रति अटूट विश्वास तथा प्रेम होनेके कारण उनके अन्त करण-का आनन्द और सतुलन अभङ्ग रहते थे।

यह सव मेरे लिये उपकारक अनुभव रहा है। उनके जीवनसे श्रीगीताके ज्ञान-कर्म-भक्तिका एकरस बोध प्राप्त करना—अपनी अल्प ग्रहणशक्तिके अनुपातमे—मेरा सद्‌भाग्य है।

अन्तस्तलमे उठनेवाली भक्तिकी प्रवल ऊर्मि विगत कुछ वर्षोसे उनके शरीरकी सहनशक्तिको आघात पहुँचा रही थी। इसी कारण शरीरसे वे अस्वस्थ रहने लगे थे और अन्तमे पार्थिव देह त्यागकर वे भगवच्चरणोमे विलीन हो गये।

●

लोकपावन चरित

आचार्य प्रभुपाद श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने गोदावरी तटपर राय रामानन्दसे अनेक प्रश्न किये, उनमे एक प्रश्न है—

'प्रभु कहे—दु ख मध्ये कोन दु ख हय गुरुतर। (प्रभुने कहा—'दु खोमे सवसे वडा दु ख कौन-सा है ?')

राय उत्तर दिले—कृष्णभक्त-विरह विनू दु ख नाहि आर॥' (रायने उत्तर दिया—'श्रीकृष्णके वियोगसे वढकर और कोई दु ख नही है।')

'कल्याण'-परिवार आज इसी अनिर्वचनीय दु खसागरमे निमग्न है। हम भी इस दु खसे प्रभावित है। माननीय साधुभक्त लोकपावनचरित्र हनुमानप्रसाद पोद्दारजी इहलोकमे नही रहे—यह बात भावनाके क्षेत्रमे एक महाशून्यताका बोध कराती है। वे थे आदर्श गृहस्थ, आत्मीयजनके परम हितैषी वन्धु, कुलके गौरव, समाज-सुधारक। भारतके प्रत्येक धर्मक्षेत्रके प्रधानतम आचार्योके साथ उनका परम सौहार्द था। वे थे साधु-सेवक, महत्‌के अनुयायी, धर्मादर्शमे दृढ प्रत्ययवान् तथा सद्धर्मानुशीलनमे प्रयत्नशील। किसी सम्प्रदायविशेषके लिये अनुचित अनुदारता, अकारण द्वेष अथवा पागलपनका लेश भी उनमे न था। किसी विशेष देश, काल या समुदायका मानव समझकर उनकी विवेचना करनेपर हमलोग अविचारी कहे जायँगे। उन्होने सभी देश, काल और समुदायके कल्याणके निमित्त अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया। सत्साहित्यमे उनका प्रगाढ अभिनिवेश था तथा उसके प्रचारकी प्रचेष्टामे अपनी देन वे छोड गये है।

'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' उनकी अक्षय कीर्ति है। इन पत्रिकाओके माध्यमसे भारतीय जन-मानसके साथ उनके जीवनकी जो एक गाँठ बँधी है, वह चिरन्तन हो गयी है। १९२६ ई० से वर्तमान कालपर्यन्त 'कल्याण'के जो मासिक अङ्क तथा वार्षिक विशेषाङ्क प्रकाशित हुए हैं, उनकी लेखन-शैली, विषय-निर्वाचन, वर्गीकरण, सम्पादन-नैपुण्य, चित्र-विन्यास——सभी एक विराट् प्रसन्नमनके साथ हमारा परिचय कराते है। 'कल्याण'के चतुर्थ वर्षका विशेषाङ्क 'गीताङ्क' था। एक ग्रन्थमे इस प्रकार विचक्षणतापूर्वक भारत और पाश्चात्य देशोके गीता-प्रेमियो एव विशेषज्ञोके लेखोके सचयकी अद्भुत प्रचेष्टा प्रत्येक गीता-पाठकके लिये सदा-सर्वदा प्रशसनीय बनी रहेगी। ऐसा कौन हरिनाम-प्रेमी है, जो 'भगवन्नामाङ्क' को देखकर मुग्ध न हो तथा हृदयमे शक्तिका अनुभव न करे? 'भगवन्नामाङ्क'पर दृष्टि पडते ही अविश्वासी मनुष्यके मनमे भी भगवद्विश्वास भर आता है। परम विद्वान् वेदान्ती 'वेदान्ताङ्क'मे अपने अभिलषित अनेक प्रकारके प्रश्नोका समाधान देख सकेगे। भागवत-रसिक 'श्रीमद्भागवताङ्क'को अपना चिरसङ्गी बनाकर प्रसन्नता अनुभव करेगे। यह वात दृढताके साथ कही जा सकती है कि 'सक्षिप्त महाभारताङ्क'मे विशाल महाभारतकी कथाओका इस प्रकार एक ग्रन्थके भीतर निपुणतापूर्वक विन्यस्त होना 'कल्याण' पत्रिकाके सम्पादनका ही चमत्कार है, इसे हम अस्वीकार नही कर सकते। प्रत्येक वर्ष लाखो व्यक्ति 'कल्याण'के विशेषाङ्कको देखनेके लिये आशान्वित होकर प्रतीक्षा करते है। हिदू-संस्कृति, उपनिषद्-ज्ञान, तीर्थोका परिचय, पुराण-कथा, भगवान्के लीलामृत, समाज-व्यवस्था आदि नाना विषयोके विचित्र निबन्ध 'कल्याण' के माध्यमसे भारतमे और भारतके बाहर छयालीस वर्षोसे प्रचारित होते आ रहे है। अग्रेजी भाषामे 'कल्याण-कल्पतरु' योग-साधना, भक्त-जीवन तथा धर्मके तत्वोंका प्रचार करके भारतके मार्मिक सिद्धान्तोको विदेशी लोगोके पास पहुँचाता है। इन सव कृतियोके मूलमे माननीय श्रीपोद्दारजीके वलिष्ठ हृदयके अकृपणभाव और उदारताका परिचय प्राप्त होता है।

छोटे-वडे नाना प्रकारके सस्करणोमे शास्त्रोका एव भक्तोके जीवन-चरित्र और सत्कथाओका प्रचार-प्रसार करके उन्होने हिदी-भाषाको आधुनिक कालकी उन्नत साहित्यिक भाषाका गौरव प्रदान करनेमे स्तुत्य सहयोग प्रदान किया है। उनकी लेखनी निर्बाध गतिसे चलकर विभिन्न विषयोका पूर्ण विवेचन करती है। उद्देश्य है——लोकोत्तर साहित्यको सामाजिक जीवनमे सुप्रतिष्ठित करना। अपने मार्मिक भावगौरवके प्रसारमे उन्होने भारतके सुप्रसिद्ध धर्माचार्यो तथा नीतिज्ञ राष्ट्रनायकोसे सहायता प्राप्त की है। उनके जीवनमे महात्मा गाधी, श्रीअरविन्द आदि मनीषिवृन्दका प्रभाव लक्ष्य करने योग्य है। वे जिस किसी कार्यका भार ग्रहण करते थे, उसे सुसम्पन्न किये विना विश्राम नही लेते थे। निरलस, निष्कपट कर्मयोगी पोद्दारजीकी सहायता करनेके लिये इसी कारण सभी सम्प्रदायोके विद्वान् एवं मनीषी अग्रसर होते थे। 'कल्याण'मे सव सम्प्रदायोका मिलन जीव-कल्याणके लिये हुआ है।

हरिनामके प्रचारके लिये वे 'कल्याण'के द्वारा प्रतिवर्ष लोगोको प्रेरित करते रहे और उनकी इस प्रेरणासे लाखो-लाखो व्यक्ति हरिनामपरायण हुए। रामचरितमानस और

गीताकी परीक्षा प्रचलित करके भारतके प्रत्येक प्रान्तमे उन्होने इन ग्रन्थोके प्रति रुचि एव आस्था उत्पन्न की तथा भगवद्भक्तिका बीज-वपन किया।

एक वार श्रीवृन्दावनमे जाकर मैंने देखा कि श्रीगोविन्दजीके मन्दिरके पास नगरपालिका-की ओरसे पानीकी एक टकी खडा करनेका प्रयत्न हो रहा है। यह कार्य सम्पन्न होनेपर प्राचीन श्रीगोविन्दजीका मन्दिर विल्कुल आडमे पडता था और स्थानकी गरिमाको धक्का लगता था। इस भावनासे व्यथित होकर उस कार्यको बद करानेके लिये आन्दोलन करनेकी चेष्टा की गयी। श्रीपोद्दारजीको भी इसकी सूचना दी गयी। उन्होने म्यूनिसिपैलिटीके कर्णधारोपर प्रभाव डालकर उस कार्यको बद करा दिया। मुझे याद है कि पत्र पानेके साथ ही प्रयत्न करके उन्होने उसके बद करानेकी व्यवस्था करा दी और टकी अन्यत्र स्थापित की गयी।

हमारे परमाराध्य श्रीगुरुदेव विष्णुपाद अतुलकृष्ण गोस्वामीके साथ पोद्दारजीकी परम प्रीति थी। उसी सूत्रसे पोद्दारजीके साथ मेरा घनिष्ठ सम्वन्ध स्थापित हुआ। विभिन्न विशेषाङ्कोमे मेरे लेख प्रकाशित कर 'कल्याण'-सम्पादकने मुझको 'कल्याण'-परिवारके एक सदस्यके रूपमे ग्रहण किया, यह मेरे लिये परम सौभाग्यकी वात है। भगवान् कहते हैं—'मद्भक्तपूजाभ्यधिका'—मेरे भक्तकी पूजा मेरी अपेक्षा भी महत्त्वशाली होती है, इस सिद्धान्तको गीता और भागवतमे दृढ किया गया है। आज श्रीपोद्दारजीके पावन स्मरणका सुयोग प्राप्तकर मै अपनेको धन्य अनुभव करता हूँ।

सन्यास-व्रत ग्रहण किये विना भी गम्भीरतम ज्ञानका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है, ससारमे रहकर भी त्यागमय जीवनके आदर्शमे जीवनको प्रतिष्ठित किया जा सकता है, याग-यज्ञका अनुष्ठान न करके भी भक्ति-सुधा-आस्वादनसे, नाम-गान-कीर्त्तनसे इस जीवनमे ही अनन्त जीवनकी अभिलाषा पूर्ण की जा सकती है—इसके ही एक पूर्ण निदर्शन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार थे। वे विनयकी खानि थे, ज्ञानकी ध्वनि थे और भक्तिके माधुर्यमे विभवशाली थे। श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मथुरामे श्रीकृष्ण-मन्दिरके उद्घाटनके प्रसङ्गमे उन्होने कहा था—

"श्रीकृष्णके अनन्त गुणोका कोई वर्णन नही कर सकता। हमारा वडा सौभाग्य है कि जिस भारत-भूमिमे भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए, उसीमे आज हम भी जीवन-धारण कर रहे है और तुच्छ मच्छरके अनन्त आकाशमे उडनेके सदृश उनके गुणगानका प्रयास कर रहे हैं। आपलोगोने मुझको कृपापूर्वक यह सौभाग्य प्रदान किया, इसके लिये मै आपके प्रति हृदयसे कृतज्ञता प्रकट करता हूँ और आज्ञानुसार श्रीकृष्ण-मन्दिरका उद्घाटन करता हूँ। 'वोलो आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जय!"

उपसहारके उपर्युक्त वाक्योपर गम्भीरतासे विचार करनेपर ज्ञात होगा कि श्रीपोद्दारजीको भारत-भूमिसे कैसी प्रीति थी। धर्म-स्थानोका पुन सस्कार करनेके लिये वे कितने उत्साही थे। भगवान्‌की महिमाके कीर्तनमे उनका कैसा उत्साह था और वे किस प्रकार विनय-गुणसे अलकृत थे। अपने प्रियतमसे प्रार्थना करते समय जो मधुर शब्द उनके मुँहसे निकले थे, आज उनका स्मरण वारवार हृदयमे जाग्रत् हो उठता है—

"मनमोहन ! मेरे मनको अपनी माधुरीसे मोह लो। मेरे मनमे जो मान, यश और विषय-सुखकी इच्छारूपी आग जल रही है, इसे तुम्ही अपने कृपावारिसे बुझा दो। प्रभो ! मै केवल तुम्हीको चाहूँ, केवल तुम्हीको अपना सर्वस्व समझूँ। तुम्ही मेरे प्राणाधार और प्राण हो, तुम्ही मेरे आत्मा और परमात्मा हो—इस बातको जानकर मै केवल तुम्हीसे प्रेम करूँ। तुम्हारे इस प्रेम-प्रवाहमे मेरा अपना माना हुआ धन, जन, मान-मोह—सब बह जाय। तुम्हारे प्रेम-सागरमे सब कुछ डूब जाय। मै केवल तुम्हारी ही झाँकी करता रहूँ—ऐसा सौभाग्य दे दो, मेरे प्रियतम !"

इस प्रार्थनामे उनके जीवनगत माधुर्य, मुग्धता तथा जीवन-सर्वस्वरूपमे वरणीय परम पुरुषोत्तमके दर्शनके लिये लालसाका ज्वलन्त प्रमाण पाया जाता है। वे भगवान्‌के प्रियतम भक्तोंके एकान्त अन्तरङ्ग, उनकी लीलामे मग्न होकर रहनेके अभिलाषी तथा मिलनमे भी सेवाके अभिलाषी थे। इस अभिन्न भावमे भी भेदभक्तिकी अर्थात् अचिन्त्यभेदाभेदवादकी उपलब्धिमे वे जो आत्मलीन हो गये थे, इसका परिचय उनकी ही उक्तिमे प्राप्त होता है। वे कहते हैं—"तुम्हारे साथ तुम्हारी रुचिके अनुसार खेलता रहूँगा और तुम जिस क्षण अपने सकल्पको छोडकर अपने उस खेलको समेटकर मुझे आलिङ्गन करना चाहोगे, उसी क्षण मै तुम्हारे विशाल हृदयमे समा जाऊँगा। यह खेल भी कैसा मधुर होगा, मेरे मधुरिमामय मनमोहन ! मेरा यह सुखस्वप्न सच्चा कर दो, मेरे सनातन स्वामी !"

मेरा मन कहता है कि महान्‌का यह मनमोहनके प्रति आत्म-निवेदन सार्थक हुआ है। उनके खेलका साथी नित्यलीलामे प्रवेश करता है। लीलामय सत्य, नित्य और अनन्त हैं। जीवनमे उनकी लीला है, मृत्युमे भी उनकी लीला है। इस पार जिसकी लीला है, उस पार भी उसीकी लीला है। इस पार हम जिसका कार्य करते है, उस पार भी हम उसीकी सेवा करते हैं। हमारे दादा—भाई पोद्दारजीने वही सेवा प्राप्त की है। जय, भक्तकी जय !

●

आर्तत्राणपरायण, सहज सुहृद, करुणार्णव, परम उदार।
दीनबन्धु, पामर-उद्धारक, पावन पतित, अमित-दातार ।।
अशरण-शरण, अकिंचनके धन, भयहर, दयासमुद्र अपार।
मुझ-जैसे सम्पूर्ण पतितके लिये तुम्ही, प्रभु ! हो आधार ।।
दीन-हीन मुझ अशरणको दे पावन चरणयुगलमे स्थान।
कर दो मुझे अभय अति निर्मल-चित्त-चरित्र आशु भगवान ।।
तनसे करूँ नित्य मै सेवा, करूँ वचनसे नित गुणगान।
सेवारत हो सभी इन्द्रियाँ, मन नित करे तुम्हारा ध्यान ।।

—श्रीभाईजी

●

भक्तावतार श्रीहनुमानप्रसादजी

डा० महानामव्रत ब्रह्मचारी

'श्रीहनुमानप्रसाद'—इस नामके साथ मेरा गत पचास वर्षोका परिचय है। महाशक्ति और निरुपम भक्ति—इन दोनोकी मिलन-मूर्ति महावीर श्रीहनुमानजी थे। उनके अपरिमित प्रसादसे प्राप्त श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजीका जीवन था। नामके साथ जीवनधाराकी ऐसी ऐकान्तिक एकात्मताका होना अति दुर्लभ है। प्रसादजीका प्रसाद प्राप्तकर उनके उद्देश्यसे एक अञ्जलि पुष्प अर्पण करके हम भी धन्य होते है।

सन् १९३३ से ३८ तक अर्थात् पॉच वर्षतक मै अमेरिकाके शिकागो नगरमे वहॉके विश्वविद्यालयके साथ सम्बद्ध था। उसी समय 'दि फिलॉसफी ऑव श्री जीवगोस्वामी' नामक एक अग्रेजी लेख मैने पोद्दारजीके पास भेजा था। उन्होने उसे अपने 'कल्याण-कल्पतरु' नामक मासिक पत्रमे प्रकाशित किया था। तवसे मुझको प्रतिमास 'कल्याण-कल्पतरु'की एक प्रति भेजकर वे अनुगृहीत करते रहे।

शिकागो नगरमे डा० हरमन हिल नामक एक विशिष्ट जर्मन महापुरुषके साथ मेरा परिचय हुआ। वे उस समय वहॉ मेडिकल ऐसोसिएशनके प्रेसिडेट थे। वे जैसे विद्वान् थे, वैसे ही धनी और सहृदय व्यक्ति थे। वे रविवारको गिरजाघर नही जाते थे। मेरे पूछनेपर उन्होने वतलाया कि उनके पिताका उनके साथ सद्व्यवहार न था। इस कारण वे भगवान्‌को 'अवर फादर इन हेवेन'—'हे स्वर्गीय पिता' कदापि नही कह सकते थे। उनका मन कहता कि भगवान् यदि उनके पिताके समान है तो उनको न पुकारना ही ठीक है। मैने उनसे कहा कि आप भगवान्‌को पिता न कहकर 'माता' कह सकते है अथवा 'वन्धु' कह सकते है, या परम प्रिय सतानके रूपमे उनकी भावना कर सकते है। श्रीभगवान्‌के साथ इस प्रकारके सम्वन्ध भी हो सकते है—यह जानकर वे मुग्ध हो उठे। इस विषयमे और जानकारी प्राप्त करनेके लिये उन्होने ग्रन्थ देखना चाहा तो मैने उनको 'कल्याण-कल्पतरु' पढनेके लिये दिया।

अविरल धारामे अश्रुपात करते हुए वे नित्य 'कल्याण-कल्पतरु'के लेखोको पढने लगे। श्रीहनुमानप्रसादजीके लेखोको पढकर वे कहते थे—'ऐसे मधुर लेख मैने जीवनमे नही पढे थे।' क्रमश वे परम वैष्णव वन गये। हरिनामकी माला उनके कण्ठमे और करमे सुशोभित होने लगी। उनके इस अपूर्व परिवर्तनके मूलमे 'कल्याण-कल्पतरु' और श्रीहनुमानप्रसादजीकी लेखनी थी।

श्रीश्रीप्रभु जगद्बन्धु सुन्दरने वर्तमान समयको 'युग-सधि' कहा है। वे कहते है कि 'महाप्रभु श्रीश्रीगौराङ्गदेवके महाविर्भावसे कलियुगकी आयुका क्षय हो गया है। उनके पार्षदगणके चरण-स्पर्शसे और हरिकीर्तनकी हुकारसे कलियुगने अपने निर्दिष्ट कालके पूर्व ही विदा ले ली है। फलत 'युग-सधि' आसन्न है। इस समय अनेक प्रकारके उलट-फेर तथा धार्मिक और नैतिक ग्लानि सर्वत्र दीख रही है। युग-सधिके प्रवल धक्केमे प्राचीन सस्कृतिके चूर्ण-विचूर्ण हो

जानेके कारण एक जातिकी अपमृत्यु घटित हो सकती है । जिनको जातिकी चिन्ता है, वे सर्वतो-भावेन जातिके जीवनकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते है ।'

इस महान् दुर्योगके समय जातिकी रक्षाके लिये आवश्यकता है कि जो प्राचीन सस्कृतिके अवदान है, उनको फिर नये युगके नये आलोकमे सर्वजनग्राह्य रूपमे उपस्थित करना । इस कार्यमे जो महान् पुरुष प्रवृत्त हुए, उनमे श्रीहनुमानप्रसादजीका नाम उज्ज्वल अक्षरोमे देदीप्यमान है ।

श्रीहनुमानप्रसादजी जीवनभर निष्ठापूर्वक इसी एक कार्यके व्रती थे कि भारतकी प्राचीन सस्कृतिमे जो अविनश्वर सम्पद् है, उसे वर्तमान वैज्ञानिक युगके आलोकमे साधारण नर-नारीके अनुभव-योग्य बनाकर जातिके सामने अभिनव भाव और भाषामे समृद्धिमान् करके उपस्थित किया जाय ।

वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता, महाभारत, रामायण, पुराण, तन्त्रशास्त्र, योगशास्त्र, वेदान्त-साख्य आदि षड् दर्शन, तुलसीदास आदि सतोके महाग्रन्थ, श्रीचैतन्य-चरितामृत आदि गौडीय सम्प्रदायके ग्रन्थ-समूहका स्वयं अति गम्भीर अध्ययन करके श्रीहनुमानप्रसादजीने उनके भीतर बहुत अच्छा प्रवेश प्राप्त किया था । इन सब ग्रन्थोको साधारण नर-नारीके ग्रहण करने योग्य प्राञ्जल भाषामे रूपान्तरित करवाकर तथा इन्हे लाखो-लाखोकी सख्यामे प्रकाशितकर घर-घर नाममात्रके मूल्यमे पहुँचाया ।

इस महाव्रतके साधनके लिये उन्होने गीताप्रेसके कार्यका विस्तार किया । हिंदी और अग्रेजीमे दो मासिक पत्रिकाओका अति सुन्दर ढंगसे प्रकाशन एवं सचालन करनेके अतिरिक्त उन्होने अनेक छोटे-बडे ग्रन्थ प्रकाशित करके भाषाको समृद्ध बनाया । नाममात्र मूल्यमे भारतीय आध्यात्मिक सम्पद्को कोटि-कोटि जनोके हाथोमे पहुँचाया । सारे जीवन वे इस विराट् कल्याणकारी कार्यके व्रती रहे । किंतु कैसा आश्चर्य है कि तनिक भी लौकिक लाभकी वासना उनके पवित्र जीवनको स्पर्श न कर सकी ।

केवल ग्रन्थ और पत्र-पत्रिकाके प्रचारद्वारा ही उन्होने आर्य-सस्कृतिमे नवजागरण लाने-की चेष्टा नही की, वर अपने जीवनकी कठोर तपस्या और निरुपम शास्त्रानुमोदित आचार तथा नित्य-नैमित्तिक आचरणके द्वारा उन्होने कोटि-कोटि नर-नारियोके हृदयमे भक्ति-धर्मकी जीवन्त मूर्त्तिके रूपमे आसन प्राप्त किया था । उनकी चाल-ढाल, कथा-वार्ता, मधुर मुस्कान, शान्त नेत्रोकी सुस्निग्ध दृष्टि—प्रत्येक गतिविधिके द्वारा व्रज-प्रेमकी एक अपार्थिव धारा प्रवाहित होती थी । थोडे समयके लिये भी जो उनके सानिध्यमे आया और जो भी उनका भाषण सुन लेता था, उनके भीतरकी इस आकर्षणशक्तिका उसपर जादू चल जाता था । बातचीत और क्रिया-कलापमे, लेखनी और प्रत्येक पदक्षेपमे, आचरण और प्रचारमे, इस प्रकारका 'सव्यसाची' इस युगमे सुदुर्लभ है ।

इस युग-सन्धि-कालमे वे थे भक्तावतार । आध्यात्मिक भाव-सम्पद् और भाषा-सम्पद्—इन दोनोके वितरणमे वे भूरिद थे । इस भूरिद महापुरुषके महादानसे मातृभूमि धन्या हो

गयी ! उनके 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' नामक श्रीग्रन्थके साथ यह नगण्य जीव अपनेको युक्त कर पाया, इससे यह अपनेको कृतार्थ समझता है।

श्रीपोद्दारजीने जिस प्रकार इस महाजातिकी सेवामे अपनेको पूर्णत. समर्पण कर दिया था, इसकी स्मृतिको हृदयमे जाग्रत् रखकर हम प्रवलतर उत्साहसे आर्य-संस्कृतिकी आध्यात्मिक सम्पद्को अपने प्रतिदिनके जीवनमे प्रतिष्ठित कर सके, तभी हम उनके प्रति भक्तिपूर्वक चन्दन-पुष्पाञ्जलि समर्पित कर सकेगे। जयतु भक्तावतार श्रीश्रीहनुमानप्रसादजी !

•

श्रद्धास्पद महामानव

रामभक्त श्रीकपीन्द्रजी महाराज

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्र्येण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे॥

(वाल्मीकिरामायण, वालकाण्ड १।२-४)

श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थके लिये क्या लिखूँ और क्या न लिखूँ, यही सोचते हुए कई दिन बीत गये। वडे कठोर मनसे लेखनी उठायी और लिखने बैठा तो नेत्र भर आये, कागज भीग गया। क्या करूँ, समझमे नही आता। उनके किस गुणका वर्णन करूँ ? उनमे तो इतने गुण थे, जिनका वर्णन मानवकी इस लेखनीद्वारा सम्भव नही है।

मैंने उन्हे तरुणाईमे देखा है और वृद्धावस्थामे भी। वे सदैव एकरस रहे। उनमे परिवर्तन नही आया। ब्रह्म अथवा प्रेम तो सर्वदा एकरस ही रहता है।

'जो तिहुँ काल एकरस रहई'—यह है ब्रह्मकी कसौटी।

उपर्युक्त श्लोक श्रीवाल्मीकिजीने श्रीनारदजीको सुनाये है। उल्लिखित सभी गुण श्रीभाईजीमे विद्यमान थे। उपर्युक्त गुणोमे ऐसा कौन-सा गुण है, जो पूज्य श्रीभाईजीमे नही था ? ऐसा मानव तो अव खोजनेपर भी प्राप्त नही होगा। ऐसा मानव जगत्मे है ही नही। मै विश्वके कई विद्वानोसे, साधुओसे, सत-महात्माओसे मिला हूँ, किंतु मुझे कोई व्यक्ति ऐसा नही मिला, जैसा गोरखपुरकी छोटी-सी नगरीमे श्रीभाईजीके पावन स्वरूपमे विराजमान था। वाह रे भाईजी, खूव थे आप ! इस मायाकी नगरीसे वे धवल यश अपने साथ ले गये और दे गये हमे रुदन। अव रोनेके अतिरिक्त रहा ही क्या है ? मै अनेक वार पूज्य श्रीभाईजीसे मिला हूँ, अनेक सस्मरण मेरे हृदयमे घूम रहे है और सभी कह रहे है—'मुझे लिखो, मुझे लिखो।' अव मै इस ऊहापोहमे हूँ कि कौन-सा लिखूँ, कौन-सा न लिखूँ, सभी अनमोल है।

आजसे ३३–३४ वर्ष पूर्व मैंने एक दिन हरिद्वारमे उनको वडी तेजीसे जाते हुए

देखा। तव मैं दौडा और पीछेसे उनका लवा कुरता पकड़कर खीच लिया। वे रुक गये और वोले—'एक लवा कुरता आपको वनवाकर भेजूँगा, तव आपको पीछेसे पकड लेनेमे मुझे आसानी होगी।' उस जमानेमे मै कपडा नही पहनता था। तत्पश्चात् हम दोनो धीरे-धीरे हरकी पैडीकी की ओर चलने लगे। मार्गमे वे अपने विचारोमे मुझे ले गये और मै उनकी विचार-सरितामे अवगाहन करने लगा। उनकी वह मृदु मुस्कान अव भी मेरे सामने है। उन्हे मेरी उद्दण्डतापर क्रोध नही आया, अपितु मेरे कधेपर हाथ रखकर प्यारभरी वाणी बोलने लगे। उन्होने कहा—'श्रीरामतत्व नि स्वार्थ प्रेमको कहते है।'

उन्होने कभी अपने जीवनमे किसीपर कटाक्षतक नही किया, निन्दा तो दूर रही। उनमे कृतज्ञता, धर्मपरायणता, सरलता, सौम्यता, क्षमाशीलता, उदारता एव पवित्रता ऐसी भरी हुई थी कि उनकी थाह पाना साधारण वात नही थी। एक वार उन्होने श्रीराधाष्टमी-के महोत्सवमे मुझे बुलाया। मै गया, वड़ा आनन्द आया। जव मै चलने लगा, तव उनसे विदा माँगने गया। वे उठकर मुझे पहुँचाने चले। मैने श्रीभाईजीसे कहा—'यहाँ इतनी जनता आती है, इसका अर्थ यह है कि आपको हम सव लोग कष्ट देने ही आते है।' सुनकर सजल नेत्रोसे गद्गद वाणीमे बोले—'नही, ये आनेवाले मुझे कष्ट नही देते, अपितु मुझे आनन्द देने आते है। मै कभी-कभी प्रमादवश कोई अपराध कर बैठता हूँ तो इन सव आनेवालोके दर्शनसे वह अपराध धुल जाता है। मै इन आनेवालोका ऋणी हूँ और जीवनभर रहूँगा।' यो कहते जाते और आँसुओको पोछते जाते। उनको ऐसी अवस्थामे देखकर मै भी रोने लगा। आँसू पोछता हुआ उनको प्रणाम करके दिल्लीके लिये चल दिया।

एक वार श्रीभाईजी दिल्ली आये हुए थे। मै उनके दर्शन करने गया। वे गद्दीपर सिद्धासनसे वैठे थे। मैने प्रणाम किया, उन्होने भी प्रणाम किया। मै प्रणाम करके नीचे वैठ गया। उन्होने कहा—'गद्दीपर बैठ जाओ मेरे साथ।' मैने कहा—'नही, मै छोटा हूँ।' उन्होने कहा—'नही, मै तो 'प्रसाद' हूँ और आप तो . ।' मै यह सुनकर रोने लगा। उन्होने कहा—'ऊपर बैठो।' मैने कहा—'नही।' तव उन्होने कहा—'क्यो?' मैने कहा—'सम्मुखे अर्थलाभाय।' इतना सुनते ही मेरी ओरसे मुख फेर लिया और कहा—'अव सामने आ जाओ, नही तो पीठसे क्या लाभ होगा?' मै यह देखकर गद्दीपर वैठ गया तो खूव हँसे और कहा—'अव सम्मुख ठीक है।' वादमे मर्मकी वाते होने लगी—तत्व समझाने लगे।

इसके वाद तो अनेक वार अनेक वाते हुई। मैने उन्हे जीवनमे 'अह'से युक्त कभी नही देखा और न सुना। उनके गुणोका मै क्या वर्णन करूँ? वे तो प्रेममे श्रीराधा रानी थे, उदारता आदि गुणोमे वे श्रीराम थे, भोलेपनमे सदाशिव थे, अणुसे लेकर महान्पर्यन्तको जाननेवालोमे वे वसिष्ठ थे, भक्तिमे वे श्रीभरत थे और सत्यपर दृढ रहनेवालोमे वे हरिश्चन्द्र थे। मेरा मन कहता है कि श्रीभाईजीका वपु समस्त देवगणोके गुणोका एक पुञ्ज था। मेरे पास शब्द नही है, जिनकी माला वनाकर उनके पावन चरणोमे चढा सकूँ। मै तो अपने आँसूओकी दो बूँदे ही उनके चरणोमे चढाता हूँ।

●

कर्तृत्ववान् सनातनी मिशनरी

आचार्य काकासाहेब कालेलकर

एक विख्यात अंग्रेजका वचन हमने बचपनमे पढा था कि 'अगर कोई अच्छा लेखक प्रकाशक वनने जाय तो वह घाटेमे आ जायगा । प्रकाशनका काम सँभालते-सँभालते उसके पास लेखनके लिये समय ही नही रहेगा और उसकी प्रकाशन-प्रवृत्ति तो कभी सफल होनेवाली ही नही । इसके विपरीत अगर कोई सफल प्रकाशक समय निकालकर लेखक वनेगा तो देखते-देखते वह दोनो तरहसे सफल होगा । लेखकके रूपमे उसकी कीर्ति बढानेमे प्रकाशन-कला सहायक होगी और प्रकाशककी हैसियतसे अनेक अच्छे लेखकोके साथ उसका परिचय बढ़नेसे उसकी लेखन-कला भी सब बाजूसे सम्पन्न होगी ।'

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने भारतमे उपर्युक्त दोनो क्षेत्रोमे लोकोत्तर सफलता प्राप्त की । जब उनका 'कल्याण' मासिक देखते-देखते सर्वमान्य हो गया, उसकी ग्राहक-सख्या कल्पनातीत बढी, तब मेरे कई मित्र कहने लगे—'सनातनधर्मके प्रचारके लिये हिंदी भाषाको एक अद्वितीय स्वदेशी अमेरिकन मिल गया है ।'

सचमुच हिंदी मासिकोमे 'कल्याण'का प्रचार एक अकल्पित आनन्ददायी घटना है ।

'कल्याण' मासिकके साथ श्रीहनुमानप्रसादजीने गीताप्रेस चलाया । इसमे भी उनके 'अमेरिकन' साहस और कौशलका सारे देशको परिचय मिला ।

श्रीहनुमानप्रसादजीकी इस द्विविध सफलताका रहस्य क्या है ? मै कहूँगा—'बुनियादमे उनकी देशभक्ति और ईशभक्ति थी—दोनो अकृत्रिम, उत्कट और ठोस । साथ-साथ उनमे सनातनधर्मकी सर्व-सग्राहक उदारता थी । पुराने धर्मके प्रचारसे उन्होने अपने कौशलसे इतनी नवीनता डाल दी कि उनका धर्मप्रचार सजीव हो उठा । मै मानता हूँ कि हमारे जमानेमे सनातनधर्मको हनुमानप्रसादजीसे वढकर दूसरा कोई 'मिशनरी' प्राप्त नही हुआ ।

मेरी व्याख्याके अनुसार 'सनातन' याने 'नित्यनूतन' । अगर हम वेदसे आगे नही बढते तो हम 'पुरातन' याने 'वासी' हो जाते । वेदके वाद उपनिषद्, उनके साथ दर्शन—सबको स्वीकार करके हम 'अद्यतन' (up-to-date) बनते गये । धर्मप्रचारके लिये हमने 'श्रुति' के साथ 'स्मृतियाँ' ली । दोनोकी मददमे इतिहास और लोक-जीवनको स्वीकार करनेवाले 'पुराण' लिये । पुराणोके द्वारा ही हम अपने धर्मको लोकमान्य—लोकभोग्य बना सके ।

सकाम और निष्काम—दोनो वृत्तियोको पोपण देते हुए हमलोगोने 'तन्त्रो' और 'आगमो'को स्वीकार किया एव आगे वढे । श्रुति, स्मृति, पुराण, आगम और तन्त्र—सबके साथ 'योग'को मिलाया । राजयोगके साथ 'हठयोग'को भी अपनाया ।

इधर बुद्धभगवान् और महावीरने धर्म-भावनाको लोकग्राह्य बनानेके लिये एक नयी नीति चलायी। वही नीति सनातनी संतोंने भी अपनायी। वह नीति क्या थी? संस्कृतसे लेना और लोकभाषाद्वारा विशाल जनताको देना।

जब चंद विद्वान् ब्राह्मण शिष्योंने बुद्धभगवान्से कहा—'भगवन्! आपका सर्वकल्याणकारी धर्म प्रतिष्ठित हो नहीं रहा है, क्योंकि वह लोकभाषामें व्यक्त हुआ है। आप हमें अनुमति दें तो हम आपके उपदेशको वैदिक या पाणिनीय संस्कृतमें ला देंगे।' बुद्धभगवान्ने उस अनुरोधको नापसंद किया और कहा—'मैं सामान्य जनताके लिये आया हूँ। मेरे उपदेशका अनुवाद सब लोकभाषाओंमें कर सकते हो, संस्कृतमें नहीं।' भारतीय संतोंने बुद्धभगवान्की यही नीति चलायी—'संस्कृतसे लिया और लोकभाषामें दिया।' हनुमानप्रसादजीने प्रेस, प्रकाशन और प्रचारके आधुनिक साधनोंको अपनाकर सनातन धर्म-संदेशको हिंदीके द्वारा लोकभोग्य बनाया।

इस सच्चे 'मिशनरी'ने सोचा कि अंग्रेजी भाषाकी प्रतिष्ठा तो तोड़ेंगे, किंतु उसके द्वारा अगर सेवा हो सकती है तो उसकी उपेक्षा भी हम क्यों करें? उन्होंने अपने 'कल्याण' की नीतिपर अंग्रेजीमें भी एक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन किया, जिसका नाम है—'कल्याण-कल्पतरु'। इस तरह यह 'सनातन हिंदू मिशनरी' नित्यनूतन साबित हुए।

हम आशा करें कि गीताप्रेस और 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'—यह नित्यनूतनता कभी खो नहीं बैठें। नित्यनूतनताके बिना प्राण टिक नहीं सकते, बढ़ नहीं सकते। नित्यनूतनता ही प्राण है।

●

नित्य प्रकाशरूप प्रभु रहते सदा-सर्वदा मेरे साथ।
सुखद मार्ग दिखलाते, रक्खे वरद अभय मस्तकपर हाथ॥
प्रभु ही मेरे जीवन बनकर रहते नित शरीरमें सङ्ग।
रहता स्वस्थ, नित्य मिलता बल, रहते सत्त्वपूर्ण सब अङ्ग॥
प्रेमरूपसे करते मुझमें परम सुहृद प्रभु नित्य निवास।
काम-राग-कटुता-विरहित जीवनमें छाया पूर्ण मिठास॥
परम शान्ति बन बसे हृदयमें, मिटे भ्रान्ति-चिन्ता-भय-शूल।
रहता शान्त-समुज्ज्वल जीवन, होते सभी कार्य अनुकूल॥
दिव्य शक्ति बन रहते मुझमें, करते नित-नव शक्ति-विकास।
शुचितम जीवन मधुर बना सत्-चिदानन्दका नित्य विलास॥

—श्रीभाईजी

●

कर्तृत्ववान् सनातनी मिशनरी

आचार्य काकासाहेब कालेलकर

एक विख्यात अग्रेजका वचन हमने वचपनमे पढा था कि 'अगर कोई अच्छा लेखक प्रकाशक वनने जाय तो वह घाटेमे आ जायगा। प्रकाशनका काम सँभालते-सँभालते उसके पास लेखनके लिये समय ही नही रहेगा और उसकी प्रकाशन-प्रवृत्ति तो कभी सफल होनेवाली ही नही। इसके विपरीत अगर कोई सफल प्रकाशक समय निकालकर लेखक वनेगा तो देखते-देखते वह दोनो तरहसे सफल होगा। लेखकके रूपमे उसकी कीर्ति वढानेमे प्रकाशन-कला सहायक होगी और प्रकाशककी हैसियतसे अनेक अच्छे लेखकोके साथ उसका परिचय वढ़नेसे उसकी लेखन-कला भी सव वाजूसे सम्पन्न होगी।'

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने भारतमे उपर्युक्त दोनो क्षेत्रोमे लोकोत्तर सफलता प्राप्त की। जव उनका 'कल्याण' मासिक देखते-देखते सर्वमान्य हो गया, उसकी ग्राहक-सख्या कल्पनातीत वढी, तव मेरे कई मित्र कहने लगे—'सनातनधर्मके प्रचारके लिये हिंदी भाषाको एक अद्वितीय स्वदेशी अमेरिकन मिल गया है।'

सचमुच हिंदी मासिकोमे 'कल्याण'का प्रचार एक अकल्पित आनन्ददायी घटना है।

'कल्याण' मासिकके साथ श्रीहनुमानप्रसादजीने गीताप्रेस चलाया। इसमे भी उनके 'अमेरिकन' साहस और कौशलका सारे देशको परिचय मिला।

श्रीहनुमानप्रसादजीकी इस द्विविध सफलताका रहस्य क्या है ? मैं कहूँगा—'बुनियादमे उनकी देशभक्ति और ईशभक्ति थी—दोनो अकृत्रिम, उत्कट और ठोस। साथ-साथ उनमे सनातनधर्मकी सर्व-सग्राहक उदारता थी। पुराने धर्मके प्रचारसे उन्होने अपने कौशलसे इतनी नवीनता डाल दी कि उनका धर्मप्रचार सजीव हो उठा। मैं मानता हूँ कि हमारे जमानेमे सनातनधर्मको हनुमानप्रसादजीसे वढकर दूसरा कोई 'मिशनरी' प्राप्त नही हुआ।

मेरी व्याख्याके अनुसार 'सनातन' याने 'नित्यनूतन'। अगर हम वेदसे आगे नही वढते तो हम 'पुरातन' याने 'वासी' हो जाते। वेदके वाद उपनिषद्, उनके साथ दर्शन—सवको स्वीकार करके हम 'अद्यतन' (up-to-date) वनते गये। धर्मप्रचारके लिये हमने 'श्रुति' के साथ 'स्मृतियाँ' ली। दोनोकी मददमे इतिहास और लोक-जीवनको स्वीकार करनेवाले 'पुराण' लिये। पुराणोके द्वारा ही हम अपने धर्मको लोकमान्य—लोकभोग्य वना सके।

सकाम और निष्काम—दोनो वृत्तियोको पोषण देते हुए हमलोगोने 'तन्त्रो' और 'आगमो'को स्वीकार किया एव आगे वढे। श्रुति, स्मृति, पुराण, आगम और तन्त्र—सवके साथ 'योग'को मिलाया। राजयोगके साथ 'हठयोग'को भी अपनाया।

इधर बुद्धभगवान् और महावीरने धर्म-भावनाको लोकग्राह्य बनानेके लिये एक न
नीति चलायी। वही नीति सनातनी संतोने भी अपनायी। वह नीति क्या थी? संस्कृतसे ले
और लोकभाषाद्वारा विशाल जनताको देना।

जब चद विद्वान् ब्राह्मण शिष्योने बुद्धभगवान्से कहा—'भगवन्! आपका सर्वकल्याणक
धर्म प्रतिष्ठित हो नही रहा है, क्योकि वह लोकभाषामे व्यक्त हुआ है। आप हमे अनुमति
तो हम आपके उपदेशको वैदिक या पाणिनीय सस्कृतमे ला देगे।' बुद्धभगवान्ने उस अनुरोध
नापसद किया और कहा—'मै सामान्य जनताके लिये आया हूँ। मेरे उपदेशका अनु
सब लोकभाषाओंमे कर सकते हो, सस्कृतमे नही।' भारतीय सतोने बुद्धभगवान्की यही नी
चलायी—'सस्कृतसे लिया और लोकभाषामे दिया।' हनुमानप्रसादजीने प्रेस, प्रकाशन अ
प्रचारके आधुनिक साधनोको अपनाकर सनातन धर्म-सदेशको हिदीके द्वारा लोकभोग्य बनाय

इस सच्चे 'मिशनरी'ने सोचा कि अग्रेजी भाषाकी प्रतिष्ठा तो तोडेगे, कितु उसके द्वा
अगर सेवा हो सकती है तो उसकी उपेक्षा भी हम क्यो करे? उन्होंने अपने 'कल्या
की नीतिपर अग्रेजीमे भी एक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन किया, जिसका नाम है—'कल्या
कल्पतरु'। इस तरह यह 'सनातन हिदू मिशनरी' नित्यनूतन साबित हुए।

हम आशा करे कि गीताप्रेस और 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'—यह नित्यनूतन
कभी खो नही बैठे। नित्यनूतनताके बिना प्राण टिक नही सकते, बढ नही सकते। नित्यनूतन
ही प्राण है।

●

नित्य प्रकाशरूप प्रभु रहते सदा-सर्वदा मेरे साथ।
सुखद मार्ग दिखलाते, रक्खे वरद अभय मस्तकपर हाथ॥
प्रभु ही मेरे जीवन बनकर रहते नित शरीरमे सङ्ग।
रहता स्वस्थ, नित्य मिलता बल, रहते सत्त्वपूर्ण सब अङ्ग॥
प्रेमरूपसे करते मुझमें परम सुहृद प्रभु नित्य निवास।
काम-राग-कटुता-विरहित जीवनमे छाया पूर्ण मिठास॥
परम शान्ति बन बसे हृदयमें, मिटे भ्रान्ति-चिन्ता-भय-शूल।
रहता शान्त-समुज्ज्वल जीवन, होते सभी कार्य अनुकूल॥
दिव्य शक्ति बन रहते मुझमें, करते नित-नव शक्ति-विकास।
शुचितम जीवन मधुर बना सत्-चिदानन्दका नित्य विलास॥

—श्रीभाईजी

●

आत्मकल्याणके संदेशदाता

श्रीमती ललिता शास्त्री

मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध 'कल्याण'से सन् १९४१ से है। उस समय शास्त्रीजी जेलमे थे और उन्हीके आज्ञानुसार मै 'कल्याण' पत्रिकाकी सदस्या वनी। उस समयसे आजतक वरावर मै 'कल्याण' पढ रही हूँ। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण'के जन्मदाता थे और उनके विचार वरावर 'कल्याण'मे प्रकाशित होते थे। इस तरह मै उनके विचारोसे तो अवश्य ही परिचित थी, लेकिन व्यक्तिगत परिचय न था। सौभाग्यवश जव शास्त्रीजी गृह-मन्त्री थे, तव मै उनके साथ गोरखपुरमे स्थित गीताप्रेस देखने गयी। वहाँका वातावरण और कार्य देखकर शास्त्रीजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होने भाई पोद्दारजीसे कहा—'यह स्थान तो इतना रमणीक और शान्तिमय है कि जी चाहता है—राजनीतिसे छुट्टी लेकर यहीपर रहूँ।' उसी समय मेरा परिचय भाई पोद्दारजीसे हुआ।

भाई पोद्दारजीके वारेमे जितना भी लिखा जाय, थोडा है। उन्होने 'कल्याण'के द्वारा मानव-जाति, धर्म, समाज, देश और साहित्यकी निःस्वार्थ भावसे ऐसी सेवा की, जो सिर्फ प्रशसनीय ही नही, अनुकरणीय है। उनका मानवशरीर तो इस ससारमे नही, परतु उन्होने जो अमूल्य सेवाएँ समाजको प्रदान की है, वे किसी-न-किसी रूपमे मानव-जातिके कल्याणका कार्य सम्पादन कर ही रही है। वे सनातनधर्मके कट्टर अनुयायी थे, लेकिन सव धर्मोको समान दृष्टिसे देखते थे। उनका जीवन व्यावहारिक एव साधनामय था। जहाँतक मै जानती हूँ—वे हमेशा आत्म-प्रशसा एव आत्म-विज्ञापनसे दूर रहे। भाई पोद्दारजीकी ज्ञानवाणीने देशमे किस स्तरतकके लोगोके मनमे नव आशा, विश्वास और धर्मके प्रति आस्थाके दीप जलाये है, इसका अनुमान हमे उन सरलहृदय ग्रामीणोसे वातचीत करनेपर होता है, जो किसी भी पत्रिकाको, जिसपर भगवान् श्रीराम-कृष्णका चित्र वना हो, 'कल्याण' कह देते है या समझ लेते है।

व्यक्तिविशेषके न रहनेके वाद ही उसके गुणोको समाज आँकता है। आज भाई पोद्दारजी हम सवके वीच नही है, लेकिन उन्होने 'कल्याण'के द्वारा जो अमृत-वेल पूरे समाजमे फैलायी है, वह युगोतक मानव-जातिको आत्म-कल्याणका सदेशरूप अमर फल देती रहेगी। मै यही चाहती हूँ कि जिस 'कल्याण'के द्वारा भाई पोद्दारजीने ससारके कल्याणका वीडा उठाया था, उसे हम कभी भी न मुरझाने दे।

●

पुण्यश्लोक श्रीभाईजी

श्रीविश्वनाथदासजी

पुण्यश्लोक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे भारतीय गगन-मण्डलसे एक महानतम सुप्रसिद्ध एव आलोकप्रद नक्षत्र विलुप्त हो गया। भाई हनुमानप्रसादजीका सम्पूर्ण जीवन एक ऐतिहासिक जीवन था। स्वतन्त्रता-संग्रामके एक महान् सैनिक, हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृतिकी प्रतिष्ठाके नवजीवनदाता तथा उद्धारक और एकनिष्ठ यशस्वी विद्वान्के रूपमे उन्होने अपना सारा जीवन भगवान्, सस्कृति एव राष्ट्रके चरणोपर निछावर कर दिया। प्राचीन भारतीय हिंदू-संस्कृति एवं हिंदू-परम्पराओके जीर्णोद्धार, प्रचार एव प्रतिष्ठापनके निमित्त किये गये कार्योके महत्व एव परिमाणकी दृष्टिसे वहुत कम हिंदू उनकी तुलनामे टिक सकेगे। गीताप्रेस, प्रसिद्ध पत्र 'कल्याण' और गीता-भवन आदि उनकी सेवाके प्रमुख स्मारक है। वे ही एकमात्र व्यक्ति थे, जिन्हे अल्पतम मूल्यमे श्रीमद्भगवद्गीता तथा तुलसीकृत रामायण-की लाखो प्रतियाँ संसारभरमे वितरित करनेका श्रेय दिया जा सकता है।

पत्रकारिताके क्षेत्रमे उनके समान वहुत थोड़े लोग थे—'कल्याण'मे प्रकाशनार्थ विज्ञापनोको अस्वीकार करते हुए, सदैव सस्कृतिकी गरिमाका निर्वाह करते हुए तथा अपने सुप्रसिद्ध मासिक पत्रको पक्षपातपूर्ण भावनाओ एव द्वेषपूर्ण आलोचनाओसे—चाहे वे व्यक्तियो, सस्थाओ अथवा धार्मिक सम्प्रदायोकी हो—सदैव मुक्त रखते हुए उन्होने पत्रकारिताके क्षेत्रमे महात्मा गाधीके महान् आदर्शोका अनुसरण किया।

'वेद-भवन-न्यास'के लिये उनका नाम उन इने-गिने व्यक्तियोके वीच अमर अक्षरोमे अङ्कित रहेगा, जिन्होने वैदिक जीवन-पद्धतिके आदर्शका पुनरुद्धार एव प्रचार करनेके लिये तथा उसे जीवित रखनेके लिये 'वेद-भवन-न्यास'की कल्पना की, उसे स्थापित किया और उसका कार्य-विस्तार किया। इतनी महान् सक्रिय एव उपयोगी आत्माके उठ जानेसे भारत, हिंदू-सस्कृति और वैदिक जीवन-पद्धतिकी भयानक क्षति हुई है। गीताप्रेस और गीतावाटिकासे उनका तिरोभाव भगवान् श्रीकृष्णके द्वारकासे अन्तर्धान होनेके समान है। हमारी प्रार्थनाएँ सदैव उनके साथ है।

●

अनासक्त योगी—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीआदित्यनाथ झा

इस संसारमे कुछ ऐसे महापुरुष जन्म लेते है, जो जीवनभर परोपकार, उच्च आदर्श तथा मानव-सेवाके मार्गपर चलते है, किंतु जिनकी मृत्यु उन्हे अमर बना देती है और आनेवाली पीढियाँ जिनके जीवन, आदर्शो और सिद्धान्तोसे प्रेरणा पाती है । श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऐसे ही महापुरुषोमेसे एक है। श्रीपोद्दारजीके समान लोभ-मोहसे विमुक्त योगीके जीवनकी गाथा गीताप्रेससे निकलनेवाली धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' जन-जनतक पहुँचाती आयी है। पोद्दारजी बडी लगनके साथ जीवनभर साहित्य-रचनामे लीन रहे। उनके लेख, उनकी कविताएँ और उनके पत्र तथा टिप्पणियाँ साहित्यकी अमूल्य निधि है। जिस प्रकार उनका जीवन सादा और एक संतका जीवन था, उसी प्रकार उनका साहित्य भी धार्मिक आस्थाओसे भरपूर तथा सत्य, मानवता और नीतिके उच्चतम आदर्शोका प्रतिबिम्ब है। पोद्दारजीके निकट सम्पर्कमे जो भी आया, वह इस बातका साक्षी है।

श्रीपोद्दारजीने विभिन्न क्षेत्रोमे कार्य किया। युवावस्थामे उन्होने श्रीअरविन्दके साथ कार्य किया। इसी प्रकार वे महामना मालवीयजी तथा महात्मा गांधी आदि महापुरुषोके सम्पर्कमे रहे। सभी उनसे बडा स्नेह करते थे और साथ ही छोटे-बडे सब लोग उनकी प्रशंसा और आदर भी करते थे। इस महान् संतके मनमे प्रशंसा और आदरकी कोई इच्छा न थी। जो महान् होता है, उसके व्यक्तित्वमे कुछ ऐसी विशेषता होती है, जिसके कारण प्रतिष्ठा, सम्मान और श्रद्धा उसकी ओर खिंचे चले आते है। लाला लाजपतराय, टंडनजी, सेठ गोविन्ददास तथा श्रीलालबहादुर शास्त्री-जैसे कितने ही महापुरुष श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको 'भाईजी' कहा करते थे। यहाँतक कि उनके परिवारके लोग भी उन्हे इसी नामसे पुकारने लगे। व्यक्तिगतरूपसे मै भी श्रीपोद्दारजीके उज्ज्वल चरित्र, आदर्श जीवन, धार्मिक भावना, लगन तथा साधनासे बहुत प्रभावित हुआ हूँ। वे इतने उच्च थे कि पद और पदवीके मोहमे कभी नही पडे। जब उन्हे 'भारत-रत्न'के पदसे विभूषित करनेका प्रसङ्ग चला, तब उन्होने विनम्रतापूर्वक अपनी असहमति प्रकट कर दी। यहाँतक कि अंग्रेज सरकार उन्हे 'राय बहादुर' तथा 'सर' की पदवी देना चाहती थी, परंतु पोद्दारजी अपने दृढ निश्चय तथा उच्च मनोबलके सहारे इन प्रलोभनोसे अलग ही रहे।

पोद्दारजी विशुद्ध सनातनी वैष्णव थे, परंतु वे सभी धर्मोका आदर करते थे और उनके मनमे सभी सम्प्रदायोके प्रति श्रद्धा थी। 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने भगवद्भक्तिका संदेश जन-जनतक पहुँचाया। 'कल्याण'का सम्पादन-कार्य उन्होने जिस तत्परता और खूबीके साथ किया, वह अत्यन्त सराहनीय है। उन्होने भारतीय संस्कृति और धर्मको 'कल्याण'के माध्यमसे

अनासक्त योगी—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीआदित्यनाथ झा

इस ससारमे कुछ ऐसे महापुरुष जन्म लेते है, जो जीवनभर परोपकार, उच्च आदर्श तथा मानव-सेवाके मार्गपर चलते है, किंतु जिनकी मृत्यु उन्हे अमर वना देती है और आनेवाली पीढियाँ जिनके जीवन, आदर्शो और सिद्धान्तोसे प्रेरणा पाती है । श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ऐसे ही महापुरुषोमेसे एक है । श्रीपोद्दारजीके समान लोभ-मोहसे विमुक्त योगीके जीवनकी गाथा गीताप्रेससे निकलनेवाली धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' जन-जनतक पहुँचाती आयी है । पोद्दारजी वडी लगनके साथ जीवनभर साहित्य-रचनामे लीन रहे । उनके लेख, उनकी कविताएँ और उनके पत्र तथा टिप्पणियाँ साहित्यकी अमूल्य निधि है । जिस प्रकार उनका जीवन सादा और एक सतका जीवन था, उसी प्रकार उनका साहित्य भी धार्मिक आस्थाओसे भरपूर तथा सत्य, मानवता और नीतिके उच्चतम आदर्शोका प्रतिविम्व है । पोद्दारजीके निकट सम्पर्कमे जो भी आया, वह इस वातका साक्षी है ।

श्रीपोद्दारजीने विभिन्न क्षेत्रोमे कार्य किया । युवावस्थामे उन्होने श्रीअरविन्दके साथ कार्य किया । इसी प्रकार वे महामना मालवीयजी तथा महात्मा गाधी आदि महापुरुषोके सम्पर्कमे रहे । सभी उनसे वडा स्नेह करते थे और साथ ही छोटे-वडे सव लोग उनकी प्रशसा और आदर भी करते थे । इस महान् सतके मनमे प्रशसा और आदरकी कोई इच्छा न थी । जो महान् होता है, उसके व्यक्तित्वमे कुछ ऐसी विशेषता होती है, जिसके कारण प्रतिष्ठा, सम्मान और श्रद्धा उसकी ओर खिचे चले आते है । लाला लाजपतराय, टडनजी, सेठ गोविन्ददास तथा श्रीलालवहादुर शास्त्री-जैसे कितने ही महापुरुष श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको 'भाईजी' कहा करते थे । यहाँतक कि उनके परिवारके लोग भी उन्हे इसी नामसे पुकारने लगे । व्यक्तिगतरूपसे मै भी श्रीपोद्दारजीके उज्ज्वल चरित्र, आदर्श जीवन, धार्मिक भावना, लगन तथा साधनासे वहुत प्रभावित हुआ हूँ । वे इतने उच्च थे कि पद और पदवीके मोहमे कभी नही पडे । जव उन्हे 'भारत-रत्न'के पदसे विभूषित करनेका प्रसङ्ग चला, तव उन्होने विनम्रतापूर्वक अपनी असहमति प्रकट कर दी । यहाँतक कि अग्रेज सरकार उन्हे 'राय वहादुर' तथा 'सर' की पदवी देना चाहती थी, परतु पोद्दारजी अपने दृढ निश्चय तथा उच्च मनोवलके सहारे इन प्रलोभनोसे अलग ही रहे ।

पोद्दारजी विशुद्ध सनातनी वैष्णव थे, परतु वे सभी धर्मोका आदर करते थे और उनके मनमे सभी सम्प्रदायोके प्रति श्रद्धा थी । 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने भगवद्भक्तिका सदेश जन-जनतक पहुँचाया । 'कल्याण'का सम्पादन-कार्य उन्होने जिस तत्परता और खूबीके साथ किया, वह अत्यन्त सराहनीय है । उन्होने भारतीय सस्कृति और धर्मको 'कल्याण'के माध्यमसे

भारतीय जनतातक ऐसे आदर्श रूपमे पहुँचाया कि उससे सभीको प्रेरणा मिली और स्वय पोद्दारजी भी बडे लोकप्रिय हो गये। उन्होने आध्यात्मिक, धार्मिक और चरित्र-निर्माणमे सहायक पुस्तकोके प्रकाशनमे अद्वितीय सहयोग प्रदान किया।

श्रद्धेय पोद्दारजीने 'वसुधैव कुटुम्वकम्' को अपने जीवनका सिद्धान्त बनाया। इस भौतिकतावादी युगमे उनके विचारोसे भारतीय सस्कृतिका अद्वितीय दिग्दर्शन होता है। 'कल्याण' के विशेषाङ्कोके माध्यमसे तथा विशेष अवसरोपर अपने व्याख्यानोके माध्यमसे उन्होने भक्ति, लोक-व्यवहार, धर्म तथा राजनीति आदि विषयोपर प्रकाश डाला। वे जीवनभर सेवा-परायण, परोपकाररत और उदारमना रहे। अपरिचित व्यक्तिके प्रति भी वे इतना स्नेह दिखाते थे कि मनमे उनके प्रति बडी श्रद्धा जाग उठती थी। ७९ वर्षकी उम्रमे भी वे वैसे ही रहे। उनके निधनसे भक्ति, प्रीति और धर्मकी त्रिवेणीसे समन्वित जीवनका अन्त हो गया; परतु उनके द्वारा प्रतिपादित उच्चतम आदर्श, धार्मिक मान्यताएँ और महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त सदा लोगोको प्रेरणा देते रहेगे।

●

प्रभो! कृपा कर मुझे बना लो अपने नित्य दासका दास।
सेवामे संलग्न रहूँ उल्लसित नित्य, मन हो न उदास॥
चिन्तन हो न कभी भोगोंका, नहीं विषयमे हो आसक्ति।
बढ़ती रहे सदा मेरे मन पावन प्रभु-चरणोंकी भक्ति॥
कभी न निन्दा करूँ किसीकी, कभी नहीं देखूँ पर-दोष।
बोलूँ वाणी सुधामयी नित, कभी न आये मनमे रोष॥
कभी नहीं जागे प्रभुता-मद, कभी न हो तिलभर अभिमान।
समझूँ निजको नीच तृणादपि, रहूँ विनम्र, नित्य निर्मान॥
कभी न दूँ मै दुःख किसीको, कभी न भूल करूँ अपमान।
कभी न पर-हित-हानि करूँ मैं, करूँ सदा सुख-हितका दान॥
कभी न रोऊँ निज दुखमे मैं, सुखकी करूँ नही कुछ चाह।
सदा रहूँ संतुष्ट, सदा पद-रति-रत, बिचरूँ बेपरवाह॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमे हो कभी न मेरा राग-द्वेष।
रहे न किंचित् कभी हृदयमे जग-आशा-ममताका लेश॥
मस्त रहूँ मैं हर हालतमें, करूँ सदा लीलाकी बात।
देखूँ सदा सभीमे तुमको, सदा रहे जीवन अवदात॥

—श्रीभाईजी

●

एक व्यक्ति या संस्था ?

श्रीप्रकाशवीरजी शास्त्री

पिछले पौने नौ सौ वर्षोमे हिंदू-समाजपर कई वार वाहरी आक्रमण हुए। १९४७ तक पहले मुगल-सल्तनतने और पीछे अग्रेजी सरकारने योजनावद्ध ढगसे इस आदर्श समाजके स्वरूप-को विकृत करना चाहा, पर वे दोनो ही इसमे सफल न हो सकी। अकवरके समयमे भी, जिसे धर्मके वारेमे वहुत उदार कहा जाता है, उपनिषदो और कुछ दूसरे धर्म-ग्रन्थोकी भाषा और आत्माको वदलकर भारतपर मुगल-सस्कृति थोपनेका प्रयास किया गया, पर हिंदू-समाजकी सतर्कतासे वे सारे प्रयत्न विफल रहे। औरगजेवने वही काम तलवारकी नोकपर करना चाहा, लेकिन उसे भी सफलता न मिल सकी। अग्रेजोने भी पौने दो सौ वर्षोतक इसी तरहके प्रयत्न किये, पर हिंदू-समाजके उदात्त आदर्शो और सिद्धान्तोकी वे कुछ भी हानि न कर सके। इसके कारणोमे एक सवसे वडा कारण था—हमारे सास्कृतिक आधारका राजनीतिसे सर्वथा अप्रभावित होकर चलना। साधु-सत, ऋषि-महर्षि सदा समाजमे राजसत्तासे ऊँचे और श्रद्धेय माने जाते थे। राजा-महाराजाओको यदि कभी गरज हुई तो वे ही उनके आश्रमोमे जाते थे। राज-दरवारोके चक्कर साधु-महात्माओने कभी नही काटे।

स्वाधीनताके सग्राममे भी यही भावना काम कर रही थी—जव अपना राज्य होगा, तव अपनी सस्कृति एव सभ्यताका भारतमे फिर उन्मुक्त विकास हो सकेगा। गाधीजीने इसके लिये 'राम-राज्य' शब्दका उपयोग किया। उनका कहना था—स्वतन्त्र होनेके वाद ही भारतमे 'राम-राज्य' आयेगा। तिलक, गोखले, मालवीयजी और लाला लाजपतराय आदिके स्वप्न भी उसी प्रकारके थे, पर स्वतन्त्रताके वाद भारतमे एक नयी ही धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक सस्कृतिकी हवा चल पडी। गणेशजी वनानेके प्रयासमे हमलोग वदर भी न वना सके। स्वर्गीय श्रीश्रीप्रकाशजीने ठीक ही लिखा था—'यदि यही स्थिति चलती रही तो भारतकी तीसरी पीढीमे हिंदू-धर्म समाप्त हो जायगा।' यो तो आजकी नयी पीढी ही अपनी मान्य-ताओसे कोसो दूर जा चुकी है। फिर तीसरी पीढीकी तो कल्पना करना ही कठिन है। प्रगति और फैशनकी आडमे नास्तिकता एव पश्चिमका अन्धानुकरण पनप रहा है। इसमे कुछ सुधार यदि सम्भव है तो गैर-सरकारी स्तरपर हिंदू-समाजके पथ-प्रदर्शक ही कर सकते है। सरकारी प्रयास इसमे कुछ विकार तो पैदा कर सकते है, सुधार पैदा नही कर सकते। आज तो सरकारने देशमे एक ऐसा वातावरण वना दिया है, जिसके कारण अपनेको हिंदू कहनेमे भी लोग सकोचका अनुभव करने लगे है। जिस धर्ममे सवके हितकी कामना हो, पूरी धरतीको एक परिवार माना गया हो और अपने-परायेकी गन्धसे जो परे रहना सिखाता हो, उसे आज संकुचित सीमाओमे वॉधा जा रहा है। शासन-सूत्र और प्रचारका तन्त्र जिन हाथोमे है, उनमेसे अधिकाश पश्चिमके वातावरणमे शिक्षित है। इसलिये अव तो अपने पैरोपर खडा

होकर ही हिंदू-समाजको मनु और याज्ञवल्क्यकी धरोहरकी रक्षा करनी होगी। ईसाइयत और इस्लामकी तरह हिंदू-धर्मके लिये राज्याश्रय खोजनेकी वात करना भी समयका अपव्यय करना है।

आदरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस रहस्यसे भलीभाँति परिचित थे। इसीलिये उन्होने गोरखपुरमे गीताप्रेस और 'कल्याण'के माध्यमसे अपना ऐसा ही स्वतन्त्र मार्ग चुना। अकेला एक व्यक्ति कैसे सगठनोसे भी अधिक कार्य कर सकता है, वे इसके एक जीवित प्रतीक थे। रामायण, गीता, महाभारत आदि हिंदू-समाजके ग्रन्थोको सरल और स्पष्ट भाषामें प्रकाशितकर उन्होने समाजकी वहुत वडी सेवा की। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय हिंदू-धर्मको सुसगठित रूप देनेके लिये जो प्रयास शिक्षाके माध्यमसे करना चाहते थे, पोद्दार-जीने वही काम साहित्य-साधनाके माध्यमसे किया। गीता और रामायण-जैसे ग्रन्थोको सर्वसाधारणके लिये सुलभ करना उनकी अपनी ही अद्भुत प्रतिभाका परिचायक था। गरीव-से-गरीव व्यक्ति भी अपने घरमे आज गीता-रामायण रखकर गौरव अनुभव करता है।

पर एक भाई हनुमानप्रसाद पोद्दार यदि इतना वडा काम कर सकते थे तो क्यो न कुछ व्यक्ति मिलकर उनके अधूरे छोडे हुए कार्यको और आगे वढाये ? दुनियाके दूसरे देशोमे आज भारतीय ज्ञानकी भूख फिरसे जगी है। योरपमे कीर्त्तन और योगासन बड़े लोकप्रिय हो रहे हैं। उनकी अपनी भाषामे यदि और कुछ परिष्कृत साहित्य भी दिया जाय तो निश्चय ही हिंदू-धर्मके प्रति उनका आकर्षण वढेगा। योरप ईसाइयतसे ऊव रहा है। शान्तिकी खोजमे योरपवासी ऐसे धर्मोकी ओर अग्रसर हो चले है, जो प्रारम्भसे ही मानवताको सरक्षण देनेका काम करते आये है। दक्षिण-पूर्वी एशियामे भारतके पडोसी देश तो और भी अधिक उस ज्ञानकी पिपासा लिये हुए है। वहाँ बौद्ध और वैष्णव सस्कृतिका अद्भुत समन्वय देखनेको मिलेगा, पर यदि उस सस्कृतिके जन्म-स्थान भारतमे योजनावद्ध ढगसे उसके लिये कुछ उच्चस्तरीय प्रयास किये जायँ तो पोद्दारजी-जैसे तपस्वी व्यक्तियोके स्वप्न पूरे सफल हो सकते है। पिछले दिनो जव मै इंडोनेशिया गया, तव वाली द्वीपसे निर्वाचित ससद्-सदस्या श्रीमती ओकायने इडोनेशियन भाषामे हिंदू-धर्मका साहित्य न मिलनेकी कठिनाई मेरे सामने रखी थी। गीता तो अपने प्रयासोसे उस भाषामे उन्होने छापी भी है; पर वहाँ पूरे हिंदू-साहित्यको पढनेकी इच्छा है। मुसलमान भी भले ही वहाँ मजहवसे इस्लाममे विश्वास रखते हो, पर सभ्यतासे वे भी अभीतक हिंदू ही है। रामायण और महाभारत वहाँ उन्होने अपने ग्रन्थ मान रखे है। मैंने भारत लौटकर पोद्दारजीसे इसकी चर्चा की थी। वे इस दिशामे कुछ करना भी चाहते थे। पर इतनेमे ही परमात्माका निमन्त्रण उन्हे मिल गया और वे चले गये। आशा है, उनके श्रद्धालु भक्त इस ओर भी कुछ ध्यान देगे।

●

अमर प्राणोंके दानी

श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका

भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दार मेरे अभिन्न मित्रोंमेंसे थे । युवावस्थामे हम दोनोने कई ऐसे काम एक साथ मिलकर किये थे, जिनमे हम दोनोके विचार मिलते-जुलते थे । वैसे सन् १९१६ के मध्यतक उनका कलकत्तामे ही निवास रहा और कलकत्तामे ही वे व्यापार करते रहे ।

युवाकालमे उग्र क्रान्तिकारियोसे मेरा सम्पर्क था और १९१४ मे मै एक राजनीतिक षड्यन्त्रमे फँस गया । 'आर० बी० रोडा ऐड कम्पनी'द्वारा जर्मनीसे निर्यात की गयी ५०,००० कारतूस और ५० पिस्तौल क्रान्तिकारियोके हाथ लगी । उसका बडा भाग सुरक्षित स्थानमे छिपानेके लिये मुझे सौपा गया । उन पिस्तौलो और कारतूसोको छिपानेके उद्देश्यसे मुझे जगह-जगह घूमना पडा । पता लग जानेका तो पूरा भय था ही । कारतूसोका एक बक्स मैने भाई हनुमानप्रसादजीको उनकी गद्दीमे सौप दिया । मेरी दृष्टिमे वह घटना उनके जीवनमे बहुत महत्त्व रखती है । हमलोगोके साथ-साथ वे भी ब्रिटिश हुकूमतद्वारा इस षड्यन्त्रमे फँसा लिये गये ।

प्रथम महायुद्धके समय 'भारत सुरक्षा-कानून' पास किया गया । मार्च १९१६ मे मुझे बगालसे निर्वासित कर दिया गया । कुछ सप्ताह बाद भाई हनुमानप्रसादजीको भी पकड लिया गया और पीछे बंगालके बाँकुडा जिलेमे पौने दो वर्ष वे नजरबद रखे गये । १९१८ मे उन्हे बगालसे निर्वासित कर दिया गया । विधिका विधान बडा विचित्र है । बगालसे हट जानेके बाद पहले कुछ वर्ष वे बम्बई रहे, पीछे गोरखपुर आ गये । उनके जीवनमे नया परिवर्तन आया और वे भगवत्प्राप्तिकी एकान्त साधनामे लग गये । एक साधारण व्यापारी एक सच्चा वेदान्ती और हिंदू-धर्मका मर्मज्ञ बन गया । एक-एक क्षण उनके जीवनका नवनिर्माण करने लगा । यह सत्य है कि सभी घटनाएँ—अच्छी या बुरी प्रभुकी प्रेरणासे होती है । देखनेमे जो अभिशाप प्रतीत होता है, वह अन्तमे किस वरदानके रूपमे साबित हो जाय—यह कौन जाने ? पर मेरी ऐसी मान्यता है कि अगर कारतूसोका एक बक्स उनके पास नही पहुँचता और उस घटनाके सिलसिलेमे उनको बगालसे निकाला नही जाता तो सम्भवत वे भी कलकत्तामे अन्य व्यापारियोकी तरह अपने कारबारमे लगे हुए पाये जाते और शायद वे इतने महान् व्यक्ति नही बन पाते, जितने वे बन सके । मुझे गर्व है कि इस घटनाके निमित्तसे वे इतने ऊँचे उठ सके । यह मै मानता हूँ कि संस्कार तो पूर्वजन्मोसे ही चले आते है, उन सस्कारोको जाग्रत् करनेके लिये कोई निमित्त चाहिये, कोई सहारा चाहिये । जब सही मार्ग मिल जाता है, तब उस सत्यकी प्राप्तिके लिये जो मजिल तय करनी पडती है, वह तो साधक-

को स्वयं ही करनी पड़ती है—मार्गके कष्ट भोगने पड़ते हैं, उतार-चढ़ाव देखने होते हैं। भाई हनुमानप्रसादजीको मार्ग मिल गया और वे चल पड़े लगन और उत्साहके साथ उस मार्गपर, उस सत्यकी खोजमें, जीवनकी उन गुत्थियोंको सुलझानेके लिये, जो अनादिकालसे हमारे ऋषि-मुनियोंके लिये भी गम्भीर पहेली बनी हुई हैं। गोस्वामीजीने कहा है—

अति हरि कृपा जाहि पर कोई। पाउँ देइ एहि मारग सोई॥

सचमुच श्रीभाईजीपर भगवान्‌की अति कृपा थी, जो उन्होंने इस मार्गपर पाँव दिया। उनका कार्य-क्षेत्र गीताप्रेस बन गया और वे उसमें लग गये। हिंदू-धर्मकी पुस्तकें छपवाकर इतने सस्ते मूल्यपर उन्होंने लाखों-करोड़ों हिंदुओंके हाथोंमें पहुँचायी। 'कल्याण'के माध्यमसे इतने सुलभ मूल्यपर हिंदू-धर्मका संदेश करोड़ों श्रद्धालुओंके पास पहुँचाया। गीताप्रेसकी सेवाओंके परिणामस्वरूप ही आज रामायण, गीता, भागवत, महाभारत और उपनिषद्-जैसे अमूल्य धार्मिक ग्रन्थ सुन्दर छपाईके साथ लाखों-करोड़ोंको इतने सस्ते मूल्यपर उपलब्ध हो सके हैं और लाखों नर-नारियोंने उनसे मानसिक सुख-शान्ति प्राप्त की है।

जब मैं अपने वकील-बैरिस्टर मित्रों और हाईकोर्टके जजोंको 'भाईजी' कहकर हनुमान-प्रसादजीकी सेवाओंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते सुनता हूँ, तब मुझे बड़ा हर्ष होता है। सचमुच वे सबके 'भाईजी' थे।

कलकत्ता छोड़नेके बाद उन्होंने अपने जीवनको समाजकी सेवाओंके निमित्त अर्पित कर दिया। विभिन्न रूपोंमें उन्होंने प्राणिमात्रकी सेवा की—उनके धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्तरको ऊँचा उठाया, लोगोंका मार्ग-दर्शन किया एवं लाखोंको प्रेरणा दी।

जिन्होंने अपना जीवन प्राणिमात्रकी सेवामें अर्पित कर दिया और जो देहाभिमानसे दूर हो गये हैं, वस्तुतः उनका जीना ही सच्चा जीना है। समाजसे उन्होंने जो लिया, वह उन्होंने समाजको कई गुना करके लौटा दिया। उन्होंने जीवनका सच्चा रहस्य जान लिया—अपनी साधनासे अन्तरात्मामें स्थित परमात्माको पहचाना और पहचानकर उसीमें लीन हो गये।

उनके निधनसे समाज एवं देशकी जो क्षति हुई है, वह सहजमें पूरी नहीं हो सकेगी, पर वे तो देहबन्धनसे मुक्त होकर परमात्मामें लीन हो गये। इस समय कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी अमरवाणी मुझे स्मरण हो आयी है—

एसे छिले साथे करे मृत्युहीन प्राण,
मरणे ताहाउ तुमि करे गेले दान।

'तुम अमर प्राण साथ लेकर आये थे, मृत्युके समय यमदेवताको तुमने उसका भी दान कर दिया।'

●

महान् व्यक्तित्व

श्रीगजाधरजी सोमानी

भगवान्ने श्रीगीतामे कहा है—'जब-जब धर्मकी ग्लानि तथा अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब धर्मकी रक्षा एव अधर्मका नाश करनेके लिये मै स्वय अवतार लेता हूँ।' साथ ही समय-समयपर भगवान्की कुछ विशिष्ट विभूतियाँ भी इस धरतीपर अवतीर्ण होती है, जो अपने त्याग एव तपस्यासे मानव-समाजका कल्याण करती है। ऐसी एक विशिष्ट विभूति श्रद्धेय भाईजी थे, जो भगवान्की इच्छा एवं प्रेरणासे विशेष शक्तिको लेकर जन-सेवा एव जन-कल्याणके लिये ससारमे अवतरित हुए थे। उनके दिव्य जीवनका मूल्याङ्कन शब्दोके द्वारा होना सम्भव नही। उनकी प्रवृत्तियाँ इतनी व्यापक एव सर्वतोमुखी थी कि उनके व्यक्तित्व तथा क्रियाशील जीवनका यथोचित वर्णन, चाहे कितना ही लबा ग्रन्थ क्यो न निकले, होना असम्भव है।

श्रद्धेय भाईजीसे मेरा व्यक्तिगत परिचय करीब ३५-४० वर्षोसे रहा है। मै जब छोटी उम्रका था और मैने व्यापारिक जीवनमे प्रवेश किया ही था, तबसे कलकत्ता तथा अन्य स्थानोपर उनके सम्पर्कमे आनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझे याद आता है कि आजसे करीब ३५ वर्ष पूर्व जब वे रतनगढसे मेरे जन्मस्थान मौलासर ग्राम आये थे, तब हमने ग्रामके बाहरसे ही उनका स्वागत सकीर्तन-मण्डलके साथ जुलूसके रूपमे किया था। वे दो दिन हमारे यहाँ रहे तथा सत्सङ्ग एव अध्यात्म-सम्बन्धी प्रवचन तथा चर्चाएँ हुई। तबसे उनके महान् व्यक्तित्वसे मै इतना आकर्षित रहा हूँ कि उनके द्वारा लिखित सामग्रीका, जो 'कल्याण' के द्वारा नियमितरूपसे प्रकाशित होती रही है, अध्ययन करनेके लिये सदा उत्सुक रहा हूँ। साथ-ही-साथ समय-समयपर मिलना एव पत्र-व्यवहार भी चलता रहा एव बीच-बीचमे व्यक्तिगत सम्पर्क भी होता रहा।

'कल्याण' मासिक पत्रद्वारा उन्होने हमारी प्राचीन सस्कृतिकी जो सेवा की है, वह इतिहासमे सदा स्वर्णाक्षरोमे लिखी जायगी। आज सिनेमा तथा विलासपूर्ण सामग्रीका प्रचुर मात्रामे लोकप्रिय होना स्वाभाविक है, क्योकि लोगोकी मनोवृत्ति आध्यात्मिक भावनासे विमुख होकर नैतिक ह्रासकी ओर बढती जा रही है। ऐसे बढते हुए भौतिकतावादके वातावरणमे 'कल्याण'-जैसे विशुद्ध उत्कृष्ट धार्मिक पत्रके लगभग पौने दो लाख ग्राहकका होना एक ऐसी महान् उपलब्धि है, जो उनकी सतत साधनाका सुपरिणाम है। 'कल्याण'के साथ गीताप्रेससे जो आध्यात्मिक सामग्री प्रकाशित होती है, उस ज्ञान-गङ्गाके अजस्र प्रवाहसे बहुत बडी सख्यामे लोग उपकृत हुए है। 'कल्याण' और गीताप्रेसके समान कुछ और भी प्रतिष्ठान यदि इस दिशामे कार्य करने लगे तो वास्तवमे नैतिक अधःपतनकी ओर बढती हुई प्रवृत्तिका प्रतिरोध हो सकता है।

समय-समयपर श्रद्धेय भाईजीसे मेरा पत्र-व्यवहार भी हुआ और एक पत्रमे देशकी शोचनीय परिस्थितिके बारेमे लिखते हुए उन्होने जिक्र किया था कि 'जितना ही भौतिकतावाद बढेगा, उतना ही मनुष्यका पतन होगा ।' उन्होने आजकी परिस्थितिपर बहुत ही चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा था कि वर्तमान परिस्थितिसे वे घबरा गये है । मैने उनके सामने एक प्रस्ताव रखा था कि अपने देशके साधु-संत, महात्मा तथा व्यापारी कुछ ठोस आयोजन करे, जिसके द्वारा विशाल पैमानेपर देशव्यापी आध्यात्मिक अभियान चलाया जा सके । उन्होने मेरे विचार तथा आयोजनका स्वागत करते हुए अपने पूरे सहयोगका आश्वासन दिया था ।

अपने एक पत्रमे उन्होने लिखा था कि परलोकगत आत्माओसे मिलने और बातचीत करनेका सिद्धान्त सत्य है, लेकिन अधिकांश धोखेबाज तथा छलनेवाले लोग ही आजकल इस क्षेत्रमे कार्य कर रहे है । उन्होने लिखा था कि बम्बईमे एक पारसी जातिकी परलोकगत आत्माने उन्हे अकस्मात् दर्शन देकर अपना श्राद्ध करनेके लिये कहा था, तदनुसार उन्होने उसका श्राद्ध भी करवा दिया था । इस प्रकार परलोकगत आत्माओके सम्बन्धमे उनका अनुशीलन एवं मनन इतना महत्त्वपूर्ण है कि जिससे हमारा विश्वास प्राचीन श्राद्ध-प्रणालीमे उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है ।

उन्होने समय-समयपर दु खी और त्रस्त जनताकी जो सेवाएँ की है, वे सर्वविदित है । आध्यात्मिक साहित्य-सेवाके साथ-साथ समय-समयपर हर सम्भव प्रकारसे विपत्तिग्रस्त जनताकी सेवाके लिये वे चिन्तित रहते थे । इस सम्बन्धमे उन्होने 'आर्त्तनारायण-सेवा-सघ ट्रस्ट' कुछ समय पूर्व बनाया था, जिसका मुझे भी सदस्य बननेका आदेश दिया था ।

श्रद्धेय भाईजी गीताप्रेसके अतिरिक्त अन्य कितनी ही संस्थाओको अपना सहयोग तथा मार्गदर्शन दिया करते थे । इस सम्बन्धमे भारतीय 'चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'की भी चर्चा आवश्यक है । उन्होने इस ट्रस्टकी स्थापनामे अपना सहयोग दिया था, जिसके द्वारा आज देशके चारो धामोमे वेद-भवनोकी योजना कार्यान्वित हो रही है । 'वेद-भवन-न्यास'का सदस्य मै भी हूँ और हर्षकी बात है कि इस न्यासके माध्यमसे हमारे मुख्य तीर्थ-स्थानोमे प्राचीन वैदिक साहित्य-के अभ्युदय एव प्रचारकी सुव्यवस्था हो रही है ।

उनके महान् व्यक्तित्वके कारण राजस्थानके कतिपय प्रमुख उद्योगपति तथा व्यापारी उनके प्रति बडी श्रद्धा एव आदर रखते थे, लेकिन उन्होने कभी भी उन मित्रोसे कुछ भी स्वार्थ-सिद्धि या अर्थकी अपेक्षा नही की । जब कभी भी ऐसे मित्रोको किसी अभावग्रस्तकी सिफारिशके लिये लिखते, तब वे ऐसी विनम्र भाषामे सकोचपूर्ण ढगसे लिखते थे कि उनकी ओरसे कोई दबाव या आग्रहकी भावना प्रकट न हो । इस प्रकार आजके स्वार्थ एवं सकीर्णता-के वातावरणसे अपनेको बिल्कुल अलग रखते हुए वे एक ऐसी आचारनिष्ठाका निर्वाह करते थे, जिससे किसी भी तरह उनको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे किसीपर अनुचित दबाव डालनेका अवसर प्राप्त न हो ।

उनकी लेखनीमे जो विनम्रता थी, वह वास्तवमे अनुकरणीय है। इतने विशिष्ट धार्मिक नेताके मुखसे या लेखनीसे इतनी विनम्रताका प्रकट होना वास्तवमे उनके महान् व्यक्तित्वका द्योतक है। वे वस्तुत विश्वबन्धुत्वके महान् प्रतीक थे। जैसा 'भाईजी' उनका नाम था, उसी प्रकार वे प्राणिमात्रके वन्धु थे। उनके हृदयमे सदैव सबके प्रति प्रेम एव सद्भावनाका सतत प्रवाह वहता रहता था। जिसने भी उनकी साहित्य-सामग्री पढ़ी है तथा जो भी उनके सम्पर्कमे आया, वह उनकी इस माधुर्य एव विनम्रताकी भावनासे प्रभावित हुए विना नही रहा।

'सादा जीवन और उच्च विचार'के वे उज्ज्वल प्रतीक थे। उनकी वेष-भूषा कितनी सादी थी, यह तो वे लोग जानते ही हैं, जिन्होने उनके दर्शन किये हैं। आजकी विलासिता-की सामग्रीसे सर्वथा दूर रहते हुए वे विशुद्ध धार्मिक वातावरणमे अपने महान् सेवा-व्रतका अनुष्ठान करते थे। इधर कुछ वर्षोसे स्वास्थ्य अच्छा न रहनेपर भी वे कितना अधिक परिश्रम करते थे, इससे 'कल्याण'के पाठक भलीभाँति परिचित हैं। 'कल्याण' और गीताप्रेसके सचालनके अतिरिक्त उनपर कितनी ही सस्थाओके मार्गदर्शनकी जिम्मेदारी थी तथा कितने ही जिज्ञासु उनको पत्र लिखते थे या उनसे मिलते थे। इन सव वातोका ध्यान रखते हुए यह सहज ही अनुभव किया जा सकता है कि उन्होने जीवनके प्रत्येक क्षणका किस प्रकार अपनी दिव्य साधनामे उपयोग किया है। उनसे किसीको भी निराशा नही हुई। उनसे मिलकर या उनके साथ पत्र-व्यवहार करके वास्तवमे असख्य लोगोको एक दिव्य सुख एवं शान्तिकी अनुभूति हुई। ऐसे महापुरुषके उठ जानेसे वास्तवमे ऐसी विशिष्ट विभूतिका तिरोधान हो गया है, जिसकी विविध प्रवृत्तियोसे अहर्निश लोगोको प्रेरणा मिलती रहती थी।

भाईजी सदा ही किसी भी विवादग्रस्त अथवा कटुतापूर्ण विषयसे अपनेको दूर रखते थे। व्यापक सनातनधर्मके कई अङ्ग तथा विभिन्न सम्प्रदाय है। इस प्रकार अपनी-अपनी रुचिके अनुसार एक ही परम लक्ष्यकी प्राप्तिके अनेको मार्ग सनातनधर्मकी विभिन्न शाखाओद्वारा उपलब्ध हैं। खेदका विषय है कि इन विभिन्न मतो एव सम्प्रदायोमे वहुधा कटुतापूर्ण विवाद या सघर्ष उत्पन्न हो जाता है, लेकिन भाईजीने सभी सम्प्रदायो एवं मतोके प्रति समान आदर रखते हुए किसी भी विवादग्रस्त सामग्रीको कभी स्थान नही दिया। उनके महान् व्यक्तित्वका यह भी एक उज्ज्वल पहलू है।

उनके सम्बन्धमे जितना भी लिखा जाय, थोडा है। ऐसे महान् व्यक्तिके कर्मभूमिसे उठ जानेसे जो क्षति हुई है, इसकी पूर्ति सम्भव नही है। फिर भी उनके द्वारा लगाया गया जो विशाल वृक्ष पल्लवित एव पुष्पित हो रहा है, उसे सतत सिञ्चित एव पोषित करना पीछेवालोका कर्तव्य है। भारतीय सस्कृतिका आध्यात्मिक सदेश जिस प्रकार वे निरन्तर लोगोको देते रहे, उसकी धारा अवरुद्ध न हो एव हमलोग उस परम्पराको यथासम्भव चलाने-का प्रयत्न करते रहे—यही उनके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

सरल, स्वच्छ एवं स्पष्ट जीवनके धनी

श्रीकमलनयनजी बजाज

मेरे स्वर्गीय पूज्य काकाजी श्रीजमनालालजी वजाजका श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे करीव ५० साल पहले काफी सम्वन्ध रहा था। वहुत-से धार्मिक और सामाजिक कार्योमे परस्पर सहयोग और विचार-विनियम भी होता रहता था। उस समय मै वालक ही था। भाईजीको कई वार देखनेके प्रसङ्ग तो आये, लेकिन तबतक उनके बारेमे—वे परिवारके एक हितैषी, काकाजीके मित्र और देश या समाजके कार्यकर्ता हैं—इसके अलावा विशेष जानकारीका ख्याल मुझे नही आता। काकाजी और भाईजी दोनोका ही पिण्ड आध्यात्मिक और धार्मिक रहा है। काकाजी समाज-सुधारक और देश-सेवक हुए, भाईजीने धर्म-प्रचार और अध्यात्मका विस्तार करनेमे अपना जीवन खपाया। काकाजी सुधारक और भाईजी सनातनी विचारोके होनेकी वजहसे दोनोकी वृत्तियोमे खास फर्क न होते हुए भी प्रवृत्तियोमे काफी अन्तर हो गया। यहाँतक कि उनके विचार और कार्य एक-दूसरेसे भिन्न हो गये, जिससे उनका सम्पर्क कम-सा हो गया। फिर भी दोनोमे एक दूसरेके प्रति आदर और स्नेहमे कभी कमी होनेका आभासतक न हुआ। वल्कि जव-जव प्रसङ्ग आये, दोनोके एक-दूसरेके प्रति भाव और उद्‌गारोको देखकर आश्चर्य हुए विना नही रहता था। "कल्याण' पत्रिका तथा गीताप्रेससे प्रकाशित ग्रन्थोद्वारा धार्मिक भावनाओके प्रचारका वहुत वडा काम हो रहा है"—ऐसा काकाजीको लोगोसे कहते हुए कई वार मैंने सुना है।

ऐसे प्रसङ्ग मुझे याद है जव कि गांधीजीके रचनात्मक कामोमे लगे हुए परिवारोको गीताप्रेसके धार्मिक ग्रन्थ और 'कल्याण' मासिकको मॅगवानेके लिये काकाजी कहा करते थे। एकाध वार किसी कार्यकर्त्ताने पूछा कि—'गीताप्रेससे प्रचारित धार्मिक तथा सामाजिक विचारोकी वावत कई वातोमे इतना मतभेद है, फिर भी काकाजी उनको क्यो सलाह देते है कि ऐसे विचारवालोके प्रकाशित ग्रन्थोको परिवारमे दाखिल किया जाय और उस तरहके सस्कार वढनेका मौका दिया जाय ?' काकाजीने उनसे कहा—'माना, उनके वहुत-से विचारोसे हम सहमत नही है, फिर भी उनके विचार ईमानदारीके है और अध्ययन करनेके योग्य है। हमारे वच्चोको भी उन विचारोको जानना चाहिये और उनमेसे जो कुछ अच्छा है, उसे ग्रहण करना चाहिये और ऐसी ग्रहण करने और अनुकरण करनेयोग्य सामग्री काफी मिलेगी। कुछ वाते जरूर ऐसी है कि जहाँपर हमारा उनसे विरोध है, जैसे—अछूतोका प्रश्न, विधवा-विवाह आदि। परतु वहाँ भी सनातनियोके शुद्ध विचारोको जानने-समझनेकी आवश्यकता है। हमारे विचारोमे ही हमारे वच्चे पले और अन्ध-विश्वासी वने, उसकी वनिस्वत यदि अपना स्वतन्त्र निर्णय करनेके वाद वे सच्चे सनातनी भी वनते है तो वह मुझको अधिक कवूल होगा।' वर्षोतक 'कल्याण' और गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित ग्रन्थ, खासकर गीताके सभी तरहके छोटे-वड़े सस्करण हमारे

परिवारमें आते रहे। कई प्रकाशित ग्रन्थ तो आज भी हमारे घरमे पाये जायेंगे। सत्याग्रहके आन्दोलनके समय परिवारके सभी लोग अस्त-व्यस्त हो जाते थे, कार्यवश अलग-अलग चले जाते थे, वर्षों जेलोमे पडे रहते थे, और ऐसे भी मौके आये, जव हमारे घरसे पुस्तके आदि वहुत चीजे जब्त हो गयी थी। इस कारण पुस्तकोका पुराना सग्रह हमारे यहाँ उपलब्ध नही है। काकाजीके स्वर्गवासके वाद 'कल्याण'का आना कैसे और कव वद हुआ, इसका मुझे ख्याल नही।

आजादीके वाद राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यापारिक—सभी तरहके सार्वजनिक कामोको लेकर मेरा दिल्ली काफी आना-जाना रहा। सन् १९५७ मे मै ससद्-सदस्य हो गया। श्रीहनुमानप्रसादजी भी समय-समयपर दिल्ली आते-जाते रहते थे। अतएव उनसे अनेक वार मिलने, वातचीत करने और कुछ विषयोको लेकर चर्चा करनेका भी सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ। पूज्य काकाजीके विषयमे जव श्रीभाईजी कुछ कहते या कोई सस्मरण सुनाते, तव वे भाव-विभोर हो जाते थे। इससे उनके सरल एव स्वच्छ हृदयका परिचय मिलता है।

'सस्ता-साहित्य-मण्डल'की सस्थापनामे काकाजीका मुख्य हाथ था। वे उसके सस्थापकोमेसे थे। उनके प्रकाशन काकाजीकी इच्छाके अनुरूप सस्ते नही हो पाते थे और न उनका प्रचार-प्रसार ही। यह देखकर काकाजी 'कल्याण' और गीताप्रेसके प्रकाशनोका उदाहरण दिया करते थे।

दो-तीन वर्ष हुए होगे, सर्वोदयके प्रकाशन—खासकर पू० विनोवाके 'गीता-प्रवचन' तथा कुछ अन्य प्रकाशनोको लेकर श्रीभाईजीसे मै चर्चा कर रहा था। प्रकाशनके आदर्शोको लेकर श्रीभाईजीने वाइवलको प्रकाशित करनेवाली सस्थाका नाम लेकर कहा कि 'दुनियाकी सैकडो भाषाओमे वाइवल अनूदित हो गयी और हर साल अनेको नयी भाषाओमे अनूदित होती जा रही है। अनेक सस्करण होते हुए भी वे लाखो प्रतियोके सस्करण निकालते है। उनके भाषान्तर उत्तम होते है। छपाईमे एक भी गलती नही मिलेगी और उनसे अधिक सस्ता प्रकाशन दुनियामे दूसरा नही है।' इसी तरह उन्होने कहा कि 'आक्सफोर्ड डिक्शनरीवालोको भाषा, व्याकरण, अर्थ, उच्चारण आदि वहुत-सी दृष्टियोसे सम्पादन, सकलन और छपाई करनी पड़ती है। लेकिन उसमे एक भी गलती नही मिलेगी। यह कार्य लगन, निष्ठा, परिश्रम और एकाग्रताके विना नही हो सकता।' इसी तरहका कार्य भारतमे कोई कुछ कर पा रहा है तो उसमे गीताप्रेसका दृष्टान्त दिया जा सकता है कि उसके द्वारा प्रकाशित पुस्तके कितनी सस्ती है। कम-से-कम कीमत रखनेका जो आदर्श गीताप्रेसने रखा है, वह अनुकरणीय है। कुछ पुस्तकोकी कीमत २३ पैसे, २७ पैसे मात्र है। २३ का २५ पैसा किया जा सकता था तथा २७ का ३० पैसा, और उसमे कोई भी शिकायत नही कर सकता था। परतु कम-से-कम कीमत रखनेकी अपनी नीतिके अनुसार गीताप्रेसने आडे अङ्क भी मजूर किये। सस्ते प्रकाशनके लिये यह आदर्श सामने रखना जरूरी है।

गीताप्रेसके प्रकाशन जिस कोटिके है और जिस तरीकेसे उनका प्रचार हुआ है, वह कठोर साधना, लगन, अध्यवसाय और तपके विना सम्भव नही—यह स्पष्ट है। कुछ-कुछ

विषयोंमे हमारा मतभेद कितना ही क्यो न हो, भारतीय सस्कृति, धर्म, विचार एव आदर्शोको जिस श्रद्धासे उन्होंने रखनेका प्रयास किया है, उसके लिये स्वाभाविक ही हमे नतमस्तक होना पडता है और उनके प्रति आदर और प्रेम उमड़ता है।

श्रीभाईजीका जीवन सरल, स्वच्छ और स्पष्ट था। आडम्बर, वनावट, दिखावट, सूक्ष्मतम भी छल-कपट और असत्याचरण उन्हे छूतक न गया था। उनका शिष्य-समूह और भक्त-परिवार काफी वडा, विस्तृत और जगह-जगह विखरा हुआ है। जिस भावना, भक्ति और श्रद्धासे वाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष, छोटे-वडे—सभी उनके पास आते थे और जिस शान्ति और सतोषको लेकर कइयोको मैंने जाते देखा है, उससे यह समझना मुश्किल नही था कि भाईजीके व्यक्तित्व और विचारोका कितना मार्मिक असर लोगोपर होता था।

एक वार श्रीभाईजीसे वापूके सम्वन्धमे चर्चा होने लगी। चर्चामे उन्होने वापूजीके वारेमे जो भाव रखे, वे स्पष्ट एव निर्मल थे। बापूसे कुछ विचारोमे उनका मतभेद था, यह वात भी उन्होने सरल स्वाभाविक तरीकेसे मेरे सम्मुख रखी। सारी चर्चा सहज तरीकेसे हुई। उसमे कही लगाव-छिपावकी गन्धतक न थी। उसी चर्चाके दौरान वापूजीके प्रति उनके भावोको देखकर मैने उन्हे सुझाव दिया—'सेवाग्रामके ऊपर 'कल्याण'का एक विशेषाङ्क आप क्यो नही निकालते ?' उनको सुझाव वहुत अच्छा लगा। उन्होने कहा—'तुम्हारा तो सहयोग इस कार्यमे रहेगा ही और आश्रमके लोगोका सहयोग तुम हमे प्राप्त करा दोगे तो यह एक वहुत ही वडा कार्य हो जायगा।' शायद एकाध विशेषाङ्ककी योजना पहलेसे ही उनके सामने थी। उसके वाद इसको किस तरहसे किया जा सकता है, इसका विचार वे करेंगे—ऐसा उन्होने मुझको कहा।

इस चर्चाके वाद कई बार उनसे मिलना हुआ, पर इस विषयको लेकर कोई चर्चा उन्होने छेडी नही। मैने भी यह मानकर कुछ पूछा नही कि या तो वे भूल गये होगे अथवा उनके सामने कोई अडचन आ गयी होगी। इसलिये मै उनको किसी प्रकार सकोचमे डालना नही चाहता था। काफी अर्सेके वाद एक रोज बुलाकर उन्होने ही मुझसे कहा—'भैया, सेवाग्रामका विशेषाङ्क निकालनेका काम पार पडता दिखता नही।' ये उद्‌गार उनके मुखसे कुछ वेदनासे निकले तथा इनमे उनका कुछ असतोष भी व्यक्त था। मैंने कहा—'ऐसी क्या बात है, उसको भूल जाइये।' उनका दु:खके साथ यह जवाव मेरे हृदयको चीरकर निकल गया—'हम छोटे लोग है।' उनकी महानताका इसमे मुझे दर्शन हुआ और उनकी कुछ लाचारी है, यह भी जाहिर था। काफी देरतक हम दोनोके मुखसे शब्द नही निकला, दोनो ही शान्त रहे।

भाईजीके प्रति श्रद्धाञ्जलि यही हो सकती है कि जो अच्छा कार्य उन्होने जीवनभर किया, उसे उसी तरहसे प्रचार और विस्तारद्वारा आगे वढ़ाया जाय तथा हमारे व्यक्तिगत स्वार्थ, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेषकी वजहसे इस पुनीत कार्यमे कोई दखल नही होने पाये।

●

देखा एक बार, परखा बार-बार

श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी

भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारका परलोकगमन केवल धार्मिक ही नही, एक साहित्यिक तथा सास्कृतिक दुर्घटना भी है । यद्यपि मुझे उनके दर्शनका सौभाग्य केवल एक वार ही प्राप्त हुआ, तथापि उनसे पत्र-व्यवहार वहुत वर्षोसे चलता रहा और कई वार उन्होने मुझपर कृपा भी की ।

गोरखपुरके हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर साहित्य-सेवियोका एक दल उनका अतिथि हुआ था, जिसमे आचार्य प० पद्मसिह शर्मा, श्रद्धेय जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, श्रीगाङ्गेय नरोत्तम शास्त्री तथा श्रीलक्ष्मण नारायण गर्दे मुख्य थे । मै भी उन्ही लोगोके साथ था । उस समयकी कई मधुर स्मृतियाँ अव भी मेरे दिमागमे चक्कर काट रही है ।

एक घटना खास तौरपर याद आ रही है । हमारे शौच आदिसे निवृत्त होनेपर जो सज्जन हमारे हाथ धुलाते थे, वे अधेड उम्रके और स्वच्छ कपडे पहने थे । हम लोगोने सोचा, वे पोद्दारजीके कोई नौकर होगे, फिर भी मनमे आशङ्का अवश्य थी । प० पद्मसिहजीने उनके विषयमे पोद्दारजीसे पूछा तो उन्होने कहा—

'जो सज्जन आपके हाथ धुलाते है, वे तो भागलपुरके एक लखपती सेठ है । उन्होने सम्मेलनको आर्थिक सहायता तो दी ही, पर उनका आग्रह था कि वे साहित्यिक अतिथियोकी कुछ शारीरिक सेवा भी करे । अत मैने उन्हे भागलपुरसे वुलाकर यह काम सौप दिया है और इससे वे अत्यन्त प्रसन्न है ।'

यह जानकर हम सवको वडा आश्चर्य हुआ और साथ ही खेद भी कि ऐसे प्रतिष्ठित सज्जनसे हम यह काम लेते रहे । स्वर्गीय प० पद्मसिह इस घटनाको नही भूले और उन्होने एक पत्रमे मुझे लिखा था—'यदि हिंदी-जगत्मे कोई सास्कृतिक विद्यालय खोला जाय तो उसका आचार्य भागलपुरके सेठजीको वनाना चाहिये ।'

यह वतलानेकी आवश्यकता नही कि श्रीपोद्दारजीकी सूझ-वूझका यह उत्कृष्ट उदाहरण था ।

हमलोग जो पोद्दारजीके अतिथि थे, स्वभावत विभिन्न विचारोके थे । आपसमे किसी विपयपर काफी गरमागरम वहस हो गयी, पर पोद्दारजी सर्वथा मौन ही रहे । जव उनसे उस विपयपर वोलनेके लिये कहा गया, तव भी उन्होने केवल इतना ही निवेदन किया—'मैने यह नियम वना लिया है कि वाद-विवादमे कदापि नही पडूँगा ।'

यदि पोद्दारजी वाद-विवादमे पडते तो जो महान् सास्कृतिक तथा साहित्यिक कार्य उन्होने किये, वे उनसे कभी न वन पाते ।
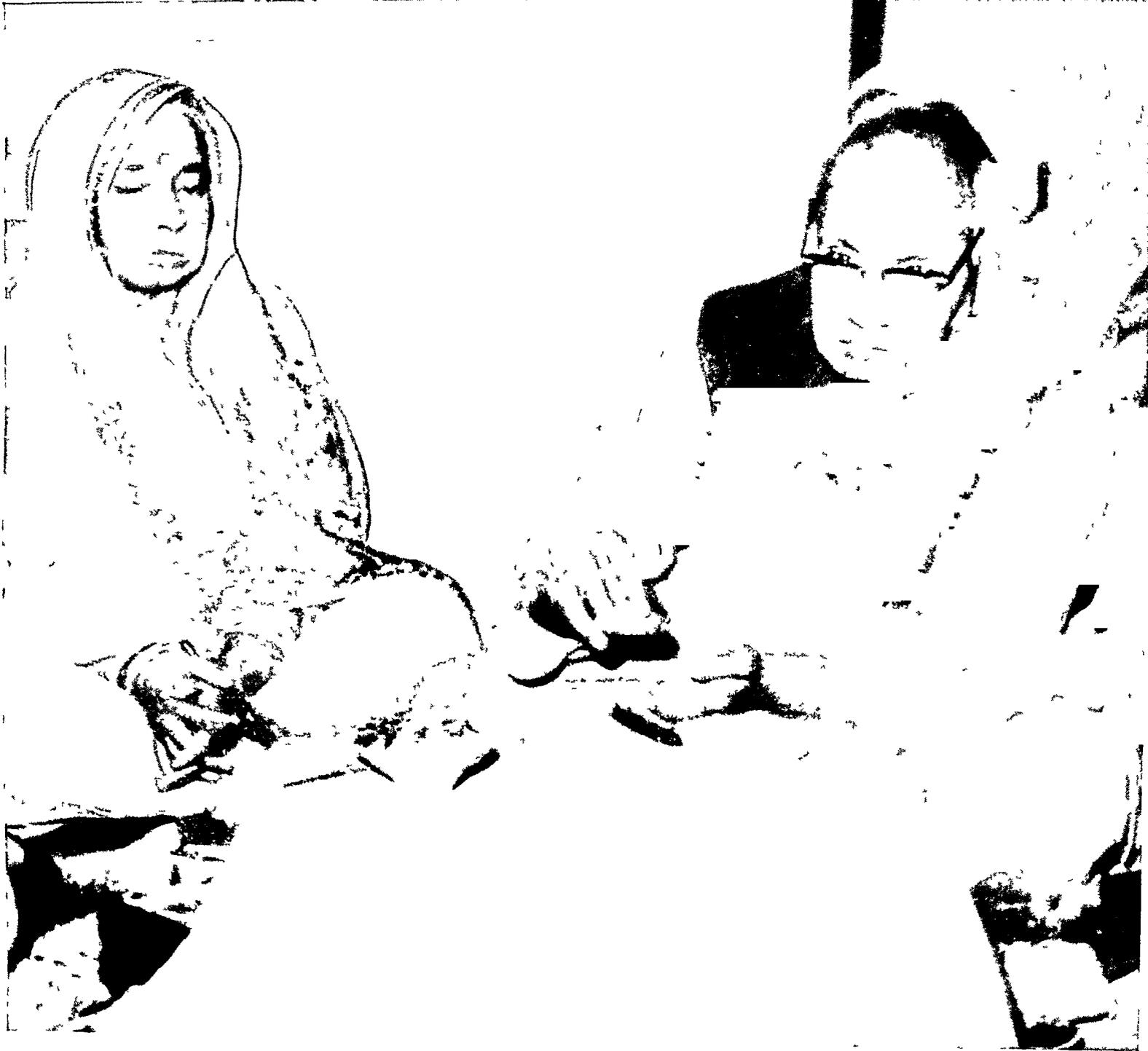
‘भागवत-भवन’ मथुराका शिलान्यास—भगवान श्रीकृष्णकी प्राकट्यस्थलीके समक्ष पूजन

श्रीकृष्ण जन्मभूमिके मन्दिरका उद्‌घाटन—पूजन
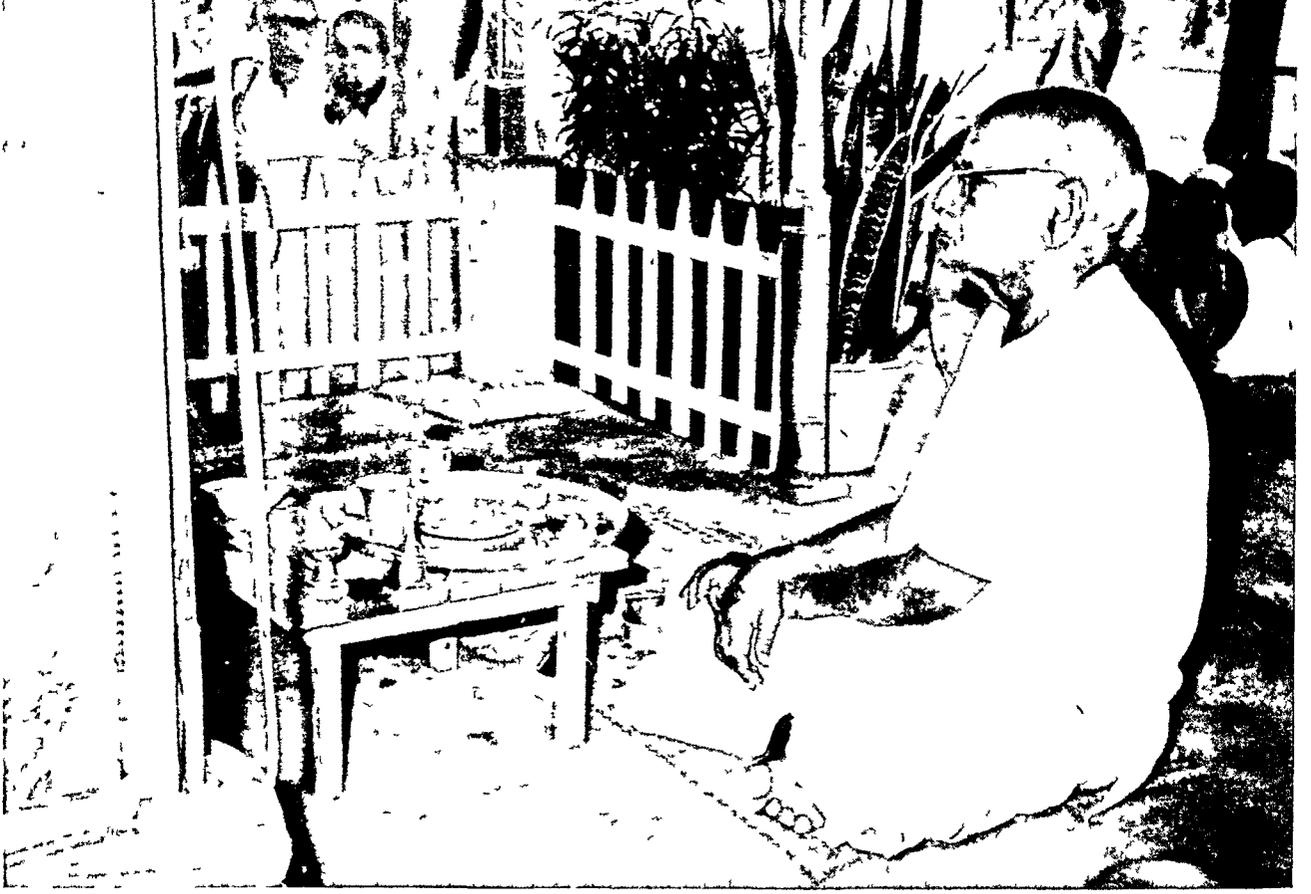
श्रीराधामाधव सेवा-
संस्थानके तत्त्वावधान में
सं० २०२५ से
गीतावाटिकामें चल रहे
अखंड-हरिनाम-
संकीर्तनकी स्थापना
करते हुए

पोद्दारजीकी दानशीलताके तीन उदाहरण मुझे इस समय याद आ रहे है। संस्कृतके एक पण्डितजी मेरे पास आये और उन्होने अपनी आर्थिक कठिनाईकी वात मुझसे कही। मैं उन दिनो 'विशाल भारत'का सम्पादन करता था। मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की, तो उन्होने कहा—'किसी साधन-सम्पन्न व्यक्तिको पत्र ही लिख दीजिये।' मुझे उस समय भाई पोद्दारजीका शुभ नाम याद आ गया और इस आशासे कि वे दस-बीस रुपये उन पण्डितजीको भेज देगे, उन्हे पत्र लिख दिया। मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जव उन पण्डितजीने यह समाचार मुझे सुनाया कि पोद्दारजीने पचहत्तर रुपये भेज दिये है। पोद्दारजीका वडा विनम्रतापूर्ण पत्र भी मुझे मिला, जिसका आशय यह था—'संस्कृतके पण्डित प्राय निर्धन होते है, उनका काम दस-बीस रुपयेसे नही चल सकता।'

हमारे एक पत्रकार-वन्धुके अनुज क्षयरोगसे पीडित हो गये। मैने फिर पोद्दारजीसे सहायता माँगी। उन्होने फिर पचहत्तर रुपये उन्हे भेज दिये, जव कि दूसरोने दस-दस, पाँच-पाँच ही भेजे थे।

दिल्लीमे जव मैने 'हिदी-भवन' खोला, तव पुन पोद्दारजीकी सेवामे निवेदन किया। उन्होने तुरत डेढ सौ रुपये भेज दिये। साथमे उन्होने एक पत्र भी लिखा, जिसका आशय यह था—'मै स्वयं पैसेवाला आदमी नही हूँ। ऐसे अवसरोपर अपने उदार मित्रोके कुछ रुपये उपयोगमे ले लिया करता हूँ।'

× × ×

एक बार शायद गीताप्रेसके कम्पोजीटरोमे कुछ असतोष फैल गया था और उसकी खवर गोरखपुरसे किसीने मुझे भेज दी थी। मुझे याद पड़ता है कि मैने 'विशाल भारत'मे प्रेसके मालिकोके विरुद्ध एक व्यङ्ग्यात्मक नोट लिख दिया था, पर श्रीपोद्दारजीने उसके लिये बिल्कुल बुरा नही माना। यह उनकी उदारता थी।

एक वार सेवाग्राममे मैने बावा राघवदासजीके सामने एक धृष्टतापूर्ण मजाक कर दिया। किसी विषयपर वाद-विवाद चल रहा था, शायद सत्साहित्यके प्रचार और अश्लील साहित्यकी रोक-थामपर।

बावा राघवदासजीने मुझसे पूछा—'यदि आपके हाथमे सत्ता हो तो आप क्या करेगे?'

मैने उत्तर दिया—'पहला काम तो मै यह करूँगा कि गीताप्रेसको जप्त कर लूँगा और उसके द्वारा अपने सत्साहित्य-सम्बन्धी विचारोका प्रचार करूँगा।'

वावाजीने हँसकर कहा—'गीताप्रेस तो प्रारम्भसे ही 'सत्साहित्य'का प्रचार कर रहा है। आप जानते ही होगे कि मेरा पोद्दारजीसे घनिष्ठ सम्वन्ध है।'

मैने कहा—'यह तो मै भलीभाँति जानता हूँ, पर ऐसा वढिया सगठित प्रेस हमे कहाँ मिल सकता है।'

वावाजी खूव हँसने लगे और बोले—'आपकी क्रान्तिकारी आयोजनाकी वात मै पोद्दारजीको सुनाऊँगा ।'

मालूम नही कि उन्होने मेरा वह मजाक उनतक पहुँचाया या नही, पर मै श्रद्धेय पोद्दारजीके उत्तरकी कल्पना कर सकता हूँ। वे यही कहते—'चीज तो दूसरोकी जप्त की जाती है। अपनी चीजको जप्त करनेका कुछ अर्थ ही नही । 'सत्साहित्य'के प्रचारके लिये 'कल्याण' एव गीताप्रेसके सव साधन सहर्ष प्रस्तुत है । कोई भी भलामानस उसका उपयोग कर सकता है ।'

मेरा वह मजाक निस्सदेह धृष्टतापूर्ण था, पर पोद्दारजीकी उदारतापर मुझे विश्वास था।

× × ×

एक वार मेरे एक मित्रने, जो अस्वस्थ थे, कहा कि मै पोद्दारजीको यदि पत्र लिख दूं तो वे हरिद्वारमे उनके ठहरनेका प्रवन्ध कर सकते है । मैंने पत्र भेज दिया और पोद्दारजीने सहर्ष वह प्रबन्ध कर दिया ।

स्वय मेरी भी यह अभिलाषा थी कि कभी गर्मियोमे ऋषिकेशमे उनके सत्सङ्गका लाभ प्राप्त करूँ, पर यह सौभाग्य मुझे नही मिल सका। मै उसे टालता ही रहा। गत वर्ष (स० २०२७) 'जन्माष्टमी'पर मै मथुरा इसी उद्देश्यसे गया था कि वहाॅ भाई पोद्दारजीके दर्शन अवश्य होगे, पर अस्वस्थताके कारण वे नही पहुँच सके । इस प्रकार गोरखपुरके प्रथम दर्शन ही अन्तिम दर्शन सिद्ध हुए ।

जो महत्त्वपूर्ण कार्य अकेले भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारने कर दिखाया, वह वडी-वडी सस्थाओसे भी नही वन पडा। वस्तुत वे स्वय एक महान् सस्था थे। धार्मिक जगत् तथा हिंदी-साहित्यके लिये उनकी देन अद्वितीय है ।

●

जीवनमे मेरे शक्ति तुम्हारी आई ।
जीवनमें मेरे शान्ति तुम्हारी छाई ।।
मिल गया मुझे जीवनमें तेज तुम्हारा ।
मेरे मस्तकपर हस्त-सरोज तुम्हारा ।।
है दिव्य प्रेमको मैंने तुमसे पाया ।
है हृदय तुम्हारा रूप अनूप समाया ।
तुम वसे हृदय निज गृहमें प्राण-पियारे ।
आनन्द-सूर्यमें मिटे द्वन्द्व-तम सारे ।।

—श्रीभाईजी

●

महान् आत्मा

श्रीसुमित्रानन्दन पन्त

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नताका अनुभव करता हूँ कि संतप्रवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी, जो उनके प्रेमियोमे 'श्रीभाईजी'के नामसे प्रख्यात है, पावन स्मृतिमे एक श्रद्धाञ्जलि-ग्रन्थ प्रकाशित होनेका आयोजन हो रहा है । यद्यपि मै उनके व्यक्तिगत सम्पर्कमे वहुत कम आ सका हूँ, पर उनकी उज्ज्वल कीर्तिकौमुदीसे कौन भारतीय सस्कृतिका प्रेमी एव अध्येता परिचित नही है ? मै भी उनके अनन्य प्रशसकोमे अपनेको मानता हूँ । भारतीय संस्कृतिके पुनरुत्थानमे श्रीपोद्दारजीका बहुत वड़ा हाथ रहा है । 'कल्याण'के सम्पादनद्वारा उन्होने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा तत्सम्बन्धी शास्त्र-ग्रन्थो, पुराणो आदिमे जो कुछ सनातन मूल्यवान्, श्रेष्ठ तथा वरेण्य था--उसका सहस्रों नर-नारियोमे प्रचार-प्रसार कर उन्हे नवीन आस्था, स्फूर्ति तथा भारतीय जीवन-आदर्शोके प्रति श्रद्धा एव दृढ निष्ठा प्रदान की । उन्होने इस युगमे भारतीय चेतनाके असीम अकूत समुद्रका पुन. मन्थन कर, उससे अनश्वर कान्तिके मणिरत्न निकालकर लोगोके हाथमे जिस संजीवनी सुधाका अक्षय पात्र रखा, वह उन्ही-जैसे महान् आत्माके अजेय पौरुषसे सम्भव था । गीताप्रेसके समस्त प्रकाशन जिस दिव्य आलोकसे सदैव मण्डित रहे है, वह श्रीपोद्दारजीकी ही सूझ-बूझ तथा अथक परीक्षण-निरीक्षणका परिणाम है ।

श्रीराधा-माधवपर उनकी अनन्य श्रद्धा-भक्ति थी, वे आज उन्हीके आनन्दलोकमे निवास करते होगे । उनकी पवित्र स्मृतिमे मै सादर प्रणत होकर उन्हे बार-बार प्रणाम करता हूँ ।

•

जो चाहो तुम, जैसे चाहो, करो वही तुम, उसी प्रकार ।
बरतो नित निर्बाध सदा तुम मुझको अपने मन-अनुसार ।।
मुझे नहीं हो कभी, किसी भी, तनिक दुःख-सुखका कुछ भान ।
सदा परम सुख मिले तुम्हारे मनकी सारी होती जान ।।
भला-बुरा सब भला सदा ही; जो तुम सोचो, करो विधान ।
वही उच्चतम, मधुर-मनोहर, हितकर परम तुम्हारा दान ।।
कभी न मनमे उठे, किसी भी भाँति, कहीं कैसी भी चाह ।
उठे कदाचित् तो प्रभु उसे न करना पूरी, कर परवाह ।।
प्यारे ! यही प्रार्थना मेरी, यही नित्य चरणोंमे माँग--
मिटे सभी 'मै-मेरा', बढ़ता रहे सतत अनन्य अनुराग ।।

--श्रीभाईजी

•

हिंदू धर्मके रक्षक

श्रीरायकृष्णदासजी

परमधाम-विहारी श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी पोद्दार एक महान् सस्था थे । उन्होने स्वस्थ हिंदू-धर्मकी रक्षा और समुन्नतिके लिये जो कुछ किया, वह अतुल्य है ।

मुझे इस वातका अत्यन्त खेद है कि मै उनके सम्पर्कमे एकाध बार ही आया, यद्यपि पत्राचार होता रहता था ।

वहुत वर्ष पहले काशीमे उन्होने मुझे दर्शन दिये थे । सयोगवश उस समय गुप्त-सम्राटोकी कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ विक्रीके लिये आयी थी, जिन्हे मै 'कला-भवन'के लिये खरीदना चाहता था । किंतु रुपये नही थे । मैने भाईजीसे कहा—'गुप्तयुग' भारतका स्वर्ण-युग है । इन सिक्कोको विदेश न जाने देना चाहिये ।' उन्होने अविलम्व रुपयोका प्रवन्ध कर दिया, यद्यपि यह उनके कार्यक्षेत्रके वाहरकी वात थी ।

उन्होने कृपापूर्वक मेरे लिये गीताके शाकरभाष्यका हिंदी अनुवाद भेजा । उसे पढनेपर मुझे ऐसा लगा कि भगवान् शकर ज्ञानमार्गी न थे, अपितु अद्वैतवादी भक्त थे । मैने यह वात उन्हे लिख भेजी । उत्तरमे उन्होने मेरा पूर्ण समर्थन किया ।

एक वार मैने उनको लिखा कि आपके पास विश्ववन्द्य वापूके जो पत्र है, उन्हे आप 'कला-भवन'को प्रदान कर दीजिये । उन्होने मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करते हुए लिखा कि 'अभी उन पत्रोके सम्वन्धमे कुछ लिखना है, उसके वाद 'कलाभवन'के लिये भेज दूँगा ।' खेद है कि फिर मैने उन्हे उसका स्मरण नही दिलाया ।

आज वे हमारे बीच नही है, किंतु उनका 'मिशन' हमारे सामने है । उसे उत्तरोत्तर आगे वढाते रहना प्रत्येक सनातनधर्मीका कर्तव्य है ।

●

भर गया मेरे हृदयमें नित्य दिव्य प्रकाश तेरा ।
मिट गया अगणित युगोंसे छा रहा था जो अँधेरा ।।
ज्योति तेरीसे समुज्ज्वल अव क्रिया सम्पूर्ण मेरी ।
कामना-आसक्ति भोगोकी कहीं मिलती न हेरी ।।
हो रही तव अर्चना हर कर्मसे प्रत्येक पल है ।
है चढ़ा शिव-चरण यह जीवन वना शुचि विल्वदल है ।।

—श्रीभाईजी

●

प्रकाश-स्तम्भ

डा० श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी

संसारमे बहुत थोड़े लोग ऐसे होते है, जिनका जीवन किसी महान् उद्देश्यके लिये समर्पित होता है। उनका जीवन औरोके लिये प्रकाश-स्तम्भ होता है। श्रीपोद्दारजी, जिन्हे लोग प्यार और श्रद्धासे 'भाईजी' कहते थे, ऐसे ही दुर्लभ नर-रत्न थे। उनका जीवन भगवदर्पित जीवन था। उनके कोमल हृदयके भीतर दृढ संकल्प-शक्ति थी, जो केवल उन्हीं लोगोको नसीव होती है, जो सम्पूर्ण रूपसे अपने-आपको महा-अज्ञातके चरणोमे अर्पित कर देते हैं। जो जितना देता है, उतना पाता है। जो अपने आपको ही दे देता है, वह अपने आपको ही पा जाता है। अपने आपको पानेका अर्थ है—सव कुछ पा जाता है। वह छोटे-मोटे लाभ-हानिका हिसाब नही रखता, जय-पराजयकी सीमाओसे अभिभूत नही होता, वह 'आत्मन्येवात्मना तुष्ट.' हो जाता है। श्रीपोद्दारजीने अपने आपको ही भगवच्चरणोमे अर्पित कर दिया था। यही उनकी सारी सफलताओंका रहस्य है। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपनी एक कवितामे कहा है—'तुम जिस समय पूर्ण हो जाते हो, उस समय तुम्हारा अपना कहा जाने योग्य कुछ भी नही रह जाता, सव कुछ निखिल विश्वका हो जाता है।'

पोद्दारजीने अकेले चुपचाप जितना किया है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। वे सच्चे वैष्णवजन थे। किसीसे कोई विवाद नही, किसीके प्रति कोई शिकायत नही, कोई अभिमान नही, को आक्रोश नही—'अमानिना मानदेन कीर्तनीय. सदा हरि.' के जीवन्त मूर्तरूप। उन्होने सर्वोत्तम साहित्यको सरल-ललित भाषामे—और वह भी यथासम्भव अवितथ और शुद्ध रूपमे लिखकर, लिखाकर प्रकाशित कराया। हिंदी भाषा इन ग्रन्थ-रत्नोसे बहुत समृद्ध हुई और उसके पाठकोका मन पवित्र हुआ है, विचार उद्बुद्ध हुआ है और ज्ञान-परिसर विस्तीर्ण हुआ है। पोद्दारजीका अद्भुत दान प्रच्छन्नरूपसे जन-मानसको निर्मल और सात्त्विक वनाता रहा है और भविष्यमे भी वनाता रहेगा। यह दान प्रकाशका दान है, ज्ञानका दान है। यह वह दान है, जो ग्रहीतामे दातृत्व-शक्तिको जगाता है।

पोद्दारजी अव मर्त्यकायामे नही है। परंतु उन्होने उत्तम साहित्य और उत्तम विचारोके प्रेमीमात्रके हृदयमे सदा-सर्वदाके लिये अपने आपको प्रतिष्ठित कर दिया है। वे सही अर्थोमें अमर हो गये है।

ऐसे महान् भक्त और अद्भुत साधकके पुण्यस्मरणसे मनमे पवित्रता आती है और हृदयमे गौरवका अनुभव होता है। महा-प्रेमिकतक पहुँचना तो कठिन जान पड़ता है, पर पोद्दारजी-जैसे अनन्य भक्तके माध्यमसे वह सुलभ हो जाता है।

●

परमभागवत श्रीपोद्दारजी

पं० श्रीश्रीनारायणजी चतुर्वेदी

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार इस युगकी एक महान् और आश्चर्यजनक विभूति थे। गाधीजी-ने नरसी मेहताके भजन 'वैष्णवजन तो तेने कहिये, जो पीड पराई जाणे रे' को देशमे वडा लोकप्रिय वना दिया था। उस भजनमें की गयी 'वैष्णव'की परिभाषा भाईजीपर पूरी बैठती है। उसकी प्रत्येक पङ्क्तिके वे जीवित उदाहरण थे। इसीलिये हम उन्हे 'परमभागवत'-के रूपमे अनुभव करते है।

पोद्दारजी उस रत्नके समान थे, जिसमे तराशकर अनेक पहलू वना दिये जाते है और जिसके प्रत्येक पहलूसे अपूर्व दीप्ति और आभा निकलती है। उनके जीवनका राजनीतिक पहलू था, समाजसेवा और परदु खकातरताका पहलू था, लोक-सग्रहका पहलू था, अपरिग्रहका पहलू था, जीवनके उच्च नैतिक आदर्शोका पहलू था, उच्च स्तरकी क्रिया-कुशलता, सगठन-शक्ति और कर्मठताका पहलू था, और भी कितने पहलू थे; किंतु वह रत्न जिस पदार्थका वना था, उसे व्यापक अर्थमे 'धर्म' कहा जा सकता है। इसी 'धर्म' और धार्मिकताके पदार्थका रत्न होनेके कारण उन पहलुओमे इतनी प्रखर आभा थी कि वह जौहरियो और सामान्य लोगोको समानरूपसे प्रभावित करती थी।

उनका क्रिया-कलाप इतना विस्तृत और वहुमुखी था कि उसके क्षेत्र-विस्तारको देखकर आश्चर्य होता था। उसका परिचय इस छोटे-से लेखमे देना सम्भव नही है। उसके लिये तो एक विशाल ग्रन्थकी आवश्यकता है और उसे भरसक पूर्ण वनानेके लिये उन असख्य व्यक्तियो-के सहयोगकी आवश्यकता है, जो उनके विशाल कार्यक्षेत्रके किसी अङ्गमे उनके सम्पर्कमे आये। कृतज्ञताकी यह मॉग है कि उनके अनुरूप एक विशाल स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय। 'कल्याण'का भी एक विशाल विशेषाङ्क उनकी श्रद्धाञ्जलिके रूपमे निकलना चाहिये, तभी लोगोको भाईजीकी वहुमुखी प्रतिभा, उनके अनेक क्षेत्रोके कार्यो और उनके मधुर, तपस्वी एव वैष्णव स्वरूपका परिचय मिल सकेगा।

उनके त्यागमय जीवनके दो विशेष प्रेरक लक्ष्य थे—जनतामे धार्मिक और नैतिक भावनाका पुन प्रतिष्ठापन तथा दु खी एव सतप्त लोगोकी सेवा। उनके विविध कार्योके प्रेरक-स्रोत इन्ही दो भावनाओमे पाये जायँगे। दुर्भिक्ष, वाढ, महामारी आदिसे पीडित लोगोकी सेवाके अनेक अभियान, 'कल्याण' तथा अन्य धार्मिक साहित्यका प्रकाशन एव अनेक धार्मिक समारोहो-के संयोजन—सभी उनके जीवनके इन दो महान् लक्ष्योकी पूर्तिके लिये थे और इस क्षेत्रमें उन्हे जो सफलता मिली, वह आश्चर्यजनक थी। 'कल्याण' हिंदीका सवसे अधिक प्रचारित मासिक पत्र है, जिसका प्रचार भारततक ही सीमित नही है। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित धार्मिक साहित्यने हिंदू-घरोमे अपना स्थान वना लिया है और उसने हिंदू-जनताकी धार्मिक आवश्य-

कताओकी पूर्ति करनेमे ही सहयोग नही दिया, प्रत्युत उसने उसकी अपने धर्मके प्रति आस्थाको दृढ करनेमे भी सहायता दी ।

वे अनन्य श्रीकृष्ण-भक्त थे और भगवान्‌का यह वाक्य उन्होने जीवनमे उतार लिया था—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

उनके सम्वन्धमे इससे अधिक और कुछ कहनेकी आवश्यकता नही है ।

भाईजीको हिदू बालकोको आरम्भसे ही अपने धर्म और संस्कृतिका परिचय और सस्कार देनेकी आवश्यकताका अनुभव होता था । एक वार उन्होने मुझसे हिदी भाषामे ऐसी रीडरोको तैयार करानेके सम्वन्धमे विचार-विमर्श किया था, जो इस उद्देश्यकी पूर्ति कर सके । किंतु उन दिनो हम सरकारी सेवामे थे और इतने व्यस्त थे कि इस कार्यके लिये इसके महत्त्वके अनुसार समय देनेमे असमर्थ थे । इसका हमे सदैव दुख रहेगा । इस घटनासे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कितने दूरदर्शी थे और उन्हे भावी संतानको हिदूधर्म और भारतीय सस्कृतिमे दीक्षित करनेकी कितनी उत्कण्ठा थी ।

भाईजीके समान विभूतियाँ यदा-कदा ही अवतरित होती है । पिछली शतीके अन्त और इस शतीके आरम्भमे इस देशमे अनेक क्षेत्रोमे अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए । भाईजी उनमेसे एक—और शायद अपने ढगके एकमात्र—महापुरुष थे । यह हमारा सौभाग्य था कि हमे उनके समकालीन होनेका गौरव प्राप्त हुआ । वे अपनी अक्षय कीर्ति एव अपने महान् और महत्त्वपूर्ण कार्य छोड़ गये है, जिनसे वे अमर रहेगे, किंतु उनके कार्योको आगे वढ़ाना उनके अनुयायियो और प्रशंसकोका गुरु उत्तरदायित्व है । भाईजीकी प्रेरणा और उदाहरण उन्हे अपने कर्त्तव्यका पालन करनेकी शक्ति दे ।

●

चाह तुम्हारी ही हो प्यारे ! नित्य निरन्तर मेरी चाह ।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी, नहीं किसीकी हो परवाह ॥
चलता रहूँ निरन्तर, प्यारे ! केवल एक तुम्हारी राह ।
बिगड़े-बने जगत्‌का कुछ भी, कहूँ निरन्तर 'प्यारे ! वाह' ॥

—श्रीभाईजी

●

स्नेहशील भाईजी

डा० श्रीराजबलीजी पाण्डेय

श्रीभाईजीका परलोक-गमन देशके लिये तो सार्वजनिक शोकका विषय है, परंतु हम लोगोंके लिये तो व्यक्तिगत महादुःख है। जीवनके प्रारम्भिक प्रस्थानमें उनका जो स्नेह हमें प्राप्त हुआ था, वह अपनी एक पवित्र सम्पत्ति है। उसका स्रोत लुप्त हो गया, इसकी कल्पना ही क्लेशदायिनी है। उनका पूर्ण साधनामय यशस्वी जीवन था। आधुनिक भारतके धार्मिक तथा सांस्कृतिक अभियानमें उनका सफल नेतृत्व था। वे निर्वाणके नहीं, कल्याणके प्रवर्तक थे। उनका सम्पूर्ण जीवन समर्पित था। भगवद्भक्ति तथा लोकमङ्गल उनका महामोक्ष था।

'कल्याण'के साथ पूज्य भाईजीकी स्मृति शरीरके साथ प्राण, बुद्धि तथा आत्माकी भाँति अभिन्नरूपसे जुड़ी हुई है। यह धारणा मेरे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभवोंपर आधारित है। मेरे अप्रत्यक्ष अनुभव भी मेरे मनके लिये तो प्रत्यक्ष हैं ही। मेरा पहला सम्पर्क १९३४ में भाईजीसे उस समय हुआ था, जब 'कल्याण'का सम्पादकीय कार्यालय गोरखनाथ-मन्दिरके पास एक पुराने बँगलेमें था। उसके चारों ओर वृक्ष, वनस्पतियाँ तथा वन्य दृश्य थे। पूरा वातावरण आरण्यक था। कार्यालय क्या था, वास्तवमें 'आश्रम' था। भाईजी उसके कुलपति थे। उनका स्नेह और सम्मान सभी सदस्योंको सहजरूपसे प्राप्त था। मैंने देखा, भाईजी पुरुष होनेके कारण 'भाईजी' कहलाते हैं किंतु उनका स्नेह तो माताका स्नेह है, जो अपना वात्सल्य बच्चोंपर बिना किसी प्रत्याशाके बरसाया करती है। मैं प्रथम दर्शनसे ही अभिषिक्त हो गया।

'कल्याण'के सम्पादकीय परिवारमें अपने रहने और कार्य करनेका सुखद संदर्भ अभीतक नहीं भूला है। मैं उसको आदरपूर्वक सँजोये हुए हूँ।

वहाँकी कार्यप्रणाली बड़ी अनोखी थी। मैं श्रीभाईजीके पास पहुँचा और कार्य करने लगा। आवेदन, नियुक्तिपत्र, वेतन आदिका कुछ पता नहीं। न मुझसे पूछा गया कि मैं क्या वेतन लूँगा और न मैंने पूछा कि क्या वेतन मिलेगा। भाईजीका आकर्षण था। वे ही अनुबन्ध थे। वहाँ पहुँचनेपर सम्पूर्ण 'योगक्षेम'की व्यवस्था थी—आवास, भोजन, वस्त्र, औषध आदि सभीकी। कार्यालय परिवार था, कार्य-पद्धति पारिवारिक। कार्यका संकेतमात्र था, आदेश भी नहीं। कार्य करनेका स्थान प्रायः निश्चित था, समय नहीं। अपनी सुविधा और रुचिसे कार्य-सम्पादन करना था। इसके अतिरिक्त नित्य संध्या-वन्दन, प्रार्थना, कथा, प्रवचन आदि चलते रहते थे। इनमें भाईजीकी उपस्थिति विशेष प्रेरणादायक थी। उनके प्रवचन भी बराबर होते थे। उनकी बोलनेकी शैली अनुभूतिपरक, सरस और हृदयग्राही थी। भावुकता, सद्भाव और स्नेहका वातावरण उनके चारों ओर तना-बुना था। लोगोंमें एक सहज विनयिता, परंतु साथ ही भक्तिसिक्त मादकता थी। भाईजी केन्द्र-बिन्दु थे।

१९३६ में गोरखपुर जिलेमें भयंकर बाढ़ आयी। बर्डघाटके आगेका बाँध बाढ़के वेगसे

टूट गया और उसके आसपासके बीसो गाँव जल-मग्न हो गये। उनके निवासी घोर संकटमे पड गये। उनको वहाँसे उबारने, आवास, भोजन, औषध आदिकी अनिवार्य आवश्यकता थी। शासनकी ओरसे व्यवस्था की गयी थी, किंतु वह पर्याप्त नही थी। भाईजीको इस स्थितिका पता था। भाईजी केवल भावभीने भक्त ही नही, जागरूक, सक्रिय तथा दृढ लोक-संग्रही भी थे। उन्होने गीताप्रेसकी ओरसे राहतकार्यका तुरत संगठन किया। जलप्लावनमे रात-दिन कार्य हुआ। लोग बाढसे निकालकर कूडाघाट छावनीमे लाये गये। वहाँ एक बडा राहत-शिबिर सगठित किया गया। तत्कालीन उत्तरप्रदेशके गवर्नरतक उस सहायता-कार्यको देखकर आश्चर्यचकित थे। सभी शिबिरके कार्योकी भूरि-भूरि प्रशसा करते थे।

उसी वर्ष काशी हिदू विश्वविद्यालयमे, 'प्राचीन भारतीय इतिहास एव सस्कृति' विभागमे सहायक प्रोफेसरके पदपर मेरी नियुक्ति हो गयी। मैंने श्रीभाईजीका आशीर्वाद लिया और काशी चला गया। 'कल्याण'-परिवारसे मै अलग हुआ, परंतु भाईजीके प्रति मेरा आदर-भाव और सम्मान कभी अलग नही हुआ। उनका अनुबन्ध नौकरीका नही, स्नेहका था। उनका स्नेह और मङ्गल-कामना अपने साथ लाया। वह सम्पत्ति आज भी मेरे मानस-कोषमे है। भाईजी व्यक्ति नहीं, संस्था और सत्य थे; उनकी स्मृति अमर रहेगी।

●

हिंदू-संस्कृतिके पुनरुद्धारक

श्रीधीरेन्द्रजी वर्मा

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे विशेष सम्पर्कमे आनेका मुझे अवसर नहीं मिला। यो उनसे एक-दो बार पत्र-व्यवहार हुआ था। एक बार गीताप्रेसमे जानेका सयोग भी हुआ था, किंतु उस समय वे वाहर गये थे। उनके कार्यसे, विशेषतया प्राचीन हिदू धार्मिक साहित्यके अनवरत प्रकाशनसे कौन नही परिचित है? एक प्रकारसे आधुनिक कालमे हिंदू-धर्म और सस्कृतिके पुनरुद्धारका श्रेय दो व्यक्तियोको प्रधानतया है—विरला-बन्धु और श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार। विरला-बन्धुओद्वारा निर्मित सुन्दर और विशाल मन्दिरोने हिंदू-जनताके सामने प्राचीन महापुरुषोकी स्मृतिको प्रत्यक्षरूपमे उपस्थित किया तथा पोद्दारजीकी प्रबन्ध-कुशलताके फलस्वरूप 'गीताप्रेस'से लाखोकी सख्यामे प्रकाशित और वितरित धार्मिक साहित्यने हिंदू-सस्कृतिका संदेश घर-घर पहुँचाया। यह सच है कि इसकी मूल प्रेरणा महामना प० मदनमोहन मालवीयजीने दी थी, किंतु उसको कार्यान्वित विरला और पोद्दार—इन दो कर्मठ व्यक्तियोने किया।

●

मानवमात्रके भाई

पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र

सृष्टिके आरम्भसे ही देवासुर-सग्राम चलता आ रहा है, आज भी चल रहा है और आगे भी चलता रहेगा। यह समस्त विश्वमे ही नही, प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमे सदा ही चलता रहता है। कभी किसी पक्षकी विजय होती है तो कभी किसीकी। जव कभी समस्त विश्व अधर्म-से आक्रान्त हो जाता है, तव स्वय भगवान् अवतार लेते है। श्रीमद्भगवद्गीतामे उन्होने इसे स्पष्ट शब्दोमे घोषित किया है। साधारण स्थितिमे वे वडे-वडे ऋषियो, मुनियो, साधु-सतोको धर्मसेवाकी प्रेरणा देते रहते है, जिससे मानवका वहुत कुछ कल्याण होता है। ऐसी ही प्रेरणा एक मारवाडी युवकके हृदयमे हुई, जो एक राजनीतिक क्रान्तिकारी था। उसने अनुभव किया कि राजनीतिक क्रान्तियोमे क्या रखा है। राजनीति तो वरावर वदलती रहती है—'वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा'। यह सोचकर उसने निर्णय किया कि मानव-हृदयमे ऐसी क्रान्ति करनी चाहिये कि वह आसुरी प्रवृत्तियोसे ऊपर उठकर प्राणिमात्रकी सेवामे जीवन विताये। यह युवक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार थे। उन्होने 'हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान'की सेवाका व्रत लेकर गोरखपुर-से मासिक 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ किया। वे 'भाईजी'के नामसे प्रसिद्ध थे और सचमुच थे भी मानवमात्रके भाई। रहन-सहन और स्वभावसे वे सीधे-सादे, पर विचारोमे गम्भीर थे। 'कल्याण'द्वारा उन्होने जो मानव-सेवा की है, उसे भुलाया नही जा सकता। उनके ओजस्वी लेखोद्वारा कितने ही पाठकोका कल्याण हुआ। धर्म, देश और हिंदी—इन तीनोकी उन्होने महती सेवा की। देशमे आज 'कल्याण'का जितना प्रचार है, उतना देशी भाषाओकी अन्य किसी पत्रिकाओका नही। उनकी प्रतिभा वहुमुखी थी। जनताका नैतिक स्तर उच्च वनानेके लिये उन्होने जो प्रयत्न किया, उसमे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली।

भगवान् श्रीकृष्णके दरवारमे पहुँचनेकी कठिनाईका अनुभव करके उन्होने वृषभानुनन्दिनी, नित्यनिकुञ्जेश्वरी श्रीराधारानीकी शरण ली, जिसके पैरोको स्वय भगवान् श्रीकृष्ण पलोटते रहते है। पिताकी अपेक्षा माताका स्नेह प्राप्त करना कही अधिक सुगम है। इसीलिये उन्होने श्रीराधारानीको अपनी अधिष्ठात्री देवी वनाया। वे उनके ध्यानमे सदा तल्लीन रहते और श्रीराधाष्टमी-महोत्सव वडे उल्लाससे मनाया करते थे।

लगभग २५ वर्षोसे मेरा उनसे परिचय रहा। वे जव कभी वाराणसी आते, तव मुझसे अवश्य मिलते थे। उस समय अनेक विषयोपर हम दोनोमे विचार-विनिमय होता रहता था। इधर एक विषयपर विचार चल रहा था। मैने उनसे कहा कि "यह वडे खेदकी वात है कि भगवान् श्रीकृष्णकी कोई प्रामाणिक जीवनी हिंदी या अग्रेजीमे नही है। विदेशी विद्वान् प्राय पूछा करते है। उत्तरमे चुप रहना पडता है। श्रीकृष्णके सम्वन्धमे केवल विदेशोमे ही नही, स्वदेशमे भी अनेक प्रकारके भ्रम फैले हुए है। यद्यपि 'कल्याण'के 'श्रीकृष्णाङ्क'मे श्रीकृष्णके सम्वन्धमे वहुत कुछ लिखा गया है, वह जीवनीकी शैलीमे न क्रमवद्ध है और न पुस्तकरूपमे।

इसलिये पुस्तकरूपमे उनकी प्रामाणिक जीवनीका होना बहुत आवश्यक है ।" भाईजीने भी इसे स्वीकार किया था और इसके लिये प्रयत्न करनेका भी वचन दिया था। पर उसे पूरा करनेके पहले ही वे हमलोगोको छोडकर चल दिये। यह कार्य गीताप्रेस ही सुगमतापूर्वक कर सकता है।

उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके न रहनेसे जो स्थान रिक्त हुआ, उसकी पूर्ति होना सम्भव नही दीख पड़ता। श्रीभाईजी जो कार्य कर रहे थे, उसे बरावर चालू रखना और उसमे उत्तरोत्तर वृद्धि करना ही भाईजीके प्रति हमलोगोकी सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी ।

●

भारतीय महाप्राण

डा० (सेठ) श्रीगोविन्ददासजी

भारतीय सस्कृतिके सनातन प्रवाहमे जो नि स्पृह सत और जीवन्मुक्त मनीषी हुए है, उन्हीकी शृङ्खलामे मै भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके जीवनको देखता हूँ। वे गृहस्थ थे, ससारमे रहे, किंतु उनका सारा जीवन, उनके विचार, कर्तव्य और आदर्श एक ऐसे जीवन्मुक्त सतके रहे है, जिसने अपने सर्वस्वको—अपने-आपको इस भगवत्-सृष्टिरूपी भगवान्मे सर्वथा लीन और विलीन कर दिया था और जिसका निजका कोई कर्तव्य और व्यक्तित्व नही रहा। वे मनुष्य मात्रकी सर्वाङ्गीण सेवामे अपने जीवनको होमकर मृत्युजयी बन गये है। यद्यपि पार्थिवरूपसे वे आज नही है, फिर भी उनके कार्य और कार्य-प्रवृत्तिकी वह परम्परा, जो उन्होने अपने जीवन एव पुरुषार्थसे कायम की, आज भी विद्यमान है और आगे आनेवाली अनेक पीढ़ियोतक उसका प्रवाह चलता रहेगा ।

श्रीपोद्दारजीका जीवन न केवल आत्म-कल्याणका ही, अपितु मानवमात्रके कल्याणका साधन है। वे सन्यासीकी साधना, उसकी मर्यादा, गुण-गरिमा और व्रत-नेम-धर्मसे सम्पन्न और समृद्ध होते हुए सन्यासीकी भॉति केवल आत्म-कल्याणके आकाङ्क्षी न होकर लोक-कल्याणके साधक और साधन बन गये थे। दूसरे शब्दोमे वे भारतीय धर्मके—भक्ति-मार्गके एक ऐसे भक्त-सन्यासी पथिक थे, जिसके भगवद्भक्तिनिष्ठ एव भक्तिरसपूर्ण कार्योसे भक्ति-पथ और सम्प्रदायका प्रवर्त्तन होता है।

श्रीपोद्दारजीसे मेरा लगभग पचास वर्षका सम्बन्ध रहा है। अनेक ऐसे अवसर आये, जब मैने उन्हे अत्यन्त निकटसे देखा। आध्यात्मिक-सास्कृतिक कार्योमे रुचि रखनेवाला एव गो-सेवा-व्रती होनेके नाते मेरे लिये जब भी इस तरहके प्रसङ्ग आते, उनके साथ मेरा सम्पर्क और निकटता बढ जाते। उनके इस सम्पर्क और निकटताके क्षणोमे मैने सदा ही यह अनुभव किया कि वे भारतीय सस्कृतिके उन्नायक उन भद्रपुरुषोमे है, जिनके विचार, वाणी और हर कृतिसे भारतीयताकी अमिट छाप मनपर पड़ती है। उनकी विनम्रता, उनका मृदु व्यवहार, परायोके प्रति भी आत्मीयताका भाव और सभीके साथ सहज सौजन्य—ये कुछ ऐसे विलक्षण गुण थे, जो उनके सम्पर्कमे आनेवालेको मुग्ध किये विना नही रहते थे। मै पचास वर्षसे भी अधिक समयसे सार्वजनिक क्षेत्रमे हूँ। जीवनके सभी क्षेत्रोके सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं

और जन-सेवियोसे—जिन्हे प्रमुख माना जा सकता है—मेरा सम्पर्क रहा है। अनेकोमे मैने अनेको प्रकारकी विशेषताएँ देखी है, उनके प्रसाद-गुणोसे भी प्रभावित हुआ हूँ, किंतु भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमे जो प्रासादिक गुण मौजूद थे, वैसे अन्य किसी व्यक्तिमे मुझे देखनेको नही मिले। उनका व्यक्तित्व सर्वाङ्गीण था। वे धर्मशास्त्रोके ज्ञाता, धर्मके मर्मज्ञ और उद्भट विद्वान् थे। इसीके साथ उनका समूचा जीवन एक साधककी भाँति बीता। वे भक्तिमार्गके अनुयायी थे, श्रीराधा उनकी परम आराध्या थी और योगिराज श्रीकृष्ण उनके ज्ञान और कर्मके प्रेरक। इस प्रकार वे भक्ति, ज्ञान और कर्मके समुच्चय थे।

भारत-जैसे धर्मप्राण और कृषि-प्रधान देशमे गोहत्या एक राष्ट्रीय समस्या है। श्रीभाईजी गोहत्याको धर्मकी दृष्टिसे एक पाप मानते थे। गोहत्या-बदीके प्रयत्नोमे उनका सदा प्रथम श्रेणी-का योग-दान रहता था। इतना ही नही, वहुत अर्थोमे वे गोहत्या-बदी आन्दोलनके एक प्रधान सूत्रधार थे। सन् १९४५ मे उन्होने 'कल्याण'का 'गो-अङ्क' प्रकाशितकर गो-सरक्षण और गो-सवर्धनके सम्बन्धमे प्रचुर साहित्य और दुर्लभ जानकारी देशको प्रदान की। 'कल्याण'का यह 'गो-अङ्क' न केवल गो-भक्तो, अपितु गो-सवर्धनके क्षेत्रमे कार्य करनेवाले सरकारी और गैर-सरकारी विशेषज्ञोके लिये एक स्थायी 'ज्ञान-कोष' वन गया है।

श्रीपोद्दारजी भक्तिमार्गी थे और एक भक्त-हृदयके धनी होनेके नाते वे समस्त सृष्टिको भगवान्का ही स्वरूप—उनकी ही छवि-छटा मानकर उसकी सेवा करते थे। भक्तके जिन गुणो और कर्त्तव्योका वर्णन हमारे धर्मग्रन्थोमे मिलता है, पोद्दारजी उसके मूर्तिमन्त रूप थे, जिन्होने गुणोको अपने व्यक्तित्वमे मूर्तिमान् किया था और कर्त्तव्योको अपने कार्योद्वारा आचरणमे उतारा था। यही हेतु है कि वे अतिशय विनम्र, निश्छल, निरभिमान, अकिचन और एक 'निमित्त' वनकर इस भगवद्रूप सृष्टिकी सेवामे अपनेको समर्पितकर अपने इष्ट भगवान्की इतनी सेवा कर सके।

श्रीभाईजी मानवतावादी थे। उनके विचारोमे भारतीय धर्म ही नही, विश्व-धर्म और सस्कृतिकी व्यापकता थी। वे दीन-दु खियोके प्रति सदा सहज उदारता और करुणाका भाव रखते थे। उनकी इस करुणा और उदारताके अगणित उदाहरण उनके जीवनमे हमे मिलते है। वे व्यवहारमे अत्यधिक विनम्र, स्वभावमे मृदु और सहज सौजन्यकी मूर्ति थे। उनका हर आचरण हमारी सत-परम्पराका उदाहरण वन गया। वे धर्मशास्त्रोके ज्ञाता, भाषा-साहित्यके मर्मज्ञ और मूर्धन्य विद्वान् थे। जीवनकी इन उपलब्धियोके वावजूद उनका जीवन वडी सादगीसे बीता और जीवनपर्यन्त उन्होने एक साधककी भाँति अपना एक-एक पल लोकोपकारके कार्योमे व्यतीत किया।

श्रीभाईजीका समस्त जीवन एक कर्मयोगीकी भाँति वीता। वे जीवनभर कर्ममे रत रहे, पर एक क्षणके लिये भी उसमे आसक्त नही हुए। उनकी दिनचर्यामे जहाँ एक ओर गीताप्रेस-के प्रमुख प्रकाशनो एव 'कल्याण'का सम्पादन, धर्म-ग्रन्थोका स्वाध्याय एव अनुशीलन, सत्सङ्ग और भगवत्सम्वन्धी प्रवचन आदि रहते थे, वही वे जगत्को तथा जगत्-व्यापारको सर्वथा विस्मरणकर भाव-समाधिमे लीन हो जाते थे। इस प्रकार वे नित्य नियमसे देह-धर्मका निर्वाह करते हुए भी उसके कर्म-फलसे सदा मुक्त रहे। वे आत्मप्रगसाके विरोधी और आत्मगोपी

चरित्रके मूर्तिमान् स्वरूप थे। जीवनके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग वे दूसरोके हित-सम्पादनरूप भगवत्सेवामे करते रहे। यही हेतु है कि 'कल्याण' और गीताप्रेसके माध्यमसे लगभग पचास वर्षतक भारतीय धर्म, सस्कृति, भाषा और साहित्यकी इतनी विपुल और वहुमुखी सेवाएँ वे सदा मूकभावसे करते रहे। प्रचार और प्रदर्शनके इस जमानेमे भाईजीका भारतीय धर्म, सस्कृति, भाषा और साहित्यके अभ्युत्थानमे यह योग-दान सर्वथा अनूठा है।

यह श्रीभाईजीकी साधनाका ही फल है कि 'कल्याण' मातृभूमिके आँचलमे फैले सुदूरवर्ती गाँवो और नगरोमे रहनेवाली जनताकी धार्मिक श्रद्धा, आस्था और भगवद्भक्ति-पथकी साधनाका एक अवलम्व वन चुका है। देशके ग्रामीण क्षेत्रमे वसनेवाला—आजकी परिभाषामे अशिक्षित माना जानेवाला किसान और नगरके कोलाहलपूर्ण जीवनमे रहनेवाला प्रबुद्ध नागरिक 'कल्याण'के माध्यमसे अपनी ईश्वरनिष्ठा और भगवद्भक्तिके लिये वल, प्रेरणा और स्फूर्ति ग्रहण करते हैं। पोद्दारजीके भक्तहृदयकी अनुभूतियो तथा भगवान्के स्वरूप और उनके अनुग्रहकी विविध झाँकियोसे अलकृत 'कल्याण'के इस योग-दानको शब्दोमे नहीं सराहा जा सकता। वह तो देशकी धार्मिक जागृति और उसके अन्त करणका एक मर्म-बिन्दु बन चुका है, जिसके माध्यमसे भक्तिरसकी सरिता प्रवाहित होती है और उसके मूल उद्गमपर पोद्दारजीका नाम और उनका साधनामय व्यक्तित्व बैठा है। श्रीपोद्दारजीने जीवनभर 'कल्याण'का सम्पादन ही किया हो, यह वात नही, वह तो उनकी अन्त.प्रवृत्तिकी प्रतिक्रिया है, उसका परिणाम है, उसकी अभिव्यक्ति है। इसके अलावा उन्होने आजीवन गीताप्रेस और उसके विविध धर्मग्रन्थोके प्रकाशनोद्वारा तथा देशके विभिन्न स्थानोमे भ्रमण करके एव तीर्थस्थलोमे जा-जाकर धर्मजागरणका जो महान् कार्य किया है, उसका हिसाव-किताव और मूल्याङ्कन करना कठिन है। अपनी लेखनी और वाणी—दोनो ही माध्यमोसे उन्होने भक्तिमार्ग और आस्तिक जगत्की जो सेवा की है, वह उनके चमत्कारी व्यक्तित्वकी एक अनूठी निधि है। जिन्होने पोद्दारजीका साहित्य पढा है, प्रवचनोमे उनकी अमृतवाणी सुनी है, वे उनके इस चमत्कारी गुणसे परिचित हैं। पोद्दारजीके पचास वर्षके कर्मठ जीवनने धार्मिक, आध्यात्मिक और सास्कृतिक जगत्को इतना वल दिया है कि उसपर न केवल हम, अपितु हमारी पिछली और अगली पचास पीढियाँ भी गर्व और गौरव अनुभव कर सकती हैं।

स्वामी विवेकानन्दने एक वार किसीसे पूछा—'क्या तुम मनुष्य हो?' विवेकानन्दके इस प्रश्नका तात्पर्य स्पष्ट है। प्रत्येक मनुष्यको यह प्रश्न अपने आपसे करना चाहिये और आत्माके तलसे जवतक इसका उत्तर 'हाँ'मे नही मिल जाय, मनुष्य वननेका प्रयत्न सतत करते रहना चाहिये। इसी प्रकार भाईजीने अपने मूक चरित्रद्वारा हम लोगोसे सतत पूछा है—'क्या तुम भारतीय हो?' उनका चरित्रप्रधान यह प्रश्न हमे अपने आपसे पूछना है। यदि हम उनके इस प्रश्नका अपने मन, वचन और कर्मसे समाधान कर सके, अपने आपको 'भारतीय' कहलानेयोग्य वना सके तो उस भारतीय महाप्राणके, जिसने भारतीय संस्कृतिके कण-कण और रेशे-रेशेको अपने जीवनमे चरितार्थ किया, अनुयायी कहलानेयोग्य वन सकेंगे और यही हमारी उस दिव्यात्माके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

उदात्त आदर्शोंके अवतार

विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेव शास्त्री

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार वास्तवमे भारतीय सस्कृतिके उदात्त आदर्शोके अवतार थे ।

मै वर्षोसे भारतीय सस्कृतिके विकासकी दृष्टिसे उसकी विभिन्न धाराओका अध्ययन कर रहा हूँ । उन विभिन्न धाराओने अपने-अपने दृष्टिकोणसे मानवजीवनके उदात्त आदर्शोका जो उत्कृष्ट निरूपण किया है, वह ससारभरमे अद्भुत है । वास्तवमे वह हम भारतवर्ष-वासियोके लिये महान् गर्व और गौरवकी वस्तु है । परतु जव भी उन उदात्त आदर्शोको जीवनमे उतारनेके प्रश्नपर हम विचार करने लगते है, तव वहुत ही थोडे अपवादोको छोडकर प्राय निराशा ही हमारे हाथ लगती है । निराशा-ही-निराशा हमे सर्वत्र दिखायी देती है । उस समय हमे श्रुतिका यह गम्भीर उद्घोष सुनायी देता है—

'सत्यं वै देवाः अनृतं मनुष्याः ।'

उक्त उद्घोषका अभिप्राय यही है कि महान् पुरुषोद्वारा मार्गप्रदर्शन प्राप्त करनेपर भी, मनुष्य अपनी दुर्वलताओ और निम्नप्रवृत्तियोके कारण अपने आदर्शोसे जाने-अनजाने प्राय पथभ्रष्ट हो ही जाता है ।

यह किससे छिपा है कि जीवनके आदर्शो और आचरणके पारस्परिक द्वन्द्वका यह घोर सकट आजके युगमे अपनी चरम सीमातक पहुँचा हुआ है । राष्ट्रके किसी भी आन्दोलनको लीजिये, यह हृदय-विदारक दृश्य आपको प्राय सर्वत्र दिखायी देगा ।

देशव्यापी उक्त महान् सकटकी खेदजनक परिस्थितिमे भाई श्रीपोद्दारजीको भारतीय सस्कृतिके उदात्त आदर्शोका अवतार कहना सर्वथा उपयुक्त है ।

भारतीय सस्कृतिके जिन महान् आदर्शोकी पुन सस्थापनाके लिये उन्होने असाधारण त्याग और तपस्याका जीवन व्यतीत करते हुए 'कल्याण' एव गीताप्रेसके प्रकाशनोको प्रस्तुत किया है, उन्ही आदर्शोको उन्होने प्राणपणसे अपने जीवनमे उतारा भी है। कथनी और करनीकी ऐसी एकरूपताको ही किसी भी सस्थाकी वास्तविक देन कहा जा सकता है ।

भगवद्गीताको गीताप्रेसकी आधार-शिला कहा जा सकता है। गीतामे भगवान्ने कहा है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकार· समदु·खसुखः क्षमी ॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥
(गीता १२ । १३—१५)

श्रीपोद्दारजीकी जीवनचर्या इन्ही उदात्त आदर्शोसे ओत-प्रोत थी। इसीलिये भगवान्के वे प्रिय थे और भगवान् उनके प्यारे थे । जनता-जनार्दनकी नि स्वार्थ सेवामे ही वे भगवान्का दर्शन और भजन करते थे ।

आधुनिक जगत्की भौतिकता-प्रधान एव उद्वेगजनक तथाकथित सभ्यताके आवेगके साम्मुख्यमे मानव-शान्तिके एकमात्र स्रोत आध्यात्मिकताके जीवन-प्रद सदेशको धार्मिक साहित्यके प्रचार और प्रसारके द्वारा घर-घरमे पहुँचानेका गीताप्रेस एव 'कल्याण'ने जो महान् कार्य किया है, वह सर्वथा अद्भुत है ।

आज जब पाशविक प्रवृत्तियोके भयावह प्रवाहका सकट चारो ओर उपस्थित है, भारतीय सस्कृतिकी चिरतन आध्यात्मिकता ही शरण्यस्थली है । गीताप्रेस एव 'कल्याण'द्वारा यही हो रहा है । इसीसे इनका महत्त्व प्रत्यक्ष है ।

आधुनिक जगत्के प्रलयकर जलप्लावनमे ऐसी सस्थाएँ ही मनुकी नौकाके रूपमे मानवकी रक्षा कर सकती है—ऐसी हमारी धारणा है । यही श्रीपोद्दारजीके जीवन-यज्ञकी एकमात्र लगन थी । वे चाहते थे कि भारतीय सस्कृतिके आध्यात्मिकता-प्रधान आदर्शोको अन्धश्रद्धा, सकीर्णबुद्धि और स्वार्थलिप्साकी मूढ प्रवृत्तियोसे बचाते हुए विवेक और उदारताकी दृष्टिके साथ-साथ जनताके सामने रखा जाय ।

इसी महान् उद्देश्यके लिये उन्होने अपने जीवनको न्योछावर कर रखा था और इसी यज्ञकी पूर्तिके लिये उन्होने अपने जीवनकी पूर्णाहुति दी ।

वास्तवमे सच्चा पुरुषमेधयज्ञ इसीको कहते है ।

●

जीवनको संगीत बना दो ।
मेरी हृत्तन्त्रीके तारोसे सबको मधु तान सुना दो ।।
मेरे जीवनके मधुरससे सबके जीवनको सरसा दो ।
मेरी हँसी सुख-भरीसे तुम सबको हे ! दुखमध्य हँसा दो ।।
सबके दुखमें मेरे सुखको धन्य बनाकर नाथ ! मिला दो ।
निज पद-कमल-सुधा-रस-सरिता-तटपर सबको स्थान दिला दो ।।
—श्रीभाईजी

●

अध्यात्म-विभूति

डा० श्रीबलदेवजी उपाध्याय

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार तथा 'कल्याण'के प्रथम परिचयकी तिथि तो मुझे याद नही है, परतु जिन परिस्थितियोमे यह पावन परिचय सम्पन्न हुआ, उनकी स्मृति मानसपटलपर आज भी धूमिल नही हुई है। गीतावाटिकामे विधिवत् सम्पादित 'नाम-कीर्तन'के वार्षिक समापनोत्सवके अवसरपर कीर्तन-मण्डलीका नेतृत्व करते हुए भाईजीको मैने पहली बार देखा।

'भगवन्नामाङ्क' नामक विशेपाङ्कके द्वारा ही 'कल्याण'का प्रथम दर्शन मुझे हुआ। पोद्दारजी तथा 'कल्याण'मे परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध था। उनकी विशुद्ध सात्विक भावनाका सद्य प्रतिविम्व तथा प्रतीक ही तो है 'कल्याण'। 'कल्याण'के सम्पादनमे, उसे सनातनधर्मका प्रामाणिक सिद्धान्त-प्रचारक रूप देनेमे पोद्दारजीने जो अश्रान्त परिश्रम किया, वह 'कल्याण'के पाठकोको सर्वथा विदित है। 'कल्याण'के विशेषाङ्क तो वास्तवमे तत्तत् विषयोके विश्वकोश ही है, जिनका कलेवर भारतके मान्य विद्वानो तथा विपश्चितोसे सुचिन्तित लेख लिखवाकर सुसज्जित किया जाता है। 'गीताङ्क' 'शिवाङ्क' 'शक्ति-अङ्क' आदि विश्ववन्द्य विशेषाङ्कोके प्रकाशनकी योजना तथा निष्पत्ति पोद्दारजीकी ही सूझ थी। इस प्रकार अकेले 'कल्याण'के इन महनीय विशेपाङ्कोका सम्पादन ही धार्मिक तथा साहित्यिक ससारमे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम अमर बनानेके लिये पर्याप्त है।

पोद्दारजीके लिये 'भाईजी'-जैसा रसस्निग्ध अभिधान उनके सहज स्नेह, अकृत्रिम प्रेम तथा सार्वजनीन सहानुभूतिका आशिक परिचायक है। उनके स्नेहकी परिधि सीमित नही थी, उनके प्रेमका पारावार किसी भी प्रकारके वन्धनसे जकडा नही था। उनकी सहानुभूतिमे कृत्रिमताकी गन्ध न थी। उनके लिये जगत्का प्रत्येक प्राणी भगवान् सच्चिदानन्दघनका जीवित प्रतीक था, जिसकी सेवा—मनसा-वाचा-कर्मणा सपर्या—उनके जीवनका प्रधान लक्ष्य था। भाईजीकी शास्त्रोमे अच्छी पैठ ही नही थी, प्रत्युत शास्त्रोमे पूर्ण आस्था भी थी। उनका सतुलित जीवन कथनी तथा करनीके मञ्जुल सामञ्जस्यपर आधारित था। सस्कृतके परि-निष्ठित ज्ञानके द्वारा वे शास्त्रोके मर्म समझनेमे सर्वथा कृतकार्य होते थे तथा विद्वानोके समागमका भी वे पूर्ण लाभ उठाकर अपने ज्ञानको परिष्कृत, पूर्ण तथा प्रामाणिक वनानेमे सदैव तत्पर रहते थे। उनके शास्त्रीय ज्ञानका प्रमाण उनके द्वारा विरचित नाना ग्रन्थ—विशेपत 'कामके पत्र' शीर्षकवाली पत्रावली, जिसमे विपम तथा विकट धार्मिक समस्याओके सुलझानेका पूर्ण प्रयास किया गया है—है। इस विषयमे वे शास्त्रोके अनुशीलनसे भरपूर आश्वस्त होकर ही समाधानमय उत्तर लिखते थे। धार्मिक विषयोकी गुत्थी सुलझानेके लिये वे स्वय वेद तथा पुराण, स्मृति तथा कर्मकाण्ड, दर्शन तथा तन्त्रका परिशीलन करते तथा विद्वानोकी वहुमूल्य सम्मति भी जुटानेमे तनिक भी सकोच नही करते थे।

भाईजीका जीवन श्रीराधामाधवके चरणारविन्दमे सर्वथा समर्पित था । दुखी तथा पीडित मानवकी आर्त्त पुकार उनके हृदयको केवल द्रवीभूत ही नही करती थी, प्रत्युत उस दुख-विमोचनके लिये उन्हे व्यावहारिक जगत्‌मे अग्रसर करती थी । देशके ऊपर वाढ, दुर्भिक्ष, अकाल आदि नाना विपत्तियोके आक्रमणके समय पोद्दारजी गीताप्रेसकी ओरसे सहायताका आयोजन करते, अनुभवी कार्यकर्ताओको भेजकर नाना प्रकारकी सहायताद्वारा जनताके दुखोको दूर करनेमे सफल होते । नोआखालीकी घटना आज भी लेखकके स्मृति-पटलपर वैसी ही अङ्कित है, । उस समय पोद्दारजीने अपने कार्यकर्ताओद्वारा प्रभूत द्रव्यका व्यय कर वहाँके अनेक हिंदू-परिवारोको विध्वससे वचाया था । पूर्वी जिलोमे वाढके समय गीताप्रेसद्वारा दी गयी सहायताके प्रेरक पोद्दारजी ही तो थे ।

श्रीपोद्दारजीको मै आधुनिक युगका 'महाप्रभु चैतन्य' मानता हूँ । चैतन्यके समान ही वे स्वय सच्चे महाभागवत होनेके अतिरिक्त जनतामे भगवन्नामके वितरणमे सतत जागरूक थे । व्रजेश्वरी श्रीराधाजीकी जयन्तीके प्रचारक, प्रसारक तथा प्रेरकके रूपमे भाईजी सर्वदा अविस्मरणीय रहेंगे । गोरखपुरके गीता-उपवनमे जिस नैसर्गिक स्नेह, अकृत्रिम अनुराग तथा प्रगाढ भक्तिसे राधाष्टमीका महोत्सव वे सजाते थे तथा जनताके सामने अपने आचरण तथा भाषणद्वारा भक्ति-भावनाकी उमग दर्शाते थे, वह दर्शकके जीवनकी एक अमिट अनुभूति वनकर चिरस्मरणीय रहेगी । वडे उत्साहके साथ इन समारोहोमे नाना प्रान्तोसे भक्तगण स्वत आकृष्ट होकर भक्ति-रसका आस्वादन करते तथा जीवनको धन्य वनाते थे । पोद्दारजीके सुन्दर भाषणोका संग्रह 'श्रीराधामाधव-चिन्तन'के रूपमे प्रकाशित है, जो उनकी विद्वत्ता, गाढानुराग एव भक्ति-रसका पावन उत्स प्रस्तुत करता है । श्रीमद्भागवतने जिस 'भागवत-प्रधान'का लक्षण एकादश स्कन्धमे प्रस्तुत किया है, वह आदरणीय पोद्दारजीपर अक्षरश सच्चा उतरता है । भागवतका कथन है—'विवशतासे नामोच्चारण करनेपर भी सम्पूर्ण अघराशिको नष्ट करनेवाले स्वय भगवान् श्रीहरि जिसके हृदयको क्षणभरके लिये भी नही छोडते, वास्तवमे ऐसा ही पुरुष भगवान्‌के भक्तोमे प्रधान होता है । कारण यह है कि उसने प्रेमकी रस्सीसे भगवान्‌के चरणकमलोको वॉध रखा है—

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्-
धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥

भाईजी आजके युगमे ऐसे ही भागवत-प्रधान थे, जिसने अपनी प्रेमरज्जुसे भगवान्‌के पैरको वॉध रखा था और इसलिये भगवान् उनके हृदयको छोडकर स्वय ही अन्यत्र नही जाते थे । धन्य है वह महापुरुष—भगवान्‌को प्रेमरश्मिसे वॉधनेवाला दिव्य व्यक्ति । भाईजी ऐसे ही दिव्य पुरुष थे । उनकी स्मृति हमारे हृदयमे भगवान्‌का पावन प्रेम उदित करनेमे समर्थ हो—ऐसी प्रार्थना है ।

वे सच्चे अर्थमे संत तथा साथ-ही-साथ कवि भी थे । भगवद्भक्तके जीवनमे एक ऐसा उदात्त समय आता है, जव उसका भगवन्मय हृदय सरस वाणीके द्वारा अपने उद्‌गार प्रकट करने

लगता है—दूसरोको शिक्षा देनेके लिये नही, प्रत्युत अपने हृदयके भावोकी शुद्ध अभिव्यक्तिके लिये। यह दशा समर्पित-जीवन व्यक्तिके लिये अवश्य होती है, जो स्वत आविर्भूत होती है, प्रयत्नोकी अपेक्षा नही रखती। भाईजीके जीवनमे यह दिव्य झाँकी प्रस्तुत हुई थी। वे सच्चे अर्थमे क्रान्तदर्शी कवि थे, जो श्रीराधामाधवकी मधुर अनुभूतिको मधुर शब्दोका वाना पहनाते थे। इस विषयके उनके सैकडो पद है—एक-से-एक मधुर, रसपेशल तथा सहज सुबोध। उनके इस जीवनकी ओर ध्यान देनेपर उनकी अलौकिक प्रतिभाके दर्शन होते है। उनके मनोरथ-का प्रतिपादक यह एक पद ही पर्याप्त समझा जायगा—

> व्रज के लता-पता मोहि कीजै।
> गोपी-पद-पंकज पावन की रज जामें सिर दीजै॥
> आवत-जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै।
> 'श्रीराधे, राधे!' मुख—यह बर मुँह माँग्यौ हरि दीजै॥

ऐसे सरस पदोके गायक सत कवि पोद्दारजीकी परम पावन स्मृतिमे यह शब्दमयी श्रद्धा-ञ्जलि समर्पित है। जगद्धरभट्टकी यह उक्ति नितान्त सत्य है कि 'विना पुण्यके भक्त कविकी प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है'—

> गाम्भीर्यशालिनि शुचावमृतौघशीते
> नीते सदा सदनतां मदनान्तकेन।
> यस्यैकपिङ्गलगिरेरिव मानसेऽन्त-
> रर्था स्फुरन्ति स विना सुकृतैः क्व लभ्यः॥

विशेष पुण्यके वलपर ही भाईजी-जैसे सत कविका दर्शन हमे मिला है। भगवान् करे, उनकी मनोरम वाणीका सौरभ सर्वत्र विकसित होकर हमारे मानस-पटलमे विशुद्ध सात्त्विक भक्तिका उद्रेक करे। तथास्तु।

●

> प्रभुकी याद दिलानेवाले दु.ख रहें नित मेरे पास।
> प्रभुकी याद भुलानेवाले सुख-समूह हो जायें नाश॥
> वह विपत्ति सम्पत्ति परम है, जिसमें प्रभुके हो दर्शन।
> वह सम्पत्ति विपत्तिरूप है, हटवा दे जो प्रभुसे मन॥
> वह अपमान मान सच्चा है, जिसमें हो शुभ प्रभुका भान।
> जो प्रभुसे सम्पर्क छुड़ा दे, वह है जलनेलायक मान॥

—श्रीभाईजी

●

साहित्य, संयम और सदाचारका समुज्ज्वल नक्षत्र

ठाकुर श्रीश्रीनाथसिंहजी

यह सही है कि श्रीपोद्दारजी अव हमारे बीचमे नही रहे, उनकी मृदु मुस्कान—जो एक ही झलकमे सामने उपस्थित दर्शकोके हृदयोमे अद्‌भुत आशा संचरित कर देती थी—अव हमे कभी लक्षित न होगी, उनका कण्ठस्वर, जो श्रोताओंमे अनुपम वल और साहस भर देता था, अव हमे कभी सुनायी न पडेगा, तथापि यह भी सही है कि भारतीय भावना, साहित्य और सस्कृतिकी जो त्रिवेणी वे सरसा गये है, वह युगोतक भारतीयोंके हृदयका कल्मष धोती रहेगी और उन्हे भारतीय परम्परासे बाँधे रहेगी। कहनेको तो वे एक व्यक्ति थे, परतु वास्तवमे वे एक सस्था थे। उनकी मृत्यु हो गयी, यह मन स्वीकार नही करता। ऐसा लगता है कि 'कल्याण'के लाख-लाख पाठकोके हृदयोमे वे समा गये है और इस रूपमे वे अमर रहेगे।

उनके व्यक्तिगत परिचयका सौभाग्य मुझे लगभग उस समयसे प्राप्त है, जव उन्होने गोरखपुरसे 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ किया था। उन दिनो मै स्थानीय 'इडियन प्रेस'से प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका 'सरस्वती'के सम्पादकीय विभागमे काम करता था। श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने अपने तत्कालीन सहयोगी, गीताप्रेसके तत्कालीन व्यवस्थापक श्रीवाजोरियाजीको प्रयाग इसलिये भेजा था कि वे 'सरस्वती'के वितरणकी व्यवस्थाको देखे और समझे, ताकि कुछ उसी ढगपर वे 'कल्याण'का ग्राहक-रजिस्टर रखे। हमलोगोने 'सरस्वती'के वारेमे कुछ गर्वका अनुभव किया और वाजोरियाजीको सरस्वतीका ग्राहक-रजिस्टर आदि दिखलाया। परतु सव कुछ देखकर उन्होने हमारे गर्वपर पानी फेरते हुए कहा—'ऐसी व्यवस्थासे 'कल्याण'का काम नही चल सकता। थोडे-से ग्राहक हो तो यह तरीका काम दे सकता है, परतु श्रीभाईजी 'कल्याण'की ग्राहक-संख्याको लाखोतक ले जाना चाहते है और चाहते है कि कोई ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या न लिखे, तो भी उसके नाम अथवा स्थानसे ग्राहक-रजिस्टरमे उसे जल्द-से-जल्द खोजा जा सके।' इससे यह स्पष्ट है कि 'कल्याण'के जन्मके समयमे ही उनके मनमे उसके कितने व्यापक प्रचारकी भावना थी और उन्हे इसमे सफलता भी मिली। आज भी 'कल्याण'की ग्राहक-सख्या हिदीकी सभी पत्रिकाओसे आगे है।

एक वार 'कल्याण'मे भगवान् श्रीकृष्ण और गोपियोका एक वहुत ही सुन्दर तिरगा चित्र प्रकाशित हुआ। मेरी इच्छा हुई कि उसे मै अपनी पारिवारिक पत्रिका 'दीदी'मे उद्‌धृत करूँ। मैने श्रीभाईजीको पत्र लिखा कि 'आप कृपापूर्वक उस चित्रका ब्लाक मुझे दे दे, जिसे मै छापकर वापस कर दूँगा।' श्रीभाईजीने उत्तर दिया—'गीताप्रेसके ब्लाक उधार देनेका नियम नही है; परतु उस ब्लाकसे जितने आप चाहे, चित्र छापकर हम भिजवा सकते है।' मैने अपनी आवश्यकता उन्हे वतायी। शीघ्र ही मेरे पास चित्रोकी आवश्यक संख्या वढिया आर्ट पेपरपर छपी हुई आ गयी। छपाईका विल देखकर मै दंग रह गया। उस मूल्यमे वैसा कागज भी

नही खरीदा जा सकता था । भेट होनेपर इस वारेमे मैने उनसे पूछा तो बोले—'गीताप्रेस व्यापारिक सस्था नही है । इसका मुख्य उद्देश्य सेवा है ।' मैने उनसे दूसरे प्रेसोमे तिरगी छपाईकी लागत वतायी और कहा कि 'इस लागतसे भी कम मूल्यमे चित्र आदि वेचकर गीताप्रेस अपना काम कैसे चला सकता है ? कर्मचारियोको वेतन भी तो देना पडता है ।' गीताप्रेसके कर्मचारियोके प्रति सहजभावसे आर्द्र होते हुए श्रीभाईजीने कहा—"हमारे कार्यकर्ता अन्य सस्थाओके कार्यकर्ताओसे भिन्न है । उनका समर्पित जीवन है । वे जानते है कि गीताप्रेस, जो मुनाफेके लिये काम नही करता, भारी वेतन भी नही दे सकता । उन्हे इसमे आनन्द है ।" और फिर वे मुस्कराकर बोले—"कौन नही जानता कि 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य उसके विशेषाङ्कोमे ही वसूल हो जाता है । वर्षके वाकी ११ अङ्क ग्राहकको मुफ्त पडते है ।' उनकी उस समयकी सेवा-भावनासे ओत-प्रोत, सादगी, सतोप और आनन्दसे युक्त मुखमुद्रा आज भी मेरे स्मृति-पटपर वैसे ही खचित हैं ।

एक वार जव प्रादेशिक हिंदू-महासभा महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीके नेतृत्वमे प्रदेशव्यापी आन्दोलन करनेके लिये उतावली हो रही थी, मेरी श्रीभाईजीसे नैनीतालमे भेट हुई । महन्तजी उन्हे अपने साथ पत-सरकारपर जोर डलवानेके लिये ले गये थे । उन्होने सरकारके समक्ष ९ या १० माँगे रखी थी और इस सम्बन्धमे एक पत्रकार-सम्मेलन बुलाया था । सयोगसे मै भी उस पत्रकार-सम्मेलनमे उपस्थित था । महन्तजीने पत्रकारोके समक्ष अपनी सरकारके सामने रखी जानेवाली माँगे रखी और शिकायतके स्वरमे कहा—"आपलोग काग्रेसकी छोटी-मोटी वातोका भी ढिढोरा पीटते रहते है, परतु हमारे आवश्यक समाचार भी नही छापते ।" इसपर कोई पत्रकार वोल उठा—"आपलोग समाचार पैदा कहाँ करते है ।" श्रीभाईजी, जो अवतक मौन थे, वोले—"समाचार पैदा करना हम जानते है, परतु हम सरकारको परेशान नही करना चाहते । खैर, आप यही चाहते है तो समाचार पैदा होगा और आप हमारे पास स्वय आयँगे ।" और उसी समय श्रीभाईजीने महन्तजीकी १० माँगोमे एक माँग और जुडवा दी—तीर्थस्थानोमे गोवध तुरत वद किया जाय । महन्तजीने सरकारके सामने जो माँगे रखी थी, उनमे यह माँग नही थी । अतएव सरकारकी ओरसे कहा गया कि 'यह ग्यारहवी माँग वादको सरकारको परेशान करनेके इरादेसे रखी गयी है', परतु हिंदू-महासभा इसपर अटल रही और सरकारको झुकना पडा । तीर्थस्थानोमे गोवध वद हुआ ।

नैनीतालसे वापसीमे वरेली जकशनपर मेरी श्रीभाईजीसे पुन भेट हो गयी । जिस डिव्वेमे मै सवार था, वह किसी कारणसे खाली करा लिया गया था और यात्रियोको अन्यत्र स्थान खोजनेको कह दिया गया था । जव मै इस प्रयत्नमे भटक रहा था, श्रीभाईजीकी मुझपर नजर पडी और उन्होने मुझे अपने डिव्वेमे बुला लिया । उस डिव्वेमे श्रीभाईजी और महन्त दिग्विजयनाथजीके अतिरिक्त एक अग्रेज सज्जन भी थे । उनकी अनुमति आवश्यक थी, जो श्रीभाईजीने तुरत प्राप्त कर ली थी । उन अग्रेज सज्जनसे वार्तालाप होने लगा, अन्तमे हिंदू-धर्म और ईसाई-धर्ममे ईश्वरका क्या स्वरूप है, इसपर सौहार्दपूर्ण विवाद छिड गया । उस समय शायद रात्रिके लगभग ११ वजे थे । परतु विपय ऐसा था कि किसीको नीद नही आ रही थी ।

उन अग्रेज सज्जनने कहा कि 'ईश्वरको हम पिता मानते है, जो स्वर्गमे है।' उनके इस कथनको आदरके साथ स्वीकार करते हुए श्रीभाईजीने कहा, 'हम ईश्वरको पिता ही नही, परमपिता कहते है। उपासनाके प्रारम्भमे हमारा उसके प्रति सेवकका भाव रहता है, क्रमश हम उसे सखा मानने लगते है और अन्तमे हम उसे शिशुरूपमे देखने लगते है।' इस वार्तालापके अन्तर्गत श्रीभाईजीने वैष्णवधर्मकी ऐसी मीमासा की कि यहाँ मै उसे दोहरानेमे अपनेको अक्षम पाता हूँ। अंग्रेज महोदयपर श्रीभाईजीके विचारोका वडा प्रभाव पडा।

अपनी प्रशंसा अथवा वाहवाही श्रीभाईजी कदापि नही चाहते थे। अगर कोई मुखपर उनकी प्रशंसा करता था तो वे उसे विनम्रतापूर्वक अनसुनी कर देते थे और विषय वदल देते थे।

'कल्याण'के विशेषाङ्कोके रूपमे श्रीभाईजीने पुराणोके सस्ते और प्रामाणिक हिंदी-अनुवाद जनसाधारणके लिये सुलभ कर दिये है। इनमे वहुत-से पुराण तो ऐसे है, जो हिंदीमे क्या, सस्कृत-मे भी अप्राप्य है। ऐसा ही एक पुराण 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' है। यह पुराण सस्कृतमे भी प्राप्य नही है। इसकी महत्ताको ध्यानमे रखते हुए श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदास टडनने इसे हिंदीमे अनुवादित करवाकर 'हिंदी साहित्य सम्मेलन'से प्रकाशित कराना चाहा। हजारो रुपयोके व्ययके वाद यह पुराण हिंदीमे अनूदित तो हुआ, परतु उसके प्रकाशनकी नौवत नही आयी। इसी बीचमे टडनजीने देखा कि यह पुराण 'कल्याण'के एक विशेषाङ्कके रूपमे प्रकाशित हो गया है। इसपर टडनजीने श्रीभाईजीको वधाईका एक पत्र भेजा, जिसमे लिखा—'जो काम हम 'हिंदी साहित्य सम्मेलन'-जैसी सस्थाके माध्यमसे करनेमे असमर्थ रहे, वह आपने सहज ही कर दिया। अब हम इस ओरसे निश्चिन्त है।'

पुराणोके अतिरिक्त श्रीभाईजी 'कल्याण'के और भी ऐसे विशेषाङ्क प्रकाशित करते रहते थे, जिनमे एक ही विषयपर अनेक दृष्टिकोणोसे लिखे गये लेख होते थे। 'कल्याण'के 'नारी-अङ्क', 'वालक-अङ्क' ऐसे ही थे। श्रीभाईजीकी धारणा थी कि नारियाँ भक्ति और वैराग्य-की मूर्ति होती है। वे ज्ञान और सदाचारसे युक्त हो तो राष्ट्रका वहुत लाभ हो। ऐसी ही नारियाँ अपने वालकोको सदाचारी और श्रेष्ठ नागरिक वना सकती है।

देशके वालको और युवकोको आदर्श-चरित वनानेके लिये वे कितने चिन्तित थे—यह उनके उस पत्रसे स्पष्ट है, जो उन्होने इस सम्बन्धमे मुझे लिखा था। मै उस पत्रका कुछ अश यहाँ दे रहा हूँ—

श्रीहरि

'कल्याण', गोरखपुर
आषाढ कृ० १०, २००९

सम्मान्य श्रीठाकुर साहव,

सादर प्रणाम। 'कल्याण'का अगला विशेषाङ्क 'वालक-अङ्क' प्रकाशित करनेका निश्चय हुआ है। वालक और युवकोमे अनुशासनहीनता, उच्छृङ्खलता, सस्कृति और धर्मके प्रति अनास्था,

कर्तव्यविमुखता, विलासिता आदि दोष बढ रहे है—यह आप मुझसे अधिक जानते है । हमारे वालक सदाचारी, स्वस्थ, भगवद्भक्त, देशभक्त, सेवापरायण, कर्तव्यशील, उदार और महान्-हृदय हो, इसी उद्देश्यसे 'वालक-अङ्क' प्रकाशित करनेका विचार किया गया है । आप हिंदीके स्तम्भ है, वाल-मनोविज्ञानके पण्डित है, वाल-साहित्यके प्रख्यात निर्माता है, सस्कृति और धर्मके प्रेमी है एव 'कल्याण'को हृदयसे अपना माननेवाले है । इसलिये आपकी सेवामे विशेषरूपसे प्रार्थना है कि आप 'वालक-अङ्क'के लिये स्वय कुछ लिखकर भेजे और अन्यान्य अधिकारी महानुभावोसे उपयोगी लेख और निवन्ध लिखवाकर देनेकी कृपा करे । इस अङ्कमे भारतीय तथा विदेशी वालको और तरुणोके आदर्श सक्षिप्त चरित्र रहेगे और वालकोके जीवनका उत्थान करनेमे सहायक कुछ लेख भी रहेगे। आशा है, आप कृपापूर्वक इस कार्यमे सहायक होगे ।

कृपा तो आपकी है ही ।

भवदीय
हनुमानप्रसाद पोद्दार

पाठक यह न समझे कि यह पत्र मैने इसलिये उद्धृत किया है कि इसमे श्रीभाईजीने मेरी वडी प्रशसा कर दी है । उनका यह स्वभाव ही था कि अपनेको अत्यन्त लघु और दूसरोको वहुत वढा-चढाकर प्रस्तुत करते थे । उनके जैसा विनयावनत व्यक्ति मैने दूसरा नही देखा। अपनेसे वडोका आदर तो वे करते ही थे, परतु अपनेसे छोटेका और भी अधिक आदर करते थे । मिलनेवाले उनकी विनम्रता देखकर दग रह जाते थे ।

सहज स्नेहसे सिक्त सौम्य मुखाकृति, ऊँचा और चौडा मस्तक, उसपर चन्दनका टीका और सादी वेष-भूषा सेवामे उपस्थित होनेवाले व्यक्तिके मनपर यही छाप डालते थे कि वह एक महान् भारतीय पुरुषके सामने उपस्थित है। प्रत्येक व्यक्ति, जो चाहे, निस्सकोच उनसे अपनी वात कह सकता था । वे सही अर्थोमे भक्ति, वैराग्य, ज्ञान और सदाचारकी मूर्ति थे । 'कल्याण'के माध्यमसे दूसरोको जो उपदेश देते थे, उसपर स्वयको वडी कडाईके साथ चलाते थे। हिंदू-धर्म, सस्कृति और सदाचारको उन्होने वहुत वढावा दिया है। वे हमे एक ऐसा मार्ग दिखा गये है, जिसपर चलकर हम अपने मानव-जीवनको सफल और सार्थक वना सकते है ।

श्रीभाईजीके चले जानेसे ऐसा लगता है कि हमारे सामने साहित्य, सयम और सदाचारका जो समुज्ज्वल नक्षत्र उदित था, वह लुप्त हो गया है। देशकी जनताको एक आदर्श नेताके रूपमे उनका अभाव सदा खटकेगा, परतु व्यक्तिगतरूपसे मुझे लगता है कि मै मित्रविहीन हो गया हूँ। अधिक क्या लिखूँ ?

•

भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार

श्रीरामधारीसिंहजी 'दिनकर'

उन्नीसवी सदीमे भारतीय सस्कृतिकी सेवा ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, प्रार्थना-समाज और राधास्वामी-समाजने की थी। उस समयके संस्कृति-सेवकोमे उन विदेशी और देशी विद्वानोंका भी आदरणीय स्थान है, जिन्होने भारतकी प्राचीन विद्याका उद्धार अंग्रेजीके माध्यमसे किया। किंतु बीसवी सदीमे भारतीय सस्कृतिकी जैसी सेवा गोरखपुरके गीताप्रेस और वम्वईके भारतीय विद्याभवनने की, वैसी सेवा न तो कोई सरकार कर सकी न कोई विश्वविद्यालय कर सका। परम क्लेशका विषय है कि इन दोनो महान् सस्थाओके सस्थापक और कर्णधार हमारे बीचसे उठ गये।

श्रीमुशीजीकी विशेषता यह थी कि वे प्राचीन भारतकी अनुभूतियोका प्रचार नवीन भाषा (अग्रेजी)मे करते थे। श्रीपोद्दारजीकी विशेषता यह थी कि वे प्राचीन भारतके ज्ञानको प्राचीन (सस्कृत) अथवा आधुनिक भारतकी भाषा (हिंदी)मे फैलाते थे। इन दोनो महापुरुषोने अपने-अपने क्षेत्रमे जो काम किया, वह वहुत विशाल और साथ ही महान् भी है। भारतकी अपार जनता अभी आधुनिकताके आदि छोरतक भी नही पहुँची है। अतएव श्रीपोद्दारजीने भारतकी सारी परम्पराको हिंदीमे लाकर इस विशाल जन-समूहके लिये सुलभ कर दिया। जिन प्राचीन पुराणो और ग्रन्थोका जनता पहले केवल नामभर सुना करती थी, वे ग्रन्थ अब उसके हाथमे है और वे हिंदीमे है, जिस भाषापर जनताका स्वाभाविक अधिकार है। यह एक ऐसी सेवा है, जिसका मूल्य आसानीसे ऑका नही जा सकता। हम अपनी परम्पराको समझते हुए आधुनिकताकी ओर वढ़े—इस प्रक्रियाको श्रीपोद्दारजीने सरल वना दिया। वे भारतीय परम्पराके उद्धारक अवतार थे।

श्रीपोद्दारजी नैष्ठिक पुरुष थे। वे भगवान्के परमभक्त थे और उनका जीवन समर्पित जीवन था। समाजको विश्वास हो गया था कि वे 'ज्ञानयज्ञ'मे लगे हुए है, समाज-सेवा और परोपकारके काममे लगे हुए है। इसलिये अनेक श्रीमन्त लोग उन्हे लिखते रहते थे कि 'हमसे धन लीजिये और उसे अपनी रुचिके सत्कार्यमे लगा दीजिये।' पोद्दारजी अक्सर ही ऐसे लोगोको यही उत्तर देते थे, 'अभी मै आपके दानका कोई उपयोग नही कर पाऊँगा, इसे आप अपने ही पास रखे।' समाज-सेवी और धर्म-सेवीका चरित्र कितना उज्ज्वल होना चाहिये, इसके पोद्दारजी उदाहरण थे।

२७ मार्च, १९७१ को मै पोद्दारजीकी समाधिपर फूल चढ़ानेके लिये गोरखपुर गया तो वहाँ परमपूज्य राधावावासे मेरी भेट हो गयी। मैने पूछा—"वावा, पोद्दारजीकी चिता यहाँ गीतावाटिकामे क्यो रचायी गयी, किसी नदीके तटपर क्यो नही?" वावाने वताया—"सन् १९३९

ई० मे मैंने पोद्दारजीसे वृन्दावन जानेकी अनुमति माँगी। श्रीभाईजीने कहा—'हम दोनो साथ-साथ ही रहे। जव मेरा शरीर न रहे, तव आप जहाँ इच्छा हो चले जाइयेगा। यदि मुझसे पहले आपका शरीर शान्त हो गया तो मै आपकी अन्त्येष्टि कर ही दूँगा।' मैने कहा—'भाईजी! जव इतने दिन आपके साथ रहूँगा, तव आपके न रहनेपर यदि मेरा शरीर रहा तो मै आपको छोडकर अन्यत्र क्यो जाऊँगा ? आपके पार्थिव शरीरकी जहाँ अन्त्येष्टि होगी, वही मै अपना शेष जीवन विता दूँगा।' यह मेरा निश्चय था। इस निश्चयके अनुसार यदि भाईजीकी चिता नदी-किनारे रचायी गयी होती तो मै भी वही रहता। अतएव 'पञ्चो'ने तय किया कि भाईजीकी चिता यहाँ गीतावाटिकामे ही लगे, जिससे मै इसी वाटिकामे रहकर अपने निश्चयका पालन कर सकूँ।"

वावाका उद्‌गार सुनकर मुझे रोमाञ्च हो आया। किंतु चलते-चलते मनमे यह वात दृढ हो गयी कि वावाको गीतावाटिकामे रखनेका निर्णय सही और लाभकारी निर्णय है, क्योकि वे उस कार्यकी दूसरी आत्मा है, जो गीताप्रेससे हो रहा है।

●

सत्साहित्य-प्रदाता

श्रीमृत्युञ्जयप्रसादजी

भगवच्चरणोमे लीन अपने पूज्य पिताजी (देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजी)के साथ श्रीभाईजीके सौहार्दका मुझे पता है। मेरा व्यक्तिगत परिचय श्रीभाईजीसे न हो पाया और न उनके दर्शनोका सौभाग्य ही मुझे मिला, किंतु उनके लेखोसे मैने लाभ उठाया है। 'कल्याण'का ग्राहक मै २५–३० वर्षोसे हूँ। इसलिये उनके लेख पढने तथा गीताप्रेससे प्रकाशित कुछ पुस्तके पढनेका भी अवसर मिला है। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि 'कल्याण' तथा गीताप्रेसका सगठन कर जो सत्साहित्य पोद्दारजीने प्रकाशित कराया, वह अपनी मिसाल आप है। प्राचीन ग्रन्थ—उपनिषदो, पुराणो, रामायण, महाभारत इत्यादि साधारण हिंदी पढे हुए व्यक्तियोको वहुत ही कम मूल्यमे उन्होने सुलभ कराये।

अपने लेखो तथा भाषणोसे समाजके चारित्रिक स्तरको ऊँचा उठाने तथा समाजको हरि-उन्मुख करनेमे उनका योगदान अनुकरणीय रहा है। साथ ही जिनका सस्कृत-ज्ञान स्कूलकी पाठ्यपुस्तकोके स्तरसे भी नीचा था, उन्हे भी धार्मिक एव दार्शनिक ग्रन्थोका रहस्य समझानेके लिये उन्होने सानुवाद सस्करण प्रकाशित किये। ऐसे अपढ या कमपढ व्यक्तियोमे मै भी हूँ, जिन्हे अनुवादसे मिलाकर मूल ग्रन्थ पढते-पढते सरल श्लोकोके अर्थ अपने आप लगते-से प्रतीत होते है। यह सारा काम निष्कामवृत्तिसे करते हुए भी वे अपनी वुद्धि-कौशलसे गीताप्रेसको आर्थिक कठिनाइयोसे भी वचाते रहे। पुस्तकोकी साज-सज्जा सुन्दर, मूल्य कम, प्रचार अधिक। लागतमात्र मूल्यपर सत्साहित्य-प्रदाताके रूपमे श्रीभाईजीकी सेवाएँ सदा स्मरणीय रहेगी।

●

आध्यात्मिक प्रेरणा-स्रोत

आचार्य श्रीसीतारामजी चतुर्वेदी

श्रीपोद्दारजी अध्ययनशीलता, निष्काम-नि स्पृह धर्म-सेवा, त्याग, तपस्या और सौजन्यकी प्रतिमूर्ति थे। उन्होने जीवनभर अपने सम्बन्धमे किसी इच्छा, लालसा, आकाङ्क्षा या भावनाको कोई स्थान नही दिया। इतना ही नही, दूसरे भी यदि उनकी महत्ताके प्रति आत्मीय-तापूर्ण कृतज्ञता व्यक्त करनेका कोई व्यक्तिगत या सार्वजनिक आयोजन करनेका प्रयास करते थे तो वे सदा उससे अत्यन्त विनीतभावसे उपरत ही रहते थे। एक बार हमलोगोने काशीमे उनका सार्वजनिक अभिनन्दन करनेका विराट् आयोजन किया, किंतु जव-जव उसके लिये उनसे आग्रह किया गया, तव-तव वे अपनी स्वाभाविक निर्लिप्तताके साथ उदासीनता ही व्यक्त करते रहे। 'नही' कर देनेसे हमलोगोको बुरा न लगे और हमारा उत्साह न भङ्ग हो——इस सौजन्यका निर्वाह करते हुए वे निरन्तर अत्यन्त मृदुतासे उसे टालते रहे। आज वह दिन आ गया है कि उस महापुरुषका अभिनन्दन करनेको नन्दन-वनका वृन्दारक-वृन्द अग्रसर हो रहा है।

पोद्दारजी साधु-पुरुष थे। अपने शरीरसे जितनी दूसरोकी सेवा हो जाय, सहायता हो जाय, कल्याण हो जाय, उसे ही वे जीवनकी सार्थकता समझते थे। 'कल्याण'के द्वारा उन्होने जो जन-कल्याण किया, अधीर, अशान्त, क्षुब्ध, शोकग्रस्त और चिन्तित पुरुषो और स्त्रियोको जो मानसिक और आध्यात्मिक विश्रान्ति प्रदान की, वह अद्भुत-साधन-सम्पन्न अत्यन्त असामान्य व्यक्तिके लिये भी दुष्कर है। साधु या सतके लिये जो कहा गया है——

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः॥

'जिनके मन, वचन और शरीरमे पुण्य (परोपकार)का अमृत-सागर लहराता है, जो तीनो लोकोको उपकारकी श्रेणियोसे (निरन्तर उपकारसे) तृप्त करते रहते है और जो दूसरोके रचमात्र गुणोको भी पर्वतके समान वनाकर नित्य मन-ही-मन खिलते रहते है, ऐसे सत ससारमे है कितने ?' इसके उत्कृष्ट उदाहरण थे पोद्दारजी ।

किसीने उन्हे कभी किसीको कटु या अप्रिय वचन कहते नही सुना। मृदुता और सौम्यता-की वे श्लाघनीय विभूति थे। उनके ससर्गमे जो भी कभी आया, वह उनके आत्मीयतापूर्ण सौजन्य-से प्रभावित हुए विना नही रहा। इतना ही नही, वह यह विश्वास लेकर गया कि वे सचमुच मेरे परम आत्मीय है। उन्हे कभी किसी वातका पूर्वाग्रह, कष्टाग्रह या दुराग्रह नही था। वे सवके मतको भलीभाँति मथते थे, उसपर विचार तथा मनन करते थे, उसकी तात्त्विक मीमासा करते थे और फिर तर्क, युक्ति तथा प्रमाणके आधारपर उसकी अत्यन्त विनीत और मृदु विवेचना

करते थे। उनकी वाणी और लेखनीमे कटुता और तर्जनने कभी प्रवेश पानेकी धृष्टता नही की। इस सौजन्यके साथ ही उनमे अपरिमित विवेकशीलता विद्यमान थी, जिसके कारण वे कभी मनसे असतुलित नही हो पाये। वे कभी आवेग, उद्वेग, भावावेश और उत्तेजनाके आखेट नही हुए। महाकवि कालिदासके शब्दोमे—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

'विकारका कारण प्रस्तुत होनेपर भी जिनका मन विकृत नही होता, वे ही धीर कहलाने योग्य है।' ऐसे ही धीर-पुरुष थे पोद्दारजी।

वे मन, वाणी, आहार-विहार और व्यवहार—सवमे अत्यन्त सात्त्विक थे। उन्हे न किसी प्रकारका व्यसन था न कोई रुचि ही। सीधी-सादी वेश-भूषा और रहन-सहनके साथ उन्होने सत्यनिष्ठ कर्मयोगीकी भाँति अनासक्त होकर कार्य किया। गीताप्रेस चलाया, 'कल्याण'का सम्पादन किया, जव-जव देशपर किसी प्रकारका सकट पडा, तव-तव अत्यन्त तत्परता और सनद्धताके साथ वाढ-पीडितो, भूकम्प-पीडितो, निराश्रितो, विप्लव-पीडितो, देशभक्तो और आर्त्तोको उन्मुक्त हृदय और हस्तसे सव प्रकारकी सहायता पहुँचानेमे कभी आलस्य या शैथिल्य प्रदर्शित नही किया। कुछ वर्षो पूर्व चीन और पाकिस्तानने अत्यन्त क्षुद्रता और कायरताके साथ भारतपर सहसा आक्रमण किया था। उस समय देशके लिये युद्ध करनेवाले भारतीय सैनिकोके लिये उन्होने जो विशिष्ट सहायता भेजी थी, वह कृतज्ञता और सराहनाके साथ स्मरण की जाती है।

वे वडे कुशल और विवेकशील लेखक थे। उन्होने 'कल्याण'के माध्यमसे न जाने कितना लिखा, किंतु शास्त्र और धर्मकी सयत मर्यादाओका कभी उल्लङ्घन नही किया। वे 'पुराणपथी' और कट्टरतावादी कभी नही रहे। भारतीय धर्म और सामाजिक शीलके प्रति उनकी सहज और सिद्ध निष्ठा थी, जिसमे किसी प्रकारकी कृत्रिमता और आडम्वर नही था। वे जो कुछ सत्य समझते थे, उसीका जीवनमे अनुभव करते थे और अपने लेखो और ग्रन्थोमे उसीका समर्थन करते थे। **'अन्त. शाक्ता बहिः शैवा'**—की वहुरूपिया-वृत्तिसे उन्हे स्वाभाविक विरक्ति थी। इसीलिये इस प्रकारकी प्रवृत्तिका न उन्होने कभी स्वागत किया न उसका समर्थन। वे मौन, शान्त और एकान्तवासी होकर जो कुछ सेवा कर गये, वह इस व्यस्त, कोलाहलपूर्ण युगमे एक व्यक्तिसे क्या, अनेक व्यक्तियोसे भी नही हो सकती।

ऐसे वहुगुणसम्पन्न पुरुषके सहसा उठ जानेसे विक्षोभ और व्याकुलता होना स्वाभाविक ही है। श्रीपोद्दारजी नही गये, उनके साथ एक आध्यात्मिक प्रेरणा-स्रोत, कर्मण्यताका सजीव पोत और सवको एक सूत्रमे वाँधकर सस्था चलानेवाला स्वय सस्थानरूप महामानव चला गया। उनके उठ जानेसे जो विराट् रिक्तता उत्पन्न हो गयी है, वह कैसे भर पायेगी—यह भी अत्यन्त चिन्तनीय समस्या उठ खडी हुई है। सस्थाएँ चलती रहती है, चलती रहेगी, किंतु जो पुरुष अपने दिव्य सात्त्विक व्यक्तित्वसे उन सस्थाओका आध्यात्मिक पोषण करके उन्हे ऊर्जस्विनी और वर्चस्विनी वनाये रखता है, उसका स्थान कोई शीघ्र नही ले पाता। किसी समाज, राष्ट्र, सस्था या जातिके इतिहासमे ऐसे अमृत-यशस्वी पुरुष उसके भाग्यसे कभी जन्म लेते है और अपने सात्त्विक जीवनसे उसे पुष्टकर, अमृत पिलाकर तिरोहित हो जाते है।

ऐसा ही अनुपम व्यक्तित्व था श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका।

●

मूर्तिमान् संतत्व

श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट

१९७० की 'प्रेस इन इंडिया'—भारतके समाचारपत्रोके रजिस्ट्रारकी १४वी वार्षिक रिपोर्ट उलट रहा था कि देखा उसमे—उत्तरप्रदेशकी ही नही, सारे भारतकी साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओको छोडकर, मासिक पत्रोंमे सबसे बडी ग्राहकसख्या—१,५४,८८३ है [गोरखपुरसे प्रकाशित होनेवाले हिंदी मासिक पत्र 'कल्याण'की । अब तो यह संख्या १,६५,००० से भी अधिक हो गयी है।

प्रश्न है कि 'कल्याण'को इस मूर्धन्य स्थानपर पहुँचानेका श्रेय किसको है ? हर व्यक्ति मुक्तकण्ठसे स्वीकार करेगा—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारको ।

भारतकी धर्मप्राण जनता 'कल्याण'को जितने आदरकी दृष्टिसे देखती है, जितने प्रेमसे उसका पाठ और चिन्तन-मनन करती है, उतना सम्भवत अन्य किसी पत्र-पत्रिकाका नही करती ।

क्यो ? कारण क्या है ?

कारण स्पष्ट है ।

एक तो भारतकी भूमि धर्मकी पवित्र भावनासे ओत-प्रोत है, दूसरे 'कल्याण'द्वारा उसकी मानसिक और आध्यात्मिक क्षुधाकी अत्यन्त सफलरूपसे तृप्ति होती है ।

'कल्याण' एक सामान्य मासिक पत्र ही नही, एक सस्था है ।

वह एक प्राणवान् सस्था है । उसके पीछे त्याग और तपस्या, धर्म और सदाचार, श्रद्धा और निष्ठाकी एक अविरल धारा है । इस धाराके जो प्रमुख स्रोत रहे हैं, उनमे श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम मुकुट-मणिकी भॉति देदीप्यमान है । उनकी ४४–४५ वर्षकी उत्कट साधनाने ही 'कल्याण'को इस मूर्धन्य स्थानपर पहुँचाया है ।

महात्मा गाधीने उनसे कहा—"'कल्याण'मे विज्ञापन [मत छापो, 'कल्याण'मे ग्रन्थोकी समालोचना मत छापो ।" श्रीपोद्दारजीने इस आदेशको शिरोधार्य किया । इन दोनो नियमोका पालन करनेसे 'कल्याण'की प्रतिष्ठामे तो चार चॉद लगे ही, दूसरोके लिये भी एक उत्तम आदर्श मुखरित हुआ ।

गोरखपुर-जैसे दूर-दराज स्थानसे प्रकाशित होकर 'कल्याण' दिन-दूनी, रात-चौगुनी उन्नति करता रहा, उसका एकमात्र कारण श्रीभाईजीकी अनवरत साधना और लगन ही थी । उनके मानसमे ओत-प्रोत भगवत्प्रेरणा ही उनसे इतना कठोर श्रम करा लेती थी, अन्यथा किसी सामान्य व्यक्तिमे इतना श्रम करनेकी सामर्थ्य कहॉ ।

'कल्याण' मानवमात्रकी ही नही, प्राणिमात्रकी कल्याण-कामनाका आदर्श लेकर दिन-दिन प्रगति करता चला जा रहा है ।

'कल्याण' अपने पवित्र उद्देश्यमे वहुत कुछ सफल हुआ है । गीताप्रेसके अनूठे और सस्ते

होती है, उसीसे उसकी मर्यादा पहचानी जाती है। पोद्दारजीसे मेरा पुराना सम्पर्क एव सम्बन्ध रहा है। वे जानते थे कि मै लेख लिखता हूँ तो पैसा लेता हूँ। उधर मुझे सकोच बना हुआ था कि 'कल्याण'के सुन्दर अङ्क तथा गीताप्रेसके प्रकाशन मुझे वे मुफ्तमे भेजते है। दोनो अपने सकोचमे थे। एक दिन वे मुझसे हँसकर बोले—

"आप मुझे लिखते है कि 'अमुक पुराणकी पुस्तक आपने मुझे मुफ्त भेज दी, इससे मुझे सकोच है', पर मै तो आपको लेखके लिये कुछ नही देता।" ऐसा था उनका स्नेहभरा व्यवहार।

मैने उन्हे निजी व्यवहारमे मर्यादापुरुष, आदर्श नागरिक तथा सच्चा मित्र पाया। आजकल ऐसे महापुरुष कम मिलते है—बिरले ही मिलते है। मै उन्हे हर दृष्टिसे—'स्वय चिद्रूपलक्षण' पाता हूँ।

●

उत्कृष्ट कर्मयोगी

जगद्गुरु शकराचार्य स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती

नित्यलीलालीन हनुमानप्रसादजी पोद्दार एक उत्तम सनातनी और उत्कृष्ट कर्मयोगी थे। उन्होने अपने हृदयमे भगवान् श्रीकृष्णको स्थान दिया, अत कलिकालके युद्ध-स्थलमे गीताप्रेसकी अमूल्य सेवाओके वहाने उन्हीके मुखारविन्दसे मानो गीताका ही उपदेश फिरसे करवाया गया। 'कल्याण' जो इस यन्त्रयुगमे सर्वाधिक प्रचारित पत्र है, मानो विश्वकल्याणका मन्त्र है। इस पत्रने चित्रकलाके इतिहासमे भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। अग्रेजीमे प्रकाशित 'कल्याण-कल्पतरु'को 'कल्याण'का ही दूसरा रूप समझना चाहिये। 'कल्याण'को हम यदि श्रीहनुमानप्रसादजीका सूक्ष्मशरीर कहे तो अत्युक्ति न होगी। श्रीहनुमानप्रसादजीके चित्तमे वेद-वेदाङ्गोकी प्रतिष्ठा थी। 'कल्याण'ने पुराण, महाभारत, रामायण, उपनिषद्, भक्तिसूत्र, योगसूत्र, ब्रह्मसूत्र एव श्रीभागवत आदि ग्रन्थोके साथ-साथ देश-विदेशके धर्मगुरु, सतो, तपस्वियो और महात्माओके चरित्र भी प्रकाशित किये है। इतना ही नही, गीताप्रेसने व्याकरणके भी ग्रन्थ प्रकाशितकर सस्कृत भाषाका महान् उपकार किया है। पोद्दारजीकी इस सेवासे सनातनी समाजका महान् कल्याण हुआ है। अज्ञ समाजसे विज्ञ समाजतक, ग्रामीणसे नागरिकतक—सभी पोद्दारजीकी धर्म-सेवासे लाभान्वित हुए है। इस परिमाणमे सनातनधर्मकी साहित्यिक सेवा इस शतीमे अन्य किसी व्यक्ति अथवा सस्थाके द्वारा नही हुई है।

भगवान्से प्रार्थना है कि श्रीपोद्दारजी-जैसे कर्मयोगी इस देशको सदा सुलभ रहे।

●

जागतिक कल्याण-पथके पथिक श्रीभाईजी

पद्मभूषण महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज

कर्मयोगी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)ने दीर्घकालतक 'कल्याण'के सम्पादनद्वारा एव गीताप्रेस सस्थाके कर्णधारके रूपमे समाज और साहित्यकी सेवाद्वारा जिस आदर्शकी स्थापना की है, वह इस युगमे एक परम दुर्लभ वात है।

हिदी मासिकपत्र 'कल्याण'के प्रकाशनके प्रारम्भसे ही श्रीभाईजीके साथ मेरा परिचय था एव वह सम्बन्ध उनके लीला-सवरण करनेतक घनिष्ठभावसे अक्षुण्ण रहा है। मै उनके असामान्य व्यक्तित्व और धर्मके प्रति अकपट निष्ठाका सम्मिश्रण देखकर एव लोकसेवाके प्रति हृदयकी तीव्र आकाङ्क्षा समझकर उनके प्रति आकृष्ट हुआ और सचमुच ही अतिशय आनन्द पाता रहा। कहना न होगा कि उनके चरित्रगत सौन्दर्य और महत्त्वके कारण ही उनके द्वारा परिचालित 'कल्याण' नामक पत्रिकामे शास्त्रीय और सिद्धान्त-विषयक नाना प्रकारके लेख भेजनेको उत्साहित हुआ था। 'कल्याण' पत्रिकाके साथ सलग्न गीताप्रेस नामक कर्मक्षेत्रमे उद्यमशील कर्मियोके सघकी निष्ठा, विश्वास, अध्यवसाय, शुद्ध और सरल जीवनके प्रति अनुराग, आस्तिक्यकी नीति और आध्यात्मिक विश्वास सर्वथा प्रशसनीय है। सद्‌गुणोद्वारा अलकृत इन सव बहुसख्यक युवकोने इस सस्थानको एक आदर्श कर्मक्षेत्रके रूपमे परिणत कर दिया। श्रीभाईजीकी वहुमुखी प्रतिभाने सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोमे नाना प्रकारसे लोकका कल्याण-साधन किया है। जिन लोगोने कार्यकारिणीके सदस्य एव लेखककी हैसियतसे उनके साथ सम्बन्ध-स्थापन किया है, वे भी अपने जीवनमे आध्यात्मिक और नैतिक उत्कर्ष लानेके लिये भाईजीके ऋणी है।

अर्थलाभकी ओर दृष्टि न रखकर, जिससे समाजके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिको प्राचीन धर्म और नीतिका सारभूत ज्ञान प्राप्त हो सके, इसके लिये यत्न करना—गीताप्रेसका एक महनीय आदर्श है। इस महान् सगठन एवं कर्मीसघके जीवनादर्शके मूलमे है श्रीमान् पोद्दारजीकी विशुद्ध जीवनधारा। उन्होने न केवल एक पत्रिका (कल्याण)को भारतवर्षमे एव भारतवर्षके वाहर भी भिन्न-भिन्न देशोमे जनप्रिय बनाया है, अपितु वहुत लोगोके मनोमे भी आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न की है, जिसके फलस्वरूप उन सव व्यक्तियोका जीवन वैशिष्ट्यसम्पन्न होकर लोक-सेवाके आदर्शके रूपमे जगत्‌के समक्ष प्रकाशित हुआ है। पोद्दारजी जीवनमे जिस आदर्शको सामने रखकर अग्रसर हुए, वह था लोकसेवाके असामान्य नैतिक आदर्शकी प्रेरणाद्वारा जीवन-सचालन एव इसके साथ-साथ सवके मूलमे था भगवत्प्रेम एव सेवाभक्तिका उत्कर्ष। उनकी इच्छा रही कि इस पथमे वे अकेले ही क्यो, सभी मनुष्य सम्मिलितरूपमे अग्रसर हो, जिसके फलस्वरूप इस अविश्वासके युगमे वास्तविक मङ्गल आविर्भूत हो।

उनके चरित्रगत महत्त्वपर मै वहुत ही मुग्ध हूँ, यद्यपि यह वात जगत्‌को कहनेकी वस्तु

नही है। आजके युगमे जो लोग जगत्का कल्याण करनेमे लगे है, वे साधारणतया वहिर्मुख होते है, किंतु भाईजी अन्तर्मुख थे और अपनी ऊर्ध्व दृष्टिकी रक्षा करते हुए, प्राचीन आदर्शको शिरोधार्यकर तथा व्यक्तिगत एव समष्टिगत सामाजिक कर्तव्यका पालन कर उन्होने उच्च आदर्शकी स्थापना की । वे ही वास्तवमे 'कर्मवीर' थे।

उनके आदर्शको लेकर यदि सर्वत्र देशका कल्याण-साधन करनेकी चेष्टा की जाय तो आज जो निरन्तर अनर्थ हो रहे है, वे नही होगे तथा देश और समाजका वातावरण शुद्ध एव निर्मल हो जायगा। 'ऐहिक कल्याण'के मार्गसे 'पारमार्थिक कल्याण'का पथ खुल जायगा । उनका नाम था—'भाईजी'। वास्तवमे सभीके वे 'भाई' थे। जिससे सबके दु खोकी निवृत्ति हो, इस लक्ष्यको लेकर उन्होने अपना व्यक्तिगत एव समाजिक जीवन गढ लिया था ।

जीवन-कर्म-स्रोतके मध्य सतत प्रवाहित होते हुए भी, उनमे साधन एव भक्तिकी अन्त-सलिला भगवदभिमुखी होकर निरन्तर प्रवाहित होती रही तथा वे अन्तमे साधनोचित धामको प्रस्थान कर गये।

वे जीवनके अन्ततक कर्मविमुखताका त्याग करके मानवके हित-साधनमे रत रहे। वे देशके रत्न थे। उन्होने अपनी प्रभाका विस्तार करके देशके शिरोमणि रूपमे सुदीर्घ जीवन-लाभ किया। उन अजातशत्रु, विश्वहितेच्छु एव महान् पुरुपका परम पवित्र आदर्श सर्वत्र लोक-हृदयमे विराजित हो और सात्त्विक कर्मकी धारा अक्षुण्ण रहे—हम यह कामना करते है।

•

दिनकर उगता, रजनी आती, कालचक्र चलता अविराम।
जीवमात्र निज-निज रुचिके करते भले-बुरे सब काम ।।
पर जाती न वृत्ति अन्तरकी काल-कर्म-कर्त्ताकी ओर।
रहती नित्य एक ही रसके आस्वादनमें मत्त—विभोर ।।

सोते-जगते होते रहते सहज प्रकृतिवश सारे काम।
किंतु बसा रहता मनमें कुछ 'अन्य-विलक्षण' आठो याम ।।
नहीं हटाया हटता पलभर, नही छूटता किसी प्रकार।
दुःख परम शुचि नित्य परम सुख देता रहता वह अविकार ।।

—श्रीभाईजी

•

रासपूर्णिमाके उत्सवमें भाईजी एवं बाबा

अप्रतिम-गंगानिष्ठा
(ऋषिकेश प्रवासके समय रुग्णावस्थामें भी नियमित गंगास्नान)

श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा श्रीमोहनलालजी गोयन्दकाके साथ गीताप्रेसके सम्बन्धमें निर्णय लेते हुए

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी रुग्णावस्थामें उनके समीप बैठे हुए भाईजी एवं बाबा

भगवत्कृपाप्राप्त अधिकारी महापुरुष

स्वामी श्रीआत्मानन्दजी

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग, कर्मयोग——सभीमे पूर्ण अनुभवयुक्त एक महान् अधिकारी, आचार्यकोटिके महापुरुष थे । प्रत्येक आध्यात्मिक अधिकारी साधकको आरम्भसे लेकर अन्तिम स्थितितक उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता था । यद्यपि श्रीभाईजी विद्यालयमे शिक्षा प्राप्त किये हुए विद्वान् नही थे, किंतु अपनी साधनाके अभ्यास-बलसे उन्होने जो विद्वत्तापूर्ण कार्य किया, वह अनिर्वचनीय है । परमश्रद्धेय ब्रह्मलीन सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी अनुकम्पा और प्रेरणासे 'कल्याण' और गीताप्रेसका जो कार्य श्रीभाईजीने किया, उससे हम सभी प्रभावित है, और हम सभी उनके गुणो और कार्योका कृतज्ञतापूर्वक आदर करते है ।

उनकी साधनाका श्रीगणेश सन् १९१६ ई० मे जेलके भीतर हुआ । तभीसे उनके जीवनमे भगवन्नाम-जप और भगवान् विष्णुके ध्यानकी साधना आरम्भ हुई । भगवन्नाम-जपका अभ्यास तो उनके जीवनमे आरम्भसे अन्ततक अनिर्वचनीयरूपमे रहा । उनके भाषणो और लेखोमे वर्णित नाम-जपका माहात्म्य अद्‌भुत और विलक्षण है । सन् १९२० मे बम्बईमे ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्सङ्गसे उनकी निर्गुण-निराकार-उपासनामे प्रवृत्ति हुई, जिससे एकान्तमे अचिन्त्य और व्यवहारमे समष्टि-द्रष्टाका ध्यान होकर ब्रह्मभूत स्थिति होने लग गयी । इसके थोडे ही दिनो बाद भगवान्‌की विशेष कृपासे उन्हे सगुण-साकार स्वरूपकी विलक्षण स्थिति प्राप्त हुई, जिससे उनकी साधना सगुण-साकार-उपासना-प्रधान बन गयी और भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो गयी । सवत् १९८३ मे जव वे 'कल्याण' और गीताप्रेसके कार्य-सचालनके लिये गोरखपुर आ गये, तव उनकी भगवद्दर्शनकी लालसा दिनोदिन वढने लगी । सवत् १९८४ के आश्विन शुक्लपक्षमे जसीडीहमे ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी उपस्थितिमे उन्हे भगवान् विष्णुका साक्षात्कार हुआ, उसके वाद वे अपनी निर्गुण-निराकारकी स्थितिकी भी पूर्णताका अनुभव करने लगे । भगवत्प्रेरणासे उनके द्वारा 'कल्याण' और गीताप्रेसका कार्य सहजवृत्तिसे होने लगा । इसके कुछ वर्षो वाद उनकी वृत्ति भगवान् श्रीकृष्णके माधुर्य-रसके आस्वादनमे तल्लीन रहने लगी । इन वर्षोमे उन्हे श्रीराधामाधवके माधुर्य-रसका जो अनुभव हुआ, उसका उन्होने अपने भाषणो, लेखो और कविताओमे वहुत विशद वर्णन किया है, उससे उनके साहित्यका अध्ययन करनेवाले पाठक प्राय परिचित ही होगे ।

मेरा श्रीभाईजीसे संन्यास लेनेके पूर्व लगभग ४० वर्षोतक विशेष सम्पर्क रहा है । सन्यासके वाद भी इन आठ वर्षोमे वही सम्वन्ध वना रहा । श्रीभाईजीसे मुझे साधनामे जो सहयोग मिला, वह अवर्णनीय है । उनकी अहैतुकी कृपासे ही मै आज इस स्थितिमे पहुँचा हूँ । यद्यपि मेरे अंदर वहुत कमजोरी है, कितु वह मेरे स्वभावका दोष है । श्रीभाईजीने अन्तिम समयतक मुझपर जो अनुकम्पा और प्रेम रखा, उसे स्मरणकर हृदय गद्‌गद हो जाता है । उनके गुण, व्यवहार और स्थितिके सम्वन्धमे भी और अधिक लिखनेमे मै असमर्थ हूँ ।

●

जीवन्मुक्त भाईजी

श्रीजयन्तीलाल ना० मान्कर

ऐसे समयमे जब कि देश सास्कृतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक पतनके कगारपर खडा है, भाई श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार-जैसे हिदू-सस्कृतिके अभिमानी और प्रगतिशील आध्यात्मिक महापुरुषका उठ जाना राष्ट्रके लिये बडा दुर्भाग्यजनक है। श्रीपोद्दारजी एक नि स्पृह और आत्म-समर्पित मानवतावादी व्यक्ति थे, जिनका जीवन श्रीमद्भगवद्गीताके आदर्शपर प्रतिष्ठित था। वे समस्त भूतप्राणियोके कल्याणके लिये जिये और उसीके लिये उन्होने महाप्रयाण किया। वे निश्चय ही उच्चकोटिके आध्यात्मिक पुरुष थे।

वे समस्त जीवोमे समान आत्माके दर्शन करते थे। इसी उद्देश्यको दृष्टिमे रखते हुए उन्होने सुप्रसिद्ध 'कल्याण' मासिकका सम्पादन किया और गीताप्रेसके द्वारा अनेक मूल्यवान् ग्रन्थोका प्रकाशन करवाया। वे इस सस्थाकी आत्मा थे और उन्होने गीताप्रेसके सस्थापक महात्मा श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ देशमे सास्कृतिक और आध्यात्मिक जागरणका अथक प्रयत्न किया तथा मानव-समाजमे मैत्री और करुणा आदि उदात्त भावनाएँ जाग्रत् की, क्योकि वे जानते थे कि मैत्री और करुणा—इन दो व्यापक सिद्धान्तोके ऊपर ही विश्वकी शान्ति, खुशहाली और आत्मिक उन्नति निर्भर करती है। इन गुणोके अभावमे ही आज मानव-जातिमे भीतरी और बाहरी द्वन्द्व और सघर्ष व्याप्त है और इसी कारण लोग धर्मके शाश्वत अर्थको समझनेमे असमर्थ है।

'कल्याण' पत्र और गीताप्रेसकी नीति वैदिक सिद्धान्तो और उनके यथार्थ क्रियान्वयनपर आधारित तथा अन्धविश्वास, अज्ञान एव सकुचित साम्प्रदायिक विचारोसे मुक्त रही है। यही कारण है कि जब कभी किसी भी स्थानपर मानवताके लिये सकट उपस्थित हुआ, श्रीजयदयालजी गोयन्दका और श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रेरणाप्रद निर्देशन और आशीर्वादके अन्तर्गत गीताप्रेसके निष्काम कार्यकर्ता सहायताके लिये दौड पडते थे। इन दोनो महानुभावोने मानवताकी रक्षामे महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इन्होने अकाल आदि दैवी सकटोके समय पशुओकी भी उसी श्रद्धा और निष्ठाके साथ सेवा की और इस तरह हिदू-धर्मके उदात्त सिद्धान्तोके गौरवकी रक्षा की। सन् १९३९ ई० मे जिस समय पजाबके हिसार इलाकेमे भीषण अकाल पडा और महात्मा गाधी, ठक्कर बापा और ला० हरदेवसहायकी इच्छानुसार मैंने 'बम्बई जीवदया मण्डल'के तत्त्वावधानमे राहतका कार्य आरम्भ किया, उस समय मुझे गीताप्रेसके निष्काम सेवकोकी सेवाओको देखनेका अवसर मिला। इनके द्वारा एक हजार गौओका एक सेवा-शिविर चलाया जा रहा था, जिसका आगे चलकर सचालन-भार हमे सौपा गया। इस प्रकारके दैवी सकटोके अवसरपर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके नेतृत्वमे गीताप्रेस बडे उत्साहके साथ मनुष्यो और पशुओ-की सहायताका कार्य करता रहा है।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सम्पूर्ण शक्ति गौ, गङ्गा, गायत्री, गौरी और गीताकी

प्रतिष्ठाकी रक्षाके कार्यमे लगती थी और इस प्रकार उन्होने हिंदू-सस्कृतिके यशको उज्ज्वल किया। यद्यपि श्रीपोद्दारजी उग्र विचारवाले नही थे; तथापि जब कभी धर्म और संस्कृतिकी रक्षाके लिये सत-महात्माओने सघर्ष किया, तब वे शक्तिस्रोत बनकर सामने आये। जिस समय सम्पूर्ण गोवंशकी हत्याके निरोधके लिये आन्दोलन चला, सरकारसे लाखों लोगोने गोरक्षासम्बन्धी सवैधानिक उत्तरदायित्वको पूर्ण करनेकी माँग की, तब भाईजीने बडी वीरताके साथ इस सघर्षमे सक्रिय योगदान किया।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार नि स्पृह व्यक्ति थे। अपने विचारोमे बहुत स्पष्ट, सिद्धान्तोके प्रति बडे दृढ और विचारपूर्वक आगे कदम बढानेवाले थे। इन उच्च आदर्शो, त्याग तथा साधनाके बलपर उन्होने सबका स्नेह और आदर प्राप्त किया तथा स्वयं जीवन्मुक्त हो गये। श्रीपोद्दारजीके निधनसे निश्चय ही राष्ट्रकी अपरिमित क्षति हुई है, जिसकी पूर्ति होना बडा कठिन प्रतीत होता है। भाईजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए मै परमात्मासे प्रार्थना करता हूँ कि देशवासी उनके महान् जीवनसे सदा प्रेरणा प्राप्त करते रहे।

●

मैंने कभी न चाहा तुमको, तुमने चाहा बारंबार।
बिना बुलाये ही आ हियमें, दर्शन दिये, किया अति प्यार ।।
नित आदरके बदले तुमने मुझसे पाई निज दुतकार।
दूर चले जानेपर मुझको खींच लिया नित भुजा पसार ।।

'लौटो, उस पथपर मत जाओ' कहा कानमे कितनी बार।
तब भी चला गया, लौटानेको तुम दौड़े प्रिय! हर बार ।।
चिर अपराधी, पापीका तुमने हँस, उठा लिया सब भार।
मेरी निज निर्मित विपदासे गोद उठाकर लिया उबार ।।

—श्रीभाईजी

●

ऋषिकल्प श्रीभाईजीकी पुण्यस्मृतिमें

पद्मभूषण डा० श्रीभीखनलालजी आत्रेय

भारतवर्षका यह सौभाग्य रहा है कि जब-जब धर्मका ह्रास हुआ है, तब-तब सृष्टि-कर्त्ता और ससारचालक भगवान्‌ने यहाँपर किसी-न-किसी रूपमे अवतीर्ण या प्रकट होकर धर्मका उद्धार किया है। भगवान्‌का अवतार अनेक रूपोमे होता है—मनुष्यरूपमे तो होता ही है, वह ग्रन्थो और पुस्तकोके रूपमे भी होता आया है—जैसे वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, रामचरितमानस, गुरुग्रन्थसाहव, सतोकी वाणियाँ आदिके रूपमे भगवान्‌ने प्रकट होकर डूवते हुए धर्मका उद्धार किया है। आधुनिक समयमे जिन रूपोमे भगवान्‌ने प्रकट होकर धर्मकी रक्षा और उद्धार किया है, उनमे रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाधी, महामना मदनमोहन मालवीय, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार और उनके द्वारा प्रवर्तित पत्रिकाएँ 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' तथा गीताप्रेससे प्रकाशित अन्य ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। इनके द्वारा धर्मका उद्धार और प्रचार वहुत उत्तम रीतिसे भारतीय जनतामे तथा विदेशोमे भी प्रचुरमात्रामे हुआ है और हो रहा है।

'कल्याण' और गीताप्रेसके सम्पादक एव सचालक ऋषिकल्प श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अपने विश्व-वन्धुत्वके कारण 'भाईजी' नामसे विख्यात थे। वे एक आदर्श व्यक्ति थे और सभी वाञ्छनीय सद्‌गुणोसे विभूषित थे। उन्होने अपना समस्त जीवन भगवान्‌के अर्पण करके धर्म-प्रचार और दीन-दुखी मनुष्योकी सेवामे लगा दिया था। मै तो उनको भगवान्‌की विभूतिका अवतार मानता हूँ। मेरा उनसे कोई विशेष व्यावहारिक सम्पर्क नही रहा; पर जो थोडा सम्पर्क दैवयोगसे और मेरे सौभाग्य तथा पूर्वजन्मके पुण्योके कारण हुआ है, उसका मै यहाँपर सकेत करते हुए उनके प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता हूँ।

वहुत वर्ष पूर्वकी वात है, जव मै एक अज्ञात और साधारण अध्यापक (हिंदू विश्वविद्यालय, काशीमे) ही था, मुझे भाईजीका एक पत्र मिला, जिसमे उन्होने मुझसे 'कल्याण'के विशेषाङ्क 'ईश्वराङ्क' के लिये एक लेख लिखनेका आग्रह किया। यह समझकर कि इस वर्तमान वैज्ञानिक युगमे पाश्चात्य देशोमे प्रचलित और वहाँसे भारतमे आया हुआ प्रकृतिवाद (Materialism) ही ईश्वरकी सत्तामे विश्वासके मार्गमे एक महान् रुकावट है, मैने एक लेख प्रकृतिवादकी वैज्ञानिक और दार्शनिक आलोचनापर लिखकर भाईजीके पास भेज दिया। उन्होने उसे पसद किया और 'ईश्वराङ्क'मे प्रकाशित कर दिया। उस लेखके लिये श्रीभाईजीने वहुत आभार प्रकट किया और मेरे पास पुरस्कारस्वरूप कुछ द्रव्य भिजवाया। मैने उनको लिखा कि लेख पैसा प्राप्त करनेके लिये नही लिखा गया था और भविष्यमे मै कभी 'कल्याण'से अपने लेखोका पुरस्कार प्राप्त करना नही चाहूँगा। इस छोटे-से त्यागकी भावनासे भाईजी इतने प्रसन्न हुए कि तवसे लेकर आजतक मेरा नाम उन व्यक्तियोमे लिखा गया, जिनको मासिक और वार्षिक 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु' वरावर निःशुल्क भेजे जा रहे है। मैने वर्षोसे न कोई लेख और न कोई पैसा

'कल्याण'के लिये भेजा है। यह भाईजीकी पहली कृपा मेरे ऊपर हुई, जिसको मै कभी नही भूल सकता।

कुछ वर्ष पहले जब मै प्रथम बार 'गोरखपुर विश्वविद्यालय'के किसी कामसे गोरखपुर गया, तब मैंने गीताप्रेसके भी दर्शन किये। भाईजीको जब यह ज्ञात हुआ कि मै वहाँपर आया हुआ हूँ, तव उन्होने एक बडा बडल गीताप्रेससे प्रकाशित बहुमूल्य ग्रन्थो—उपनिषद्, महाभारत, भागवत, रामचरितमानस आदिका मुझे सादर और सम्मानके साथ भेंट किया। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मै वहुत कृतज्ञ हुआ। यह उनकी मेरे ऊपर महान् कृपा थी और मैंने उन ग्रन्थोका अवलोकन करके जीवनमे वहुत लाभ उठाया है।

जब मेरी पुस्तक 'योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त' प्रकाशित हुई, तब मैंने भाईजीको उसकी एक प्रति भेटके रूपमे भेजी। उसको पाकर उन्होने मुझे प्रोत्साहन दिया, जो उनके इन शब्दोसे प्रकट होता है—"योगवासिष्ठको प्रकाशमे लाकर तथा उसके दार्शनिक उच्च सिद्धान्तोको जनताके सम्मुख रखकर—विशेषत विदेशी विद्वानोकी आँखे खोलकर, आपने भारतीय गौरव और आदर्शका मुख उज्ज्वल किया है। वस्तुत' इस दिशामे यदि आप प्रयत्नशील न होते तो वहुत दिनोतक यह ग्रन्थरत्न अन्धकारमे ही पडा रहता तथा भारतवर्षके वाहरके लोग इसके विषयमे सर्वथा अनभिज्ञ रहते। भारतीय सस्कृतिके इतिहासको गौरव प्रदानकर आप कोटि-कोटि हृदयोके धन्यवादके पात्र वने है।"

पाठक सोच सकते है कि इन शब्दोका लेखक कितने उदार हृदयका होगा और इन शब्दोको पढकर कितना प्रोत्साहन किसी व्यक्तिको प्राप्त हो सकता है। कई बार मुझे प्रोत्साहन देनेके लिये उन्होने अग्रेजीमे भी पत्र लिखे। मैने उनके शब्दोको एक महान् आत्मा और संतके आशीर्वादरूपमे लिया था और उनका आशीर्वाद समय आनेपर सफल हुआ। भाईजीका आशीर्वाद अमोघ था और उसने अपना प्रभाव प्रकट किया।

कुछ वर्ष पहले' देहरादून-मसूरी रोडपर स्थित 'आत्रेयनिवास'पर 'दर्शन-मनोविज्ञान और परामनोविद्या'की एक शोध-सस्थाके उद्घाटनके अवसरपर एक निमन्त्रण-पत्र श्रीभाईजीके पास भी भेज दिया गया था। उन्होने अपने अमूल्य आशीर्वादके साथ एक बहुत बड़ा बडल गीताप्रेससे प्रकाशित बहुमूल्य पुस्तकोका भी सस्थाके नाम भिजवा दिया। श्रीभाईजीद्वारा भेजी गयी पुस्तके खूब पढी जाती है और उनसे पाठकोको वहुत वडा आध्यात्मिक लाभ होता है।

एक वार मै भाईजीका दर्शन करने गोरखपुर गया। उस समय वे गीतावाटिकामे उपस्थित थे। पहुँचनेपर वे उठकर मिलनेको आये, वडे प्रेमके साथ मिले और घंटोतक विविध आध्यात्मिक एव धार्मिक विषयोपर वात करते रहे। इस वार्तालापमे लेखकको उच्चकोटिके सत्सङ्गका लाभ प्राप्त हुआ। उस समयकी बहुत-सी वाते लेखकके हृदय-पटलपर अङ्कित है और जीवनके लिये पथ-प्रदर्शक वनी हुई है।

ये कुछ वाह्य अनुभव है। आन्तरिक अनुभव वाणीमे व्यक्त नही हो सकते। सचमुच भाईजी एक विलक्षण महापुरुष थे, जिनके लिये 'महान् महात्मा' और 'परोपकारी पुरुष' शव्दोका प्रयोग तो वहुत नगण्य है। वे कितने महान् थे, इसका अदाजा लगाना वहुत कठिन है।

●

प्रकृत वैष्णव

डा० श्रीनीरजाकान्तजी चौधुरी (देवशर्मा)

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'प्रकृत वैष्णव अपनेको तृणसे भी सुनीच समझे। वृक्षको काटनेपर भी जैसे वह काटनेवालेको भी छाया तथा फल आदि प्रदान करनेसे विरत नही होता, उसी प्रकार अत्याचारपर भी वैष्णव सहिष्णु बना रहे। स्वय मान्यताको तुच्छ समझते हुए औरोको मान्यता प्रदान करे तथा अविरल हरिनाम-कीर्तन करे।'—यह स्वय श्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेवकी उपदेश-वाणी है।

परतु इस प्रकारका प्रकृत वैष्णव क्या आज कोई है? एक व्यक्ति थे, हमने उनको देखा है, और देखकर धन्य हो गये है । वे थे हमारे 'भाईजी'—प्रकृत वैष्णव हनुमानप्रसादजी। उनके भीतर जो गुण थे, उनमेसे मै कुछको ही जानता हूँ, तथापि जितना अनुभव किया है, उतना कहनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।

भाईजी 'कल्याण'के सम्पादक थे। सनातनधर्म-जगत्के प्रकृत अभ्युदय और नि श्रेयसके एकमात्र निर्धारक थे। आज 'कल्याण' उसी सनानतधर्मकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका है। यह केवल भारतकी ही नही, एशियाकी—यहाँतक कि सारे ससारकी प्रधान धर्म-पत्रिकाओमे है। इसकी उपमा यही है। सामान्य रूपमे आरम्भ करके असाधारण प्रतिभाके बलसे उन्होने इस 'कल्याण'का विकास किया है। आज इसकी प्रचार-सख्या प्राय एक लाख सत्तर हजार है। यदि दस आदमी भी एक अङ्कको पढते हो तो प्राय बीस लाख नर-नारी इससे यथार्थ 'कल्याण' प्राप्त करते है। 'कल्याण'-की कई विशेषताएँ है । यह विज्ञापन नही लेता, अर्थात् व्यवसायी नही है। कोई समालोचना या दूसरे धर्मकी निन्दा इसमे नही होती। साथ ही इसका आदर्श वर्णाश्रमधर्मकी प्रतिष्ठा है। 'कल्याण'की छपाई, चित्र, भाषा—सभी सुन्दर है। श्रेष्ठ ज्ञानीजनोके लेख चाहे किसी भी भाषाके हो, उनका हिंदीमे अनुवाद कराया जाता है। विशेषाङ्कोकी कोई तुलना नही है। एक-एक विशेषाङ्क इतने समृद्ध है कि सोनेसे तौलनेपर भी उनका मूल्य नही हो सकता, तथापि पोद्दारजी यह अमूल्य धन प्राय कागजके मूल्यमे देशवासियोमे वितरण करते रहे है। आज मनमे आता है कि एक व्यक्ति अपने जीवनमे 'कल्याण'के इन सारे विशेषाङ्कोको पढ पायेगा या नही, इसमे सदेह है। वे इस अमूल्य, अनन्त ज्ञान और भक्तिके समुच्चय, अक्षय भडारको हमे दे गये है, उनका यह अवदान अपूर्व है।

मै 'कल्याण'का एक मुग्ध पाठक और सामान्य लेखक हूँ। 'गो-अङ्क'मे मेरा 'गौ-ब्राह्मण और जगच्चक्र' शीर्षक लेख सबसे पहले निकला था। उसके बाद दूसरे प्रवन्ध छप चुके है और छप रहे है। मेरा ज्ञान और वुद्धि सीमित है, परतु न जाने भाईजीने मेरे भीतर क्या देखा था, उन्होने मेरा कोई लेख कभी वापस नही किया।

प्राय १७ वर्ष पूर्वकी बात है, उस समय मैं इन्दौरमे नियुक्त था। सहसा एक दिन दोपहरको भाईजीका मेरे घर शुभ पदार्पण हुआ। वे तीर्थ-यात्रा-गाडीसे भारतके तीर्थोका भ्रमण करनेके लिये निकले थे। इन्दौर पोस्ट आफिससे मेरा पता-ठिकाना पूछकर मिलने आये थे। यह कितने प्रेमकी बात है—मै क्या बतलाऊँ? घरका तैयार किया 'सदेस' (मिठाई-विशेष) उनको जलपानके लिये दिया था और दिया था अपने गुरुदेवका सवाद। अनन्तश्री श्रीसीतारामदास ओकारनाथ महाराज उस समय खण्डवा जिलेमे ओकारेश्वर तीर्थके आश्रममे मौन रहकर गम्भीर योग और तपमे निरत थे। मेरे अनुरोधसे पोद्दारजीके साथ उनके दलके कुछ लोग भी आश्रममे गये थे। श्रीश्रीगुरुदेव मौनावस्थामे दर्शन नही देते। परंतु श्रीपोद्दारजीके पहुँचते ही वे तत्काल वाहर आये और तुलसीदल और पुष्पमाला देकर वही समाधिमग्न हो गये। इस अपूर्व सधि-क्षणके दृश्यका आलोक-चित्र लिया गया था।

श्रीश्रीगुरुदेव इसके पश्चात् दो वार गोरखपुर गये। उन्होने 'कल्याण'-कार्यालयके प्राङ्गणमे, जहाँ उस समय वृष्टिके कारण कीचड हो गया था, लोट-पोट की तथा कहा था कि 'यह धूलि अति पवित्र है।' उनके साथ भाईजीका अनेक वार साक्षात्कार हुआ था। ऋषिकेशमे भाईजी उनके आश्रममे गये थे। श्रीश्रीगुरुदेवने भागीरथीके उस पार स्वर्गाश्रममे भाईजीको दर्शन दिये थे। श्रीगुरुदेव अनेक वार कहते है—"भाईजी 'कल्याण'के द्वारा जो कर रहे है, उसकी तुलना नही है।" श्रीगुरुदेवकी रचनाएँ, विशेषत· 'पागलकी झोली' 'कल्याण'मे प्राय· प्रकाशित होती रहती है।

एक वार श्रद्धेय श्रीयुत वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय महाशयके द्वारा ज्ञात हुआ कि "आर्यलोग वाहरसे नही आये" नामक मेरी एक पुस्तिका गीताप्रेससे प्रकाशित हुई है। यह सुनकर मै विस्मित हुआ, क्योकि 'कल्याण'मे यह लेख भूमिकाके रूपमे छपा था। इस विषयमे और भी वहुत कुछ लिखना था और भाईजीने मुझसे विना पूछे उसे पुस्तकरूपमे छाप डाला। यह कितनी आत्मीयता—एकात्मभावका परिचायक है, इसे वाणीमे व्यक्त नही किया जा सकता। मै उनका कनिष्ठ भाई हूँ, इसी कारण उन्होने मुझे पूछा भी नही था।

१९६५ ई० के वर्षाकालमे मै पहले-पहल गोरखपुर गया, भाईजीके साथ साक्षात्कार किया। उनका स्वास्थ्य शिथिल था, तथापि उन्होने मुझे कई वार दर्शन दिये। मेरे 'Image-worship in Ancient India' नामक ग्रन्थकी भूमिका, जो लगभग ३० पृष्ठोकी थी, उन्होने मन लगाकर सुनी। इस पुस्तकके लिये उनकी अनुकूल सम्मति प्राप्त हुई थी। पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होगी, परतु दु ख है कि उनको सर्मापित करनेका अवसर न मिलेगा।

मुझको उन्होने "Glories of Varnashrama" पर लेख लिखनेके लिये कहा था। "वर्णाश्रमकी महत्ता" शीर्षकसे वह 'कल्याण'मे छप गया है।

वहुत दूर रहता हूँ। देखनेकी इच्छा होनेपर भी वह पूरी नही होती। जुलाई १९७० ई० मे श्रीश्रीगुरुदेवके दर्शनके लिये मै ऋषिकेश गया था। मनमे आशा थी कि स्वर्गाश्रममे भाईजीसे भेट होगी, किंतु दुर्भाग्यकी वात कि अस्वस्थताके कारण वे वहाँ जा न सके थे। पश्चात् जाडेमे गोरखपुर जाकर कुछ दिन रहा। अष्टप्रहर नामकीर्तन चल रहा था, उसे देखा। जव भाईजीसे भेट करने गया, तव देखा कि मेरा ही लेख 'अग्निपुराणकी प्राचीनता' उनके हाथमे है और उसे वे पढ रहे है।

शरीर वडा शिथिल था। अतएव वे चारपाईपर लेटे थे। मुझे पासमे कुर्सीपर बैठाया। आश्चर्यकी वात है कि जव-जव मै उनसे मिलने गया, प्रत्येक वार मेरे बैठते और उठते समय वे पैर छूकर प्रणाम करते थे। मै उनमे श्रद्धा रखता था, उन्हे वडे भाईके समान समझता था, किंतु विवश था, ब्राह्मणका शरीर था और वे वर्णाश्रमकी मर्यादाका पालन करनेवाले थे। अतएव उसमे वाधा डालना मेरे लिये सम्भव नही था।

मै कई लेख लेकर गया था। 'आर्यलोग बाहरसे नही आये'का विस्तृत सशोधन तथा 'वहिर्भारते वैदिक सभ्यता' (भारतके वाहर वैदिक सभ्यता) की पाण्डुलिपि उनको दी। उन्होने मेरे लेखोको देखकर उत्साह प्रकट करते हुए कहा—'आपके सव लेख छापे जायँगे।'

भाईजी बगालमे रह चुके थे, बँगला भाषा वहुत अच्छी जानते थे। उनको ब्रिटिश शासनमे क्रान्तिकारी पार्टीसे सम्वन्ध रखनेके कारण किस प्रकार नजरबद किया गया था तथा सामान्य मासिक वृत्तिमे भी वे किस प्रकार अपना निर्वाह अच्छी प्रकार कर लेते थे, ये सारी वाते उन्होने मुझे वतलायी थी। वे रसिक पुरुष थे। देश और धर्मके लिये सर्वस्व-त्यागके लिये प्रस्तुत थे, स्वाधीनताके युद्धमे भी उनका अवदान था।

मै गोरखपुर केवल दो वार जा सका हूँ, परतु इस स्वल्प समयमे ही उन्होने 'भाईजी'के रूपमे मेरे हृदयपर अधिकार कर लिया। उनके स्नेहका प्रकाश और प्रभाव भी मैने अनुभव किया। वही अन्तिम दर्शन था। उनकी चरम अवस्था सनिकट आ गयी थी। दिन-रात परिश्रम करते रहनेसे देह जीर्ण हो गया था, परतु मै कल्पना नही कर सकता था कि इतना शीघ्र सर्वविशेष हो जायगा। जानता हूँ कि सवको एक दिन जाना पडेगा, किंतु मैने वास्तवमे एक आत्मीयजनको खो दिया है, अपने 'वडे भाई'को खो दिया—इस कारण सदा ही खोया-खोया रहता हूँ, मन नही मानता।

आज घोर कलिकी ताण्डव-लीला हो रही है। इस पुण्यभूमिमे जो नारकीय घटनाएँ प्रतिदिन घट रही है, उनसे कभी-कभी यह सदेह होता है कि वर्णाश्रम और सनातनधर्म वचेगा या नही। किंतु जव सोचता हूँ कि श्रीगोयन्दकाजी और श्रीपोद्दारजीके द्वारा स्थापित और यत्न-पूर्वक सवर्द्धित गीताप्रेस गीता और शास्त्र-ग्रन्थोकी लाखो-लाखो प्रतियाँ अति सुलभ मूल्यमे छापकर वितरण कर रहा है, गाँव-गाँव, नगर-नगरमे—समूचे भारतमे गीताप्रेसकी मुद्रित पुस्तके प्रचारित हो रही है, 'कल्याण'की ग्राहक-सख्या लगभग पौने दो लाख है, तव आशा होती है कि यह धर्म जानेवाला नही है, अभी और टिकेगा।

यह एक अभूतपूर्व और महती कीर्ति है, देशका गौरव है। पोद्दारजीने अलौकिक परिश्रम करके यह 'धर्मसत्र' हमारे लिये स्थापित कर दिया है। गीताप्रेसके रूपमे जो महाप्रासाद गठित हुआ है, वह कलिमलध्वसी, धर्मका आश्रय और सनातनधर्मका वर्म और दुर्ग है।

भाईजी विशाल-कीर्ति थे। उनके गुणोके सागरका वर्णन मै क्या करूँ ? मेरे मनमे आता है कि वडे भाग्यसे इस महापुरुषके साथ मेरा सयोग हुआ था। श्रीमद्भागवतमे आया है कि 'कलिमे अनेक मुक्तपुरुष धर्मके उद्धारके लिये जन्म लेते है।' श्रीभाईजी ऐसे ही पुरुष थे।

श्रीभाईजीकी कथनी और करनी एक थी——ऐसा अनुभवमे आया । उन्होने साबुनमे गौ और शूकरकी चर्बीके विरुद्ध प्रचार करके ही दम नही लिया, अपितु चर्बीरहित साबुन तैयार करवा दिया । पशुओकी हत्यासे प्राप्त चमड़ेका जूता पहनना ठीक नही कहकर वे चुप नही बैठे, व्यवहारके लिये हिसारहित और सस्ता जूता तैयार करवा दिया । वे महाज्ञानी थे, परतु अपने नामका विज्ञापन उन्होने नही किया । 'शिव' नामसे उनकी रचना छपती है, यह मै भी नही जानता था ।

श्रीभाईजी चले गये, परतु आज हमको उनकी वडी आवश्यकता थी । हमारी अभिलाषा है कि जो कार्य वे आरम्भ कर गये है, वह सारे देशको जाग्रत् करे, उद्बुद्ध करे । वर्णाश्रमकी महामहिमाका पाञ्चजन्य फिर तुमुल नाद करके आसुरी-सम्पदारूप शत्रु-पक्षको विध्वस्त करे ।

●

श्रीराधाकृष्णकी कृपा-प्राप्त गृहस्थ संत

पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री

पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार राजर्षि जनककी भाँति एक गृहस्थ किंतु सिद्ध सत थे । चैतन्यमहाप्रभुके वाद देशको प्रेम, भक्ति और हरिनाम-सकीर्त्तनका सदेश देनेके लिये इन्हीका इस धराधाममे अवतरण हुआ था । इन्होने 'कल्याण' पत्रिका तथा अपने प्रवचनोद्वारा सम्पूर्ण भारतमे भक्तिकी वह रसधारा वहायी, जिसमे अवगाहन करके आज असख्य नर-नारी शान्ति-सुधाका आस्वादन कर रहे है । वे अपने मुँहसे तो कभी नही कहते थे, तथापि लाखो लोगोका यह अटूट विश्वास है कि इन्हे भगवान् श्रीराधाकृष्णका प्रत्यक्ष दर्शन तथा कृपा-प्रसाद प्राप्त है । भक्तिशास्त्र तथा दर्शनोके सिद्धान्त इनके लिये हस्तामलकवत् थे । इनका व्यवहार भी सवके साथ इतना मृदुल, कोमल तथा आत्मीयतासे भरा होता था कि सभी इनको अपने सगे भाईसे भी अधिक अपना मानते थे । जो एक वार इनसे मिला, सदाके लिये इनका अपना हो गया । महाकवि कालिदासने लिखा है——'राजा अजसे जो भी मिलता था, वही अपनेको ही उनका सर्वाधिक कृपापात्र मानता था ।' यह वात श्रीभाईजीके सम्बन्धमे सटीक बैठती है और यही इन्हे महात्मा तथा सर्वात्माके ऊँचे सिहासनपर बैठा देती है । मेरा इनके साथ लगभग चालीस वर्षोका सम्पर्क रहा है । इस दीर्घकालके अनुभवके आधारपर ही उपर्युक्त पक्तियाँ मैने लिखी है ।

●

**जिसने प्रभुसे कहा हृदयसे——'मुझे बना लो तुम अपना' ।
सहज उदार परम हरिने स्वीकार किया उसको अपना ।।
उसने मुँह मोड़ा, पर हरिने तजा न कभी विरद अपना ।
उसके अपने बने, बनाये रक्खा उसे सदा अपना ।।**

—श्रीभाईजी

●

गृहस्थ-वेषमें एक संत

डा० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज

जहाँतक मुझे स्मरण है यह वात सन् १९२८ ई० की है। मेरे भगवद्भक्तिपरक दो छन्द 'कल्याण'मे प्रकाशित हुए थे। सम्पादक महोदयने मुझे उस अङ्ककी एक प्रति भेजी थी, और तभीसे मेरा उनके साथ लेखक-सम्पादकका सम्वन्ध स्थापित हो गया। 'कल्याण'का उद्देश्य प्रारम्भसे ही केवल धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसम्वन्धी लेखोको प्रकाशित करना रहा है, और शिक्षित जनताने उसका सदा हृदयसे स्वागत किया है। उसके स्तम्भोमे द्वेषपूर्ण एव पर-मत-खण्डनात्मक लेखोको कभी स्थान नही मिला है।

श्रीपोद्दारजी त्यागपूर्ण, परिश्रमी और भक्तिमय जीवन वितानेवाले गृहस्थ-वेषमे एक सत थे। जिस मार्गका वे दूसरोको उपदेश देते थे, उसपर वे स्वय भी चलते थे। कष्टपूर्ण रोगके अन्तिम दिनोमे भी वे अपनी भजन-साधनामे सतत प्रवृत्त रहे।

श्रीपोद्दारजीका वैदुष्य व्यापक था, किंतु वे अपनेको शास्त्रवेत्ता वतानेमे सकोच करते थे। एक वार अपनी निरभिमान शैलीमे वे कह रहे थे, 'मेरा जो ज्ञान है, वह विद्वानोका उच्छिष्ट-प्रसाद है।' उनके व्यवहारमे विनम्रताका पुट वहुत अधिक था। वे श्रीराधाकृष्णकी उपासनाके विपयमे एक प्रामाणिक विद्वान् माने जाते है।

एक वार उन्होने अपने एक मित्रके घर विवाहोत्सवमे निमन्त्रित एक विद्वान्का दक्षिणा-प्रदानद्वारा सम्मान करना चाहा। निमन्त्रित व्यक्तिने यह कहकर कि 'मै तो केवल उत्सव-दर्शनार्थ यहाँ आया था' दक्षिणा लेना स्वीकार नही किया। इसपर विनयावनत पोद्दारजीने उस दक्षिणाद्रव्यको उनके हाथमे न देकर चरणोमे समर्पित कर दिया। इस भावमयी दक्षिणाका वे विद्वान् प्रत्याख्यान न कर सके। यह घटना नयी दिल्लीकी है।

ऐसा ही एक प्रसङ्ग स्वर्गाश्रमका है, जहाँ पोद्दारजीने एक विद्वान्के चरणोका स्पर्श करना चाहा। विद्वान् व्यक्ति वयमे न्यून थे, अतएव उन्होने सकोचवश पोद्दारजीके द्वारा अपने चरणोके स्पर्शका विरोध किया। इसपर पोद्दारजीका सक्षिप्त उत्तर था—'किंतु, श्रीमन्! आपके चरणोको स्पर्श करनेका तो मेरा अधिकार है। इससे आप मुझे वञ्चित न करे।'

श्रीपोद्दारजी एक वदान्य व्यक्ति थे। दिल्लीके एक सज्जनको, जो परिस्थितिवश सकटापन्न हो गये थे, अपनी पुत्रीके विवाहके लिये धनकी आवश्यकता आ पडी। उन्होने एक मित्रके माध्यमसे श्रीपोद्दारजीसे आर्थिक सहायताकी याचना की। परिणामत पोद्दारजीने उन सज्जनके घरपर चार अङ्कोवाली अपेक्षित धनराशि भिजवा दी। उनकी विपुल आर्थिक सहायताके द्वारा एक अन्य कन्याका भी विवाह सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जानेकी वात मुझे विदित है। धन्य है

ऐसी उदारता ! व्यक्तित्वके ऐसे ही उदात्त विकासके कारण पोद्दारजीने अपने परिचित-वर्गमे 'भाईजी'के उपनामसे प्रसिद्धि पायी ।

गत चार वर्षोसे 'श्रीराधामाधव सेवा-सस्थान'द्वारा प्रकाशित 'सत्सङ्ग-सुधा' नामक पाक्षिक-पत्रिकाके प्रत्येक अङ्कमे हमे श्रीपोद्दारजीके उदार विचार पढनेके लिये मिलते रहे है । वे विचार वास्तवमे मानव-जीवनके विशेष उन्नायक है ।

कुछ वर्ष पूर्व श्रीपोद्दारजीके उद्योग और सत्परामर्शसे एक 'चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'की स्थापना हुई थी, जिसका उद्देश्य है देशके चार धामोमे—अर्थात् पुरी, रामेश्वरम्, द्वारका और वदरीनारायण क्षेत्रमे—वेदोके शास्त्रीय अध्ययनकी परम्पराको वनाये रखना । हर्षका विषय है कि इस दिशामे कुछ सतोषजनक कार्य हो चुका है । जब यह योजना पूर्ण हो जायगी, तब गीताप्रेसकी विभिन्न गतिविधियोके समान वह भी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका एक अन्यतम स्मारक बन जायगी ।

●

धर्मप्राण महापुरुष

श्रीहरिश्चन्द्रपति त्रिपाठी

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन धर्मप्राण महापुरुषोमे थे, जिनके जीवनका अधिकाश भगवद्-भक्ति और समाजकी सेवामे ही व्यतीत हुआ । गीताप्रेसके माध्यमसे, जिसके वे प्राण थे, पोद्दारजीने श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित सनातनधर्मकी आजीवन सेवा की । उपनिषद्, गीता, वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, रामचरितमानस इत्यादि धर्मग्रन्थो एव सर्वमान्य सतोकी वाणियोके प्रामाणिक और सर्वसुलभ सस्करणोके प्रकाशनके द्वारा गीताप्रेसने भारतवर्षके कोने-कोनेमे भव्य भारतीय सस्कृतिका सदेश विकीर्ण किया है । इसे मै पोद्दारजीकी सवसे वडी देन मानता हूँ ।

श्रीपोद्दारजी भारतीय सस्कृतिके अन्यतम पुजारी थे । 'कल्याण' मासिकपत्रके द्वारा उन्होने भारतीय सस्कृतिका सदेश विदेशोमे भी पहुँचाया । धार्मिक साहित्यका उनका गहरा अध्ययन था । सस्कृत-वाङ्मयमे उनकी वडी रुचि थी । सत-साहित्यके वे मर्मज्ञ थे ।

एकान्तभक्त होनेके कारण पोद्दारजीके हृदयमे मैत्री-करुणाका साम्राज्य था । पौराणिक कालके राजा शिविके समान उन्होने भी **'कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्'** को ही अपने जीवनका लक्ष्य वनाया था ।

देशमे शायद ही कोई धार्मिक अनुष्ठान हुआ हो, जिसमे पोद्दारजीका योगदान न रहा हो । पुण्यभूमि मथुरामे 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'के जीर्णोद्धारके लिये पोद्दारजी आजीवन प्रयत्न करते रहे और उन्हीके द्वारा उसका शिलान्यास हुआ ।

गोरखपुर और देवरियाके जनपद वाढ़की विभीषिकाके लिये प्रसिद्ध है । विदेशी शासन-कालमे प्रकृतिके कोपसे संत्रस्त दीन जनताकी राहतके लिये कोई विशेष प्रयत्न शासनकी ओरसे

नही होता था। उन दिनो पोद्दारजीकी प्रेरणासे गीताप्रेसने वाढ-पीडितोकी वडी उदारतापूर्ण सहायता की थी, जिसे वहाँके लोग अव भी याद करते है। अव तो समय वदल गया, दैवी-प्रकोपजन्य आपत्तियोके निवारणके लिये शासनकी ओरसे पर्याप्त साधन और सहायता उपलब्ध हो जाती है, किंतु उन दिनो इस प्रकारकी सेवाका वडा महत्त्व था ।

पोद्दारजीका हृदय उदार था। विशुद्ध सनातनधर्मके अनुयायी होते हुए भी वे अन्य धर्मोका आदर करते थे, इसीलिये वे सभी धर्मावलम्बियोमे समानरूपसे प्रिय थे।

पोद्दारजी एक वहुश्रुत साहित्यिक थे, जिनके हृदयमे करुणा और भक्तिकी स्रोतस्विनी तरङ्गित होती थी। उनके लिखे हुए कुछ पद प्राचीन श्रीकृष्ण-भक्त सतोकी याद दिलाते है। वे हिंदीके भक्ति-साहित्यकी अमूल्य निधि है।

गरीबो और दु खियोकी वेदनासे पोद्दारजी द्रवित हो जाते थे। सन् १९५५ या ५६ की वात है। उन दिनो मै गोरखपुरमे ही वकालत कर रहा था। एक डकैतीका मुकदमा चल रहा था, जिसमे कई अभियुक्त थे, जो हवालातमे बद थे। एक अभियुक्तके सम्वन्धमे पोद्दारजीका विश्वास था कि वह निरपराध है। वे मेरे पास आये और उन्होने मुझसे कहा कि मै उसके सम्वन्धमे कुछ छानबीन कर लूँ। उनके इस कथनसे मुझे विश्वास हो गया कि कोई खास वात है। मैने जाँच-पडताल करायी तो पता चला कि वह व्यक्ति निर्दोष था और वह मुक्त किया गया। उसे इस वातका पता भी न था कि उसकी मुक्तिमे पोद्दारजीका हाथ था।

उन्ही दिनोकी एक दूसरी घटना याद आती है। पोद्दारजीके निमन्त्रणपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद गीताप्रेसके मुख्य-द्वारके उद्घाटन और चित्र-मन्दिरके अनावरणके लिये गोरखपुर पधारे थे। वडी धूम-धाम थी और उनके दर्शनके लिये हजारोकी सख्यामे लोग इकट्ठे हो रहे थे । गीताप्रेस शहरके मध्यमे स्थित है। भीड-भाडके कारण जिला-अधिकारियोने सुरक्षाके कुछ प्रश्न उपस्थित किये, किंतु श्रीराजेन्द्रवाबूके गीताप्रेसके प्रति प्रेम और पोद्दारजीके मर्मस्पर्शी अनुरोधने सभी कठिनाइयोको हल कर लिया और उद्घाटन एव अनावरणका कार्यक्रम वडे ही उल्लासपूर्ण वातावरणमे सम्पन्न हुआ।

पोद्दारजी अव नही रहे, किंतु उनकी स्मृति हृदय-पटलपर सदा अङ्कित रहेगी।

●

एक युगस्रष्टा

पं० श्रीसुरतिनारायणमणिजी त्रिपाठी

श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे निस्सदेह धार्मिक उत्साह, सास्कृतिक जागरण, उच्चतम पवित्रता, सुरुचि, ईमानदारी, सतत्व, गहन पाण्डित्य एवं विद्वत्ता, सगठन-कुशलता सद्-व्यवहार आदि उदात्त भावोका एक युग समाप्त हो गया। इतना ही नही, आधुनिक हिदू-जगत्के समक्ष एक ऐसी रिक्तता आ गयी है, जिससे उसकी अनेक प्रिय परम्पराओके खण्डित होनेकी आशङ्का होने लगी है।

वहुत-से लोगोने विश्वास एव अविश्वासकी मिश्रित भावनाके साथ वाल्मीकिको अपने अश्लाघ्य जीवनका परित्याग कर ऋषिके रूपमे परिवर्त्तित होते सुना था, श्रीभाईजीको हमने हिसामे विश्वास करनेवाले क्रान्तिकारीसे सत बनते देखा। वे एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होने असामान्य प्रतिभा एव अध्यवसायसे गीताप्रेसको एक विशाल सस्थाके रूपमे विकसित कर दिया और उसके द्वारा गोरखपुरको विश्वविख्यात बना दिया। 'कल्याण'के माध्यमसे जगत्को प्राचीन हिदू-विचारधारा, धर्म एव सस्कृतिका आभ्यन्तरिक परिचय प्रदान किया। किसी अन्य व्यक्तिने अथवा किसी अन्य सस्थाने गत कई दशाब्दोमे अपने सहधर्मियो एव अन्यधर्मावलम्बियोमे हिदूधर्म तथा सनातनी सिद्धान्तोके प्रचारार्थ इतना कार्य नही किया। गीताप्रेससे जो प्रकाशन हुए है, वे अविश्वसनीय रूपसे सस्ते है। यहाँ अनेक सस्कृत धर्मग्रन्थ हिदी-अग्रेजी——दोनो भाषाओके यथार्थ अनुवाद-सहित उपलब्ध होते है।

उत्कृष्ट लेखक एव सफल सम्पादक होनेके अतिरिक्त भाईजी एक प्रभावशाली वक्ता भी थे। उनकी भाषणशैली वडी प्रभावोत्पादक एवं सरल होती थी। प्रवचनोकी भाषा सुललित एव मुहावरेदार रहती थी। श्रीभाईजी बीच-बीचमे उपनिषद्, स्मृति एव पुराणोके उद्धरणोद्वारा विषयको वडा सुबोध एव रोचक वना देते थे और श्रोतागण मन्त्रमुग्ध होकर वडे मनोयोगपूर्वक उनके प्रवचनोका श्रवण करते थे।

श्रीभाईजी एक सनातनधर्मनिष्ठ सत थे। उनकी भारतीय जीवन-दर्शनमे असाधारण आस्था थी, उन्होने उसीका उपदेश दिया तथा तदनुरूप जीवन विताया। उन्होने जगत्को दिखा दिया कि किस प्रकार गार्हस्थ्य-जीवनके सभी कर्त्तव्यो एव दायित्वोका निर्वाह करते हुए अनासक्त रहा जा सकता है। जैसे-जैसे उनके जीवनका सवरणकाल समीप आने लगा, वे समाधिस्थ रहने लगे। गीताप्रेस और गीतावाटिकाको उन्होने तीर्थस्थल वना दिया। देशभरके साधु-महात्मा भी, जो उनसे मिलने, उनसे ज्ञान एव प्रेरणा प्राप्त करने तथा उनके आदर्शानुकूल जीवन-यापन करनेके उद्देश्यसे आते थे, उनको तीर्थस्वरूप अनुभव करते थे।

हिंदू-समाजके सभी वर्गोपर उनका इतना व्यापक प्रभाव था और वे सबके इतने प्रिय एव विश्वासपात्र थे कि लोग विना माँगे ही उनको धर्मार्थ कार्योमे व्यय करनेके लिये प्रचुर धन देते रहते थे। उनका हाथ सदा मुक्त रहता था। किसी भी कार्यके लिये सहायता माँगनेपर वे कभी अस्वीकार नही करते थे—भले ही जिस उद्देश्यके लिये सहायता माँगी गयी हो, उससे वे पूर्णतया सहमत न हो। उन्हे यदि 'आधुनिक युगका कर्ण' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उन्होने विश्वस्त, निष्ठावान् एव कुशल कार्यकर्त्ताओके एक विशाल परिवारका निर्माण किया था, जो इतनी विशाल उपलब्धिमे उनका सहायक था।

यह कहना कठिन है कि किसी भी व्यक्ति या वर्ग-विशेषके प्रति उनके मनमे उपेक्षा थी, पर यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कुछ लोगोके प्रति उनके मनमे विशेप स्नेह था, जिनको सन्मार्गसे विचलित होते देखकर वे हँसते हुए अत्यन्त स्नेहभरे शब्दोमे सावधान करते थे और सत्पथपर दृढ रहनेकी प्रेरणा देते थे।

श्रीभाईजीके निधनसे हिंदू-धर्म तथा सस्कृतिमे जो रिक्तता उत्पन्न हुई है, निकट भविष्यमे उसकी पूर्ति कठिन है। उनकी स्मृतिको सँजोये रखनेका सवसे सुन्दर स्वरूप है—उनके द्वारा सस्थापित एव पोषित सस्थाओके कार्योकी अभिवृद्धि और उनके जीवन-सिद्धान्तोका सरक्षण एव पालन।

●

नहीं गर्भगृह ऐसा, जिसमें नाथ ! तुम्हे पधराऊँ।
नहीं उपकरण पूजाके कुछ, जिनसे पूज रिझाऊँ।।
नही स्वर-सुधा फटे कण्ठमें, जो मै गाय सुनाऊँ।
नहीं वाद्य, जो नाथ ! तुम्हारे सम्मुख सरस बजाऊँ।।

इस सराय-से घरमें प्रभु ! तुम आओ तो आ जाओ।
विना वुलाये, पूजाकी कुछ बात न मनमें लाओ।।
पामर-परित्राणका अपना मङ्गल विरद बढ़ाओ।
इस पद-विमुख अधमपर बरबस कृपा-सुधा वरसाओ।।

—श्रीभाईजी

●

भगवान्‌के एक यन्त्र—श्रीपोद्दारजी

श्रीपरमहंसजी महाराज

श्रीपोद्दारजी एक सुयोग्य लोकसंग्रही, संत, विद्वान्, कवि, वक्ता, लेखक और आदर्श गृहस्थ थे। उनके जीवनका एक-एक क्षण एव शरीरका एक-एक कण श्रीराधा-माधवके महारससे सुवासित एव आलोकित था।

श्रीपोद्दारजी धर्म, कर्म एव भक्ति-ज्ञानका प्रकाशन करनेवाले पुरुष थे। श्रीराधा-माधवके माधुर्य-प्रेमके तो वे मानो मूर्तिमान् विग्रह ही थे। शास्त्रोक्त धर्मके सब लक्षणोका स्वय पालन करते हुए तथा कथनी और करनीका समन्वय रखते हुए वे भागवतधर्मके अद्भुत प्रचारक थे। वे देश-विदेशके असख्य जनसमुदायको धर्मका सच्चा उपदेश प्रदान कर आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शन करानेवाले महामनस्वी थे।

श्रीपोद्दारजी एक महान् उद्देश्यको लेकर जगत्मे आये थे। उन्होने 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु' नामके दो मासिकपत्रो तथा अनेक बहुमूल्य ग्रन्थोके माध्यमसे सत्यधर्मका सदुपदेश देकर मानवमात्रके लिये कल्याण-पथ प्रशस्त किया है। दैनिक सत्सङ्ग एव विशेप पर्व-अवसरोंपर प्रवचन करके उन्होने भगवद्भक्ति, भगवत्प्रेम, भगवत्तत्त्व तथा व्यवहारसम्बन्धी विषयोपर अद्भुत प्रकाश डाला है। भारतीय संस्कृति और साधनके व्यापक क्षेत्रमे जो कुछ सत्य, शिव एव सुन्दर है, उसे उन्होने आत्मसात् कर लिया था। उनके लिये शास्त्रचिन्तन चिन्तनमात्र नही था, अपितु वह जीवनका अभिन्न अङ्ग था। पोद्दारजीके व्यावहारिक एवं साधनात्मक जीवनका वास्तविक स्वरूप उनके व्यक्तित्वसे अभिज्ञ उन असख्य महानुभावोके मानसपटलपर अङ्कित है, जो उनसे प्रभावित एव उपकृत होते रहे है।

दूसरेको सम्मान देने एव स्वय अमानी रहनेमे वे महाकुशल थे। आत्मज्ञापनसे वे सदा कोसो दूर रहे। अपने मुखसे अथवा लेखनीसे उन्होने कभी अपने उत्कर्पको व्यक्त नही होने दिया। अपनी लोकोत्तर महानता एव पारमार्थिक परमोच्च स्थितिको उन्होने सदा ही गुप्त रखा और अपनी सनिधिमे रहनेवाले स्वजनोतकको भी उसे व्यक्त नही होने दिया। वे जीवनभर सत, महात्मा, विद्वान्, ब्राह्मण एव गौमाताके प्रति अनुगत रहे।

श्रीपोद्दारजी असहाय, अनाथ एव आर्त जनता-जनार्दनके परम सेवक थे। देशमे जहाँ-जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ-वहाँ सेवाकी व्यवस्था करनेमे वे सदा तत्पर रहते थे। वे सौजन्य, विनय, निरहकारता आदि सद्गुणोकी खान थे। गीतामे भक्तके गुणोका वर्णन है, उनके वे भडार थे। समस्त धर्मोका सम्मान करते हुए, किसीमे भी हीनताकी प्रतीति न करते हुए वे वैदिक सनातनधर्मके कट्टर उपासक, पोषक और रक्षक थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति उनके लिये पूर्णरूपसे चरितार्थ होती थी। इसी हेतुसे वे 'भाईजी'के नामसे अलकृत हुए।

वे सम्पूर्ण चराचर प्राणियोमे अपने इष्ट श्रीराधा-माधवके दर्शन किया करते थे। सचमुच श्रीपोद्दारजी आदर्श भगवद्भक्त एव भगवत्प्रेमी थे।

जैसे देवर्षि नारद, सनकादिक, दत्तात्रेय, शुकदेव, मैत्रेय, मनु प्रभृति ऋषि-मुनि तथा शकराचार्य, रामानुजाचार्य, गोरखनाथ, भर्तृहरि, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास, रामकृष्ण परमहस आदि महापुरुषोको समय-समयपर जगत्मे भेजकर भगवान्ने धर्म-कर्म-परम्पराकी रक्षा की, उसी क्रममे पोद्दारजीको भी घोर कलिकालमे भेजकर भगवान्ने धर्म एव सस्कृतिकी रक्षा करवायी है।

श्रीमद्भागवतमे भागवतोके चालीस लक्षणोका उल्लेख किया गया है। जिन महापुरुषोमे वे लक्षण विद्यमान रहते है, वे देह रहते हुए भी विदेह है, स्थितप्रज्ञ है, जीवन्मुक्त है। उनके लिये यह आवश्यक नही है कि वे गृहस्थमे रहे या वनमे। वे अपनी उपस्थितिमात्रसे जगत्को पवित्र करते है। श्रीपोद्दारजी ऐसे ही भागवत-विभूतिसम्पन्न महापुरुष थे।

श्रीपोद्दारजीने हरिनाम, हरिकथा एव हरियशकी सुधा वरसाना आरम्भ किया और भक्तिकी एक मधुर तथा पावन धारा वह चली, जिसमे अवगाहन कर असख्य नर-नारी पवित्र हुए है और भगवद्भाव, भगवत्प्रीति, भगवद्विश्वासको अपनाकर मानवजीवन सफल करनेके प्रयत्नमे लग गये है।

श्रीपोद्दारजी सच्चे धर्मरक्षक थे। जव-जव किसी भी ओरसे धर्मपर आघात पहुँचानेकी चेष्टा हुई, वे उसकी रक्षाके लिये आकर खडे हो गये। हिदूकोड-विलका उन्होने खुलकर विरोध किया। गोरक्षा-आन्दोलनके वे प्रमुख सेनानी रहे। हिदू-सस्कृतिकी रक्षाके लिये उन्होने 'कल्याण'के माध्यमसे वडा काम किया। उन्होने 'कल्याण'का 'तीर्थाङ्क' प्रकाशित किया। इसके लिये वे स्वय भारतवर्षके सभी प्रमुख-प्रमुख तीर्थोमे गये और वहाँकी वर्तमान स्थितिका अध्ययन किया।

गीताप्रेसद्वारा उन्होने जो प्राचीन एव अर्वाचीन साहित्य प्रकाशित किया है तथा धर्म एव सस्कृतिकी जो रक्षा की है, वह सर्वविदित है। ऐसा अनुभव होता है कि श्रीपोद्दारजी भगवान्के एक यन्त्रके रूपमे धराधामपर पधारे थे और जगत्का अशेष मङ्गल करके चले गये। आज उनका पाञ्चभौतिक शरीर हमारे सामने नही है, पर जवतक देशमे एक भी आस्तिक, धर्मप्रेमी, ईश्वरप्रेमी वचा रहेगा, जवतक राम, कृष्ण, हरि आदि भगवन्नामोका उच्चारण होता रहेगा, तवतक श्रीपोद्दारजीकी स्मृति वरावर वनी रहेगी।

●

जन्मजात भक्त

पं० श्रीहरिवक्षजी जोशी

हजारो-लाखो पुरुषोमे कोई एक महापुरुष होता है, जो परमार्थ-प्राप्ति या सिद्धिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले सिद्ध पुरुषोमे भी कोई एक महान् भाग्यशाली पुरुष होता है, जो भगवान्को तत्त्वसे समझता है। साधारणतया जन-समुदाय भोग-रागमे ही लिप्त हुआ अपने जीवनके अमूल्य क्षण पशुओके समान आहार-निद्रा आदिमे समाप्त करके ससारसे विदा हो जाता है। इसके सूक्ष्म कारणपर विचार किया जाय तो समझमे आता है कि अनेक जन्मोमे इस जीवने जो वासनाएँ सचित की है, उनके अनुसार ही इस जन्ममे उसकी प्रवृत्ति होती है। भगवद्गीतामे भगवान्ने कहा है कि पूर्वजन्मके अभ्यासके अनुसार ही मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति इस जन्ममे होती है—

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥
तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते॥
प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः।
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥

(गीता ६। ४१-४५)

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—'जो पुरुष योग-साधना करते हुए सिद्धिको प्राप्त किये विना ही मर जाता है, वह पुण्यात्माओको प्राप्त होनेयोग्य उत्तम लोकोमे जाता है। वहाँ वह अनन्त-कालतक निवास करके, वहाँके भोगोको भोगकर इस मनुष्यलोकमे आता है। यहाँपर भी शुद्ध—पवित्र जीवन वितानेवाले श्रीमानोके घरोमे जन्म लेता है, अथवा वुद्धिमान्—विद्वान् योगियोके कुलमें जन्म लेता है। इस मनुष्यलोकमे इस प्रकारका जन्म वहुत ही दुर्लभ है। उसने पूर्वजन्ममे जिस वुद्धिका अर्जन किया था, उसे इस जन्ममे उपलब्धकर वह भगवत्प्राप्तिरूप ससिद्धिको प्राप्त करनेके लिये प्राण-पणसे यत्न करने लग जाता है। उसके समक्ष लौकिक भोगोकी समस्त सामग्रियाँ उपस्थित होनेपर भी वह उन भोगोमे आसक्त नही होता। किंतु पूर्वजन्ममे किये हुए अभ्यासके कारण वह वरवस योग-साधनाकी ओर आकृष्ट हो जाता है। योग-साधककी तो

महिमा ही अपार है, किंतु योग-मार्गका जिज्ञासु भी शब्द-शास्त्रज्ञोकी महिमाको पार कर जाता है। पूर्वजन्मार्जित योगबलके प्रभावसे बहुत प्रयत्नसे योग-साधनामे लगा हुआ वह योगी सब पापोसे रहित हो, परम निर्मल और शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार अनेक जन्मोकी साधनाके अनन्तर अन्तिम जन्ममे पूर्ण सिद्धि, परमगति, परमात्माके साथ एकत्व या आत्मज्ञान लाभ कर लेता है।'

भगवान्‌की यह वाणी मात्र शास्त्रीय आदर्श ही नही है, लौकिक प्रत्यक्ष अनुभव भी यही सिद्ध करता है कि अधिकतर महापुरुष जन्मजात महात्मा होते हैं। यह एक नियम है कि जो वस्तु बनती है, वह बिगडती भी है। बनावटी वस्तु सदा एक-सी नही रहती। इसी प्रकार जो महात्मा बनता है, वह बिगड भी सकता है। जन्मजात महात्मा सदा एक समान रहते हैं।

जो अनेक जन्मोमे अष्टाङ्गयोग, भक्तियोग आदिकी साधना करके साक्षात् भगवत्प्राप्तिके लिये अन्तिम मानवजन्म धारण करते हैं, वे ही वास्तविक महात्मा होते है। ऐसे महात्माओकी श्रेणीमे पोद्दारजी अग्रणी है।

भाईजीके साथ मेरा प्रथम परिचय सवत् १९७८ मे बम्बईमे हुआ। मैं उस समय अध्ययन समाप्त करके बम्बई गया था। वहाँ जाते ही सयोगवश श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीकी ओरसे स्थापित 'व्यंकटेश्वर-प्रेस', खेतवाडीमे उनके धर्मार्थ औषधालयके प्रधान चिकित्सकका स्थान मुझे प्राप्त हो गया। मैं खेतवाडी, बम्बईमे रहने लगा। सस्कृत-साहित्यके अध्ययन-अध्यापनकी रुचि मेरे सस्कारोमे थी। मेरे पिता-पितामह—सभी संस्कृतके विद्वान् थे। सस्कृतके वातावरणमे ही पालन-पोषण-शिक्षण होनेसे मुझे संस्कृत-प्रेमी साथीकी सगतिकी आवश्यकताका अनुभव होता था।

उन दिनो बम्बईमे सुखानन्दजीकी धर्मशालामे सायकाल सत्सङ्ग हुआ करता था, जो भाईजीकी प्रेरणा, प्रयत्न और सहयोगसे चलता था। मैं भी वहाँ जाने लगा। प्रथम परिचयमे ही मै उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उनकी साधुता, सरलता, मृदुभाषिता, समादरकी भावना आदि हर एक अपरिचित व्यक्तिको चिर-परिचित-सा बना देनेवाली थी। इस प्रकारकी स्वाभाविक प्रवृत्ति व्यापारी-समाजमे तो क्या, महात्माओके आश्रममे भी कही-कही ही दृष्टिगोचर होती है। शनैः-शनैः प्रेम और परिचय बढने लगा। हृदयकी सकोच-ग्रन्थि टूट गयी। वे मुझे अपना, और मैं उन्हे अपना आत्मीय बन्धु समझने लगा। हृदयकी बाते खुलकर निःसकोचभावसे होने लगी। भाईजी उन दिनो व्यापार करते थे। बम्बईमे उस समय मारवाडियोके हाथमे सट्टेका व्यापार ही प्रधान था। भाईजी उसीमे सलग्न थे। परतु इनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हिंदीके भक्तिप्रधान कविता-भजन आदि बनानेमे ही थी। श्रीमम्मटाचार्यका सिद्धान्त है कि कवित्वशक्ति पूर्वजन्मोके सस्कारसे जन्म लेती है। ऐहिक प्रयाससे प्राप्त कवित्वशक्ति कृत्रिम होती है—'स्वाभाविकात् कृत्रिममन्यदेव'।

उन दिनो गायकाचार्य भक्त-हृदय श्रीविष्णु दिगम्बर महाराजकी बम्बईमे बहुत प्रसिद्धि थी। 'रघुपति राघव राजा राम, पतितपावन सीताराम'की ध्वनि प्रत्येक स्त्री-पुरुष-बालकके मुखसे

चलते-फिरते निकलती थी। कारण श्रीविष्णु दिगम्वरको जनता गन्धर्वराज मानती थी। वे 'रघुपति राघव राजा राम' के कीर्तनमे छत्तीसो राग सुना देते। भाईजीपर उनकी वडी कृपा थी। वे कभी-कभी भावविभोर होकर एकान्त कमरेमे मीराकी तरह 'मीरानृत्य' करते थे; और जब वे एकतारा लेकर 'पद घुँघरु वाँध मीरा नाची रे' गाते थे, तव दर्शक लोग देह-गेहकी सुधि भूलकर चित्र-लिखित-से हो जाते थे। पर उस नृत्यको देखनेका सौभाग्य किन्ही-किन्ही महानुभावोको ही मिलता था; क्योकि उसमे वे लोग ही प्रवेश पा सकते थे, जिनको वे अधिकारी समझकर आज्ञा देते थे। भाईजी श्रीविष्णु दिगम्बरके अन्तरङ्ग विश्वासियोमे अन्यतम थे। अत वे उस अलौकिक आनन्दमे सम्मिलित होते थे। उन दिनो भाईजीने एक भजनोकी पुस्तिका लिखी, जिसका नाम था—'पत्र-पुष्प'। भाईजी न तो राग-रागिनियोके ज्ञाता थे न गायक ही। उनके हृदयमे जव जो भाव उत्पन्न होते, उन्हे वे तुकबन्ध कर देते थे। पर जब वह पुस्तक श्रीविष्णु दिगम्वरको सुनायी गयी, तव वे बडे प्रसन्न हुए और कार्यव्यस्त रहते हुए भी उन्होने उसके प्रत्येक भजनपर रागिनीका नाम बैठा दिया। भाईजी पिङ्गलशास्त्रके ज्ञाता या पण्डित नही थे, न उन्होने सस्कृत या हिदी-साहित्यके काव्य या छन्द शास्त्रकी शिक्षा ही किसी गुरुसे प्राप्त की थी। इनकी कविताशक्ति सहज तथा स्वाभाविक थी। वस्तुत उत्तम कवि वही बन सकता है, जिसके अन्तर्मानसमे पूर्वजन्ममे सचित कविताके सस्कार निगूढ रहते है।

श्रीभाईजीमे काव्यशक्ति स्वाभाविक थी। जब 'कल्याण'का जन्म भी नही हुआ था, तब भी आप सरस भजन वनाते थे। 'पत्र-पुष्प' उस समयकी ही रचना है। 'कल्याण'का सम्पादन आरम्भ करनेके वाद तो उन्हे अनेक शास्त्रो, पुराणों, भक्तिरस-प्रधान साहित्य तथा विद्वानो, आचार्यो एवं भक्तोंके लेखोंके अध्ययन-संशोधनका स्वर्णिम अवसर मिल गया। शक्ति स्वाभाविक थी ही। अत उन्होने सैकडो पद भगवद्भक्तिके लिख डाले। बीमारीकी वेदनामे भी वे 'आह-ओह' न करके किसी नये पदकी रचनामे ही तल्लीन रहते थे।

श्रीभाईजीका हृदय बडा कोमल था। स्वभाव इतना सरल था कि हर एक व्यक्तिको विश्वासकी दृष्टिसे देखते थे। किसीके दोषपर तो उनकी दृष्टि कभी जाती ही नही थी। कोई दूसरा आदमी भी किसीका दोष उनके समक्ष वर्णन करता तो वे यही कहते थे—'मनुष्यमे कमजोरियाँ स्वाभाविक है, न मालूम किस परिस्थितिमे उसने ऐसा किया है। हो सकता है, उस परिस्थितिमे हम होते तो वैसी ही भूल हम भी कर बैठते।' इस प्रकारकी पर-दोष-सहिष्णुता अन्यत्र दिखलायी नही देती।

श्रीभाईजी जव वम्वईको त्यागकर आने लगे, उस समय उनके समक्ष वहुत प्रलोभन आये। एक प्रतिष्ठित व्यापारीने कई हजार रुपये मासिक तथा अपने फर्ममे कुछ हिस्सा देनेका प्रस्ताव किया; पर श्रीभाईजीने उसे स्वीकार नही किया और वे 'कल्याण'का सम्पादन करनेके लिये गोरखपुर आ गये। जव वे आने लगे, तव मैने उनसे कहा —"भाईजी, आप कहते है कि मै 'कल्याण'की नि स्वार्थ सेवा करूँगा, उससे कुछ भी नही लूँगा तो आपका खर्चा

कैसे चलेगा ?" इसके उत्तरमे भाईजी बोले—'मेरे पास पचीस हजार रुपये है, जिनके व्याजसे आरामसे गृहस्थीका निर्वाह हो जायगा ।' मैंने फिर भाईजीसे कहा—'इतने रुपयोके व्याजसे यदि घर-खर्च नही चला और आप 'कल्याण'से या सेठजी श्रीजयदयालजीसे या उनके भक्तोसे कभी कुछ भी परोक्ष या प्रत्यक्ष सहायता ग्रहण कर लेगे तो मुझे वडा दु ख होगा ।' उसपर वे वोले—'आप निश्चिन्त रहिये । आपको दु खी होनेका अवसर भगवान्‌की कृपासे आयेगा ही नही ।' उनके शरीर त्यागनेके १० दिन पहले जव मै उनसे मिलने गोरखपुर गया, तव उन्होने कहा—'पण्डितजी, आपने मुझे वहुत वडे दोषसे वचनेकी जो वात कही थी, वह मुझे वरावर याद रही और उसके कारण मै अनेक दोषोसे वच गया । भगवान्‌की कृपासे और आपके आशीर्वादसे मेरा वह व्रत अक्षुण्ण निभ गया । आपने मुझे वम्बईमे भागवतके सरस मधुर श्लोकोको सुनाकर मेरी भागवतमे और भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णमे प्रीति वढानेमे वडी सहायता की ।

भाईजी अत्यन्त सरल, निष्कपट और विनम्र थे । आत्माभिमान उन्हे छूतक नही गया था । इस साधुता और निरभिमानताका नमूना है उनके द्वारा लिखी गयी, मेरे द्वारा प्रकाशित रासपञ्चाध्यायीकी भूमिका । वे लिखते है—'लगभग चालीस वर्ष पूर्व वम्वईमे लगातार वहुत दिनोतक श्रीजोशीजी महाराज श्रीमद्भागवतके मधुर प्रसङ्ग तथा उनका रहस्य सुना-सुनाकर आप्यायित करते थे । उनकी इस महती कृपासे श्रीमद्भागवतके तथा भागवतकी आत्मा श्रीकृष्णके प्रति मन-बुद्धिके समर्पणकी वडी ही प्रवल प्रेरणा मिलती थी । मै इस परम प्रीति तथा अहैतुकी कृपाके लिये सदा ही श्रीजोशीजीका ऋणी हूँ ।' जिसकी ख्याति देश-देशान्तरमे फैली हुई हो और हजारो प्रेमी भक्त जिसको महापुरुष मानकर उसके सत्सङ्गसे अपना कल्याण मानते हो, क्या ऐसा कोई अन्य सर्वमान्य पुरुष मेरे-जैसे एक साधारण व्यक्तिको इस प्रकारका मान देकर अपनी लघुताका परिचय देनेका साहस कर सकता है ? ये गुण तो भगवान् विष्णुमे ही थे, जिन्होने भृगुजीकी लात खाकर भी उनसे माफी माँगी । भृगुजीके कोमल पैरमे मेरी कठोर छाती अवश्य गडी होगी, ऐसा मानकर उन्होने कहा था—

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने ।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना ॥
पुनीहि सहलोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् ।
पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥
अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् ।
वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ।

(श्रीमद्भागवत १० । ८९ । १०–१२)

भगवान्‌के इन गुणोके कारण ही उनका नाम 'अमानी मानदो मान्य' प्रसिद्ध हुआ । भगवान् स्वय मानरहित और दूसरोको मान देनेवाले होनेसे ही सर्वमान्य कहलाते है । ये मानव-दुर्लभ गुण श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारमे थे । हम तो अपना यही सवसे वडा सौभाग्य मानते है कि हम उनके समयमे हुए, उनका सङ्ग किया, उनसे हँसे, खेले और उनके साथ रहे ।

भाईजी केवल भक्त ही नही, ज्ञानी भक्त थे। उनसे कई बार मेरी परमतत्त्वके विषयमे चर्चा होती थी। मैंने उनसे पूछा—'आप राधा-माधवका ध्यान करते है, उनके युगल-नामको जपते है, उनके विषयमे आपकी क्या धारणा है?' उन्होने उत्तर दिया—"परमतत्त्व एक अद्वैत अखण्डस्वरूप है। उसमे वास्तवमे कोई भेद नही है। वह जब भक्तोको विशुद्ध प्रेम-रस पिलाना और उनके विशुद्ध हार्दिक प्रेम-रसका आस्वादन करना चाहता है, तब एक ही तत्त्व दो रूपोमे अभिव्यक्त हो जाता है। प्रेम-रसका आस्वादन करनेके लिये वही प्रेमका आश्रयालम्बन और विषयालम्बन बना हुआ है। जिस प्रकार वेदान्ती मानते है—'आश्रयत्वविषयत्वभागिनी विशुद्धा चितिरेव केवला' यही मै मानता हूँ—मानता ही नही, अनुभव भी करता हूँ।" ऐसे ज्ञानी भक्तको लक्ष्य करके ही भगवान्‌ने गीतामे कहा है—'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।'

व्यासजीने श्रीमद्भागवतमे भी ऐसे ज्ञानी भक्तको बहुत ही दुर्लभ कहा है—वे जीवन्मुक्त ज्ञानियोसे भी श्रेष्ठ होते है—

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥
(श्रीमद्भागवत ६। १४। ५)

'मुक्त हुए सिद्ध करोडो पुरुषोमे नारायण-प्रेम-परायण, प्रशान्तात्मा, ज्ञानवान्, प्रेमी भक्त बहुत दुर्लभ है।'

श्रीभाईजी ऐसे ही ज्ञानसम्पन्न प्रेमी भक्त थे। उनका स्थूलशरीर हमलोगोसे वियुक्त हो गया है, जिससे हमे दु खानुभव हो रहा है, पर उनके द्वारा रचित गद्य-पद्यमय अनेकों ग्रन्थ, प्रेमियोको लिखे गये पत्र आदि अनन्तकालतक हमे चेतना देते रहेगे।

●

बिना याचनाके ही देते रहते नित्य शक्ति तुम नाथ!
करते सदा सँभाल, छिपे तुम अविरत रहते मेरे साथ॥
देते तुम निर्भयता, नित्य निरामयता, निज आश्रय दान।
देते शुभ विचार, शुभ चिन्तन, शुभ जीवन, शुभ कर्म महान॥
देते प्रेम प्रेमसागर! तुम, देते स्वार्थहीन अनुराग।
देते सुख शाश्वत आत्यन्तिक मिटा सभी दुःखोंके दाग॥
एक चाहते, इन सबके बदलेमे तुम—'अविचल विश्वास।'
पर मैं हीन उसीसे, तब भी होता नहीं कदापि निराश॥
तुम्ही मुझे विश्वास-दान दो, तुम्हीं करो मेरा उद्धार।
ख्यात पतित-पावन, पामर-प्रेमी तुम हे प्रभु! परम उदार॥

—श्रीभाईजी

●

महान् देवात्मा

पद्मभूषण सेठ श्रीमुंगतूरामजी जैपुरिया

हिंदू-धर्म और संस्कृतिके महान् उन्नायक, लक्ष-लक्ष धर्मपरायण जनताकी श्रद्धाके मूर्तिमान् प्रतीक, हिंदी, संस्कृत, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी तथा अनेक भारतीय भाषाओंके प्रकाण्ड विद्वान् एवं अनेक उत्कृष्ट धार्मिक पुस्तकोंके प्रणेता, सुप्रसिद्ध पत्र 'कल्याण' मासिकके यशस्वी सम्पादक प्रातःस्मरणीय परमपूज्य श्रीभाईजीके श्रीराधा-माधवके युगल-पदाम्बुजोंमें लीन हो जानेसे हिंदू-जगत् और सनातन-धर्मकी जो महान् क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना असम्भव लगता है। ज्ञान, कर्म और भक्तिकी परम पवित्र त्रिवेणीमें आप्लावित उस पुण्यात्माको हम किन शब्दोंमें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें? यद्यपि मानवका नश्वर तन धारण करके वे इस असार संसारमें उपस्थित हुए, फिर भी उनमें सचमुच एक महान् देवात्माका वास था। वे हमारे बीच पारसमणिकी भाँति ज्योतित थे। उनके परम मृदुल स्वभाव और करुणाविगलित व्यक्तित्वका आकर्षण सभीको सम्मोहित कर लेता था।

परमपूज्य श्रीभाईजी आयुमें मुझसे करीब दस वर्ष बड़े थे। प्रथम महायुद्धके समय जब कलकत्तेमें उन्होंने एक क्रान्तिकारीके रूपमें अपने जीवनका प्रारम्भ किया था, तभीसे मैं उनके निकट सम्पर्कमें आया। सन् १९१६ में देशके स्वतन्त्रता-आन्दोलनमें उन्होंने निर्भीकतापूर्वक भाग लिया। ब्रिटिश-सरकारने उन्हें गिरफ्तार कर अलीपुर-जेलमें ठूँस दिया। वहाँ जेल-अधिकारियोंने उनपर नाना प्रकारके असहनीय अत्याचार किये। जेलमें कुछ अवधितक रखनेके बाद अंग्रेजी सरकारने पश्चिमी बंगालके बाँकुड़ा जिलेके सुदूर अञ्चल शिमलापाल नामक ग्राममें उन्हें नजरबंद कर दिया। इक्कीस मासकी नजरबंदीके बाद जब पूज्य भाईजी बाहर आये, तब सन् १९१८ में उन्हें ब्रिटिश हुकूमतने बंगालसे निष्कासित कर दिया। यह नजरबंदी उनके भावी जीवन और सम्पूर्ण हिंदू-जगत्के लिये गहरा वरदान सिद्ध हुई, क्योंकि यहीं एकान्तमें उन्हें अध्यात्म-साधना तथा भारतीय दर्शन एवं अन्य शास्त्रोंके अध्ययन करनेका सुनहला अवसर प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् पूज्य भाईजी कुछ दिनों बाद बम्बई चले गये। वहाँ उन्होंने कई प्रकारके व्यवसाय किये। साथ ही उनकी साधनामें प्रवृत्ति बढ़ रही थी। परिणामतः व्यावसायिक कार्योंके प्रति उनमें विरक्ति उत्पन्न हो गयी और ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सहयोगसे १९२६में उन्होंने बम्बईके प्रमुख प्रकाशन-संस्थान—श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासके प्रेससे सनातनधर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारके उद्देश्यको लेकर 'कल्याण' मासिकपत्रका प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया, जिसकी अन्ततक वे सेवा करते रहे। अवश्य ही 'कल्याण'के प्रकाशनकी बात सुझावके रूपमें सर्वप्रथम श्रीघनश्यामदासजी बिड़लाने 'मारवाड़ी अग्रवाल महासभा'के दिल्ली अधिवेशनके समय कही थी। विश्वभरमें हिंदू-धर्मकी विजय-पताका फहराने एवं सनातनधर्मकी उत्कृष्ट विचार-धाराके प्रति विश्वभरका ध्यान आकृष्ट करनेमें 'कल्याण'का कितना महान् योग-दान रहा है, यह हम सभी

जानते हैं। १३ महीनेतक 'कल्याण' बम्बईसे प्रकाशित होता रहा। पीछे श्रीभाईजी व्यवसाय बद करके गोरखपुर चले आये और उनके साथ 'कल्याण' भी। गीताप्रेसकी स्थापना इसके पूर्व ही हो चुकी थी। श्रीभाईजीने गोरखपुर आकर इसके द्वारा धार्मिक जगत्मे ठोस और महत्त्वपूर्ण कार्य किया और उसीके फलस्वरूप वे समस्त धार्मिक जगत्की श्रद्धा और प्रेमके पात्र बन गये। चौबीसो घटे अनवरतरूपसे प्रभुके चरणकमलोमे ध्यान-मग्न रहनेवाले पूज्य भाईजी अपनी दिनचर्या एवं लोक-व्यवहारके काम-काज सदैव सहज एव सामान्यरूपसे करते रहते थे। वे किसीको भी अभावग्रस्त एवं दुखी नही देख सकते थे। विनम्रता और सादगी तो जैसे उनके रोम-रोममें समायी हुई थी। उनके जैसा मृदुभाषी, सदाशय, व्रतनिष्ठ और सर्वप्रिय व्यक्तित्व अनास्थाके इस युगमें शायद ही कही देखनेको प्राप्त हो।

मारवाडी-समाजके तो वे महान् गौरव ही थे। उन्होने अनेक छोटे-बडे उद्योगपतियो, व्यवसायियोके हृदयमे धर्म-कर्म, परमार्थ, परोपकार तथा दानशीलताके प्रति गहरी रुचिको जन्म दिया। वे हमारे समाजमे निस्वार्थ सेवा-भावके ज्वलन्त प्रतीक थे। कलकत्तेकी सुप्रसिद्ध संस्था 'मारवाडी-सहायक-समिति', के जो वादमे 'मारवाडी रिलीफ सोसाइटी' के नामसे प्रख्यात हुई, सस्थापकोमेसे थे। मारवाडी-समाजके दोनो ही उन्नायकों——भाई घनश्यामदासजी बिडला एवं पूज्य भाईजीके बीच गहरी आत्मीयता और मैत्री व्याप्त थी। श्रद्धेय भाईजी बिडलाजीको सदैव 'घनश्याम' कहकर ही सम्बोधित करते रहे।

मुझपर तो पूज्य भाईजीका प्रारम्भसे ही अत्यधिक स्नेह और प्रेम-भाव रहा। हमारे परिवारके सुख-दुख आदि जाननेके लिये वे सदैव व्यग्र रहा करते थे। तीन-चार वर्ष पूर्व जब चारो धामोमे वेद-भवन स्थापित करनेके लिये वातचीत चली, तव उन्होने मुझे उक्त कार्यके लिये निर्मित ट्रस्टका कोषाध्यक्ष वननेका आदेश दिया, जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनकी प्रत्येक आज्ञा, प्रत्येक आदेशका पालन करनेमे मै अपना अहोभाग्य समझता था।

अनास्था और जडवादके इस युगमे पूज्य भाईजीके महान् व्यक्तित्वमे मैं लीलामय प्रभु-द्वारा ससारमे धर्म और संस्कृतिकी प्रतिष्ठापना और पुनरुत्थानके लिये भेजी गयी एक महान् ईश्वरीय विभूति मानता हूँ। वे स्वयमे एक वहुत वड़ी सस्था थे, जिनपर समस्त धार्मिक जगत् प्राण-प्रणसे निछावर रहता था। हम उनके चरण-चिह्नोपर चलकर स्वयको उनके सुयोग्य अनुयायी कहलानेके योग्य वना सके, इससे वढकर पूज्य भाईजीके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि और क्या हो सकती है। पूज्य भाईजीका भौतिक शरीर अव हमारे वीच नही रहा, किंतु उनका यश शरीर ज्योतित और जाग्रत् रूपमे हमारे वीच विद्यमान है ही।

●

सद्गृहस्थ महान् संत

श्रीमहन्त रामदासजी महाराज

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका परलोकगमन निस्सदेह धार्मिक जगत्के लिये प्राणहरण-सदृश कष्ट प्रदान करनेवाला है। उन्होने अपने समस्त जीवनको लोककल्याणके लिये अर्पित कर रखा था। समाजकी वर्तमान विषम परिस्थितियोके फलस्वरूप व्यापक नैतिक ह्राससे संतप्त जनताके तापसे उनका नवनीत-हृदय द्रवित हो उठा था और उन्होने उस संतापके निवारणका एकमात्र उपाय आर्य-वैदिक सनातनधर्मकी पुन स्थापनाको माना था। इसी हेतु वे 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा अन्य धार्मिक साहित्यके सर्जन-प्रसार एव प्रवचनामृतप्रसादके माध्यमसे असख्य नास्तिकोके भी हृदयमे आध्यात्मिक ज्ञानके ज्योति-स्फुलिङ्गको प्रज्वलित करनेमे सफल रहे है।

वे एक आदर्श सद्गृहस्थ भक्त थे, जो 'सीय राममय सब जग जानी'—की भावनासे ओत-प्रोत होकर अपने अन्तर्यामी प्रभुका प्रसाद समस्त विश्वमे बॉटते रहे। इसी हेतु उनकी दृष्टि निजी कुटुम्बतक ही सीमित न रहकर समस्त विश्वको कुटुम्ब मानती रही। यह भाव उनके चित्तकी सरलता, जनता-जनार्दनके हितकी भावना, सौहार्दपूर्ण स्वभाव, नम्रता तथा 'राम-चरण-रति'-सदृश अनुपम गुणोवाले व्यक्तित्वके कारण ही था।

श्रीपोद्दारजी ससारमे रहकर सक्रिय जीवन व्यतीत करते हुए भी फलासक्तिसे कोसो दूर रहे। वस्तुत उनके व्यक्तित्वमे श्रीमद्भगवद्गीताकी अनासक्ति-भावनाका पूर्ण सनिवेश पाया जाता है। अनासक्तिकी स्थिति मानव-जीवनके उच्चतम लक्ष्यको निर्धारित किये विना सम्भव ही कहॉ है। इसी हेतु श्रीपोद्दारजीने अपने जीवनका लक्ष्य मानवताके सागरमे अपने व्यक्तित्वको क्षुद्र बूँदकी भॉति विलीनकर अपने पृथक् अस्तित्वको शून्य कर देने और उससे लोकोत्थान करनेको ही माना है। फलत उनका जीवन मानव-धर्मके महान् यज्ञमे आहुति बना, उनका चिन्तन निज-परकी सकीर्ण कारासे मुक्त रहा, उनकी धारणामे समस्त वसुधा कुटुम्ब बन गयी। उनके पास निजी ऐश्वर्य-भोगके लिये समय न था और प्रतिदिन आत्म-सयम और जन-कल्याणके निमित्त कर्मशीलता उत्तरोत्तर बढती ही रही।

जीवनकी इस लोकोत्तर महानता और पारमार्थिक परमोच्च स्थितिके बावजूद उनमे आत्म-ख्यापनसे बचनेकी प्रवृत्ति तथा नम्रताका भाव अतिरेकावस्थामे था। नम्रताका अर्थ ही है—'शून्यता', अपने क्षुद्र अस्तित्वका विश्वात्माके महान् अस्तित्वमे विलयीकरण, अपने सुख-दु खकी अपेक्षा लोकहितकी भावनाका उदय तथा उसीके लिये सदा प्रयासशील रहना। यह स्थिति ही मोक्षकी स्थिति है। मुमुक्षु या सेवकके कार्यमे यदि यह भाव न हो तो वह मुमुक्षु नही, सेवक नही, वह स्वार्थी है, अहकारी है। सच्चा मुमुक्षु या सेवक तो अनासक्ति-योगका साधक होता है। श्रीपोद्दारजी ऐसे ही साधक थे, जिनके व्यक्तित्वके तेज-पुञ्जसे भारतके ही नही, विश्वभरके सत्यनिष्ठ धर्मशील अनुयायियोकी भ्रान्त आत्माको प्रकाश मिलता रहेगा।

आज वे इस नश्वर जगत्मे पाञ्चभौतिक शरीरसे विद्यमान नही है, किंतु उनकी अमर ख्याति तथा उनके अनुपम कर्म एवं जीवनसरणि उन्हे सदैव अमर रखनेके लिये पर्याप्त है।

●

सद्व्यवहारके मूर्तिमान् आदर्श

श्रद्धेय वैद्यसम्राट् श्रीमणिरामजी महाराज

ये च शास्त्रविदो दक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः।
जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्यो नित्यं कृतं नमः॥

परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके साथ मेरा परिचय एव सम्पर्क करीब ४० वर्षसे था। वे बडे मृदुभाषी एव मिलनसार व्यक्ति थे। उनके द्वारा लाखो-लाखो रुपयोका दान हुआ है। वे सवका उपकार करते थे। किसीका मन नही दुखाते थे। उनकी व्याख्यानकला, सम्पादनकला एव लेखनकलामे असाधारण दक्षता ईश्वरकी देन थी। जिन व्यक्तियोमे ईश्वरका अंश होता है, उनमे सव तरहका ज्ञान स्वत. प्रादुर्भूत हुआ करता है। यही वात श्रीभाईजीमे अक्षरश देखनेको मिलती थी। प्रवचन करते समय वे उपनिषद्, शाकर-भाष्य आदिके प्रमाणोका उल्लेख इस प्रकार करते थे, जैसे इन ग्रन्थोको उन्होने आद्योपान्त पढा हो और उनका सम्यक् अनुशीलन तथा मनन किया हो। वे सद्व्यवहारके पूर्ण जानकार ही नही थे, वह उनके स्वभावमे था। वे 'शठे शाठ्य' के पक्षपाती न होकर 'उपकारप्रधान. स्यादपकारपरेऽप्यरौ' को अधिक महत्त्व देते थे। बहुत वर्षो पहलेकी बात है, रतनगढ शहरमे किसी एक व्यक्तिकी जमीनका नगर-पालिकाध्यक्षने पट्टा नही वनाया। वे जमीनके पट्टेपर हस्ताक्षर नही कर रहे थे। उस व्यक्तिने कई आदमियोको साथ लेकर, जिनके हाथोमे काले झडे थे, रातके समय श्रीभाईजीके निवास-स्थानके सामने आकर नारे लगाना आरम्भ किया। श्रीभाईजीका न तो जमीनसे सम्बन्ध था और न नगरपालिकासे। नगरपालिकाके अध्यक्ष महोदय श्रीभाईजीके यहाँ आते-जाते थे। लोगोने सोचा—श्रीभाईजीके सामने नारे लगानेसे श्रीभाईजी अध्यक्षको यह कार्य करनेके लिये कह देगे। करीव एक घटा नारे लगाकर वे लोग चले गये। भाईजीने यह सब दृश्य देखा, परंतु उन्हे तनिक भी क्षोभ नही हुआ। यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो वह क्षुब्ध होकर नारे लगानेवालोंको भला-बुरा कहता, परंतु श्रीभाईजी अपने कार्यमे लगे रहे। दूसरे दिन भाईजीने नगरपालिकाके अध्यक्षको बुलाकर कहा कि या तो नगरपालिकाके अध्यक्षपदसे त्यागपत्र दे दो या जिसका पट्टा नही वना है, उसका पट्टा वना दो। यह कहकर उन्होने उस पट्टेपर हस्ताक्षर करवा दिये और पट्टा सम्वन्धित व्यक्तिको दिलवा दिया। इस ससारमे ऐसा व्यक्ति कौन होगा, जो विना कुछ सम्वन्ध हुए असद्व्यवहार करनेवालोके प्रति सद्व्यवहार करे। भाईजी देवपुरुष थे; संसारी व्यक्ति होते तो 'शठे शाठ्य समाचरेत्' के अनुसार व्यवहार करते। किंतु उन्होने बुरा करनेवालोके साथ अच्छा व्यवहार करनेके अपने प्राकृतिक सिद्धान्तको नही भुलाया।

श्रीभाईजी अध्यात्मवादी होते हुए भी लौकिक सद्व्यवहारको विशेष महत्त्व देते थे। यह उनकी सवसे बड़ी विशेषता थी। जिन मुकदमोका निर्णय वर्षोतक न्यायालयमे नही हो पाता था, उनका वहुत सुगमतासे वे पञ्चके रूपमे फैसला कर देते थे। उनके फैसलेसे वादी-प्रतिवादी

दोनो प्रसन्न होते थे और वैरभावको भूलकर प्रेमसूत्रमे बँध जाते थे। एक वारकी वात है कि रतनगढमे 'श्रीशार्दूल फ्री वाटर वर्क्स'का मकान वन रहा था। मुसलमानोने यह कहकर आपत्ति-की कि 'यह हमारे मोहर्रम ठहरनेका स्थान है, यहाँ मकान नही वन सकता।' परतु श्रीभाईजीने ऐसा अच्छा फैसला किया कि दोनो पक्ष प्रसन्न हो गये और मकान भी वन गया। श्रीभाईजीपर सव जातिवालोकी श्रद्धा थी। जिन व्यक्तियोमे भगवान्की कला होती है, उनका व्यक्तित्व ऐसा ही होता है कि उनके सम्मुख सव नम्र एव आज्ञाकारी वन जाते है।'

श्रीभाईजी उच्च आध्यात्मिक ज्ञानसे सम्पन्न होनेके साथ ही सभी व्यावहारिक कलाओके भी ज्ञाता थे। ये गुण अवतारी पुरुषोमे ही सम्भव होते है।

●

गुरुजनोंके भक्त श्रीभाईजी

आचार्य श्रीयमुनावल्लभजी गोस्वामी

श्रीभाईजीसे मेरा पचास वर्षका परिचय था। उन दिनो वे वम्वईमे रहते थे। मै सेठ श्रीधर्मदास त्रिभुवनदासजीके यहाँ कथा कहनेके लिये गया हुआ था। एक दिन माधववागमे सेठ श्रीत्रिभुवनदासजीसे श्रीभाईजीकी भेट हो गयी। सेठजीने श्रीभाईजीसे मेरा परिचय कराते हुए कहा—'आप वृन्दावनके गोस्वामीजी है, वडी सुन्दर कथा कहते है। जनतामे इनकी कथाका प्रचार कीजिये।' श्रीभाईजी मेरा परिचय जानकर वहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन वे मुझे अपने साथ 'नेमानीवाडी' ले गये। यह स्थान ठाकुरदासरोडपर है। यहाँपर उन दिनो सत्सङ्ग, कीर्तन, कथा आदि होते रहते थे। श्रीभाईजीने अपने मित्रोसे परामर्श करके मेरी कथाकी व्यवस्था 'नेमानीवाडी'मे करवा दी। एक मासतक कथाका वडा सुन्दर आयोजन रहा। इस अवधिमे श्रीभाईजीने मेरा परिचय एक-दो सम्भ्रान्त परिवारोसे करवा दिया और उनके यहाँ कई दिनोतक सत्सङ्गका कार्यक्रम चलता रहा। श्रीभाईजी बीच-वीचमे मेरी कथामे भी सम्मिलित होते थे। वे वरावर ध्यान रखते थे कि मुझे किसी प्रकारकी असुविधा न हो। श्रीभाईजीके अहैतुक प्रेमको देखकर मै विस्मित था।

उस समय भी श्रीभाईजीको सभी व्यक्ति वडे पूज्यभावसे देखते थे। उनका व्यवहार सभीके साथ वडा स्नेहपूर्ण एव निश्छल था। जो भी व्यक्ति उनसे मिलता था, उसे यही अनुभव होता था, जैसे वह अपने किसी अत्यन्त स्नेही गुरुजनसे मिल रहा हो। सेठ श्रीधर्मदासजी तो श्रीभाईजीके व्यवहार एव जीवनसे इतने प्रभावित थे कि एक दिन उन्होने मुझसे कहा—'महाराजजी! श्रीभाईजीसे अच्छा अनुरागी और नही मिलेगा, वे वडे ही प्रेमी है।'

उन्ही दिनो राजा श्रीवलदेवदासजी विडलाने श्रीमद्भागवतके अष्टोत्तरशत सप्ताह-पाठ करवाये। श्रीविड़लाजीका श्रीभाईजीपर वडा वात्सल्य था तथा भाईजी भी उन्हे पितातुल्य मानते

थे। पाठ करनेवाले पण्डितोके चयनका भार श्रीभाईजीपर डाला गया। मैंने श्रीभाईजीको कई पण्डितोके नाम बताये और मुझपर विश्वास करके उन्होने उन सबका नाम लिख लिया। श्रीभाईजीने कहा—'और भी कोई पण्डित आपके ध्यानमे हो तो अभी बता दीजिये; सूची पूरी होनेपर उसमे हेर-फेर नही हो पायेगा।' मैंने उन्हे बता दिया था कि अब कोई पण्डित मेरे ध्यानमे नही है। पर दैवयोगसे दूसरे दिन मेरे कुटुम्बी एक पण्डित वृन्दावनसे बम्बई पहुँच गये और अपना नाम पाठकर्ताओमे लिखवानेका आग्रह करने लगे। मुझे ज्ञात था कि सूची पूरी हो चुकी है, पर मै श्रीभाईजीके स्वभावको भी जानता था। मै बडे संकोचके साथ श्रीभाई-जीके पास गया और उनसे अपने कुटुम्बीकी बात कही। श्रीभाईजी थोडी देरतक तो सोचते रहे, पीछे बोले—'महाराजजी! आपकी बातका आदर करना ही है। आप स्वय पाठ न करके पाठकर्ताओके निरीक्षकके रूपमे सबकी सँभाल कीजिये और कुटुम्बीजनको अपने स्थानपर पाठ करनेके लिये कह दीजिये।' श्रीभाईजीके इस उदार व्यवहारसे मेरा तथा मेरे कुटुम्बीका हृदय गद्‌गद हो गया। यह उदारता एव दूसरेकी बातको आदर देनेकी भावना श्रीभाईजीके स्वभावमे जीवनभर बनी रही।

श्रीभाईजी केवल जन्मसे वैश्य थे, आचार-विचारमें वे ब्राह्मण थे तथा उत्साहमे राजर्षि। वे रागानुगा तथा दास्यभक्ति—दोनोके तो मानो आचार्य ही थे। उनके सत्प्रयत्नसे हमारे प्राचीन धार्मिक साहित्यका जो प्रकाशन तथा प्रचार-प्रसार हुआ है, उसे सनातनधर्म तथा संस्कृतिका 'नवजन्म' ही समझना चाहिये। श्रीभाईजीने भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णकी कथाको भारतके घर-घरमे पहुँचा दिया। इस पुण्यकार्यसे उनकी कीर्ति 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' विद्यमान रहेगी। सभी धर्मप्रेमी श्रीभाईजीके ऋणी है। यह ऋण पैसेसे चुकाया जानेवाला नही है।

भाईजी 'सबहि मानप्रद, आपु अमानी'के जीवित प्रतीक थे। सन् १९६५मे मै गोरखपुरमे गीताप्रेसके व्यवस्थापक महोदयके घरपर 'श्रीमद्भागवत-सप्ताह' करनेके लिये गया। जब मै श्रीभाईजीसे मिला, तब उन्होने दोनो चरण छूकर जिस भक्ति-भावसे मुझे प्रणाम किया, वह मेरे लिये अविस्मरणीय है।

'श्रीराधारस' तो मानो श्रीभाईजीमे मूर्तिमान् था। मेरे पास उनके कई पत्र सुरक्षित है, जिनमे उनके प्रेमकी मार्मिकता प्रत्यक्ष हो जाती है। वह अनुभवकी वस्तु है, वाणीसे उसका उल्लेख सम्भव नही। जिस प्रकार श्रीमद्भागवतके श्लोकोका रस टीका या प्रवचनसे प्रकट नही किया जा सकता, उनका स्वाद 'मूकास्वादनवत्' है, ठीक यही बात श्रीभाईजीके विषयमे समझनी चाहिये।

दो वर्ष पूर्व मेरे ग्रन्थ 'श्रीगीतगोविन्द'का तृतीय सस्करण तैयार हो रहा था। मेरे मनमे आया कि श्रीगीतगोविन्दका रस श्रीभाईजीको बहुत प्यारा है। अतएव इस संस्करणका समर्पण श्रीभाई-जीको किया जाय। श्रीभाईजीसे इसकी अनुमति लेना आवश्यक था। मैंने अपने एक सम्भ्रान्त प्रेमीकी मार्फत इसकी चेष्टा की। जब श्रीभाईजीके सामने यह विषय रखा गया, तब वे बोले—"'श्रीगीतगोविन्द' महान् गुह्य ग्रन्थ है। प्रथम तो इसका प्रकाश ही नही होना चाहिये और यदि श्रीगोस्वामी महाराजकी इच्छा इसको प्रकाशित करनेकी है तो मै उस कोटिमे अपनेको नही

भवन भी हिंदूधर्मकी गौरवगाथाको प्रकट करेगा। अत इसका निर्माणकार्य भी शीघ्र ही पूरा होना आवश्यक है।' किंतु श्रीपोद्दारजीने हर बार यही उत्तर दिया—'जिन विश्वेश्वर भगवान्का यह स्थान (भवन) वन रहा है, वे ही इसे पूरा करानेवाले है।' श्रीविडलाजी तथा श्रीपोद्दारजीके गोलोकवासी हो जानेसे यह सस्था अव अनाथ-जैसी हो गयी है। यह कार्य वहुत वडा विशाल है। हिंदुओके उत्थान और पतनका इतिहास इससे सम्वन्धित है। इसको सँभालना किसी सामान्य व्यक्तिके वल-बूतेकी वात नही है। उन-जैसे महान् व्यक्ति ही ऐसे महान् कार्यको कुशलतापूर्वक सँभाल सकते थे। 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'पर जो कार्य हो रहा है, उसके पूर्ण होनेके लिये कई करोड रुपये धनराशिकी आवश्यकता है और इससे भी अधिक आवश्यकता है कुशल कार्य-सचालनकी, जिसे श्रीपोद्दारजी आसानीसे कर लेते थे। उनके चले जानेसे इस पुनीत कार्यको वडी क्षति पहुँची है।

ऋपिकेशके भजनाश्रममे द्रव्य जमा था। श्रीपोद्दारजीने सभापति वननेपर उस सव द्रव्यको शुभ कार्योमे लगाकर सस्थाको 'भगवत्-आश्रम'के रूपमे परिणत कर दिया।

विश्व-प्रसिद्ध धार्मिक मासिकपत्र 'कल्याण'के सुदीर्घकालव्यापी सम्पादन तथा आध्यात्मिक एव धार्मिक ग्रन्थोके लेखनद्वारा श्रीपोद्दारजीने सदियोसे जर्जरित हिंदूधर्मके पुनरुत्थान और प्रसारका जो महान् कार्य किया है, वह हिंदूधर्मके इतिहासमे उनकी अमर कीर्तिके रूपमे चिरस्मरणीय रहेगा। श्रीपोद्दारजीने जिस किसी भी सार्वजनिक कार्यको अपने हाथोमे लिया, उसे उन्होने सच्ची लगन और नि स्वार्थ भावनासे किया। ऐसे महान् व्यक्ति ही वास्तविक 'युग-निर्माता' होते है।

●

प्रभो! मिटा दो मेरा सारा सभी तरहका मद अभिमान।
झुक जाये सिर प्राणिमात्रके चरणोमें, तुमको पहिचान॥

आचण्डाल, शृगाल, श्वान भी हो मेरे आदरके पात्र।
सबमें सदा देख पाऊँ मैं मृदु मुसकाते तुमको मात्र॥

सबका सुख-सम्मान परम हित ही हो, मेरी केवल चाह।
भूलूँ अपनेको सब विधि मैं, रहे न तनकी सुधि परवाह॥

पूजूँ सदा सभीमें तुमको यथायोग्य कर सेवा-मान।
बढ़ती रहे वृत्ति सेवाकी, बढ़ती रहे शक्ति निर्मान॥

परका दुख बने मेरा दुख, सुखपर हो परका अधिकार।
बन जाये निज-हित पर-हित ही, सुखकी हो अनुभूति अपार॥

आर्त प्राणियोको दे पाऊँ सदा सान्त्वना-सुखका दान।
उनके दुःखनाशमें कर पाऊँ मैं समुद आत्मबलिदान॥

—श्रीभाईजी

●

उदार सेवारत जीवन

श्रीजयदयालजी डालमिया

पूज्य श्रीभाईजीने लगभग ४५ वर्षोतक 'कल्याण'का सम्पादन किया। एक वर्षसे कुछ अधिक कालतक तो 'कल्याण'का प्रकाशन वम्बईसे होता रहा दूसरे वर्षके विशेषाङ्कके वाद ही 'कल्याण'का सम्पादन तथा प्रकाशन भी गोरखपुरसे होने लगा। 'कल्याण' और गीताप्रेसको इस स्थितिपर पहुँचानेका अधिकतर श्रेय पूज्य श्रीभाईजीको ही है। उन्होने इसके लिये अपना जीवन अर्पण कर रखा था। रात्रिके ११-१२ वजेतक काम करते-करते सोकर प्रात. ३-४ वजे सिरहाने रखे कागजोको उठाकर काम करने लगना उनका नित्यका व्यापार था। भोजन करनेके वाद थोड़ी देर लेटकर विश्राम करते समय भी कागज हाथमे उठाये 'कल्याण'का कार्य ही करते रहते। आये हुए लेखोका सम्पादन, स्वतन्त्र लेख लिखना, चित्रोका चयन, चित्रकारको चित्र तैयार करनेमे पग-पगपर मार्गदर्शन, गैली प्रूफ तथा पेज प्रूफोंका अवलोकन आदि सारे काम वे स्वयं करते थे।

'कल्याण' ही एक ऐसा धार्मिक मासिकपत्र है, जिसके इस युगमे भी डेढ़ लाखसे अधिक ग्राहक है। यही उनका स्मारक है। जवतक 'कल्याण' चलता रहेगा, तवतक डेढ लाख ग्राहकोके तथा इससे भी कही अधिक संख्याके पाठकोके मनसे उनकी स्मृतिका लोप नही हो सकता। उनकी स्मृतिका इससे बढकर दूसरा साधन नही दीखता। अत 'कल्याण'के सम्पादन-विभागके तथा गीताप्रेसके प्रकाशन-विभागके सभी लोगोका यह परम कर्त्तव्य है कि जिस तरह भी वने, इसको सुचारुरूपसे चलानेमे अपने प्राणोकी आहुति दे दे, ठीक वैसे ही जैसे पूज्य श्रीभाईजीने अस्वस्थताकी हालतमे भी--जवतक थोडी भी सामर्थ्य वनी रही, वरावर अपनेको उस काममे लगाये रखा।

श्रीभाईजी जीवमात्रके 'भाईजी' थे। अपने किसी भी कार्य या आचरणद्वारा किसीको कष्ट न पहुँचे, इसके लिये वे वडे सतर्क रहते थे। सभीकी प्रसन्नता वनी रहे, यह उनका एक व्रत था, इस व्रतका निर्वाह वे औषध-उपचारमे भी करते थे। जो कोई भी डाक्टर-वैद्य उनको अपनी औषध सेवन करनेको देता, वे उसकी औषध ले लेते। मैंने उनसे एक वार कहा—'आप विना सोचे-समझे सवकी औषध ले लेते है, यह ठीक नही। कभी कोई औषध पूर्व-औषधके विपरीत पड जाय तो उसका वडा भयकर परिणाम हो सकता है।' उन्होने वडी सरलतासे उत्तर दिया—'शरीर तो जव जानेको होगा, तभी जायगा। इस (औषध देनेवाले)की औषध ले लेनेसे इसको प्रसन्नता होगी कि भाईजीने मेरी औषध ले ली, और ठीक हो जानेपर औषध देनेवालेको द्विगुण प्रसन्नता होगी कि मेरी ही औपधसे भाईजी ठीक हो गये।'

एक वारकी वात है--मेरे पैरमे एक दुर्घटनासे चोट लग जानेके कारण वडा आपरेशन

होनेवाला था। जिस डाक्टरसे आपरेशन करानेकी बात हुई, किसी कारणवश मै उससे आपरेशन नही करवाना चाहता था। अपनी यह इच्छा जब मैंने भाईजीके समक्ष व्यक्त की, तब उन्होने उसी सरलतासे उत्तर दिया—'इनसे आपरेशन नही कराया जायगा तो इनका जी दुखेगा। इसलिये इन्हीसे आपरेशन करा लेना चाहिये।' मेरे पास इसका कोई उत्तर नही था और मैंने चुपचाप स्वीकृति दे दी।

सभीको प्रसन्न रखना और किसीका भी जी न दुखाना उनका व्रत था। दूसरेको सुख मिलनेसे उन्हे सहज आनन्द मिलता। दूसरेका सुख ही उनका सुख था।

श्रीभाईजीके पास प्रतिदिन बहुत-से व्यक्तिगत पत्र आया करते थे, जिनमे लोग अपना हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया करते थे। उनमे उनके जीवनकी कई गुप्त बाते भी होती थी। ऐसे सब पत्रोका उत्तर अपने हाथसे लिखकर भेजनेका उनका नियम था। उन पत्रोको लिफाफेमे भी वे स्वय ही बद किया करते। इतने सावधान थे।

सभी सम्प्रदायोके, सभी राजनीतिक दलोके लोग उनके पास आते और अपने मनकी बात खोलकर कहा करते तथा उनसे अपनी व्यक्तिगत समस्याओका समाधान पाकर शान्तचित्त लौटते।

केवल शौच, स्नान, सध्या-पूजन, भोजन-शयन आदिके समय या जब कोई मिलनेवाला आ जाता, तभी वे काम स्थगित करते। जबतक आनेवाला व्यक्ति स्वय ही सतोष पाकर न चला जाता, तबतक वे उस आनेवाले व्यक्तिकी तरफ बराबर ध्यान रखते।

आज गदे साहित्यके प्रचारमे जो थोडी रोक है, उसका कारण गीताप्रेसका सुलभ, सस्ता, उच्चकोटिका साहित्य ही है। यदि 'कल्याण' बद हो गया तो गीताप्रेस भी धीरे-धीरे ठप्प हो जायगा और फिर गदे साहित्यके प्रचारमे तेजीसे वृद्धि होगी। अत 'कल्याण'से सहानुभूति रखनेवालोका यह परम कर्त्तव्य है कि अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार सभी उसमे अपना योगदान दे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

मेरा कुछ भी है नही, कोई प्राणि-पदार्थ।
'मैं' भी जब कुछ नही, तब कैसा मेरा स्वार्थ॥

एक तुम्ही हो सभीमे, सभी जगह, सब काल।
लीलामय कर रहे नित लीला विविध रसाल॥

जन्म-मरण, सुख-दुःख—सब मधुर-भयानक रूप।
खेल-खिलौने सब तुम्ही, खेलनहार अनूप॥

—श्रीभाईजी

●

समत्वयोगमें प्रतिष्ठित संत

श्रीयुगलसिंहजी खीची, एम० ए०, बार-ऐट-ला०

श्रीहनुमानप्रसादजीसे मिलने और विविध विषयोपर उनसे विचार-विनिमय करनेके अनेक अवसर प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है । वे आयुमे मुझसे कुछ वडे थे । अत. मै उनके प्रति 'भाईजी' शब्दका प्रयोग करता रहा । उनके वारेमे मित्रमण्डलीमे चर्चा चलनेपर मै कहा करता था कि, वे पुण्यश्लोक एवं पूतात्मा है और उनके व्यक्तित्वके सम्वन्धमे यह श्लोक सुनाया करता था——

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णास्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

'जिनके तन, मन और वचनमे पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है, जिन्होने उपकारोसे तीनो लोकोको प्रसन्न किया है और जो दूसरोके परमाणु-वरावर गुणोंको पर्वतके समान वढाकर अपने हृदयमे आनन्दका अनुभव करते है, ऐसे सत संसारमे विरले ही होते है ।'

एक वार एक सभामे भाईजीकी उपस्थितिमे ही इस श्लोकका उच्चारण करते हुए उनकी ओर मुख मोडकर मैने कहा——'हमारे लिये परम गौरवका विषय है कि हमारी मरुभूमिको वचनामृतसे सिञ्चन करते हुए श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इस श्लोकके साकार रूप है ।' भाईजीने तत्काल खडे होकर कहा——"मुझ-सरीखे तुच्छ व्यक्तिको 'सत' न समझकर आप 'सतोकी चरण-रज' मानिये और आशीर्वाद प्रदान कीजिये, जिससे मेरा मन भगवच्चरणोमे लगे ।" उनकी विनयशीलताका यह दृष्टान्त उनके व्यक्तित्वका एक पहलू है ।

'कल्याण'के 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क'मे पृष्ठ ५२५ पर यह वाक्य प्रकाशित हुआ है——'एक मृत पारसी आत्माने एक सज्जनसे कहकर अपने लिये गयामे पिण्डदान करवाकर सद्-गति प्राप्त की थी ।' एक अवसरपर जब भाईजी बीकानेर पधारे, तव उन्होने तत्कालीन महाराजा श्रीसादूलसिहजीको इस घटनाका पूरा विवरण सुनाया था । जव भाईजी वम्वईमे चौपाटीपर वायुसेवनके लिये एक वेचपर विराजमान थे, तव एक पारसीके प्रेतने प्रकट होकर उन्हे अपने घरका पता वतलाया और प्रार्थना की कि उसकी सद्गतिके लिये गयामे उसके निमित्त पिण्डदान करवाया जाय । तदनुसार व्यवस्था होनेपर वह पुन प्रसन्नमुद्रामे श्रीभाईजीके समक्ष कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये उपस्थित हुआ । एक वार एक जन-मण्डलीमे श्रीभाईजीने एक-दो स्वजनोके आग्रहसे इस घटनाको सुनाया । सयोगसे उस मण्डलीमे एक तार्किक सज्जन थे, जिनकी शास्त्रोपर श्रद्धा नही थी । वे इस घटनाको सुनते ही वडे क्षुभित हो गये और आवेशमे भरकर श्रीभाईजीको खरी-खोटी सुनाते हुए कहने लगे——"आप और आपका 'कल्याण' ऐसी दकियानूसी वातोका प्रचार करके समाजकी अधोगति कर रहे है ।" उपस्थित सभी सज्जनोको उनके इस प्रकार

वोलनेसे वडी पीडा हुई। सवने उन सज्जनसे प्रार्थना की कि 'इस प्रकार आपको विना अनुभवके किसी सतका अपमान नही करना चाहिये।' पर मैंने देखा कि इस प्रलापके प्रहारने भाईजीकी शान्त और गम्भीर मुद्रापर तनिक भी विकार उत्पन्न नही किया। मुस्कराते हुए श्रीभाईजीने इतना ही कहा—'जो कुछ मेरा अनुभव था, मैंने सुना दिया। उसे मानना या न मानना आपकी इच्छापर निर्भर है। इसके लिये किसी तरहकी मजबूरी तो है नही।' श्रीभाईजीके इस मनोनिग्रहको देखकर सहृदयजनोको परम प्रसन्नता हुई।

श्रीभाईजीसे ज्यो-ज्यो मेरी घनिष्ठता वढती गयी, त्यो-त्यो मेरा यह विश्वास दृढ होता गया कि त्याग और तपस्याके कारण श्रीभाईजीने निर्विकार वृत्तिमे स्थित रहनेकी सिद्धि प्राप्त कर ली थी। वे ऐसे योगी थे, जिनका अपनी स्तुति-निन्दाके प्रति समभाव था। गीतामे भगवान्‌ने कहा है—'समत्व योग उच्यते' और 'इहैव तैर्जित सर्गो येपा साम्ये स्थित मन।'

'समत्वका ही नाम योग है' तथा 'जिनका मन समत्वमे स्थित है, उन्होने यही ससारको जीत लिया है'—इन वाक्योको श्रीभाईजी अपने दैनिक व्यवहारमें सार्थक सिद्ध करते थे। जिन्होने उनके गृहस्थ-जीवनको देखा है, वे मुझे वताते थे कि उनका जीवन कितना पावन था। उसकी स्मृतिसे मेरे मानस-पटलपर एक श्लोक उभर आया है—

वनेऽपि दोपाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

'जिसे सुखकी चाह है, उसे वनकी राह पकडनेपर भी दोष जकड लेते है, पर जिसके द्वारा घरमे रहते हुए भी पाँचो इन्द्रियोके सयमरूप तपका अनुष्ठान हो रहा है एव जो शुभकर्ममे लगा हुआ है, उस रागविहीन सत्पुरुषके लिये अपना घर ही तपोवन वन जाता है।'

श्रीभाईजीकी गुण-गरिमा और कर्म-कलापका स्मरण करते हुए मुझे भर्तृहरिकी यह उक्ति उनके सम्वन्धमे उपयुक्त लगती है—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा॰ कवीश्वरा॰।
नास्ति येषां यश कायें जरामरणजं भयम्॥

श्रीभाईजी वहुमुखी प्रतिभाके धनी थे। गद्य और पद्यपर उनका समान अधिकार था। उन्होने अपने अनेक ग्रन्थो, लेखो, प्रवचनोद्वारा मानव-जीवनके लिये पावन पथका प्रदर्शन किया है। उस पथका अनुसरण कर हम सरलतासे अपने लक्ष्यतक पहुँच सकते है।

●

भगवत्कृपा दीनका धन है, है उसपर उसका अधिकार।
नहीं योग्यताकी आवश्यकता, नहीं देश-कुल-धर्म-विचार॥
नही प्रश्न 'अधिकारी'का कुछ, नहीं शर्त कुछ, नहीं करार।
हो विश्वास परम दृढ केवल दीनवन्धुपर विना विचार॥

—श्रीभाईजी

●

पितृकल्प पोद्दारजी

श्रीशान्तिप्रसादजी जैन

मेरा श्रीपोद्दारजीसे सर्वप्रथम परिचय दानापुरमे सन् १९३१ मे हुआ था और अन्तिम दर्शन हुए गोरखपुरमे १५ मार्च, सन् १९७१ को। उन्होने मुझे सदा प्यार किया और मेरी आस्था उनके साधुत्वके प्रति हमेशा ही वढ़ती रही। वे सबके कल्याणकारी और राग-द्वेषसे ऊपर थे।

वे कर्मकाण्डी पण्डितोको उत्साहित करते और जो उनके निकटवर्ती थे तथा जिनपर उनकी ममता थी, उनको वे अपने शुभके लिये कर्मकाण्डी पण्डितोद्वारा पूजा-पाठ करवानेमे उत्साहित करते थे। इसी प्रकार मान्त्रिक और तान्त्रिक विद्वानोको भी उनकी प्रशसा और सहयोग प्राप्त था। मैने मन्त्र-तन्त्रके प्रति अपनी शङ्का उनके समक्ष रखी। मेरी इस उत्कण्ठाको उन्होने वड़ी प्रसन्नतासे केवल शान्त ही नही किया, अपितु जो कुछ मुझे समझाया, उससे मुझे विश्वास हो गया है कि ये दोनों ही सत्य है, कितु इनका उपयोग मनुष्यकी अपनी आस्था और जीवनस्तरपर निर्भर करता है। उन्होने कहा—'देवी-देवता उसी प्रकार सत्य है, जिस प्रकार इस जगत्‌मे मनुष्य सत्य है। मन्त्र-तन्त्र उसी प्रकार लाभदायक है, जिस प्रकार हम इस लोकमे किसी राज्यश्रीसम्पन्न या लक्ष्मी-अधिपतिकी स्तुति आदि करनेके फलस्वरूप लाभान्वित होते है। मनुष्यका जीवन जब सासारिक इच्छाओसे ऊपर उठ जाता है, तब कर्मकाण्डकी ये शक्तियाँ और विभूतियाँ उसके लिये उपादेय एवं स्पृहणीय नही रह जाती।'

इसके पश्चात् उन्होने जनसेवाके महत्वको वतलाते हुए कहा—'आदमी सब समय अध्यात्ममें लीन नही रह सकता और न आत्म-चिन्तन ही कर सकता है। भगवद्भक्ति एवं जनसेवाके कार्य अध्यात्मकी सीढियाँ है।' प्राय. देखा जाता है कि आध्यात्मिकतामे लीन साधु अपनी आत्माको ही परम शुद्ध वनानेमे सलग्न रहता है। परतु श्रीपोद्दारजी जीवनभर ससारके सव प्रकारके दु खोसे तप्त प्राणियोके आर्त्तिनाशनका सतत प्रयत्न करते रहे।

इस चर्चाके पश्चात् मैने कई वार और कई तरहसे शास्त्रोका जो भी अध्ययन किया, उससे मुझे उनके शब्दोकी सत्यता अधिक प्रखर होती दिखायी दी।

वे आध्यात्मिकता और ज्ञानकी मूर्ति होनेके साथ-साथ एक सच्चे साधु थे और जिस साधुताका प्रकाश वालकोके जीवनमे दिखायी देता है, वह उनमे भरपूर थी। एक वार ऋषिकेशकी गङ्गाजीमे उनके साथ नहाते हुए जव मैने १०१ डुवकियाँ लगानेकी वात कही, तव वे भी वरावर डुवकियाँ लगाते रहे और अपनी उम्रका लिहाज किये विना पानीमे मेरे साथ उसी प्रकार आनन्द लेते रहे, जैसे वच्चे लेते है।

उन्होने मुझे हमेशा अपना बेटा माना और मैने उन्हे सदा अपना पिता।

हिंदूधर्मके संरक्षक

साहित्यवारिधि श्रीवृन्दावनदासजी

हिंदूधर्म जब-जब ह्रासोन्मुख हुआ है, उसके पुन सस्थापन और पुनरुत्थानके लिये महान् विभूतियोने जन्म लिया है। अवतारवाद इसी सिद्धान्तका उज्ज्वल प्रतीक है। श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारका जन्म इसी परम्परामे है और उनका हिंदूधर्म और सस्कृतिके पुनरुद्धारका कार्य बडा भव्य है।

श्रीपोद्दारजीका परलोकगमन सम्पूर्ण हिंदू-ससारकी एक महान् दुर्घटना है। अपने जीवन-कालमे प्रात स्मरणीय पोद्दारजीने धर्म, सस्कृति और साहित्यकी जो सेवा की, वह अनिर्वचनीय एव अविस्मरणीय है। पोद्दारजी अपने आपमे एक महान् सस्था थे। धार्मिक साहित्यके क्षेत्रमे पोद्दारजीके उदयके पहले एक अभावग्रस्त स्थितिकी-सी अनुभूति होती थी। देशमे धार्मिक साहित्यके प्रकाशन-सस्थान उँगलियोपर गिने जानेयोग्य थे तथा धर्मग्रन्थोकी प्राप्ति कठिन और व्ययसाध्य थी। धर्मप्राण जनतामे अपने महान् देशके आर्षग्रन्थोको अपनी मातृभाषामे पढनेके लिये छट-पटाहट थी। पोद्दारजीने समयकी माँग पहचानी और अपने देशकी जनताको ऐसे ग्रन्थरत्न भेट किये, जिनकी मुद्रण-सम्बन्धी स्वच्छता, सुन्दरता और शुद्धता देखकर भारतीय जन-मानस कृत-कृत्य हो गया और जो स्वल्पमूल्यकृत सुलभताके कारण घर-घर पहुँच गये।

सन् १९५६ मे अपने कुछ साथियोके साथ पोद्दारजी तीर्थाटन करते हुए मथुरा पधारे। तीर्थ-यात्रियोके सम्मानमे मथुराके 'लक्ष्मीदास भवन'मे एक समारोहका आयोजन किया गया। इन पक्तियोका लेखक भी उस समारोहके आयोजकोमे था। समारोहमे एकके बाद दूसरे वक्ताने पोद्दारजीके ऋपितुल्य जीवनकी महिमापर प्रकाश डाला। कुछ वक्ताओने तो पोद्दारजीके कार्यकलापो-की उपमा महर्षि वेदव्यासके कर्तृत्वसे दे डाली। कई वक्ताओने उन्हे आधुनिक भारतका 'वेदव्यास' कहा। मैंने अपने भाषणमे पोद्दारजीका ध्यान 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान' की दुर्दशाकी ओर आकृष्टकर निवेदन किया कि 'मथुरामे प्रतिवर्ष लाखो यात्री आते है, किंतु ऐसा कौन होगा, जिसका हृदय 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि'की वर्तमान दुरवस्थाको देखकर शतधा विदीर्ण न होता हो।' सब सुननेके बाद अश्रुपूरित नेत्रोसे पोद्दारजीने कहा—

"आपलोगोने प्रेमके वशीभूत होकर मेरे साथ बडा अन्याय किया है। मै एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणी हूँ। जिन परम वन्दनीय महर्षियोके नामके साथ आपने मुझे सम्बद्ध किया है, मै उनके चरणोकी धूलि भी नही हूँ। मेरी तो सदैव यह कामना रही है कि मै उनके चरणोके धूलिकणके योग्य बन सकूँ। आप मुझे यही आशीर्वाद दीजिये। 'जन्मस्थान'के प्रति जो कुछ कहा गया है, उससे मै पूर्ण सहमत हूँ। एतन्निमित्त अपने क्षुद्र प्रयास भी करनेको प्रस्तुत हूँ। शीघ्र ही दस हजार रुपये आपलोगोकी सेवामे भेजूँगा। वास्तवमे यह कार्य आपके ही कर्त्तव्यपालनकी अपेक्षा करता है। आप श्रीकृष्णके अपने है।"

पोद्दारजीके इस विनम्र वक्तव्यपर उपस्थित लोगोने हर्ष-ध्वनि की।

थोडे ही दिनो बाद श्रीपोद्दारजीकी ओरसे 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'के पुनरुत्थान एवं पुर्ननिर्माण-के हेतु दस हजार रुपयेका एक चेक प्राप्त हुआ। इस निधिकी प्राप्ति एक अत्यन्त शुभ मुहूर्तमे हुई समझी जायगी; कारण, इसके साथ ही 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'के निर्माण-कार्यका शुभारम्भ हो गया। शनै-शनै वहाँ एक विशाल मन्दिर एवं 'श्रीकृष्ण-चबूतरा', जिसके नीचे पुराने मन्दिरके अवशेषोके दर्शन होते है, बनकर तैयार हो गये। एक महान् निर्माण-कार्यके रूपमे श्रीमद्भागवत-मन्दिरकी नीव डल गयी है तथा उसका कार्य प्रगतिपर है। यह मन्दिर श्रीपोद्दारजीकी शुभ प्रेरणाका ही फल है और इसके शिलान्यासका शुभ कार्य उन्हीके वरद हस्तोद्वारा सम्पन्न हुआ था। 'श्रीकृष्णजन्म-स्थान'के निर्माणकी प्रगतिमे जब-जब श्रीपोद्दारजीका स्मरण किया गया, वे सहयोगके लिये सदा ही तत्पर रहे।

'श्रीकृष्णजन्म-स्थान' और उस भूमिपर बने देवमन्दिरोका इतिहास बडा पुराना है। इस इतिहाससे महान् व्यक्तियोका सम्बन्ध रहा है, जिनमे सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, गाहडवाल-नरेश विजयपाल और ओरछा-नरेश महाराज वीरसिहजू देव उल्लेखनीय है। परम्परामे महामना प० मदनमोहनजी मालवीय, राय कृष्णदासजी, ब्रह्मलीन सेठ जुगलकिशोरजी बिडला और इनके साथ ही श्रद्धेय हनुमानप्रसादजी पोद्दारको स्मरण किया जायगा।

श्रीपोद्दारजीके सरल, निरभिमान एवं आडम्बरविहीन व्यक्तित्वमे महती कर्तव्य-भावना छिपी हुई थी। उनका व्यक्तित्व जितना सरल था, कृतित्व उतना ही महान् था। पोद्दारजीकी अनवरत सेवाओके कारण समस्त हिंदू-समाज उनका परम ऋणी है और भावी पीढियाँ भी युग-युगान्तरोतक उनके प्रति ऋणी रहेगी।

●

प्रभुसे प्यारा है न्यारा है जैसा जो कुछ भी सम्बन्ध।
काट दिये है उसने मेरे, यहाँ-वहाँके सारे बन्ध॥

रहते मेरे साथ निरन्तर, प्रभु क्षण दूर नहीं होते।
अनुभव सदा कराते अपना हर स्थितिमे जगते-सोते॥

रहूँ कहीं भी, कैसे भी, वे रहते नित्य पास मेरे।
रहते नित भीतर-बाहरसे चारों ओर मुझे घेरे॥

वे मेरे कैसे अपने है, इसे बताऊँ मै कैसे।
अनुभव होता है, पर नही बता सकता गूँगा जैसे॥

—श्रीभाईजी

●

सबके सुहृद्

श्रीयशपालजी जैन

श्रद्धेय श्रीभाईजी हमारे देशकी उन विभूतियोमेसे थे, जिन्होने आजीवन भारतीय सस्कृति-के संवर्द्धन एव व्यापक प्रचार-प्रसारमे योग दिया। वे उच्चकोटिके लेखक तथा अत्यन्त प्रभाव-शाली वक्ता थे।

वस्तुत भारतीय सस्कृतिके सारे गुण उनमे विद्यमान थे। वे सत्यपरायण थे। सादगीका जीवन व्यतीत करते थे, परदु खकातर थे और दूसरोका सदैव हित-चिन्तन एव हित-साधन करते थे।

मुझे उनके निकट सम्पर्कमे आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मै जव कभी उनसे मिला, उन्हे सदा प्रसन्न और आशावान् पाया। वे दूसरोकी सहायताके लिये हर घडी तत्पर रहते थे। मुझे ऐसे अवसर याद है, जव दूसरोकी दु ख-गाथा सुनकर वे इतने पीडित हो उठते थे, जितने शायद दु खग्रस्त व्यक्ति भी नही होते।

उनका हृदय प्रेम तथा करुणासे निरन्तर छलछलाता रहता था। उनके प्रेमका स्रोत अक्षय रहा, उनकी करुणाका भडार कभी रिक्त नही हुआ। उसका कारण था कि वे अपनेको सहज ही दु खग्रस्त व्यक्तिकी स्थितिमे रख लेते थे। ऐसा व्यवित कभी कठोर हो नही सकता। वे सच्चे अर्थोमे 'अजातशत्रु' थे। जीवनभर दूसरोपर प्रेमकी वर्षा करते रहे। ऐसे व्यवितका भडार कभी रिक्त कैसे हो सकता है?

विनम्रताकी तो उनमे पराकाष्ठा थी। अपने जीवनमे उन्होने सामान्य-से-सामान्य व्यवित-को भी मान दिया और अपनी उपस्थितिमे उसे कभी यह अनुभव नही होने दिया कि वह छोटा है।

वे ऊँचे दर्जेके विद्वान् थे। उन्होने वेदो, उपनिषदो आदिका गहन अध्ययन किया था, लेकिन अपनी विद्वत्ताका उन्हे कभी अभिमान हुआ हो, मुझे याद नही आता। वह सवसे ऐसे मिलते थे, मानो अपने ही आत्मीयजनोसे मिल रहे हो। उनसे जव-जव मिला, धन्य होकर लौटा। उनके पत्रोको पढकर आज भी निहाल हो जाता हूँ। इतना वात्सल्य, इतनी सरलता, इतनी स्पन्दनशीलता मैंने वहुत कम लोगोमे पायी है।

उनकी एक ही आकाङ्क्षा थी और वह यह थी कि भारत शुद्ध एव प्रबुद्ध वने। इसीके लिये वे निरन्तर प्रयत्नशील रहे। गीताप्रेसके द्वारा उन्होने जो साहित्य दिया, उसका ऐतिहासिक मूल्य है। हमारे धर्मनिरपेक्ष राज्यमे धर्म और सस्कृति अपनी पुरातन गरिमा खो चुकी है। इतना ही नही, नयी पीढी विदेशी संस्कृतिकी अनुगामिनी वनकर भोग और भौतिकताके पीछे दौड रही है। वह धर्म और संस्कृतिको प्रतिक्रियावादी मानती है। भाईजी इस सवसे चिन्तित अवश्य थे, पर उन्होने अपना प्रयत्न नही छोडा। अन्तिम दिनोमे जव उनका स्वास्थ्य जवाव दे गया था, तव भी निष्क्रिय नही वने। जो हो सका, करते ही रहे।

आज भाईजीको खोकर लगता है कि परिवारका एक ऐसा आत्मीयजन चला गया, जिसकी प्रज्ञा हिमालयकी तरह उच्च और जिसका अन्तर गङ्गाकी भाँति निर्मल था। एक ऐसा स्थान खाली हो गया है, जिसकी पूर्ति कभी नही हो सकेगी। भगवान्-देशवासियोको ऐसी सद्‌वुद्धि दे, जिससे वे भाईजीके स्वप्नोको साकार कर सके।

●

क्या लिखें, क्या बोलें, क्या करें !

श्रीरामनाथजी 'सुमन'

बगीचेमे चुप बैठा हूँ। अस्तगत सूर्यकी ओर देख रहा हूँ। स्वच्छ, निर्मल आकाश दूरतक दिखायी देता है। क्षितिजके एक कोनेपर एकाएक एक नन्हा मटमैला चक्र दिखायी पडता है और देखते-देखते भयकर आँधी उठती है, मेरे सँभलते-सँभलते सम्पूर्ण आकाशपर छा जाती है, अन्धकार सारे प्रकाशको निगल लेता है, हरहराकर बूँदे आती है——लगातार बूँदे। फिर अजस्र जलधारा, मानो मेघ धरित्रीको डुबाकर छोडेगे। मै बुरी तरह भीग गया हूँ और कॉप रहा हूँ। कॉप रहा हूँ और आकाशकी ओर देखता जा रहा हूँ——दृष्टिहीन रिक्तता और सूनेपनके साथ देखता जा रहा हूँ। नही दिखायी देता, फिर भी देखता जा रहा हूँ। हाथ-पाँव फूल गये है, भाग नही पाता हूँ। आश्रय होगा, पर सम्प्रति आश्रयहीन हो गया हूँ। वस, देखता हूँ और देखता हूँ। क्या देखता हूँ ? पता नही।

——कुछ ऐसी ही स्थिति मेरी २२ मार्च १९७१ को हुई, जब मेरे भाईजीने गोरखपुरमे अपना चोला वदल लिया। महीनोसे वे बीमार थे, शङ्कास्पद था उनका बचना। कम ही लोग कहते थे कि वे रहेगे। तव भी उनकी विदाई मुझपर एक आकस्मिक वज्रपातकी भाँति आयी। वहुत पढा है, कुछ सुना भी है और जानता हूँ कि एक दिन देहका अन्त होना है। मृत्यु तो पैदा होनेके दिनसे ही अविच्छेद्य मित्रकी भॉति साथ लगी है। वापू (गाधीजी) कहा करते थे कि 'मृत्यु ही एक माशूक (प्रियतमा) है, जो कभी धोखा नही देती।' भाईजीसे भी वहुत सुना है कि 'शरीरका क्या और इसके प्रति आसक्ति क्यो ?' परतु जव जानकर भी बरावर अपनेको धोखा दिये जा रहा था कि अभी वे नही जायेगे, नही जायेगे। सो जव बिदा होनेकी वात सुनी, तव अकस्मात् ऐसा आघात लगा कि बोला भी नही गया, सन्न रह गया। तबसे दिन-पर-दिन बीतते गये है, मास-पर-मास, यहॉतक कि वर्ष बीतनेको भी आया और मेरी ऐसी स्थिति है जैसे लकवा मार गया है——बुद्धिको, मनको, शरीरको। मेरी आस्था झूठी हो गयी है और जैसे भाईजी नही विदा हुए है, मै ही मर गया हूँ !

कैसे लिखूँ ? क्या लिखूँ ? किसके लिये लिखूँ ? वार-वार कलम उठायी है, चेष्टा की है और वार-वार उसे रख दिया है। लेखनी गूँगी हो गयी है, उसकी पीडा इतनी है कि वह कहना चाहती है, परतु कह नही पाती। मुझे सदेह है कि वह अनुभव भी कर पाती है। उसका दर्द अनुभूतिकी सीमाके वाहर चला गया है।

मित्र एवं कृपालु वन्धु मेरी स्थिति देखते है, शायद समझते भी है, परंतु समझकर भी नही समझते, देखकर भी नही देखते। वे वार-वार कुछ लिखनेका अनुरोध करते है, परंतु समझ नही पाते कि कैसे मै उस अव्यक्तको व्यक्त करूँ, कैसे उस वाणीको खीचकर वोलनेको विवश करूँ, जो मौनमे विसर्जित हो गयी है ? फिर किस भाईजीकी वात कहूँ ? लेखक, साहित्यकार

और कवि ? दीनवन्धु और पर-दुखकातर ? ध्यानी और जपयोगी ? सत और भक्त ? पत्रकार और समाजसेवक ? साधक और तपस्वी ? परम सुहृद् और वन्धु ? 'ज्यौ-ज्यौ डूबै स्याम रँग, त्यौ-त्यौ उज्ज्वल होय'—इस महाभावमे निमग्न ? किस भाईजीकी वात कहूँ ? 'जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।' जीवनकी परिधिका इच-इच स्थान जिनके स्नेह, शुभाशिष, करुणा, सौहार्द और प्रेमदानसे घिरा हुआ हैं, उनकी वात क्या कही जा सकती है ? क्या कहूँ, कैसे कहूँ ?

४३ वर्ष हो गये, जव, '(मारवाडी) अग्रवाल महासभा'के वम्वई अधिवेशनके समय, जिसके वे सभापति थे, उनके प्रथम दर्शन हुए थे। मै था महासभाके मुखपत्र 'अग्रवाल समाचार'का सम्पादक। भाई श्रीश्रीगोपाल नेवटिया, वेणीप्रसादजी डालमिया इत्यादि मित्रोके अनुरोधपर मेरे परम स्नेही वन्धु स्व० शिवपूजनसहायजीने मुझे वम्वई भेजा था इस कामके लिये। फिर उस दिन तो जैसे वम्वई ही भाईजीके दर्शनोके लिये उमड पडी थी। फ्लोरा फाउटेनसे धोवीतलाव और क्राफर्ड मार्केटतक उनके स्वागतमे आये हुए लोगोके मुण्ड-ही-मुण्ड दिखायी पडते थे।

उस भीडमे उनतक पहुँचना क्या सम्भव होता ? दर्शन करने उनके स्थानपर गया, हिचकते, डरते, धडकते हृदयसे। उन्होने देखते ही मुझे ललककर वाँहोमे भर लिया। अव हम वोलते नही है। दोनो द्रवित है, दोनोकी आँखोसे आँसू टपक रहे है और टपक रहे है—वे आँसू, जो दुख और सुख, फूल और काँटोभरे जीवनके लवे मार्गमे चलते हुए टपकते ही रहे और जव वे मुझे छोडकर चले गये हैं, तव भी टपक रहे है, और लगता है—शायद सदा टपकते रहेगे। उनका टपकना ही मेरा वल है, उनका वहना ही मेरा प्रेरणास्रोत है। वही है चिर-मिलनविन्दु। यह है विन्दु और सिन्धु, सिन्धु और विन्दुके मिलन और विच्छेद, विच्छेद और मिलनका अर्घ्य।

मै वडे सकोची स्वभावका आदमी हूँ। जिन्हे जीवनमे प्रेम किया है, वहुत प्रेम किया है, उनसे प्राय दूर-दूर रहता रहा हूँ, वहुत कम सम्पर्क रखा है। परतु सम्पर्कके अभावमे भी जो शाश्वत सम्पर्क हो जाता है, उसका मै क्या करूँ ? वापूजीने एक वार लिखा था—'प्रेम वोलता नही। जो वहुत बोलता है, वह प्रेम नही।' अतएव मै भाईजीसे वहुत कम मिलता रहा हूँ, वहुत कम वोलता रहा हूँ, परतु गाधीजीके वाद मेरे जीवनको सवसे अधिक उन्हीने प्रभावित किया है, पावन वनाया है। प्रेम और स्नेह तो उन्होने जो दिया, कोई और दे नही पाया। पिछले ४३ वर्षोमे शायद १५ वार हम मिले होगे, परतु जीवनका कोई सकटविन्दु नही, जिसमे स्नेहावतार भाईजीने, भगवान्के आशीर्वादकी भाँति आकर मुझे उवार न लिया हो। विना कहे, विना वोले, वे जान जाते थे। कैसे, यह मै आजतक जान नही पाया। मै सकोच-वश उनसे कटता फिरता था और वे अपनी विशाल भुजाएँ वढाकर मुझे पकड लेते, मानो कहते हो—'मेरे स्नेह-जालसे छूटकर कहाँ जाओगे ?'

अगणित है उनके स्नेहकी स्मृतियाँ और वे इतनी निजी और इतनी पावन हैं कि उनको कहना या लिखना उनकी पावनताको लजाना है। उन्होने प्रथम साक्षात्कारके वहुत पहले ही मानो मुझे अपना छोटा भाई मान लिया था और उस उत्तरदायित्वको सदा निवाहा। विना

लिखे, विना कहे, महीनोंसे जव पत्र-व्यवहार नहीं, मिलना नही, न जाने कैसे उन्हे मेरे कष्टोंका पता लग जाता था। १९३९ की वात है, मैं अत्यन्त मारक रोगोके पजेमे फँसी पत्नीको जलवायु-परिवर्तनार्थ दिल्लीसे प्रयाग ले आया था—साधनहीन और अकिचन। पास कोई पूँजी नही, क्योकि मुझपर उन दिनों बापूजीका गहरा रंग चढा था और वे कलके लिये सोचने और सचय करनेको नास्तिकता कहते और मानते थे। महीनेका अन्तिम दिन था। मै बाहर चबूतरेपर बैठा चिन्तामे मग्न था, मेरे पास कुल तीन-चार रुपये बच रहे थे और पहली तारीख (आनेवाले कल)को ग्वाले, महरी, महाराजिन, मकान-मालिक—सबको पैसे चुकाने थे। मै नया-नया आया था और अपरिचित था। मेरे कहनेपर कोई विश्वास ही क्यों करता? सो बैठा हुआ, आँखे मूँदकर भगवान्‌को पुकार रहा था—'कैसे होगा? क्या होगा?' पत्नीके गहने एक-एक करके पहले ही बिक चुके थे। आँखे मेरी बंद है और 'निरालम्बमीश' के प्रति गुहारके साथ भी अपनी विवशता और असहाय अवस्थापर आँसू गिर रहे है। अचानक एक पोस्टमैन आता है। मै अपनेमे इतना डूबा हूँ कि मुझे कुछ भान नही होता। पोस्टमैन पुकारता है—'वाबूजी, आपका बीमा है।' अव मै सोच रहा हूँ कि जो सज्जन पहले इस मकानमे रहते होगे, उनका होगा। इसलिये सूखी हँसी हँसकर कहा—'भैया, मेरा बीमा नही होगा।' परतु 'देखिये तो' कहकर उसने उसे मेरे हाथमे पकडा दिया। सचमुच मेरा ही है। तीन सौ रुपयोका बीमा है, 'कल्याण'से आया है। इस बीमारीके कारण लगभग डेढ सालसे मैंने भाईजीको कोई पत्र नही लिखा था, कोई हाल-चाल उन्हे मालूम न था। उनके अनुरोधपर 'कल्याण'मे मैंने कुछ लेख लिखे थे। 'कल्याण' प्राय पारिश्रमिक नही देता, न उसकी कोई वातचीत थी, न माँग थी। आजतक मै न जान सका कि भाईजीको कैसे यह सब मालूम हुआ, कैसे उन्हे मेरे तत्कालीन पतेका ज्ञान हुआ और कैसे उन्होने विना किसी भूमिका या पत्रके, पर्देकी ओटमे छिपे दीनबन्धुकी भाँति, वे रुपये भिजवाये। पूछनेपर वे हँस देते थे; कभी बताया नही।

अब मेरी हालत सुनिये। बीमा लेना तो मै भूल गया हूँ, आँखे पुन मुँद गयी है और आँसू गिर रहे है। पोस्टमैन घबरा गया है और कुछ देरतक ठक-सा देखता रह जाता है। फिर मेरा कंधा हिलाकर कहता है—'बाबूजी, क्या बात है? रसीदपर दस्तखत तो कीजिये।' मै हस्ताक्षर करता हूँ, परतु रोये जा रहा हूँ और रोये जा रहा हूँ। यह जीवनमे भगवद्दर्शन है, और भाईजी भगवान्‌के आवाहक है।

एक वारकी वात है, सरदारशहरके कन्हैयालालजी दूगड और मोहनलाल जैनने, जो मेरी रचनाओ तथा विचारोके अध्येता और प्रशंसक थे, अपने खर्चेसे मुझे वहाँ बुलाया था। जैन-धर्मके एक सम्प्रदायके आचार्यकी शिक्षाओके विषयमे वे मेरी सलाह चाहते थे। मै गया। मुझे मालूम नही था कि भाईजी रतनगढमे है। रतनगढमे गाड़ी वदलती थी। भाईजीको मालूम हुआ, तुरंत उन्होने आदमी दौडाया। लौटते समय रतनगढ ठहरनेका वचन लिया। लौटनेपर मुझे अपने पास ठहराया। उस समय उनकी इकलौती पुत्री सावित्री बाई ही उनके साथ थी उनकी देख-रेखके लिये। उस समय उसका विवाह नही हुआ था। कमरेमे मैं हूँ और भाईजी हैं। हम दोनो आमने-सामने बैठे है। बोलना चाहते है, परतु बोल नही पा रहे है। बड़ी कठिनाईके

साथ अस्फुट-से कुछ शब्द निकलते है। स्नेहकी सघनतामे वाणी खो-खो जाती है। ऐसा दिव्य और प्राय मौन स्नेह-सत्सङ्ग मुझे जीवनमे वहुत ही कम मिला है। वादमे मैने सुना कि भाईजीने सस्कृतके तरुण कवि अद्भुतशास्त्री इत्यादिके अनुरोधपर मेरे एक व्याख्यानका आयोजन करना स्वीकार कर लिया है। वे ही उस सभाके सभापति भी होगे। मैने उनसे और मित्रोसे वहुत कहा—'जहाँ स्वय कल्पवृक्ष वर्तमान हो, वहाँ भला मै क्या कह सकूँगा ? फिर भाईजीके सामने मेरा मुँह खोलना शिष्टाचारके भी अनुकूल नही।' परतु उनका अनुरोध या आदेश निरस्त नही हो सका। शामको मुझे रतनगढ़का पुस्तकालय दिखाया गया, फिर सभा हुई। मै डेढ-दो घटे भारतीय सस्कृतिकी रूप-रेखापर बोला। भाषणका अन्त हुआ और भाईजी मुझसे लिपट गये और स्तुतिका अन्त कर दिया। ज्यो-ज्यो वे कुछ कहते, त्यो-त्यो मै सकुचित होता जाता। इस विषयपर उनकी उपस्थितिमे मै कुछ कहनेका अधिकारी नही था। वस, इतना ही कहकर उन्हे नमन किया कि 'भारतीय सस्कृतिका सदेह महाकाव्य जहाँ वर्तमान है, वहाँ मेरी इस धृष्ट शिशु-लीलाको प्रोत्साहन तो मिलना ही है।'

तवसे मेरी रचनाओ और मेरी चिन्तनधाराके वे एक उदार पोषक बन गये। कई वार 'कल्याण'मे उन्होने मेरे ऐसे लेख भी छापे है, जिनमे उनकी विचारधारासे किंचित् भिन्न मत प्रकट हुआ था। मेरी नारी-समस्या-विपयक रचनाएँ उन्हे विशेष प्रिय थी और भारतीय नारीके लिये मै जिस मार्गको अपनानेकी वात कहता रहा हूँ, उसके वे प्रवल समर्थक थे। अपने परिवार अथवा मित्रोके परिवारमे किसी कन्याके विवाहका निश्चय होता तो वे मुझसे उस अवसरके लिये दो-चार शब्द लिखनेका आदेश अवश्य कर देते थे। यह सव ममतावश ही था। इस सम्वन्धमे मुझे एक वात याद आ गयी है। जव सौभाग्यवती सावित्रीवाईका विवाह हुआ, मै अपनी विवश-ताओके कारण उसमे सम्मिलित न हो सका। यह उनकी एकमात्र सतानका मङ्गलोत्सव था। मेरी आर्थिक स्थिति भी अच्छी न थी। मेरी धर्मपत्नीका अनुरोध था कि 'जा नही सकते तो कुछ उपहार तो भेजना ही चाहिये।' वडा सकोच था, क्या भेजूँ। वडे-वडे उपहारोके वीच मै जो कुछ भेज सकूँगा, उसकी क्या विसात ? अन्तमे वडी हिचकिचाहटके वीच मैने पोस्ट पार्सलसे खादीकी एक साडी भेज दी। जैसा कि मेरे अनन्य वन्धु श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' के पत्रसे ज्ञात हुआ, सचमुच एक-से-एक वहुमूल्य उपहार आये थे, अधिकाश भाईजीने विनयपूर्वक लौटा दिये, किंतु सुदामाकी भेजी वह साडी न लौटा सके, उसे प्रेमका चिह्न मान रख लिया।

राजस्थानसे मेरा वहुत सम्वन्ध रहा है। मै उसे अपनी दूसरी मातृभूमि मानता रहा हूँ। किसी समय वहाँका युवावर्ग मुझे वहुत चाहता था और वहाँसे चले आनेके वाद भी, उनके अनुरोधकी रक्षाके लिये वीच-बीचमे मुझे राजस्थानके दौरे करने पडते थे। १९३८ मे जव मै दिल्लीमे रह रहा था और मेरी पत्नी वहुत बीमार होकर अस्पतालमे पडी थी, कई युवा मित्रोके अनु-रोधपर मुझे राजस्थान जाना पडा। कई स्थानोका कार्यक्रम था और ज्यादा दिन मै रुग्णासे दूर भी नही रह सकता था। जाते समय रतनगढमे श्रीभाईजीके दर्शन किये। लौटते समय भी रास्ता उधरसे ही था, किंतु गाडी वदलनेमे केवल दो-ढाई घटे मिलते थे और उसमे वहाँसे आरक्षण मिलनेकी भी सम्भावना न थी। भाईजीने कहा था कि 'सव प्रवन्ध हो जायगा, आप विना

मिले न जाइयेगा।' लौटते समय उतरा, सामान स्टेशनपर छोड़ा और ताँगेपर जाकर उनके दर्शन किये। उनके दो मधुर बोल और आशीर्वाद पाकर निहाल हो गया। प्रेमके आँसू चारो आँखोमे छलछला आये। उनकी तबीयत खराब थी, नही तो स्टेशन चलनेको तैयार थे। गये नही, परंतु अपने सुहृद्—सेवाके रसमे आकण्ठनिमग्न दुलीचन्दजीको सब व्यवस्था करनेका आदेश देकर साथ भेजा। मेरी अनुपस्थितिमे ही बीकानेर तार देकर रिजर्वेशन भी करा दिया था। दुलीचन्दजीके साथ मेवा-मिष्टान्न भी भेज दिया था। गाडी आयी, मै बैठ गया। जब गाड़ी चलने लगी, तब दुलीचन्दजी यह कहकर कि 'भाईजी न आ सके, इसलिये यह पत्र दिया है', उतर गये। जब स्थिर होनेके बाद मैने पत्र खोला तो उसमे सौ-सौ रुपयेके कई नोट थे और स्वीकार करनेका अनुरोध था। मैने लौटनेके बाद उन्हे पत्र लिखा कि इस समय मुझे आवश्यकता न थी। फिर भी उन्हें धन्यवाद दिया था और कृतज्ञता प्रकट की थी। कृतज्ञ हृदयसे निकले उस स्नेहमूर्तिकी प्रशंसाके कुछ शब्द भी थे। उसका जो उत्तर उन्होने दिया, उसे एक वे ही दे सकते थे। मेरी प्रशसासे उन्हे गहरी वेदना हुई थी। कई निजी बातोके बाद उन्होने लिखा—'(आपके) पत्रकी भाषासे ऐसा अनुमान हुआ कि मेरे इस व्यवहारसे आपको कुछ सकोचमे पड़ना पडा है। आपके ऊँचे शीलके लिये यह स्वाभाविक ही है। परतु मेरी प्रार्थना यह है कि आप किसी प्रकारका जरा भी सकोच न रक्खे। उदारताका मूल्य चुकानेकी बात न सोचे। मै सत्य कहता हूँ, भगवान् साक्षी है, मै उदारतासे बहुत दूर हूँ और न मै भगवद्भक्त ही हूँ। आपको यदि ऐसा कुछ दीख पडा तो उसमे प्रधान कारण आपकी शुभ भावना और वृत्तियोकी पवित्रता ही है। मै विनयपूर्वक चाहता हूँ कि इस सम्बन्धमे आप एक शब्द भी मुझे न लिखे और न मुझे अपने एक भाईके अतिरिक्त और कुछ भी समझे।'

परंतु जब हृदय भरा हो, कृतज्ञताकी भावगङ्गा कहाँ रुक पाती है। मेरी कृतज्ञताजन्य स्तुतिसे भरे एक साधारण-से पत्रका जो उत्तर उन्होने भेजा था, वह उनके विगलित हृदयके अश्रुबिन्दुओसे जगह-जगह धूमिल हो गया था। इस समय वह मिल नही रहा है। इसमे उन्होने इस आशयके शब्द लिखे थे—'आप तो मेरे सच्चे हितैषी है, कम-से-कम आपको तो कोई ऐसा काम नही करना चाहिये, जिससे मेरी वृत्तियोके अन्तर्मुख होनेमे अवरोध आये।..

यह थी उनकी अन्तर्भावना, यह थी उनकी सरलता। देते है, परतु देनेकी भावना नही, भावना क्या, उसकी अनुभूति ही नही है। वे कोई धनिक नही थे, वर्षो पूर्व सब व्यापार-व्यवसाय छोड बैठे थे। 'कल्याण'से भी कुछ नही लेते थे, न किसीसे कुछ माँगते थे। सच्चे अर्थोमे भगवान् ही उनका अवलम्ब थे, वे ही साधन जुटाते थे। परतु निःस्व होकर भी उन्होने शत-शत प्राणियोकी सहायता की है और उसका कही कोई विवरण नही, सब गुप्त ही रहा और आज भी गुप्त है। देते थे और सचमुच भूल जाते थे। उन्हे याद ही नही रहता था कि इसको कभी कुछ दिया है। मै स्वय बार-बार इसका अनुभव कर चुका हूँ। एक बारकी बात है, मित्रोने मुझे जबर्दस्ती एक प्लाट लिवा दिया और सरकारसे निर्माणके लिये आठ हजार ऋण भी दिलवा दिया। मैने कभी यह सूचना उन्हे भी दी होगी। उसके बाद जब उनसे मिला, तब

बोले--'आठ हजारमे कही मकान वनता है ? अच्छा, मे देखूँगा।' मैने किसीसे अपने निजी कार्यमे सहायता लेनेमे सकोच प्रकट किया। जव वापूजीने मेरी पत्नीके लिये वम्वईके मित्रोसे सहायता दिलानेकी वात कही थी, तव भी मैने विरोध किया था। एक भाईजी ही ऐसे थे, जो मुझे अपना समझकर वडे भाईके रूपमे मेरा बोझ उठा लेते थे और मै उस सम्वन्धको मानकर उनके प्रेमजालमे फँस चुका था। वे अपवाद थे। किंतु उनके पास पैसे थे नही। वडी वहसके वाद तय हुआ कि वे विना ब्याज मुझे किसी मित्रसे रुपये दिला देगे और मै अपनी सुविधासे धीरे-धीरे उसे चुका दूंगा। उन्होने एक-दो सूत्रोसे हजारो रुपये मुझे उधार दिलवा दिये, जिन्हे भगवत्कृपासे, वादमे मैने चुका दिया। ४-५ वर्ष वाद जव प्रसङ्गवश मैने मकानकी वात कही, तव वे बोले कि उन्हे इसका कोई स्मरण नही है।

फिर तो वे मेरे सरपरस्त ही हो गये। जव मै उनके दर्शन करने जाता, तव लौटनेके दिन वे मेरे लिये गाडीमे रिजर्वेशन वगैरह करा देते और आज्ञा देते कि 'जाते समय मिलकर जाना'। मै उनसे विदाई लेने जाता। यदि उस समय कमरेमे और लोग होते तो उन्हे वाहर जानेको कह देते। मै प्रणाम करता, तव वे मेरे सिरपर हाथ रखकर थपथपा देते, फिर मुस्कराकर एक बद लिफाफा पकडा देते। इन्कार करनेपर कहते—'यह मेरा दायित्व है।' वे जनमभर अपना दायित्व निभाते रहे और यह मेरा परम दुर्भाग्य है कि मै उनकी कोई सेवा न कर सका। अपना दु ख प्रकट करनेपर वे कहते कि 'आप इसी प्रकार अपने विचार लोगोको देते रहे, यही मेरी सेवा है।' उनकी बद लिफाफेवाली वृत्ति जव वहुत वढ गयी, तव इच्छा होते हुए भी मै उनके दर्शनोसे लबी अवधितक अपनेको वञ्चित रखने लगा। किंतु जाऊँ या न जाऊँ, इससे कोई अन्तर पडनेवाला नही था। मेरे कुटुम्वके प्रत्येक सदस्यका भार विना कहे-सुने ही उन्होने अपने ऊपर ले लिया था। भाईजी प्राय मुझसे कहा करते थे--"समय वहुत वदल गया है, अव पुराने लोग नही रहे, जो मेरी वातपर सव कुछ करनेको तैयार रहते थे। अव तो 'सत्ता' और 'देन-लेन'की वात है। व्यापारसे धर्मका लोप होता जा रहा है। लोग मेरे पाँव छूते है, परतु वात नही मानते, एक-न-एक वहाना करके टाल देते है।" इस वदले हुए वातावरणमे उनका दम घुटता था।

समुद्रकी लहरे तटकी ओर आती है, चट्टानोसे टकराती है, लौट जाती है, परतु फिर-फिर आती है। उनका आना नही रुकता, यह उनका स्वभाव है। भाईजीके लिये भी यही वात है। स्नेहकी वृत्ति उनके लिये सहज थी। वे अपनी करते ही रहते थे, जिसे अपना लिया, उसका सुख-दु ख सव उनका हो गया। उसकी चिन्ता वे जवर्दस्ती ओढ लेते थे। यही है भगवद्वृत्ति। भगवान् जिसे अपनाते है, उसका सव भार अपने ऊपर ले लेते है। इधर वर्षोसे जव भी मै उनके दर्शनोके लिये जाता, सवसे पहली वात वे यही पूछते थे कि 'विटियाके विवाहका क्या हुआ ?' कहते—'भैया, समय वहुत खराव है, इसलिये अपने सामने पहले इस कर्तव्यको कर डालो।' मै मौन रह जाता। मनमे 'अकवर' इलाहावादीका वह शेर गूँज जाता--

राह तो मुझको वता दी खिज्र[1]ने,
ऊँटका लेकिन किराया कौन दे ?

---

१ भूले-भटकोको राह वतानेवाले एक पैगम्वर।

वे समझ गये, तव एक वार कहा—'आप लडका तो खोजिये और कुछ चिन्ता न कीजिये ।' एक वार उन्होने कुछ रुपये भी भेजे। परतु भाग्यकी कैसी विडम्वना है कि जव लडका मिला तो भाईजी ससारको ही छोड गये। इसी बीच पत्नी भयकर रूपसे बीमार हो गयी और आजतक बीमार है। 'गांधी स्मारक निधि'का जो काम मै करता था, वह वद हो गया। विवाह तो होना ही था। एकाध वन्धुओने यथामति सहायता भी की। और विवाह हो गया, परतु रह-रहकर दिलमे एक हूक उठती थी। लडकी और उसकी मॉको लगता था कि जैसे वे सहसा अनाथ हो गये है। सिर्फ पैसेकी वात नही थी, जीवनमें आयी हुई जेठकी दुपहरीकी तपनमे स्नेहकी वह शीतल छाया कौन देता, जिसके नीचे हम अपनेको सुरक्षित अनुभव करते थे? वह मन्द स्मित, जो न केवल निराशाकी अँधियारीको क्षणभरमे दूर कर देता था, वर अन्तरमे प्रवल आत्मविश्वास भी उत्पन्न करता था, अव कहाँ देखनेको मिलेगा।

× × ×

शीलके तो श्रीभाईजी समुद्र ही थे। इस मामलेमे किसीके लिये कोई भेद-भाव न था। अत्यन्त महत् होकर भी वे अपनेको सवसे छोटा समझते थे। मै उनसे आयुमे छोटा था, पर फिर भी वे अपने वशभर मुझे अपना चरणस्पर्श नही करने देते थे। जवतक शरीरमे शक्ति थी और अपने छतपरके कमरेसे नीचे उतरते थे, मेरे गोरखपुर जानेपर कम-से-कम एक वार स्वय चलकर अतिथि-निवासतक मिलने आते थे, जव न आ सकते या न आनेयोग्य होते, तव वार-वार अपनी विवशता प्रकट करते और सचमुच सकुचित तथा दु खी होते। अपने कर्तव्यके प्रति उन-जैसा जागरूक व्यक्ति मैने नही देखा। यदि किसीको किसीकी देख-रेख या सेवापर लगा देते और उससे कुछ भी असावधानी हो जाती तो उसे अपनी ही त्रुटि मानकर पश्चात्ताप करते थे।

वहुत-से लोग उन्हे धर्मज्ञ समझते थे, किंतु वस्तुत वे 'अनेकरूपरूपाय' थे। उनमे विविध विद्याओ और गुणोका ऐसा समन्वय था कि विचार करनेपर आश्चर्य होता है। व्रजभाषा और खडी बोलीके उनके सैकडो पद है, जो उनके अन्तर्मार्दवसे ओत-प्रोत और उल्लसित है। कविकी दृष्टिसे भी श्रीभाईजीका अपना एक विशिष्ट स्थान है। सम्पादनमे शायद ही दो-एक नाम उनके साथ रखे जा सके। लेखकके रूपमे कठिन विषयको सुबोध शैलीमे समेट लेनेके तो वे आचार्य ही थे। देशभक्तिमे वे वहुत आगे थे और राष्ट्रीय जागरणका प्रत्येक युग उनके सक्रिय सहयोग और पथ-दर्शनसे ऊर्जस्वित हुआ है। वे इस देशकी धरतीको वडी गहराईसे प्यार करते थे और उसके सर्वोत्तम प्रतिनिधियोमेसे एक थे। तिलक, मालवीय और गाधी—तीनो उनके राष्ट्रीय अनुरागमे प्रस्फुटित हुए थे। भारतीय सस्कृति उनमे अपनी सीमापर पहुँची थी। उनकी मानवता साम्प्रदायिक या क्षेत्रगत वन्धनोके ऊपर थी। वे भक्तिके रसमे आकण्ठ डूबे हुए, प्रभुके प्रति सम्पूर्णत समर्पित और सौहार्दके आकर थे। निरभिमानता, मृदुलता, परदु खकातरता, शालीनता—कोई ऐसा गुण दिखायी नही देता, जिसका उनमे आदर्शरूपमे विकास न हुआ हो।

मेरी समझसे श्रीभाईजीकी सर्वाधिक सफलता दो वातोको लेकर थी—प्रभुके चरणोमे पूर्ण समर्पण—यही थी उनकी सिद्धि और लोकैपणापर पूर्ण नियन्त्रण—यही थी उनकी साधना, जो

व्यावहारिक दृष्टिसे स्वत महान् सिद्धि ही थी। जीवनमे मै विविध प्रान्तो, प्रदेशो, क्षेत्रो, सस्थाओ एव महान् व्यक्तित्वोसे सम्वद्ध रहा हूँ। मैने वडे-वडे योगी-यति, मुनि-महात्मा और आचार्य देखे है, वीतराग सन्यासियोके सम्पर्कमे आया हूँ, परतु ऐसा एक आदमी भी नही मिला, जो इस विषयमे उनके समकक्ष हो। घर-गृहस्थी, धनैषणा और ससारका त्याग करना भी अपेक्षाकृत सरल है, परतु यश और प्रशसाकी एषणाका त्याग अत्यन्त कठिन है। वडे-वडे ससार-त्यागी और सिद्धिप्राप्त महात्मा प्रशसा एव स्तुतिके वचन सुनकर सतोष एव 'अह'की तृप्तिका अनुभव करते है। एक भाईजीको ही देखा, जो स्तुतिवाक्य सुनकर कछुएकी भाँति सिकुडते जाते थे, प्रशसाके वचन उन्हे विषकी भाँति लगते थे। विविध क्षेत्रोमे लवी सेवा और साधनाके जीवनके वाद भी भाईजीने अपने विषयमे कुछ लिखा जाना कभी स्वीकार नही किया। कई वार उनके मित्रो, सहयोगियो, अनुयायियोने इसके लिये प्रयत्न किया है, तैयारियाँ कर ली है, परतु भाईजीके कानोमे भनक पडते ही वह लताड पडी है कि हारकर चुप होकर वैठ जाना पडा है। एक वार उनके एक भक्त एव प्रशसकने कुछ लोगोको गोपनीय पत्र भेजे कि 'भाईजीकी जन्मतिथिके समय वे विविध पत्र-पत्रिकाओमे भाईजीपर लेख लिखकर प्रकाशित कराये।' जव भाईजीको पता लगा, तव उनको वडा दु ख हुआ और उन्होने अपने हाथसे एक-एक व्यक्तिको पत्र लिखा और विनय की कि वे अपना वहुमूल्य समय ऐसे तुच्छ कार्यमे न लगाकर किसी महत् कार्यमे लगाये। मैने वहुत खीझकर उन्हे लिखा कि "आखिर इस विषयमे आपका इतना आग्रह क्यो है? जो लोग आपके पावन चरितसे कुछ सीख सकते है, उन्हे आप इस लाभसे वञ्चित क्यो करते है? आप 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी' क्यो नही हो जाते?" पर हवामे चमकाये जानेवाले खड्गकी भाँति कोई झकार भी न हुई और मेरा वार खाली गया। मिलनेपर भाईजीने वडी विनम्रतासे कहा—"आप तो मेरे हितकी कामना रखते है, आपको तो ऐसा नही करना चाहिये, जिससे इन्द्रियवृत्ति प्रवल हो। स्तुतिके शव्द कानोको प्रिय लगते है, इसलिये उनसे दूर ही रहना चाहिये। मै 'तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी' अभी कहाँ हूँ। मै तो एक दुर्वल मानव हूँ। हाँ, भगवान्से अवलम्वका आकाक्षी हूँ कि वह मुझे उवार ले। इसलिये मुझे अपनी मर्यादामे रहना चाहिये। ससारमे जो सीखना चाहे, उनके लिये एक-से-एक पावन चरितके उदाहरण है। मुझ कगालके पास क्या है।" उनके इन दैन्यभरे शव्दोको सुनकर मै अपने पत्र-लेखनपर ग्लानि कर रहा था। उन्होने कौसिलोकी सदस्यता, 'भारतरत्न'की उपाधि एव कितने ही वडे-वडे प्रलोभनोको तिनकेकी भाँति ठुकरा दिया और उस ठुकरानेमे अपनी ही अयोग्यता या असमर्थताको कारण वताकर विनम्रता एव सहज त्यागका आदर्श उपस्थित किया। अपनी महत्तापर अप्रत्यक्षरूपसे प्रकाश डालनेवाली सच्ची वाते और घटनाएँ भी वे गुप्त ही रखना चाहते थे। उनके साथ दीर्घकालतक रहनेवाले एक साधकने उनके जीवनसे सम्वन्ध रखनेवाले कुछ अनुभव, कुछ घटनाएँ लिख डाली, क्योकि केवल वे ही उन्हे जानते थे। कही कुछ अन्यथा तो नही लिखा गया है, यही देखनेके लिये उन्होने उसे भाईजीको दे दिया। भाईजीने उसे पढा, किंतु जव लोग हट गये और एकान्त हुआ, तव उसे नष्ट कर दिया और क्षमा माँग ली। इतना आत्म-गोपन कौन कर सकता है? तव भला, ऐसे व्यक्तिके विषयमे, जिसका अधिकाश अतल

सागर-गर्भमे वहते हुए 'आइसवर्ग'की भाँति ससारकी दृष्टिसे ओझल है, लेखनी क्या लिखेगी ? वाणी क्या प्रकट करेगी ? वे तो एक होकर भी अनेक, गृहस्थ होकर भी योगी और संसारके होकर भी असंसारी थे। वे ऐसे महत् थे, जिनकी महत्ताके सम्पूर्ण विन्दु ससार कभी न जान पायेगा।

× × ×

इधर अनेक वर्षोसे उनका शरीर उस श्रमको वर्दाश्त नही कर पाता था, जो वे निरन्तर करते रहते थे। मैंने कई वार लडकर उनसे सम्पादनका कुछ काम छीन लिया। वे उस समय तो मान जाते थे, परतु वादमे चिर-अभ्यस्तकी भाँति फिर उसे स्वय ही करने लगते थे। एक वार जब नही रहा गया, तव मैंने उनसे कहा—'शरीर नाशवान् है, असत् है, परतु वही देवताका मन्दिर भी है। इसी असत्की आडमे सत्की प्राप्ति सम्भव है। तव आप उसके प्रति इतने निष्ठुर क्यो है ?' बोले—'निष्ठुर तो नही हूँ, परतु अधिक आसक्ति भी तो ठीक नही है।' मै क्या कहता। वात असलमे यह थी कि अपना गृहीत काम दूसरोसे करानेमे उन्हे सदा सकोच रहता था। इन सब उपेक्षाओके कारण तथा अत्यन्त व्यस्त वातावरणमे शरीरके अदर छिपे हुए रोग पनपते रहे और अन्तमे असाध्य वन गये।

रोगका तो एक वहानाभर था। पिछले अनेक वर्षोसे चतुर्दिक् निरन्तर गिरते हुए वातावरणका प्रतिकूल प्रभाव उनके अत्यन्त उच्च, सवेदनशील एव आकुल हृदयपर पड रहा था। आजके सत्तालोलुप और स्वार्थपूर्ण परिवेशमे वे अपनेको 'मिसफिट'-सा पाते थे। प्राय बातचीतमे वे साहित्य, समाज, राजनीतिके पतनशील स्तर एव युगकी क्रूर तथा भोगवादी प्रवृत्तियोपर आन्तरिक व्यथा प्रकट करते थे। व्यापारी-समाजमे पहले जो ईमानदारी, धर्मभावना, उदारता एव दानकी वृत्ति थी, वह तेजीसे समाप्त होती जा रही है, इसका भी उनके चित्तपर वडा असर था। ऐसे और भी अनेक हेतुओसे इस ससारमे उनके लिये कोई आकर्षण नही रह गया था। फिर कोई ऐसा कर्तव्य भी शेप न था, जो जीनेकी ललक उत्पन्न करता। फलत वे तीव्रगतिसे अन्तर्मुख होते जा रहे थे। रसेश्वर और रसेश्वरीकी आराधना करते हुए वे उनमे विलीन होते जा रहे थे। वे उनकी लीलाओको प्रत्यक्ष देखते थे और देखते-देखते स्वय लीला वनते जा रहे थे, उसमे खो-खो जाते थे। प्राय यह स्थिति होती जा रही थी कि आँखे खुली है, परतु दृष्टिका लोप हो गया है, कान कुछ सुन नही पाते, जपकी माला गिर-गिर जाती है। घटो शरीर चेतनाशून्य—जैसे है, वैसे ही—पडा रहता है। जब मैंने यह पहली वार १९६७मे देखा, तव मनने कहा—'यह शरीर अधिक दिन नही रहेगा। आत्मा उसको छोडती जा रही है। भाईजी एक अतीन्द्रिय लोकमे चले जाते है और फिर उस ऊर्ध्वलोकसे इस जगत्तक आनेमे उन्हे वडा श्रम पडता है, अच्छा भी नही लगता।' उनकी यह स्थिति—यह भाव-समाधि वादमे रोजकी चीज हो गयी। मेरी समझमे ये ही दो कारण है—चतुर्दिक् गिरता आचरण-स्तर तथा रसेश्वर-रसेश्वरी-के सूक्ष्म, अतीन्द्रिय भाव-लोकमे सवका लोप—जिनके कारण श्रीभाईजीकी चिर विदाई हो गयी। वे स्वय पूजाकी नित्य दीप-शिखा वन गये थे। इस जगत्के होकर भी वे मानो इस जगत्के नही

रह गये थे। इसलिये जो सूक्ष्म चैतन्य शरीरको चला रहा था, वह उसे छोडने लगा था और छोडते-छोडते एक दिन विल्कुल ही छोड गया।

श्रीभाईजी चले गये, और हम उनके विना विल्कुल शून्य हो गये है। श्रीकृष्णके चले जानेके वाद जो स्थिति पाण्डवोकी हुई थी, वही हमारी है। हम रोते है और छटपटाते है, छटपटाते है और रोते है। अव भी उनको पकडनेकी चेष्टा करते है और ससार-नदके प्रखर प्रवाहमे वह-वह जाते है। शत-शत स्मृतियाँ चतुर्दिक्से आती है—स्मृतियाँ जिनपर ग्रन्थ लिखे जा सकते है, स्मृतियाँ जो हमारे अन्तरको कुरेद-कुरेद देती है और फिर हमे असहाय छोडकर चली जाती है। उनकी उदारता, उनकी दयालुता, उनकी करुणा, उनका वात्सल्य, उनका स्नेह, उनका तप, उनकी ईश्वरमयता, उनका काव्य, उनका सम्पादन, उनका साहित्य, उनकी सर्वग्रासा भक्ति, उनका शास्त्रानुमोदित जीवन और आचरण, अपनेको नि स्व करके, पीछे रहकर सव कुछ करते रहनेकी उनकी साधुता—क्या-क्या गिनाये, भाईजी अनेक उदात्त कलाओके आकर थे। वे खो गये तो लगता है, हमारा सर्वस्व लुट गया है। हम क्या लिखे, क्या बोले, क्या करे!

•

अनोखे दयालु

पद्मभूषण श्रीगूजरमलजी मोदी

श्रीभाईजीके परलोक-गमनसे देशने एक अद्वितीय विभूति खो दी है। उनका मुझपर अपार प्रेम एव स्नेह था। वैसे तो वे प्रत्येकके लिये ही वडे दयालु थे। एक वार श्रीभाईजीके नामका एक झूठा पत्र दिखाकर एक आदमीनें मुझसे कुछ सहायता ले ली। जव पता लग गया कि वह गलत आदमी है, तव उसपर कोई केस किया गया। श्रीभाईजीको यह वात ज्ञात हो गयी। उन्होने मुझे कोर्टसे उस केसको वापस लेनेके लिये कहा। उन्होने लिखा—'भाई, इससे गलती हो गयी है, इसे माफ कर दिया जाय।' ऐसी थी उनमे दयालुता। समय-समयपर अनुभव किये गये उनके गुणो एव व्यवहारके सस्मरण मेरे मानस-पटलपर अङ्कित है।

•

वरस रही है सबपर भगवत्कृपा सहज ही, नित्य-निरन्तर।
जीवमात्रके सहज स्वजन हरि, भरे सभीके बाहर-भीतर॥
सदा सभीके लिये वेगसे झरता कृपा-सुधाका निर्झर।
परमाश्रय वे प्राणिमात्रके, भेदरहित वे परम सुहृद् वर॥

—श्रीभाईजी

•

अजातशत्रु

श्रीरामेश्वर टाँटिया

दुनियामे वडे-से-वडे लोग आये और चले गये, परंतु श्रीभाईजी-जैसे महापुरुष कम ही हुए, जिनके लिये प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि उनका मुझपर सवसे ज्यादा स्नेह था। वास्तवमे भाईजी 'अजातशत्रु' थे।

'कल्याण' एव गीताप्रेसके साहित्यसे परिचित व्यक्ति उनसे मिलनेके लिये आते थे और उनकी मिलनसारिता, उदार स्वभाव और सादगीपूर्ण रहन-सहनसे वहुत ही प्रभावित होते थे। उन्हे ऐसा लगता था कि वे अपने ही परिवारके किसी वडेके निकट बैठे है। वास्तवमे वे पोद्दारजी न रहकर छोटे-वडे सवके 'भाईजी' हो गये थे। 'कल्याण' तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोके सम्पादनके माध्यमसे उन्होने मानव-कल्याणार्थ जो महान् काम किया है, वह किसी एक बडी सस्थासे कम नही है।

मेरा उनका परिचय वहुत पुराना है। सन् १९७०की फरवरीमे छपरासे आते हुए मैं उनके दर्शनार्थ गोरखपुर गया। वहुत दिनो वाद उनसे मिला था, परतु उन्होने मुझे पहचान लिया और कहने लगे--"मै बीच-बीचमे तुम्हारे लेख पढता रहता हूँ, उनमेसे कुछ 'कल्याण'के अनुरूप है। तुम ऐसे लेख मुझे भेजा करो।" मेरे लिये तो यह एक विना माँगी मुराद थी। 'कल्याण'-जैसे लोकप्रिय और वहुपठित पत्रमे अपनी रचना देखकर किसे गर्व नही होगा।

महाप्रयाणके दो मास पूर्व मै उनसे मिलने फिर गोरखपुर गया था। कुछ दुवले और अस्वस्थ-से लगे, परतु चेहरेपर वही प्रसन्नता थी। डाक्टरोने ज्यादा मिलने-जुलनेकी मनाही कर रखी थी। पर भला, दूर-दूरसे आये हुए भक्तोको वे कैसे निराश करते? मैंने उन्हे उनके पैतृक स्थान रतनगढ (राजस्थान) जाकर विश्राम करनेको कहा तो उत्तरमे सिर्फ मुस्करा दिये। लगा, जैसे कह रहे हो--'देशकी जगह अव तो परदेश (परलोक) जाना है।' जव आने लगा, तव उन्होने अपने सहयोगीको बुलाकर मेरे खाने-पीनेकी व्यवस्थाके लिये कहा। लगा--वास्तवमे ही वे एक महान् व्यक्ति है, जो अपनी वेदना भूलकर आये हुए अतिथियोकी साधारण सुख-सुविधाका इतना ख्याल रखते है। मुझे इस गृहस्थीमे एक महान् सन्यासीके दर्शन कर अविस्मरणीय आनन्द हुआ।

उनके परलोकगमनसे जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति निकट भविष्यमे होना सम्भव नही है। उनके परिवारमे 'कल्याण'के एक लाख पैंसठ हजार सदस्य है (पाठकोकी सख्या तो इससे भी वहुत-वहुत अधिक होगी) और सवको ऐसा लगता है--जैसे उनके सिरपर अव कोई वरद-हस्त नही रहा।

●

लोकोत्तर व्यक्तित्व

डा० श्रीविश्वम्भरशरणजी पाठक

'साधु पुरुष अत्यन्त महान्, समदर्शी, प्रशान्त, क्रोधशून्य और सबके सुहृद् होते है ।'

जीवनमे कृतार्थता आयी कि इस लोकोत्तर व्यक्तित्वको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर मिला । परमभागवत पोद्दारजीका लोकोत्तर रूप अप्रकट ही है । उन्होने अपनी सदाशय विनम्रता-से अपने रूपको इस प्रकार आवृत कर रखा था कि साधारणजनको उसी समय कुछ आभास मिला, जब उन्होने कृपार्द्र होकर उसकी धूमिल-सी झाँकी दी । अन्यथा आनन्दपूरित स्मिति और प्रेम-विह्वल दृष्टिसे झलकनेपर भी वह अप्रकट ही रहा और अप्रकट ही रहेगा, उस समयतक, जबतक कोई अधिकारी महापुरुष उसको लोक-कल्याणके लिये लोकबोध्यरूपमे प्रकाशित न कर दे । इसकी सम्भावना स्वल्प है । अत हमलोगोको उत्पलके निम्न कथनसे ही सतोष करना पडेगा——

जयन्ति भक्तिपीयूषरसासववरोन्मदाः ।
अद्वितीया अपि सदा त्वद्द्वितीया अयि प्रभो ॥

'प्रभो ! जो आपकी भक्ति-सुधा-रसरूप आसवके पानसे मस्त——उद्गतहर्ष है, जो सदैव अद्वितीय (अनुपम) होते हुए भी आपके द्वितीय (समान) रूप है (असाधारणस्वरूपा अपि त्वद्द्वितीया , त्वमेव द्वितीयस्तुल्यरूपो येषाम्) उन भक्तजनोकी जय हो ।'

यह तो बहुतोको ज्ञात है कि श्रीपोद्दारजी सहसा भाव-समाधिमे चले जाते थे——इसके लिये उन्हे जप-ध्यान आदिकी आवश्यकता नही थी । किंतु उस स्थितिमे प्राप्त अनुभूतियोकी प्रगाढताको कौन जानता है ? महात्मा हरिव्यासदेवने सम्भवत इसी स्थितिकी ओर इङ्गित किया था, जब उन्होने कहा——

काहू कौ बल भजन है, काहू कौ आचार ।
व्यास भरोसे कुँअरि के, सोवत पॉव पसार ।।

एक और प्राचीन सिद्धका कथन है——

न ध्यायतो न जपतः स्याद् यस्याविधिपूर्वकम् ।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम् ॥

'जिसके अन्त करणमे विना ध्यान-जप आदि नियमित साधनोके भक्ति-चमत्कारवश अलौकिक क्रमसे चिदानन्दघनस्वरूपका प्रकाश स्फुरित हो——जिसके लिये 'न चात्र विहित किंचित्'——'कोई विधि-निषेध नही है', उस भक्तिशोभित पुरुषकी हम स्तुति करते है ।'

तथा अनुभूतिकी प्रगाढताके सम्बन्धमे स्वय श्रीपोद्दारजीका कथन है——

प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद, नही ज्ञान कुछ, हुए विभोर ।

श्रीपोद्दारजीका लोकव्यक्त—वाह्य रूप भी मङ्गलकारी और मनोरम है। यह कहा जाता है कि समावेशमय भक्ति जिसको प्राप्त हो गयी, उसका लोक-व्यवहार भी चिदानन्दरूपकी विजृम्भासे होता है। उनके जीवनमे उपर्युक्त सिद्धान्त व्यक्त दिखायी पड़ता था। प्राय यह आनन्दकी मूर्ति अनासक्त प्रेमकी दृष्टिसे व्यक्तियोको देखती रहती, किंतु जहाँ आगत व्यक्तियोने वैचारिक अथवा क्रियात्मक समस्या सामने उपस्थित की कि उनकी सवित्का तार झनझना उठता और पोद्दारजीसे उस समस्याका समाधान मिल जाता—

अलग हम सबसे रहते है, मिसाले तार तम्बूरा।
जरा छेड़ेसे मिलते हे, मिला ले जिसका जो चाहे॥

इस सम्वन्धमे "श्रीश्री माँ आनन्दमयी प्रसङ्ग"मे श्रीअमूल्यकुमार दत्त गुप्तके द्वारा लिखित माँका एक वचन उल्लेखनीय है, जो उपर्युक्त लोक-व्यवहारकी व्याख्या करता है। माँ कहती है—'देखो, एक ध्वनि हमारे अन्तरमे निरन्तर उठती रहती है। इस निरन्तर निनादित ध्वनि-पर जबतक कोई आधात पडकर दूसरी ध्वनि उत्थित नही होती, तबतक हमको कुछ सुनायी नही पडता और हमारे मुखसे कोई शब्द वाहर नही आता। जव कोई प्रश्न करता है, तव अन्तरमे उठनेवाली ध्वनिपर एक आघात पडता है और तदनुकूल एक उत्तर हमारे भीतरसे वाहर आ जाता है।'

श्रीपोद्दारजीका व्यक्तित्व अनेक गुणोसे सज्जित था, किंतु जिस आचरणसे मै मुग्ध हुआ, वह थी उनकी 'अमानी मानद'रूप विशेषता। श्रीधरस्वामीने कहा है—'देहाध्यासकी समाप्ति-पर भक्त अन्तर्यामी ईश्वर समझकर सवको प्रणाम करे—'अन्तर्यामीश्वरदृष्ट्या सर्वान् प्रणमेत्।' पोद्दारजी भी वाह्य जगत्को ईश्वर-लीलाके रूपमे देखते हुए ईश्वरोपासनाके ही भावसे सव व्यक्तियोका सत्कार करते थे और अहकारके विलयनसे आत्मगौरवकी स्पृहाका उनमे सर्वथा अभाव था। मैने देखा है कि पावनताकी धवलिमासे मण्डित भावकी विशालताके इस हिमालय-ने किस विनम्रतासे क्षुद्रतम व्यक्तिको भी प्रणति अर्पित की है। अनेक इसके साक्षी है कि किस सौजन्यसे उन्होने भारतका सर्वोच्च सम्मान 'भारतरत्न'की उपाधिका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। महाप्रभु चैतन्यने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तारोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

'तिनकेसे भी अत्यन्त छोटा एव वृक्षसे भी अधिक सहनशील रहकर तथा स्वयं अभि-मानशून्य होकर भी दूसरोको सम्मान देते हुए भगवान् श्रीहरिके नाम-गुणोका कीर्तन करना चाहिये।'

यह उपदेश पोद्दारजीके आचरणमे अक्षरश उतर आया था।

श्रीपोद्दारजीके द्वारा लोकको दिये गये सदेश, उपदेश अथवा शिक्षाके मूलतत्वके विषयमे श्रीकृष्णदासजी कविराजका निम्नोक्त कथन दिङ्निर्देश करेगा—

व्रजेर विशुद्ध प्रेम, जेन जाम्बुनद हेम
आत्मसुखेर जाहे नाहि गन्ध
से प्रेम जानाइते लोके ।

"व्रजका विशुद्ध प्रेम जाम्बूनद स्वर्णके सदृश है। जिसमे आत्मसुखकी गन्ध भी न हो, वही इस ससारमे 'प्रेम' नामसे जाना जाता है।"

किंतु आन्तरिक रूपको विना उद्घाटित किये वाह्य पक्षपर लिखना उनके व्यक्तित्वके महत्वको कम करना है और उनके आन्तरिक स्वरूपपर लिखनेका मैं अधिकारी नही। अत —

'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।'

'महापुरुष ! तुम्हारे चरण-कमलोकी मै वन्दना करता हूँ ।'

●

भाईजीकी संक्रामक आस्तिकता

डा० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र

भाईजीको समीपसे जाननेका विशेष अवसर मुझे यद्यपि नही मिला, फिर भी गोरखपुर उनका इतने वर्षोतक कर्मक्षेत्र रहा, इसलिये उनका काम तो मनपर छाया ही रहा है। जव-जव उनसे मिला, संस्कृतके कामसे मिला हूँ। एक-दो वार हिंदू-धर्मके पुनरुज्जीवनके सम्वन्धमे भी मिलना हुआ। श्रद्धेय भाईजीमे दो गुण ऐसे थे, जो सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। एक तो आस्तिकताका संस्पर्श और दूसरा विनय। 'कल्याण'की यात्रा भाईजीकी आस्तिकताकी निरन्तर अथक साधना-की ही यात्रा है। भाईजीकी आस्तिकता वडी संक्रामक थी। वे 'नास्ति'-को पलभरमे 'अस्ति'-मे परिवर्तित कर देते थे, क्योकि उनकी दृष्टिमे 'नास्ति' कही था ही नही। 'कल्याण'के किसी अङ्कमे, जिसे मैंने कुछ होगमे आनेपर सावधानीसे पढा था, मुखियाजीकी एक कहानी थी। 'अस्ति'-भावना किस प्रकार सरल और सूधे व्यवहारमे प्रस्फुटित हो उठती है और किस प्रकार आसपासके सभी लोगोमे चैतन्यशक्तिकी धारा प्रवाहित कर देती है। उस कहानी-के पढनेके वाद इसका प्रभाव आज भी मनपर गहरा है। भाईजीको, जाने क्यो, उस कहानीके मुखियाजीके स्वरूपमे जव-जव उनसे भेट हुई, मैंने देखा है।

इतना गहरा प्रभाव डालनेकी क्षमता होते हुए भी जो सवसे अधिक विस्मयजनक वात उनमे थी, वह थी अतिशय विनयशीलता। वे यह अनुभव करनेका अवसर ही नही देना चाहते थे कि जो आस्तिकता प्रवहमाण हो रही है, उसमे उनका सानिध्य ही सवसे वडा कारण है। वे क्षणभरके लिये भी अपने कर्तृत्वको उभरने नही देते थे। वे स्वयको एक मध्यस्थ चुम्वकीय केन्द्रके रूपमे रखना चाहते थे। कई वार भेट करनेपर स्पष्ट हो गया कि उनकी यह लोकोत्तर विनयशीलता मिलनेवालेके भीतरसे सव कुछ खीच लेनेका एक साधन था। मिलनेवाला आश्वस्त

होकर अपनी पूरी बात कह ले, अपनेको पूरी तरह उँडेल दे, उसका 'अस्ति' पूर्णरूपमे अभिव्यक्त हो उठे, इसीलिये भाईजी अपनेको अत्यन्त सामान्य श्रोताकी भूमिकामे डाले रहते थे।

बीच-बीचमे कही विप्रतिपत्ति उपस्थित हो तो वे एक हल्का झटका भी दे देते थे। पर यह हल्का झटका तभी देते, जब कही 'अस्ति'-की समग्रताका खण्डन होता था। वे ईश्वरकी भावनापर बल देते थे और भावना गहरी हो, एकनिष्ठ हो, तो चाहे जिस भावसे हो, उसे महनीय मानते थे। दूसरेकी भावनाके सम्बन्धमे सदेह भी उन्हे अप्रीतिकर था।

वे प्रत्येक व्यक्तिको अपने विश्वासके अनुसार पारमार्थिक सत्ताके साथ सम्बन्ध जोड़नेके लिये स्वतन्त्र देखना चाहते थे। इसीलिये न तो स्वय दूसरेकी भावनाका निरादर करते थे, न उसका निरादर करते सुन सकते थे। इसीको मै सच्चे साधुका निर्मत्सरभाव मानता हूँ। वे राधावल्लभीय सम्प्रदायवालेके सामने उस सम्प्रदायकी दृष्टिसे लीलाका विवेचन करते तो चैतन्यसम्प्रदायवालेके सामने चैतन्य-सम्प्रदायकी दृष्टिसे विचारते। वे कहते—'न बुद्धिभेद जनयेत्।'

भाईजी मनुष्यकी ईश्वराकाक्षामे पूर्णरूपसे विश्वास करते और अपने आचरणसे इस विश्वासको और जाग्रत् करनेमे सचेष्ट रहते। वे न तो सदेह करना जानते थे और न सदेह-करनेवालेको सदेहका अवसर ही देते थे।

सूधे मन सूधे बचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूति॥

आर्जवके असिधारा-व्रतके फलस्वरूप उन्होने राजनीतिसे अलग रहकर भी देशके राजनीतिज्ञोको अपने स्नेहपाशमे बाँध रखा। वे देशभरके महात्माओको एक मञ्चपर लानेमे सतत सफल रहे और प्रत्येक प्रकारकी धार्मिक भावनाको ईश्वरोन्मुख करनेमे कृतकार्य हुए।

भाईजीको पाकर यह सज्ञा बडी सार्थक हुई। भाईका-सा नैकट्य, भाईकी-सी अगाध वत्सलता और भाईका-सा सहज आदरभाव उनके सानिध्यसे विकिरणशील रहता था। वे विश्वास करते थे और विश्वास उत्पन्न करते थे, विश्वास भरते थे और विश्वास सीचते थे।

●

मिले मधुर मुझको, मेरे हो, मेरे वे प्रियतम भगवान।
पूरी हुई साध जीवनकी, पूरे हुए सभी अरमान॥
बुझी सभी विषकी ज्वाला, कर रूप-सुधा-रसका मधु पान।
हुई विकीर्ण किरण शुचि तनकी दिव्याभामय परम महान॥
छाया अति शीतल प्रकाश सर्वत्र, मिटा सब तम-अज्ञान।
दिखने लगे श्यामसुन्दर मनमोहन अब सर्वत्र समान॥

—श्रीभाईजी

●

विवादसे परे

श्रीश्रीगोपालजी नेवटिया

श्रीभाईजीके मेरे सस्मरण सन् १९२८के पहले उन दिनोके है, जव वे वम्वईमे रहा करते थे । वे सामाजिक एव अन्य विभिन्न सेवाकार्योमे अग्रणी रहा करते थे और मै उस क्षेत्रमे पदार्पण ही कर रहा था । वम्वई नगरीके कालवादेवी क्षेत्रका वह निवास, वहॉके वे दैनिक क्रिया-कलाप आज भी स्मृति-पटलपर अङ्कित है और उनमे भाईजीका तत्कालीन चित्र ज्यो-का-त्यो उभर आता है । वे सवके साथ थे, सवमे मिले-जुले, फिर भी सवसे अलग । सफल व्यवसायियोके बीच वे असफल व्यवसायी थे, पर सासारिकतामे आपादमस्तक डूबे हुओके बीच वे उनसे वहुत ऊपर उठे हुए थे ।

वह जमाना था सभा-समितियोका, सेवा-शिक्षा-सस्थाओका, सामाजिक जागरणका । श्रीभाईजी उनमे यथोचित योगदान देते । हम-जैसे उनके गुणग्राहक बरावर पीछे लगे रहते, सव मिल-जुलकर जो वन पाता, करते । पर भाईजीका अपना एक काम और था । उसमे मै कुछ योगदान कर सका था, उसकी स्मृतिमात्र आह्लादित करनेवाली है ।

श्रीभाईजीने प्रार्थनात्मक पद्योकी एक पुस्तिका लिखकर तैयार की थी । उसका नाम था—'पत्र-पुष्प' । उसे सुन्दर रीतिसे छपवा देनेका कार्य-भार मैने सँभाला था । उनकी वह प्रथम रचना आगेके वर्षोमे पल्लवित-पुष्पित होनेवाले विशाल वृक्षके बीजके समान थी ।

उन्ही वर्षोमे 'कल्याण'के प्रकाशनका आयोजन हुआ था । भाईजी उसके प्रकाशनके लिये अदम्यरूपसे उत्साहित थे । उसका पहला अङ्क वम्वईसे ही प्रकाशित हुआ था । वादमे गोरखपुरसे मुद्रित होनेपर भी चित्रोकी छपाईका कुछ काम वम्वईसे ही होता था और उसमे मैने यत्किचित् योगदान दिया था । उसका स्मरण मेरे लिये हर्षप्रद है ।

आगे जाकर भाईजीका जो रूप प्रकट हुआ, उसे देखकर अव चालीससे भी अधिक वर्षो पहलेकी उन वातोको याद करता हूँ तो स्मरण आता है कि वम्बईका वह व्यावसायिक जीवन, समाज-सेवासे सम्वन्धित काम-काज—सव उनके लिये गौण थे । उनका मन कही और ही था, उनका पथ, गन्तव्य—सव अन्य ही था । वम्वईके उस जीवनसे वे मुक्त होकर ही रहे और उसीमे उनको सुखानुभूति हुई ।

उनके इस जजालसे छूट जानेके वाद भी उन्हे एक वार पकड बुलाया गया था । वह कथा वडी रोचक है । मै उस काण्डका अभिनेता था । वह जमाना था समाज-सुधारका, 'अग्रवाल महासभा' और उसके कर्तृत्वोका । सुधारक 'समाजी' और प्राचीनताके अन्ध-अनुयायी 'सनातनी'के नामसे जाने जाते थे । दोनोके क्षेत्र और प्रवृत्तियोमे भेद था । जवान सुधारक थे, वय प्राप्त सनातनी । छोटे-छोटे सुधारोको लेकर, जिनके वारेमे आज सोचनेपर वे उपहासास्पद-से लगते है, खूव वितण्डा-

वाद होता, गरमागरम परचेवाजियाँ और लेक्चरवाजियाँ होती थी । उन सवके बीच एक ऐसा समुदाय भी था, जो दोनोको एक करनेके प्रयत्नमे था । वम्वईमे 'मारवाडी अग्रवाल महासभा' के वार्पिक अधिवेशनका आयोजन हुआ । उधर 'पचायत'के नामसे पुराने विचारवालोने अपना संगठन किया । बीच-वचाववालोका प्रयत्न था कि दोनो एक हो जायँ तो ठीक रहे । एक होनेकी सभी वाते तय हो गयी, विशेपतया इसी आधारपर कि सभापतित्व हनुमानप्रसादजी करे । दोनो दलोका उनपर पूर्ण विश्वास था । ऐसा विश्वासपात्र होना अनोखा ही था ।

पर वैसे सत पुरुष इस प्रकारके दो विरोधी दलोको क्या मिला पाते ? 'प्रथमग्रासे मक्षिकापात ।' भाईजी सभापति निर्वाचित हो गये, वे वम्वई पधारे । स्टेशनपर उनके स्वागतकी व्यवस्था थी, दोनो पक्षोकी अपार भीड । भाईजीके स्टेशनपर पाँव रखते ही इस वातका विवाद प्रारम्भ हो गया कि किस पक्षके तत्त्वावधानमे——स्वागतमे वे रहे । खूव धमाचौकडी हुई और भाईजीने चुपचाप एक ओरसे निकलकर, भाडेकी एक विक्टोरिया गाडीमे सवार होकर किसी प्रकार उस सकटसे मुक्ति ली । मुझ याद है, मैंने भी उनका 'पीछा' किया था, उस सारे प्रसङ्गकी सिनेमा फिल्म भी उतारी थी, पर वह फिल्म कहाँ गयी, अव पता नही । पर उस दिनका सारा दृश्य आँखोके सम्मुख उपस्थित है । आगे जो हुआ, उससे यही मालूम दिया कि भाईजीका वह कार्यक्षेत्र था ही नही । वे तो दोनो तरफके मित्रोके आग्रहपर अच्छी आशा लेकर आ गये थे, पर दोनो पक्षोके लक्षणोको देखकर, उससे विरक्त रहनेमे ही उन्हे लाभ प्रतीत हुआ ।

एक वहुत पुराना 'चित्र' मैंने उपस्थित कर दिया, उससे पुराने भी उनके 'चित्र' है । उनका जो प्रकाशमान चित्र आज हम सवके सम्मुख उपस्थित है और सदैव रहेगा, वह तो है उनके भक्ति-विह्वल मुख-मण्डलका, उनके धर्मसमन्वित आलेखनोका । अपने परम सात्विक, धर्ममय और भक्तिपूर्ण कर्तृत्वोके कारण वे सनातन हिंदू-जगत्‌मे अमर रहेगे ।

●

नाथ ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान ।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान ॥
नही रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक ।
मिथ्या जगमे रमनेवाले रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक ॥

आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात ।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात ॥
कहूँ उन्हे, समझाऊँ क्या मै, जब न दीखता कुछ सत्, सार ।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार ॥

——श्रीभाईजी

●

युगकी महान् विभूति

श्रीविश्वम्भरसहायजी 'प्रेमी'

श्रद्धेय श्रीपोद्दारजी एक आध्यात्मिक पुरुप थे--सत थे । अपने धार्मिक विश्वासके पालनमे वे जीवनभर सतर्क और सावधान रहे । उनके प्रति सभी धार्मिक विद्वान् श्रद्धाकी भावना रखते थे। गीताप्रेसके धार्मिक प्रकाशन एव 'कल्याण' उनकी मूल्यवान् धरोहर है। धार्मिक, राजनीतिक एव सामाजिक--सभी क्षेत्रोमे उनको वडे सम्मानकी दृप्टिसे देखा जाता है। उनकी आत्मीयता, सरलता और उनका मानव-प्रेम सहज ही मनुष्यको अपनी ओर आर्कापित कर लेता था ।

श्रीपोद्दारजीसे मेरा व्यक्तिगत आत्मीयताका सम्वन्ध रहा है। वे मुझे अपना अनुज समझते थे और मै उन्हे अपना पथ-प्रदर्शक एव सरक्षक मानता था। ग्रीष्म-ऋतुमे जव वे गीताभवन आते थे, तव मै भी समय निकालकर वहाँ जाता था और उनके विचारोसे लाभ उठाता था। वहाँ उनके आनेपर एक नया ही जीवन दिखायी पडने लगता था। उनके प्रवचनोमे हजारो नर-नारी वडी श्रद्धाके साथ सम्मिलित होते थे । व्यक्तिगतरूपसे विद्वानो, साहित्यकारो और साधु-सन्यासियोका उनके स्थानपर आना-जाना लगा रहता था। वे इस वातसे दुखी होते थे कि देशका नैतिक स्तर गिर रहा है और भारतीय सस्कृति वरावर नष्ट हो रही है। उन्हे ज्ञात था कि कुछ वर्षोसे मै श्वासरोगके कारण वहुत अस्वस्थ रहता हूँ । गीताभवनके श्रीवैद्यजी महाराज मेरी वहुत देखभाल करते थे। श्रीभाईजीकी हिदायत थी कि मुझे स्वस्थ रखनेके लिये उत्तम-से-उत्तम ओषधियाँ दी जायँ। मै उनके इस उपकारको जीवनभर नही भुला सकूँगा।

श्रीभाईजी कट्टर सनातनी थे, परतु उनकी यह विशेषता थी कि वे सभी धर्मोका आदर करते थे। उनका कहना था कि यदि मनुष्य अपने-अपने धर्मका ठीक प्रकारसे पालन करे तो मानव-समाज अधार्मिक प्रवृत्तियोसे वच सकता है। वास्तवमे श्रीभाईजी आत्मधर्मको माननेवाले थे।

वर्प १९६९के जून मासमे दिगम्वर जैनमुनि श्रीविद्यानन्दजी महाराज ऋपिकेश पहुँचे। कट्टर सनातनधर्मी होते हुए भी श्रीभाईजीने मुनिजीका स्वागत किया और उनके आतिथ्यमे पूरा योग दिया। इतना ही नही, अपितु उन्होने अपने निवास-स्थानपर मुनिजीके प्रवचनोकी व्यवस्था भी की। उन दिनो उनका स्वास्थ्य वहुत गिरा हुआ था, परतु वे मुनिजीके कार्यक्रममे वरावर भाग लेते रहे। मुनिजीने जव पोद्दारजीके वारेमे कहा कि 'ये एक सत है', तो आपने तत्काल कहा—'महाराज, आप-जैसे महान् सतोको दूसरे सत ही दिखायी देते है।' इस प्रकार पोद्दारजी सभी धर्मोके आचार्योके प्रति वडे सम्मानका भाव रखते थे।

श्रीभाईजीने 'कल्याण'का सम्पादन करके करोडो नर-नारियोके हृदयमे जो धार्मिक भावना

जाग्रत् की, वह इतिहासके पृष्ठोमे सदा स्वर्णाक्षरोमे अङ्कित रहेगी। 'कल्याण'ने सम्पूर्ण भारतमे एक विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। गीताप्रेससे प्रकाशित अग्रेजी पत्रिका 'कल्याण-कल्पतरु' विदेशोमे भी बडी लोकप्रिय हुई है। गीताप्रेसके धार्मिक साहित्यने भी जनतामे धार्मिक भावना फैलानेमे बडा काम किया। बच्चोके लिये सस्ती-से-सस्ती पुस्तके प्रकाशित करके गीताप्रेसने बालकोमे धार्मिक प्रेम उत्पन्न किया है। इन सब कार्योमे श्रीभाईजीकी सारी शक्ति लगती रही। विशेषाङ्कोमे भाईजी सभी व्यक्तियोके विचारोको स्थान देते थे, उनके सम्पादनमे उनका बडा व्यापक दृष्टिकोण रहता था। सामाजिक समस्याओको सुलझानेमे वे सभी विचारके विद्वानो और लेखकोका सहयोग प्राप्त करते थे।

पोद्दारजी हिंदीके प्रबल समर्थक एव पोषक रहे है। हिंदीके उन्नायक राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन इन्हे बडे आदरकी दृष्टिसे देखते थे और इनके प्रति बडा सम्मान प्रकट करते थे। उन्होने एक बार कहा था—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हिंदीके लिये बडा काम कर रहे है।'

हिंदीके सम्बन्धमे अपने विचार प्रकट करते हुए एक बार पोद्दारजीने कहा था—'भाषाका सीधा-सादा प्रश्न राजनीतिज्ञोने काफी उलझा दिया है। हिंदी भाषा हमारी राष्ट्रीय एकताको सुदृढ करनेवाली भाषा है। सम्पूर्ण भारतमे प्रयोग की जानेवाली हिंदीकी ओरसे उदासीनता बरती जानी लज्जा और दु खकी बात है। हमे अग्रेजीमे बोलना सम्मानसूचक लगता है और अपनी भाषाका प्रयोग करना शानके विरुद्ध।'

गोमाताके प्रति श्रीपोद्दारजीकी बडी भक्ति थी। दिल्लीके गोरक्षा-आन्दोलनमे उन्होने सक्रिय भाग लिया। ७ नवम्बर सन् १९६६को जब ससद्-भवनपर गोभक्तोने विशाल सख्यामे प्रदर्शन किया, तब भाईजी प्रदर्शन-मञ्चपर विद्यमान थे। यद्यपि वे शारीरिक दृष्टिसे इस प्रकारके किसी आन्दोलनमे सम्मिलित होनेकी क्षमता नही रखते थे, फिर भी गोमाताके प्रति भक्तिके कारण वे अपने आपको अलग न रख सके। गोहत्या-सम्बन्धी सरकारी योजनाओकी चर्चाके समय उनके नेत्रोसे आँसू आने लगते थे।

श्रीभाईजी अपने छोटे-से-छोटे कर्मचारीको भी नौकर नही, सहयोगी मानते थे। गीता-भवनके विभिन्न विभागोमे काम करनेवालोको वे बडा सम्मान देते थे। उनका कहना था—'जैसे मै गीताप्रेसका एक सेवक हूँ, उसी प्रकार ये सब गीताप्रेसके सेवक है। ये मेरे सेवक नही, किंतु उस सस्थाके सेवक है, जिसमे ये काम करते है।' इतना समभाव रखना आज साधारण बात नही। बात-बातमे हम अपने साथ काम करनेवाले कर्मचारियोपर क्रोध कर बैठते है और उन्हे वेतनभोगी समझते है। परतु पोद्दारजी उन्हे अपना सहयोगी मानते थे। यही कारण था कि वे भी उनके चरणोमे झुककर प्रणाम करते थे।

अनेक धार्मिक सस्थाओसे भी श्रीभाईजीका सम्बन्ध रहा। वे उनको अपना सक्रिय सहयोग देते रहे।

उनका जीवन अत्यन्त सादगीके साथ बीता। उनका खान-पान बडा सात्त्विक था। वे नियमित भोजन करते थे। भोजनकी प्रत्येक वस्तु शुद्ध होनी आवश्यक थी। सीधा-सादा कुर्ता

उनका पहनावा था। उनकी वाणीमे बड़ी मधुरता थी। साहित्यकारोके प्रति उनमे बडे सम्मान-का भाव था। आश्चर्यकी बात यह है कि अनेक ग्रन्थोकी रचना करनेपर भी वे अपनेको साहित्यकार नही मानते थे। कहते थे—'मैं साहित्यकार नही हूँ, गीताप्रेसका सेवक हूँ।' यह उनकी महानता थी।

भाईजी साधु-महात्माओके प्रति बडी उदारता बरतते थे। उनका कहना था कि इन महात्माओने गृहस्थोको सन्मार्ग दिखाया। वे साधु-महात्माओंकी आवश्यकताओकी पूर्तिमे सदा तत्पर रहते थे।

श्रीभाईजी भारतीय संस्कृतिके प्रबल पोषक रहे। उन्हे इस बातका दुःख था कि आज भारतीय सस्कृति नष्ट होती जा रही है। एक बार इस प्रश्नपर बातचीतमे वे कहने लगे—'कितना आश्चर्य है कि आज विदेशी विद्वान् तो हमारी सस्कृतिका आदर कर रहे है और उसे जाननेके इच्छुक है, परंतु अपने देशके लोग पश्चिमी संस्कृतिका अनुकरण कर रहे है।'

पोद्दारजी मेरी दृष्टिमे ऊँचे साधक, तपस्वी और चिन्तक व्यक्ति थे। अपने दुःख-दर्दको लेकर उनके पास पहुँचनेवाला व्यक्ति उनसे जहाँ कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त करता था, वहाँ वह सान्त्वना, सतोष और उनका स्नेह भी प्राप्त करता था। दूसरोके दुःखको वे अपना दुःख समझकर उसके निवारणका यत्न करते थे।

श्रीभाईजीका सारा जीवन देश, धर्म और मानवताकी सेवामे व्यतीत हुआ। अपनी अस्वस्थताकी स्थितिमे भी वे हजारोका भला करते थे। कभी-कभी वे उनके पास आये हुए गरीब व्यक्तिकी दुःखभरी बाते सुनकर उदास हो जाते थे। प्रेम, विनम्रता और मानवता उनके रोम-रोममे समायी हुई थी। जीवनपर्यन्त वे दुःखियोकी, अनाथो एव विधवाओकी सहायता करते रहे। उनका कहना था कि 'दुःखीकी कुछ सहायता करके हम उसपर एहसान नही करते अपना कर्त्तव्य पालन करते है।' इस प्रकारका चिन्तन करनेवाले व्यक्ति आज समाजमे इने-गिने ही मिलेगे।

श्रीभाईजीका परलोकगमन राष्ट्रकी महान् क्षति है। ऐसे पुण्यात्मा व्यक्तिके प्रति हम सभीको श्रद्धासे नतमस्तक होना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिये और उनसे प्रेरणा लेनी चाहिये जिससे हम भी मानव-सेवाको अपने जीवनका लक्ष्य बना सके।

●

मनुष्यके असली मनुष्यत्वका प्रारम्भ होता है—जीवनकी गति भगवान्‌की ओर हो जानेपर और भगवत्सेवाके लिये त्याग-तपपूर्ण धर्मका आचरण करनेपर। धर्म वही है, जिससे अपना और दूसरोंका परिणाममें परम कल्याण हो। इस प्रकारके धर्मका आचरण करनेके लिये ही मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है।

—श्रीभाईजी

●

युग-पुरुष श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीरघुनन्दनप्रसाद सिंहजी पत्रकार

गोस्वामी तुलसीदासजीके समकालीन श्रीवेनी कवि उनके सम्बन्धमे लिख गये है—

बेदमत सोधि, सोधि-सोधि कै पुरान सबै,
संत औ असंतन कौ भेद को बतावतौ।
कपटी कुराही क्रूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम-नाम हू की चरचा चलावतौ।
'वेनी' कवि कहै, मानो-मानो हो प्रतीति यह,
पाहन-हिये मे कौन प्रेम उपजावतौ।
भारी भवसागर उतारतौ कवन पार,
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतौ ॥

ये पक्तियाँ श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके सम्बन्धमे भी अक्षरश ठीक उतरती है। सचमुच वे नही होते तो पता नही हमारा देश किस कुमार्गपर, कहाँ चला गया होता। श्रीपोद्दारजीने, जिन्हे हम प्यारसे 'श्रीभाईजी' कहते थे, स्वय ही भगवन्नामका सहारा नही लिया, वल्कि लाखो और करोड़ोसे लिवाया। वे सन्मार्गपर स्वय ही नही चले, वल्कि करोडोको चलाया। वे साधन-पथके पथिक अकेले ही नही वने, वल्कि लाखोको वनाया।

यदि श्रीभाईजी न होते

मै दूसरोकी वात क्या कहूँ ? स्वय अपनी ही वात याद करता हूँ तो लगता है, मै कहाँ चला जा रहा था। अध्यात्मकी ओर मेरी प्रवृत्ति वचपनसे ही थी। १० वर्षकी अवस्थामे मुझे उर्दू-फारसी पढायी गयी। मै 'गुलिस्ताँ-बोस्ताँ' पढने लगा, परतु मुझे सतोष न हुआ। इच्छा हुई—मै श्रीमद्भागवत पढूँ और रामायणका पाठ करूँ। श्रीमद्भागवत संस्कृतमे होनेसे मैंने 'श्रीसुखसागर' उठाया और उसे टटोल-टटोलकर पढने लगा। पुस्तक समाप्त होते-होते मुझे हिंदी पढना आ गया। इसके वाद मैंने सवलसिंह चौहानकृत महाभारत उठाया और उसे आद्योपान्त समाप्त करनेके वाद श्रीरामचरितमानस। इन धार्मिक ग्रन्थोके अध्ययनने मेरी धार्मिक प्रवृत्ति और अधिक जगी, परन्तु मन कुछ और खोज रहा था। रातमे अच्छे-अच्छे सपने होते, परन्तु आँखें खुलनेपर व्याकुलता बढ जाती। यह स्थिति बहुत दिनोतक नही रही। १९२६मे जब मैंने बिहारशरीफ-स्थित नालन्दा कालेजमे नाम लिखाया, कुछ मित्रोकी कुसगतिमे पडकर मैं नास्तिकताकी ओर झुकने लगा। मेरा झुकाव देश-सेवाकी ओर भी होने लगा और सन् १९२८ मे लाला लाजपतरायके साथ घटी घटनाने मुझे बिल्कुल कांग्रेसी बना दिया।

म झडे लेकर हडताल कराता फिरता, परतु नास्तिकताकी ओर जानेके वाद मन वडा अशान्त रहता। किसी मित्रने मुझे 'कल्याण' पढनेकी सलाह दी और मैं 'कल्याण' नियमितरूपसे पढने लगा। श्रीभाईजीके उपदेश मुझे अच्छे लगे और उनके प्रभावसे मै पुन आस्तिकताकी ओर आने लगा। तव मै कभी सोचता भी नही था कि कभी श्रीभाईजीके सम्पर्कमे आ सकूँगा।

मैने विना जान-पहचानके ही श्रीभाईजीको अपना आध्यात्मिक गुरु या पथप्रदर्शक वना लिया। मैने श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीकी भी अनेक कृतियाँ पढी और उनकी ओर भी मेरी श्रद्धा वढी। परतु मेरे लिये तो श्रीभाईजी वहुत दूर थे और श्रीब्रह्मचारीजी भी। १९४६के लगभग श्रीब्रह्मचारीजी स्वय पटना पधारे और मै उनके दर्शनसे कृतार्थ हुआ। उनके साथ मेरा पत्र-व्यवहार भी चलने लगा। १९४८ की अर्धकुम्भीके मेलेमे कुछ दिन उनके झूँसीस्थित आश्रममे रहा भी। अव श्रीभाईजीके दर्शनकी चाह वढने लगी। भगवान्ने वह सुअवसर शीघ्र ला दिया।

प्रथम सम्पर्क

भाई श्रीशिवनाथजी दुबे श्रीब्रह्मचारीजीका पत्र लेकर आये और मेरे यहाँ ही ठहरे। उन्होने श्रीभाईजीके शील-स्वभाव और साधन-भजनके सम्वन्धमे जो कुछ कहा, मै सुनकर आत्मविभोर हो गया। उनके आमन्त्रणपर सम्भवत १९४८के वैशाख या चैत्र महीनेमे प्रयाग होते हुए मै गोरख-पुर गया और श्रीभाईजीके चरणोका दर्शन करके कृतार्थ हुआ। श्रीभाईजीका कार्यालय उस समय गीतावाटिकास्थित एक कुटियामे था। श्रीभाईजी मुझे उसी कुटियामे कागजो और चिट्ठियोके ढेरके बीच 'कल्याण'-सम्पादनमे तन्मय मिले। चरणस्पर्श करते समय उन्होने मेरे मस्तकपर हाथ फेरा तो मुझे श्रीरामचरितमानसकी यह पक्ति स्मरण हो आयी—

प्रभु कर पकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥

श्रीभाईजीके दर्शन कर मै श्रीदुबेजीकी कुटियामे चला आया। मेरे मनमे वहुत-सी शङ्काएँ थी, जिनका समाधान मै श्रीभाईजीसे चाहता था। दूसरे दिन प्रात काल प्रवचनमे उन्होने जो कुछ कहा, वह मेरी शङ्काओका ही समाधान था। मुझे उनसे कुछ पूछना नही पडा।

मैने यह प्रसङ्ग उनके श्राद्ध-दिवसपर पटनाके दैनिक 'प्रदीप'मे लिखा तो मेरे कुछ मित्रोने पूछ दिया—श्रीभाईजी क्या अन्तर्यामी थे ? श्रीभाईजी क्या-क्या थे, यह तो वे स्वय नही जानते थे, उनके सम्वन्धमे मै क्या जानूँ ? मै तो केवल इतना ही जानता हूँ कि वे साधन-पथके पथिक थे और साधना करते-करते सिद्धावस्थाको प्राप्त हो गये थे।

श्रीरामचरितमानसमे आया है—

बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग वेद वखाने॥

श्रीभाईजी साधक थे और जीवनके अन्ततक साधक वने रहे। वे रोगग्रस्त होकर शय्या-ग्रस्त भी हुए, परतु उस अवस्थामे भी उनका साधन-भजन कुछ नही छूटा। यह मेरा दुर्भाग्य था कि मुझे उनके अन्तिम दर्शन नही हो सके। वन्धुवर श्रीशिवनाथजीका गोरखपुरसे भेजा

गया एक्सप्रेस तार मुझे २३ मार्चको मिला, जब कि श्रीभाईजी २२ मार्चको ही अपना भौतिक शरीर छोड चुके थे। २२ मार्चको ही शामको रेडियोसे जब मैंने यह दुखद समाचार सुना, तब मेरी क्या दशा हुई—इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। मेरे आध्यात्मिक गुरु चले गये और मै यह कहकर रोता रहा—

'गइउँ न संग न प्रान पठाए ।।'

सात्त्विक वृत्तिका प्रभाव

श्रीभाईजी अन्तर्यामी थे, यह कहनेका मुझे कोई अधिकार नही। अन्तर्यामी तो स्वय भगवान् है। परतु इतना तो अवश्य ही कह सकता हूँ कि श्रीभाईजी साधन करते-करते सिद्धताको अवश्य प्राप्त हो गये थे। मेरे मनमे जो विचार आये, उनकी तरगे उनके मानस-पटलपर पडी और उनसे प्रेरित और प्रभावित होकर वे वैसी ही बाते करने लगे, जो मेरे लिये आवश्यक और महत्त्वपूर्ण थी। विचार-तरगोका प्रभाव साधारण लोगोपर भी कभी-कभी पडता है। परतु जिनका मानस-पटल बहुत शुद्ध और पवित्र होता है, उनपर बहुत अधिक पडता है। श्रीभाईजीके सम्बन्धमे यही बात कही जा सकती है।

मै श्रीभाईजीके बहुत अधिक निकट सम्पर्कमे आया, ऐसी बात नही। केवल तीन-चार बार ही तो दर्शन हुए उनके, परतु हर बार उनके स्नेह और सद्व्यवहारने मुझे उनकी ओर इतना खीचा कि मै उनसे बहुत दूर रहते हुए भी यह स्वीकार नही करता था कि श्रीभाईजी मुझसे दूर है।

श्रीभाईजी आज अपने पार्थिव शरीरसे इस ससारमे नही है, पर जब मुझे उनके शील-स्वभावकी याद आती है, तब आँखे बरसने लगती है। श्रीभाईजी प्रचारसे दूर रहते थे। यह ईश्वरकी इच्छा थी कि उनका नाम इतना प्रख्यात हुआ कि वह देशमे ही नही, विदेशमे भी आदरपूर्वक स्मरण किया जाने लगा। महात्मा गाधी तो उन्हे हृदयसे प्यार करते थे और प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादको भी बडा प्रेम था श्रीभाईजीसे। १९४३ मे जब श्रीराजेन्द्रबाबू बाँकीपुर जेलमे थे, तब उनके बडे पुत्र श्रद्धेय श्रीमृत्युञ्जयप्रसादके आग्रहपर मैंने ही गीताप्रेससे बहुत-सी पुस्तके मँगवाकर उन्हे दी थी। कहनेकी आवश्यकता नही कि श्रीराजेन्द्रबाबू अवकाशके समय गीताप्रेसकी ही आध्यात्मिक पुस्तके पढ़ना पसद करते थे और श्रीभाईजीको अपना आध्यात्मिक बन्धु मानते थे।

प्रचारसे दूर रहनेवाले श्रीभाईजी

श्रीराधाष्टमी गीतावाटिकाका प्रमुख पर्व है, जो वहाँ प्रत्येक वर्ष भाद्र शुक्ल अष्टमीको बडे उत्साहके साथ मनाया जाता है। लगभग १० वर्ष पूर्व एक बार मुझे भी इस पर्वमे सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बिहारसे हर सालकी तरह बन्धुवर डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' भी पधारे हुए थे। मैं समारोहके हर कार्यक्रमसे इतना प्रभावित हुआ कि मेरी इच्छा उसकी

विधिवत् 'रिपोर्टिंग' करनेकी हुई। दुबेजीपर मैंने यह विचार प्रकट किया। उन्होने श्रीभाईजीकी अनुमति लेनेकी सलाह दी। मैंने श्रीभाईजीसे अनुमति माँगी तो वे मुस्कराकर बोले—

प्रभु जानत सब बिनहि जनाएँ। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाएँ ।।

यह कहकर श्रीभाईजीने मुझे निरुत्तर कर दिया।

वहुत कम लोग यह जानते है कि श्रीभाईजी साधक, पण्डित, विद्याव्यसनी, दार्शनिक और तत्त्वदर्शीके अतिरिक्त वहुत वडे भावुक कवि भी थे। उनकी कविताओमे विनयपत्रिकाकी भॉति दैन्यका पर्याप्त पुट है। वे प्रार्थना करते-करते कभी-कभी प्रभुसे सासारिक बुद्धि वापस ले लेनेकी भी मॉग कर बैठते थे—

बना दो बुद्धिहीन भगवान।
तर्क-शक्ति सारी ही हर लो, हरो ज्ञान-विज्ञान।
हरो सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति, नये जगतकी शान ।।
विद्या-धन-मद हरो, हरो हे हरे! सभी अभिमान।
नीति-भीतिसे पिड छुड़ाकर करो सरलता-दान ।।
नही चाहिये भोग-योग कुछ, नही मान-सम्मान।
ग्राम्य, गँवार बना दो, तृण-सम दीन, निपट निर्मान ।।
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे, करो प्रेमका दान।
प्रेमसिन्धु! निज मध्य डुबाकर मेटो नाम-निशान ।।

शायद भगवान्को यह प्रार्थना स्वीकार नही हुई कि वे अपने भक्तको एकदम बुद्धिहीन वना दे। तव श्रीभाईजीको अपनी प्रार्थनामे थोडा सशोधन करना पडा और उन्होने एक अलग पद लिखा—

बना दो विमलबुद्धि भगवान।

श्रीभाईजी 'कल्याण'के सम्पादनमे वहुत अधिक व्यस्त रहते हुए भी साधन-भजनके लिये समय निकाल लेते थे। उनका जीवन इतना सयमित था कि थोडी देरके विश्रामसे ही उनका पूरा विश्राम हो जाता था।

आदर्श भक्ति और व्यक्तित्व

मै जव-जव श्रीरामचरितमानस पढता हूँ और मेरे सामने भरतलालजीका चरित्र आता है, तव-तव मुझे निश्चय ही श्रीभाईजीकी याद आने लगती है। अयोध्याकाण्डके अन्तमे गोस्वामीजी लिखते है—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम ब्रत आचरत को ।।

दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी-से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ।।

वास्तवमे भरतलालजीसे मिलाइये तो श्रीभाईजीके चरित और त्यागवृत्तिको।

आपको भी यह स्वीकार करना पडेगा कि—

कलिकालहु नाथ! नाम सों परतीति-प्रीति एक किंकर की निबही है।

(विनयपत्रिका २७८ । १)

× × ×

भारतीय पञ्चाङ्गके अनुसार श्रीभाईजीका जन्म हुआ आश्विन कृष्णा द्वादशी, वि० सवत् १९४९को और गाधीजीका आश्विन कृष्णा द्वादशी, विक्रम-सवत् १९२६को। इसलिये दोनो ही अपने-अपने क्षेत्रमे प्रभावशाली हुए। दोनो ही तेईस वर्षके आगे-पीछे इस ससारमे आये और प्रभुके सौपे हुए कामको पूरा करके तेईस वर्षके आगे-पीछे चले गये इस ससारसे।

आज श्रीभाईजी हमारे बीच अपने पार्थिव शरीरसे नही है, परतु अपने यश शरीरसे वे अमर है तथा वे अपने आदर्शो, उपदेशो और सात्विक विचारोकी बहुत वडी धरोहर छोड गये है। हम उनके आदर्शो और उपदेशोको समझे, मनन करे और अपने जीवनको उनके अनुरूप वनाये। इससे हमारा कल्याण निश्चित है।

●

सबमे सब देखे निज आत्मा, सबमे सब देखे भगवान।
सब ही सबका सुख-हित देखे, सबका सब चाहे कल्यान ।।
एक दूसरेके हितमे सब करे परस्पर निज-हित त्याग।
रक्षा करे पराधिकारकी, छोड़े स्वाधिकारकी माँग ।।
निकल संकुचित सीमासे 'स्व', करे विश्वमे निज विस्तार।
अखिल विश्वके हितमे ही हो 'स्वार्थ' शब्दका शुभ संचार ।।
द्वेष-वैर-हिसा विनष्ट हो, मिटे सभी मिथ्या अभिमान।
त्यागभूमिपर शुद्ध प्रेमका करे सभी आदान-प्रदान ।।
आधि-व्याधिसे सभी मुक्त हो, पाये सभी परम सुख-शान्ति।
भगवद्भाव उदय हो सबमे, मिटे भोग-सुखकी विभ्रान्ति ।।
परम दयामय! परम प्रेममय! यही प्रार्थना बारंबार।
पाये सभी तुम्हारा दुर्लभ चरणाश्रय, हे परम उदार! ।।

—श्रीभाईजी

●

प्रेममूर्ति श्रीभाईजी

डॉ० भुवनेश्वरनाथजी मिश्र, 'माधव'

जुलाई, १९३२ 'सनातनधर्म' (काशी) से छुटकर 'कल्याण' गोरखपुरमे आ गया था। काशीमे रहा व्यक्ति गोरखपुरमे कैसे टिके? और नौकरी तो नौकरी ही है, चाहे वह स्वर्गमे हो। सोचा—"काशीका 'चना चबेना गग जल' ही अच्छा था, कहाँ आ गया गोरखपुरके 'नरक' मे।"—गीताप्रेस उन दिनो गोरखपुरके सवसे गदे और तग मुहल्लेके दमघोटू वातावरणमे था। श्रीपोद्दारजीने मेरी विवशता देखी और कधेपर प्यारसे हाथ रखते हुए कहा—'घवराइये नही, यह तो 'लोकालय' है—आप हमारे साथ शहरसे दूर गोरखनाथजीके मन्दिरके आगे वगीचेमे रहेगे —वहाँ सारा वातावरण आपको अनुकूल मिलेगा।'

कैसा है यह व्यक्ति, जो मनकी व्यथाको समझ जाता है और इतना प्यार दे सकता है, मुझ-जैसे सर्वथा एक अपरिचित अदने आदमीको। मनमे इस प्रश्नके साथ श्रीपोद्दारजीके मानवीय रसके प्रति एक सहज आस्थापूर्ण श्रद्धा जगी। यही था प्रथम साक्षात्कारका प्रथम सस्कार।

मझोला कद, भरा-पूरा शरीर, उन्नत प्रशस्त ललाट, गेहुआँ रग, ललाटपर गोपीचन्दनकी एक विदी शोभा दे रही थी। प्रसन्नवदन, श्वेत-शुभ्र खादीकी धोती और खादीका ही कलीदार कुर्ता, पैरोमे 'फलाहारी' जूते, भावभीनी आँखे—सिरसे पैरतक जैसे हृदय-ही-हृदय हो। लगा, यह व्यक्ति लाखोमे एक है—ऐसा मधुमय-प्रेममय व्यक्ति मिलता कहाँ है। मालवीयजी महाराज-के 'पवित्र मङ्गल पर' सानिध्यसे छूटा हुआ व्यक्ति आ गया श्रीपोद्दारजीके प्यारभरे सानिध्यमे।

श्रीपोद्दारजी जीवनके आरम्भमे सशस्त्र क्रान्तिकारियोके गिरोहके नेताके रूपमे लगभग दो वर्ष वगाल सरकारके कोपभाजन होकर शिमलापालमे नजरवद रहे और उसके वाद वगालसे सदाके लिये निप्कासित होकर रतनगढ (बीकानेर) तथा वम्वई पहुँचे और वही श्रीमन्त सेठ जमनालाल वजाजके सहयोगमे व्यापार करने लगे। परतु प्रभुकी पुकारपर सव कुछ रामके हवाले कर 'कल्याण'का सम्पादन करने लगे। प्रथम वर्ष 'कल्याण' वम्वईसे ही छपता और निकलता रहा। दूसरे वर्षसे उसका प्रकाशन गोरखपुरसे होने लगा। प्रभुकी पुकार और सत सेठ जयदयालजी गोयन्दकाका प्यार—'कल्याण'के मूलमे प्रेरणाके यही स्रोत थे। सत सेठ जय-दयालजी गोयन्दका और श्रीघनश्यामदास जालान गीताप्रेसके मस्तिप्क थे, परतु उनके हृदय थे श्रीभाईजी—सचमुच माँका हृदय, पुरुप-शरीरमे वात्सल्यमयी माँका हृदय!

'कल्याण'का दिन-दूना, रात-चौगुना वढता हुआ यश उसके सम्पादकको कभी प्रभावित नही कर सका। 'कल्याण' एक लाख पैसठ हजार छपता है, परतु श्रीभाईजी आरम्भमे जैसे अनासक्त, सेवापरायण, उदारमना थे, अन्तिम क्षणतक भी वैसे ही रहे। उन्होने कभी अपने नामका पैड नही छपने दिया, अपने निवासपर नामकी तख्ती नही लगने दी और उनकी सेवाएँ

इतनी गुप्त थी कि बायाँ हाथ भी नही जान सका कि दाहिने हाथने क्या और कितना दिया, परिवारके व्यक्तियोको तो पता ही क्या हो सकता था।

गहराईसे विचार करनेपर यह अनुभव होता था कि श्रीपोद्दारजी 'वासुदेव सर्वमिति' को ससिद्ध कर चुके थे। उनका विपुल साहित्य—क्या लेख, क्या कविता, क्या पत्र और क्या टिप्पणियाँ—उनका श्वास-प्रश्वास, उनके साथ रहनेवाले व्यक्तियोका आचरण, उनके आस-पासका समस्त वातावरण—यह सव इस सत्यका साक्षी था। जिस अनुभूतिको श्रीअरविन्दने उत्तरपाडामे अभिव्यक्त किया था, वही अनुभूति पोद्दारजीको सहज रूपमे उपलब्ध थी। किसी साधनाविशेषकी अपेक्षा भगवत्कृपा ही इसमे मुख्य कारण थी—ऐसा ही मानना चाहिये। कितना आश्चर्य होता था, परंतु कितना सुखद लगता था यह देखकर कि सव-के-सव श्रीपोद्दारजीको 'भाईजी' कहते थे—यहाँतक कि उनकी पत्नी और उनकी एकमात्र कन्या सौ० सावित्री बाई भी। गाधीजी, मालवीयजी, लाला लाजपतराय, टण्डनजी, जमनालालजी, सम्पूर्णानन्दजी, कृष्णकान्त मालवीय, रफी अहमद किदवई, युगलकिशोर विडला, सेठ गोविन्ददास, लालवहादुर शास्त्री, जैनेन्द्रकुमार, मैथिलीशरण गुप्त, शिवप्रसाद गुप्त, वासुदेवशरण अग्रवाल, वच्चनजी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, कितने नाम गिनाये—सवके वे 'भाईजी' ही थे।

× × ×

जव मै 'कल्याण'मे पहुँचा, तव उसका सम्पादकीय विभाग गोरखनाथके सुप्रसिद्ध मन्दिरके पश्चिमकी ओर एक छोटेसे उद्यानमे था। मकान कहनेको नाममात्र था, चारो ओर दूर-दूरतक आम, अमरूद, नाशपाती, और नारगीके वगीचे थे। एक विशालकाय आम्रवृक्षके नीचे चटाई डालकर हमलोग काम करते थे। प्रात काल चार वजेसे रातके ग्यारह-वारह वजेतक कथा, कीर्तन, सत्सङ्ग, प्रवचनका प्रोग्राम चलता रहता था। कार्यालयका कोई बँधा हुआ समय न था, फिर भी, औसतन सात-आठ घटे सम्पादकीय कार्यमे हमलोग सलग्न रहते थे। मेरे जिम्मे अग्रेजी पत्रोका उत्तर लिखवाना, 'कल्याण'के लिये एक लेख लिखना, 'कल्पतरु'के लिये एक अनुवाद करना और पुस्तकोका अन्तिम प्रूफ देखना था। यह कार्य सर्वथा मेरे मन लायक था। सारा वातावरण इतना प्राकृतिक, उन्मुक्त, सहज और भक्तिरससे ओत-प्रोत था कि मालूम होता था कि मै इसीकी तलाशमे इतने दिन भटक रहा था। श्रीपोद्दारजीका शील-स्वभाव सहज ही किसीको भी आकृष्ट कर लेता था। वाणी इतनी मधुर, स्वभाव इतना स्नेहिल और व्यवहार इतना साधु था कि लगता था—यह व्यक्ति इस पृथ्वीका नही है, किसी देवलोकसे उतरकर विश्वको प्रेमका पाठ पढानेके लिये, राग-द्वेषकी महाग्निमे जलती हुई मानवतापर अमृतकी वर्षा करनेके लिये ही मनुष्यका शरीर धारण किये हुए है। सम्पादकीय विभागमे हम जितने आदमी थे, उतने प्रान्तोके थे। विहार, बगाल, पजाव, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास और राजस्थानका एक अपूर्व सगम 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमे देखनेको मिलता था। वगीचेमे ही एक किनारे चौका था, जिसमे हम सभी भोजन करते थे और उसमे अपनी-अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार किसीको छाछ तो किसीको लाल मिर्च, किसीको केवल भात तो किसीको केवल रोटी दी जाती थी। इस प्रकार हमलोग मिल-जुलकर 'सार्वदेशिक भोजनालय'मे एक साथ भोजन करते

थे और रातको वगीचेमे अपनी-अपनी चटाई विछाकर सो जाते थे। यहाँ वडा ही निराला और पवित्र वातावरण था और ऐसा प्रतीत होता था कि इसके दिव्य सौन्दर्यके सामने स्वर्ग भी तुच्छ है। छ वजे प्रात काल हमलोग स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर सामूहिक कीर्तनके लिये एकत्र हो जाते थे। झाँझ, मृदग, ढोलक, करताल, खोलके साथ करीव एक घटेतक खूव धुआँधार कीर्त्तन होता था। कीर्त्तनके वाद गोस्वामी प० श्रीचिम्मनलालजी शास्त्री 'विनय-पत्रिका'से या सूर या मीराँका कोई मधुर पद समाधिस्थ होकर सुनाते थे। उनके सुनानेका ढंग इतना मोहक और मन-प्राणको मुग्ध करनेवाला होता था कि हम सभी एक प्रकारसे भाव-समाधिमे डूव जाते थे। इसके पञ्चात् श्रीपोद्दारजीका प्रवचन होता था। इस प्रवचनमे प्राय भक्तिरसकी वर्षा होती थी।

'कल्याण'का वातावरण सर्वथा निराला और सवसे भिन्न था—इस अर्थमे कि वहाँ सम्पादकीय ठाट-वाट कुछ था ही नही और दफ्तर-जैसी कुछ चीज भी नही थी। आमके पेडके नीचे चटाइयाँ डालकर हमलोग काम करते और आवश्यकता पडनेपर विचार-विमर्श कर लेते थे। कही किसीको कोई आदेश भी देना हुआ तो उसी भाषामे वह दिया जाता था, जिसमे आदेशकी गन्ध न हो।

श्रीभाईजी मण्डलके प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त प० लक्ष्मणनारायण गर्दे, प० चिम्मनलाल गोस्वामी, प० नन्ददुलारे वाजपेई, प० राजवली पाण्डेय, प० शान्तनुविहारी द्विवेदी (अव स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती), श्रीमुनिलाल (अव स्वामी सनातनदेव), प० रामनारायणदत्त शास्त्री आदि विद्वानोका सहज सत्सङ्ग प्राप्त हुआ और इनके सङ्गमे आत्म-विकासके लिये पूरा अवकाश मिलने लगा। 'कल्याण'के लिये प्रतिमास एक लेख मुझे लिखना पडता था। वह लेख प्राय किसी भक्तकी गाथा होती या किसी मध्यकालीन सतके जीवन-चरित्र और उनकी साधनाका विवेचन होता। पत्रोके उत्तर लिखनेका भी कुछ काम मै करता था। अग्रेजी या हिंदी पत्रोके उत्तर लिखनेमे 'कल्याण'की एक खास शैली थी, जिससे अवगत होनेमे कुछ समय लगा। ये पत्र प्राय किसी-न-किसी धार्मिक पहलू, आध्यात्मिक प्रश्न या साधना-सम्वन्धी शङ्काओके समाधानमे लिखे जाते थे। प्रश्न भी वडे विचित्र और वेतुके हुआ करते थे। कभी-कभी उन्हे पढकर हँसी आती थी। परतु 'कल्याण'की शैली यह थी कि चाहे जो भी पत्र हो, और जैसी भी उसकी शङ्काएँ हो, उनका पूरा-पूरा समाधान तथा निवारण समुचित ढगसे होना चाहिये। और किसी भी अवस्थामे अविनयका प्रदर्शन नही होना चाहिये। ऐसे पत्रोके उत्तर लिखनेमे श्रीभाईजीको कमाल हासिल था।

श्रीभाईजीका हरिनाममे अखण्ड विश्वास था और वह प्राय हर मानसिक चिन्ता, अभाव-की पीडा, दैन्य-दु ख, ऋण-कष्ट, चारित्रिक स्खलन आदि सभीसे छुटकारा पानेके लिये नाम-जपकी अचूक विधिकी व्यवस्था दिया करते थे।

'कल्याण'की रीति-नीति और विचारोको पूरा-पूरा हृदयगम करनेमे लगभग छ मास लग गये। फिर भी यह नही कह सकता कि वहाँकी सारी वाते मेरे लिये अनुकूल ही थी या पसद थी। आचार-विचार टकराये, परतु अन्ततोगत्वा मैने यह अनुभव किया कि इन सारी वातोमे

'कल्याण'का आग्रह निश्चय ही स्वस्थ और सुखप्रद था—स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी और साधनाकी दृष्टिसे भी।

सम्पादकीय विभागमे हम जितने व्यक्ति थे, उतने प्रान्तोके थे और उतने ही विभिन्न रग-ढगके। पूज्य श्रीगर्देजी महाराज हमलोगोमे सबसे श्रेष्ठ, अनुभवी और चूडान्त विद्वान् थे। परंतु उनकी चुहल और जिदादिली मुर्देको भी हँसा देती। वे शरीरसे वृद्ध, परतु हृदयसे चिर-तरुण थे।

'कल्याण'के सम्पादकीय मण्डलके लिये कुछ आधारभूत सिद्धान्त भी थे। उन नियमोमे दोनो समयकी सध्या, गीताका स्वाध्याय और पाठ, रामचरितमानसका पाठ, भगवन्नाम-स्मरण, सर्वत्र भगवद्भाव, अक्रोध और सत्यभाषण, अल्पभाषण, मौन और कुछ शारीरिक व्यायाम थे। इन नियमोमे दो बडे ही महत्वके थे। एक तो सर्वत्र भगवद्भाव और दूसरा प्रति आधे घटेपर भगवान्का स्मरण और स्मरण आनेपर उसे देरतक कायम रखनेकी वृत्ति। सध्याकालीन सामूहिक प्रार्थनाके बाद श्रीभाईजीकी उपस्थितिमे हमलोग नित्य-नियमोके सम्बन्धमे परस्पर विचार-विमर्श करते और यह देखते कि कहाँ त्रुटि हो गयी है, उसे कैसे सुधारा जा सकता है। खान-पानमे संयम था। तेल-मिर्च, खटाईका व्यवहार नहीके बराबर था। सबसे बडी बात यह थी कि ये नियम कभी बन्धन नही बने। उन्हे स्वेच्छया और सहर्ष हमलोग स्वत पालन करते थे और डायरी रखते थे।

'कल्याण'मे आनेपर देशके और कभी-कभी विदेशके भी प्रसिद्ध साधु-महात्माओ, सन्यासियो, वैरागियो, तपस्वियो और आध्यात्मिक जिज्ञासुओके दर्शन घर बैठे होने लगे। उन दिनो 'कल्याण' का उतना प्रचार नही हो पाया था, कुछ ही हजारोकी सख्यामे वह छपता था, परतु लोगोमे 'कल्याण' और 'कल्याण'-सम्पादकके प्रति उमडती हुई श्रद्धाके दृश्य कई बार देखनेको मिलते थे। कुछ श्रद्धालु तो ऐसे आते थे, जो प्रेसकी मशीनोकी आरती उतारते थे और उनपर चन्दन-फूल आदि चढाते थे। इसे श्रद्धाका अतिरेक कहे या भावुकता? ऐसे-ऐसे दृश्य प्राय रोज देखनेको मिलते, जिनपर हँसी आये बिना न रहे। रग-बिरगे साधुओ, सन्यासियो, वैरागियोका काफला जब कभी उतर आता, तब हमलोगोके लिये मनोरञ्जनका साधन जुट जाता। अधिकाश अपनी जैसी-तैसी हस्तलिखित प्रतियोको लेकर गीताप्रेसमे छपवानेके लिये दौडे आते थे। मुझे स्मरण है, अयोध्याके एक सन्यासी महोदय स्वरचित 'विचित्र-रामायण'की हस्तलिखित प्रतियाँ आठ-नौ बडी-बडी जिल्दोमे लेकर आये थे। हमलोगोमेसे किसीके पास इतना समय और धैर्य नही था कि उनकी 'विचित्र-रामायण'को आद्योपान्त पढे या उसे सुना जाय। परतु श्रीभाईजीने आदिसे अन्ततक उनकी पूरी रामायण सुनी और सुनकर प्रसन्नता प्रकट की—भले ही उसे गीताप्रेससे छापा न जा सका। ऐसे ही, समय-समयपर बडे ही अटपटे व्यक्ति आ जाया करते थे। कभी-कभी लोग यह समझते थे कि यहाँ आकर जोर-जोरसे कीर्तन करने और भावावेगमे मूर्छित हो जानेसे 'कल्याण'मे विशेष आदरणीय मनुष्य समझा जायगा और इसलिये भी बहुत-से लोग भावावेगमे मूर्छाका स्वाँग रचा करते थे। ये सारी बाते हमलोग समझते थे, परतु श्रीभाईजीके उदार व्यक्तित्वमे सबके लिये उचित स्थान था, किसी वस्तुको वे विकृत नही होने देते थे। समय-समयपर भारतीय संस्कृति

और साधनाकी तलाशमे कुछ विदेशी महिलाएँ भी आ जाया करती थी। उनकी सार-सँभाल और देख-रेखका भार मेरे ऊपर था। कुल मिलाकर 'कल्याण'का जीवन 'विविध-विषय-विभूषित' होनेके कारण काफी रगीन और दिलचस्प था।

'कल्याण'मे विताये हुए ग्यारह वर्प जीवनके सर्वोत्तम ग्यारह वर्ष थे और उसमे समाज-सेवा, भ्रमण और सत-महात्माओके सत्सङ्गका अपूर्व लाभ मिला। 'कल्याण'मे आनेपर अनेक साधु-महात्माओ और सतोके अत्यन्त निकट सम्पर्कमे आनेका सौभाग्य मिला था। इन महात्माओ-मे स्वामी शिवानन्दजी, श्रीभोले वावा, श्रीउडिया वावा, श्रीहरि वावा, श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, श्रीस्वामी एकरसानन्दजी, माँ आनन्दमयी, स्वामी अखण्डानन्दजी और स्वामी शरणानन्दजी मुख्य रूपसे सामने आते है।

इसके साथ-साथ गोरखपुरमे प्रतिवर्ष भयकर वाढका आक्रमण हुआ करता था, जिसमे गोरखपुर-देवरिया जिलेका वहुत वडा भू-भाग जलमग्न हो जाता था और हजारो गाँव राप्ती और सरयूकी प्रखर धारामे आ जाते थे। ऐसे अवसरोपर गीताप्रेस-सेवादलकी ओरसे वडे व्यापक स्तरपर 'रिलीफ' कार्य होता था, जिसका दायित्व मुझे सँभालना पडता था और ऐसे अवसरोपर महीनो नाव लेकर पानीमे रहना पडता था और जलमग्न गाँवोमे घूम-घूमकर अन्न, वस्त्र, तेल, दियासलाई, दवा, सावूदाना आदिका वितरण करना पडता था। यह कार्य मुझे प्रिय था और ऐसा लगता था कि भक्तिके सम्वन्धमे जो कुछ भी उपदेश हमने सुना है, वह सव इस सेवाके द्वारा सार्थक हुआ है।

'कल्याण'मे रहते हुए पतनके कई अवसर आये, जव मै नरकमे पूरी तरह उतर चुका था, परतु भाईजीने अपनी दोनो भुजाएँ वढाकर वैसे ही उठा लिया, जैसे माँ अपने वच्चेको उठाती है। और आश्चर्य यह है कि सव कुछ जानकर भी भाईजीके मनमे क्षण-भरके लिये भी मेरे प्रति घृणा और उपेक्षाका भाव नही आया। कमजोर व्यक्तियोके प्रति उनमे विशेप स्नेह और ममता थी। क्षमामे तो वे पृथ्वीके समान थे और गम्भीरतामे समुद्रकी तरह। ऐसे व्यक्तिके साथ लगभग ग्यारह वर्प रात-दिन रहनेका सौभाग्य किसी पूर्वजन्मके पुण्योदयसे ही हुआ होगा।

अपने सम्पादकीय जीवनकी सवसे वडी उपलब्धि मैं पूज्य श्रीभाईजीके सुमधुर सानिध्यमे उनके पूर्वजोके निवास-स्थान रतनगढ (राजस्थान) का प्रवास मानता हूँ। रतनगढ-प्रवासने मुझे कितना आनन्द दिया है, वहाँके उस जीवनकी झाँकी मैने विस्तृतरूपसे एक लेखमे दी थी, पर यहाँ उसे देना समीचीन न होगा।

रतनगढका श्रीभाईजीका घर वडा मनोरम एव आकर्पक था। एक ओर अखण्ड हरिकीर्तन होता रहता था और दूसरी ओर सत्सङ्गका स्थान था, जहाँ कई साधु-महात्मा, योगी-यति, उपदेशक और कथावाचक आते और अपने उपदेशोसे नर-नारियोको कृतार्थ करते थे। झाँझ, मृदङ्ग, करताल आदिके साथ भगवन्नामका घोप होता रहता था और उससे वहाँके वातावरणमे एक अपूर्व पावन, दिव्य स्निग्धता आ गयी थी।

× × ×

श्रीभाईजीने हरिनामका रस, लीलाका रस वरसाना शुरू किया और हजारो नही, लाखो व्यक्तियोको प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूपमे इस भावराज्यमे प्रवेश कराया। यह कहा जा सकता

है कि श्रीभाईजीके कारण ही गीताप्रेसके साहित्यका इतना विकास हुआ और वह सभी क्षेत्रोमे श्रद्धा और सम्मान पा सका तथा उसका इतना व्यापक प्रचार-प्रसार एव प्रभाव हो सका ।

'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमे मै ग्यारह साल रहा । १९४२का आन्दोलन न आया होता तो शायद 'कल्याण'से मे पृथक् न हुआ होता, परतु पृथक् होकर भी पृथक् कहाँ हो पाया हूँ ? 'कल्याण'का मेरे प्रति और मेरा 'कल्याण'के प्रति इतना घनिष्ठ और मधुर सम्वन्ध है कि आज भी मै 'कल्याण-परिवार'का ही एक अन्यतम सदस्य हूँ । श्रीपोद्दारजीके सम्पर्कमे जो एक वार भी आ गया, वह जनम-जनमका उनका 'अपना'—एकदम अपना हो गया । ऐसा दिव्य था उनका आकर्षण, ऐसा मधुर था उनका व्यवहार ।

श्रीभाईजी थे तो यद्यपि विशुद्ध सनातनी वैष्णव, तथापि सभी धर्मो एव सम्प्रदायोके प्रति उनके हृदयमे अपार आदर एव श्रद्धा थी । राजनीतिसे सर्वथा मुक्त थे, इसलिये उनके मित्रोमे सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, कॉग्रेसी, इण्डिकेटी-सिण्डिकेटी—सभी तरहके व्यक्ति थे । कुछ अपनेको नास्तिक कहनेवाले भी थे । उनका कहना था कि नास्तिक कोई होता ही नही—वह 'तलाश'मे होता है, इतनी ही वात होती है । पद और पदवीके लोभ-मोहमे वे कभी पडे नही । अग्रेज सरकार उन्हे 'रायवहादुर' और वादमे 'सर'के खितावसे विभूषित करना चाहती रही । खूव फदे डाले गये, परतु रामकी कृपासे सव फदे बेकार सिद्ध हुए । स्वर्गीय पतजीने भी जव उन्हे 'भारतरत्न' पदसे विभूषित करनेकी तथा राज्यसभामे सदस्य मनोनीत करनेकी स्वीकृति चाही तो उन्होने हाथ जोड लिये ।

साधनाका आरम्भ श्रीभाईजीने विष्णुके ध्यानसे आरम्भ किया, परतु वादमे धीरे-धीरे वे श्रीराधाकृष्णके लीलारसमे उतरते गये, उतरते-उतरते उसीमे प्राय खो गये—'कल्याण'मे 'मधुर' शीर्षक गद्य-पद्यात्मक लेख एव राधाष्टमी-उत्सव-समारोह इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है । वैसे भी भाईजी-का राम-नाममे अखण्ड विश्वास था, अपरिमेय आस्था थी । 'भायॅ कुभायॅ अनख आलसहूँ' वाले रामनामको भी वह ग्राह्य मानते थे और कहते थे कि 'इसीसे भाव-महाभावतक पहुँचते है ।' सभी विभिन्न दशाओको पारकर—राग-अनुराग, प्रणय-स्नेह, भाव-महाभाव तक नाम पहुँचा देता है और नामीसे मिला देता है, ऐसी उनकी मान्यता थी । स्वय तो नामके रसिक थे ही, हजारो-लाखोको उन्होने साधनाके इस मार्गपर लगाया । रोग, ऋण, भय, शोक, चिन्ता आदि सभी प्रकारके दु खोसे मुक्तिके लिये वे नाम-साधनाका उन्मुक्त प्रयोग वतलाते थे । नामानुरागसे रूपानुराग और लीलानुराग होता है और लीलानुरागसे ही लीलाप्रवेश होता है, ऐसा श्रीभाई-जी मानते थे । प्रेमसाधना ही मुक्तिका प्राण है और प्रेमराज्यमे सर्वस्व-समर्पण ही एकमात्र साधना है । अस्तु, प्रेम साधन है, साध्य भी । धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—सवसे परे है प्रेम और यही है मानवका परम और चरम पुरुपार्थ । निश्चय ही उसमे भगवत्कृपा ही प्रेरणा भरती है, परतु सवसे ऊपर है इस पथके पथिकके लिये सतत सावधानी । 'सावधानी ही साधना है'—यही महामन्त्र श्रीभाईजीका था । हरिनामसे सहज प्रेम और विश्वके समस्त पदार्थो, चर—अचरो-सभीमे उसी परम प्रियतमकी छविका दर्शन—यही था उनकी साधनाका सार-सर्वस्व ।

ऐसे थे परम वैष्णव प्रेममूर्ति श्रीभाईजी । उनके पावन चरणोमे भक्ति और प्रीतिके साथ शत-शत प्रणति ।

●

एक रिक्तता

डॉ० श्रीगोपीनाथजी तिवारी

गोरखपुर दो सम्वन्धोसे लोकविश्रुत रहा है--गोरखनाथ और गीताप्रेस--'कल्याण'से । केरलमे यात्रा करते हुए मुझे एक मद्रासी सज्जनने पूछा--'आप कहाँसे आये है ?' मैने कहा--'गोरखपुरसे ।' मुँह ताकते हुए वे बोले--'गोरखपुर, कौन गोरखपुर ?' मैने कहा--'गोरखनाथकी सिद्धभूमि, पूर्वोत्तर रेलवेका मुख्यकेन्द्र ।' वे और अधिक स्तम्भित हो पूछने लगे--'कौन गोरखपुर, समझा नही मै ।' मैने कहा--'गीताप्रेसवाला गोरखपुर, जहाँसे 'कल्याण' निकलता है ।' 'अच्छा, गीताप्रेसवाला गोरखपुर ।' यह वार्त्तालाप अग्रेजीमे हुआ, क्योकि वे हिदी विल्कुल नही समझते थे । गीताप्रेस और 'कल्याण'की पृष्ठ-भूमिमे एक स्तम्भ था--यशस्वी प्रकाश-स्तम्भ, जिसका नाम था--'हनुमानप्रसादजी पोद्दार' । आज सामने रिक्तता-सी लगती है, उस प्रकाश-स्तम्भका प्रकाश बुझ-सा गया है । अव भी गीतावाटिका जाता हूँ । एक देव-प्रतिमा सामने आ विराजती है--विनय और स्नेहकी सुरसरि, मृदुता और सौजन्यकी सुधा-वापिका, परतु परतु ऊपर स्थान रिक्त है, वे अव वहाँ नही है, नेत्र विवश वापस आ जाते है, हृदयमे एक धक्का-सा लगता है । वह कक्ष उस देव-प्रतिमासे रहित है, वह आसन रिक्त है । क्या वह रिक्तता भरेगी ?

वैसे तो जो भी भाईजीके दृष्टि-केन्द्रमे प्रविष्ट हुआ, वह उनके व्यक्तित्वसे खिच गया, उनका वन गया । उनके व्यक्तित्वमे एक आकर्षण था, जो उन्हे प्राप्त हुआ था सच्ची निष्ठा, सतत साधना और विशाल सहृदयतासे । भाईजी सच्चे हिदू थे । सच्चा हिदू कभी भी सकीर्ण दृष्टिवाला नही हो सकता । उनके मतमे हिदूका लक्षण है--'ज्ञानके अगाध भडार वेद-शास्त्रोमे आस्था रखनेवाला, गो-रक्षक तथा भारतकी पुण्यभूमिसे प्रेम करनेवाला ।'

गीतावाटिका इसी कार्यरत कुसुमसे सुगन्धित थी । गोरखपुरके सहायता-कार्योमे भी भाईजीका हाथ सदा आगे वढा है । गोरखपुरकी वाढ एक विभीषिका वनी रहती थी और भाईजी सहायता-कार्यमे सदा तत्पर रहते थे । कुष्ठाश्रम भी उनकी सहायता-दृष्टिमे रहा । मेरा भाईजीसे २५ वर्षोसे निकटका सम्वन्ध रहा है । मैने सैकडो छात्रोको उनके पास सहायतार्थ भेजा और मुझे एक भी ऐसा समय स्मरण नही है, जव कोई छात्र रिक्तहस्त लौटा हो, किसीको मासिक छात्रवृत्ति दी, किसीको एक मुश्त धनराशि । एक छात्र मेरे पास दु खी आया । उसपर विश्वविद्यालयका परीक्षा-शुल्कसहित पौने दो सौ रुपया देय था । मैने भाईजीको पत्र लिखा । वह छात्र हँसता हुआ लौटा और परीक्षामे वैठा । ऐसा सैकडो वार हुआ है ।

रस्किन विनम्रताको उच्च व्यक्तित्वका वाहक मानते है और भाईजी नम्रताकी प्रतिमूर्ति थे । वे सभा-समाजोके पदो तथा ओहदोसे सदा वचनेका प्रयास करते थे । भारत सरकारके उपाधि-प्रदान-प्रस्तावको भी भाईजीने अत्यन्त विनम्रतासे अस्वीकार कर दिया था । टेनीसनने आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्मसयमको महानताकी तीन सीढियाँ वताया है । भाईजी इन गुणोके द्वारा शक्ति अर्जितकर 'कल्याण'द्वारा कल्याण-दानके मार्गपर कदम वढाते रहे है ।

सव कुछ करते हुए भी भाईजी नामसे दूर भागते थे । मैंने उन्हे विश्वविद्यालयमे बुलाया । उनके भाषण भी हुए, किंतु वे कभी भी सभापति न वने । पहले ही कह देते थे—'मै आऊँगा, किंतु सभापति न वनूँगा ।' महाप्रयाणसे दो मास पूर्वकी ऐसी ही एक अविस्मरणीय स्मृति है । मै चाहता था कि एम०ए० हिंदीमे सर्वोच्च अङ्क प्राप्त करनेवालेको स्वर्णपदक दिया जाय । मैंने भाईजीसे इसकी चर्चा की । वे तुरत वोले—'हाँ, दो सहस्र रुपये आपके पास पहुँच जायँगे ।' मैंने कहा—'भाईजी, इस स्वर्णपदकका नाम होगा 'हनुमानप्रसाद पोद्दार स्वर्णपदक', परतु उन्होने कहा—'यह नही हो सकता । कोई और नाम रखिये ।' मुझे आध घटा भाईजीसे पर्याप्त वाद-विवाद एव सघर्ष करना पडा, तव वडी कठिनाईसे वे राजी हुए और वोले—'तिवारीजी ! आप तो सव कुछ जानते है, तव क्यो इसपर आज अडकर बैठ गये है ?'

वास्तवमे भाईजी 'ऋषि' थे और गीतावाटिका वन गयी थी 'आश्रम' । आज उनके न होनेपर लगता है—यह वाटिकामात्र है, जहाँके वृक्ष सिर झुकाकर कहते है—'हाँ, हम उनके ही लिये झुकते है ।'

●

आध्यात्मिक चेतनाके प्रतीक भाईजी

डॉ० श्रीरामचन्द्रजी तिवारी

श्रीभाईजी आध्यात्मिक चेतनाके प्रतीक थे। उनका व्यवहार अत्यन्त मृदु था। उनके मनमे सवके प्रति समभाव था। उन्हे कभी क्षुब्ध, उत्तेजित या आवेगशील नही देखा गया। पीडितो और उपेक्षितोके प्रति उनका हृदय सहज करुणासे भरा था। उनके यहाँसे कभी कोई निराश नही लौटा। वे निरन्तर परहित-निरत रहते थे । उन्हे चिन्ता थी तो धर्मकी प्रतिष्ठाकी थी। वे धर्मके लिये, सत्यके लिये, सद्भाव और शीलके लिये समर्पित थे। उनपर गोस्वामी तुलसीदासकी निम्नलिखित पक्तियाँ पूर्णतया चरितार्थ होती है—

बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो ।
परिहरि देहजनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।।

भाईजी सासारिक वैभवसे सदैव असम्पृक्त रहे । वे निरन्तर 'योगस्थ' रहकर अपने कर्तव्यका पालन करते रहे। उन्होने कभी किसी भौतिक उपलब्धिको महत्व नही दिया। ऐसा लगता है कि गीताके मर्मको उन्होने जीवनमे चरितार्थ कर लिया था। गीतामे भगवान्‌ने कहा है—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥
(गी० २ । ४८)

वस्तुत समत्वबुद्धि प्राप्त कर लेना ही सच्चा 'योग' है । अनासक्त होकर लाभ-हानि, सिद्धि-असिद्धि, जय-पराजय, सुख-दु खकी चिन्ता न करते हुए अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही

सच्ची 'जीवन-यात्रा' है। यह अध्यात्म-दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है। भाईजीकी 'जीवन-यात्रा' ऐसे ही योगस्थ आध्यात्मिक पुरुषकी जीवन-यात्रा थी।

भौतिक जीवनसे अनासक्त रहते हुए भी उन्हे धर्मके निरन्तर ह्रास और सामाजिक मर्यादाके भङ्ग होनेका अपार दुख था। वे यथासम्भव सस्कृति और धर्मके उन तत्त्वोका पोषण करते रहे, जो सनातन है और जिनको ऋषियोने गहन चिन्तन एव सतत साधनाके बलपर उपलब्ध किया है। गो-सेवा, हरिस्मरण, परोपकार, सत्य-अहिसा, नियम और आचार, व्रत और सयम—इन सभी तत्त्वोके प्रति सचेष्ट रहनेके लिये वे प्रत्येक जिज्ञासुको प्रेरणा देते रहे है। वे अच्छी तरह जानते थे कि इन तत्त्वोका विघटन नेताओद्वारा पहले होता है, फिर सामान्य जनता उनसे विमुख होती है। विश्वविद्यालयके छात्रोमे बढती हुई अनुशासनहीनताके सदर्भमे बातचीत करते हुए, एक बार उन्होने प्रस्तुत पक्तियोके लेखकसे कहा था—'छात्रोका कोई दोष नही है। हम अपनेको देखे, अपने नेताओको देखे, हम कहाँ है? लोकसभा और विधानसभाओमे क्या हो रहा है? समाजमे सगठित अनेक साहित्यिक और सास्कृतिक सस्थाओका क्या हो रहा है? छात्र तो वही करेगे, जो उनके गुरुजन उदाहरणरूपमे उनके सामने रखेगे।' इसके बाद इस सदर्भमे कुछ विशेष कहनेको नही रह गया।

भाईजीने आध्यात्मिक जीवनके मूल तत्त्वको निष्ठापूर्वक ग्रहण किया था। आध्यात्मिक जीवनका केन्द्र 'विशुद्ध प्रेम' है। इस प्रेमकी पहली शर्त है—"स्वसुखवाञ्छाकी कल्पनाका भी सर्वथा अभाव। यदि किसी वस्तुको हम अपने लिये, अपने व्यक्तिगत सुखके लिये चाहते है तो वह 'भोग' है। यदि हम उसे भगवत्समर्पित करके सुखी होते है तो वह 'प्रेम' है। भारतीय साधनाके क्षेत्रमे इस विशुद्ध प्रेमकी प्रतीक 'राधा' है। राधाजी प्रेम-विग्रहरूपा है। वे भगवान्की आह्लादिनी शक्ति है। भगवान्ने स्वय अपने आनन्दका आस्वादन करनेके लिये अपनी आह्लादिनी शक्तिको राधारूपमे प्रकट किया है। राधा कृष्णके प्रति पूर्ण समर्पिता है। उन्हे मात्र भगवान्के सुखका ध्यान है। कृष्णसे अलग न उनकी कोई कामना है, न इच्छा। वस्तुत वे कृष्णरूपा ही है। प्रेम-साधनाकी यह पराकाष्ठा है। राधा कोई नारी नही है। वे तो दिव्य प्रेमकी प्रवृत्तिका प्रतीक है। इसीलिये वे महाभावरूपा है। जो साधक इस महाभावकी साधना करना चाहता है, उसे राधाके प्रति, उस महाभावके परम प्रतीकके प्रति, समर्पित होना पडता है।" भाईजी उसी महाभावके साधक थे। इसीलिये वे राधाके प्रति पूर्ण समर्पित थे, उन्होने अपने 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'-ग्रन्थके रूपमे इसी महाभावकी साधनाकी मार्मिक व्याख्या की है।

भाईजीको कवि-प्रतिभा भी प्राप्त हुई थी। उन्होने अपनी इस प्रतिभाको भी श्रीराधा-माधवके प्रति अर्पित कर दिया था। उन्होने राधाका जो स्वरूप अङ्कित किया है, वह अन्यतम है। व्यक्तित्व-विधानकी दृष्टिसे उनकी राधा जयदेव, विद्यापति और सूरदासकी राधासे सर्वथा अलग है। भाईजीकी राधाको माधवकी मधुपुरी-यात्रासे भी सुख-सतोष ही प्राप्त होता है—वे कहती है—

मुझे परम सुख देनेको ही गये मधुपुरीमे बस, श्याम।
समझ गयी, मै सुखी हो गयी, निरख सुखद प्रियतमका काम॥

उसे श्रीकृष्णसे कोई शिकायत नही है। वे अपनेमे ही अनेक दोषोकी स्थिति पाती है। उद्धवजीसे वे कहती है--

सद्‌गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित, दोषकी मै थी खान।
मोहविवश मोहनको होता मुझमे सुन्दरताका भान ।।

:o: :o: :o:

गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या, मै मतिमन्द, मलीन ।।
मुझसे कहीं अधिकतर सुन्दर सद्‌गुणशील सुरूपनिधान।
सखी अनेक योग्य, प्रियतमको कर सकती अतिशय सुख-दान ।।

वस्तुत राधाका व्यक्तित्व कृष्णसे अभिन्न है। जिसमे कृष्णको सुख प्राप्त हो, उसमे ही राधाको भी सुख है। उन्हे किसी गोपीके प्रति किसी प्रकारकी शिकायत या ईर्ष्याभाव नही है। वे अपनेको कृष्णसे अलग अनुभव ही नही करती। वे उद्धवसे कहती है--

मुझे छोड़ 'वे' उन्हे छोड़ 'मै' रह सकते है नहीं कभी।
'वे मै', 'मै वे'---एक तत्त्व है---एकरूप है भाँति सभी ।।

भाईजीके कविरूपका मूल्याङ्कन अभी नही हुआ। सत्य तो यह है कि भाईजीने जो भी कुछ लिखा है, अपने सुखके लिये लिखा है। वह उनका राधा-माधवके प्रति विनम्र भावात्मक समर्पण है। उन्होने सदैव अपनेको सभी प्रकारके प्रचार और विज्ञापनसे दूर रखा। उनकी समस्त रचनात्मक शक्तियाँ अध्यात्म-केन्द्रित थी। इसलिये कवियो और साहित्यकारोकी सामान्य प्रवृत्तियो-से वे अलग रहे। उनकी कविताएँ आध्यात्मिक चेतनाके स्तरपर रची गयी है। उनमे मात्र कल्पनाका प्रसाद नही है। इसलिये उनका मूल्याङ्कन कोई अध्यात्मदृष्टिसम्पन्न आलोचक ही कर सकता है। आलोचनाके प्रचलित सिद्धान्तोके आधारपर उनकी परख नही हो सकती।

भाईजीका तन, मन, मति, जीवन, प्राण---सब कुछ प्रभुके चरणोमे अर्पित था। समर्पणकी इस उच्चतम भावभूमिपर पहुँचकर ही उनके व्यक्तित्वके सम्बन्धमे कुछ कहा जा सकता है। अत उनकी एक प्रिय प्रार्थना उद्धृत करते हुए यह प्रसङ्ग समाप्त किया जाता है---

देखा करूँ तुम्हारी लीला, गाया करूँ तुम्हारा नाम।
सुना करूँ नित मुरलीकी धुन, वचन तुम्हारे परम ललाम ।।
नेत्र-मधुप नित करे तुम्हारे वदन-कमल-मधु-रसका पान।
पूर्ण समर्पण हो जाये इन्द्रिय-तन-मन-मति-जीवन-प्रान ।।

सच्चे अर्थमें महापुरुष

श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र'

'कल्याण'के प्रधान सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार लोगोमे 'भाईजी' नामसे प्रसिद्ध थे और सचमुच वे सभीके भाई—स्नेहशील भाई थे । मुझे तो निजी अग्रजका-सा स्नेह उन्होंने दे रखा था ।

श्रीभाईजीके साथ मेरा सम्पर्क वहुत पुराना है और वर्षो मे उनके पास रहा हूँ। इस सम्पर्कमे मैने उन्हे जो देखा और जाना है, उस विषयमे कुछ कहनेसे पूर्व मुझे एक-दो वाते दूसरी कहनी है। मैने सतो-महापुरुषोकी वहुत-सी जीवनियाँ देखी-पढी है, किंतु श्रीचैतन्य-चरितावलीको छोडकर शेषसे मुझे प्राय निराशा ही मिली है। महापुरुषोकी जीवनियोके लेखकोने प्राय महापुरुषकी महापुरुषताको गौण कर दिया है और महत्व जिन चमत्कारोको दिया है, वे महापुरुषके जीवनमे भी महत्वहीन होते है और साधकके लिये भी व्यर्थ है।

वचपनसे ही मुझे सिद्धियो-चमत्कारोके होने-घटनेमे विश्वास रहा है, किंतु उनसे वितृष्णा रही है। अनेक प्रख्यात सिद्ध मिले भी, किंतु सिद्धियोके प्रति कुतूहल ही नही जागा।

महापुरुषता क्या है ? यह है क्लेशकी आत्यन्तिक निवृत्ति। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पॉच क्लेश है। इनमेसे अविद्या निवृत्त हुई या नही, यह स्वसवेद्य है। इसे कोई दूसरा जान नही सकता। अभिनिवेश अर्थात् शरीरको ही सव कुछ मानना साधारण साधकमे भी नही होता। अत दूसरेके लिये अस्मिता अर्थात् सम्मान-सुयश-पद-प्रतिष्ठाकी वासना और राग-द्वेष देखना ही सम्भव है और ये जिससे न दीखे, वही 'महापुरुष' है।

महापुरुषके जीवनमे यह देखा जाना चाहिये कि वह राग-द्वेषसे कितना ऊपर है, कितना सहिष्णु है, कितना निरपेक्ष है। सर्वत्र भगवद्भाव उसमे कितना है। साथ ही उसके सङ्गसे, उसकी प्रेरणासे लोगोमे कितने सद्‌गुण, कितना भगवद्भाव आया और कितने दुर्गुण छूटे। चमत्कार ही देने हो तो वे किसी महापुरुषकी जीवनीके परिशिष्टमात्र हो सकते है।

सहस्रो लोग श्रीभाईजीद्वारा लाभान्वित हुए है और उनके सम्पर्कमे रहे है। सवको वे अपने लगे है। उनके सम्वन्धमे वहुत अधिक गहराईमे जाकर कुछ कहनेकी स्थिति मेरी नही है।

मुझ-जैसे व्यक्तिको भी अपना लेना, सह लेना और उसे निर्बाध स्नेह देते रहना—यह मुझे श्रीभाईजीकी महापुरुषताका सवसे वडा प्रमाण लगता है, क्योकि स्वभावसे ही मै रूक्ष, उद्धत और जो मनमे आये—उचित या अनुचित, सो कर वैठनेवाला था। ऐसा निःशङ्क, निरङ्कुश, उद्धत व्यक्ति साथ रहे तो उसे निभा लेना क्या सहज है ? पर श्रीभाईजीने मुझे निभाया है। कुछ उदाहरण देख ले—

(१) गीतावाटिकामे जिस कोठरीमे रहता था, मैं जव कार्यालय चला जाता तो श्री-भाईजीके प्रियजन उस कोठरीमे फोटोग्राफीका कुछ काम करते। पुरानी पुस्तकोकी फोटो-प्रति वनाते। उनसे अपेक्षा थी कि मेरे कोठरीमे आनेसे पूर्व काम समाप्त करके, सव सामान तख्तेके नीचे करके, कोठरी स्वच्छ करके चले जाया करे। वडी सावधानीसे वे इस अपेक्षाका निर्वाह करते थे।

एक दिन उनमेसे किसीसे थोडी भूल हुई। वे 'इन्लार्जर' तख्तेके नीचे थोडा कम खिसका-कर गये। मै रात्रिमे सोकर उठा तो मुझे ठोकर लगी। चोट तो नही लगी, किंतु झल्लाकर मैंने 'इन्लार्जर' उठाकर वाहर फेक दिया। उसके शीशे टूट गये कैमरा दूर जा गिरा। मै तो समयपर कार्यालय चला गया, किंतु उन लोगोने वाहर पडे शीशेके टुकड़े चुनकर उठाये। मेरी कोठरीसे सव सामान उठा ले गये।

वात श्रीभाईजीतक न जाय—सम्भव नही है, किंतु कुछ भी हुआ, इसकी चर्चा मेरे कानतक कभी नही आयी।

(२) एक वार ही नही, तीन या चार वार मेरे औद्धत्यसे, मेरी उच्छृङ्खलतासे, मेरे असयमसे वहाँके लोगोको वहुत क्षोभ हुआ। उनका क्षोभ उचित था। भाईजीके पास जानेके अतिरिक्त उनके पास उपाय नही था, किंतु परिणाम ? वे श्रीभाईजीके पास गये और कुछ कहा, यह वात भी मुझे पता न लगती, यदि कोई दूसरा मुझे यह न वतलाता।

(३) एक सज्जन मुझसे वहुत रुष्ट हो गये। उनका रोष उचित था। भाईजीको उन्होने पत्र लिखे—लिखते गये। जो भी लिख सकते थे, लिखा। उन्हे क्या पता कि वे पत्र लिखकर कुएँमे डाल रहे है। कोई और न सूचित करता कि उन्होने भाईजीको पत्र लिखे है तो मुझे पता भी नही लगता। श्रीभाईजीके पास किसीकी शिकायत गयी तो वह कुएँमे नही, अगाध समुद्रमे डूव गयी। उसकी छाया भी ऊपर झलकनेवाली नही थी।

(४) भाईजीकी ओरसे उनके नाम आये पत्रोके उत्तर मैं जव भी गोरखपुर रहा, प्राय. देता रहा था। एक वार उनके कमरेमे गया तो देखा कि मेरा लिखा कोई उत्तर विना भेजे रखा है—पुराना हो गया है। तव पता लगा कि किसीका लिखा कोई उत्तर या दूसरा कोई काम भाईजीको ठीक नही लगता था तो वे स्वय लिखते थे, किंतु जिसमे त्रुटि हुई है, उसे कुछ वतलाते नही थे। उनका कहना था—'इससे उन्हे दु ख होगा।'

(५) मेरी कहानियोके कुछ सग्रह गीताप्रेसने छापे। 'कल्याण'मे उनकी सूचना देखकर मैंने खूव कडा पत्र भाईजीको लिखा। उत्तर आया—वीमारीकी स्थितिमे स्वय उन्होने उत्तर दिया था—'आपकी कहानियोको मैंने सहज भावसे वैसे ही छपने भेज दिया, जैसे अपनी कोई रचना भेजता हूँ। आपसे पूछना भी चाहिये, यह तो स्मरण ही नही आया। अव झगडना हो तो मुझसे झगडिये।'

(६) श्रीमद्भागवतमे गृहस्थका आदर्श धर्म वतलाते हुए कहा गया है—'गृहेष्वतिथिवद् वसन्—घरमे अतिथिके समान रहे' और—

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ।
यद् वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥

'जातिके लोग, माता-पिता, पुत्र, भाई तथा दूसरे सुहृद् जो कहे और जो चाहे, उसका ममताहीन होकर अनुमोदन करे ।'

सावित्री (भाईजीकी पुत्री) बीमार थी । कर्णमूल-ग्रन्थि-शोथ और ज्वर था। डाक्टर आ रहे थे, इन्जेक्शन लग रहा था। बीमारी यह छूतकी है। अचानक गीतावाटिकाके चौकीदारको भी यही रोग हुआ। ज्वर आँधीकी भाँति वढने लगा। उसके भाईने लगभग पाँच वजे शामको 'कल्याण'-परिवारके एक मित्रसे दवा माँगी। मै पास खडा था। उन्होने एक होमियोपैथिक दवाकी पुडिया वनायी, किंतु हिचक गये। बोले—'घर जाकर पुस्तक देख लूँ, तव दवा दूँगा।'

बीमारके भाईने मुझसे कहा। मैने जाकर रोगीको देखा और वही पुडिया उसे दे दी। वह रात्रिमे ही स्वस्थ हो गया। सबेरे भाईजी वडे प्रसन्न मेरे पास आकर बोले—'आप जादू जानते है ? दरवान तो स्नान करके दूध लेने चला गया है।'

मैने कहा—'दवा तो आप भी जानते ही है कि क्या दी जा सकती है।' श्रीभाईजी स्वय होमियोपैथिक चिकित्सा अच्छी जानते थे और औषधे रखते थे। वे हँस गये तो मैने कहा—'लेकिन आपने सावित्रीको दवा नही दी।'

वे बोले—'रोग तो प्रारब्धानुसार जव जाना होगा चला ही जायगा, किंतु मै दवा दे देता या आपसे दिला देता तो घरमे सवके मनमे वहुत दिनोतक रहता कि मैने पैसे वचानेके लिये डाक्टर नही बुलवाया। घरके लोगोका विश्वास डाक्टरी दवामे है।'

सावित्रीको अच्छे होनेमे लगभग बीस दिन लगे, किंतु भाईजीने न स्वय दवा दी और न मुझे देनेको कहा।

(७) वहुत पहलेकी वात है। घरमे लौकीका शाक वना। भाईजीको पहले भोजन करानेको बैठाया गया। उन्होने अचानक कहा—'शाक वहुत अच्छा वना है। मै शाक ही खाऊँगा। सव मुझे दे दो।' लौकीका जितना शाक वना था, सव वे खा गये। भाभीजी (श्री-भाईजीकी धर्मपत्नी) जव उनकी थालीमे भोजन करने बैठी तो देखा जहाँ लौकीका शाक पडा था, वहाँ पडा भात कडवा हो गया था। तव कही पता लगा कि शाक कडवी तूँवीका वन गया था। पूछनेपर भाईजीने पत्नीसे कहा—'मै तो चाहता था कि महाराजिनको दुःख न हो कि मैने विना शाक आज भोजन किया। तुमने वतलाकर मेरा उद्देश्य ही नष्ट कर दिया।'

(८) उन दिनो गीतावाटिकामे विजली नही थी। मै दूर कुटियामे सो गया था। अचानक सावित्रीने आकर जगाया—'वावूजी मानते नही, वे अभीतक जगकर काम कर रहे है। आप उन्हे मना कीजिये।'

मैने घडी देखी तो रात्रिके ग्यारह बजे थे। उठकर कोठीमे छतपर गया तो देखता हूँ कि भाईजी कार्बाइडका बदबूदार लैंप जलाये कागजोको उलटने-पलटने और लिखनेमे लगे है। मैने बिना कुछ कहे लैंप बुझा दिया तो वे चौके। मुझे देखकर बोले—'आप क्यो उठ आये ? दो पृष्ठ ही और लिखने है। सबेरे अवश्य प्रेसको देने है।'

'अब दो अक्षर भी नही। आप उठिये और सो जाइये। मै सबेरे लिख दूंगा।'—मैने तनिक दृढ स्वरमे कहा तो कागजोको समेटते हुए बोले—'अच्छा, मै सोता हूँ। आप जाकर सोइये।'

अपने सहकारियो, सेवको, परिकरो आदि सबके बदले वे स्वय काम करते थे—करते रहे। किसीको किसी प्रकार भी सकोच या दुःख न हो, इसके लिये उनका मन रात-दिन सावधान रहा।

(९) सन् १९५५की बात है। मै कैलास-मानसरोवरकी यात्रा करके लौटा था। थकावटके स्थानपर मनमे उत्साह था। चाहता था कि लगे हाथ मुक्तिनाथ-दामोदरकुण्डकी भी यात्रा हो जाय तो उत्तराखण्डके प्राय सब तीर्थोकी मेरी यात्रा पूरी हो जाय। मैने श्रीभाईजीसे मुक्तिनाथ जानेकी अनुमति माँगी और वह मिल गयी।

सितम्बरके दूसरे सप्ताहसे अक्टूबरतक यात्रा होनी चाहिये थी। यही सबसे उपयुक्त मौसम था। सब तैयारी हो ही चुकी थी। सोचा था कि गोरखपुरसे ऐसी बस पकडेगे कि उसी दिन हवाई जहाज मिल जाय। भैरहवामे रात्रि व्यतीत करके दूसरे दिन पैदल यात्रा प्रारम्भ कर दे।

सामान बाँध लिया गया। बस-अड्डेके लिये रिक्शा बुला लिया गया। अब मै श्रीभाईजी-को प्रणाम करने उनके कमरेमे गया।

श्रीभाईजी गीतावाटिकाके सम्पादन-कार्यालयवाले अपने कमरेमे चटाईपर बैठे थे। कागज देख रहे थे। मैने जाकर प्रणाम किया।

'आप जा रहे है ?' अचानक भाईजीने मुख लटका लिया। उनका स्वर भारी और उदास हो गया। वे बोले—"जाइये। 'कल्याण'के विशेषाङ्क (सत्कथाङ्क)के लिये अभी चित्र निश्चित नही हुए, चित्रकारोको निर्देश नही दिये गये। मै खटूँगा—करूँगा ही किसी प्रकार।"

सर्वथा अकल्पित बात थी। मैने बहुत पहले इस यात्राके सम्बन्धमे उनसे पूछ लिया था। उन्होने प्रसन्न होकर अनुमति दी थी। आवश्यक प्रमाण-पत्र पानेमे सहायता की थी। चित्रोका चुनाव, उनके सम्बन्धमे चित्रकारोको निर्देश श्रीभाईजी ही सदा करते थे। मैने बहुत अल्प सहायता ही इसमे कभी-कभी की थी।

सबसे विशेष बात यह थी कि श्रीभाईजीको इस प्रकार बोलते सुननेका यह मेरे लिये पहला अवसर था। आगे भी कभी मैने उनको इस स्वरमे बोलते नही सुना। मेरे लिये उनका

यह स्वर असह्य था। अत मैने कह दिया—'आप ऐसे क्यो बोलते है? मना करना है तो सीधे मना कर दीजिये।'

इतना सुनते ही उल्लास-भरे स्वरमे पूरे जोरसे श्रीभाईजीने उस समयके सम्पादन-विभागके व्यवस्थापक दुलीचन्दजी दुजारीको पुकारकर कहा—'भाया, रिक्शा लौटा दे। सुदर्शनजी नही जा रहे है।'

अब मेरे कहनेको कुछ रह ही नही गया था। मै चुपचाप उठ आया। रिक्शा लौट गया। विस्तर खोल दिया गया। मनमे कुछ दु ख भी हुआ ही।

दूसरे दिन मै अपने नित्य-कर्मसे निवृत्त हुआ ही था कि श्रीभाईजी मेरे कमरेके द्वारपर आ खडे हुए। बडे उल्लास-भरे स्वरमे बोले—'सुदर्शनजी। बडी दुर्घटना हो गयी।'

'क्या हुआ?' मैने पूछा।

"अभी जिलाधीशका फोन आया था। उन्होने पूछा था कि 'आपके यहाँसे जो मुक्तिनाथ जानेवाले थे, वे कल गये या नही?' मैने कह दिया कि 'नही गये। उन्होने वतलाया कि 'कल जानेवाला हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उसके सब यात्री मर गये'।"

पीछे समाचारपत्रोमे छपा कि आँधी-तूफान और भयानक ओलावृष्टिसे हवाई जहाज तो नष्ट हुआ ही, वह मोटर-मार्गकी सडक भी कई मील टूट गयी। मार्गके पद्रह-बीस दिन पहले खुलनेकी सम्भावना नही रही थी। मुझे उसी हवाई जहाजसे जाना था और श्रीभाईजीने मेरी वह यात्रा—महायात्रा भी रोकी थी।

जिन लोगोने उनको सामने गालियाँ दी, फटकारा, उलटा-सीधा कहा ही नही, लिखकर, नोटिसे छपवाकर बँटवायी, उन सबका भी वे सदा अत्यन्त आदरसे स्वागत करते रहे। उनकी धनसे, मानसे सेवा करते रहे।

सबमे भगवान्—सब रूपोमे भगवान्, यही उनका मुख्य उपदेश, मुख्य प्रेरणा, मुख्य जीवनव्रत था।

स्वय भगवन्मय, जगत्को भगवन्मय देखनेवाले और कर्ममात्रको भगवत्सेवा समझकर करनेवाले ऐसे महापुरुषका मुझे स्नेह-सम्पर्क मिला, यह मेरा वहुत वडा सौभाग्य था।

●

मनुष्यको कर्म करनेका अधिकार प्राप्त है। मनुष्य केवल भोगयोनि नहीं है, कर्मयोनि है। वह अपने कर्मोके द्वारा अपना भविष्य अत्यन्त दुःखमय भी बना सकता है, सुखमय बना सकता है और सत्साधनमें प्रवृत्त हो तो भगवान्‌को—आत्माको भी प्राप्त कर सकता है, जो जीवनका परम लक्ष्य है। इस सिद्धान्तको समझकर जो मनुष्य कर्माधिकारका सदुपयोग करता है, वही बुद्धिमान् है।

—श्रीभाईजी

●

सन्मार्गके प्रेरणादाता

श्रीलालजीरामजी शुक्ल

किसी भी जीवित समाजके लिये यह आवश्यक है कि उसके चिन्तनशील व्यक्ति, जो समाजको बनाये रखना चाहते है, जीवनके स्थायी मूल्योको जनताके सामने बार-बार लावे और उन मूल्योपर विचार करनेके लिये अनेक तरहसे प्रेरणा दे। समाजका आचरण सुदृढ बनानेके लिये इतना ही आवश्यक नही है कि साधारण जनताको धर्म-अधर्मका रूप समझाया जाय, वर उसके लिये यह भी आवश्यक है कि कुछ लोग ऐसे तैयार किये जायँ, जो समाजके मूल्योको अपने जीवनमे चरितार्थ करे।

श्रीपोद्दारजीने इन दोनो उपायोसे हिंदू-समाजकी अनेक प्रकारसे सेवा की। पोद्दारजीने पहला काम तो 'कल्याण'का सम्पादन करके किया और दूसरा काम अनेक धार्मिक सस्थाओकी स्थापना-सचालन करके तथा उनमे जनताकी श्रद्धा बढ़ाकर किया। श्रीपोद्दारजीका पहला काम उसी प्रकारका था, जिस प्रकारका कार्य महात्मा तुलसीदासका था। महात्मा तुलसीदासने सामान्य जनताको जनताकी भाषाका उपयोग करके प्रबुद्ध किया और 'रामचरितमानस' आदि अपने ग्रन्थोद्वारा उनके विचार और आचारको सुधारा।

मै अपने मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक विचारोको जनतातक पहुँचा सका, इसका श्रेय श्रीपोद्दारजीको ही है। उन्होने 'कल्याण'मे मेरे विचार प्रकाशितकर मुझे बडा उत्साहित किया। इतना ही नही, उन्होने 'काशी मनोविज्ञानशाला'के कार्योको आगे बढाया। उनके इस सहयोगके प्रति हम उनके विशेष आभारी है।

श्रीपोद्दारजी 'कल्याण'के माध्यमसे बराबर असत् मार्गके त्याग तथा सन्मार्गके ग्रहणकी प्रेरणा देते रहते थे। मुझे स्मरण है—श्रीपोद्दारजीने अपने एक लेखमे बालकोको गोद लेनेकी वर्तमान परिपाटीसे उत्पन्न होनेवाली पारिवारिक उलझनोके विषयमे लिखा था। गोदियाके सेठ मनोहरभाईने इस लेखको देखा। वे उस समय अपनी जायदादकी रक्षाके लिये एक लडकेको गोद लेना चाहते थे। लेखको पढकर उनके विचार बदल गये और उन्होने अपना सारा धन गरीब बालकोकी शिक्षामे लगानेका निश्चय कर लिया। उन्होने अपनी आधी सम्पत्ति, जो लगभग एक करोडके थी, शिक्षा-कार्य और बालकोकी सेवामे लगा दी।

इस प्रकार 'कल्याण'के द्वारा लाखो लोगोके विचार बदले है और कुमतिकी जगह सुमतिका प्रचार हुआ है। भारतीय सस्कृतिकी भली बातोकी रक्षामे 'कल्याण'का सदा प्रभावकारी स्थान रहा है और आगे भी रहेगा।

पोद्दारजी बडे ही उदार चिन्तक थे। उनका अपना जीवन बडा ही सरल और सादा था। उनकी सादगी उसी प्रकारकी थी, जिस प्रकारकी सादगी महामना पण्डित मालवीयजीकी

थी। जब कोई अतिथि उनके पास आता तो वे बड़े ही प्रेमसे उससे मिलते थे। भारतीय जनतामें धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये उनका व्यक्तित्व उसी प्रकार प्रभावकारी था, जैसा पूज्य मालवीयजीका। दोनो महापुरुषोने जीवनभर जन-शिक्षाका कार्य किया। इसके लिये हम सभी उनके आभारी रहेगे।

●

श्रीभाईजीका आध्यात्मिक साम्यवाद

श्री 'प्रज्ञानन्द' जी

आध्यात्मिक साम्यवादपर श्रीभाईजी अपने व्याख्यानोमे भौतिक साम्यवादकी आलोचना करते समय अपने साम्यवादसम्बन्धी विचारोको प्रकट करते थे। उनका कहना था कि 'अध्यात्म-दृष्टिसे सब कुछ प्रभुमय है और जहाँ प्रभुमय दृष्टि है, वहाँ साम्यभावका साम्राज्य है, कही भी छोटे-बडेके भेदभावकी गन्धमात्र भी नही है। आत्मदृष्टिसे भी सबकी आत्मा एक है, आत्मामे कही वैषम्य नही है। परतु प्रकृतिमे तो वैषम्य रहेगा ही। अतएव प्राकृतिक जीव-जगत्मे साम्य लाना असम्भव है। यह तो सदा ही द्वन्द्वात्मक रहेगा। जैसे प्रकृतिमे द्वन्द्व है—कही दिन है तो कही रात है, कही जल है तो कही स्थल है—इसी प्रकार सुख-दु ख, मान-अपमान, छोटा-बडा आदि द्वन्द्वका अस्तित्व मानव-जीवनमे अनिवार्य है।

वे कहते थे कि 'प्रकृतिमे सत्व-रज और तम—तीन गुण है। इन गुणोके वैषम्यसे ही सृष्टि चलती है। यदि यह वैषम्य मिटकर साम्यावस्था आ जाय तो प्रकृतिका कार्य ठप हो जाय, प्रलय हो जाय, सारी सृष्टिका लोप हो जाय। अतएव बाह्य जीवनमे वैषम्य अनिवार्य है। फलत भौतिक साम्यवादी, जो आत्माके पृथक् अस्तित्वको नही मानता और आधिभौतिक हेतुवादके आधारपर जीवनमे साम्य लानेकी बात करता है, भूल करता है। मानव-जीवनकी प्रगति और स्वरूप वैषम्यपर ही आधारित है, अतएव उसमे वैषम्य रहेगा। कर्मवादके सिद्धान्तके अनुसार भी वैषम्यकी ही पुष्टि होती है। जिसके जैसे प्राक्तन कर्म है, उनके अनुसार ही उसको भोग मिलते है। यही नही, जाति, आयु और भोग—ये तीनो कर्मके ही परिणाम है।'

परंतु इसका अर्थ यह नही है कि मनुष्य प्रारब्धके भरोसे हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा रहे और अपनेको प्रारब्धके ऊपर पूर्णतया छोड दे। पुरुषार्थका भी मानव-जीवनमे महत्त्व है। 'उद्योगिन पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी—उद्योगी पुरुषसिंहके पास लक्ष्मी आती है।' अतएव पुरुषार्थके द्वारा, उद्यम-उद्योग एव साधन-अनुष्ठानके द्वारा मनुष्य वर्त्तमान जीवनको और भावी जीवनको सुखमय बना सकता है।

परतु पुरुषार्थके द्वारा हिंसाका आश्रय लेकर आर्थिक वैषम्यको मिटानेकी चेष्टा, जो कम्युनिस्ट लोग करना चाहते है, कदापि विवेकशील मनुष्यका समर्थन नही प्राप्त कर सकती। फिर उपाय क्या है? क्योकि कम्युनिस्टोके सघर्षका मूल कारण पूँजीवाद है और पूँजीवाद भौतिक

ऐश्वर्यका उत्पादन करके भोग-प्रवणताका प्रसारक है । भोग-प्रवणताकी वृद्धि होनेपर भोगका साधन—अर्थ प्रचुरमात्रामे होना चाहिये । इसी अर्थ-प्रचुरताको सर्वसाधारणके लिये सुलभ बनानेके उद्देश्यसे कम्युनिस्ट सघर्षमे रत होता है । अतएव श्रीभाईजी अर्थोत्पादन-वितरणकी दृष्टिसे पूंजीवादके प्रबल विरोधी थे । वे कहते थे कि 'जीवनका मुख्य ध्येय भोग नही, भगवान् है । पूंजीवाद भोगका प्रचुर साधन तैयार करके मानवको भोगप्रवण तथा भगवद्विमुख कर रहा है ।'

महात्मा गाधी पूँजीवादी अर्थोत्पादनकी प्रक्रियाको 'आसुरी प्रक्रिया' कहते थे । वे मशीनोके द्वारा उत्पन्न वस्तुका उपयोग करनेकी अपेक्षा हाथके द्वारा उत्पादित वस्तुका प्रयोग करनेपर जोर देते थे । इस प्रकार वे पूँजीवादको नियमित करना चाहते थे और पूँजीको व्यक्तिकी सम्पत्ति नही, अपितु ट्रस्टके अधीन रखकर समाजके हितमे उसका नियन्त्रण करना चाहते थे । यही महात्मा गाधीके 'ट्रस्टीवाद'का सिद्धान्त था ।

श्रीभाईजीका और ही विचार था । उनका विचार पूर्णतया शास्त्रोपर आधारित था । वे पूँजीवादके मूलत विरोधी थे, परतु पूँजीवादी उत्पादनके विरोधी न थे । वे इस समस्याका हल धार्मिक आधारपर शास्त्रीय विधिसे करना चाहते थे । इस विषयमे सर्वदा देवर्षि नारदजीके मुँहसे निकले हुए इस श्लोकका वे उल्लेख किया करते थे—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

(श्रीमद्भागवत ७ । १४ । ८)

'जितनेसे पेट भरे, उतनेपर ही मनुष्यका अधिकार है, और अधिकपर प्रभुत्वका जो अभिमान करता है, वह चोर है तथा दण्डका भागी है ।' यदि 'यावद् भ्रियेत जठर' का अर्थ आधुनिक परिवेषमे न्यूनतम आवश्यकता (bare necessity) ले ले तो देवर्षि नारदजीके कथनका अभिप्राय यह होगा कि 'जहॉतक सामान्य जीवन-यात्राकी जरूरतोका सम्बन्ध है, उन्हीकी पूर्तिका मनुष्यको अधिकार है, अतिरिक्तपर अहकार जताना चोरी है ।' अतिरिक्तका सचय ही तो पूँजीवाद है, इसका शास्त्र विरोध करता है । तब फिर शास्त्र इस विषयमे क्या आदेश देता है ? इस प्रश्नका समाधान करते हुए श्रीभाईजी ईशावास्योपनिषद्के पहले मन्त्रका उद्घोष करते थे—

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

'जगतीमे जो कुछ ऐश्वर्यका भोग-भडार है, वह सब ईश्वरके द्वारा आच्छादित है, भगवान् सबपर छाये हुए है, सब कुछ उन्हीका है । इस जगत्मे अपनी कोई वस्तु नही है, सबपर भगवान्का अधिकार है ।' भगवान् दयालु है, देवर्षि नारदजीके समान दण्ड देनेकी बात नही कहते । वे कहते है—'मनुष्यो ! जागतिक ऐश्वर्यका भोग त्यागके द्वारा करो, अर्थात् परस्पर बॉट करके, प्रेमपूर्वक दूसरोको उनका भाग देकर अपने भागका उपभोग करो । बहुतके लिये लालच न करो । क्यो व्यर्थ अपनाना चाहते हो ? यह धन किसका है ? सचमुच मरनेके बाद सब यही रह जाता है, किसीके पल्ले कुछ नही लगता । ऐसी स्थितिमे उदारतापूर्वक बॉटकर

परस्पर प्रेमभावसे अर्जित अर्थका उपभोग करना और सब कुछ भगवान्‌का समझकर सदाके लिये भगवान्‌को अर्पित करना ही श्रेयस्कर है।'

वस्तुत आध्यात्मिक साम्यवाद और भौतिक साम्यवाद परस्पर-विरोधी सिद्धान्त है। दोनोका मूल आधार एक होनेपर भी उनकी मान्यतामे महान् अन्तर है। आध्यात्मिक साम्यवादकी दृष्टिसे जगत्‌का हेतु और परिणाम आध्यात्मिक है। ब्रह्मसूत्रका यह सूत्र—**'जन्माद्यस्य यत.'** इसका प्रमाण है। इस सूत्रमे महर्षि बादरायण कहते है कि "इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय जिससे होते है, वह 'ब्रह्म' है।" अतएव आध्यात्मिक दृष्टिसे जगत् ब्रह्ममय है और ब्रह्ममयी दृष्टिमे वैषम्यका लेश भी नही है। इस दृष्टिमे मुख्य लक्ष्य जगत्, अर्थात् जगत्‌का भोग नही है, बल्कि ब्रह्म या भगवान् मुख्य लक्ष्य है। जीवनमे सुख-शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति भगवद्विमुख होकर जीव कदापि नही कर सकता। श्रीभाईजी जागतिक सुखको 'दु खयोनि' कहा करते थे और प्रमाणमे गीताके इस श्लोकको उद्धृत करते थे—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'हे अर्जुन ! ये इन्द्रियो और विषयोके संस्पर्शसे उत्पन्न जागतिक भोग दु खयोनि है, इनमे दु ख-ही-दु ख है। ये भोग आदि और अन्तवाले अर्थात् क्षणिक है, बुद्धिमान् आदमी इनमे रमण नही करता।' भगवान् बुद्धने भी 'धम्मपद'मे इसी सत्यकी ओर सकेत किया है—

को नु हासो किमानंदो निच्चं पज्जलितो सती।
अंधकारेण ओनद्धा पदीपं नो गवेस्सथ॥

'यह जगत् दु खाग्निसे नित्य प्रज्वलित हो रहा है, यहाँ हास्य कहाँ है ? और आनन्द कहाँ ? अरे ! अन्धकारसे ढके हुए प्रदीपको क्यो नही ढूँढता ?'

परतु जीव मृगतृष्णामे पडा हुआ जगत्‌मे सुख-शान्ति खोजता है। आधिभौतिक साम्यवादी इसको नही मानता, उसका लक्ष्य आधिभौतिक होता है। उसकी दृष्टिमे अध्यात्मका अस्तित्व ही नही है। इसलिये वह सघर्ष, सतत सघर्षके द्वारा जगत्‌को ही अधिकाधिक सुखमय बनानेके सिद्धान्तको अपनाता है। परतु उपर्युक्त गीता और धम्मपदके प्रमाणोसे सिद्ध होता है कि उसकी यह भारी भूल है। अतएव जागतिक सुखसे मुँह मोडकर श्रीभगवान्‌की ओर अभिमुख होना ही श्रेयस्कर है। परतु जागतिक सुखकी ओर जीवकी सहज प्रवृत्ति होती है। भोग-प्रवणताकी सहज प्रवृत्ति ही जीवको पापकर्ममे लगाकर नरक-यात्री बनाती है। इस प्रकारकी चित्तवृत्तिको निरुद्ध करके श्रीभगवान्‌की ओर ल जानेके लिये साधना अपेक्षित होती है और मनुष्यको इस साधनामे यावज्जीवन लगे रहकर अन्त करणकी शुद्धि सम्पादन करनेकी आवश्यकता होती है। अन्त-करणके शुद्ध हो जानेपर मानव जीवनकी कृतार्थताके पथपर आरूढ हो जाता है। अतएव श्रीभगवान्‌ने कहा है—

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

आध्यात्मिक साम्यवादकी इसी सरणिपर निरन्तर आरूढ रहकर श्रीभाईजीने यही पथ ग्रहण करनेके लिये लोगोको जगाया है, इसीके प्रचार-प्रसारमे यावज्जीवन अपनी शक्ति लगायी है। कठोपनिषद्के अनुसार **'इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।'**—'यदि अध्यात्मको समझकर इसे जीवनका लक्ष्य नही वनाया और सहज सासारिक भोगके प्रवाहमे वहते रहे तो समझ लीजिये कि सर्वनाश हो गया, मानवजीवन व्यर्थ चला गया।' अतएव श्रीभाईजी अपने प्रवचनमे बारंवार रामचरितमानसके इस दोहेको उद्धृत करते थे—

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ॥ (अयो०, दो० १८५)

'वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई—सव जल जायँ (श्रीभाईजी जोर देकर कहते थे—सवमे आग लग जाय), जो श्रीरामजीके चरणोके सम्मुख होनेमें हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता नही करते।'

श्रीभाईजी भोग-वाहुल्यके पक्षपाती पूँजीवाद और भौतिक साम्यवाद—दोनोकी भर्त्सना करते थे। पूँजीवाद, जो दिन-प्रतिदिन भोग-विलासकी नयी-नयी सामग्रियोका अम्वार एकत्रित करके जनताको भोगासक्तिमे लिप्त करता जा रहा है, प्राचीन भारतीय सस्कृतिके विनाशमे भौतिक साम्यवादसे पीछे नही है। यही देखकर श्रीभाईजी कहा करते थे—'चारो ओर आग लगी है। समाज विनाशकी ओर जा रहा है।' ऐसी विषम परिस्थितिमे अव उपाय क्या है? लोग जो मोहमे पडकर विनाशके पथपर जा रहे है, उससे बचनेका क्या रास्ता है? श्रीभाईजी रामचरित-मानसके इस दोहेकी ओर साधकका ध्यान आकर्षित करते थे—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥ (उत्तर०, दो० ६१)

'सत्सङ्गके विना हरिकी कथा सुननेको नही मिलती। हरिकथा सुने विना मोह नही भागता और मोहके गये विना श्रीरामचन्द्रजीके चरणोमे दृढ अनुराग नही होता।'—इस दोहेमे रास्ता वतला दिया गया है। श्रीभाईजीने मानवजीवनके साफल्यके लिये एकमात्र भगवन्नामका आश्रय लिया और जगत्के जीवोको भी नामकी साधना करनेका ही उपदेश दिया। वे अपने प्रवचनमे प्राय शास्त्रके इस वचनको दुहराते थे—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

इसी कारण जीवोके प्रति परम कारुणिक, दयार्द्रहृदय श्रीभाईजीने 'कल्याण'के द्वारा 'नामजप-विभाग'की स्थापना करके षोडश-नाम मन्त्र "हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।" का प्रचार किया है तथा 'कल्याण'-पथके पथिकोके सहाय्यतार्थ 'साधक-सघ'की स्थापना की थी। श्रीभाईजी जीवमात्रके कल्याणकी कामनासे स्वय साधनमे रत रहे और उन्होने लोगोको साधन-पथमे लगाया। उनका आध्यात्मिक साम्यवाद कोरा आदर्शवाद नही था, उन्होने इसको अपने जीवनमे व्यवहार्य वनाकर इसकी यथार्थताको सिद्ध कर दिया।

●

उदारमना भाईजी

श्रीचन्द्रदीपजी

श्रीभाईजीके निकट-सम्पर्कमे दो-ढाई वर्ष रहनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मै सम्भवत सन् १९३४के मई-जून मासमे उनके पास गया था। सबसे पहले मुझे उनके व्यक्तिगत पत्रोका उत्तर देनेका कार्य सौपा गया। उनके कार्यका यह विभाग बडा महत्त्वपूर्ण विभाग था। उनके पत्रोको देखनेसे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि उनके व्यक्तित्वका कितना अधिक प्रभाव जन-मानसपर था और किस तरह भारतके अनेक प्रान्तोके लोग जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे उनके पथ-प्रदर्शनकी अपेक्षा रखते थे। उस कार्यकी गम्भीरता, पवित्रता और उत्तरदायित्वका ख्याल करके ही सम्भवत वे चाहे जिससे उस कार्यमे मदद नही लेते थे और पत्र इतने आते थे कि उनका उत्तर देना अकेले उनके लिये सम्भव नही होता था।

इस कार्यको करते हुए मुझे उनके अगाध ज्ञानका थोडा-सा परिचय मिला। वे हिंदी भाषाके अतिरिक्त बॅगला, गुजराती और मराठीपर पूरा अधिकार रखते थे और इन्हे मातृभाषाकी तरह ही पढ-लिख-बोल सकते थे। सस्कृतका भी वे बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। अग्रेजी वे इतनी अच्छी समझते थे कि कभी-कभी 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये अनूदित लेखोमे सशोधनके ऐसे सुझाव देते थे कि अग्रेजीके अच्छे विद्वान् भी चकित रह जाते थे। हिंदी, बॅगला, गुजराती और मराठीमे धार्मिक-आध्यात्मिक पुस्तके कौन-कौन है, कहाॅ-कहाॅसे प्रकाशित है, किस-किसकी लिखी है, उनका कितना मूल्य है और उनमे किस विषयका प्रतिपादन है—यह मानो उनकी जबानपर बराबर रहता था। पूरी गीताको अच्छी तरह कण्ठस्थ कर लेना तो गीताप्रेसके सत्सङ्गियोके लिये एक आम बात थी, पर इसके अलावा श्रीभाईजीको सभी भाषाओके कितने विशेष-विशेष उद्धरण याद थे, इसे देखकर चकित हुए बिना नही रहा जा सकता था। आज भी इसका परिचय हमे उनके प्रकाशित लेखो और भाषणोसे मिल सकता है। यह सब देखकर मुझे ऐसी धारणा हो गयी थी कि अपने विषयका जितना अगाध और विस्तृत ज्ञान श्रीभाईजीको था, उतना शायद ही किसी दूसरे हिंदी-सम्पादकको होता हो, जब कि तथाकथित स्कूली शिक्षा किसी भाषामे भी श्रीभाईजीको प्राप्त नही थी।

उनके पास रहनेपर उनके चरित्रकी एक और विशेषताकी ओर मेरा ध्यान सहज ही खिच गया। देखा, उनकी बातोमे अधिकार प्राकट्य नही होता था। वे अपने सहकर्मियोको प्यार करते थे और सदा उनके साथ प्यारसे ही व्यवहार करते थे। केवल कार्यालयके काम-काजके सम्बन्धमे ही नही, कार्यकर्ताओकी व्यक्तिगत सुख-सुविधापर भी उनका सदा ध्यान रहता था। कब कौन कितना काम करता है, यह वे कभी नही देखते थे। वे अपने कार्यकर्ताओकी ईमानदारीपर विश्वास करते थे और इस कारण उनके साथ रहनेवाले लोग काम भी कम नही करते थे। साधारण-तया हमलोगोका कार्य खा-पी लेनेके बाद दस-साढे दस बजे आरम्भ होता था। उन दिनो टेबल-कुर्सीकी

वहार उनके वगीचेमे नही थी, चटाइयोपर बैठकर, अधिक-से-अधिक साधारण काठकी वनी छोटी-सी डेस्ककी सहायता लेकर काम किया जाता था। हमलोग अपनी-अपनी चटाई विछाकर कार्य करने बैठ जाते। खाने-पीनेकी गर्मी और आबहवाकी गर्मीके कारण आँखे झपकने लगती और प्राय हम सभी लोग थोडी देरके लिये अपनी-अपनी चटाईपर चित हो जाते। श्रीभाईजी छतके ऊपरके एक कमरेमे काम किया करते थे। कभी-कभी जरूरत होनेपर नीचे आते थे। जव भी वे उस समय नीचे आते तो दूरसे ही हमलोगोको सोया देखकर वापस चले जाते। कभी अत्यन्त आवश्यक होता तो चुपकेसे अपना काम करके चले जाते और यदि कोई जग जाता और उठ बैठता तो बडे ही प्रेमसे उसे पूरा विश्राम ले लेनेके लिये कहते और शीघ्र ही वहाँसे चले जाते। उन्होने कभी किसी वातके सिलसिलेमें यह प्रकट नही किया कि उसके कारण कार्यमे किसी प्रकारकी असुविधा हुई या देर हो गयी। वे हमारे जगनेपर ही प्राय नीचे आते और किसीसे कोई काम कराना होता तो उसे कराते।

सन् १९३६के अगस्त-दर्शनपर मै पाडिचेरी आनेकी तैयारी करने लगा। उन दिनो गोरखपुर जिलेमे वडी भयकर वाढ आयी हुई थी और श्रीभाईजी सहायताकार्यमे व्यस्त थे-- रात-दिन उसी कार्यमे उनका सारा समय चला जाता था। उनसे मिलना-जुलना भी सम्भव नही होता था। एक दिन मैने समय पाकर उनसे इतना ही कह दिया कि 'इस वार १५ अगस्तके दर्शन-दिवसपर मै पाडिचेरी जाना चाहता हूँ।' फिर श्रीभाईजीसे मिलनेका मौका ही नही मिला। जिस दिन मै रवाना होने जा रहा था, उसी दिन सबेरे वे मेरे रहनेके स्थानपर आ गये। उन्हे हठात् अपने यहाँ आया देख मैं चकित हो गया और थोडी शर्म भी लगी कि मै ही क्यो नही जाकर मिल आया। मेरे वरामदेमे ही वे खडे हो गये और मेरे कधेपर हाथ रखकर वडे प्रेमसे कहने लगे--'आपने आश्रम जानेकी इच्छा प्रकट की थी, पर फिर कभी मिले ही नही, मुझे भी बाढके कार्यके कारण अवकाश नही मिला कि आपको बुलाकर पूछूँ। आज सुना कि आप रवाना हो रहे है। तो आपने अपने खर्चका क्या प्रबन्ध किया?' मेरा उत्तर सुनकर उन्होने कहा--'नही-नही, इसकी कोई जरूरत नही। खर्चकी कोई वात आपको नही सोचनी है, मैं स्टेशन भिजवा रहा हूँ। आप वापस कब आ रहे है?' मैने कहा--'इच्छा है कि इस बार वही रह जाऊँ। पर अभी मुझे केवल दर्शनकी ही आज्ञा मिली है। वहाँ रहनेकी आज्ञा वहाँ जानेपर माँगूंगा।' उन्होने कहा--'ठीक है। यदि आज्ञा मिल जाय, तव तो कोई प्रश्न ही नही, यदि न मिले तो तुरत मुझे खवर दे दीजियेगा, आवश्यक खर्च भिजवा दिया जायगा। अभी या कभी भी, जव आश्रमसे बाहर आना हो तो आपको और कही जानेकी जरूरत नही, आपके लिये यहाँ वरावर ही जगह खाली रहेगी।'

इस वातपर टिप्पणीकी कोई आवश्यकता नही। वस, इतना यहाँ और जोड दूँ कि गीताप्रेसमे रहते समय मै शायद तीन वार आश्रम आया और हर वार उन्होने वह खर्च अपना खर्च समझा। मुझे न माँगना पडा और न उसकी चिन्ता करनी पडी। इसका मूल्य उस समय वहुत अधिक वढ जाता है, जव कि कोई अन्य सम्प्रदाय और अन्य साधना-मार्गसे सम्वन्ध रखता हो। यह वात उनकी धार्मिक और हार्दिक उदारताकी ओर स्पष्ट ही सकेत करती है। वहाँ रहते

हुए भी मैने स्पष्ट देखा कि हिंदू-धर्मके प्राय सभी सम्प्रदायो और साधना-मार्गोके प्रति उनका वडा आदर-भाव था और सभी सम्प्रदायो और मार्गोके विद्वानो और साधकोकी वे खुले दिलसे सेवा किया करते थे।

केवल विद्वानो तथा साधकोके लिये ही नही, वर सभी दु खी एव अभावग्रस्त व्यक्तियोंके प्रति उनमे अगाध करुणा थी और सवके कप्टोमे वे हाथ बँटानेकी कोशिश करते थे। ऐसे लोग प्राय ही गीताप्रेसके वगीचेमे आया करते थे और दो-एक दिन मेहमान रहकर तथा यथासम्भव सहायता लेकर चले जाया करते थे। एकाध तो ऐसे भी देखे गये, जो अपने सभी कप्टो और अभावोके समय वरावर आया करते थे और हर वार एक-सा ही दयापूर्ण व्यवहार पाया करते थे। इस दयामे भी श्रीभाईजीकी एक विशेषता थी। यह तो हम जानते ही है कि सारी दुनिया-की सम्पत्ति उनके ही हाथोमे नही थी और इसलिये वे चाहे जिसको मुँह-माँगा दान नही दे सकते थे। पर इस देनेमे उनका भाव वड़ा विशाल और अनोखा रहता था, वे अपनी शक्तिको अपने ध्यानमे नही रखते थे, वल्कि माँगनेवालेकी आवश्यकताको अपने ध्यानमे विशेषरूपसे रखते थे। किसीके लिये कुछ करते रहनेसे वे कभी ऊवते नही थे। यह उन्हे ख्याल ही नही होता था कि मैने वहुत कर दिया, अव करना वेकार है या अनुचित है। कई उदाहरण हमने उनसे वातचीतके सिलसिलेमे सुने है और देखे भी है, जिनमे दूसरा कोई भी व्यक्ति ऊवे विना न रहता, पर वे हँसते हुए और पूरी सहानुभूतिके साथ माँगे पूरी करते रहते। एक उदाहरण शायद पर्याप्त होगा, जो महात्माओके विषयमे चर्चा करते हुए स्वय उन्होने वताया था। एक महात्मा वम्वईमे उनके पास आया करते और कुछ दिन उनके यहाँ ठहरा करते थे। उन महात्माका मन शायद वडा अस्थिर था या विचित्र ढगका था। वे सुवह कहते कि आज हलुवा खानेकी वडी इच्छा है, हलुवा वनवाओ। फरमाइश अदर घरमे चली जाती, हलुवा वनकर तैयार भी हो जाता। पर उधर खानेके समयसे थोडी देर पहले महात्माजी बोल उठते—'भई हनुमान! हलुवा नही, खीर वनवा दो तो अच्छा।' एक मुस्कानके साथ तुरत हुक्म जारी होता कि महात्माजीके लिये खीर तैयार की जाय। घरमे खलवली मच जाती, पर अन्तमे खीरकी तैयारी भी हो जाती। परतु महात्माजीका मन तो अपना ठहरा नही, चौकेमे किसी दिन कुछ खा लेते तो किसी दिन कुछ और किसी दिन तो विना कुछ खाये ही न जाने कहाँ काफूर हो जाते। यह अनुभव दो-चार वार नही, शायद अनगिनत वार, महीनो होता रहा। गीताप्रेसमे भी हमलोगोके सामने कई ऐसे उदाहरण आये, जिनमे किसी भी दूसरेके धैर्यकी बुरी तरह परीक्षा हो जाती, पर श्रीभाईजी सदा प्रसन्नमुद्रामे **'पद्मपत्रमिवाम्भसा'** ही वने रहते, उन्हे कोई शिकायत नही रहती।

एक उदाहरण हमने श्रीभाईजीके वगीचेमे और देखा, जो केवल थोडे-से पैसो एव परिश्रम-को ही चुनौती देनेवाला नही था, वल्कि मानवीय स्वभाव और चरित्रके वहुत-से तत्त्वोको एक साथ चुनौती देनेवाला तथा प्रचण्ड झञ्झाकी तरह झकझोर देनेवाला था। उन दिनो वहाँ महाराष्ट्र प्रान्तके एक सन्यासी रहते थे। सुना था कि वे हिमालयमे कही तपस्या करते थे, पर गीता-रामायणके प्रचारके कार्यमे सहयोग देनेके लिये वहाँ आ गये है। पर दैव-विधानसे उनका मस्तिष्क

विकृत हो गया और वे अवाञ्छनीय चेष्टाएँ करने लगे। पीछे वे लोगोंको मारने-पीटने लगे। पर श्रीभाईजी सब सहन करते थे। एक दिन वे श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'पर, जो उस समय वहाँ कार्य करते थे, टूट पडे। हमलोगोने अपनी जान खतरेमे डालकर उन्हे बचाया, अन्यथा न जाने माधवजीपर क्या बीतती। शोर-गुल शान्त नही हुआ था कि किसीने दौडकर श्रीभाईजी-को इसकी सूचना दे दी। श्रीभाईजी तत्काल वहाँ आ उपस्थित हुए और उन्होने संन्यासीका हाथ पकडकर उन्हे अपने पास बिठा लिया। उनके आते ही सन्यासी बहुत कुछ शान्त हो गये। ऐसा लगा कि श्रीभाईजीके प्रति उनके मनमे बडा आदर-भाव था। वे उस विक्षिप्तावस्थामे भी एक अपराधीकी भाँति सिर झुकाकर श्रीभाईजीके सामने बैठ गये। श्रीभाईजीका सयम, सहन-शीलता, प्रेमपूर्ण उलाहनेका ढग—सब कुछ बडा अनोखा था। उन्होने संन्यासीको समझाकर कश्मीर चले जानेके लिये राजी कर लिया और सम्भवत. उसी दिन किसी समय उन्हे रवाना कर दिया गया। जबतक मैं वहाँ था, तबतक उन्हे नियमित डेढ सौ रुपया महीना (वह जमाना आजकी अपेक्षा बहुत सस्ता था) खर्च भेजा जाता था। भाईजी बराबर उन्हे पत्र लिखा करते थे और उनका समाचार मँगाते रहते थे। एक संघर्षशील आत्माके प्रति श्रीभाईजीका यह स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ।

श्रीभाईजी सदा पूर्ण जागरूक थे कि धार्मिक-आध्यात्मिक जगत्‌मे कहाँ क्या हो रहा है, उसका क्या प्रभाव जन-समाजपर पड सकता है और इस विषयमे उनका अपना क्या कर्त्तव्य है? 'कल्याण'के माध्यमसे वे अपने विचार बराबर व्यक्त करते रहे। जो भाईजी युवावस्थामे क्रान्तिकारी आन्दोलनके साथ थे, वे पीछे एक प्रबल आध्यात्मिक आन्दोलनके सूत्रधार बन गये। हिंदूधर्म एव संस्कृतिमे उनकी आस्था अटूट और गम्भीर थी तथा उनकी रक्षामे ही उन्होने अपना सारा जीवन होम दिया। उनकी स्मृति हिंदूजातिके हृदयमे सदा जाग्रत् रहेगी।

●

महात्माओंमें अद्‌भुत प्रभाव होता है। उनके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालापसे पापोंका नाश और दुर्गुण-दुराचारोंका अभाव होकर सद्‌गुण-सदाचार आ जाते हैं। अज्ञानका नाश होकर हृदयमें ज्ञान आ जाता है, जिससे हमें सहज ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

मनुष्यके व्यवहारमे—मानव-जीवनमें एक बात अवश्य आ जानी चाहिये। वह यह कि अपने पास विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति, भूमि, भवन, तन, मन, इन्द्रिय जो कुछ हैं, उनसे जहाँ-जहाँ अभावकी पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ उन्हें लगाता रहे, यही पुण्य है—सत्कर्म है। पर जहाँ स्वयं संग्रह करनेकी प्रवृत्ति होती है, इकट्ठा करके मालिकी बनानेकी आकाङ्क्षा रहती है, संसारकी वस्तुओंको एकत्र करके उन्हें मेरा बना लेनेकी वृत्ति, इच्छा या चेष्टा होती है, वहाँ पाप है। अपरिग्रह पुण्य है और परिग्रह पाप है।

—श्रीभाईजी

●

दक्षिणभारतकी तीर्थयात्रामें

श्रीयुत शा० रा० शारगपाणि

सन् १९५६मे मै 'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचारसभा'के मुखपत्र 'हिंदी-प्रचार-समाचार'का सह-सम्पादक था। उस वर्ष श्रीपोद्दारजी ६०० स्त्री-पुरुषोंके साथ सम्पूर्ण भारतके तीर्थोंकी यात्रापर निकले थे। जव वे दक्षिणभारत पहुँचे, तव मुझे उनके साथ दुभाषिया वनकर रहनेके लिये कहा गया। मैंने इसे अपना सौभाग्य माना। मैं गीताप्रेस और 'कल्याण' पत्रका वडा प्रेमी था। मैंने सोचा, इस निमित्तसे कुछ अच्छे साहित्यिक एवं धार्मिक पत्रकारोके साथ मैं भी कुछ तीर्थोंकी यात्रा तथा दिव्य देवालयोके दर्शन कर सकूँगा। परंतु जव मै तिरुपति जाकर उस यात्री-दलके नेतागणसे मिला, तव देखा—वे साहित्यिक एव धार्मिक पत्रकारमात्र नही थे, वे तो स्वय साधु, सत, तपस्वी तथा मनस्वी थे। उनके प्रति मेरे मनमे प्रेम, आदर एव श्रद्धाके भाव सहज ही उत्पन्न होने लगे और शीघ्र ही वढने लगे। उनके साथ चलनेमे, उनकी वार्ता सुननेमे और उनकी सेवा करनेमे मुझे परम आनन्दका अनुभव होने लगा। हाँ, यशस्वी 'कल्याण'के तपस्वी सम्पादक एव स्थित-प्रज्ञ सत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके पवित्र स्मरणसे मुझे आज भी आनन्द ही नही, कुछ अभिमान भी अवश्य होता है।

श्रद्धेय भाईजीके नेतृत्वमे मुझे तीर्थयात्रियोके साथ तिरुपति, कालहस्ती, काञ्चीपुरम्, तिरुवण्णामलै, श्रीरगम्, तिरुचिरापल्ली, मदुरै, रामेश्वरम्, श्रीविल्लिपुत्तूर, तेन्काशी, तिरुनेल्वेलि, आळवार-तिरुनगरी, तिरुवनतपुरम् आदि अनेक दिव्य-क्षेत्रोमे सेवार्थी एव दुभाषिया वनकर जानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसे मै अपने जीवनका दुर्लभ तथा महत्त्वपूर्ण अवसर मानता हूँ। उन दिनो भाईजीके निकटस्थ सेवकके नाते साथ रहकर उनके पवित्र आचार-विचारसे, स्तुत्य स्नेह-सौलभ्यसे, विस्मय कारी व्याख्यान-प्रवचनोसे मै अत्यन्त प्रभावित तथा लाभान्वित हुआ।

छोटी-छोटी घटनाओका वर्णन और प्रसङ्गोका विश्लेषण करनेका भाईजीका ढग अनोखा होता था। एक उदाहरण लीजिये—तिरुपतिसे भाईजी हमे तिरुमलै ले जा रहे थे। समय और शारीरिक शक्तिका ख्याल करके हम पैदल नही, वस या कारसे ही जा रहे थे। यात्री-दलके सव सदस्योको पहले वसोमे आरामसे वैठानेके वाद ही भाईजी अपनी गाडीमे बैठे। वसे एक-एक करके चलने लगी। कार आगे-आगे जा रही थी और वसे पीछे-पीछे। थोडी दूर वढनेपर हम उस चौकपर पहुँचे, जहाँसे पहाडपर पदयात्रियोके चढनेके लिये सीढियोका रास्ता निकलता है। भाईजीने वहाँ जाते ही गाडियाँ जरा रोकी। सव तीर्थयात्री उतर गये। भक्तिमय भावुकताके साथ भाईजीने यात्रियोको समझाया—"यहाँकी कुछ विशेषता है। यहाँ भगवान्‌के अर्चावतारके समान ही उनका विभवावतार भी महत्त्वपूर्ण एव पूज्य माना जाता है। यह 'शेषशैल', जो वास्तवमे सात पहाडियोका एक समूह है, आदिशेषका स्वरूप माना जाता है। यहाँ भगवान्‌को 'शेषशैल-

शिखामणि' कहते हैं। श्रीरामानुजाचार्य स्वामीने इस पवित्र पर्वतपर पैर रखकर चढना अनुचित समझा और इसलिये अपने घुटनो और हथेलियोपर कपड़े लपेटकर उन्हींके बल चढकर मन्दिर पहुँचे। लेकिन हाय! आज हम अशक्त है, विवश है।" इतना कहकर थोडी देरके लिये वे आँखे मूँदकर ध्यानस्थ हो गये। फिर उन्होने शेषाद्रिकी ओर दण्डवत् प्रणाम किया और वहाँकी धूलि सिरपर लगा ली। उनकी देखा-देखी दूसरोने भी भाव-विभोर होकर शेषाद्रिको प्रणाम किया।

प्रतिदिन सुवह-शाम भजन-कीर्तनका क्रम नियमित रूपसे चलता था। पहले श्रीगोस्वामीजी अपने सुरीले कण्ठसे सूरदास या तुलसीदासका कोई पद गाते और वादमे दूसरे लोग करतालके साथ उनका अनुसरण करते थे। सब लोग आँखे मूँदकर एक स्वरसे और तालवद्ध रीतिसे जव भजन-कीर्त्तन करते, तब आस-पासके दर्शक और श्रोता भी भक्ति-भावसे झूम जाते थे। कीर्तनके वाद श्रीभाईजीका प्रवचन अक्सर प्रसङ्गोचित तथा तीर्थोचित रीतिसे परिचयात्मक तथा उद्वोधक होता था। कही-कही स्थानीय भक्त-प्रेमियोद्वारा स्वागतार्थ आयोजित सभा-समारोहोमे ही भजन-कीर्तन और प्रवचनका कार्यक्रम भी शामिल हो जाता था।

इस प्रकार भक्ति और सदाचार-विषयक प्रवचनोके अलावा तिरुवण्णामलै, श्रीरगम्, मदुरै, रामेश्वरम्, श्रीविल्लिपुत्तूर आदि तीर्थोमे उनके जो प्रवचन हुए थे, वे साहित्यिक, सास्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। तिरुवण्णामलैमे उन्होने रमणाश्रम और रमण महर्षिका उल्लेख करते हुए समझाया कि मानव वैराग्य तथा सतत साधनाद्वारा किस प्रकार अतिमानव वन जाता है। श्रीरगम्मे प्रवचन करते समय वैष्णव भक्ति-आन्दोलन और उसके आलवारो एव आचार्योका सुन्दर सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया। रामेश्वरम्के प्रवचनमे भारतके सास्कृतिक एवं राष्ट्रीय एकात्म-भावके सवर्द्धनमे रामेश्वरम्-जैसे तीर्थस्थानोका महत्त्व वतलाया। आण्डालके दिव्यक्षेत्र श्रीविल्लिपुत्तूरके भाषणमे आण्डाल और मीराँकी माधुर्य-भक्तिका परिचय देते हुए भक्तिमे निष्काम-प्रेमकी विशिष्टता वतलायी।

मदुरैके श्रीमीनाक्षी-मन्दिरमे आयोजित स्वागत-सभाका कार्यक्रम वहुत रोचक रहा। स्थानीय भक्त-प्रेमियोने तमिल, सस्कृत और सौराष्ट्र भाषाके भजन सुनाये और भाईजीकी धार्मिक सेवाओकी प्रशंसा करते हुए उनको बहुत वडी माला पहनायी और सम्मानपत्र पढकर समर्पित किया। स्थानीय भक्त-प्रेमी उस समय वहुत प्रसन्न दीखते थे, परतु श्रीभाईजी वहुत गम्भीर और चिन्तित रहे। अपने भाषणमे उन्होने नाजुक ढगसे समझाया कि 'व्यक्तियोके नाम-रूपकी प्रगसा करना और माला पहनाकर उनका गुणगान करना ठीक नही है, उससे किसीकी भलाई नही होती। भजन-कीर्तन, पूजन एव भोग आदि सव उपचार भगवान्के दिव्य नाम-रूपको लेकर होने चाहिये।' श्रीभाईजीकी उस असाधारण सरलता एव दीनताको देखकर सव लोग चकित रह गये। तभी मै भी समझ सका कि श्रीभाईजी क्यो सव जगह भक्त-प्रेमियोके आग्रहके वावजूद फोटोके कार्यक्रमोसे वचते ही रहे।

'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचार सभा'के भवनमे आयोजित स्वागत-समारोहमे सभाके तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्रीसत्यनारायणने श्रद्धेय भाईजी और अन्य तीर्थयात्रियोका सादर स्वागत करते

हुए हर्ष प्रकट किया कि 'यात्रीदलके आगमनसे दक्षिणमे भक्ति-आन्दोलनको ही नही, किंतु हिंदी-प्रचार-आन्दोलनको भी वहुत वल मिला है।' भाईजीने अपने भाषणमे सभाके कार्यपर सतोष प्रकट करते हुए सभा और सभाके प्रचारकोकी सेवा-सहायताके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

स्वय उच्चकोटिके विद्वान् तथा प्रभावकारी वक्ता होते हुए भी भाईजी उनके स्वागतके लिये आये हुए स्थानीय वेदपाठी पण्डितो, शास्त्रज्ञो और भागवतोके सामने सविनय नत-मस्तक होकर उनको प्रणाम करते, उनका शुद्ध-सस्वर वेदपाठ सुनकर अत्यन्त हर्षित होते और फल-फूल-दक्षिणा देकर उनका खूव सम्मान करते थे। विभिन्न केन्द्रोमे स्थित 'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचार सभा'के प्रचारक अपने-अपने छात्रोसहित तीर्थयात्रीदलके स्वागतार्थ आते थे। श्रीभाईजी उन सभीसे वडे प्रेमसे वाते करते और गीताप्रेसके कई उत्तम ग्रन्थ भेट देकर भेजते थे। प्रचारकगण भाईजीकी दानशीलता, हिंदी-प्रेम, धार्मिकता और सरलतासे वहुत प्रभावित होकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेमे एक-दूसरेसे होड लगाते थे।

मै तो चुपचाप यह देखकर दग रह जाता और ऐसे सत-महात्माओकी सेवा-सहायता करनेके अपने सौभाग्यपर खुश रहता था। मद्रासमे विजयवाडाके लिये उनको विदा करने जव मै मद्रास सेट्रल स्टेशन गया, तव श्रीभाईजीने वडी कृतज्ञता प्रकट की।

गीताप्रेसके उन्नायक, 'कल्याण'के सम्पादक, रामचरितमानसके टीकाकार और कितने ही अमूल्य भक्ति-ग्रन्थोके रचयिताके रूपमे श्रीभाईजीने धार्मिक और साहित्यिक क्षेत्रोमे अपनी अमिट छाप छोडी है, करोडो भक्तोके हृदयोमे अपने लिये एक महोन्नत एव स्थायी स्थान अर्जित कर लिया है। स्थूल रूपसे भाईजी आज भले ही अदृश्य एव दूर हो गये हो, लेकिन सूक्ष्म रूपसे वे सदैव हमारे पास और हमारे चिन्तन एव स्मरणमे ही रहेगे। परमात्मा करे कि श्रीराधा-माधवकी नित्यलीलामे उन सत-महात्माके हम योग्य अनुयायी सिद्ध हो।

●

किसी गरीवके सामने गर्वभरी वाणी वोलना, उसके साथ रूखा और कठोर व्यवहार करना भगवान्का अपराध है; क्योकि उस गरीवके रूपमें भगवान् ही तुम्हारे सामने प्रकट हैं। अतएव सभीके साथ नम्र होकर मधुर वाणी वोलो; अपनी विनय-विनम्र पीयूषवर्षी वाणी तथा व्यवहारके द्वारा सर्वत्र शीतल मधुर-सुधाकी धारा वहा दो; दुःखकी विष-ज्वालासे जलते हुए हृदयोमे सुधा ढालकर उन्हें विषशून्य, शीतल, शान्त और मधुर वना दो और यह सव करो केवल भगवान्की सेवाके लिये और करो सव कुछ उन्हींकी शक्ति, प्रेरणा और वस्तु मानकर। तुम्हारी निरभिमान त्यागमयी सेवासे भगवान् वड़े प्रसन्न होंगे और उनकी प्रसन्नता तुम्हारे जीवनको परम सफल वना देगी।

—श्रीभाईजी

●

कर्मयोगी पोद्दारजी

श्री र० शौरिराजन्

महामानव श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके इहलीला-संवरणसे मुझ-जैसे हिंदी-सेवी, संस्कृति-सेवक और भारतीयताके प्रेमी कितने दु:खी हुए——कहनेकी आवश्यकता नही ।

मेरा उनके साथ परोक्षत परिचय सन् १९४८से है । मै तत्काल तजौर जिलेके तिरुवैयारु-मे स्थित 'महाराजा सस्कृत कालेज'मे 'तर्कशिरोमणि'की उच्च कक्षामे पढ रहा था । स्वाध्यायसे थोडी हिंदी सीख गया था । हिंदी सीखनेकी अभिरुचि मुझ-जैसे शत-शत छात्रोके मनमे जगायी गीताप्रेसकी छोटी-छोटी ज्ञानवर्धक पुस्तिकाओने । 'हिंदू-सस्कृतिका स्वरूप', 'उपनिषदोके चौदह रत्न', 'सचित्र सक्षिप्त भक्त-चरित्र-माला'के दशाधिक प्रकाशन, 'कल्याण'के वार्षिक विशेषाङ्क आदि उपादेय प्रकाशन हमे नूतन दिशा-दर्शन देते रहे ।

श्रीपोद्दारजीकी उत्तम पुस्तक 'हिंदू-सस्कृतिका स्वरूप'का तमिलमे अनुवाद करनेका परम सौभाग्य मुझे १९५६मे मिला, साथ ही, कुछ अन्य पुस्तकोका भी, जो पोद्दारजीकी लिखी थी । ये तमिल अनुवाद 'दक्षिणभारत हिंदी-प्रचारसभा'के प्रेसमे छपे थे । जब श्रीपोद्दारजी दक्षिण-भारतके तीर्थोकी यात्राके लिये पधारे, तब ये पुस्तके लोगोको नि:शुल्क वितरित की गयी । मैने कई विद्वानो एव सामान्य व्यक्तियोके मुँहसे सुना——"ऐसी पुस्तकोके द्वारा ही हमारी गरिमा-पूर्ण हिंदू-सस्कृतिका युगानुकूल प्रचार-प्रसार हो सकता है । गीताप्रेसवाले वडी ही श्लाघ्य सेवा कर रहे है । यदि श्रीपोद्दार-जैसे एक भी विद्वान् तथा त्यागमूर्ति प्रत्येक भारतीय भाषामे रहते तो भारतका उत्थान सुसाध्य हो जाता ।"

पोद्दारजी परम शान्त, सात्विक, समदर्शी एव उदारमना थे । उनकी स्मृतिके साथ ही मुझे यह सार्थक पक्ति उन्हीकी परिचायिकाके रूपमे स्मरण आ जाती है——

'अखिलं विदुषामनाविलं सुहृदा स्वहृदा च पश्यताम् ।'

'अच्छे हृदयसे और अपने हृदयसे देखने-परखनेवाले विद्वानोके लिये ससारमे सव कुछ अकलङ्क या स्वच्छ दिखायी देता है ।'

क्या साहित्यिक क्षेत्र, क्या सास्कृतिक-धार्मिक क्षेत्र, क्या राष्ट्रीय नवनिर्माणका क्षेत्र, किसी भी क्षेत्रमे समूचे भारतके वे आदर्श 'भाईजी' थे । 'कल्याण'द्वारा लोककल्याणकारी थे । सत्सङ्ग-प्रवर्तक वनकर कुसगतियोके सर्वग्रासी सक्रामक-रोगोसे भारतीय प्रजाको वचाते रहे । 'भाईजी'का वियोग भारतके लिये अपूरणीय क्षति है ।

●

सार्थक था उनका जीवन

श्रीराधाकृष्णजी

परमवन्द्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका मै दर्शन नही कर पाया, परतु मेरी मान्यता है कि जिस प्रकार तुलसीदास जगत्मे रामनाम वितरण करनेके लिये आये थे, उसी प्रकार इस बीसवी शताब्दीकी अनास्थाके अन्धकारमे भाईजी अध्यात्म और भक्तिभावके प्रचारके लिये आये थे। उनकी तुलना चैतन्य, कबीर, नानक आदि महापुरुषोके साथ की जा सकती है, जिन्होने युग-प्रवाहको मोड दिया था और भाव-भक्ति तथा ज्ञान-वैराग्यकी धारा वहा दी थी।

सन् १९३० या ३१मे मैने उनके पास कुछ लेख भेजे थे, जिन्हे उन्होने कृपापूर्वक 'कल्याण'-में प्रकाशित किया था और आगे लिखनेके लिये प्रोत्साहन भी दिया था। इसके सिवा मेरा उनके साथ किसी प्रकारका सम्वन्ध नही हो पाया।

१९४०मे मै कलकत्ता चला गया। वहाँ मुझे 'मारवाडी रिलीफ सोसाइटी'की स्वर्ण-जयन्तीके उपलक्ष्यमे प्रकाशित होनेवाली 'स्मारिका'मे सहयोग करनेका कार्य प्राप्त हुआ। सस्थाके इतिहास-लेखनकी सामग्री जुटानेके सदर्भमे मै मारवाडी समाजके कुछ पुराने कार्यकर्त्ताओसे मिला, जिनका सोसाइटीकी स्थापनामे हाथ था। सोसाइटीके प्रथम मन्त्री थे—श्रीओकारमलजी सराफ। मै उनसे मिलने गया। प्रथम भेटमे ही मै उनके आकर्षक व्यक्तित्व और असाधारण स्मरणशक्तिसे प्रभावित हो गया। सयोगवश श्रीओकारमलजी श्रीपोद्दारजीके वचपनके साथी तथा अभिन्न मित्र थे। प्रसङ्गवश उनसे मुझे श्रीपोद्दारजीकी जीवन-कथाकी कुछ महत्वपूर्ण जानकारी हुई। श्री-सराफजीने वताया कि जव पोद्दारजी कलकत्ते आये थे, तव उनकी अवस्था वहुत छोटी थी, पर वे अपने वारेमे भी जितना नही सोचते थे, उससे अधिक वे देशके वारेमे सोचा करते थे। वङ्ग-भङ्गके फलस्वरूप प्रारम्भ हुआ स्वदेशी-आन्दोलन उन्हे प्रेरणा और वल देता था। उन दिनो वावूराव विष्णु पराडकरजी कलकत्तेमे ही रहते थे, जिन्होने आगे चलकर काशीके 'आज' और 'ससार'के सम्पादनद्वारा हिंदी-पत्रकारिताका कीर्तिमान स्थापित किया था। उन दिनो वगाली क्रान्तिकारी गीतासे प्रेरणा लेते थे और मातृभूमिके लिये अपना जीवन होम करनेके लिये तैयार रहते थे। वगाली क्रान्तिकारियोके पास श्यामाचरण लाहिडीकी टीकावाली गीता रहती थी। हिंदी-भाषी क्रान्तिकारियोके लिये पराडकरजीने गीताकी टीका की थी, जो प्रकाशित होकर सुलभ हुई। उसके मुखपृष्ठपर सिहवाहिनी भारतमाताकी छवि अङ्कित थी। कहा जाता है कि उस गीताको छपवानेमें हनुमानप्रसादजी पोद्दारका प्रमुख हाथ था। उसी गीताको हाथमे लेकर कलकत्तेके कतिपय नवयुवक क्रान्तिके कार्यमे प्रवृत्त हुए। उनके साथ कई मारवाडी युवक थे, जो वगाल तथा भारतकी समस्याको एक समझते थे और विप्लवके द्वारा देशका उद्धार करना चाहते थे।

स्वदेशीका आन्दोलन भी तीव्र गतिसे चल रहा था। इसमे सहयोग देनेकी भावनासे श्रीपोद्दारजीने 'स्वदेशी वस्तु भंडार' भी खोल रखा था, जिसका काम श्रीनागरमल मोदी देखते थे। नागरमल मोदीसे मिलनेपर उन्होने वतलाया था कि 'स्वदेशी वस्तु भंडार'का काम हमलोग वडी श्रद्धा और परिश्रमके साथ करते थे। वहाँ विकनेवाली प्रत्येक चीज स्वदेशी ही नही, शुद्ध भी रहती थी। शुद्ध घीसे लेकर शुद्ध शहद और शुद्ध खादीके वस्त्र वहाँ मिलते थे। यज्ञ और हवनकी सामग्री भी वहाँ शुद्ध मिलती और उचित मूल्यपर प्राप्त होती थी। हनुमानप्रसादजी पोद्दार लगनवाले और श्रद्धालु व्यक्ति थे। उनके भीतर देशप्रेमकी आग धधकती रहती थी। देशको स्वतन्त्र वनानेकी तडप जैसी उनमे थी, वैसी आग वहुत कम लोगोमे देखी गयी। नागरमलजीने निर्विकार भावसे सक्षेपमे वतलाते हुए कहा, "हनुमानप्रसादजी पोद्दारकी तरहका लगनवाला व्यक्ति मैने दूसरा नही पाया।' इधर क्रान्तिकार्य जोर पकड रहा था। सरकार इसे सहन न कर सकी। उसने दमनचक्र चलाया। लोग पकडे गये, जिनमे श्रीपोद्दारजी भी थे। कुछ कार्यकर्ता पलायन कर गये, कुछके घरवालोने अपने परिवारके व्यक्तियोके विरुद्ध समस्त प्रमाण पुलिसके रेकर्डसे निश्चिह्न करा दिये। उस समयकी गिरफ्तारियोका आधार भी वडा विचित्र था। जिनके पास भी पराडकरजीकी टीकावाली गीता मिलती, उसे बेखटके गिरफ्तार कर लिया जाता, मानो गीता रखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति सशस्त्र क्रान्तिकारी हो। फल हुआ कि लोग भयभीत हो गये और उन्होने गीताकी पोथियोको जलाकर ही निष्कृति पायी। गीता जलाये जानेके समाचारने पोद्दारजीको जेलमे क्षुब्ध कर दिया, 'यह क्या बात है, लोग गीता-जैसी पोथीको भी जला बैठे।' उसी समय उनके मनमे आया कि 'यदि समय और सुयोग मिला तो किसी समय गीताकी पोथी घर-घर उपलब्ध करा दूँगा।' समय आया और सुयोग मिला। उन्होने अपना सपना पूरा होते हुए देखा और उत्तर भारतमे उन्होने सर्वत्र घर-घरमे गीताकी पोथी उपलब्ध करा दी।"

धराधाममे उन्होने अपने कर्तव्यका पालन किया और चले गये। उनके लिये दुख होता है, मगर एक दिन सवको जाना ही है। जो आया है, वह जायेगा ही। कोई अनाम मर जाता है, कोई अन्धकारमे निमज्जित हो अपना प्राण-त्याग करता है। उन्होने तो अन्धकारको भेदकर प्रकाश उतारा था और भगीरथकी तरह गङ्गाको राह दी थी। कुछ लोग कहते हैं कि 'श्रीपोद्दार-जीने शास्त्रोकी वाते ही तो कही है, उन्होने मौलिक क्या दिया ?' वे लोग भूल जाते हैं कि हमारे वेदके मन्त्र प्रकट करनेवाले ऋषि भी उन मन्त्रोके स्रष्टा नही, द्रष्टा कहे जाते हैं। पोद्दार-जीने धर्म, निष्ठा, भाव, भक्ति, ज्ञान, अध्यात्मको सर्वसुलभ कर दिया, यह क्या कम है ? भारतमे जवतक भाव और भक्ति, भजन और पूजन, ज्ञान और वैराग्यकी धाराएँ वहती रहेगी, तवतक श्रीपोद्दारजी श्रद्धा और आदरके साथ स्मरण किये जायँगे।

●

विशिष्ट विभूति

याज्ञिकसम्राट् पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य

भारतकी जिन विशिष्ट विभूतियोने सद्गुणोसे अपने उपदेशका महत्त्व संवर्द्धित किया है, उनमे भगवद्भक्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका नाम सदा अमर रहेगा।

श्रीपोद्दारजी वस्तुत भारतवर्षकी विशिष्ट विभूति थे, जिन्होने अपनी विविध विशेषताओके कारण विश्वभरमे भारतका यश समुज्ज्वल किया है।

विशिष्ट विभूतियोमे जो त्याग, तपस्या, लोकोपकारभावना, समदर्शिता, सहिष्णुता, सुजनता, निरभिमानता, ईश्वर-परायणता आदि सद्गुण होते हैं, वे सभी सद्गुण श्रीपोद्दारजीमे पूर्णतया अनुस्यूत थे।

श्रीपोद्दारजीमे लोकोत्तर ईश्वरीय सद्गुण थे, जिनके कारण वे गृहस्थ होते हुए भी आदर्श सत-महात्माके रूपमे पूज्य थे। उनका देशभरमे बडा सम्मान था। देशके प्राय सभी सत-महत, विद्वान्-नेता, धनी-मानी, सेठ-साहूकार उनका विशेष आदर करते थे।

श्रीपोद्दारजीका समग्र जीवन वैदिकधर्म-सरक्षण, वर्णाश्रम-धर्म-पोषण और मानवधर्मके विकासमे लगा रहा। उन्होने जीवनके प्रारम्भसे ही देश, जाति, धर्म, सस्कृति और हिंदी-भाषाके सरक्षण और संवर्धनका महान् व्रत ग्रहण किया था, जिसका उन्होने जीवनपर्यन्त निर्वाह किया।

श्रीपोद्दारजी विशिष्ट भगवद्भक्त थे। भगवद्भक्तिका प्रचार करनेमे वे अग्रणी थे। उन्होने 'कल्याण' मासिक पत्रके माध्यमसे, अपने रचित एव सम्पादित ग्रन्थोसे और अपने भाषणोसे भगवद्भक्तिका विशेष प्रचार किया। इतना ही नही, उन्होने भगवद्भक्तिके प्रचारकी दृष्टिसे ही श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता और रामचरितमानसकी लाखो प्रतियाँ कम-से-कम मूल्यमे गीताप्रेससे प्रकाशितकर प्रत्येक हिंदूके घरमे उन्हे पहुँचा दिया, जिससे आज भारतके लाखो नर-नारी श्रद्धासे इन ग्रन्थ-रत्नोका नित्य पाठ करते है।

श्रीपोद्दारजी जिस प्रकार भगवद्भक्त थे, उसी प्रकार मातृ-पितृभक्त, गोभक्त, साधु-सत-भक्त, देवभक्त, ब्राह्मणभक्त और देशभक्त भी थे। वे मानवमात्रके हितैषी, जनता-जनार्दनके सेवक, सवके प्रिय, सवके मित्र, सवके वन्धु, पूर्ण कर्मठ और दृढप्रतिज्ञ थे। वे जिस कार्यको प्रारम्भ करते थे, उसपर सदा अटल रहते थे। प्रारम्भ किये हुए कार्यमे विघ्न-बाधा पडनेपर भी वे तनिक भी विचलित नही होते थे। वह 'प्रारब्धस्यान्तगमनम्' और 'विपदि धैर्यम्'के यथार्थ महत्त्वको भलीभाँति जानते थे और तदनुसार कार्य करते थे। अत वे अपने प्रारम्भ किये हुए प्रत्येक काममे सफलता प्राप्त करते थे।

श्रीपोद्दारजीकी प्रतिभा विलक्षण थी। वे अनेक भाषाओके ज्ञाता थे। उन्होने विविध ग्रन्थलेखन, विविध ग्रन्थ-सम्पादन और विविध प्रवचन आदिके द्वारा अपनी अद्भुत ज्ञान-रश्मिका दिव्य प्रकाश भारतमे ही नही, विदेशोमे भी प्रसारितकर अपूर्व ख्याति प्राप्त की थी।

हमारा परम कर्त्तव्य है कि श्रीपोद्दारजीके दैवी गुणोको स्मरण करे और तदनुसार आचरण करे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

विप्लवी भाईजी श्रीराधाके संदर्भमें

श्रीवचनेशजी त्रिपाठी

पूज्य श्रीभाईजीके निधनके बादकी वात है। एक जगह लखनऊमे कुछ पढ़े-लिखे लोग इकट्ठे थे। चर्चामे श्रीपोद्दारजीका भी नाम आया। एक महाशयने अपनी जानकारी प्रकट की—'जी हाँ, पोद्दारजीने काग्रेसमे काम किया था।' 'काग्रेस?' मेरे मानसके सामने वड़ा-सा प्रश्नचिह्न लग गया। विवश हो मुझे कहना पडा—'नही, वे क्रान्तिकारी थे। इसी सिलसिलेमे वे वॉकुडामे पौने दो साल नजरबंद रहे। वे दिन वङ्ग-भङ्गके थे। वङ्ग-विभाजनके विरुद्ध क्रान्तिकारियोने उग्र आन्दोलन छेड रखा था। विदेशी-बहिष्कार और स्वदेशी-आन्दोलनका जोर था, किंतु इन आन्दोलनोसे तत्कालीन काग्रेसका कोई रिश्ता नही था।' 'क्यो साहव, आप यह कैसे कहते है?' एक एम० ए० के छात्र ने शङ्का की; क्योकि इन्होने ही पोद्दारजीको 'काग्रेस-कर्मी' कहा था। मुझे हँसी आनेको हुई। मैने कहा—"कहना ही पडता है। सन् १९०५मे पोद्दारजी क्रान्तिकारी वन चुके थे, उस समय काग्रेसमे गोपालकृष्ण गोखलेका वर्चस्व हावी था—गोखलेजी नरमदली नेता थे। उनके रहते काग्रेस विदेशी-वहिष्कारके समर्थनमे स्पष्ट प्रस्ताव भी नही पारित कर पायी—शङ्का हो तो डॉ० पट्टाभि सीतारामैय्याका 'काग्रेसका इतिहास' देखा जा सकता है। उन दिनोकी काग्रेस अपने अधिवेशनोमे भारतीयोके लिये नौकरियाँ माँगती थी, कुछ सुधारोकी भी भिक्षा-याचना करती थी। तवतक पूर्ण स्वाधीनता उसका ध्येय नही वन पाया था। उन काग्रेस-अधिवेशनोमे प्राय कोट-पैंट और टाईधारी लोग ही पधारते थे। प्रान्तका अग्रेज गवर्नर भी तशरीफ लाता था—उसके आनेपर खडा होना गौरवकी बात समझी जाती थी और काग्रेसके अधिवेशन होते थे पडालपर यूनियन जैक फहराकर। उन दिनो काग्रेसका अपना झडा ही नही था। अव आप सोचिये, ऐसे दिनोमे कोई कैसे क्रान्तिकारी बनता होगा, काग्रेस उसको क्या प्रेरणा दे सकती थी?"

विचार करे—देशके उन भयकरतम दुर्दिनोमे पोद्दारजीने अपनी तरुणाई किस तरह अग्रेजोके विरुद्ध प्रारम्भ किये गये असामान्य साहस, त्याग और वलिदानमय यज्ञमे झोक दी थी—स्वेच्छासे समर्पित कर दी थी अपनी जीवन-समिधा। वस्तुत यही प्रसङ्ग पोद्दारजीके सम्पूर्ण जीवनकी आधार-शिलाका महत्त्व रखता है। वङ्ग-भङ्गका काल भारतीय क्रान्तिकारीके जीवन-दर्शनका जो परिचय प्रस्तुत करता है, वह दिव्य है—सहज ससारी जीवन-परिभाषासे वह मेल न खाये तो आश्चर्य नही। 'गीता'के निष्काम कर्मयोगकी कितनी ही व्याख्या विश्वमे प्रकाशित हुई हो, १८-१८ और २०-२० वर्षके नितान्त नवयुवा क्रान्तिकारियोने अपने जीवनको समिधाकी तरह आहुतकर जो व्याख्या उसकी प्रस्तुत की है—उसकी यदि स्वयं क्रान्तिकारी इतिहासमे उपेक्षा की गयी हो तो भी आश्चर्य नही।

उस जमानेमे अंग्रेजोको भी तो यह देखकर कम आश्चर्य नही होता था कि मकानकी

तलाशी लेनेपर जहाँ विप्लवी युवकके सामानसे बम वनानेके नुस्खे वरामद होते है, वही वडे जतनसे सहेजी गीताकी पोथी भी प्राप्त होती है। अग्रेज समझता था—क्रान्तिकारी केवल उनकी सरकारको धोखा देनेके लिये अपने पास गीताका ग्रन्थ रखता है, क्रान्तिकारी जीवनसे उसका कोई प्रयोजन नही हो सकता। वात उलटी थी। वस्तुत विप्लवी जीवन-दर्शनके मूलमे गीता ही अपनी समग्र जीवन्ततासे स्फूर्त थी, सम्प्रेरक थी। वही सर्मापित जीवनका प्राण थी। उस दिन १७ सालके खुदीराम बोस छातीपर 'गीता'की पोथी वाँधकर खुशी-खुशी फाँसीपर झूल गये और ब्रिटेनकी इतनी वडी सरकारसे, उस ब्रिटिश सैनिक-शक्तिसे जो उस समय ससारमे प्रथम शक्तिके नामसे सुप्रसिद्ध थी—जरा भी नही डरे। 'वन्दे मातरम्' मन्त्रने उसे इतना फौलादी कलेजा दिया था कि जीवनकी अन्तिम परीक्षातक वह हँसता-मुस्कराता रहा। वह कौन विचार-दर्शन था और विप्लववादसे उसका क्या रिश्ता था? समुच्चयरूपमे उसका एक ही नाम है—'वेदान्त-दर्शन'। उपनिषद्-गीतार्थतत्त्वको जिस तरह विप्लवी तरुणोने जीवनमे आत्मसात् किया, वह अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि जो क्रान्तिकारी देशके अन्य क्षेत्रोमे प्रवृत्त हुए, उन्होने अधिकाशमे स्वामी विवेकानन्दका व्रत अपनाया। अनेक सन्यासी हो गये। पोद्दारजीने अपना जीवन ऐसे साहित्य-सृजन, सकलन और सम्पादन-प्रकाशनमे लगाया, जिससे भारत 'भारत' वना रहे—उसका 'स्व', सस्कृति, धर्म-सस्कार और सद्‌गुण युग-युगतक देदीप्यमान रहे, कीर्तिमान् रहे।

एक वार वहुत दिन पहले जव वे मुझे काशीमे मिले, तो मैने उनसे पूछा था—'भाईजी, देश तो स्वतन्त्र नही हो सका अभी। आप इस क्षेत्रमे आ गये ।'

'आना ही था, क्योकि यही स्वप्न लेकर मै विप्लवी वना था। सर्वस्व-समर्पणकी वही भूमिका मुझे इस क्षेत्रमे लायी है—मै ऐसा मानता हूँ कि परमपिता परमात्मा ही इस पथपर मुझे ले चल रहे है ।'

तवतक आजादी नही आयी थी। भाईजी लाल किरमिच एव जीनका जूता पहने थे, वह भी काफी पुराना। शरीरपर सस्ती खादीका एक कुर्ता और हाथकी धुली हुई मोटी धोती। अव यह वात काफी पुरानी होनेको आ गयी। क्या-क्या कहा था उन्होने और भावी योजनाके सम्वन्धमे क्या-क्या प्रश्न पूछे थे मैने—आज कुछ भी स्मरण नही आता। हाँ, उनसे भेट करनेपर यह प्रसङ्ग उनके लिये नितान्त स्वाभाविक प्रतीत हुआ था कि जो कभी अपनी युवावस्थामे वङ्ग-भङ्गके विरोधमे वाँकुडामे नजरबद रहा—सन् १९१६मे अलीपुर जेलमे भी यातनाएँ भोगता रहा। और यहाँतक नौवत पहुँची कि अन्तत एक दिन अग्रेजोने उसे वगाल प्रदेशसे ही निष्कासित कर दिया—उसे देखकर कोई दूसरा आदमी अनुमान नही लगा सकता कि परम वैष्णव-सरीखे, एक सीधे-सादे युवकके हृदयमे विप्लवकी कितनी प्रचण्ड अग्नि धधक रही है! उसी आगने उन्हे आगे राधाजीका भक्त वनाया।

याद आता है, एक वार मैने उनसे पूछा था—'आप व्रजके अनन्य अनुरागी है—स्वाभाविक ही महान् क्रान्ति-प्रणेता श्रीकृष्णका जीवन आपको सर्वाधिक खीचता होगा ।' 'और परम आराध्या श्रीराधाजी?'—वे वीचमे ही वोल उठे, मानो मुझसे प्रश्न कर रहे हो कि राधाजीको

क्यो भूले जा रहे हो। उन्होने आगे कहा—'राधाजी, हॉ, अवश्य उनका चरित्र पराधीन भारतके लिये कही अधिक दिव्य है, मननीय।'

"राधाजी क्या थी, मै वाणीमे वर्णन करूँ तो मेरी वाचालता होगी। वे क्या इस लोककी थी? वे क्या कभी जन्म-मरणके आवर्त्तोमे बँधकर चलती है? भगवान्‌से वे अद्वैत है, इसीलिये उनके आनेपर कभी 'श्रीराधा' नामसे, तो कभी 'श्रीसीता' नामसे वे ही प्रकट होती है।"

कहते-कहते भाईजीके ऑसू भर आये, कण्ठ अवरुद्ध हो आया। उस दिन श्रीभाईजीके हृदयमे राधाजीके प्रति इस प्रकारकी अनन्य भावना देखकर मै मुग्ध हो गया। कुछ वर्षो वाद मुझे व्रजमण्डलकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस यात्रामे मुझे श्रीभाईजीके विचार वरवस झकझोरते रहे कि 'श्रीराधा नित्य-शक्ति है।'

श्रीभाईजीके जीवनमे जो महानता थी, उसे हम छूतक नही पाते। ऐसी अवस्थामे उनके विषयमे क्या लिखा जाय? वस, ऋषिकल्प महाप्राण श्रीभाईजीकी अर्चनामे ये कुछ निर्गन्ध पुष्प समर्पित है।

●

सनातन दर्शनके वरदपुत्र

श्री एस० एन० मंगल

सारा सनातनी-जगत् श्रद्धेय पोद्दारजीके निधनसे अनाथ हो गया है। सनातन-संस्कृतिमे उनका उदय प्रखर सूर्यकी भॉति हुआ था और वे जवतक रहे, तवतक अपने आध्यात्मिक प्रकाशसे हिदुत्वको आलोकित करते रहे। यद्यपि उनके निधनसे सनातन-धर्मका एक पुष्टतम स्तम्भ टूट गया है, फिर भी उनके द्वारा निर्मित एवं आचरित मार्ग युग-युगतक हमारे लिये प्रशस्त रहेगा।

श्रीपोद्दारजीकी नि स्पृहता, उनकी सहिष्णुता, उनका अध्यात्म-विचार, उनका क्रान्तिकारी दर्शन और मानापमानसे विलग उनकी मूक देश-सेवा भारतके भावी कर्णधारोके लिये दिव्य अनुकरणीय आदर्श है।

मुझे पोद्दारजीसे दो वार मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उनका भाव-सम्पर्क मुझे करीव दो वर्षतक उपलब्ध रहा। कलकत्तामे 'मारवाडी रिलीफ सोसाइटी'के संस्थापक तथा मूर्द्धन्य समाजसेवी स्वर्गीय श्रीओकारमलजी सराफका मै विशेष कृपाभाजन रहा हूँ। श्रद्धेय सराफजी पोद्दारजीके अभिन्नतम मित्रोमेसे थे। गोरखपुर और कलकत्ताकी लवी दूरी भी इन दोनो मित्रोको एक क्षणके लिये भी भावात्मक रूपसे विलग नही कर सकी थी। ये दोनो 'अग्नियुग'के साथी थे।

सर्वप्रथम मै श्रद्धेय पोद्दारजीसे श्रीसराफजीके निर्देशपर गोरखपुरमे मिला। मेरे मिलने-का प्रसङ्ग था—गीतापर फिल्म-निर्माण और उसके लिये उनका आध्यात्मिक संरक्षण एवं दिशा-दर्शन प्राप्त करना। यह योजना तत्कालीन उप-प्रधानमन्त्री श्रीमोरारजीभाई देसाईके मार्ग-

दर्शनमे संचालित हो रही थी तथा श्रीसराफजी इसके आयोजक थे। इस फिल्मके निर्माणका भार मेरे निर्वल कधोपर था, जो इन दोनो महारथियोका स्नेहपात्र था।

फिल्म-जगत्से श्रद्धेय पोद्दारजीका सम्वन्ध नहीके वरावर था और वे फिल्मोद्वारा फैलायी जा रही चरित्रहीनताके कट्टर आलोचक थे। मुझे भय था कि वे मुझसे वात नही करेगे तथा इस सम्वन्धमे उनके वहुश्रुत विचार मेरे सामने थे। मै जव गोरखपुर पहुँचा और अपने आनेकी सूचना भिजवायी तो उनकी ओरसे सर्वप्रथम सदेश आया, 'सामान रखकर हाथ-मुँह धोएँ, जलपान करे, विश्राम करे।'

उस समय श्रीपोद्दारजी भावसमाधिकी स्थितिमे थे। उनके अन्तेवासी उस अवस्थाको 'अन्तर्मुख-अवस्था' कहते थे। हमारी दृष्टिमे वह थी—सर्वोच्च ऊँचाईपर पहुँची पराभक्तिमे परमात्मासे अभिन्न आत्माकी तुरीयावस्था या समाधिकी चरम स्थिति, जो गीतामे वार-वार दुहरायी गयी है। उनकी इस उच्चतम अवस्थाने गीताके सम्वन्धमे हमारे लिये कई नये-नये अनुभव प्रदान किये थे। मुझे दूसरे दिन मिलनेका समय दिया गया।

जव मै नियत समयपर उनके पास पहुँचा, तव वे लोगोसे घिरे हुए थे और 'कल्याण'-का प्रूफ-सशोधन भी कर रहे थे। उनका कमरा ग्रन्थो और पुस्तकोसे भरा था। मुझे आश्चर्य हुआ, यह भीष्मपितामह इस अवस्थामे भी कितना काम करता है। मुझे ईशावास्योपनिषद्का दूसरा मन्त्र स्मरण हो आया और मैने उसे उन्हे सुना दिया—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

'इस लोकमे कर्त्तव्यकर्मोको ईश्वर-पूजार्थ करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे। तुझ मनुष्यके लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नही है, जिससे तुझे कर्मका लेप न हो।'

वे मुस्करा दिये। वह मुस्कान क्या थी, आज भी उसकी गम्भीरता और रहस्यमयता मानसमे कौध रही है। उस मुस्कानमे एक निर्लिप्त शिशु, एक कर्मठ युवक, एक अनुभवसिद्ध वृद्ध, एक वीतराग गृहस्थ, एक आत्मलीन सन्यासी, एक प्रखर वक्ता तथा विद्यार्णवका मन्थन करनेवाले एक तेजोद्दीप्त व्यक्तिकी आभा एक साथ समाहित थी। मै उनके पास वैठ गया और वे मुझे गीताके कुछ चित्रात्मक विषयोपर 'गीताङ्क' दिखाते रहे। फिर उन्होने गीता और फिल्म-कलाके सम्वन्धमे कतिपय नियमोकी जानकारी ली। मैने 'पटकथा'की प्रतिलिपि उन्हे दे दी तथा डरते-डरते उसके एक प्रसङ्गके सम्वन्धमे पूछा। वह था—'यज्ञ'के सम्वन्धमे उनके अपने विचार। गीताके तीसरे अध्यायमे जो 'यज्ञ'की चर्चा देवताओ और मनुष्योके परस्पर सहयोगके सदर्भमे हुई है, उसका मैने अर्थ किया था—सभी ऐसे कर्म या उद्योग 'यज्ञ' है, जिनसे समाजका हित होता है और जो परस्पर सहकारकी भावनासे मिलकर किये जाते हो तथा जिनकी उपलव्धियाँ भी मिल-वाँटकर उपभोगमे लायी जाती हो। उसी प्रसङ्गमे गीताने यज्ञावशिष्ट खानेवालेके सव प्रकारके पापोसे छूटनेकी वात कही है और इसके विपरीत देवताओका भाग न देकर अपने लिये ही

बनाने-खानेवालेको चोर और पापका खानेवाला कहा है। तात्पर्य यह कि सामूहिक उद्योग यज्ञकी भावनासे हो और प्रत्येक उद्योगी अन्तमे खानेकी निष्ठा रखे। इसके विपरीत जो छल-छद्मका आश्रय लेकर दूसरोंका भाग चुरा लेता हो, या नही देता हो, वह चोर है; एवं केवल स्वयके लिये उद्योग करना और उसकी उपलब्धियोंपर अकेले अधिकार रखना पाप है। इसपर मैंने गांधीजीके 'ट्रस्टीशिप' का हवाला भी दिया। मुझे डर था, श्रद्धेय पोद्दारजी-जैसे सनातन-सस्कृतिके उपासक शायद मेरे अर्थको स्वीकार न करे। मै उनकी ओर देखने लगा और मेरा संकोच वढता रहा। दूसरे क्षण मुझे चौकने और आश्चर्यमे पडनेकी वारी थी। मेरी वात समाप्त होते ही उन्होने तत्क्षण हँसते हुए कहा—"यदि आपकी आधुनिक व्याख्या और गांधीवादी दृष्टि स्वीकार करती हो तो मेरे विचारसे इसमे इतना अवश्य जोड़ ले कि ऐसे 'चोर' और 'पापी' को दण्ड देना अनिवार्य है। उसका वहिष्कार किया जाय और उससे किसी भी प्रकारका सहयोग न रखा जाय।"

मै हक्का-वक्का-सा रह गया और उनकी दृष्टिकी ऊँचाईको अपने बौने पैमानेसे मापते-मापते थक गया। मेरा रोम-रोम उनके लिये श्रद्धासे भर गया और मैंने कहा—

'आप पुरातनके ही पृष्ठपोषक नही, अधुनातनके भी नेता है। आप सचमुच सनातन-दर्शनके वरद-पुत्र है।'

वे वच्चोकी तरह सकुचाये, हँसे और फिर अगले विषयपर बढ गये। कहना नही होगा कि उन्होने गीता-फिलमका आध्यात्मिक संरक्षण ही नही स्वीकार किया, वल्कि उस सम्वन्धमे श्रीसराफजीद्वारा लिखे गये दो लेखोको 'कल्याण'मे प्रकाशित भी किया, जिनमे एकपर फिल्म और गीताके सम्वन्धमे अपने सम्पादकीय विचार भी व्यक्त किये और टिप्पणी प्रकाशित की। यह उस जनताके लिये आश्चर्यजनक घटना थी, जो उन्हे केवल फिल्मविरोधी मानती थी। वे प्रत्येक अकल्याणकारी कार्य और साधनके विरोधी थे, किंतु जहाँ भी कल्याणकारी विचार और कार्य मिलते थे, वे उनका डटकर समर्थन भी करते थे।

दूसरे दिनकी अन्तरङ्ग वार्तामे उन्होने कई संस्मरण सुनाये, जो इतिहास और समाजमे 'अग्नियुग'के नामसे विख्यात अध्यायसे सम्वद्ध थे तथा उनके सशस्त्र क्रान्तिमे सहयोग देनेके सम्वन्धमे थे।

मेरी दूसरी भेट उनसे ऋषिकेशमे हुई। वहाँ उनका रूप तो वही था, लेकिन भावनामे एक ओर जहाँ हिमालयकी ऊँचाई और गम्भीरता थी, वही ऋषिकेशकी गङ्गाकी तरह सुशीतलता और प्रवाह भी था, जो तीव्र वेगसे महामिलनकी ओर दौडा जा रहा था। इस सदर्भमे यह चर्चा भी कर देना आवश्यक है कि मै श्रीओंकारमलजीके नेतृत्वमे उनके त्यागमय जीवनको प्रचारित करनेके उद्देश्यसे 'हीरक जयन्ती' समारोह मनानेका उद्योग कर रहा था। कलकत्ताके प्रसिद्ध धार्मिक एव समाजसेवी महानुभावोमे अग्रणी स्व० छोटेलालजी कानोड़िया भी इस समारोहके लिये वड़े उत्सुक थे। रोग-शय्यापर पड़े-पड़े भी वे मुझे बुलाकर इसकी प्रगतिके वारेमे पूछते रहते थे और परामर्श दिया करते थे। उनकी तीव्र कामना थी कि यह समारोह हो जाय। साथ ही कतिपय साहित्य-महारथी भी इस आयोजनमे सव प्रकारका सहयोग देनेको प्रस्तुत थे। हमारा यह चौथा प्रयास

था। इसके पूर्व तीन प्रयास हो गये थे, जिसे श्रद्धेय पोद्दारजीने विनयपूर्वक अस्वीकार ही नही किया था, वल्कि अपनी सारी विनयशीलता और सारे आग्रहसे उन्होने ऐसे आयोजनोको बद करा दिया था। ऐसे सम्मानजनक समारोहोकी सूचना पाकर उन्हे इतना दुःख होता था, जिसका वर्णन नही किया जा सकता। सभीको विश्वास था कि हमारा आयोजन अवश्य सफल होगा, क्योकि श्री-ओकारमलजी इसके आयोजक थे और श्रीपोद्दारजी अपने अभिन्न मित्रकी अन्तिम इच्छाको टाल नही सकेगे। इस आयोजनकी जानकारी होते ही श्रीपोद्दारजीने उन्हे एक अत्यन्त ही मार्मिक पत्र लिखा और अपने प्रेमकी याद दिलाते हुए उसका यही वदला माँगा कि वे तुरत यह आयोजन वद कर दे। श्रीसराफजी भी कम जिद्दी नही थे। पत्राचार आरम्भ हुआ। दो मित्रो या भाइयो-के अपने-अपने दावे आरम्भ हुए। हमने श्रद्धेय पोद्दारजीको आश्वासन दिया था कि हम अपने ग्रन्थ और आयोजनमे भारतीय सस्कृतिके ७५ वर्षोके आध्यात्मिक उन्नयन मात्रमे उनके योगकी चर्चा करेगे। इसे भी उन्होने नही माना। तव हमने इस सदर्भमे गीता-प्रेसकी भूमिकाकी चर्चा की। उसे भी उन्होने अस्वीकार कर दिया। श्रीशान्तिप्रसादजी जैनने परामर्श दिया कि उनकी इच्छाके विरुद्ध 'गार्हस्थ्य और साधुत्व'के सामञ्जस्यपर एक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय, क्योकि श्रीपोद्दारजी इसके सर्वोत्कृष्ट प्रतीक थे। किंतु सव व्यर्थ। ऐसा आदमी मैने अपने जीवनमे नही देखा, जो अपनी प्रशंसा सुनकर—उसकी कल्पनामात्रसे इतना दुःखी हो जाता हो। उसी दिन प्रवचनमे उन्होने इस अभिनन्दन-कार्यक्रमपर स्नेहमे पगी हुई मीठी चुटकी ली।

ऋषिकेशमे मुझे उनके दो गुणोका व्यापक परिचय मिला, एक अतिथि-सेवा और दूसरा परदुःखकातरता। मेरे पहुँचनेके साथ ही उन्होने पहला प्रश्न किया था—'कैसा है ओकार ?' स्व० श्रीसराफजी उन दिनो अस्वस्थ थे। हम अभी बैठे ही थे कि एक साधु आये। कुशल-क्षेमके वाद उन्होने उनकी आवश्यकता पूछी। उन्होने ४० रुपयेकी आवश्यकता वतलायी। तुरत उन्होने उन्हे ६० रुपये दिलवा दिये। हम कलकत्तासे गये थे। वार-वार वे हमारे रहने-खानेके सम्वन्धमे जानकारी लेते रहते थे। हमारे पहुँचनेके दिन ही वे भावसमाधि-स्थितिमे चले गये। जव कई घटो-वाद उनकी वृत्ति वहिर्मुखी हुई, तव उन्होने सर्वप्रथम हमे बुलाया। हमलोग उसी दिन कलकत्ता लौट रहे थे। अतः बडे सकुचित भावसे बोले—'बात नही हुई आपसे। देखिये न, आज आप जा रहे हैं। यदि आवश्यकता हो तो जितना चाहे रुपये ले ले। घरकी वात है। सगठनका काम नही रुकना चाहिये। हमारा सहयोग होता रहेगा।' मैने विनयपूर्वक उन्हे आश्वासन दिया—'हमे रुपयोकी आवश्यकता नही है। पर्याप्त खर्च लेकर चले थे। सगठनका कार्य हो रहा है। ओकारवावू आपकी इच्छाकी पूर्तिमे अस्वस्थ होते हुए भी जुटे हुए हैं।'

यह सगठन क्या था ? उन्ही दिनो हिंसावादी राजनीति आरम्भ हुई थी पश्चिम बगाल-मे। श्रीपोद्दारजीका दूरदर्शी अनुमान था—'एक दिन सारा वगाल हिंसाके चगुलमे चला जायगा और वहाँका जीवन अस्त-व्यस्त हो जायगा। लोगोका जीवन गाजर-मूलीसे अधिक महत्त्व नही रखेगा और हत्याएँ रोज-मर्रेकी चीज वन जायेगी। उद्योग ठप हो जायँगे और सारा राज्य आर्थिक विपन्नतासे कराहने लगेगा। इसका प्रभाव सारे देशपर पडेगा और असुरत्व ही इस

देशका गौरव बन जायगा।' कहना नही होगा कि उस मनीषीकी भविष्यवाणी कितनी सत्य हुई। इसके विरुद्ध वे एक ऐसा संगठन चाहते थे, जो शान्तिपूर्ण ढंगसे हिसाका मुकाबला करे। आज सारे राजनेता श्रद्धेय पोद्दारजीके पथपर ही चलकर इस समस्याका समाधान करना चाहते है, किंतु अब समय बीत चुका है शान्तिपूर्ण प्रतिरोधका। यदि प्रारम्भमे ही श्रद्धेय पोद्दारजीके मार्गपर चला गया होता तो यह दिन देखना नही पडता। इस हिसावादी राजनीतिसे मुक्तिके लिये श्रीपोद्दारजीकी एक विशेष योजना थी—'एक ऐसे सगठनका आयोजन किया जाय, जो शान्तिप्रिय युवकोका हो तथा जो प्रत्येक हिसाका प्रतिरोध शान्तिपूर्ण ढंगसे, आत्माके बलसे, आत्म-त्याग-द्वारा करे।' यह भार उन्होने अपने सहोदर-सदृश मित्र श्रीसराफजीको सौपा था। इस योजना-पर काम भी हुआ था, लेकिन अपेक्षित सहयोगके अभावमे वे विशेष सफल नही हो सके।

श्रीसराफजी जब 'मारवाडी रिलीफ सोसाइटी'की स्थापनाके लिये प्रयत्नशील थे, तब प्रारम्भसे ही पोद्दारजी उनके साथ मूक समाजसेवीके रूपमे जुट गये थे। श्रीसराफजीने मुझे बताया था—'हनुमान नही होता तो मै सोसाइटीका काम पूरा नही कर पाता। वह मेरे साथ ऐसा जुड गया था जैसे दूध-पानी एकरग हो जाते है। सारा काम तो हनुमान देखता था। वह हिसाब रखता, भाषण तैयार करता, अपने आकर्षक वाग्बलसे लोगोको सहयोगके लिये विवश कर डालता। उस समयसे ही वह नाम नही चाहता था, एक मूक सेवाभावी होकर सेवा ही करता। सोसाइटी आज जो इस प्रकार एशियाकी प्रमुख संस्था बन गयी है, उसकी नीवमे दबी हुई है हनुमानकी ईट।'

मैने उस दिन नीवकी ईटका महत्व समझा। बेचारी नीवकी ईट इमारतके लिये कितनी महत्त्वपूर्ण है। वह मूकभावसे सारी इमारतका बोझ अपने सीनेपर सँभाले हुए, कँगूरोकी तरह अपना प्रचार नही करती, बल्कि उन्हे चमकाने और गर्वसे इठलानेके लिये समुन्नत करनेमे अपना बलिदान करती है। श्रीपोद्दारजी किस-किस इमारतकी नीवकी ईट बने है—यह गवेषणाका विषय है; क्योकि उनके उपकारसे केवल भारतीय सस्कृति ही नही, समाज और इतिहास भी दबा हुआ है। कौन जानता है कि व्यवसायी मारवाडी केवल व्यवसाय करना ही नही जानते, बल्कि अवसर आनेपर मातृभूमिके लिये शस्त्र उठाने और फिर समाजके उन्नयनके लिये शास्त्रका उपयोग करनेमे भी कोर-कसर नही रखते। पोद्दारजी इसके एकमात्र उदाहरण है, जिनके जीवनका आरम्भ शस्त्रसे होकर अन्त शास्त्रमे हुआ। क्रान्तिका यथार्थ स्वरूप तो उन्हीके जीवनमे दिखायी पडता है। क्रान्ति केवल रक्तपात नही, रक्त-सचार भी है। रक्तपात तो दूषित रक्तका होता है और फिर शुद्ध रक्तका सचार भी क्रान्तिका दूसरा पहलू है। शस्त्रधारी भाईजीने आत्म-विकासकी प्रेरणासे ससारको अभिषिक्त करनेके लिये केवल शास्त्र ही नही उठाया, बल्कि अपने जीवनको प्रतीक बनाकर यह भी दिखला दिया कि 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' कैसे हुआ जाता है। आध्यात्मिक अभ्युत्थानके लिये चोला नही, चेतना बदलनी पडती है, वस्त्र नही, मन बदलना पड़ता है। विदेह होना अब केवल शास्त्र-कल्पना नही, पोद्दारजीका जीवन उसका साक्षात् उदाहरण है।

उस महामानवने सारे देशकी आत्माको अपनी मूक सेवासे आलोकित कर दिया और बदलेमे यह भी नही चाहा कि लोग उसे किंचित् भी विशिष्ट माने। निष्काम कर्मका इतना

सुन्दर उदाहरण कभी-कभी ही मिलता है। गीतामे जिन 'सर्वभूतहिते रता.' भक्तोका तथा सम्पूर्ण चराचर-जगत्को परमात्माकी अभिव्यक्ति मानकर किये जानेवाले विश्व-प्रेमका वर्णन है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन श्रीपोद्दारजीके जीवनमे होता है।

श्रीपोद्दारजी थे तो हमे विश्वास हुआ कि सत्यकी जीत होती है; वे थे तो हमे विश्वास हुआ कि मानवता देवत्वकी सीमा स्पर्श कर लेती है। वे थे तो हमे विश्वास हुआ कि क्रान्ति केवल रक्तपात नही, रक्त-संचार है। वे थे तो हमे विश्वास हुआ कि मनुष्य मनुष्यके लिये कैसे जीता है, और वे थे तो हमे विश्वास हुआ कि धर्मकी अवनति होनेपर ईश्वर अपने अभिन्नाश महापुरुषोको धर्मसस्थापनाके लिये भेजता है।

●

तपःपूत व्यक्तित्व

डा० के० पी० सुभद्रा अम्मा

परम-भट्टारक महाप्रभु सद्गुरु श्रीअभेदानन्दजी महाराजकी कृपासे अभेद-कुटुम्बकी देवियोकी ओरसे मैं श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारकी पावन स्मृतिमे श्रद्धाञ्जलि अर्पण करती हूँ।

कलिकल्मषके कुप्रभावसे कलुषित मानव-समुदायका उद्धार करनेकी सत्प्रेरणासे प्रेरित होकर जो प्रयत्न 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमे 'धर्मनिरपेक्ष' मनीषी भाईजीने किया, वह अत्यन्त सराहनीय है। आप अगाध पाण्डित्यके धनी थे। आपका ज्ञान-भंडार असीम था। एक अरबी संतकी वाणी है—'सत्यको स्वयं जानना सचमुच महान् कार्य है, परंतु संसारमे दूसरोको उसकी अनुभूति कराना महानतम है।' यह कार्य श्रीभाईजी कर पाये हैं। आपने अपनी रचनाओंद्वारा सनातनधर्मतत्त्वोके शाश्वत मूल्योकी प्रतिष्ठा की है। 'कल्याण'के अनुगृहीत पाठकोको 'पोद्दार' महोदयके अनूठे आध्यात्मिक ज्ञान एवं उपलब्धियोका परिचय अर्द्ध शताब्दीसे प्राप्त होता रहा है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बीसवी सदीके आध्यात्मिक नवोदयमे जो योगदान भाईजीने 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमे दिया है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

साधक अपना सर्वस्व प्रेमास्पदके चरणोमे अर्पण करके सर्वतोभावेन पूर्ण पारतन्त्र्य स्वीकार कर लेता है। शरीर-मन-बुद्धि-इन्द्रिय—सबका अस्तित्व भूलकर प्रेमी भक्त प्रेमकी चरम स्थिति-तक पहुँचता है। श्रीभाईजी ऐसे ही पहुँचे हुए भक्त थे।

श्रीभाईजीने भक्तिकी पराकाष्ठाका वर्णन करते हुए कहा है—"मानवधर्मको निभाना भक्तके लिये आसान कार्य है। 'पत्र पुष्पं फलं तोयम्'से अधिक भगवान् कुछ नही चाहते। भक्तकी कोई भी सेवा स्वीकार करनेके लिये परमात्मा सदा सम्मुख खड़ा है। भगवान्के दिव्य स्पर्शका अनुभव जिन्हे हुआ है, वे ही यह रहस्य-तत्त्व जानते है।" चिर शान्ति एवं जीवन्मुक्तिकी खोजमे भ्रमण करनेवाले भूखे जनोके लिये भाईजीकी उक्त वाणी परम आश्वासन है।

भाईजीने साधनापूर्ण जीवनका संकेत इस प्रकार किया है—'आध्यात्मिक साधनाके अभ्यास-मे सदैव विघ्न पड़ते रहते है, क्योकि ईश्वरीय साधनाका मार्ग कण्टकाकीर्ण होता है। भगवान्

अपने श्रद्धालु भक्तकी परीक्षा विघ्नद्वारा करते हैं।' भाईजीने संसार-ज्वरसे पीडितजनोंको यही उपदेश दिया है—'हे दु:खी जनो! तुमलोग निश्चिन्त रहो। तुम अपने पथसे डिगो मत। तुम अटल विश्वासपूर्वक साधना-मार्गसे आगेकी ओर बढते रहो। किसी भी विकट परिस्थितिमे तुम धर्मच्युत होकर आलस्ययुक्त मत रहो।' आपका यह सदेश अज्ञानान्धकारमे निमग्न जीवको जन्म-मरणरूपी नाग-पाशसे मुक्ति देनेमे समर्थ हैं।

भाईजी प्रेमके सच्चे पुजारी थे। प्रेम-रससे परिप्लावित हृदयसे उद्भूत उनकी उक्त दिव्य वाणी अमृतकी वर्षा कर रही है। उनका दृढ विश्वास था कि भक्ति अथवा प्रेमके बिना मुक्ति पाना असम्भव है। उनका प्रेम-साम्राज्य विश्व-व्यापी है। उनके कथनके अनुसार 'चित्तको पवित्र किये विना लीला-पुरुषकी प्रतिष्ठा हम हृदय-वेदीपर नही कर सकते।' ऐसे प्रेमी 'पोद्दार भाई'की प्रभावोत्पादक अमर वाणीकी प्रेरणासे पाठकगणोंका हृदय श्रद्धान्वित होगा, शीलकी ओर प्रवृत्त होगा, विपत्तिमे धैर्य धारण करेगा और कठिन कर्ममे उत्साह प्रकट करेगा। उनकी महत्त्वपूर्ण रचनाओंकी निर्मल ज्योतिसे मानव-हृदय परिष्कृत एवं पवित्र हो उठेगा। सच्चे, सयमी, सदाचारी एवं ब्रह्मनिष्ठ महात्माकी वाणीका ऐसा प्रभाव दूसरोपर पडेगा ही। उच्च-कोटिकी साधना करके उन्होने मनुष्य-समुदायको आदर्श मार्गपर लाकर खड़ा कर दिया।

भाईजीने अपनी लेखनीसे जन्म-जन्मान्तरोसे अर्जित पाप-संचयका समूल नाश करके तथा इन्द्रियजन्य विकारोसे मुक्ति पाकर ज्योतिर्मय नित्य-धामकी ओर अग्रसर होनेकी जो प्रेरणा दी है, उससे दीन-हीन साधकोको दुस्तर भव-सागर पार करनेका साहस बँधा है। इस प्रकार अपनी रचनाओद्वारा जो महती सेवा भाईजीने की है, वह चिरस्मरणीय है। उनका कृतित्व लोक-मर्यादा एव वेदमर्यादाका संगम-स्थल है। उन्होने अपने साहित्य-सर्जनमे धर्म-सम्बन्धी किसी भी सद्विचारकी उपेक्षा नही की। प्रतिभासम्पन्न, आत्मज्ञानी एव त्यागी महात्मा होनेके कारण ही उन्होने ससारकी मङ्गल-कामनासे प्रेरित होकर ऐसी साहित्योपासना की है। आजकलके अधिकांश साहित्यकार भौतिक दृष्टिकोणसे लेख लिखकर अपनी वाणीको 'बेचते' है। जबतक साहित्यकार अपनी वाणीको 'बेचना' बंद नही करेगे, तबतक मानवताका विकास नही हो सकता। भाईजी अपने आदर्शसे ऐसे कर्मयोगियोके प्रादुर्भावका पथ प्रशस्त कर गये हैं।

भारतके अध्यात्म-नभोमण्डलमे सुदीप्त प्रभा फैलाते हुए श्रीपोद्दारजी एक जाज्वल्यमान ज्योति पुञ्जके समान है। उनके आत्म-सदेश सनातन, चिरतन एव पवित्र है, जिनका अमिट प्रभाव युग-युगान्तरतक जनतापर पडेगा। हिंदू-धर्मोद्धारकोमे भाईजीका अत्युच्च स्थान है। कृतार्थ भारतीय श्रद्धा और भक्तिसे अनन्त कालतक आपका स्मरण करेगे।

●

जिस प्रकार ईश्वरके स्वरूपका ध्यान करके साधक मोक्षको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार युधिष्ठिर, प्रह्लाद, शुकदेव, भरत और हनुमान् आदि भक्तोंका ध्यान करनेसे भी साधकका कल्याण हो सकता है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

भारतीय संस्कृतिके समुद्धारमें निरत

पं० श्रीविद्याधरजी शास्त्री

चूरूनिवासी होनेके कारण यद्यपि छात्रावस्थामे भक्तवर श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके नामके साथ मै श्रीपोद्दारजीके नामको प्राय सुनता रहता था, किंतु उनकी वाग्मिता और उनके सौजन्यसे सुपरिचित होनेका सबसे पहला अवसर मुझे बीकानेरमे प्राप्त हुआ था। सन्-सवत् याद नही, किंतु कम-से-कम ४०-४५ वर्ष पूर्वकी बात है कि एक दिन बीकानेरके 'गुणप्रकाशक सज्जनालय'मे मैंने श्रीपोद्दारजीका प्रथम भाषण सुना था। उस दिन उन्होने कठोपनिषद्के आधारपर श्रेय और प्रेयका विवेचन किया था। मै आपके उस भाषणसे इतना प्रभावित हुआ कि सभाके विसर्जित होते ही मै उनके साथ वार्तालापके लिये व्यग्र हो उठा।

उस क्षणिक परिचयके पश्चात् चूरू और रतनगढ़के ब्रह्मचर्याश्रमोके वार्षिकोत्सवपर और अन्यत्र भी अनेक बार आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा। इन अवसरोके अतिरिक्त आपने सदैव आत्मीयताके भावोसे ओत-प्रोत अपने पत्र-व्यवहारसे मुझको कृतार्थ किया था। यह पत्र-व्यवहार प्रधानरूपसे गोरक्षा अथवा भयानकरूपसे ह्रासोन्मुखी भारतीय सस्कृतिके सरक्षणके विषयपर होता था। इन दोनो ही प्रश्नोपर वे सदा ही क्लान्तचित्त रहकर भी सर्वथा निराश नही थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि सत्य सनातनधर्म किसी समय भी सर्वथा विनष्ट नही होगा। भगवत्प्रार्थनाके साथ प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिका कर्त्तव्य है कि वह अपनी ओरसे धर्मरक्षाके किसी भी कार्यमे शैथिल्यका आभास न होने दे।'

भारतीय सस्कृतिके मूलोच्छेदका जब कभी कोई प्रश्न भारतकी किसी प्रान्तीय-धारासभा अथवा लोकसभामे उठता था, आप सदा ही उसके विरोधमे विस्तृतरूपसे 'कल्याण'मे अपने अभिमतको व्यक्तकर सबको उसका विरोध करनेके लिये प्रेरित करते थे। आपने अपने जीवनकालमे भगवद्भजन, रामनाम-जप और धार्मिक स्थलोके पुनरुद्धारके लिये राष्ट्रके प्रत्येक व्यक्तिको जो प्रेरणा दी, मेरी समझमे इस शताब्दीमे वह उतनी मात्रामे अन्य किसी व्यक्तिके द्वारा नही दी गयी। किंतु गत १०-१५ वर्षोसे आपका समस्त ध्यान राधामाधवोन्मुख हो गया था। राधाके सम्बन्धमे आपने जिस दर्शनको प्रस्तुत किया और कृष्ण एव राधाके जिस दिव्य प्रेमभावका प्रस्फुटीकरण किया, उसके द्वारा मुझे एक नये प्रकाशकी प्राप्ति हुई। श्रीपोद्दारजी निरन्तर विश्व-कल्याणमे अपने कल्याणका अनुभव करते रहे।

●

सभी देशोंमें सभी समय कोई-न-कोई सच्चे संत विद्यमान रहते ही है। संत ही समाजके जीवन हैं, कोई भी संतजनशून्य समाज जीवित नहीं रह सकता।

—पूज्यपाद श्रीउडियाबाबा

●

महात्मा पोद्दारजी

श्रीमुंशीरामजी शर्मा 'सोम'

भगवान्‌की लीला विचित्र है। वह सत्व-सम्पन्न दिव्यपुरुषोको उत्पन्न करता है, जिससे उनकी जीवन-झाँकी देखकर सामान्य जन दिव्य पथपर चलनेकी प्रेरणा प्राप्त कर सके। सामान्यत ये दैवी पुरुष आत्माभिव्यञ्जनसे दूर रहते है, फिर भी तत्त्वदर्शी उन्हे जान ही लेते है और सामान्य-जनतक भी उनकी जीवन-धाराका प्रवाह किसी-न-किसी रूपमे पहुँच ही जाता है। दैवीसम्पदाके धनी महात्मा हनुमानप्रसादजी पोद्दार 'कल्याण'-सम्पादकके रूपमे वहुजनहिताय अपनी साधनामे संलग्न रहे और इसमे सदेह नही कि 'कल्याण'के माध्यमसे उनका व्यक्तित्व चतुर्दिक् फैल गया।

हिदुत्व उनकी दृष्टिमे संकीर्ण सम्प्रदाय नही था। वे हिदुत्वके मानवतावादी उच्चादर्शसे प्रेरित थे। विश्व-कल्याण जिन साधनोपर अवलम्बित है, उन्हीका प्रचार उनके 'कल्याण'के द्वारा हुआ। गोवधको वे इस देशके माथेपर 'कलङ्कका टीका' समझते थे और इसीलिये गोरक्षाके लिये वे सतत प्रयत्नशील रहे। आर्यजातिके पास जो कुछ भी शिव और शुभका अश है, उसे 'कल्याण'के द्वारा वे सभी पाठकोतक पहुँचाते रहे। उन सरकारी नीतियोकी भी उन्होने खुलकर आलोचना की, जिन्हे वे समाजके लिये अहितकर और अनिष्टकर समझते थे।

श्रीपोद्दारजीका व्यवहार अतीव शालीन था। वे अपने घर आये हुए प्रत्येक व्यक्तिका सम्मान करते थे और अस्वस्थ होनेपर भी कर्तव्य-पराङ्मुख नही हुए। साधनाके क्षेत्रमे वे राधा-तत्त्वका वडी गहराईके साथ अनुभव कर चुके थे और अपनी उपलब्धिको उन्होने अतीव सयत, परतु विशदरूपमे लेखोद्वारा अभिव्यक्त किया। हरिलीलामे उनका प्रवेश निश्चितरूपसे प्रगाढ था। लीलाका क्षेत्र वैसे तो व्यापक है, परतु जिसने मूलशक्तिको हृदयगम कर लिया, उसके लिये सभी कुछ स्वायत्त हो जाता है।

गीताप्रेसकी प्रतिष्ठा उन्हीके कारण वढ़ी और उसके द्वारा अनेक वहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित होकर सस्ते मूल्यपर वहुसख्यक जनताके हाथोमे पहुँच पाये। इसका श्रेय पोद्दारजीको ही देना पड़ेगा। 'कल्याण'का प्रकाशन वरावर चलता रहे, इसके लिये हम सभीको प्रयत्न करना चाहिये। पोद्दारजीके लीलाधाममे प्रवेशके उपरान्त उनकी स्मृतिको स्थायी रूप देनेके लिये भी हमे कुछ करना चाहिये। सत्पुरुषोका नाम चलता रहे और उनके आदर्शोसे जनता परिचित होती रहे, यह जन-कल्याणके लिये परम आवश्यक है। पोद्दारजीके प्रेमी भारतवर्षमे ही नही, विश्वभरमे मिल सकेंगे। हम सव मिलकर एक ऐसी आयोजना वनाये, जिससे इस दिशामे कोई ठोस कदम उठाया जा सके और उनकी पुण्यस्मृति चिरस्थायी वन सके।

अमिट-स्मृति

पं० श्रीशिवनाथजी दुबे

'आदमीके गुणो और अवगुणोकी ठीक-ठीक जाँच सदा उसके विश्रुत कामोसे ही नही होती, वल्कि एक छोटे-से काम, एक छोटी-सी वात या एक छोटे-से हास-परिहाससे भी व्यक्तिके असली चरित्रपर उचित प्रकाश पडता है।'—प्लुटार्क

भाईजी——श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अत्यन्त चरित्रवान्, सद्धर्मपरायण एव अनुपम भक्त सद्‌गृहस्थ थे। उनके जीवनमे पदे-पदे सत्य, दया, क्षमा, उपकार प्रभृति अनेक आदर्श गुणोके दर्शन होते थे। भगवत्प्रीतिके तो वे मानो सजीव विग्रह ही थे। उनके सङ्ग, उनके जीवन एव उनके सदुपदेशसे सहस्र-सहस्र नर-नारी एव वालकोने सात्त्विक जीवनका निर्माण किया है। उनके वताये मार्गका अनुसरण कर कितने ही युवक सत्यके प्रति अद्‌भुत निष्ठा एव सात्त्विक गुणोसे सम्पन्न जीवन व्यतीत करते हुए उनके आजीवन कृतज्ञ वन गये है। वे शिशुओकी भाँति सरल, पर महासागर-तुल्य गम्भीर थे। परतु वे शुष्क नही, सरस एव विनोदी भी थे। विनोद सत्य एव धर्मसे पूरित था। उनका अभाव टूटे हुए काँटे एव वर्छीकी टूटी अनीकी भाँति करक रहा है। पर उनकी स्मृतिसे जीवनमे पवित्रता एव सत्प्रेरणाएँ प्राप्त होती है, उनसे परिचित सभी महानुभाव इसका अनुभव करते है। यहाँ हम उनके जीवनकी कुछ घटनाओका उल्लेख करते है।

सत्य

वात है दस-वारह वर्ष पूर्वकी। उस समय श्रद्धेय पोद्दारजीकी आर्थिक स्थिति ठीक नही थी। मध्यप्रदेशके एक सज्जन उनसे मिलने आये। उन्हे अपने पत्रमे श्रद्धेय पोद्दारजीने दो सौ रुपये सहायता देनेकी वात लिखी थी। मैंने श्रद्धेय पोद्दारजीके समीप जाकर उनके आनेका कारण वताया और उनसे यह भी कह दिया कि 'मुझे स्मरण है कि आपने उन्हे दो सौ रुपये देनेकी वात लिखी थी।'

श्रद्धेय श्रीभाईजीने तुरत कहा—'मुझे तो स्मरण नही कि मैंने उन्हे दो सौ रुपये देनेकी वात कभी लिखी थी, पर आप कह रहे है तो मैंने अवश्य लिखा होगा। आप दुलीचन्दसे कहकर रुपये दिलवा दे।'

रुपये उन्हे दे दिये गये—उस समय, जव कि उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय थी, केवल सत्यकी रक्षाके लिये उन्होने तत्काल रुपये दे दिये।

दया

अत्युक्ति नही, सर्वथा सत्य है कि श्रीभाईजी मूर्तिमान् दया थे। किसीका कष्ट देखकर सह लेना उनके वशकी वात नही थी। उन दिनो गीतावाटिकामे एक वृद्धा मेहतरानी शौचालय

साफ किया करती थी। जाड़ेके दिन थे। मेहतरानी शौचालय साफकर, लौट रही थी और भाईजी वाटिकामे टहल रहे थे। उसे देखते ही अत्यन्त प्यारसे भोजपुरीमे भाईजीने उससे पूछा—'कहा माई, मजेमें बाटू न ?'

'हॉ बचवा, जीयत हई।' मेहतरानीने उत्तर दिया 'आज-कल जाड़ा लगत आ बेटा ! अव सर्दी ना सहात।'

'अच्छा, तनी रुका, माई।' श्रद्धेय भाईजीने तुरंत एक कम्बल और एक धुस्सा (गरम सूती चादर) मँगवाकर उसे दिलवा दिये।

'जुग-जुग जिया, बेटा !' मेहतरानीने गद्‌गद कण्ठसे आशिष् दी—' अल्ला मियॉ तोहार भला करे।'

× × ×

भाईजी प्राय. कहते—"मैं तो सर्वथा अकिचन हूँ और सवमे परमात्मा विद्यमान है। कहीसे कुछ आ जाता है तो उनकी वस्तु उनको समर्पित कर देता हूँ। 'तेरा तुझको सौपते का लागै है मोर ?'—पर जब इसमे मेरी प्रशंसा होती है तो मै लज्जासे गड़ जाता हूँ।"

परनिन्दा-असहिष्णुता

श्रद्धेय भाईजी अपने प्रवचनमे प्राय कहते—'दोष देखने हो तो अपने देखो, दूसरोके तो गुण ही देखने चाहिये।'

उनके सामने कोई किसीकी निन्दा करे—उन्हे सह्य नही था। यही कारण था कि उनके समीप रात-दिन रहनेवाले भी किसीपर अत्यन्त असतुष्ट होकर भी श्रीभाईजीके सामने उसकी निन्दा नही कर सकते थे। हम सव जानते थे कि इनसे शिकायत करनेपर अपनी ही फजीहत होने लगेगी।

एक वारकी वात है। श्रीभाईजी सत्सङ्गसे उठे तो एक आगन्तुक उनसे भारतके राष्ट्र-पति देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसादजीकी चर्चा करने लगे। श्रीभाईजीने राजेन्द्रवाबूकी वडी प्रशसा की। इसपर उक्त सज्जनने कहा—'आप डाक्टर साहवको नही जानते, भाईजी, उन्होने एक .।'

वे राजेन्द्रवाबूके चरित्रपर लाञ्छन लगाना चाहते थे और यह भाईजीके स्वभावके सर्वथा विपरीत था। उन्होने उक्त सज्जनका वाक्य पूरा होनेके पहले ही उत्तर दे दिया—'एक डिठौना रहना चाहिये, नही तो उनमे इतने सद्‌गुण है कि नजर लग जायगी।'

वे सज्जन आगे नही बोल सके। चुप हो गये।

प्रेम-व्यवहार

डा० मुहम्मद हाफिज सय्यद 'प्रयाग विश्वविद्यालय'के दर्शनविभागके अध्यापक थे। हाफिज साहव भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। अपने घरपर श्रीकृष्णका एक भव्य चित्र रखते थे और चन्दन-पुष्प, धूप-दीपसे वड़े भावके साथ उसकी पूजा करते थे। एक वार श्रीभाईजी प्रयाग गये थे, तव हाफिज साहव अपने इष्टदेवके दर्शन करानेके लिये उन्हे अपने घर ले गये। भगवान्

श्रीकृष्णके नाते हाफिज साहवके साथ श्रीभाईजीकी वडी ही आत्मीयता थी। हाफिज साहव 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु'के लिये वरावर लिखते थे। उन लेखोमे भारतीय दर्शन, धर्म एव सस्कृतिके प्रति उनका प्रगाढ प्रेम दर्शनीय है।

एक वार हाफिज साहव गोरखपुर पधारे। श्रीभाईजीके घरपर ही वे ठहरे। भाईजीने वडे स्नेहसे उनका आतिथ्य किया। अतिथि भगवान्का स्वरूप होता है, फिर वे तो भगवान् श्रीकृष्णके भक्त थे। अतएव उनके प्रति ममत्व होना स्वाभाविक था। हाफिज साहवने आग्रह किया––'आज आपके पास बैठकर आपके इष्टदेवका प्रसाद लूँगा।' श्रीभाईजीने भगवान्के भोग-के लिये विशेष व्यवस्था करवायी।

भोजनका समय हुआ। वरामदेमे पास-पास दो कम्वलके आसन लगाये गये और सामने काठके वने पीढे रखे गये। दोनोके लिये स्टीलकी थाली-कटोरीमे प्रसाद परसकर आया। भाईजी वडे प्रेमसे पूछ-पूछकर उनको खिला रहे थे तथा स्वय भी प्रसाद पा रहे थे। हाफिज साहव भाईजीकी आत्मीयतासे आप्यायित थे।

प्रसाद ग्रहण करनेके पश्चात् तौलियासे हाथ पोंछते हुए नेत्रोमे आँसू भरकर डा० सय्यद हाफिजने भाईजीसे कहा––'मुसलमानोके सवसे वडे शत्रु तुम हो।'

'वह कैसे ?'––भाईजीने पूछा।

डा० सैय्यद हाफिजने कहा––'यदि तुम्हारी तरह सव हिंदू हो जायें तो भारतमे मुसल-मानोके दर्शन भी न हो।'

कुछ दिनो वाद जव श्रीभाईजी गीता-भवन, स्वर्गाश्रम सत्सङ्गके लिये गये, तव सय्यद साहव भी वहाँ पहुँचे। मैंने देखा––भाईजीने उन्हे अत्यन्त सम्मानपूर्वक अपने समीप, जहाँ कई सन्यासी महात्मा बैठे थे, बैठाया। भाईजीके अनुरोधपर डा० सय्यद हाफिज श्रीमद्भगवद्गीतापर लगभग एक घटा बोले भी।

गो-वध-विरोधी आन्दोलनके सेनानी

धर्मप्राण श्रीभाईजी गायोकी रक्षा एव अकाल-पीडित गो-वशकी सेवा करनेमे अपनी ओरसे कुछ उठा नही रखते थे। 'गो-वध-विरोधी आन्दोलन'के समय उन्होने जिस तत्परता, लगन एव कुशलतासे आन्दोलनके लिये अर्थ-व्यवस्था की तथा आन्दोलनके सचालनमे सहयोग दिया, उससे सभी धर्माचार्य एव गो-प्रेमी परिचित है। यहाँ मै उनके कुछ पत्रोके कुछ अश-मात्र दे रहा हूँ––

पूज्य विनोवाजीके पत्रमे भाईजीने लिखा था––"यह सर्वथा स्वीकृत है कि गायके साथ हिंदूका आत्मा और प्राणका सम्वन्ध है। आज यदि पूज्य वापूजी होते तो इस प्रकारके आन्दोलन-की कोई आवश्यकता ही नही होती, इससे पहले ही सर्वथा गोवशका वध वद हो जाता। अव तो आपपर ही सवकी आँख लगी है। आप सत है और गायके सम्वन्धमे आपने यहाँतक कह दिया था कि 'भारतमे गो-वध वद नही होगा तो क्रान्ति हो जायगी।' भारतमे गोवध सर्वथा वद हो जाय––इसी उद्देश्यसे आपसे करवद्ध प्रार्थना कर रहा हूँ।"

श्रीजयप्रकाशनारायणको श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने लिखा था—'आप गोवधका सर्वथा निवारण चाहते है, यह मेरा विश्वास है। देशमे वहुत वड़े-वडे साधु-महात्मा गोवध-निवारणार्थ प्राण-त्याग करनेके लिये तैयार हो गये है। .अतएव मै आपसे साग्रह अपील करता हूँ कि आप अपने प्रभावसे केन्द्रीय सरकारद्वारा आवश्यक हो तो सविधानमे उचित परिवर्तन करके तुरत सर्वथा गो-वशके वधका निपेध करनेकी घोषणा करवा दे।'

श्रीगुलजारीलालजी नन्दाके पत्रमे श्रीभाईजीने लिखा था—"स्व० सम्मान्य श्रीशास्त्रीजीसे मेरी व्यक्तिगत वात हुई थी और उन्होने यह कहा था कि 'मेरे नामका प्रचार तो नही करना चाहिये, पर मै स्वय गोवधसे दुखी हूँ और मै ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिसमे अगली सालतक गोवध सर्वथा कानूनन वद हो जाय। इसके लिये सविधानमे परिवर्तन करना होगा तो वह भी किया जायगा।' हमारा दुर्भाग्य है कि श्रीशास्त्रीजीका अकस्मात् देहावसान हो गया। पता नही क्यो, मेरा ऐसा दृढ विश्वास है कि और देशोकी वात चाहे जो हो, पर भारतवर्षमे जवतक रक्तकी एक भी बूँद गोवधके द्वारा गिरती रहेगी, भारतका और भारतवासियोका कल्याण और सुख-साधन नही होगा।.. ."

इस प्रकार श्रद्धेय श्रीभाईजीने गो-वशकी रक्षाके लिये अकेले जितना सहयोग प्रदान किया, उतना अनेक व्यक्तियो एव सस्थाओके सम्मिलित प्रयत्नसे भी सम्भव नही हो सका।

सफल सम्पादन

'कल्याण'के विशेषाङ्को एव साधारण अङ्कोको देखकर सुविज्ञ पाठक स्वय निर्णय कर सकते है कि श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीमे सम्पादन-कला कितनी उच्चकोटिकी थी। उनकी लेखनीमे माधुर्य था, रस था, पर वह लेखनी देश और धर्मपर आँच आनेपर आग भी उगल सकती थी। पूर्व वङ्गके नोआखाली जनपदमे निरीह हिंदुओपर भीपण अत्याचार हुए। उसे वृद्धावस्थामे सह न सकनेके कारण वन्दनीय मालवीयजी चल वसे। उनके श्राद्धोपलक्षपर श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीने 'कल्याण'का एक विशेप अङ्क प्रकाशित किया, उसके मुखपृष्ठपर गङ्गा एव कोडेका चित्र था। पूरा अङ्क श्रीपोद्दारजीने स्वय लिखा था, पर उक्त सत्य तथ्यको सह न सकनेके कारण भारत सरकारने उक्त अङ्क जव्त कर लिया।

'कल्याण'मे लेखोको सुधारकर, उनके क्रम वैठाकर और सुन्दर लेख लिखकर ही उन्होने सम्पादनमे सफलता नही प्राप्त की थी, अपितु 'कल्याण'-जैसे पवित्र पत्रके सर्वथा अनुकूल, ऋषितुल्य उनका जीवन था।

'कल्याण'के लेखकोका वे वडा सम्मान करते थे और उन्हे प्रत्येक रीतिसे सतुष्ट रखते थे। अपने कार्यमे सहयोग देनेवालोको वे सदा प्रोत्साहन देते रहते थे। यहाँ मै उनके दिनाङ्क ३-६-३८ के गीताभवन, स्वर्गाश्रमसे लिखे पत्रका कुछ अश उद्धृत कर रहा हूँ, जिनमे उनके अपने सहयोगियोके प्रति भाव एव उनकी उस समयकी मानसिक स्थितिकी सहज ही कल्पना हो सकती है। उन्होने लिखा था—

'प्रिय श्रीदुवेजी,

सादर प्रणाम। आपके पत्र मिल गये थे। सूची ठीक करके 'कल्याण'मे प्रकाशनार्थ

भेज दी है। आपने वडा ही परिश्रम किया। पू० श्रीकविराजजीका तो परम अनुग्रह है ही। विशेषाङ्ककी सूची छपनेको तो भेज दी है, पर आजकल मेरे मस्तिष्ककी जो स्थिति है और जो उत्तरोत्तर वढ रही है, उसे देखते सम्पादनका काम मै कर सकूँगा—यह नही कहा जा सकता। प्रतिदिन ही ५-७ घटे वाह्य चेतना सर्वथा लुप्त रहती है। चेतनाके समय भी वार-वार यहाँका सव कुछ लुप्त होता रहता है। पता नही, क्या होता है ? कामकाज प्राय वद है। मै तो अधिक समय वद रहता हूँ।'

श्रीभगवान्‌मे उनकी तन्मयता उस स्थितिमे पहुँच गयी थी कि उन्हे प्राय वाह्य-विस्मृति रहने लगी थी। उस स्थितिमे मैने 'कल्याण'के लिये उनके पास 'क पन्था' शीर्षक एक लेख भेजा था। उक्त लेखमे अनेक घटनाओके साथ लिखा गया था कि वुढापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमेसे किसीका भी साधन नही कर सकता। इसलिये युवावस्थामे ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये।'

'कल्याण'मे जव मैने अपना लेख देखा, तव आश्चर्यचकित रह गया। अत्यधिक व्यस्तता, अस्वास्थ्य एव प्रभु-तल्लीनताकी उच्चतम अवश स्थितिमे जव उनकी वाह्य चेतना प्राय लुप्त होती रहती थी, वे सम्पादन-कार्यमे कितने सजग रहते थे और अपने सिद्धान्तपर किस प्रकार दृढ रहते थे, उनकी जोडी हुई पक्तियोसे स्पष्ट हो जाता है। मेरे उक्त लेखके अन्तमे श्रद्धेय श्रीभाईजीने इतना अपनी ओरसे लिख दिया था—

"भक्तराज प्रह्लाद तो युवावस्थाकी प्रतीक्षा भी नही करना चाहते। वे अपने वालक वन्धुओसे कहते है—'इस ससारमे मानव-जन्म दुर्लभ है। इसीमे परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। पर पता नही, इसका कव अन्त हो जाय, इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको वचपनमे ही भागवत-धर्मोका आचरण कर लेना चाहिये—

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥
(श्रीमद्भागवत ७। ६। १)"

'आप मेरी आत्मा और मेरे प्राण है।' —एक वार आवेशमे इस वाक्यका प्रयोग श्रद्धेय भाईजीने मेरे लिये किया था और भाईजीके अन्य स्वजनोकी भाँति मेरा हृदय भी कहता है—'भाईजी मेरे थे और मेरे है।'

'श्रीभगवान् एव उनके भक्तोके चरित्रके अतिरिक्त सासारिक चर्चासे वचना चाहिये'—श्रद्धेय श्रीभाईजी कहते थे और इस लेखके द्वारा निश्चय ही मैने भक्त-गुण-गान कर समयका सदुपयोग एव श्रीभाईजीकी ही आज्ञाका पालन किया है।

उन्हींके मतलबकी कह रहा हूँ, जवान मेरी है, वात उनकी।
उन्हींकी महफिल सँवारता हूँ, चिराग मेरा है, रात उनकी॥
फकत मेरा हाथ चल रहा है, उन्हींका मतलब निकल रहा है।
उन्हींका मजमूं, उन्हींका कागज, कलम उन्हीका, दवात उनकी॥

●

भाईजीकी तीर्थयात्रा ट्रेन उज्जैनमें

श्रीकृष्णगोपालजी माथुर

प्रात कालका समय । स्टेशनपर कडकडाती शीतमे लोगोकी भीड बडी उत्सुकताके साथ प्रतीक्षा कर रही थी । 'कल्याण' एव गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोके कारण जिनके प्रति हृदय अपार श्रद्धासे भरा था, उन महामानवका स्वागत करनेके लिये सवके हृदय प्रफुल्लित हो रहे थे । अचानक गाडीकी सीटी सुनायी पडी और ढोलक-मजीरे खनक उठे । हरिकीर्तनकी ऊँची ध्वनिसे स्टेशन और दूर-दूरका वातावरण गूँज उठा ।

गाडी रुकते ही भीड पुष्पमालाएँ लेकर भाईजीके डिब्बेकी ओर दौड़ पडी । पूज्य भाईजीने उतरते ही हाथ जोडकर सबका स्वागत किया । उपस्थित जन-समुदायने देखा—भाईजी साक्षात् प्रेमावतार ही है । चारो ओरसे पुष्पवर्षा होने लगी, तथा लोग माला पहनानेके लिये आगे आने लगे । श्रीभाईजी सबको मना कर रहे थे, पर श्रद्धाके प्रवाहको रोक सकना सम्भव नही था । ऐसा लगता था कि श्रीभाईजी पुष्पमालाओमे आवृत हो गये हो ।

वही प्लेटफार्मपर माइकपर परम आदरणीय श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीद्वारा प्रात कालीन ईश-प्रार्थना एव कुछ सुन्दर पदोका गान हुआ । चारो ओर भक्तिका प्रवाह फैल गया । लोगोको इस वर्षाके साथ ही ज्ञान मिला कि प्रात काल भगवान्की प्रार्थना करना मनुष्यका पहला मुख्य कर्तव्य है ।

आदरणीय भाईजीसे मैने पूछा—'भाईजी, अव क्या प्रोग्राम है ?'

भाईजीने गम्भीर भावसे उत्तर दिया—"पहले तो मुझे अपने 'आफिस'का काम निपटाना है ।" इस उत्तरसे ध्वनित होता था कि इस बोझको हल्का करनेके वाद ही यहॉके कार्यक्रमोमे सम्मिलित होना है । 'कल्याण' जो देश-विदेशकी जनतामे इतना प्रिय एव प्रसिद्ध हो गया है, उसके पीछे भाईजीकी यही साधना, लगन, रुचि, कर्तव्य-भावना, त्याग और उसे प्राथमिकता देनेकी वृत्ति थी । अवन्तिका-जैसे पुरातन पुण्यक्षेत्रमे आकर यहॉके प्रसिद्ध देवविग्रहोका दर्शन, क्षिप्रास्नान एव प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलोको देखकर कृतार्थ होना है, परतु ये सव वादमे, पहले 'कल्याण'के कामकी चिन्ता ।

जव भाईजी उत्सवमे पधारे, तव दोनो ओर लोगोकी कतारोके बीच चलते हुए उनके सिरका टोपा खिसकते-खिसकते नीचे गिर गया । भाईजी स्मितपूर्वक सवको हाथ जोड प्रणाम करते हुए चल रहे थे, उन्हे टोपेकी सुधि ही नही रही । टोपेको नीचे गिरा देख एक सज्जनने उसको उठा लिया और धूल झाडकर भाईजीके हाथमे उसे थमा दिया । पर भाईजीको न आश्चर्य है, न ज्ञान है अपनी असावधानीका । इस सहज सरलताको देखकर सव लोगोके मुखपर हँसी फूट पडी ।

कुछ सज्जनोने श्रीभाईजीसे निवेदन किया कि सवके लिये दूधका प्रवन्ध है, स्वीकार करे। भाईजीने पीयूप-सनी वाणीमे उस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया। किंतु लोग वार-वार आग्रह करते हुए बोले—'हमलोग तथा दुग्धादि सभी भगवान्के है, फिर अङ्गीकार करनेमे क्या वाधा है ?' भाईजी मुस्कराये और बोले—'आपका कहना सत्य है, किंतु लौकिक व्यवहारमे ऐसा उचित नही। हमारे पास सभी साधन मौजूद है।'

सर्वप्रिय भाईजीने यह अस्वीकार कुछ ऐसी नम्रताभरी मुद्रामे किया कि सभी गद्‌गद हो गये और सवने उनकी वात मान ली।

श्रीभाईजीके आदेशानुसार किरायेकी वसोका प्रवन्ध किया गया और उनसे सभी यात्री क्षिप्रास्नान तथा देवदर्शनको गये-आये। सव वसोका किराया चुका दिया गया, किंतु थोडी देर वाद एक सज्जनने आकर दुवारा किराया माँगा—भूलसे नही, जान-बूझकर और भाईजीके कहनेसे उन्हे दूसरी वार किराया दे दिया गया। यह वात कुछ यात्री जान गये, वे आपसमे काना-फूसी करने लगे। उज्जैनके लोगोने वताया कि 'ये महाशय तो इसी प्रकारके कर्म किया करते है।' यह चर्चा मानव-मित्र भाईजीके कानोतक पहुँची। उन्होने तत्काल सवको चुप कर दिया और सवको समझाया कि इस विषयकी जरा भी चर्चा न की जाय। भाईजीकी अनुमतिसे यह वात वही ठडी पड गयी, भुला दी गयी। जानकार जान गये कि भाईजी कितने उदार है, अपनी हानि सहकर—दूसरेकी वेईमानी देखकर भी उसकी इज्जत-आवरूपर जरा भी आँच नही आने देना चाहते। श्रीभाईजीकी ऐसी शालीनता देखकर जन-समुदाय दग रह गया और भाईजीके इस व्यवहारकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगा।

पीछे महाकाल-प्राङ्गण, पटनीवाजार, माधवनगर, धर्मशाला, महिला-समाज, गोशाला-गोष्ठीमे श्रीभाईजीके जो प्रवचन-भाषण हुए, उनसे उन्होने हजारो लोगोके दिलोमे ऐसा प्रभाव जमाया कि आज भी उनकी चर्चा होती रहती है। वे प्रवचन-भाषण इतिहासकी एक नवीन उज्ज्वल कडी वन गये है।

●

जो जैसा कहता है, वैसा ही करता है, नाना रूपोंमें एक ईश्वरको ही देखता है, जिसे सगुण-भजनमे जरा भी संदेह नहीं है, जिसने मद, मत्सर और स्वार्थका त्याग कर दिया है, जिसके सांसारिक उपाधि नहीं है, जिसकी वाणी सदैव नम्र और मधुर होती है, जो सदा-सर्वदा सरल, प्रिय, सत्यवादी और विवेकी होता है, जो कभी मिथ्याभाषण नहीं करता, जो दीनोपर दया करनेवाला, मनका कोमल, स्निग्धहृदय, कृपाशील और रामजीके सेवकगणोकी रक्षा करनेवाला है, वह मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीका दास इस संसारमे धन्य है।

—समर्थ गुरु श्रीरामदास

●

मानव-सेवामें भगवत्सेवाके द्रष्टा

डा० श्रीकेदारनाथ लाहिड़ी

मुझे श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको प्राय: उस समयसे जाननेका महान् सौभाग्य प्राप्त है, जबसे वे गोरखपुर आये। 'भाईजी' सम्बोधन इसका प्रमाण है कि सभीके प्रति प्रेम, सहानुभूति और दयाके कारण उन्हे कितना अधिक स्नेह और सम्मान प्राप्त था।

तरुणावस्थाके प्रारम्भमे क्रान्तिकारीके रूपमे, प्रौढावस्थामे एक प्रकाण्ड विद्वान् और धार्मिक गुरुके रूपमे तथा ढलती हुई आयुमे सम्पर्कमें आनेवाले सभी व्यक्तियोके लिये एक वडे भाई-के रूपमे—इस प्रकार उनका सम्पूर्ण जीवन देश और मानवताकी सेवाके निमित्त समर्पित था।

उन्होने यह अनुभव किया था कि हमारे देशकी सवसे वडी आवश्यकता चरित्रका निर्माण है। सदियोकी पराधीनताके कारण हम नितान्त स्वार्थी, स्वनिष्ठ तथा देश एव समाजके प्रति कर्त्तव्यभावनासे रहित हो चुके है। श्रीभाईजीका विश्वास था कि वालक-वालिकाओमे नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाकी सुदृढ नीव डालकर और प्रौढ व्यक्तियोमे धर्म एवं सत्यकी भावना जाग्रत्कर परिवर्तन लाया जा सकता है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उन्होने 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ किया और उसे देशकी सर्वप्रिय तथा सर्वाधिक ग्राहकोवाली पत्रिका वना दिया। उन्होने गीता-प्रेस-जैसी महान् सस्थाके माध्यमसे अनेक अलभ्य धार्मिक ग्रन्थोका सम्पादन और प्रकाशन कर उन्हे वहुत सस्ते मूल्यमे जनताको सुलभ कराया। साथ ही नवीन ग्रन्थोकी रचना भी की। इन ग्रन्थोमे उपनिषदो तथा पुराणोके आधारपर तथा अपने स्वतन्त्र ज्ञान एव अनुभवसे उन्होने चरित्र-निर्माण, कर्त्तव्य-पालन, मानव-सेवाकी शिक्षा वडी ही सरल भाषामे दी है।

श्रीपोद्दारजी हमारे धर्मके उच्चतम आदर्शोके व्याख्याता थे। सभी लोगोपर वे इसके सर्व-ग्राह्य तथा सर्वप्रिय गुणोकी छाप डालनेकी चेष्टा करते थे। श्रीरामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेका-नन्द और श्रीअरविन्द (जिनके साथ कुछ कालतक उनका घनिष्ठ सम्पर्क रहा) के समान उन्होने भी यही शिक्षा दी कि हिंदूधर्मका दृष्टिकोण सर्वव्यापी है। उनका विश्वास था कि 'मानव-सेवा भगवान्की उत्तम सेवा है।' इसी भावसे वे अनेक परोपकारी सामाजिक सगठनोसे सम्वद्ध थे। 'गीताप्रेस-सेवादल'के माध्यमसे अकाल एव वाढ-जैसी विपत्तियोसे पीड़ित लोगोको सहायता देने और उनका दु ख-निवारण करनेमे वे अग्रणी रहते और उनका सहायता-कार्य जवतक आवश्यकता रहती, चलता रहता। कुष्ठरोगसे पीडित लोगोके प्रति महात्मा ईसा और गाधीजीके समान उनके हृदयमे भी वडी दया एव सहानुभूति थी और उनका दु ख दूर करनेके लिये उन्होने गोरखपुर-स्थित कुष्ठसेवाश्रमके कुशल सचालनमे पूर्ण सहयोग एव आर्थिक सहायता दी। आज यह देशमे अपने ढगकी एक महत्त्वपूर्ण सस्था वन गयी है।

भाईजीने गोरखपुरके निमित्त जो दूसरी वडी मानव-सेवा की है, वह है—'मूक-वधिर-विद्यालय'की स्थापना। विद्यालय एक किरायेके मकानमे आरम्भ हुआ था, लेकिन श्रीपोद्दारजीकी दानशीलता और प्रयाससे अव उसका स्वतन्त्र भवन वन गया है।

अनेक विशिष्ट गुणोसे युक्त होनेपर भी भाईजी अहभावनारहित तथा अत्यन्त विनम्र थे। वे प्रदर्शनसे दूर रहते और समाजसे किसी भी प्रकारकी मान्यताकी कामना नही रखते थे।

उनके देहावसानसे समूचे देशकी और विशेषकर गोरखपुरकी अपूरणीय क्षति हुई है। उनकी स्मृतिको स्थायी रखनेके लिये अब उनके सत्कार्योका सचालन तथा जीवनादर्शोका अनुसरण ही अवलम्बन रह गया है।

●

अद्भुत अतिथि-सेवी

श्री राय अम्बिकानाथ सिंह

वहुत दिनोसे पूज्य पोद्दारजीके साक्षात्कारकी अभिलाषा थी, किंतु गृहस्थीकी झझटोसे समय नही निकाल पाता था। 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागके भाई रामलालजीसे मेरा घनिष्ठ परिचय था। उनके अनुरोध और आन्तरिक प्रेरणासे १९४५मे मै पूज्य भाईजीके दर्शनार्थ गोरखपुर जा पहुॅचा। रामलालजीके निवासस्थान 'आनन्द-सदन'मे ठहरा। दूसरे दिन रामलालजी-के साथ ही पूज्य पोद्दारजीके दर्शनार्थ गीतावाटिका गया। वहाँ मुझे श्रीभाईजीके दर्शन हुए। वडी देरतक आध्यात्मचर्चा होती रही। जव मैने विदा माॅगी, तव बोले—'यहाॅ अभी आपको दो दिन रहना है। यही गीतावाटिकामे रहिये।' इसके वाद तुरत ही रामलालजीसे मेरा सामान वहाॅ मॅगा लेनेको कहा। मै इस प्रकार गीतावाटिकामे ही टिक गया। उसी दिन सायकालमे श्रीराम-लालजीके साथ 'गोरखनाथ-मन्दिर'का दर्शन तथा महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे मिलने जानेकी अनुमति मैने पूज्य भाईजीसे माॅगी। भाईजीने तुरत अपनी गाडी मॅगाकर मुझे दी और कहा कि 'इससे ही जहाँ जाना हो, जाइये।'

मै भाई रामलालजीके साथ गोरखनाथ-मठ गया। वहाॅ कुछ देर स्वर्गीय दिग्विजयनाथ-जीसे वाते की। लौटते समय मोटरका पिछला दरवाजा, जो कि गलतीसे खुला रह गया था, 'गोरखनाथ-मन्दिर'के निर्माणाधीन प्रवेश-द्वारसे टकरा गया। इससे गाडी बुरी तरहसे क्षतिग्रस्त हो गयी। मुझे इसका वडा दुख हुआ। मैने उस गाडीको सीधे लखनऊ लाकर ठीक करा लेनेके वाद ही पूज्य पोद्दारजीके पास ले जानेका निश्चय किया, परतु श्रीरामलालजीने मना किया और पोद्दारजीके अप्रसन्न हो जानेका भय दिखाया। इसलिये गीतावाटिका गया और पोद्दारजीको वतला-कर लखनऊ गाडी साथ ले जानेकी अनुमति माॅगी। पोद्दारजी विनीत स्वरमे बोले—'भगवान्की वडी दया है, जो आपमेसे किसीको किसी प्रकारकी चोट नही आयी। मुझे इसका हार्दिक दुख है कि मेरी एक छोटी-सी वस्तुसे आपको इतना मानसिक कप्ट हो गया। इससे अतिथिरूपमे आपकी सेवामे मेरी तरफसे त्रुटि हो गयी। मै स्वय इसका प्रायश्चित्त करूँगा।' इतना कहकर १५ मिनट-तक उन्होने अतिथि-सेवापर एक सारगर्भित प्रवचन दिया। अव मुझे वे शब्द तो याद नही है, परतु इतने दिनो वाद जव भी पोद्दारजीकी उस मुखमुद्राका स्मरण करता हूँ तो हृदय भर आता है। इस प्रकारके महान् और दयालु महापुरुष अव कहाँ देखनेको मिलेगे? उनकी स्मृतिको सहस्र वार वन्दन।

●

संतोंकी परम्परामें श्रीभाईजी

श्री पी० एस० श्रीनिवासन्

'कल्याण'के माध्यमसे मुझे श्रीभाईजीके 'अमृतोपदेश' पढनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मुझ-जैसे लोगोको 'माया और मोह'के कीचडसे ऊपर उठानेमे श्रीभाईजीने जो उत्तम सेवा की है, उसके निमित्त उनके प्रति कृतज्ञताज्ञापन हेतु मेरे पास शब्द नही है। मै उनकी अनुपस्थिति-मे भी उन्हे अपना 'गुरु' मानता हूँ। उनके शब्द—'दूसरोकी भावनाओका उचित सम्मान करो, उनके पदका सम्मान करो, अपनी कमियोको देखते रहो और उन्हे दूर करनेकी चेष्टा करो, तव तुम देखोगे कि समस्त विश्व तुम्हारा ही है'—मेरा प्रकाशस्तम्भकी भाँति मार्गदर्शन करते है।

मेरी दृढ धारणा है कि हमे श्रीभाईजी-जैसा महापुरुष मिलना कठिन है। उनके जानेसे देशकी जो क्षति हुई है, वह शब्दोमे व्यक्त नही की जा सकती। आजके युगमे देशवासियोको सही मार्ग दिखानेके लिये श्रीभाईजी-जैसे सतोकी नितान्त आवश्यकता है। मैने 'कल्याण'के मई-जून १९७१के अङ्कमे प्रकाशित 'श्रीभाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दारके अन्तिम उपदेश' शीर्षक लेख पढा। मै अपने आँसुओको रोक नही पाया। किस प्रकार भीषण पीडामे भी श्रीभाईजी जीभसे भगवन्नाम लते रहे। सचमुच भगवान्‌के प्रति उनकी निष्ठा अनुपम थी।

उसी लेखमे मैंने यह भी पढा कि अन्तिम अवस्थामे श्रीभाईजीने कैंसरकी असह्य पीडाका भोग किया। इतनी वृद्धावस्थामे कैंसरसे उत्पन्न भयानक कष्टके विचारसे मै वडी देरतक रोता रहा। अन्तमे मुझे भीतरसे प्रेरणा हुई कि भाईजीके श्रेणीके जितने भी सत एव विचारक आजतक हुए है, उन्होने शरीर छोडनेके पूर्व भयकर व्याधि एवं कष्टका भोग किया है। वेदान्तदर्शनका 'भाष्य' लिखते समय श्रीआदिशंकराचार्य भीषण और तीव्र वेदनायुक्त ववासीरसे पीड़ित हो गये थे। उनके शिष्योने आचार्यचरणसे किसी औषध या योगशक्तिद्वारा रोगका शमन करनेका अनुरोध किया। आचार्यचरणने शिष्योकी प्रार्थना यह कहकर अस्वीकार कर दी—'यह सव अनिवार्य कर्मफल-भोग है।' भाष्य-लेखनका काम शान्तिसे उस समय भी चलता रहा, जव शरीर अस्थियोका ढाँचामात्र रह गया था।

इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण परमहंस भी अन्तिम अवस्थामे गलेमे कैंसरसे पीडित रहे। उन्होने भी अपने शिष्योके तर्कोको अस्वीकार कर दिया, जव शिष्योने उनसे जगन्माता कालीसे रोगमुक्तिके लिये प्रार्थना करनेको कहा।

यही हाल अरुणाचल (तमिलनाडु) के संत श्रीरमण महर्षिका था। उनके हाथमे कैंसर था और जव डाक्टरोने उनके हाथ और भुजाकी बडी शल्यक्रिया करनी चाही, तव वे उस प्रस्तावसे इस शर्तपर सहमत हुए कि रोगसे आक्रान्त भागको या सम्पूर्ण शरीरको चेतनाशून्य नही किया जायगा।

हमारे 'भाईजी' सतोकी उसी परम्परामे है। अतएव भगवान्‌की इच्छा थी कि उनका पार्थिव शरीर भी ऐसी भयकर व्याधिसे ग्रस्त हो, जिससे भाईजी मुझ-जैसे अपने लाखो-लाखो स्वजनो-भक्तोको यह प्रदर्शित कर सके कि "आत्मा इस नश्वर शरीरसे भिन्न है और केवल 'द्रष्टा' है।" भाईजीने सच ही कहा था—'यद्यपि मेरे शरीरमे असह्य वेदना हो रही है, पर मैं भीतरसे वहुत प्रसन्न हूँ।' केवल 'जीवन्मुक्त' ही ऐसा हो सकता है।

●

संतोंके प्रति परम श्रद्धालु

श्रीरामकृष्णप्रसादजी

परम भागवत श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे मेरी पहली और अन्तिम भेट अगस्त १९७०मे हुई थी। प्रतिवर्ष तीन-चार वार मै पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा वावाके दर्शनार्थ उनके आश्रममे जाया करता हूँ। उस समय वे जो कुछ उपदेश देते है, उसको लिख लेता हूँ और घर आनेपर लेखवद्ध कर लेता हूँ। गत २-३ वर्षोसे विशाल लोकहितकी भावनासे उन लेखोको मै 'कल्याण'मे प्रकाशनार्थ भेज देता था और श्रीपोद्दारजी वडे आदरके साथ उन्हे प्रकाशित कर देते थे।

एक दिन पूज्यपाद श्रीदेवरहवा वावाने मुझसे यह प्रश्न किया—'वच्चा, तुम मेरा उपदेश 'कल्याण'मे भेजते हो। क्या तुम्हारा कोई परिचय हनुमानप्रसादजी पोद्दारसे है?' मैने कहा—'नही वावा, मुझे उनसे मिलनेका कभी सौभाग्य ही नही मिला।' इस वार्तालापके वाद अकस्मात् श्रद्धेय पोद्दारजीका एक पत्र मिला। मै पूज्यपाद वावाके दर्शनार्थ उनके आश्रममे गया और श्रीपोद्दारजीका वह पत्र उनको पढकर सुनाया। पत्र सुनकर वे वहुत प्रसन्न हुए और वोले—'श्रीपोद्दारजी निश्चय ही एक महान् व्यक्ति और महान् सत है। उनको मेरा प्रसाद तुम अपने हाथसे देना और अगले सप्ताह तुम गोरखपुर स्वय जाना।' पूज्य श्रीवावाने अपने प्रसादमे अमृत-वूटी और एक पुस्तक, 'सर्वात्मिदर्शन' श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीको देनेके लिये मुझे दी।

मै श्रद्धेय श्रीपोद्दारजीके निवासस्थानपर पहुँचा। लगभग १२ वजे होगे। श्रीपोद्दारजीके एक सेवकने कहा—'अव तो उनके भोजनका समय हो गया है। सम्भवत अभी भेट न हो।' लेकिन मैने प्रहरीको समझाया कि सूचना दे दो, शायद मुझसे मिलनेके लिये कोई समय वे नियत कर दे। सेवकने सूचना दी और उन्होने तत्काल मुझे अपने कमरेमे वुलवा लिया। मैने श्रद्धासहित पोद्दारजीका अभिवादन किया और पूज्यपाद वावाका प्रसाद उन्हे समर्पितकर बैठ गया। वार्तालापके क्रममे मैने कहा—'वहुत दिनोसे आपका यश और कीर्ति सुन रखी थी, लेकिन कभी दर्शनका सौभाग्य नही मिला था। आज एक महान् विभूतिका दूत वनकर और उनका उपहार लेकर आप-ऐसे एक दूसरे सतकी सेवामे उपस्थित हुआ हूँ।' मेरी वात सुनकर वे मुस्कराते हुए वोले—'मै कौन सत हूँ। मै तो सतोकी जूठन वटोरनेवाला एव उसका वितरण करनेवाला हूँ।'

कितनी नम्रताके ये शब्द थे, जो मेरे कानोमे आज भी गूँज रहे है। गीताप्रेस-जैसी संस्थाके सचालकके मनमे तनिक भी अभिमान नही। उनके चेहरेसे कितनी सादगी और नम्रता टपकती थी। इसका मेरे ऊपर तत्काल प्रभाव हुआ। उनके प्रत्येक भाव और व्यवहारसे महानता प्रकट हो रही थी। गीताप्रेस श्रद्धेय पोद्दारजीकी कीर्तिका एक उज्ज्वल प्रतीक है। मेरा विश्वास है कि युगोतक उनकी उज्ज्वल कीर्ति 'कल्याण' और गीताप्रेसकी सेवाओके द्वारा जगत्मे फैलती रहेगी।

●

आस्तिकताके मूर्तिमान् स्वरूप

वैद्य पं० श्रीभैरवानन्दजी शर्मा 'व्यापक' रामायणी

श्रीपोद्दारजीके प्रथम साक्षात्कारका सौभाग्य मुझे १९५४ मे प्रयागके कुम्भमेलेमे प्राप्त हुआ था। वे भगवन्नामस्मरणके अनन्य प्रेमी थे। इस वातके पूर्ण साक्षी तो वे ही सुकृतीजन है, जो दिन-रात उनके सम्पर्कमे रहे हैं। किंतु मुझे लिखे गये उनके एक पत्रकी प्रतिलिपि यहाँ दे रहा हूँ। उसे पढकर पाठक महानुभावोको उनकी ब्रह्मण्यता, सत्यता, निरभिमानता, सरलता तथा भगवन्नामानुरागका एक साथ ही परिचय प्राप्त हो जायगा।

सम्मान्य श्रीशर्माजी! सादर प्रणाम। शरीर शिथिल रहता है। कामकाजमे मन ही नही लगता। नदी-तटके सूखे पेडकी तरह स्थिति है। जरा-सा पानीका वहाव आया कि समाप्त। आप मानसके भक्त, अनन्य राम-भक्त है। आपके चरणोमे विनीत करवद्ध प्रार्थना है कि ऐसा आशीर्वाद दे, जिससे जीवनके शेप समयका प्रत्येक क्षण केवल भगवन्नामस्मरणमे ही वीते। रामसे भी यही विनय है——

अव प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सव तजि भजन करौं दिन राती॥

दीन-हीन
हनुमान

मेरी जानकारीमे तो श्रीपोद्दारजीने अपने करकमलोसे ऊपर लिखी पंक्तियोमे सम्पूर्ण शास्त्रोका सारभूत सिद्धान्त, मानव-जीवनका एकमात्र कर्तव्य व्यक्त कर दिया। इस कलिकालमे इस प्रकार प्रत्येक क्षणको भगवन्नामस्मरणमे ही व्यतीत करनेवाले कितने सुकृती है ?

इसके पश्चात् ३१-१०-५८ के एक पत्रमे उन्होने एक स्थानपर लिखा था——'मेरा स्वास्थ्य साधारण चल रहा है, पर अव तो क्षयकी ओर ही जा रहा है। नदी-किनारेका खोखला पेड कभी भी एक झोकेमे गिर जा सकता है। इधर सारे सार्वजनिक कार्योसे पृथक् होकर जीवनके शेप क्षण एकान्तमे वितानेका मन हो रहा है। कई सस्थाओसे सम्वन्ध-त्याग भी कर दिया है। गीताप्रेससे तो एक प्रकारका अभिन्न सम्वन्ध-सा है, तथापि इससे भी पृथक् होनेकी चेष्टा कर रहा हूं।' हृदयकी ऐसी सच्ची भावनाको यथार्थ रूपसे वही प्रकट कर सकता है, जिसका हृदय सरल हो——

राम कहा सव कौसिक पाहीं। सरल सुभाव छुआ छल नाहीं॥

आजकल लोग धर्म और भगवान्को सर्वथा भूले जा रहे है। ऐसे भयंकर समयमे श्री-पोद्दारजीने 'कल्याण' तथा अन्य पुस्तकोके प्रचारके माध्यमसे देशमे वढी हुई नास्तिकता-अनैतिकताको दूर करनेका वह स्तुत्य प्रयत्न किया है, जो भारतीय इतिहासमे स्वर्णाक्षरोमे अङ्कित करनेयोग्य है। वे प्राचीन परम्परा, धर्म एव सस्कृतिके कट्टर अनुयायी थे। वर्तमान कालमे हिंदूधर्मकी रक्षा जितनी पोद्दारजीके कारण हुई, उतनी अन्य किसीके द्वारा हुई हो——ऐसी वात कोई नही कह सकता। उनके लोकोत्तर कार्य-कलापको देखते हुए मैं तो यही मानता हूँ कि नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार धर्म एवं आस्तिकताके मूर्तिमान् स्वरूप थे।

●

अनुपम पथ-प्रदर्शक

श्री शिव शंकर आपटे

हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी भूलोकका अपना निवास समाप्तकर हमसे दूर भगवच्चरणोमे चले गये। मै विदेश-यात्रापर था। यह दु:खद समाचार सुनते ही मेरा मन कुछ क्षणके लिये विषण्ण हो उठा एव जब-जब भाईजीके सहवासमे गुजारे समयका स्मरण हुआ, तब-तब चित्त द्रवित होता रहा। मनोव्यथाका प्रथम कारण स्वार्थमूलक ही था। कितना महाप्रभावी, हिंदुओका समर्थक अदृश्य हो गया! अब हमारे कार्यकी गति-प्रगतिमे जब बाधा—समस्याएँ आयेगी, तब किसके पास मार्ग-दर्शनके लिये जायँगे? उनके सदृश साधन-सहायता हमको कौन देगा? इसी विचारसे मनमे कुछ विषाद होता रहा।

श्रीभाईजीके साथ मेरा परिचय और सम्बन्ध 'हिंदू विश्व परिषद्'की स्थापनाके निमित्तसे हुआ। परिषद्के ध्येय एवं कार्यके विषयमे श्रीभाईजीका मार्ग-दर्शन एव समर्थन प्राप्त करनेके लिये २८ दिसम्बर सन् १९६५ को गीतावाटिकामे मैने उनका प्रथम दर्शन किया। विशाल प्रतिष्ठानके एक छोटे-से कमरेमे चारपाईके सनिकट प्रकाशित ग्रन्थ-पुस्तिकाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ और प्रकाशनार्थ हस्तलिखित एव टकित कागजोके जगलमे—नही', 'वाङ्मय उद्यानमे' उद्दीप्त-सा एक योगी ही प्रसाद देनेके लिये बैठा हो, ऐसा मुझे साक्षात्कार हुआ।

श्रीभाईजीने मेरा निवेदन साद्यन्त सुना, कुछ प्रश्न पूछे, कुछ सूचनाएँ दी, कुछ अन्य विषय-विचार सुझाये, अन्तमे बहुत ही प्रसन्नतासे कहा—'परिषद्का निर्माण अत्यन्त सामयिक है। इतने लबे कालतक हमलोगोने अपने तत्व-विचारोके बीज बोये, वे निष्फल नही गये, उनका ही यह पौधा है। यह विशाल वृक्ष बने, इसकी शाखाएँ अपने सनातन समाजके लिये सघन छाया प्रस्तुत करे, हमारे समाज, धर्म, संस्कृतिकी सदियोसे कुण्ठित प्रगतिको विश्वमे पुन एक बार प्रभावी बनानेमे यह परिषद् साधन-सम्पन्न समर्थ माध्यम बने।'—ऐसा आशीर्वाद देकर श्रीभाईजी परिषद्के आजीवन सदस्य एव सस्थापक—न्यासी बने। परिषद्ने श्रीभाईजीको उपाध्यक्ष चुना, तबसे अन्त-कालतक परिषद्के कार्यका निरीक्षण और यथावश्यक मार्ग-दर्शन करते रहे।

श्रद्धेय श्रीभाईजीने हिंदू-धर्म एव हिंदू-सस्कृतिके तत्वज्ञानको केवल भारतमे ही नही, अखिल विश्वमे फैलानेके लिये जो अद्वितीय कार्य किया है, उसका प्रभाव सर्वमान्य है। वैदिक वाङ्मय, रामायण, महाभारत आदि काव्य, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थोका हिंदू-समाजके लिये ही नही, वर ससारके मानव-समाजके कल्याण हेतु प्रकाशन और वितरण किया। भावी पीढियाँ अपनी जीवन-यात्रामे इस ग्रन्थ-धनका पाथेयरूपमे उपयोग करेगी। श्रद्धेय श्रीभाईजी वर्त्तमान समयके एक असाधारण साधु पुरुष थे। उनका दैनिक जीवन भावुक भक्तका-सा सादा और सरल था, तो उनका विचार-स्तर महान् तत्व-चिन्तकका-सा उच्च एव उदात्त था। अन्तिम दिनोमे तो श्रीभाईजी व्यावहारिक विषयोको त्यागकर घटो-घटो, दिनो-दिन भावावस्थामे समाधिस्थ रहते थे। किसीके

लिये भी उनसे मिलना, वार्तालाप करना सम्भव नही रह गया था। इस परिस्थितिमे विश्व-कल्याण हेतु निर्माण किये प्रतिष्ठानका कार्य कैसे चलता होगा—ऐसा प्रश्न स्वाभाविक खडा हो सकता है। परन्तु यह भी तो एक योगीकी कुशलता थी कि उनके द्वारा पुष्ट-दृढ संयोजित यह 'कल्याण'-प्रतिष्ठान सुचारुरूपसे चल ही रहा था और भविष्यमे भी चलता ही रहेगा।

एक दिन समाधिस्थितिकी अवस्थामे भाईजी थे और मै वहाँ पहुँचा। उनकी समाधि भङ्ग करना मुझे उचित नही लगा। परतु दरस-परस करके ही मै जाऊँगा—ऐसा निश्चय करके मै रुका रहा। दो दिनके पश्चात् भाईजीने मुझे बुलाया और जो उनकी प्रसन्न मुद्राका दर्शन हुआ, उसका वर्णन शब्दोमे करना कठिन है।

शान्त, उदात्त, स्थितप्रज्ञ पुरुषकी शब्द-व्याख्या हम सब ही जानते है; परतु ऐसे पुरुषका साक्षात् दर्शन कितना, किसको होता है? भावावस्थासे बाहर आये श्रीभाईजीने उस दिन वही दर्शन दिया, जिसका वर्णन योगशास्त्रमे और गीतामे अन्यान्य स्थानोपर मिलता है—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

(गीता १२। १३)

'मैत्री, करुणा, मुदिता, दुःख-सुखमे समता, स्वस्थता—ये और ऐसे अन्य लक्षणोद्वारा सकेतित मन प्रसादयुक्त साधु पुरुषका साक्षात्कार मुझे हुआ। इन गुणोका परिणाम अपने इर्द-गिर्द समाधान, सुख और आनन्दका अनुभव फैलाना ही है; उससे ही इन गुणोके उत्कर्षकी पूर्णता मापी जाती है। भाईजीके इस दर्शन और भाषणने मुझे एक दिनकी अवर्णनीय अनुभूतिसे भर दिया, जिसका स्मरण आज भी—एक क्षणके लिये ही क्यो न हो—आनन्दानुभवसे मुझे पुलकित करता है। जीवन-यात्रामे जो थोडे पथ-प्रदर्शक सुयोग और सौभाग्यसे मुझे मिले है, उन सबमे भाईजीका स्थान सर्वोपरि है। उनका पावन स्मरण एक आदर्शका प्रकाश-सकेत देता आया है।

●

अनुकरणीय जीवन

श्रीगुलजारीलालजी नन्दा

गीतामूर्ति श्रीभाईजी

श्रीकृष्णदासजी सिंह राय

श्रीभाईजी एवं सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका भारतीय अध्यात्मरूपी नभोमण्डलके दो पवित्र जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। इन दोनों महापुरुषोंने दो महारथियोंके समान संयुक्तरूपसे भारतीय धार्मिक संस्कृति और सभ्यताकी रक्षाका प्रयास किया, जिसपर विरोधियोंके आक्रमणका भय पैदा हो रहा था। मेरी दृष्टिमे श्रीभाईजी तथा श्रीसेठजी दोनो एक ही सिक्केके दो पक्षोंके समान है।

श्रीभाईजी पूर्ण कर्मयोगी, पूर्ण ज्ञानयोगी एवं उच्चकोटिके भक्त एवं सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति थे। अत. यथार्थमे वे 'गीतामूर्ति' थे। अपने सम्पूर्ण कर्म, विचार और भावनाके द्वारा वे गीताके उपदेशोंको प्रवाहित करते रहते थे। उनका गीतासम्बन्धी ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान न होकर साधनापर आधारित था। गीताके उपदेशोंका यथार्थ ज्ञान और भगवान्‌की प्राप्ति—दोनों पर्यायवाची है। श्रीभाईजीके निधनसे भारतका ऐसा संत उठ गया है, जिसको वर्तमान युगके भारतीय संतोंकी श्रेणीमें बड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त था।

श्रीभाईजीने एक कर्मयोगीके रूपमे एक अनासक्त गृहस्थका जीवन व्यतीत किया—ऐसा जीवन जो संसारमे तो था, परंतु सांसारिक प्रपञ्चोंसे सर्वथा मुक्त था। उनमे संगठनकी महती क्षमता थी, जिसका उपयोग वे विशुद्धरूपसे जनहित, विशेषकर आध्यात्मिक हितमे करते थे। 'कल्याण', जो अपने जीवनके ४५ वर्ष पूरे कर चुका है, उनकी संगठन करनेकी योग्यताका स्थायी स्मारक है। उनके द्वारा नियमितरूपसे प्रकाशित 'कल्याण'के विशेषाङ्क वस्तुत हिंदू-धर्म और हिंदू-संस्कृतिके विश्वकोश है। गीताप्रेस, कलकत्ता-बम्बई और ऋषिकेशके सत्सङ्ग-भवन एवं उनके द्वारा प्रकाशित धार्मिक पुस्तके—ये सभी प्रमाणित करते हैं कि वे हिंदू-धर्म एव हिंदू-संस्कृतिकी रक्षाके निमित्त आये हुए भगवान्‌के यन्त्र थे। श्रीभाईजीके प्रवचन आनन्द प्रदान करनेवाले होते थे। उनमे श्रोतागण अलकार एवं शब्दाडम्बरसे रहित सहज बोधगम्य भाषामे विषयकी तहमे पहुँच जाते थे। जनहितके कार्योंमे प्राप्त सफलतासे श्रीभाईजी उच्चकोटिके कर्मयोगी सिद्ध हुए क्योंकि वे उन कार्योंको बिना किसी व्यक्तिगत स्वार्थकी कामनासे विशुद्ध जनहितकी दृष्टिसे करते थे।

ज्ञानयोगीके रूपमे श्रीभाईजीको महान् सत्यकी सिद्धि प्राप्त थी और उन्होने 'स्व'को पहचान लिया था। ज्ञानमात्र स्वानुभवगम्य है। जो जानता है, वह उसे बतलाता नही और जो बतलाता है, वह जानता नही। श्रीभाईजीके द्वारा ज्ञानयोगकी सिद्धि इस तथ्यसे प्रमाणित की जा सकती है कि वे भगवन्मय होकर भी ससारमे रहते हुए सब आचरण करते हुए प्रतीत होते थे। वे ससारको संसार मानकर नही, अपितु उसे भगवान्‌का स्वरूप मानकर व्यवहार करते थे। यही कारण है कि वे सभी लोगोंके साथ—चाहे वे जो कोई भी हो, अथवा जिस किसी पदपर हो—बडे ही विनम्र मधुर एवं सहृदयतापूर्ण व्यवहार करते थे। गीतामे भगवान्‌का कथन है—'जो पुरुष सभी जीवोंमे सबके आत्मरूप मुझ भगवान्‌का ही दर्शन करता है और सभी जीवोंको मुझमे ही देखता है उसके

लिये मैं अदृश्य नही होता और वह मेरे लिये अदृश्य नही होता।' (६।३०) इस श्लोकके आधार-पर हम यह कह सकते हैं कि श्रीभाईजीकी दृष्टिसे भगवान् कभी अदृश्य नही होते थे और न वे भी कभी भगवान्‌की दृष्टिसे ओझल होते थे। यही हमारे इस कथनका आधार है कि भाईजी उच्चकोटिके कर्मयोगी होनेके अतिरिक्त एक पूर्ण ज्ञानयोगी भी थे।

भक्ति-पक्षपर विचार करते ही उनके प्रारम्भिक जीवनका स्मरण हो आता है। कलकत्ताका प्रारम्भिक जीवन-काल उनके चरित्रमे भक्ति-पक्षकी अभिवृद्धि करनेमे वडा सहायक हुआ। इससे उन्हे बँगला भापाका ज्ञान हुआ और वे महाप्रभु चैतन्यदेवके अनुगामियोद्वारा जन-कल्याणके निमित्त लिखित समृद्ध धार्मिक साहित्यसे परिचित हुए। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवद्वारा प्रतिपादित 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद'का इनके ऊपर गहरा प्रभाव पडा। इस धार्मिक विचारधाराके अनुसार 'द्वैतसे अद्वैत, और अद्वैतसे रसाद्वैत'—ये आध्यात्मिक उन्नतिकी सीढियाँ है। भगवन्नामकी शक्तिको और इस सिद्धान्तको कि 'भगवन्नाम और भगवान् एक ही है'—श्रीभाईजीने पूर्णतया स्वीकार कर लिया था। अत उन्होने अपने जीवनका सर्वोत्तम समय भगवन्नामका उपदेश करनेमे और उसे प्रचारित करनेमे व्यतीत किया। जिस सदेशका प्रचार श्रीचैतन्यदेवने मुख्यरूपसे वगाल और उडीसामे किया, उसे श्रीभाईजीने सम्पूर्ण भारतमे फैलाया। भारत और मानव-जातिके प्रति उनकी यही सबसे वडी सेवा थी, जिसके निमित्त ससार उनके प्रति सदैव कृतज्ञ रहेगा।

दक्षिणेश्वरके सत श्रीरामकृष्ण परमहसदेवने दो प्रभावकारी उदाहरणोंद्वारा 'मुक्त आत्मा' और 'वन्धनयुक्त आत्मा'का अन्तर वतलाया है। उन्हीके शब्दोमे एक 'पकी' आत्मा होती है और दूसरी 'कच्ची'। पके फलके समान स्वभावसे ही पकी आत्मा कोमल होती है और मधुर होती है, जवकि कच्चे फलके समान कच्ची आत्मा कठोर और स्वादमे कडवी और खट्टी होती है। वे कहते थे—'आलू कडा होता है, लेकिन उवालनेपर वह कोमल हो जाता है। एक सिद्ध पुरुप उवले आलूके समान है।

इन सिद्धान्तोके अनुसार श्रीभाईजी एक पूर्ण आत्मा—एक सिद्ध पुरुष थे। वे कोमल, मधुर एव विनम्र थे। वे भगवत्प्रेमकी साक्षात् मूर्ति थे। उनका 'अह' पूर्णतया भगवान्‌मे विलीन हो गया था।'

•

किसी भी प्रकारके आचरणोंसे संतकी पहचान नहीं हो सकती। संतके सम्प्रदाय या या वाह्य वेषपर दृष्टि नहीं देनी चाहिये, उसके हृदयको देखना चाहिये। संतोंकी परीक्षा करना बड़े दुस्साहसका काम है। किन्हीं-किन्हीं महात्माओंका बाह्य व्यवहार बहुत घृणित और उपेक्षणीय देखा जाता है। परंतु उनके भीतर जो दिव्य तपोबल रहता है, उससे सैकड़ों-हजारों पुरुष अकारण ही उनकी ओर आकर्षित होते रहते हैं। उनकी परीक्षा कोई कैसे कर सकता है।

—पूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा

•

वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्

श्रीगिरिधारी बाबा

असख्य मानव-हृदयोके सम्राट्, पुण्यश्लोक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके भौतिक शरीरके तिरोधान होनेपर एक ऐसे तेज पुञ्जका लोप हो गया, जिसकी पूर्ति नही हो सकती। इस गहरी क्षतिका अनुभव करते हुए असख्य आबाल-वृद्ध नारी-नर, धनी-गरीव, शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति दु खसे कातर होकर रो पडे। मार्च २२, १९७१को जव आकाशवाणीद्वारा उनके निधनका समाचार प्रसारित किया गया, तव सास्कृतिक तथा आध्यात्मिक जगत्पर वज्राघात हुआ और चारो ओर शोककी लहर फैल गयी। उनके विशुद्ध, सरस एव सरल जीवनसे भगवत्प्रेम, अटूट श्रद्धा और अविचल भक्तिकी प्रेरणा पाकर कितने व्यक्तियोका जीवन सफल हुआ, इसकी गिनती कौन करेगा ? उनकी मधुर-उदात्त उदारता और अथक स्नेहसे कितनोका जीवन अभिभूत हुआ, वर्णन नही किया जा सकता। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी भी देश-जातिका हो, नर हो या नारी—उनके सम्पर्कमे एक वार आ जानेपर उनको भुला नही सकता था—ऐसी अपनत्वकी छाप वे प्रत्येक हृदयपर स्वाभाविकरूपमे डाल देते थे। 'वसुधैव कुटुम्बकम्'की वृत्ति लिये हुए उस महामानवने जिसको अपने अजस्र स्नेहसे प्लावित न किया हो, उनके सम्पर्कमे आनेवाला ऐसा कोई व्यक्ति बिरला ही होगा। ऐसा लगता था कि मानो साक्षात् पुराणपुरुष ही भौतिक शरीर धारणकर सवके लिये मङ्गल-कामना करते हुए प्रेम-सुधाकी अनवरत वर्षा अपने वचनो, लेखो और सत्कर्मोद्वारा करता रहा हो। वह सबका आवाहन करता—'आओ, भगवत्कृपाका—उनकी दयाका जीभर अनुभव करो, अपने-अपने हृदयको उन्मुक्तकर उसे भगवत्प्रेमसे भर लो और निर्भय होकर विचरो।' विशुद्ध भक्ति, श्रेष्ठ ज्ञान और निष्काम कर्मयोगका समन्वय एक अपूर्व-रूपमे उनमे मूर्तिमान् हुआ था। उनके उज्ज्वल ललाटका तेज उनके आत्मज्ञानका द्योतक था—पारखी देखते ही नतमस्तक हो जाता था।

गण्यमान्य एव वडे-छोटे सभी नारी-नर विविध प्रकारकी निजी समस्याएँ लेकर तीर्थरूप भाईजीके पास आते थे और वे उनका समाधान करनेमे तनिक भी कोताही नही करते थे। ऐसा लगता था, मानो प्रत्येक समस्याका समाधान उन्होने उसका अच्छी प्रकार निदान समझकर पहलेसे ही निश्चित कर रखा हो। चिन्ताकी रेखाएँ लिये हुए व्यक्ति उनके कमरेमे जाते और जव वाहर निकलते तो मुस्कुराते हुए दिखायी देते—लगता, चिन्ता-मुक्त हो गये हो। साधन-चतुष्टय और षट्सम्पत्ति तो मानो उन्हे विरासतमे ही मिली थी।

ख्यातिप्राप्त साहित्यिकगण और आचार्यलोग उनके पास परामर्शके लिये प्राय आया करते थे। अपनी विद्वत्ताको उन्होने अपने विनम्र स्वभावमे छिपा रखा था। सवको मान देकर वे प्रसन्नताका अनुभव करते थे। सतोकी उनपर सहज कृपा थी।

गोरखपुर जिलेमे आये वर्ष वाढ आती थी। वाढ-पीडितोकी सहायतार्थ उनके द्वारा

अन्न-वस्त्रादिका उन्मुक्त हस्तसे दान चलता था। गीताप्रेसकी ओरसे सुचारुरूपसे सहायता-कार्यो-का प्रवन्ध होता था, ताकि दूर-दूरके गाँवोके लोग उनका पूरा-पूरा लाभ ले सके। पूज्य भाईजी वडी सतर्कताके साथ इस कार्यकी देखभाल करते थे।

गोरखपुरमे जो कुष्ठसेवाश्रम है, उसकी स्थापनामे स्वर्गीय वावा राघवदासजीके साथ भाईजीका भी मुख्य हाथ था। आज वह आश्रम उनके सक्रिय सहयोगसे स्वावलम्बी-सा वन गया है।

सन् १९३६की बात है—गीतावाटिकामे अखण्ड हरिकीर्तन चल रहा था। स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू गाँवोकी दशा देखने गोरखपुर पधारे थे। सरकारी आदेश हुआ कि जो उन्हे अपनी कार देगा, उसकी कार जब्त कर ली जायगी। इस आदेशके डरसे वे लोग जिनके पास कार थी, उन्हे देनेमे हिचक रहे थे। एक काग्रेसी नेता भाईजीके पास आये और बोले—'जवाहरलाल-जीके दौरेके लिये कार चाहिये, यदि कार न मिली तो हमारी नाक कट जायगी।' भाईजीने अपनी कार जवाहरलालजीके पास भेज दी और वे उसीमे घूम-फिरकर भाषण देते हुए वापस गोरखपुर आये। जिलाधीशने कहा कि 'हमे मालूम है कि भाईजीने कार दी थी, पर हम उनपर कोई कार्यवाही नही करेगे।' श्रीभाईजी ऐसे निर्भीक थे तथा उनका अधिकारियोपर भी इतना प्रभाव था।

अग्रेजी शासनकालकी वात है। उन दिनो गोरखपुरके कमिश्नर श्रीहोवर्ट थे। भाईजी-का वे वहुत आदर करते थे। एक वार उन्होने एक दरवारका आयोजन किया, ऐसे दरवारोमे एक विशेष वेष-भूषामे गवर्नर महोदयके सम्मुख उपस्थित होना पडता था। कमिश्नर साहवने भाईजीको बिना भाईजीकी इच्छाके निमन्त्रण भेजा। भाईजीने कमिश्नर साहवको कहला भेजा कि 'निमन्त्रणके लिये धन्यवाद, पर मै विशेष वेष-भूषामे उपस्थित नही हो सकूँगा। मै जिन कपडोमे सहजरूपमे रहता हूँ, उन्हीमे उपस्थित हो सकता हूँ। कमिश्नर साहवके आदेशसे उनके लिये वह शर्त हटा ली गयी और भाईजीको आमन्त्रित लोगोमे प्रथम श्रेणीमे मानपूर्वक बैठाया गया। गवर्नर साहवने भाईजीसे आदरपूर्वक वार्तालाप किया। ऐसा था भाईजीका व्यक्तित्व।

श्रीहोवर्ट अपने कार्यकालकी समाप्तिपर जव वापस अपने देश—इगलैड चले गये, वहाँसे उन्होने श्रीभाईजीके नाम एक पत्र दिया, जिसमे उन्होने लिखा था कि 'मेरे भारत-प्रवासमे जो सवसे वहुमूल्य वस्तु मुझे मिली, वह है आपकी मित्रता।'

परमभागवत श्रद्धेय भाईजीकी छत्रछायामे रहनेका मुझे भी सौभाग्य मिला था। मुझ अल्हड, अज्ञानी और भूलभरे शिशुको उन्होने अपने वात्सल्य-स्नेहसे पाला-पोसा। मेरी भूलोको जनाने और सुधारनेमे उनकी अहैतुकी कृपा जिस प्रकार एकरस वरसती रही, उसे मै कभी भूल नही सकता। मेरी भगवान्‌की ओर रुचि वढानेमे उन्होने जो मेरे लिये साधन प्रस्तुत किये, क्या कोई सगा-सम्वन्धी भी वैसा करेगा? अपने अनूठे अनुभवोद्वारा मुझमे भगवद्भक्तिकी लालसा वढायी और मुझ गँवारको परिष्कृत करनेमे तीर्थरूप भाईजीने कोई कमी नही की।

परमहितैषी पिता जैसे अपने पुत्रके ज्ञान-भक्ति-सत्कर्मके क्षेत्रको वढानेमे हर्षोत्साहसे उसे अग्रसर करता है, ऐसे ही भाईजीने जव मै लगभग २२-२३ वर्षका रहा होऊँगा, मेरे अयोध्याजी जाने और वहाँ रहनेके साधन प्रस्तुत किये और उस अवधिमे मेरी जो सार-सँभाल उन्होने की,

उसे स्मरणकर मै कृतज्ञतासे भर जाता हूँ। जव मै अयोध्याजीसे विविध अनुभवोको लेकर सात वर्षके वाद उनकी शरणमे लौटा, तव मेरा स्वागत पूज्य भाईजीने जिन आनन्दाश्रुओके साथ किया, उस दृश्यकी स्मृति आजतक मेरी निधि वनी हुई है। उनका ममतापूर्ण वात्सल्य, उनकी अनुकम्पा-दयासे मेरा जीवन ओत-प्रोत है। मुझे वे सदा 'भैया' कहकर पुकारते थे और निस्सकोच आज्ञा देते थे तथा मै अपना अहोभाग्य समझकर उनकी आज्ञाका पालन करनेका प्रयास करता था।

भगवत्प्राण भाईजी किसीकी भी आर्त्त पुकार सुनकर द्रवित हो उठते थे और उसकी रक्षाका उपाय करते थे। स्थानीय रेलवेके एक कर्मचारीका परिवार नौआखालीमे घिर गया था। वह श्रीभाईजीके पास रोता हुआ गया। श्रीभाईजीने मुझे उनके उद्धारके लिये भेजा। भगवान्‌की कृपा एव श्रीभाईजीके आशीर्वादसे पूरे परिवारको सुरक्षित निकालकर गोरखपुर भेजनेमे मै समर्थ हुआ।

पूज्य गाधीजीकी अनुमतिसे भाईजीने चॉदपुर सव-डिवीजनमे दगापीडित लोगोके लिये ऐसी व्यवस्था की, जिससे उन लोगोको पुनर्वासमे पर्याप्त सहायता मिली। इसी निमित्त मुझे नोआ-खालीमे नौ-दस महीने सहायता-कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसी बीच मै प्रात स्मरणीय पूज्य वापूजीके सम्पर्कमे आया और उन्हे समीपसे जाननेका स्वर्ण-अवसर मुझे मिला। कष्ट-पीड़ित मानवताके ऑसू पोछनेके लिये वे दयार्द्र हो स्वय कष्ट सहते हुए नोआखाली चले आये थे। गॉव-गॉव पैदल घूमकर दु खी लोगोको उन्होने जो सान्त्वना दी, वह मै कैसे भूल सकता हूँ ?

पूज्य भाईजीसे उनका वहुत पुराना परिचय था। हो सकता है, उसी कारण वापूने मुझे अपना स्नेह-भाजन वनाया हो। भाईजीके वारेमे वापू चर्चा किया करते थे और कहते थे—'हनुमान आदमी वहुत वढिया है। दीन-दु खियोकी सेवामे दत्तचित्त हो लगा रहता है। भगवान्‌का भक्त है, इसलिये दूसरोका दु ख वह अपना दु ख मानता है। मै उसे वहुत वर्षोसे जानता हूँ, उससे किसीका अनिष्ट नही हो सकता। जव गोरखपुर जाओ, मेरा उसे स्नेह देना।' एक दिन वोले—'तुम्हे पता है, जव देवदास गोरखपुर जेलमे वद था, तव हनुमानने उसकी वहुत देख-भाल की थी। मै तो निश्चिन्त था कि हनुमान सव देख लेगा।'

देश-विभाजनके समय पजावमे सव ओर मार-काटकी विभीषिका फैल गयी। मै नोआ-खालीसे लौटा ही था कि भयानक घटनाओके समाचार आकाशवाणी और दैनिक पत्रोद्वारा आने लगे। वहुत दु ख हुआ, मै भोजन करते समय रो पडता, भोजन बीचमे ही छोड देता। जी चाहता—भाग जाऊँ उन कष्ट-पीडित लोगोमे। एक दिन न रह सका। भाईजीके चरणकमलोपर गिरकर प्रार्थना की कि मुझे पजाव जानेकी अनुमति दे। उनका हृदय भर आया। कौन पिता अपने वच्चेको अग्निमे झोकेगा ? कहा—'अकेले ही जाओगे ?' मेरा क्रन्दन वढा और रोते हुए मैंने कहा—"आपने सदैव मुझे एक मन्त्रसे दीक्षित किया है कि 'मेरे साथ भगवान् सदा है और इसको कभी भी न भूलूँ।' आशीर्वाद दीजिये कि 'भगवान् मुझे यन्त्रवत् जनता-जनार्दनकी सेवामे लगाये रखे, जिससे मेरा जीवन सफल हो'।" भाईजीने स्नेहभरे हाथको मेरे सिरपर रक्खा और मै पजावके लिये चल पडा—लौकिक दृष्टिसे साधनहीन। मार्गमे गोली चली, वम फटे, पर मै

किसी प्रकार अमृतसर पहुँच गया। वहाँ भगवान्‌ने मुझसे काम लिया, 'मारवाडी रिलीफ सोसाइटी' और सरकारी कोषसे मुझे उन दुःखी विस्थापित लोगोकी सहायताके लिये काफी मदद मिली। मुझे सदैव ऐसा लगता था--जैसे भाईजी मेरे अङ्ग-सङ्ग अपना वरदहस्त लिये चल रहे हो। उन्होने पत्रोद्वारा मेरा साहस वढाया। सचमुच उनका वल ही मेरा वल था। उनके परमधाममे लीन हो जानेपर मेरी अन्तर्वेदना सिवा भगवान्‌के कोई नही जानता।

महामना मालवीयजी जव अन्तिम दिनोमे 'हिंदू विश्वविद्यालय'मे रोग-शय्यापर पडे थे, मै नोआखाली जाते हुए चरण-स्पर्श-हेतु उनके पास गया। उनके कमरेके वाहर एकने पूछा--'कहाँसे आये हो?' मैंने कहा--'गोरखपुरसे भाई हनुमानप्रसादजी पोद्दारके पाससे।' वे सज्जन तुरत अदर गये और महामनासे कहा--'एक सज्जन पोद्दारजीके पाससे आये है और आपके दर्शन करना चाहते है।' आज्ञा हुई, 'उन्हे अदर बुलाइये।' मै नतमस्तक उनके चरणोकी ओर वढा और माथा टेक दिया। महामनाने पूछा--'भाईजी ठीक है न? कैसे आये हो?' मैंने कहा--'नोआखाली जा रहा हूँ। भाईजीने लोगोकी सहायतार्थ वहाँ एक स्थानपर कैम्प खुलवा दिया है।' बोले--'भाईजी तो हिंदूधर्मके प्राण है। वे ऐसे पुण्यात्मा है, जिनसे हम सवको वहुत वल मिलता है।' मेरे माथेपर उन्होने अपना वरदहस्त रक्खा और मैं उनके चरण-स्पर्श कर वाहर आ गया। अनुभव किया, भाईजीका प्रभाव कहाँ-कहाँ और कितना गहरा है। प्रत्येक क्षेत्रके लोग पोद्दारजीको 'भाईजी'के नामसे ही सम्बोधित करते थे। मैंने रफी अहमद किदवई साहवको भी पोद्दारजीको 'भाईजी' कहकर पुकारते सुना है। स्वर्गीय श्रद्धेय श्रीपुरुषोत्तमदास टण्डनजीको अपने साथियोके साथ गीताप्रेसमे भाईजीसे परामर्श करते पाया है। ऐसा विशद कार्य-क्षेत्र शायद ही किसीका होगा, जैसा भाईजीका था।

मेरी महाराष्ट्र प्रदेशकी एक धर्म वहन है--वडी विदुषी, भगवद्भक्ता, समाज-सेवी और दृढव्रता। एक वार उसको गलेका गम्भीर रोग हो गया। मै उसे गोरखपुर ले आया। वह वहन जितने दिन वगीचेमे रही, भाईजीने उसे अपनी वच्ची समझकर उसकी देख-भाल की। अपने साथ ले जाकर डाक्टरको दिखलाते और सव प्रकारके उपचारकी व्यवस्था करते। वह वहन श्रीभाईजीके इतने समीप आयी कि उन्हे अपना धर्मपिता मानकर पत्रोद्वारा अपना समाचार देती रही। भाईजीके अवसानके वाद दिल्लीमे मुझे वह मिली तो रो पडी। ऐसा अपनापन भाईजीका सवके साथ हो जाता था।

ये कुछ घटनाएँ है, जिनसे श्रीभाईजीके जीवनकी तनिक झाँकी मिलती है। अनगिनत चमत्कार और कार्य भाईजीके ऐसे है, जिन्हे लिपिवद्ध करना सम्भव नही है। अनेक व्यक्तियोके अनगिनत अनुभव है, जिन्हे यदि लिखा जाय तो भी उनकी गौरवगाथा अधूरी ही रहेगी। सत्यनारायण भगवान्‌से भीख माँगता हूँ--**'प्रसीद मे नमामि ते, पदाब्ज-भक्ति देहि मे।'**

●

संतत्वकी प्राप्तिका प्रधान साधन संतोंकी उपासना है। संतकी उपासना भगवान्‌की उपासना है।

—पूज्यपाद श्रीउड़ियावावा

●

भाईजीकी विलक्षण सतर्कता

श्रीलखपतरायजी

पूज्य भाईजीके दर्शनका दुर्लभ सौभाग्य मुझे पहली वार सन् १९५६के ग्रीष्ममे प्राप्त हुआ। सचमुच मेरे जीवनका यह एक महिमामय दिन था, जब मैंने अपनी श्रद्धाका निवेदन उन महात्माके श्रीचरणोमे किया। मै उसी रातको लौट गया। सन् १९६०के प्रारम्भमे मै फिर गोरखपुर आया। इस वार विल्कुल अकेले, क्योकि पत्नीने अपनी इहलीला सवरण कर ली थी। उस समय श्रीभाईजीके परामर्शसे मैंने यह निर्णय लिया कि 'मुझे गोरखपुरमे ही स्थायी रूपसे रहना है' और कुछ समय पश्चात् मै यहाँ आकर रहने लगा।

सेवा-निवृत्तिसे पूर्व ही मेरे मनमे यह वात थी कि मै किसी परोपकारके कार्यमे कुछ दान करूँ, किंतु उस समय यह विचार कार्यान्वित न हो सका। सन् १९६०मे जब भाईजीके सत्सङ्गका लाभ उठानेके लिये ऋषिकेशमे उनके साथ ही रहा, तव श्रीभाईजीसे समय लेकर अपने मनकी वात निष्कपटरूपसे मैंने उनको निवेदित कर दी। मेरी वात सुनकर उन्होने मेरे प्रस्तावको स्वीकार करनेमे अपनी असमर्थता प्रकट की। साथ ही मेरी भावनाओको ठेस न लगे—इसलिये एक अनिश्चयात्मक उत्तर देकर वात समाप्त कर दी। मै निराश लौटा और मुझे लगा कि मेरे पैरोके नीचेकी धरती खिसक गयी। मुझे अन्यत्र जाना था। अत कुछ दिनो वाद मै स्वर्गाश्रमसे विदा हुआ। वादमे श्रीराधाष्टमीके उत्सवपर मै पुन गोरखपुर आया। मैंने श्रीभाईजीका दर्शन किया और अपनी प्रार्थना पुन दोहरायी। इस वार भी वे अपनी ही वात दोहराते रहे। किंतु मै निराश नही हुआ। पुन कुछ दिनोके लिये मुझे गोरखपुर छोडना पडा। अपना काम समाप्त करके मै पुन गोरखपुर लौटा और स्थायीरूपसे यही रहने लगा। कुछ दिनो वाद मैंने पुन. अपनी प्रार्थनाका स्वर तीव्र किया। इस वार वे कुछ अनुकूल लगे और अन्ततः सन् १९६१के प्रारम्भमे उन्होने मेरा प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। इस प्रकार परीक्षाकी कसौटीपर पूरी तरह कसनेके लिये उन्होने लगभग एक वर्षका समय लिया। सतोके सहज स्वभावको—उनकी कोमल चित्तवृत्तिको जानते हुए मुझे विश्वास था कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ नही जायगी, किंतु इस व्यवहारसे उन्होने न केवल मेरी परीक्षा ली, वल्कि इस कथनकी सत्यता भी सिद्ध कर दी कि सतोका चित्त 'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि' होता है। इस घटनासे मुझे यह स्पष्ट अनुभव हुआ कि श्रीभाईजी परोपकारके लिये भी किसीके धनको स्वीकार करनेमे कितने सतर्क थे। वे धन देनेवाले व्यक्तिकी पूरी परीक्षा कर लेनेके वाद ही उसके धनका परोपकारमे उपयोग करते थे।

निस्सदेह हम उनके अभावसे दुखी हैं, किंतु साथ ही यह भी अनुभव करते हैं कि वे हमारे वीचमे उपस्थित हैं—वे हमारे साथ हैं। श्रीभाईजीके प्यार एव महत्त्वकी अनेको मधुर स्मृतियाँ मेरे हृदयमे है और वे जीवनकी अमूल्य निधि हैं।

●

आर्त एवं विकलाङ्गोंके सेवक

श्रीपरमेश्वरीदयालजी, एडवोकेट

श्रीभाईजीसे मेरा परिचय सन् १९३२ ई०के आस-पास हुआ। श्रीभाईजीने स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व स्वतन्त्रता-आन्दोलनरूप यज्ञमे आहुति दी थी। जव दूसरा विश्व-युद्ध आरम्भ हुआ, तव श्रीभाईजीने स्वतन्त्रता-सेनानियोकी सहायतामे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। वे अपने व्यवहार-मे इतने निर्मल थे कि अग्रेज अधिकारी न तो कभी उनपर शङ्का करते थे और न सामान्य जनताके प्रति किये जानेवाले दुर्व्यवहारोको रोकनेके लिये दिये गये उनके सुझावोका अनादर करते थे। देश-भक्तोके लिये वे दिन वडी कठिनाइयोके थे और सामान्यत हिदुओको अग्रेज अधिकारियोका विश्वास प्राप्त न था, यद्यपि युद्धके लिये जनतासे मिलनेवाली सहायताका अधिकाश हिदुओसे ही प्राप्त होता था। मै जानता हूँ कि वैसे दुर्दिनोमे भाईजीने जनता और स्वतन्त्रताके सेनानियोकी नैतिक, आर्थिक एव भौतिक दृष्टिसे ऊँची-से-ऊँची मानवोचित सेवा की। श्रीभाईजी सवके विश्वासपात्र थे।

वे अधिकारियोको जनताके प्रति उग्रताका नगा नाच करनेसे रोकते थे। देश-भक्तिको ताकपर रखकर अनुचित उपायोद्वारा धन-मान प्राप्त करना युद्धकालमे वडा सहज था और वहुतोने इसका लाभ भी उठाया, किंतु 'भाईजी' इन सवसे ऊपर उठ चुके थे। मेरे सुपरिचित एक जिलाधीशने मुझसे कहा कि मै भाईजीको इसके लिये तैयार करूँ कि वे अपनी पसदकी कोई भी उपाधि चुन ले। जव मै भाईजीसे इस प्रस्तावको लेकर मिला, तव उन्होने उसे ठुकराते हुए कहा कि "आप कलक्टर तथा कमिश्नर—दोनोसे कहिये कि 'भाईजी अपनेको इसका पात्र नही मानते'।" भाईजीका सदासे यह विश्वास था कि सच्चे सेवकको अपनी सेवाओके वदले कोई मूल्य स्वीकार नही करना चाहिये और वे विना किसी लोभ और भयके द्वितीय विश्व-युद्धके कठिन समयमे जनताकी महान् सेवाएँ करते रहे।

उनके गम्भीर एव विशाल ज्ञानके विषयमे मेरा कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखानेके समान है। गोरखपुर और सम्पूर्ण हिंदूधर्मके प्रति उनकी देन अवर्णनीय है। इस देशके इस कोनेसे उस कोनेतक यात्रा करते समय मैने देखा है कि भाईजीकी देख-रेखमे प्रकाशन-कार्य करनेवाले गीताप्रेसके कारण गोरखपुरका पता वताना कितना सहज हो गया है।

उनकी जन-सेवा किसी प्रकारकी मानसिक सकीर्णतासे कलङ्कित नही थी। मानव-जातिकी सेवा करते समय तथा उसका पथ-प्रदर्शन करते समय उन्होने कभी भेद-भावको अपने मार्गमे नही आने दिया। उन्होने सभी आर्त्त मनुष्योकी समानरूपसे सहायता की, चाहे वे मुसल्मान, ईसाई, हिंदू अथवा अन्य किसी धर्मके माननेवाले क्यो न हो। उन्होने पशु-पक्षियो-तककी भी सहायता की।

जव हमलोगोने गोरखपुरमे 'श्रीरामकृष्ण-मिशन-समिति'की स्थापना की, भाईजीने ही हमारा सवसे अधिक उत्साह-वर्धन किया और अपना सरक्षण प्रदान किया। 'सनातन-धर्म-सस्कृत-

पाठशाला' गोरखपुरके सचालनमे मुझे वरावर भाईजीका सहयोग मिला, जिससे वह पाठशाला सुचारुरूपसे चल रही है। उन्होने पाठशालाको वहुत-सी सस्कृत पुस्तकोका दान भी दिया। 'मूक-वधिर-विद्यालय' उन्हीकी देन है। जव कभी किसी कामके लिये सहायताकी आवश्यकता हुई, वह उनसे मिले विना नही रही। उन्होने मुझे ईश्वरके प्रति विश्वास रखकर अनेक सामाजिक सेवाओकी व्यवस्था एव सचालन करनेके लिये उत्साहित किया, क्योकि आर्त्त एव विकलाङ्गोकी सेवा ईश्वरकी सर्वोत्तम सेवा है।

उन्होने मुझे अनेक प्राणी-सेवासे अनुप्राणित सस्थाओमे सहयोग देनेके लिये प्रेरित किया। मैने वैसा ही किया और पोद्दारजीके निर्देशनके कारण आज वे सब फल-फूल रही है।

एक वार मैने उनसे पूछा कि 'क्यो लोग धार्मिक विधि-विधानोपर इतना अधिक व्यय करते है? साधारण जनता उसीको भगवान्‌की सच्ची पूजा मान लेती है।' श्रीभाईजीने मेरा समाधान करते हुए वतलाया कि 'उपासनाके प्रारम्भमे प्रतीक अनिवार्य होता है।' मैने भी उपासनाकी वही विधि अपनायी और ईश्वरमे विश्वास तथा मानवताकी सेवाके मार्गमे श्रीभाईजीके निर्देशोका पालन किया।

श्रीभाईजी मानवताके नि स्वार्थ सेवक, साधु पुरुष और भगवान्‌के अत्यन्त निकट पहुँचे हुए थे। जनताने, जो प्रखर आलोचक और दोष-दर्शक होती है, कभी श्रीभाईजीकी आलोचना नही की। जहाँतक मुझे ज्ञात है, भाईजीने अपने नामपर किसी सस्थाका नामकरणतक नही होने दिया, फिर भी वे अमर है। मै भगवान्‌से प्रार्थना करता हूँ कि भाईजी-जैसी मानवताका सर्वाङ्गीण कल्याण करनेवाली आत्माओको फिर इस देशमे भेजे।

●

मेरा हृदय भरा है

डा० श्रीरामदयालजी भार्गव

भाईजी वडे धार्मिक, करुणामय, परदु खभञ्जनहार तथा भगवान्‌के अनन्य भक्त थे। उनका सदा यही कहना था कि 'मानव-शरीरको प्राप्त करनेका एकमात्र उद्देश्य भगवान्‌को प्राप्त करना ही है।'

मेरा सौभाग्य श्रीभाईजीके सम्पर्कमे आनेका सन् १९३७ मे हुआ। मै रतनगढकी 'मारवाडी सहायक समिति'मे डाक्टरके पदपर सन् १९३५ से ७० तक रहा। यह स्थान श्रीभाईजीके निवास-स्थानके समीप है। अतएव जव भी अवकाश मिलता, मै श्रीभाईजीके यहाँ जा पहुँचता। इससे मुझे उनके जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर प्राप्त हुआ है। मैने देखा है कि भाईजीका भीतरी जीवन वाहरी जीवनकी अपेक्षा भी अधिक समुज्ज्वल और प्रेरणाप्रद था।

श्रीभाईजीकी पावन स्मृतिमे मेरा हृदय भरा है। अनुभवकी स्मृतियाँ अनेक है, वाणीमे वे व्यक्त नही हो सकती।

●

प्रधान श्रोताके रुपमें श्रीमद्भागवतके जुलूसका नेतृत्व करते हुए

श्रीमद्भागवत यज्ञकी पूर्णाहुति पर

इन्दौर रेलवे-स्टेशन पर एकत्र विराट् जनसमूहको धर्मोपदेश

उज्जयिनीकी वीथियोंमें तुमुल नाम-संकीर्तन

श्रीभाईजीका पितृतुल्य स्नेह

डा० श्रीगोपालकृष्णजी सराफ, नेत्र-विशेषज्ञ

श्रीभाईजीका सरल स्वभाव, उनकी निश्छल मुस्कान, उनका स्नेहभरा मन कभी भुलाये नही भूलते। मेरे ऊपर उनकी जितनी कृपा रही है, उसका उल्लेख सम्भव नही है। यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे सदा उनका वात्सल्य मिलता रहा, यद्यपि मै कभी भी उनकी कोई सेवा नही कर सका।

जवतक मै गोरखपुर रहा, उनसे सामाजिक सेवाकी प्रेरणा मिलती रही। गोरखपुरके 'कुष्ठ-सेवाश्रम'मे अवैतनिक डाक्टर होकर मैने देखा कि कुष्ठ-रोगी कम्वलोके अभावमे जाडेकी रातमें ठिठुरते है। वहाँके व्यवस्थापक श्रीत्रिपाठीजीने पूज्य भाईजीको इसकी सूचना दी। हम चाहते थे कि कहीसे चन्दा इकट्ठा करके कुछ कम्वल खरीदे जायँ। आश्चर्य कि उसी रात सव रोगियोके लिये पर्याप्त कम्वल पहुँच गये। कम्वल देनेवालेने अपना नाम नही वताया। उस आश्रमके प्रति भाईजीकी सेवाएँ अप्रतिम है। भाईजीके दान सदा निःस्वार्थ और गुप्त ही होते थे।

एक दिन भाईजीने अपने किसी मित्रको मेरे पास नेत्र-परीक्षाके लिये भेजा। जव मैंने फीस लेनेसे मना किया, तव उन्होने कहा—'भैया गोपाल, तुम इनकी फीस ले लो और इसके वदलेमे एक गरीब व्यक्तिकी आँख मुफ्त देख लेना।' उन्होने ही मुझे गरीबोकी सेवा करना सिखाया।

सन् १९५५मे गोरखपुरमे मेरे चेम्वरका उद्घाटन करते समय भाईजीने यही आदेश दिया कि 'इस चेम्वरमे गरीबोका भला करो।' मुझे खुशी है कि मैने उनकी वात मानी और उससे मुझे कभी कोई क्षति नही हुई।

उनकी आँखमे वहुत वर्षोसे मोतियाविद था। मैने कई वार उनसे प्रार्थना की कि वे आपरेशन करवा ले। उन्हे इसके लिये कभी अवकाश नही मिला। वादमे उनका स्वास्थ्य गिरता गया। मेरे वहुत हठ करनेपर आखिर उन्होने यह निश्चय किया कि गोरखपुरमे 'नेत्र-दान-यज्ञ' किया जाय और उस समय मै उनकी आँखका आपरेशन भी कर दूँ। इसके लिये ६ फरवरी १९७१का दिन निश्चित हुआ। अचानक पूज्य भाईजीके हाथका लिखा १० जनवरीका पत्र मिला, जिसमे लिखा था कि कैम्प तो होगा, किंतु वे अपनी आँखका आपरेशन नही करा सकेगे, उनके पेटमे जो दर्द रहता है, वह इन दिनो वढ गया है।

मैने कैम्पकी तारीख वदलकर २१ मार्च कर दी। उनके पेटका दर्द ठीक न होनेके कारण मैने यह तारीख और भी आगे वढायी। अकस्मात् २२ मार्चको पूज्य भाईजी उस महान् प्रकाश-पुञ्जमे लीन हो गये, जहाँ चर्म-चक्षुओकी आवश्यकता ही नही रहती। ३ फरवरी ७१को गीतावाटिकामे मैने चश्मेके लिये जव उनकी आँखकी जाँच की थी, तव यह नही सोच सका था कि मेरे लिये उनका वही अन्तिम दर्शन है।

गोरखपुरमे 'मूक-वधिर-विद्यालय'की स्थापना भी पूज्य श्रीभाईजीके प्रयाससे हुई और उन्होने मुझे उसका मन्त्री वना दिया। सन् १९६० तक मैं गोरखपुरमे रहा, उस कार्यको निभाया। अपने कार्यकालमे मुझे पूज्य भाईजीके पितृ-तुल्य स्नेह और अक्षय आशीर्वाद मिले। उनसे जो सुझाव मिले, वे जीवनभर मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहेगे। उनका आशीर्वाद सदा मेरा सम्बल रहेगा।

●

हिंदुत्वकी दीप-शिखा श्रीभाईजी

श्रीलक्ष्मीशंकरजी वर्मा, एडवोकेट

समाज, देश एव हिंदू-धर्मकी सेवामे अपने जीवनका क्षण-क्षण और शरीरका कण-कण सर्मपित कर देनेवाले परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके प्रति हिंदू-समाज सदा ऋणी रहेगा। 'कल्याण' एव गीताप्रेसके माध्यमसे उन्होने हिंदू-सस्कृति एव हिंदू-धर्मकी जो सेवाएँ की है, उन्हे कभी भी भुलाया नही जा सकता। हिदुओके धार्मिक ग्रन्थोका प्रकाशन करके उन्होने हिदुत्वके प्रचार एव प्रसारमे अनुपम सहयोग प्रदान किया है।

देशमे जव कभी हिंदू-हितोकी रक्षाके लिये कोई आन्दोलन, 'हिंदू-महासभा'द्वारा प्रवर्तित किया गया, तव उन्होने हमे हर प्रकारसे सहयोग प्रदान किया। सन् १९६२मे दिल्लीमे 'विश्व-हिंदू-धर्म-सम्मेलन'को सफल वनानेमे वे हर प्रकारसे सहयोगी रहे। स्वतन्त्र भारतमे गो-माताका वध हो, यह उन्हे सह्य नही था। इस कलङ्कको धोनेके लिये उन्होने 'गो-वध-बदी आन्दोलन'-को एकसूत्रता दी तथा उसके सम्पूर्ण आर्थिक भारकी व्यवस्था की। वे राष्ट्र-भाषा हिंदीके प्रवल पुजारी थे। हिंदू, हिंदी और हिदुस्तानकी सेवा करना ही उनके जीवनका एकमात्र ध्येय था।

श्रीभाईजी निखिल विश्वमे हिंदू-सस्कृतिका प्रसार करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि 'हिंदूधर्म ही मानव-धर्म है। अतएव हिंदूधर्मकी सेवा ही सवसे वडी मानव-सेवा है।' वे सच्चे कर्मयोगी, हिदुत्वके अधिवक्ता, परम गो-रक्षक, हिंदीके पुजारी, स्वाधीनताके सेनानी, क्रान्तिकारी, सिद्धहस्त लेखक, कवि एव आजीवन हिदुओको प्रकाश देनेवाले महापुरुष थे। वे वास्तवमे हिदुत्व-की दीप-शिखा थे। उनके निधनसे हिंदू-समाजकी जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति सम्भव नही है। ऐसी महान् विभूतिका स्मरण कर मै अपनेको गौरवशाली अनुभव करता हूँ।

●

संसारमे पूर्णता प्राप्त करनेवाले मनुष्य दो प्रकारके होते हैं। एक वे, जो सत्यको पाकर चुप रहते हैं और उसके आनन्दका अनुभव विना दूसरोंकी कुछ परवा किये स्वयं किया करते हैं। दूसरे वे, जो सत्यको प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन उसका आनन्द वे अकेले ही नहीं लेते, वल्कि नगाड़ा पीट-पीटकर दूसरोंसे भी कहते हैं कि आओ और मेरे साथ इस सत्यका आनन्द लूटो।

—श्रीरामकृष्ण परमहंस

●

विश्व-संत-परम्परामें श्रीभाईजी

श्रीरामलाल

परमभागवत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको विश्व-संत-परम्परामे अत्यन्त विशिष्ट स्थान प्राप्त है। निस्संदेह वे देश-काल-निरपेक्ष महान् विश्व-संत थे। उनके सार्वभौम संतत्वके आधार भागवत जीवन, लोककल्याणकी भावना तथा स्वानुभूतिपरक साधन-वैशिष्ट्य है। विश्व-संत-परम्परा-की बीसवी शतीके भारतीय अध्यात्म-क्षेत्रमे महर्षि रमण, योगिराज अरविन्द और महात्मा गांधीके आत्मज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोगके समन्वयसे अभ्युदयशील भारतीय मानवको ही नही, विश्व-मानवको भी संत भाईजीने अपनी ऊँची रहनी और लेखनी-कथनीसे भागवत जीवन अपनानेकी प्रेरणा प्रदान की। विश्व-सत-परम्पराकी प्रगतिमे यह उनका महान् योगदान स्वीकार किया जा सकता है। वे भागवत मानव थे। उन्होने जगत्को भागवत-दर्शन प्रदान किया। भागवत-दर्शनका आशय है—भगवान्को जानने अथवा उनसे प्रेम करनेकी दिव्य ज्ञान-ज्योति। प्राय पचीस सालसे 'कल्याण'के सम्पादन-विभागमे उनके साथ काम करते हुए मैने उन दयानिधिका सहज स्नेह प्राप्त किया। यदि उन महान् संतका धरतीपर जडविज्ञानसे प्रभावित वातावरणमे अवतरण न होता तो किस तरह असंख्य प्राणियोको भगवान्की कृपाके सहारे भवसागरसे पार उतरकर अपना जीवन सफल बनानेकी भागवती प्रेरणा मिलती। वे भगवान्की पुण्यविभूति थे, उनका कार्य भगवान्का ही कार्य था।

सत भाईजीका भागवत जीवन मित्र-शत्रु और अपने-परायेके भेदसे परे था। उनके सम्पर्कमे आनेवाले प्राणियोने उनसे आत्महित—भगवत्प्रेम ही प्राप्त किया, कल्याण और श्रेयके मार्गपर चलनेकी ही सीख पायी।

लोकहितकी सद्भावना उनके सार्वभौम व्यक्तित्वकी आधार-शिला थी। उनके तन, मन और वचनसे किसी भी प्राणीको क्षोभ नही हुआ और न उन्होने ही अपने मन और वचनमे किसीके प्रति कभी क्षोभका भाव उठने दिया। बात-ही-बातमे एक बार उन्होने मुझसे कहा था कि 'मैने अपने मनमे किसीका भी कभी अहित नही सोचा, मैने अपने हाथसे किसीका अपकार नही किया और वचनमे किसीके भी प्रति द्वेष नही व्यक्त किया।' यह थी उनके तन, मन और वचनकी निर्दोष तथा द्वेषरहित पवित्रता। गोस्वामी तुलसीदासजीने ऐसे ही लोकसतोके लिये कहा था—

> तन करि, मन करि, वचन करि, काहू दूषत नाहिं।
> तुलसी ऐसे संत जन, रामरूप जग माहिं॥ (वैराग्यसंदीपिनी)

भाईजी लोकसंत थे। जिनके हृदयमे हरिका निवास होता है, वे ही तीनो लोकमे बडे कहे जाते है। संत भाईजीके हृदयमे भगवान्का निवास था, क्योकि वे 'अद्वेष्टा' थे। इस दृष्टिसे भाईजी हमारे बडे थे, पूज्य थे। महात्मा नाभादासकी अपनी प्रसिद्ध रचना 'भक्तमाल'मे स्वीकृति है—'अगर कहै, त्रैलोक में हरि उर धारै ते बड़े।'

भाईजी परमभागवत अथवा भागवतोत्तम थे। समस्त प्राणियोमे वे भगवान्‌को अधिष्ठित देखते थे। भागवत मानवकी कसौटी ही यही है कि वह सबमे भगवान्‌को और भगवान्‌मे सबको देखे—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(श्रीमद्भागवत ११।२।४५)

इस तरहकी भगवद्दर्शनकी भावना ही सर्वात्मबोधकी जननी है। **'वासुदेवः सर्वमिति'** समझनेवाले सत ही आत्मबोधके धनी होते है। इस तरहके संत ससारमे कम ही पाये जाते है। भाईजीकी भगवदाकारमयी दृष्टि—चित्तवृत्ति वडी व्यापक थी, गहन थी। मैने उन्हे श्रीमद्भागवतका यह श्लोक उद्धृत करते प्राय सुना था कि 'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, जीव-जन्तु, दिशाएँ, वृक्ष, नदी, समुद्र तथा और भी जितने भूत-समूह है, वे सव हरिके ही तो शरीर है, इसलिये सभीको अनन्यभावसे प्रणाम करना चाहिये।' और उन्होने इस उद्धरणको अपने जीवनमे यथाशक्ति चरितार्थ करते हुए दूसरोको भी इसी तरहका आचरण अपनानेकी आजीवन प्रेरणा दी—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किं च भूतं प्रणमेदनन्यः॥

(श्रीमद्भागवत ११।२।४१)

मैने उनके आचरण और वचनमे अद्भुत समन्वय देखा। वे करते अधिक थे, कहते कम थे। वे कुछ भी व्यर्थ नही कहते थे। उनके आचरण तथा वचन—दोनो-के-दोनो समान-रूपसे अव्यर्थ थे। उन्होने सदा अपने आपको भगवान्‌के ही सानिध्यमे विद्यमान अनुभव किया, जिनसे लोक-लोकान्तरकी समस्त वस्तुओकी उत्पत्ति होती है। यही उनका सर्वात्मवोध अथवा भागवत-दर्शन है।

श्रीभाईजीकी साधनामे सदा, सर्वथा श्रीहरि ही श्रोतव्य, कीर्तनीय और स्मरणीय है। उन्होने साधनाकी प्रारम्भिक और सिद्ध—दोनो अवस्थाओमे भगवदाश्रयको ही श्रेय समझा। भगवदाश्रयकी नीव है—जागतिक प्रपञ्चके प्रति पूर्ण विरक्ति। समस्त आसक्तियोके त्यागका ही रूप है—भगवदाश्रय। इस भगवदाश्रयकी व्याख्यामे श्रीभाईजी सत्सङ्गमे भगवान्‌की यह उक्ति उद्धृत किया करते थे कि 'मेरे भक्त मेरी सेवाको छोडकर दिये जानेपर भी पॉच प्रकारके मोक्षको भी ग्रहण नही करते'—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥

(श्रीमद्भागवत ३।२९।१३)

वीसवी शताब्दीके विश्व-सतोमे वे विशिष्ट भजनानन्दी महात्माके रूपमे प्रख्यात कहे जा सकते है। उन्होने विश्वके अधिकाधिक प्राणियो—अध्यात्म-साधको और जनसाधारणको भगवद्भजनानन्द-रस प्रदान किया। भगवद्भजन-रस-वितरणमे उनकी विशालहृदयता और आध्यात्मिक उदारताका परिचय मिलता है। सत भाईजीका स्वर्णिम सतरव **'वासुदेवः सर्वमिति'**की

कसौटीपर खरा उतरा। आध्यात्मिक साधनाके इतिहासमे वे अमर है। उन्ही-जैसे महान् भक्त-संतोंके लिये भगवान्की अक्षर विज्ञप्ति है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता ६। ३०)

परमभागवत भाईजीने तन, मन और धन—सर्वस्व भगवान्के चरणोपर निष्कामभावसे समर्पित कर दिया। सत भाईजीने न तो किसी सम्प्रदायका प्रवर्त्तन किया न उन्होने किसी विशिष्ट दर्शनका पक्ष लिया। उनका यह कार्य उन्हें विश्व-सत-परम्परामे गौरवपूर्ण पदपर प्रतिष्ठित कर सका। भाईजीने परम्परागत शुद्ध भागवद्धर्म और भगवत्प्रेम-मार्गका ही पक्ष लिया। वे वैष्णव सत थे। उनकी वैष्णवता विश्वजनीन थी। उन्होने स्वानुष्ठित भागवतधर्मके प्रचार और प्रसारके लिये विश्व तथा भारतके किसी भी आध्यात्मिक सगठनके सिद्धान्तोका खण्डन नही किया। उन्होने तो सवमे भगवान्की व्यापकताकी अनुभूति की। अपनी इस आध्यात्मिक उदारताके नाते ही वे 'कल्याण'को माध्यम वनाकर विश्वके अधिकाश देशोमे शुद्ध भागवत-धर्मका व्यापक प्रचार कर सके। उनका यह असाधारण कार्य था। उन्होने अपने जीवनमे अनुभव किया कि भागवतधर्म—वैष्णवता ही एकमात्र विश्वधर्म है।

सत भाईजी भगवत्प्रेममार्गी थे। उनकी साधना-पद्धतिका उच्चतम आदर्श यह था कि लोकजीवन भगवत्प्रेमसे परिपूर्ण हो जाय। भगवत्प्रेमको उन्होने जीवमात्रका परम पुरुषार्थ स्वीकार किया। भाईजीने कहा कि 'धर्ममूल तो भगवान् है। उन्हीसे प्रेम करना चाहिये। भगवत्प्रेम ही समस्त लोकमात्रका धर्म है।'

धर्ममूलं हि भगवान्, सर्ववेदमयो हरिः। (श्रीमद्भागवत ७। ११। ७)

विश्व-सत-परम्परामे सत भाईजीकी सर्वमान्य मौलिकता अथवा विशिष्टता यह है कि वीसवी शतीके वैष्णवधर्म—वैष्णवसिद्धान्तमे भक्तोचित आचरणकी प्रतिष्ठा करके उन्होने भागवतधर्म अथवा वैष्णवमतको लोकधर्म सिद्ध किया। भाईजीने श्रीराधाकृष्णकी प्रेम-प्राप्तिमे साधनाकी सिद्धि वतायी। उन्होने कहा कि 'मेरे विश्वासके अनुसार श्रीराधाकृष्ण-तत्त्व सर्वथा अप्राकृत है, इनका विग्रह अप्राकृत है, इनकी समस्त लीलाएँ अप्राकृत है, जो अप्राकृत क्षेत्रमे अप्राकृत मन-बुद्धि-शरीरसे अप्राकृत पात्रोमे हुई थी। अप्राकृत लीलाएँ देखने, सुनने, कहने और समझनेके लिये अप्राकृत नेत्र, कर्ण, वाणी और मन-वुद्धि चाहिये।' सत भाईजीने अपनी 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' पुस्तकमे स्वीकार किया है कि 'श्रीराधामाधवकी साधना जगत्के काम-राज्यकी वस्तु तो है ही नही, उसकी अत्यन्त विरोधिनी है। श्रीराधारानीके स्वरूपतत्त्वका अनुशीलन और श्रीराधाभावका साधन कामके कलुषको सदाके लिये धो डालनेवाला है। यह रसमय है, आनन्दमय है, छविमय है, मधुरिमामय है और मोक्षतिरस्कारी दिव्य भगवद्भावको प्राप्त करानेवाला है।' इस तरह परमभागवत भाईजीने जगत्के लोगोको दिव्य भगवत्प्रेमकी ओर आकृष्ट किया और विशेष ध्यान देनेकी वात तो यह है कि उन्होने वैराग्यरसपूर्ण दिव्य भगवद्रागका अपने जीवनसे रसास्वादन करनेके वाद ही शब्दोमें अभिव्यञ्जन किया। उन्होने कहा कि "अन्यान्य

साधनोद्वारा भगवान् अन्यान्य रूपोमे प्राप्त होते है, परंतु भक्तिद्वारा तो वे 'प्रियतम' रूपमे मिलते है। यह प्रेम ही चरम या पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमे मोक्षका भी सन्यास हो जाता है। यही जीवनका परम फल है।" सत भाईजीने भगवत्प्रेमको ही विश्वजनीन भागवतधर्म स्वीकार किया। भगवत्साधना तो निस्सदेह निष्काम प्रेम—निर्मल भक्तिसे ही की जाती है, गोपीप्रेम अथवा गोपी-उपासना इस बातका सबसे बड़ा प्रमाण है।

हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः। (श्रीमद्भागवत-माहा० २। १८)

सत भाईजीने अपने जीवनमे यह सत्य चरितार्थ कर दिया कि श्रीराधा अनन्य भगवत्प्रेमकी प्रतिमा है। यह प्रेम ऊर्ध्वतम आध्यात्मिक सत्तासे लेकर शरीरतक सर्वाङ्गमे परिपूर्ण अथवा अखण्ड रहता है। इस प्रेमके द्वारा भगवान्के चरणारविन्दमे निरपेक्ष सम्पूर्ण आत्मदान अथवा समर्पण हो जाता है और प्रेमीके जीवनके कण-कणमे परमानन्द भर जाता है।

वे नाम-रूपकी आसक्तिसे परे अपने जीवनके अन्तिम दिनोमे स्वरूपानन्द—भावसमाधि और प्रियतम भगवान्—रसराज श्रीकृष्णके रसमय लीला-विहारमे लीन रहते थे। वे जीवन्मुक्त अथवा नित्यलीलास्थ तथा नित्यमुक्त सत थे। संत भाईजीके सम्बन्धमे यह बात निस्सकोच कहनेका साहस होता है कि उनका मन भगवद्रूप हो उठा था। उनके मनमे रसस्वरूप भगवान्के सिवा कुछ भी नही रह गया था। भगवान् स्वयं परमानन्दस्वरूप है। वे जब मनमे प्रवेश कर जाते है, तब वह पूर्णरूपसे उनके आकारका होकर परमानन्दमय—रसमय बन जाता है।

विश्व-संत भाईजीने विश्वको यही सदेश दिया है कि 'मानव तभी सुखी और सतुष्ट हो सकता है, जब उसका जीवन भगवद्भक्तिसे परिपूर्ण हो जाय, भागवत जीवनसे ही ससारमे शान्ति और प्रेमका साम्राज्य स्थापित हो सकता है। हमे हमारी सारी चिन्ताएँ, निर्वाहकी भावनाएँ भगवान्के चरणोमे समर्पित कर देनी चाहिये, भगवान् हमारे कल्याणके लिये निरन्तर प्रस्तुत है।'

●

अति कृपालु संतोप वृति, जुगल चरनमे प्रीत।
नारायन ते संत वर, कोमल वचन विनीत॥
तजि पर औगुन नीर को, छीर गुननसो प्रीति।
हंस संतकी सर्वदा, नारायन यह रीति॥
तनक मान मन में नही, सब सो राखत प्यार।
नारायन ता संत पै, वार वार वलिहार॥

—श्रीनारायण स्वामीजी

●

भाईजी—आदमी नहीं, फ़रिश्ता

श्रीरियाज अहमद अन्सारी

पूज्य श्रीभाईजी महाराजके बारेमे कुछ बयान करनेसे पहले यह बतलाना जरूरी है कि मेरा उनसे परिचय कैसे हुआ।

बादशाह बाबरने अयोध्याके 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर'को तोडकर मस्जिद बनवा दी और उसका नाम 'बाबरी मस्जिद' रख दिया था। तबसे उस स्थानके लिये बराबर हिदुओ और मुसल्मानोमे झगडे व खूनखराबे होते रहे। सन् १९४९ मे भी इस स्थानको वापस लेनेके लिये हिदुओमे तहरीक शुरू हुई, जिसकी वजहसे न केवल अयोध्या, बल्कि पूरे मुल्ककी फिजा खराब होने लगी। ऐसा देखकर मैंने एक ईमानदार मुसल्मानकी हैसियतसे एक बयान अखबारोमे दिया कि—"इस्लाम किसी गैर-मुस्लिम धर्मके स्थानको तोडकर मस्जिद बनानेकी इजाजत नही देता और बादशाह बाबरने अपने दौरे हुकूमतमे 'श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर'को तोडकर तथा मस्जिद बनवाकर कोई इस्लामी काम नही किया है, बल्कि बाबरकी इस हरकतने हिदुस्तानके हिदुओके दिलोमे इस्लाम और मुसल्मानोसे नफरत पैदा कर दी है। इसलिये आजके हम मुसल्मानोको चाहिये कि "श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिर' श्रीरामको माननेवाले हिदुओको वापस कर दे, ताकि यह नफरत हमेशाके लिये खत्म हो जाय।" इस सिलसिलेमे मैंने सरकारसे भी माँग की थी कि वे इस मन्दिरको हिदुओको वापस दिलानेके लिये कोई ठोस कदम उठाये।

मेरे इस बयानको अखबारोमे पढकर श्रीभाईजीने मुझसे मुलाकात करनेके लिये मुझे बुलाया और मै उनके निवास-स्थानपर जाकर उनसे मिला। कहनेको तो हमारी यह पहली मुलाकात थी, लेकिन भाईजीने मुझसे इस तरहकी बाते की, जैसे हम बहुत दिनोसे एक-दूसरेको जानते रहे हो। उन्होने बहुत सीधे-सादे प्यारभरे लफजोमे मुझसे देरतक बाते की। जब मै वापस जानेको तैयार हुआ, तब श्रीभाईजी भी न केवल खडे हो गये, बल्कि मुझे अपने आफिसके दरवाजेतक छोडने आये। जब मै रिक्शेपर बैठ गया, तब श्रीभाईजीने अपने दोनो हाथोको जोडकर मुझे सलाम किया और मैंने भी अपने दोनो हाथोको जोडकर उनके सलामका जवाब दिया। अपनी जिदगीमे पहली बार मैंने दोनो हाथोको जोडकर सलामका जवाब दिया था, इसलिये कि हम मुसल्मानलोग एक ही हाथ उठाकर सलाम करते है या सलामका जवाब देते है। भाईजीके इस मुलाकातका मुझपर बहुत असर पडा और मैंने सोचा कि 'इतना बडा इन्सान मुझ-जैसे नाचीज आदमीसे इस तरह पेश आया कि इनमे अपने बडे होनेका कोई गुमानतक नही है।' पूज्य श्रीभाईजीके बारेमे मेरे मनमे यह पहली राय कायम हुई।

श्रीराम-जन्मभूमि-मन्दिरकी तहरीक जो पकडती गयी, जिसकी वजहसे भाईजीसे मेरी मुलाकात सलाह व मश्वराहके सिलसिलेमे बराबर होती रही। अयोध्याके रहनेवाले एक हिदू ब्रह्मचारी मुसल्मानोके साथ हो गये और वे उत्तरप्रदेशके बडे-बडे शहरोमे जाकर मुसल्मानोके आम जलसेमे 'मस्जिद बाबरी'की हिमायत करते और मुसल्मानोको तरह-तरहसे बहकाते और

मेरे ख़िलाफ भी बहुत बोलते रहे। वे गोरखपुर भी आये और यहाँ उन्होंने मेरे खिलाफ और जोरदार शब्दोंमें मुसल्मानोंको वरगलाया। मुस्लिम अख़बारात तो मेरे ख़िलाफ लिखते ही रहते थे। नतीजा यह हुआ कि पूरे उत्तरप्रदेश, और खासकर गोरखपुरके मुसल्मान मेरे मुख़ालिफ हो गये। मेरे रिश्तेदार व ख़ानदानके लोग भी मुझसे दूर रहने लगे और मुझे तरह-तरहकी तकलीफें मिलने लगीं। मेरे वालिद साहबने मौलवियोंके दबावमें आकर मुझे ख़ुदसे अलग कर दिया। अब मेरे पास कारोबार करनेके लिये भी पूँजी नहीं थी। नौकरी आसानीसे नहीं मिलती, मैं बिल्कुल बेकार हो गया—हालाँ कि श्रीभाईजी बराबर मुझसे मुलाकातके दौरान कहते रहे—'भाई साहब, मेरे लायक कोई सेवा हो तो बिना सकोच कहियेगा। मुझे अपना ही समझिये मैं कोई गैर नहीं हूँ।' अफसोस, मैं बदनसीब भाईजीकी इनफैयाजाना बातोंका मतलब नहीं समझ सका और मेरे घर फाके होने लगे। मेरा शरीर कमजोर होने लगा और मेरी हालत बीमारकी-सी हो गयी। इस कारण मैं कई दिन भाईजीसे मिलने नहीं जा सका। इस दौरान मेरे यहाँ लगातार तीन दिनोंतक खाना नहीं बना। मेरी लड़की शहेदा, जो इन दिनों एक दो सालके बच्चेकी माँ है, उन दिनों चार सालकी थी और मेरे दो बच्चोंसे छोटी थी, वह भूखसे बहुत रोने लगी। मेरे पास खानेके लिये कुछ नहीं था और न कोई पड़ोसी कुछ देनेवाला था—इसलिये कि मैं मौलवियोंके कहनेके अनुसार काफिर था, एक मस्जिदको मन्दिर कह रहा था, हालाँ कि मेरा कहना हिंदुओंकी तरफदारी करना नहीं था, बल्कि इस्लामके कानूनके मुताबिक था। लेकिन आज सच्चा मुसल्मान वह माना जाता है, जो गायकी कुर्बानी करे, ग़ैर-मुस्लिमोंको बुरा कहे, उन्हें गालियाँ दे तथा उनकी इबादतगाहोंको नुकसान पहुँचाये। मैं इस किस्सेको यहीं छोड़ देना चाहता हूँ—इसलिये कि एक-न-एक दिन हम सबको उस खुदाकी अदालतमें हाज़िर होना ही है, जो सबको पैदा करता है, पोसता है और अपनी अदालतमें बुलाकर सबके कर्मोंके अनुसार फैसला करता है। मैं मुतमईन हूँ कि मेरा और मौलवियोंका मामला भी ख़ुदाकी अदालतमें जरूर-जरूर पेश होगा।

ख़ैर, मैं यह कह रहा था कि अपनी लड़की शहेदाकी हालत मुझसे देखी नहीं गयी और मेरी बरदाश्तकी ताकत बिल्कुल ख़त्म हो गयी। मैंने सारी मुसीबतोंसे नजात पानेके लिये आत्म-हत्याका फैसला कर लिया और आनेवाली रातका वक़्त इसके लिये मुनासिब समझा। इस फैसलेसे मुझे एक सकून मिल गया और मैं इतमीनानसे अपने बिस्तरपर लेट गया। दिनके लगभग १० बजे थे। किसीने दरवाजा खटखटाया। मैं उठकर बाहर आया तो देखा, सड़कपर रुकी हुई मोटरके नज़दीक श्रीभाईजी खड़े हैं। मैंने उनसे अंदर आनेकी गुज़ारिश की और वे अंदर आकर एक कुर्सीपर बैठ गये। मैं उनके पास चारपाईपर बैठ गया, जिसपर थोड़ी देर पहले मैं लेटा हुआ था। भाईजीने मुस्कराते हुए मेरी मिजाजपुर्सी की और कहा—'भाई साहब, आप तो बीमार-से लगते हैं।' जवाबमें मेरे मुँहसे सिर्फ 'जी' निकला. इसपर दूसरा सवाल भाईजीने किया—'क्या तकलीफ है आपको? कौन-सी बीमारी है?' भला, मैं उनसे कैसे कहता कि भाईजी, भूखा रहते-रहते कमज़ोर हो गया हूँ। इधर तीन दिनोंसे पानीके सिवा मुझे कुछ खानेको नहीं मिला, इसलिये मेरी हालत ऐसी हो गयी है।' मुझसे कुछ कहा नहीं गया, मैं ख़ामोश रहा।

मुझे चुप पाकर भाईजीने फिर बडे तसल्ली-आमेज लफ्जोमे कहना शुरू किया—'भाई साहव ! यह दुनिया दु खकी जगह है । यहाँ सवको तकलीफ उठानी पडती है और सच्चे लोगोपर तो और भी मुसीवत आती है—इसलिये कि भगवान् उनकी परीक्षा लेते है ।' भाईजीकी ये वाते मुझपर कोई ख़ास असर नही कर रही थी, क्योकि आज रातको अपने प्रोग्रामपर अमल कर लेनेके वाद मुझे दुनियाकी सारी मुसीवतोसे छुटकारा मिल जानेवाला था । तो फिर मुझे उनकी वातोमे क्या लुत्फ मिलता ? सिर्फ भाईजीके अदवमे मैने एक फीकी-सी मुस्कराहटके साथ गर्दन हिलाकर उनके खयालातकी ताईद की। वाते करते हुए एक वडा-सा लिफाफा मेरी तरफ वढाते हुए उन्होने फरमाया—'भाई साहव ! आपको इसकी जरूरत है, इसे रख लीजिये । इन्कार न कीजियेगा, नही तो मुझे वडा दु ख होगा ।' 'इसमे क्या है, भाईजी ?'—मैने लिफाफा अपने हाथमे लेते हुए पूछा—हालाँ कि मै समझ रहा था कि रुपयेके सिवा इस समय इसमे और क्या हो सकता है । भाईजीने फरमाया—'थोड़े रुपये है, इस वक़्त काम चलाइये । जल्दी ही मै कारोवार करनेके लिये ओर पैसोका भी इतजाम करनेकी चेष्टा करूँगा।' इतना सुनते ही मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरी सारी कमजोरियॉ एकदम दूर हो गयी । मैने कहा—'भाईजी, मै आपके इन एहसानोका वदला कैसे चुका सकूँगा ?' भाईजीने कहा—'भाई साहव ! यह कैसा एहसान और कैसा वदला ! आपको आराम मिल जाय, यही मै चाहता हूँ ।' भाईजी वोलते रहे और मै सोच रहा था कि इनको कैसे मालूम हो गया कि मुझे रुपयोकी जरूरत है। किसने इनसे जाकर कह दिया ? मै इसी विचारमे था कि भाईजीने फरमाया—'भाई साहव, मेरी आपसे एक प्रार्थना है । अगर आप इजाजत दे तो मै अर्ज करूँ ।' मैने कहा—'हुक्म कीजिये, भाईजी ! आपका हर हुक्म मेरे सर-आँखोपर होगा ।' पूज्य भाईजीने फरमाया—'आपने आज रात अपनी जिदगीके साथ जो करनेका निश्चय किया है, वह ठीक नही । जिदगी खुदाकी दी हुई चीज है । इसे ख़त्म करनेका अधिकार भी उसीको है, आदमीको नही । आप इस इरादेको छोड दीजिये ।' भाईजीके मुँहसे इतनी वाते सुनकर मेरी हैरतकी इन्तहा न रही । उस लमहा ऐसा लगा, जैसे मुझपर विजली गिर पड़ी हो । मेरे वदनके सारे रोगटे खडे हो गये । मै सोचने लगा—'अपने सिवा मैने इस इरादेसे किसीको भी वाखवर नही किया, फिर इन्हे कैसे मालूम हुआ ? जरूर इनमे कोई गैवी ताकत है ।' ऐसा खयाल आते ही मै चारपाईसे उठकर खड़ा हो गया और वोला—'भाईजी, आप इन्सान नही है, फरिश्ता है ।' उन्होने मुस्कराते हुए फरमाया—'मै फरिश्ता नही हूँ ।' मैने कहा—'तो फिर मेरे इस इरादेका आपको कैसे पता चला ?' उन्होने फरमाया—'भाई साहव, दिलको दिलसे राह होती है । आपके दिलमे जो वात आयी, वह मेरे दिलको ज्ञात हो गयी ।' भाईजी इतना कहकर खुलकर हँस दिये । यह सव कुछ देखनेके वाद मुझमे भाईजीसे सजीद

मुझे आठ हज़ार रुपये और दिये, तव मैंने उनसे अर्ज़ किया कि 'भाईजी ! मैं ये रुपये आपको कैसे वापस करूँगा ?' तो उन्होने फरमाया—'भाई साहव, इन्हे वापस करनेकी ज़रूरत नही है। मै कोई कर्ज़ नही दे रहा हूँ, आपकी सेवा कर रहा हूँ। इन रुपयोसे आप कारोवार करके अपने वाल-वच्चोकी परवरिग कीजिये ।

मेरा खान्दानी पेगा हैंडलूमसे कपडे वनवाना है। भाईजीके दिये हुए पैसोसे मैंने एक छोटा-सा मकान वनवाया और हैंडलूम लगाकर कारोवार गुरु कर दिया। मेरे परिवारकी ज़िदगी आरामसे वसर होने लगी।

इस वाकयासे मेरे मनमे भाईजीके लिये जो राय कायम हुई, वह यह थी कि वे आदमी नही, फरिश्ता है और सच भी है, सारी उम्र भाईजीने मुझ-जैसी नाचीज़के साथ जिस प्यार और हमदर्दीका ही नही, सगे भाईका-सा सलूक किया, वह इस ज़मीनपर नही दीखता। जव भी मुझे तकलीफ होती, मै उनके पास चला जाता और वे मेरी मदद किये विना नही रहते। सिफ़्त यह थी कि वे मुझे हमेगा देकर भी मुझे और मेरी इज्ज़तको ऊँचा रखते। 'फरिश्ता' भी ऐसा सलूक करता होगा, मुझे गक है।

भाईजी हर मजहवकी इज्ज़त करते और हर मजहवी पेगवाका नाम वड़ी इज्ज़त व आदरके साथ लेते थे। वह पूजाकी तरह नमाज़की भी कदर करते थे और कई वार उनसे वाते करते हुए नमाज़का समय हो गया तो मैने नमाज़ उनके आफिसके कमरेमे पढी। वे नमाज़ पढनेके लिये साफ-सुथरी विछी हुई चटाईपर कोई और साफ कपडा या कम्वल विछवा दिया करते और वज़ूके लिये पानीका वन्दोवस्त कर देते थे।

२२ मार्च १९७१को भाईजीकी रूह उनके फानी जिस्मसे परवाज़ कर गयी और उनके फानी जिस्मको गीतागार्डेनमे उनकी कोठीके पीछेकी तरफ चिता वनाकर आगके सुपुर्द कर दिया गया, जिसने उस जिस्मको ख़ाक कर दिया। जिसे छूनेके लिये मुल्कके कोने-कोनेसे अकीदतमद आया करते थे और वह पाकीजा ख़ाक आज भी चिताके चवूतरेमे अच्छी तरहसे महफूज़ है, जिसकी जियारतके लिये लोग दूर-दूरसे आते है। मै अव भी गीतागार्डेन जाता हूँ और भाईजीके कमरेमें जाकर मुझे ऐसा लगता है कि वे मौजूद हैं। हाँ, उनका फानी जिस्म नही रहा। लेकिन उनकी रूह कमरेमे ही नही, वल्कि गीतावागीचाके कण-कणमे मौजूद है।

मेरी ख़्वाहिश है और भाईजीसे सम्वन्धित सभी लोगोसे प्रार्थना है कि जिस मकानमे पूज्य भाईजीका फानी जिस्मका रूहसे रिश्ता टूटा और जिस चितापर उनके फानी जिस्मको आगके सुपुर्द किया गया, उसे महफूज़ रखा जाय और उनकी रोजमर्रहकी इस्तेमालकी चीजे और दीगर निगानियोकी भी हिफाज़त की जाय, ताकि आज नही, वल्कि वर्षो या सदियो वाद जव कोई संत या विद्वान् महापुरुष उस अज़ीम हस्तीके वारेमे छान-वीन करे तो उसे इन सव चीज़ोसे मदद हासिल करके उस मसलेको हल करनेमे आसानी हो, जिसे मौजूदा ज़मानेमे हमलोग 'भाईजी'-के साथ और नज़दीक रहते हुए भी हल करनेमे नाकामयाव रहे।

●

फ़रिश्ता-सिफ़त इन्सान

बहिन बी० बेगम मौदहा

मुझे जव इस बुजुर्ग और फरिश्ता-सिफत इन्सान माननीय हनुमानप्रसादजी पोद्दारके अपने वीचसे उठ जानेकी खवर मिली तो जमीन पाँव तलेसे निकल गयी। घटो कुछ भी समझमे न आया कि क्या ऐसी शखसियत भी फना हो सकती है। मौत तो जीतती ही है और सव उससे हार मानते है।

मेरा सम्पर्क आदरणीय पोद्दारजीसे मेरे पति 'सगीर साहव'की मार्फत १९५२ से रहा है। जिस समय मेरे पति चित्रकूटमे राजकीय ड्यूटीपर थे। उन्होने पोद्दारजीकी इतनी अधिक तारीफ व वडाई की कि मै चकित रह गयी और फिर मुझे मिलाने ले गये। जव मैंने उन्हे अदवसे सलाम किया और मेरे पतिने मेरा परिचय दिया तो पोद्दारजीने फरमाया—'खुश रहो, वेटी! लोगोके दुःख-सुखमे शरीक रहोगी तो अमर रहोगी।' और भी वाते हुई। तवसे वे मुझे वरावर 'कल्याण' भेजते रहे। कई वार उन्होने लिखा कि "तुमलोग कुछ 'कल्याण'मे लिखो।"

१९६१ ई० मे जव मै अपने पतिके साथ स्वर्गीय राहुलजीको उनकी बीमारीमे कुछ सामग्री देने दार्जिलिग गयी, तव पोद्दारजीका जिक्र मेरे पतिने छेड़ दिया। उसपर स्वर्गीय राहुलजीने कहा था—'हनुमानप्रसादजी पोद्दार जो सेवा-कार्य कर रहे है, उससे वे अमर रहेगे। उनकी सेवाएँ लोगोको अवश्य याद रहेगी।'

पोद्दारजी एक महान् व्यक्ति, फरिश्ता-सिफत—भलाइयोसे भरपूर और द्वेषभावसे अलग व दूर रहनेवाले, सच्चे मानवधर्मके पुजारी और राष्ट्रीय एकताके महान् स्तम्भ थे।

●

संसारमें सबसे बड़ा देश वही है, जिसने सबसे अधिक संत पैदा किये हों। और सबसे अधिक उन्नतिशील और समृद्धिशाली जाति वही है, जो अपने संतोंका आदर करती है और उनके उपदेशोंका और आदर्शका अनुसरण करती है। इस पुण्यभूमि भारतकी सच्ची सम्पत्ति और गौरव संत ही हैं। और जवतक इसकी पवित्र भूमिमें एक संत भी विद्यमान रहेगा, तबतक उसके गौरवकी ज्योति कभी फीकी नहीं पड़ सकती। संत, योगी, महात्मा और महर्षि आज भी इस भूमिको अलंकृत कर रहे हैं; उनमेंसे कुछको संसार जानता है और कुछ सर्वथा अप्रसिद्ध हैं। उनकी अहंकारशून्य शक्ति ही आज संसारको ध्वंससे बचाये हुए है। उनकी सर्व-देशीय आध्यात्मिकशक्ति—उनकी चैतन्यशक्ति—उनका तेज ही चुपचाप मानवजातिका कल्याण कर रहा है। उन संतोंकी सदा जय हो!

—स्वामी श्रीशुद्धानन्दजी भारती

●

अद्भुत पारस

पं० श्रीतारादत्तजी मिश्र

परमपूज्य श्रीभाईजीके साथ मेरा क्या सम्वन्ध था, इसे मै स्वय ही ठीक-ठीक नही समझता। हाँ, इतना मै अवश्य कह सकता हूँ कि मुझ-जैसा एक तुच्छ प्राणी उन्हे जितना अपना मान सका, उससे अनन्तगुना अधिक उन्होने मुझे अपनाया। मै श्रीभाईजीको अपना वडा भाई मानता हूँ और सतके रूपमे अपना आराध्य। १९७०की फरवरीमे मै गोरखपुर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गया। उन दिनो उनका स्वास्थ्य ढीला था। जव मै वहाँसे लौटने लगा, तव भाईजीने मेरा पैर छूना चाहा। मैने कहा—'भाईजी, आप वडे है तथा मै आपको आराध्य मानता हूँ।' पर श्रीभाईजी न माने। उन्होने कहा—'आप पण्डित है, पूज्य है।' अन्तमे विवश होकर मुझे उनका प्रणाम स्वीकार करना पडा। ऐसी थी उनकी ब्रह्मण्यता, ऐसी थी उनकी विनयशीलता।

भूतकालमे, वर्तमानमे और भविष्यमे भी जो लोग परोक्ष या अपरोक्ष श्रीभाईजीके और उनकी कृतियोके सम्पर्कमे आ चुके है, या आयेगे, उनका रोम-रोम नैसर्गिकरूपसे हार्दिक भावसे यह कह उठेगा—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव वन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

ठीक ही है, जो भगवान्के लिये कहा जाता है, उसे भक्तके लिये कहना पूर्णतया उचित और युक्तिसगत है ही।

शास्त्र कहते है—'सत एक अद्भुत पारस है, जो अपने सम्पर्कमे आनेवाले लोहेको सोना ही नही वनाता, वल्कि उसे अपनी ही तरह पारस वना देता है।' यह सत-महिमा है। श्रीभाईजी ऐसे ही अद्भुत पारस थे। वे आज भी अपनी कृपाकी शक्तिसे किसीको भी उच्चतम भाव प्रदान कर सकते है।

●

महापुरुषोके चरित्र, लेखादि सवसे मनुष्योका उद्धार होता रहता है। भक्तोका जन्म ही 'धर्मसंस्थापनार्थाय' ही होता है। भगवान् तो कभी-कभी, जव पाप इतना वढ़ जाता है कि पापियोंका विनाश किये विना काम नहीं चलता, तव अवतार धारण करके आते हैं; पर भक्तजन तो सर्वदा प्रत्येक युगमे प्राप्य रहते हैं। इसीसे किसी अंशमें उनकी भगवान्से भी अधिक महिमा वतायी गयी है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

कुछ सुखद स्मृतियाँ

पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी

जब 'कल्याण'का 'रामायणाङ्क' निकलनेवाला था, उसी समय मैं 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमें काम करनेके लिये श्रीभाईजीके पास गया। उन दिनों 'कल्याण'का सम्पादकीय विभाग गीताप्रेसकी आध्यात्मिक साधनाका मुख्य केन्द्र था। श्रीभाईजीकी सन्निधिमें साधकवृन्द, जो गीता-प्रेस या 'कल्याण'के प्रबन्ध-विभागके कार्यकर्त्ता थे, संयमशील और भागवत-जीवनकी चर्यामें रत रहते थे। वस्तुत. यही उनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था। और इसके अतिरिक्त उनकी जो जीवनचर्या थी, वह गौण थी। उन दिनों त्यागमय और सेवाका जीवन व्यतीत करनेवालोंका समाजमें काफी आदर और प्रतिष्ठा थी और इस प्रकारके जीवनमें रस भी मिलता था। उन दिनों गीताप्रेसमें त्यागी और सेवाभावसे अनुप्राणित होकर कार्य करनेवाले कई साधक थे। वेतन-भोगी कर्मचारियोंपर भी उनके जीवनका प्रभाव था।

'कल्याण'में कार्य प्रारम्भ करनेके पूर्व क्रान्तिकारी गतिविधिके साथ मेरा वर्षोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतएव यहाँ आनेसे मुझे अनुभव होने लगा कि मैं एक नये ढंगकी संस्थामें आ गया। श्रीभाईजीके भगवद्दर्शनके बारेमें विश्वास होनेके कारण उनके प्रति मेरे हृदयमें असीम श्रद्धाका भाव था। मैंने इसी कारण उनसे अपने भगवद्दर्शनके अनुभवके विषयमें कभी बातें नहीं कीं। उन दिनों श्रीभाईजी 'सद्गुरु'के समान साधकोंको पथ-प्रदर्शन करते थे। सत्सङ्गमें बैठनेवाले प्रायः साधक होते थे। सबको अपनी नित्य साधनाके विषयमें, नित्यचर्याके विषयमें डायरी रखनी पड़ती थी। साधनकी कुछ क्रिया ऐच्छिक होती थी और कुछ अनिवार्य। चरित्रकी शुद्धतापर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसलिये साधक लोग अपनी भूलें भी लिखकर लाते थे। साधक लोग अपनी डायरी श्रीभाईजीको दिखलाते थे और साधनाके विषयमें परामर्श करके साधन-पथमें अग्रसर होनेका प्रयास करते थे। श्रीभाईजीका तो साधनमय जीवन था ही। इस प्रकार साधक-मण्डलीकी साधन-क्रियाके द्वारा गीताप्रेस एक साधन-शक्तिका केन्द्र बन गया, जिससे आकर्षित होकर दूर-दूरसे साधनाभिलाषी लोग परामर्शके लिये आते थे।

अद्भुत पारस

पं० श्रीतारादत्तजी मिश्र

परमपूज्य श्रीभाईजीके साथ मेरा क्या सम्बन्ध था, इसे मैं स्वयं ही ठीक-ठीक नहीं समझता। हाँ, इतना मैं अवश्य कह सकता हूँ कि मुझ-जैसा एक तुच्छ प्राणी उन्हें जितना अपना मान सका, उससे अनन्तगुना अधिक उन्होंने मुझे अपनाया। मैं श्रीभाईजीको अपना बड़ा भाई मानता हूँ और संतके रूपमें अपना आराध्य। १९७०की फरवरीमें मैं गोरखपुर श्रीभाईजीके दर्शनार्थ गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य ढीला था। जब मैं वहाँसे लौटने लगा, तब भाईजीने मेरा पैर छूना चाहा। मैंने कहा—'भाईजी, आप बड़े हैं तथा मैं आपको आराध्य मानता हूँ।' पर श्रीभाईजी न माने। उन्होंने कहा—'आप पण्डित हैं, पूज्य हैं।' अन्तमें विवश होकर मुझे उनका प्रणाम स्वीकार करना पड़ा। ऐसी थी उनकी ब्रह्मण्यता, ऐसी थी उनकी विनयशीलता।

भूतकालमें, वर्तमानमें और भविष्यमें भी जो लोग परोक्ष या अपरोक्ष श्रीभाईजीके और उनकी कृतियोंके सम्पर्कमें आ चुके हैं, या आयेंगे, उनका रोम-रोम नैसर्गिकरूपसे हार्दिक भावसे यह कह उठेगा—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

ठीक ही है, जो भगवान्‌के लिये कहा जाता है, उसे भक्तके लिये कहना पूर्णतया उचित और युक्तिसंगत है ही।

शास्त्र कहते हैं—'संत एक अद्भुत पारस हैं, जो अपने सम्पर्कमें आनेवाले लोहेको सोना ही नहीं बनाता, बल्कि उसे अपनी ही तरह पारस बना देता है।' यह संत-महिमा है। श्रीभाईजी ऐसे ही अद्भुत पारस थे। वे आज भी अपनी कृपाकी शक्तिसे किसीको भी उच्चतम भाव प्रदान कर सकते हैं।

●

महापुरुषोंके चरित्र, लेखादि सबसे मनुष्योंका उद्धार होता रहता है। भक्तोंका जन्म ही 'धर्मसंस्थापनार्थाय' ही होता है। भगवान् तो कभी-कभी, जब पाप इतना बढ़ जाता है कि पापियोंका विनाश किये बिना काम नहीं चलता, तब अवतार धारण करके आते हैं; पर भक्तजन तो सर्वदा प्रत्येक युगमें प्राप्य रहते हैं। इसीसे किसी अंशमें उनकी भगवान्‌से भी अधिक महिमा बतायी गयी है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

कुछ सुखद स्मृतियाँ

पं० श्रीगौरीशंकरजी द्विवेदी

जब 'कल्याण'का 'रामायणाङ्क' निकलनेवाला था, उसी समय मैं 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमे काम करनेके लिये श्रीभाईजीके पास गया। उन दिनो 'कल्याण'का सम्पादकीय विभाग गीताप्रेसकी आध्यात्मिक साधनाका मुख्य केन्द्र था। श्रीभाईजीकी संनिधिमे साधकवृन्द, जो गीता-प्रेस या 'कल्याण'के प्रवन्ध-विभागके कार्यकर्त्ता थे, सयमशील और भागवत-जीवनकी चर्यामे रत रहते थे। वस्तुत यही उनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था। और इसके अतिरिक्त उनकी जो जीवनचर्या थी, वह गौण थी। उन दिनो त्यागमय और सेवाका जीवन व्यतीत करनेवालोका समाजमे काफी आदर और प्रतिष्ठा थी और इस प्रकारके जीवनमें रस भी मिलता था। उन दिनो गीताप्रेसमे त्यागी और सेवाभावसे अनुप्राणित होकर कार्य करनेवाले कई साधक थे। वेतन-भोगी कर्मचारियोपर भी उनके जीवनका प्रभाव था।

'कल्याण'मे कार्य प्रारम्भ करनेके पूर्व क्रान्तिकारी गतिविधिके साथ मेरा वर्षोसे घनिष्ठ सम्वन्ध था। अतएव यहाँ आनेसे मुझे अनुभव होने लगा कि मै एक नये ढंगकी सस्थामे आ गया। श्रीभाईजीके भगवद्दर्शनके वारेमे विश्वास होनेके कारण उनके प्रति मेरे हृदयमे असीम श्रद्धाका भाव था। मैंने इसी कारण उनसे अपने भगवद्दर्शनके अनुभवके विपयमे कभी वाते नही की। उन दिनो श्रीभाईजी 'सद्गुरु'के समान साधकोको पथ-प्रदर्शन करते थे। सत्सङ्गमे बैठनेवाले प्राय. साधक होते थे। सवको अपनी नित्य साधनाके विषयमे, नित्यचर्याके विषयमे डायरी रखनी पड्ती थी। साधनकी कुछ क्रिया ऐच्छिक होती थी और कुछ अनिवार्य। चरित्रकी शुद्धतापर विशेप ध्यान दिया जाता था। इसलिये साधक लोग अपनी भूले भी लिखकर लाते थे। साधक लोग अपनी डायरी श्रीभाईजीको दिखलाते थे और साधनाके विषयमे परामर्श करके साधन-पथमे अग्रसर होनेका प्रयास करते थे। श्रीभाईजीका तो साधनमय जीवन था ही। इस प्रकार साधक-मण्डलीकी साधन-क्रियाके द्वारा गीताप्रेस एक साधन-शक्तिका केन्द्र वन गया, जिससे आकर्षित होकर दूर-दूरसे साधनाभिलापी लोग परामर्शके लिये आते थे।

सत्सङ्गके पूर्व प्रतिदिन कीर्त्तनके द्वारा सत्सङ्गका वातावरण मुखरित होता था। साधकोमे परस्पर वड़ा प्रेम था। श्रीभाईजीके प्रति उनकी श्रद्धा तथा भक्तिभावनाका तो क्या कहना? उस समयकी साधक-मण्डली श्रीभाईजीके प्रेम-प्रवाहमे सुस्नात होती रहती थी। श्रीभाईजीका जीवन प्रेमसे ओत-प्रोत था। उनके आचार और व्यवहारमे, साधना और सिद्धान्तमे सर्वत्र प्रेमका साम्राज्य था। गोपी-प्रेम, श्रीराधाके प्रेमका आदर्श उसी साम्राज्यके अन्तर्गत है। इस तत्त्वको समझे विना श्रीभाईजीके व्यक्तित्वको समझना दुष्कर है।

वीसवी शताब्दीके तृतीय दशकमे विश्वके इतिहासमे एक अभूतपूर्व घटनाका सूत्रपात हुआ। यह घटना थी—भारतका मुक्ति-आन्दोलन, और इस आन्दोलनको प्रेरणा-प्रदान करनेवाली शक्ति

थी श्रीमद्भगवद्गीता। गीतापर भाष्य और टीकाएँ लिखकर शंकर, रामानुज आदि आचार्यो तथा अन्यान्य प्रसिद्ध विद्वानोंने ज्ञान या भक्तिके सिद्धान्तपर जोर दिया था। स्व० लोकमान्य तिलकके 'कर्मयोगशास्त्र'ने एक अभिनव दिशा दिखलायी, जो सामयिक थी और जिससे भारतीय शिक्षित समाजके कानोंमें **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** की गूँज व्याप्त हो गयी। भारत एक अप्रत्याशित चेतनासे चैतन्य हो उठा। क्रान्तिकारियोंकी गुप्त संस्थाएँ देशमें संगठित हो गयी। देशभक्त युवक प्राणोंकी ममता छोड़कर क्रान्तिवादमें दीक्षित हुए।

यह तो राजनीतिक स्वतन्त्रताकी बात है। इसी स्वतन्त्रताके युद्धके दौरान बहुत-से आध्यात्मिक साधनोंके केन्द्र भी देशमें स्थापित हुए। स्वातन्त्र्य-युद्धके कुछ सेनानी आध्यात्मिक साधनोंमें प्रवृत्त हुए। यह भागवती प्रेरणा थी, कुछ भागवत पुरुषोंको जेल-जीवनमें ही दिव्य चेतनाकी अनुभूति हुई। उन्होंने जेलके एकान्त जीवनसे लाभ उठाया, उस अमूल्य समयको भगवच्चिन्तनमें लगाया और भगवत्कृपाके पात्र बने। जेलसे निकलनेके बाद वे साधन-भजनमें तथा इसके प्रचारमें लगे। भारतके जातीय जीवनको संतुलित करनेमें उनकी इस प्रकारकी सेवाओं-की बड़ी आवश्यकता थी।

ऐसे भागवत पुरुषोंमें दो नाम उल्लेखनीय हैं—श्रीअरविन्द और श्रीभाईजी। श्रीअरविन्द 'अलीपुर षड्यन्त्र केस'में पकड़े गये, जेलमें उन्होंने साधना की, उन्हें सत्यकी अनुभूति हुई और वे जेलसे निकलनेपर पाण्डिचेरीमें आश्रम बनाकर स्वयं योग-साधनामें रत रहे तथा विश्वके कोने-कोनेमें मेधावी साधक आकर उनके आश्रममें योगसाधन करने लगे।

श्रीभाईजीको ब्रिटिश सरकारने गिरफ्तार करके शिमलापाल नामक स्थानमें नजरबंद कर दिया था। उस नजरबंदीकी हालतमें श्रीभाईजीको एकान्त साधनाका सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ निरन्तर साधनामें रत रहनेके फलस्वरूप उन्हें भगवत्कृपा प्राप्त हुई। भगवत्कृपासे उनका जीवन अध्यात्म-प्रधान हो गया। नजरबंदीसे मुक्त होनेपर राजनीतिसे आंशिक संन्यास लेकर वे आध्यात्मिक साधनामें लग गये। इसके बाद 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। निरन्तर साधनामें रत रहकर श्रीभाईजीने 'कल्याण' और गीताप्रेसके प्रकाशनोंद्वारा जन-साधारणमें सदाचारकी स्थापनाके साथ विषयोंमें विरक्ति तथा साधन-भजनकी ओर रुचि एवं प्रीति बढ़ाने-का प्रयास किया। गीताप्रेसके द्वारा प्रचारित साधन-पद्धतिमें हैं—संध्या-गायत्री आदि नित्यकर्मो-को नियमितरूपसे करना, रामायण-गीता आदि धर्म-ग्रन्थोंका नित्य पाठ, नियमित संख्यामें नाम-जप, अपने आराध्यदेवको गुरु मानकर उनकी पूजा-अर्चना करना तथा सब कुछ भगवत्प्रीत्यर्थ करना और इन साधनोंको बराबर बढ़ानेकी चेष्टा करना। 'कल्याण'के द्वारा श्रीभाईजीने लाखों-लाखों मनुष्योंको नामजप तथा गीता-रामायण आदि सद्ग्रन्थोंके पाठके द्वारा मुक्ति-मार्गमें लगाया। लाखों मनुष्योंकी अध्यात्म-सम्बन्धी जिज्ञासाका समाधान किया।

स्वतन्त्रताके आन्दोलनमें भाग लेनेवाले कुछ लोगोंने अध्यात्मका मार्ग पकड़ा। ऐसे लोगोंमें-से कुछ लोगोंको श्रीभाईजीसे प्रेरणा मिली थी।

•

शील, विनय तथा करुणाकी एक साकार प्रतिमा

पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा

मनुष्य जवतक साथ रहता या जीवित रहता है, तवतक उसका ठीक मूल्याङ्कन नही हो पाता । भक्तशिरोमणि उद्धवने कृष्णवियोगके वाद ठीक ही कहा था—

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ।
किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥
दुर्भगो वत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ।
ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥ (श्रीमद्भागवत ३ । २ । ७-८)

कृष्णरूपी सूर्य क्या अस्त हुआ, मानो कालरूपी अजगरने हमारे घरोको खा डाला । सव कुछ श्रीहीन हो गया । किसकी कुशलता क्या कही जाय ? यह भूलोक, विशेषकर यदुवशी तो नितान्त भाग्यहीन ही रहे, जो कृष्णके साथ रहकर भी उन्हे पहचान न पाये—इत्यादि ।

श्रीशुकदेवजी-जैसे ज्ञानीको भी भगवान् श्रीकृष्णके लिये कम शोक न हुआ । श्रीकृष्ण-वियोग-पर उनकी परम हृदयहारिणी उत्प्रेक्षा देखते ही वनती है ।

दशरथादि सत्पुरुषोके वियोगमे भरत-वसिष्ठ-जैसे वडे-वडे ज्ञानी और धैर्यशाली लोगोके ज्ञान और धैर्यका भी अन्त होता है और उनके भी शोक, प्रलाप और विलाप-कलापका वाणीसे वर्णन नही किया जा सकता । और तो और, यहाँतक कि स्वय अशेष कल्याणगुणराशि भगवान् श्रीरामने सज्जनोके वियोगसे कभी अत्यन्त खेद-खिन्न होकर कहा था—

गुणैरापूर्यते यैव लोकरत्नावली भृशम् । भूषार्थमिव तामङ्के कृत्वा भूयो निकृन्तति ॥
(योगवासिष्ठ १ । १३ । ३९)

कालिदास अपने समयके सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी एव वेदान्तनिष्णात विद्वान् थे । पर भोजकी (नकली) मृत्युकी वात सुनकर भी वे पछाड खाकर पृथ्वीपर गिर पडे और उनके मुँहसे सहसा निकल पडा—

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती ।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते ॥ (भोजप्रवन्ध ३२६)

वास्तवमे श्रीभाईजी भी इन्ही दिव्य विभूतियोकी रत्नमयी शृङ्खलाको अलकृत करनेवाले एक अनमोल विशिष्ट मणि थे । भगवान्की इच्छानुसार ही वे उनकी नित्यलीलामे सनिविष्ट हुए, परन्तु उनके वियोगमे कोई भी सहृदय व्यक्ति किस प्रकार क्या श्रद्धाञ्जलि अर्पण करे अथवा उनके किन गुणोपर क्या प्रकाश डाले ? उनके गुणोकी सीमा न थी, जैसा कि ऐसे लोकोत्तर प्राणियोमे देखा जाता है ।

नीतिज्ञोंने शीलको सर्वोत्कृष्ट भूषण कहा है—**'शीलं परं भूषणम् ।'** इसी प्रकार विनय तथा करुणा आदि गुणोंके माहात्म्यके सम्बन्धमें भी बहुत कुछ कहा गया है। अपने जीवनमें इन गुणोंको पूर्णतया उतार लेना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। श्रीभाईजी निश्चय ही शील, विनय और करुणाकी साकार मूर्ति थे। अन्तिम श्वासपर्यन्त उनमें इन गुणोंकी लेशमात्र भी विकृति देखनेमें नहीं आयी। उनके विनयपूर्ण शिष्ट व्यवहारने मानो उनके साननेके सम्पूर्ण विश्वको वशमें कर रखा था। कभी किसीपर वे रुष्ट नहीं हुए किसीसे उन्होंने कड़ी बात नहीं कही। जो उनके सामने एक बार हुआ, वही मन्त्र-मुग्ध हो गया, उनका दास बन गया। विनय ही विद्याको भूषित करता है। उनके विनयपूर्ण पत्र हजारों होंगे, जो अपनी उपमा नहीं रखते और इसीलिये लोगोंने उन्हें सुरक्षित रखा है। उनमेंसे कुछ तो परमोच्च कोटिकी साहित्यिक निधि हैं।

स्नेह तथा करुणाकी वे साकार प्रतिमा थे। उनका हृदय सदा आर्द्र पुष्प-सा सुकोमल था और वे सदा एकरस रहे। 'कल्याण' पत्र उनके अन्तर्हृदयकी विश्व-कल्याण-भावनाका ही प्रतीक था। वे वास्तवमें सबका सब प्रकारसे परम कल्याण करनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इसी आशयसे वे सत्सङ्ग कराते तथा 'शिव' नामसे परम कल्याणकी बातें 'कल्याण'में लिखते तथा लोगोंको व्यक्तिगत पत्रमें भी लिखते थे। उनकी वाणीमें अमृतभरा जादू था। यही हालत उनकी भावपूर्ण लेखनीकी थी। अक्षर बहुत सुन्दर और स्वच्छ। उसमें भी दिव्य सूक्ष्म भावका पुट। यों वे सबमें भगवद्भाव रखते थे। अन्तिम दिनोंमें भी श्रीभागवतके **'खं वायुमग्निं'** श्लोकको सुनाकर उन्होंने सबको नमस्कार किया था। यह सब उनके शीलके अङ्ग थे। प्रत्येक 'कल्याण'के विशेषाङ्कके अन्तमें लिखी उनकी क्षमा-प्रार्थना भी अत्युत्कृष्ट एवं आकर्षक साहित्यिक वस्तु होती थी। श्रीभाईजीने अपना मन्तव्य लिखितरूपमें बहुत कुछ छोड़ा है और उन्होंने जिन बातोंको भी कहा-लिखा, समर्थ रामदासके समान अपने जीवनमें उतारकर ही कहा-लिखा।

श्रीभाईजीने अपनी पुस्तिका 'कल्याणकारी आचरण'में सामान्य व्यक्तिके लिये सदाचार, धर्म, भक्ति विनय आदिके अपनाने, विद्यार्थियों एवं आधुनिक शिक्षा-प्राप्त युवकोंको विशेषरूपसे असंयम एवं उच्छृङ्खलताके परित्यागपूर्वक इन गुणोंको आत्मसात् करनेकी प्रार्थना की है। वास्तवमें सबको ऐसा ही करनेका यत्न करना चाहिये। मेरी दृष्टिमें यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

भगवान्‌के भक्त भगवत्स्वरूप ही होते हैं। उनकी मन-बुद्धि लीलामय भगवान्‌में ओत-प्रोत रहती है, और मन एवं बुद्धिद्वारा ही इन्द्रियादिका व्यापार परिचालित होता है। इसलिये भक्तोंके कार्य-कलाप और विचार-व्यापारको भी भगवान्‌की ही लीलाके तुल्य समझना चाहिये। जैसे भगवान्‌के धाम, लीला-क्षेत्र आदि तीर्थस्थान हैं, उसी प्रकार भक्तोंके निवास-स्थान और कर्मक्षेत्र भी तीर्थ ही बन जाते हैं।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

गृहस्थ संतोंकी परम्परामें

श्रीचन्द्रशेखरजी पाण्डेय

साधारण सेवकसे लेकर करोडपति मित्रतकके वे केवल 'भाईजी' थे। सभी उन्हे इसी नामसे सम्बोधित करते थे। वहुतोको तो उनके वास्तविक नामका पता भी नही। वे समानरूपसे सवके स्वजन, सवके आत्मीय थे।

'कल्याण' तथा गीताप्रेसकी जो इतनी अधिक उन्नति हुई है, इसका श्रेय निश्चित रूपसे श्रीभाईजीको ही है। उन्होने आरम्भमे ही निश्चय किया था कि 'कल्याण'के सम्पादन अथवा ग्रन्थ-प्रणयनके लिये वे एक पैसा भी पारिश्रमिक न लेगे, भोजन-वस्त्र भी नही। परतु कार्य अवैतनिक है, इसलिये जितना सरलतासे हो सके, 'उतना ही काम करो—इस प्रकारकी भावना क्षणमात्रके लिये भी भाईजीके मनमे नही आयी। वे घोर परिश्रम करते थे और भोजन-शयनके घटोको छोडकर निरन्तर कार्यरत रहते थे।

'कल्याण'के प्रारम्भिक वर्षोमे श्रीभाईजीके निवास-स्थानपर विजली नही थी, अत. पखे नही थे। गर्मीमे उत्तर-प्रदेशकी विकट गर्मीका अनुमान वही लगा सकता है, जो उन दिनो वहाँ कभी रहा हो। मै भी सम्पादन-विभागमे था। कामके सिलसिलेमे जव-जव मै भाईजीके पास गया, देखा कि सारा शरीर पसीनेसे लथपथ है, पर वे पसीनेकी ओर तनिक भी ध्यान दिये विना लिख-पढ रहे है। आँखोमे जलन होने लगती तो पास रखी कटोरीका पानी आँखोंमे लगा लेते थे।

श्रीपोद्दारजीके त्याग, परिश्रम और सेवाके परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर उनका प्रभाव वढता गया। गीताप्रेसके वहुमूल्य प्रकाशनो एव 'कल्याण' तथा उसके विशेषाङ्कोके माध्यमसे श्रीभाईजीकी ख्याति देशमे ही नही, विदेशतक पहुँच गयी। समाजके शीर्षस्थ धनी उनके दर्शनको लालायित रहने लगे, किंतु वे वैसे ही सीधे-सादे 'भाईजी' वने रहे। अत्यन्त नम्रतापूर्वक वे सवसे यही आग्रह करते थे कि "मै आपका भाई हूँ, मुझे और कुछ नही, केवल 'भाई' कहिये।" उनकी इच्छाके विरुद्ध एक अधिक शब्द 'जी' जोडकर उन्हे सभी 'भाईजी' कहते थे। स्वयं मानरहित होकर दूसरोका वे अत्यधिक आदर करते थे।

भाईजी दूसरोके दु खसे वहुत शीघ्र द्रवित हो जाते थे। उनका हृदय वहुत ही सवेदन-शील था। किसीके कष्टोसे परिचित होते ही सहायताके लिये उनका मन व्यग्र हो जाता था। ऐसे अवसरोपर अपने धनिक मित्रोके अयाचित स्वेच्छापूर्ण प्रदत्त धनका सदुपयोग करनेसे वे नही हिचकते थे। वाढके समय गीताप्रेसकी ओरसे हुई सेवा-सहायताको गोरखपुर-देवरिया आदि क्षेत्रोके लोग कभी न भूल सकेगे।

भाईजीकी दया दयनीय स्थितिके साक्षात्कारतक ही सीमित नही थी, लोगोके दु खभरे

पत्र पाकर भी वे उनकी सदैव सहायता करते रहते थे। कुछ चालाक व्यक्तियोंने उनकी इस प्रकारकी सहायतामे अनुचित लाभ भी उठाया। निर्धन, दुखी और विधवाके रूपमे पत्र लिखकर ऐसे लोगोने भी उनसे धन प्राप्त किया। बादमे पता चलनेपर साथी लोग ऐसे व्यक्तियोके विरुद्ध कुछ करनेका आग्रह करते, परतु श्रीभाईजी उनकी विवशता समझकर बात टाल देते थे। वे यथासम्भव किसीको भी दुखी नही करना चाहते थे।

सतोकी सेवा और सत्कारमे भाईजीको विशेष आनन्द मिलता था। भारतका शायद ही कोई ऐसा सत होगा, जिससे उनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्पर्क न रहा हो। यही कारण है कि परमपूज्य श्रीउडियाबाबा, श्रीहरिबाबा, श्रीखाकीबाबा, श्रीपौहारीबाबा तथा बाबा श्रीराघवदासजी आदि महान् सतोकी कृपा भाईजीको प्राप्त थी। वर्त्तमानमे जो सत विद्यमान है, उन सबकी भी भाईजीपर बडी कृपा एव आत्मीयता थी।

धर्मके प्रति भाईजीका दृष्टिकोण बहुत उदार था। सभी धर्मोके प्रति उनके मनमे आदरकी भावना थी। 'कल्याण'के सत-अङ्क' तथा 'भक्ताङ्क'मे विश्वके सभी देशो तथा धर्मोके भक्तो-सतोको सम्मानपूर्वक स्थान देना उनकी धार्मिक उदारताका परिचायक है।

योग-वेदान्तका अध्ययन-मनन तथा प्रकाशन करते रहनेपर भी भाईजी हृदयसे भक्त थे। अन्तिम वर्षोमे उनके हृदयकी मधुरताके स्पष्ट दर्शन सबको होने लगे थे। श्रीराधा-जन्मोत्सवके अवसरपर वे तन्मय हो जाते थे। श्रीभाईजीने सरस पदोकी रचना भी की है। उन पदोको देखनेसे पता चलता है कि भाईजी कुशल कवि भी थे। उनके सरस गीतोके कई सग्रह प्रकाशित हो चुके है। मधुरभावके गीतोकी रचना करनेपर भी वे अपने प्रवचनसे साधकोको बराबर सावधान करते रहते थे कि "गोपी-भाव' या 'मधुरभाव'की उपासना बडी ही ऊँची और दुर्लभ वस्तु है। भगवान्की विशेष कृपासे ही इसका अधिकार प्राप्त होता है। इसका तत्त्व-रहस्य ठीक तरहसे न समझनेके कारण ही साधारण मनुष्य बेसमझीसे इसका दुरुपयोग करने लग जाते है।"

भाईजी कबीर, नानक, दादू, नरसी, नामदेव, एकनाथ आदि गृहस्थ सतोकी परम्परामे थे। इन सतोकी भाँति उनकी भी यही मान्यता थी कि ईश्वरकी आराधना या प्राप्तिके लिये घर छोडना आवश्यक नही है।

सचमुच भाईजी तो, बस, 'भाईजी' ही थे। उनके समान वे ही थे। उनकी सभी बाते विलक्षण थी, अलौकिक थी। कहलाते तो वे 'भाईजी' थे, किंतु बडे भाई, सरक्षकके साथ-साथ माँकी ममता और पिताके स्नेहसे भी उनका हृदय परिपूर्ण था। उनके सम्पर्कमे आनेवालोको यही लगता था, जैसे वह अपने परिवारके परम प्रिय एव परम आदरणीय व्यक्तिके समीप है।

स्मरण आते है मुझे वे दिन, जब 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमे काम करते हुए मै गौरवका अनुभव कर रहा था। कार्य ही लक्ष्य था। कोई निश्चित स्थान नही, कोई निश्चित समय नही। जीवनमे, बस, उतना ही समय आया, जब मै देश-कालके बन्धनसे परे था। सन् १९४५की बात है—'गो-अङ्क'की तैयारी हो रही थी। एक गुजराती विद्वान् जिनका इस विषयपर अच्छा

अधिकार था, बुलाकर रखे गये। वे लेख तैयार करने लगे, परतु उन्हे हिदी ठीक नही आती थी, वे गुजराती-प्रधान हिदी लिखते थे और वह भी गुजराती लिपिमे। नागरी लिपिका अभ्यास उन्हे विल्कुल न था। आवश्यकता थी, उन लेखोका प्राञ्जल हिदीमे अनुवाद करनेकी। श्रीभाईजी यदि चाहते तो सरलतासे कुछ ऐसे व्यक्तियोको बुलाकर रख लेते, जिन्हे गुजराती-हिदी दोनों लिपियो एवं भाषाओका ज्ञान हो, किंतु अपने सहयोगियोका विचार करके उन्होने ऐसा नही किया। श्रीभाईजीने हमे वड़े स्नेहसे गुजराती वर्णमाला सिखायी और उन लेखोको हिदीमे अनुवाद करनेका भार सौप दिया। अयोग्यतावश हमलोगोंसे इस कार्यमे भूले होती थी, जिन्हे श्रीभाईजी स्वयं शुद्ध करते थे। इसमे उनका समय एव शक्ति—दोनो लगते थे, पर श्रीभाईजीको इसीमे प्रसन्नता थी। अपने सहयोगियोके साथ ऐसा स्नेह-व्यवहार करनेवाले और कहाँ मिलेगे। यह उनकी आत्मीयताका साकेतिक निर्देशनमात्र है, वह तो अनुभवकी वस्तु थी। देश-विदेशके असख्य भाग्यशाली व्यक्तियोके हृदयपर श्रीभाईजीकी आत्मीयताकी मधुर छाप अङ्कित है।

हमारा दुर्भाग्य है कि अब श्रीभाईजीकी स्मृति ही शेष रह गयी है। भाईजीके चले जानेसे उनसे सम्वन्धित एक विशाल जन-समुदाय आज शोक-सतप्त है।

●

वह अवर्णनीय व्यक्तित्व

श्रीरामनिवासजी ढंढारिया

जगन्नियन्ता प्रभु इस धराधामपर अपने ही स्वरूपाश सत-महात्माओको समय-समयपर लोक-कल्याणके विशेष प्रयोजनसे भेजते है। सत-महात्मा अपनी वाणी, लेखनी, दृष्टि एव आचार-व्यवहारसे अपने चारो ओर शान्ति, प्रेम, सौमनस्य, श्रद्धा, धर्माचरण, भगवदाराधन आदि शाश्वत सत्योकी विशिष्टताओका प्रतिष्ठापन करते है—जगत्के प्राणियोका मार्गदर्शन करते है, उनका कण्टकाकीर्ण पथ बुहारते है, उन्हे मानव-जीवनके एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्राप्तिकी ओर ले जाते है।

'भाईजी'के स्नेहभरे, आत्मीयतापूर्ण सम्बोधनसे विख्यात, सुप्रसिद्ध धार्मिक मासिक 'कल्याण'के प्रवर्त्तक-सम्पादक, नित्यलीलालीन परमश्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका ऐसे ही दुर्लभ सतोकी श्रेणीमे अग्रणी स्थान है। जीवनके अन्तिम क्षणतक 'कल्याण'के माध्यमसे उन्होने लक्ष-लक्ष नर-नारियोके जीवनको आध्यात्मिकताकी ओर प्रेरित किया है, उनके जीवनमे धर्म और सस्कृतिके प्रति आस्था स्थापित की है, अपने स्नेहका सम्वल देकर उन्हे सही मार्गपर चलते रहनेका साहस प्रदान किया है।

पूज्य श्रीभाईजीके जीवनकी विशिष्टताओका, उनमे निहित दैवी गुणोका, उनमे सहज सुलभ करुणा, स्नेह या उनसे सम्वन्धित घटनाओका आकलन सर्वथा असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। उन्होने हमेशा अपने गुणोको छिपानेकी कोशिश की। सम्पर्कमे आनेवाले सभी महानुभावोके मनको रखनेकी कोशिशमे सदा अपने हृदयकी भावनाको प्रच्छन्न रखा, सामनेवालेको

किस बातसे प्रसन्नता होगी, इसका उन्होने सर्वोपरि ध्यान रखा, उनसे मिलनेवालोके मनमे कोई कष्ट या व्यथाकी अनुभूति न हो, यह उनके सोचनेका प्रधान पक्ष रहा। भारतवर्ष तथा उसकी सीमाओंके बाहर भी अनगिनत महानुभाव उनसे उपकृत हुए हैं—असंख्य अभावग्रस्त प्राणियोके दु:ख-दर्दको उन्होने सहलाया है। उन्होने सभी धर्मोंके आचार्यों, महात्माओ और सम्प्रदायोके गुरुओके समक्ष उन्हें प्रभुका स्वरूप मानकर समान आदरभावसे सदा सिर नवाया है। प्राणिमात्रमे अभिव्यक्त श्रीराधा-माधवके स्वरूपकी वन्दना उन्होने स्वगत और प्रत्यक्षमे बराबर की है। जहाँ किसीको कष्टकी अनुभूति हुई और उन्हे इसका पता चला, वहाँ उसके कष्टको यथासाध्य बँटानेके लिये वे विकल हो उठते थे। उनके इस उज्ज्वल स्वरूपको जाननेकी चेष्टा कभी फलीभूत नहीं हुई, क्योकि उन्होने किसीके कष्टको बँटाते समय हमेशा अपने स्वरूपको गोपनीय रखा।

जैसे बड़े हीरेकी समग्र चमकमेसे उसके सहस्र कणोमेसे किसी एक कणकी चमकको अलग स्थिर करके नहीं देखा जा सकता, जैसे इन्द्रधनुषकी रगभरी समग्र मोहकतामेसे किसी एक रगको अलग करके उसके स्वरूप-सौन्दर्यका पान नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार श्रीभाईजीके किसी गुण-विशेषको उनके समग्ररूपसे अलग करके देखना असम्भव-सा प्रतीत होता है। उनके व्यक्तित्वका माप, उनके कर्तृत्वकी थाह या उनके सत-हृदयमे विराजित शिशु-सुलभ सरलता, कोमलता और परदु:खकातरताका मूल्याङ्कन या मानक स्थापित ही नहीं हो सकता।

ससारके जन-मानसका यह विश्वास है कि इस धराधामपर सत-महात्मागण जगन्नियन्ता प्रभुके द्वारा किसी विशेष प्रयोजनसे भेजे जाते हैं और पूज्य श्रीभाईजीके अवतरणसे इस मान्यताकी सत्यता सिद्ध हुई है। पूज्य श्रीभाईजीने विशाल हिंदू-धर्मकी पताकाको अपने अनवरत एवं निष्ठा-रत कार्यसे विश्व-क्षितिजपर हिमालयकी-सी ऊँचाइयोपर लाकर स्थापित किया। वास्तवमे पूज्य श्रीभाईजीने किस-किसको क्या-क्या प्रदान किया है, यह तो उनके साथ एक बार जाने-अनजाने भी सम्पर्कमे आनेवाले महानुभावको ही ज्ञात हो सका है।

●

महामहिम, भाग्यवान् और भगवत्स्वरूप भक्तोंके स्मरण-ध्यानमात्रसे ही पाप-राशि भस्म हो जाय, मुक्ति दासीकी तरह पीछे-पीछे घूमे और प्रभुके चरणोंमें अचल मति, रति और गति प्राप्त हो जाय तो कौन-सा आश्चर्य है। भगवान्की तरह महापुरुषोंके ध्यानसे भी कल्याण हो सकता है। उनके स्वरूपका ध्यान करनेसे उनके भाव, गुण और चरित्र हृदयमें आ जाते हैं, उनका स्वरूप चित्तमें अङ्कित हो जाता है और जैसे प्रकाशके आते ही अन्धकार मिट जाता है, वैसे ही भक्तोंके चरित्र-गुणादिकी स्मृति अन्तःकरणमे आते ही समस्त कलुषको नष्ट कर देती है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

श्रीकृष्णप्रेमस्वरूप श्रीभाईजी

श्रीवनवारीलालजी गोयन्दका

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोरि भरत महिमाही । कहै काह छलि छुअति न छाँही ॥

महाराज जनकजी ज्ञानके साक्षात् स्वरूप थे, उनके यहाँ शुकदेव-जैसे परम अवधूत भी उपदेश लेनेके लिये आते थे। वे ही जनकजी रात्रिके समय एकान्तमे श्रीरामप्रेमकी मूर्ति श्रीभरतजीके विपयमे अपनी सहधर्मिणी श्रीसुनयनाजीसे कह रहे है—'धर्मकी कोई वात होती, राजनीतिकी कोई वात होती, ब्रह्मविद्याकी कोई वात होती तो वहाँ मेरी बुद्धिका कुछ प्रवेश था, परतु मेरी बुद्धि श्रीभरतजीकी महिमाकी छायाको छल करके भी छू नही पाती।' श्रीभरतजीकी महिमा तो निराली है, पर श्रीजनकजी महाराजकी यह उक्ति सभी प्रेमी-भक्तों और सतोके विषयमे चरितार्थ होती है। भक्तो और सतोकी स्थिति वास्तवमे अवर्णनीय होती है। अतएव उनके विषयमे जो कुछ कहा जाता है, उससे उनके वाह्य स्वरूपका ही परिचय प्राप्त होता है। उनका वास्तविक स्वरूप तो सदा अज्ञेय ही रहता है। फिर मेरी अपनी योग्यता कुछ भी नही। अतएव श्रीकृष्णप्रेम-स्वरूप परमपूज्य श्रीभाईजीके विषयमे कुछ भी कहनेका साहस करना एक अत्यन्त तुच्छ जन्तुके समुद्रकी परिधिको नापनेके समान है। किंतु अपनी वाणीको और स्वयको पवित्र करनेके लिये कुछ वाते नीचे लिखी जा रही है।

वचपनसे ही श्रीभाईजीके प्रति मेरा आकर्षण था। एक बार श्रीभाईजी कलकत्ता पधारे हुए थे और श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडियाके यहाँ ठहरे थे। श्रीज्वालाप्रसादजीसे मेरी साधन-सम्वन्धी वाते होती रहती थी। अत उनकी मुझपर वडी कृपा थी। उन्होने कहा—'श्रीभाईजी आये हुए है, उनसे तुम्हारा परिचय करा दूँगा।' उन्होने श्रीभाईजीसे मेरी भेट करवा दी। मैंने साधना-सम्वन्धी कई वाते उनसे पूछी। वडे स्नेहके साथ श्रीभाईजीने उनका उत्तर दिया। इस भेटकी और उनकी कही वातोकी मेरे मनपर गहरी छाप पडी।

इसके वाद गीताभवन, ऋषिकेशमे मै सत्सङ्गके निमित्तसे गया हुआ था। वहाँ मैंने श्रीभाईजीसे समय माँगा और उन्होने समय दिया। मै उनके पास गया। उन दिनो भगवान् श्रीश्यामसुन्दरके प्रति मेरी सख्यभावकी उपासना थी। सख्यभावकी उपासनाका क्रम मैंने उन्हे वताया। सुवहसे शामतक कन्हैयाके साथ सख्यभावकी भावनाका जो क्रम चलता था, वह वतलाकर मैंने कहा—'मुझे तो वंशीवाले श्रीकृष्ण वडे मीठे, वडे अच्छे लगते है। मेरे पास एक छोटा-सा चित्र है, वह मै आपको दिखाता हूँ। मुरलीधर भगवान् मुझे वडे प्यारे लगते है।' वह चित्र मैंने उनको दिखाया। चित्र देखकर भाईजी वोले—'भैया, व्रजमे वंशीवाले ही थे। तुम यह चित्र ले जाओ और अपनी उपासनामें रखो। यह मुझे भी वहुत प्रिय लगता है, वहुत अच्छा है।'

श्रीभाईजीके प्रति मेरा आकर्षण वढने लगा। सन् १९५७मे श्रीभाईजी रतनगढ गये हुए थे। मै उनसे मिलनेके लिये रतनगढ पहुँचा। भाईजी मिले। मैने उनसे कहा—'भाईजी, मै कुछ दिन यहाँ ठहरूँगा। इन दिनो मै सब समय आपके पास ही रहना चाहता हूँ।' मेरे भोले आग्रहको सुनकर वे हँसने लगे और वोले—'भैया, रातको तो सोना ही होगा। हाँ, दिनभर मेरे पास रहना।' जिस दिन मै पहुँचा, उस दिन शामको उनसे साधन-सम्बन्धी चर्चा दो घटे हुई। उनके विषयमे मेरे मनमे जो भाव था, वह और कुछ अपनी साधनाकी वात भी मैने उनसे कही। श्रीभाईजी वहुत प्रसन्न हुए। मुझे एकान्तमे वाते करनी थी। दूसरे दिन श्रीभाईजी और मै एक मोटरमे वैठकर जगलमे गये। ड्राइवरको छोडकर हमलोगोके साथ अन्य कोई व्यक्ति नही था। निर्जन स्थानपर पहुँचकर मोटर एक ओर रोक दी गयी और एक छोटा-सा कम्बल विछाकर श्रीभाईजी और मै—दोनो वैठ गये। श्रीभाईजीने मुझसे कुछ पूछनेको कहा। मैने अनुरोध किया—'जिस प्रकार जसीडीहमे आपको भगवान्के दर्शन हुए थे, वही दर्शन आप मुझे करा दीजिये।'

श्रीभाईजी वोले—'नही-नही, यह वात क्या कहते हो?' अपने महत्त्वको छिपानेका उन्होने वहुत प्रयत्न किया, पर मैने यही कहा—'मै तो आपका अपना हूँ, मुझसे आप अपने स्वरूप-को क्यो छिपाते है?' मेरे वालसुलभ आग्रहको देखकर उनका हृदय द्रवित हो गया और उन्होने अत्यन्त सकुचित हुए-से अपने विषयमे एक वात मुझे वतायी। उन्होने यह वात सहज ढगसे कही थी, पर मुझे वह वडी ही गोपनीय लगी और उससे श्रीभाईजीके स्वरूपका रहस्य कुछ अशोमे मेरी समझमे आया। मुझे लगा कि जो महान् विभूति मेरे सामने विराजमान है, उसकी महिमाके करोडवे अशकी भी कल्पना मैने पहले नही की थी। ऐसे महिमान्वित पुरुषको सामने पाकर मै आत्मविभोर हो गया और मेरी आँखोसे अपने सौभाग्य एव धन्यतापर झर-झर आँसू वहने लगे। अपलक दृष्टिसे मै उनको देखता रह गया कि ये कितने महान्, कितने विलक्षण है। चलनेके पूर्व उन्होने कहा—'तुम्हारे स्नेहवश मेरे मुँहसे कुछ शब्द निकल गये है, पर इनकी चर्चा किसीसे मत करना।' दूसरे दिन हमलोग पुन जगलमे गये। फिर उनसे वहुत महत्त्वपूर्ण वाते हुई। इस प्रकार श्रीभाईजीके साथ मेरी यह प्रथम अन्तरङ्ग भेट हुई और इस भेटमे उनके मुखसे जो-जो वाते सुनी, वे इतनी अद्भुत, इतनी ऊँची थी कि उनका वास्तविक अर्थ मै स्वय नही समझ सका और जितना मै समझ पाया, वह भी वाणीसे व्यक्त होना सम्भव नही।

श्रीभाईजीके प्रति मेरा आकर्षण वढता गया तथा मै उनकी वतायी साधन-पद्धतिसे अपनी शक्ति एव योग्यताके अनुसार चलता रहा। इससे श्रीभाईजी वडे प्रसन्न थे। उनके साथ पत्र-व्यवहार भी वरावर होता और समय-समयपर प्रत्यक्ष मिलन होनेपर भी वाते होती रही। एक वारकी वात है, मै सत्सङ्गके निमित्त कलकत्तासे वाहर कही जा रहा था। इसकी सूचना पत्रद्वारा मैने उनको दी। उस पत्रके उत्तरमे उन्होने लिखा—'तुम सत्सङ्गके लिये जा रहे हो, सत्सङ्गका लाभ उठाओगे। भैया, मै तो कामसे फुर्सत नही पाता, सत्सङ्गसे वञ्चित रहता हूँ। दूसरी एक वात और है कि सत्सङ्गमे जाऊँ तो कैसे? एक हटे, तव न दूसरेसे वात हो। वह सामनेसे हटे, तव न मै किसी अन्यको देखूँ—

हटे वह सामनेसे, तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मनमें तो कैसे अन्यको लेखूँ?
उसीसे बोलनेमें ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलती?
सुनाता वह मुझे मीठी, रसीली बात है अनुपम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम?
समय मिलता नहीं मुझको, टहलसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी?
रह गया मैं नहीं कुछ भी किसीके कामका हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था, उसीके सब॥

:o: :o: :o:

चलत-चितवत, दिवस जागत सुपन-सोवत रात।
हृदय तें वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात॥

भैया, यहाँ तो केवल हृदयकी बात नहीं है, हृदय और बाहर भी वैसा ही होता रहता है। अब क्या किया जाय? किवाड़ बंद किये रहता हूँ।

लुट गया डेरा, नहीं कुछ बच रहा। हर तरफ हर वक्त ऊधम मच रहा॥
कर रहा है वह शरारत दिन औ रात। हो गयी मेरी सभी वे किश्तें मात॥

इन शब्दोंपर गम्भीरतासे विचार करनेपर उनकी स्थितिका कुछ परिचय मिलता है। एक बार मैंने उनसे पत्र लिखा, पर उत्तर देनेकी उनकी स्थिति नहीं थी। वे परम भावराज्यमें अवस्थित थे। अचिन्त्य भावमें डूबे हुए उन्होंने लिखा—'तुम्हारे पत्रका उत्तर श्याम ठीक होनेपर लिखूँगा, पर पहले तुम यह पढ़ो—

प्रेमके वशीभूत बनाये रखते थे। श्रीभाईजीके नेत्र श्रीश्यामसुन्दरको निरन्तर निरखते हुए रसास्वादन करते रहते थे और प्रियतम श्यामसुन्दर भी सतत श्रीभाईजीको निरखते रहते थे। न कोई व्यवधान था, न किसी प्रकारकी रोक। नित्य सयोग, नित्य दर्शन, नित्य सङ्ग और नित्य मिलन था। नित्य सनिधिमे दूर देखनेकी वात उठती ही नही, इसलिये श्रीभाईजी कहते है—

'कैसे देखूँ दूर मैं, प्रिय जव रहते पास।'

इसी प्रकार एक दिन वे परम दिव्य भाव-राज्यमे थे। उसी राज्यमे स्थित रहते हुए उनकी लेखनी चल गयी। मै अपनी योग्यतासे यही समझा हूँ कि वह लेखनी उनकी नही थी, वह लेखनी स्वय श्रीराधामाधवकी थी, श्रीराधामाधव ही लिखा रहे थे। पत्रके लेखनकी पद्धति ही इस तथ्यकी साक्षी है। मेरे पास आनेवाले उनके प्रत्येक पत्रमे अन्तमे 'तुम्हारा—हनुमान' इस प्रकार लिखा रहता था। पर उस दिन पत्रके अन्तमे 'तुम्हारा—हनुमान' नही लिखा था, वल्कि पत्रमे अन्तमे 'तुम्हारा—हनुमान'के स्थानपर 'राधामाधव' लिखा था। 'हनुमान'की जगह 'राधामाधव'का होना ही वास्तविकताको उद्घाटित करता है। पत्रका आरम्भ इस प्रकार था—'प्यारे वनवारी, सभी प्यारे, सभी प्यारी, सवमे सदा श्रीराधामाधव, सवमे श्रीराधामाधवकी मनोहर लीला है।

राधा-माधव, राधा-माधव छाये देश-काल सब ओर।
नाच रही राधा मतवाली, मुरली टेर रहे मनचोर ॥
देखो-सुनो, सदा सबमें सर्वत्र भरे दोनो रसधाम।
मधुर मनोहर मूर्ति मुरलि-धुनि वरसाती रस-सुधा ललाम ॥
लीला लीलामय ही है सब, लीला लीलामय सर्वत्र।
लीला लीलामय ही रहते करते लीला विविध विचित्र ॥
नित्य मधुर दर्शन-सम्भाषण-स्पर्श, मधुर नित नूतन भाव।
नित नव मिलन, नित्य मिलनेच्छा, नित नव रस आस्वादन-चाव ॥'

इस प्रकार श्रीभाईजी श्रीराधामाधवमे नित्य स्थित रहते थे और श्रीराधामाधवने ही उनमे इन भावोकी अभिव्यक्ति करवा दी। मेरा परम सौभाग्य था कि ऐसी चीजोके मुझे दर्शन हुए।

श्रीभाईजीका पाञ्चभौतिक कलेवर आज इन नेत्रोसे दृश्य नही है, पर मेरी भावनासे भाईजी आज भी कही गये नही है, हमारे समीप है। वह जो कलेवर दीख रहा था, वह अदृश्य हो गया है, पर वे अदृश्य नही हुए है। उनकी उपस्थितिमे एक दिन मै उनके पास वैठा हुआ था। श्रीभाईजीकी शारीरिक अस्वस्थताके कारण मनमे चिन्ता होती थी कि हम उनके स्नेहपूर्ण सरक्षणसे वञ्चित न हो जायँ। मेरी चिन्ता श्रीभाईजीके हृदयमे प्रतिविम्बित हो गयी। उन्होने वडी गम्भीरता और स्नेहभरे शव्दोमे कहा—'भैया, आज तुम्हे एक वात कह रहा हूँ, ध्यानसे सुनना। मेरा यह शरीर चला भी जाय तो तुम अपनेको असहाय मत मानना। आज मैं जिस प्रकार तुमलोगोकी सँभाल करता हूँ, वादमे भी उसी प्रकार सँभाल करता रहूँगा।' सुनते ही मेरी आँखोसे आँसुओकी धारा वह निकली, मै उनके चरणोपर गिर पडा।

श्रीभाईजीने जो कुछ दिया या देना चाहा, उसका सहस्राश भी मै नही ले पाया। यही आशा लगाये वैठा हूँ कि उनकी दिव्य कृपा-कणसे कभी-न-कभी जीवन धन्य हो जायगा।

●

वे श्रीचरण

श्रीपुरुषोत्तमदासजी मोदी

उस दिन मै त्याग, तपस्या और साधनाके प्रतीक भाईजीके दर्शन तथा पावन चरणस्पर्शके लिये अपने सहपाठी भाई कृष्णचन्द्रको ढूँढ रहा था कि वे मुझे पूज्य भाईजीके दर्शन करा दे, विशेषकर ऐसे समय जव कि स्वास्थ्यके कारणोसे डाक्टरोके आदेशसे भाईजीको किसीसे मिलने नही दिया जाता था। भाई कृष्णचन्द्र मेरे लिये दर्शनकी व्यवस्था कर देते थे। वे ही उस दिन श्रीभाईजीके पार्थिव शरीरके भस्मावशेष जहाँ सुरक्षित है, उसकी ओर सकेत करते हुए बोले—'श्रीभाईजीकी समाधि यही है।' मनने कहा—'भाईजी समाधि-अवस्थामे हो सकते है, भाईजीकी समाधि नही हो सकती।'

'भाया, तूँ राजी है ना, तेरो काम कइयाँ चाल र्यो है।' अनेक व्यक्तियोके समूहमे भी वे मेरे सकोचशील स्वभावको स्पर्श करते हुए स्वयं आगे बढ़कर पूछ लेते थे और अपने अनन्त आशीर्वादकी चादरसे मुझे आवृत कर लेते थे। वे नेत्रहीनोके नेत्र थे और मूक-बधिरकी वाणी। वे दलित-गलितकी आशा थे, प्राण थे। गीताप्रेस और 'कल्याण' उनकी साधना और तपस्याके विश्वविश्रुत स्मारक है ही, गोरखपुर नगरमे उनकी कीर्ति-पताका फहराती और भी अनेक सस्थाएँ है। 'मूक-वधिर-विद्यालय', 'अन्ध-विद्यालय', 'कुष्ठ-सेवाश्रम' आदि वे सस्थाएँ है, जहाँ पूज्य भाईजीने मानवताकी सेवाद्वारा भगवान्‌की आराधना की। अन्य विद्यालयोमे भी साधनोके अभावसे ग्रस्त तथा समर्पण और सेवाकी माँग करता हुआ 'मूक-वधिर-विद्यालय' भाईजीका वास्तविक स्मारक है।

भाईजी कल्पवृक्ष थे। कितने ही ऐसे अवसर आये, जव मुझे साथ लेकर लोग भाईजीसे सस्था अथवा समारोहके लिये सहायता माँगने गये। माँगनेवाले वड़े संकोचसे कह पाते थे, वे यदि पचास माँगते थे तो श्रीभाईजी सौ सुनते थे। कितनी बार श्रीभाईजी आवश्यकताका अनुमान नही लगा पाते थे तो कह देते थे—'भाया, जो तूँ ठीक समझै, दे दिये, मेरा सै मँगा लिये।'

श्रीभाईजी मानवमात्रके प्रति विनयावत रहते थे और विशेषकर ब्राह्मणो और विद्वानोके समक्ष उन्हे बैठनेको सदा उच्च आसन प्रदान करते थे और हृदयमे भी उन्हे उच्च आसनपर ही आसीन करते थे।

भगवान् कृष्णकी भाँति उन्होने युद्धमे—अंग्रेजी शासनके विरुद्ध क्रान्तिमे—जिन होठोसे क्रान्तिघोष किया, उन्ही होठोसे राधाकी आराधनाके समर्पण-गीत गाये। जहाँ उनके चरण पडते थे, वह तीर्थ वन जाता था। अनेक मधुर स्मृतियाँ हृदयको गद्‌गदकर कण्ठ अवरुद्ध कर देती है, नेत्र सजल हो उठते हैं, वाणीको शब्द नही मिलते। सच्चे अर्थोमे वे छोटे-वडे सभीके 'भाई' थे।

युवावस्थामे वे कर्मयोगी थे, कर्मने उन्हे धर्मकी प्रेरणा दी और वे व्यष्टिमे समष्टि हो गये। आज वे नही है, किंतु उनके पावन यशकी सौरभ दिग्-दिगन्तमे व्याप्त है। आशिष्‌के लिये उठती हुई वह भुजा तथा वे चरण, जिनपर मस्तक स्वय नत हो जाता था, आज प्रत्यक्ष नही है, किंतु दूर क्षितिजोमे आज भी उनकी स्मृतिकी साकार प्रतिमा दीख रही है।

●

स्नेह तथा नम्रताकी मूर्ति—श्रीभाईजी

श्रीरामरक्खाजी

आजसे लगभग चालीस वर्ष पूर्व मुझे अपने दो मित्र त्यागी महानुभावोके साथ स्वर्गाश्रम जानेका सुअवसर प्राप्त हुआ। उन दिनो वट-वृक्षके नीचे सत्सङ्ग हुआ करता था और सत्सङ्गी नर-नारी स्वर्गाश्रमके ही मकानोमे रहा करते थे। उस समय गीताभवन नही बना था। तीन-चार दिनतक हमलोग वहाँ ठहरे और प्रात से सायकालतक सत्सङ्गके सभी कार्यक्रमोमे सम्मिलित होते रहे। कहनेकी बात नही है कि वह सत्सङ्ग एक अद्भुत प्रसङ्ग था और उसकी अमिट छाप मेरे हृदयपर पडी। ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका इस सत्सङ्गके अधिष्ठाता देवता थे और भाईजी उसमे स्नेह-दीपकी ज्योति जलाते थे। भाईजी अपने स्नेह और सरलताके जादूसे उस पहली भेटमे ही मुझे बहुत समीप ले आये और वह समीपता चालीस वर्षतक बढती ही गयी। यह उनके हृदयकी कोमलता और सबको अपना लेनेवाली सहृदयताका नमूना है। मुझे स्मरण नही कि कैसे उनका इतना सामीप्य मै प्राप्त कर पाया। सत-हृदयका यह स्वभाव ही है कि एक बार जिसे वे अपना लेते है, फिर उसके दुर्गुणो और त्रुटियोकी ओर न देखकर उसे स्नेह ही प्रदान करते हे, उनके पास इसके सिवा और होता भी कुछ नही। गङ्गाकी रेणुकामे उस स्थूलकाय महापुरुषको 'भज मन नारायण-नारायण'की धुनिके साथ नाचते, बच्चेकी सरलतासे उछलते एव भाव-विभोर हुए देखकर मुझे विस्मयमिश्रित बहुत आनन्द हुआ। यह घटना मेरे लिये तो आह्लादिनी और अनोखी थी।

श्रीभाईजी कितना व्यस्त जीवन बिताते थे—जो व्यक्ति उन्हे जानते है, उन्हे यह भली प्रकार ज्ञात है। 'कल्याण'के सम्पादनका बोझ ही पर्याप्त था। इसके अतिरिक्त साधक-जिज्ञासु उनसे परामर्श लेते रहते थे। अनेक पत्र आते थे, जिनके उत्तर उन्हे देना होता था। अन्तिम रुग्णावस्थामे भी जब-जब मैने उन्हे पत्र लिखा, उन्होने अपने हाथसे उसका उत्तर दिया। उनके पास पत्रोका उत्तर देनेवाले साथी थे, टाइप-यन्त्र थे, परतु मेरे सभी पत्रोका उत्तर वे अपने हाथसे ही लिखकर देते रहे। सत बडी-बडी बातोमे ही महान् नही होते, अपितु उनके चरित्रकी छोटी-छोटी बाते भी उनके स्वच्छ हृदयको दर्शाती है। मेरा हृदय हमेशा यह देखकर कृतज्ञताके भावोसे भर जाता था। इसे मै अपना सौभाग्य और उनकी सहृदयता ही मानता रहा।

मैने अपनी कठिनाइयो आदिके विषयमे जब भी उनसे परामर्श माँगा, किसी सहायताकी याचना की, उन्होने तत्काल उत्तर दिया और सत्परामर्श प्रदान किया। उनके विचार, साधना-पद्धति और उनकी अपनी उच्च स्थितिका परिचय उनकी पुस्तको, 'कल्याण'के असख्य लेखो तथा उनके पत्रोका अध्ययन करनेसे प्राप्त हो जाता है। उसके विषयमे और कुछ कहनेकी अपेक्षा ही कहाँ है? परतु मुझे एक बार उन्होने बहुत एकान्तमे स्पष्ट शब्दोमे कहा (शब्द तो मुझे स्मरण नही है, परतु भाव यह था) कि भगवान् निश्चित है और उनके सगुणरूपका साक्षात्कार उन्हें हुआ है तथा सानिध्य प्राप्त है। दूसरे समय यह कहा कि 'साधना तो मूक होकर उनके

साथ एक हो जाना है।' इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे भगवान्‌के सगुण तथा निर्गुण दोनो रूपोके अनुभवी थे और यह स्थिति कितनी महान् तथा दुर्लभ है—इसकी कल्पना करना भी हमारे लिये सम्भव नही है। वे जव-जव गुरुकुल पधारे, उन्होने मुझे स्मरण किया और दर्शन देकर ही गये। १९५५मे जव वे वृन्दावन पधारे उन दिनो मै वृन्दावन था। अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी वे मुझसे मिलना नही भूले।

आजभी वह दृश्य मेरे सामने है, जव सन् १९६९की गर्मियोमे अन्तिम वार उनके दर्शन स्वर्गाश्रममे मुझे हुए थे। तव वे मेरा हाथ अपने हाथोमे लेकर बैठे थे, सारे हृदयका स्नेह उँडेल रहे थे। रोगी होते हुए भी अपने कमरेसे वाहर आ गये और साधना-सम्वन्धी प्रश्नोका उत्तर दे रहे थे। उनके स्पर्शसे एक सरल, पवित्र, पावन धारा निकलती थी।

●

हिंदूधर्मके प्रमुख आधार-स्तम्भ—श्रीपोद्दारजी

श्रीकेशवराम एन० अयंगर

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे हमलोग अत्यन्त मर्माहत हुए है। सहसा हम एक ऐसे व्यक्तिकी दयायुक्त उपस्थितिसे वञ्चित हो गये है, जिनको हम गत पचास वर्षोसे हिदूधर्मके प्रमुख आधार-स्तम्भके रूपमे पाते रहे। यद्यपि मुझे कभी उनसे व्यक्तिगतरूपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त नही हुआ, सन् १९५७मे केवल कुछ पत्र-व्यवहार ही हुआ था, 'कल्याण-कल्पतरु'के द्वारा उनसे हमारा सम्पर्क वना रहा और हम दक्षिणवालोको निरन्तर यह आश्वासन मिलता रहता था कि हमारे देशके उत्तरी-भागमे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका एक अश विद्यमान है। जव कभी श्रीकाञ्ची-कामकोटि-पीठके हमारे पूज्य आचार्यश्री गीताप्रेसके कार्यकी चर्चा करते, तव हमे उनकी मुखाकृतिपर सतोष एव प्रसन्नताकी आभा दिखायी पडती और उससे हमलोग भी आनन्दित हो जाते।

न जाने किस विशेष हेतुसे सैतीस वर्ष पश्चात्, अर्थात् सन् १९७१मे मेरे परमपूज्य गुरुदेव जगद्गुरु श्रीशकराचार्यजी महाराजने आदेश दिया कि अपने हिदूधर्मके लघुविश्वकोषकी रूपरेखाके सम्वन्धमे उनकी सम्मति एव निर्देश प्राप्त करने हेतु श्रीपोद्दारजीकी सेवामे उसे प्रस्तुत करूँ। यह सग्रह मैने श्रीपोद्दारजीकी सेवामे २० फरवरी, १९७१को भेज दिया था। मेरा विश्वास है कि वह सामग्री श्रीपोद्दारजीके हाथोमे पहुँच गयी थी और उसको उनका आशीर्वाद प्राप्त हो गया था। परतु अपने कार्यमे हम उनका वहुमूल्य मार्गदर्शन प्राप्त नही कर सके—इस कारण आज उनके परलोक-गमनसे हमे और अधिक व्यथा है। अव तो इसी वातसे सतोष करना होगा कि उस कार्यकी जानकारी उन्हे हो गयी थी और इस प्रकार उनका मूक आशीर्वाद एव शक्ति हमे प्राप्त हो गयी थी।

भगवान्‌से प्रार्थना है कि हमारे सभी देशवासियोको और विशेषरूपसे उन सभी व्यक्तियोको, जो अपनी सामर्थ्यके अनुरूप धर्मके सरक्षण एव सवर्धनमे लगे है, श्रीपोद्दारजीसे शक्ति और आशीर्वाद प्राप्त होते रहे।

●

भगवत्-शक्ति-सम्पन्न श्रीभाईजी

पं० श्रीदेवदत्तजी मिश्र

श्रीभाईजी एक महापुरुष थे, प्राणिमात्रको भगवान्‌का स्वरूप समझते थे। अत वे निरन्तर प्राणिमात्रकी सेवामे सलग्न रहते थे। इसमे विशेषता यह थी कि उनकी सेवा गुप्त होती थी, उसको वे प्रकट नही होने देते थे। वस्तुत सच्चे भक्त और दानी अपनी सेवा और दानको वहुमूल्य निधि समझते है, अत उसको वे छिपाकर ही रखते है।

ज्ञानप्राप्तिके दो साधन है—अध्ययन एव भगवत्कृपा। जिन भाग्यशाली जीवोको भगवान्‌का साक्षात्कार हो जाता है, वे कुछ पढे-लिखे न होनेपर भी सव विद्याओमे पारगत हो जाते है। भगवद्दर्शनके वाद मनुष्यमे ज्ञानका प्रकाश आ जाता है, जिससे उसके हृदयमे जो वाङमय-ब्रह्म प्रसुप्त रहता है, वह जाग्रत् हो जाता है। श्रीमद्‌भागवतमे कथा है कि जव ध्रुवको भगवान्‌ने दर्शन दिया था, तव उसके मनमे भगवान्‌की स्तुति करनेकी इच्छा हुई थी। उस समय अन्तर्यामी भगवान्‌ने उसकी इच्छाकी पूर्तिके लिये अपने ब्रह्ममय शङ्खको उसके कपोलसे स्पर्श करा दिया, जिससे उसके हृदयमे सुप्त शास्त्रज्ञान जाग्रत् हुआ और उसने स्तुति की—

योऽन्त· प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान् नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम्॥
(श्रीमद्‌भागवत ४।९।६)

'प्रभो! आप सर्वशक्तिसम्पन्न है; आप ही मेरे अन्त करणमे प्रवेशकर अपने तेजसे मेरी इस सोयी हुई वाणीको सजीव करते है तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियो एव प्राणोको भी चेतना देते है। मै आप अन्तर्यामी भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ।'

इसी भगवच्छक्तिसे जागृत ज्ञानद्वारा भाईजीने नारद-भक्तिसूत्रकी व्याख्या की तथा 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन' आदि विपुल साहित्यका प्रकाश किया। इसी भगवद्दर्शनसे प्राप्त ज्ञानप्रकाश-द्वारा ब्रह्माने वेदोको रचा। ऋषियोने पुराणोकी और महर्षि वाल्मीकिने एव तुलसीदास-प्रभृति कवियो एव सतोने जन-कल्याणार्थ विपुल ग्रन्थोकी रचना की। वस्तुत भगवद्दर्शनके वाद जो शक्ति प्राप्त होती है, वह अलौकिक होती है।

भगवान्‌से वढकर भगवान्‌के भक्त होते है, इस रहस्यको श्रीभाईजी समझते थे। अत उनके समक्ष जितने सत-महात्मा आते थे, उनकी सेवा वे भली-भाँति करते थे। उनमे गुणग्राहकता थी, साथ ही वे गुण-परीक्षक भी थे। उन्होने एक वालसन्यासीकी सेवा अपने पास रखकर आजीवन की। **'स्वगणे परमा प्रीति·'** के अनुसार इन दोनोमे वह सात्विक प्रेम हुआ कि वे कभी वियुक्त नही रहे। दोनोका यह प्रेम-सम्वन्ध परम दिव्य, परम अलौकिक है।

'सवहि मानप्रद आपु अमानी'—श्रीभाईजी इस उक्तिके आदर्शरूप थे। विद्वानोके प्रति उनके हृदयमे इतनी श्रद्धा थी कि शायद ही अन्यत्र उपलव्ध हो। वडे-वडे सत, भगवद्भक्त, महात्मा भी उनसे मिलकर आनन्दित होते थे। वास्तवमे श्रीभाईजी सिद्ध पुरुष थे। उनको दैवी शक्ति प्राप्त थी। विना दैवी शक्तिके उनके समान योग्यता प्राप्त नही हो सकती।

●

सिद्ध-साधक श्रीभाईजी

'द्विवेदी'

श्रीभाईजीका जीवन अध्यात्मप्रधान था। आध्यात्मिक जीवनमे मनुष्य प्रगति नही कर सकता, यदि तदनुकूल ही उसका लौकिक जीवन न हो। यही कारण है कि साधकको——चाहे वह ज्ञानमार्गका साधक हो, कर्ममार्गका साधक हो, भक्तिमार्गका साधक हो, क्रियायोगका साधक हो——अपनी आध्यात्मिक साधनाके साथ-साथ भौतिक जीवनके क्रिया-कलापको भी तदनुकूल शुद्ध वनाना पडता है। श्रीभाईजीका जीवन ठीक इसी प्रकारका था। उनका साधक-जीवन सर्व-साधारणके लिये अज्ञेय था, परतु व्यावहारिक जीवन इतना उदात्त और इतना विशद था कि सामान्य जनकी तो वात ही क्या है, वडे-वडे विद्वान्, अधिकारी और साधु-सन्यासी भी उनके सामने आनेपर उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हुए विना नही रह सकते थे। प्राचीन ऋषियोके समान वे सयम-धनके धनी थे।

श्रीभाईजीने आजीवन सयमकी साधना की, और सयमका उपदेश दिया। शास्त्रोके प्रति, ब्राह्मण-साधुओके प्रति, गौ-गङ्गा-गायत्रीके प्रति उनके हृदयमे अगाध श्रद्धा थी। इस श्रद्धाके कारण ही वे अप्रतिम निष्ठावान् वन सके थे। उनके आध्यात्मिक विचारोमे सकीर्णता न थी। उनका विचार था कि जहाँ कही भी अच्छाई मिले, उसे ग्रहण करना चाहिये। और उन्होने सब ओरसे अच्छाईको ग्रहण किया। उनकी साधना वहुमुखी थी, आचार-नीति-सम्बन्धी जो वैशिष्ट्य उनके जीवनमे झलकता था, वह उनकी साधनाकी सहज परिणतिके अतिरिक्त और कुछ न था।

श्रीभाईजीके पास जो साधन-सम्पत्ति थी, वह एक जन्ममे सचित होनेवाली नही थी, वह तो अनेक जन्मकी सचित निधि थी, अत युवावस्थामे ही उन्होने भगवद्दर्शन प्राप्त कर लिया था। श्रीभगवान्ने कहा है——

'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥'

अवश्य ही श्रीभाईजीके सम्वन्धमे भी यही वात थी। इस प्रकारके भगवद्दर्शनका दृष्टान्त श्रीराम-कृष्ण परमहसके जीवनमे भी उपलब्ध होता है। उनकी भी अनेक जन्मकी सचित साधन-सम्पत्ति थी, तभी वे जीवनमे इतनी जल्दी इस प्रकारकी उच्च आध्यात्मिक स्थितिको पहुँच गये थे। भगवद्दर्शनसे साधकमे स्वभावत शक्तिपातकी क्षमता प्राप्त होती है। यह क्षमता श्रीरामकृष्ण परमहसके जीवनमे अपूर्वरूपमे प्राप्त होती थी। वगालके अनेक महात्माओमे शक्तिपातकी क्षमता थी। इसी शक्तिपातके द्वारा गुरु अपने शिष्योके जीवनको नियन्त्रणमे रखता है।

श्रीभाईजी स्वय अध्यात्मपथके पथिक थे और दूसरोको भी साधनामे लगाते थे। भगवद्दर्शन करनेके वाद श्रीभाईजीके साधन-जीवनमे शिथिलता नही आयी। उनकी निष्ठामे वृद्धि हुई और वे अत्यन्त जागरूक हो उठे। 'कल्याण'का प्रकाशनकार्य जव वम्वईसे हटकर गोरखपुरमे गीताप्रेससे होने लगा, उस समय श्रीभाईजीका सम्पादकीय विभाग, नगरके जन-जीवनसे अलग वावा गोरखनाथ-

के मन्दिरके समीप था। वह स्थान अरण्यके समान था और साधन-भजनकी दृष्टिसे बहुत ही रमणीय था तथा पवित्र और एकान्त था। वहाँ प्रतिदिन श्रीभाईजीके सत्सङ्गमे अनेको साधक एकत्र होते थे। वस्तुत वह सत्सङ्ग-मण्डली 'साधक-मण्डली' थी। साधन-भक्तिके अङ्गस्वरूप स्मरण, श्रवण, कीर्तनादिके सम्बन्धमे श्रीभाईजीके प्रवचन होते थे, उनमे नाम-जपपर विशेष जोर दिया जाता था। सब साधकोको एक डायरी रखनी पडती थी और व्यावहारिक जीवन-शुद्धिपर ध्यान दिया जाता था। यद्यपि उनमे दीक्षा-बन्धनसे आबद्ध गुरु-शिष्यका सम्बन्ध न था, तथापि यथार्थरूपमे श्रीभाईजी गुरु-स्थानीय होकर शिष्य-स्थानीय साधकवृन्दका मार्ग-दर्शन करते थे। साधकोके प्रति उनका प्रेमभाव तथा उनके प्रति साधकोकी श्रद्धाका भाव—दोनो ही अपूर्व थे।

उन दिनोकी जीवनचर्यासे जान पडता था कि श्रीभाईजीके जीवनमे नियमित नाम-जप तथा सन्ध्या-गायत्री आदिके अनुष्ठानके अतिरिक्त यम-नियमादि योग-साधनके अष्टाङ्गोकी साधना भी चल रही है। अपने सत्सङ्गमे प्राय श्रीभाईजी योगदर्शनके इन दो सूत्रोकी व्याख्या किया करते थे—

(१) **'परिणामतापसंस्कारदु:खैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिनः।'** (२।१५)
(२) **'मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्।'** (१।३३)

अर्थात् (१) विषय-सुखके भोगकालमे भी परिणाम-दु ख, ताप-दु ख और संस्कार-दु ख बना रहता है, और गुणोके स्वभावमे भी विरोध है, इसलिये विवेकी पुरुषके लिये सब कुछ (सुख भी, जो विषय-जन्य है) दु ख ही है। (२) सुखी, दु खी, पुण्यात्मा और पापियोके विषयमे यथाक्रम मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षाकी भावनाके अनुष्ठानसे चित्त प्रसन्न और निर्मल होता है।

श्रीभाईजी कोरे आदर्शवादी न थे, वे आदर्शको व्यवहारमे अभ्यस्त करनेके पक्षपाती थे। इसलिये सत्सङ्गमे जो कुछ कहते थे, वह उनके जीवनका किसी-न-किसी रूपमे अनुभूत होता था। यही कारण था कि उनका प्रवचन इतना हृदयग्राही होता था। उन दिनो 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमे इस प्रकारके पत्र अधिक सख्यामे आते थे, जिनमे शास्त्रीय शङ्का-समाधान, साधन-सम्बन्धी जिज्ञासा तथा जीवनको शुद्ध बनानेके विषयमे उपाय पूछे जाते थे। जो लोग श्रीभाईजीके सत्सङ्ग-मे आते थे, उनकी साधनामे रुचि थी और कभी-कभी कुछ साधकोको भावोद्रेक भी हो जाता था। कभी-कभी बाहरसे आये हुए साधकोके भावोद्रेकका भी सगम हो जाता था।

श्रीभाईजीके जीवनमे जो एक अद्वितीय घटना थी, वह थी उनका साधनाके एक व्यापक परिवेशकी रचना। 'गीता-रामायण-प्रचार-सघ,' 'गीता-रामायण-परीक्षाएँ', 'नाम-जप विभाग' तथा साधक-सघ उस व्यापक परिवेशके अङ्ग थे। इनके द्वारा लाखो-लाखो नर-नारियोको आध्यात्मिक साधनामे लगाकर उनका उपकार तो होता ही था, स्वय इस परिवेशमे रहनेके कारण श्रीभाईजीके साधन-जीवनको बडी शक्ति प्राप्त होती थी। ये परिवेश उनके साधन-जीवनके प्रमुख अङ्ग थे और इनके द्वारा उनका जीवन अपूर्व गौरवमय हो गया था। ये उनके जीवनके अभूतपूर्व तत्त्व थे। इनके द्वारा श्रीभाईजीने एक सुदृढ दुर्गकी रचना की थी, जिसके भीतर विघ्नोका प्रवेश

दुर्घट था और वे निश्चिन्त होकर अपने साधन-साम्राज्यका संचालन करते थे। यही उनके नैतिक जीवनकी सहज स्वाभाविक कुशलताका मूल आधार भी था।

श्रीभाईजीने साधन-भक्तिके क्षेत्रसे रागानुगाभक्तिके क्षेत्रमे कव पदार्पण किया था, इसको निश्चयपूर्वक वतलाना कठिन है। सुप्रसिद्ध वैष्णव ग्रन्थ 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु'मे लिखा है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेमप्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥

'पहले भजनमे श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धाके विना भजन विडम्वनामात्र है। श्रद्धाके वाद सत्सङ्गकी रुचि, उसके वाद भजन-साधन अर्थात् श्रवण, स्मरण, कीर्त्तन आदि नवधा-भक्तिकी साधना, साधन-भक्तिकी परिपक्वावस्था आनेपर अनर्थ-निवृत्ति होकर निष्ठाकी उत्पत्ति, निष्ठासे ही रुचि, तव भजनमे आसक्ति उत्पन्न होती है—भजन किये विना रहा नही जाता। उसके वाद भावकी प्राप्ति होती है और तदनन्तर प्रेम उत्पन्न होता है। यही साधनभक्तिका क्रम है।'

साधन-भक्तिसे रागानुगाभक्तिमे पहुँचनेके लिये इतनी सीढियोको पार करना पडता है। मेरा विश्वास है, श्रीभाईजी उस समयतक रागानुगाभक्तिकी साधनाके क्षेत्रमे पदार्पण कर चुके थे। इस पथमे वे कुछ दूरतक अग्रसर हो चुके थे। रागानुगा अर्थात् प्रेमाभक्तिके क्षेत्रमे श्रीभाईजी कहाँतक अग्रसर हुए थे, इसका अनुमान लगाना वहुत कठिन है। श्रीभाईजी भक्ति-साधनाके इस क्षेत्रमे इस युगके अद्वितीय साधक थे। भावजगत्मे उनका प्रवेश हो गया था और उस जगत्के व्यक्तियोसे उनका समागम होता था। इस विषयमे मेरे एक विश्वस्त महानुभाव-द्वारा प्राप्त तथ्यका उद्घाटन करना आवश्यक जान पडता है। आज वे महानुभाव हमारे बीचमे नही है। उन महानुभावका जीवन भजनप्रधान था और वे श्रीभाईजीके आन्तरिक प्रेमीजनोमेसे थे। उनकी मुझपर वडी कृपा थी और वे अत्यन्त रहस्यकी वात भी मुझसे छिपा नही रखते थे। एक दिन उनके साथ साधन-भजनकी वार्ता चल रही थी। उन्होने वतलाया कि एक दिन वे श्रीभाईजीसे मिलने गये। कमरा बद था, इसलिये वाहर ही बैठ गये। उनको ऐसा लगा कि श्रीभाईजीके कमरेमे दो-चार आदमी बैठे हुए है और श्रीभाईजीसे कुछ परामर्श चल रहा है। अचानक सन्नाटा छा गया और थोडी देरमे कमरेका दरवाजा खुला। श्रीभाईजी अभी भावावेशमे अलसाये हुए-से थे। उन महानुभावने पूछ ही लिया—'भाईजी, किससे वाते हो रही थी?' उत्तर मिला—'वे ही, सनकादिक थे।' वस, इतनी वाते हुई, दोनो चुप। श्रीभाईजी अभी भावावेशसे पूर्णत प्रकृतिस्थ नही हुए थे। वे महानुभाव आश्चर्यचकित थे। कुछ देर वाद प्रकृतिस्थ होनेपर उन्होने श्रीभाईजीसे पूछा—'क्या वाते हो रही थी?' श्रीभाईजीने इस वातको पूर्णत गुप्त रखनेका कडा आदेश दिया था।

वस्तुत भगवान्की लीला और देवी-देवताओका दर्शन भावजगत्की वस्तु है। भावजगत्मे उनकी नित्य स्थिति है। श्रीवृन्दावनमे होनेवाली नित्य रासलीला भी भावजगत्की वस्तु है, प्राकृतिक जगत्की नही। भावजगत्मे प्रवेश होनेपर साधक इन लीलाओमे सम्मिलित हो सकता है, प्रत्यक्ष अवलोकन करनेकी तो वात ही क्या है। श्रीभाईजी अपनी साधनाके वलपर इसी

भावजगत्में विचरण करनेवाले साधक थे। वस्तुत साधककी यह स्थिति सिद्धावस्थाके बहुत आगे आती है। श्रीभाईजी इसी कोटिके साधक थे। उन्होने निरन्तर साधनाके द्वारा अपने जीवनको धन्य बना लिया था। उनकी जागतिक उपलब्धि इसकी ही छाया थी। श्रीराधाजीकी आराधना उनकी साधनाकी बाह्य परिणति थी। श्रीराधाष्टमीका उत्सव तथा अन्यान्य इसी प्रकारके उत्सव वैष्णव-तन्त्रके अनुसार साधन-भक्तिके अङ्ग थे।

श्रीभाईजीके दीर्घकालीन वाससे गीतावाटिका एक पुण्य-तीर्थस्थल बन गयी है। इतना ही नही, नाम-जप, कीर्त्तन, भजन-साधन, देवाराधन, पूजा-पाठ आदिके निरन्तर अनुष्ठानसे गीतावाटिका विश्वमे एक विशिष्ट आध्यात्मिक केन्द्र बन गयी है। अब भी वहाँ सर्वस्व त्याग करके केवल साधना और साधु-सेवामे जीवनको समर्पण करनेवाले सेवकोका समागम तथा आजीवन साधनाके पथमे विचरण करनेवाले साधकोका दर्शन प्राप्त होता है।

●

अध्यात्म-जगत्‌की जीती-जागती संस्था

श्रीगोपालदत्तजी शर्मा, ज्यौतिषशास्त्री

श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका परलोकगमन धार्मिक और साहित्यिक जगत्‌की अपूरणीय क्षति है। श्रीभाईजीमे गीतोक्त दैवी-सम्पदाके अधिकाश लक्षण विद्यमान थे। क्रोध तो उन्हे स्पर्श ही नही कर सका था। इस आसुरी सम्पद्-बाहुल्य सृष्टिमे अध्यात्म-सिद्धान्तप्रधान 'कल्याण'का सम्पादन और गीताप्रेसकी सेवा करके वे अमर हो गये। वे स्वय एक अध्यात्म-जगत्‌की जीती-जागती सस्था थे।

विश्ववन्द्य महात्मा गाधी जब काशी आते, तब वे महामना मालवीयजीसे अवश्य मिलते थे। मैने काशीमे प्रत्यक्ष देखा है कि महात्माजी मालवीयजीको जब प्रणाम करते थे, तब महामना कहते थे—'मैने आपको देखते ही सिर झुका लिया था।' श्रीभाईजीके सम्बन्धमे भी यही बात देखनेमे आती है। बडे-बडे महात्मा-सत जब श्रीभाईजीसे मिलते, तब वे उनके सामने नतमस्तक हो जाते थे, किंतु श्रीभाईजी इतने सावधान थे कि वे उनसे पहले ही प्रणाम करने लग जाते थे। श्रीभाईजी बडे ही नम्र, मृदु, निरभिमान, सहनशील और शालीन थे—

उनके जीवनके अनेक बहुमूल्य सस्मरण है—

सन् १९५३के दिसम्बरमे बाँकुडामे श्रीभाईजीसे मेरी भेट हुई थी। वार्तालापमे ज्यौतिषका प्रसङ्ग आया। ज्यौतिषशास्त्रमे लाक्षणिक जन्म-पत्रिकाके भी निर्माणका प्रकार है। प्रसङ्गवश मैने इसका उल्लेख किया। कलकत्ताके एक योग्य पण्डित महोदयने इस मतका विरोध किया और कहा कि ऐसा सम्भव नही है। मैने प्रमाणरूपमे श्रीभाईजीकी जन्म-कुण्डलीका नक्शा बतलाया। नक्शा देखकर श्रीभाईजी बहुत प्रसन्न हुए। दूसरे दिन प्रात काल श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया एव श्रीमदनलाल चूडीवाला (वर्तमानमे स्वामी

श्रीआत्मानन्द) मेरे पास पहुँचे और उन्होने जन्म-पत्री-निर्माणका मूक प्रश्न उपस्थित किया। पहले तो मैंने इसे अस्वीकार कर दिया, किंतु जव यह ज्ञात हुआ कि श्रीभाईजीकी सम्मतिसे ये लोग आये है, तव मैने वतलाना ठीक समझा। गणना करके मैंने उनकी जन्म-पत्रिका वतलायी।

इसके वाद श्रीभाईजीके अनेक पत्र मेरे नाम आये, जो आज भी मेरे पास सुरक्षित है। अव जव कभी मै उनके भावपूर्ण पत्रोको पढता हूँ, नेत्र झरने लग जाते है। अव ऐसा गुण-ग्राहक मित्र कहाँ मिलेगा ?

६ सितम्वर १९५२को श्रीभाईजीको ७०वे वर्षकी मङ्गलकी दशा आयी थी। मङ्गल द्वितीयेश सप्तमेश होनेसे काशीके कई पण्डितोने मङ्गल मारकेश वतलाया था। मैंने गणना की और त्रैलौक्य-ज्ञानदीपक चक्रसे ग्रहो और भावोको कसा तो मङ्गलको मारकेश नही पाया। तव चक्रसहित सारा गणना-पट्ट लिखकर भेज दिया। इसपर उनका पत्र आया। उसमे अनेक वातोके साथ उन्होने लिखा—

'मैंने आपके पत्रको कई वार पढा है और मै उसपर वार-वार सोचता हूँ और सीखता हूँ। पत्रमे व्यक्त किये हुए ज्यौतिष-सम्वन्धी विचारोको 'कल्याण'मे प्रकाशित करनेकी सोच रहा हूँ। मेरे जीवनके सम्वन्धमे आपकी लिखी वाते प्राय ठीक हैं। भविष्य-जीवनके लिये आपके विचार स्तुत्य है। भगवान्की कृपासे मुझे मारकेशकी चिन्ता नही है। विनाशी शरीर तो जायगा ही, दो दिन आगे या पीछे। पर 'यह मङ्गल मारकेश नही होता', आपकी यह घोषणा आपके ज्यौतिष-सम्वन्धी ।" आगे इस पत्रकी प्रतिलिपि लिखकर मै अपनी प्रशसापरक वाते प्रकट करनेमे असमर्थ हूँ। यद्यपि इन पत्रोमे भाईजीकी उदारता, वैदुष्य, गुण-ग्राहकता आदि प्रकट होते है।

उसी पत्रमे श्रीभाईजी आगे लिखते है—'मुझे आप यह आशीर्वाद दे कि मेरे चित्तमे निरन्तर मृत्युके अन्तिम समयतक भगवान्की मधुर स्मृति वनी रहे और उनकी स्मृतिमे ही मर्त्यजीवनका अन्त हो।'

—

भाईजीने क्या-क्या किया—देश, धर्म, समाज और दीन-आर्त्तजनोकी कितनी सेवा की—इसके विवरणसे एक वहुत वडा पोथा तैयार किया जा सकता है। इस छोटे स्मरणमे उनका विवरण सम्भव नही। गागरमे सागर नही समा सकता। मैने उनको वहुत नजदीकसे देखा है। उनके गुण, कर्म, स्वभाव आदि वडे ही पवित्र और पावन थे। 'कल्याण'के प्रत्येक अङ्कमे 'शिव' नामसे प्रकाशित उनके वहुमूल्य विचारोसे विद्वान् और वहुश्रुत भी प्रभावित होते रहे हैं।

श्रीभाईजीने गृहस्थमे रहकर भी साधुजीवन विताया। पर निष्क्रिय साधुजीवन नही, निरन्तर निष्काम कर्मयोगी वने रहकर। उनके जीवनमे भक्ति और कर्मयोगका वडा सुन्दर समन्वय था।

श्रीभाईजीकी गुण-गाथा वडी है. कहाँतक लिखा जाय।

●

भगवत्प्राप्त महापुरुष

वैद्यराज प० श्रीविद्याधरजी शुक्ल

'यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।'

श्रद्धेय श्रीभाईजी भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। विना भगवत्सनिधिके दैवी सम्पदाके सभी गुण किसी मानवमे नही आते। गीताके सोलहवे अध्यायमे—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥

–आदि दैवी सम्पदाके जो २६ गुण वतलाये गये है, वे इस महामानवमे विद्यमान थे। श्रीभाईजी सदा यही कहा करते थे कि—'मङ्गलमय भगवान् जो कुछ भी करते है, हमारे मङ्गलके लिये ही करते है। समस्त जीवोपर उनकी मङ्गलमयी कृपा सदा वरसती रहती है। उनकी मङ्गल-मयता और कृपालुतापर विश्वास न होनेके कारण ही मनुष्य दुखी होता, अपने भाग्यको कोसता और भगवान्पर दोपारोपण करता है। फोडा होनेपर चीर देना, विपम ज्वर होनेपर चिरायते तथा नीमका कडवा क्वाथ पिलाना और कपडा पुराना एव गदा हो जानेपर उसे उतारकर नया पहना देना जैसे परम हितके लिये ही होता है, वैसे ही हमारे अत्यन्त प्रिय सासारिक सुखोका छीना जाना, नाना प्रकारके दुखोका प्राप्त होना और शरीरका वियोग हो जाना भी मङ्गलमय भगवान्के विधानसे हमारे परम हितके लिये ही होता है। हम अपनी वे-समझीसे ही उन्हे भयानक दुख मानकर रोते-कलपते है, किंतु इन सारे दृश्योके रूपमे, इन सभी स्वॉगोको धारण करके नित्य नव-सुन्दर, नित्य नव-मधुर हमारे परम प्रियतम भगवान् ही अपनी मङ्गलमयी लीला कर रहे है—इस वातको हम नही समझते। दुखके रूपमे भगवान्का विधान ही तो आता है और वह विधान अपने विधाता भगवान्से अभिन्न है। साराश यह कि भगवान् ही दुखके रूपमे प्रकट है और वे इस रूपमे प्रकट हुए है हमारे परम कल्याणके लिये ही। वे कृपाके सागर है, कृपा ही उनका स्वभाव है, वे नित्य कृपाका ही वितरण करते है।'

महामानवके वियोगमे रोते-कलपते व्यक्तियोके लिये—मेरे-जैसे दुखी-वियोगीके लिये कितने आश्वासन देनेवाले वचन है! ये वचन भगवान्के मङ्गलमय विधानमे दृढ विश्वासके साकार स्वरूप है। ऐसा अनुभव होता है कि महामृत्युके रूपमे आनेवाले श्रीकृष्णका ही दिव्यवाणी-मे दिव्य सुस्वागत हो रहा है। यह है महामानवकी अभयता। शरीरकी विशेष चिन्तनीय दशामे भी श्रीभाईजीने मुझसे कहा—'पण्डितजी, मेरा क्या विगडता है? शरीर रहे या जाय, मै शरीर थोडे ही हूँ।'

श्रीभाईजीकी उदार दृष्टिमे सव रूपोमे—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'आत्मवत्सर्वभूतेषु', 'वासुदेवः सर्वमिति'

---अपने इष्टदेव ही दृष्टिगोचर होते थे। मृत्यु भी श्रीकृष्ण, दवाके रूपमे भी श्रीकृष्णका महा-प्रसाद---यह थी उनकी परिशुद्ध दृष्टि।

दयाके तो श्रीभाईजी सागर ही थे। जब मै पहले-पहल गोरखपुर आया, गीताप्रेसके मुद्रक एव सचालक कर्मवीर श्रीघनश्यामदासजी जालान मुझे श्रीभाईजीके पास ले गये। श्रद्धेय श्रीभाईजीका सत्सङ्ग हुआ। मै सत्सङ्गमे था ही। सत्सङ्ग होनेपर श्रीघनश्यामदासजीने श्रीभाईजी-से मेरा परिचय कराया और कहा---'ये पण्डितजी शास्त्रोके ज्ञाता, कर्मकाण्डी, ज्योतिषी और आयुर्वेदमे निपुण है, अपने यहाँ औषधालयमे प्रधान वैद्यके स्थानपर आये है।' महामना परमदयालु श्रीभाईजीने अन्तर्दृष्टिसे देखा---'पण्डितजी सभी बातोमे निपुण है, किंतु अर्थाभावमे है, अर्थके लिये आये है। भक्त सुदामा आनन्दकद परात्पर सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णके पास आकर खाली हाथ कैसे लौट सकते है। चाहे प्रत्यक्षमे न माँगते हो, किंतु किसीके आग्रहसे ही आये है। मेरे पास आनेका फल तो मिलना ही चाहिये।' दयासागर जो ठहरे। श्रद्धेय श्रीभाईजीने भी नाटक किया---मेरे पैर छूए, प्रणाम किया और 'आइये' कहकर भीतर ले गये। भीतर ले जाकर मुझे एक रजत-मुद्रा दी। श्रीभाईजी रुपया अपने पास रखते नही थे, किसीको कुछ देना होता, तब अपने यहाँसे दिलवा देते थे। यह मैने बहुत बार देखा है। किंतु जहाँतक मुझे स्मरण है, रुपया श्रीभाईजीने किसीसे लिया नही। मै बहुत देरसे उनके पास बैठा था। श्रीभाईजीने अपनी मुट्‌ठीसे रुपया निकाला और आग्रह करके मेरे हाथमे दे दिया। मैने कई बार अस्वीकार किया, किंतु श्रीभाईजीका आग्रह था---'लेना ही होगा'। मैने ले लिया। रुपयेका स्पर्श होते ही मन बदल गया---'महापुरुषने दिया है, इसमे कोई रहस्य होगा।' मुद्रा ले आया और घर पहुँचकर उसे सुरक्षित रख दिया। वह मुद्रा जबसे आयी, तभीसे मेरे घरमे लक्ष्मीदेवीका आगमन आरम्भ हुआ; अकेली श्रीलक्ष्मीजी ही नही, परमदयालु श्रीभगवान् भी हृदयमे आ गये। यह है दया-सागरकी दयालुता।

श्रीभाईजीमे कितनी सहृदयता थी, कितनी दयालुता थी, कितना प्यार था---यह शब्दोमे व्यक्त नहीं किया जा सकता, जो श्रीभाईजीकी सनिधिमे रहा है, वही उसे जान सकता है, अनुभव कर सकता है। ऐसे नित्यलीलालीन भगवत्प्राप्त महापुरुषके प्रति अपनी श्रद्धा स्थूल शब्दोमे क्या व्यक्त करूँ? रोम-रोम श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा है। **'पर दुख दुखी, सुखी पर सुख ते'**---यह उनका व्रत था। **'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।'** ---वे तो सभीमे श्रीराधा-माधवका दर्शन करते थे। ऐसे थे वे महापुरुष। यह तो एक छोटी-सी घटना है। उनके जीवनसे कितने व्यक्तियोका महान् उपकार हुआ है, यह लेखनीसे व्यक्त नही किया जा सकता। भगवत्प्राप्त पुरुष तो भगवान्‌के ही रूप होते है और भगवान्‌की महिमा शारदा और शेष भी नही गा सकते।

●

भाईजीकी कृपासे नवजीवनकी प्राप्ति

श्रीओंकारमलजी पोद्दार

परमपूज्य श्रीभाईजीसे मेरा सम्पर्क सवत् १९८९मे हुआ और यह सम्पर्क उत्तरोत्तर दृढ होता रहा। उनका मुझपर वडा ही स्नेह था। उनके साक्षात्कार एव पत्र-व्यवहार आदिसे जीवनमे सतत प्रेरणा मिलती रही। आज उनके नित्यलीलालीन होनेपर अनेकानेक प्रसङ्ग मानसमे उमड-उमडकर आते हैं। उनका अभाव वडा खलता है।

सवत् २०११की आषाढ शुक्ल, १३ सोमवार (दिनाङ्क १३-७-५४)की एक घटना वरवस आँखोके सामन आ जाती है। हमलोग स्वर्गाश्रमसे ऋषिकेश जा रहे थे। गङ्गा पार करनेके लिये प्रात १० वजे वोटमे वैठे। स्त्री-वच्चोसहित हमलोग लगभग २१ व्यक्ति थे। वोटके रवाना होते ही मेरे मनमे एक शङ्का उठी—'कही बोट वद हो जाय तो ?' भगवत्प्रेरणा, सचमुच गङ्गाकी वीच-धारामे वोटका इजिन वद हो गया। बोट-ड्राइवरने ब्रेक लगाया, पर ब्रेक भी निष्फल। वोट धारामे पडकर भँवरकी तरफ चल पडा। अव डूवा, तव डूवा। सभी यात्री भगवान्को, श्रीसेठजीको, श्रीभाईजीको—'वचाओ-वचाओ'के आर्तनादसे पुकारने लगे। उसी समय परमपूज्य श्रीभाईजी गीताभवन सख्या २से निकलकर वाहर आये और बोटकी यह दशा देखकर तीन वार जोर-जोरसे—'नारायण-नारायण-नारायण'—पुकारा। अप्रत्याशित रूपसे बोटका वहना वद होकर वह वही रुक गया। वोटको स्टार्ट करनेकी चेष्टा की गयी, पर वह स्टार्ट नही हुआ। श्रीसेठजी, एव गीताभवनके सभी सत्सङ्गी भाई-वहिन बोटके यात्रियोके सुरक्षार्थ घाटपर उच्च स्वरसे भगवन्नाम-सकीर्तन करने लगे। तेज धाराके कारण नाव भेजनेके सभी प्रयास निष्फल हो गये। अन्तमे ऋषिकेशसे एक खूव मोटा रस्सा लाकर एक विशाल पेडमे वाँधा गया। दूसरे सिरेपर एक नौका वाँधकर वोटकी तरफ छोडी गयी। नाव वोटसे कुछ दूरीपर लगी। सभी यात्रियोको येन-केन-प्रकारेण नावपर सवार कराया गया। भगवान्की मर्जी, यात्रियोके सवार होते ही नावम बँधा हुआ मोटा रस्सा भी पत्थरकी रगड खाकर कट गया और नाव गङ्गामे वह चली। अगाध जलराशि, तेज वहाव। कही कोई सहारा नही! दोनो किनारोपर एकत्रित सत-महात्मा, सत्सङ्गी एव वन्धुगण तथा नावमे वैठे सभी यात्री उस करुणामयको आर्त-स्वरमे पुकार रहे थे। वडा ही करुण दृश्य था। अन्ततोगत्वा जैसे-तैसे नाव किनारे लगी। जवतक नाव किनारे न लगी, सभीके प्राण कण्ठमे अटके रहे। हमलोग ढाई वजे वापस गीता-भवन पहुँचे। जव हमलोग परमपूज्य श्रीभाईजीको प्रणाम करने गये, तव वे वडी ही आत्मीयतासे मिले और मुस्कराते हुए वोले—'आपलोगोको वडा कष्ट उठाना पडा, पर भगवान्ने रक्षा की।'

इस प्रकार श्रीभाईजीकी करुण पुकारसे भगवान् नारायणने भँवरमे पडे हुए वोटको वचाकर यात्रियोकी प्राणरक्षा की। सचमुच श्रीभाईजीकी कृपासे ही हमलोगोको नव-जीवनकी प्राप्ति हुई।

●

भारतीय संस्कृतिके जीवन्त स्वरूप

श्रीगिरिजाशंकरजी त्रिवेदी

सन् १९४४की बात है। मै मिडिल स्कूलका विद्यार्थी था। पिताजी आजीविकाके सिलसिलेमे वम्वईमे रहा करते थे। वे 'कल्याण'के ग्राहक थे। गॉव आते समय 'कल्याण'के कुछ अङ्क वे साथ ले आते। इस तरह मुझे 'कल्याण' पढनेका अवसर मिला। उसमे छपी बाते मेरे किशोर मनपर गहरा असर करती। एक बार पिताजीके वम्वई लौट जानेके बाद मैने निश्चय किया कि मै भी 'कल्याण'का ग्राहक बनूँगा। पैसा जुटाना टेढी खीर थी, पर एक उपाय सूझा। तीन पैसेका पोस्टकार्ड खरीद लाया और उसपर लिखा—'श्रीमान् सम्पादकजी ! मै गॉवके स्कूलका विद्यार्थी हूँ। आपका 'कल्याण' मुझे वहुत अच्छा लगता है, पर चदेके लिये मेरे पास पैसे नही है। दो-तीन महीनेमे पैसे इकट्ठे करके आधे सालका चदा भेज दूँगा आपका . '

कार्ड लेटर-वक्समे छोडकर दो-चार दिनतक अपनी इस नासमझीपर पछताता रहा। सोचता रहा कि 'भला विना जान-पहचानके इतने वडे पत्रके सम्पादक मुझ-जैसे 'गवँई' (गॉव)के लडकेको क्या उत्तर देगे ? उलटे कही डॉट ही न पिलाये।'

ठीक आठवे दिन एक हस्तलिखित कार्ड मेरे नाम आया। लिखा था "प्रिय गिरिजा-शकर ! तुम्हारा पत्र मिला। 'कल्याण' पढनेमे तुम्हारी रुचि जानकर प्रसन्नता हुई। भारतीय सभ्यता और सस्कृतिके सस्कार वचपनसे ही हमारे बच्चोमे पनपे, यही मेरी कामना है। एक सालतक तुम्हारे लिये मुफ्त 'कल्याण' भेजनेके लिये व्यवस्था-विभागको कह दिया है। खूव पढो। इच्छा-शक्तिमे धनाभाव कभी बाधक नही बन सकता। शेष भगवत्कृपा ! तुम्हारा भाई— हनुमानप्रसाद पोद्दार।"

पत्र पढकर लगा कि किसीने वात्सल्यभरे हाथोसे मुझे ऊपर उठा लिया है। आज भी पत्रकी स्मृतिसे मन कृतज्ञतासे भर उठता है।

सोचता हूँ ..श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने न जाने कितने तरुणोको अपने सहज सौजन्य और औदार्यसे भारतीय सस्कृतिके जीवन्त स्वरूपका दर्शन कराया होगा।

●

भगवान् प्रेमके कारण भक्तोंके पीछे-पीछे घूमा करते हैं। उनके सुख-दुःखमें अपना सुख-दुःख मानते हैं। उनके लिये अपनी आन-बान और स्वयं श्रीलक्ष्मीजीतककी चिन्ता नहीं करते। भक्तवर भीष्मकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये अपनी शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञाको भङ्ग कर देते है। और अर्जुनके साथ तो उन्होने क्या-क्या नहीं किया !

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

एक कटु यथार्थ

श्रीकृपाशंकरजी शुक्ल

मैं उन दिनों कलकत्ताके हिंदी स्कूलोंमें गीताका अध्यापन-कार्य करता था, जब वहाँकी गीता-प्रचार-शाखाके अध्यक्षके सहयोगसे मुझे पूज्य 'भाईजी'के सानिध्य-लाभका अवसर प्राप्त हुआ। श्रीभाईजीके सौम्य व्यक्तित्वकी इतनी जीवन्त छाप मुझपर पडी कि मैं अपने मनको यह स्वीकार करनेके लिये राजी नहीं कर पा रहा हूँ कि वे दिवंगत हो चुके हैं। इस कटु यथार्थकी अनुभूति मुझे हो या न हो, किंतु इस भ्रान्तिसे यह सत्य छिपाया नहीं जा सकता कि श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके नित्यलीलालीन होनेसे धार्मिक जगत्में एक ऐसी भयावह रिक्तता पैदा हो गयी है, जिसका ख्याल करते ही मन अधीर हो उठता है। लुप्तप्राय सद्ग्रन्थोंको सर्वसाधारणके लिये नाममात्रके मूल्यपर सुलभ बनानेवाले भाईजीके पुनीत प्रयासको यदि निरन्तर गतिमान् नहीं रखा गया तो यह उनके प्रति कृतघ्नता और भारतीय जनजीवनके लिये आत्मघाती भूल होगी। भाईजीने एक दिन गीता-प्रसार-सम्बन्धी चर्चाके दौरान हमलोगोंके समक्ष यह इच्छा व्यक्त की थी कि 'देशके हर विद्यालयमें गीता अनिवार्यरूपसे पढायी जानी चाहिये। वह दिन निश्चय ही उनकी पावन स्मृतिके लिये बहुत शुभ दिन होगा, जब उनकी यह इच्छा सम्पूर्ण भावसे पूरी हो जायगी। अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें पूज्य भाईजी युवकोंमें बढती हुई उच्छृङ्खलता एवं नास्तिकताको देखकर विशेष चिन्तित रहा करते थे। हमलोगोंको इस ओर भी ध्यान देना होगा। आज धार्मिक मूल्योंकी ह्रासोन्मुख स्थितिमें जब उनकी सबसे ज्यादा जरूरत थी, वे चले गये। श्रीभाईजी जो पथ प्रशस्त कर गये हैं, उसपर चलकर ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धा व्यक्त कर सकते हैं।

●

जो भगवान्‌का स्वरूप है, वही संतका स्वरूप है। संतका कोई लक्षण बतलाया नहीं जा सकता। जिसमें सब है, जो सब है, जो सबसे अलग है और जिसमें सबका अत्यन्ताभाव है, वही संत है। उसे ब्रह्म कहो, ईश्वर कहो, जगत् कहो अथवा संत कहो, एक ही बात है।

—पूज्यपाद श्रीउडियाबाबा

●

कथनी और करनीमें सामञ्जस्य

श्रीरामजीवनजी चौधरी

वर्ष और माह तो ठीकसे याद नही, लेकिन करीव २४-२५ वर्ष पूर्व राजस्थानमे अकाल पडा था। उस समय स्थान-स्थानपर गीताप्रेसद्वारा कम मूल्यपर गेहूँ बेचनेकी योजना वनी एवं सरदारशहरमे हमारे निवास-स्थानपर भी दूकान खोली गयी। इसकी व्यवस्थाके लिये गीताप्रेसके कार्यकर्ता सरदारशहरमे हमारे यहाँ ही ठहरे थे। कारण, मेरे पूज्य पिताजी एवं पितामहकी परम श्रद्धेय श्रीसेठजी एव श्रीभाईजीके साथ घनिष्ठ आत्मीयता थी। दूकानके द्वारा सेवाका कार्य अच्छी तरह चला। हमे जहाँतक याद है, उस समय गेहूँ वाजारमे एक रुपयेका ५ सेर मिलता था, गीताप्रेसकी दूकानसे १ रुपयेका ६ सेर गेहूँ दिया जाता था। रचनात्मक सहायता-कार्यका एक अभिनव रूप देखकर हमारा हृदय इन महापुरुषोके चरणोमे श्रद्धावनत हो गया। इस सम्वन्धमे एक वार इलाहावादसे गोरखपुर जाते हुए रेलयात्रामे पूज्य भाईजीके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अपना परिचय दिया। उन्होने सेवाकार्यके लिये खुली दूकानके वारेमे जानकारी करनी चाही। मैंने जितनी जानकारी थी, वह उन्हे वता दी। उन्होने पूछा कि 'आप उसमे क्या सेवा करते है ?' मैंने कहा कि 'सव कार्य हमारे यहाँसे ही सम्पन्न होते है एव गीताप्रेसके कार्यकर्त्ता भी हमारे यहाँ ही ठहरे हुए है। इस उत्तरसे उन्हे संतुष्टि नही हुई और पुन पूछनेपर मै वगले झाँकने लगा। मुझे अनुभव हुआ कि मै अपना कर्तव्य ठीकसे नही निवाह रहा हूँ। अत सरदारशहर लौटकर दूकानके सेवा-कार्यमे मै भी हाथ बँटाने लगा। इस तरह इन महापुरुषके सानिध्यसे मैने कर्तव्य-निष्ठाका स्वरूप जाना और जीवनमें इसपर चलनेका वरावर प्रयत्न करता रहा हूँ।

इसके वाद भी कई वार मैंने पूज्यपाद भाईजीके दर्शन किये है। वे इतने संकोची थे कि दर्शनार्थ आनेवालोको कभी निराश नही करते थे एव अपनी कार्यव्यस्ततामे अथवा अस्वस्थतामे भी अधिक समयतक वैठे रहनेपर भी मिलने आनेवालोको अपनी ओरसे कभी उठकर जानेको नही कहते थे। दर्शनार्थी अपनी इच्छासे उठकर चले जायँ तो भले ही।

एक वार मैंने पूज्य भाईजीसे वर्तमान आध्यात्मिक परिस्थितिके वारेमे शङ्का की एवं कहा कि 'साधककी अपनी शङ्काओका समाधान ठीकसे नही हो पाता, इससे वह भटक जाता है। महात्माओके वाह्य जीवनमे ठाट-वाट अधिक होनेसे साधक भी सादा जीवन वितानेकी प्रेरणा नही पाता।'

इसके उत्तरमे उन्होने जो कुछ कहा, उसका सार था कि 'सभी क्षेत्रोमे घोर नैतिक पतन हुआ है। आध्यात्मिकताके नामसे भी दूकाने खोली जाती है। वाणीमे और रहन-सहनमे फैशन आ गया है। दूसरे हमे देखकर कैसे मुग्ध हो, कैसे हमारी वाणी, पोशाक, चाल आदिपर रीझे—यही लक्ष्य धार्मिक कहलानेवालोका हो गया है। कथनी-करनीमे सामञ्जस्य नही है। अत ऊपर-

के रहन-सहनसे मुग्ध होकर अपनेको धोखेमे नही डालना चाहिये। अपने साधन-पथपर दृढतासहित अग्रसर होना चाहिये।'

इस सदर्भमे मै पूज्य श्रीभाईजीके एक पत्रका उल्लेख किये विना नही रह सकता। हमारे पूज्य गुरुदेवके ब्रह्मलीन होनेपर साधन-पथपर अग्रसर होते रहनेमे कुछ शङ्का होने लगी। उसके समाधानके लिये मैने एक पत्र पूज्य श्रीभाईजीको लिखा था—उत्तरमे ज्येष्ठ शुक्ल ९, स० २०१०का जो पत्र आया था, उसमे लिखा था—

'गुरुके शरीरसे न रहनेपर दूसरा गुरु वनाना ठीक नही है। गुरुतत्त्व तो नित्य है। गुरुद्वारा वताये गये मन्त्र तथा साधनको करते रहना चाहिये। इसमे दूसरेको कुछ वताते रहने और पूछते रहनेकी कोई आवश्यकता नही है।

'साधनका पथ—भगवान्‌का पथ तो सीधा पथ है, उसपर जो चल रहा है, वह अग्रसर हो रहा है। उसमे भूलने-भटकनेका कोई भय नही है। अपने लक्ष्य और साधनपर दृढ विश्वास रखना चाहिये।'

पूज्य भाईजीकी कथनी और करनीमे सामञ्जस्य था। सचमुच श्रीभाईजीकी रहनी आदर्श थी, जो दूसरोको मूक प्रेरणा देती थी।

उनके दर्शनार्थ जव भी गया हूँ एव उनको प्रणाम किया है, तव वे वरावर सकोचका अनुभव करते थे और कहते थे—'यह क्या कर रहे है?' उनके पार्थिव शरीरके अभावमे आज अँधेरा-ही-अँधेरा है। उनके वारेमे कुछ कहना या लिखना अपने मन और लेखनीको पवित्र एव धन्य करना है, वर्ना हमारा यह प्रयास सूर्यको दीपक दिखानेके सदृश है।

●

महात्माके सङ्गसे जैसा लाभ होता है, वैसा लाभ संसारके किसीके भी सङ्गसे नहीं हो सकता। संसारमें लोग पारसकी प्राप्तिको वड़ा लाभ मानते हैं, परंतु संतोंके सङ्गका लाभ तो वहुत ही विलक्षण है। पारस लोहेको सोना वना सकता है, परंतु पारस नहीं वना सकता। लेकिन संत-महात्मा पुरुष तो सङ्ग करनेवालेको अपने समान ही संत-महात्मा वना देते हैं। इसलिये महात्माओंके सङ्गके समान संसारमें और कोई भी लाभ नहीं है। परम दुर्लभ परमात्माकी प्राप्ति महात्माओंके सङ्गसे अनायास ही हो जाती है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

सेवाकी सरल प्रेरणा

श्रीमती सावित्री त्रिपाठी

परमश्रद्धेय श्रीभाईजी आदर्श सत्पुरुष ही नही, महापुरुष थे। उनके प्रवचन वडे प्रभावशाली होते थे। मै भाग्यशालिनी हूँ, जो श्रीभाईजीकी छत्रछायामे बाल्यकालसे पली और सयानी हुई। एक वार अपने प्रवचनमे उन्होने दीन-हीन पुरुषोकी सेवा-सहायताके लिये प्रेरित करते हुए कहा--

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भागवत ७।१४।८)

'मनुष्योका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

इस ऋषि-वाक्यसे वढकर और कौन साम्यवाद होगा? इसे हृदयसे स्वीकार कर लिया जाय तो निश्चय ही वर्तमान अशान्ति मिट जाय, पर इसे हम श्रद्धापूर्वक जीवनमे उतार ले, तव न?

फिर भाईजीने कहा--'हमारा धनिकवर्ग अपने विलासपूर्ण जीवनमे जितना धन नष्ट करता है, यदि उसका सदुपयोग करता तो समाज और देशका बडा हित हो सकता था। पर उन्हे अपने शौकसे, अपने भोगसे, अपने विलाससे कहाँ अवकाश है, जो दरिद्रनारायणपर दृष्टि डालनेका कष्ट करे।

'हमारे मारवाडी घरोमे स्त्रियाँ कम खर्च नही करती। वे वस्त्रोपर ही हजारो रुपये व्यय करती रहती है। मैने देखी है--डेढ-डेढ हजार रुपयेकी ओढनी। इतनी कीमती ओढनी ओढकर वे सतोषका अनुभव करती होगी, पर वे चाहे तो पचास-साठ या सौ-सवा सौ रुपयेकी भी ओढनीसे काम चला सकती है। इस प्रकार वे रुपये बचाकर गरीव, असहाय, अनाथ, कोढी, रोगी आदि विपत्तिग्रस्त व्यक्तियोकी सेवा कर सकती है। विश्वास कीजिये, यह सेवा साक्षात् दीनवन्धु भगवान्की, दीनानाथकी, श्रीनारायणकी, श्रीरामकी, श्रीकृष्णकी सेवा है। इससे दुर्दशाग्रस्त मनुष्य-जातिका हित तो होगा ही, निश्चय ही ऐसा करनेवाले भाई-वहनोका परम कल्याण भी होगा।'

देव-पुरुष श्रीभाईजीका यह उपदेश अव भी रह-रहकर मेरे कानोमे जैसे गूंजता रहता है। मेरे विवाहके अवसरपर भेजा हुआ उनका शुभाशिष् सचित निधिकी भॉति मेरे पास सुरक्षित है।

●

जीवनदानी नानाजी

श्रीदिलीपकुमारजी भरतिया

मैने अपनी कालेजकी शिक्षा १९६६ जूनमे समाप्त की। वम्बई विश्वविद्यालयसे एम० काम० डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् परिवारवालोकी यह स्वाभाविक रूचि रही कि मेरा विवाह हो जाय। भाग्यसे मेरा विवाह श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी दौहित्री पुष्पादेवीके साथ सम्पन्न हुआ और मुझे विलक्षण नानाजी प्राप्त हुए।

विवाहके एक साल वादसे अर्थात् १९६८से मेरा स्वास्थ्य खराव रहने लगा। दिन-पर-दिन शरीर अस्वस्थ रहने लगा और पेटकी तकलीफ वढने लगी। एक वर्षतक गिरिडीह एव कलकत्तामे तरह-तरहके इलाज हुए, पर तनिक भी लाभ नही हुआ।

१९६९के जनवरी मासमे नानाजीने मेरे परिवारवालोसे विनम्र आग्रह करके मुझे गोरखपुर इलाज करवानेके लिये वुलाया। मै यहाँ ५ या ६ तारीखतक पहुँचा। उन दिनो वे कहा करते थे—'मेरे हृदयमे कोई भी सकल्प-विकल्प नही उठता, परतु मै आपको नीरोग देखना चाहता हूँ।' उनको भावी घटनाओका पूर्ण ज्ञान था। वे जानते थे, आगेका समय खराव है और शायद पूरे पेटका आपरेशन करना होगा। पर वे अपने भविष्यके ज्ञानको प्रकट करना नही चाहते थे।

डाक्टरोकी सलाहके अनुसार पूज्य नानाजीको केवल 'अपेण्डिक्स'के आपरेशनकी जँची। २५ जनवरीको आपरेशन हुआ। आपरेशन थियेटरमे मुझे ले जाते वक्त उन्होने सर्जन महोदयसे कहा—'आप केवल 'अपेण्डिक्स'का आपरेशन कीजियेगा, पूरा पेट मत खोलियेगा।' भावी सत्यके अन्तरालमे वे जानते थे कि पूरा पेट खोला जायगा। सर्जन महोदयने उस समय उन्हे कहा—"पेट खोलना कोई वच्चोका खेल नही है। अगर 'अपेण्डिक्स' देखनेसे रोगका निदान ठीक नही हो सका तो पूरा पेट खोलकर इनकी वीमारीका कारण पता लगाऊँगा।'

अस्तु, पूरे पेटका वडा आपरेशन हुआ। पेटमे 'अल्सर' मिला। पेटका काफी हिस्सा निकाल दिया गया। आपरेशन सफल हुआ। पर असह्य पीडा थी, सारा शरीर जल रहा था। पर इस असह्य वेदनामे भी जव-जव पूज्य नानाजी पास आकर बैठ जाते, शान्तिका अनुभव होता। उनके आते ही मनको वडा वल मिलता। वे आश्वासन देते—'आप ठीक हो जायँगे, भगवान्को नित्य-निरन्तर याद रखिये।'

चार दिनतक असह्य पीडा और वेदना रही, पाँचवे दिनसे कुछ राहत मिलने लगी। मेरी हालतमे कुछ सुधार और लाभ हुआ कि अचानक पेटमे पुन भीषण पीडा आरम्भ हो गयी। सव डाक्टर महानुभाव घवरा गये। स्थिति चिन्तनीय होने लगी। पर नानाजी सव कुछ व्यवस्था करते हुए भी अविचल थे। मुझे अच्छी प्रकारसे स्मरण है कि जव मैने पूज्य नानाजीको प्रथम आपरेशनके वाद कहा—'मुझे वडा कष्ट है', तव उन्होने वडी ही गम्भीर मुद्रामे उत्तर दिया था—'कष्ट तो और भी आगे है।' अर्थात् दूसरे आपरेशनकी जानकारी उन्हे थी। पेटमे असह्य दर्द

तो था ही, उल्टियाँ होने लगी। नानाजी वार-वार कमरेमे आते, सिरपर और मुखपर हाथ फेरते और भगवन्नाम—'ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः' का उच्चारण करते। उस समय मुझे जिस आन्तरिक सुखकी अनुभूति होती, उसका वर्णन मै नही कर सकता।

प्रथम आपरेशनके पश्चात् सर्जन महोदय वाहर चले गये थे। उन्हे बुलाया गया। वे आये। स्थिति देखकर वे घवरा गये, परतु नानाजीने उन्हे हिम्मत और बल दिया। पुन आपरेशन होना तय हुआ। जव मुझे दूसरा आपरेशन करानेके लिये आपरेशन थियेटरमे ले जाया जा रहा था, मेरा हृदय भावी शारीरिक पीडा और मानसिक कष्टसे विदीर्ण होता चला जा रहा था, ऑखोसे ऑसू झर रहे थे। पूज्य नानाजी बगलमे जाकर बडे ही स्नेह और प्यारभरे शब्दोमे बोले—'आप रोते क्यो है, हमलोग आपके साथ जो है।' उस समय मनको बडा सतोष हुआ, परतु जीवन-मृत्युके बीच मै झूल रहा था। 'आपरेशन थियेटर'मे बेहोशीके इजेक्शन देनेके वक्ततक अखण्डरूपसे पूज्य नानाजीकी स्मृति वनी रही।

आपरेशन हुआ और सफल हो गया। परंतु उस प्रक्रियामे होनेवाली पीडाका लेखनी-द्वारा चित्रण नही हो सकता। पूज्य नानाजी आकर आश्वासन देते—'यह ऑधी आयी है, यह भी निकल जायगी।' वे हास्पिटल प्रतिदिन सुवह ९ वजेसे १० वजेके बीच आते। मै मन-ही-मन उनके आनेकी प्रतीक्षा करता, क्योकि उनके आते ही हृदय शान्त और शीतल हो जाता। एक वार ज़व मै बुरी तरह रोकर उन्हे शारीरिक कष्टकी स्थिति वताने लगा, तव वे बोले—'आप धीरज रखे, अधिक न बोले। बोलनेसे कष्ट होगा। मुझे सारी स्थितिका ज्ञान है। मै आपके दोनो आपरेशनोके समय आपरेशन थियेटरके अंदर था। मैने सव कुछ देखा है। मै आप सवको देख रहा था, पर मुझे कोई नही देख पा रहा था। मै आपरेशन थियेटरके वाहर लोगोके समक्ष भी था और थियेटरके अदर भी। मै आपसे जो कुछ कह रहा हूँ, विल्कुल सत्य कह रहा हूँ। मुझे झूठ बोलकर आपसे क्या लेना है।' उस समय मै और नानाजी दोनो ही थे, और लोग कमरेके वाहर चले गये थे।

दूसरे आपरेशनके दो-तीन दिन वाद स्थिति फिर खराव होने लगी। मुझे उस स्थितिका ठीक अनुभव नही हुआ। वादमे घरवालोने मुझे वताया कि 'आपका चेहरा विकृत हो गया था, डाक्टर स्वय घवरा रहे थे, तव सवके प्रवल आग्रहसे पूज्य नानाजीने रात्रिमे कमरेको बदकर कुछ किया और मेरी स्थितिमे सुधार होने लगा।'

उस समय मै गोरखपुर १० अप्रैल १९६९तक रहा। वे नित्य-प्रतिदिन कम-से-कम एक वक्त मुझे देखनेके लिये नीचे कमरेमे आया करते थे। मै उनसे आग्रह करता—'आप नीचे क्यो आते है, मै आपसे मिलने ऊपर आ जाया करूँ।' वे वडी ही मधुर वाणीमे कहते—'मुझे नीचे आकर मिलनेमे सुख मिलता है। मै जो कुछ भी आपके लिये कर रहा हूँ, अपने सुखके लिये कर रहा हूँ, मुझे इसमे सुख मिलता है।'

दूसरे आपरेशनके पॉच महीने वादतक स्वास्थ्य ठीक चलता रहा, परतु फिर शारीरिक स्थिति गिरने लगी। पूज्य नानाजीको आगे आनेवाली घटनाओकी जानकारी थी ही। मुझे एक-दो पत्रोमे उन्होने सकेत-सा भी किया।—'भारी-से-भारी कष्टमे भी मन विचलित न होने पाये, आप हिमालयकी तरह दृढ रहे और मन अखण्डरूपसे भगवान्की स्मृति करता रहे।' सन् १९६९के श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर मै गोरखपुर आया। उत्सवके चौथे दिन रात्रिमे १० वजे अचानक पेटमे

भयकर पीडा शुरू हो गयी। वस, यही कह सकता हूँ कि शरीरसे प्राण नही गये, वाकी कुछ नही रहा। प्राण रह-रहकर निकलना चाह रहे थे, परतु पूज्य नानाजीकी अनन्त असीम कृपासे जीवन-दान जो मिलना था।

मुझे आपरेशनके लिये दिल्ली ले जानेका निश्चय हुआ। दिल्ली ले जानेके दो दिन पूर्व पूज्य नानाजी अस्वस्थ अवस्थामे भी अकेले कमरेमे आये। उनके अतिरिक्त उस समय कमरेमे और कोई नही था। वे करीव २० मिनटतक वैठे रहे और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, वे अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मुझे जीवन-दान देनेका एक वार फिरसे सकल्प कर रहे है।

जव मुझे दिल्ली ले जानेका समय आया, पूज्य नानाजी मेरे कमरेमे आये। पूज्य नानाजीने आश्वासनभरे शव्दोमे कहा—'आप घवराते क्यो है। हम आपके साथ जो है।' हमलोग दिल्ली पहुँचे। दिल्लीके डाक्टरोने स्थितिका अध्ययन करके कहा—'८० प्रतिशत उम्मीद नही है कि ये वच जायँ, २० प्रतिशत वचनेकी आशा है।' आपरेशन होना अनिवार्य था। तीसरा आपरेशन २५ सितम्वर १९६९को हुआ। आपरेशन हुआ और इस सफलताका एकमात्र रहस्य केवल पूज्य नानाजीकी असीम कृपा और स्नेह था। भयानक-से-भयानक कष्ट रहा। शारीरिक कष्टके साथ-साथ मानसिक अवस्था भी वहुत खराव थी, परतु पूज्य नानाजीकी कृपासे जीवनका वह तूफान भी निकल गया। पूज्य नानाजीकी निरन्तर स्मृति वनी रहती और सानिध्यका अनुभव होता रहता।

ठीक होनेपर मै दिल्लीसे गिरिडीह चला गया। नानाजी मुझे वरावर पत्र देते रहे। एक पत्रमे उन्होने लिखा—'जगत्का कोई भी सयोग और वियोग, उत्पत्ति और विनाश मेरे मनको तत्वत विचलित नही कर सकते। आप स्वस्थ हो जायँ, वस, मै यही चाहता हूँ। मुझे लोक और परलोककी कोई चिन्ता नही, पर आपके स्वास्थ्यकी चिन्ता है।' पत्रोके द्वारा वे आश्वासन, स्नेह और आशीर्वाद देते रहे।

स्वास्थ्यकी ओर दृष्टि रखते हुए इलाजके लिये परिवारवालोने ६ अप्रैल १९७०को मुझे पुन पूज्य नानाजीके पास गोरखपुर भेज दिया। तवसे मै यही हूँ। पूज्य नानाजीकी अन्तर्धान-लीलाके समय मै उनके समीप था।

पूज्य नानाजीने मेरे जीवनमे भगवद्-रसकी धारा प्रवाहित करनेका पूरा प्रयास किया। ससारका सुख और वैभव कही भी मिल सकता है, वह भी मिला और अव भी प्राप्त है, परतु जीवनमे भगवत्प्रीति तो कवल पूज्य नानाजी-जैसे महाभागवतसे ही प्राप्त हो सकती है। उन्होने इसका मेरे हृदयमे वीजारोपण किया और उसे अङ्कुरित करनेका सतत प्रयत्न किया। उन्होने मुझे कई पारमार्थिक अनुभूतियाँ करायी, जिन्हे मै अपनी अमूल्य निधिके रूपमे गुप्त ही रखना चाहता हूँ।

पूज्य नानाजी जीवनके अन्तिम दो वर्षोमे वहुत वीमार रहे। उनकी अस्वस्थ अवस्था देखकर मेरे मनमे, हृदयमे वडी व्यथा और वेदना होती। दो-तीन वार मैने उनसे अपनी व्यथा कही। प्रत्येक वार वे मुस्करा दिये और वोले—'मुझे इस वीमारीमे वडा सुख मिलता है।'

उन्होने मुझे जीवनदान दिया, इसे मै कभी भूल नही पाऊँगा। मेरा शेष जीवन श्रीराधा-माधवके स्मरण-चिन्तनमे वीत जाय—वस, मेरी यही पूज्य नानाजीसे याचना है। मुझे विश्वास है, पूज्य नानाजी मुझे इसके लिये निराश नही करेगे।

●

मद्रासके नगर संकीर्तनमें
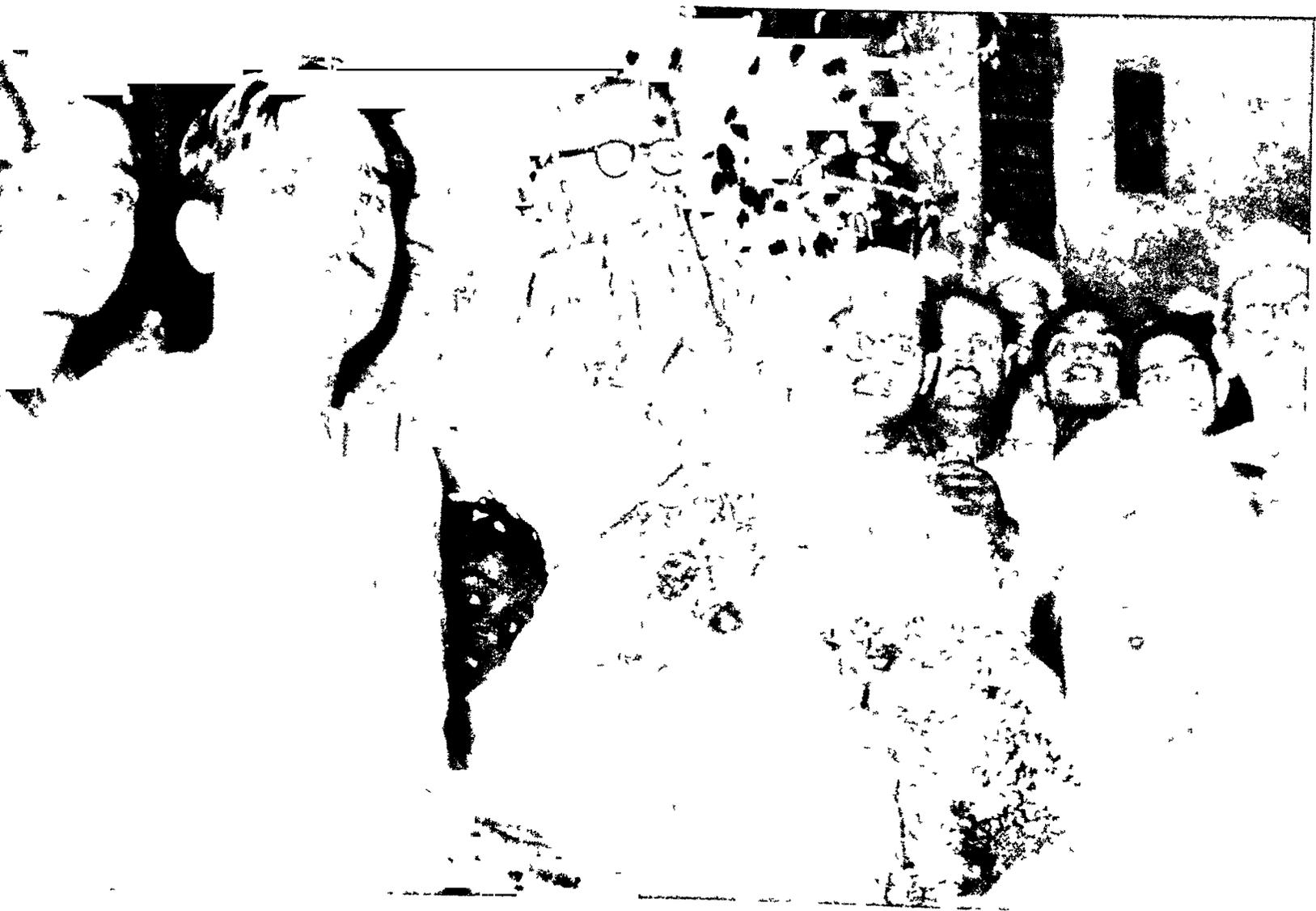
मद्रासके भावुक भक्तो द्वारा पुष्पवर्षा
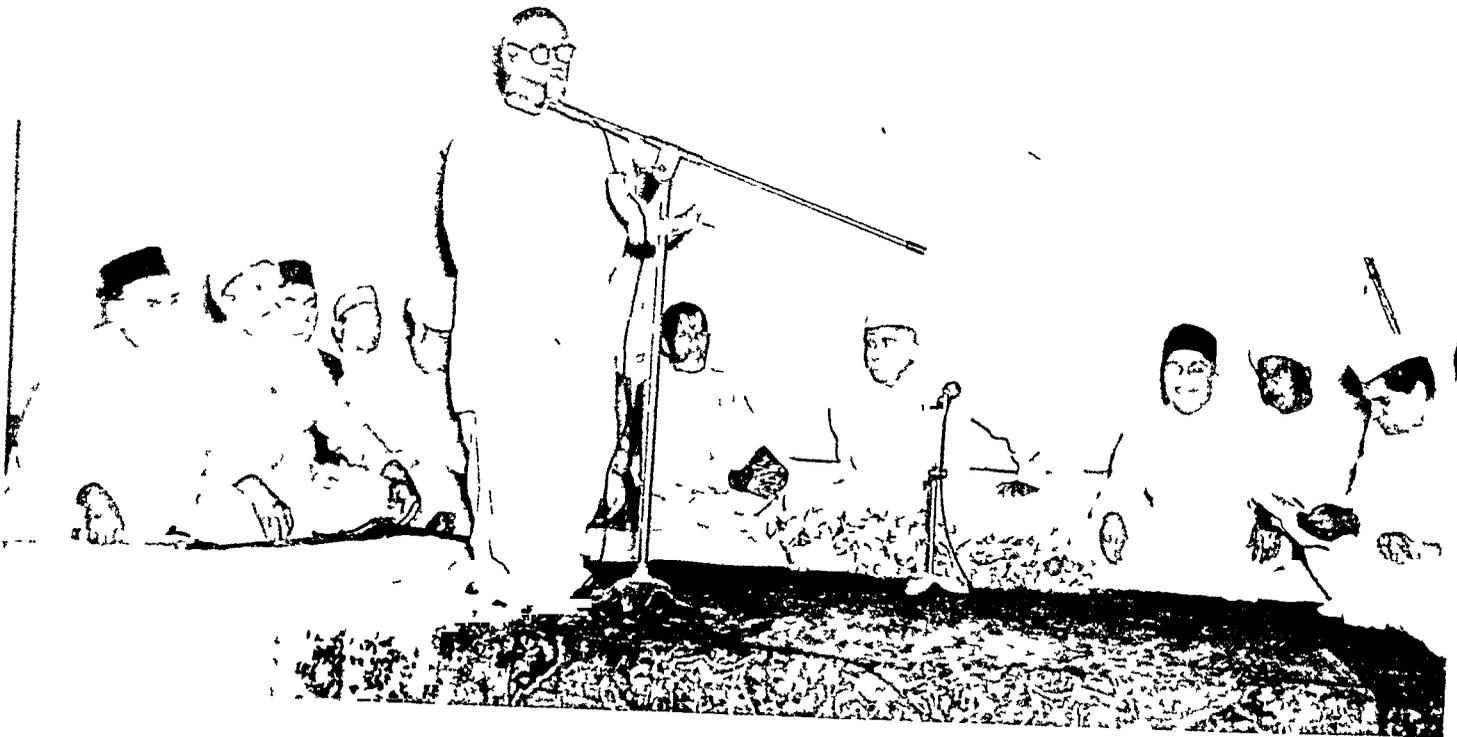
बम्बई नगरके गण्यमान्य नागरिकोंके बीच ओजस्वी भाषण
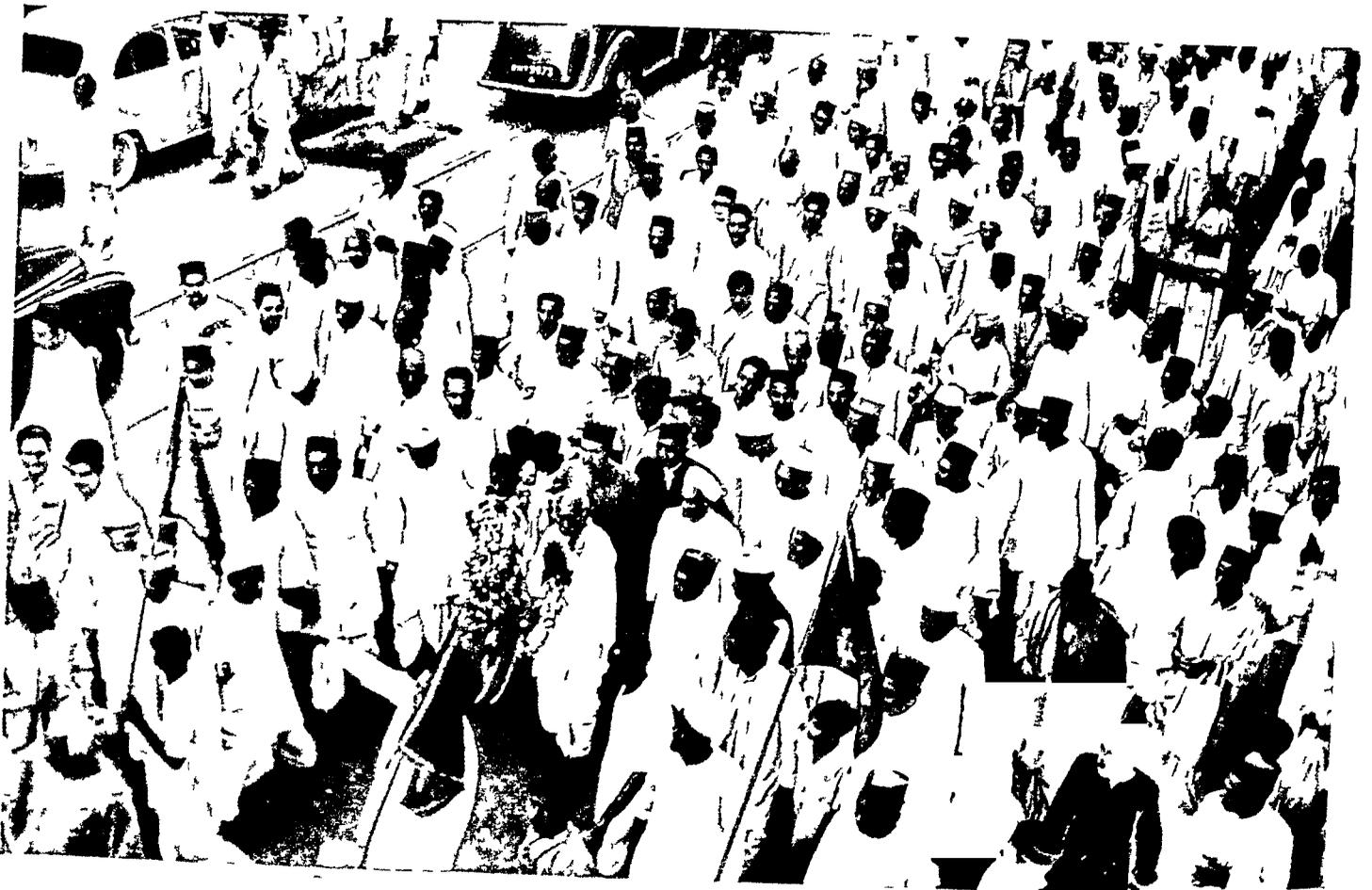
सम्पूर्ण नगर स्वागतके लिये उमड़ पड़ा

'मोहिं सुधि बिसरत नाहीं'

श्रीमती पुष्पा भरतिया

क्या कहूँ––कैसे कहूँ––लिखने बैठी अवश्य हूँ, परतु अन्तर्दाहकी असीम वेदनाका धूमिल चित्र भी खीचनेमे मेरी लेखनी सफल हो पायेगी, यह विश्वास नही है। हाथ कॉप रहे है––नेत्र वरवस बरस रहे है––मन-प्राण वहुत ही बोझिल हो गये है।

अतीतकी सुखद स्मृतियाँ, जो मात्र स्वप्न वनकर रह गयी है, अनायास उद्‌बुद्ध होकर अतिशय व्याकुल कर रही है––मन रो रहा है––प्राण रो रहे है, पर हाय रे! किससे कहूँ––कौन सुनेगा मुझ अभागिनकी करुण पुकार? कौन पोछेगा इन अभागे आँसुओको? कौन दुलरायेगा अपने स्नेहसिक्त करोसे? अव जीवनमे वचा ही क्या है?

साँस चल रही है, पर लगता है, प्राण नही––स्पन्दन नही जीवनमे––हृदयमे दु खका भार लिये, अत्यन्त उदास, अतिशय खिन्न, सिसकती, रेगती जिदगी जा रही है अवसानकी ओर मन्थर गतिसे। जिसे चाहनेवाला दुनियामे न हो, मौतको भी उसकी चाह नही होती––शायद वस इसीलिये जी रही हूँ––मर नही पायी।

नानाजीकी अनुपस्थितिकी मर्मान्तिक पीडासे व्यथित अभागे प्राण जव उस समय ही नही निकले, तव अव तो न जाने कवतक ढोना पडेगा इनका भार मुझे––जीवनके सार-सर्वस्व नानाजी ही चले गये छोडकर, तव भी प्राणोका मोह न छूट सका मुझसे तो अव क्या छूटेगा? अस्तु,

नानाजीकी छत्रछायामे हम वच्चे वढते रहे––उनका सहज स्नेह हमे अवाधरूपसे मिलता रहा––हमलोगोकी स्वच्छन्द क्रीडाके उपयुक्त सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहती। जव भी कुछ माँग होती, हमारे नानाजी अविलम्ब उसे पूरा कर देते––जीवनमे कभी भी, किसी भी प्रकारके अभावका अनुभव नही किया मैंने उनके जीवनकालमे––वचपनके सलोने दिन कब, कैसे बीत गये, हम जान भी नही पाये।

मै करीव ९ वर्षकी थी, तव नानाजी सारे परिवारके साथ रतनगढ गये थे। वहाँ बैठकमे वे सम्पादनका कार्य किया करते थे। सर्दीके दिनोमे वे कम्वल या मोटी चादर ओढकर बैठा करते थे। नानाजीके सामीप्य और स्पर्शमे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुआ करती थी। उतनी देरके लिये मै अपनेको वहुत ही गौरवशालिनी अनुभव करती। वस, इसीलिये मै ठिठुरती ठडमे विना कुछ गर्म कपडे पहने चली जाती बैठकमे। नानाजीका ध्यान सहज ही आकृष्ट होता मेरी तरफ और वे अपनी दुलारभरी भाषामे कहते––'सी लाग जासी छोरी! तूँ सूटर भी कोनी पैर राख्यो। आ मेरी कम्वल मै वड जा।' और वे अपनी कम्वलसे दोनो हाथ निकालकर मुझे अपनी ओढी कम्वलसे आवृत कर लेते––मुझे अभिवाञ्छितकी प्राप्ति हो जाती और मै खिल उठती। छोटे-वडे मेरे भाई-वहिन ललचायी नजरोसे देखते रह जाते और मै नानाजीके स्नेहपर अपना एकाधिपत्य जमा, चैनकी नीद सो जाती।

यो तो नानाजी हम सभी बच्चोको बहुत अधिक प्यार करते थे, परतु उनका स्नेह मेरे प्रति अपेक्षाकृत अधिक रहता। वे कहा भी करते थे, 'मुझे तुम चारो बच्चे बहुत ही प्रिय हो, परन्तु तुम्हारे प्रति मेरा बहुत मोह है।' नानाजीकी अयाचित अनुकम्पा मुझपर विशेषरूपसे रहती और मैं अनायास अतिशय सुगमतासे प्राप्त उनके अपरिसीम प्यारसे ओत-प्रोत अपने सौभाग्यपर स्वत ही मोहित रहती।

समय बीतता गया और समयके साथ-साथ मैं भी बढती गयी। अब नानाजीको मेरी शादी करनी थी—और आखिर वह दिन आ ही गया, जो हर लडकीके जीवनमे एक दिन आता ही है। शादी हो गयी मेरी। मुझे विदा करना था—हृदयमे उल्लास और आँखोमे आँसू लिये नानाजी मेरे पास आये। मैं स्थिर-पलकोसे देख रही थी अपने नानाजीके स्नेहपूरित छलछलाये नेत्रयुगलको। अब मेरा धैर्य भी बाँध तोड चुका था—मैं नानाजीके गलेमे हाथ डालकर फफक-फफककर रोने लगी। नानाजी बहुत कुछ कहना-समझाना चाहते थे मुझे, पर उमडे हुए स्नेहको भेदकर वाणी कण्ठसे बाहर आ जो नही पाती थी। कबतक मैं रोती रही, मुझे भान नही, हाँ, किसीने जबर्दस्ती मुझे नानाजीसे अलग किया। नानाजीने बहुत कठिनाईसे अपनेको सँभाला तथा अश्रुपूरित कण्ठसे मेरे कर्त्तव्योका बोध कराते हुए मुझे जल्दी ही वापस बुलानेकी सान्त्वना दी और मुझे विदा कर दिया गया।

मेरी शादी ४ मार्चकी थी और मेरी एम० ए०की फाइनल परीक्षा मार्चके अन्तिम सप्ताहमे। मै १३-१४ मार्चतक वापस आयी। पढाई कुछ भी नही हुई थी। सालभरका, और फिर एम०ए०का कोर्स १५ दिनमे तैयार करना असम्भव था। मैं नानाजीके पास गयी। मैंने कहा—'नानाजी, मेरी तैयारी बिल्कुल नही हुई है। मै परीक्षा नही दूँगी। हाँ, अगर आप चाहते हैं कि मैं परीक्षा दूँ तो आप अपने मुँहसे कह दीजिये, मेरी सेकड डिविजन आ जायगी।' नानाजी पहले तो आनाकानी करते रहे, पर मेरे बाल-हठके सामने उन्हे झुकना ही पडा। आखिर उन्होने कह ही दिया—'परीक्षा तो दो, सेकड डिविजन आ जायगी।' जो सत्यसकल्प है, जिनके दिव्य मानसतलमे किसी भी सकल्पका उन्मेष होते ही वह तत्क्षण सघटित हो जाता है, उन्होने जब अपनी वाणीसे कह दिया, तब मेरे लिये सशयका स्थान ही कहाँ रह गया था। मैंने १५ दिन पढकर परीक्षा दी और गुड सेकड क्लासके मार्क्स थे मेरे। नानाजी सर्वसमर्थ थे, सब कुछ करनेकी—देनेकी सामर्थ्य थी उनमे। यह नितान्त सत्य है—इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे जीवनमे कई बार हुआ है। अनुभव प्रचारकी वस्तु नही, अत उनको गोपनीय रखना ही उचित है।

जितने दिन मैं ससुराल रही, नानाजीका पत्र प्राय प्रत्येक दिन ही मिलता—किसी दिन नही पहुँचता तो दूसरे दिन दो पत्र साथ-साथ मिलते। पत्र देखते ही मैं आनन्द-विभोर हो उठती—गोल-गोल, मोती-सी सुन्दर-सुघड, स्नेहपूरित अक्षरावलिको देखते ही मै खुशीसे मत्त हो उठती। लिफाफेके ऊपर भी 'बेटी' लिखे बिना नानाजीका मन नही मानता। सदा 'बेटी पुष्पा भरतिया' करके ही वे पता लिखते अपने हाथोसे। आज भी मेरे जीवनकी अमूल्य निधिके रूपमे मुझे उनके हाथोसे लिखे अनेको पत्र हैं। जब भी उन्हे पढती हूँ, लगता है—नानाजी मेरे सामने बैठे हैं और बडे ही प्यारसे—लाडभरी मनुहारमे मुझे नानाविध शुभ प्रेरणा दे रहे हैं।

किसी भी कारणवश मुझे पत्र देनेमे यदि एक दिनका भी विलम्व हो जाता तो नानाजी चिन्तित हो उठते। मेरे पत्रके किसी भी शब्दसे 'नैराश्य' या 'उदासी'का क्षीण-सा भी आभास उन्हे मिलता तो वे आकुल हो उठते। प्रात नानाजीका भोजन करनेका समय होता, प्राय उसी समय डाक आया करती थी। कार्यभारकी अधिकताके कारण नानाजी भोजन करते समय भी आयी हुई डाक एवं पत्रोको देखा करते थे। नानी भोजन कराने आती थी। अगर मेरा पत्र होता तो नानाजी नानीको पढकर सुना देते थे। पत्र पढते-पढते उनकी विचित्र-सी दशा हो जाती --आँखोसे झर-झर आँसू गिरने लगते, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता उनका। नानीका भी असीम स्नेह है मेरे प्रति--उसका भी कलेजा भर आता। स्थितिके गाम्भीर्यको कम करनेके हेतु नानी व्यङ्गका पुट देती-सी कहती--'पैली थे रो ल्यो, फेर वाँचिओ (पहले आप रो तो ले, फिर पढियेगा।) बेरो कोनी जी कित्तो मोह है थारो उँ छोरी में (पता नही, कितना मोह है आपका उस लडकीमे।)' नानीकी व्यङ्गयुक्त प्रेमिल वाणी सुनकर नानाजी अनायास ही हँस पड़ते और फिर वातोका प्रवाह वदल जाता। मैं जब गोरखपुर आती, तव नानी या स्वय नानाजीके द्वारा मुझे इन सब वातोकी सूचना मिलती।

जव मैं यहाँ रहती, नानाजी चाहते कि मैं उनके पास जाऊँ, बैठूँ, पर इन दिनोमे प्राय नानाजी वाह्यज्ञान भूलकर भावराज्यमे खो जाते थे, प्राय: नानाजी कमरा बद रखने लगे थे। इस कारण कई वार कई-कई दिनोतक यहाँ रहते हुए भी मुझे उनके पास बैठनेका सौभाग्य नही प्राप्त हो पाता था। कई दिनो वाद देखनेपर नानाजी उलाहना देते, न आनेका कारण पूछते। मैं कहती--'मैं तो आयी थी, पर आपका दरवाजा बंद था, नानाजी!' वे कहते--'दरवाजा तो बंद था, पर तुम्हारे लिये थोडे बद था, तुम खटखटा लेती, खुलवा लेती।' कई बार उन्हे मेरी आवाज-से या आहटसे यह पता चल जाता कि मैं ऊपर आयी हूँ तो कितने भी आवश्यक कार्यमे रत क्यो न हो, उठकर तुरत दरवाजा खोल मुझे अदर बुला लेते एव अपने सहज स्नेहसे मेरे अणु-अणुको सिक्त कर देते।

सुखके दिनोकी रफ्तार इतनी तेज होती है--कव आये, कव चले गये--पता भी नही चलता।

नानाजीकी दृष्टिमे अव पट-परिवर्तन करनेका समय आ चुका था। यो तो नानाजी प्राय. बीमार ही रहने लगे थे इन दिनोमे, पर इस वार तो बीमारी उनके पार्थिव कलेवरको हमसे पृथक् करने ही आयी थी।

नानाजी सर्वज्ञ थे--वे जानते थे, जाना है, पर जानेसे पहले किसी-न-किसी रूपमे मेरे मलिन शरीरद्वारा उनकी सेवा हो जाय, यह उनकी हार्दिक अभिलाषा हो गयी थी। इसके अन्तरालमे भी असीम, अगाध स्नेहका समुद्र लहरा रहा था उनका मेरे प्रति। उनकी सेवाका उपकरण वन मैं कृतार्थ हो जाऊँ--यह स्नेह-भावना--मङ्गल-भावना निहित थी उनकी इस अभिलाषामे।

नानाजीके शरीरमे भीषण दाह था, हाथो और सिरपर ठडे हाथोका स्पर्श अच्छा लगता था उन्हे। सभी चाहते कि उनकी सेवाका सौभाग्य उन्हे भी प्राप्त हो। एक सज्जन वर्फसे स्पृष्ट हाथ लगा रहे थे, मैं पासमे खडी थी। नानाजीकी मुख-मुद्रासे मुझे यह आभास हुआ कि उन्हे इस

प्रकार हाथ लगाना विशेष रुचिकर नही लग रहा है। मैने उनको दूसरी तरहसे हाथ रखनेको कहा। बस, अब तो नानाजीको बोलनेका अवसर मिल गया। स्नेहभरी खीझसे बोले—'खडी-खडी अकल बतावै है, यो तो कोनी कि आप इ कर देवै (खडी-खडी सिखा रही है, यह तो नही कि अपने हाथोसे कर दे।)'—इस उक्तिका लक्ष्य क्या है, यह समझते उन सज्जनको देर नही लगी। वे हट गये और मै उनकी जगह बैठकर उनके सुधापूरित आदेशका पालन करने लगी।

आखिरी दिनोमे नानाजीको प्यास लगती, पर उनके गलेसे पानी नही उतरता था। उनको ड्रापरसे बूंद-बूंद करके पानी दिया जाता था। कई लोगोने चेष्टा की पानी पिलानेकी, पर नानाजी सदैव मुझे ही पिलानेको कहते। कारणविशेषसे यदि मुझे बाहर आ जाना पडता तो मुझे खोजकर बुलवाया जाता। ऐसा विलक्षण था उनका प्यार मेरे प्रति। क्या लिखूं, क्या नही, हमारे जीवनके कण-कणमे प्रविष्ट थे वे। तब फिर हमारे लिये अवशिष्ट ही क्या रहा। उनकी अयाचित कृपाका दान सदैव अनवरतरूपसे हमे मिला, मिलता है, मिलता रहेगा।

नानाजीने स्वय मुझे अपने पत्रमे लिखा था—'तुम जहॉ भी रहो, मेरा स्नेह तुम्हारी सम्पत्ति है, मेरा शरीर रहे या न रहे, तुम जहॉ भी रहोगी, तुम्हे वह अबाधरूपसे मिलता रहेगा।'

कालमानसे एक वर्षकी अवधि समाप्त होनेको आयी, नानाजीका पार्थिव कलेवर हमसे बिछुड गया। कई बार चित्त बहुत उदास हो जाता है—प्राणोमे हाहाकार-सा होने लगता है, कान उनकी मधुस्यन्दी गिरा सुननेको विकल हो उठते है, ऑखे उनके अलौकिक देदीप्यमान मुखमण्डलको देख पानेके लिये मचल उठती है। उस समय हृदयकी कैसी विचित्र दशा हो जाती है, कह नही सकती, परतु असम्भव वस्तुके लिये किये गये सकल्पकी सफलता कैसे सम्भव है। अब तो हम अभागे उस सुखकी मुखद कल्पनामात्र ही कर सकते है। जहॉ उनकी छत्रछाया नही, वहॉ विषाद-वेदनाकी भट्ठी निरन्तर धक्-धक् जलती ही रहेगी। अस्तु,

इस प्रकार अपने स्नेहदीपकी ज्योति जलाकर, हम भोले बच्चोको अयाचित सौभाग्य प्रदानकर, भावके दिनमणि आज अस्ताचलमे समा गये है।

यह सत्य है कि निष्ठुर नियतिने उनकी प्रत्यक्ष सनिधिसे हमे वञ्चित कर दिया है, पर अप्रत्यक्षरूपमे आज भी वे हमारे साथ है। मुझे पग-पगपर इसकी अनुभूति होती है। उनके वरदहस्त अब भी हमारी सँभालके लिये सचेष्ट है, यही अनुभूति मेरी जीवन-सजीवनी है।

●

जब प्रातःकाल सूर्य उदय होता है, तब ज्यों-ज्यों सूर्य नजदीक आता है, त्यों ही-त्यों सूर्यके प्रकाशका अधिक असर पड़ता है। वैसे ही हम जितने ही महात्माओंके समीप होते हैं, उतना ही हमको अधिक लाभ मिलता है। वे एक ज्ञानके पुञ्ज हैं, उस ज्ञान-पुञ्जसे हमारे अज्ञानान्धकार-का नाश होकर हमारे हृदयमें भी ज्ञान-सूर्यका प्राकट्य होता है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

भक्तिरूपा महासिद्धिसम्पन्न श्रीभाईजी

श्रीगोविन्ददासजी वैष्णव

श्रीभाईजीका प्रथम दर्शन मुझे सन् १९३६मे गीतावाटिकामे होनेवाले एकवर्षीय अखण्ड हरिनाम-सकीर्त्तन-यज्ञके दौरान हुआ था। तबसे लेकर उनके श्रीराधामाधवकी नित्यलीलामे लीन होनेतक समय-समयपर मुझे उनके दर्शन, सम्भाषण तथा सत्सङ्गका सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। जीवनके अन्तिम ८-१० वर्ष प्राय वे भावसमाधिकी अवस्थामे रहते थे, पर लोक-प्रसिद्धिसे वचनेके लिये उस अवस्थाको 'माथेकी खराबी' कहा करते थे। एक सज्जनने पूछा—'भाईजी, ऐसा कहना झूठ नही है क्या ?' उन्होने सहजभावसे उत्तर दिया—"ससारकी दृष्टिमे जव उसके कामका नही रहा तो 'माथा खराव' ही तो है।"

मै देखता था, भाईजी अपने प्रवचनोमे भगवान् श्रीकृष्णकी माखनचोरी, ऊखल-बन्धन, मृद्भक्षणादि वाल-लीलाओका वर्णन करते हुए भाव-विभोर और हँसते-हँसते आनन्दमग्न हो जाते थे। अनेक भाषाओके विद्वान्, 'कल्याण'-जैसे सुप्रसिद्ध धार्मिक पत्रके यशस्वी सम्पादक तथा विश्वप्रख्यात महापुरुषके हृदयकी ऐसी सरलताको देखकर मुझे वडा आश्चर्य होता था। एक वार किन्ही महानुभावने कहा—'भाईजी, ऐसी लीलाओको अधिक न कहा करे।' भाईजी बोले—'क्या करूँ ? भीतर यही जो भरा हुआ है।'

भाईजीके नित्यलीलालीन होनेके दो-ढाई मास पूर्वकी वात है कि मै गीतावाटिकामे ही था। मेरे सामने एक साधन-साध्य-सम्वन्धी आध्यात्मिक समस्या उपस्थित थी। ता० ७ जनवरी १९७१की शामको साढे छ वजे भाईजीके पास पहुँचकर मैंने वातचीतकी इच्छा प्रकट की। उस समय भाईजी चारपाईपर लेटे हुए विशेषाङ्कका प्रूफ देख रहे थे। बोले—'स्वास्थ्य खराव है, पेटमे दर्द है।' उचित तो यही था कि मै उस समय कुछ न पूछता, परतु कामना थी। मै बैठा ही रहा। भाईजीका स्वभाव ऐसा कोमल था कि वे जहाँतक हो सकता था, किसीको निराश नही करते थे। बोले—'अच्छा, सुना जाइये।' मैंने अपने प्रश्न उन्हे सुना दिये। मेरे प्रश्नोका उत्तर देते हुए भाईजीने कहा—"अद्वैत तो मै भी मानता हूँ, परतु मेरे अद्वैतका अर्थ है—'सब श्रीकृष्ण है।' वे ही सगुण है और निर्गुण भी है। उनके नाम, रूप, लीला, धाम आदि सभी नित्य है। उनकी मङ्गलमय देह भी नित्य है। उनके माता-पिता—श्रीनन्द-यशोदा, ग्वाल-वाल, सखागण, श्रीराधारानी आदि गोपीजन भी नित्य है। उनके परमधाममे स्थल, मकान, सरोवर, वाग-वगीचे, पुष्प, पशु-पक्षी, सूर्य-चन्द्र आदि सभी है, परतु प्राकृत नही, चिन्मय है, भगवत्स्वरूप है। वहाँ मायाका, जडताका प्रवेश नही है। इस जगत्मे जो कुछ भी है, वह उस परमधामकी छाया है। कुछ लोग श्रीकृष्णको मायोपाधिक मानते है, कुछ लोग श्रीकृष्णका विकास मानने लगे है। मै ऐसा कुछ नही मानता। मै तो उनको सच्चिदानन्दघन ब्रह्म, पूर्ण पुरुषोत्तम मानता हूँ। स्वय आदिशकराचार्यने श्रीकृष्णको अपने 'प्रवोधसुधाकर'मे **'सच्चिन्मयो नीलिमा'** कहा है।

"भगवान् श्रीकृष्णका जो ज्ञान है, वही पूर्ण तत्त्वज्ञान है। उसे ही समग्र 'ब्रह्मज्ञान' कहते हैं। केवल निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान उससे कुछ नीचे उतरकर है क्योंकि उसमें सगुण ब्रह्मका ज्ञान शेष रह जाता है। वह पूर्ण तत्त्वज्ञान भक्तिसे ही होता है—**'भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।'** जो लोग श्रीकृष्णको मायोपाधिक, प्रतीतिमात्र, सत्ताशून्य मानते हैं, उनके ज्ञानको तो मैं ज्ञान मानता ही नहीं। वह तो ज्ञानाभिमान है, अज्ञान है, वास्तविक ज्ञान नहीं है। श्रीमद्भागवतमें मायावाद नहीं है।

"ब्रह्मज्ञान होनेपर सभी ब्रह्मज्ञानियोंको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होगी ही, यह नियम नहीं है। जिसके ऊपर भगवान् या भगवत्प्रेमी किसी संतकी कृपा होगी, उसीको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होगी, अन्यथा नहीं। ब्रह्मज्ञान होनेपर भी देवर्षि नारद, शुकदेवको भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हुई, परंतु याज्ञवल्क्यको नहीं हुई। यदि प्रेम चाहिये तो भक्ति करें, ज्ञान चाहिये तो भी भक्ति करें। केवल भक्तिसे ही प्रेम, ज्ञान, धाम आदि सबकी प्राप्ति हो जायगी। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (गीता १०। ११)

"भक्तके लिये अद्वैत-ज्ञानके साधनकी कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन, वसुदेव, गोपियों तथा उद्धव आदिको जो ज्ञान दिया था, वह ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञान नहीं, भगवत्तत्त्वका ज्ञान है, जिसे समग्र ब्रह्मका ज्ञान कहते हैं। भगवान् श्रीरामने महाराज दशरथको भगवत्तत्त्वका ज्ञान कराया था। इसका स्पष्ट प्रमाण यही है कि सभी भक्तोंको अन्तमें भगवान्‌की प्रेम-सेवा मिली, केवल मोक्ष नहीं हुआ। यदि ब्रह्मात्मैक्य-ज्ञानका उपदेश किया होता तो उन्हें कैवल्य-मुक्ति होनी चाहिये थी, पर हुई नहीं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ सामान्य जीवोंके लिये हैं। मोक्षसंन्यासी प्रेमियोंके लिये 'प्रेम' पञ्चम पुरुषार्थ है।"

श्रीभाईजीके शब्द ज्यों-के-त्यों मैंने नोट नहीं किये थे, जितना और जैसा मैं स्मरण रख सका, उतना और वैसा ही लिखा है।

भाईजीमें और कोई सिद्धि थी या नहीं, इसका मुझे पता नहीं, परंतु उन्हें सम्पूर्ण सिद्धियों-की जननी भगवद्भक्तिरूपा महासिद्धि प्राप्त थी—ऐसा मेरा विश्वास है।

●

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई।
अवरन-बरन न गनिय रंक-धनि, बिमल बास निज सोई॥
बाम्हन-छत्री, बैस-सूद्र, सब भगत समान न कोई।
धन वह गाँव, ठाँव, अस्थाना, ह्वै पुनीत सँग लोई॥
होत पुनीत जपैं सतनामा, आपु तरैं तारैं कुल दोई।
जैसे पुरइन रह जल भीतर, कह कबीर जग में जन सोई॥

—संत कबीर

●

आदर्श शिक्षक

ठा० श्रीगंगासिंहजी

परमपूज्य श्रीभाईजीसे मेरा सम्वन्ध सन् १९२८ ई०मे हुआ। उनके स्वभाव, गुण, एव अत्यन्त आत्मीयता और प्यारभरे व्यवहारसे वह उत्तरोत्तर घनिष्ठ होता गया। उनके साथकी अनेको सुखद एवं प्रेरणाप्रद स्मृतियाँ है।

कुछ वर्ष पहलेकी बात है कि पूज्य भाईजी अपनी मौजसे लेटे हुए थे। मै उनके विल्कुल समीप बैठा हुआ था। मैंने उनके शरीरपर एक तिनका पडा हुआ देखा तो उसे उठाकर फेक दिया। उन्होने पूछा—'क्या है?' मैंने कहा—'कचरा था।' इसपर वे बोले—'शरीर भी कचरा है, कचरेपरसे कचरेको उठाकर क्या फेकना?' उनके इस कथनसे मुझे पता चला कि वे शरीरके प्रति कितने उदासीन थे।

श्रीभाईजी छोटे-से-छोटे काम करनेमे भी संकोचका अनुभव नही करते थे, वल्कि उस कार्यको उत्साहपूर्वक करके एक आदर्श स्थापित कर देते थे। लगभग १२ वर्ष पूर्व मै 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागमे ही काम करता था। हमलोग कुएँपर स्नान किया करते थे। कुआँ आफिसके समीप था। आफिस जाते समय पूज्य श्रीभाईजी जान-बूझकर उधरसे नही निकलते थे—इसलिये कि लोगोको सकोच होगा, इनके स्वच्छन्द स्नानमे वाधा आयेगी। पर एक दिन जव और लोग नही थे, मै अकेला ही था, वे कुएँके समीप चले आये। उन्होने देखा कि स्नान करनेवाले सज्जनोने दातुन करके दातुनोको जिस डिब्बेमे डालना चाहिये, उसमे न डालकर इधर-उधर फेक दिया है। इस प्रकार यत्र-तत्र पडे दातुनोसे गंदगी फैल रही थी। उन्हे यह अच्छा नही लगा और वे अपने हाथसे दातुन उठा-उठाकर उस डिब्बेमे डालने लगे। मैंने कहा—'भाईजी, आप यंह क्या कर रहे है? आप रहने दीजिये' और मै भी दातुन उठा-उठाकर डिब्बेमे डालने लगा। पर श्रीभाईजी इस कार्यसे विरत नही हुए और वे दातुन तवतक उठाकर डिब्बेमे डालते रहे, जवतक दातुन समाप्त न हो गये। पीछे लोगोको श्रीभाईजीकी इस चेष्टाका पता चला और सव यथास्थान डिब्बेमे ही दातुन डालने लगे। यह था उनका किसीको अपने कर्तव्यका बोध करानेका तरीका। उन्हे जो कहना था, वह उन्होने वाणीसे नही, क्रियासे कहा।

श्रीभाईजी एक उच्चकोटिके भगवत्प्राप्त महापुरुष थे। उनके चरण-स्पर्शसे एक विलक्षण अनुभूति होती थी। मै तो केवल इतना ही जानता हूँ कि भगवान्की कृपासे मुझे परमपूज्य श्रीभाईजी मिले और मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी कृपासे मुझे भगवान् भी मिल जायँगे।

●

परम उदारमना महामानव—श्रीभाईजी

श्रीरामसूरत त्रिपाठी

परमादरणीय श्रीभाईजी अपने उदारचरितके लिये विख्यात थे। सहृदयता, सदाशयता एव परदु खकातरताकी वे साकार मूर्ति थे। उनका परिवार कुछ इने-गिने अत्यन्त निकटके लोगोका समूहमात्र नही था, अपितु उनके विशाल परिवारमे वे सभी लोग सम्मिलित थे, जिनसे कभी किसी अवसरपर भी श्रीभाईजीका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सम्पर्क हो जाता था। श्रीभाईजीका द्वार सभीके लिये समानरूपसे खुला रहता था। अतिथिगण आ रहे है—सख्याकी क्या चिन्ता। सभीके भोजन-निवासकी सम्यक् एव सतोषजनक व्यवस्था श्रीभाईजीकी ओरसे पहलेसे ही प्रस्तुत थी। याचकगण श्रीभाईजीकी गुहार लगाते आते—कोई भी रिक्तहस्त नही लौटता था। कभी विधवा असहाय माँ-बहनोकी सहायता श्रीभाईजी करते तो कभी कन्याओके विवाह सम्पन्न करानेका दायित्व वहन करते। साधु-महात्मागणका श्रीभाईजी विनम्रताके साथ हार्दिक स्वागत, सत्कार एव विदाई करते। गोरखपुर विश्वविद्यालयके हिंदी-विभागाध्यक्ष डाक्टर श्रीगोपीनाथजी तिवारीने एक प्रसङ्गमे बताया था कि श्रीभाईजीके पास उनके द्वारा गत २५ वर्षोमे प्रेषित तीन-चार सौ विद्यार्थियोमेसे कोई भी निराश नही लौटा। यह तो एक व्यक्तिके माध्यमसे आये छात्रोकी सख्या है, श्रीभाईजीके पास न जाने कितने माध्यमोसे तथा स्वतन्त्र भी छात्र आते थे। उनके पास पहुँचनेके लिये किसी माध्यमकी आवश्यकता नही थी।

मुझे सन् १९३४से ही पूज्य श्रीभाईजीका स्नेह एव कल्पवृक्षतुल्य सानिध्य प्राप्त रहा।

सन् १९६५मे मैं एक वर्ष गीतावाटिकामे भाईजीके पास रहा। वहाँसे जब मैं प्रस्थान करने लगा, तब श्रीभाईजीने जीवनमे सफलताके लिये चार सूत्र मुझे प्रदान किये थे—

१ पूरी निष्ठा एव ईमानदारीके साथ कर्तव्यका पालन करना।
२ किसीका बुरा करना तो दूर, उसकी कल्पना भी न करना।
३ हर छोटे-बडेके व्यक्तित्वका सम्मान करना।
४ ईश्वरको सदैव स्मरण रखना और एक ईश्वरपर ही भरोसा रखना।

इन सूत्रोमे केवल एकका पल्ला पकड लेनेसे जीवन सफल हो जाय। श्रीभाईजी इन सूत्रोका विश्लेषण करते हुए कहा करते थे—'एक व्यक्ति दूसरेका बुरा करनेके लिये तब सनद्ध होता है, जब उसके अपने मन एव शरीर द्वेष एव ईर्ष्याग्निसे दहक रहे होते है। अग्नि पहले उसे ही जलाती है जहाँ वह होती है। अतएव पहले बुरा करनेकी कल्पना करनेवाला ही उसका शिकार होता है जलता है, भस्म होता है। अत बुरा पहले बुरा करनेवालेका होगा। जिसे वह शिकार बनाता है, उसका बुरा होगा कि नही—यह उसके प्रारब्धके अधीन है। उनका कहना था कि 'हर व्यक्तिका एक व्यक्तित्व होता है, प्रत्येकमे सम्मानप्राप्तिकी कम-बेश भावना सुषुप्त अथवा जाग्रत् अवस्थामे वर्तमान रहती है। कभी भी किसीके व्यक्तित्व एव सम्मान-भावनाको

आघात वाणी अथवा कर्मसे नही पहुँचाना चाहिये। वाणीका आघात व्यक्तिको मर्माहत कर देता है और वह सदाके लिये आपका शत्रु बन सकता है।'

श्रीभाईजी कोरे उपदेशक नही थे, अपितु सिद्धान्तोको स्वाचरणमे चरितार्थ करते थे। अपने सम्पर्कके ३५ वर्षोमे मैने देखा है कि श्रीभाईजीने कभी अपने सहकर्मियो अथवा साधारण निम्नस्तरके कर्मचारीके प्रति भी रोष, अथवा कठोर शब्दका प्रयोग, नही किया। कोई कभी उनके यहाँसे तिरस्कृत अथवा बहिष्कृत नही हुआ। ऐसा था, सभीके प्रति मानव-प्रेमसे लबालब भरा उनका नवनीत-सदृश हृदय।

रात्रिके शयन-कालके अतिरिक्त श्रीभाईजीके कमरेकी ट्यूबलाइट बहुधा जलती रहती थी, जिसके प्रकाशमे बैठा एक महामानव 'कल्याण'के माध्यमसे मानवकी कल्याण-साधनामे रत रहता था। प्रकाश कमरेमे अब भी है, परंतु श्रीभाईजी कुटियाके पास भाव-समाधिमे है और उनके कक्षसे निरन्तर गूँज आती है—**'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥'**

हे महामानव, हमे आशीर्वाद दे कि हम आपके उपदेशोको जीवनमे चरितार्थ करनेकी क्षमता प्राप्त करे।

●

श्रीराधामाधवके अनन्य भक्त

स्वामी श्रीरँगीलीशरण देवाचार्य

श्रीमान् भाईजी भगवान् श्रीराधामाधव प्रभुके अनन्य रसनिष्ठ रसिक भक्त थे। आपने अपनी ललित लेखनी और जन-कल्याणी वाणीसे भारतभूमिपर भगवान्की भक्ति-भावनाकी भागीरथी बहाकर असख्य नर-नारियोको भगवान्के अभिमुख किया।

मेरे गुरुदेव मान्यवर बाबा श्रीबिहारीदासजी महाराज श्रीभाईजीसे चिरकालसे परिचित थे। वे श्रीभाईजीके भावुक हृदयकी बडी प्रशसा किया करते थे, परतु मुझे श्रीभाईजीके दर्शन करनेका सौभाग्य १५ वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ। बाबा श्रीराघवदासजीने अपने आश्रम बरहज (देवरिया) मे एक सत-सम्मेलनका आयोजन किया था। मैं भी उसमे सम्मिलित हुआ था। श्रीभाईजी भी उसमे पधारे थे। वहाँ उनसे परिचय हुआ। सम्मेलनसे मै श्रीभाईजीके निवास-स्थान, गीता-वाटिका आ गया। वहाँ मै पद्रह दिन रहा। श्रीभाईजीने मुझे भागवतकी कथा सुनानेको कहा। १३ दिनतक कथा हुई। श्रीभाईजी कथाके आरम्भमे स्वय अपने हाथसे पूजन करते और आद्यन्त उपस्थित रहकर कथा-श्रवण करते थे। इतने बड़े विद्वान् एवं अनुभवी भक्त होनेपर भी वे मेरी कथाको बडे मनोयोगसे सुनते थे। यही उनकी महानता थी, जो सबको मोहित करती थी।

उन्होने श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-सम्बन्धी लगभग एक हजार पदोका प्रणयन किया है, जो भावजगत् एव साहित्यकी अनमोल निधि है।

●

श्रीभाईजीकी उदार-भावना

श्रीहरिशंकरजी गोहिल

पूज्य श्रीभाईजी उदार-भावनावाले महामानव थे। हिंदूधर्मके महान् उन्नायक होते हुए भी अन्य धर्मोंके प्रति उनका कितना सम्मान था, इसका मैंने स्वयं अनुभव किया है। एक बार मैं पूज्य भाईजीके दर्शनके लिये गया। व्यस्त होते हुए भी समाचार मिलते ही उन्होंने मुझे बुलाया। मैं यह देखकर स्तब्ध रह गया कि जिस स्थानपर बैठकर पूज्य भाईजी प्रतिदिन कार्य किया करते थे, वहाँ ईसामसीहका चित्र लगा हुआ है। मनमे कौतूहल हुआ। मैंने विनम्रतासे भाईजीसे पूछा—'आपने ईसामसीहके चित्रको इतना ऊँचा स्थान क्यो दे रखा है?' भाईजीने कहा—"ईसामसीह महान् संत थे। उन्होंने जगत्को प्रेम और सेवाका पाठ पढाया। उनका कहना था कि भगवान्का राज्य बच्चो एवं दरिद्रोके लिये है और हमारे धर्मशास्त्र भी भगवान्को 'दरिद्रनारायण' मानते है। ऐसे महापुरुषके प्रति श्रद्धा कैसे न रखी जाय?"—यह थी भाईजीकी धर्मनिरपेक्षता—राजनीतिक नेताओकी तथाकथित धर्मनिरपेक्षतासे कितनी भिन्न, कितनी ऊँची! श्रीभाईजीके चरणोमे मैं नतमस्तक हो गया। मुझे अशोक महान्का स्मरण हो आया। इतिहासके स्वर्णिम पृष्ठ भाईजीके चरित्रसे गौरवान्वित हो रहे है। कितने महान् थे वे—हिमालयसे भी ऊँचा, सागरसे भी गहरा था उनका व्यक्तित्व एव कृतित्व।

उनकी दानशीलता एवं प्रसिद्धि-पराङ्मुखताकी भी अनन्त गाथाएँ है। पूज्य भाईजी इतने सरल थ कि किसीका भी दुःख देखकर द्रवित हो जाते थे। निःस्वार्थ सेवा एवं सहायता करना उनका स्वभाव था। उनकी महानताकी एक घटना प्रायः स्मरण हो आती है। मैं उन दिनो 'श्रीमारवाडी इंटर कालेज'का प्रधानाचार्य था। भाईजीके दर्शनके लिये गया। वे बाहर ही बैठे हुए थे। पास बैठाकर स्नेहपूर्वक हाल-चाल पूछा। विद्यालयकी चर्चा भी चल पडी। उन दिनो विद्यालयमे आर्थिक कठिनाई थी। विद्यालयकी प्रबन्ध-समितिके पदाधिकारी एवं सदस्य उसके लिये प्रयत्नशील थे। मेरे मुँहसे विद्यालयके आर्थिक संकटकी बात निकल गयी। भाईजीने तुरत कहा—'आप परसो कालेजके चपरासीको भेज दे।' कर्मचारी गया और उन्होंने विद्यालयके नाम पर्याप्त धनका एक चेक भेज दिया तथा साथ ही यह भी लिख भेजा कि 'यह कदापि जाहिर न किया जाय कि यह धन मेरे पाससे आया है। इसे गुप्तदानके रूपमे विद्यालयके हिसाबमे लिखा जाय।' यह थी पूजनीय श्रीभाईजीकी प्रसिद्धि-पराङ्मुखता—दान देकर नाम लिखानेवालोसे कितनी भिन्न! सच्चे कर्मयोगी थे वे।

पूज्य भाईजी इस युगकी महान् विभूति थे। उन्होंने अपने आदर्शोको अपने जीवनमे उतारा था। हे युगपुरुष! आपके पावन-चरणोमे कोटि-कोटि नमन!

●

सेवापरायण श्रीभाईजी

श्रीकृष्णदत्त शर्मा

श्रीभाईजीको मै धर्मके ताऊजी मानता हूँ। मेरे पिताजी लगभग ५० वर्षोसे उनके निकट सम्पर्कमे रहे। श्रीभाईजीने उन्हे सगे छोटे भाईसे भी अधिक माना और जन-सेवाके कार्योमे उनका निस्संकोच सहयोग लेते रहे। श्रीभाईजीका सम्पूर्ण जीवन सेवा-कार्योसे भरा था। कोई उनका क्या वर्णन करे। एक घटनाका उल्लेख करता हूँ। एक बार गोरखपुर जिलेके खड्डा ग्राममे आग लगी। आसपासके कई गॉव जल गये। श्रीभाईजीको पता चला, तुरत मोटर निकलवाकर चल पडे। पिताजीको बुलाया। कहा––'खड्डा चलना है। कम्वल-धोती ले ले, शायद वही रहना पड़े।' वहॉ पहुँचकर अग्निकाण्डसे जले हुए दृश्यको देखकर श्रीभाईजीके नेत्र जलसे पूर्ण हो गये। पिताजीसे कहा––'गोवर्धनजी, आप यही रहे, मै गोरखपुर जाकर प्रवन्ध करता हूँ। आप नाली-दार टीनो, वस्त्र, अनाज आदिसे इनकी सहायता कीजिये। रुपये एक वार यहॉसे किसी व्यापारीसे उधार ले ले, गीताप्रेसके नाम लिखवाकर।'

एसा था उनका हृदय। कहने लगे––'हम पक्के मकानोमे रहते है। इन बेचारोके झोपड़े थे, वे भी जल गये।' करुणा उनमे कूट-कूटकर भरी थी। किसीके कष्टको देखकर वे स्वाभाविक-रूपसे आर्द्र हो जाते थे।

पिताजी कहा करते थे तथा वात भी सत्य थी कि 'भाईजी शक्तिके स्रोत है। वे किसीको कोई कार्य सौपकर उसे करनेकी क्षमता भी प्रदान करते है।' गत वर्षोमे पिताजीका स्वास्थ्य प्राय· ठीक नही रहता था। पर जैसे ही श्रीभाईजी उन्हे बुलाकर कहते––'आप चले जाइये, वहॉ सेवाकार्यमे जाना है', पूज्य पिताजी पूर्ण स्वस्थ होकर जाते। ६४ वर्षकी अवस्थामे भी गॉव-गॉव पैदल चलकर जाते, जव कि घरपर विस्तरसे उठनेतककी क्षमता भी उनमे नही रहती थी। सेवाका सारा काम वडे उत्साहके साथ करते थे। वादमे अनुभव करते थे कि मैने असम्भवको भी सम्भव कर दिया है। यह सेवा-शक्ति उन्हे श्रीभाईजी ही देते थे।

भाईजी पिताजीसे वरावर कहते थे––'सेवा-भाव मनमे होता है, सेवाकी दूकान नही होती।' यह कथन उनके जीवनमे पूर्णरूपसे चरितार्थ हुआ है। जहॉ आवश्यकता देखी, वे सेवाकार्य शुरू कर देते। पासमे रुपया नही रहता तो उधार लेकर कार्य आरम्भ कर देते। वादमे हजारो-हजारो रुपयोकी व्यवस्था अपने-आप हो जाती तथा वडे पैमानेमे अन्न-वस्त्र आदिका वितरण होता। ऐसे सेवापरायण थे श्रीभाईजी।

●

मेरे जीवनको प्रेरणा देनेवाले

श्रीबदरुद्दीन राणपुरी

पूज्य श्रीभाईजीके विषयमे मै क्या लिखूं ? हृदय भीतरसे रो रहा है। एक दिन भी वे भूलते नही। श्रीभाईजी मेरे जीवनको प्रेरणा देनेवाले महापुरुष थे। उनकी प्रेरणासे इस दासने जीवनकी सफलताका मार्ग प्राप्त किया है। उनके जीवनका सूत्र था—'सेवा'। किसी भी प्रकारसे सेवा करो। वे जन-सेवाको प्रभु-सेवा मानते थे—प्राणिमात्रमे परमात्मा विराज रहा है। इस प्रकार प्रभु-सेवाको उन्होने खूव महत्त्व प्रदान किया। एक जलती हुई मोमवत्ती अन्धकारका नाश कर सकती है तथा वहुतेरी मोमवत्तियोको जलाकर प्रकाशित कर सकती है। इससे वह अपनी कुछ हानि नही करती, वल्कि प्रकारान्तरसे अनेकगुना वृद्धि करती है। इस प्रकार इस महापुरुषने अनेक दुखी तथा निरुत्साही मनुष्योको जीवन वनानेकी प्रेरणा प्रदान की है। हमारे यहाँ राजुलामे 'कल्याण-मण्डल' नामक सस्था चल रही है। उसके द्वारा अनेक दीन-दुखियोको अन्न, कपडा, दवा आदि प्रदान किया जाता है। इस सस्थाको स्थापित करनेकी दिव्य प्रेरणा उनसे ही प्राप्त हुई थी।

अपने दिव्य सदेशको लोगोमे पहुँचानेके लिये 'कल्याण' मासिक पत्रके द्वारा उन्होने अथक परिश्रम किया। अपना नाम प्रकाशित हो या अपना यश फैले—इसकी इच्छा इस महापुरुपको कदापि न थी। गीताप्रेसके द्वारा उन्होने लाखो लोगोके पास पानीके मूल्यमे अनेक धार्मिक तथा जीवनोपयोगी पुस्तके पहुँचायी है। यह उनके जीवनका एक चमत्कार है। इस प्रकार घर-घर पानीके भाव पुस्तकोको पहुँचानेके फलस्वरूप एक जलती दीपवत्तीके द्वारा मानो अनेक वत्तियोको जलाकर उन्होने समूचे भारतमे दिव्य प्रकाश फैलाया है।

भाईजी सतोके सेवक, सत्साहित्यके स्रष्टा, तत्त्वचिन्तक और प्रभुके प्यारे भक्त थे। वे परिवार-सहित होनेके कारण गृहस्थ कहे जा सकते है। उन्होने अन्तिम श्वासतक अपने सारे जीवनको प्रभुके कार्यमे लगाया। प्रभुके कार्यके लिये ही वे जन्मे, प्रभुके कार्यके लिये जिये और प्रभुके तेजमे समा गये। जीवनमे सहनशीलताकी साधना करके वे सहनशील महापुरुप वन गये थे।

जैसे गुलावका फूल अपने ससर्गमे आनेवाले सज्जन या दुर्जनको विना मूल्य, विना भेद-भावके सुगन्ध प्रदान करता है, उसी प्रकार इस महापुरुपने अपना सारा सुवास जगत्को प्रदान करके सदाके लिये प्रस्थान किया है। इन आध्यात्मिक महापुरुपके रिक्त स्थानकी पूर्ति कदाचित् ही जगत्मे हो सके। हम सव लोगोको उनका सहवासी होनेके नाते उनके पवित्र जीवनका अनुसरण करना चाहिये और उनके जीवनसे प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

●

स्नेह और सौजन्यकी मूर्त्ति श्रीभाईजी

पं० श्रीमङ्गलजी उद्धवजी शास्त्री

मेरा और श्रीभाईजीका परिचय प्राय ३५ वर्ष पुराना था । इतनी लबी अवधिमे जव-जव उनसे भेट हुई है, तब-तव वे मुझे बडे भाईके समान अनुभव हुए । उन्होने मुझे उसी रूपमे प्यार दिया ।

सौराष्ट्रके एक देहातका निवासी होते हुए भी मै बाल्यकालसे 'कल्याण'का ग्राहक और प्रेमी था । एक वार श्रीभाईजीने मुझे पत्रमे लिखा था—'आप जूनागढ प्रदेशके निवासी है और हिदीमे लिख सकते है । आप सौराष्ट्रके भक्तप्रवर नरसी मेहताजीका एक प्रामाणिक जीवन वार्ताके रूपमे लिख भेजिये । अगर योग्य लगा तो वह गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित कर दिया जायगा ।

पत्रको पढकर मै अधिक प्रोत्साहित हुआ । मैने नरसी मेहतापर पुस्तक लिखना आरम्भ किया । हिदीमे पुस्तक लिखनेका मेरा यह प्रथम प्रयास था । परतु श्रीभाईजीके उत्साह-प्रदानसे ही मै 'भक्त नरसिह मेहता' पुस्तक लिखनेमे सफल हुआ । पुस्तक तैयार होनेपर मैने उसे श्रीभाईजीके पास भेज दिया । प्रसन्नताकी वात है कि श्रीभाईजीने उसे सुधारकर गीताप्रेससे प्रकाशित कर दिया । पुस्तकके मुद्रणके पूर्व मुझसे पूछा गया कि 'आप यह पुस्तक किस शर्तपर गीताप्रेसको देना चाहते है ?'

मेरे मनमे गीताप्रेसके प्रति वडी श्रद्धा थी । मैने लिख दिया—'यह पुस्तक मै विना किसी शर्तके दे रहा हूँ ।' मेरे प्रत्युत्तरसे भाईजीको अत्यधिक प्रसन्नता हुई । उसी समयसे श्रीभाईजीको मै अपना आध्यात्मिक प्रेरक मानता हूँ ।

× × ×

सन् १९४९-५०का समय था, जव श्रीभाईजीके प्रथम दर्शन मुझे हुए । गीतावाटिका मुझे तपोवन-सी प्रतीत हुई । श्रीभाईजीने स्नेहसे गले लगा लिया और मेरा हाथ पकडकर चारपाईपर बैठा लिया । 'कल्याण'के विशेषाङ्क 'हिदू-सस्कृति-अङ्क'की पूर्व तैयारियाँ हो रही थी । टाइटलके ऊपरवाले चित्रमे श्रीरामसभाका दृश्य भी अङ्कित करना था । सम्पादकीय विभागके सदस्य उस चित्रके सम्वन्धमे विचार-विमर्श कर रहे थे । एक सदस्यने आकर श्रीभाईजीसे कहा—'वाल्मीकि-रामायणमे कुत्तेके न्याय माँगनेका प्रसङ्ग नही मिल रहा है । अव तो उसे किसी अन्य रामायणमे देखना होगा .।'

'वह प्रसङ्ग मैने देखा है ।' मै बीचमे ही बोल पडा । 'मुझे रामायण दीजिये, अभी निकाल देता हूँ ।'

उन महाशयने मुझे रामायणकी पुस्तक लाकर दे दी । ध्यानसे देखनेपर भी उक्त प्रसङ्ग उस प्रतिमे नही मिला । महाशय वोले—'हमलोग दो-तीन वार देख चुके, वह प्रसङ्ग है तो जाना-माना, पर वाल्मीकि-रामायणमे उसका उल्लेख नही है ।'

'तो फिर जबतक प्रमाण न मिले, हम इस प्रसङ्गवाले चित्रको टाइटलके ऊपर कैसे दे सकते है ?'—भाईजी बोले।

श्रीभाईजीके ये शब्द सुनकर मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार 'कल्याण'मे प्रकाशित होनेवाली चीजोके लिये शास्त्रका आधार लिया जाता है। 'कल्याण'की प्रतिष्ठाका यही तो प्रधान हेतु है।

'मैने तो उसे वाल्मीकि-रामायणमे ही देखा है, किंतु मेरे पास निर्णयसागर प्रेसकी प्रति है।'—मैने कहा।

निर्णयसागरकी प्रति देखी गयी और वह प्रसङ्ग मिल गया। सभी प्रसन्न हुए। श्रीभाईजीने प्रसन्नतामे भरकर मुझे गलेसे लगा लिया।

उसके वाद दो-एक वार झूसीके महोत्सवमे भी हमलोग मिले। उनका सदा-प्रसन्न स्वभाव सभीको आकर्पित कर लेता था। झूसीमे एक दिन एकादशीके फलाहारमे कोई अच्छी नमकीन वस्तु वनी हुई थी। परतु वह कुछ कडी हो गयी थी, उसे चवानेमे थोडा कष्ट मालूम होता था। श्रीभाईजीने पूज्य ब्रह्मचारीजीसे कहा—'आपकी यह वस्तु देखनेको लिये तो अच्छी है, मगर चखनेके लिये नही है।' सुनकर सभी लोग हॅस पडे।

हमारा अन्तिम और अविस्मरणीय मिलन २७ अप्रैल १९६८को प्रात १० वजे हुआ। मै हरिद्वारकी यात्रा करके गीताभवन पहुँचा। वहॉके व्यवस्थापकसे हमने कहा—'हम श्रीभाईजीके दर्शन करनेके लिये आये है और कल हरिद्वार वापस लौट जायॅगे। अत आज ही श्रीभाईजीसे मिलना है।'

'वे किसीसे नही मिलते', व्यवस्थापक महोदयने कहा। 'उनकी तबीयत अच्छी नही है।'

'यह तो मुझे मालूम है', मैने कहा। 'मगर यहॉतक आनेपर भी एक छोटा भाई वडे भाईसे विना मिले कैसे जा सकता है। आप कृपया उन्हे मेरा स्मरण दिला दीजिये, वे चाहेंगे तभी मै मिलूँगा, अन्यथा मिलनेका आग्रह छोड दूँगा।'

श्रीभाईजीको मेरे आनेकी सूचना दी गयी और स्वास्थ्य अच्छा न होनेपर भी वे मिले—गले लगाकर मिले। आश्चर्य तो तव हुआ, जव वे हमलोगोके साथ शुद्ध गुजराती भाषामे वार्तालाप करने लगे। मेरी धर्मपत्नी और वालक भी वार्तालापको समझ सके, इस आशयसे श्रीभाईजी गुजराती वोले। मुझे इसके पहले मालूम ही नही था कि भाईजी इतनी शुद्ध गुजराती वोल सकते है। प्राय आधे घटेतक बैठकर उठते हुए आशीर्वादके शव्दोमे मैने कहा—'आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जाइये।'

'अव तो शेष जीवन श्रीभगवान्के चरणोमे ही वीते, यही आशीर्वाद दीजिये।' वे वोल उठे। 'अव स्वास्थ्यका क्या करना है।'

'वही तो स्वस्थताका लक्षण है।' मैने **'स्वे आत्मनि स्थितः'** का अर्थ घटाकर कहा।

भाईजीका प्रत्युत्तर नही मिला, मगर उनके नेत्रोसे अश्रुधारा वहती हुई मैने स्पष्ट देखी। मेरे विदा होनेके समय भी वे उठ खडे होनेकी चेप्टा कर रहे थे, मगर मैने उन्हे रोक दिया और

कहा—‘वस, आप खडे होनेकी तकलीफ न कीजिये।’ वे हाथमे रखी हुई मालाके सहित हाथ जोडकर बोले—‘आवजो’ (पधारियेगा)।

आज हमारे बीच भाईजी नही रहे—भौतिक दृष्टिसे नही रहे, मगर आध्यात्मिक दृष्टिसे देखा जाय तो ‘कल्याण’मे लिखे हुए उनके लेखोमे, उनके अनेकानेक व्याख्यानोमे और उनके अनेक ग्रन्थोमे हमारे ‘भाईजी’ सदैव विद्यमान है और विद्यमान रहेगे। उन्होंने अपने एक वाक्य-द्वारा हमलोगोके लिये कार्यक्षेत्र खोल दिया—‘अगर हमारे हृदयमे धर्म रहेगा तो सव कुछ रहेगा; अगर हमारे हृदयसे धर्म उठ गया तो सव कुछ उठ जायगा।’

●

एक अलौकिक अनुभव

वैद्यराज पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी महाराज

पूज्य श्रीभाईजी हम सवको अनाथ वनाकर स्वयं श्रीराधामाधवकी नित्यलीलामे लीन हो गये। श्रीभाईजीकी जीवनज्योति विलीन होनेके साथ ही मानो धर्मज्योति विलीन हो रही है। मनसा-वाचा-कर्मणा सवके हृदय एवं प्राणोको सुख पहुँचानेवाले श्रीभाईजी आज हमारे मध्यसे लुप्त हो गये। सवको ऐसा लग रहा है मानो उनका सर्वस्व लुट गया।

श्रीभाईजीके सम्वन्धमे घटित कुछ अलौकिक घटनाएँ मेरी जानकारीमे है। उन घटनाओमेसे केवल एक घटनाका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ—

सन् १९६५को आषाढ मासमे मेरी ज्येष्ठ पुत्री किशोरीवाईके पित्ताश्मरीका ऑपरेशन डा० श्रीताराचन्दद्वारा नयी दिल्लीमे स्थित उनके सैनीटोरियममे प्रात.काल हुआ। ऑपरेशनके समय एक परम सम्मान्या माताजी भी वहाँ सैनीटोरियममे उपस्थित थी। उन्हे अनुभव हुआ कि वही पार्श्वमे पूज्य भाईजी खडे हुए आशीर्वाद दे रहे है। ऑपरेशन लगभग डेढ़ घटेतक हुआ। इतने समयतक उन्हे वहाँ भाईजीके दर्शन होते रहे, यद्यपि पूज्य भाईजी उस समय गीतावाटिका, गोरखपुरमे विराज रहे थे। ऑपरेशनके वाद चेत होते ही किशोरीवाईने कहा—‘ऑपरेशनके समय पूज्य भाईजी मेरे सामने खड़े थे और मुझे देख रहे थे। कितु अव वे नही दिखायी दे रहे है।’

भाईजीके अन्य कृपापात्रोके मुखसे भी इस प्रकारकी स्वानुभूत अलौकिक घटनाओको सुननेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। पर श्रीभाईजी इस प्रकारकी घटनाओको कभी महत्त्व नही देते थे। वास्तवमे श्रीभाईजी-जैसे सतके लिये ये घटनाएँ नगण्य है।

●

श्रीभाईजीका अनुपम स्नेह

श्रीनंदलाल चूड़ीवाला

श्रीभाईजीका स्मरणमात्र उनकी आह्लादकारी स्मृतियाँ जगा देता है, उनसे प्राण पुलकित हो उठते हैं। एक प्रसङ्ग स्मरण हो आया है—श्रीभाईजी सपरिवार कलकत्ता पधारे थे। मैं दर्शनार्थ उनके आवासपर गया हुआ था। मैं कुछ गम्भीर मुद्रामें खडा था कि अचानक श्रीभाईजी अपने कमरेसे बाहर आये। मुझे देखते ही वे वात्सल्यभरी वाणीमें बोले—'हँसतो रया कर, सुस्त मत रया कर।'—उनके इन शब्दोंको सुनते ही मेरे हृदयका सारा विषाद निमिषमात्रमें लुप्त हो गया। एक अपूर्व आनन्दका स्रोत जैसे इन शब्दोंके साथ ही मेरे हृदयमें फूट पडा। मैं इसे सदैव उनका अमोघ वरदान मानता हूँ।

श्रीभाईजी-जैसे महामानवके सान्निध्यसे बढकर और क्या सौभाग्य हो सकता है। उनकी आत्मीयता, स्नेह और वात्सल्यसे बढकर मेरे लिये और भी कोई वरदान हो सकता है—ऐसा मैं नहीं मानता। जब-जब हमलोग गीतावाटिकासे वापस आते, वात्सल्यपूरित विदाईके वे दृश्य अपूर्व होते थे। अपने ही हाथोंसे फल छीलकर हँसते हुए वे हमें प्रदान करते थे। स्नेहका ऐसा अक्षय स्रोत अलौकिक ही कहा जा सकता है।

विधि-विधानवश जब कभी दुश्चिन्ताओंकी दुर्निवार बाढ आयी, विषाद घनीभूत हुआ, मैंने सदैव उनसे मार्ग-दर्शनकी याचना की और अपने अत्यन्त व्यस्त समयमेंसे कुछ क्षण निकालकर उन्होंने पत्रद्वारा मुझे आलोकित किया। उनकी अहैतुकी कृपासे इस प्रकारके अनेक पत्र प्राप्त करनेका सौभाग्य मुझे मिला है। इसी प्रकारके एक पत्रका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

"भैया, संसार सचमुच दुःखमय, अनित्य और नित्य अशान्तिसे पूर्ण है। हमलोग मोहवश इस संसारसे नित्य सुख-शान्तिकी आशा करते हैं। यही हमारा मोह है और इसी कारण हमें नित्य नयी अशान्ति तथा दुःख भोगना पडता है। मैं अपने मनकी स्थिति क्या बताऊँ? मुझे इधर संसारकी असत्ता, अनित्यता आदि देखकर वैराग्य-सा हो रहा है। एकमात्र भगवान्के चिन्तनके सिवा और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। यहाँ तो जो होना है, वह होगा ही। संसारमें रोज ही लाखों जनमते हैं, लाखों मरते हैं। बडे-छोटे परिवर्त्तन प्रतिक्षण होते रहते हैं—यही प्रकृतिके संसारका स्वरूप है। इसमेंसे अपनेको निकालकर नित्य भगवान्में स्थित रहना चाहिये। नित्य भगवान्में स्थिति ही असली 'स्वस्थता' है। यहाँका दुःख कभी मिट नहीं सकता, क्योंकि यह है ही 'दुःखालय' और 'दुःखयोनि' (दुःखोंका भंडार और दुःखोंका खेत)। अतएव जबतक यहाँ मनुष्य अनुकूलताकी आशा करता है—सुखकी आशा करता है, तबतक नये-नये दुःख आते रहते हैं। यही दुःखका कारण है। इसी दुःखसे मैं, तुम तथा सभी दुःखी हैं। यह दुःख संसारका कोई प्राणी, पदार्थ, परिस्थिति दूर कर दे—यह असम्भव है। **'आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्'।**"

श्रीभाईजीके ऋषि-तुल्य व्यक्तित्वके निकट आते ही असत्का सारा कलुष-कल्मष अपने-आप धुल जाता था, एक अनिर्वचनीय आनन्दमें मन-प्राण मग्न हो जाते थे।

●

आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्रान्तिके अग्रदूत पोद्दारजी

श्रीलक्ष्मीशंकरजी व्यास

श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीय पत्रकारिताके गौरव-इतिहासमे चिर-स्मरणीय रहेंगे। स्मरणीय ही नही, पत्रकारिताके उच्चादर्शो तथा उसके गौरवकी स्थापना करनेवालोमे उनका प्रमुख स्थान होगा। देशकी वर्तमान पीढीकी भॉति ही आप आनेवाली पीढियोके लिये भी भारतकी आध्यात्मिकताके आलोक-स्तम्भ वने रहेंगे, इसमे सदेह नही। आपका व्यक्तित्व जहॉ करुणा और विनम्रताका सतत स्रोत रहा है, वही आपका कर्त्तृत्व भारतीय धर्म एवं सस्कृतिका प्रेरणाकेन्द्र रहा है। भारतीय आध्यात्मिकता और राष्ट्रीयताकी भावनासे ओत-प्रोत हो प्राय पचास वर्षोतक आपने लोकजीवनके उन्नयनका महान् कार्य किया। आपने सन् १९२६ ई०से लगातार ४५ वर्षोतक 'कल्याण'का सम्पादन किया तथा उसके माध्यमसे भारतको आध्यात्मिकताका सहज वोध कराया और राष्ट्रको सास्कृतिक सजीवनी दी। आध्यात्मिकता और राष्ट्रीयताका मणिकाञ्चनयोग आदरणीय पोद्दारजीके महान् व्यक्तित्वमे अलौकिकरूपसे मूर्तिमान् हुआ था।

श्रीपोद्दारजीके सम्पादकत्वमे 'कल्याण'का प्रकाशन भारतीय पत्रकारिताके इतिहासमे एक नवीन अध्यायका श्रीगणेश करनेवाला है। महान् सम्पादकके साथ ही श्रद्धेय पोद्दारजी महान् लेखक भी थे। आपने भारतीय जनमानसके नैतिक उत्थानके लिये ४ दर्जनसे अधिक पुस्तकोका प्रणयन किया है और गीताप्रेससे प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्यका सम्पादन किया है। स्त्रियो तथा विशेषत वच्चोके चरित्र-निर्माण एव नैतिक उत्थानके लिये आपने जो साहित्य लिखा और लिखवाया है, उसका भी विशेष महत्त्व है। नयी पीढीके वालक-वालिकाओमे सास्कृतिक सस्कार उत्पन्न करनेमे आपका यह साहित्य आप ही अपना उदाहरण है। 'कल्याण'के माध्यमसे यह साहित्य आध्यात्मिकताके सदर्भमे तो आया ही है, इससे राष्ट्रभाषा हिदीका भी देश-विदेशमे अभूतपूर्व प्रचार हुआ है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी तथा राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डनने आपकी इस महान् सेवाकी सराहना की थी। राष्ट्रभाषा हिदीके माध्यमसे आपने देशको सास्कृतिक सूत्रमे एकवद्ध करनेमे महान् सफलता प्राप्त की है। मासिक 'कल्याण'की प्रसार-सख्या एक लाख साठ हजारसे अधिक है। देशमे ही नही, विदेशोमे भी इसकी हजारो प्रतियॉ जाती है। 'कल्याण'के रामायणाङ्क, शिवाङ्क, नारी-अङ्क, सत्कथा-अङ्क, हिदू-सस्कृति-अङ्क आदि अपने-अपने विषयके विश्वकोष-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सन् १९२७मे 'कल्याण'के दूसरे वर्षका विशेषाङ्क 'भगवन्नामाङ्क' प्रकाशित हुआ। इस विशेषाङ्कके लिये पोद्दारजीने महात्मा गाधीसे रामनामकी महिमापर विशेष लेख प्राप्त किया। गाधीजीने इसमे लिखा कि 'जहॉ बुद्धि समाप्त हो जाती है, वहॉ रामनाम आता है।' नाम-जपके महत्त्वके सम्वन्धमे आपने गाधीजीसे वार्त्ता कर जो लेख प्राप्त किया, उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। नाम-जपकी अलौकिक अनुभूति-प्रतीति करनेवाले पोद्दारजीका कथन है—'मैं कह सकता हूँ कि नाम-जप और प्रभु-कृपाके सिवा मेरे जीवनमे और कुछ भी अवलम्व नही है।' भारत, भारती और भारतीयताके गौरव-स्थापक पोद्दारजीकी पावन-स्मृतिको शत-शत अभिनन्दन।

श्रीभाईजीकी अनोखी व्यावहारिक आत्मीयता

डा० श्रीमाधोदासजी व्यास

नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एक ऐसे महापुरुष थे, जिनके निजी और सार्वजनिक जीवनमे एकरसता थी। दोनोमे किसी प्रकारका वैषम्य नही था, दुराव-छिपावकी तो कल्पना भी सम्भव नही थी। उनके लिये सारा ससार श्रीराधाकृष्णमय था। उनका जीवन एक खुली पुस्तक था। इसी कारण उनके भाषणो, लेखो, वार्तालाप एव पत्र-व्यवहारसे भवताप-दग्ध प्राणियोको सच्ची सान्त्वना, शान्ति, सतोष एव आत्मिक आनन्दकी उपलब्धि होती थी।

चूरु (राजस्थान) के ऋषिकुलमे अध्यापको और कर्मचारियोकी न तो वेतन-शृङ्खला है और न निश्चित वार्षिक वृद्धिका प्राविधान है। सबको घरेलू आवश्यकताके अनुसार वेतन दिया जाता है और समय-समयपर इसी आवश्यकतानुसार वार्षिक वृद्धि भी की जाती है। वेतन-शृङ्खला और वार्षिकवृद्धिके स्थानपर विवाह-शादी, गमी तथा अन्य अवसरोपर होनेवाले खर्चोकी पूर्तिके लिये कर्मचारियो और अध्यापक-वर्गको एक मुश्त रकम दी जाती है। व्यवस्थासे सम्बन्ध होनेके कारण यह रकम श्रीभाईजी अपनी ओरसे देते थे।

भाईजी न केवल कर्मचारियोसे, बल्कि इनके परिवारवालोसे भी घनिष्ठ सम्पर्क रखते थे और इसके द्वारा उनके परिवारकी आर्थिक कठिनाइयोसे अपने आपको अवगत रखते थे। जब कभी परिवारवाले भाईजीको आर्थिक कठिनाईका पत्रद्वारा सकेत करते तो भाईजी शीघ्र उनके लिये आवश्यक और उचित धनराशिकी व्यवस्था कर देते। ऐसी थी भाईजीकी परदु खकातरता और उदारता।

किसी कर्मचारीके आकस्मिक अथवा असामयिक निधनपर उसके परिवारके लिये आवास, बच्चोके लिये शिक्षा तथा उसके आश्रित वयस्क सम्बन्धियोके लिये नौकरी आदिकी व्यवस्था करनेका दायित्व भी भाईजी अपने ऊपर ले लेते थे। फलस्वरूप ऋषिकुलमे आज भी ऐसे अध्यापक विद्यमान है, जो वर्षोसे सस्थाकी सेवा पूर्ण सतोष एव निष्ठाके साथ कर रहे है।

आज हमारी निजी शिक्षण-सस्थाओके सचालकके रूपमे भाईजी-जैसे उदार, निरभिमान, परदु खकातर, निष्काम तथा व्यावहारिक समाजवादी कार्यकर्त्ताओकी नितान्त आवश्यकता है।

●

धन मोरि आज सुहागिन घड़िया ।।
आज मोरे अँगना संत चलि आये, कौन करौ मिहमनिया।
निहुरि-निहुरि मैं अँगना बुहारौं, मातौं मैं प्रेम-लहरिया ।।
भाव के भात, प्रेम के फुलका, ग्यान की दाल उतरिया।
दूलनदास के साईं जगजीवन, गुरु के चरन बलिहरिया ।।

—सत दूलनदास

●

अभिनव चैतन्य—श्रीभाईजी

डा० श्रीतपेश्वरनाथजी

श्रीभाईजी हिंदीके एक यशस्वी पत्रकार, कीर्तिमान् सम्पादक, पौराणिक समीक्षक, प्रबुद्ध लेखक, मधुर वक्ता और श्रीकृष्णभक्त कवि थे। वे वहुभाषाविद्, विचारक और समाज-सुधारक भी थे। पर इन सबसे ऊपर वे मानवताकी मञ्जुल मूर्ति थे। उनके अवसानसे हमारा सास्कृतिक क्षितिज धूमिल हो गया है। आजकी चन्द्रचुम्बिनी सभ्यताके अन्धयुगमे पोद्दारजी भारतीय संस्कृति, धर्म और विश्वासके ऐसे मणिदीप थे, जिसके प्रखर प्रकाशमे असख्य लोकहृदय आलोकित हुए है।

विक्रमीय सवत् २०२६के फाल्गुन मासमे मै उनके दर्शनार्थ पहुँचा। जाते ही मैने झुककर भाईजीका चरण-स्पर्श करना चाहा, पर उन्होने प्रसन्नताभरी मुस्कानके साथ मेरे दोनो हाथ पकड लिये और 'हरिस्मरण' कहते हुए मुझे अपने पास विस्तरपर बैठा लिया। श्रीभाईजीकी विनम्रताने मेरी लघुताको जैसे अङ्गीकार कर लिया हो। भाईजीके इस शील-सौजन्यसे मै मन्त्र-बद्ध-सा हो गया।

उनका व्यक्तित्व अतीव आकर्षक था। गौर वर्ण, उज्ज्वल आनन, ममताभरी दृष्टि, ओठोपर सहज मुस्कान, तेजपूर्ण उन्नत ललाट और उस ललाटपर पीत गोपीचन्दन, जो वैष्णव-हृदय श्रीपोद्दारजीकी राधा-उपासनाका प्रतीक था। खादीके शुभ्र वस्त्रोमे उनकी निर्मलता एव राष्ट्रीयता जैसे उझकी पडती थी।

आधुनिक बौद्धिक युगमे पोद्दारजी भक्ति-आन्दोलनके पुरोधा थे। जैसे मुगलयुगमे चैतन्य और वल्लभाचार्यने उत्तरापथमे भक्ति-भावना जगायी थी, वैसे ही आङ्गल-युगमे पोद्दारजीने भारतीय जन-मनमे धर्म-प्राण फूँके थे। आजके इस सर्वथा प्रतिकूल परिवेशमे उन्होने जिस दृढ आस्था और अविचल आत्मविश्वासके साथ प्रेम-धर्मकी ज्योति जलायी, वह विस्मयकारिणी है। प्रेमाभक्तिके तो वे अद्वितीय प्रवक्ता थे। मेरा तो विश्वास है कि वे मध्ययुगीन प्रेमी सत श्रीश्रीचैतन्यदेवके ही नवीन सस्करण थे। जिन लोगोको आजसे प्राय ४०० वर्ष पूर्व प्रकट हुए श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभुके दर्शन एव नाम-कीर्त्तनके श्रवणका सौभाग्य नही मिला था, वे इस युगमे प्रेममूर्ति श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके दर्शन तथा प्रवचनकी पीयूष-वर्षासे परितृप्त हुए है। दुर्भाग्य तो उनका है, जिनके सामनेसे वह प्रेममूर्ति अभी-अभी खिसक गयी और वे उनकी वाणीके श्रवण एव पवित्र दर्शनका प्रत्यक्ष लाभ प्राप्तकर मन-प्राणोको सीचनेसे वञ्चित रह गये। ऐसे विषाद-मग्न जनोके परितोषके लिये पोद्दारजीका अमर साहित्य प्रचुरमात्रामे प्रस्तुत है। अव तो यही उनका यश काय है, जिसके दर्शन-सेवनसे मानवजीवनके चरम लक्ष्यतक पहुँचा जा सकता है। भारतवर्षकी जनताके सस्कारोमे जवतक धर्मभावना एव प्रेम-भक्तिके अवशेष सुरक्षित रहेगे, तवतक श्रीपोद्दारजी लोक-मानसमे विराजमान रहेगे। मेरी कामना है कि भाईजीके जीवनवृत्तको विस्तृत-रूपमे सकलितकर प्रकाशित किया जाय, जिससे कालान्तरमे असख्य श्रद्धालुओको इस अभिनव चैतन्यके 'चरितामृत'का पान करनेसे चिर तृप्तिका अनुभव हो। उनके प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

महामनीषी श्रीभाईजी

श्रीजयगोपालजी मिश्र 'फतेहपुरी'

मै सन् १९६२मे श्रीभाईजीके सम्पर्कमे आया। उनका सानिध्य मेरे लिये गौरवका विषय बना। हमारी 'रेल-हिदी-समिति'के तत्त्वावधानमे आयोजित कवि-सम्मेलनोमे पधारे हुए कवियो और विद्वानोका वे बराबर अपने निवासस्थानपर भरपूर स्वागत-सत्कार और विदाई करते थे। एक बार श्रीबलवीरसिहजी 'रग' विचरते हुए आ गये। हमारे सामने उनके स्वागतकी समस्या आ गयी। मैंने भाईजीको फोन किया—'आपकी गीतावाटिकामे रगजीकी काव्य-गोष्ठी बुलायी जायगी।' भाईजी फोनपर ही अपनी स्वीकृति देते हुए पूछते हैं—'उनके साथ कितने साहित्यकार होगे?' हमने उत्तर दिया—'केवल ५० या ५५ व्यक्ति पहुँचेगे।'

भाईजी अस्वस्थ थे। वे छतके ऊपरके कमरेमे रहते थे और नीचे उतरना मना था, पर हम देखते क्या हैं कि भाईजी नीचे वाटिकामे कुर्सी-मेज लगवाकर विधिवत् जलपानका प्रबन्ध करा रहे है।

थोडी देरमे कवि-सम्मेलनका दौर चला। भाईजीको बीच-बीचमे मे कहता—'आप अब न बैठे, कमरेमे जाकर विश्राम करे।' परतु वे अन्ततक बैठे रहे। बादमे उन्होने पूछा—'क्या विदाई दी जाय?' मैंने कहा—'रामचरितमानसकी एक पोथी आपके हस्ताक्षरसहित और दो सौ रुपये।'

कहनेकी देर थी। भाईजीने मेरी इच्छाका पालन आदेशकी भाँति किया। ऐसा कौन करता होगा। वे बिना प्रचार ऐसे अनुदान चुपचाप दे दिया करते थे। ऐसी घटनाएँ एक नही, अनेक है।

भाईजी बडे ही सरल एव मानवमात्रकी सम्मान करनेकी क्रियामे अग्रणी थे। क्या मजाल कि कोई उन्हे पहले प्रणाम कर ले, ज्यो ही व्यक्ति सामने आया कि उनके दोनो हाथ जुड जाते थे और वे अपना प्रणाम निवेदन कर देते थे। उनके इस विचित्र स्वभावसे परिचित होनेके कारण मैं भाईजीको प्रणाम करनेमे जल्दी करता, क्योकि सदा मे भाईजीको नत होकर प्रणाम निवेदन करनेका आदी था। किंतु भाईजी मुझसे पहले ही माथा टेककर बडी हैरतमे डाल देते थे।

भाईजीके कार्योपर पोथियो-पर-पोथियाँ लिखी जा सकती है, किंतु भाईजीके जिस जीवनकी झाँकी उनसे मिलनेवालोके हृदयपटलपर अङ्कित है, उसका वास्तविक रूप उनका हृदय ही जानता है, वे स्वय उसे वाणीद्वारा व्यक्त करनेमे असमर्थ है।

ससारमे श्रीभाईजी-जैसे महामनीषीका अवतार सहस्रो वर्षो बाद होता है। हम धन्य है कि हमने उनका दर्शन प्राप्त किया। अब भी जब हम श्रीभाईजीकी याद करते है, तब बडी-बडी समस्याओका हल स्वय निकल आता है। लगता है, भाईजी कह रहे है—'ऐसे करो, काम बनेगा। युगावतारी, पूज्य श्रीहनुमान्‌जीके प्रसादस्वरूप धर्मचेता महामनस्वी श्रीभाईजीके चरणोमे हमारा शत-शत नमन।

●

संतत्वके मूर्तिमन्त आविष्करण

श्रीराममाधव चिंगले

श्रीभाईजी सत एकनाथ, भक्त नरसी मेहता आदिकी भाँति गृहस्थ संत थे । उनकी गृहस्थी स्वयके कुटुम्व-परिवारतक ही सीमित नही थी, वह उनके औदार्यके कारण व्यापकतम रूप धारण कर चुकी थी । **'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'**—इस सूक्तिके वे मूर्तिमन्त उदाहरण थे ।

हमारे धार्मिक साहित्यमे सतोके लक्षण यत्र-तत्र प्रचुरताके साथ वतलाये गये है । गीतामे वतलाये गये स्थितप्रज्ञके लक्षण, भगवद्भक्तके लक्षण, गुणातीतके लक्षण, दैवी सम्पदाके लक्षण—ये सव सत-पुरुषोके ही लक्षण है । भागवतके एकादश स्कन्धमे भागवतोत्तमके लक्षण विस्तारसे कहे गये है । श्रीभाईजी उच्चकोटिके सत थे । उनमे गीता एव भागवतमे वर्णित सत-लक्षण प्रचुररूपमे विद्यमान थे । गीताप्रेससे प्रकाशित 'एक महात्माका प्रसाद' पुस्तकके निवेदनमे श्रीभाईजीने संतमहिमा इन शब्दोमे वतलायी है—'महात्माओकी महिमा अवर्णनीय है । उनका संसारमे रहना और विचरना सहज लोक-कल्याणके लिये ही होता है । जैसे सूर्य सहज ही जीवमात्रको प्रकाश देता है, जैसे चन्द्रमा सहज ही समस्त जगत्मे सुधाधारा वहाकर सवको शान्ति प्रदान करता है, वैसे ही महात्मागण (उनके सम्पर्कमे आनेवाले) सवके अज्ञानान्धकारका नाश करके विमल ज्ञानका प्रकाशन प्रदान करते है और अपनी अमृतमयी वाणीसे सवको परम शान्ति देते है । महात्माओका मिलन, उनका सत्सङ्ग, उनका वचन अमोघ होता है ।' इन शब्दोमे श्रीभाईजीका आत्मवृत्त ही द्योतित होता है ।

भाईजीका जीवन श्रीराधाकृष्णके लीलारसमे निमज्जित था । अपनी भावशक्तिके प्रभावसे उन्होने अगणित साधकोको भगवद्भावराज्यमे प्रविष्ट कराके उनका उद्धार किया है ।

एक ही जन्ममे सन्मार्गगामी मनुष्य आत्मोद्धार तथा लोकोद्धारके महान् ध्येयसे प्रेरित होकर कितना वडा काम कर सकता है और अपने दुर्लभ नरदेहको कितना सार्थक कर सकता है, श्रीभाईजीका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है । परमभागवत श्रीनारदजीके भक्तिसूत्रका एक दिव्य अश प्रस्तुत सदर्भमे स्मरण हो आता है—**'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ।'** श्रीभाईजीद्वारा लिखित, प्रेरित, प्रोत्साहित, सम्पादित धार्मिक ग्रन्थ-सम्पदाने अनेक पथभ्रष्ट पतित मानवोको सन्मार्गप्रवण करके, उन्हे पावन वनाकर उनका उद्धार किया है । दु खाघातके कारण जीवनसे ही हताश अनेक मानवोको भाईजीने 'कामके पत्र'-द्वारा सामयिक अनमोल उपदेश देकर—आशा-दायक शब्दोद्वारा ढाढस बँधाकर आत्मघातसे परावृत्त किया है और उन्हे सही रास्तेपर लाकर, उनमे आशा और नव उत्साहका निर्माण करके नया जीवन प्रदान किया है । उन्ही पत्रोद्वारा उन्होने कितने ही स्त्री-पुरुषोका बिगड़ा हुआ पारिवारिक जीवन फिरसे वनाया है और कितने ही पतित-जनोको तामसी जीवनसे छुड़ाकर सन्मार्ग और धर्ममार्गपर प्रवृत्त किया है । ऐसे व्यक्तियोकी

संख्या थोडी नही, लाखोमे है। मै श्रीभाईजीके हिदी तथा अग्रेजी ग्रन्थो, लेखो, पत्रो आदि विभिन्न रूपोमे उपलब्ध होनेवाले वचनामृतसे अनेक वर्षोसे लाभ उठाता आया हूँ। उनका पठन-चिन्तन मेरे दैनदिन जीवनके कार्यक्रमका एक आवश्यक अङ्ग है। इससे मुझे जो लाभ हुआ है, उसका वर्णन करना शब्दोसे बाहरकी बात है।

लेखकके नाते 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमे श्रीभाईजीके साथ मेरा अनेक बार सम्बन्ध हुआ है। ऐसे अवसरोपर मुझे उनका सम्पादन-कौशल तथा रोम-रोममे व्याप्त हुआ सतत्व अच्छी तरहसे देखनेको मिला है। 'कल्याण'मे प्रकाशनार्थ भेजे हुए मेरे लेखोमे कभी तो वे एक-दो महत्त्वपूर्ण शब्दोके फेरफारद्वारा मेरे मूल आशयको स्वर्णिम बना देते थे और कभी अपनी ओरसे पाद-टिप्पणियाँ देकर मूल प्रमेयका स्वानुभवमूलक उपयुक्त उदाहरणोद्वारा समर्थन करते। उनके पारसतुल्य स्पर्शद्वारा किये हुए इन परिवर्तनोसे मेरे मूल लेखमे जो जादूभरा गम्भीर परिवर्तन हो जाता था, उसे देखकर मेरे हर्षका ठिकाना न रहता। मै उनके सम्पादन-कौशलपर मुग्ध हो जाता।

आज श्रीभाईजी सशरीर हमारे बीच नही हे। अतएव स्वाभाविक ही उनके वियोगके कारण हमारा अन्त करण शोकाकुल है। परतु हमारा कर्त्तव्य है कि उनके पवित्र आचार-विचार, उद्‌गार, भगवन्मय जीवन तथा अमृततुल्य दिव्य ग्रन्थो और उपदेशोसे प्रेरणा पाकर अपने स्वयके जीवनको समुन्नत करे और साथ ही दूसरोको भी उनके जीवन, विचारो तथा उपदेशोसे परिचित कराके उन्हे सत्पथपर प्रवृत्त करे।

●

परम संत

श्रीसुरेन्द्रप्रसादजी गर्ग

सन् १९३२मे मुझे परमपूज्य भाईजीद्वारा लिखी गयी कुछ छोटी-छोटी पुस्तके पढनेका अवसर मिला और तभीसे उनके पतितपावन चरणोमे मेरी श्रद्धा बनी। मैने उन्हे श्रीमद्भगवद्-गीता तथा श्रीमद्भागवतकी एक जीवित प्रतिमूर्ति पाया। मेने गङ्गाके पवित्र तटपर भी उनके प्रवचन सुने। उनके गुणोको लिपिबद्ध नही किया जा सकता। अलबत्ता उनका एक महान् गुण विशेष रूपमे उल्लेखनीय है। उन्होने एक बार प्रवचनमे कहा था—'जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि।' उनकी स्वयकी दृष्टि सदा दूसरोके गुणोको ही देखा करती थी, अवगुणोको नही। सतका स्वभाव है—'सर्वत्र पवित्रता एव शुद्धताका दर्शन करना'। वे परम सत थे।

●

प्रेमरसमें निमग्नहृदय श्रीभाईजी

श्रीकृपाशंकरजी रामायणी

सम्मान्य भाईजीके अमर नामके पूर्व 'स्वर्गीय' विशेषण जोडते हुए कर कॉप रहा है, लेखनी भी प्रकम्पित हो रही है, हृदय रुदन कर रहा है।

'श्रीविष्णुसहस्रनाम-स्तोत्र'मे भगवान्के सहस्र नाम सकलित है। भावुक भक्तजन इस स्तोत्ररत्नका नित्य पारायण करते है। प्रत्येक नामका सकलन गम्भीर एव उदात्त आशयसे परिपूरित है। सकलनकर्ता है—वेदान्त-सूत्रोके निर्माता, अष्टादश-पुराणोके रचयिता, वेदोके व्याख्याता, भारतीय सस्कृतिके अमर व्याख्याता महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास। भगवान्के उन हजार नामोमे तीन नामोका उल्लेख एक साथ क्रमसे किया गया है—'अमानी मानदो मान्य'। इन नामोमे 'मान्य' शब्दकी परिभाषा सनिहित है और मान्यता प्राप्त करनेका उपाय भी निर्दिष्ट है। 'मान्य' वह है, जो स्वय अपना मान विगलित करके सवको समानरूपेण मर्यादापूर्वक मान समर्पित करता है और उसीका 'मान्य' होना भी सम्भव है, जो स्वय मानविरहित होकर सवको आदरपूर्वक सम्मान अर्पित करता है। अनेक वारके मधुर सम्पर्कके अनन्तर मे इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि इस वाक्यके आदर्श थे—परम सम्मान्य श्रीपोद्दारजी। वे 'सवहि मानप्रद आपु अमानी' थे।

पुण्यश्लोक श्रीपोद्दारजी भारतीय चेतनाके उदार सवाहक थे। भारतके प्रति, भारतीयताके प्रति उनका अविचल अनुराग था। वाह्याडम्वरसे वे सर्वथा शून्य थे, उसके प्रति उनकी परम अनास्था थी। उनका हृदय भक्ति-रसार्णवमे सतत निमग्न रहता था। उनकी स्नेहपूर्ण दृष्टि एव मधुर वाणीमे प्रेमरस छलकता था, क्योकि उनका दिव्य मानस प्रेम-रससे ओत-प्रोत था। साथ ही वे मर्यादापालक भी थे। उनके द्वारा मर्यादाका कभी अतिक्रमण नही होता था। यह उनका अपना वैशिष्ट्य था। वे एक साथ श्रीराम और श्रीकृष्णके—मर्यादा और प्रेमके समुदार उपासक थे। यही श्रीरामकृष्णैक्य है। उनमे नेम-प्रेमके निर्वाहकी अनोखी क्षमता थी।

इन पक्तियोको लिपिवद्ध करते समय उनके अनेक भाव-सस्मरण हृदयको विह्वल कर रहे है। उनमेसे केवल एकका उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। मै उनके लोकोत्तर गुणोसे, उनकी अनुभव-सिद्ध रसमयी वाणीसे, उनके मन-वचन-कर्मकी एकतासे, उनके मानरहित सत-हृदयसे अत्यन्त प्रभावित था। यदा-कदा उनके सामने आत्मविस्मृत भी हो जाता था। एक दिन पतितपावनी भगवती जाह्नवीके पावन तटपर स्थित गीताभवनमे सायकालीन सत्सङ्गके अनन्तर ऐसा ही प्रसङ्ग समुपस्थित हो गया। मेरी विनम्रता सीमाका निपट अतिक्रमण कर गयी। भाव-विह्वल वे भी थे, परन्तु उन्होंने अपनेको सँभाला और मुझे अपने हृदयसे लगा लिया। आत्मविभोर था मैं। गद्गद होकर मेरे प्रिय भाईजीने कहा—'आप मुझे वहुत अच्छे लगते है।' मुझे आज भी विह्वल कर रहा है वह अनूठा भाव-स्मरण। आज ही क्या, आजन्म विह्वल वनाता रहेगा। उनमे मैंने मर्यादा तथा भावुकताका अनोखा समन्वय अनुभव किया है।

उदारचरित्र श्रीभाईजीके सदृश पुरुषरत्न इस रत्नगर्भा वसुधरापर यदा-कदा ही जन्म-धारण करके धराको कृतकृत्य करते है। ऐसे भक्तोको उत्पन्न करके माताका मातृत्व सार्थक होता है। ऐसे भक्तोको ही लक्ष्य करके देवर्षि श्रीनारदने दिव्य उद्घोष किया था——

कण्ठावरोधरोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ।

(नारदभक्तिसूत्र ६८)

'भगवान्के अनन्य भक्तोका कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है और नेत्र अश्रुपूरित हो जाते है, जब वे परस्पर भगवत्सम्बन्धी चर्चा करते है। ऐसे भक्त अपने कुलोको तथा पृथ्वीको पवित्र करते है।'

देवर्षिके इस सूत्रके प्रत्यक्ष उदाहरण थे हमारे श्रीभाईजी। निस्सदेह उनके समुत्पन्न होनेसे उनका वश पवित्र हो गया। आज उनकी पैतृकभूमि रतनगढ गौरवान्वित है तथा कर्मभूमि गोरख-पुर उनके द्वारा सम्पादित 'कल्याण' मासिकपत्रके कारण विश्वविख्यात है।

श्रीभाईजीने जीवनपर्यन्त विश्वके कल्याणकी ही कामना की। पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग करके श्रीभाईजीने प्रेममय श्रीकृष्णके नित्यलीलामय, भावमय परमधाम गोलोकमे नित्य स्थान प्राप्त किया है। रसमयी भावनासे ओत-प्रोत श्रीभाईजी महाभाव-रसराजस्वरूप श्रीराधा-माधवके अनोखे एव अनूठे रसराज्यमे——ऐश्वर्य-गन्धलेशशून्य विशुद्ध माधुर्यरससे परिपूर्ण भावराज्य-मे——अपने परमप्रेमास्पद, रसिकचूडामणि, रासविहारीके साहचर्यमे नित्य रसमय विहार कर रहे है।

श्रीभाईजीकी पावन स्मृति भावपरिपूर्ण है। उनकी उपस्थितिमे जब-जब मुझे उनकी स्मृति होती थी, मै एक पवित्र स्नेह-ज्योतिके, प्रेमस्वरूप श्रीजानकीरमणके पादपद्मकी अनुरागमयी ज्योति-के, महारासरस-रसिक श्रीराधारमणकी भाव-परिपूरित भक्तिकी ज्योतिके दर्शन करता था। आज उनकी पाञ्चभौतिकी लीला-सवरणके अनन्तर भी उनकी भाव-स्मृति वैसी ही भावमयी बनी हुई है और वह बडे ही पवित्र रूपोमे समुदित होकर मुझे सात्त्विक शक्ति तथा दिव्य प्रेरणा देती है।

●

सोई साध-सिरोमणी, गोबिद-गुण गावै।
राम भजै, बिषिया तजै, आपा न जनावै॥
मिथ्या मुखि बोलै नही, परन्यंदा नाही।
औगुण छाड़ै, गुण गहै, मन हरिपद माही॥
निर्वैरी सब आतमा, पर आतम जानै।
सुखदाई समता गहै, आपा नहि आनै॥
आपा-पर अंतर नही, निर्मल निज सारा।
सतवादी साचा कहै, लैलीन विचारा॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहूँ लिपत न होई।
दादू सब ससार मै ऐसा जन कोई॥

—सत दादूदयाल

●

सबके विश्वासपात्र

श्रीकैलाशचन्द्र सेकसरिया

श्रीभाईजी मेरे धर्मके नानाजी थे, पर उनका स्नेह, उनकी कृपा मुझे अपने नानाजीसे भी वहुत अधिक प्राप्त हुई थी। उनकी आत्मीयता इतनी महान् थी कि जो भी उनके सम्पर्कमे आया, वह यही मानता है कि उन्होने मुझे सबसे अधिक प्यार किया। मेरा हृदय उनकी आत्मीयतासे भरा है। मै उसके सम्वन्धमे क्या लिखूँ ?

श्रीभाईजीके प्रति किसीको भी अपना हृदय खोलकर रखनेमे संकोच नही होता था। वडे-वडे महात्मा, धनपति, विद्वान् तथा राज्याधिकारी अपनी छिपी-से-छिपी कमजोरी भी उनके सामने रखते थे और उनसे परामर्श लेते थे। वे वरावर कहा करते थे कि "पैसेवालोकी स्थिति ऐसी विकट होती है कि वे भीतर-ही-भीतर जलते है, पर वाहरसे रो भी नही पाते।" उन्होने वताया—"एक वार मै पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजके पास वाराणसीमे उनके निवास-स्थानपर वैठा था कि देशके एक प्रसिद्ध श्रीमन्त पूज्य श्रीमालवीयजी महाराजके दर्शनार्थ आये। कुछ देर वाद जव मै मालवीयजीको प्रणाम करके विदा होने लगा, तव श्रीमन्त महोदयने कहा—'भाईजी, आप रुकियेगा, आपसे कुछ वात करनी है।' मै वाहर रुक गया। थोडी देर वाद वे सज्जन आये और मुझे विल्कुल एकान्तमे ले गये। हम दोनो एक पेडके नीचे बैठ गये। बैठते ही श्रीमन्त महोदयके नेत्रोसे अश्रुधारा प्रवाहित हो चली। मै इसका कारण नही समझ पाया। सोचा, ये अभी शान्त हो जायँगे, पर वे रोते ही रहे। लगभग पौन घटे रोते रहे होगे। उनकी इस दयनीय दशाको देखता हुआ मै अवाक् बैठा रहा। खूव रोनेके पश्चात् जव उनका मन हल्का हुआ, तव उन्होने कहा—'भाईजी, वर्षोसे घुट रहा था, कोई ऐसा स्वजन ही नही मिला, जिसके सामने दो आँसू भी गिरा सकूँ। आपकी स्नेह एवं आत्मीयताकी बार-वार स्मृति होती थी, पर आपसे भेट ही नही हो पायी। आज आपके सामने रोकर अपने हृदयका भार हल्का किया है।' पीछे उन्होने अपने दुःखके कारण विस्तारपूर्वक वतलाये। मै तो आश्चर्यचकित रह गया कि वाहरसे इतने सम्पन्न, इतने सुखी दिखायी देनेवाले इन महानुभावके हृदयमे दुःखका कितना भीषण ज्वालामुखी धधक रहा है। मैने उन्हे वडे ही प्यार-भरे शब्दोमे सान्त्वना दी और अपनी योग्यताके अनुसार उनकी समस्याओका समाधान वतलाया। मेरी वातोसे उनको वडा संतोष हुआ। वे वोले—'भाईजी, मै आपकी वातोके अनुसार चलनेकी चेष्टा करूँगा। सचमुच आपने मेरे दुःखके हेतुओका वडा ही सरल समाधान वता दिया है।' हम दोनो घर चले आये।"

इस घटनासे मुझे यह पता चला कि श्रीभाईजी कैसे-कैसे लोगोके विश्वासपात्र थे।

हिंदू-जातिके महान् रक्षक

भक्त श्रीरामशरणदासजी

पूज्य प्रात स्मरणीय परमश्रद्धेय श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हिंदू-जाति, हिंदू-धर्म, हिंदू-सभ्यता-सस्कृति, हिंदी, हिंदुस्थानके महान् रक्षकोमेसे थे। वे सनातनधर्मके तो मानो साक्षात् सूर्य ही थे। भारत-माताके सच्चे लाल और रत्न थे। विश्वकी एक महान् दिव्य विभूति थे, सर्वगुणसम्पन्न थे।

मेरे ऊपर श्रीभाईजीकी वडी कृपादृष्टि थी। उनको मै अपने पूज्य पिताके तुल्य मानता था और इधर वे भी मुझे वैसा ही स्नेह देते थे। लगभग ३५ वर्ष पूर्व प्रयागराजमे कुम्भके शुभ अवसरपर उनके दर्शन हुए थे। इस प्रथम मिलनमे जो अद्भुत आनन्द प्राप्त हुआ था, वह वर्णनातीत है।

वे गौ-ब्राह्मणोके भक्त थे। गोरक्षा-आन्दोलनमे उन्होने जिस तत्परताके साथ तन-मन-धनसे सहयोग दिया, वह सर्वविदित है। गोरक्षा-आन्दोलनमे भाग लेनेके कारण मुझे भी जत्थेके साथ एक महीनेके कारावासका दण्ड मिला था। हमे तिहाड जेलमे भेजा गया था और उसी जेलमे थे पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज। भारतके कोने-कोनेसे पधारे हजारो वडे-वडे सत-महात्मा, मण्डलेश्वर, विद्वान्, गोभक्त और धार्मिक व्यक्तियोसे समूची जेल भरी हुई थी। श्रद्धेय भाईजी इस आन्दोलन-की सर्वोच्च समितिमे थे। श्रीभाईजी तिहाड जेलमे वदी वनाये गये सत-महात्माओ और नेताओसे भेट करने तथा उनसे आन्दोलनके सम्वन्धमे परामर्श लेनेके लिये पधारे। श्रीभाईजीको अपने वीच देखकर सभीको वडी प्रसन्नता हुई। विचार-विमर्श करनेके उपरान्त श्रीभाईजीने भाषण दिया। भाषण इतना प्रभावशाली था कि उसको सुनकर सभी उत्साहसे भर गये। जिन वातोको लोग जेलके कष्ट समझ रहे थे, उनको सहन करनेमे उनकी गौरव-वृद्धि हो गयी।

श्रीभाईजीने अपने भाषणमे कहा—'यदि हमने जेलके इन तुच्छ कष्टोको कष्ट माना और तनिक-से कष्टसे घवरा गये तो हम गोरक्षा कैसे कर सकेगे? गोरक्षार्थ कष्ट सहन करना कष्ट नही, महान् तप है। गोरक्षार्थ कष्ट-सहन महान् पुण्योसे प्राप्त होता है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि आज हमे अपने जीवनमे गोमाताकी रक्षाके लिये कष्ट सहन करनेका अवसर मिला है। यह हमारा मनुष्यजीवन और यह हमारा तुच्छ शरीर किस काम आयेगा? यह शरीर तो सदा नही रहता, एक दिन यह धूलमे मिल ही जाता है। यदि इससे गोरक्षार्थ कुछ हो जाय तो इसीमे हमारे जीवनकी सार्थकता है। जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्म एव भगवान्का राम-कृष्णके रूपमे अवतार हुआ और भगवान् श्रीकृष्ण गोरक्षार्थ नगे पॉवो जगल जाते है और अपना 'गोपाल' नाम रखवाते है, जिस पूज्या गोमाताकी रक्षाके लिये भारतके चक्रवर्ती सम्राट् दिलीप अपनेको खूँखार शेरके सामने मॉसके लोथडेकी तरह खानेके लिये फेक देते है और लाखो क्षत्रिय गोरक्षार्थ हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर चुके है, यदि उन्ही पूज्या गोमाताओकी रक्षाके लिये हमे जेलकी यातनाएँ सहनी पडे तो उन्हे सहर्ष भोगना

चाहिये और इसे महान् तप मानकर प्रसन्न होना चाहिये। जो जेलमे कष्ट भोगते है, उनका पुण्योदय हुआ है कि उन्हे गोमाताकी रक्षाके लिये कष्ट सहनेका परम सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। यदि गोरक्षार्थ यह शरीरतक काम आ जाय तो इससे वढकर मनुष्य-जन्मकी सार्थकता और क्या होगी ?'

श्रीभाईजीका भूदेव ब्राह्मणोके प्रति सदा पूज्यभाव रहा। जव कोई पण्डित उनसे मिलने आते, श्रीभाईजी वडी ही नम्रतापूर्वक उन्हे चरण छूकर प्रणाम करते थे और अपनेसे ऊँचे आसनपर बैठाते थे। वहुत वर्ष पूर्व जयपुर (राजस्थान) मे सनातनधर्मकी एक वडी सभा आयोजित हुई थी। भारतके कोने-कोनेसे सनातनधर्मके उच्चकोटिके विद्वान् उसमे पधारे थे। विशेषाग्रह करके गोरखपुरसे श्रद्धेय श्रीभाईजीको भी बुलाया गया था। विश्वविख्यात भाईजीको देखकर सभी सनातनधर्मी विद्वान् वडे प्रसन्न हुए और उन्हे मञ्चपर अपने पास बैठनेको कहा। श्रीभाईजीने स्पष्ट शब्दोमे मना कर दिया और कहा—'आप मेरे पूज्य भूदेव ब्राह्मण हैं। इस गद्दीपर बैठनेके आप ही अधिकारी है। मै तो आपका तुच्छ सेवक हूँ। मुझे ऊपर बैठनेका अधिकार नही है।' यह ब्राह्मण-भक्ति देखकर सभी आश्चर्यचकित रह गये।

वादमे आपसे सभामे भाषण देनेको कहा गया। आपने मना किया और कहा—'मै तो आप पूज्य भूदेव ब्राह्मणोके श्रीचरणोमे बैठकर आपके श्रीमुखसे कुछ सुननेके लिये आया हूँ। मुझे आप पूज्य ब्राह्मणोके श्रीमुखसे सुननेका अधिकार है, आपको सुनानेका अधिकार नही है।' परंतु सभीने वहुत आग्रह किया। सवके आग्रहके सामने श्रीभाईजी नतमस्तक थे। आपने सभामे विराजमान सभी पूज्य भूदेव ब्राह्मणोके श्रीचरणोमे हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और खडे होकर शास्त्रानुसारी ऐसा सुन्दर भाषण दिया और वर्णाश्रमधर्मकी महिमापर ऐसा अद्भुत प्रकाश डाला कि सभी विद्वान् आश्चर्यचकित रह गये। भाषण समाप्त करते हुए आपने ब्राह्मणोके श्रीचरणोमे पुन करवद्ध प्रणाम किया और सवसे आशीर्वाद माँगा—'जीवनके शेष श्वास भगवान्‌की स्मृतिमे वीते।' उपस्थित सभी विद्वान् श्रीभाईजीके भाषणकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे और सभीने आपको भारतकी एक अद्भुत दिव्य विभूति माना।

हिंदू-जाति, सत्यसनातनधर्म, साधु-सत, गौ-ब्राह्मण, देवमन्दिर, वेद-पुराण—श्रीभाईजीके ये ही प्राण थे और समस्त जीवन आपका इनकी रक्षा और सेवामे ही व्यतीत हुआ। हमलोगोका परम कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार श्रद्धेय श्रीभाईजीने जीवनभर सनातनधर्म और हिंदू-जातिकी रक्षा और सेवा की, उसी प्रकार प्राणपणसे हम भी करे। यही उन महापुरुषके श्रीचरणोमे सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

महात्माओंमे उत्तम गुण, उत्तम आचरण और उत्तम भाव होते हैं; उनका ज्ञान भी उच्चकोटिका होता है। उनके सङ्गसे ये सव चीजें किसी-न-किसी अंशमें विना जाने-पहचाने भी आ ही जाती हैं। यदि पहचान हो जाती है और महात्माके अलौकिक प्रभावका ज्ञान हो जाता है, तव तो वह, जैसा उसका ज्ञान होता है, उसके अनुसार लाभ उठा लेता है।

—परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

●

मेरे आराध्य !

श्रीबजरंगलालजी आसोपा

मैंने कभी भी पूज्य भाईजीको मानवके रूपमे नही देखा। मै सदैव उन्हे 'आराध्यदेव !' सम्बोधित करता और प्रभु मानकर उनकी पूजा करता रहा। अवश्य ही मै भाग्यशाली था, अत सर्वान्तिर्यामी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे मुझ तुच्छ प्राणीका ऐसा भाग्योदय हुआ कि मै करुणामूर्ति पूज्यचरणके सम्पर्कमे आ गया।

आज पहली वार मै उस रहस्यको प्रकट करता हूँ, जो इतने वर्षोतक मैने गोपनीय ही रखा। सर्दीके दिन थे। एक रात दुखसे व्याकुल होकर मैं खूव रोया और भगवान्को याद करता-करता सो गया। ब्राह्ममुहूर्त्तमे लगभग ३-४ वजे एक स्वप्न देखा।—"जैसे कोई चकाचौध करनेवाला मन्द-मन्द मनोहारी शीतल प्रकाश हो, पहले मैदान, फिर वर्फसे आच्छादित पहाड-ही-पहाड। शुभ्र ज्योत्स्नासे युक्त चाँदी-जैसी श्वेत पर्वतमालाएँ, उनमे शिलाएँ, कल-कल करती गङ्गाकी धारा, फव्वारेकी तरह झरने। मै देख रहा हूँ आकुल-व्याकुल, बैठा हूँ एक शिलापर। साक्षात् प्रभु ही वोलते है वडी ही मधुर वाणीमे आकाशवाणीसे—'तुम इनके पास चले जाओ। ये तुम्हे सँभाल लेगे।' मैने इधर-उधर झाँका कि तत्काल मेरे 'आराध्यदेव' जिनसे न तो मेरा परिचय था, न जिनके वारेमे किसीने कभी चर्चा ही की थी, मेरे सामने दो फीटकी दूरीपर खडे दिखायी दिये। खादीके वस्त्र, तेजस्वी पर विनयशील गम्भीर मुखारविन्द। उनकी स्थिति यह थी कि उनकी देह पृथ्वीको स्पर्श न करती हुई पृथ्वीसे दो फुट ऊँची थी। थोडी देर वाद पुन आकाशवाणी हुई—'तुम्हे ये अवश्य ही शरण देगे, तुम इनके पास चले जाओ। मैने इन्हे तुम्हारे लिये प्रेरित कर दिया है। रोओ मत, अपना जीवन इन्हे दे दो और इनकी सेवा करो।' मैने पूज्यवरकी ओर देखा। वे मुझे देखकर गद्गद हो गये। मैने उनके चरण पकड लिये। खाली जगहमे चरणोके नीचे अपना मस्तक रख दिया। उन्होने अपना वरदहस्त मेरे मस्तकपर रख दिया और अपना लिया।"

यह स्वप्न था। यह स्वप्न होनेके पश्चात् मैने श्रीभाईजीको पत्र लिखा—'मुझे ऐसा स्वप्न आया है और मै आपकी शरण लेना चाहता हूँ। भगवान्की कृपा, उन्ही दिनो भाईजीका दिल्ली-आगमन हुआ। मै दिल्ली पहुँच गया। उनके प्रथम दर्शनसे ही मुझे स्वप्नमे देखा वही स्वरूप याद आ गया। श्रीभाईजी मेरे हो गये और मै उनका। श्रीभाईजीसे मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ, वह अविस्मरणीय ही रहेगा। उन्होने मुझ अकिंचनको एव मेरी पत्नीको अपने परिवारका एक अङ्ग वना लिया और इतना प्यार दिया कि उसकी स्मृति अधीर वना देती है। श्रीभाईजीके अभावमे अव मै क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? वस, अश्रुपूरित नेत्रोसे पूज्यवरके पतितपावन स्वरूपका स्मरण करते हुए उनके चरणोमे प्रणाम करता हूँ।

●

नवयुवकोंको सन्मार्ग दिखानेवाले

श्रीगोविन्दजी शास्त्री

वाईस वर्ष पहलेकी वात है। मनमे वड़ी अशान्ति थी। युवावस्था होनेके कारण सम-वयस्कोमे ही वैठना होता था, किंतु पारिवारिक परम्परा और घरमे सुलभ पुस्तकोके पढ़नेसे वह युवकोंका सङ्ग मुझे अरुचिकर था। अवस्थाके प्रभाव और यौवनके उष्णतापूर्ण उन्मादसे भरे विचारो और वार्तालापोसे मन क्रुद्ध हो जाता था। मेरी स्वयकी ऐसी विवशता थी कि अकेला रह नही पाता था और साथियोके नामपर वे ही परिचित व्यक्ति, उनके वे ही अमर्यादित और वासनाभरे वार्तालाप। वड़ी दुविधामे जीवन था। जाने किन क्षणोमे यह निश्चय कर वैठा कि इस दुनियासे दूर कही एकान्तमे गिरि-कन्दरामे जाकर उपासना की जाय, किंतु साहस नही हो रहा था। सोचा, ऐसा करनेसे पहले किसीसे पूछ क्यो न लूँ। घरमे पितामह थे——स्वर्गीय पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी शर्मा। सामने जवान खोलनेका मुझे साहस ही नही हो सका। फिर यह भी मनमे आया कि एकमात्र पौत्र होनेके कारण वे मुझे जाने नही देगे। हमारे यहाँ 'कल्याण' आता था और उसके अध्ययनमे मुझे वडी रुचि थी, अतएव 'कल्याण'-सम्पादकको ही पत्र लिखकर राय पूछनेका विचार हुआ। मैंने उन्हे एक पत्र लिखा। एक अपरिचित व्यक्तिको लिखा गया मेरा यह पहला पत्र था। मनमे संकोच भी था कि जाने वे मेरे पत्रका उत्तर भी देगे या नही। पर इतना सत्य था कि अपनी मनोभूमि और परिस्थिति मैंने पत्रमे निस्सकोच लिख दी थी। एक सप्ताहके भीतर ही मुझे उत्तर मिल गया और मुझे स्पष्ट कहा गया, 'ऐसा न किया जाय। घरसे दूर जाकर भी आदमी दूर नही जा सकता और चाहे तो घरमे रहकर भी दूर रह सकता है।' यह था पुण्यश्लोक पोद्दारजीसे मेरा पहला परिचय। उनका वह पत्र मेरे लिये आज भी अमूल्य निधि है। उस पत्रसे मुझे सही दिशा मिली। आज भी जव सप्तशतीका पाठ करता हूँ तो समाधि-सुरथके रूपमे मैं अपने आपको पाता हूँ और श्रीपोद्दारजीका वह पत्र मुझे सप्तशतीके रहस्यके रूपमे स्मरण हो आता है। न जाने मुझ-जैसे कितने अल्पज्ञोको उन्होने उवारा था।

इसके पश्चात् लिखनेकी प्रेरणा हुई। वहुत कुछ लिखा, पर प्रकाशित करनेके लिये भेजनेका साहस ही नही हो सका। जाने वह कौन-सी अज्ञात प्रेरणा थी, जिसने मुझे विवश कर दिया और मैंने कुछ पङ्क्तियाँ श्रीभाईजीके पास भेज दी। श्रीभाईजीने कृपा करके वे पङ्क्तियाँ कल्याणमे प्रकाशित कर दी। इसे देखकर कितने दिनोतक मैं हर्षविभोर होता रहा। आज सभी पत्रोंकी परिक्रमा करके आ गया हूँ, पर इसका सारा श्रेय पूज्य पोद्दारजीको ही है। इस जीवनको जो भी कुछ मिला है, वह महामना पोद्दारजीके ही कारण——यह कहनेमे मुझे गौरवका अनुभव हो रहा है। मेरी भाँति न जाने कितने नवोदित साहित्यकारोको प्रोत्साहन देकर श्रीभाईजी प्रकाशमे लाये है।

●

सेवाव्रती महामानव

श्रीनर्मदेश्वरजी चतुर्वेदी

भाईजीका स्मरण आते ही उनके स्मृति-चित्र कई रूपो और रगोमे उमडकर चल-चित्रकी भाँति मानस-पटलपर तरङ्गायित हो जाते है—एक-से-एक वढकर मोहक एव आकर्पक । उनके सम्पर्क अथवा सानिध्यमे आना सचित शुभकर्मोका सुफल था । उनसे एक वार मिलकर उन्हे भुलाया नही जा सकता था । ऐसा लगता था, जैसे किसी चिरपरिचित आत्मीय शुभचिन्तकसे मिल रहे है । उनकी मितभाषी, किंतु सौम्य मधुर मूर्तिकी छाप इतनी गहरी तथा टिकाऊ वन गयी हे कि नही लगता कि वे अव हमारे बीचमे नही है । भाईजी अनासक्त गृहस्थ होनेके साथ ही निरभिमान तथा विनयशील थे । वे सफल सम्पादक, कुशल व्यवस्थापक, नेक सलाहकार, सहृदय सहायक और समर्थ सरक्षक भी थे । वे निर्वलके सम्वल और अनुत्साहीके प्रेरणा-स्रोत थे । एक सच्चे वैष्णवके रूपमे वे हिंदू मिशनरी थे, किंतु किसी भी इतर धर्मावलम्बीके प्रति उनके मनमे असहिष्णुता न थी । नरसी भगतने 'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाणे रे' मे वैष्णवका जो लक्षण वतलाया था, उसे भाईजीने अपने जीवनमे चरितार्थ किया था । भाईजी सही अर्थमे सेवाव्रती महामानव थे ।

भाईजीके सार्वजनिक जीवनका सूत्रपात क्रान्तिकारीके रूपमे हुआ था, परतु उनके राष्ट्रीय सस्कार राजनीतिक चेतनासे अधिक सच्ची देशभक्तिकी भावनासे ही ओत-प्रोत थे । कदाचित् उनकी इसी भावनाका विकास ईश्वर-भक्तिमे लक्षित हुआ और उनकी क्रान्ति-निष्ठा परमेश्वरकी शक्तिरूपा श्रीराधाके प्रति भक्ति-भावमे केन्द्रित हुई । उनका जीवन एक अर्पित जीवन था, इसलिये फलाशारहित कर्म ही उनको अभीष्ट था । उनकी भक्ति-भावना और सकल्प-शक्ति इतनी प्रवल थी कि उनकी प्रत्येक क्रिया देवोपासनाका ही एक अङ्ग वन गयी थी । उनका कुछ अपना कहनेको नही रह गया था । परिचित-अपरिचित—सभी उनके स्नेह और कृपाके पात्र थे ।

तीस-पैंतीस वर्षोकी लवी अवधिके बीच मुझे नाना प्रसङ्गोमे भाईजीसे मिलनेके सुअवसर मिले । उनसे मिलकर सदा नयी स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती रही । श्रीभाईजीमें दायित्व-वोध इतना प्रवल था कि वे 'कल्याण' एव पुस्तकोमे किसी भूलको सहन नही कर पाते थे । उसे देखकर तिलमिला उठते थे । इसी कारण वडे-से-वडे विशेषाङ्ककी देखभाल आद्योपान्त करनेमे कभी हिचकते न थे ।

भारतवर्ष, विशेपत उत्तरभारतके धार्मिक अथवा सास्कृतिक क्षेत्रमे राष्ट्रीय महत्वकी शायद ही ऐसी कोई योजना रही हो, जिसमे भाईजीका किसी-न-किसी रूपमे योगदान न रहा हो । इस कारण वे देशकी अनेकानेक योजनाओ तथा आयोजनोसे सम्वद्ध रहते थे । मन्त्रणासे लेकर आर्थिक सहयोग देनेतकमे उनका हाथ रहता था, परतु वे इतने आत्म-निस्पृह तथा लजीले स्वभावके थे कि उसकी चर्चातकसे वे वचना चाहते थे ।

विद्यावारिधि महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजको अभिनन्दन-ग्रन्थ अर्पित करनेकी योजना वनायी गयी । सीमित साधनोसे कार्यारम्भ तो हुआ, किंतु अर्थाभावके कारण उसमे वाधा पड़ने

लगी। डॉ० सम्पूर्णानन्दका ध्यान जब इस ओर आकर्षित हुआ, तब उन्होने स्वभावतः भाईजीसे भी सम्पर्क स्थापित करनेका सुझाव दिया। श्रीगोपालचन्द्रसिहने दिल्लीसे अपनी कारद्वारा ऋषिकेश साथ चलनेके लिये मुझे प्रेरित किया। हमलोग श्रीभाईजीसे गीताभवनमे मिले। हमारी सुख-सुविधाका उन्होने वहुत ध्यान रखा। भाईजीका आतिथ्य भारतीय आदर्शोके अनुरूप था। उनके साथ 'जंगलमे भी मङ्गल' मनाना सर्वथा सम्भव था। दूसरे दिन जव हम विदा लेने गये, तव भाईजीने हमे भाव-भीनी ममताभरी विदाई दी। उनका अर्थगर्भित योगदान हमारी योजनाके कार्यान्वियनमे वडा सार्थक सिद्ध हुआ।

भाईजी लिखनेमे ही नही, बोलनेमे भी दक्ष तथा कुशल थे। उनका प्रवचन सुननेका जिसे सुयोग मिला था, वे उनकी अन्तर्भेदी एव तलस्पर्शी वाणीसे सुपरिचित है। वे सहज ही हृदयग्राही प्रभाव उत्पन्न करनेमे समर्थ थे, जिसमे ओजस्वितासे अधिक तेजस्विता थी। श्रीभाईजी-का सादा जीवन, सरल स्वभाव और परमार्थ-परायण व्यवहार हमारे लिये सदा प्रेरणाप्रद वने रहेगे। ऐसे महामानवका पुण्य-स्मरणकर हम अपनेको धन्य मानते है।

●

पथ-प्रदर्शक श्रीभाईजी

श्रीसत्यदेवजी ब्रह्मचारी

श्रीभाईजीकी ज्यो ही स्मृति होती है, त्यो ही आँसू वहने लगते है। मेरा उनसे लगभग ३० वर्षसे सम्पर्क था और मैंने उन्हे सदैव एक-सा ही स्थिर पाया। उनकी आवाजकी गम्भीरता वडी प्रभावकारिणी थी, उससे मुझ-जैसे चञ्चलबुद्धिको भी एकदम शान्तचित्त होना पडता था। श्रीभाईजीने जीवनभर लोगोको सत्पथपर चलनेकी प्रेरणा दी। ऐसे अनेक प्रसङ्ग मेरे स्वयके जीवनमे घटित हुए है। सन्यास-आश्रम ग्रहण करनेपर भी मै प्राय. सार्वजनिक हितके कार्योमे रुचि लेता रहा हूँ। जव कभी सघर्ष या कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयकी स्थिति आती, मै श्रीभाईजीसे सलाह लेता और वे कृपापूर्वक मेरा पथ-प्रदर्शन करते।

श्रीभाईजीकी आत्मीयता ऐसी थी कि उसके स्मरणमात्रसे हृदय द्रवित हो जाता है। पिछले दिनो 'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन'की स्थापनाके सम्वन्धमे भुवनेश्वरमे चर्चा चली तो वहाँके मुख्य मन्त्री श्रीविश्वनाथदासजीकी आँखोसे आँसू झरने लगे। उन्होने कहा—'पहले मेरा विचार केवल वदरीनाथधाममे ही वेद-भवन स्थापित करनेका था। चारो धामोमे वेद-भवन स्थापित करनेका प्रयास श्रीभाईजीकी ओरसे ही हुआ।'

मै भी श्रीभाईजीके आदेशानुसार ही निष्कामभावसे 'वेद-भवन-न्यास'का कार्य देख रहा हूँ। मेरा विश्वास है कि श्रीभाईजीकी प्रेरणासे ही 'वेद-भवन-न्यास'का कार्य हो रहा है और वे इसे अवश्य देखते होगे।

श्रीभाईजी-जैसे देवतुल्य मानव सदियोमे जन्म लेते है। लोगोको सन्मार्ग दिखाकर एव मानव-कल्याणमे अपना जीवन व्यतीतकर वे प्रभुके लीलाधाममे लीन हो गये। मेरे लिये पश्चा-त्ताप एव दु खकी वात है कि श्रीभाईजी-जैसे महापुरुषका साथ पाकर भी मै विशेप लाभान्वित नही हो सका।

●

श्रीभाईजीका अहैतुक प्यार

श्रीरामप्रसादजी दीक्षित

श्रीभाईजीके साथ मेरा साक्षात्कार वाईस वर्ष पहले हुआ था। प्रथम भेटमे ही मैंने उनका सहज सौहार्द प्राप्त किया। पीछे जब-जब मैं उनसे मिला, उन्होंने वही प्रेम-वर्षा मुझपर की। मुझे वे अपने अनुजके रूपमे मानकर वैसा ही व्यवहार करते। कभी भी मुझसे न कुछ चाहा, न लिया, सदा देते ही रहे। जीवनकी अनेकानेक घटनाएँ है, जिनमेसे दो-चार पङ्क्तिवद्ध करता हूँ।

उनसे मिलनेके दो वर्ष पश्चात् मैं वीमार पडा। दशा विगडती ही गयी और डाक्टर भी निराश होने लगे। मेरी पत्नीने श्रीभाईजीको पत्रद्वारा सूचना दी। भाईजीने तार दिया, जिसमे उन्होंने भगवान्‌के मङ्गलमय विधान और कृपापर विश्वास रखनेको कहा। मेरी स्थिति सुधरने लगी और मैं १०–१२ दिनमे स्वस्थ हो गया।

मेरी कन्याका वडा ऑपरेशन प्रयागमे हुआ। डाक्टरोने कहा था कि वचनेकी आशा ५० प्रतिशत है। कन्या वहुत घवरायी हुई थी। ऑपरेशन होनेपर कन्याने मुझे वताया कि ऑपरेशन थियेटरमे उसका पेट चीरनेके पहले उसने अपने समीप श्रीभाईजीको मेजपर प्रत्यक्ष वैठे देखा, वे मुस्करा रहे थे। उसकी सारी घवराहट चली गयी और ऑपरेशन सफल हुआ। हमलोग तो वाहर वैठे ऑपरेशनके समय 'नारायण' नामका जप कर रहे थे, क्योकि भाईजीने एक वार कहा था कि किसी सकटमे इस नाम-जपसे सकट-निवृत्ति हो जाती है। भाईजी उस समय प्रयागसे लगभग १५० मील दूर गोरखपुरमे थे।

लगभग १८ वर्ष पहलेकी वात है। मैं उस समय मुजफ्फरनगरमे था। भाईजी दिल्लीसे ऋषिकेश कारद्वारा जा रहे थे। रास्तेमे मुजफ्फरनगर पडता है। लगभग ३ वजे जव मैं कोर्टमे काम कर रहा था, वे एकाएक आ गये। मै उनको लेकर तुरत घर आया और वहाँ पूजाके कमरेमे भगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने वैठाया। भगवान्‌के भोग लगाकर एव थोडा जलपान करके वे चले गये। इसके वाद उस कमरेमे दो दिनतक अत्यन्त सुगन्ध आती रही, जो वाहरतक फैल जाती थी।

मेरी कनिष्ठ पुत्रीको लकवा मार गया। भाईजीको फोनद्वारा सूचना देकर मै उसे उन्हींके पास ले आया। ३ मासतक वह विल्कुल नही उठ पाती थी, पर कोई औषध नही दी गयी। जिस दिन भाईजीने अपनी इहलीला सवरण की, उसी दिन वह अपने-आप खडी होकर चलने लगी और अवतक ठीक है।

जीवनमे अनेकानेक घटनाएँ है, जिनका लिखना सम्भव नही है। यह तो उनके अहैतुक प्रेमका स्वरूप था, जो वे सवको मुक्तहस्तसे वितरण करते थे। उनके निधनसे आज न जाने कितने नर-नारी हमारी तरह ही रो रहे होगे। उनकी दृष्टिमे प्रत्येक प्राणी उनका भगवान् था और इसी भावसे वे सवकी सेवा करते थे। उन्होंने सदैव सवको दिया-ही-दिया। ऐसे दीनवन्धु, करुणा-सागर, सर्वसुहृद् कहाँ मिलेगे? षोडशगीतकी इन पङ्क्तियोके रूपमे हम उनसे प्रार्थना करते है—

मेरी त्रुटि, मेरे दोषोको तुमने देखा नहीं कभी।
दिया सदा, देते न थके तुम, दे डाला निज प्यार सभी ॥

●

भारतीय संस्कृतिका सबसे उत्तम संदेशवाहक

श्रीकार्ल जी०, लार्ष (जर्मनी)

पद्रह वर्ष पूर्व सन् १९५६मे मुझे उस महान् आत्माके दर्शनका सौभाग्य मिला था। एक व्यक्तिके जीवनकालमे १५ वर्षकी अवधि लंबी है। इस अवधिमे मेरा सम्पर्क अनेक व्यक्तियो एव महापुरुषोसे हुआ। अब अपने जीवनके उत्तरार्द्धकालमे मै यह कह सकता हूँ कि श्रीभाईजीसे मेरी भेट अत्यन्त आवश्यक थी। भारतदेशके मेरे प्रवासके प्रारम्भिक दिनोमे वम्वईमे एक भारतीयने मुझसे कहा था—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार एक विलक्षण पुरुष है'—और मैने अपने सम्पर्कमे उन्हे ऐसा ही पाया। मैने उनके रूपमे एक विलक्षण पुरुषके ही दर्शन नही किये, मुझे उनके रूपमे एक सतकी प्राप्ति हुई। जो लोग उनसे एक वार भी मिले है, वे उस उदार आत्माको कभी भूल नही सकते। मेरे प्रति उनके ये शब्द—'आप हमारे परिवारके एक सदस्य है', कोरे शब्द नही है। उनके आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य-सत्कारके कारण भारतमे मैने अपनेको कभी विदेशी-अजनबी अनुभव नही किया। इसके अतिरिक्त उनके आतिथ्य-सत्कारसे मुझे ऐसे देशका वास्तविक दर्शन हुआ, जिसका शताब्दियोसे सतो, महात्माओ एव दार्शनिकोने मानवीय अध्यात्मके एक विलक्षण मन्दिरके रूपमे निर्माण किया है। श्रीभाईजीद्वारा की गयी निर्धन तथा आर्त्त जनोकी सेवाके कार्योका महत्त्व वे ही लोग जान सकते है, जिन्हे उनकी सेवा-सहायता प्राप्त हुई है। मुझे उन प्रेरणा-स्रोतोकी तलाश थी, जिनसे भाईजी इस महान् सेवाकार्यमे प्रेरणाशक्ति प्राप्त करते थे। मैने उनकी शिक्षाओका भली-भाँति अध्ययन करनेका यत्न किया और मुझे उनकी—'आनन्द-की लहरे' नामक लघु पुस्तिकामे अपनी खोजका उत्तर प्राप्त हो गया—

"कोढ़ी, अपाहिज, दु खी-दरिद्रको देखकर, यह समझकर कि 'यह अपने बुरे कर्मोका फल भोग रहा है, जैसा किया था वैसा ही पाता है'—उसकी उपेक्षा न करो, उससे घृणा न करो और रूखा व्यवहार करके उसे कभी कष्ट न पहुँचाओ। वह चाहे पूर्वका कितना ही पापी क्यो न हो, तुम्हारा काम उसके पापको देखनेका नही है, तुम्हारा कर्त्तव्य तो अपनी शक्तिके अनुसार उसकी भलाई करना तथा उसकी सेवा करना ही है।"

ऐसे श्रेष्ठतम विचारोका उत्स कहाँ पाया जाता है? श्रीभाईजीने गीताके इस ज्ञानको कि 'सभी प्राणियोमे स्वय भगवान्का निवास है' अपने जीवनद्वारा प्रमाणित कर दिया।

उनके परलोकगमनसे हुए रिक्त स्थानकी पूर्ति कौन करेगा? इस नश्वर ससारसे उनके प्रयाणसे उन लोगोकी महती क्षति हुई है, जिनका उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क था। मै जीवत हिंदू-धर्मकी श्रेष्ठतम विशेषताओके प्रतीकके रूपमे श्रीभाईजीका सम्मान करता हूँ। लेकिन वे मात्र भारतके ही नही, सम्पूर्ण मानवताके है। आवश्यकता इस वातकी है कि उनके उपदेशोको सद्भावनामे विश्वास रखनेवाले सभी लोग सुने और पालन करे। उन्होने अपना सर्वोत्तम अशदान मानव-मुक्तिके लिये अर्पण किया।

मेरा विचार श्रीभाईजीकी पुस्तकोको जर्मन भाषामे अनुवाद करके प्रकाशित करनेका है, परतु मै अच्छा अनुवाद नही कर पाता, इसलिये यह इच्छा पूर्ण नही हो पायी है। श्रीभाईजीकी पुस्तके जर्मन लोगोके लिये भी वहुत लाभदायक होगी। श्रीभाईजी–जैसे सतोको जर्मन भापा आनी चाहिये थी। मै उन्हे भारतीय सस्कृतिका सवसे उत्तम सदेशवाहक समझता हूँ।

श्रीभाईजीकी पुस्तकोको और अपने हाथसे मुझे लिखे गये उनके अनेक पत्रोको मै उन महान् आत्माकी व्यक्तिगत धरोहरके रूपमे सुरक्षित रखूँगा।

●

महान् संत

श्री रुडोल्फ स्वेस, लूजर्न (स्विट्जरलैंड)

महान् सत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके परलोकगमनका समाचार पाकर मुझे वहुत दुख हुआ और अभी भी हो रहा है। श्रीपोद्दारजी सदा-सर्वदा मेरी स्मृतिमे वने रहेगे और उनके साथ रहनेका जो सौभाग्य मुझे मिला था, वह मै कभी नही भूल सकूँगा। उनके साथ विताये गये थोडेसे समयमे ही मैने उनका स्नेह, उनका प्रेम, उनके विचार, वल्कि उनकी जीवन-पद्धतिका परिचय प्राप्त कर लिया था।

भारत जाते हुए जेरुशलममे मुझे कैमरान नामके एक भारतीय सज्जन मिले थे। उन्होने ही मुझे गीताप्रेसका पता दिया था। अयोध्यासे चलकर मै १७–३–६३ ई० रविवारको गोरख-पुर पहुँचा। मुझे पूरा गीताप्रेस देखनेका सौभाग्य मिला। गीताप्रेस मुझे एक सग्रहालय-सा प्रतीत हुआ। मुझे आज भी सगमरमरके उन पत्थरोकी स्मृति है, जिनपर पूरी गीता खुदी हुई है। सध्यासमय जव मैने गीताप्रेसमे ही रात वितानेकी इच्छा प्रकट की, तव मुझे वताया गया कि मेरे ठहरनेकी व्यवस्था गीतावाटिकाके सामने स्थित श्रीभाईजीके अतिथि-गृहमे की गयी है।

उस आनन्ददायक वगीचे (गीतावाटिका)मे जव मै पहुँचा, तव अँधेरा फैलने लगा था। वहाँ वरामदेमे कुछ अन्य सम्मान्य व्यक्तियोके साथ वैठे हुए श्रीपोद्दारजीका मैने सर्वप्रथम दर्शन किया। मै उनसे वहुत प्रभावित हुआ। रात्रि विताकर जव मै प्रातकाल उन्हे प्रणाम करके चला, तव मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेरी कारमे खाने-पीनेका वहुत-सा सामान और ढेर सारे ताजे फल रखे हुए थे।

नेपालकी यात्रा पूरी करके मै वापस गोरखपुर ८ नवम्वर १९६३को (सम्भवत दुर्गा-नवमीके दिन) पहुँचा। वहाँ गीतावाटिकामे मेरा ऐसा स्वागत हुआ मानो कोई स्वजन परदेशसे लौटा हो। वहाँ मेरी भेट वावा श्रीचक्रधरजी महाराजसे भी हुई। श्रीपोद्दारजीके साथ मै दुर्गानवमीकी पूजामे भी सम्मिलित हुआ। उस दिन भी मै अतिथि-गृहमे ठहराया गया और दूसरे दिन पूरा दिन वहाँ विताकर सायकालकी ट्रेनसे मै वहाँसे विदा हुआ।

मुझे आज भी श्रीपोद्दारजी और उनके परिवारका स्मरण वार-वार होता है, मै प्राय उनकी तथा उनके सहकर्मियोकी प्रशसा करता रहता हूँ। मुझे विश्वास है कि उनके विचार तथा उनके कार्य उनके सम्मानित मित्रो और सहकर्मियोके द्वारा आगे भी विश्वमे फैलते रहेगे।

●

पत्रकारों एवं सम्पादकोंके प्रेरणा-स्रोत

श्रीओमप्रकाश पण्डित 'पत्रकार'

आधुनिक भारतके हिंदी-साहित्यकी सेवाके लिये जीवन सर्मपित करनेवालोमे श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दारका नाम अविस्मरणीय रहेगा।

आजसे लगभग ८ वर्ष पूर्व उनके दिल्ली-आगमनपर मुझे उनके दर्शन करनेका अवसर एक पत्रकार-सम्मेलनमें प्राप्त हुआ था। जव मै वहाँ पहुँचा, तव मै उन्हे पहचान नही सका, क्योकि मेरी धारणा थी कि 'कल्याण'-जैसे वडे पत्रका सम्पादक अच्छे तडक-भडकवाले कपडोमे बैठा होगा। मै अन्य पत्रकारोसे कुछ पहले पहुँच गया था। वहीपर मेरे परिचित एक हिंदू-महासभाई नेता मिल गये। मुझे देखते ही उन्होने मेरा परिचय श्रीपोद्दारजीसे करवाया। मै उनकी सादी वेष-भूषाको देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

'अच्छा तो आप हिदुस्थान समाचार-समितिके प्रतिनिधि है। समितिका कार्य तो सुचारुरूपसे चल रहा है?'——उनके इस प्रश्नका उत्तर यद्यपि मैंने दे दिया, फिर भी मनमे सोच रहा था कि मेरे मित्रने मेरा परिचय तो करवा दिया, किंतु प्रश्नकर्ताका नही। मै चुप रहा। स्वय पोद्दारजी मेरी भावनाको जान गये और बोल उठे——'मै हनुमानप्रसाद पोद्दार हूँ।' आश्चर्यचकित मै देखता रह गया। जिस मधुर वाणीमे उन्होने आत्मीयताके साथ अपना परिचय दिया, उससे मै अत्यन्त प्रभावित हुआ और मेरी आँखे सीधे उनके चरणोमे चली गयी। खादीकी धोती और कुर्ता——यह उनका पहनावा था।

मैने कहा——"वाल्यावस्थासे ही मुझे 'कल्याण'को देखनेका अवसर मिला है। आपने 'कल्याण'के द्वारा हिंदू-सस्कृतिकी वडी सेवा की है।" मेरे शव्द सुनकर श्रीपोद्दारजी सकुचित-से हो गये और बोले——'मैंने धूलिके एक कणमात्रके वरावर हिंदू-सस्कृतिकी सेवा की है। इच्छा तो वहुत-कुछ है, परतु स्वास्थ्य साथ नही देता।' मैंने कहा——'स्वास्थ्य इत्यादिकी चिन्ता परमेश्वरपर ही क्यो नही छोड देते? क्योकि आप तो उन्हीका कार्य कर रहे हैं।' इतना कहना ही था कि वे काफी भावुक हो उठे। तुरत बोले——'कल्याण'का सम्पादन मै थोडे ही करता हूँ। मेरी केवल अँगुली चलती है, परतु मुझे स्वय पता नही चलता कि वह कौन-सी छिपी शक्ति है, जो मेरी अँगुलियोको कलमपर ढकेल देती है और उसके पश्चात् वह धारा-प्रवाह चलती रहती है। कभी-कभी तो मै इस कार्यमे इतना लीन हो जाता हूँ कि मेरे सामने अगर कोई व्यक्ति खडा हो जाय तो मुझे उसका ध्यान ही नही रहता।'

श्रीपोद्दारजीने आगे कहा——'दु खका विषय है कि हिंदीका इतना विशाल साहित्य देशमे विद्यमान है, किंतु देशके लोगोकी रुचि इसके प्रति कम होती जा रही है। धार्मिक ग्रन्थोको तो पढे-लिखे लोग स्थान ही नही देना चाहते। हम अपनी सामर्थ्य एव शक्तिके अनुसार इसको आगे वढानेका प्रयत्न कर रहे है।'

मुझे अनुभव हुआ कि पोद्दारजीके हृदयमे हिंदी भाषा तथा धर्म-शास्त्रोके प्रति युवा पीढीकी उपेक्षावृत्तिसे एक गहरी कसक है। वास्तवमे श्रीभाईजी हिंदी पत्रकारो एव सम्पादकोके लिये एक आदर्श प्रेरक थे। उन्होने अपना सर्वस्व हिंदी और सनातनधर्मकी सेवाके लिये सर्मपित कर दिया था।

●

भक्तवाञ्छा-कल्पतरु

श्रीराधेश्यामजी खेमका

परम श्रद्धास्पद श्रीभाईजी सत-परम्पराके एक रत्न थे। जिन लोगोने श्रीभाईजीके सत्सङ्ग-का लाभ प्राप्त किया है, वे परम धन्य है।

पूज्य भाईजीको भगवत्कृपापर अटूट विश्वास था, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव वे स्वय किया करते थे और अपने सम्पर्कमे आनेवालोको भी कराते थे। कुछ वर्ष पूर्व वे काशी पधारे हुए थे। मै भी उनके दर्शनार्थ गया। प्रभु-कृपाके सम्बन्धमे चर्चा चल रही थी। पूज्य भाईजीने कहा—'प्रभुकी कृपा तो सदा अहर्निश ससारके प्रत्येक प्राणीपर रहती ही है। हमे केवल उस कृपाके अनुभव करनेकी आवश्यकता है।' हमलोगोने भगवत्कृपाकी चर्चा सुन ली। दूसरे ही दिन भाईजीके सानिध्यमे भगवान्‌की कृपाका एक प्रत्यक्ष चमत्कार भी देखनेको मिला।

पूज्य भाईजीकी प्रेरणासे उनके एक बहुत पुराने प्रेमी श्रीआनन्दरामजी जालान काशीवासके निमित्त कुछ दिनोसे काशीमे निवास कर रहे थे। उनकी यह दृढ इच्छा थी कि 'अन्तिम समयमे मुझे पूज्य भाईजीके दर्शन प्राप्त हो जायँ और उनके चरणोमे ही मै अपने प्राण-त्याग करूँ।' पर क्या यह भी किसीके वशकी बात है? वृद्धावस्था थी तथा कुछ समयसे वे अस्वस्थ चल रहे थे, किंतु अस्वस्थता सामान्य थी—कोई विशेष बात नही थी। भाईजी उनसे मिलनेके लिये उनके निवासस्थानपर गये और अत्यन्त प्रसन्न मुद्रामे जालानजीसे बातचीत की। श्रीजालानजीने अपनी आन्तरिक इच्छा श्रीभाईजीके सामने प्रकट की। भाईजी मुस्करा दिये। पर जिस रात्रिको भाईजी उनसे मिलने गये, उसी रात्रिको अचानक तीन बजे श्रीआनन्दरामजीकी स्थितिमे विशेष परिवर्तन हुआ। ऐसा लगा कि उनके लिये भगवान्‌के घरका बुलावा आ गया है। इसका अनुमान स्वय श्रीआनन्दरामजीको भी होने लगा। उन्होने कहा—'श्रीभाईजीको बुला लिया जाय।' भाईजीको तत्काल इसकी सूचना दी गयी। सूचना प्राप्त होनेके बाद पूज्य भाईजीको वहाँ पहुँचनेमे देर ही क्या हो सकती थी। उनके पहुँचते-पहुँचते ही श्रीआनन्दरामजीका पाञ्चभौतिक शरीर शान्त हो गया।

अप्रत्याशितरूपमे श्रीजालानजीकी अन्तिम मुराद पूरी हुई। मणिकर्णिका-घाटपर चिता लगायी गयी और उसपर श्रीआनन्दरामजीका पार्थिव शरीर रखा गया। ज्यो ही अग्नि-सस्कारका समय आया कि जिन ब्राह्मणदेवको उनके पुत्रोकी अनुपस्थितिमे अन्त्येष्टि-सस्कारके लिये बुलाया गया था, उन्होने अग्नि-सस्कार करनेसे इन्कार कर दिया। एक नयी समस्या खडी हो गयी। सभी लोग उन्हे समझाने लगे। इस प्रकार दस-पद्रह मिनट उन्हे समझानेमे लग गये, पर वे तैयार नही हुए। उसी क्षण एक ईश्वरीय चमत्कार और दिखायी पडा। श्रीआनन्दरामजीका एक पुत्र—जो बिहारमे रहता था तथा जिसके आनेका न तो कोई समाचार था, न कोई आशा थी और न कोई कल्पना थी—उसी समय आकर चिताके समक्ष खडा हो गया। श्रीजालानजीका

दाह-संस्कार पुत्रके ही द्वारा होना था। यदि ब्राह्मणदेव उस क्षण अस्वीकार न करते और उन्हे समझाने-बुझानेमे दस-पंद्रह मिनटकी देर न होती तो पुत्रको यह अवसर कैसे प्राप्त होता। सभी लोग आश्चर्यचकित थे। समस्याका समाधान भगवान्ने किस रूपमे दिया, यह कोई समझ नही पा रहा था।

पूज्य भाईजीने गत दिवस इतना ही कहा था—'प्रभुकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करो।' इस घटनाद्वारा सत्यका प्रत्यक्षीकरण हो गया। साथ ही यह ज्ञात हुआ कि सतके प्रति की गयी सच्ची अभिलाषा भगवान् पूर्ण करते है।

●

वे सदा जीवित रहेंगे

श्रीश्रीकृष्ण अग्रवाल

परमपूज्य श्रीभाईजीके सम्पर्कमे आनेका मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनसे मुझे जो प्राप्त हुआ है, वह वाणीमे व्यक्त होना सम्भव नही है।

बात सवत् २०१४की है। हमारी मिलके स्टाफके कुछ सदस्य मिलके गेटपर भूख-हडताल कर रहे थे। मुझे व्यवस्थाकी नयी-नयी जिम्मेवारी मिली थी। कुछ अनुभव भी नही था। मै काफी घबरा भी गया था। अचानक मनमे आया कि पूज्य भाईजीसे फोनपर बात करके उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहिये। स्टाफके जो सदस्य हडतालपर थे, उनका पक्ष न्यायसगत नही था। पूज्य भाईजी तो नवनीतके समान कोमल हृदयके थे। उनसे बात करनेमे यही झिझक थी कि वे यह न कह दे कि 'इस सारे मामलेको मिल-जुलकर शान्तिसे सलटा देना चाहिये।' फिर भी मैने उनको टेलीफोन किया। वे उन दिनो रतनगढ थे। फाल्गुन कृष्ण ५ स० २०१४की रातको करीब ८॥ बजे उनसे बात हुई। उन्होने मुझे बहुत हिम्मत बँधायी तथा कहा—'घबराना नही, सब ठीक हो जायगा। यदि अपनी बात न्यायपूर्ण हो तो हड़ताल करनेवालोके दबावमे न आकर खूब दृढतासे काम लेना, पर कभी किसीका अहित न सोचना, न करना।' मुझे ऐसा लगा कि स्वय भगवान्ने ही मुझे सफल होनेका वर दे दिया। कुछ समयके बाद हडताल स्वयमेव समाप्त हो गयी तथा सबने हडताल करनेवालोको ही दोषी ठहराया।

जीवनमे और भी कई ऐसे प्रसङ्ग आये है, जब पूज्य भाईजीके आशीर्वादसे मेरी कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ हल हो गयी है। पूज्य भाईजीको स्मरण करके भगवान्से जब कभी मैने याचना की, कभी निराश नही हुआ।

पूज्य भाईजीने अपनी वाणी तथा आचरणद्वारा मानवकी आत्माको ऊँचा उठानेमे बहुत मदद की है। लाखो-लाखो व्यक्तियोको आपके जीवनसे प्रेरणा मिली है तथा उन्होने अपनी जीवन-धाराको आध्यात्मिकताकी ओर मोडा है। आनेवाली पीढी कैसे विश्वास करेगी कि इस धरापर एक ऐसे महान् पुरुषका आविर्भाव हुआ था! समयके प्रवाहके साथ हम अपने बड़े-बडे नेताओ, सम्राटो तथा मन्त्रियोको, जिनके समाचारोसे आजके समाचार-पत्र भरे रहते है, भूल जायंगे, पर पूज्य भाईजी-जैसे महापुरुष तो मानवके अन्तरमे सदाके लिये जीवित रहेगे।

●

सरलताकी मूर्ति

श्रीगोकुलदासजी डागा

बात सन् ५४की है। स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजके सानिध्यमे गोहत्या-निरोध-आन्दोलन कलकत्तामे चल रहा था। समाचार मिला कि किसी कार्यवश पूज्य भाईजी हनुमानप्रसादजी पोद्दार कलकत्ता आये हुए हैं। स्थानीय नवयुवक कार्यकर्ताओने उनके आगमनका लाभ उठाना चाहा ओर उक्त अवसरपर एक प्राइवेट मीटिंगका आयोजन किया।

दिनके ३ बजे मीटिंग प्रारम्भ होनेवाली थी। पूज्य भाईजीके अलावा कुछ विशिष्ट कार्यकर्त्ता-गण आमन्त्रित थे। प्राय सभी आ गये थे, पर भाईजीका कोई पता नही था। ३ बज चुके थे। सभी लोग भाईजीके इतजारमे थे। अन्तमे करीब ३॥ बजे एक सज्जन बोल उठे—'भाईजी न मालूम आये न आये, मीटिंग चालू कर देनी चाहिये।' इतनेमे कमरेके द्वारके पास ही बैठा सीधा-सादा लिबास पहने एक वृद्ध व्यक्ति बोल उठा—'मैं तो आ गया हूँ।'

सुनते ही हम सब अवाक् रह गये। हममेसे कोई भी व्यक्ति पूज्य भाईजीको चेहरेसे नही पहचानता था। अत उस सीधे-सादे व्यक्तिको द्वारके पास बैठा हुआ देखकर हमलोगोने न तो कोई आपत्ति की और न ज्यादा परिचय लेनेकी आवश्यकता समझी।

पर जब मालूम हुआ—ये ही है पूज्य भाईजी, तब हम सभी बडे शर्मिदा हुए और आदरपूर्वक उन्हे उनके लिये निश्चित स्थानपर बैठाया।

●

वे सबके अपने थे

वे सबके अपने थे—सबके बाबूजी-भाईजी-नानाजी थे, सबके प्राणोके स्पन्दन थे। गीता-वाटिकाके प्राण थे। आज उनके अभावमे गीतावाटिकाका पत्ता-पत्ता, कण-कण उनके लिये क्रन्दन कर रहा है। उनके अभावकी पूर्ति ससारमे हम लोगोके लिये तो कोई भी करनेवाला नही है। वे चलते-फिरते भागवतशास्त्र थे। अष्टादश पुराणो, सारी श्रुतियो एव उपनिषदोका सार उनके अन्दर मूर्त था। वे वाणीसे अमृत उँडेलते रहते थे। जिसकी ओर एक बार देख लेते, उसे ऐसा लगता मानो कौन-सी निधि मिल गयी। वह सदाके लिये निहाल हो जाता था। ऐसा था उनका प्यार।

बस, ससारके कण-कणमे ये आँखे उन्हे देखनेकी सतत चेष्टा करती रहे। उनकी पावन स्मृति ही हमलोगोके लिये अब परम धर्म है। उनकी पावन स्मृतिमे ही सुखानुभूति होती है। बाकी सब ओर निराशा-ही-निराशा है। कही कोई अपना नही दीखता, जो अपने थे, वे चले गये। अब उस रूपमे वे हमारे साथ नही है। यो तो वे नित्य ही हमलोगोके साथ है।

—सावित्री बाई सेकसरिया

●

श्रद्धाञ्जलि

देश और संस्कृतिके ये तुम चिर-विश्वासी ।
राधा-माधव-सदित खिंची मनमें रेखा-सी ॥
'रामचरितमानस' नित मानसमें लहराया ।
गीताका संदेश कोटि कण्ठोंसे गाया ॥
तुम तो लीला-लीन अब नित्य हो गये 'रास'में ।
भाईजी ! श्रद्धा तुम्हें अर्पित है हर साँसमें ॥

—डॉ० रामकुमार वर्मा

●

स्नेहमूर्ति

श्रीमती शारदादेवी त्रिवेदी

स्नेह-स्रोत सूख गया !

जीवनके उषाकालमें ही, जब कि मनुष्यका व्यक्तित्व किसी अदृष्ट गन्तव्यकी ओर उन्मुख रहता है, मुझे उनके अत्यन्त निकट आनेका, रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। बचपनके सरल और कोरे कागज-जैसे मनपर पूज्य बाबूजीकी स्नेहमयी छवि सहज अङ्कित हो गयी—उनके प्रति अपनेपनका भाव अनायास प्रगाढतम होता गया और बाबूजीने भी वैसा ही स्नेह सदा दिया। हँसने-खेलनेके दिनोंमें ही पितृ-वियोगका क्रूर आघात लगा—परतु बाबूजीको पानेके बाद उनके स्नेह-पयोनिधिमें डूबनेपर इस महान् दुःखका भी विशेष भान नहीं हुआ।

समय बीतता गया और उनकी स्नेहमयी छत्रछायाके नीचे रहकर मैं बढ़ने लगा। न जाने कौन-सा सम्मोहन था उनमें, जिससे खिंचा रहनेके कारण कई बार बाहर जानेकी बात सोचनेपर भी, कई बार इधर-उधर जानेपर भी उनकी सन्निधिमें ही रहनेका सुयोग बनता रहा और बाबूजीका अद्भुत स्नेह ही मुझे निरन्तर मिलता रहा।

आश्चर्य होता है कि किसीको इतना स्नेह कोई दे ही कैसे सकता है। परतु बाबूजी तो स्नेहके अगाध सागर थे और उस प्रेम-वारिधिके चरणोंमें सिर रख देनेके लिये हृदय आकुल रहता था।

स्नेहदानकी उनकी यह अपूर्व पद्धति मेरे लिये विलक्षण थी। आज दुर्भाग्यवश उनके पार्थिव कलेवरके अन्तरालसे अभिव्यक्त स्नेहस्रोत सूख चुका है, तथापि मैं अनुभव करता हूँ कि उनका स्नेह सतत मेरे साथ है, भविष्यमें भी अवश्य रहेगा और यही मेरी निधि है—यही मेरा सम्बल है।

—राधेश्याम पालडीवाल

●

हे वाटिकाके चाँद ! तेरा अनजाना परिचय !! तेरा अनगाया गीत !!!

श्रीराधेश्याम बंका

यदि अपना परिचय देनेकी चाह स्वयं तुझमें न हो तो कौन तुझे समझ सकेगा, किसमें सामर्थ्य है, जो तुझे जान सके। तुम्हारे स्वरूपको तभी दूसरा जान सकेगा, तुम्हारा स्वरूप तभी दूसरेकी पहुँचके अंदर आ सकेगा, जब तुम स्वतः स्वयंका परिचय दो। सब कुछ तुम्हारे ऊपर है। चकोर-चकोरी चाँदको तभी देख पाते हैं, जब चाँद स्वयंको दिखा देना चाहे। चाँद चाहे अपनी केवल एक कला ही दिखाये या केवल दो कलाएँ दिखाये अथवा सम्पूर्ण कलाएँ दिखाये, चकोर-चकोरी उतना ही देख पाते हैं, जितना चाँद दिखाना चाहता है, और सोलहों कलाओंमें उदित होकर भी यदि चाँद अपने ऊपर मेघका आवरण डाल ले तो क्या चकोर-चकोरी उसे देख सकेंगे ? इसी प्रकार हे चन्द्र-प्रभामय ! यह सब कुछ तुम्हारी चाहपर निर्भर है। स्वयंको न दिखाओ, न जनाओ, थोड़ा जनाओ, ज्यादा जनाओ, पूर्णतः जनाओ या पूर्णतः प्रकट होकर भी आवरण डाल लो, रह-रहकर छिप जाओ—यह सभी कुछ तुमपर निर्भर है। कृपामय ! यह सब तुम्हारी चाह और कृपाके आश्रित है। तुम्हारी चाह जब होगी, तभी तुम्हारे चकोर-चकोरी तुम्हें देख पायेंगे, जितने अंगमें दिखानेकी चाह होगी, उतने ही अंगका दर्शन सम्भव होगा। सुहृद् ! अपने इस निज-जनकी मनोकामनाको पूर्ण करनेकी चाह तुममें कभी उदित होगी क्या ?

× × ×

सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

तुमने स्वयंको कितना छिपाया, कितना चुराया, कितना दुराया, पर आवरण रह न सका। तेरी अनजानी वातोको तेरे अधरोके हास्यने, तेरे नयनोके लास्यने अनजाना नही रहने दिया। शशिके सुनहले विलासने और रूपहले प्रकाशने शशिको अनावृत कर ही दिया। मेघोकी गलियोमे चाँद छिपता रहा, लुकता रहा, पर कवतक ? अव तो वात चुपचाप फैल चुकी; तभी तो सभी तेरा गीत गा रहे हैं ?

आज सभी तेरा गीत गा रहे है।

कोयलकी कूकने तेरी कहानी बेलाके फूलसे कही, पर कही किस प्रकार ? कही डरते-डरते कि कोई सुन न ले—कही आधी रातके समय, कही वनके सुनसान एकान्त प्रान्तमे। पर बेलाका फूल सिहर उठा, खिल उठा। और देखो न ! आत्मविभोर बेलासे अनजाने ही तेरी गाथाकी गन्ध विखर रही है, जिसे तनमे लपेटती जा रही है वायु, और अव शिष्टाशको समेटती जा रही है दूर्वादलावली। पवन कानो-कान कुछ कह जाता है और सुन लेती है लताएँ। लताएँ झूम-झूमकर कुछ गुनगुना रही है और वृक्षोकी डालियाँ झुक-झुककर सुन रही हैं।

आज प्रकृतिके प्राङ्गणमे तेरा गीत गुनगुनाया जा रहा है।

अरे, यह क्या ? आम्र-वृक्षोकी पत्रावलियोका समूह भी तेरी ही चर्चा कर रहा है। लताएँ फूलती जा रही है और तेरी चर्चा फैलती जा रही है। लताओके कुसुम निखरते जा रहे है और तेरा अनजाना सौरभ अनजाने विखरता जा रहा है। प्रकृतिका प्रत्येक दल, प्रत्येक पल तेरा ही गीत गा रहा है। प्रत्येक स्पन्दनमे तेरी ध्वनि है। तेरा अनजाना परिचय आज सभीने जान लिया। तेरा अनगाया गीत आज सभीके कण्ठोमे गूँज रहा है।

आज सभी तेरा गीत गा रहे हैं।

●

'भाया राजी है ना' ?

'भाया, राजी है ना, घरमेसे राजी है ना'—कमरेमे प्रवेश करते ही, सारे कार्योसे विरत होकर, स्नेह-सिक्त नयनोसे अनजाने ही, अनचाहे ही, पता नही क्या-कितना देकर विभोर कर देते थे वाबूजी। घरके प्रत्येक व्यक्तिका नाम लेकर कुशल पूछते थे और काम करते-करते बीच-बीचमे धीरेसे यो देख लेते थे—मानो कह रहे हो—चिन्तित क्यो हो, मै जो हूँ। और सचमुच-सचमुच उस क्षण चिन्ताकी छायाका लवलेश भी नही रहता था। उनके वरद हस्तका स्पर्श होते ही समस्त मानस-परिताप विगलित होकर वह जाते थे और कर्ण-पुटोमे उनका मधुसिक्त स्वर जाते ही क्या हो जाता था—इसकी व्याख्या वाणी नही कर सकेगी। वह तो अनुभव ही किया जा सकता था—गूँगेके गुडकी भाँति। हम सभी उस स्नेह-सागरमे डूबे हुए, इतराते हुए, जैसे मनमे आता, करते थे। मनमे एक अहकार लेकर, अभिमान लेकर, अनुभूति लेकर कि यह स्नेह-सिन्धु हम सभीका है, प्रत्येकका अपना है, केवल हमारा है।

परतु नियतिका क्रूर हास्य ! विधाताको हमारा यह अहकार अखर गया, दैवके मनमे

हमारे इस अनूठे सौभाग्यसे ईर्ष्या हो गयी और हम सब लुट गये। हमारे अपने—हमारे सर्वस्व बाबूजी कालके कराल कुचक्रके अन्तर्गत हमसे छीन लिये गये। हमारा सुहाग लुट गया। वही गीतावाटिका है, वही कोठी है, वही कमरा है; पर सब सूना है—एक विधवाकी माँगकी तरह।

बाबूजी, हम सभी व्यथित है। जिनके चेहरेपर विषादकी छाया देखकर भी आप अपना समग्र अध्यात्म ताकपर रखकर एक साधारण मनुष्यकी तरह हमलोगोके कुशल-क्षेमके लिये चिन्तित हो जाते थे, पास बुलाकर सान्त्वना देते थे, सहलाते थे, दुलराते थे—जबतक हमारा मन सामान्य नही हो जाता था, आज उन सभीका हृदय क्रन्दन कर रहा है, पर आप अपने मधुवर्षी नयनोको निमीलित किये निस्पन्द क्यो है ? एक बार, सिर्फ एक बार तो पुन उसी भाँति दुलरा लीजिये। गोदीमे सिर रखवाकर प्यारसे सहला दीजिए। गलत-सही—जब जैसे जो चाहा आपने दिया और हम सभी उस अनोखे प्यारके उन्मादमे सब कुछ बिसरा बैठे, अवहेलना कर बैठे आपके आदेशोकी, और शायद इसीलिये आप हम सबसे रूठ गये है।

यो न रूठो, बाबूजी ! आखिर तो हम नादान आपके है—केवल आपके। बस, एक बार तो कह दीजिये—'क्यूँ भाया राजी है ना'। अपना वरद हस्त रखकर एक बार सिर्फ एक बार .. ..

—दाऊलाल कोठारी

●

पावन-स्मरण

लगता है पल-पलमें ऐसा, तुम चल करके आओगे।
स्नेह-दानके द्वारा अनुपम, देव, हमें अपनाओगे॥
जब आती है याद तुम्हारी, मन रोकर रह जाता है।
हम है स्मरण तुम्हारा करते, हृदय सरस हो जाता है॥

जड़-चेतनमें व्याप्त रहे हो, नित्य तुम्हारी है सत्ता।
बिना तुम्हारे इङ्गितके हिल सकता नहीं एक पत्ता॥
हरि-लीलामें नित्य-लीन तुमसे जग जीवन पाता है।
हम है स्मरण तुम्हारा करते, हृदय सरस हो जाता है॥

स्नेहासीस हमें दो अपनी, यह सौभाग्य हमारा है।
सत्पथपर वरदान तुम्हारा, जीवनका ध्रुवतारा है॥
प्रेमदान करते रहते हो, प्रेम हमारा नाता है।
हम है स्मरण तुम्हारा करते, हृदय सरस हो जाता है॥

—जगदीशप्रसाद शर्मा

●

उन्हींका पाला-पोसा

क्या लिखूँ—आजसे ४० वर्ष पूर्व मै एकदम अनाथावस्थामे वाबूजीके पास आया था। पिताकी मृत्यु मेरे बचपनमे ही हो गयी थी। चाचाची (दुजारीजी)ने पढाया और वे ही मुझे भाईजीके सम्पर्कमे लाये। गीताप्रेसमे काम करता था—भाईजीकी सेवाका पूरा मौका मुझे मिलता था। उन्होने भी अपना पूरा स्नेह मुझे दिया। अपने परिवारके सदस्यकी भाँति ही वे मुझे समझते थे। मेरा उनसे सम्वन्ध क्या था, कह नही सकता, क्योकि वे ही मेरे सब कुछ थे। बाबूजी हमेशा 'भैया' कहकर पुकारते थे। इन दो अक्षरके सम्बोधनमे इतना प्यार भरा रहता था कि सुनकर मन एकदम गद्गद हो उठता था। मै भी उनका आश्रय एव प्यार पाकर अपने सभी दु खोको भूल गया था। मै खुद तो क्या, मेरे वच्चे भी उन्हीकी छत्रछायामे पले है। मेरी तो सामर्थ्य ही क्या थी, उन्हीकी कृपासे आज सभी वच्चे योग्य हो गये है। उनके रहते मैने किसी कामकी चिन्ता नही की। उन्हीकी कृपासे सभी कार्य सानन्द सम्पन्न होते आये है। मेरा वडा सौभाग्य है कि मुझे ऐसा आश्रयदाता मिला। बहुत विश्वास था उनका मुझपर।

लगभग दस वर्ष पूर्व मेरे सिरपर काफी जोरकी चोट लगी थी। वचनेकी कोई आशा न थी। सभी आशा छोड चुके थे, पर शायद कुछ दिन उनकी सेवा करनेका सौभाग्य और प्राप्त होना था और वाबूजीको भी मेरा अभाव सह्य न था। इसीलिये उन्होने मुझे जीवनदान दिया। इससे वढकर और क्या कृपा हो सकती है? यहाँतक कि जीवनके अन्तिम दिनोमे—जवकि उनकी हालत काफी खराव थी, तव भी—उन्होने मुझे याद किया।

क्या कहूँ, मै तो उन्हीका पाला-पोसा हूँ। एकदम अनाथ आया था—उन्हीके चरणोमे पला, उन्हीके सामने गार्हस्थ्य-जीवनमे प्रवेश किया और अव यही इच्छा है कि जीवनके कुछ दिन—जो वच गये है, उन्हीकी स्मृतिमे वीत जायँ।

—दुलीचन्द दुजारी

●

यही हमारा सौभाग्य है

क्या समुद्रको सीपसे उलीचा जा सकता है? क्या एक चीटी एक विशाल पर्वतको नाप सकती है? समुद्रकी गहराईकी क्या कोई थाह है?

वाबूजीका चरित अपार है। यह ग्रन्थ क्या, उनके कार्योपर ऐसे कई ग्रन्थ तैयार हो जायँ तो भी उनकी महिमाका पूरा वर्णन नही हो सकता। पर उनका यत्किंचित् पावन-स्मरणकर हम अपने आपको पवित्र कर ले—यही हमारा सौभाग्य है।

—हरिकृष्ण दुजारी

●

अनुपम आकर्षक स्नेह-प्रतिमा

परमश्रद्धेय पूज्यचरण श्रीभाईजीका सर्वप्रथम दर्शन मुझे ८-९ वर्षकी अवस्थाम अपने गाँव लोसल (राजस्थान)मे हुआ। मेरे पूज्य पिताजी वैकुण्ठवासी श्रीरामकिशनजी कावराके प्रेमाग्रह-के फलस्वरूप वे जसीडीहमे भगवद्दर्शन होनेके पश्चात् सत्सङ्ग-प्रचारके हेतु परमपूज्य श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ वहाँ पधारे थे। उस समय उन दोनो महान् विभूतियोका पावन दर्शन करके एव पूज्य श्रीभाईजीकी 'परम मधुर युगल नाम—राधाकृष्ण सीताराम'की कीर्तन-ध्वनि सुनकर मेरा मन अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया और मुझपर उनके भक्ति-भावकी अमिट छाप पड गयी। पूज्य पिताजी प्रारम्भसे ही 'कल्याण' मँगाया करते थे, अत उसमे दिये हुए सुन्दर, मनोहर चित्रोको और भक्त-चरित्रोको देख-पढकर तो वह छाप और अधिक गहरी हो गयी। 'कल्याण'के प्रति मेरा आकर्षण इतना वढा कि मै उसके लेखो और चित्रोकी प्रतिलिपि करके उनका एक 'कल्याण'-जैसा ही अङ्क वना लेता और उसे ही वारवार पढकर मुग्ध होता रहता था।

कुछ वर्षो वाद काशी आनेपर एक वार आग्रह करके पूज्य पिताजीके साथ गोरखपुर गया। वहाँ श्रीभाईजीके दर्शन एव सत्सङ्गसे मै और भी अधिक प्रभावित हुआ। वादमे मै चूरू (राजस्थान)के ऋपिकुलमे पढने लगा। वहाँ श्रीभाईजीका कभी-कभी आगमन होता था, उनके वहाँ भक्तिरसपूर्ण प्रवचनोको सुनकर मेरा मन उनकी ओर इतना आकृप्ट हो गया कि उनके निवन्ध-ग्रन्थ 'तुलसीदल' और 'नैवेद्य'को ही वारवार पढता रहता। मै उनके ग्रन्थोके आशीर्वादसे ही कुछ सीख पाया हूँ। श्रीभगवान्की कृपासे मुझे भाईजी-जैसे भगवत्प्राप्त महापुरुषका सम्पर्क प्राप्त हो गया।

वहाँसे पढकर आनेपर मेरी इच्छा गीताप्रेसमे ही कार्य करनेकी प्रवल हो गयी और मै कुछ दिन गीतावाटिकामे, 'कल्याण'-सम्पादकीय विभागमे काम सीखने लगा। उस समय पूज्य श्रीभाईजीका विलक्षण भगवत्प्रेममय स्वरूप एव उनकी अद्भुत प्रतिभासम्पन्नता, कार्य-पटुता, सम्पादन-कौशल और सवके प्रति क्षमापूर्ण निश्छल प्रेम-व्यवहार आदि वैशिप्टच लोकोत्तर रूपमे दृप्टिगोचर हुआ, जो मनपर एक सरस प्रभाव जमाये हुए है। मुझसे वहुत वडी-वडी गलतियाँ होती रहती, किंतु वे ऐसे विशाल हृदयके थे कि उनको अपनेमे ही लीन कर लेते थे।

परमपूज्य श्रीसेठजीकी एव श्रीभाईजीकी मेरे प्रति जो आत्मीयता और स्नेह था, उसको शब्दोमे व्यक्त करना सम्भव नही है। वे दोनो ही मुझे पुत्रवत् प्यार करते थे। वे दोनो ही महामानव चले गये ! अव तो उनकी अनुपम मूक-आशीर्वादमयी और स्नेहभरी मुख-मुद्राकी पावन स्मृति ही परम कल्याणप्रद सम्वल रह गयी है।

—वासुदेव कावरा

●

मेरे बाबूजी !

क्या लिखूँ ? क्या कहूँ ? मै मामूली पढ़ा-लिखा हूँ, दूसरे, लिखनेकी तो बात ही क्या, उनकी स्मृति आते ही आँखे डबडबाने लगती है, बुद्धि कुण्ठित हो जाती है और प्राण रो उठते हैं। लगता है—रहा ही क्या है मेरे पास, जिसे दूँ—मेरा तो सर्वस्व लुट चुका है, अब क्या कहना और क्या सुनना .. ...

अल्हड बचपनको पारकर यौवनकी देहलीमे कदम रखनेके पूर्व ही सेहरा बाँधकर जब मैंने रतनगढकी हवेलीमे प्रवेश किया . ... शुभ्र खादीकी धोती और कुरतेके सादे परिधानमे बाबूजीका रूप मुझे चुम्बककी भाँति अपनी ओर आकर्षित करने लगा. .. . . मन-प्राणोपर एक विचित्र सम्मोहन-सा छा गया। अनजाने ही अपना सब कुछ समर्पण कर डालनेकी भावना बलवती हो उठी . और एक अनिर्वचनीय आनन्दसे हृदय भर उठा। स्नेह किसे कहते हैं—जीवनमे प्रथम बार मै अनुभव कर पाया. . ...बिदाके समय अपनी लाड़िली बेटीको कण्ठसे लगाये झर-झर झरते नयनोने दूसरी अमिट छाप डाल दी और मै सर्वथा अवश हो उठा .... .स्नेहके पयोनिधिमे ऐसा डूब गया कि लाख हाथ-पैर मारनेपर भी उससे बाहर आना मेरे वशकी चीज नही रही। लाल रोलीका टीका लगाकर अपने वरद हस्तमे शुभ्र अक्षत लेकर जब अपनी हथेली बाबूजीने मेरे मस्तकपर रखी .. .. मै यन्त्रवत् उनके चरणोमे झुक पडा . . . और उनके अनुपम स्नेहकी शीतल छत्रछायाने मुझे पूर्णरूपसे आच्छादित कर लिया . .उस क्षणसे लेकर आजतक बाबूजीने मुझे जो स्नेह दिया है—किन शब्दोमे उसका वर्णन करूँ मै ? बाबूजीके रूपमे मुझे क्या मिला ?—किसे बताऊँ ? पर आज वे ही बाबूजी मुझे छोडकर चले गये . . . और इस सांघातिक पीडाको भी मेरा पाषाण-हृदय सहन कर गया इससे अधिक स्नेहहीनताका प्रमाण मै दे ही क्या सकता हूँ !

मेरे सरक्षक, मुझे सलाह देनेवाले, मुझे स्नेह देनेवाले. मेरे सर्वस्व थे मेरे बाबूजी ! अपनी प्रत्येक बात मै उनसे कहकर ऊहापोहरहित हो जाता। उनके सामने मै अबोध शिशुकी भाँति था—उत्तरदायित्वका भार था उन कधोपर, जो सर्वसमर्थ थे। अब बाबूजी सम्पूर्ण उत्तर-दायित्वका वह भार मुझ अनुभवहीनपर डालकर चले गये—कैसे निभा पाऊँगा इसे मै ? मेरी पूजनीया माँजी, बाबूजीकी लाडिली बेटी और बाबूजीके अनुपम वात्सल्यमे आपाद-मस्तक डूबे उनके बच्चे—बाबूजी उनकी सँभाल मुझे दे गये है। मै तो सबकी ओरसे सर्वथा निश्चिन्त था—और उनको भी बाबूजी-सा कल्पवृक्ष सहज प्राप्त था—अब कैसे सँभालूँगा इन्हे मै ? बाबूजीके स्नेह-रससे सिञ्चित रहकर ही मै तो स्वय भी चल रहा था—आज उनकी अनुपस्थितिमे मै तो स्वय ही अनाथ हो चुका हूँ। मै तो स्वय ही अँगुली पकडकर चलता था—और मेरा वही सहारा मुझसे छिन गया .

बाबूजी छोडकर चले गये जीवनके सम्पूर्ण सुख-स्वप्न टूट गये। अब तो स्नेह-हीनता का निविड अन्धकार मुझे चारो ओरसे घेरे हुए है—रास्ता नही दीख रहा है। व्यथासे मन-प्राण फट जाना चाहते हैं, और एकाकी मै पद-पदपर ठोकर खाता चल रहा हूँ !

—परमेश्वरप्रसाद फोगला

●

बिछुरे पितु कें जग सूनौ भयौ

व्यथासे फटते प्राणोंकी लेखनीको हृदयके हाहाकारकी कृष्ण मसिमें डुबोकर जो दो शब्द लिखनेका प्रयास करती हूँ, अनायास दर-दर बहती अश्रुकी प्रवाहिणी उसे भी धो दे रही है। पर . आज... आज कौन पोछेगा इन आँसुओंको . . . . . अब मैं अनाथ जो हो चुकी हूँ। मेरे सुखके लिये सतत प्रयत्नशील रहनेवाले. मेरे इस लहलहाते हँसते उपवनको स्नेह-सुधासे सींचनेवाले इसकी रक्षा करनेवाले मेरे बाबूजी तो मुझे छोडकर चले गये...... अब मेरे पास रहा ही क्या ? उनकी उपस्थितिमे राज-पुत्री-सी रहनेवाली मैं आज तो सर्वथा भाग्यहीना हूँ। मेरे पास तो निधि वे थे . बस उनका था . . और वह अनमोल निधि ही मुझसे छिन गयी।

बाबूजी चले गये . . . . . मुझे छोडकर मेरे बाबूजी चले गये। वे बाबूजी, जो मुझे कभी उदासतक नहीं देखना चाहते थे. आज जब वे ही मुझे फूट-फूटकर रोते देखकर भी मुझपर सदय नहीं होते कण्ठसे लगाकर नहीं पुचकारते . .अपना अमोघ वरद हस्त मेरे सिरपर नहीं रखते . . मैं रोऊँ भी किसके सामने. . . मेरी रुचिका आदर करनेवाले मेरी सुननेवाले तो थे मेरे बाबूजी . . अब तो यह अरण्य-रोदन ही है।

जगत्मे आँख खोलनेके क्षणसे लेकर अबतक मैं अपने बाबूजीके स्नेहके ऐसे चक्रव्यूहमे रही. जहाँसे बाहर मैं निकल ही न सकी ..... इस दुःखालयके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक समझ ही न सकी . .. इस परिधिमे निश्चिन्तता मेरी सहचरी थी और मैं इठलाती फिरती थी। उनका निरवम स्नेह सर्वाङ्गपूर्ण था। मुझे अन्य किसीकी आवश्यकता ही नहीं थी। पर हाय रे आज मेरा वह चक्रव्यूह टूट गया है . . . मेरा रक्षा-कवच लुट गया है . . . . मेरी चिरसखी निश्चिन्तता मुझ अभागिनका साथ छोड़कर भाग चुकी है . . . अवश्य ही व्यथा और आँसू आजीवन मेरा साथ निभानेको दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं।

बाबूजीके अनुपम अनाविल विशुद्ध स्नेहके स्थानपर आज मेरे पास हैं आँसू और टीस . जो मेरे मन-प्राणको मथे डालते हैं. . . मेरा सर्वस्व लुट गया। जिनके प्राणोंसे मैं अनुप्राणित हुई ... .जिनकी स्नेहमयी छत्रछायामें मैं अबतक फली-फूली उनके निस्पन्द हो जानेपर भी मैं निष्प्राण न हो सकी ... . मेरे निर्लज्ज प्राण इस शरीरका परित्याग न कर सके। मेरा वज्रनिर्मित हृदय नहीं फट सका। मैं प्रस्तर-प्रतिमा-सी देखती रही और बाबूजी मुझे छोडकर चले गये।

बाबूजी

आप-सा पिता और मेरी स्नेहमयी जननी-सी माँ . इन्हे प्राप्तकर मैं धन्य हो उठी थी। परंतु उस स्नेहशीला जननीके स्नेहपूर्ण नयनोंसे भी बह रही है आँसुओंकी धारा . उनका गरिमामण्डित मुख म्लान हो रहा है—पर आज मेरी राजरानी माँकी अन्तर्व्यथाको कौन समझे ? उनके जीवनमें सुखकी सरिता प्रवाहित करनेवाले तो थे आप और केवल आप आज वह किसे कहे ? बाबूजी मेरी माँको छोड़कर आप क्यों चले गये . . .?

एकमात्र पुत्री का अपने स्नेहशील पिता के साथ भोजन

भरने भात पिताजी आये मेरे भाग्य बड़े

अभिन्न सहयोगी चिम्मनलालजी गोस्वामीके साथ

अमोघदानी श्वसुर

वाबूजी,

किसके सहारे अपनी लाडली बेटीको छोड़कर आप चले गये ? इतना लाड़ लड़ाकर, अव रोनेके लिये मुझे आपने क्यो छोड दिया ? अब किसकी गोदमे मुँह छिपाकर अपना सव दुःख भुलाऊँ मै ?

वाबूजी,

जीवनमे मै तो कभी अभावकी कल्पना ही नही कर सकी।......आपमे मुझे तो सव-कुछ मिल जाता था। पर आज . . . आज आपकी राजकुमारी बेटी सर्वथा अभागिन दीना है। सव कुछ खो चुका है उसका।

वाबूजी,

राखीका त्यौहार आता . . मुझे स्वप्नमे भी कभी कल्पनातक नही होती. .. मै किसके राखी बाँधूँ। आपकी वरद भुजापर कच्चा धागा लपेटकर जव आपके चरणोंमे मै सिर रख आपका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करती . .तो गर्वसे मै फूल जाती मेरे तो ऐसे वाबूजी है . . मुझे अन्य किसीकी क्या आवश्यकता पर आज मै किसके पास जाऊँ ? आपके विना यह प्रसङ्ग मेरे जीवनसे उठ गया। भातके समय अपने स्नेहके तानो-वानोमे बुनी हुई सुरंग चुनरी जब आप मेरे सिरपर रखते और श्रीराधामाधवकी नित्य क्रीडा-स्थली अपने समर्थ पिताके हृद्देशको चुनरीसे मै नापती . मनुष्योकी कौन कहे .. देवता भी उस क्षण मेरे भाग्यसे ईर्ष्या करने लगते। मै कृतकृत्य हो उठती . मुझे मेरा मनचाहा मिल जाता, पर आज मुझ-सी अभागिन दूसरी कौन है . अव तो यह आयोजन ही मेरे जीवनसे सदा-सर्वदाके लिये लुप्त हो चुका है।

वाबूजी,

जीवनमे ऐसा कोई प्रसङ्ग नही जहाँ आप मेरे सुख-सयोजनके लिये आतुर न रहे हो। पर अव मेरा अपना कौन है ? ऐसा समर्थ दूसरा है ही कौन ? किसे सँभलाकर आप चले गये।

वाबूजी,

आपने ससार वसाया था मेरे लिये, इसे सीचा था मेरे लिये .. और आप ही उसे उजाडकर चले गये। मुझे अनाथ वनाकर इस अकरुण जगत्मे अकेली छोडकर चले गये।. .

वाबूजी,

मेरा तो सव कुछ लुट गया . . अवश्य ही मेरे निर्लज्ज प्राण शरीरका मोह नही त्याग सके . ।

वाबूजी,

आपकी संनिधि ही मेरे जीवनका सर्वोपरि सुख था। मुझे तो वही चाहिये, वाबूजी . वाबूजी वाबूजी ।

—सावित्री

काश, वह प्यार-दुलार सदा मिलता !

नवम्बर १९५८मे मैं पहली वार गोरखपुर आया। नया स्थान था, जिसके लिये आया था, उस कारण एक सकोचका आवरण मनको घेरे हुए था। उस समयतक मैं नानाजीके उस स्नेहपूर्ण व्यक्तित्वसे सर्वथा अपरिचित ही था। मेरे मनमे कल्पनाकी तूलिकासे उनके व्यक्तित्वका निर्माण-सा हो रहा था, पर जिस प्रकारका उनका मोहक व्यक्तित्व था, उससे वह सर्वथा भिन्न था।

वात्सल्यरससे भीगे एक स्मितके साथ उन्होंने कुशल-समाचार पूछे। वह मुस्कराहट ही ऐसी थी, जिसने वरवस ही मुझे उनकी ओर खिच जानेके लिये वाध्य-सा कर दिया। एक ऐसा सम्मोहन-सा हो गया कि वहाँसे उठनेका मन ही नही हो रहा था। अपने डेढ-दो दिनके कार्यक्रममे कई वार उनके पास गया, पर हर वार किसी अव्यक्त आकर्षणसे अपनेको उनकी ओर खिचता अनुभव करता रहा।

जिस दिन लौट रहा था, उस दिन भी मैं प्रणाम करने गया। प्रणाम करते समय उन्होंने अपना वरद हस्त मेरे मस्तकपर रख दिया। उनके कोमल करके स्पर्शसे ऐसा भान हुआ कि किसीने अभय-दान दे दिया हो।

पर आज जव उन वातोको स्मरण करता हूँ तो आँखे गीली हो जाती हैं। अपने चारो तरफ अन्धकार-ही-अन्धकार प्रतीत होता है। जीवनमे एक ऐसी रिक्तताका अनुभव होता है, जिसकी पूर्ति होना असम्भव है। काश, वह प्यार-दुलार सदा मिलता !

—जगदीशप्रसाद भालोटिया

•

चरण-चिन्तन

विषय-पङ्कमें लीन विकल जन-मीन पा गये जीवन,
नित्य-नवीन हो गये धरतीके नन्दनवन उपवन।
मानवता हो गयी दिव्य, भागवत राज्य फिर आया,
तूने जड-चेतनके कण-कणमे भगवान दिखाया।
तेरे वन्दनमें अगणित मस्तक नत हैं, उपकारी !
तेरे चरण-कमलका ही चिन्तन है सम्वल भारी ॥

दे सकता क्या जगत अकिंचन, सवने तो है पाया,
तूने दिया, दिया ही केवल, देना ही वतलाया।
भक्ति-सम्पदा थी तेरे जीवनकी अमिट कमाई,
तूने तन-मन-धनके वन्धनमें विरक्ति अपनाई ॥
जय अभिनव हनुमान ! राममय ! पवनतनय-वलधारी !
तेरे चरण-कमलका ही चिन्तन है सम्वल भारी ॥

—रामलाल

•

मुझे तो रोनेका भी हक नहीं

वात्सल्यका छलकता सागर, स्नेहकी साकार मूर्ति, करुणाका अनवरत स्रोत, परम उदार, सदा सहज ही प्राणिमात्रके हित-चिन्तन और सुख-सम्पादनमे रत अपने सर्वस्व, अपने नानाजीके श्रीचरणोमे श्रद्धा-सुमन समर्पित करने बैठा तो हूँ अवश्य परतु अन्तरसे हूक-सी उठती है "अभागे ! तू क्या अर्चना करेगा ? तुझे तो रोनेका भी हक नही ।"

क्रूर नियतिने मेरा सृजन ही सम्भवत इसीलिये किया था कि मै अपने ही हाथो अपने समस्त सुख-स्वप्नोकी आधारशिला अपने नानाजीको अग्निके समर्पित करूँ—उनका अग्नि-सस्कार करूँ, जिनके प्राणोसे मे अनुप्राणित हुआ, जिनकी गोदमे खेलकर बडा हुआ, जिनका अमोघ आशीर्वाद मेरा रक्षाकवच है, वात्सल्य-दानमे जिनकी कोई तुलना थी ही नही, जिनका स्नेहपूर्ण दृष्टिपात मात्र ही जीवनमे सुख एव शान्तिका सृजन कर देता था, जिनकी मधुर रसपूत वाणी प्राणोको सुधासिक्त कर देती थी, जिनके पास पहुँचते ही कुछ भी अलभ्य नही रह जाता था, जो मेरे प्राणोसे भी अधिक प्रिय थे, मेरे सर्वस्व थे। मै ही वह पाषाण-हृदय हूँ, जिसने अपने ही हाथोसे उठाकर, अपने ही नही, अपितु लाखो नर-नारियोकी आशाके केन्द्रविन्दु, लोक-परलोकके सुगम पथ-प्रदर्शक, सहज स्नेही, परम स्वजनको, गद्दे-तोषकके नरम विछावनके स्थानपर सूखी लकडियोपर लिटा दिया जिन्हे खादीकी चद्दर ओढाते समय भी वार-वार मनमे आता—कही यह चुभ न जाय उनके कोमल अङ्गोपर, ओढावन ओढाया शुष्क रसहीन कठोर काष्ठका। जिन्हे तनिक-सी भी गर्मीमे कष्ट पाते देखकर मन आलोडित होने लगता, उनको ही अपने ही हाथोसे लपटोकी भेट कर दिया जिनके श्रीमुखका दर्शन प्राणोमे अपरिमित उल्लास भर देता था उस दिव्य आभासे देदीप्यमान रहनेवाले मुखमण्डल—उस मस्तकको अपने हाथोसे खण्ड-खण्ड कर डाला, पर प्रस्तरनिर्मित मेरा हृदय खण्ड-खण्ड न हो सका ! न ही उस धधकती ज्वालाओमे कूदकर उनसे एकात्मता स्थापित करनेका साहस ही मुझमे आ सका ! आता भी कैसे ? क्रूर नियतिका उपहास अभी पूर्ण नही हुआ था। इस कठोरतम कर्म करनेके वाद भी मैं जीवित हूँ, शायद अपने पूर्वसचित दुष्कर्मोको भोगनेके लिये। सव कुछ समाप्त हो गया। रह गया मै और मेरे जीवनकी सर्वोपरि निधिरूप वह राखकी ढेरी, जिसे देखकर जीवनभर, वस, रोना-ही-रोना है। यही मेरी अर्चना है और आँसूकी वूँदे हे मेरी अर्चनाके उपकरण !!!

—सूर्यकान्त फोगला

●

मेरे नानाजी : मेरी स्मृतियाँ

'नानाजी' शब्दका अर्थ तो सभी जानते है, परतु मेरे लिये इस शब्दका अर्थ है--'स्नेहका एक घनीभूत पुञ्ज--ऐसा स्नेह-सुधा-सिन्धु, जिसमे डूबकर मै निकल नही पाता था।'

'नानाजी' शब्दके उच्चारणके साथ ही हृदयमे जो प्रतिविम्बित होने लगता है, उसमे स्नेह तथा प्यारके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुका अस्तित्व कदापि नही है। जीवनभर जिसके प्यारकी लहरोमे स्नान किया, आज उसी स्नेह-प्रतिमाके न रहनेपर उसके वारेमे कुछ लिखना कितना कठिन है--इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

नानाजी एक विशाल वट-वृक्षकी भॉति थे। असंख्य लोगोने उसके नीचे आश्रय प्राप्त किया। शान्ति एव शीतलता तो जो भी उसके नीचे आये, उन सवको विना मॉगे मिली, परतु मेरे लिये तो वे कल्पवृक्ष थे--ऐसा कल्पवृक्ष, जिसके पल्लवोके प्रत्येक कम्पनसे वात्सल्य झरता रहता था। पत्ते झडने लगे, डालियॉ सूखने लगी, परंतु वात्सल्यका वह रस जवतक चेतना रही, अक्षुण्ण रहा। नानाजीकी चेतना--उनके प्राण सहज स्नेह और वात्सल्यके पर्याय थे--प्रेम ही उनका प्राण था।

अन्तिम बीमारीके दिनोमे, भयानक पीडामे भी मुझे देखकर उनकी स्नेहभरी मुस्कान याद करके आज आँखे वरवस भरी आती है। किसी रात्रिको उनकी सेवामे देरतक जग जाता तो किस स्नेहसे सिरपर हाथ फेरते हुए कहते--'जा वेटा, अव सो जा। वहुत देर हो गयी है।' कभी रात्रिमे कहीसे लौटनेमे थोडी भी देर हो जाती तो मन-ही-मन प्रतीक्षा करते रहते। आनेपर कहते--'वहुत देर कर दी न, जाओ, अव सो जाओ।'

स्नेहसे सने नही, स्नेहसे विरचित ये शब्द अव कहॉ, किसके मुखसे सुननेको मिलेगे ? उनकी एक मुस्कानसे, स्नेहभरे शव्दसे सारी थकान दूर हो जाती थी। उनके स्नेहके इस जादूने तो अन्तिम समयतक यह आभास ही नही होने दिया कि नानाजी अव जा रहे है--सदाके लिये जा रहे है, इस रूपमे अव कभी नही मिलेगे।

वे चले ही गये, सदाके लिये। कभी लौटकर न आनेके लिये चले गये। पर जव नानाजी-को जाना ही था तो उन्होने इतना अद्‌भुत, इतना अपार, इतना अगाध स्नेह दिया ही क्यो ? जो व्यक्ति 'उस' स्नेह-सागरमे चौबीसो घटे किलोल करता हो, उसका वह समुद्र सूख जाय और उसकी जगह प्रकट हो जाय तपता मरुस्थल, उसकी दशा, उसकी मनोव्यथाको व्यक्त नही किया जा सकता। मैने सव समय प्रत्येक परिस्थितिमे नानाजीका स्नेह प्राप्त किया, इसलिये पल-पलपर उनकी वाते, उनका मुस्कराना, उनका स्नेह, सिरपर हाथ फेरना मुझे याद आता है। पर वह निर्झर, जो प्राणोमे रस भरता था, सूख गया। वे दिन निश्चय ही अव लौटकर कभी नही आयेगे। अव तो वची है--केवल उन सुखद क्षणोकी सिसकती स्मृतियाँ और उनका गूँजता हुआ वह स्वर कि--'अव सव कुछ समाप्त हो गया।'

--चन्द्रकान्त फोगला

●

बस, यही अभिलाषा है !

पहली बार मुझे श्रीभाईजीका दर्शन सन् १९२८के प्रारम्भमे बीकानेरमे हुआ था। वे नाम-प्रचारके उद्देश्यसे विभिन्न स्थानोमे भ्रमण करते हुए दो दिनके लिये वहाँ पधारे थे। उनका सर्वप्रथम भाषण सुननेपर मेरे मनमे ऐसी छाप पडी कि वे जो कुछ कहते हैं अनुभवके आधारपर कहते हैं, केवल पढी-पढायी अथवा सुनी-सुनायी बात नही कहते। जबतक वे बीकानेरमे रहे, व्याख्यानके बाद भी मैं घटो उनके पास बैठता और उनके साथ भगवद्‌विषयक चर्चा होती रहती। उनके इस प्रथम समागमका मनपर ऐसा गहरा प्रभाव पडा कि स्वाभाविक ही उनके निकट सम्पर्कमे कुछ दिन रहनेकी प्रबल भावना जाग्रत् हुई। यह लालसा क्रमश बढती गयी और सन् १९२९ के ग्रीष्ममे मुझे उनके साथ गोरखपुरमे लगभग डेढ महीने रहनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ। इस छोटी-सी अवधिमे उनके भगवत्सम्बन्धी प्रौढ विचारो एव अनुभवोको जानने तथा उनके भगवन्मय जीवनको अत्यन्त निकटसे देखनेका अवसर मुझे प्राप्त हुआ। उनके लोकोत्तर व्यक्तित्व-का मनपर ऐसा प्रभाव पडा कि १०-१५ दिनके बाद ही बुद्धिने यह निर्णय ले लिया कि सब कुछ छोडकर इन्हीके चरणोमे रहा जाय और शेष जीवन इन्हीकी छत्रछायामे बिताया जाय। यह निर्णय लेना मेरे लिये जितना सहज था, उसे कार्यान्वित करना उतना ही कठिन सिद्ध हुआ। मुझे बीकानेर छोडनेमे चार वर्ष लग गये और जनवरी सन् १९३३मे ही मैं अपने इस मनोरथको पूर्ण कर पाया।

मेरा श्रीभाईजीके साथ यह चालीस वर्षसे ऊपरका सम्पर्क मेरे जीवनकी एक अमूल्य निधि है, जो मुझे अपने अनेक जन्मार्जित सुकृतोके फलरूपमे उन्हीकी अहैतुकी कृपासे अनायास प्राप्त हुई थी। इस अवधिमे उन्होने जैसा अद्‌भुत स्नेह मुझे दिया और जिस प्रकार मेरा लाड रखा, उसे शब्दोद्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। उनके इस ऋणसे मैं जन्म-जन्मान्तरमे भी उऋण नही हो सकता और न होना ही चाहता हूँ। भव-सरिताकी प्रबलधारामे बहते हुए मुझ पामरको उन्होने अपनी सहज कृपासे उबार लिया और भगवत्कृपाका अधिकारी बना दिया। मेरी त्रुटियोकी ओर उन्होने कभी ध्यान नही दिया और मेरे द्वारा उन्हीकी प्रेरणासे हुए तनिक-से भी अनुकूल आचरणकी भूरि-भूरि प्रशसा की। वे मेरे बडे भाई, सखा एव स्वामी ही नही थे, मेरे पथप्रदर्शक, जीवन-सर्वस्व थे और है।

श्रीभाईजी इस युगकी एक महान् विभूति थे। भारतीय सत-परम्परामे उनका बहुत ऊँचा स्थान था। वे ज्ञानोत्तर भाव-राज्यमे प्रतिष्ठित थे। जिस 'पराभक्ति'की प्राप्ति श्रीमद्भगवद्-गीतामे ब्रह्मभूत होनेके बाद बतायी गयी है, जिस भक्तिके द्वारा मनुष्य भगवान्‌को तत्त्वसे जानकर उनमे प्रविष्ट हो जाता है, उनके साथ घुल-मिलकर एक हो जाता है, उनका प्रतिरूप ही बन जाता है वह उनके अदर मूर्त थी। यही नही, श्रीकृष्णप्रेमकी उच्चतम भूमिकामे वे स्थित थे। उनका मन बुद्धि, वाणी—सब कुछ श्रीकृष्णमय हो गये थे। 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि'—नारद-भक्ति-सूत्रका यह वाक्य उनमे पूर्णरूपेण चरितार्थ था। विशुद्धप्रेमाभक्तिका आदर्श एव भगवन्नामकी महिमाको प्रतिष्ठित

करनेके लिये ही जगत्मे उनका आविर्भाव हुआ था। हमलोगोका अनिर्वचनीय सौभाग्य था कि वे हमारे बीच हमारे निजजन,—हमारे पिता, वन्धु, सरक्षक, मार्गदर्शक एव मित्रके रूपमे इस धराधामपर रहे और हमारे-जैसे अगणित जीवोको उन्होने अपनी पीयूषवर्षिणी वाणी, आदर्श भक्तोचित व्यवहार, अमोघ लेखनी तथा भगवन्मय जीवनसे कल्याणकी ओर अग्रसर किया। इस भारतभूमिको,—विश्वको उन्होने अध्यात्मज्ञानकी जो अमूल्य निधि दी है, उसका मूल्याङ्कन शब्दोद्वारा सम्भव नही है। उनके प्रति श्रद्धाञ्जलिके रूपमे जो कुछ भी कहा जाय थोडा है। मे उनके विपयमे क्या श्रद्धाञ्जलि अर्पण करूँ, उनकी स्मृति-मात्रसे हृदय भरा आता है। उनके वियोगको हृदय सहन कर गया—यही मेरी प्रेमशून्यताका प्रमाण है। वस, शेष जीवन श्रीभाईजी-की और उनके अपने श्रीराधामाधवकी स्मृतिमे बीत जाय—यही अभिलाषा है।

—चिम्मनलाल गोस्वामी

●

जीवनका आधार शेष है दो मुट्ठी भर राख

हा! बीत गयी वह राका-रजनी,
टूट गये वे सुखके सपने,
स्नेहसूत्र खण्डित होते ही
बिखर गयी मालाकी मणियाँ।
शेष रह गयी टीस हृदयकी,
बहती सतत नयन जलधारा॥

पापी-तापी, नीरस मनकी,
असहायोंकी, दीन-दुखीकी,
गौ-ब्राह्मणकी, आर्तजनोंकी,
पीर नसावन, मन बहलावन
करनेवाला चला गया हा!
चला गया हा! चला गया रे!!

विरह-विकल जीवन-साथीका
मान-मनावन, लाड़-लड़ावन,
सुख-संयोजन, रीझ-रिझावन
करनेवाला चला गया हा!
चला गया हा! चला गया रे!!

उजड़ गया नव वृन्दा-कानन!
व्रज-अवनीकी इस बगियाको
सरस बनानेवाली सरिता
सूख गयी है!
रूखी धरती, सूखे तरुवर,
विरह-तापसे जलती डाले,
झुलसे पत्ते,

कहाँ-कहाँ पी, रटे पपीहा,
साँवर व्रजसे चला गया हा!
चला गया हा! चला गया रे!!

बिछुड़े पीकी याद रह गयी,
केवल साथ समाधि रह गयी,
चिताभूमिकी भस्म रह गयी,
थाती केवल राख रह गयी!

उसी राखपर आँख टिकाये,
उसी भस्मसे आस लगाये,
नव-जीवनकी, पुनर्मिलनकी
साध सँजोये,

उसके सम्मुख शीश झुकाते,
दुखड़ा कहकर रोते-गाते,
भावभरे कुछ पुष्प चढ़ाते।
बीत रही जीवनकी घड़ियाँ,
बिखर रही आँसूकी लड़ियाँ,
जुड़ पाती यदि टूटी कड़ियाँ।
रोता-रीता, रिसता, निर्धन
आहें भरता सूना तन-मन,
जीवन-धनसे विरहित जीवन।
ढाढ़स देती, धैर्य बँधाती
महाप्राणकी साख।
जीवनका आधार शेष है
दो मुट्ठी भर राख!

●

आशिष दो, हरिरूप !

महामोहकी निविड़ निशामे सुप्त रहा जग सारा,
किंकर्त्तव्यविमूढ़ मूढ-सा था मानव बेचारा।
पश्चिम-संस्कृतिकी फैली थी तिमिर-राशि-सी माया
आस्थाओंको निगल रही थी नास्तिकताकी छाया ॥ १ ॥

मोह रही थी असुर-सम्पदा इन्द्रजाल फैलाये,
प्रज्ञामयी प्रभात-विभा ले तव भूपर तुम आये।
दिव्यलोकके नव दिनमणि-सा दर्शन हुआ तुम्हारा,
दूर किया 'कल्याण'-किरणसे तुमने तिमिर-पसारा ॥ २ ॥

धरा धन्य हो गयी तुम्हारे पाकर पावन पगको,
नव जार्गति, नवीन चेतना दी तुमने इस जगको।
जन-मानसमें प्रणय-तरगे उठने लगीं अभङ्गा,
घर-घरमे हो चली प्रवाहित भक्ति-भावकी गङ्गा ॥ ३ ॥

आदर बढ़ा धर्म शाश्वतका, होती हरिकी पूजा,
संकीर्तनका दिव्य घोष था स्वर्गलोकतक गूँजा।
फिरने लगी कोटि नामोके जपकी मञ्जुल माला,
ज्ञानयज्ञ था भाव-जगत्में जाग्रत् हुआ निराला ॥ ४ ॥

कर्मयोगका पाठ विश्वको तुमने पुण्य पढ़ाया,
दुखियोकी सेवाके पथपर सबको सदा बढाया।
देश-भक्ति भी प्राप्त हुई थी तुम-सी किस नेताको,
कलिमें स्थापित किया तुम्हींने कृतयुगको, त्रेताको ॥ ५ ॥

तुम संस्कृत-संस्कृतिके रक्षक, सेवक गोमाताके,
पाया तुमने पावन पदको सबके ही भ्राताके।
धार्मिक संघ-समाज कौन, जो पोषित हुआ न तुमसे,
सबको किया कृतार्थ, रहे तुम भूपर कल्पद्रुम-से ॥ ६ ॥

मन्दहास-मण्डित मुख-मण्डल, प्रीतिसनी मृदु वाणी,
तेजस्वी उन्नत ललाट, वह वक्तृ-कला कल्याणी।
स्नेह-सान्त्वना-अभय-दायिनी करुणा-दृष्टि तुम्हारी,
किसका चित्त न हर लेती थी, किसे न लगती प्यारी ॥ ७ ॥

दीनबन्धुता तुल्य तुम्हारी है किसमें अनहोनी ?
गुन-गाहकता कहाँ तुम्हारे सिवा सुलभ्य सलोनी ?
घट-घटमें निज इष्टदेवका दर्शन किसको होता ?
कौन अकेलेमें परदुखसे कातर हो-हो रोता ? ॥ ८ ॥

कौन हमें अब प्रेम-समादर देकर पास बिठाये ?
तुम-सा स्नेह सगा भाईका कहाँ आज हम पाये ?
किसकी दायी भुजा शीशपर अब दे सकती छाया ?
तुमको खोकर हमने जगमें सूना सब कुछ पाया ।। ९ ।।

है उपकार अपार तुम्हारे; कौन, भला, बतलाये ?
नभमें तारे सब कितने हैं—कौन अहो ! गिन पाये ।
तन भूतलपर, मन मुरारिमें डूबा रहा तुम्हारा,
तुम करते थे वही यन्त्र-से, जो यन्त्रीको प्यारा ।। १० ।।

पहुँचे तुम उस प्रेम-धाममें, जहाँ एक प्रियतम है,
तुम्हें याद करते हम दृगमें लिये अश्रु हरदम हैं ।
आशिष दो, हरिरूप ! तुम्हें अब भूलें नहीं कदा हम,
पुण्य तुम्हारे उपदेशोंपर चलते रहें सदा हम ।। ११ ।।

—रामनारायणदत्त 'राम'

●

प्रेमका नित्य निर्झर

वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।

जन-जनको जीवन-दान दिया,
सारे जगका कल्याण किया ।
जिसकी नौका डूबती मिली,
पतवार उसीका थाम लिया ।।

करुणाकर उन-सा कौन अपर ?
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।। १ ।।

दुखियोंका दुःख हरण करते,
क्षुधितोंका उदर-भरण करते ।
आया विपत्तिका मारा जो,
थे उसे भुजाओंमें भरते ।।

पर-सुख-सुखिया, पर-दुख-कातर ।
वे बहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना बनकर ।। २ ।।

आश्रय-विहीनके दृढ़ आश्रय,
भयभीतोको करते निर्भय।
थे श्रान्तोके विश्रामालय,
इहलोक और परलोक उभय—

वन जाते थे उनको पाकर।
वे वहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना वनकर ॥ ३ ॥

जव जहाँ कभी आया संकट,
दुर्भिक्ष, वाढ, भूचाल विकट।
हो जाती थी तव वहाँ सदा
उनकी सहायता सहज प्रकट ॥

दुखियोका दुख लेते थे हर।
वे वहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना वनकर ॥ ४ ॥

गुण-गणकी जिसके थाह नहीं,
जिसकी कोई निज चाह नहीं।
वचनामृतसे जिसने किसके
हर लिया हृदयका दाह नहीं ?

थे जन-जीवन-पथ-कण्टक-हर।
वे वहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना वनकर ॥ ५ ॥

राधा-माधव-लीला रसमय,
राधा-माधव-लीला मधुमय,
उसमे प्रविष्ट, हो उसमे लय,
अनुभूतिपूर्ण तात्त्विक परिचय

कर दिया प्रकट इस पृथ्वीपर।
वे वहते रहते थे झर-झर,
प्रेमामृतका झरना वनकर ॥ ६ ॥

—माधवशरण

जीवन-यात्रा

काम-क्रोध-लोभ-मद-विरहित, शोक-मोह-भय-भ्रमसे हीन।
ज्ञानमूर्ति, निष्काम निष्ठ अति, पावन परम प्रेमरस-पीन ॥
नित्य शान्ति, आनन्द नित्य ही, तृप्ति नित्य अविचल अत्यन्त।
सर्वभूतहितरति स्वाभाविक, समता ममतारहित अनन्त ॥
वज्रादपि कठोर निजहित जो, परहित कोमल कुसुम-समान।
अचल प्रतिष्ठित दैवी सम्पद, नित्य ज्ञान-विज्ञाननिधान ॥
जिनमे भरे अखण्ड पूर्ण आनन्द, प्रेम शुचि, निर्मल ज्ञान।
जिनमे रोम-रोममें छाये रहते स्वयं नित्य भगवान ॥
जिनके तन-मन-वचन बहाते अविरल भगवद्-रसकी धार।
ऐसे संतोके पद-कमलोमे प्रणाम है बारंबार ॥

सत भगवत्स्वरूप होते है और उनके पवित्र जीवनसे नित्य-निरन्तर भगवद्-रसकी विश्वपावनी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती है, जो जगत्‌के जीवोको मृत्युके भीषण पाशसे मुक्तकर अमृतत्व प्रदान करती है। वे सत ज्ञानके ज्योति पुञ्ज होते है और अपने दिव्य प्रकाशसे तमोमय प्राणियोके अज्ञानान्धकारको दूरकर उन्हे परमात्माके परम प्रकाशमय स्वरूपमे पहुँचा देते है। ऐसे सत जहाँ होते है, वह देश धन्य है, जिस जातिमे होते है, वह जाति धन्य है, जिस कुल-परिवारमे होते है. वह परिवार धन्य है और जिस कालमे होते है, वह काल धन्य है। वस्तुत ऐसे भगवत्स्वरूप सतोका जीवन जगत्‌के जीवोके कल्याणार्थ ही उत्सर्गीकृत होता है। उनका अपना कोई प्रयोजन नही रहता शरीरसे—जीवनसे। जितने दिन प्रारब्धवश उनका भौतिक शरीर रहता है, उनके द्वारा सहज ही जगत्‌के जीवोका कल्याण होता रहता है। ऐसे सत वास्तवमे जाति, सम्प्रदाय, देश आदिकी सीमासे बाहर पहुँचे हुए या इस जागतिक प्रपञ्चके स्तरसे बहुत ऊपर उठे हुए होते हैं। इसीसे वे समदर्शी, समतास्वरूप और निरपेक्ष सर्वकल्याणकारक होते है। वे अपने-परायेका भेद न रखकर सबमे भगवान्‌के दर्शन करते या सबमे आत्मोपलब्धि करते हैं एव सबको सुख पहुँचाने तथा सबका हित करनेकी सहज चेष्टा उनके द्वारा होती रहती है। वे अत्यन्त विरक्त होते हुए ही सहज ही जन-कल्याणमे प्रवृत्त रहते है—उनका जीवन ही सहज जन-कल्याण-स्वरूप होता है। ऐसे ही सत अपने अस्तित्वमात्रसे विश्व-कल्याणके कारण हुआ करते है—ऐसे सतोके श्रीपद-कमलोमे कोटि-कोटि साष्टाङ्ग प्रणिपात।

सतोकी जीवनीका अध्ययन करनेवालोको शुभके आचरणमे लाभ प्राप्त होता है तथा भगवान्‌की ओर प्रवृत्त होनेमे प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही महात्माओके मङ्गलमय चरित्रो तथा उपदेशोसे जगत्‌के जीवोका वास्तवमे कल्याण-साधन हुआ करता है। अत. ऐसे महात्माओके जीवन-वृत्त एव उपदेशोका प्रचार-प्रसार जितना अधिक हो, उतना ही मङ्गल है।

'शिव'

दृष्टिमें दोष समझेगा, सम्भव है, वही संतका आदर्श गुण हो। ऑपरेशन करते हुए डाक्टरकी क्रियामें, बच्चों और शिष्योंको वत्सलतापूर्ण हृदयसे डाँटने-धमकाते हुए माता-पिता और सद्गुरुकी शिक्षामें और कराहते हुए रोगीको कुपथ्य न देनेमें अज्ञ पुरुष निर्दयताका आरोप कर सकते हैं, परंतु क्या यह वास्तविक दया नहीं है? इसी प्रकार अन्यान्य गुणोंकी भी बात है। मूर्ख मनुष्य यदि अनाज तौलनेके एक बड़े काँटेके एक पलड़ेपर बहुमूल्य हीरा रखकर और उसे सेर-दो-सेरके वजनका भी न पाकर उसको किसी भी कामका न समझे तो इससे जैसे हीरेकी कीमत कुछ भी कम नहीं हो जाती, इसी प्रकार असंतकी मलिन बुद्धि न तो संतको पहचान सकती है और न उसके किसी निर्णयसे संतका यथार्थ स्वरूपनिर्देश ही होता है।

संतोंका यथार्थ परिचय संत-कृपासे ही मिल सकता है। श्रद्धा, सेवा और जिज्ञासासे ही मनुष्यको संत-कृपाकी प्राप्ति हो सकती है। इतना होनेपर भी अकारण-कृपालु संतोंका अज्ञात सङ्ग भी कभी व्यर्थ नहीं जाता, उस अज्ञात सत्सङ्गसे, जिस महान् कल्याण-कल्पतरुका भगवत्प्रेमरूपी अमर फल है, उसका अक्षय बीज तो हृदय-क्षेत्रमें पड़ ही जाता है, जो अनुकूल वातावरण पाकर अङ्कुरित होता है और फूलता-फलता है।

संतोंके स्वभावमें विभिन्नता

सिद्ध संतोंकी स्वरूपस्थिति एक-सी होनेपर भी व्यावहारिक जगत्में उनके स्वभावमें बहुत ही विभिन्नता रहती है। जो संत, जिस देशमें, जिस परिस्थितिमें, जिस शिक्षा-दीक्षामें, जिस वातावरणमें प्रकट हुए हैं और पले हैं, प्रायः उसीके अनुसार उनका स्वभाव भी होता है। कोई अत्यन्त एकान्तसेवी, निवृत्तिपरक होकर लोकालयसे सर्वथा अपनेको अलग रखना चाहते हैं, कोई दिन-रात विभिन्न प्रकारके लोगोंमें रहकर उनकी सहायता करते उन्हें मार्ग बतलाते, अन्याय-अत्याचारका सामना करते हैं और सत्यधर्मकी प्रतिष्ठा करनेमें लगे रहते हैं। एकान्त-वासी संत भी कम लोक-सेवा नहीं करते। एकान्त स्थानमें उनका दिन-रात भगवान्के साथ आत्मासे ही नहीं, शरीर-मन-वाणीसे भी संयोग रहना जगत्के लिये बहुत ही कल्याणकारी होता है। उनका अस्तित्व ही जगत्के लिये बहुत बड़ा आश्वासन और महान् लाभ है। लोकालयमें रहनेवाले संतोंमें गृहस्थ, सन्यासी—दोनों ही होते हैं और गृहस्थोंमें भी स्वभाव तथा रुचिभेदके अनुसार कोई त्यागमार्गी और कोई अत्यागमार्गी होते हैं—कोई विषयोंके स्वरूपतः त्यागकी शिक्षा देते हैं तो कोई राग-द्वेषत्यागपूर्वक वशमें किये हुए मन-इन्द्रियोंसे भगवत्प्रीत्यर्थ विषय-सेवनकी सम्मति देते हैं और तदनुसार ही दोनोंकी अपनी रहनी-करनीमें भी अन्तर होता है। ऐसे संत सभी देशों, सभी जातियों, सभी धर्मों और सभी सम्प्रदायोंमें प्रायः सभी युगोंमें होते आये हैं।

संतसे जगत्का उपकार

परमात्माको प्राप्त ऐसे संत स्वयं ही कृतार्थ नहीं होते, वे संसारसागरमें डूबते-उतराते हुए असंख्य प्राणियों-का उद्धार करके उन्हें परमात्माके परमधाममें पहुँचानेके लिये सुदृढ़ जहाज बन जाते हैं। उनका सङ्ग करके उनके वचनानुसार आचरण करनेपर उद्धार होता है, इसमें तो आश्चर्य ही क्या है, उनके स्मरणमात्रसे, स्मरण करनेवालेका केवल मन ही नहीं, उनका घरतक तत्काल विशुद्ध हो जाता है। महाराजा परीक्षित् मुनिवर शुकदेवजीसे कहते हैं—

येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः।
किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः॥
(श्रीमद्भागवत १।१९।३३)

'मुनिवर! आप-जैसे महात्माओंके स्मरणमात्रसे ही गृहस्थोंके घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं। फिर दर्शन, स्पर्श, पाद-प्रक्षालन और आसनादि-प्रदानका सुअवसर मिल जाय तब तो कहना ही क्या है?'

ऐसे महात्माओंका संसारमें रहना और विचरना चेतन प्राणियोंको ही नहीं, जड़ जल, मृत्तिका और वायु आदिको भी पवित्र करने और उनको तरन-तारन बनानेके लिये ही होता है। धर्मराज युधिष्ठिरजी महात्मा विदुरजीसे कहते हैं—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता ॥
(श्रीमद्भागवत १ । १३ । १०)

'प्रभो ! आप-जैसे भागवत (भगवान्के प्रिय भक्त) स्वय ही तीर्थरूप है। आपलोग अपने हृदयमे विराजमान भगवान्के (नाममात्रके) द्वारा तीर्थोको (सच्चे) तीर्थ बनाते हुए—अर्थात् उक्त तीर्थस्थलोमे जानेवाले लोगोको उद्धार करनेकी शक्ति उन तीर्थोको प्रदान करते हुए विचरण करते हैं।'

सतका जीवन ही जगत्के कल्याणके लिये होता है। अतएव उनका जगत्पर जितना उपकार है, उतना और किसीका भी नही है। उनका लोकसेवाव्रत और उनका यथार्थ विश्वप्रेम जगत्मे जिस कल्याणकी सुधाधारा बहाता रहता है, वह धारा यदि कभी सूख गयी होती तो अवतक सारा जगत् सर्वथा राक्षसोकी भयानक क्रीडास्थली बन गया होता। देवासुरयुद्ध चलता है, जिसमे कभी-कभी असुरोकी विजय होती है, राक्षसोका अभ्युदय भी होता है, परन्तु सतोका अस्तित्व और उनका अनवरत कल्याण-वितरण राक्षसोको स्थायी नहीं होने देता। सत जब निरुपाय-से हो जाते है या स्वय अपनी तप शक्तिमे कार्य न लेकर भगवान्से काम लेना चाहते है, तब सतोके रक्षणार्थ स्वय भगवान्को अवतीर्ण होना पडता है, वस्तुत भगवान्के अवतारमे प्रधान हेतु 'साधु-परित्राण' ही है। सत जगत्मे जिन विशुद्ध सात्त्विक परमाणुओको फैलाते रहते है, उन्हीसे सत्त्वगुण और सदाचारकी रक्षा होती है। सत प्रत्यक्ष भगवान्के विग्रह हैं। भगवान्से मिलना बहुत कठिन है, परतु सत हमसे मिलनेके लिये ही ससारमे हमलोगोके बीचमे रहते हैं—इससे ये हमारे लिये भगवान्से बढकर उपादेय है, क्योकि ये ससारसे सर्वथा पृथक् रहकर भी, प्रपञ्चसे सर्वथा उदासीन होनेपर भी हमारे बहुत ही निकट रहते है और हमे हाथ पकडकर वैकुण्ठधाममे पहुँचा देते है। यही तो इनका सबसे बडा चमत्कार है। सतोकी वेष-भूषा, उनकी भाव-भङ्गी, उनकी शिक्षा-दीक्षाकी ओर न देखकर उनकी नित्य समता, बुद्धिमत्तापूर्ण असाधारण सरलता और प्रभुमय जीवनसे सबको लाभ उठाना चाहिये। सत विश्वके सूर्य है, उसके प्राण है, उसके आकाश है, उसके हृदय हैं, उसके अवलम्बन है, उसके आत्मीय है और उसके आत्मा है। वे स्वय सब समय परमात्मामे स्थित रहते हुए ही, प्रत्येक प्रतिकूलतामे साक्षात् आत्मस्वरूप अनुकूलताका स्वाभाविक अनुभव करते हुए ही जगत्के प्राणियोकी दु खदायी प्रतिकूलताको अनुकूलतामे परिणत करनेके लिये प्रयत्नवान् रहते है। उनकी वाणीमे अमर ज्ञानामृत झरता है, उनके नेत्रोसे प्रेमकी शीतल सुखद ज्योति निकलती है, उनके मस्तिष्कसे जगत्का कल्याण प्रसूत होता है, उनके हृदयसे आनन्दकी धारा बहती है। जो उनके सम्पर्कमे आ जाता है, वह पाप-तापसे मुक्त होकर महात्मा बन जाता है। वे जिस देशमे रहते हैं वह देश पुण्यतीर्थ बन जाता है, वे जो उपदेश करते हैं, वह पावन शास्त्र हो जाता है, वे जिन कर्मोको करते है, वही कर्म सत्कर्म समझे जाते हैं—

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि, सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि, सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि।
(नारदभक्तिसूत्र ६९)

गुप्त संत और उनके कार्य

अधिकाश सच्चे सत प्राय अपनेको लोगोमे प्रकट नही करके ही जगत्मे विचरण किया करते है। सत-परम्पराके परम प्रसिद्ध चिरजीवी सत आज भी है और वे हमलोगोके बीचमे आते भी है, पर हम उन्हे पहचान नही सकते। भिन्न-भिन्न स्तरोमे भगवान्का कार्य करनेवाले ऐसे हजारो सत पृथ्वीपर है, जो लोकचक्षुसे परे रहकर अपना महत् कार्य कर रहे है। कहते है कि सतजगत्मे सब कार्य नियमपूर्वक होते है। नये सतोकी दीक्षा, पुरानोके द्वारा विभिन्न कार्योका सम्पादन, सतजगत्मे शासन, नवीन कार्योकी सूचना, जगत्के विपत्तिनिवारणकी व्यवस्था, प्रकृतिकी क्रियाओद्वारा यथायोग्य दण्ड-विधान आदि महत्त्वपूर्ण कार्य सिद्ध सतोके एक सुसगठित मण्डल और उनकी विभिन्न अनेको शाखाओद्वारा सचालित होते रहते है। ऐसे सतोके सर्वोपरि सचालक परम सद्गुरु भगवान् शकर है, जो रुद्ररूपसे जगत्का सहार और सुन्दर शिवरूपसे उसका सदा कल्याण करते रहते है। उनकी अधीनतामे अनेको सिद्ध-महात्मा सत पुरुष निरन्तर भगवल्लीलामे सहायक होकर भगवदाज्ञानुसार कार्य कर रहे है। इन सतोको कुछ लेना है नही, पूजा करवानी नही, ख्याति और प्रशसासे कोई सरोकार नही और लोगोका प्रमाणपत्र न होनेसे इनका कोई नुकसान होता नही, फिर ये क्यो किसी बहिर्वेषमे जगत्के लोगोके सामने प्रकट होकर अपना परिचय दे? हाँ, अधिकारी पुरुषको इनमेसे किन्ही-किन्हीके दर्शन आज भी होते है, हो सकते है। कहा जाता है कि देवर्षि नारद, सनकादि, भगवान् दत्तात्रेय, शुकदेव, मैत्रेय आदि प्राचीन और शकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द, कबीर, नानक, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास आदिसे लेकर रामकृष्ण परमहस, विजयकृष्ण गोस्वामी प्रभृति अर्वाचीन अनेको सतोके दर्शन आज भी उनके अन्तरङ्ग भक्तोको होते है। इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही है।

इन्ही सतोकी परम्परामे हमारे श्रीभाईजीका महनीय स्थान है, जिनका आविर्भाव भगवान्के 'विशेष कार्य'के लिये हुआ था—जैसा कि आगेके पृष्ठोमे दी गयी उनकी 'जीवनयात्रा'से स्पष्ट होता है।

●

जिन तन मन प्राण दीन्हो सब मेरे हेत,
औरहू ममत्व बुद्धि आपनी उठाई है।
जागत हू सोवत हू गावत है मेरे गुण,
करत भजन-ध्यान दूसरे न कोई है॥

तिन के मै पीछे लग्यो फिरत हूँ निसिदिन,
सुदर कहत मेरी उन तें वडाई है।
वहै मेरे प्रिय, मै हूँ उनके आधीन सदा,
संतन की महिमा तौ श्रीमुख सुनाई है॥

—सत सुन्दरदास

●

जीवनयात्रा

[भगवान्‌के लीला-चरित्रोकी भाँति ही संतोके जीवन-वृत्तका भी मन-बुद्धि-चित्त-द्वारा आकलन नहीं किया जा सकता। उसका भी शाखाचन्द्रन्यायसे संकेतमात्र ही होता है। भगवत्प्रेम ही भक्तका स्वरूप है और प्रियतम प्रभुकी रुचि ही उसका जीवन। यही जीवन था श्रीभाईजीका। उनकी जीवन-झाँकीको उनके सम्पर्कमें आये असंख्य बड़भागी सज्जनोने देखा-सुना है--अपनी-अपनी भावनाके अनुसार उसकी अवधारणा की है। यह जीवन-वृत्त ऐसे ही अनेको दर्शकोके दर्शनका स्फुट संकलनमात्र है। संतके जीवनकी प्रत्येक घटना-क्रियाका विधान और सचालन होता है--लीलामयके द्वारा अपने किसी विशेष उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ही। लौकिक मन-बुद्धिकी पहुँच वहाँ कहाँ। अतः इस जीवन-वृत्तमें तथ्योके चयनमें, स्थान, समय और नामके उल्लेखमें पाठकोको यदि कहीं कोई भूल प्रतीत हो तो वे इस ओर ध्यान न दें। इस वृत्तसे भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम, स्नेह, सौहार्द, वात्सल्य और परहित-सुख-सम्पादनका पाठ हम पढ़ सके--यही इस प्रयासका मूल उद्देश्य है।]

यात्रारम्भ

(संवत् १९४९--१९७५)

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

वंश-परिचय

शूरो, सतियो और सतोकी पुण्यभूमि राजस्थानमे रतनगढ नामक एक प्रसिद्ध स्थान है। यह अग्रेजी राज्यमे बीकानेर राज्यका तहसीलस्तरीय शासन-केन्द्र था। इसमे मारवाडी अग्रवालोके कई घराने शतियोसे बसे हुए है, जिनमे गर्ग तथा बाँसल गोत्रके वैश्योकी कुलीनता सर्व-स्वीकृत है। बाँसल गोत्रके इन्ही राजस्थानी अग्रवालोकी एक शाखा 'पोद्दार' नामसे अभिहित की जाती है। यह 'अल्ल' अथवा 'उपाधि' वृत्तिमूलक है। इस वशके पूर्वपुरुषोको मध्यकालमे हिंदू तथा मुसलमान सामन्तोके यहाँ असाधारण ईमानदारीके कारण 'पोत' अथवा खजानेका काम सौपा जाता था। कालान्तरमे यह वृत्ति ही उनकी वशानुगत पदवी हो गयी*। भाईजीका आविर्भाव रतनगढके इन्ही पोद्दारोके एक परिवारमे हुआ था। रतनगढकी इस शाखाके प्रवर्तक सेठ साखीराम थे---

---

* ईमानदारी तो इस वशके व्यक्ति-व्यक्तिमे समायी हुई थी। चरित्रनायकके पूज्य पिताश्री तो ईमानदारीकी प्रतिमूर्ति थे। अपने पूज्य पिताके सम्बन्धमे एक बार चर्चा करते हुए श्रीभाईजीने कहा था---

"नेक कमाईका पैसा ही पूज्य पिताजीको स्वीकार था। दूसरेका पैसा अथवा दूसरेकी चीज भूलसे भी घरमे आ न जाय---इसका वे बडा ध्यान रखते थे। उनकी मान्यता थी कि भूलसे भी आयी हुई या रही हुई परायी चीज घरको बरबाद करके जायगी। जबतक परायी चीज लौटा न दी जाती, तबतक उनके चित्तको चैन नही मिलता। एक दिनकी घटना है, कलकत्तामे कपडेका व्यापार था। एक पुर्जेमे भूलसे १००) (सौ रुपये) ज्यादा जोडमे लग गये। भुगतान देनेवाली पार्टीके यहाँ भी भूल हो गयी। वे भी इस भूलको पकड नही सके और भूल-ही-भूलमे पूज्य पिताजीके पास हिसाबसे १००) ज्यादा आ गये। पूज्य पिताजीके यहाँ श्रीकेवलसिह नामक एक व्यक्ति हिसाब-किताबका काम करता था। दो दिन बाद उसने हिसाबकी जाँच की तो १००)की भूल ध्यानमे आयी और उसने पिताजीको सारी बात बता दी। पूज्य पिताजीने कहा---'१००) ज्यादा क्यो आ गये? लाये ही क्यो?'

"श्रीकेवलसिहने बताया---'पुर्जे लगानेवालेने हिसाबमे भूल कर दी और उस बेचारेने ठीकसे देखा नही।'

"पूज्य पिताजीने कहा---'पुर्जेको ठीक प्रकारसे देखना चाहिये था। खैर, अभी जाओ और १००) लौटाओ।'

"श्रीकेवलसिहने कहा---'अब तो शाम हो गयी है।'

"वह पूरा बोल भी नही पाया था कि पिताजीने कहा---'शाम हो गयी तो क्या हुआ? अभी देकर आओ। देकर आये बिना हम रोटी नही खायेगे। जबतक यह पैसा हमारे पास रहेगा, हम रोटी नही खायेगे। यह पैसा हमारे घरमे दो दिन रहा, अत दो दिनका ब्याज भी देकर आओ।'"
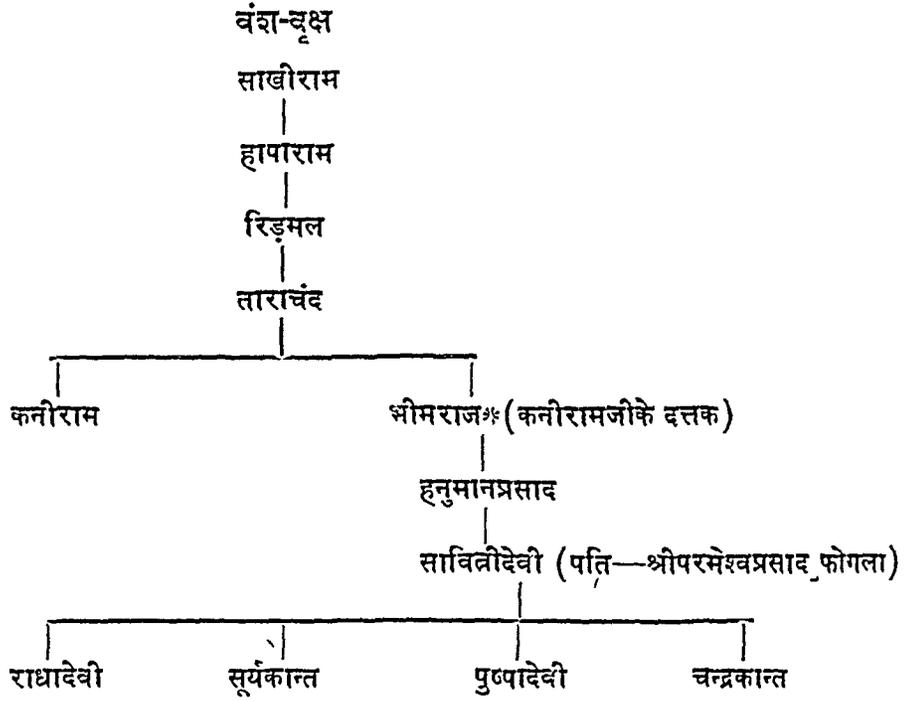
श्रीहनुमानप्रसादजीके पितामह सेठ ताराचदजीकी गणना नगरके इने-गिने व्यापारियोमे थी। वे वडे ही धर्म-प्राण थे। उनके दो विवाह हुए थे और दोनो स्त्रियोसे एक-एक पुत्र थे—कनीराम और भीमराज। इनमे कनीराम पहली पत्नीसे थे, भीमराज दूसरी पत्नीसे। पिताने बाल्यावस्थामे ही इन दोनोको पैतृक व्यवसायमे लगा दिया। वयस्क होनेपर वडे लडके कनीरामने राजस्थानसे बाहर जाकर व्यापार करनेकी इच्छा व्यक्त की। ताराचदजी उनकी बुद्धिमत्ता और अध्यवसायसे आश्वस्त थे, अत उन्होने सहर्ष इसकी अनुमति दे दी।

पितामहकी आसाम-यात्रा

उन दिनो राजस्थानमे यातायातकी बहुत कम सुविधाएँ उपलब्ध थी। रतनगढसे निकटतम रेलवे स्टेशन वर्तमान फुलेरा जकशनका पार्श्ववर्ती कुचामनरोड था। कही भी बाहर जानेके लिये रतनगढवासियोको ऊँट या ऊँट गाडीपर बैठकर तीन दिनकी दुर्गम तथा खतरनाक यात्रा करके वहाँ पहुँचना पडता था। युवक कनीरामको अपने कुछ सम्बन्धियोसे पता चला कि आसाममे व्यापार फैलानेका पर्याप्त क्षेत्र है। अत धनोपार्जनकी आशामे पथकी कठिनाइयोकी परवाह न करते हुए वे आसामके लिये रवाना हो गये और कई दिनोकी रेलयात्राके पश्चात् शिलग पहुँचे। रतनगढमे शिलग जानेवाले मारवाडी व्यापारियोमे ये सर्वप्रथम थे। कालान्तरमे इन्हीकी प्रेरणासे रतनगढके और भी परिवारोको शिलग जाकर व्यापार आयोजित करनेका सुयोग प्राप्त हुआ।

व्यापार-स्थापना

शिलग पहुँचनेके थोडे ही दिनो बाद इन्हे सेनाको खाद्य-सामग्री पहुँचानेका ठेका मिल गया। काम बहुत बडा था। उसे अकेले सँभाल पानेमे कठिनाईका अनुभव कर कनीरामजीने रतनगढसे अपने पिता ताराचदजी और छोटे भाई भीमराजको भी आसाम बुला लिया। पूर्वी कमानके विभिन्न सेना-केन्द्रोपर सामग्री पहुँचानेकी सुविधाके विचारसे कुछ दिनो बाद उन्होने गौहाटी तथा कलकत्तामे दो नयी शाखाएँ खोल दी। मुख्य कार्यालय शिलगमे ही रखा। स्थायीरूपमे परिवारके साथ रहते हुए ये वहीसे सारा कारोबार देखते रहे।

---

* कनीरामजीके कोई सतान न थी, अत उन्होने अपने छोटे भाई भीमराजको गोद ले लिया। इसमे दत्तक पुत्र रूपमे ये ही उनके उत्तराधिकारी हुए।

आनुवंशिक धर्माचरण

कनीरामजी जितने कुशल व्यापारी थे, उतने ही आस्थावान् गृहस्थ भी। रामचरितमानसमे उनकी अगाध श्रद्धा थी। वे उसका नियमितरूपसे पाठ किये विना अन्न-जल ग्रहण नही करते थे। दैवयोगसे उनकी धर्मपत्नी रामकौर देवी भी सात्विक विचारकी थी। सामान्य पढी-लिखी होनेपर भी सत्सङ्ग तथा स्वाध्यायसे शास्त्रका मर्म ग्रहण करनेकी उन्होने अद्भुत क्षमता उपार्जित कर ली थी। श्रीहनुमान्जी उनके इष्ट थे। मानस-पाठ और निरन्तर नामजप किया करती थी। वेदान्तमे उनकी प्रगाढ निष्ठा थी। वे बडी मितव्ययी थी। गृहस्थीके खर्चोंमे कमी करके, बचे हुए पैसे सत्कार्योंमे व्यय करना उनका स्वभाव बन गया था। प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाको ब्राह्मण-विद्यार्थी-भोजन करानेका उनका नियम था। वे बडी ही साहसी, सहिष्णु तथा नियमपालनमे कठोर थी। स्त्री होते हुए भी निर्भयता उनका नैसर्गिक गुण था। इसके साथ उनमे नम्रता इतनी थी कि प्यार और सेवासे रूखे और असतुष्ट व्यक्तिको अपना बना लेनेमे उन्हे देर नही लगती थी। इससे पास-पडोसके कई परिवारोमे उनकी धाक थी। जन्म-विवाह, मरनी-करनी आदि अवसरोपर इन घरोमे भी सामाजिक कृत्योकी व्यवस्थाका भार उन्हीपर रहता था। वे स्वय अत्यन्त परिश्रमशील थी और परिवारके सभी लोगोको निरन्तर काममे लगाये रखती थी। इन असाधारण गुणोके कारण घरकी वास्तविक कर्त्ता वे ही थी, कनीरामजी भर्ता थे और परिवारके सदस्य इन दोनोके परिश्रमके भोक्ता मात्र।

रामकौर देवीकी कार्य-कुशलतासे कनीरामजीको गृहप्रबन्धसे निश्चिन्त होकर अपना सारा समय और शक्ति व्यापारमे लगानेका अवसर मिला। दम्पतिकी धर्मनिष्ठा और कर्त्तव्यपरायणतासे कारबारमे आशातीत सफलता मिली, जिससे अल्पकालमे ही पोद्दार-सस्थान शिलगकी एक सम्पन्न व्यापारिक कोठी बन गया।

समस्या और समाधान

वयके साथ वैभवकी अनगिनत सीढियाँ पार करते-करते सेठ कनीराम तीसरेपनमे-ही थकावटका अनुभव करने लगे। पर अबतक उन्हे सतानका मुख देखनेका सौभाग्य प्राप्त न हो सका, भविष्यमे भी इसकी आशा मृगमरीचिकामात्र थी।

अपने पिता सेठ ताराचंद तथा कुछ अन्य विशिष्ट सम्वन्धियोकी सम्मति प्राप्तकर कनीरामजीने अपने छोटे भाई भीमराजको दत्तक पुत्र घोपित करके उन्हे अपनी सारी सम्पत्तिका अधिकारी वना दिया। भीमराजजी वडे भाई कनीरामजीको ही अपना धर्मपिता और भाभी रामकौर देवीको धर्ममाता मानकर सेवा करने लगे। इस भावसम्वन्धका वे आजीवन निर्वाह करते रहे।

भीमराजका विवाह हो चुका था। उनकी पत्नी रिखीवाईको रामकौर देवीका पुत्रवधूके रूपमे अगाध स्नेह प्राप्त हुआ। व्यापारके सिलसिलेमे उन्हे कलकत्ता रहना पडता था, किंतु अब कनीरामजी और रामकौर देवीके वात्सल्यसे आकृष्ट होकर वे दोनो बराबर शिलग आते-जाते रहते। कभी-कभी माताकी सेवाके लिये भीमराजजी पत्नीको शिलग छोड जाते थे। उनके आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे रामकौर देवी और कनीरामजीको सतानहीन होनेका दुख भूल गया।

एक नयी चिन्ता

इस प्रकार सुखके प्रकाशमय दिवस वीतते-वीतते कनीरामजीकी अवस्था ढल चली। रामकौर देवीको इसके साथ ही एक अन्य चिन्ताने आ घेरा। भीमराजका विवाह हुए कई वर्ष वीत चुके थे, किंतु कोई सतान हुई ही नही। रामकौर देवी इस आशङ्कासे निरन्तर भयभीत रहने लगी कि कही उनकी भाँति पुत्रवधूकी भी कोख खाली न रह जाय। इस कुयोगको टालनेके लिये उनसे जो कुछ दान-पुण्य वन पडता, वे बराबर करती थी। किंतु कार्य सिद्ध होते न देखकर उनकी वेचैनी सीमाको पार करने लगी।

शिलगमे सब प्रकारकी भौतिक सुविधाएँ प्राप्त थीं, फिर भी था वह परदेस ही। रामकौर देवीका साधु-संतोमे बहुत विश्वास था और अवतारोमे अगाध निष्ठा थी। किंतु राजस्थानी दम्पतिके लिये आसामके उस नये वातावरणमे आस्थाकी स्थापना एव विकासके लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत ही नही हो पाता था। इस प्रदेशके धार्मिक आचार-विचार, उनकी जन्मभूमिकी रीति-नीतिसे सर्वथा भिन्न थे। अत प्रकृत प्रसङ्गमे वहाँके लोगोसे किसी प्रकारकी सहायता-प्राप्तिकी आशा न देखकर वे पतिकी अनुमति प्राप्तकर एक नौकरको साथ लेकर रतनगढ चली गयी। यहाँ स्वजनोतकसे अपनी मनोव्यथा व्यक्त न कर वे उसके शमनार्थ प्रकृतिके अनुकूल साधनोंके अनुसधानमे लीन रहने लगी।

आध्यात्मिक उपचार

पन्द्रहवी शताब्दीके आरम्भसे ही रतनगढकी प्रसिद्धि नाथपथी साधनाके विशिष्ट केन्द्रके रूपमे रही है। इस समय यह नाथपथ तथा वैष्णव-सम्प्रदायके अनेक लब्धप्रतिष्ठ साधकोसे विभूषित था। नाथ-योगियोमे मोती-नाथजी (टूँटिया महाराज), लक्ष्मीनाथजी, मगलनाथजी तथा वखन्नाथजी अपनी अलौकिक सिद्धियोके लिये विख्यात थे और स्थानीय निम्बार्क-पीठके आचार्य मेहरदासजी वैष्णव-भक्तिसाधनाके पुरस्कर्ताके रूपमे प्रतिष्ठित थे। रामकौर देवी रतनगढमे अपने पूर्व निवास-कालसे ही इन सतोकी यथोचित सेवा करती रहती थी, इसलिये इनपर सभी कृपाभाव रखते थे। सालासरके प्रसिद्ध हनुमान्‌जी उनके इष्टदेव थे। वे उनका स्मरण करती हुई नामजपके साथ ही नित्य रामचरितमानस और हनुमान-कवचका पाठ करती थी।

रतनगढके इस प्रवास-कालमे रामकौर देवीने अपने गुरु वावा मेहरदासजीकी प्रेरणासे अभीष्ट-सिद्धिके लिये स्थानीय लक्ष्मीनारायण-मन्दिरमे विष्णुसहस्रनामके १०८ सम्पुट पाठका आयोजन किया। अनुष्ठान समाप्त होनेपर यथोचित रीतिसे साधु-ब्राह्मण-भोजन तथा दरिद्रनारायण-सेवाकी व्यवस्था हुई।

सत्सङ्ग और पुण्यकर्मानुष्ठानका क्रम महीनो चलता रहा। इसी बीच एक दिन अध्यात्म-चर्चाके ही प्रसङ्गमे वावा वखन्नाथजीको भान हुआ कि रामकौर देवी भीमराजके सतानहीन रहनेसे दुखी रहती है। उन्होंने समय पाकर यह बात टूँटिया महाराजके सामने रखी और प्रकारान्तरसे रामकौर देवीकी इच्छापूर्तिका प्रस्ताव किया। टूँटिया महाराज रामकौर देवीको सम्बोधित करते हुए बोले—'और कौन, मै ही आ जाऊँगा। तेरे पौत्र होगा, असामान्य।' नाथजीने इसके साथ ही रामकौर देवीसे भावी सतानके लक्षण बताते हुए कहा कि 'जन्मके समय बालकके शरीरमे ये चिह्न होगे—मस्तकपर श्रीरेखा, कधोपर बाल, दाहिनी जङ्घापर काला तिल और मुँहमे एक तार, जिसे अँगुली डालकर निकालनेपर ही वह रोयेगा।' इसके थोडे ही दिनो बाद टूँटिया महाराजका शरीर छूट गया। इस प्रकार मातृभूमिमे स्वजनो तथा सतोकी शीतल छायामे कई महीने निवास कर रामकौर देवी मनोकामना-सिद्धिकी आशा लेकर प्रसन्न-हृदय शिलग लौट गयी।

इन्ही दिनो रतनगढमे देवी रामकौरने बाबा मेहरदासजीसे पौत्र-रत्न-प्राप्तिके लिये एक अनुष्ठान करवाया। बाबा मेहरदासजी निम्बार्क-सम्प्रदायके थे। अनुष्ठानके विधिवत् पूर्ण होते ही बाबा मेहरदासजीने कहा—'रामकौर! तेरा मनोरथ पूर्ण होगा। यह अभिमन्त्रित जल तू अपनी बहू रिखीबाईको पिला देना। निश्चय ही एक भगवद्भक्त धर्मात्मा पौत्रकी प्राप्ति होगी, जो वशकी कीर्तिको उज्ज्वल करेगा। उसका नाम हनुमान्‌जीके नामपर रखना।'

जन्म

शिलग पहुँचनेके कुछ समय बाद उन्हे ज्ञात हुआ कि रिखीबाई गर्भवती है। इस सवादने निराश कुटुम्बियोंके मनमे उत्साहकी एक नयी चेतना भर दी। समय पूरा होनेपर रामकौर देवीकी चिर आकाङ्क्षा फलवती हुई। आश्विन कृष्ण १२, शनिवार स० १९४६ (१७ सितम्बर १८९२)को रिखीबाईने पुत्ररत्न प्राप्त किया। यह सुयोग हनुमान्‌जीके ही दिन शनिवारको सघटित हुआ।

नवजात शिशुके विचित्र लक्षण

सौरगृहमे उपस्थित स्त्रियोको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नवजात वालकके शरीरपर असाधारण लक्षण थे--माथेपर श्रीकी तरहका लाल चिह्न था, कधोपर केश थे और दाहिनी जङ्घापर काले तिल-जैसा निशान था। इन वाह्य लक्षणोके अतिरिक्त एक अन्य आश्चर्यजनक बात देखनेमे आयी कि वह जन्म लेनेके वाद रोया नही। वादमे एक कुशल स्त्रीके द्वारा मुँहमे अँगुली डालकर कोई तार-जैसी मासनलिका निकालनेपर उसने सामान्य वालकोकी भॉति रोना आरम्भ किया।

नामकरण

दादी रामकौर देवीने अपनी हनुमत्-निष्ठाके अनुकूल वालकको इष्टदेवकी कृपाका प्रसाद मानकर उसका नाम 'हनुमानवख्श' (अर्थात् 'हनुमान्‌जीका दिया हुआ') रखा। पीछे वख्शका स्थान 'प्रसाद'ने ले लिया। प्यारका नाम 'मन्नालाल' पडा, जिसे स्वजनो एव स्नेहियोके मुखने 'मन्नू' अथवा 'मानिया'का रूप देकर इनके वाल-कलेवरकी स्थायी सज्ञा वना दी।

रामकौर देवी यह न भूली कि हनुमानप्रसाद टूँटिया वावाका ही प्रतिरूप है। बडे होनेपर भी वे वरावर इनसे कहा करती थी--'तू नाथजीके ही आशीर्वादसे मिला है।'

मातृवियोग

इस मङ्गलमयी घटनाके साथ ही पोद्दार-परिवारके अवाध सुखभोगकी यवनिका गिरी। आपत्तियोके दृश्य आरम्भ हुए। प्रपौत्रके आविर्भावके दो मास वाद ८४ वर्षकी दीर्घ आयु भोगकर सेठ ताराचद परलोक सिधारे। भरा-पूरा परिवार छोडकर एक सौभाग्यशाली गृहस्थकी भॉति उनका लोकान्तरण किसी भी दृष्टिसे असामयिक तथा अप्रत्याशित न था। किंतु इसके दो वर्ष वाद ही एक घटना ऐसी घटी, जिसने सारे परिवारको अथाह शोकसागरमे डुवा दिया। श्रावण कृष्ण १, स० १९५१को सामान्य बीमारीके वाद माता रिखीवाई अवोध शिशुको नियतिकी गोदमे रखकर दिवगत हो गयी। मातृहीन शिशुके पालन-पोपणका सारा भार दादीपर आ गया। अवतक वे भावनासे ही उसका स्नेह-पोपण करती थी, किंतु परिवर्तित परिस्थितिमे शिशुके शरीर-पोषणका भी दायित्व उनपर आ पडा। अत वालक जव जानने-पहचानने योग्य हुआ तो मातारूपमे उसने दादी रामकौर देवीको ही पाया। उसने उन्हे ही 'मॉ' कहना आरम्भ किया और यह सम्वोधन जीवनपर्यन्त चलता रहा। पिताने गृहस्थी चलानेके लिये दूसरा विवाह किया। विमाता रामदेवी भी 'मानिया'के पालनमे पर्याप्त रुचि लेती थी, किंतु उनके स्नेहमे स्वभावत नैसर्गिकताका अभाव था। वेचारी जन्मदात्री मॉका हृदय कहॉसे लाती।

भीषण रोगसे मुक्ति

मातृक्रोडसे वञ्चित होनेके लगभग एक वर्ष वाद स० १९५३मे वालक हनुमानप्रसाद सहसा सूखारोगसे आक्रान्त हो गया। उस समय उसकी आयु तीन वर्षसे कुछ अधिक थी। रामकौर देवी उसे लेकर शिलगसे रतनगढ आयी हुई थी। उन्होने स्थानीय चिकित्सकोकी राय लेकर हर सम्भव प्रकारसे उपचारका प्रवन्ध किया, किंतु स्थिति उत्तरोत्तर विगडती चली गयी। अन्तमे सभी ओरसे निराश होकर उन्होने देवी-देवताओ तथा सत-महात्माओकी शरण ली और पूजापाठ, जप-दान-अनुष्ठानादिका मार्ग अपनाया। ईश्वरकी कृपासे रोगमुक्तिके लक्षण दिखलायी देने लगे और शनै-शनै वालक पूर्णतया स्वस्थ हो गया। तव दादी उसे लेकर शिलग चली गयी।*

भूकम्पसे प्राण-रक्षा

वालक हनुमानप्रसादका रोग-जर्जर शरीर अभी पूर्णरूपसे स्वस्थ नही हो पाया था कि उसकी जीवन-

* रामकौर देवीद्वारा अपनी वाल्यावस्थामे की गयी सेवाओका कृतज्ञतापूर्ण स्मरण करते हुए एक स्थानपर भाईजी लिखते है--"माताजीकी वहुत छोटी उम्रमे मृत्यु हो जानेसे मेरी दादीने मुझको पाला। उनका मुझपर जो स्नेह था एव उन्होने मेरे लिये जितने कष्ट सहे, उनका वदला मैं हजार जन्म सेवा करके भी नही चुका सकता।"--'ईश्वरकी सत्ता और महत्ता'

नौका एक घातक भँवरमे फँस गयी। स० १९५३मे आसाममे एक भीषण भूकम्प आया। उस समय उसकी आयु लगभग चार वर्षकी थी। यह अप्रत्याशित दुर्घटना सध्याके लगभग ५ बजे घटी। सारा शिलग कुछ ही क्षणोमे ध्वसावशेषमे परिणत हो गया। बडे-बडे प्रासाद भूलुण्ठित हो मलवेके नीचे दबे हुए लोगोके आर्तनादसे श्मशान-से भयानक लगने लगे। स्थान-स्थानपर धँसी और फटी हुई पृथ्वी प्रलयका-सा दृश्य उपस्थित करती थी।

कनीरामजीकी कोठी पूरी तरह नष्ट हो गयी। उसके भीतर अतिथिरूपमे आयी हुई उनकी बहिनकी दो अबोध सताने—एक कन्या और एक पुत्र दब गये। ये दोनो ही हनुमानप्रसादके समवयस्क थे। उनकी बहिन और रामकौर देवी किसी प्रकार बच निकले। बालक हनुमानप्रसाद उस समय भजनलाल श्रीनिवासके गोलेमे अकेले ही किसी व्रतके उद्यापनमे प्रसाद ग्रहण करनेके लिये गया हुआ था। वह गोलेके पीछे रसोईघरमेसे भोजन करके निकल ही रहा था कि भूकम्पके धक्केसे पृथ्वी काँपने लगी और कडाकेके शब्दके साथ पत्थरकी वर्षा होने लगी। मकानकी दीवारे, छत देखते-देखते पृथ्वी चूमने लगी।

हनुमानप्रसाद प्राणोका सकट देखकर अनवरत चिल्लाता रहा। उसका भी शरीर हजारो शिलग-वासियोकी भाँति क्रूर नियतिचक्रमे पिस गया होता, किंतु जगत्पिताके अदृश्य हाथोने उसके चारो ओर दीवारकी भाँति खडे पत्थर, उनके ऊपर एक पत्थरकी चौडी पट्टी और उसके ऊपर असख्य पत्थर रखकर सुरक्षित गुफा बना दी, जिसमे वायुका प्रवेश भी कठिनाईसे सम्भव था। भूकम्प बद होनेपर घोर वर्षा हुई। उसी बीच निकटस्थ गोलेमे आग लग गयी। पत्थर ओर पानीका उत्पात बद होनेके बाद दादा कनीराम और दादी रामकौर देवी तीनो बालकोका पता लगानेके लिये बाहर निकले। बहिनके दोनो बच्चे गोलेमे पत्थरोके नीचे मरे मिले। पास ही दूसरी बहिनके पौत्र श्रीराम गोयन्दकाका भी शव मलवेके नीचे दबा मिला। इन दृश्योने उनके धैर्यका बाँध तोड दिया। अपने बुढापेकी लकडी और कुलकी एकमात्र आशा-किरणके अस्तित्वके प्रति गहरी आशङ्काने उन्हे चेतनाशून्य-सा कर दिया। इसी स्थितिमे रोते-बिलखते वे दोनो श्रीनिवासके गोलेके पास आये। अन्त प्रेरणासे साहस बटोरकर कनीरामजी जोर-जोरसे 'मन्नू-मन्नू' पुकारने लगे। मलवेसे घिरे रोते हुए नन्हे-से बालकके कानोमे पडे इन शब्दोने सजीवनी बूटीका काम किया। वह साहस बटोरकर चिल्लाया—'यहाँ हूँ, जल्दी निकालिये।' शब्दोके सहारे स्थानका सधान पाते ही सबने जुटकर कुछ ही क्षणोमे सारा मलबा हटा दिया। देवनिर्मित गुफाका द्वार खुलते ही 'मन्नू' दौडकर बाबाकी गोदीमे चढ गया। खोयी हुई जीवन-निधिको पाकर कनीरामजीने उसे हृदयसे चिपका लिया। वियोग-दुःखके उद्रेकसे दोनो एक-दूसरेकी अन्तर्ज्वालाको आँसुओकी धारासे सीचते रहे। इस बीच रामकौर देवी अपने इष्टदेव श्रीहनुमान्जीकी अहैतुकी कृपाका स्मरण कर मौन भावाञ्जलि अर्पित करती रही थी। इस घटनाको देखकर उन्हे यह दृढ विश्वास हो गया कि अपने प्रसादरूपमे दिये गये बालकके प्राणोकी रक्षा सकट-मोचन हनुमान्ने स्वय उपस्थित होकर की है।

शिलगसे कलकत्ता स्थानान्तरण

भूकम्पजनित भयानक तबाही, अपार आर्थिक हानि एव कई स्वजनोकी मृत्युसे कनीरामजीके हृदयपर गहरा धक्का लगा[1]। उनका मन शिलगमे उचट गया। उन्होने वहाँका सारा धधा समेटकर परिवारसहित कलकत्ता चले जानेका निश्चय किया। किंतु कारोबार लबा था, उसे इतनी जल्दी समेटनेमे भारी घाटेका भय था। इस चिन्ताने उन्हे और उद्विग्न कर दिया। शरीर उत्तरोत्तर क्षीण होता गया और कलकत्ता जानेकी योजनाके कार्यान्वित होनेके पूर्व ही मार्गशीर्ष शुक्ल १, स० १९५६को उनका परलोकवास हो गया। धर्मपिताके दिवगत होनेसे भीमराजजी असहाय हो गये। अकेले अपने बूतेपर शिलग, कलकत्ता और गौहाटी— तीनो स्थानोका व्यापार चलाना उनके लिये सम्भव नही था। अत स० १९५८मे शिलगकी दूकान बद करके वे सपरिवार

---

[1] भूकम्पमे कनीरामजीके घर तथा दूकानमे रखा लाखो रुपयोका माल नष्ट हो गया था यहाँतक कि खानेके लिये भी कोई वस्तु नही बच रही थी।

कलकत्ता चले आये। उसके अनन्तर रामकौर देवी बालक हनुमानप्रसादको साथ लेकर अधिकांश रतनगढमे रहने लगी।

शिक्षा

पतिके देहावसानके बाद रामकौर देवीकी भी शिलगवाससे अरुचि हो गयी। वहाँपर अब उनके साथ मात्र पौत्र रह गया। उसके पिता श्रीभीमराज सपरिवार कलकत्तामे रहते थे। शोकसतप्त मनके लिये एकान्तवास असह्य हो गया। रामकौर देवी मन्नूको साथ लेकर कलकत्ता चली आयी और उसका नाम विशुद्धानन्द स्कूलमें लिखा दिया, किंतु यह शिक्षा-व्यवस्था टिक नही पायी। कलकत्तेमे रामकौर देवीका मन नही लगा। इस आपत्ति-कालमे सान्त्वना-प्राप्तिका एकमात्र स्थान उनकी दृष्टिमे राजस्थान ही दिखायी पडा। निदान, पौत्रको साथ लेकर वे रतनगढ चली आयी।

हनुमानप्रसादकी आयु अब लगभग ६ वर्षकी हो चुकी थी। किंतु आपत्तिजनित पारिवारिक अव्यवस्था तथा शिलगमे कलकत्ता और रतनगढके आवागमनके झमेलेमे फँसे रहनेके कारण रामकौर देवी उनकी पढाईकी व्यवस्था नही कर पायी थीं। इस ओर ध्यान देना आवश्यक था। अत पतिवियोगका दुख भूलकर वे कर्त्तव्य-पालनमे सलग्न हो गयीं।

(महाजनी)

रतनगढमे एक सरकारी प्राइमरी स्कूल था। उसके अतिरिक्त निजी तौरसे शिक्षा देनेवाले गुरुओकी कई घरेलू पाठशालाएँ थीं। इनमे हिंदीके साथ ही महाजनीकी पढाई होती थी। सरकारी स्कूलकी अपेक्षा इन व्यक्तिगत पाठशालाओमे छात्रोपर अधिक ध्यान दिया जाता था। पैतृक व्यवसायमे योग देनेके लिये भी महाजनीका ज्ञान आवश्यक था। अत हनुमानप्रसादका प्रवेश इन्ही पाठशालाओमेसे एक पाठशालामे करा दिया गया। वह 'जोरजी'की पाठशाला कही जाती थी। इन गुरुजीका वास्तविक नाम जोरावरमल था। 'जोरजी' उसीका लोक-व्यवहृत सक्षिप्त रूप था। यहाँ बालक हनुमानप्रसादको महाजनीके साथ हिंदी और गणितका ज्ञान कराया गया। रोकड-खाता आदि लिखनेका सामान्य ज्ञान इन्होने यहीं प्राप्त किया। आगे चलकर कलकत्ता और बम्बईके व्यापारिक जीवनमे महाजनीका यह आरम्भिक ज्ञान बहुत समृद्ध हो गया। व्यक्तिगत प्रयाससे इन्होने कालान्तरमे महाजनीकी अनेक लिपियों—बीकानेरी, जैसलमेरी, भिवानीवालोकी, हरियाणवी आदिके भी पढने और लिखनेमे दक्षता प्राप्त कर ली।

(उर्दू)

भी किसी पाठशाला या संस्कृत विद्वान्‌के सानिध्यमें न होकर एक विद्वान् महात्माके आश्रममें उन्हींके द्वारा हुआ। श्रीबखन्नाथजी दर्शनार्थ उपस्थित होनेवाले श्रद्धालुओंको श्रीमद्भगवद्गीता तथा विष्णुसहस्रनामके पाठ तथा अध्ययन-का उपदेश करते थे। इसी परिपाटीके अनुसार उन्होंने सहजरूपमें बालक हनुमानप्रसादको गीता पढाना प्रारम्भ किया था।

दादी रामकौर देवी अपने रतनगढ-निवासके समय संत श्रीबखन्नाथजीके पास नित्य सत्सङ्गके लिये जाया करती थीं। साथमें बालक हनुमानप्रसाद भी रहता था। नाथजीकी इस मातृहीन बालकपर विशेष कृपा रहती थी। आश्रम-भूमिपर झडबेरीकी कई एक झाडियाँ थीं। उनके फलोंमें अद्भुत मिठास होती थी। किंतु नाथजीके डरसे बिना आज्ञा लिये कोई उन्हें तोड नहीं सकता था। दादी तो सत्सङ्गमें व्यस्त रहती, किंतु हनुमानप्रसादका मन बेरोंके लिये ललचाया रहता। नाथजी इनकी इच्छा देखकर पूछते—'बेर खाओगे?' स्वीकारात्मक उत्तर पाकर वे इन्हें झाडियोंमें तोडकर बेर खानेकी अनुमति दे देते। मनचाही वस्तु पाकर बालक हनुमानप्रसाद उछल-उछलकर झाडियोंमें पके बेर तोडता और खाकर आनन्दित होता। कभी-कभी दादीके साथ इसके आश्रमपर पहुँचनेके पहले ही नाथजी पके बेर तुड़वाकर अपने पास रख लेते थे और आनेपर थोडे-थोडे करके देते थे। इस प्रकार नाथजीसे हनुमानप्रसादकी आन्तरिक निकटता बढती गयी और धीरे-धीरे उनमें इसका भय छूट गया। बखन्नाथजीने इस आत्मीयताका लाभ उठानेकी बात सोची। अब जब भी अपनी दादीके साथ ये नाथजीके आश्रममें जाते, वे पहले गीताका एक श्लोक स्वयं कहते, फिर उसे इनसे दुहरवाते। कभी इन्हें उद्विग्न देखकर कहते—'बेर खाकर आ जाओ, पीछे गीता पढना।' इस क्रमसे गीताका पाठ चलने लगा। नाथजीकी यह पद्धति उपयोगी सिद्ध हुई। 'मन्नू'ने एक वर्षके भीतर सारी गीता कण्ठस्थ करके नाथजीको सुना दी। पौत्रकी अद्भुत प्रतिभा तथा आध्यात्मिक प्रवृत्ति देखकर दादीको अपार प्रसन्नता हुई। इस छोटी उम्रमें भी ये गीताके क्लिष्ट शब्दोंका शुद्ध उच्चारण कर लेते थे, केवल एक शब्द कहनेमें जबान लटपटा जाती थी और वह था निम्नाङ्कित श्लोकका 'अश्वत्थामा' शब्द—

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च॥

(गीता १।८)

इसे वे 'अश्वस्थामा' कह जाते थे। नाथजी 'मन्नू'को बार-बार सिखाते—कभी पुचकारकर, कभी आँख दिखाकर और कभी कानमें कहकर—"अश्वस्थामा नहीं, छोरा! उच्चारण करो 'अश्वत्थामा'।" किंतु उच्चारण-दोष अपने स्थानसे तिलभर भी हटनेका नाम न लेता।*

आठ वर्षकी आयुतक रतनगढमें बाबा बखन्नाथके सानिध्यमें गीतापाठके व्याजसे संस्कृतकी यह मौलिक शिक्षा ही हनुमानप्रसादके लिये प्रसादरूप बन गयी। इसके बाद ये न किसी संस्कृत-पाठशालामें पढ सके न किसी संस्कृतके विद्वान्‌द्वारा घरपर शिक्षा पानेका ही सुयोग प्राप्त कर सके। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित विशाल संस्कृत-वाङ्मय 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंमें छपनेके लिये आयी हुई भारतीय संस्कृतिके आर्षग्रन्थोंपर आधारित सामग्री-का सम्पादन तथा स्वयं उनके द्वारा लिखे गये मौलिक लेखोंका प्रासाद नींवके इन्हीं रोडोंपर खडा हुआ।

श्रीबखन्नाथजीका हनुमानप्रसादपर यह स्नेह आजीवन बना रहा। ये भी उनपर अगाध श्रद्धा रखते रहे। रतनगढसे कलकत्ता चले जानेपर ये जब कभी वहाँ जाते, नाथजीके दर्शन अवश्य करते थे। बखन्नाथजी इन्हें सदाचार, भजन, भगवान्‌पर आस्था और नाम-जपका उपदेश करते थे। यद्यपि व्यक्तिगतरूपमें वैराग्य, योग और वेदान्त ही उनकी साधनाके मुख्य अङ्ग थे, तथापि इनकी रुचि देखकर वे भक्ति-साधनापर ही अधिक जोर देते थे। साम्प्रदायिक दुराग्रहसे नाथजी सर्वथा मुक्त थे। वे व्याख्यान नहीं देते थे, प्रश्न करनेपर ही बात

* प्रसङ्गवश यह वृत्तान्त सुनाते हुए श्रीभाईजीने बताया था कि कुछ बडे होनेपर उन्हें 'अश्वत्थामा' कहना तो आ गया, किंतु थोडी-बहुत हकलाहट बनी रही। कुछ विशेष शब्दोंके उच्चारणमें जिह्वा थम जाती थी। इस प्रकारके उच्चारण-दोषसे बचनेके लिये इन्होंने एक नयी तरकीब निकाली। जिन शब्दोंके उच्चारणमें इन्हें कठिनाई होती थी, बातचीतमें उनके पर्याय अथवा समानार्थक शब्द सतर्कतापूर्वक प्रयुक्त कर इस दोषका मार्जन कर लेते थे।

करते थे। हनुमानप्रसाद जब दर्शनार्थ उनके पास जाते, तब वे इनसे कहा करते थे—'गायोकी सेवा किया करो, बीमारोकी सेवा किया करो, अनाथोकी सेवा किया करो। यह न भूलो कि भगवान् सभीमे है।' उनके ससर्गसे इनके मनमे जीवदया, मानव-सेवा तथा भगवत्सत्ताकी सर्वव्यापकतामे निष्ठा बढी और इनके सस्कार बद्धमूल हो गये।

(हिंदी)

हिंदी वर्णमालाका आरम्भिक ज्ञान हनुमानप्रसादको जोरजीकी पाठशालामे हुआ और उसका व्यावहारिक ज्ञान सामाजिक सम्पर्क एव स्वाध्यायसे। पीछे कलकत्तावासके समय तत्कालीन हिंदीके प्रसिद्ध विद्वानो एव सम्पादकोके सम्पर्कमे आकर इन्होने हिंदी-साहित्यका समुचित ज्ञान प्राप्त किया। किशोरावस्थामे ही सामाजिक तथा राजनीतिक विषयोपर इनके द्वारा लिखे गये लेख पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित होने लगे।

(बँगला)

आसाममे जन्म लेने और पिताके साथ बाल्यावस्थामे ही कलकत्ताकी दूकानपर बगाली ग्राहकोसे व्यापारिक सम्बन्धके कारण बँगला इनकी एक प्रकारसे मातृभाषा ही हो गयी थी। पिताजी बँगलाके अच्छे जानकार थे। वे अपने साथ बैठाकर इन्हे उसका साहित्य पढाते, बँगला-साहित्यकी पुस्तके मँगाकर देते और उन्हे पढनेके लिये बराबर प्रोत्साहित किया करते थे। पीछे कलकत्ताके क्रान्तिकारी जीवनमे वङ्गीय राष्ट्र-भक्तोके साथ सम्पर्क और बँगला समाचार-पत्रोके अध्ययन तथा शिमलापालकी नजरबदीमे वङ्गीय धार्मिक साहित्यके गहन अनुशीलनसे बँगला भाषा और साहित्यमे इनकी गहरी पैठ हो गयी। इसके फलस्वरूप इनके लिखने और बोलनेमे प्रयुक्त बँगलाको देख-सुनकर, उस भाषाका मर्मज्ञ भी यह नही भाँप सकता कि बँगला इनकी मातृभाषा नही है। 'कल्याण'-का सम्पादन करते समय बँगला भाषाके लेखो, विशेषकर महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजके दार्शनिक निबन्धोका हिंदी रूपान्तर प्राय ये स्वय करते थे। बँगला भाषामे इनकी दक्षताका प्रमाण वङ्गीय साहित्य परिषद्के गोरखपुर अधिवेशन (२५ दिसम्बर, १९६२) मे स्वागताध्यक्ष-पदसे दिया गया इनका भाषण था, जिसे सुनकर समागत वङ्गभाषी विद्वान् भी आश्चर्य-चकित हो गये थे।

(गुजराती और मराठी)

व्यापारके सिलसिलेमे बबई-प्रवासमे इनको गुजराती तथा मराठी सीखनेका अवसर मिला। इन दोनो भाषाओके सीखनेमे वहाँ भी भाईजीने किसी शिक्षकका सहारा नही लिया। अभ्याससे लिपि-ज्ञान प्राप्त करके फिर उसके साहित्यका आलोडन अन्तःप्रेरणासे किया और प्रवृत्तिके अनुकूल तत्त्वग्रहण करते रहे। इनकी रुचि धार्मिक साहित्यमे विशेषरूपसे थी। अत गुजराती तथा मराठी—दोनोके आध्यात्मिक और उसमे भी मुख्यत भक्ति-साहित्यका इन्होने गहन अनुशीलन किया। दिनभर ये व्यापारिक धधेमे लगे रहते, रातमे पूजा, ध्यान और भोजनके पश्चात् घटो स्वाध्यायमे बिताते। यह क्रम सामान्यरूपसे बारह बजेतक चलता, कभी-कभी पृष्ठोके साथ ही खिसकती हुई घडीकी छोटी सूई दो तक पहुँच जाती थी। गुजराती और मराठीका यह ज्ञान इनके सम्पादकीय जीवनमे वरदान सिद्ध हुआ। इन भाषाओमे लिखे विद्वानो एव धर्माचार्योके लेखोका अनुवाद बहुधा ये स्वय कर लेते थे। दूसरे सज्जनोसे कराये गये अनुवादके एक-एक शब्दको मिलाकर भूलोको ठीक करते थे। भाईजीने गुजराती तथा मराठी साहित्यमे निहित दुर्लभ तत्त्वो एव रहस्योका हिंदी-भाषी जनताके लिये सशक्त एव प्रभावशाली रूपान्तर प्रस्तुत करनेकी क्षमता इसी प्रकार उपार्जित की थी।

(अंग्रेजी)

भारतीय भाषाओके ज्ञानोपार्जनकी ही पद्धति अग्रेजी सीखनेमे भी अपनायी गयी। इसका श्रीगणेश तो रतनगढमे ही हो चुका था, किंतु विकास हुआ कलकत्तामे। वहाँ कालीगोदाममे दुतल्लेपर बालकोका एक स्कूल था। नीचे 'बलदेवदास ठाकुरदास बिडला'की फर्म थी। इस स्कूलके सर्वेसर्वा थे प० श्रीअयोध्याप्रसाद। वे आर्यसमाजी विचारके थे। यहाँ हिंदीके साथ अग्रेजी शिक्षा देनेकी व्यवस्था थी। अयोध्याप्रसादजी अग्रेजीके अच्छे

विद्वान् होनेके अतिरिक्त बड़े ही सदाचारनिष्ठ शिक्षक थे। श्रीअयोध्याप्रसादजीके पास व्यक्तिगतरूपसे कुछ दिनो अध्ययन करके इन्होने अंग्रेजीका सामान्य ज्ञान प्राप्त किया। व्यावसायिक व्यस्तताके कारण यह क्रम थोडे ही दिन चल सका। इनके पिताजी अंग्रेजी जानते थे। उनके यहाँ पास-पडोसके लोग तार और चिट्ठियाँ पढाने तथा पत्रोपर अंग्रेजीमे पता लिखाने आया करते थे। उन दिनो कलकत्ता-जैसे उन्नत नगरमे भी मारवाडी-समाजमे अंग्रेजी जाननेवाले कम ही थे। पिताकी अनुपस्थितिमे उनकी अंग्रेजी तार तथा पत्र पढनेकी सेवाका दायित्व हनुमानप्रसाद बडी कुशलतासे निभाने लगे। अंग्रेजी-साहित्यके दर्शन एव सदाचार-सम्बन्धी कुछ ग्रन्थ इन्हे अत्यन्त प्रिय लगे—विशेषरूपसे जेम्स एलेन और लिली एलेनके नैतिकता तथा सदाचारपरक ग्रन्थ। अंग्रेजीके शून्यवादी (निहिलिस्ट) साहित्यमे गहरी रुचि होनेके कारण इन्होने उस समयतक प्रकाशित उसकी अधिकाश उपलब्ध पुस्तके पढ डाली।

इस प्रकार भाईजीकी बाल्यावस्थामे विविध भाषाओके जो सस्कार बीजरूपमे आरोपित हुए, उनका उनके आगामी जीवनमे व्यापक रूपसे विकास हुआ। यद्यपि उन्हे किसी विद्यालयका छात्र बननेका गौरव प्राप्त नही हुआ, तथापि लोकोत्तर प्रतिभा और अनवरत स्वाध्यायसे उन्होने उसकी कमी ही पूरी नही की, बल्कि एक कुशल व्यापारीकी भाँति उसे बढाकर अमितगुना कर लिया। इस विस्मयकारी उत्कर्षका कारण थी इनके द्वारा की गयी अखण्ड अक्षरोपासना। भाईजीने अक्षर पढा कम, उसकी साधना अधिक की। इसीसे उनकी लेखनीके सस्पर्शसे निर्गत शब्द 'शब्द-ब्रह्म' और वाक्य 'महावाक्य'की भाँति सर्वमान्य एव मननीय बन गये। आदि गुरुओसे प्राप्त ज्ञान-बीजको अपनी साधनाके बलसे इन्होने वृक्ष बना दिया। भाग्यचक्रने नियमित क्रमसे इन्हे किसी भी पाठशाला-का प्रमाण-पत्र प्राप्त करनेका अवसर नही दिया। सारा अध्ययन राजमार्गसे हुआ। विधिमार्गसे पार की गयी कक्षाओमे योग्यताकी इयत्ता होती है, राजपथके इस निराले राहीको नियतिने उससे दूर रखकर कक्षाहीन असीम ज्ञानका अधिकारी बना दिया।

(अन्य भाषाएँ)

उपर्युक्त भाषाओके अतिरिक्त राजस्थानी भाषापर उनका पूर्णाधिकार था। राजस्थानी तो उनकी मातृभाषा थी ही। उन्होने राजस्थानीमे सुन्दर काव्य-रचना भी की। असमियाका भी अच्छा-खासा ज्ञान था। गुरुमुखी भाषाके समाचारपत्र वे सरलतासे पढ लेते थे। उडिया तथा तमिळ भाषा भी सीखनेका प्रयास हुआ था, पर वह प्रयास अधूरा ही रह गया।

दीक्षा

रामकौर देवीकी आन्तरिक इच्छा हनुमानप्रसादको अध्यात्मनिष्ठ सद्गृहस्थ बनानेकी थी। बाल्यावस्थासे ही उसकी गम्भीर प्रकृति, चञ्चल तथा उद्दण्ड प्रकृतिके समवयस्क बालकोके सङ्गका त्याग, एकान्तप्रियता, खेल-कूद छोडकर पढाई-लिखाईमे अधिक मन लगाना आदि इसकी सूचना देने लगे कि बडे होनेपर वह उनके सपनोको साकार करेगा। पौत्रके मानसमे अध्यात्मतत्त्व स्थायीरूपसे प्रतिष्ठित करनेके विचारसे उन्होने उसे स्थानीय निम्बार्कपीठके आचार्य बाबा श्रीमेहरदासजीके प्रशिष्य बाबा श्रीब्रजदासजीसे स० १९५७मे वैष्णवी दीक्षा दिला दी। गलेमे तुलसीकी भागवती कठी पहनायी गयी। इस समय ये आठ वर्षके थे। राधापरत्व इस सम्प्रदायकी अपनी विशेषता है। अबोध बालक हनुमानप्रसादके हृदयमे इस प्रकार राधा-तत्त्वका बीजारोपण अत्यन्त स्वाभाविक पद्धतिसे और सहसा हुआ, किन्तु भाईजीके परवर्ती जीवनमे इसके कायाकल्पी प्रभावको किसी अदृश्य शक्तिके द्वारा सुनियोजित मानना असगत न होगा।

श्रीब्रजदासजीद्वारा मन्त्रोपदेश ग्रहण करनेके पश्चात् दादीके निर्देशानुसार हनुमानप्रसादकी क्रियात्मक दीक्षा आरम्भ हुई। इसका श्रीगणेश 'हनुमत्कवच' तथा 'हनुमानचालीसा'से हुआ। वह बालक हनुमानप्रसादकी दिनचर्याका एक अनिवार्य अङ्ग बन गया। दादीने धीरे-धीरे अन्य देवताओकी भी स्तुतियाँ इन्हे सिखा दी और ये सूर्य, गण-पति, देवी तथा शिवके स्तोत्रोका नियमसे पाठ करने लगे। घरमे दुर्गासप्तशतीका नवरात्रमे साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान

और देवीभागवतकी स्तुतियोका पाठ पूर्ण विधि-विधानके साथ आयोजित किया जाता था। स्तोत्रपाठ-पूर्वक धार्मिक अनुष्ठानोमे प्रगाढ़ आस्थाके बीज हनुमानप्रसादके मानसमे इसी स्थितिमे आरोपित हुए।

उपनयन-संस्कार

रतनगढमे रहते हुए ही दादीने सं० १९५७मे हनुमानप्रसादको यज्ञोपवीत-दीक्षा दिलानेका उपक्रम किया। स्थानीय पण्डित श्रीछोटेलालजी बडे ही त्यागी, सदाचारी और विद्वान् थे। बालक हनुमानप्रसादका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न हुआ। विद्वान् पण्डित श्रीछोटेलालजी सयोगवश रतनगढ आये हुए थे। ये रतनगढकी खेमका पाठशालामे प्रधानाचार्य थे। पीछे ये हरद्वारमे रहने लगे थे।

विवाह

हिंदू समाजके कतिपय अन्य वर्गोकी भाँति उन दिनो मारवाडी अग्रवालोमे भी बाल-विवाहकी प्रथा थी। हनुमानप्रसाद १२ वर्षके हो चुके थे। परिवारकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। मारवाडियोमे सामाजिक दृष्टिसे भी 'कनीराम भीमराज' फर्मकी प्रतिष्ठा थी। कलकत्तामे इनके पिता भीमराजजीका उन्नतिशील कारोबार था। इससे रामकौर देवीके पास अच्छे-अच्छे घरानोके विवाह-प्रस्ताव आने लगे। रतनगढके भी कई सम्बन्धी हनुमान-प्रसादके विवाहके लिये जोर डालने लगे। रामकौर देवीको रुपये-पैसेका लोभ न था। वे पौत्रके लिये एक कुल-शील-सम्पन्ना कन्यामात्र चाहती थी। बहुत कुछ सोच-विचारकर सभी दृष्टियोसे अपने परिवारके अनुकूल उन्हे रतनगढका ही एक सम्बन्ध पसद आ गया। गुरुमुखरायजी ढढारियाकी पुत्री महादेवी बाईसे उनकी सगाई पक्की हो गयी। दुर्भाग्यसे विवाहके कुछ समय पूर्व वह लडकी भीषण रूपसे चेचकसे आक्रान्त हो गयी। परिवारके लोग उसके जीवनकी आशा खो बैठे। काफी दिनोतक शय्याग्रस्त रहनेके बाद ईश्वरकी कृपासे उसके प्राण तो बच गये, किंतु सारा शरीर मधुके छत्तेकी भाँति चेचकके दागोसे विकृत हो गया। कुमारी महादेवीका सौन्दर्य और स्वास्थ्य, दोनो शीतला देवीकी भेट हो गये। इसके साथ ही वे एक हाथ और एक पैरसे भी विकलाङ्ग हो गयी। पुत्रीकी ऐसी दशा देखकर ढढारियाजीको चिन्ता हुई कि रामकौर देवी सम्बन्ध करना अस्वीकार न कर दे। विवाहका दिन निकट आनेपर वे रामकौर देवीके पास गये और बडे ही आर्त्तस्वरमे उन्होने अपनी विवशता कह सुनायी। रामकौर देवी मर्यादानिष्ठ सात्त्विक विचारकी महिला थी—उन्होने बडे ही सहानुभूतिपूर्ण शब्दोमे कन्याके पिताको सान्त्वना देते हुए कहा—

'कन्याका वाग्दान एक बार ही होता है, किसी लडकेके साथ एक बार सम्बन्ध स्थिर हो जानेपर फिर दूसरे पुरुषके साथ उसे नही दिया जाता। मैं अपने पौत्रका विवाह महादेवीके साथ करनेका वचन दे चुकी हूँ। महादेवीके जीवित रहते मै अपने इस वचनका त्याग कदापि नही करूँगी।'

गुरुमुखरायजीके चले जानेपर रामकौर देवीने पौत्रको बुलाया और सारी बाते बताकर इस सम्बन्धमे उसकी राय जाननी चाही। हनुमानप्रसादका विनीत उत्तर था, 'इसमे मेरी सम्मतिकी क्या आवश्यकता है। आप जो करेगी, वही मेरे लिये शुभ होगा।' इसके बाद भीमराजजीको रामकौर देवीने सारा वृत्तान्त लिख भेजा। उनकी भी सहमति प्राप्त होनेपर विवाहकी तिथि निश्चित कर दी गयी।

निश्चित तिथिके कुछ समय पूर्व ही भीमराजजी विवाहकी तैयारीके लिये सपरिवार कलकत्तासे रतनगढ आ गये। ज्येष्ठ कृष्ण ४, सं० १९६१को बालक हनुमानप्रसाद गाजे-बाजेके साथ विवाहके बन्धनमे जकड दिये गये।

विवाहके उपरान्त कुछ दिन रतनगढमे रहकर भीमराजजी माता, पुत्र तथा पत्नीको लेकर कलकत्ता लौट आये।

व्यवस्था-परिवर्त्तन

कलकत्ता चले आनेके बाद हनुमानप्रसादके जीवनमे एक नये युगका आरम्भ हुआ। इसके पूर्व उनके जीवन-सूत्र सनातन दादीके हाथमे था। बाल्यावस्थामे 'मार्जार-शावक-न्याय' ही श्रेयस्कर होता है। अब समझदार हो जानेपर उन्हे अपनी जीवन-नौका स्वतः सञ्चालित करनेका अवसर दिया जाने लगा। नियन्त्रण

अब भी दादी और पिताका ही था, किंतु उसकी डोर बहुत ही ढीली थी। प्रवृत्तियोंको स्वतन्त्ररूपसे स्वाभाविक विकासका अवसर देनेके लिये यह आवश्यक भी था। यह सोचकर दादी रामकौर देवीने अपनी अधिकार-सीमा स्वतः संकुचित कर ली। किंतु किशोरावस्थाके प्रवाहमें हनुमानप्रसाद कलकत्ता नगरीकी चकाचौंधमें दिग्भ्रान्त न हो जाय, इसलिये पिताका अनुशासन आवश्यक था। रामकौर देवीने बालकके कल्याणके लिये यही व्यवस्था की। 'अहं' को 'इदं'में विलीन करना ही उनके साधक-जीवनका मूल-मन्त्र था।

अब रामकौर देवीके समयका अधिक भाग साधन, भजन, देव-दर्शन और दीन-दुःखियोंकी सेवामें बीतने लगा। प्रातः गङ्गा-स्नान, साँवलियाजीके मन्दिरकी मङ्गल-आरतीका दर्शन, पञ्चमुखी हनुमान् तथा सत्यनारायण मन्दिरोंमें पूजा-पाठ, कथा-श्रवण, निर्धन रोगियोंको दवाका वितरण उनकी दिनचर्या हो गयी।

पितृ-चरणोंका सान्निध्य

भीमराजजी बड़े ही सरल, सादगीपसंद, सेवाभावी और सात्त्विक प्रकृतिके व्यक्ति थे। कनीरामजीके देहावसानके बाद उन्होंने शिलांगकी दूकान बंदकर सारा कारोबार कलकत्तामें ही केन्द्रित कर लिया था। यहाँ पगया पट्टीकी पारख कोठीमें उनकी कपड़ेकी दूकान थी। इसके सामने श्रीहरिदास साँवलकाकी फर्म स्थित थी। हनुमानप्रसाद पिताके पथ-प्रदर्शनमें दूकानका काम सीखने लगे। धीरे-धीरे परिश्रम और सूझ-बूझसे इन्होंने दूकानके काममें पूरी दक्षता प्राप्त कर ली। सद्व्यवहार और ईमानदारीसे ग्राहकोंकी संख्या बढ़ने लगी। जो एक बार इनकी दूकानपर आ जाता, वह इनका अपना हो जाता। इससे अल्पकालमें ही व्यापारका आशातीत विकास हो गया। पूजाके दिनोंमें आधीराततक इन्हें छुट्टी न मिलती। इनकी कार्य-कुशलताको देखकर भीमराजजीने धीरे-धीरे हाथ समेटना आरम्भ किया और फिर सारा भार इन्हींपर आ गया। अब माल मँगाना, गाँठे खुलवाना, रोकड़ रखना, तकादा-वसूलीका प्रबन्ध करना आदिमें ही व्यस्त रहनेके कारण ये खाने-पीनेका समय भी मुश्किलसे निकाल पाते थे। पुत्रके काम सँभाल लेनेसे भीमराजजीको परमार्थ-साधन और समाज-सेवाके लिये पर्याप्त समय मिलने लगा। गीतापारायण, विष्णुसहस्रनाम-पाठ तथा नाम-जपकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। भीमराजजी व्यापारके साथ ही इनके चरित्र-निर्माणपर विशेष ध्यान देते थे। वे इन्हें कहीं भी अकेले जाने नहीं देते थे। जब कभी ये दूकानसे बाहर जाते तो दरबान इनके साथ रहता। वे स्वयं मितव्ययी थे, अतः पुत्रमें भी इस गुणका विकास देखना चाहते थे*।

रातमें वे दूकानपर सत्सङ्ग कराते थे। इसमें १०–१५ व्यक्ति नियमित रूपसे आते थे। छुट्टीके दिन संख्या बढ़ जाती थी। भीमराजजी रामायण, महाभारत और भागवतकी कथाएँ पढ़कर सुनाते थे। समागत सत्सङ्गियोंके मनोरञ्जन एवं सामान्य ज्ञान-वर्द्धनके लिये वे उन्हें अखबारोंमें प्रकाशित देश-विदेशके समाचार भी बताते थे।

धार्मिक कार्योंमें उनकी बड़ी रुचि थी। अपने साथियों—श्रीमदनगोपाल कोठारी, श्रीशिवनारायण व्यास तथा श्रीशिवप्रताप आचार्यके सहयोगसे उन्होंने 'सनातनधर्म पुष्टिकारिणी सभा' नामक एक संस्था स्थापित की थी। इसके मन्त्री वे स्वयं थे और सहायक थे श्रीशिवप्रसाद आचार्य तथा श्रीशिवनारायण व्यास। इसका एक कार्यालय खोला गया था, जिसके हिसाब-किताब तथा पत्र-व्यवहारका सारा कार्य पं० बालरुचि शर्मा नामके एक उत्साही

---

* भाईजीने पिताद्वारा प्राप्त मितव्ययिताकी शिक्षाके सम्बन्धमें कलकत्ता-जीवनकी एक घटनाका उल्लेख करते हुए बताया—'एक दिन मैं बाजारसे दो आनेका एक कंघा खरीद लाया। जब पिताजीको इसका पता चला, तब उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और कहा, 'बेटा! तुम्हें एक सीखकी बात कहता हूँ। तू एक कंघा खरीद लाया, अच्छा किया, पर अपने यहाँ पचासों कंघे रखे हैं। हम तो दूसरोंको बाँटते हैं। भेद इतना है कि घरका कंघा गोल है, तू जरा लंबा ले आया है। यह देखनेमें सुंदर लगता है, उपयोग तो दोनोंका समान है। अपने लिये कोई चीज तभी खरीदनी चाहिये, जब वह आवश्यक हो।' पिताजीकी यह सीख इनके मनमें बैठ गयी और ये आजीवन उसका पालन करते रहे। इन्होंने कभी अपने लिये कोई अनावश्यक वस्तु नहीं खरीदी। जो अपने पास रही, उसीसे काम चलानेकी चेष्टा की।

दादी रामकौर देवीका नैहर अमृतसरमें था। वहाँसे चन्दन और हाथीदाँतके कंघे प्रचुर मात्रामें आते थे। पिताजीने इसी तथ्यको लक्ष्यकर उपर्युक्त बात कही थी।

समाजसेवी करते थे। इस सभामे सनातनधर्मके सिद्धान्तोके प्रचारके लिये वाहरसे विद्वानो, पण्डितो और सत-महात्माओको बुलाकर उनके व्याख्यानोका आयोजन किया जाता था। होशियारपुरके प्रसिद्ध सनातनधर्मोपदेशक स्वामी जगदीश्वरानन्दजी भारतीका सर्वप्रथम कलकत्ता-आगमन इसी सभाके आह्वानपर हुआ था। उनका भीमराज-जीपर बहुत स्नेह था-*। आवश्यकता पडनेपर सभाके कार्योमे शर्माजीको हनुमानप्रसादका सहयोग बराबर मिलता रहता था। यह सभा इनकी जेल-यात्राके समय स० १९७३तक चलती रही।

भीमराजजी पण्डितो और साहित्यकारोका बडा सम्मान करते थे और समय-समयपर उन्हे आर्थिक सहायता देते रहते थे। इससे उनकी दूकानपर साहित्य-प्रेमियोकी बैठक जमी रहती थी। हनुमानप्रसादका कलकत्ताके तत्कालीन गण्यमान्य साहित्यकारोसे परिचय इसी माध्यमसे हुआ।

साधु-सन्यासियो† तथा दीन-दुखियोकी सेवाके लिये भीमराजजी सदैव तत्पर रहते थे। आपत्कालमे निज-पर-भेद त्यागकर वे लोगोकी तन-मन-धनसे सहायता करते थे। इससे वे बहुत लोकप्रिय हो गये थे। सबके प्रति आत्मीयताकी भावना रखकर सेवा करना उनका स्वभाव था। इतना करते हुए भी वे प्रचार तथा आत्म-विज्ञापनसे सदैव दूर रहते थे।

गायोके प्रति उनके हृदयमे अपार श्रद्धा थी। सिंधी महात्मा श्रीहासानदजी जब गोरक्षा-भावनाके प्रचारके सदर्भमे कलकत्ता आये थे, तब भीमराजजीसे उन्हे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ था। श्रीहासानदजी काला कपडा पहनते थे, काला झडा लेकर गायोके लिये प्रचार करते थे और चदा इकट्ठा करते थे। इस कार्यमे इन्हे भीमराजजीका सक्रिय सहयोग प्राप्त होता था।

नियमित जीवनका आरम्भ

विवाहके बाद कलकत्ता आनेपर पिताजीकी देख-रेखमे हनुमानप्रसादका जीवन व्यवस्थितरूपसे चलने लगा। यहाँ इनके मुख्यरूपसे काम थे—दूकान देखना, साधु-महात्माओका सत्कार, दादी और पिताके निर्देशानुसार साधना करना, समाज-सेवा और स्वाध्याय। दिन-रात ये इन्ही कार्योमे व्यस्त रहते थे। न कहीं आते-जाते थे और न किसीके साथ बैठकर व्यर्थकी वातोमे समय नष्ट करते थे। घरपर आये दिन साधु, महात्मा, पण्डित और विद्वान् पधारा करते थे।

वैष्णवेतर सम्प्रदायवालोंसे सम्बन्ध

कलकत्तामे दानचद चोपडा नामके एक जैन व्यापारी थे। हनुमानप्रसादकी उनके साथ बडी आत्मीयता थी। चोपडाजीके यहाँ जैनमुनि प्राय आया करते थे। उनके सत्सङ्गमे ये अनिवार्यरूपसे उपस्थित रहते थे। इससे इन्हे भारतीय सस्कृतिकी वैष्णवेतर विचारधाराओको समझनेमे सहायता मिली और उनके हृदयपर किशोरावस्थामे ही धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारताके पुष्ट सस्कार पड गये।

हनुमानप्रसादके मनपर पिताकी लोकसग्रही विचार-धारा, घरके आध्यात्मिक वातावरण तथा सदाचार-निष्ठ जीवन-पद्धतिका गहरा प्रभाव पडा। अपनी अवस्थाके अनुसार ये भीमराजजीको सेवा-कार्योके सम्पादनमे यथाशक्ति सहयोग भी देते रहे। इसी समय इन्होने निश्चय कर लिया—'जहाँतक बन पडे, जीवनको पवित्र रखना, चरित्रवान् बनना, चुपचाप काम करना, ख्याति-नामसे दूर रहना, अपने सत्कार्यका कोई भौतिक पुरस्कार न स्वीकार करना और न उसकी चाह ही करना।' आगे चलकर भाईजीके विराट् व्यक्तित्वमे इन गुणोका विस्मयकारी विकास देखनेमे आया।

'आत्मा वै जायते पुत्र.'—यह श्रुतिवाक्य व्यवहार-भूमिपर अवतरित होकर इनके जीवनमे चरितार्थ हुआ।

---

* स्वामीजी परिणत वयमे कैलाश चले गये थे। कलकत्ता छोडनेके वाद उनसे भाईजीकी भेट हिमालयकी यात्राके समय केवल एक बार हुई थी।

† इनके घरके पास ही मन्नालाल सुराना नामके एक मारवाडी ओसवाल रहते थे। सुराना-परिवार भी रतनगढका ही निवासी था। इससे उनके साथ इनकी बडी आत्मीयता थी। मन्नालालजीकी एक बहनने सन्यास ले लिया था। वह भी वहीं रहती थीं। रामकौर देवी उनसे बहुत स्नेह करती थी। जत वह भिक्षा इनके घरसे भी ग्रहण करती थीं।

एक अलौकिक आत्मोत्सर्ग

सं० १९६४मे भाईजीके जीवनकी सर्वाधिक रहस्यपूर्ण घटना घटी। उस समय इनकी आयु पन्द्रह वर्ष-की थी। एक दिन ये अपने ननिहाल चाँदपुर (पूर्वी बंगाल) जा रहे थे। सुखलाल नामक जमादार साथ था। कलकत्तासे चाँदपुर स्टीमरसे बैठकर जाना पडता था। स्टीमरमे इनके पास ही एक बंगाली परिवार बैठा, जिसमे दम्पतिके साथ उनकी १३-१४ वर्षकी कन्या और ५ वर्षका बालक था। हनुमानप्रसादने स्नेहवश बालकको कुछ मेवे खानेको दिये। कुछ देरमे स्टीमर लोहजंग (तारपासा) नामक स्टेशनपर पहुँच गया। वह परिवार वहाँ उतरकर डोंगीपर बैठा और गन्तव्य स्थानको चला गया।

इसके चार वर्ष बाद श्रावण कृष्ण ६, सं० १९६९को काफी रात बीते कलकत्ताकी पगया पट्टीमे स्थित पारख कोठीवाली अपनी दूकानमे सहसा इन्हे एक पत्र मिला। खोलनेपर देखा कि उसे 'सरोजिनी' नामकी किसी बालिकाने भेजा है। पत्रमे जो पता लिखा था, उससे इन्हे ज्ञात हो गया कि यह लडकी वही है, जिससे बंगाली परिवारके साथ चाँदपुर जाते समय स्टीमरपर भेट हुई थी। पत्रमे उसने अपना वर्त्तमान पता कालीघाट बताया था। जहाजपर भेटके समय उस बालिकाने बातचीतके प्रसङ्गमे सुखलाल जमादारसे इनका नाम तथा पता पूछ लिया था और उसे डायरीपर लिख लिया था। इनसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत् होनेपर एक दिन उसने बर्द्धवानकी बाढके सम्बन्धमे प्रकाशित सूचनाके प्रसङ्गमे इनका नाम और वर्त्तमान पता समाचार-पत्रोमे पढा था। उसी सूत्रसे यह पत्र आया था। पत्रमे अपने जीवनकी अनबूझ पहेलीका संकेत करते हुए उसने हनुमानप्रसादके प्रति प्रथम दर्शनमे ही लौकिक विषय-वासनासे मुक्त आत्म-समर्पणका उल्लेख करते हुए इस जीवनमे अन्य किसीको वरण न करनेकी अपनी दृढ भावना व्यक्त की थी। इसके साथ ही उसने माता-पिताद्वारा सं० १९६८मे किसी अन्य व्यक्तिके साथ परिणय-सूत्रमे बाँधे जाने, उस व्यक्तिके संसर्गसे पूर्णतया अस्पृष्ट रहने और अन्ततोगत्वा उस लौकिक सम्बन्धको त्यागकर अपने दिव्य सम्बन्धीकी खोजमे माताद्वारा विदाईके समय दी गयी ३० गिन्नियो-को लेकर कलकत्ता आनेकी बात लिखी थी और इनसे अगले दिन कालीघाट-मन्दिरके पास ६ बजे प्रात एक बार आकर दर्शन देनेकी प्रार्थना की थी।

यह पत्र पाकर हनुमानप्रसाद किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये। बालिकाके पत्रसे सात्त्विक प्रेमभाव झलक रहा था, इसलिये ये उसके स्नेहानुरोधको ठुकरा न सके। दूसरे दिन प्रात साथमे अपने एक मित्र बालचंद मोदीको लेकर ये कालीघाटकी ओर चल पडे। वहाँ पहुँचनेपर कही कोई लडकी दिखायी न दी, इसलिये चिन्तितभावसे लौट आये। दूसरे दिन उसका एक पत्र और मिला, जिसमे लिखा था—'आप जिस समय वहाँ पहुँचे थे, मैं वही थी, किंतु आपके साथ एक सज्जन और थे, इससे मैने मिलना उचित नही समझा। अब आपको मुझे खोजनेकी आवश्यकता नही। मैने आपका स्थान जान लिया है। स्वय आकर मिलूँगी।' थोडी देर बाद उसी रातको एक पत्र फिर मिला, जिसमे इनसे 'आउटराम घाट'के स्टैचूके पास आकर मिलनेकी प्रार्थना की थी। हनुमानप्रसाद दूसरे दिन वहाँ गये। प्रात सात बजेका समय था। पर उस दिन भी वह बालिका वहाँ न मिली, मिला केवल एक चिट, जिसमे लिखा था—'आपके आनेमे विलम्ब होनेसे मैं जा रही हूँ। यहाँ ठहरना मेरे लिये निरापद नही। अब मैं आकर स्वय मिलूँगी।'

उसी दिन रातमे जब ये दूकान बद करके अपने हरिसन रोडपर स्थित मकानकी ओर जा रहे थे, तब रास्तेमे शिव-मन्दिरके पास उन्हे एक सिख-जैसा बालक मिला। उसने रास्ता रोककर अपना परिचय बताते हुए कहा—'मैं सरोजिनी हूँ।' हनुमानप्रसादको ध्यानपूर्वक देखनेपर उसे उस कृत्रिम वेषमे भी पहचाननेमे देर नही लगी। इसके बाद दोनोमे घंटो बाते हुई। सरोजिनीने अपने सर्वस्व-अर्पणकी प्रतिज्ञासे इन्हे अवगत कराया। हनुमानप्रसाद उसके लोकोत्तर प्रेम और त्याग-भावनासे अभिभूत थे, बोले—'देवि! मेरा विवाह हो चुका है। ऐसी स्थितिमे अपने व्यक्तिगत आचार और जातीय संस्कृतिकी आजतक सुरक्षित मान्यताओंको छोडकर यह शरीर तुम्हे अपनानेमे विवश है, किंतु तुम्हारे सात्त्विक प्रेमका मैं अभिनन्दन करता हूँ। तुम यही रहो। मैं तुम्हारे जीवन-यापनकी पूरी व्यवस्था कर दूँगा।' सरोजिनी इस उत्तरसे रचमात्र भी खिन्न नही हुई। वह अन्तस्तलसे इन्हे वरण कर

चुकी थी, किंतु उस वरणमे भोगलिप्सा रचमात्र भी न थी, अत शारीरिक नैकट्य प्राप्त करनेकी कामनाका प्रश्न ही नही था। उसने उत्तर दिया––'मेरा दूर रहना ही उचित है। मै भाव-सुमनोसे ही आपकी अर्चना करती रहूँगी।' इतना कहकर वह वहाँसे चली गयी। जाते समय इस मधुर मिलनके प्रतीकस्वरूप वह अपनी सोनेकी अँगूठी इन्हे दे गयी। कहना न होगा कि घटोतक एक-दूसरेके अत्यन्त निकट खडे होकर वाते करते हुए भी इन दोनोके चित्तमे न तो कोई विकार उत्पन्न हुआ न इन्होने एक-दूसरेका स्पर्श ही किया।

इस भेटके कुछ ही दिनो वाद स० १९६९के कार्तिकमे सरोजिनीका एक पत्र आया। उसमे लिखा था–– "शरीर वियोग-व्यथा सहनेमे असमर्थ है। अब इसे नही रखूँगी––'हिंदू रमणी वरे एक पति'।" यह सवाद पाकर हनुमानप्रसादने अनेक सूत्रोसे उसे ढूँढनेका प्रयत्न किया, किंतु कोई पता न चला। पीछे ज्ञात हुआ कि उसने प्रयागमे जाकर त्रिवेणी-सगममे जल-समाधि ले ली।

कलकत्तामे अन्तिम भेटके समय सरोजिनीद्वारा प्रदत्त अँगूठीको स्वर्ण-पदकमे परिवर्तित करके इन्होने उसीकी स्मृतिमे जलधर-कन्या-महाविद्यालयकी एक प्रतिभा-सम्पन्न वालिकाको पुरस्काररूपमे प्रदान कर दिया।

जीवनके अन्तिम दिनोमे इस प्रसङ्गकी चर्चा करते हुए श्रीभाईजी सरोजिनी देवीके विशुद्ध निष्काम प्रेम तथा रहस्यमय आत्मोत्सर्ग और तत्सुख-सुखित्वकी वृत्तिका स्मरणकर भाव-विभोर हो जाते थे।

प्रथम पुत्रकी प्राप्ति

कलकत्ता आनेके वाद हनुमानप्रसादका दाम्पत्य-जीवन वडा सुखमय रहा और ज्येष्ठ कृष्ण ८, स० १९६६ को रतनगढमे महादेवीके गर्भसे एक पुत्रका जन्म हुआ। रामकौर देवीने प्रपौत्रका मुँह देखकर अपना भाग्य सराहा, किंतु यह प्रसन्नता अल्पकालिक रही। प्रसूति-गृहमे ही ज्येष्ठ शुक्ल ६, स० १९६६को पुत्रको अनाथ कर महादेवी गोलोक सिधारी। इसके वाद दो महीनेके भीतर ही श्रावण कृष्ण चतुर्दशीको नवजात शिशु भी जगज्जननीका प्यारा हो गया।

स्वामी जगदीश्वरानन्दसे सत्सङ्ग

पत्नी और पुत्रकी अन्त्येष्टि करके रतनगढसे कलकत्ता आनेपर हनुमानप्रसादका मन एक विचित्र-सी स्थितिमे था। इन्ही दिनो 'सनातनधर्म पुष्टिकारिणी सभा'के अधिवेशनमे भाग लेनेके लिये स्वामी जगदीश्वरानन्दजी भारती कलकत्ता पधारे। भीमराजजीके साथ उनकी पहलेसे ही घनिष्ठता थी। ये उक्त सभाके सस्थापक तथा मन्त्री भी थे, इसलिये इन्हीके पास स्वामीजी ठहरे। स्वामीजीके सत्सङ्गसे इनका हृदय कुछ हल्का हुआ।

स्वामी शंकरानन्दकी राजनीतिक प्रेरणा

उक्त घटनाके थोडे ही समय वाद कलकत्तामे एक मद्रासी महात्माका आगमन हुआ। इनका नाम था स्वामी शकरानन्द। श्रीहरिराम गोयन्दकाके वगीचेमे इनका आसन लगा। स्वामीजीकी हठयोगमे विशेष गति थी। वगीचेमे उन्होने सात दिनकी समाधि लगाकर लोगोको आश्चर्यचकित कर दिया। अध्यात्ममार्गके पथिक होते हुए भी वे राजनीतिमे उग्र विचारधाराके समर्थक थे। हनुमानप्रसादसे उनका प्रगाढ स्नेह हो गया। उनके घनिष्ठ सम्पर्कसे इनकी विचारधारा क्रान्तिके अणु-परमाणुओसे वेष्टित हो चली।

दूसरा विवाह

हनुमानप्रसादको राजनीतिकी ओर मुडते देखकर भीमराजजी चिन्तित हुए। उन्होने सोचा कि गृहस्थीके वन्धनसे मुक्त रहनेपर इनका समय इसी प्रकारके कामोमे लगेगा। इससे व्यापारकी हानि तो होगी ही, जीवन भी खतरेमे पड जायगा। भीमराजजीकी इच्छा पुत्रका कार्यक्षेत्र व्यापारतक ही सीमित रखनेकी थी। इसके अतिरिक्त वशपरम्पराका चलाना भी आवश्यक था। इस हेतु पुन विवाहका प्रसङ्ग चलाया गया। हनुमानप्रसाद इससे भागना चाहते थे, किंतु दादी और पिताके स्नेहानुरोधकी अवज्ञा ये न कर सके। निदान राजगढ (राजस्थान)के सेठ श्रीमँगतूराम सरावगीकी पुत्री सुवटी वाईके साथ, वैशाख शुक्ल ३, स० १९६८को, इनका द्वितीय विवाह सम्पन्न हो गया।

पिताका स्वर्गवास

कच्ची गृहस्थीको सँभालनेका प्रयास चल ही रहा था कि भीमराजजी रोगाक्रान्त हो गये। हनुमानप्रसादपर दूकानका भार छोडकर वे इसी स्थितिमे वायु-परिवर्तनकी दृष्टिसे रतनगढ चले गये। वहाँकी जलवायु आरोग्यप्रद है, वहाँ स्वजनो, स्नेहियो और कुशल चिकित्सकोकी देख-रेखमे स्वास्थ्य-लाभ हो जायगा—रामकोर देवीने भी यही सोचा था। किंतु विधाताका विधान कुछ और ही था। लाख प्रयत्न करनेपर भी रोग काबूमे न आ मका और श्रावण कृष्ण ५, स० १९६९को भीमराजजीका भौतिक शरीर मातृभूमिकी गोदमे विसर्जित हो गया। पति गये, दो पुत्रवधुएँ गयी, पौत्रवधू गयी, प्रपौत्र गया, हतभाग्या रामकौर देवी यह दिन देखनेको ही बच रही थी। जीवनभर विपम परिस्थितियोसे जूझते हुए उसने हार नही मानी थी, किंतु इस घटनाने उसकी कमर तोड दी। कलेजा बैठ गया और नेत्रोकी ज्योति मन्द हो गयी।

पितृक्रियाके अनन्तर हनुमानप्रसाद परिवारको लेकर पुन कलकत्ता आ गये। दूकानका काम चलने लगा। परतु अब उसमे इनकी वृत्ति उतनी नही रमती थी, जितनी पिताके समयमे। इसके कारण थे—अनवरत पारिवारिक आपत्तियाँ, धार्मिक प्रवृत्ति और राजनीतिका आकर्षण।

इन्होने अपनी आँखो दादा कनीरामजीका अपार वैभव शिलगके भूकम्पमे क्षणमात्रमे ही नष्ट होते और कुछ समय पश्चात् स्वय उन्हे विदा होते देखा था—हजार प्रयत्न करनेपर भी पिता भीमराजजी उस गौरवको पुन स्थापित करनेमे असमर्थ रहे। अन्ततोगत्वा वे भी उसीमे खटते-खटते दम तोड गये। यह सब देखकर इन्हे अनुभव हुआ कि व्यापार वृत्तिका साधन हो सकता है, प्रवृत्तिकी सीमा नही। दादी रामकौर देवीकी सरक्षकतामे इनकी जैसी शिक्षा हुई थी, उसमे उपार्जन एव सग्रहकी अपेक्षा दान तथा सेवा-भावनाकी ही प्रधानता थी, भोगकी अपेक्षा त्यागद्वारा आत्मोत्कर्ष-सम्पादनका अधिक महत्त्व था। पिताके सामने ही उनकी देख-रेखमे सामाजिक तथा धार्मिक कार्योमे हनुमानप्रसाद सक्रिय सहयोग देने लगे थे। भीमराजजीके दिवगत होनेपर बन्धन खुल गये। रामकौर देवी वृद्धावस्था और पुत्र-शोकसे जर्जर हो गयी थी। पौत्रकी सद्‌वृत्ति और कर्त्तव्य-परायणतापर उनका अगाध विश्वास भी था। इसलिये इनकी गति-विधियोपर नियन्त्रण उन्हे अभीप्ट न था। परिवारमे और कोई वयोवृद्ध था नही।

ऐसी दशामे युवक हनुमानप्रसादको अपने इच्छानुसार जीवन-नौका चलानेकी खुली छूट मिल गयी। इन्होने अपना अधिकाश समय धर्म, राजनीति और समाज-सेवासे सम्बन्धित कार्योमे लगानेका सकल्प किया। प्रवृत्तिके तीव्र झकोरोसे वृत्तिकी चट्टान टूटने लगी। दूकानका काम ढीला पड गया। परमार्थके सामने अर्थ नतमस्तक हो गया।

समाज-सेवा

सार्वजनिक जीवनके परिष्कार तथा विकासमे आरम्भसे ही इनकी रुचि थी। अब ये कलकत्ताकी तत्कालीन सभा-सोसाइटियोमे स्वतन्त्रतापूर्वक भाग लेने लगे। जातीय जीवनके उस नवोन्मेप-कालमे राष्ट्रीय, धार्मिक, साहित्यिक, जातीय, शैक्षणिक आदि लोक-सस्थाओका बाहुल्य था। कार्यपटुता, योग्यता, ईमानदारी, सूझ-बूझ तथा विनयशीलताके कारण सभी जगह इनकी पूछ थी और सभी इन्हे अपना सहयोगी बनानेको लालायित रहते थे। समाज तथा देशकी सेवा इनके जीवनका मुख्य उद्देश्य बन चुकी थी, अत न्यूनाधिक मात्रामे उपर्युक्त सभी सस्थाओको इनकी सेवाओका अगदान प्राप्त हुआ। इनमे विशेप उल्लेखनीय हैं—हिंदू क्लब, हिंदू सभा, वैश्य सभा, हिंदी साहित्य परिपद्, साहित्य-सर्वद्धिनी समिति, बडा बाजार पुस्तकालय तथा सावित्री कन्या पाठशाला। इनके अतिरिक्त सास्कृतिक पर्वो तथा धार्मिक मेलोमे भी सेवा-कार्योके आयोजनका मुख्य दायित्व प्राय इन्हीको सौंपा जाता था। 'शीतला मेला' आदिमे इनके द्वारा गठित स्वयसेवक-दलने प्रशमनीय सेवाकार्य किया था।

ये हनुमानप्रसादद्वारा प्रकटरूपमे की जानेवाली सेवाओके क्षेत्र थे। इनके अतिरिक्त स्थिति और पात्रके अनुसार ये गुप्त सेवाओकी भी व्यवस्था करते रहते थे, जो इनकी अन्तिम साँसतक उसी रूपमे गतिशील रहीं। किंतु उनका आभास पाना अन्तेवासियो और निकटतम सम्बन्धियोके लिये भी असम्भवप्राय था।

वङ्गभङ्ग और स्वदेशी-आन्दोलन

हनुमानप्रसादको विवाहके बाद रतनगढसे कलकत्ता आये कुछ ही दिन हुए थे कि १९ जुलाई १९०५ ई० (स० १९६२)को लार्ड कर्जनद्वारा की गयी वङ्ग-विच्छेद-घोषणाकी प्रतिक्रियामे सारा बगाल एकमत, एकप्राण होकर प्रलयकर स्वरमे हुकार उठा। अग्रेजी सरकारकी इस विनाशकारी योजनाके विरोधमे कासिम बाजारके राजा मणीन्द्रचन्द्रकी अध्यक्षतामे एक विशाल सभा आयोजित की गयी, जिसमे वङ्गवासियोने सामूहिक रूपसे विदेशी वस्तुओके बहिष्कारका व्रत लिया। इसीने आगे चलकर देशव्यापी 'स्वदेशी-आन्दोलन'का रूप धारण कर लिया। पूरे बगालमे उत्कट देशप्रेमकी एक दैवी चेतना व्याप्त हो गयी। अग्रेजी वस्तुओकी सरेआम होली जलायी जाने लगी। विदेशी मालके साथ विदेशी शिक्षाके भी बहिष्कारकी लहर फैली। विद्यार्थी विद्यालयोको छोडकर बाहर निकल आये। सडको, चौराहो और गलियोमे—जहाँ भी देखिये, वही देशभक्तिके गीत गाते हुए उत्साही छात्रोकी टोलियाँ घूमती नजर आती। उनके गानका प्राय टेक होता था—

'निज वास भूमे परवासी होलो'
(हम अपने ही देशमे परदेशी हो गये)

देशभक्ति—जागृतिकी यह लहर इतनी प्रबल तथा व्यापक थी कि पत्र-पत्रिकाओ, नाटक-सगीत, कविताओ-लेखो—सभीमे एक स्वरसे देशभक्तिके गीत गाये जाते थे। वेश्याएँतक इसी भावके गाने गाकर श्रोताओका उद्‌बोधन करती थी।

आगे चलकर विदेशी वस्तुओके बहिष्कारकी भावनाने इतना व्यापक रूप धारण कर लिया कि लोग विदेशी साहित्य तथा विदेशी नौकरीका भी परित्याग करने लगे। विदेशी वस्तुओमे मुख्यत विदेशी वस्त्रोकी होली जलानेकी प्रथा-सी हो गयी थी। लाखोका माल चन्द मिनटोमे स्वाहा कर दिया जाता था। नगर-नगरमे यही हाल था। इस प्रकारकी लोक-व्यापकता ही स्वदेशी-आन्दोलनकी सबसे बडी विशेषता थी। काग्रेसका जन्म इससे वर्षो पूर्व हो चुका था और वही इस युगकी सर्वाधिक प्रभावशाली शहरी सस्था थी, किंतु उसका प्रभाव अधिकतर शिक्षितवर्गपर ही था, जब कि स्वदेशी-आन्दोलनने निरक्षर तथा निरीह ग्रामवासियोतकके हृदयमे राष्ट्रप्रेमकी ज्वाला प्रज्वलित कर दी थी।

स्वदेशी-व्रत

ये सारी घटनाएँ हनुमानप्रसादकी आँखोके सामने घट रही थी। इस समय इनकी आयु तेरह वर्षकी थी। ये न किसी स्कूलके विद्यार्थी थे और न किसी राजनीतिक पार्टीके सदस्य ही थे। स्वभावसे ये शान्तिप्रिय थे। फिर भी देशव्यापी विद्रोहाग्निसे अपनेको अलग न रख सके। अन्त प्रेरणा एव सस्कारोने इन्हे विवश कर दिया। स० १९६२मे, जिन दिनो स्वदेशी-आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था, अपने पिताके मित्र तथा स्नेही प्रसिद्ध पत्रकार प० दुर्गाप्रसाद मिश्रके यहाँ इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका देखनेसे इन्हे ज्ञात हुआ कि इँग्लैडसे जो कपडे आते है, उनमे माँडी देनेके लिये जानवरोकी चर्बीका उपयोग होता है। इस जानकारीसे इनके मनमे विदेशी कपडोके प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। इन्होने निश्चय किया कि अब विदेशी कपडा नही पहनना है। निदान ये ढाका-के बने कपडे प्रयोगमे लाने लगे। पीछे मनमे आया कि हाथके कते सूत तथा हाथके बुने कपडे ही पहनने चाहिये। गाधीजीने हाथके कते-बुने कपडोके सम्बन्धमे प्रचार आरम्भ किया, उससे दो वर्ष पहलेकी यह बात है। उस समय देहाती जुलाहे हाथकी कती-बुनी मोटी खादी बनाते थे। हनुमानप्रसादने उसे पहनना आरम्भ किया। खादीकी धोती चादर-जैसी मोटी होती थी। ऊपर पहननेके वस्त्र भी इतने मोटे होते कि दर्जी उनकी सिलाई नही कर पाते थे, अतएव इन्हे एक वर्षतक बिना कुर्ते-कमीजके ऊपरका अङ्ग खद्दरकी चादरसे ढककर रहना पडा। पीछे गाधीजीके प्रभाव-प्रचारसे जब महीन खादी बनने लगी, तब समस्याका स्वत समाधान हो गया। शुद्ध खादीके प्रयोगके नियमका निर्वाह जीवनके अन्तिम क्षणतक होता रहा। कहना न होगा कि परवर्ती स्वदेशी-आन्दोलनके कर्णधार राष्ट्रपिता गाधी इस समयतक विदेशी वस्त्रोका ही व्यवहार करते थे। उन्होने स्वदेशी

वस्त्र धारण करनेका नियम भाईजीके एक-दो वर्ष बाद लिया। पीछे श्रीभाईजीकी इस भावनाके साथ स्वदेशी-आन्दोलनका सम्बन्ध जुड गया।

धीरे-धीरे घरमे भी खद्दरकी साडियोका प्रयोग होने लगा।*

कलकत्ता-कांग्रेस

बगालके नवयुवकोमे अग्रेजी शासनके विरुद्ध क्रान्तिकी यह भावना बडे वेगमे फैलने लगी। उन्ही दिनो सन् १९०६ ई० (स० १९६३) मे इण्डियन नैशनल काग्रेसका अधिवेशन कलकत्तामे हुआ। इसमे पहली बार स्वराज्य-प्राप्तिके लक्ष्यकी घोषणा की गयी। राष्ट्रीय भावोसे अभिषिक्त होनेके कारण १५ वर्षकी छोटी आयुमे ही हनुमानप्रसाद इसमे काग्रेसके एक सदस्यके रूपमे सम्मिलित हुए। उस समय राष्ट्रीय विचारधाराके लोग दो दलोमे विभक्त दिखायी दिये—गरम दल और नरम दल। इनमे प्रथम उग्रवादी राजनीतिका समर्थक था और दूसरा शान्तिवादी विचारधाराका। यह राष्ट्रीय जागृतिकी शैशवावस्था थी। काग्रेसमें नरमदली विचारधाराका प्राबल्य था। यह दल अग्रेजी सरकारसे कुछ सुधारो और नौकरियोकी मॉगमे ही अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझता था। इस अधिवेशनकी विभिन्न सभाओमे उक्त दोनो दलोके नेताओने विदेशी सत्तासे मुक्तिके लिये राष्ट्रीय आन्दोलनका स्वरूप निर्धारित करनेके सम्बन्धमे जो विचार प्रस्तुत किया, हनुमानप्रसादको उनमे उग्रवादी सिद्धान्त ही समयोचित जान पडा। अत इस समयसे वे इसीके समर्थनमे प्राणपणसे लग गये।

अघोषित युद्ध

स्वदेशी-आन्दोलनके रूपमे अग्रेजी शासनकी कुटिल एव शोषक नीतिके विरुद्ध सरकार और जनताके बीच अघोषित युद्ध आरम्भ हुआ। राजतन्त्रने कूटनीतिक चालो और पशु-शक्तिसे उसे दबानेका कोई तरीका बाकी नही छोडा। किंतु जनता झुकी नही। सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनके रूपमे स्वतन्त्रताकी अग्नि सुलगती रही। राष्ट्रीयता और देशभक्तिके उद्रेकसे जो युद्धोत्साह उत्पन्न हुआ था, जन-जनके हृदयमे दासतासे मुक्तिकी जो अग्नि प्रज्वलित हो गयी थी, उसने शनै-शनै प्रचण्ड ज्योति-पुञ्जका रूप धारण कर लिया। सरफरोश परवाने उसके चतुर्दिक् मँडराने लगे।

अबतक इस राष्ट्रीय आन्दोलनके कर्णधारोका यह विश्वास था कि बहिष्कार और स्वदेशी-भावनाके प्रचारसे वे अग्रेजी सरकारद्वारा किये गये बङ्ग-भङ्ग-विषयक निर्णयको रद्द करानेमे सफल हो जायँगे। किंतु शासनकी राजनीतिको देखकर अब उन्हे आभास मिलने लगा कि उनके द्वारा अपनाये गये साधन लक्ष्य-प्राप्तिके लिये उपयुक्त नही है। सभी दृष्टियोसे समृद्ध एव सुसगठित विदेशी सरकारके नृशसतापूर्ण दमन-चक्रका खुले आम मुकाबला करनेके लिये उनके पास साधनोका अभाव है, इस तथ्यसे वे अनभिज्ञ न थे। किंतु उसके सिवा सम्मानपूर्ण अस्तित्वका कोई दूसरा मार्ग भी न था। ऐसी स्थितिमे उन्हे सशस्त्र क्रान्तिका रास्ता अपनाना ही श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। आत्माहुतिकी इस भावनाके उदय होते ही उनका लक्ष्य मात्र बङ्ग-विच्छेदको समाप्त करना न रहकर सम्पूर्ण देशको अग्रेजोके चगुलसे मुक्त करना हो गया।

* इस सम्बन्धमे परवर्ती जीवनका एक रोचक प्रसङ्ग देना असगत न होगा। बगालसे निष्कासित होनेके बाद जिन दिनो ये बम्बईमे रहते थे, इनकी पत्नी मायके गौहाटी गयी हुई थी। इनके श्वसुर श्रीसीतारामजीका वही कारोबार था। इन्होने अपनी पत्नीके लिये वस्त्रोका एक पारसल भेजा। श्वसुर महाशय उसे लेकर अदर गये और अपनी पत्नीको पुकारकर राजस्थानीमे कहा 'रामदेईकी माँ, कँवरजीने एक पारसल भेजा है। बडा भारी पारसल है।' उस समय वे रसोईघरमे थी। वहीसे बोली—'खोलिये, देखू, क्या है ?' सीतारामजीने पारसल खोला। उसमे दो खद्दरकी साडियाँ निकली। उसे देखते ही वे रोने लगे और स्त्रीको फिर पुकारा—'यहाँ तो आ, देख तो सही, कँवरजीने कैसी साडियाँ भेजी है।' भाईजीकी सास बाहर आयी। साडी देखकर उनके भी नेत्रोमे अश्रुधारा बह चली। व्यथा एव उलाहनासे भरे शब्दोमे बोली—'हाय! कितनी मोटी साडिया है। ये तो मेरी बेटीसे भी भारी है। ये भी, भला, पहननेकी है ?' पास ही खडी पुत्री (भाईजीकी पत्नी) ने किसी प्रकार समझा-बुझाकर उन्हे सान्त्वना दी। उन्हे यह जानकर बडा कष्ट हुआ कि उनकी पुत्री ससुरालमे इस प्रकारकी साडीका प्रयोग करती है।

गुप्त समितियोंका संगठन

सरकारकी दमननीतिने असतोषको रहस्यमयी धाराओमे ढकेल दिया। स्थान-स्थानपर गुप्त समितियोका निर्माण होने लगा। दवी हुई चिनगारियाँ अङ्गारोका रूप धारण करने लगी। बगालके जनजीवनमे व्याप्त क्रान्तिकी इन लपटोसे मारवाडी युवक अप्रभावित न रह सके। कलकत्तामे उनमेसे कुछ प्रगतिशील विचारके लोगोने एक 'गुप्त समिति' स्थापित की—'गुप्त' इसलिये कि इसकी सारी कार्यवाही गोपनीय रखी जाती थी। हनुमानप्रसाद इसके सक्रिय सदस्य थे।

सभी सदस्योके लिये पाँच नियमोका पालन अनिवार्य था—

१. सूर्योदयसे पहले उठना।

२. व्यायाम करना।

३. परस्पर प्रेम-व्यवहार रखना।

४ गीताका नियमितरूपसे पाठ करना।

५. समितिकी कार्यवाहियोंको गुप्त रखना।

इसकी वैठक महीनेमे दो बार होती थी। इस समितिके कार्योमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था—तत्कालीन मारवाडी समाजकी बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह-जैसी अनेक कुप्रथाओको दूर कर उसमे नवीन सुधारवादी विचारधाराका प्रभावशाली ढगसे प्रचार।

'मारवाड़ी सहायक समिति'से सक्रिय सहयोग

यह प्रबुद्ध मारवाडी युवकोद्वारा स० १९६९मे स्थापित हुई थी। इसका मुख्य कार्य था—चिकित्सा, अकालसेवा, वाढ-पीडितोकी सहायता आदि लोकोपकारी कार्योका आयोजन। इसके मन्त्री श्रीज्वालाप्रसाद कानोडिया थे। स० १९६९मे वर्दवानकी प्रलयकारी वाढमे इसने वहुत वडे पैमानेपर वाढ-पीडितोकी सहायता करके ख्याति-लाभ किया था। हनुमानप्रसाद पोद्दार सेवायोजकोमे अग्रगण्य थे। अखवारोमे सहायता-कार्यके लिये जो भी अपील निकाली गयी थी, उसमे इनका भी नाम था। इन्होने अपने मित्र श्रीडूँगरमल लोहियाको सहायता-कार्यके लिये वर्दवान भेजा। 'मारवाडी सहायक समिति' एक औषधालय भी चलाती थी। उसमे होमियोपैथिक, ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक आदि विविध पद्धतियोसे चिकित्सा की जाती थी। इस समितिकी ओरसे ही एक दातव्य औषधालय खोलनेके उद्देश्यसे श्रीडूँगरमल लोहियाको हनुमानप्रसादने स० १९६९-७०मे रतनगढ भेजा था। आगे चलकर इसके कतिपय सदस्य, जिनमे श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिहका, श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया और श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार विशिष्ट थे, विप्लववादी कार्यकलापोमे सलग्न होनेके कारण राजद्रोहके अपराधी घोषित कर दिये गये। इससे यह समिति सरकारकी आँखोमे चढ गयी। इस अवसरपर कलकत्ताके तत्कालीन मारवाडी-समाजमे समादृत और अग्रेजी शासनके विश्वासपात्र डा० सर कैलासचन्द्र बोसके प्रयत्नसे इसकी गुप्त समितियाँ समाप्त कर दी गयी। फलत राष्ट्रीय तथा राजनीतिक विचारधाराका सर्वथा परित्याग कर यह मात्र समाज-सेवी सस्था रह गयी। इसका परिवर्तित नाम 'मारवाडी रिलीफ सोसाइटी' हो गया।

साहित्य-संवर्द्धिनी समिति

इसकी स्थापना मारवाडी युवकोके मानसिक विकासके लिये हुई थी। यह सदस्योको विचारोत्तेजक पुस्तके उपलब्ध कराती थी और उनमे साहित्य-प्रेमके साथ ही देश-प्रेम जाग्रत् करनेके लिये विभिन्न प्रकारके साहित्यिक आयोजन करती थी। इस समितिका अन्य मुख्य कार्य था—साहित्यका प्रकाशन। इसके मन्त्री श्रीनारायणदासजी वाजोरिया थे। कलकत्तामे सवसे पहले गीताका सानुवाद प्रकाशन इसी समितिने किया था, जिसके सम्पादक थे प० वावूराव विष्णु पराडकर। गीताके इस सस्करणकी विशेषता थी—आवरण-पृष्ठपर भारतमाताका एक हाथमे गीता और दूसरे हाथमे तलवार लिये हुए तेजस्वी चित्र। छपते ही इसकी हजारो प्रतियाँ विप्लव-वादियोमे वाँट दी गयी। इस प्रकाशनसे सरकारके कान खड़े हो गये। उसने इसका अर्थ लगाया—भारत-

माताद्वारा सशस्त्र क्रान्तिके लिये देशवासियोका खुला आह्वान। पुलिसने कार्यालयपर छापा मारकर बची-खुची प्रतियाँ जब्त कर ली।

इन समितियोकी राजद्रोहपूर्ण कार्यवाहियोको समाप्त करनेके उद्देश्यसे पौष स० १९६५ (दिसम्बर १९०८ ई०) मे सरकारने एक दमनकारी विधान पास किया। इसके अनुसार इस प्रकारकी सस्थाओमे भाग लेनेवाले, उनसे सम्बन्धित सभाओकी आयोजना करनेवाले, उन्हे चदा देनेवाले तथा प्रकारान्तरसे सहमति एव प्रोत्साहन देनेवाले दण्डनीय घोषित कर दिये गये। बगालकी सभी समाज-सेवी सस्थाएँ इस विधानके चगुलमे आकर अवैध करार दे दी गयी।

क्रान्तिकी बाइबल—गीता

बीसवी शतीके प्रथम चरणमे उद्दीप्त इस राष्ट्रीय जागृतिकी मूल प्रेरकशक्ति धार्मिक तथा दार्शनिक निष्ठा थी। इसीलिये इसे 'धार्मिक राष्ट्रीयता'के नामसे अभिहित किया जाता है। इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता बाल गङ्गाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष—सभी प्रगाढ धार्मिक निष्ठाके व्यक्ति थे। लाला लाजपतरायके मतानुसार 'देशभक्तिको धर्मनिष्ठाका स्वरूप देकर उसे ही अपने जीवन-मरणका लक्ष्य निश्चित करनेमे मानव-जीवनकी सार्थकता है।' इस धार्मिक प्रवृत्तिने उन्हे राष्ट्रमे परमात्मदर्शनकी शक्ति दी।

देशभक्तिको धर्मके रूपमे प्रतिष्ठित करनेमे गीता और स्वामी विवेकानन्दद्वारा उपदिष्ट वेदान्त-दर्शनका सर्वाधिक योग था। उच्च जीवन-मूल्योका प्रतिपादन इन्हीके आधारपर हुआ। मातृभूमिकी रक्षाके लिये सर्वस्व न्योछावर करने और हँसते-हँसते मृत्युका आलिङ्गन करनेके लिये गीतोपदिष्ट तत्त्वज्ञानने अद्भुत प्रेरणा प्रदान की। इस दार्शनिक विचारधाराका प्रमाण इस तथ्यसे भी मिलता है कि क्रान्तिकारियोके पास गीता सदा रहती थी। उनकी रचनाओमे भी गीताका सर्वत्र उल्लेख पाया जाता है। तत्कालीन सरकारी रिपोर्टोमे भी इसकी चर्चा मिलती है कि गिरफ्तार करनेके पूर्व आतङ्कवादियोकी पुलिसद्वारा ली गयी तलाशियोमे गीता सभीके पास मिलती थी। यह राजनीतिक पुनर्जागरणकी बाइबल बन गयी थी।

हनुमानप्रसादने इस महत्ताको देखकर ही 'साहित्य-सवर्द्धिनी समिति'-द्वारा युगानुकूल नयी सज-धज—खड्गहस्ता भारतमाताके चित्रसहित गीता प्रकाशित करवायी थी। श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके सत्सङ्गसे इनकी गीतानिष्ठा उत्तरोत्तर पुष्ट होती गयी। आगे चलकर इन दोनो धर्मप्राण महापुरुषोद्वारा 'गीताप्रेस'की स्थापनाके पश्चात् गीताका विश्वव्यापी प्रचार सम्भव हुआ।

धर्म एव राजनीतिक क्षेत्रमे बढती हुई रुचिके कारण इन्होने बँगला और अग्रेजीके तद्विषयक ग्रन्थोका मनोयोगपूर्वक अनुशीलन किया। विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरसे भी ये बराबर मिलते रहे। 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जीके लेखोसे प्रभावित होकर ये उनके सम्पर्कमे आने लगे और कुछ ही समयमे उनके विशेष कृपापात्र बन गये।

कलकत्ता उन दिनो हिंदी-साहित्यकारोका एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। पत्रकारिताके क्षेत्रमे तो उस समय उत्तरी भारतके किसी भी नगरमे सख्या और गुण—दोनो दृष्टियोसे कही भी इतनी प्रतिभाएँ एकत्र नही देखी जा सकती थी।

स्वदेशी-आन्दोलनमे हनुमानप्रसादका सर्वप्रथम परिचय 'सध्या'के सम्पादक श्रीब्रह्मबोध उपाध्यायसे हुआ। इसके बाद ये प० गिरीशपति काव्यतीर्थ तथा श्रीश्यामसुन्दर चक्रवर्तीसे भी मिले। उसी समय बँगलाके प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय लेखक श्रीसखाराम गणेश देउस्करसे घनिष्ठता हुई। उनकी 'देशेर कथा' पढकर ये बहुत प्रभावित हुए। बँगला पत्र 'युगान्तर'के आरम्भसे ही ये नियमित पाठक रहे। उसके लेख इनकी विचारधाराको मोडनेमे विशेष सहायक हुए। भारतमित्रके सम्पादक बा० बालमुकुन्द गुप्त तथा उनके विनोदी सखा प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीसे हनुमानप्रसादका घर-जैसा सम्बन्ध था। प० लक्ष्मण नारायण गर्दे और 'कलकत्ता समाचार'के मुद्रक प० झाबरमलजी शर्मासे इनकी गाढी मित्रता हो गयी। इन पत्रोमे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विविध

लोकोपकारी विषयोके लेख और कविताएँ निकलती थी। इनसे जनशिक्षा तथा मनोरञ्जन, दोनो उद्देश्योकी सिद्धि होती थी। साथ ही राष्ट्रभाषाका प्रचार भी होता था।

इनके अतिरिक्त हिंदी-साहित्यके अनुशीलन तथा हिंदी भाषाके प्रसारके लिये कुछ स्वतन्त्र सस्थाएँ भी सगठित की गयी थी। इनमे दो मुख्य थी—'हिंदी साहित्य परिषद्', जिसके मन्त्री प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी थे और 'एकलिपि विस्तार परिषद्', जिसका आयोजन जस्टिस शारदाचरण मित्रकी अध्यक्षतामे हुआ था। इस समयके कलकत्ताके अन्य साहित्यकार थे—श्रीअमृतलाल चक्रवर्ती, श्रीनवजादिकलाल श्रीवास्तव, श्रीयशोदानन्द अखोरी, श्रीरामलाल वर्मा और श्रीराधामोहन गोकुलजी। इन सबसे हनुमानप्रसादका स्नेह-सम्बन्ध था, अत इनकी सम्पादकीय प्रतिभा तथा साहित्यिक व्यक्तित्वके निर्माणमे इन सभी महानुभावोका न्यूनाधिक योगदान रहा है।

साहित्यकारोके सम्बन्धसे इनकी कारयित्री प्रतिभा अङ्कुरित होने लगी। धर्म, समाज-सुधार और राजनीति तत्कालीन साहित्य-रचनाके मुख्य उपजीव्य थे। हनुमानप्रसादकी इन तीनोमे न्यूनाधिक रुचि थी। स्वाध्यायसे लेखन-शैली भी परिष्कृत हो गयी थी, अत वे निबन्ध लिखकर पत्र-पत्रिकाओमे भेजने लगे। 'नवनीत', 'कलकत्ता समाचार' आदि पत्र-पत्रिकाओमे उन्हे उचित स्थान मिला। 'नवनीत'मे प्रकाशित 'निवृत्तिका सच्चा स्वरूप' शीर्षक इनके लेखकी वडी चर्चा रही।

राष्ट्रनेताओंसे नैकट्य

उन दिनो कलकत्ता राष्ट्रीय क्रान्तिका गढ बन गया था। वह भारतीय स्वातन्त्र्य-सग्रामका कुरुक्षेत्र वन रहा था। इसलिये देशके कोने-कोनेसे चोटीके नेता वहाँ बरावर आते रहते थे। स्थानीय सामाजिक सस्थाएँ उनका स्वागत करती, उनके व्याख्यानका प्रवन्ध करती, उन्हे अभिनन्दनपत्र देती और आजादीकी लडाईके लिये थैली भेट करती। लिलुआकी 'मारवाडी सहायक समिति' इनमे अग्रणी थी। इस प्रकारके समारोहोका आयोजन प्राय उसीके तत्वावधानमे होता था। दूसरा स्थान हिंदू महासभाका था। हनुमानप्रसाद पोद्दारका इन दोनो सस्थाओसे सम्वन्ध था।

ऐसे अवसरोपर इनकी सेवाएँ इन सस्थाओको अनायास उपलब्ध हो जाती थी।

सन् १९१५मे महात्मा गाधी दक्षिण अफ्रिकासे लौटनेपर रगून होकर जब कलकत्ता पधारे, तब हिंदू सभाकी ओरसे हनुमानप्रसादने मन्त्रीके रूपमे उनका स्वागत कर, अल्फ्रेड थियेटरमे उन्हे अभिनन्दन-पत्र दिया। गाधीजीसे यह उनकी पहली भेट थी। इसके बाद बम्बईके प्रवासकालमे गाधीजीसे उनका घर-जैसा सम्वन्ध स्थापित हो गया, जो अन्ततक एकरस वना रहा।

श्रीगोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य बाल गङ्गाधरसे भी इनका परिचय उनके कलकत्ता-आगमनके समय स्वागत-सत्कारके आयोजनके माध्यमसे हुआ था। तिलकके क्रान्तदर्शी व्यक्तित्वमे इन्हे विशेष आकर्षण दिखायी पडा।

हिंदू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके निमित्त धनसग्रहके लिये स० १९७२मे महामना मदनमोहन मालवीय कलकत्ता आये। हिंदू सभाकी ओरसे उनके अभिनन्दनका प्रवन्ध हुआ। आरम्भमे अपेक्षित सफलता न मिलनेसे मालवीयजी कुछ निराश हुए। हनुमानप्रसादकी मारवाडी समाजमे साख थी। ये मालवीयजीको लेकर सेठोके पास गये। सेठ युगलकिशोर विरलासे परिचय कराया। इस सम्वन्धमे ये कुछ प्रतिष्ठित वगाली लोगोसे भी मिले। इन्हीके प्रयत्नसे वावू रूडमल गोयनकाने अपना विशाल पुस्तकालय हिंदू विश्वविद्यालयको दान कर दिया और वावू सुवोधचन्द्र मल्लिकने एक लाख रुपया प्रदान किया। इस माध्यमसे मालवीयजीसे इनकी वडी आत्मीयता हो गयी। आगे चलकर तो वे इनसे पितृवत् स्नेह करने लगे। उन्होने अपने पुत्र राधाकान्त मालवीयको वहुत दिनोतक इनकी सरक्षकतामे रखा और उनके व्यावहारिक जीवनके निर्माणमे इनसे योग लेते रहे। 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमे इनके गोरखपुर आ जानेपर जब कभी मालवीयजी वहाँ गये तो इनके पास ही ठहरे। हनुमान-प्रसादके प्रति उनका यह स्नेह-सद्भाव अन्तिम समयतक वना रहा।

राजर्षि टडन एक बार हिंदी-साहित्य-सम्मेलनके कार्यसे कलकत्ता गये। इन्होने समितिकी ओरसे उनके ठहरने तथा व्याख्यानादिका सारा प्रवन्ध कराया। तबसे टडनजी इनके अभिन्न मित्र हो गये।

अन्य वङ्ग-विभूतियोंसे स्नेह-सम्बन्ध

स्वदेशी-आन्दोलनके प्रवाहमे सुभापचन्द्र बोस जिन दिनो आई०सी०एस०से हटकर देश-सेवाके क्षेत्रमे आये, हनुमानप्रसाद सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्ताके रूपमे प्रसिद्ध हो चुके थे । हनुमानप्रसाद उनके नि स्वार्थ, सच्चे, देशात्मबोधी और उच्च नैतिक आदर्श-सम्पन्न व्यक्तित्वसे बहुत प्रभावित हुए। एक ही क्षेत्रमे कार्य करते हुए दोनोमे घनिष्ठ प्रेमभाव स्थापित हो गया । इनके कलकत्ता छोडनेके वाद यद्यपि यह सम्बन्ध पत्राचार अथवा प्रत्यक्ष सम्पर्कसे पोषित न हो पाया, फिर भी सुभाषबाबूके महान् आदर्शो, त्याग तथा उत्कट देशप्रेमके प्रति इनके हृदयमे बडा सम्मान रहा।

माँ आनन्दमयीसे इनकी पहली भेंट स० १९६९मे ढाकामे हुई। उन दिनो ढाकामे इनका पाटका काम था—श्रीनौरंगराम रामचन्द्रकी हिस्सेदारीमे। इस सिलसिलेमे ये वहाँ जाया करते थे । माँ आनन्दमयी भी तब ढाकामे ही निवास करती थी। उस समय भी उनकी बडी प्रसिद्धि थी। इन्होने माँका प्रथम दर्शन यही किया। कुछ वातचीत भी की। इसके वाद इन्हे माँके साक्षात्कारका सयोग काशीमे प्राप्त हुआ। पीछे तो माँकी इनपर अगाध वत्सलता एव कृपा आजीवन बनी रही। जब-जब माँके दर्शन हुए, माँने बडे ही स्नेहसे इनका स्वागत किया।

श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका प्रथम सत्सङ्ग

श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका पोद्दारजीके मौसेरे भाई थे। मारवाडी समाजमे आध्यात्मिक महापुरुपके रूपमे उनकी बडी प्रतिष्ठा थी। वे जब कभी कलकत्ता आते तो प्राय अपने बालसखा श्रीहनुमानदासजी गोयन्दका अथवा स्नेही श्रीजोखीरामजी गोयन्दकाके पास ठहरते थे। श्रीबद्रीदासजी और श्रीकेदारनाथजी धानुकासे भी उनका घनिष्ठ परिचय था। इन्ही लोगोके द्वारा श्रीसेठजीके सत्सङ्गकी व्यवस्था होती थी। हनुमानप्रसादने सत्सङ्गियोके मुखसे उनके तत्त्वज्ञानकी प्रशसा सुन रखी थी, किंतु साक्षात्कारका सुयोग नही मिला था।

स० १९६७–६८मे श्रीगोयन्दकाजीका कलकत्ता-आगमन हुआ। सयोगवश अबकी बार उनका सत्सङ्ग पगया पट्टीमे श्रीहरवख्शजी साँवलकाकी दूकानपर आयोजित हुआ। यह स्थान हनुमानप्रसादकी दूकानके सामने ही पडता था। श्रीबद्रीदासजी और श्रीकेदारनाथजी धानुका हनुमानप्रसादके यहाँ दलाल थे। उनसे इन्हे इसका पता पहले ही चल गया था। अत दूकानका काम निपटाकर ये नित्य श्रीसेठजीके सत्सङ्गमे जाने लगे। उनका प्रेमिल स्वभाव, मौलिक चिन्तन तथा दम्भहीन अन्त करण देखकर ये मुग्ध हो गये। इसके वाद श्रीसेठजीको सत्सङ्गके लिये ये अपनी दूकानपर भी लाने लगे। यद्यपि इस समयतक हनुमानप्रसादके मस्तिष्कमे राजनीतिक तथा सामाजिक विचारोका घोर झञ्झावात चल रहा था, फिर भी श्रीसेठजीके सत्सङ्गमे इन्हे कुछ ऐसा आकर्पण, ऐसा रस मिलने लगा कि उधरसे समय निकालकर ये उनके कलकत्ता आनेपर नियमितरूपसे सत-समागमका लाभ उठाने लगे। इनके पीछे अचिन्त्यशक्तिकी कौन-सी मङ्गल-विधायिनी प्रेरणा काम कर रही थी, उसका रहस्य वादमे खुला।

श्रीअरविन्दकी स्नेह-प्राप्ति

इन्ही दिनो श्रीअरविन्द घोप बडौदा छोडकर कलकत्ता आ गये। वे पहले अपने मौसा श्रीकृष्णकुमार मित्रके यहाँ कालेज स्क्वेअरवाले मकानमे ठहरे। कृष्णकुमारबाबूसे हनुमानप्रसादकी पहलेसे ही अच्छी जान-पहचान थी। उनके माध्यमसे इन्हे श्रीअरविन्द घोपका भी स्नेह प्राप्त हो गया। स० १९६४मे घोप महाशयने नैशनल कालेजमे प्रिंसिपलके पदपर कार्य करना आरम्भ किया। इस सस्थाका उद्देश्य था, विदेशी शासकोद्वारा स्थापित महाविद्यालयोका स्वदेशी-आन्दोलनमे बहिष्कार करनेवाले छात्रोके लिये राष्ट्रीय शिक्षाकी व्यवस्था करना। धीरे-धीरे यह क्रान्तिकारियोका गढ बन गया।

राष्ट्रकी प्रसुप्त आत्माको उद्बुद्ध करनेके लिये उन्होने भी अपने विचारोके प्रसारका माध्यम समाचार-

पत्रोको ही बनाया। उनके सम्पादनमे तीन पत्र निकले—'कर्मयोगिन्'* (अग्रेजी), 'वदे मातरम्' (बँगला) और 'धर्म' (बँगला)। हनुमानप्रसाद इन्हे बडे चावसे पढते थे। श्रीअरविन्दके परवर्ती जीवनकी योग-साधनाके उत्कर्ष, उनके पाडिचेरी आश्रमकी सदाचार-पद्धति और भारतके आध्यात्मिक पुनर्जागरणमे उनके महान् योगदानके प्रति इनके हृदयमे बडी श्रद्धा थी। इन्होने अपने कई स्वजनो एव सहचरोको पाडिचेरी आश्रममे जानेकी प्रेरणा दी।

अग्निवर्षी समाचार-पत्र

राष्ट्रीय भावनाको उद्दीप्त करनेमे कलकत्ताके बँगला, हिंदी और अग्रेजी पत्र-पत्रिकाओने घृताहुतिका काम किया। समसामयिक बँगला पत्रोमे तीन बडे ही प्रभावशाली पत्र थे—'वदे मातरम्', 'युगान्तर' और 'सध्या'। 'वदे मातरम्'के सम्पादक-मण्डलमे प्रमुख थे श्रीअरविन्द घोष, 'सध्या'के सम्पादक थे श्रीब्रह्मबोध उपाध्याय और 'युगान्तर'के श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्त। इन पत्रोने शासनद्वारा अपनायी गयी दमन-नीतिकी खुलकर आलोचना की। बगाल सरकारने प्रतिक्रियामे अभियोग चलाकर इनका मुँह वद करनेकी योजना बनायी। पहला प्रहार राष्ट्रवादी 'वदे मातरम्'पर हुआ। स० १९७७मे राजद्रोहका मुकदमा कायम करके श्रीअरविद घोषको जेलमे डाल दिया गया, किंतु उक्त पत्रके सम्पादक-रूपमे उनका अस्तित्व प्रमाणित न हो सकनेके कारण कुछ ही दिनो वाद सरकारको उन्हे छोड देना पडा। इसके वाद 'युगान्तर'की बारी आयी। इसके सम्पादक श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्दके भाई) बडे ही उग्र विचारोके व्यक्ति थे। उनकी प्रेरणासे इस पत्रमे सर गुरुदास बनर्जी, सर चन्द्रमाधव घोप एव उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारियोके छद्मनामसे उत्तेजक लेख प्रकाशित होते रहते थे। इस पत्रकी आग्नेय भाषासे नवयुवकोको विदेशी शासन और उसके कर्णधारोको समाप्त करनेके लिये आत्माहुतिकी प्रेरणा मिलती थी। उसका सदेश था—

ज्वलुक ज्वलुक विप्लववह्नि नगरे नगरे।
भस्म होक् राक्षसेर स्वर्ण लङ्कापुरी॥

'विप्लवाग्नि नगर-नगरमे प्रज्वलित हो। राक्षसराज रावण (अर्थात् अग्रेजी सरकार)की स्वर्णपुरी (लङ्का) भस्म हो।'

सरकार इसके विप्लवी स्वरसे सत्रस्त हो उठी। राजद्रोहपूर्ण सामग्री प्रकाशित करनेके अभियोगमे प्रेस-विधानके अन्तर्गत सर्वप्रथम इसके प्रिंटर गिरफ्तार हुए। किंतु एकके कैद होनेपर दूसरे नियुक्त होते रहे और समाचार-पत्र निकलता रहा। अत सरकारने क्रुद्ध हो उसके सम्पादक श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्तको कारागारमे डाल दिया। इससे कुछ दिनोके लिये उसका प्रकाशन स्थगित हो गया। किंतु उत्साही आतङ्कवादियोके प्रयाससे यह पुनर्जीवित हो गुप्तरूपसे निकलने लगा। अव पत्रका स्वर अधिक उग्र हो गया। वैधानिक तथा प्रकट रूपमे प्रकाशित इसकी प्रति पैसेसे प्राप्त होती थी, किंतु अव अवैधानिक तथा प्रच्छन्न रूपमे प्रकाशित इसकी दुर्लभ प्रतिका मूल्य घोषित हुआ—

'युगान्तरेर मूल्य—फिरगीर काटा मुण्ड' (अग्रेजका कटा हुआ सिर)।

मुकदमा चलनेपर श्रीभूपेन्द्रनाथ दत्तको एक वर्षका सपरिश्रम कारावास मिला, फिर भी उनका बोया हुआ बीज नि शेष नही हुआ। वह प्रचण्डतर स्वरमे क्रान्तिका विगुल बजाता रहा, आग उगलता रहा और मातृभूमिकी लज्जारक्षाके लिये उसकी वेदीपर उसकी प्यारी सतानोको सर्वस्व बलिदान करनेकी प्रेरणा देता रहा।

धधकती ज्वालामे

वगालके विप्लववादियोका घनिष्ठ सम्पर्क हनुमानप्रसादको क्रान्तिकी धधकती ज्वालामे अन्ततोगत्वा खीच ही ले गया। श्रीयतीन्द्रनाथ दासकी प्रेरणासे ये 'स्वदेश बान्धव समिति'के सदस्य बन गये। इस सस्थाके बाह्य और

* श्रीअरविन्द घोपकी कृतियोका अपने विचारोपर प्रभावका विवेचन करते हुए श्रीभाईजीने बताया था कि 'कर्मयोगिन्' पहले 'धर्म'के नामसे प्रकाशित होता था। इसमे स० १९६५के आस-पास 'देशभक्ति कि ?' (देशभक्ति क्या है ?) शीर्षकमे एक लेख निकला था, जिनमे उन्होने लिखा था, 'देशात्मबोधका नाम देशभक्ति है।' यह व्याख्या इन्हे अत्यन्त उपयुक्त एव प्रिय लगी। इनकी देशभक्तिका स्वरूप-निर्माण इसी आदर्शपर हुआ। इस दिशामे वक्मिवाबूके 'आनन्दमठ'से भी इन्हे पर्याप्त प्रेरणा मिली।

आन्तरिक रूपमे दिन-रातका अन्तर था। वह बाहरसे सुधारवादी थी, भीतरसे घोर सहारवादी। इसके सदस्योको गीता हाथमे लेकर प्रतिज्ञा करनी पडती थी और निःस्वार्थभावसे देशके लिये प्राणत्यागका व्रत लेना पडता था। ईश्वरमें पूर्ण विश्वासके साथ देशकी सेवाके द्वारा ईश्वरसेवाका पाठ पढाया जाता था। गीतोक्त निष्काम कर्म-योगकी शिक्षा दी जाती थी। इसमे कार्य करते हुए ये ढाकाकी क्रान्तिकारी सस्था 'अनुशीलन समिति'के श्रीकुलीनबिहारी बोस, श्रीअमियनाथ भट्टाचार्य, श्रीरासबिहारी बोस, श्रीविपिनचन्द्र गागुली तथा श्रीवैद्यनाथ दास-जैसे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेताओके सम्पर्कमे आते रहे।

दमनचक्रकी प्रगति

अग्रेजी सरकार बगाली आतङ्कवादियोसे त्रस्त हो गयी। अपनी सत्ताकी प्रतिष्ठा एव अस्तित्व-रक्षाके लिये उसे पशुशक्तिके नृशसतापूर्ण प्रयोग एव प्रदर्शनका आश्रय लेना पडा। उसने स० १८१८ ई०के रेगुलेशनके अनुसार कलकत्ताके ९ प्रमुख क्रान्तिकारियोको दिसम्बर १९०८मे 'देश-निकाले'का दण्ड दिया। क्रान्तिकारी समितिके सक्रिय सदस्य होनेसे इन देशभक्तोके विरुद्ध चलाये गये मुकदमोकी पैरवीके सिलसिलेमे हनुमानप्रसादने भी काफी दौडधूप की।

मानिकतल्ला बम अभियोग

जिन दिनो यह मुकदमा चल ही रहा था, मानिकतल्लाका प्रसिद्ध बमकाण्ड हुआ। विप्लववादियोकी योजना मुजफ्फरपुरमे स्थानान्तरित कलकत्ताके भूतपूर्व प्रेज़ीडेंसी मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्डको बमसे उडानेकी थी। किंतु निशाना चूक जानेसे दो निरीह व्यक्तियोकी हत्या हो गयी। यह घटना ३० अप्रैल, १९०८को घटी। इसमे श्रीअरविन्द, खुदीराम बोस, बारीन्द्र घोष, प्रफुल्ल चक्रवर्ती, नरेन्द्र गोस्वामी, कनाईलाल दत्तसहित ३६ अभियुक्तोके विरुद्ध २०६ गवाह और ४००० लिखित प्रमाण, और अन्य बहुत-सी सामग्री प्रस्तुत की गयी थी। क्रान्तिकारी-समितिको इसकी भी पैरवीमे हनुमानप्रसादकी सेवाएँ प्राप्त हुई।

श्रीअरविन्दकी अन्तर्धान-लीला

इसके बाद एडी-चोटीका पसीना एक कर देनेपर भी श्रीअरविन्दके विरुद्ध अभियोग साबित न हो सका। अत विवश होकर सरकारको उन्हे छोड देना पडा। परतु उनकी गति-विधिपर उसकी कडी नजर बनी रही। वह उन्हे किसी मुकदमेमे फिर फँसाकर जेलमे ठूँसनेकी फिक्रमे थी। श्रीअरविन्दसे यह बात छिपी नही थी। उनकी आन्तरिक वृत्तियोमे भी अलक्षित रूपसे परिवर्तन सघटित हो रहा था। निदान अग्रेजी सरकारके ही मायाजालसे नहीं, दुर्निवार्य भवजालसे भी मुक्ति पानेका उन्होने सकल्प कर लिया और एक दिन सहसा अन्तर्धान हो गये। यह घटना १९१०की है। इस रहस्यपूर्ण योजनाका पता श्रीअरविन्दके मौसेरे भाई श्रीसुकुमार मित्र (श्रीकृष्ण-कुमारके पुत्र) आदि कतिपय अन्तरङ्ग सदस्योके साथ हनुमानप्रसादको भी ज्ञात था।

देशबन्धुकी दानशीलता

श्रीचित्तरजन दासकी उदारताके सम्बन्धमे इसके पूर्व हनुमानप्रसाद लोगोके मुखसे भाँति-भाँतिकी चर्चा सुना करते थे। क्रान्तिकारियोके मुकदमेकी पैरवीके सिलसिलेमे इन्हे उनके आचार-व्यवहारको अत्यन्त निकटसे देखने-परखनेका सुयोग मिला। उनके व्यक्तित्वमे इन्हे दैवी-सम्पत्तिके अक्षय कोषके दर्शन हुए। अगाध विद्वत्ताके साथ ही करुणा और अपरिग्रह उनके हृदयकी सहज वृत्ति थी। उनके द्वारपर अर्थार्थियोकी भीड लगी रहती थी। दीन विद्यार्थी, धनाभावमे चिकित्सा करानेमे असमर्थ रोगी, पुत्रीका विवाह एव मृत पिताका शवदाह करनेमे अशक्त निर्धन, कङ्कालशेष क्षुधार्त, वृत्तिहीन मजदूर आदि विविध रूपोमे अभावग्रस्त मानवताको यथाशक्ति तृप्त करना ही उनके जीवनका लक्ष्य था। हनुमानप्रसादने साथ रहकर देखा कि सुबहसे शामतक वे जितना कमाते है, वह सब सूर्यकी किरणोके साथ ही विलीन हो जाता है। दो हाथोसे धन-सग्रह करते है और उसे हजार हाथोमे हजार हाथोमे पहुँचा देते हैं। मनीआर्डरके फार्म मुशीके पास पहले ही नाम-पता लिखे हुए रखे रहते हैं, रुपये

आते ही डाकघरमे भेज दिये जाते है। डुमरावँ राज्यका मुकदमा जीतनेपर उन्हे एक दिनमे एक लाख रुपयेसे अधिक मेहनतानेके रूपमे मिला। घर पहुँचते-पहुँचते हाथ खाली हो गया। उनके दानकी विशेषता थी उसकी रहस्य-मयता। उनका सारा दान गुपचुप होता था। जैसे—यदि उन्हे पता लग जाता कि अमुक गृहस्थ अभावग्रस्त है तो उससे अपरिचित किसी दूसरे आदमीके हाथ रुपये यह कहलाकर भेजते थे कि 'तुमने अमुक जगह काम किया था, उसका रुपया बाकी रह गया था। यह ले लो।' कभी किसीकी नितान्त आवश्यकताका समाचार पाकर उसे अपने आदमियोके द्वारा घर बुलाते और कहते—'देखो, हमारा अमुक काम है। तुम उस स्थानपर जाकर उसे कर आओ। यह रुपये लो। हिसाब पीछे दे देना।' उस काममे खर्च होता था पॉच रुपये तो पद्रह रुपये अग्रिम दे देते थे। लौटनेपर जब वह शेष रुपये लौटाने लगता तो उसे वापस करते हुए कहते—'हम फालतू बैठे है क्या कि तुमसे हिसाब ले? जाओ, घर जाओ, हिसाब लेना होगा, तब हम अपने-आप तुमको कहला देगे।' इससे वह समझ जाता और प्रसन्न-वदन लौट जाता।

एक बारकी बात है। गाधीजी देशबन्धुसे मिलने उनके घर आये। उस समय पोद्दारजी भी वहाँ मौजूद थे, और भी कई लोग आ गये थे। दासबाबूने उन्हे सतुष्ट कर विदा किया। गाधीजीने इसके पूर्व उनकी दानशीलताके और भी कई किस्से सुन रखे थे। उन्होने देशबन्धुसे कहा, 'दासबाबू! आपकी तो रुपयेमे बारह आने कमाई लोग ठग ले जाते है।'

दासबाबूने उत्तर दिया—'बापू! मेरी जगह आप होते तो जरूर यही बात होती। पर मेरा तो एक-एक पैसा भगवान्‌की सेवामे लगता है। मै तो भगवान् समझकर देता हूँ। भगवान्‌की चीज भगवान्‌को अर्पित करता हूँ।' गाधीजी प्रसन्न हो गये।

देशबन्धु इसी प्रकार राजनीतिमे भी बडे सच्चे, स्पष्टवक्ता और सिद्धान्तवादी थे। जो सिद्धान्त मान लेते थे, उसपर पूरा-पूरा अमल करते थे। गाधीजीकी भी जो बात उनको नही जँचती, स्पष्ट कह देते थे।

वे कभी अपने दातारूपको प्रकट नही होने देते थे। दानका मान न चाहना ईश्वरीय गुण है। यह उनके स्वभावमे कूट-कूटकर भरा था। कलकत्ता छोडनेके बाद उनसे भाईजीकी भेट नागपुरके काग्रेस अधिवेशनमे हुई थी। पीछे भी उनके जीवन-कालमे जब कभी ये कलकत्ता गये, उनसे बराबर मिलते रहे। हनुमानप्रसादपर उनकी अमानी प्रवृत्तिकी गहरी छाप पडी। देशबन्धुके ससर्गसे दानशीलतामे ही उनकी आस्था नही दृढ हुई, दान देनेमे अहताका परिहार और गृहीताको भगवत्स्वरूप माननेकी दृष्टि भी उन्हे मिल गयी।

पारिवारिक आपत्ति

इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलनके प्रवाहमे इनकी जीवन-नौका वेगसे बह रही थी कि घरेलू आपत्तियोके जलावर्त्तमे फँसकर उसकी प्रगति बाधित होनेका योग आ गया। द्वितीय पत्नी सुवटी बाईसे माघ कृष्ण १२, स० १९७३को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दो दिनकी आयु भोगकर वह परलोक सिधार गया। इसके छ दिन बाद माघ शुक्ल ४, स० १९७३को प्रसूति-ज्वरसे शोकातुरा माता भी उसकी अनुगामिनी हुई।

आर्त्तसेवाकी शिक्षा

श्रीभाईजीके पिता श्रीभीमराजजीके मित्रोमे श्रीशरत्‌चन्द्र बनर्जी नामके एक प्रसिद्ध डाक्टर थे। ये कालीघाटमे रहते थे। श्रीभीमराजजीके देहावसानके बाद भी इनके यहाँ बराबर आते-जाते रहते थे। हनुमानप्रसादपर उनका स्नेह था। वे होमियोपैथीके अच्छे ज्ञाता थे। इसके अतिरिक्त तन्त्र-मन्त्रमे भी विश्वास रखते थे। उनके पास अभिमन्त्रित जडी-बूटियाँ रहती थी। रोग-निवारणके लिये वे उनका भी प्रयोग करते थे। वे विदेशोसे दवा मँगाकर शीशियोमे भरकर रखते थे। इन दवाओके प्रकृत नामको बदलकर वे अपनी पद्धतिसे अग्रेजी वर्णमालाके अक्षरोपर एक्स, वाई, जेड—ऐसे विचित्र नाम रखते थे। प्रत्येक रोगीको वे जडीके साथ दवाकी पूरी शीशी देते थे। किसीसे कुछ लेते नही थे।

प्रात काल उनकी बैठकमे रोगियोकी अपार भीड लग जाती थी। कलकत्ताके बडे-बडे सेठ, साहूकार, वकील, बैरिस्टर, मध्यम और निम्नवर्गके लोग जब चारो ओरसे निराश हो जाते, तब शरत्‌बाबूकी शरणमे आकर त्राण

पाते थे। ऐसे असाध्य रोगियोको देखनेकी, जो उनके पास नही आ सकते थे, उनकी अनोखी पद्धति थी। प्रात ही रोगियोके सम्बन्धी शरत्‌वावूके पास जाकर रोगीका नाम, पता और यथासम्भव रोगका विवरण लिखा आते थे। दवाखानेसे छुट्टी पानेपर वे अपना वेग हाथमे लेते। फिर ढूँढते-ढूँढते उनके घर पहुँचते। दवा देकर विना एक पैसा लिये, यहाँतक कि सवारीका किराया भी न लेकर अपने घर लौट आते। रोगियोको वे उपदेश देते थे—'भगवान्‌पर विश्वास रखो, भगवान्‌मे निष्ठा रखनेसे सव कुछ हो सकता है।' हनुमानप्रसादने उनकी चिकित्साके कई चमत्कार देखे—

एक दिन उनके पास एक व्यक्ति आया। उसकी स्त्री विषम प्रसव-पीडासे व्याकुल थी—वच्चा न होनेसे वडी तकलीफमे थी। उन्होने एक यन्त्र निकाला और उसे देते हुए कहा—'इसे स्त्रीके हाथमे बाँध देना, बाँधते ही वच्चा हो जायगा। किंतु इसके वाद यन्त्रको अविलम्ब खोल लेना, नही तो आँततक नीचे आ जायगी।' आगन्तुक व्यक्तिने वैसा ही किया। पीडारहित प्रसव हुआ। स्त्री और वच्चा दोनो स्वस्थ रहे।

इसी प्रकार शरत्‌वावूने भाईजीकी मरणासन्न छोटी वहन अन्नपूर्णा (पूर्णीवाई)की प्राणरक्षा कर लोगोको आश्चर्यमे डाल दिया। पूर्णीवाई उस समय ४ वर्षकी थी। असामान्य रोगसे ग्रस्त होकर मृत्युकी गोदमे खेलने लगी। हालत नाजुक देखकर रातमे नगरके सवसे प्रसिद्ध डाक्टर सर कैलासचन्द्र बुलाये गये। उन्होने लडकीको देखकर कहा—'यह नही वचेगी।' वह वेहोश थी, उसकी जवान वद थी। अन्तिम समय निकट जानकर कफन मँगा लिया गया। इतनेमे दादी रामकौर देवीको सहसा शरत्‌वावूकी याद आ गयी। हनुमानप्रसादसे कहा—'जरा शरत्‌वावूके यहाँ हो आओ। ईश्वरके हाथ वहुत लवे होते है।' ये ट्रामपर चढकर शरत्‌वावूके घर गये और वहनकी गम्भीर वीमारीका विवरण उन्हे वताया। शरत्‌वावू वोले, 'ऐसी वात है?' इसके वाद वे भीतर गये और हाथमे पूजाघरसे तुलसीकी एक सूखी पत्ती लेकर लौटे। उसे इनके हाथोमे देते हुए वोले, 'इस पत्तीको गङ्गाजलमे पीसकर दो चार वूँद वच्चीके मुँहमे डाल देना। भगवान्‌ने चाहा तो यह अवश्य काम करेगी। अगर आज रातभर वच जाय तो कल प्रात फिर आना।' ये उस पत्तीको लेकर घर आये और निर्देशानुसार पीसकर अपनी वहनको पिला दिया। रात सकुशल वीत गयी। प्रात उसने आँखे खोल दी और वह वोलने लगी। सवेरे शरत्‌वावूके पास जाकर इन्होने सारी वात वतायी। इसके वाद ये रोज जाते और एक पत्ती ले आते। शरत्‌वावू कहते—'यह ठाकुरजीका प्रसाद है। सव कुछ कर सकता है।' एक महीनेमे वह वालिका पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो गयी। केवल एक कसर रह गयी। विषमज्वरके प्रभावसे उसका सुनना कम हो गया। यह दोष अवतक वना है। मात्र तुलसीके एक सूखे पत्तेने यमके दूतोको लौटा दिया। हनुमानप्रसादको शरत्‌वावूने चिकित्साके इन चमत्कारो—जडी-वूटीके विविध प्रयोगोके रहस्य वतानेकी वात कही थी, किंतु इसके पूर्व कि वे अपनी यह थाती इन्हे सौप सके, 'रोडा-काण्ड'मे इनकी गिरफ्तारीका वारट आ गया और अलीपुर जेलमे इनके वदी-जीवन व्यतीत करते समय ही वे दिवगत हो गये।

शरत्‌वावू वडे ही तेजस्वी और हँसमुख स्वभावके थे। जिस समय हनुमानप्रसाद उनके घनिष्ठ सम्पर्कमे आये, उनकी आयु साठ वर्षके लगभग थी, फिर भी उनके शरीरमे युवको-जैसी चुस्ती थी। उनके ससर्गसे इन्हे कई शिक्षाएँ मिली—परोपकार करना, सेवा करना, उसके वदलेमे कुछ चाहना नही, लेना नही, अपना काम अपने ही हाथो करना, भगवान्‌की कृपापर अखण्ड विश्वास रखना। भाईजीको अपने जीवनादर्शके निर्माणमे उनसे प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त हुई।

तन्त्रकी शिक्षा और तारायन्त्रकी साधना

शरत्‌वावू होमियोपैथी तथा जडी-वूटीके अतिरिक्त तन्त्रविद्याके भी ज्ञाता और साधक थे। वस्तुत उनकी चिकित्सा-पद्धतिकी असाधारण सफलताका यही रहस्य था। उन्होने हनुमानप्रसादको तन्त्र एव पूजा-पद्धतिकी शिक्षा दी। किस तरहसे सयम—ब्रह्मचर्यपालन करना चाहिये और कैसे-कैसे खान-पानमे सयम करना चाहिये, निष्ठाके साथ किस प्रकार नामजप करना चाहिये—इन सव तत्त्वोका विधिवत् ज्ञान कराया। उनके निर्देशनमे इन्होने कुछ दिनोतक इसका अभ्यास भी किया।

बंगाली अध्यात्मसाधकोके सम्पर्कमे इनकी तन्त्रविद्यामे रुचि बढती गयी। सयोगसे विख्यात वङ्गीय तान्त्रिक वामा-खेपाके शिष्य तारकबाबूसे इनका सम्पर्क हो गया। उन्होने इन्हे तारादेवीकी उपासना सिखायी। इसमे तारायन्त्रकी साधना प्रमुख थी। साधनाका रूप किचित् राजसिक है। इसमे मास-मदिरा आदिका प्रयोग अनिवार्य होता है। भाईजीकी इन पदार्थोंसे जन्मना अरुचि थी। तारकबाबू लाख समझाते कि यह सब तुम्हे माँके लिये करना है, किंतु यह बात हनुमानप्रसादके गले न उतर सकी। अत देवीकी साधनामे इन पदार्थोंको छोडकर और सब कर लेते—मदिराके स्थानपर शरबतसे काम चल जाता और मासके स्थानपर शाकाहारी भोग।

साधना करते-करते इन्हे तारादेवीका ध्यान होने लगा और उनकी मुखमुद्राका आभास भी मिलने लगा। किंतु इसका क्रम राजनीतिक सक्रियताके बढ जानेसे बीचमे ही टूट गया।

विप्लववादियोंकी कार्य-प्रणाली

क्रान्तिकी मशाल जलाये रखनेके लिये पैसेकी जरूरत थी। विप्लववादियोको चदा देनेमे पुलिसके कोप-भाजन बननेका भय था। इससे सामान्यतया लोग उन्हे चदा नही देते थे। जो सहानुभूति रखते थे, वे ही सहायता करते थे—वह भी छिपकर। हथियारोके खरीदने और कार्यकर्ताओकी जीवन-रक्षाके लिये धन-सग्रह अनिवार्य था। इसलिये और कोई चारा न देखकर उन्हे अवाञ्छनीय पद्धति अपनानेके लिये विवश होना पडा। और यह पद्धति वही थी, जिसे अभावग्रस्त साहसी लोग अनादिकालसे अपनाकर 'साहसिक'की उपाधि पाते रहे है।

ये लोग डाका डालने लगे। यद्यपि हनुमानप्रसाद समितिकी इस योजनामे प्रत्यक्ष सहायक नही बन पाये, फिर भी वे उसके मनसा समर्थक बने रहे। डाका डालनेमे भी वे लोग अपने सामने एक महान् आदर्श रखते थे। जिस घरमे बहुत पैसा होता था, डाका वही पडता था। युवक पिस्तौल, कटारी आदि अस्त्रोसे लैस होकर जाते। घरके भीतर पहुँचकर बडी-बूढी स्त्रियोको 'दादी, माँ' आदि कहकर प्रणाम करते और अपने उद्देश्य बताते हुए कहते—'देशके लिये धनकी जरूरत है। देशकी सेवाके लिये हम आपके पास आये है। देशके लिये हम आपसे धनकी भिक्षा माँगते है। आपका धन देशके काममे लगेगा।' यही बात पुरुषोसे भी कहते। यदि वे लोग बिना कुछ कहे-सुने दे देते तो जितना दे देते, उतनेमे ही सतोष करके चले जाते। आनाकानी करते तो पिस्तौल दिखाकर चाभी ले लेते और धन निकालकर चले जाते। पर यह मजाल नही कि इस धनमेसे एक पैसेका पान भी स्वय खाते। जो भी धन आता, उसका पैसा-पैसा देशके काममे खर्च होता।

मातृभूमिकी गौरवरक्षाके लिये आत्माहुति करनेवाले इन विप्लववादियोको इस देश-सेवाका पुरस्कार क्या मिलता? घरवालोकी फटकार, देश-निकाला, समाजमे तिरस्कार, पुलिसके कोडे, बिजलीके शॉक, जेलकी असख्य अकल्पनीय यातनाएँ और अन्तमे फाँसीका तख्ता। किंतु इन सबको हँसते-हँसते झेलते हुए, वे राष्ट्र-सेवामे तल्लीन रहते। मातृभूमिका बन्धन काटनेमे प्राप्त मृत्युकी गोद उन्हे हिमानी-सी शीतल लगती और असह्य शारीरिक यन्त्रणा पुष्प-शय्या-सी सुख-स्पर्शपूर्ण। हनुमानप्रसाद इसके अपवाद न थे। कारावास और मृत्युदण्डकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा ये भी करते थे।

राजद्रोहियोंकी सूचीमे

क्रान्तिकारियोसे घनिष्ठ सम्पर्क, उनके मुकदमोकी सरेआम पैरवी तथा गुप्त समितियोमे सक्रिय भाग लेते रहनेसे हनुमानप्रसादका नाम पुलिसकी डायरीमे आ गया और इनकी गति-विधियोका सतर्कतासे निरीक्षण होने लगा।

बहुत दिनोसे आकाशमे घुमडते हुए बादल एक दिन बरस कर ही रहे। स० १९७१मे पुलिसका दल आ धमका। पूरे घरकी तलाशी हुई, किंतु कोई आपत्तिजनक सामग्री न मिलनेसे पुलिस हाथ मलती हुई लौट गयी। इसके बावजूद कोई षड्यन्त्र बनाकर वह इनका चालान कर देती, यदि इनके ससुर श्रीमँगतूरामजी सरावगी बीचमे न आ जाते। उनकी पुलिसके उच्च अधिकारियोसे जान-पहचान थी। उनसे मिलकर उन्होने मामला शान्त

कर दिया। किंतु यह उपचार तात्कालिक ही था। रोग ज्यों-का-त्यों बना रहा। पुलिस उपयुक्त अवसरकी ताकमें बैठी रही। इधर भी बिना किसी प्रकारके भय एवं संकोचका अनुभव किये कार्यक्रम योजनाबद्ध रूपसे चलते रहे।

तृतीय विवाह

द्वितीय पत्नीके दिवंगत होनेके बाद हनुमानप्रसादको राजनीति और समाज-सेवामें अहर्निश व्यस्त रहते देखकर दादी रामकौर देवीने इन्हें एक बार फिर गृहस्थीकी ओर खींचनेके विचारसे घर बसानेकी सलाह दी। दादीकी कोई बात इनकार करना इनके शीलके विरुद्ध था। अतः इन्होंने उस प्रस्तावका न तो विरोध किया न समर्थन ही। अतः रामकौर देवीने सेठ श्रीसीताराम साँगानेरियाकी पुत्री रामदेई बाईसे विवाहकी बात पक्की कर ली। साँगानेरियाजी गौहाटीमें रहते थे। वहीं बारात गयी और वैशाख शुक्ल ३ सं० १९७३को विवाह सम्पन्न हो गया।

रोड़ा-काण्ड

मानिकतल्ला बम अभियोगके लगभग ६ वर्ष बाद (सन् १९१४ ई०)मे क्रान्तिवादी आन्दोलनकी दूसरी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। यह 'रोडा-काण्ड'के नामसे प्रसिद्ध है। इसका संक्षिप्त वृत्त इस प्रकार है—

कलकत्तामें 'आर० बी० रोडा ऐंड कम्पनी' नामकी एक फर्म थी। यह बंगालमें विदेशोंसे आग्नेयास्त्र आयातित करनेवाली प्रमुख संस्था थी। २६ अगस्त, १९१४ ई० को इसने जर्मनीसे ४६,००० कारतूस और ५० पिस्तौलोंका पार्सल प्राप्त किया। ये १० पेटियोंमें बंद थे। आतङ्कवादियोंकी गुप्त समितिको इसका पता चल गया। हनुमानप्रसाद इससे सम्बद्ध थे। रोडा कम्पनीमें विदेशोंसे आये मालको छुड़ाकर लानेवाले कर्मचारी श्रीशचन्द्र भी इस समितिके सदस्य थे। उन्होंने बंदरगाहपर जाकर माल छुड़ाया और उसे बैलगाडीपर लदवाकर साथ चले। पूर्वयोजनानुसार रास्तेमें बैलगाड़ीपर लदी पेटियाँ ही गायब नहीं कर दी गयीं, उनके साथ बैलगाड़ी, गाडीवान तथा माल छुड़ाकर साथ आनेवाले रोडा कम्पनीके कर्मचारी श्रीशचन्द्र भी लुप्त हो गये। कम्पनीके दफ्तरमें समयसे माल न पहुँचनेपर तहलका मच गया। इसमें क्रान्तिकारियोंकी साजिशकी गन्ध पाकर पुलिस सरगर्मीसे जाँच-पड़ताल करने लगी।

पेटियोंमें रखे ५० पिस्तौल तो उसी रातको गुप्त समितिके बंगाली सदस्योंमें बाँट दिये गये, किंतु कारतूसोंकी पेटियाँ छिपानेमें सदस्योंको बड़ी परेशानीका सामना करना पड़ा। इस कार्यमें हनुमानप्रसादके जमादार सुखलालने बड़ी तत्परता एवं सतर्कता दिखायी। समितिके सदस्योंके अतिरिक्त पं० बाबूराव विष्णु पराड़करका भी कारतूसोंको सुरक्षित स्थानोंमें रखवानेमें हाथ था।

इसके बाद सं० १९७३ (१९१६ ई०) के मार्चमें सी० आई० डी०के एक बंगाली पुलिस इंस्पेक्टरने श्रीफूलचन्द्र चौधरीसे भेंट की और उन्हें बताया कि 'एक बंगाली क्रान्तिकारी युवकने पुलिसके सामने सारा भेद खोल दिया है। उसने जो रिपोर्ट लिखायी है, उसमें आपलोगोंके नाम हैं। ये नाम थे—फूलचन्द चौधरी, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, ज्वालाप्रसाद कानोडिया, घनश्यामदास बिरला, ओंकारमल सराफ तथा हनुमानप्रसाद पोद्दार। उसने इसी सिलसिलेमें बातको आगे बढ़ाते हुए कहा, 'यदि मुझे दस हजार रुपये मिल जायँ तो सारे कागज-पत्र नष्ट कर दूँगा। आपलोग इस प्रकार एक बहुत बड़ी आफतसे छुट्टी पा जायेंगे। इंस्पेक्टरके इस प्रस्तावपर सदस्योंमें विचार-विनिमय हुआ किंतु घूस देनेकी बात ठीक नहीं जँची। इंस्पेक्टरको इसकी सूचना दे दी गयी।

समितिके सदस्योंमें फूलचन्द चौधरी सरकारके अधिन्यास-कार्यालयके कर्मचारी थे। उनके कार्यालयका सर्वोच्च अधिकारी अंग्रेज था, वह उन्हें बहुत मानता था। कलकत्ताके पुलिस कमिश्नर टेगर्ट उसके साले लगते थे। फूलचन्दने अपने साहबसे सारा वृत्तान्त बताते हुए पुलिस इंस्पेक्टरके विरुद्ध जाँच करानेको कहा। इन लोगोंने सोचा था कि इससे मामला दब जायगा, किंतु परिणाम उल्टा हुआ। पुलिस कमिश्नर टेगर्टने जाँच की। उसे सं० १९७१की फाइल भी इस सिलसिलेमें प्राप्त हो गयी। शिकायत साधार पाकर उसने उक्त पुलिस इंस्पेक्टरको मुअत्तल कर दिया। परंतु प्राप्त कागजोंसे उसकी यह धारणा दृढ़ हो गयी कि इन लोगोंका सम्बन्ध

इस घटनासे अवश्य रहा है । अत राजद्रोहका अभियोग लगाकर भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १२०के अन्तर्गत सभीके विरुद्ध गिरफ्तारीके वारंट जारी करा दिये ।

इस काण्डमे लिलुआकी गुप्त समितिके दो सदस्य—श्रीप्रभुदयालजी हिम्मतसिहका और श्रीकन्हैयालालजी चितलानिया पहले ही पकडे जा चुके थे । शेष पाँचकी गिरफ्तारीका आदेश अब निकला । हनुमानप्रसादको इसकी सूचना एक महीने पहले ही श्रीफूलचन्द चौधरीसे मिल गयी थी, किंतु पकडे जानेके भयसे न तो ये कही अन्यत्र भागकर छिपे और न इन्होने अपनी क्रान्तिचर्यामे ही कोई परिवर्तन आने दिया । क्लाइवस्ट्रीटमे 'बिरला श्रॉफ ऐंड कम्पनी' नामकी एक दूकान थी, उसीमे ये भागीदारके रूपमे काम करते रहे । एक दिन अकस्मात् वहाँ पुलिस सदल-बल आ धमकी । १६ जुलाई, १९१४ ई० (श्रावण कृष्ण ५, स० १९७३) को इन्हे अपने तीन अन्य साथियोसहित राजद्रोहके अपराधमे बदी बनाकर जेल भेज दिया गया ।

कारावास-सेवन

डुराण्डा हाउस कारागार—आरम्भमे १५ दिनतक इन लोगोको कलकत्ताके डुराण्डा हाउस कारागारमे रखा गया । डुराण्डा हाउस पूरी तरह कैदियोसे भर गया था । हनुमानप्रसाद, श्रीज्वालाप्रसाद कानोडिया, श्रीओकारमल सराफ और श्रीफूलचन्द चौधरी चार पृथक् कोठरियोमे रखे गये । यहाँकी गदगी तथा दुर्व्यवस्था देखकर इन लोगोने जेलद्वारा दिया गया भोजन करना अस्वीकार कर दिया । इस कारण पहले दिन इन्हे निराहार रहना पडा । इनके सद्व्यवहारसे प्रसन्न होकर जेलरने दूसरे ही दिनसे चौकीदारद्वारा बाहरसे भोजन मँगानेकी व्यवस्था करा दी । चौकीदारने इन लोगोसे कहा, 'आपलोग भोजन घरसे मँगा लीजिये, मैं भीतर पहुँचा दूँगा ।' हनुमानप्रसादने प० श्रीझावरमलजी शर्माको एक पत्र लिखा । उन्होने नियमितरूपसे चारो व्यक्तियोके घरसे भोजन भिजवानेकी व्यवस्था कर दी । यह क्रम डुराण्डा हाउसके बदीकालतक चलता रहा । गुप्तचर-विभागके अधिकारियोने इस बीच नाना प्रकारके भय और प्रलोभन* दिखाकर इन्हे अपने सहकर्मी क्रान्तिकारियोके नाम बतानेको कहा, किंतु ये टस-से-मस न हुए । अन्ततोगत्वा भारतीय दण्ड-विधानकी धारा १२० एके अन्तर्गत राजद्रोहका अभियोग लगाकर चारोको अलीपुर जेलमे स्थानान्तरित कर दिया गया ।

समाजमे आतङ्क

मारवाडी समाज अपने प्रतिष्ठित लोगोकी इस व्यापक गिरफ्तारीसे सत्रस्त हो गया । लोगोमे भय छा गया । समाजके अच्छे-अच्छे लोग, जिनसे इन लोगोका घरेलू सम्बन्ध था, इनके कुटुम्बियोसे मिलनेमे कतराने लगे । जिन लोगोसे गहरा सम्बन्ध था, उन लोगोने चुपकेसे रामकौर देवीके पास कहला दिया कि 'हमारे पास आपका कोई आदमी न आये ।' मारवाडियोकी सभाएँ आयोजित हुई, जिनमे मञ्चपर खडे होकर समाजके गण्यमान्य लोगोने इन गिरफ्तार होनेवाले राजनीतिक कार्यकर्ताओको 'समाजका कलङ्क' कहा । हनुमानप्रसाद भी उनके कोपभाजन बने । आतङ्क इस सीमातक फैला कि इनके प्रयाससे 'साहित्य-सवर्द्धिनी समिति'द्वारा प्रकाशित गीताकी शेष प्रतियाँ, जो छिपाकर रखी गयी थी—जला दी गयी ।

हनुमानप्रसादको कारावासमे इन सारी बातोकी सूचना मिलती रही । किंतु उन्हे इसपर न कोई आश्चर्य हुआ न चिन्ता ही । जीवनका यह कठोर यथार्थ उन्हे अविदित न था कि अन्धकारमे छाया भी शरीरका साथ छोड देती है ।

घरकी स्थिति

पिताके दिवगत होनेके अनन्तर इनके सत्सङ्ग, समाज-सेवा और राजनीतिमे अहर्निश व्यस्त रहनेके कारण दूकानका काम ढीला पड गया था । घाटेपर चलते-चलते उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी । कई हजारका

* पुलिसने इन्हे शारीरिक यातना नही दी । केवल यह कहकर धमकाती रही कि 'फाँसीपर लटका दिये जाओगे, उम्रभरकी कैद होगी, घरवाले भूखो मरेंगे, तुम्हारा अभी विवाह हुआ है, पत्नीको पुलिसवाले मारेंगे । बडी दुर्दशा होगी' आदि । किंतु जेलमे बद अन्य क्रान्तिकारी बगाली तरुणोको बिजलीके धक्के दिये गये थे और मारा भी गया था ।

कर्ज हो गया। इससे विवश हो स० १९७२मे उसे वद कर देना पडा। इसके वाद श्रीनागरमलजी अजीतसरियाके साथ इन्होने जूटका काम करना आरम्भ किया, किंतु यह भी लाभप्रद सिद्ध नही हुआ। अन्तमे इन्होने 'विरला श्रॉफ ऐड कम्पनी' स्थापित की। यह अभी शैशवास्थामे ही थी कि राजनीतिक वात्याचक्रने इन्हे अत्याचारी शासनसे लोहा लेनेवाले स्वतन्त्रता-प्रेमियोके प्रकृत आवासका अतिथि वना दिया।

अलीपुर जेलका जीवन

हनुमानप्रसाद श्रीज्वालाप्रसाद कानोडिया, श्रीओकारमल सराफ तथा श्रीफूलचन्द चौधरी——चारो राजनीतिक वदियोको अलीपुर जेलमे पृथक्-पृथक् एकान्त कोठरियोमे रखा गया। कोठरीके भीतर सोनेके लिये एक लवा चवूतरा था। कोठरीमे ही मल-मूत्रके लिये मिट्टीके वर्तन रखे रहते थे। कोठरीके वाहर भी एक चवूतरा था और सामने खुला आँगन। उसके आगे एक दरवाजा और था। दिनमे वाहरवाला दरवाजा वद रहता था, रातको दोनो वद हो जाते थे। पहले दिन वहाँ भी डुराण्डा हाउसकी भाँति तीनोको भूखा रहना पडा, परतु दूसरे दिनसे जेलरने घरसे भोजन मँगानेकी अनुमति दे दी। इन्होने प० झावरमलजी शर्माको सूचना देकर पूर्ववत् घरसे भोजन मँगानेकी व्यवस्था कर ली। चारोका भोजन साथ आता था।

अध्यात्मनिष्ठ विप्लववादी विचारधारामे निष्णात होनेसे जेलयात्रा इन्हे रञ्चमात्र भी कष्टकर नही प्रतीत हुई। मानसिक स्थिति पूर्णतया सतुलित रही। चिन्ता केवल एक वातकी थी और वह थी गृहस्थीकी दयनीय स्थिति। घरमे रह गयी थी पाँच स्त्रियाँ——वूढी दादी, विमाता गौराँवाई और पत्नी रामदेई तथा दो छोटी वहने——कमला वाई और अन्नपूर्णावाई। इनमे माँ गौराँवाई उन दिनो अपने मायकेमे थी। इन सवकी देखभालकी व्यवस्था करनेवाला कोई पुरुष न था। भरण-पोषणके लिये भी अपेक्षित साधनोकी कमी थी। हनुमानप्रसादकी परिवार-सम्वन्धी यह उद्विग्नता भी शीघ्र शान्त हो गयी।

नाम-साधनाका समारम्भ

इस चिन्ताजनक स्थितिमे इन्हे अशरण-शरण भगवान्‌का नाम याद आया। जेलके यातनापूर्ण जीवनमे किस प्रकार उसके नियमित जपकी व्यवस्था हुई और उससे उद्विग्न मानसको कितनी शान्ति मिली, इसका विवरण भाईजीके ही शव्दोमे देखिये——

"अलीपुर जेलमे भगवन्नामका जप प्रारम्भ किया, जिससे दो-तीन घटेके अदर ही वहुत अधिक शान्ति मिली। वहाँ पहुँचनेपर पहले-पहल वडी व्याकुलता प्रतीत हुई, सव तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा दीखता था, घरवालोके पास खानेके लिये एक पैसा भी नही था। स० १९७३की वात होगी——अक्षयतृतीयाको ही तीसरा विवाह हुआ था, जिसके दो-तीन महीने वाद जेल जाना पडा था। इसलिये चिन्ताओका पहाड सामने दीखने लगा था।

"उस समय माला फेरनेकी वात याद आयी। सिपाहीसे माला माँगी तो उसने कहा कि 'माला तो नही है।' उसने एक कील (काँटी) दे दी, जिससे दीवालपर विस्वोके द्वारा मालाकी सख्या पूरी करके लकीर कर देता। उस समय वडे प्रेमसे खूव मन लगाकर——२-३ घटे भजन हुआ, जिससे वडी शान्ति मिली। ऐसे तो पहले भी सप्तशतीके पाठ (नवरात्रमे) तथा नित्यप्रति शिव-महिम्नस्तोत्र, हनुमान-कवच, सूर्य-कवच तथा गोपाल-सहस्रनाम आदिके पाठ-जप आदि वहुत करता था, किंतु वास्तविक जप* यहीसे शुरू हुआ।"

यही इन्हे नाम-माहात्म्यका परिचय मिला। फिर तो भगवान्‌का यह षोडशनामात्मक मन्त्र भाईजीका आजीवन सहचर रहा। दूसरोको भी उसका महत्त्व वताकर ये जपकी प्रेरणा देते रहे।

कारावधिकी समाप्ति

डुराण्डा हाउस और उसके वाद अलीपुर जेलमे वद करनेके वाद वगाल सरकारने इन लोगोके विरुद्ध राजद्रोहका मुकदमा चलानेके लिये अपेक्षित साक्ष्योको एकत्र करनेका भरसक प्रयास किया, किंतु कोई ठोस आधार

---

* जप निम्नाङ्कित षोडशाक्षर नाममन्त्रका होता था——

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

हाथ न लगा। इन्हे छोडनेमे क्रान्तिके भडकनेकी आशङ्का थी, और दमनद्वारा शान्ति एव व्यवस्था खतरेमे पड जाती। अत बहुत सोचने-विचारनेके बाद गवर्नरने अपने सलाहकारोकी राय लेकर इन लोगोको कलकत्तासे दूर कही बाहर ले जाकर 'भारत-रक्षा-विधान'के अनुसार नजरबद करनेका निर्णय किया। बगाल सरकारके सचिवने अपने पत्र दिनाङ्क २१ अगस्त, १९१६के द्वारा इसकी सूचना हनुमानप्रसादको दी। यह पत्र इन्हे २२ अगस्तको मिला। सरकारके उक्त आदेशानुसार इन्हे २३ अगस्तको बाँकुडा जिलेके पुलिस अधीक्षकसे पुलिस उपमहानिरीक्षक (डी० आई० जी०)द्वारा निर्दिष्ट समय और स्थानपर मिलनेका निर्देश प्राप्त हुआ। इसके बाद इन्हे उक्त पुलिस अधीक्षकके ही आदेशानुसार कार्य करना था। प्राप्त आदेशपत्रमे इन्हे बाँकुडा जिलेके शिमलापाल थानेके क्षेत्रमे थानाध्यक्षके आदेशानुसार किसी स्थानपर रहनेका आदेश तथा नजरबदी-कालकी जीवन-चर्या-विषयक पालनीय कतिपय अनिवार्य प्रतिबन्धोका विस्तारसे उल्लेख था।

जेलके सतरीसे यह आदेशपत्र भाईजीको २२ अगस्तकी सध्याको प्राप्त हुआ। इसके साथ ही जेलके अधिकारियोको पृथक्‌रूपसे यह आदेश दिया गया था कि कलकत्तासे बाँकुडा जाते समय इन्हे एक घटेके लिये अपने घरवालोको देखनेकी सुविधा दी जाय।

वे अविस्मरणीय क्षण

सरकारी व्यवस्थाके अन्तर्गत २२ अगस्तको एक घटेके लिये भाईजी स्वजनोसे मिलने पारख कोठी आये। इन्हे देखकर घरमे हाहाकार मच गया। हनुमानप्रसादने दादीका चरण-स्पर्श किया। बुढिया फूट पडी। अपने जीवनदीपको पुन देख पानेकी आशा वह छोड चुकी थी। उसे सामने पाकर उस सब कुछ खो चुकनेवाली वृद्धाके विषाद-विगलित हृदयकी स्नेहधारा नेत्रोसे बह चली। उसने देखा 'मन्नू'का चमकता ललाट साँवला हो गया है, चेहरेपर कारावासकी काली राते और तपते हुए दिन अमिट रेखाएँ छोड गये है, शरीर पीला हो गया है। हृदयने यह अनुभव कर धैर्य धारण किया कि उसका लाडला—बुढापेकी एकमात्र लकडी, अभी जीवित है। यही क्या कम था? किंतु एक क्षणमे ही दृश्य बदला, सोचा, आगे वह देखनेको मिल सकेगा—इसका विश्वास ही क्या? वह आये दिन ऐसे युवकोके फाँसीपर लटकाये जानेका सवाद सुनती थी। स्मरण आते ही दिल बैठ गया। इस प्रकारके सकल्प-विकल्प रह-रहकर शून्य हृदयमे कौधते रहे और उस स्नेह-विह्वल वृद्धाके निरीह नेत्र मघा नक्षत्रके मेघकी भाँति बरसते रहे। आँसुओसे अभिषिक्त करते हुए उसने इनको हृदयसे चिपका लिया। बहने बिलख-बिलखकर रो रही थी और नव-विवाहिता पत्नी एक कोनेमे हिचकियाँ भर-भरकर अपार दु ख-सागरकी थाह ले रही थी। एक घटेका समय होता ही कितना है! देखते-देखते निर्मम कालके पखोपर चढकर वह तिरोहित हो गया। सारी कहानी—घरकी स्थिति, पडोसियोके ताने, भाई-बन्धुओ, सगे-सम्बन्धियो एव परिचितोका उपेक्षापूर्ण व्यवहार तथा भावी जीवनकी व्यवस्था—अनकही ही रह गयी। सबको यथासम्भव परितोष देकर, असहाय परिजनोको करुणा-सिन्धुके सर्वसमर्थ हाथोमे सौपते हुए इन्होने उनसे विदा ली।

बाँकुडामे भाईजीके मौसेरे भाई सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका व्यापार था तथा इनके मामा श्रीमेघराज बाजोरियाकी भी दूकान थी। किंतु इन्हे वहाँ किसी भी सम्बन्धी या अन्य व्यक्तिसे मिलनेकी मनाही थी।

बाँकुड़ाके लिये प्रस्थान

ये रातमे ही कलकत्तासे बाँकुडाके लिये रवाना हो गये। प्रात ४ बजे वहाँ पहुँच गये। दिनमे १२ बजे पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्टके दफ्तरमे उपस्थित हुए। साथमे मामाके लडके श्रीशिवबख्श बाजोरिया भी थे। वहाँ पहले इनका फोटो लिया गया। फिर दसो अँगुलियोकी छाप ली गयी और तीन भाषाओ—हिंदी, बँगला और अग्रेजीमे इनसे हस्ताक्षर कराये गये। इसके बाद इन्हे शिमलापाल गाँवमे अधरचन्द्र राय नामक व्यक्तिके मकानमे रहकर नजरबदीके दिन काटनेका आदेश मिला।

शिमलापालका अज्ञातवास

शिमलापाल बाँकुडासे २४ मीलकी दूरीपर स्थित एक छोटा-सा गाँव है। उस समय वहाँ एक थाना था, केवल दो-तीन पक्के मकान थे और शेष सब झोपडियाँ थी। शिमलापालको बाँकुडासे एक कच्ची सडक जाती थी। यात्राका साधन केवल बैलगाडी थी। इन्होने १० बजे रातको बैलगाडीपर बैठकर शिमलापालके लिये प्रस्थान किया।* दूसरे दिन १० बजते-बजते ये वहाँ पहुँच गये। सीधे थानेपर गये और सयोगसे थानेदार अरुणकुमार सिंह उस समय वहाँ उपस्थित मिल गये। वे कुर्सीपर बैठे थे। पास ही चार-पाँच कान्स्टेबल कम्बल-पर बैठे थे। वहाँ कुर्सी एक ही थी। नमस्कार करके अपना परिचय देनेके बाद ये एक ओर खडे हो गये। थानेदार समझ गये कि राजनीतिक बदी होनेके कारण जमीनपर बैठनेमे इन्हे सकोच हो रहा है। वे कुर्सीसे उठ पडे और हाथ पकडकर मुस्कराते हुए उन्होने इन्हे भी साग्रह अपने साथ कम्बलपर बैठा लिया। फिर बोले—'यहाँ केवल एक कुर्सी रहती है। तीन और कुर्सियाँ है, किंतु वे सभी कमरेमे बद रहती हैं—विशेष अवसरके लिये। इससे कभी-कभी आप-जैसे सम्भ्रान्त लोगोके आ जानेपर बडी परीशानी होती है। कुर्सी न होनेसे आपको कम्बलपर बैठनेके लिये कहा था, और कोई बात नही थी।' इसके बाद उन्होने अधरचन्द्र मडल नामक एक स्थानीय व्यक्तिके पूर्वनिश्चित मकानमे इनके ठहरनेकी व्यवस्था करा दी। यह मकान थानेसे एक फर्लांगकी दूरीपर था। नित्य प्रात ७ बजे इन्हे थानेपर हाजिरी देनी पडती थी। थोडे ही दिनोमे इनके निश्छल तथा प्रेमपूर्ण व्यवहारसे थानेके सभी कर्मचारी इनके साथ कुटुम्बी-जैसा व्यवहार करने लगे। उन दिनो बगाली और गैर-बगालीका भेदभाव नही था। आजकी तरह भाषा-विवादसे सामाजिक वातावरण विषाक्त नही हुआ था। शिमला-पालमे केवल चार हिंदीभाषी थे—दो बिहारके और एक यू० पी०के कान्स्टेबल तथा चौथे हनुमानप्रसाद। किंतु पास-पडोसकी सारी बगाली जनता इनसे बडी एकात्मता रखती थी।

स्वावलम्बन

बाँकुडासे शिमलापाल जाते समय भोजन बनानेके लिये ये एक रसोइया साथ ले गये थे। उसने माँग की—३० रुपये वेतन, एक रुपया रोज गाँजेके लिये तथा भोजन। इन्हे कुल मिलाकर ८० रुपये सरकारकी ओरसे मिलते थे—५० रुपये घरवालोके तथा ३० रुपये इनके अपने खर्चके लिये। इन्होने दो-तीन दिन तो उस रसोइयेको रखा, पीछे स्वय अपने हाथसे भोजन बनाने लगे। बर्तन भी ये अपने हाथसे साफ कर लेते थे। प्रात उठकर घरकी सफाई करना, घरके आस-पास लगे पेड-पौधोको सीचना, कपडे धोना आदि घरके छोटे-बडे काम स्वय कर लेते थे। यह परिश्रमशीलता भाईजीकी चिरजीवनसङ्गिनी रही।

अधिकारियोसे सौहार्द

तीन महीने बाद थानेदार अरुणकुमार सिंहकी बदली हो गयी। उनके स्थानपर राजाराम मडल नामके एक दूसरे थानेदार आये। ये भी बडे सज्जन थे। उनके समयमे पुलिसवालोसे इनका घरका-सा सम्बन्ध हो गया। नियमानुसार ये पुलिस थानेपर नित्य जाया करते थे। धीरे-धीरे पुलिस अधिकारियोके ये इतने विश्वास-पात्र हो गये थे कि जब थानेके इन्चार्ज अफसर नही रहते थे, तब पुलिसकी डाकके थैले ये ही खोलते। नियम तो यह था कि इनकी डाक पुलिसकी मार्फत आये, पर ढग कुछ ऐसा बैठा कि ये ही पुलिसकी डाक भी सँभालते

---

* मामाके लडके श्रीशिवबख्श बाजोरियाकी पत्नीने इन्हें गाडीमे बैठते समय तराशे हुए फल खानेको दिये तथा कुछ फल साथमे रख दिये। उन्होंने कहा—'यात्राके समय फल खाकर जानेसे यात्रा कुशलपूर्वक सम्पन्न होती है।' भगवान्‌की कृपासे भाभीकी वह मङ्गल-कामना सफल हुई और शिमलापालका जीवन इनके लिये वरदान सिद्ध हुआ। भाईजीने भाभीकी इस मङ्गल कामनाको जीवनभर स्मरण रखा। इतना ही नही, ये अपने यहाँसे विदा होनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको फल खिलाकर तथा साथ देकर विदा करते थे। श्रीराधाष्टमीके अवसरपर सैकडो व्यक्तियोकी एक-एक दिनमे विदाई की जाती थी, पर उस समय भी ये इस परिपाटीका निर्वाह पूर्ण उल्लासके साथ करते थे। आज भी इनके परिवारमे यह परम्परा अक्षुण्ण है।

और पत्रोका उत्तर भी लिखवाते। धीरे-धीरे इनको थानेके कागज-पत्रोकी इतनी जानकारी हो गयी थी कि ये थानेके रजिस्टरोमे रिपोर्ट लिखवाते और कभी-कभी स्वय लिखते। एक वार किसी मुकदमेके सिलसिलेमे इन्होने ६० पृष्ठकी रिपोर्ट लिखी थी। वह रिपोर्ट आज भी थानेके पुराने रेकर्ड्समे उपलब्ध है। १९६० ई०मे भाईजीके साथ जो लोग शिमलापाल गये थे, वे उसे देखकर आये थे।

उस समय गाँवोमे बँगला पढे-लिखे लोग विरले ही मिलते थे। थानोपर नियुक्त कर्मचारियोमे थानाध्यक्ष ही प्राय साक्षर होता था। ऐसी स्थितिमे दैवयोगसे उपलब्ध सुविधाका मडलजीने सादर सदुपयोग किया। मडलजी इसमे कानूनकी सीमाके वाहर जाकर भी इनकी सुख-सुविधाका प्रवन्ध करते रहे।

वाँकुडा और कलकत्ताके उच्च पुलिस अधिकारियोका थानेकी जाँचके लिये शिमलापाल आना-जाना लगा रहता था। एक चटर्जी महाशय थे—पुलिसके इन्सपेक्टर, वे अक्सर आया करते थे। सरकारी कामकाज निबटानेके वाद वे घटो वैठकर इनसे भक्तिचर्चा किया करते थे। मजिस्ट्रेट भी आते थे तो विना इनसे मिले नही जाते थे। वे सभी लोग भीतरसे यह अनुभव करते थे कि ये राजनीतिक वदी वनकर मातृभूमिके लिये ही इतना कष्ट झेल रहे है, अत सभी सहानुभूति रखते थे। उस समय वगालमे देशप्रेमकी ऐसी लहर दौड गयी थी कि समाजके सभी वर्गोके लोग—चाहे वे किसान हो, मजदूर हो या सरकारी कर्मचारी—अन्तस्तलसे विदेशी शासनद्वारा पहनायी गयी परतन्त्रताकी वेडीसे भारत-माताको मुक्त करानेके समर्थक थे, अपनी व्यक्तिगत परिस्थितिसे भले ही वे उसमे सक्रिय सहयोग देनेमे असमर्थ रहे हो।

शास्त्राध्ययन

शिमलापालमे एक ग्रामीण डाक-घर था। उसके पोस्टमास्टर श्रीकृष्णचन्द्र स्थानीय प्रारम्भिक पाठशालाके प्रधानाध्यापक भी थे। वे अत्यन्त विद्याव्यसनी और शीलसम्पन्न व्यक्ति थे। उनके पास वँगला भाषाकी धार्मिक पुस्तकोका विशाल भडार था। उससे इनको वडा सहारा मिला। प्रवासकालमे इस पुस्तकालयकी सारी पुस्तके एक-एक करके इन्होने पढ डाली। वहाँ अखवार भी आता था। भाईजी उसे भी पढते।

स्वजन-सम्पर्क

इनका पत्र-व्यवहार केवल घरवालोसे हो सकता था। इनके नामसे आनेवाले पत्र वाँकुडामे ही पुलिसद्वारा खोल लिये जाते थे। फिर वहाँसे सिपाहीके हाथ शिमलापाल भेजे जाते थे। इनसे मिलनेके लिये कलकत्ताके पुलिस-कार्यालयकी स्वीकृति लेनी अनिवार्य थी। एक वार दादी रामकौर देवी और मामा श्रीमेघराज वाजोरिया इसी प्रकार पुलिस अधीक्षकका आदेश प्राप्त करके शिमलापाल आये थे। स्थानीय पुलिसद्वारा इनके सद्व्यवहार तथा सच्चरित्रताके विषयमे की गयी रिपोर्टके आधारपर इन्हे दो वार पैरोलपर घर जानेकी अनुमति भी मिली, जिसका वर्णन आगे किया जायगा। उस समय इन्हे कलकत्ताके पुलिस स्टेशनपर दिनमे एक वार हाजिरी देनी पडती थी।

सेवा-कार्य

ईश्वरकी कृपासे इस नजरवदीके जीवनमे इन्हे जन-सेवाका एक वहुत ही उत्कृप्ट माध्यम प्राप्त हो गया। वह था—गरीव ग्रामीणोकी चिकित्साका। सरकारकी ओरसे माहमे एक वार कलकत्तासे मिस्टर वास नामक सिविल सर्जन इनका स्वास्थ्य देखनेके लिये आया करते थे। इसी ग्राममे एक अन्त्यजके लडकेकी जाँघमे फोडा हो गया। जव सिविल सर्जन साहव भाईजीको देखनेके लिये आये, तव लोग उस लडकेको भी दिखानेके लिये ले आये। दयार्द्र होकर सिविल सर्जनने भाईजीसे कहा—'यदि तुम मेरे पीछे इसकी मरहम-पट्टी करना स्वीकार कर लो तो मैं चीरा लगा दूँ।' इन्होने इसे स्वीकार कर लिया। साहवने चीरा लगा दिया। उसके वाद ये उसके घर जाकर नित्य मरहम-पट्टी किया करते थे। कुछ दिनोमे उस लडकेको आराम हो गया। सिविल सर्जन जव दूसरी वार आये, तव लडकेको स्वस्थ देखकर वहुत प्रसन्न हुए।

वास साहब वडे ही साधु स्वभावके थे। उन्होने भाईजीसे कहा—'तुम यहाँ वैठे-वैठे क्या करते हो?'

इन्होने उत्तर दिया—'कुछ नही।'

वे वोले—'मैं तुमको दो काम वताता हूँ। एक—तुम्हारे पीछे जो जमीन पडी है, उसमे फलोके पौधे लगाओ। मैं वीज भेज दूँगा। तुम्हारे पीछे वडी सुन्दर फुलवारी तैयार हो जायगी और दूसरा—यहाँ आस-पास कोई डाक्टर नही है। तुम होमियोपैथिक दवाओका वितरण किया करो।' भाईजीने कहा—'मैं होमियोपैथिक चिकित्सा जानता नही।'

उन्होने वडे प्यारसे कहा—'मैं हूँ तो ऐलोपैथिक सर्जन, पर मेरा विश्वास होमियोपैथिक चिकित्सा-पद्धतिपर भी है। मैं तुम्हारे पास होमियोपैथिक दवाएँ तथा उसका साहित्य भिजवा दूँगा। तुम भगवान्‌का नाम लेकर निश्शङ्क काम आरम्भ करो। सफल हो जाओगे।'

वास साहवने अपने वचनके अनुसार एक पुस्तक और होमियोपैथिक दवाएँ भेज दी। भाईजी पुस्तकके आधारपर रोगके लक्षण मिलाकर दवा देने लगे। लोगोको वहुत लाभ हुआ। इन दिनो भाईजीकी धर्मपत्नी शिमलापाल आ गयी थी। वे भी इस कार्यमे हाथ वँटाने लगी। शीशियाँ साफ करना, उनपर लेवल लगाना, दवाकी पुडिया वनानेके लिये कागज काटकर रखना तथा दवाकी पुडियाँ वाँधना आदि उनके जिम्मे था।

एक दिन एक मुसलमान स्त्री अपने तीस-पैतीस वर्षके गूँगे पतिको साथ लेकर आयी। पति पेटकी असह्य पीडासे छटपटा रहा था। भाईजीने स्त्रीसे पतिकी वीमारीका विवरण पूछकर 'ओपियम ३०'की १०-१२ पुडियाँ दे दी। पाँच-छ दिन वाद उस युवकको लेकर सैकडो स्त्री-पुरुष आये। श्रीभाईजी इतनी भीडका हेतु नही समझ पा रहे थे, पर वे आये थे कृतज्ञता ज्ञापित करनेके लिये। उन लोगोने वताया—'उस दवासे गूँगे व्यक्तिका पेटका दर्द ही नही अच्छा हो गया, उसको वाक्‌शक्ति भी प्राप्त हो गयी।' भाईजी आश्चर्यचकित होकर सोच रहे थे कि भगवदिच्छासे ही दवाका सयोग लग गया। पीछे पता चला कि छ वर्ष पहले उसे चेचक हो गयी थी। उसीके प्रभावमे वह गूँगा हुआ था। दवा खानेसे वहुत-सा सडा मल निकला ओर वह वोलने लगा। इसी प्रकार एक वार गाँवमे हैजा फैला। इन्होने उससे प्रभावित ६० व्यक्तियोका उपचार किया ओर उनमेसे ५७ व्यक्तियोकी प्राणरक्षा हुई। इन दीन-दुखियोकी सेवासे इन्हे उनका स्नेहपूर्ण सच्चा आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

नाम-जप, भगवान्‌के ध्यान आदिके कारण वृत्तिमे इतनी कोमलता आ गयी थी कि जव कभी कोई व्यक्ति किसी पक्षीको पकडकर इनके सामनेसे गुजरता तो ये उसको पैसा देकर पक्षीको छुडा देते थे। गाँवके लोगोकी समझमे ही नही आता था कि इनको पैसा देनेपर क्या मिला।

नामनिष्ठाका चमत्कार

एक वार भाईजीको मोतियाज्वर (टायफाइड) हो गया। शिमलापालका अकेला जीवन, कोई साथ नही था। छोटे-से गाँवमे कोई वैद्य-डाक्टर भी नही था। एक वगाली वैद्य थे, दो-चार दवाएँ उनके पास रहा करती थी। पडोसमे ही उनका घर था। ये भाईजीके पास आया करते थे। एक दिन घवराहट ज्यादा वढ गयी। मनमे आया—'क्या भगवान्‌के नाममे इतनी भी शक्ति नही कि मेरी घवराहट मिटा दे।' इतना सोचकर भाईजीने भगवन्नामका जप आरम्भ कर दिया। उस जपका अनोखा फल हुआ। मनको शान्ति मिली। शान्ति ही नही मिली, ज्वर भी उतरने लगा। नाम-जपने उस ज्वरको पूर्णतया दूर कर दिया।

एक अनुभव और हुआ। ऐसा समाचार आया कि दादी रामकौर देवी वीमार है और मिलना चाहती है। पर कमजोरीके कारण वे शिमलापाल नही आ सकती। नजरवदीके नियमानुसार श्रीभाईजी शिमलापालसे वाहर नही जा सकते थे। कलक्टर भी वाहर जानेकी आज्ञा नही दे सकता था। इनके मनमे दादीजीसे मिलनेकी तीव्र इच्छा जगी। वगाल-सरकारको तार दिया, पर अस्वीकृति आ गयी। वडी व्याकुलता हुई। फिर उसी भगवन्नामका आश्रय लिया। इस निमित्तसे जप आरम्भ कर दिया। उसी दिन एक मुसलमान डिप्टी कलक्टर मुआइना करनेके लिये थानेमे आये। वे चटगाँवके निवासी थे। वडे सहृदय तथा राजनीतिक वदियोके प्रति

आदर-भाव रखनेवाले थे। सरकारी अधिकारी होनेसे देशभक्तोकी सहायता करनेमे भय था, परतु भारतीय होनेके कारण हृदयमे राजनीतिक कार्यकर्त्ताओके प्रति सम्मान था। वे भाईजीसे मिलनेके लिये आये। इन्होने उनसे सारी बाते बता दी। सब सुनकर वे बोले—'आपके लिये कल ही आर्डर आता है।'

इनको विश्वास नही हुआ। ये जानते थे कि आर्डर कलक्टर नही, गवर्नर ही दे सकता है और मिल सकता है एकमात्र कलकत्तासे। इतने समयमे तो कलकत्ता आना-जाना भी सम्भव नही है। इन्होने पूछा—'कल कैसे आ सकता है?' डिप्टी कलक्टरने कहा—'देखिये, कल आ जाता है।' डिप्टी कलक्टर साहबकी बडी पहुँच थी। उन्होने अपने दौरेका सारा कार्यक्रम स्थगित कर दिया। वे उसी दिन बाँकुडा गये और बाँकुडासे कलकत्ता जाकर गवर्नरके सेक्रेटरीसे मिले। पूरी रिपोर्ट देकर उनसे कहा—'पद्रह दिनके लिये इन्हे पैरोलपर छोडना चाहिये।'

इसके फलस्वरूप पद्रह दिन तो नही, सात दिनके लिये पैरोलपर जानेकी आज्ञा हो गयी और वह दूसरे दिन ही भाईजीको प्राप्त हो गयी।

इसी प्रकार एक दिन इन्हे किसी सम्वन्धीसे समाचार मिला कि फूफा श्रीज्वालादत्तजी सख्त बीमार है। उन्हे देखनेके लिये भी मनमे व्यग्रता हुई, किंतु स्वीकृति मिलनेकी कोई आशा दिखायी नही पडी। निदान इस बार भी प्रार्थना और नाम-जपका आश्रय लिया। सयोगवश उसी दिन इनके स्नेही पुलिस इसपेक्टर चटर्जी महाशय आ गये। इन्होने अपनी समस्या उनके सामने रखी। इसपेक्टर साहबने कलकत्ता जाकर इन्हे पैरोलपर जानेकी स्वीकृति भिजवा दी।

इन घटनाओसे भाईजीकी भगवन्नामके प्रति निष्ठाको प्रगाढ होनेमे सहायता प्राप्त हुई।

विपत्तिके साथी

पैरोलपर की गयी शिमलापालसे कलकत्ताकी अपनी दो यात्राओमे इन्होने यह अनुभव किया कि राजनीतिक बदी होनेके कारण समाजके अन्य लोगोकी कौन कहे, सगे-सम्बन्धी भी इन्हे देखकर मुँह फेर लेते थे। लोग कहते सुने गये—'समाजका कलङ्क चला गया। अच्छा हुआ, छुट्टी मिली।' किंतु सत्‌का कभी अत्यन्ताभाव नही होता। मेघाच्छन्न आकाशमे भी कुछ तारे टिमटिमाकर उनका अस्तित्व प्रमाणित कर देते है। यही स्थिति इनके साथ थी। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका जब भी बाँकुडासे कलकत्ता आते, तब इनके घर अवश्य जाते। दादी रामकौर देवीसे मिलकर हाल-चाल पूछ जाते। वे बाँकुडासे श्रीभाईजीके लिये खाने-पीनेकी आवश्यक वस्तुएँ भी शिमलापाल भेजा करते थे। श्रीसेठजीके अतिरिक्त उस समय इनके परिवारके दुःख-सुखकी खबर लेनेवालोमे 'कलकत्ता समाचार'के सम्पादक प० श्रीझावरमलजी शर्मा, श्रीरामकुमार गोयन्दका, श्रीबनारसीलाल झूंझनूंवाला और श्रीमोतीलाल जाजोदिया थे। ये लोग इनके घरकी भी सार-सँभाल करते और यथावसर शिमलापालमे भी इनका कुशल-समाचार लेते हुए सहायता पहुँचाया करते थे। इन लोगोकी उस समयकी सहानुभूति भाईजीको आजीवन इनका कृतज्ञ बनाये रही।

धर्मपत्नीका शिमलापाल-आगमन

पद्रह महीनेतक स्थानीय पुलिसके द्वारा निरन्तर इनके उत्तम चरित्र तथा व्यवहारकी रिपोर्ट होती रही। एक दिन थानेदारने इनसे कहा—'सरकारपर आपके सदाचरणका प्रभाव पडा है। आप चाहे तो अपनी धर्मपत्नीको साथ रखनेके लिये आवेदन-पत्र दे दे। भाईजीने गवर्नरके नाम इस आशयका एक प्रार्थनापत्र दिया। थोडे दिनो बाद स्वीकृति मिल गयी। श्रीमती रामदेई कलकत्तासे शिमलापाल आ गयी। उनके रहनेसे भाईजीको भोजनादिकी व्यवस्थासे तो मुक्ति मिली ही, दवाके वितरणमे भी सहयोग मिलने लगा। इससे साधन-भजनके लिये अपेक्षाकृत अधिक समय निकल आया। पतिके साथ वे भी परमार्थ-पथ प्रशस्त करनेमे सलग्न रहने लगी। इस तरह छ महीने और कटे। वैशाख स० १९७५के प्रथम सप्ताहमे बाँकुडाके कलक्टरका पत्र आया, जिसमे इन्हे अविलम्ब बाँकुडा जानेका आदेश था। ये बाँकुडा गये। वहाँ इनसे एक ऐसे कागजपर हस्ताक्षर करनेको

कहा गया, जिसमे इनके आजीवन राजनीतिमे भाग न लेनेकी वात लिखी थी। इन्होने इनकार कर दिया। उन दिनकी वात वहीं समाप्त हो गयी। ये शिमलापाल लौट आये। इसके एक सप्ताह वाद शिमलापाल थानेमे वगाल सरकारका दूसरा आज्ञापत्र आया, जिसमे सन् १९१८ ई० के तीसरे रेगुलेशनके अनुसार इनकी नजरवदी समाप्त करके २४ घटेके अदर वगाल छोडने और दूसरा आदेश न मिलनेतक पुन वगालकी सीमामे प्रवेश न करनेका उल्लेख था। इस प्रकार २१ महीनेकी नजरवदी समाप्त हुई।

नजरवंदीकी उपलब्धि—साधनात्मक उत्कर्ष

शिमलापालके अनिवार्य एकान्तवासकी प्रारम्भिक स्थितिमे इन्हे कुछ परीशानीका अनुभव अवश्य हुआ। यह धारणा प्राय दृढ हो गयी कि अव शेप जीवन अग्रेजी शासनके अवाञ्छित अतिथिके रूपमे ही विताना पडेगा। परिस्थितियोके करवट लेनेपर यदि उसकी नजर और टेढी हुई तो फाँसीके तख्तेपर झूल जाना भी अप्रत्याशित नही था। घरकी स्थिति सम्वल और माँझीसे विरहित जर्जर नौका-जैसी थी। दस-पद्रह दिनोतक मनमे ये विचार मँडराते रहे, फिर धीरे-धीरे शान्ति आ गयी।

अन्तर्द्वन्द्व समाप्त होनेपर त्याग-वैराग्य, ध्यान-स्वाध्याय और नाम-जपका प्रकरण प्रारम्भ हुआ। प्रात चार वजे उठते, 'हरे राम—' पोडशमन्त्रकी तीस माला पूरी करनेके वाद शौच जाते। ६ वजेसे पूर्व वाहर निकलने-का आदेश नही था। अत प्राय घरपर ही नहा लेते, समय रहता तो नदीमे स्नान कर आते। नहाकर सध्या-वन्दन करते। फिर गीता और विष्णुसहस्रनामका पाठ और तदनन्तर ध्यान। ध्यानके लिये इनका अवलम्व था रविवर्माका वनाया हुआ ध्रुव-नारायणका एक चित्र, जिसे ये कलकत्तासे ही साथ ले आये थे। यह ध्यान तीन वार नियमितरूपसे होता था—प्रात, अपराह्णमे तथा रातको। सव मिलकर इसमे ९ घटे लग जाते थे। शेप समय नाम-जपमे और स्वाध्यायमे जाता था। इनकी चेप्टा यही रहती थी कि नाम-जप छूटे नहीं।

इस जीवनमे नामके प्रति इनकी रुचि इतनी प्रगाढ हुई कि नामका जप छूटना इन्हे असह्य हो जाता। जव कोई व्यक्ति इनसे मिलने आता, तव इन्हे अनुभव होता—जैसे कोई वाधा आ गयी हो। किसी व्यक्तिके आनेपर उससे वोलना ही पडेगा और वोलनेका अर्थ है—उतनी देरके लिये नामको विराम देना। अतएव जव कोई व्यक्ति आ ही जाता, तव ये ऐसी चेप्टा रखते कि आनेवाला ही वोलता रहे, इनको न वोलना पडे। जव आनेवालेकी वातका उत्तर देनेके लिये वोलना अनिवार्य हो जाता, तव ये नपे-तुले शब्दोमे उत्तर देकर चुप हो जाते। जव आनेवाला व्यक्ति वहुत देरतक वैठा रह जाता, तव इनको उसकी उपस्थिति असह्य हो जाती और ये नम्र शब्दोमे कहते—'देखिये, मैं तो निकम्मा हूँ, वहुत देर हो गयी है, आपको काम होगा। अत अव आप पधारिये।' इस प्रकार इनकी यही चेप्टा रहती कि कोई भी व्यक्ति मिलने न आये और कोई आये भी- तो इनको न वोलना पडे एव वह शीघ्र लौट जाय।

उस समय यदि इनके द्वारा किसीके प्रति रूखा व्यवहार हो जाता तो वादमे इन्हे वडा पश्चात्ताप होता। एक दिन ये स्वाध्याय कर रहे थे। एक सज्जन चाकू माँगनेके लिये आये। स्वाध्यायमे विघ्न होनेके भयसे इन्होंने कह दिया—'अभी नहीं, पीछे ले जाइयेगा।' वे तो चले गये, पर उनके जानेके वाद इनको वडा परिताप हुआ। ये दौडे हुए उनके पास गये, उनसे क्षमा-याचना की और अत्यन्त प्रेमका व्यवहार करके उन्हे सतुष्ट किया। उपनिषद्, पुराण, दर्शन, गीतापर विविध टीकाएँ, गौडीय-वैष्णव-सम्प्रदायके ग्रन्थ आदिका अनुशीलन इनका इसी स्थितिमे हुआ।

प्रातकाल ये श्रीविष्णुभगवान्‌के चित्रपटकी पूजा करते थे। थानेके वगीचेमे वेलाके वहुत-से पौधे थे। वहाँसे कोई वाहरी व्यक्ति फूल तोड नही सकता था। किंतु इनके लिये रोक नही थी। ये नित्य नाम-जप करते हुए जाते और वहाँसे फूल चुन-चुनकर लाते। स्वय उनकी माला गूँथकर भगवान्‌को पहनाते। प्रत्येक वस्तु भगवान्‌को भोग लगाकर ग्रहण करते थे। जल भी पीते तो पहले भगवान्‌को निवेदन करके। प्रत्येक एकादशी-

व्रतके दिन ये निर्जल, निराहार रहते। एकादशीके दिन प्रातःकाल उठकर जपमे लग जाते और जबतक एक लाखकी सख्या पूर्ण नही हो जाती, तबतक जप करते रहते।

६ महीनेतक लगन और श्रद्धाके साथ ध्यानका अभ्यास करनेसे उसमे इन्हे बडी सफलता प्राप्त हो गयी। एक दिन ये अपनी झोपडीमे बैठे हुए थे और झोपडीका दरवाजा खुला हुआ था। सामनेसे एक गाय जा रही थी। इनके मनमे आया कि गायके स्थानपर भगवान् विष्णुको देखूँ। ध्यानका अभ्यास परिपुष्ट हो ही चुका था। मनमे धारणा करते ही गायका दिखना बद हो गया और उसके स्थानपर भगवान् विष्णुकी मूर्ति दिखायी देने लगी। इस सफलतासे इनको बडी प्रसन्नता हुई। पर इनके मनमे आया—शायद सयोगवश ऐसा हो गया है। इन्होने इसकी परीक्षाके लिये आकाशकी ओर देखा। आकाशमे एक पक्षी उड रहा था। इन्होने धारणा की और पक्षीके स्थानपर खुली आँखोमे भगवान् विष्णुकी मूर्ति दिखायी देने लगी। पीछे सामनेके पेडपर दृष्टि गयी और उसके स्थानपर भी भगवान् विष्णुकी मूर्ति दिखायी दी। इस प्रकार जिस वस्तुके स्थानपर इन्होने भगवान् विष्णुको देखना चाहा, वही वह वस्तु दिखायी देनी बद हो गयी और उसके स्थानपर भगवान् विष्णु दिखायी देने लगे।*

नारद-भक्तिसूत्रोंकी व्याख्या

शिमलापालके जीवनमे अपने स्वाध्यायके क्रममे इन्हे देवर्षि नारदकृत भक्तिसूत्रोकी बँगला लिपिमे मुद्रित पुस्तिका हाथ लगी। सूत्रोके भाव इन्हे बडे प्रिय लगे। इन्होने उन सूत्रोपर गम्भीर मनन किया। इन सूत्रोसे इन्हे अपनी साधनामे बडी सहायता मिली। सूत्रोपर बार-बार विचार करनेसे उनमे नये-नये भाव उदय होने लगे। इन्होने उन भावोको लिपिबद्ध करना आरम्भ कर दिया और थोडे ही दिनोमे सब सूत्रोपर विस्तृत टीका तैयार हो गयी। उस समय इसे प्रकाशित करनेका कोई विचार नही था, स्वान्तःसुखाय ही सूत्रोके भाव लिखे गये थे। बादमे यही व्याख्या 'कल्याण'के अङ्कोमे क्रमशः छपी और फिर कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ यह 'प्रेम-दर्शन' नामसे पुस्तकरूपमे गीताप्रेससे प्रकाशित हुई।†

नारद-भक्तिसूत्रोकी टीकाके सम्बन्धमे विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि शिमलापाल-जीवनमे श्रीभाईजीकी साधना श्रीविष्णुभगवान्‌के ध्यान एव षोडश-मन्त्रके जपके रूपमे चल रही थी, पर फिर भी इन्होने २५ वर्षकी छोटी उम्रमे प्रेमरूपा भक्तिकी व्याख्या करते हुए साधनाके जो सिद्धान्त दृढताके साथ लिखे है, अपने प्रौढ जीवनमे भी ये उनका उसी रूपमे आदर करते रहे। लगता है—भगवान्‌को इनके द्वारा जो महान् कार्य करवाना

* अपने परवर्ती जीवनमे इस घटनाका उल्लेख करते हुए एक बार इन्होने कहा था—"जो यह कहते है कि ध्यान नही होता, उनको हमारा उत्तर यह है कि हम ध्यान नही करते। ध्येयाकार वृत्तिका नाम ही 'ध्यान' है। हम जिसका ध्यान करे, उसके आकारकी वृत्तिका बन जाना ही 'ध्यान' है और यह अभ्याससाध्य है। महर्षि पतञ्जलिने ठीक कहा है कि 'जो अभ्यास दीर्घकालतक निरन्तर सत्कारपूर्वक किया जाता है, उसका सुन्दर फल अवश्य मिलता है।' मैं आजकल भगवान् विष्णुकी उस मूर्तिका ध्यान नही करता, पर इस समय उसका स्मरण आते ही वह मूर्ति ज्यो-की-त्यो मेरे सामने आ जाती है।"

† इस टीकाका उल्लेख करते हुए श्रीभाईजीने अपनी 'प्रेम-दर्शन' पुस्तककी भूमिकामे लिखा है—'भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये भक्ति ही सर्वप्रधान साधन है और साध्यरूपमे वही भगवत्प्रेम है। भक्तिशास्त्रपर कुछ भी व्याख्यानरूपमे लिखनेका मुझे अधिकार नही, तथापि इस कार्यमे मेरी जो प्रवृत्ति हुई, उसको विज्ञ महानुभाव भगवत्प्रेरणा और भगवत्कृपा ही समझें।'

इन सूत्रोपर प्राप्त टीकाओमे यह टीका सर्वोत्तम है। इस टीकाका अग्रेजी एव सस्कृतमे भी अनुवाद हो चुका है। तीनो भाषाओकी प्रतियोको मिलाकर अबतक इस पुस्तककी १,४२,५०० प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी है। इससे इसकी लोकप्रियताका अनुमान लगाया जा सकता है।

था, उसका श्रीगणेश सहजरूपमे—श्रीभाईजीके अनजानमे ही इस टीकाके रूपमे हो गया। अतएव इस टीकाके द्वारा जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन हुआ है, उसका कुछ सकेत कर देना आवश्यक है। भक्तिसूत्रोकी टीकामे श्रीभाईजीने यह स्पष्ट करना चाहा है—"भगवान् रसमय है, रसमे ही परम आनन्द है—**'रसो वै सः। रस ह्येवाय लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'** भक्तिसे ही उस रसमय भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होते है। भक्तिसे ही वह ऋषि-मुनि-देव-दुर्लभ परमानन्द मिलता है। अतएव प्रेमाभक्तिका ही आश्रय सबको लेना चाहिये। परतु इसका अर्थ यह नही समझना चाहिये कि ज्ञानसे इस भक्तिका कोई विरोध है। गोपियोका उदाहरण हमारे सामने है। उनके मनमे श्रीभगवान्के माहात्म्यका ज्ञान था। श्रीभगवान्का ज्ञान ही न हो तो प्रेम किसके प्रति हो। और यह भी सत्य है कि अभिन्न अखण्ड अनन्य अविकारी प्रेम होनेपर ही प्रेमास्पदके हृदयके वास्तविक तत्त्वका—प्रियतमके मनकी बातका पता चलता है। अतएव ज्ञान और भक्तिका कोई विरोध नही है। इसी प्रकार प्रेमा-भक्ति और कर्मका भी विरोध नही है। भगवान्के लिये निष्काम कर्म करने ही चाहिये और कर्मोका सर्वथा त्यागी भक्त भी अहर्निश भगवान्के प्रेममे मस्त होकर भगवच्चिन्तनरूपी कर्म तो छोड ही नही सकता। इसलिये प्रेमाभक्तिमे ज्ञान और कर्म दोनो ही रहते है, अवश्य ही रहते है वे भक्तिके अनुकूल होकर। शुष्क ज्ञान और कर्मको इस भक्तिमे स्थान नही है। अन्यान्य साधनोद्वारा भगवान् अन्यान्य रूपोमे प्राप्त होते है, परतु प्रेमरूपा भक्तिद्वारा तो वे प्रियतमरूपमे मिलते है—**'स प्रेष्ठ लभते।'** यह प्रेम ही चरम या पञ्चम पुरुषार्थ है, जिसमे मोक्षका भी सन्यास हो जाता है। यही जीवनका परम फल है।"

अपनी प्रौढावस्थामे अर्थात् गोरखपुर-आगमनके पश्चात् तो श्रीभाईजी लोक-परलोकके दिव्य-अदिव्य भोगोकी एव मोक्षकी कामनासे विरहित, किसी भी प्रकारकी स्वसुख-कामनाके लेशाभासरूप मलिनतासे शून्य और अपूर्णता, अनित्यता तथा प्राकृत परिवर्तनशीलताकी कटुतासे अस्पृष्ट प्रेमरूपा भक्तिके रस-सागरमे आपादमस्तक निमग्न हो गये। श्रीराधामाधव ही उनके सर्वस्व हो गये, उन्हीमे डूबे रहना और उन्हीमे डूबनेकी जीवमात्रको प्रेरणा देना—यही उनका जीवन था। लगता है—इसी महत्तम कार्यके लिये उनका आविर्भाव हुआ था। उनके द्वारा जो अन्य कार्य हुए है, वे इसी महान् कार्यके अङ्गरूप है—इसीके पूरक है। वैसे श्रीभाईजी-जैसे प्रेमी सतके आविर्भावके वास्तविक प्रयोजनकी कल्पना भी भौतिक मन-बुद्धिसे सम्भव नही है।

शिमलापाल-जीवनकी उपलब्धि

शिमलापाल-जीवनमे भाईजी आवश्यक एव अनिवार्य मानकर नाम-जप, ध्यान आदिकी साधनाका अनुसरण करते थे। यह अनिवार्यता विवशता-जनित न होकर प्रियता-प्रेरित थी। इस प्रकारकी साधनाओमे वे आन्तरिक प्रेरणासे प्रवृत्त हुए थे, इसलिये यह अनवरत चलती रहती। इस समयमे ही भगवान्के प्रति यह प्रियता-बुद्धि भाईजीके स्वभावकी सहज वृत्ति बन गयी।

शिमलापालकी इस नजरबदीने भाईजीके जीवनमे एक महान् परिवर्तन कर दिया, एक अपूर्व मोड ला दिया। एकान्त-साधनासे वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयीं। राजनीति और समाज-सेवा, देशप्रेम और लोकमङ्गलकी भावना उत्तरोत्तर अध्यात्मभावनासे पर्यवसित होती गयी। भगवत्प्रेमके आगे सारे प्रेम फीके पडते गये। परवर्ती जीवनमे लोकसेवा और अध्यात्मभावना दोनो समानान्तर बहती रही—वस्तुत लोकसेवा उनकी अध्यात्मभावना-सा ही प्रतिरूप थी।

शिमलापालसे बिदाई

पौने दो वर्ष शिमलापाल रहकर श्रीभाईजीने सचमुच ही एक नया परिवार बसा लिया था। सरल ग्रामवासियोके ये अपने-से-अपने बन गये थे। उनके सुख-दुखमे हाथ बँटाकर, उनकी सेवा करके, इन्होने उनके हृदयपर स्नेहाधिकार कर लिया था। सरकारद्वारा नजरबदीकी अवधिकी समाप्तिके आदेशकी सूचना जब ग्रामवासियोको मिली, तब वे भौचक्के-से हो गये और एक अभूतपूर्व पीडाका अनुभव करने लगे। आह, जो प्रतिदिन उनकी सार-सँभाल करता था, अपने हाथो अपने हृदयके प्रेमसे सानकर दवा देता था, जिसके पास वे अपना रोना सुनाकर हृदयको हल्का करते थे, जो सबको प्यार एव सम्मान देता था, वह उनके मध्यसे चला जायगा! ग्रामवासियोकी आँखोसे आँसू बह चले और सबने आकर भाईजीको घेर लिया। उधर बाँकुडा जानेके लिये बैलगाडी तैयार खडी थी। ये हाथ फैलाकर, आन्तरिक स्नेहसे एक-एकको हृदयसे लगाकर सान्त्वना दे रहे थे, उनके आँसू पोछ रहे थे; पर सबके हृदयका बाँध टूट गया था। इस प्रकारके निस्स्वार्थ प्रेम एव सेवाका यह प्रथम आदर्श उन्होने जीवनमे देखा था। पर कर्त्तव्य तो करना ही था। इन्होने सबसे जान-अनजानमे हुई अपनी त्रुटियोके लिये क्षमा माँगी और आशीर्वाद चाहा कि भगवान्की ओर जीवनकी गति तीव्रतासे बढ चले। सबने हृदय भरकर आशीर्वाद दिया। श्रीभाईजी भी पत्नीसहित सुबुक-सुबुककर रो रहे थे और रोते-रोते ही दोनो बैलगाडीपर बैठ गये। गाडी चली—लगता था शिमलापालके निवासियोका हृदय चला जा रहा है—आगे-आगे गाडी जा रही थी और पीछे-पीछे चल रहा था—शिमलापालका जन-समूह—आबाल-वृद्ध नर-नारियाँ। श्रीभाईजी हाथके इशारेसे सबसे लौट जानेका सकेत कर रहे थे, पर भाव-प्रवाहका बाँध टूटनेपर उसकी गतिमे विराम आना कठिन होता है। शिमलापाल गाँव बहुत पीछे छूट गया। भाईजीको ग्रामवासियोके लौटनेकी चिन्ता हुई। इन्होने साहस बटोरा और अवरुद्ध कण्ठसे अस्पष्ट वाणीमे हाथ जोडकर प्रार्थना की—'भैयाओ! बहुत दूर चले आये, अब लौट जाइये, अब आगे मत चलिये। आपलोग कितनी दूर चलेगे? आपलोगोका प्यार-स्नेह मैं जीवनभर स्मरण रक्खूँगा। वह मेरे जीवनकी परम निधि है।' अन्तस्तलसे निकले शब्दोका प्रभाव हुआ और ग्रामवासी वही रुक गये। गाडी आगे बढने लगी। ग्रामवासी तबतक वहाँ खडे रहे, जबतक गाडी आँखोसे ओझल न हो गयी। ये भी ग्रामवासियोकी ओर मुँह किये उनको निहारते रहे। कई घटोकी यात्राके पश्चात् ये बाँकुडा पहुँचे। अच्छा पुरस्कार देकर गाडीवानको विदा किया। बाँकुडामे सम्बन्धियो और मित्रोसे मिलकर रेलगाडीद्वारा ये आसनसोल आये। दादी तथा अन्य कुटुम्बी पहलेसे ही आसनसोल पहुँच गये थे। सभीको साथ लेकर ये वहाँसे रतनगढके लिये रवाना हुए।

श्रीमालवीयजी महाराजको इनके बगालसे निष्कासित होकर रतनगढ जानेकी सूचना मिली। उन्होने इस आशङ्कासे कि अग्रेजोके प्रभावमे आकर बीकानेरके महाराजा श्रीगङ्गासिहजी पोद्दारजीको तग न करे, उनके नाम एक पत्र लिखा, जिसमे उन्होने श्रीभाईजीकी धर्मनिष्ठा, देशसेवा, सज्जनता और योग्यताको ध्यानमे रखकर उनके साथ सद्भावपूर्ण व्यवहार करनेका अनुरोध किया था। मालवीयजीने उस पत्रकी एक प्रतिलिपि भाईजीको भी रतनगढ भेज दी।

●

मध्ययात्रा

पितृभूमिकी शरणमे

शिमलापालसे आसनसोल होते हुए श्रीभाईजी तीसरे दिन सपरिवार रतनगढ पहुँचे । वहाँ घरके सिवा और था ही क्या ? वाप-दादोके समयसे रतनगढका कारोवार समाप्त हो गया था। दो पुश्तसे वगाल ही वृत्ति-व्यापारका केन्द्र रहा। शिलगके भूकम्पमे दादाकी कमाई मिट्टीमे मिल गयी थी, पिता अपने पैरोपर खडे होनेका प्रयास करते-करते चल वसे। उनसे रिक्थरूपमे जो कलकत्तेकी पारख कोठीवाली कपडेकी दूकान मिली थी, वह देश-सेवा, समाज-सेवा, सत-महात्माओकी पूजा और धर्मानुष्ठानोमे समर्पित हो गयी थी । वगालकी तीन पुश्तकी कमाईमे सरकारी निष्कासन-आदेशके समय परिवारके पास वच रहा था—हजारो रुपयेका कर्ज, उसीका वोझ सिरपर लेकर अनिवार्य परिस्थितियोमे इन्हे राजस्थान लौटना पडा । भाग्यकी विडम्बनासे आज रतनगढका यह समृद्ध परिवार अपने ही घरमे 'शरणार्थी' वन गया था। पर श्रीभाईजीपर इस स्थितिका प्रभाव नही था। स्थितिके सुधारकी चिन्ता एव चेष्टा अवश्य थी, पर स्थितिजनित दुख नही था। कारण, यह स्थिति स्वय वरण की हुई थी। जिस दिन राजनीतिमे भाग लेना आरम्भ किया था, उसी दिन इसपर गम्भीरतासे विचार कर लिया गया था। फाँसीपर लटक जानेकी तैयारी लेकर ही उस ओर मुँह किया था । फिर शिमलापालमे तो भगवान्‌की कृपा एव अहैतुक सौहार्दके अनेक वार दर्शन हो चुके थे। साधनाका क्रम ठीक चल ही रहा था। पर कर्त्तव्य तो करना ही चाहिये और उसीकी चिन्ता थी ।

वृत्तिकी चिन्ता

परिवारके भरण-पोषणकी समस्या सामने आयी। व्यापार वशानुगत पेशा था—उसमे इनकी गति भी थी। किंतु उसके लिये पूंजी अपेक्षित थी। कलकत्ताके हितैपियो एव मित्रोके सम्वन्ध ढीले पड गये थे—कुछ राजकोपकी आशङ्कामे और कुछ आर्थिक स्थिति कमजोर हो जानेसे सगे-सम्वन्धी भी किनाराकश हो चुके थे। ऐसी स्थितिमे पूंजी आती कहाँसे ? पर श्रीभाईजीने उस विश्वम्भरका पल्ला पकडा था और वे ही योगक्षेमका निर्वाह कर रहे थे। आध्यात्मिकताकी दृढ रज्जुमे वँधी होनेसे कुटुम्वकी नौका इस झझावातमे वहने नही पायी ।

सेठ जमनालालजी वजाजका आत्मीयतापूर्ण आह्वान

श्रीभाईजी किंकर्त्तव्यविमूढ-से हुए भगवान्‌की ओरसे प्राप्त मानस प्रकाश-किरणोकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि अचानक वम्वईसे सेठ जमनालालजी वजाजका एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसमे लिखा था—'वम्वई चले आओ । कोई काम शुरू कर दिया जायगा । अभी मेरे साथ रहना । फिर धधा स्थिर हो जानेपर परिवारको भी वुला लेना ।' यह पत्र पाकर इन्हे आश्चर्य हुआ । सेठ जमनालालजी वजाजसे उनकी एक वारकी ही मुलाकात थी—उस समयकी, जव वे कलकत्तामे इनके मित्र ओकारमलजी सराफके यहाँ एक लडकीकी शादीमे वरातीके रूपमे आये थे । वारात धामणगाँव (महाराष्ट्र)मे आयी थी और श्रीजमनालालजी भी उसमे सम्मिलित थे। यह अल्पकालिक परिचय इतने आडे समयमे आश्चर्यका हेतु वनेगा, यह सामान्यतया अकल्पनीय था। भगवान् पर्देके पीछेसे सव सचालन कर रहे थे। पत्र पानेके एक-दो दिन वाद श्रीभाईजी वम्वई चले गये—परिवारको यह आश्वासन देकर कि पाँच-छ महीनेमे आकर उन्हें ले जायँगे या पहले वुला लेगे।

भाईजीकी वम्वई-यात्रा माद्र स० १९७५मे हुई। वहाँ शान्ताक्रुजमे इनकी वुआ रहती थी। उन्हीके पास ये ठहरे। दूसरे दिन प्रात सेठ जमनालालजी वजाजके घर पहुँचे । कुशल-क्षेम पूछनेके वाद सेठजीने इन्हें वहाँ व्यापारका ढग वैठानेमे आवश्यक परामर्शके लिये रोक लिया। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहारको देखकर ये गद्गद हो गये।

ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उनके रूपमे भगवान्ने एक आत्मीय तथा सच्चे सहयोगीको भेज दिया था। पीछे साथमे रहनेसे श्रीबजाजजी भी इनकी प्रतिभा एव व्यवहारकी मधुरतासे बडे ही प्रभावित हुए और वे अपने कार्योमे इनका सहयोग लेने लगे। इतना ही नही, बजाजजी अपने हृदयकी गुप्त-से-गुप्त बाते इन्हे बतलाते, इनकी सुनते और परामर्श लेते-देते थे।

योगक्षेमकी व्यवस्था

बम्बईके व्यावसायिक जीवनमे भाईजीका प्रवेश रूईकी दलालीके माध्यमसे स० १९७५मे हुआ। यह काम श्रीगुलाबराय नेमानीके साझेमे था। तीन-चार महीनेतक चलकर यह बद हो गया।

इसके बाद शेयरोकी दलालीकी ओर प्रवृत्ति हुई। यह भी साझेमे थी और साझेदार थे——श्रीमदनलाल चौधरी। यह एक वर्षतक चली। लाभ-हानि बराबर रही। घरका खर्चा अच्छी प्रकार चलता नही था, इसलिये इससे भी इन्हे हाथ खीच लेना पडा।

शेयरोकी दलालीमे भाग्य-परीक्षाका तीसरा खेल स० १९७७मे आरम्भ हुआ। 'ताराचन्द घनश्यामदास' फर्मके मालिक श्रीश्रीनिवासदास बालकृष्णलाल पोद्दारके साझेमे। इस नयी फर्मका नाम पडा——'एस० डी० पोद्दार ऐड कम्पनी।' इसमे तीन लाख रुपये व्यापारियोके जिम्मे लेने रह गये, जिसमेसे दो लाख तो किसी प्रकारसे निकल आये, पर एक लाख डूब ही गये। श्रीश्रीनिवासदासजीका इनपर बहुत स्नेह और इनकी ईमान-दारीपर अखण्ड विश्वास था। दोनो भाइयोने मुनीमोको यह कहकर डॉट दिया कि 'सब कुछ हमारी सम्मतिसे हुआ है। हनुमानप्रसादकी इसमे कोई गलती नही है। घाटा हुआ तो क्या हुआ ?' मित्र तो अपना कर्त्तव्य-पालन करके सतुष्ट हो गये, कितु इनके हृदयपर इस घाटेके कारण भारी धक्का लगा। ये बार-बार यही सोचते थे कि मेरेद्वारा एक स्वजन——एक सच्चे मित्रकी इतनी बडी रकमकी हानि हुई है। इस ग्लानिका शरीरपर प्रभाव आना स्वाभाविक था। स्वास्थ्य-सुधारके लिये इन्हे नासिक जाना पडा और वहाँ ये लगभग एक मास रहे।

हठयोगका अभ्यास

स्वास्थ्य-लाभके निमित्त की गयी इस नासिक-यात्रामे भाईजीकी एक दक्षिणी योगीसे भेट हो गयी। वे हठयोगकी क्रिया करते थे और प्राणायामादि अष्टाङ्गयोगके भी अच्छे ज्ञाता थे। वे अद्वैतमतके उपासक थे। इन्होने उनसे हठयोगकी कुछ क्रियाएँ——नेती-धौती आदि सीखी तथा स्वय उनको किया। प्राणायामका भी अभ्यास किया। इन क्रियाओसे इन्हे शारीरिक लाभ तो हुआ, पर आध्यात्मिक लाभका कोई विशेष अनुभव नही हुआ।

सेठ जमनालालजी बजाजको जब व्यापारमे हुए घाटेका पता चला तो उन्होने भाईजीको अपने यहाँ बुलाकर अपने साले तथा प्रधान मुनीम श्रीचिरजीलाल जाजोदियाके साथ 'चिरजीलाल हनुमानप्रसाद'के नामसे कालबादेवी रोडपर अलसी आदिके सट्टेकी दलालीका काम आरम्भ करा दिया। इसके अतिरिक्त निजी व्यापार और आढतका काम भी आरम्भ हो गया।

आर्त्तरक्षा

वैसे इस फर्मका मुख्य धधा था रुईका निर्यात करना। महाराष्ट्र, नागपुर और वर्धासे रुई मॅगाकर विदेश भेजी जाती थी। इस कामको विशेषरूपसे श्रीचिरजीलालजी देखते थे। चिरजीलालजीका यह स्वभाव था कि न तो वे किसीका एक पैसा लेते थे और न अपना ही एक पैसा डूबने देते थे। बडे हिसाबी-किताबी व्यक्ति थे। इस फर्ममे रुईके लेन-देनका बाहरी लोगोका भी काम कराया जाता था।

जोधपुर (राजस्थान)की ओरके साँगीदास थानवी नामके एक सज्जन रुईके इस व्यापारसे सम्बद्ध थे। उनका काम भाईजीकी फर्मके मार्फत होता था। हिसाबमे कभी कोई गडबडी नही होती थी। एक बार उक्त व्यापारीने इनका काम किया और उसमे ६०-७० हजार रुपये लग गये। वे महानुभाव रुपये नही दे सके। भाईजीको विदित था कि उनके पास रुपये नही है और घाटा अधिक है, इसीसे विवश है। पर श्रीचिरजीलालजी इस प्रकार

गम खानेवाले व्यक्ति नहीं थे। उन्होंने जब देखा कि वे रुपये नहीं दे पा रहे हैं तो उनके विरुद्ध दीवानीमे दावा दायर किया। भाईजीने जाजोदियाजीसे नालिश न करनेके लिये कहा-सुना, पर उन्होंने समझाया कि व्यापारमे इस प्रकार रुपये छोडनेसे फर्म फेल हो जायगी। श्रीभाईजी स्वतन्त्र थे नही, इसलिये उनका आग्रह देखकर चुप हो गये। बात सत्य थी ही। कागजपत्र भी दुरुस्त थे। अत इनकी उक्त व्यापारीपर डिग्री हो गयी। चिरजीलालजीने प्रयास करके रुपये वसूल करनेके लिये कुर्की जारी करा दी। भाईजी उस व्यापारीकी इस स्थितिसे परिचित थे कि उनके पास नकद कुछ भी नहीं है। जो कुछ है, गहना है। यदि वह भी चला गया तो परिवारको खानेके लाले पड जायँगे। बेचारोके लिये बडे सकटकी स्थिति हो जायगी। इनके मनमे उसके प्रति बडी सहानुभूति उत्पन्न हुई। किंतु चिरजीलालजीकी प्रकृतिको समझकर उनसे कुछ कहनेका साहस नही हुआ। इन्हे एक उपाय सूझा। इन्होने तत्काल उसे फोन किया—'हमारे यहाँसे आपके यहाँ कुर्की जा रही है, आप सावधान हो जाइये और गहना, सामान आदि जो कुछ इधर-उधर करना हो, कर दीजियेगा।' इतना सकेत पाते ही उन सज्जनने गहना-सामान आदि अपने मित्रके यहाँ रखवा दिया, कुर्कीवाले गये, पर उन्हे कुछ नही मिला। वे खाली हाथ लौट आये। चिरजीलालजीके मनमे बडा विचार हुआ कि कुर्कीमे कुछ नहीं मिला। भाईजी श्रीजाजोदियाजीकी मानसिक वेदना जानते ही थे। अतएव सान्त्वना देनेके लिये इन्होने श्रीजाजोदियाजीको वास्तविक स्थिति बतला दी—'बेचारेके पास नकद कुछ है नही, गहना और सामान है, वह भी आपने ले लिया तो वे तथा उनके परिवारवाले भूखो मर जायँगे। अतएव मैंने फोनद्वारा उन्हे कुर्की आनेकी बात बता दी और कह दिया था कि गहना आदि घरमेसे हटा दे।' श्रीजाजोदियाजी भाईजीकी बात सुनकर सन्न रह गये। वे इनके स्वभावकी विचित्रतासे परिचित थे तथा इनको वे बहुत मानते थे। पूरी बात सुनकर वे बोले—'आपको जब फोन ही करना था तो मुझे पहले ही क्यो नही कह दिया? कुर्की भेजते ही नही। व्यर्थ ही उसमे कुछ रुपये और लग गये तथा परीशानी हुई।'

इसी प्रकार इसके पूर्व श्रीबालकृष्णलालके साझेमे व्यापारियोके यहाँ लाखसे ऊपर रुपये डूबनेपर इन्होने तग करके वसूल करनेकी अपेक्षा सतोष करके घर बैठना ही श्रेयस्कर समझा था।

यह कारोबार भाईजीके बम्बई-प्रवास-कालके अन्त (स० १९८४) तक चलता रहा। इससे बडा लाभ यह हुआ कि इनको परिवारके भरण-पोषणकी चिन्तासे एक सीमातक मुक्ति मिल गयी। अब वे अपना कुछ समय इच्छानुसार अन्य कार्योंमे सुविधापूर्वक लगा सकते थे।

आर्तरक्षाकी एक और घटना है—'मारवाडी अग्रवाल महासभा'के खजाची श्रीराजाराम मीताननें अपने खर्चके लिये दो हजार रुपये रोकडमेसे ले लिये। पता लगते ही कमेटीवालोने उन्हे पुलिसमे गिरफ्तार करा दिया। किसीको अपना सहायक न देखकर उसने भाईजीके सामने अपनी सकटपूर्ण परिस्थितिको निवेदन किया। भाईजीके हाथमे भी उस समय रकमकी छूट बिल्कुल नही थी। परतु सकटमे पडे भाईकी सहायता और वह भी कहनेपर न की जाय, यह इन्हे सहन नहीं हुआ। इन्होने अपने मित्रोसे दो हजार रुपये उधार लिये और उसे जमा करवाकर श्रीराजारामको छुडा लिया। श्रीराजारामका रोम-रोम श्रीभाईजीके उपकारके प्रति कृतज्ञतामे भर गया।

ऐसी और भी अनेको घटनाएँ हैं। वास्तवमे श्रीभाईजीका सम्पूर्ण जीवन ही सेवामय था।

राजनीतिक प्रवृत्तिका पुनरुत्थान

शिमलापालके नजरबदी-जीवनमे की गयी कठोर साधनासे वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गयी थी। अग्रेज सरकारकी बर्बरताके प्रति असतोष-वृत्ति तथा देश-सेवा एव समाज-सेवाकी जो भावनाएँ थी, वे उसी रूपमे विद्यमान थी। हाँ, शिमलापालमे २१ महीनेतक नाम-जप और ध्यानकी जो साधना की गयी थी, उसके फलस्वरूप हिंसावादी राजनीतिमे उनका विश्वास समाप्त हो चला था। सात्विक भावोके उद्रेकसे अग्रेजोको 'शत्रु' समझकर उनकी हत्या करके मातृभूमिकी बन्धन-मुक्तिका प्रयास इन्हे अनुचित लगने लगा। पीछे महात्मा गाधीकी घनिष्ठतामे तथा

साधनाकी परिपक्वताके कारण हिंसावृत्ति सर्वथा शमित हो गयी। इस समय ये देश-सेवा और समाज-सेवाका कोई सक्रिय ठोस रूप ढूँढ रहे थे, जिसका प्रभाव चिरस्थायी हो और जिसमें परपक्षके अनिष्टकी भावना न होकर देशके निर्माणकी भावनाका प्राधान्य हो। इसी चिन्तनके साथ ये राजनीतिक एवं सामाजिक गति-विधियोंमें भाग लेते रहे।

बम्बई आनेके डेढ़ वर्ष बादतक अंग्रेजी सरकारके गुप्तचर इनके पीछे लगे रहे। यद्यपि क्रान्तिकारियोंके साथ उनका गुप्त सम्बन्ध था, तथा उनको ये यथासम्भव सहायता भी देते रहते थे, फिर भी गुप्तचरोंको इस रहस्यकी जानकारी नहीं हो पायी। उनको क्रान्तिकारी-आन्दोलनमें भाईजीकी सक्रिय संलग्नताका कोई प्रमाण प्राप्त न हो सका। अतः सरकारने गुप्तचरोंद्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट्सके आधारपर इनकी गति-विधियोंके सम्बन्धमें की जानेवाली जाँच बंद कर दी। साथ ही, इनके बंगालसे निष्कासनका आदेश भी वापस ले लिया।

उस समय गुप्तचर श्रीभाईजीकी गति-विधियोंका पता लगानेके लिये किस रूपमें आते थे तथा किस प्रकार उनकी धार्मिक प्रवृत्ति एवं शान्त जीवनको देखकर इनसे पैसा ठगकर लौट जाते थे, इसका उल्लेख करते हुए श्रीभाईजीने एक बार बताया था—

"एक दिन एक बंगाली सज्जन मेरे पास आये। वे एक गौडीय सम्प्रदायके साधुके वेषमें थे। बोले—'आपसे वार्तालाप करना है।' मैंने वेषके अनुसार भगवच्चर्चा प्रारम्भ की। वे भी बोलते रहे। उनसे चैतन्य-महाप्रभुकी एवं भक्तिरसकी बहुत-सी बातें हुईं। बड़ा अच्छा सत्सङ्ग हुआ। उस दिन वे चले गये। दूसरे दिन फिर आये। प्रसङ्गवश उन्होंने कहा—'मेरे पास कमण्डलु नहीं है, मुझे एक कमण्डलु दिलवा दीजिये।' मैंने उन्हें एक कमण्डलु दिलवा दिया। फिर बोले—'हम आज प्रयाग जायँगे। हमें प्रयागका टिकट कटवा दीजिये।' मैंने उन्हें प्रयागका टिकट मँगवा दिया। संयोगकी बात, मालवीयजी महाराज बम्बई आये हुए थे और उसी गाड़ीसे वापस लौटनेवाले थे। मैं उनको विदाई देने स्टेशन गया था। मालवीयजी महाराजको प्रणाम करनेके पश्चात् मेरे मनमें आया कि 'बंगाली स्वामीजीसे भी मिल लिया जाय। वे भी तो इसी ट्रेनसे जा रहे हैं।' मैंने उन्हें ट्रेनमें देखा, पर वे मिले नहीं। मैंने सोचा—'नहीं आये होंगे, कुछ बात हो गयी होगी।'

"इसके तीन-चार दिन बाद कांग्रेसके अधिवेशनके लिये एक स्पेशल ट्रेन कलकत्ता जा रही थी। उसमें गांधीजी थे, मुहम्मद अली आदि थे। पासके एक डिब्बेमें मैं भी था। अचानक हो-हल्ला हुआ। मैंने डिब्बेसे बाहर निकलकर देखा—मुहम्मद अली साहब एक साधुको पीट रहे थे। मैं मुहम्मद अली साहबके पास गया। मैंने कहा—'अली साहब! आप यह क्या कर रहे हैं? एक साधुको पीट रहे हैं?' अली साहबने तत्काल उत्तर दिया—'भाईजी, आप चुप रहिये, हम जानते हैं यह कौन है। यह सी० आई० डी०का आदमी है और हमलोगों-को धोखा देकर हमलोगोंके साथ कलकत्ता जाना चाहता है।' मैंने कहा, 'ये स्वामीजी ३-४ दिन पहले मेरे पास

नेताओंके कल्पवृक्ष माने जाते थे। वम्वईमे जो भी नेता आते, उनके मेहमान वनते। लेमिग्टन रोडपर स्थित उनकी कोठी 'मणि-भवन' राष्ट्रीय अतिथि-गृह वन गयी थी। श्रीजमनालालजी श्रीभाईजीकी कार्यकुशलता, विनम्रता मेवा-भावना एव राष्ट्र-निष्ठासे पूर्णतया परिचित थे। अत उन्होने 'मणि-भवन मे आतिथ्यकी सारी व्यवस्था श्रीभाईजीको ही सोप रखी थी। नेताओंके आनेपर उनके भोजन, भ्रमणका प्रवन्ध तथा आवश्यकतानुसार मार्ग-व्यय आदिकी सम्मानपूर्ण व्यवस्था की जाती थी तथा कभी-कभी नेताओके घर जाकर उनकी आवश्यकताओका ज्ञान करके उनकी पूर्तिकी भी व्यवस्था की जाती थी। इस प्रकार श्रीभाईजी तत्कालीन सभी नेताओके निकट सम्पर्कमे आये तथा वे अपने शील-सोजन्य एव मधुर स्वभावसे सवके प्रीतिपात्र वन गये।

देश-सेवाकी भावना पूर्ववत् थी—कुछ वढी ही थी, उसका केवल वाह्यरूप वदला था। अतएव देश-सेवाके लिये गठित भारतीय राष्ट्रीय काग्रेमके प्रति श्रीभाईजीके मनमे वडा सम्मान था। राष्ट्रनेताओंके घनिष्ठ सम्पर्कने उसमे और भी वृद्धि कर दी। अत वम्वईके व्यापारिक जीवनमे व्यस्त रहते हुए भी श्रीभाईजी काग्रेसके वार्षिक अधिवेशनोमे सम्मिलित होते रहे।

स० १९७७की नागपुर काग्रेसमे भी ये सम्मिलित हुए। वहाँ ये अपने कलकत्ता-जीवनके श्रद्धास्पद देशवन्धु चित्तरञ्जनदासमे मिलकर वहुत प्रसन्न हुए। पुरानी स्मृतियाँ जाग उठी। वडी देरतक वाते होती रही।

स० १९७८मे काग्रेस-अधिवेशन अहमदावादमे हुआ। उसके सभापति हकीम अजमल खाँ थे। काग्रेसकी कार्यवाहियोमे भाग लेनेका यह इनका अन्तिम अवसर था। इसके वाद इनका उससे क्रियात्मक सम्वन्ध एक प्रकारसे समाप्त हो गया। राजनीतिमे उपरामता शिमलापालसे ही आरम्भ हो गयी थी। वम्वई आनेपर महात्मा गाधी, लोकमान्य तिलक और लाला लाजपतराय आदिके चुम्वकीय व्यक्तित्वके प्रभावसे पुरानी अधसूखी डाले कुछ हरी हो चली थी, किंतु साधनात्मक प्रवृत्तिमे तीव्रता आनेसे इन महापुरुषोके जीवनसे भी श्रीभाईजीने तत्त्व-शिक्षा ही अधिक ग्रहण की, राजनीतिक प्रेरणा कम।

काग्रेस-अधिवेशनो तथा वम्वईमे राजनीतिक क्षेत्रके चोटीके नेताओके घनिष्ठ सम्पर्कमे रहनेसे भाईजीको देशके अन्य कई प्रसिद्ध देशभक्तो, विद्वानो, समाजसेवको और साम्प्रदायिक नेताओसे मिलने और विचार-विमर्शका अवसर प्राप्त हुआ। इनमे विशिष्ट थे—श्रीविट्ठलभाई पटेल, श्रीवल्लभभाई पटेल, श्रीविनायक दामोदर सावरकर काका कालेलकर, खान अव्दुल गफ्फार खाँ, श्रीविनोवाजी, श्रीकिशोरीलाल मश्रूवाला, श्रीमहादेव देसाई, दादा धर्माधिकारी, श्रीकृष्णदास जाजू, मौलाना शौकत अली, मुहम्मद अली, जिन्ना और नारीमैन। दादा भाई नौरोजीसे कलकत्ताका परिचय था। वम्वई आनेपर उनसे विशेष सम्पर्क नही हो पाया था कि वे दिवगत हो गये। जिन्ना साहवके वारेमे श्रीभाईजी कहा करते थे—'जिन्ना साहवमे मेरा सैकडो वार मिलना हुआ। वडा प्रेमका सम्वन्ध था। वे पीछे इतने कट्टर हो गये थे, पहले वडे भले आदमी थे, कट्टर मुसलमान नही थे नमाज नही पढते थे।'

लोकमान्यसे नैकटच

उन दिनो श्रीवाल गगाधर तिलककी राजनीतिक विचारधारा श्रीभाईजीके मनोऽनुकूल पडती थी। कलकत्तामे क्रान्तिकारी जीवन व्यतीत करनेके समयसे ही ये उनके प्रशसक थे। वम्वई आनेपर राजनीति-क्षेत्रमे कार्य करते हुए ये उनके अत्यन्त निकट आ गये। उनके साथ घरपर घटो वैठकर राजनीतिक चर्चा करते रहते। तिलक महाराजकी मृत्यु १ अगस्त १९२० ई० को हुई। उस समय भाईजी उनके पास थे। उनके शरीर छोडनेके पूर्वका एक सस्मरण सुनाते हुए भाईजीने कहा था—'आर्योके आदिनिवासके विषयमे तिलक महाराजने पुन एक पुस्तक तैयार की थी, जिसमे उन्होने अपनी पुरानी मान्यताओका* खण्डन किया था। नयी मान्यताके अनुसार आर्य भारतवर्षके ही थे। इस पुस्तककी पाण्डुलिपि मैंने देखी थी, परतु उसे प्रेसमे छापनेके लिये देनेसे पहले

* तिलक महाराजने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरायन'मे सिद्ध किया था कि आर्य उत्तरी ध्रुवके निवासी थे।

ही तिलक महाराजका देहान्त हो गया । इसके पश्चात् उस पुस्तककी पाण्डुलिपि क्या हुई, कुछ पता नही चला। मैंने उनके उत्तराधिकारियोसे उस पुस्तकके सम्वन्धमे पूछताछ की, किंतु कोई सधान न मिल सका ।'

लाला लाजपतरायके स्नेहकी प्राप्ति

लाला लाजपतराय स्वदेशी-आन्दोलनके सम्वन्धमे वरावर वम्वई आया करते थे। उनकी राष्ट्रीयता धर्म-भावनासे अनुप्राणित थी । उनके लिये वह अध्यात्मसाधनाका ही प्रतिरूप थी । श्रीभाईजीको लालाजीकी इस विचार-पद्धतिमे अपने हृदयकी वाणीकी प्रतिध्वनि सुनायी दी। विचारसाम्य सम्पर्क-स्थापनाका कारण वन गया। लालाजी वम्वई आनेपर इनके अतिथि होने लगे। एक दिन वे विना पूर्व सूचनाके सहसा आ गये। उस समय श्रीभाईजी जुहूमे रहनेवाले एक ज्योतिषीसे मिलने गये हुए थे। लौटनेपर लालाजीने भेट होते ही पूछा—'कहाँ गये थे ?' इन्होने वतलाया—'जुहूमे एक ज्योतिषी रहते है, उनसे मिलने गया था।' लालाजीने हँसकर पूछा—'वह कुछ जानता भी है ? कल जाओ तो पूछकर आना—लाजपतराय कव पकडा जायगा। मेरे अमुक-अमुक साथी पकड लिये गये । मै अभीतक नही पकडा गया।'

गांधीजीसे सम्पर्क-वृद्धि

महात्मा गाधीसे श्रीभाईजीका प्रथम परिचय उनके सम्मानमे कलकत्तामे आयोजित अभिनन्दनके अवसरपर हुआ था। वम्वईके प्रवास-कालमे गाधीजीसे इनका वरावर मिलना होता रहा और परिचय धीरे-धीरे आत्मीयतामे परिणत हो गया। गाधीजी वहुत वार श्रीभाईजीके घरपर भी पधारते थे और दादी रामकौर देवीसे मिलकर वडे प्रसन्न होते थे। गाधीजीकी सादगी, सेवावृत्ति, स्वदेशी-निष्ठा, स्वावलम्वन, आध्यात्मिकता, रामनाममे निष्ठा आदि चारित्रिक विशेषताओका भाईजीपर वडा प्रभाव पडा । गाधीजी भी श्रीभाईजीकी विनम्रता, सरलता, पवित्रता, निष्कपटता, भगवद्भक्ति, नि स्वार्थभावना, सेवावृत्ति, ऋजुता, अमानिता आदि गुणोपर मुग्ध थे। वे इन्हे पुत्रवत् प्यार करने लगे थे। गाधीजीकी आत्मीयताकी वाते श्रीभाईजी वडे ही भावभरे हृदयसे सुनाया करते थे। उसकी चर्चा आगे की जायगी ।

महाराजा सिंधियासे भेट

राजनीति-क्षेत्रके नेताओके अतिरिक्त श्रीभाईजीको समाजके प्रतिष्ठित अन्य वर्गोके लोगोका भी सानिध्य प्राप्त हुआ। इनमे महाराजा सिधिया मुख्य थे। महाराजा साहवके सम्वन्धमे श्रीभाईजी कई वाते सुनाते थे। एक प्रसङ्गका उल्लेख करते हुए इन्होने कहा था—

"ग्वालियरके महाराजका वम्वईमे महल था। वे वहाँ वरावर आते थे। मै उनके पास जाया करता था। इस समय जो महाराजा है, उनके वे पिता थे। ग्वालियरके महाराजा वडे सीधे थे। प्राणायाम करते थे। कहा करते थे कि यदि मेरी रियासत चली जाय तो भी मै दो रुपये रोज मजदूरी करके कमा सकता हूँ। मुझे कोई शर्म नही है। वीकानेरके महाराजा श्रीगगासिहजी जव-जव वम्वई आते थे, इन्हींके यहाँ ठहरा करते थे, वडी दोस्ती थी—उन दोनोमे । हिदू विश्वविद्यालयकी एक सभा वम्वईमे हुई थी, जिसमे गाधीजी, मालवीयजी एव वीकानेरके महाराजा भी सम्मिलित थे। वह सभा इन्ही ग्वालियरके महाराजाके महलपर हुई थी। महाराजा ग्वालियर जव भी वम्वई आते थे, मुझे सूचित कर देते थे। कहा करते थे—'तुम आया करो।' मुझसे वडा प्रेम करते थे। वहुधा कहा करते थे—'देखो ! तुमलोग समझते हो, हमलोग वडे सुखी है, रईस हैं, इतने लोग सेवा करनेवाले है, किंतु हमलोग वडे दुखी है। प्रजाका डर, एजेन्टका डर, वाइसरायका डर वरावर लगा रहता है। हमलोग केवल रईस कहलाते है, हमे स्वतन्त्रता नही है।" वे वडे स्वतन्त्र प्रकृतिके थे और उन्हे राज्य जानेकी कोई चिन्ता नही थी। उनके पास रुपये वहुत थे, वे रुपये व्याज एव व्यापारमे लगाने वम्वई आया करते थे।

इस प्रसङ्गसे यह भी विदित होता है कि उस समयके राजनीतिक पुनर्जागरणने समाजके सभी वर्गोको झकझोर दिया था। राजा-महाराजा भी अग्रेजी शासनकी कूटनीतिके शिकार होकर घुटनका अनुभव करने लगे थे। उनमे-से अनेक स्वावलम्वी और स्वतन्त्र विचारके भी थे। महाराज ग्वालियर इन्हींमेसे एक थे।

खादी-प्रचार

श्रीभाईजीके खादी-प्रेमकी चर्चा पहले हो चुकी हे। ये स्वय तो खादी पहनते ही थे, वम्वई आकर इन्होंने खादीके प्रचारमे भी सहयोग दिया। मित्रोके सहयोगसे 'मारवाडी खादी प्रचारक मण्डल' नामक एक सस्थाका गठन हुआ। जयपुरसे खादी मँगवायी जाती थी। श्रीभाईजी अपने साथियोको साथ लेकर खादीके प्रचारके लिये वम्वईके जन-सकुल वाजारोमे फेरी लगाते थे। साथी लोगोमेसे कोई खादीका वडल पीठपर लाद लेता था और ये हाथमे गज और कैंची लेकर चलते थे। सुवह ७ वजे निकलते थे और १० वजे लौट आते थे। यह क्रम कुछ दिन चला। इनके द्वारा प्रदर्शित जनसेवाके इस मार्गका वहुतोने अनुसरण किया। इष्टकी सेवा लोक-लज्जा, मान-प्रतिष्ठा आदि सव कुछ त्यागनेसे ही होती है—यह अध्यात्म-क्षेत्रमे जितना सत्य हे, उतना ही जीवनके व्यावहारिक क्षेत्रमे भी।

श्रीजमनालालजी वजाज गाधीजीके अनन्य भक्त थे। अतएव वे खादीके प्रचारमे तन-मन-धनसे लगे थे। राजस्थानकी रियासतोमे खादी-प्रचारका कार्यक्रम वना। पहले वीकानेरके महाराजासे मिलकर उनके यहाँ खादी-प्रचार करनेका निश्चय किया गया। श्रीभाईजीने उनको इस कार्यमे सहयोग दिया। भाईजी उनके साथ वीकानेर गये तथा दोनोने महाराजा साहवसे भेट की एव खादीके प्रचारमे सहयोग देनेकी प्रार्थना की। खादीद्वारा देशके गरीवोको भोजन मिलेगा, इस दलीलसे प्रभावित होकर महाराजा साहवने इसके प्रचारमे सहयोग देनेका आश्वासन दिया।

खादीके सम्बन्धमे विचार

श्रीभाईजी खादीके प्रचारमे तत्परतासे लगे थे, पर इसके साथ उनकी परमार्थभावना किस प्रकार जुडी हुई थी, यह श्रीभाईजीके एक लेखसे प्रकट होती है। 'कल्याण'मे इन्होने 'खादी और परमार्थ' शीर्षकसे अपने विचार प्रकाशित किये थे, जो इस प्रकार है—

"खादी इस समय राजनीतिक आन्दोलनमे शामिल है, पर वास्तवमे यह केवल राजनीतिक ही नहीं हे, इसका सम्वन्ध तो सदाचार, वैराग्य और ईश्वर-भक्तिसे विशेष है। राजनीतिक दृष्टिसे नही, मै तो अपने विश्वास-के अनुसार शुद्ध धार्मिक दृष्टिसे खादीका व्यवहार करनेके लिये 'कल्याण'के सभी पाठक-पाठिकाओसे प्रेमपूर्वक अनुरोध करता हूँ।

"इस समय देशमे ऐसा कोई वस्त्र नही है, जो इससे ज्यादा पवित्र हो या जिसमे हिंसा न होती हो। विलायती और मिलके कपडोमे चर्वी लगती है, जिसमे अपवित्रता और हिंसा दोनो ही सम्मिलित हे। रेशमी वस्त्रोको प्राचीनकालमे शुद्ध मानते थे, पर अव तो रेशमके धागे वनानेमे असख्य जीव उवलते हुए जलमे डाले जाते है। इससे रेशम भी अपवित्र और हिंसामय है। ऊनी कपडे इस देशमे हमेशा लोग नही पहन सकते, परतु खादी उपर्युक्त दोनोकी अपेक्षा पवित्र और हिंसारहित है। पवित्रताका असर मनपर होता है, जिससे भगवान्मे मन लगता हे।

"खादी पहनते ही सादगी आ जाती है, शौकीनी छूटते ही अनेक दोप आप ही चले जाते हे। कपडेका खर्च कम हो जाता हे। खादीमे ज्यादा वानगी नही होती। अनेक वानगी होनेसे ही लोग विना प्रयोजन अधिक कपडे खरीदकर पेटियाँ भर लेते हैं। परतु खादी पहननेसे यह दोप दूर हो जाता है। खादीके स्वाभाविक ही मोटी होनेसे शर्म दूर होती है और सहज ही वैराग्य वढता है। सदाचार तो इसमे आ ही गया। पवित्रता, सादगी और सदाचारके मिल जानेसे एक ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है, जो परमार्थमे वडी सहायता करती है।

"इसके सिवा खादीमे सवसे वडी वात हे—गरीव-भूखोकी सेवा और देशकी सस्कृतिका सम्मान। आज करोडो स्त्री-पुरुप कार्यके अभावसे अन्न-वस्त्र नही पाते। देश खादी पहनने लगे तो पीजने, कातने, वुनने आदिमे लगकर करोडो भाई-वहन सुखी हो सकते है। घरसे कुछ दिये विना ही वडा दान और विराट्रूप भगवान्की पूजा हो जाती है और साथ ही परमुखापेक्षी जनता स्वावलम्वन सीखकर सुखी हो सकती है।

"इस प्रकार खादीमे पवित्रता, अहिंसा, सादगी, स्वावलम्वन, सदाचार, वैराग्य, दान और भगवान्‌की पूजारूप परमार्थ भरा है। अतएव सभी भाई-वहनोको खादी जरूर ही पहननी चाहिये। परतु यह करना चाहिये ईश्वरको स्मरण करते हुए ईश्वरके लिये ही।" ('कल्याण', वर्ष ५, पृष्ठसख्या ८४५-४६)

विदेशी वस्त्रोकी होली

स्वदेशी-आन्दोलनके दो पक्ष थे—अपने देशमे वनी वस्तुओका प्रयोग और विदेशोसे आयातित मालका वहिष्कार। वहिष्कारकी क्रियाने आगे चलकर ध्वसात्मक रूप धारण कर लिया और मैन्चेस्टर एव लिवरपूलकी मिलोमे वने लाखो रुपयोके मूल्यवान् वस्त्र सरे वाजार जलाये जाने लगे।

गाधीजीने विलायती कपडोकी होली जलाना आरम्भ किया। उमर सोभानी नामके एक मुसलमान उद्योगपति थे। उनकी कपडेकी मिल थी। उस मिलके अहातेमे होली जलायी गयी थी, जिसमे लाखो-लाखो वहुमूल्य विदेशी कपडे अग्निदेवको भेट चढाये गये। वहिष्कारकी यह मशाल श्रीभाईजीके द्वारपर भी आयी। गाधीजी घरपर जाकर विलायती कपडे माँगकर लाये थे। गाधीजी दादी रामकौर देवीसे कपडे माँगने भाईजीके घर स्वय आये थे। दादीने उन्हे वहुत-से मिलके कपडे दिये थे।

गाधीजीकी इस चेष्टाका कुछ लोगोने विरोध किया। उन्होने तर्क रखा कि 'इस प्रकार कपडोको जलानेसे देशकी हानि है। ये कपडे गरीवोको, जिन्हे इनकी आवश्यकता हे, वाँट दिये जायँ।' पर गाधीजी अपने निश्चय पर दृढ थे। उन्होने उत्तर दिया—"जव हमे यह पता चल जाय कि अपनी जेवकी वोतलमे शराव है और हमे शराव पीनी नही चाहिये तथा शराव पीना पाप है, तव क्या वह शरावकी वोतल दूसरोको दे दे और कहे—'लो, शराव पी लो'? हम उस शरावकी वोतलको नष्ट ही करना चाहेगे। यही वात विदेशी कपडोके सम्वन्धमे है। विदेशी कपडा पहनना महापाप हे। तो पापका कपडा मै दूसरोको कैसे पहननेके लिये दे दूँ? उसे तो जला ही देना चाहिये।" भाईजी इन सव घटनाओके द्रष्टा ही नही, गाधीजीके साथ इस व्यापक राष्ट्रीय नाटकके एक विनीत सहयोगी भी रहे।

दादी रामकौर देवीसे गाधीजी विदेशी कपडे माँगकर ले गये थे, पर भाईजीकी धर्मपत्नीके पास विदेशी कपडे अभी थे। श्रीभाईजीने उनको जलानेका निश्चय किया। धर्मपत्नीने वस्त्रोको अग्निकी भेट न करके उन्हे गरीवोको वाँट देनेकी दलील रखी, पर इन्होने गाधीजीके विचार वताकर उसे वस्त्र जला देनेके लिये राजी कर लिया। धर्मपत्नीने अपने पासके सव विलायती कपडे इन्हे दे दिये।

भाईजीने पूछा—"और तो कोई विदेशी कपडा घरमे वचा नही है न?"

पत्नीने कहा—"नही।"

भाईजीने फिर सावधान किया—"फिर देख लो, शायद कही वचा-खुचा पडा हो।"

पत्नीने उत्तर दिया—"सव देख लिया। कही कुछ नही है।"

भाईजीने अपने शब्दोको फिर दोहराया—"एक वार और देख लेना चाहिये।"

पत्नीने भी अपना उत्तर दोहरा दिया—"अव कुछ वचा नही है।"

श्रीभाईजीको एक कपडा दिखलायी दे रहा था। इसीलिये वे वार-वार सावधान करते हुए कह रहे थे—"एक वार और देख लेना चाहिये। मुझे लगता है कि एक कपडा और है।" इतना कहकर भाईजीने आँख घुमाकर पत्नीकी साडीकी ओर देखा। पत्नीकी भी दृष्टि अपने शरीरपर पहनी हुई साडीपर गयी। सचमुच वह विदेशी साडी थी। भाईजीके वार-वार आग्रह करनेका अर्थ पत्नीकी समझमे अव आया। "अभी आती हूँ"—यह कहकर वह कमरेमे गयी, अपनी साडी वदली और वह अन्तिम अवशेष साडी भी जलानेके लिये एकत्रित विदेशी कपडोके ढेरपर डाल दी। यह था कर्तव्यपालनके प्रति दोनोका उत्साह।

सक्रिय राजनीतिसे उपरामता

सं० १९७८के बाद श्रीभाईजीने कांग्रेस-अधिवेशनोंमें सम्मिलित होना बंद कर दिया। इसका कारण था उस समयकी कांग्रेसके कर्णधारोंकी नीतिमें असहमति। कांग्रेसका उद्देश्य था—देशको स्वतन्त्रताकी प्राप्ति कराना। इसके लिये कर्णधार समाजमें स्वतन्त्रताकी भावना जाग्रत् करते थे तथा परतन्त्रताके प्रति असंतोष उत्पन्न करते थे। परिणामस्वरूप देश-सेवाके साथ-साथ जनतामें परस्पर राग-द्वेष, घृणा, प्रतिस्पर्धा, स्वार्थवृत्ति आदि दुर्गुणोंके बढनेकी पूरी आशङ्का थी। इनमेंसे कुछ वृत्तियाँ तो राष्ट्रीय आन्दोलनके उस शैशव-कालमें ही—जब पाना था केवल दण्ड और तिरस्कार तथा देना था सर्वस्व—झाँकने लगी थीं। श्रीभाईजीका मत था कि देश-सेवा साध्य नहीं, साधन है, कारण मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान्‌की प्राप्ति करना है। अतएव देश-सेवा भगवत्-प्राप्तिका साधन होना चाहिये। दूसरे, असंतोष उत्पन्न करनेसे देशका परिणाममें कल्याण नहीं है, माना, उनमें स्वतन्त्रताकी प्राप्तिका आन्दोलन तीव्र हो जायगा, पर स्वतन्त्रता प्राप्त होनेपर जन-स्वभावमें बैठा हुआ वह असंतोष देशवासियोंमें परस्पर कलह, द्वेष, हिंसा आदिकी सृष्टि करेगा। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि देशवासियोंको आत्मबलकी प्राप्तिकी ओर लगाया जाय तथा उनमें देशकी संस्कृति, धर्म, आचार, शिक्षा आदिके प्रति गौरवबुद्धिका निर्माण किया जाय। इसकी सिद्धिके लिये इन्होंने आत्मशोधन, विचारोंके संस्कार, धर्म और संस्कृतिके प्रति अनुरागके जागरण, नैतिक साहित्यके निर्माण एवं प्रचार-प्रसारके साधनोंपर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता बतायी। इनके विचारमें केवल भौतिक साधनोंका अवलम्बन लेकर चलनेसे व्यक्ति, संगठन, समाज और देशमें नाना प्रकारकी विकृतियाँ बढ रही थीं तथा और भी बढनेकी आशङ्का थी। इनका विश्वास था कि आत्मजय ही विश्वविजयका प्रथम सोपान है—**'जगज्जितं केन? जितं मनः येन।'** अतएव सबसे पहले आत्मजयी होनेकी साधनामें ये तीव्रतासे बढ रहे थे। शक्तिके मूलकेन्द्रसे अपना सम्पर्क बननेके पश्चात् ही तो दूसरोंको अपने द्वारा शक्ति वितरण की जा सकती है। इस प्रकार उद्देश्यके प्रति मौलिक मतभेद था। पर देशसेवाको साध्य न मानते हुए भी इन्होंने अपने कृतित्वद्वारा जितनी देशसेवा की है, उसका शतांश भी अनेकों व्यक्तियों एवं संस्थाओं-द्वारा नहीं हो पाया।

पारिवारिक दायित्वका निर्वाह

व्यापार, समाज-सेवा आदि कार्योंमें व्यस्त रहते हुए भी भाईजी पारिवारिक उत्तरदायित्वके निर्वाहमें निरन्तर सतर्क रहे। छोटी बहन अन्नपूर्णा बाई विवाहके योग्य हो गयी थी। उसका सम्बन्ध बैठानेके लिये ये व्यग्र थे। सम्बन्धियोंके सहयोगसे एक लडका मिल गया। ये सपरिवार बाँकुडा गये। आषाढ शु० ४, सं० १९७६को विवाह सम्पन्न हुआ। इस यात्रामें इन्हें श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ कई दिन सत्सङ्ग-चर्चा करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार दूसरी छोटी बहन चंदाबाईका विवाह ज्येष्ठ शु० ६, सं० १९७९को रामगढ (राजस्थान)में सम्पन्न हुआ। इस विवाहमें लक्ष्मणगढनिवासी श्रीबालूरामजी, जो 'रामनामके आढतिया'के नामसे विख्यात थे, भी सम्मिलित हुए। श्रीआढतियाजी बडे ही प्रसन्नचित्त एवं भजनानन्दी पुरुष थे। अतएव उनकी उपस्थितिमें विवाहमें आध्यात्मिकताका पुट आ गया। भाईजीका संकेत पाते ही आढतियाजी मौजमें भरकर भजन गाते और दोनों ओरके व्यक्ति मुग्ध हो जाते। श्रीभाईजीने विवाह सम्पन्न होनेपर मिठाईके साथ धार्मिक पुस्तकें भी बँटवायी थीं।

स्वदेशी-आन्दोलन और सुधारवादी विचारोंसे प्रभावित होकर भाईजीने राजस्थानी भाषामें कुछ विवाह-गीत लिखे। बहन चंदाके विवाहमें इनके लिखे गीत गाये गये। लोगोंको वे बहुत पसंद आये। इनसे परम्परासे प्रचलित अश्लील विवाह-गीतोंको बंद करने तथा उनके स्थानपर सदाचार एवं ईश्वरभक्तिसे पूर्ण गीतोंके प्रचलनमें बहुत प्रेरणा मिली। इन गीतोंका संग्रह 'मारवाडी धार्मिक गीत' नामसे निकला। धार्मिकता एवं नैतिकताका पुट इनकी विशेषता थी।

विवाहमे स्वदेशी वस्त्रोंका प्रयोग

भाईजीकी खादी-निष्ठाका पारिवारिक धरातलपर दर्शन चदाबाईके विवाहमे हुआ। इसमे सब कपडे खादीके ही काममे लाये गये। मारवाडी अग्रवालोमे चुनरीका बडा महत्त्व है। वह महीन कपडेकी होती है और रँगरेज लोग उसे बडी चतुरतासे रँगते है। इन्होने सुझाव दिया कि उसके स्थानपर खादीका कपडा पीले रगमे रँगकर प्रयोगमे लाया जाय। वैसा ही हुआ।

बहिनकी आत्महत्या

भगवान्‌की लीला बडी विचित्र है। बहिन चदाका विवाह बडी धूमधामसे हुआ, पर ससुरालवालोका व्यवहार उसके प्रति कडा था। इससे वह बडी दुखी रहती थी। एक दिन अचानक उसके कुएँमे गिर जानेकी सूचना भाईजीको मिली। उन दिनो ये बम्बईके बाहरी हिस्से—मलाडमे रहते थे। चदाबाईकी ससुराल बम्बईमे ही थी, इससे वह समय-समयपर मिलने आ जाती थी। रक्षाबन्धनके दिन वह मायके आयी। उसने श्रीभाईजीके हाथमे राखी बाँधी। दिनभर वही रही। सध्याको अपने घर लौट गयी। ससुरालवालोने बहुत कहा-सुना, पर वह चुप रही। ससुरालवाले उसके पीछे ही पड गये। उन्होने क्रोधमे भरकर यहाँतक कह दिया—'जाओ, मर जाओ, कुएँमे गिर जाओ।' चदाबाईको बडा दुख हुआ। वह उसी दुखके आवेशमे उठी और जाकर घरके समीपवाले कुएँमे कूद पडी। उसका तत्काल देहान्त हो गया।

क्षणभरमे ही सारे मुहल्लेमे शोर हो गया। ससुरालवाले अत्यधिक भयभीत हो गये। उन्हे लगा कि पुलिस आयेगी और उन्हे पकडकर ले जायगी। साथ ही समाजमे बदनामी होनेका भी डर था। मुकदमा भी चलनेकी आशङ्का थी। भाईजीको इसका पता चला। ये तत्काल घटनास्थलपर गये। जाते ही पूरी परिस्थिति समझ गये। चदाबाईपर इनका बडा स्नेह था, पिताकी मृत्युके बाद एक प्रकारसे ये ही उसके सर्वतोभावेन सरक्षक रहे, विवाह भी इन्होने ही किया था। भरी आयुमे बहिनको अकालकाल-कवलित देखकर ये किंकर्त्तव्यविमूढ हो गये, पर धीरज नही खोया। मनमे विचार किया कि 'बहिन तो चली गयी, अब कुछ भी किया जाय, वह लौट नही सकती। अतएव ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उसके ससुरालवालोको कोई परीशानी न हो।' ऐसा विचार करके इन्होने कुएँपर अपनी बहिनके कपडे, तौलिया, बाल्टी और लोटा रखवा दिये। तबतक पुलिस आ गयी। जाँच होने लगी। पुलिसने इनके बयान लिये। मृत स्त्रीके भाई और घरके कर्त्ता होनेसे इनके शब्दोका महत्त्व था। इन्होने पुलिस अधिकारीसे साफ-साफ कह दिया—'हमे किसीपर तनिक भी सदेह नही है। लगता है—यह नहाने आयी थी। पैर फिसल गया, कुएँमे गिर गयी। इसके पास कोई नही था।' परिवारके लोगोने श्रीभाईजीको सच्ची बात कहनेकी प्रेरणा दी, पर इन्होने उस समय बहिनके प्यारको प्रधानता न देकर विषम परिस्थितिमे अपने कर्त्तव्यका निर्वाह किया। बहिनके पतिदेवपर इस लोकोत्तर उदारताका बडा प्रभाव पडा। उन्होने ऐसे व्यवहारकी कल्पना भी नही की थी। पीछे उनमे बडा परिवर्तन आया। भाईजीने, जो इस हृदयद्रावक दुर्घटनामे निमित्त बने थे, बहिनके ससुरालवालोको क्षमा ही नही कर दिया, वे उनसे आजीवन पूर्ववत् स्नेह-सम्बन्धका निर्वाह करते रहे। परतु बहिनकी दर्दनाक विदाईका श्रीभाईजीके मनपर बडा प्रभाव रहा। जीवन कितना क्षणभङगुर है तथा जगत्‌के व्यवहारका कितना बीभत्स रूप होता है—दोनो चीजोको इन्होने निकटसे देख लिया। भगवान्‌ने यह अनोखा दृश्य दिखाया।

सामाजिक जीवनमे रुचि

वङ्गभूमिमे बीते दिनोके सामाजिक सस्कार बम्बईके अपेक्षाकृत मुक्त तथा सत्रासरहित जीवनमे विकसित होते रहे। आरम्भमे पारिवारिक आपदाओ, व्यापारिक व्यस्तताओ तथा राजनीतिक गति-विधियोके कारण इनके विकासकी गति कुछ धीमी रही, किंतु जैसे-जैसे भाईजीकी प्रवृत्ति इन कार्योसे हटती गयी, उनका अधिकाधिक समय लोकसेवामे लगने लगा। इसका कार्यक्रम यद्यपि बम्बई-आगमनके एक वर्ष बाद स० १९७६मे ही चलने लगा था, तथापि पूर्ण सलग्नता राजनीतिसे विरतिके बाद ही आयी।

अग्रवाल महासभाके कार्योंमे योगदान

कलकत्ताकी 'मारवाडी सहायक समिति'की ही भाँति वम्बईके मारवाडी अग्रवालोने स० १९७६मे एक विशाल समाजसेवी सस्था 'अखिल भारतीय मारवाडी अग्रवाल महासभा'की स्थापना की। यह एक राष्ट्रीय स्तरका जातीय सगठन था—जिसका मुख्य उद्देश्य था मारवाडी अग्रवालोका सामाजिक उत्थान। इसके कार्यकर्ता अत्यन्त दूरदर्शी और उदार थे। अत कहनेको ही यह मारवाडियोकी सस्था थी, अपने कार्य-कलापद्वारा वस्तुत वह सभी अग्रवाल वैश्यो एव समस्त हिंदू जनताकी सेवा करती थी। राष्ट्रीय काग्रेसकी ही भाँति इसके विधानमे भी देशके विभिन्न नगरोमे वार्षिक आयोजनोकी व्यवस्था थी। भाईजीको सामाजिक सस्थाओमे कार्य करनेका प्रगाढ अनुभव था, इसमे उनकी गहरी रुचि भी थी। अत इस सस्थाकी ओर उनका आकर्षण हुआ। इसके आरम्भकाल स० १९७६से ही ये उसके सक्रिय सदस्य वन गये। महासभाके व्यवस्थापकोने इनका स्वागत किया। प्रथम अधिवेशन हैदरावादमे हुआ। इसके अध्यक्ष सेठ श्रीरामलाल गनेडीवाला थे। भाईजी समय-समयपर महत्त्व-पूर्ण मामलोमे उनसे परामर्श करने हैदरावाद जाया करते थे। स० १९७७मे ये महासभाकी वम्बई प्रान्तीय शाखाके मन्त्री चुन लिये गये। इसी वर्ष महासभाका द्वितीय अधिवेशन वम्बईमे आयोजित किया गया। उसकी सफलताका वहुत कुछ श्रेय भाईजीको था। इसके वाद तृतीय अधिवेशन कलकत्तामे और चौथा इन्दौरमे वडी धूमधाममे सम्पन्न हुए। भाईजी इन सभी अधिवेशनोमे सभाके एक प्रतिष्ठित कार्यकर्ताकी हैसियतसे भाग लेते रहे।

अग्रवाल महासभाकी समाज-सेवाका कार्यक्षेत्र वहुत विस्तृत था—वाल-विवाह, वृद्ध-विवाह-जैसी सामाजिक कुरीतियोका विरोध, धार्मिक पर्वो एव सामाजिक उत्सवोका सुरुचिपूर्ण ढगसे आयोजन, दीन-दु खियोकी सेवा, शिक्षा-प्रसार, राष्ट्रीय भावनाका प्रसार आदि।

शिष्ट होलीका आयोजन

उन दिनो वम्बईमे होलीके दिनोमे वडी हुल्लडवाजी होती थी। लोगोको कमरोके दरवाजे खुलवाकर जवरदस्ती वाहर निकाला जाता था और उनपर कीचड-राख आदि गदी वस्तुएँ डाली जाती थी। तरह तरहके अपशव्द वोले जाते थे और गदी तथा वीभत्स चेस्टाएँ की जाती थी। एक वार भाईजीको भी इसका शिकार वनना पडा। कुछ परिचित व्यक्तियोने इनके कमरेका दरवाजा खोलकर इन्हे वाहर निकाल लिया और इनपर कीचड आदि डाला। यद्यपि ये स्वय उसमे सम्मिलित नही हुए, किंतु दुर्दशा तो भोगनी ही पडी। इनके मनमे इसकी वडी प्रतिक्रिया हुई। इन्हे इस हुल्लडवाजीमे सिवा हानि तथा प्रमादके और कोई लाभ नही दिखायी दिया। भाईजीने होलीके इस वीभत्स स्वरूपको वदलनेका निश्चय किया। ये समाजके प्रतिष्ठित लोगो तथा नवयुवकोंमे मिले और उनको इसमे होनेवाली हानियाँ समझाकर इसके स्थानपर नगर-कीर्त्तन निकालनेकी योजना वनायी। यह निश्चय हुआ कि यदि किसीको कुछ डालना हो तो केवल रग, गुलाल आदिका प्रयोग कर सकता है। पहले तो परम्परावादियोने इस योजनाका वडा विरोध किया, किंतु ये अपने निर्णयपर दृढ रहे। अपने साथियोंके साथ घूम-घूमकर इन्होने लोगोको इसकी उपयोगिता वतायी। समाजके प्रवुद्ध वर्गपर इसका अच्छा असर हुआ। फिर एक-एक करके विरोधी भी इसमे सम्मिलित होने लगे और कुछ ही वर्षोंके प्रयाससे पुरानी अभद्रताएँ वहुत सीमातक वद हो गयी। इस योजनाकी सफलतासे भाईजी तत्कालीन वम्बईके हिंदू-समाजमे सुधारकोंके नेता माने जाने लगे। होलीपर की जानेवाली इस प्रकारकी वीभत्सताओके विरुद्ध भाईजीने 'कल्याण'मे भी कई लेख प्रकाशित किये।*

---

* होली हिंदुओका वहुत पुराना त्योहार है। आजकल जिस रूपमे यह मनाया जाता है, उससे तो धर्म, देश और मनुष्य जातिको वडा ही नुकसान पहुँच रहा है। यह त्योहार असलमे मनुष्य-जातिकी भलाईके लिये ही चलाया गया था। परंतु आजकल इसका रूप वहुत ही विगड गया है। इस समय अधिकाश लोग इसको जिस रूपमे मनाते हैं, उससे तो सिवा पाप

समाज-सुधार-विषयक इन कार्योंके अतिरिक्त भाईजी विभिन्न प्रकारसे अभाव-ग्रस्त लोगोकी सेवा भी किया करते थे। गुप्तरूपसे विधवाओ और अनाथोको सहायता, निर्धन विद्यार्थियोकी शिक्षा-व्यवस्था, रोगियो-दु खियोकी तन-मन-धनसे सेवा, विद्वानो-कलाकारोको प्रोत्साहन आदि । आर्थिक स्थिति अच्छी न होनेपर भी ये इन कार्योंके लिये घरके आवश्यक खर्चोपर नियन्त्रण कर रुपयेकी व्यवस्था येन-केन प्रकारेण कर लेते थे।

गुंडोंद्वारा प्रवञ्चित स्त्रियोंका उद्धार

भाईजीको अपने कुछ मित्रोसे ज्ञात हुआ कि नगरके कुछ अवाञ्छनीय तत्वोने एक बडा ही घृणित व्यापार चला रखा है। वे देशके सुदूर कोनोसे भोली लडकियो और स्त्रियोको भगाकर वम्बई ले आते है और उनसे वेश्यावृत्ति कराते है। इनका जाल सारे देशमे फैला हुआ था—अनेको दलाल थे—पुरुष और स्त्रियाँ दोनो ही। श्रीअच्युतमुनिजीके पुत्र शिक्षा प्राप्त करके उन दिनो वम्बईमे ही काम करते थे। उन्होने से इसकी चर्चा करते हुए किसी प्रकार अभागी स्त्रियोको पापका शिकार बननेसे बचानेकी व्यवस्था करनेका प्रस्ताव किया। उक्त महानुभावने भाईजीसे कहा—'यह वडा अमानुषिक कार्य हो रहा है। यदि हमलोग इस काममे कुछ कर सके तो वडा उपकार हो।' नारी-जातिके प्रति मातृबुद्धि होनेसे उनके सम्मान एव धर्मकी रक्षाके इस कार्यका भाईजीने हृदयसे समर्थन किया, किंतु सक्रिय सहयोग देनेमे असमर्थता प्रकट की। ये बोले—'भाई, काम तो वहुत वडी सेवाका है, पर वेश्यालयोमे जाना अपने वशकी वात नही है। इस सम्बन्धमे कोई और सेवा हो सके तो की जा सकती है।' हाँ, इन्होने कार्य-कर्त्ताओकी रक्षा-व्यवस्थामे पूरा सहयोग देनेका वचन दिया। इनसे प्रोत्साहित होकर श्रीअच्युतमुनिजीके पुत्र एव उनके सहयोगी विशुद्ध सेवाभावसे वेश्यालयोमे जाने लगे और वहाँ जो भी नवागत लडकियाँ दिखायी देती, उनसे वे परिचय पूछते, उन्हे अपने घरमे ले आते या अपने साथ सिनेमा ले जाते, वहाँ उनको समझा-बुझाकर उनके घरका पूरा पता आदि जान लेते, तव कभी किसी आदमीके साथ और कभी उनके परिवारवालोको बुलाकर उन्हे घर भेज देते थे। भाईजी इस सारी व्यवस्थाके सचालक थे। इस प्रकार कई स्त्रियोका उद्धार हुआ।

एक वार अनिवार्य परिस्थितियोमे भाईजीने भी उसी प्रकारकी एक पापरत लड़कीका उद्धार किया। वह लडकी पजावकी रहनेवाली थी । इस काण्डको लेकर गुडोने इनके विरुद्ध पुलिसमे रिपोर्ट कर दी। सी० आई० डी०के इन्सपेक्टर श्रीपटवर्धनने इन्हे वुलाया। भाईजीने उनको पूरी परिस्थिति वतला दी। श्रीपटवर्धन साहब

वढने और अधोगति होनेके और कोई अच्छा फल नही दीखता। अतएव सभी स्त्री-पुरुषोको चाहिये कि वे गदे कामोको विल्कुल ही न करे। इनसे लौकिक और पारमार्थिक दोनो तरहके नुकसान होते है।

फागुन सुदी ११से चैत वदी १तक नीचे लिखे काम करने चाहिये—

(१) फागुन सुदी ११ को या और किसी दिन भगवान्‌की सवारी निकालनी चाहिये, जिसमे सुन्दर-सुन्दर भजन और नामकीर्त्तन हो।

(२) सत्सङ्गका खूब प्रचार किया जाय। स्थान-स्थानमे इसका आयोजन हो, सत्सङ्गमे ब्रह्मचर्य, अक्रोध, क्षमा, प्रमादके त्याग, नाममाहात्म्य और भक्तिकी विशेष चर्चा हो।

(३) भक्ति और भक्तकी महिमाके तथा सदाचारके गीत गाये जायँ।

(४) फागुन सुदी १५को हवन किया जाय।

(५) श्रीमद्भागवत और श्रीविष्णुपुराण आदिमे भक्त प्रह्लादकी कथा सुनी और सुनायी जाय।

(६) साधकगण एकान्तमे भजन-ध्यान करे।

(७) श्रीश्रीचैतन्यदेवकी जन्मतिथिका उत्सव मनाया जाय। महाप्रभुका जन्म होलीके दिन ही हुआ था। उसीके उपलक्ष्यमे मुहल्ले-मुहल्ले घूम-घूमकर नाम-कीर्त्तन किया जाय। घर-घरमे हरिनाम सुनाया जाय।

(८) धुरेडीके दिन ताल, मृदङ्ग और झाँझ आदिके साथ वडे जोरसे नगर-कीर्त्तन निकाला जाय, जिसमे सब जाति और सभी वर्णोंके लोग वड़े प्रेमसे शामिल हो।

('कल्याण' वर्ष २, पृष्ठसख्या ३८१)

वडे ही सज्जन व्यक्ति थे। उनकी भी इस प्रकारकी प्रवञ्चित स्त्रियोके प्रति सहानुभूति थी। पर वे इस सेवाके गम्भीर परिणामोमे भी परिचित थे। उन्होने भाईजीको वडे प्रेमसे समझाते हुए कहा—'वदमाशोका एक वहुत वडा गिरोह हे, जो यह पाप-कर्म करता है। उनको किसीकी हत्या करनेमे सकोच नही होता। आप भले घरके व्यक्ति है, विशुद्ध सेवाभावसे इस कार्यमे पडे है, पर यह वडी जोखिमका काम है। कही आप इन वदमाशो-के कुचक्रके शिकार न हो जायँ। आपकी सरलताका वे दुरुपयोग करेगे और झूठा इलजाम लगाकर उल्टे आपको ही फाँस देगे। दूसरे, आप अभी नौजवान है। भगवान् न करे, कही आपके मनमे कुछ गडवडी आ गयी तो। आगके स्पर्शसे जलना सहज है। अतएव आप हमारी सलाह मानकर इस कार्यको छोड दे। हमलोग यथाशक्ति इस व्यापारको समाप्त करनेके लिये प्रयत्न करते रहेगे।' भाईजीको श्रीपटवर्धन साहवकी ये वाते युक्तिपूर्ण लगी। अतएव इन्होने उस कार्यसे अपना हाथ खीच लिया।

स्वाध्याय

कलकत्ताकी भाँति सत्साहित्यके अनुशीलनका क्रम वम्वईमे भी चला। वहाँ वॅगला-साहित्यका अध्ययन हुआ था, यहाँ मराठी और गुजरातीका। इनमे भी, पूर्वकी भाँति, भक्ति-साहित्यमे ही श्रीभाईजीकी विशेष रुचि रही और उस क्षेत्रमे इन्हे जो कुछ भी प्राप्त हो सका, वह इन्होने पढ डाला। मराठी और गुजरातीके विशाल वैष्णव भक्ति-साहित्यका इनके द्वारा आलोडन हुआ। गुजराती भाषामे श्रीकृष्णभक्त कवियो तथा वेदान्तके कई ग्रन्थोके भाष्य पढे। श्रीनरसी मेहताका साहित्य इन्हे विशेष आकर्षक लगा।

अरवीमे मुसल्मान सतोकी एक प्रसिद्ध पुस्तक थी, उसका गुजरातीमे अनुवाद प्रकाशित हुआ। श्रीभाईजीने उसे कई वार पढा और अपने मित्रोको भी सुनाया। पीछे इसका हिंदी रूपान्तर श्रीश्रीगोपाल नेवटियाने किया था इस ग्रन्थके अध्ययनसे इनके मनमे मुस्लिम सतोके प्रति आदरभावकी वृद्धि हुई।

मराठीमे इन्होने सत नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, पुरन्दरदास तथा समर्थ रामदासके चरित्र और रचनाओका अध्ययन किया। इससे इन्हे इन दोनो भाषाओके साहित्यका अन्तरङ्ग परिचय प्राप्त हुआ, जो कालान्तरमे इनके सम्पादकीय जीवनमे वडा उपयोगी सिद्ध हुआ। 'कल्याण'के सामान्य तथा विशेष अङ्कोमे ये इसी ज्ञानके आधारपर गुजराती तथा महाराष्ट्रीय सतोके जीवन-दर्शनके मर्मस्पर्शी वर्णमय चित्र प्रस्तुत कर सके। वे लेख यद्यपि भक्तिके दृष्टिकोणसे लिखे गये थे, फिर भी श्रीभाईजीके इन भाषाओके प्रगाढ साहित्य-ज्ञान एव प्रतिभाके कारण साहित्यिकता उनमे अपने-आप आ गयी।

लेखन

वम्वईमे ग्रन्थानुशीलनके साथ-साथ आध्यात्मिक विषयोपर निवन्ध लिखनेका भी क्रम चला। 'वेङ्कटेश्वर-समाचार' तथा कई अन्य स्थानीय पत्रोमे इनके लेख प्रकाशित होने लगे। उद्देश्य तो मात्र सद्विचारोका प्रचार था, किंतु इस प्रकार लिखते रहनेसे शैलीमे निखार स्वाभाविकरूपसे आने लगा। उन दिनो इन्होने अपनी साधनाके अनुभवोपर एव ऊँचे साधको तथा महात्मा पुरुषोकी अनुभूतियोके अध्ययन तथा मननके आधारपर एक छोटी पुस्तिका—'मनको वशमे करनेके उपाय' लिखी थी। इस पुस्तकमे मनके स्वरूपका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत करते हुए कुछ सरल साधनोका उल्लेख किया गया है, जिनके पालनसे मनका सयम सम्भव है। सचमुच साधकोके लिये यह वडी उपयोगी रचना है। पीछे तो 'कल्याण'का आरम्भ होनेसे लेखनकार्य तीव्रतासे होने लगा।

रामनामके आढतियाजीसे सम्पर्क

महापुरुषोके जीवनमे देखा गया है कि भगवान्को उनके द्वारा जो कार्य करवाना होता हे, उसके अनुरूप सहयोगियोकी व्यवस्था भी वे कर देते है। भगवान्को श्रीभाईजीद्वारा भगवन्नामके जप एव कीर्तनका प्रचार-प्रसार जगत्मे करवाना था। अतएव उन्होने श्रीभाईजीके पास एक अद्भुत नाम-प्रेमीको भेज दिया। ये सज्जन लक्ष्मणगढ (राजस्थान)के निवासी एक गृहस्थ महात्मा थे। इनका नाम था वालूरामजी। ये नवद्वीपके भक्त

श्रीरामकरणजीके अनुयायी थे। नवद्वीपका भगवन्नामसे एक विशेष सम्बन्ध है। श्रीश्रीमहाप्रभुके द्वारा वहाँके कण-कणमे नाम-कीर्तनका रस प्रवाहित है। आज भी हरिनाम-भक्तिका प्रभाव नवद्वीपमे वर्तमान है। अतएव नवद्वीप-वास एव नामप्रेमी श्रीरामकरणजीके सम्पर्कसे श्रीवालूरामजीमे भी नाम-प्रेमकी प्रवाहिणी प्रस्फुटित हुई थी। इनकी राम-नाम-साधना इतनी उच्चकोटिकी थी कि ये अहर्निश नशेमे मस्त हो झूमा करते थे। लौकिक भोगो तथा सुख-सुविधाओको तिलाञ्जलि देकर राम-नामरूपी रतनधन एकत्र करना ही इनके जीवनका मुख्य लक्ष्य वन गया था। इनकी भावदशाकी विचित्र कथाएँ सुनाते-सुनाते श्रीभाईजी स्वय आत्मविभोर हो जाते थे तथा श्रोताओं-को भी आत्मविभोर कर देते थे। श्रीभाईजीने इनके युवक पुत्रके निधनपर इनकी मनोदशाका वडा ही मर्मस्पर्शी वर्णन सुनाया था—

"जब वालूरामजीके जवान पुत्रकी मृत्यु हुई, तव वे बडे प्रेमसे करताल वजाते हुए शवके साथ चले। लोगोने समझा, शायद पागल हो गये हो। पर वात ऐसी नही थी। वे सर्वथा अपने आन्तरिक आह्लादसे ही कीर्तन करते जा रहे थे। जव लोगोको यह ज्ञात हुआ कि ये पूरे होश-हवासमे रहकर ही कीर्तन कर रहे है, तव एकसे नही रहा गया। उसने कहा—'भगतजी ! यह समय दूसरा है, आपको चुप रहना चाहिये।' भगतजी भला कव चुप रहनेवाले थे। उन्होने हँसकर जवाब दिया—'अरे ! उसी दिनकी तो वात है, जब मै कीर्तन करते हुए, करताल वजाते हुए इसे व्याहने ले गया था। अब भगवान्‌के घर जाते हुए इसके साथ कीर्तन करता जा रहा हूँ, तो कौन-सी वुरी बात है ?' लोग उत्तर सुनकर चुप हो गये।

"वडे ही प्रसन्नचित्तसे वे शव-सस्कार करके घर लौट आये। लोक-व्यवहारके अनुसार स्त्रियाँ सहानुभूति प्रकट करने आती और रोने लगती। ये लँगोट बाँध लेते और आँगनमे कीर्तन करते हुए नाचने लगते। स्त्रियाँ इन्हे नाचते देखकर चुप होकर अपने घर लौट जाती। बारह दिनोतक इनका यही क्रम रहा। श्राद्ध होनेतक ये धूमधामसे कीर्तन करते रहे। फिर रामनामकी आढत करते हुए घूमने लगे।"

सं० १९७८ वि०मे वालूरामजीका बम्वई-आगमन हुआ। श्रीभाईजीका उनसे परिचय हुआ और दोनोमे वडी आत्मीयता हो गयी।

भक्त वालूरामजी हरिनामका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही बम्वई आये थे। उनके कीर्तनका मन्त्र था—

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'

भक्त-मण्डली झाँझ-कारताल-ढोलक आदिके साथ कीर्तन करती थी। कीर्तन करते-करते वालूरामजीको भावावेश हो जाता था। वे उसीके प्रवाहमे आत्मविभोर हो नृत्य करते-करते मूर्च्छित हो जाते थे। श्रीभाईजी इनकी कीर्तन-निष्ठासे वहुत प्रभावित हुए। 'हरे राम ' मन्त्रका ये पहलेसे जप करते ही थे। इस मन्त्रके प्रति इनकी रुचि और वढी तथा इसके प्रचार-प्रसारमे इन्होने मानवताका त्राण अनुभव किया।

नाम-जपके अतिरिक्त अव भाईजीने कीर्तनका प्रचार आरम्भ किया। ये स्थान-स्थानपर कीर्तन-यज्ञोका आयोजन करने लगे। उन आयोजनोमे कीर्तन करते-करते भाईजी आत्मविभोर हो जाते थे। सच्चे नाम-प्रेमीकी वाणीसे निकली नाम-ध्वनि श्रोताओको भी नाम-प्रेमी वनाने लगी और अनेको व्यक्ति नाम-कीर्तन-प्रेमी हो गये।

मधु-संचय

सच्चा साधक मधु-सचयी होता है। जहाँ कोई पुष्प खिला दिखायी दिया कि वह वहीसे मधु वटोर लेता है। वम्वई-जीवनमे श्रीभाईजी सत-महात्माओ एव विद्वानोके दर्शन-सत्सङ्गकी वरावर चेष्टा रखते थे। जिन-जिनमे ये मिलते, वे भी इनकी पवित्रता, सरलता, निष्कपटता, साधनकी ओर सच्ची प्रवृत्ति आदिको देखकर मुग्ध हो जाते थे और इनपर अपना स्नेह उँडेल देते थे। भगवान्‌की कृपाका भाईजीके जीवनमे अवतरण हो रहा था और आगे चलकर उसका पूर्ण प्रकाश होनेवाला था। अतएव इनके व्यक्तित्वमे एक अद्‌भुत आकर्षण आरम्भसे ही विद्यमान था। श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी यह विशेषता उनकी चिरसङ्गिनी रही। जीवनके अन्तिम क्षणतक

जो भी इनसे मिला, वह इनका हो गया—फिर चाहे वह कितना ही बड़ा महात्मा विद्वान् धनपति राज्याधिकारी क्यों न हो।

अपनी मधु-मधुरी वृत्तिके कारण श्रीभाईजीका परिचय कब्बूभाई नामके गुजराती सन्तसे हुआ। वे सन्त अपने सत्सङ्गमें नित्य कीर्तन कराते थे। एक-दो बारके जानेसे ही श्रीभाईजीसे इनकी बड़ी आत्मीयता हो गयी। फिर तो श्रीभाईजी बहुत बार इनके दर्शन करते थे।

प० श्रीनरहरि शास्त्रीके साथ भी भाईजीका स्नेह-सम्बन्ध था। ये एक महाराष्ट्रीय विद्वान् थे। इनका गुजराती भाषामें गीतापर बड़ा सारगर्भित प्रवचन होता था। इसमें हजारोंकी भीड़ एकत्रित होती थी। श्रोताओंमें सभी तरहके लोग होते थे—बड़े-बड़े अधिकारी, वकील, जज, अध्यापक, व्यापारी आदि। प्रत्येक रविवारको प्रवचन होता था, जिससे सभी वर्गके लोगोंको लाभ उठानेका अवसर मिले। श्रीभाईजीपर ये बड़ा स्नेह रखते थे। इनके प्रवचनोंकी व्यवस्थामें श्रीभाईजीका भी हाथ रहता था।

इन संतोंके सांनिध्यसे श्रीभाईजीकी बढ़ती हुई आध्यात्मिक प्रवृत्तिको बल मिला।

इसी प्रकार प० श्रीहरिवक्सजी जोशीका सम्पर्क भी श्रीभाईजीके लिये बड़ा प्रेरणाप्रद रहा। श्रीजोशीजी राजस्थानके गाँगियानर ग्रामके रहनेवाले हैं। वे उस समय बम्बईमें वेंकटेश्वर-प्रेसके औषधालयमें प्रधान वैद्यके रूपमें कार्य करते थे। श्रीभाईजीके पास वे बराबर आया-जाया करते थे, बड़ी ही आत्मीयताका सम्बन्ध उनके साथ स्थापित हो गया था। श्रीजोशीजी संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित हैं और शास्त्र एवं साहित्यका अनुशीलन करना उनका व्यसन है। संस्कृतके हजारों-हजारों श्लोक उनको कण्ठस्थ हैं। भागवतकी ओर उनकी विशेष रुचि है। श्रीभाईजीको ये भागवतके श्लोक एवं उनका गूढार्थ सुनाया करते थे। श्रीकृष्ण-लीलाके श्लोकोंका सुन्दर रूपमें पाठ और उनका भाव सुनकर भाईजी तन्मय हो जाते थे। श्रीनारद-भक्तिसूत्रोंकी व्याख्या लिखते समय श्रीकृष्ण-भक्ति-सम्बन्धी ग्रन्थोंका थोड़ा अवलोकन एवं मनन श्रीभाईजीने किया था। श्रीजोशीजीके सङ्गसे भी श्रीकृष्ण-भक्तिका रस इनके अन्तर्हृदयमें भरता जा रहा था और धीरे-धीरे उसने एक विशाल मधु-सागरका रूप धारणकर इन्हें आत्मसात् कर लिया तथा उनकी उत्ताल तरंगोंके यत्किंचित् दर्शन जगत्‌के प्राणियोंको भी सुलभ हुए।

अध्यात्मभावनाका पुनरुद्रेक

इतने दिनोंतक लोक-जीवनकी विभिन्न पगडंडियोंपर चलते-चलते भाईजीको अनुभव होने लगा कि अन्य प्रकारके लौकिक कार्योंसे अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होनेपर भी समाज-सेवा या देश-सेवा जीवनका लक्ष्य नहीं बन सकता परम लक्ष्यकी प्राप्तिका साधन भले ही बन जाय। अतः व्यापार राजनीति और समाज-सेवाके स्तरोंको पार करता हुआ उनका मन-विहग गुरुत्वाकर्षणरहित साधनाके अनन्ताकाशमें विचरण करनेके लिये उद्विग्न हो उठा। अर्थोपार्जन देशभक्ति और समाज-सेवाके प्रति उत्साह जैसे-जैसे कम हुआ, उसी अनुपातमें भगवच्चरणोंके प्रति इनका आकर्षण बढ़ता गया। अब व्यापार राजनीति और लोकाराधनका स्वतन्त्र वृत्तिके रूपमें अस्तित्व असम्भव हो गया, वे भक्तिके अङ्ग होकर और उससे अनुरञ्जित होकर ही हृदयमें स्थान पा सकते थे। इस उत्कृष्ट मनोभूमिके निर्माणका उपक्रम जीवन-सूत्रका संचालक श्रीभाईजीके आविर्भावके पूर्वसे ही कर रहा था। उनके बम्बई-जीवनमें भी वही हो रहा था।

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका संसर्ग

अपनी छोटी बहिन अन्नपूर्णा बाईके विवाह (आषाढ शु० ४, सं० १९७६)के सदर्भमें श्रीभाईजी बाँकुड़ा गये थे और वहाँ इन्होंने कुछ दिन श्रद्धेय श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)का सत्सङ्ग-लाभ किया था। विवाह-कार्य करके ये बम्बई लौट आये थे, किंतु श्रीसेठजीके सत्सङ्गके प्रति इनके हृदयमें आकर्षण उत्पन्न हो गया। अतएव उनके पुनर्दर्शनकी इच्छा मनमें होती रहती थी। सयोगवश श्रावण १९७७में सेठ जमनालालजी बजाजने चक्रधरपुर जाकर श्रीसेठजीसे मिलनेका विचार किया। श्रीभाईजीको इसकी सूचना मिली। ये भी उनके साथ चक्रधरपुर चले गये। श्रीसेठजी श्रीभाईजीकी लेखन-योग्यतासे परिचित थे ही। उन्होंने अपनी दो छोटी

पुस्तिकाओ 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' और 'प्रेमभक्ति-प्रकाश'के भाषा-सस्कारका काम श्रीभाईजीको सौंपा। श्रीभाईजीने उनकी भाषा ही नही सुधारी, एक प्रकारसे उनका कायाकल्प कर दिया। श्रीसेठजी अपने मूल भावोको अत्यन्त स्पष्ट एव प्रभावशाली शैलीमे अभिव्यक्त देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया भाईजीके कलकत्ता-जीवनके घनिष्ठ मित्र थे। वहाँ रहते हुए ही भाईजीने उनका श्रीसेठजीसे परिचय करा दिया था। कालान्तरमे वे श्रीसेठजीके अनन्य भक्त हो गये। उनकी इच्छा रहती थी कि श्रीसेठजीका भाईजीको विशेष सानिध्य प्राप्त हो। इस विचारसे उन्होने भाईजीको एक पत्र लिखकर श्रीसेठजीको बम्बई बुलानेका सुझाव दिया। इसके फलस्वरूप भाईजीने स्वय तो श्रीसेठजीके पास तार और पत्र भेजे ही, अपने मित्रोको भी विनयपूर्ण पत्र भेजनेकी प्रेरणा दी। भक्तोका आग्रह देखकर श्रीसेठजीने स्वीकृति भेज दी।

सवत् १९७९को शरद् ऋतुमे श्रीसेठजी बम्बई पधारे। उनके साथ २०-२५ व्यक्ति कलकत्तासे गये थे। श्रीभाईजीकी प्रेरणासे स्टेशनपर सैकडो व्यक्तियोने श्रीसेठजीका भव्य स्वागत किया। सवारीका प्रवन्ध था। भीड अधिक होनेसे श्रीसेठजी स्वागतमे आये लोगोके साथ पैदल चलकर स्टेशनसे सुखानन्दजीकी धर्मशाला गये। एक जुलूस-सा हो गया था। श्रीसेठजी १० दिन बम्बई विराजे। उनका प्रवचन सुखानन्दजीकी धर्मशालामे 'निष्काम कर्मयोग'पर हुआ। कीर्तनकी व्यवस्था नर-नारायणजीके मन्दिरमे हुई। इसके बाद दूसरा व्याख्यान सुखानन्दजीके मकानपर हुआ। इसका विषय था—'नवधा-भक्ति'। फिर श्रीशिवनारायणजी नेमाणीकी वाडीमे गीता और स्त्रीधर्मपर उपदेश एव तत्त्व-विवेचनका क्रम चलता रहा। बडी सख्यामे स्त्री-पुरुष उनके प्रवचनोका श्रवण करते थे। श्रोताओकी सत्सङ्ग-निष्ठा देखकर श्रीसेठजी बहुत प्रसन्न हुए।

सत्सङ्गके कार्यक्रमका श्रीगणेश

श्रीसेठजीके पावन सत्सङ्गकी धारा बह रही थी। एक-एक करके दस दिन व्यतीत हो गये। अन्तिम दिन प्रवचन करनेके बाद श्रीसेठजीने सत्सङ्गी भाई-बहनोसे एक प्रार्थना की। उन्होने बडी ही विनम्रताके साथ आग्रह-भरे शब्दोमे कहा—'मेरे जानेके बाद आपलोग प्रतिदिन नियमसे सत्सङ्ग करे।' इसके उत्तरमे श्रीशिवनारायणजी नेमाणीने विनीतभावसे कहा—'सत्सङ्ग अवश्य होना चाहिये। नित्यप्रति होना चाहिये। सत्सङ्गके लिये स्थान तो मैं अपनी वाडी (धर्मशाला)मे कम-से-कम पाँच वर्षके लिये देता हूँ, पर वक्ताकी व्यवस्था आप करे।' श्रीसेठजी बोले—'ज्वालाप्रसादजी कुछ दिनोके लिये सत्सङ्ग करा सकते है। हाँ, एक बार तो उन्हे कलकत्ता जाना पडेगा। अपनी माताजीकी आज्ञा लेकर फिर यहाँ आ सकते है।' इस प्रसङ्गको आगे बढाते हुए उन्होने फिर कहा—'बाहरके व्यक्तिका बराबर रहना सम्भव नही, आपलोग इतने है, स्वय सत्सङ्ग चलानेकी चेष्टा करे। वक्ता यहाँ आपलोगोमेसे ही निकल आयेगा।' यह कहकर उन्होने भाईजीको आदेश दिया कि वे प्रतिदिन कुछ देरतक सत्सङ्गकी बाते कहा करे। श्रीभाईजीने बडे ही विनम्र शब्दोमे अपनी लाचारी व्यक्त की। उन्होने कहा—'अभी मेरा स्वयका जीवन भगवान्की ओर नही लग पाया है, मै दूसरोको इसके लिये किस मुँहसे कहूँ। मुझमे स्वय वैराग्य नही है, जगत्के मिथ्यात्वपर अभी दृढ आस्था नही जमी है। ऐसी स्थितिमे मेरा दूसरोको उसके विषयमे कुछ भी कहना एक प्रकारसे दम्भ ही होगा। पहले अपना जीवन वैसा बने, तब भगवान्की इच्छासे किसीको कुछ कहा जा सकता है।' पर श्रीसेठजीने आग्रह किया और बोले—'भगवच्चर्चा करनी है। भगवान्, शास्त्र एव सतोकी बाते पढकर सुना देनी है। यह उपदेश नही है। भगवान्के तथा भगवद्भक्तोके गुण, स्वभाव, महत्त्व आदिकी चर्चा करके स्वयको पवित्र करना है।' श्रीभाईजी सुन रहे थे। अन्तर्हृदयमे उन्हे भगवान्का सकेत प्राप्त हो रहा था—'सत्सङ्ग-चर्चा करनेके लिये तुम्हे शास्त्रोका अध्ययन-मनन करना होगा, उनकी बातोको स्मरण रखना होगा। इससे मन पवित्र होगा तथा वृत्तियाँ भगवान्की ओर लगेगी। अतएव सत्सङ्ग-चर्चा तुम्हारी साधनामे सहायक सिद्ध होगी।' भगवान्के इस सकेतको पाकर श्रीभाईजी नतमस्तक हो गये। श्रीसेठजीने इसे इनकी स्वीकृति मान ली। श्रीभाईजीने सत्सङ्ग करानेका भार स्वीकार कर लिया, इससे सभी भाई-बहनोको बड़ी

प्रसन्नता हुई। सभी श्रीभाईजीके पवित्र सात्त्विक जीवन एवं उनके भगवद्विश्वासमें परिचित थे। सभीके हृदयमें उनके प्रति बड़ी आत्मीयता, प्यार और स्नेह भी था।

श्रीभाईजीकी स्वीकृति मिलनेपर श्रीसेठजीको विश्वास हो गया कि अब बम्बईमें नियमितरूपसे सत्सङ्ग होने लगेगा तथा लोगोंमें भगवद्भाव बढ़ेगा। दस दिनतक श्रद्धालुओंको ज्ञान, कर्म और भक्तिकी त्रिवेणीमें अवगाहनका सुयोग प्रदानकर श्रीसेठजी अपने साथियोंके साथ बाँकुड़ा चले गये।

सत्सङ्ग-भवनकी स्थापना

भगवान्‌की अन्तःप्रेरणा एवं श्रीसेठजीके आदेशानुसार नेमाणी-वाड़ीमें भाईजीने सत्सङ्ग कराना आरम्भ किया। इनके सामने एक कठिनाई थी कि धार्मिक विषयोंपर प्रवचन करनेका इन्हें अभ्यास नहीं था। कलकत्ताके राजनीतिक जीवनमें व्याख्यान देनेका अभ्यास हुआ था अवश्य, किंतु उसका विषय इससे भिन्न था—दोनोंमें पूर्व-पश्चिमका अन्तर था। भगवत्कृपाके जो दर्शन पद-पदपर इन्हें हो रहे थे, उसके परिप्रेक्ष्यमें श्रीभाईजीने शिमलापालमें शास्त्रोंका अध्ययन किया ही था, और भी अध्ययन होने लगा। भगवान् हृदयमें बैठकर नये-नये भावोंका स्फुरण कर रहे थे। अतः इस दायित्वके निर्वाहकी चिन्ता इनके मनमें नहीं थी। नेमाणी-वाड़ीमें एक बड़ा हाल था तथा कुछ कोठरियाँ। कोठरियोंमें एक छोटा-सा पुस्तकालय खोल दिया गया और हालमें प्रतिदिन सवेरे एवं रात्रिमें सत्सङ्ग चलने लगा। श्रीभाईजीकी विषयको स्पष्ट करनेकी शैली, इनकी सरल-मधुर भाषा, प्रवचन करते समय इनके शरीरकी सात्त्विक भाव-भङ्गिमा आदि श्रोताओंको मन्त्र-मुग्ध बना देती थी। इतना ही नहीं, सत्सङ्गमें सुनी बातोंको अपने जीवनमें उतारनेका निश्चय बहुत लोगोंने किया। हृदयकी सचाईसे कहे हुए शब्दोंका प्रभाव होना स्वाभाविक था। वाड़ीमें प्रातःकाल गीता-शिक्षाकी भी व्यवस्था थी। कुछ लोग वहाँ गीता पढ़नेके लिये आते थे। वाड़ीकी सँभालके लिये एक नेपाली पण्डित रखे गये। वे कई वर्ष वहाँ रहे, बड़े सात्त्विक विचारोंके थे। कुछ ही दिनोंके अभ्यासके अनन्तर भाईजीका गीतापर धाराप्रवाह प्रवचन चलने लगा। यह क्रम कई वर्षोंतक चला। गीताकी दो आवृत्तियाँ पूरे विस्तारके साथ समाप्त हुईं। सोलहवें अध्यायके पहले तीन श्लोकोंकी व्याख्या लगातार कई महीनोंतक चलती रही। इन श्लोकोंमें भगवान्‌ने दैवी सम्पद्‌को प्राप्त पुरुषके लक्षणोंका उल्लेख किया है। श्रीभाईजीने भगवान्‌की वाणीकी व्याख्या बड़े विस्तारसे की और दैवी-सम्पदाके एक-एक लक्षण—अभय, दान, दम, तप, आर्जव आदिपर बड़ी सूक्ष्म एवं रहस्यपूर्ण बातें बतायीं। अठारहवें अध्यायके छाछठवें श्लोक—

> सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
> अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

—पर भी एक महीने प्रवचन हुआ। गीतापर आचार्योंके जो भाष्य एवं टीकाएँ हैं, उन सबकी व्याख्या करके ये सुनाते। साथ ही श्लोकोंपर अपने मनमें नये-नये भावोंकी जो स्फूर्ति होती, उसका वर्णन भी करते जाते। सत्सङ्गमें प्रतिदिन साठ-सत्तर भाई-बहन उपस्थित होते थे। आजके भौतिक युगमें बम्बई-जैसी मोहमयी नगरीमें विशुद्ध सत्सङ्गकी दृष्टिसे होनेवाले आयोजनमें इतने व्यक्तियोंका नियमितरूपसे उपस्थित होना इस आयोजनकी बड़ी सफलता थी।

कुछ दिनों बाद श्रीभाईजी रात्रिमें रामचरितमानसपर भी प्रवचन करने लगे। प्रवचन आरम्भ करनेके पहले प्रतिदिन 'वर्णानामर्थसंघानाम्'से लेकर 'बंदउँ गुरु पद कंज'तक स्तुति करते। फिर प्रवचन आरम्भ होता। बड़ा ही गम्भीर, ओजस्वी और प्रभावपूर्ण विवेचन करते। श्रोता मुग्ध हो जाते।

भाईजीके इस सत्सङ्गमें अच्छे-अच्छे लोग आते थे। उसमें मारवाड़ी, मराठी और गुजराती—सभी वर्गोंके लोग रहते थे। सेठ जमनालालजी बजाज जब-जब बम्बईमें रहते, बराबर उपस्थित होते थे। गाँधीजीके अनुयायी श्रीकृष्णदास जाजू नियमितरूपसे आते थे। बीच-बीचमें साधु-महात्मा भी पधारते रहते थे। श्रीभाईजी उनका बड़ा आदर-सम्मान करते और उनसे सत्सङ्ग करवाते थे। महात्माओंके आग्रहसे प्रतिदिनके सत्सङ्गका कार्यक्रम

भी चलता था। उन दिनो वम्वईमे वहुधा आनेवाले अथवा वही रहनेवाले विद्वानो एव महात्माओमे मुख्य थे—श्रीअच्युतमुनिजी, श्रीभोलेवावा, श्रीहरिवावा, स्वामी योगानन्दजी, स्वामी एकरसानन्दजी, स्वामी कृष्णानन्दजी, वल्लभ-सम्प्रदायके आचार्य गोस्वामी गोकुलनाथजी, रामानुज-सम्प्रदायाचार्य स्वामी अनन्ताचार्यजी, महामहोपाध्याय प० गोपीनाथजी कविराजके गुरु स्वामी विशुद्धानन्दजी, स्वामी भास्करानन्दजी, स्वामी उत्तमनाथजी, अहमदावादके प्रसिद्ध सन्यासी स्वामी अखण्डानन्दजी आदि-आदि। 'सत्सङ्गभवन'की प्रवचन-मालाके सयोजकरूपमे भाईजीकी इन महात्माओके साथ केवल जान-पहचान ही नही रही, एक ही पथके पथिक होनेके नाते गाढी मित्रता-सी हो गयी, जिससे आगे चलकर 'कल्याण'के सम्पादन-कालमे इन्हे उनका अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ।

गीता-शिक्षककी भूमिका

भाईजीके प्रवचनोका लोगोपर वडा प्रभाव पडा। उनसे आकृष्ट होकर स्थानीय मारवाडी विद्यालयके प्रिसिपल श्री एन० एम० लालानीने एक दिन श्रीभाईजीसे कहा—'आप हमारे वालकोको एक घटे गीताकी शिक्षा दिया करे तो वडी कृपा हो। इससे वच्चोका वडा कल्याण होगा।' भाईजी इस विद्यालयकी कार्यकारिणी समितिके सदस्य थे तथा वालकोके चारित्रिक विकासमे इनकी सदासे रुचि रही थी। अत इन्होने सहर्ष स्वीकृति दे दी। श्रीभाईजी नियमितरूपसे विद्यालयमे जाते और छात्रोको वडे ही प्यारसे एक घटे गीता-सम्वन्धी सुन्दर-सुन्दर वाते सुनाया करते थे। श्रीभाईजीकी स्नेहपूर्ण वातोको वच्चे वडे ही प्रेमसे सुनते थे। उनकी गीताके प्रति आस्था वढने लगी। गीताज्ञान वडा ही गम्भीर है, उसमे ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारीके लिये पर्याप्त सामग्री है तथा साधारण-से-साधारण व्यक्तिके लिये भी। अतएव श्रीभाईजी वच्चोको गीताका कुछ परिचय प्राप्त हो जाय, इस हेतुसे उसके चुन-चुनकर कुछ अध्याय पढाने लगे। गीताकी साप्ताहिक एव पाक्षिक परीक्षाएँ भी होती थी। श्रीभाईजी वच्चोको प्रेरित करते हुए समझाते थे—'जो वाते वतलायी जाती है, तुमलोग उनपर मनन करके इनसे अपने जीवनमे कुछ भी लाभ उठा सकोगे तो मैं अपनी सेवा सफल समझूँगा।' श्रीभाईजीके स्नेहभरे व्यवहार एव आडम्वरशून्य पवित्र सच्चे आचरणका वहाँके अध्यापको आदिपर वडा प्रभाव पडा। प० श्रीरमापतिजी शास्त्री उन दिनो उस पाठशालामे अध्यापनकार्य करते थे। वे वरावर कहते थे—'हनुमानप्रसादजी-जैसे गीताके अनुसार आचरण वनानेवाले पुरुष विरले ही मिलेगे।' प्रसिद्ध समाजवादी नेता स्वर्गीय डा० राममनोहर लोहिया उन दिनो इस विद्यालयके विद्यार्थी थे। भाईजीकी गीता-शिक्षाकी वात उन्हे जीवनभर स्मरण रही। अपने व्याख्यानोमे उन्होने कई वार इसकी चर्चा की और भाईजीसे जव-जव मिलते, उनके उस समयके स्नेह-सौहार्दका वर्णन करके पुलकित हो जाते थे।

निराकारकी साधना

श्रद्धेय सेठजी जव १० दिनके लिये वम्वई पधारे थे, तव श्रीभाईजीने उनसे निर्विशेप ब्रह्मकी धारणा एव ध्यानकी काफी चर्चा की थी। उन दिनो इनकी चित्तवृत्ति निर्गुण-निर्विशेष ब्रह्मके ध्यानकी ओर अधिक थी। ये नियमितरूपसे ध्यान करते थे। श्रीसेठजीके सत्परामर्शसे उस ध्यानमे इन्हे विशेष लाभ हुआ था। उन दिनो इनकी ध्यानकी स्थिति कितनी ऊँची थी, इसका कुछ परिचय श्रीभाईजीके श्रद्धेय सेठजीको लिखे पत्रोसे मिलता है। नीचे हम केवल तीन पत्रोका मुख्य अश उद्धृत कर रहे है—

स० १९८० वि० वैशाख मासके एक पत्रमे लिखा है—'मेरे ध्यानकी स्थिति ठीक लगती है। कार्य करते समय समष्टि चेतनमे स्थिति निरन्तर वनी रहती है। यो भी शायद कहा जा सकता है कि कार्य-कालमे क्रियासहित और जो कुछ भी भान होता है, वह स्वप्नकी सृष्टिवत् होता है। साथ-ही-साथ यह प्रत्यक्ष-सा भास होने लगता है कि स्वप्नवत् भी नही है। वास्तवमे परमात्मा-ही-परमात्मा है। ऐसी स्थितिमे किसी-किसी समय विल्कुल अचिन्त्य अवस्था हो जाती है। तव कार्यमे रुकावट भी आती है। ध्यान करते समय तो अव प्राय वाहरके शब्दोका भी ख्याल नही रहता। सारे आकारोका अभाव करनेवाली वृत्ति भी शान्त होकर अचिन्त्यके अस्तित्वमे विलीन हो जाती है। केवल वोधस्वरूप आनन्दघन ही रह जाता है। ध्यानके वाद और समय जो

स्थिति रहती है, वह ऊपर लिखी ही गयी है। शरीरको या जगत्को सत्य मानकर तो शरीरसे स्थिति कभी होती ही नहीं। पर न जाने क्यों जगत्की क्रियाओंसे, जो शरीरद्वारा होती है और जो समय-समयपर केवल स्वप्नकी सृष्टि या आकाशमें तिरमिरोंके समान ही अपना अस्तित्व रखती हैं, उनसे भी उपराम होनेकी स्फुरणा होती है। ऐसी स्फुरणा होती है कि ये क्रियाएँ भी न हों तो अच्छा है। आपके साथ या किसी गङ्गा-तीरवर्ती देशमें रहा जाय तो ठीक है। पर ऐसी स्फुरणा होते समय भी जगत्का अस्तित्व स्वप्नवत् ही रहता है। यह अच्छी बात है और जो कुछ मेरे लिये ठीक समझा जाय, लिखना चाहिये। ध्यानकी स्थिति निरन्तर गाढ़ बनी रहे, जगत्की स्वप्नवत् स्फुरणा भी न हो।'

सं० १९८० वि० श्रावण मासके पत्रमें श्रीभाईजीने लिखा था—'रातमें सोनेके अतिरिक्त अन्य समयमें अधिकांश कालमें प्राय इस प्रकारकी भावना हुआ करती है। किसी समय भूल हो जानेपर फिर तत्क्षण भावना जाग्रत् हो जाती है। भूलकी स्थिति अधिक कालतक नहीं रहती। जगत् स्वप्नवत् मृगतृष्णाके जलवत् प्रतीत होने लग जाता है। इस प्रकारकी स्थिति है। हर्ष-शोकका विकार बहुत ही कम होता है। अब मेरे लिये जो कुछ ठीक समझा जाय, उसी तरह करना चाहिये।'

सं० १९८० वि० कार्तिक मासके पत्रमें लिखा—'पत्र लिखते समय आनन्दमय, बोधस्वरूप परमात्मामें प्रत्यक्षवत् स्थिति है। कलममें अक्षर लिखे जा रहे हैं। लिखनेकी जो स्फुरणा हो रही है, वह सच्चिदानन्दके अन्तर्गत कल्पितरूपमें भास रही है। कभी-कभी यह भी नहीं भासती। एक परमात्माके अतिरिक्त किसी भी वस्तुके अस्तित्वका अनुभव नहीं रह जाता। मानो अनन्त जलके अथाह समुद्रमें एक बर्फ-पिण्डके आकारकी प्रतीति हो रही थी, वह भी मिट गयी। केवल जल-ही-जल रह गया—फिर भी कलम चल रही है, लिखा जा रहा है। हाँ, बोधस्वरूप आनन्द, भूमानन्दकी स्थितिमें कोई अन्तर आता हुआ नहीं दीखता। स्थिति क्या है, वह लिखा नहीं जा सकता—बहुत देर बाद फिर लिखनेकी स्फुरणा-सी अनुमान होती है, पर भाव उसी तरह हैं। इस समय जैसी स्थिति है, वह सदा एक-सी नहीं रहती। बीच-बीचमें कुछ परिवर्तित-सी दीखती है। पर परिवर्तन-कालमें भी अधिक-से-अधिक इतना ही परिवर्तन होता है—अचिन्त्यकी स्थितिमें एक प्रकारके अनुभवगम्य आनन्दकी स्थिति तथा इससे भी कुछ नीचे आनन्दकी स्थितिके द्रष्टाकी स्थिति होती है। काम करते समय, जिस समय विषयोंकी स्फुरणा होती है, उस समय उस शरीरके सहित और सारे विषय अपने समष्टि, सर्वव्यापी चेतनस्वरूपमें कल्पित भ्रमवत् ही प्रतीत होते हैं, पर प्रतीत अवश्य होते हैं। हाँ, कभी-कभी इस तरह होते-होते विषयोंके अस्तित्वकी प्रतीति भी सर्वथा नष्ट हो जाती है। कोई वृत्ति अवशिष्ट नहीं रहती। एक अनुपम, अनिर्वचनीय, अप्रमेय आनन्दकी इन्द्रिय-मन-बुद्धिसे अतीतकी अवस्था प्राप्त हो जाती है। वह अवस्था पीछे अच्छी तरह स्मरण भी नहीं रहती, विस्मृत भी नहीं होती, शब्दोंमें उसका वर्णन नहीं कर पाता।'

इन उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है कि ज्ञानकी बातें श्रीभाईजीके लिये केवल सुनने-सुनानेकी चीज नहीं थीं, बल्कि वे सचमुच इनके अन्तस्तलमें जा पहुँची थीं। उन दिनों जगत् इनके लिये सत्य वस्तु नहीं रह गया था। पर इससे यह नहीं समझना चाहिये कि जगत्को मिथ्या माननेके साथ आजकलके ज्ञानाभिमानीकी भाँति ये भगवान्के विग्रह-अवतार आदिको भी मिथ्या—कल्पित मानते थे। उन दिनों इनके ध्यानकी ऐसी ऊँची अवस्था थी कि रात्रिमें लगातार नौ-नौ घंटे वे समाधिस्थ-से रहते थे। एक बार सत्सङ्गकी चर्चा करते हुए इन्होंने बताया—'ध्यानकी उस अवस्थामें मुझे शरीरका बिल्कुल ध्यान नहीं रहता था। यदि उस अवस्थामें मेरे शरीरमें कोई सुई चुभो देता तो मुझे उसकी बिल्कुल भी प्रतीति नहीं होती—ध्यानकी इतनी गाढ़ अवस्था होती थी और व्यवहार करते समय यह प्रतीति होती थी कि आकाशमें तिरमिरोंकी भाँति जगत् शुद्ध अनन्तानन्द बोधस्वरूपानन्द ब्रह्ममें भ्रमवत् है।' परन्तु इस स्थितिमें भी श्रीभाईजीकी भगवान् तथा भगवन्नामपर आस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। भगवान्के साकार-विग्रहके प्रति इनके मनमें यह भाव कदापि नहीं था कि यह भी तिरमिरोंकी भाँति एक मिथ्या प्रतीति है। वे तो भगवान् तथा भगवन्नामकी कृपाका पद-पदपर अनुभव करते थे।

भगवान् श्रीरामके दर्शन

ज्ञानकी साधनाके साथ-साथ नामजपका क्रम बराबर चल रहा था। भगवान्‌को इन्हें ज्ञानकी चरम अनुभूति कराकर अपने सगुण स्वरूपमे ही लीन कर लेना था। अतएव उन्होने अपनी अहैतुकी कृपासे एक विशेष अनुभूति श्रीभाईजीको करवायी। इस अनुभूतिका उल्लेख श्रीभाईजीने इस प्रकार किया था——

"प्रसङ्ग सम्भवत. सवत् १९७९ वि०का है। मेरे एक मित्र थे श्रीसागरमलजी गनेडीवाला। मै तथा वे दोनो ही नवयुवक थे। उन दिनो मै कभी-कभी धार्मिक नाटक देख लिया करता था। एक नाटक-कम्पनीमे 'भक्त सूरदास' नाटकका अभिनय होनेवाला था। श्रीसागरमलजी मेरे घरपर आये और बोले——'भाईजी, भक्त सूरदास नाटक देखने चलिये।' मै उनके साथ चल दिया। रास्तेमे मुझे प्यास अनुभव हुई। श्रीसुखानन्दजीकी चाल (मकान) रास्तेमे ही पडती थी। श्रीसुखानन्दजी श्रीसागरमलजीके फूफा थे और श्रीसागरमलजी उन्हीके यहाँ रहते थे। श्रीसागरमलजीने कहा——'भाईजी ! कहाँ पानी खोजेगे ? अपने घरपर ही चलिये, वही पानी पिया जाय।' हम दोनो घरपर पहुँचे। पानी पीनेके लिये बैठे थे कि परस्परकी चर्चामे रामनामके महत्वका प्रसङ्ग छिड गया। श्रीसागरमलजी नामके प्रेमी थे, पर उनका कहना था——'समझकर लिये बिना भगवान् रामके नामसे कोई लाभ नही होता। राम-शब्दको भगवान् रामका नाम समझकर लेनेसे ही लाभ होता है, अन्यथा नही।'

"मेरा विश्वास भगवान्‌के नामपर दूसरे ही ढगका था। मैने कहा——'किसी प्रकारसे राम-नाम लिया जाय, लाभ होता ही है। 'राम' शब्दके यदि 'रा' और 'म'——ये दो अक्षर मुखसे निकल गये तो प्राणीकी सद्‌गति होगी——इसमे तनिक भी सदेह नही है।'

"श्रीसागरमलजीके गले यह बात नही उतरी, उन्होने इसपर विवाद छेड दिया। मैने उन्हे एक कथा सुनाकर कहा——'मरते समय किसीके मुखसे 'हराम' शब्द निकल गया, इसीसे उसकी सद्‌गति हो गयी ! कारण, 'हराम' मे 'राम' शब्द सम्मिलित है।'

"श्रीसागरमलजीने पुन तर्क किया——'राम' शब्दको अग्रेजीमे 'आर' 'ए' 'एम' (RAM) लिखा जाता है और इस शब्दका अग्रेजी भाषाके अनुसार अर्थ होता है——'मेढा'। यदि कोई अग्रेज मरते समय मेढेके भावसे 'राम' पुकार उठे तो क्या उसकी सद्‌गति हो जायगी ? उस अग्रेजके ज्ञानमे 'राम'का अर्थ मेढेके अतिरिक्त कुछ है नही। बोलिये, क्या उत्तर है ?'

"मैंने कहा——'ज्ञान-अज्ञानसे, श्रद्धा-अश्रद्धासे, भावसे-अभावसे-कुभावसे——किसी भी प्रकारसे यदि जिह्वापर रामका नाम आ जाय तो भगवान्‌का नाम तार देता है। मेरे विश्वासके अनुसार उस अग्रेजकी गति हो ही जानी चाहिये।' यह विवाद हो ही रहा था कि मेरी बाह्य चेतना लुप्त हो गयी।

"पीछे क्या हुआ, यह मुझे पता नही, पर होश होनेपर श्रीसागरमलजीने मुझे बताया था कि 'तुम्हारी आँखे खुली थी, पर बाह्यज्ञान नही था। तुम ज्यो-के-त्यो उसी स्थानपर बैठे रहे। मैने सोचा कि तुम बेहोश हो गये हो। मैं रातभर तुम्हारे पास बैठा रहा। मै तो घबरा गया था कि क्या हो गया। सबेरे बडी कठिनतासे तुम्हे उठाया, सीढियोसे नीचे ले गया, मोटर मँगवायी और मोटरमे बैठाकर तुम्हे घरपर पहुँचाया। साथमे मै गया। घर पहुँचनेपर मैने तुम्हे शौचसे निवृत्त होनेके लिये कहा, पर तुम्हे बिल्कुल होश नही था, तुमने मेरी बातका उत्तर नही दिया। तुम उसी प्रकार बाह्यज्ञान-शून्य थे। मेरे मनमे आया——तुम्हारे सिरपर ठडा पानी डाला जाय। मैने तुम्हे पकडकर पानीके नलके नीचे बैठा दिया। तुम्हारे सिरपर नलसे पानीकी धार गिरने लगी। इसी बीच सगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्बरको तुम्हारी ऐसी स्थिति हो जानेकी सूचना भेज दी गयी थी। श्रीविष्णु दिगम्बर सूचना प्राप्त होते ही चले आये। घरवाले तथा हमलोग सब परीशान थे, बडी चिन्ता हो रही थी। श्रीविष्णु दिगम्बरने आते ही तुमको देखा और बोले——'कुछ मत करो। इन्हे शान्त रहने दो।' उन्होने अपने दो विद्यार्थियोको बुलवाया और स्वय तानपूरा लेकर उनके साथ——

'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम।'

कीर्तनकी मधुर ध्वनि छेडी । तुम बीचमे बैठे थे और चारो ओर अन्य लोग थे। सम्भवत पौन घटेतक कीर्तन होनेके बाद तुमको होश आया । रात्रिके ९ बजेसे प्रात ९ बजेतक लगभग बारह घटे यह स्थिति बनी रही ।

"होश आनेपर मैं सकुचा गया। मैंने श्रीविष्णु दिगम्बरको प्रणाम किया। सब पूछने लगे—'क्या हुआ, क्या देखा ?' मैने कहा—'मुझे इतना ही स्मरण है वनवेषधारी भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और श्रीसीताजीके दर्शन हुए । कितनी देरतक हुए, यह याद नही है। बाते भी हुई थी, पर सब बाते स्मरण नही। केवल दो ही बाते याद हे—एक तो भगवान्ने यह कहा कि 'किसी भी प्रकारसे भगवन्नाम लेनेवालेकी सद्गति होगी ही।' दूसरी बात, भगवान्ने परम भक्त श्रीविष्णु दिगम्बरका नाम इसी सिलसिलेमे लिया था। इसके अतिरिक्त और कुछ याद नही ।'

"श्रीसागरमलजीने मुझे याद दिलाना चाहा—'तुम रातको उस समय कह रहे थे कि 'ये है भगवान्, इनके चरण पकड लो।' पर मुझे इन शब्दोकी स्मृति नही थी। इस प्रसङ्गको सुनकर श्रीविष्णु दिगम्बर तो स्नेहातिरेकसे रोने लगे थे।"

शिरोवेदना और उसका उपचार

श्रीभाईजीके हृदय एव मस्तिष्क—दोनो ही भगवान्से जुडते जा रहे थे । भगवान्के निर्विशेष ब्रह्म-स्वरूपकी ज्योति मस्तिष्कको उद्भासित कर रही थी तथा रसमय भाव हृदयमे सचित होता जा रहा था। यद्यपि ये सारी बाते भगवत्कृपासे ही इनके जीवनमे हो रही थी, तथापि निमित्तकी दृष्टिसे कहा जा सकता हे कि इनकी साधनाकी लगन भी अद्भुत ही थी। साधनाकी तत्परता ऐसी थी कि ये रातमे नीद प्राय दो-ढाई घटेसे अधिक नही लेते थे। कामकाज अथवा अन्य पारमार्थिक प्रचारमे शरीरको, मस्तिष्कको काफी परिश्रम पडता था। फिर भी ये बडी लगनके साथ रात्रिमे साधना करते। परतु शरीर तो आखिर प्राकृतिक नियमोके बन्धनमे ही रहता हे। नीद न लेनेके कारण इनके सिरमे भयानक पीडा प्रारम्भ हुई। बडे-बडे वैद्य-डाक्टरोके द्वारा औषधोपचार हुआ। हजारो रुपये खर्च किये गये, पर कोई लाभ नही हुआ। श्रीयादवजी त्रीकमजी महाराज उस समय बम्बईके प्रसिद्ध वैद्य थे। उन्होने वैद्यकशास्त्रपर कई अच्छे ग्रन्थ लिखे है। श्रीयादवजी भाईजीपर बडा स्नेह रखते थे और इनके घर बराबर आया करते थे। एक दिन भाईजीने अपने सिरदर्दकी चर्चा श्रीयादवजीसे की। उन्होने कहा—'औषधके चक्करमे न पडकर तुम नगे सिर रहनेका अभ्यास करो ।' उन दिनो नगे सिर रहनेकी समाजमे प्रथा नही थी, पर श्रीयादवजी महाराजकी आज्ञा मानकर इन्होने नगे सिर रहना आरम्भ किया। आरम्भमे ५-७ दिन तो इन्हे कुछ दिक्कत अनुभव हुई, किंतु पीछे सिरका दर्द ठीक हो गया। इसके बाद गर्मियोके दिनोमे भी ये बिना छाता लगाये घूमते थे। केवल वर्षासे बचनेके लिये छाताका प्रयोग करते थे। सिरका दर्द इस भाँति एक बार बद होकर फिर जीवनमे कभी नही हुआ।

प्रार्थनाके चमत्कार

भगवत्स्मरणके अतिरिक्त समस्त कार्योको प्रपञ्चका ही प्रतिरूप मानकर भाईजी अपनी वृत्तियोको समेटकर निरन्तर साधना-रत रहने लगे। शनै-शनै आध्यात्मिक जीवन विकसित हो रहा था। इस विकासमे तीव्रता उत्पन्न करनेके लिये भगवान्ने इन्हे अपनी कृपाकी कुछ झाँकियाँ दिखाना आरम्भ किया।

एक गुजराती सज्जनको फाटके (सट्टे)मे बडा घाटा लगा। उस समय उन्हे कोई सहायक नही मिला। भाईजीका उनसे परिचय था। उनके मनमे आया—भाईजीके पास चला जाय। इनके पास आकर उन्होने करुणा-पूर्ण हृदयमे सारी परिस्थिति बता दी तथा २७ हजार रुपये उधार मॉगे। इनका हृदय दयासे पूर्ण तो आरम्भसे ही था, भजनके प्रभावसे और भी कोमल होता जा रहा था। इन्होने बिना अपने साझेदारसे परामर्श किये रोकडमे लिखे एकमुश्त सत्ताईस हजार रुपये उन्हे अपने रोकडियेसे दिला दिये। वे रुपये लेकर चले गये, पर

जिस दिन रुपये वापस करनेका वचन दे गये थे, परिस्थितिवश उस दिन न लौटा सके। उधर दूसरे दिन ही साझेदारद्वारा रोकड़ सँभाली जानेवाली थी। न तो इन्होने कोई वेईमानी की थी न उन गुजराती सज्जनके मनमे ही कोई वेईमानी थी, पर परिस्थिति ऐसी हो गयी थी कि दूसरे दिन रोकड़ सँभालते समय इन रुपयोके सम्वन्धमे पूछे जानेपर इनके पास कोई उत्तर न था। सम्भव था, सच-सच वतला देनेपर भी इनका विश्वास साझेदारको उस समय न होता और ये वेईमान सिद्ध हो जाते। इन सव वातोको सोचकर इनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो गया। सत्ताईस हजार रुपये कहीसे उधार मिलनेका भी ढग नही था। अत सर्वथा उद्विग्नचित्तसे ये दूकानसे वाहर निकल पडे। निरुद्देश्य चले जा रहे थे। जिह्वा भगवन्नामकी रट लगा रही थी। दो-तीन मील पैदल चले गये। यह भी पता नही था कि किस पथसे किस ओर जा रहे है। हठात् एक मित्रसे भेट हो गयी। उसने पूछा—'उदास क्यो हो ? कहाँ जा रहे हो ?' इन्होने कहा—'यो ही।' मित्रने आग्रहसे पूछा—'वताओ, क्या वात है ?' इन्होने वतला दिया—'सत्ताईस हजार रुपयेकी जरूरत है।' मित्रने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—'आज मेरे रुपये आनेवाले थे। चलो, वैंकमे पता कर ले। यदि आये होगे तो मै तुम्हे दे दूँगा।' भगवान्की कृपाशक्ति पर्देके पीछेमे सव सँभाल रही थी। सयोगसे सामने ही इडिया वैंक था। दोनो मित्र ठीक वैंकके सामने फुटपाथपर मिले थे। अत दोनोको वैंकमे जानेमे विलम्व नही हुआ। मित्रने जो सहानुभूति प्रकट की थी, उसमे सर्वथा शिष्टाचार ही था। उसे यह विश्वास था कि उस दिन तो वैंकमे रुपये नही ही आयँगे। इस प्रकार रुपये भी न देने पडेगे तथा सुन्दर ढगसे मित्रोचित व्यवहार भी निभ जायगा। पर दैवका विधान दूसरा था। वैंकके वावूसे पूछते ही उत्तर मिला—'अभी-अभी रुपये आये है।' यह उतनी ही रकम थी, जितनीकी इन्हे आवश्यकता थी। वैंकके क्लर्कका उत्तर इन्होने भी सुन लिया था। अत. अव कोई वहाना भी नही चल सकता था। मित्रने असमञ्जसमे पडकर उतने ही रुपयेका चेक काट दिया। रुपये मिल गये। रुपये लेकर इन्होने अपनी दूकानकी रोकडमे जमा कर दिये। प्रतिष्ठा वच गयी। कुछ दिन वाद उस गुजराती सज्जनने रुपये लौटा दिये और इन्होने मित्रके रुपये लौटा दिये। भगवान्की अप्रत्याशित कृपा पाकर इनका रोम-रोम कृतज्ञतासे भर गया। अशरण-शरण किस ढगसे सारी व्यवस्था वैठा देते है, यह देखकर ये आश्चर्यमे डूव गये।

भगवान्ने अपनी भक्तवत्सलता एव कृपाकी एक झाँकी और दिखायी। इस झाँकीका स्मरण श्रीभाईजी आजीवन करते रहे। अपने प्रवचनोमे भगवत्कृपाका प्रसङ्ग उपस्थित होनेपर इस घटनाका उल्लेख वे अवश्य करते थे। एक वार व्यक्तिगत चर्चामे इन्होने कहा—

"मेरे एक साथी थे हरिराम शर्मा। वे रुईकी दलाली करते थे। वे मेरे पास ही रहते थे, मेरे घरपर ही भोजन करते थे। भाई श्रीरामकृष्ण डालमिया उन दिनो सट्टा करते थे। इस काममे उन्हे कुछ घाटा लग गया था। मैने हरिरामको सावधान कर दिया था—'तुम गरीव आदमी हो। अतएव भाई रामकृष्णके साथ सट्टेका काम मत करना। भाई रामकृष्णको कुछ घाटा लगा हुआ है, और लग जायेगा तो वह तो तुरत दे नही सकेगा, और तुम्हारा फर्म फेल हो जायगा।' पर भाई रामकृष्ण सट्टेका वडा काम करता था और इससे हरिरामको दलालीमे अच्छे पैसे मिल जाते थे। वस, दलालीके लोभमे वह मेरी वात न मान सका और भाई रामकृष्णका काम करवाता रहा। जवतक नफा होता रहा, तवतक हरिरामको भी दलाली मिलती रही, परंतु विधाताका विधान कुछ और था। एक सप्ताहमे करीव ५०-६० हजारका घाटा हो गया। भाई रामकृष्णके पास तुरत देनेको था नही। हरिरामको उनका पेमेट करना था। वह मेरे पास आया और वोला—'श्रीरामकृष्णजीका इस प्रकार काम करवा दिया था, उनमे इतने रुपये घाटेके लग गये है। अव क्या करे ?' मैंने कहा—'भाई, तुमने क्यो करवाया ? मैने तो तुम्हे पहले ही सावधान कर दिया था, परन्तु तुमने मेरी वात नही मानी।' अव तो वह वहुत कातर हो गया और पूछने लगा—'अव क्या करें ?' मेरे मुँहसे निकला—'भगवान्के सामने रोओ; और क्या करोगे ?' वस, उसने वात पकड ली। वह गद्दीके समीपवाले कमरेमे जाकर वैठ गया और उसने यह प्रार्थना की तथा कहा—मुझे कुछ पता नही।

"हमलोगोकी वाते होनेके थोडी देर वाद श्रीताराचद घनश्यामदास फर्मके श्रीवालकृष्णलालजी पोद्दारका फोन आया कि 'यदि आप अपोलोवदरकी ओर घूमने चले तो मै मोटर लेकर आ जाऊँ।' मैने कहा—'आ जाइये।' आजकल जिस भागका नाम 'मैरीन ड्राइव' है, वह पहले 'अपोलोवदर' कहलाता था। वे मोटर लेकर आ गये और मै उनके साथ घूमने चला गया। हरिरामकी वात मैं भूल गया। घूमकर हमलोग रात्रिमे करीव ८ वजे लौटे। मुझे छोडनेके लिये वे घरतक आये। जव हमारी मोटर घरके सामने रुकी, तव अचानक श्रीवालकृष्णलालजीको हरिरामकी याद आयी। वे वोले—'भाईजी, आपका हरिराम आजकल कहाँ है?' मैंने कहा—'भाई रामकृष्णका उसने सौदा करवा दिया था। उसमे घाटा लग गया है। भाई रामकृष्णके पास पैसा देनेको है नही। हरिरामका काम फेल हो जायगा, इसलिये वह रो रहा है।' वे पैसेवाले व्यक्ति थे, पर पैसेके सम्वन्धमे कुछ अनुदार थे। किंतु भगवान्‌की माया। वोले—'कल सुवह आदमी भेज दीजियेगा, चेक मँगवा लीजियेगा।' ये शब्द सुनते ही मुझे वडा आश्चर्य हुआ। मैने कहा—'आप किसको दे रहे हैं? यह पैसा फिर आनेवाला नही है।' वे वोले—'रुपये वापस मिल जायँगे, इस आशासे थोडे दे रहा हूँ। हमारे मनमे आ गया, इसलिये दे रहा हूँ।' मैने कहा—'अच्छी वात है।' श्रीवालकृष्णलालजी अपने घर लौट गये।

"अव मेरे मनमे विचार हुआ कि रुपये मँगवाने चाहिये कि नही। मैने अपने मित्र श्रीविरदीचदजी पोद्दारको वुलाया और उनसे सलाह ली कि क्या करना चाहिये। वे वडे सात्त्विक प्रकृतिके व्यक्ति है। उन्होने कहा—'भाईजी, द्रौपदीका चीर आपने वढाया था क्या? भगवान्‌की प्रेरणासे ही श्रीवालकृष्णलालजी आये और रुपये भी उन्हीकी प्रेरणासे मिल रहे है। आप रोकनेवाले होते कौन है?' एक-दो अन्य मित्रोसे भी सलाह ली। सभीकी यही राय हुई। मैंने भाई रामकृष्णको वुलाया। उसे पूरी वात वता दी। भाई रामकृष्णने 'हडनोट' लिख दिया तथा राजस्थानमे उनके जो मकान है, उनके पट्टे दे दिये और कहा कि 'ये सव चीजे उन्हे दे दी जायँ, रुपये मँगवा लिये जायँ।' मैने 'हैडनोट' एव मकानोके पट्टे रख लिये। सुवह हैडनोट एव मकानोके पट्टे देकर एक आदमीको श्रीवालकृष्णलालजीके पास भेजा। श्रीवालकृष्णलालजीने व्लैक चेक (विना रुपया भरे) हस्ताक्षर करके दे दिया और कहलाया—'जितने रुपये चाहिये, उतने चेकमे लिख दिये जायँ। इस समय वैंकमे हमारे खातेमे दो लाख रुपये है।' इतना ही नही, उन्होने हैडनोट तथा मकानोके पट्टे लौटा दिये और कहलाया—'में पट्टे-हैंडनोट रखकर रुपया नही दे रहा हूँ।' मै तो भगवान्‌की लीला देखकर मुग्ध हो रहा था। वैंकसे रुपये आ गये और हरिरामका भुगतान हो गया। इसके वाद भगवान्‌की कृपासे दो-तीन महीनेमे ही भाई रामकृष्णने रुपये कमा लिये और श्रीवालकृष्णलालजीके रुपये व्याजसहित लौटा दिये गये।" इस प्रकार भगवान् अपनी कृपाको विविध रूपोमे दिखा-दिखाकर श्रीभाईजीको अपनी ओर आकर्पित कर रहे थे।

भगवत्कृपाके विविध रूपोमे दर्शन

भगवत्कृपा भगवान्‌के कृपापात्र जीवके साथ वडे ही विपम तथा विचित्र आचरण भी करती हे। वह कभी तो उसके प्राणाधिक प्रिय स्वजनोका विछोह करवाकर उसे दारुण सासारिक व्यथाका पात्र वना देती है, कभी घोर अपमान, प्रतिष्ठानाश, धनहानि, रोग-कष्ट आदिके प्रसङ्ग उपस्थित करती हे। अवगुण्ठनमयी भगवत्कृपाकी इन विविध-विचित्र लीलाओद्वारा भगवदनुरागी भगवदीय जनको उसके विविध रूपोमे दर्शन प्राप्त होते है तथा वह प्रत्येक वेपमे अपने प्रभुकी ही झाँकी करके प्रसन्न होता है।

भाईजीके जीवनकालमे भी भगवत्कृपा दारुण व्यथा-प्रसङ्गोका भी भीपण रूप धारणकर प्रकट हुई। वम्बईमे स० १९७७ वि०के श्रावण-मासमे उन्हे एक पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई। लगभग १८-१९ मास ही यह दुलारा शिशु अपने माता-पिता तथा अन्य स्वजनोको अपनी मधुर शैशवोचित क्रीडाओका आनन्द-दान दे सका। स० १९७८ वि०के माघ या फाल्गुन मासमे ही माँकी गोदको सूनी करके यह शिशु काल-कवलित हो गया। सर्वप्रथम दुलारी पुत्र-सतानके यो असमयमे ही मृत्युके ग्रास हो जानेसे माँके मातृसुलभ कोमल हृदयको कितनी व्यथा हुई होगी, इसका अनुमान कोई कैसे लगायेगा। भाईजी इस दारुण पुत्र-शोकके मर्माघाती प्रसङ्गमे

भी अविचलित ही रहे । उन्हे इस घटनामे भी भगवान्‌की विशेष कृपाका ही अनुभव हुआ । महापुरुषोके जीवनमे ऐसे प्रसङ्ग उनके कुन्दन-सरीखे जीवनमे अधिक दीप्ति लाने तथा जन-साधारणके सम्मुख भगवद्भक्तोका निर्मल यश प्रकाशित करनेके लिये भगवान्‌के मङ्गलमय विधानसे ही आते है। भक्तप्रवर श्रीनरसी मेहताने ऐसे ही दारुण पुत्र-शोकके अवसरमे जो पद गाया था, उसकी ये अनमोल पङ्क्तियाँ आज भी भक्तोकी भगवन्निष्ठाका पुण्यप्रतीक बनकर दिग्दिगन्तमे गूँज रही है--

'भल्युं थयुं भाँगी जंजाळ । सुखे भजीश्यूँ श्रीगोपाळ ॥'

भाईजीने भी मन-ही-मन कुछ इसी तरहकी भाषामे अपने उद्गार व्यक्त किये होंगे--'भगवत्कृपा ! तुझे लाख-लाख धन्यवाद । अच्छा किया, जो पुत्ररूपमे प्रकट ससारसे निबद्ध करनेवाले एक बन्धनको तूने काट डाला। अब भगवान्‌के निश्चिन्त भजनका मार्ग सुलभ हो गया।'

भगवत्कृपाका यह प्रकाश अभी और होनेवाला था। पुत्रशोककी व्यथा पारिवारिक प्राणियोके हृदयसे अभी निकल ही नही पायी थी कि भाईजीको जन्मदात्री माँसे भी अधिक स्नेह-वात्सल्य-दान देनेवाली तथा इनको सम्पूर्ण पारिवारिक झझट-चिन्ताओसे निर्मुक्त रखनेवाली दादी रामकौर देवीको परमधाम पधारनेका आमन्त्रण प्राप्त हो गया। भाईजीके शैशवमे ही उनकी गर्भधारिणी माँके परलोक सिधारनेपर दादी रामकौर देवीने ही इन्हे पाला-पोसा तथा इनमे भगवद्भावके सस्कारोका वपन किया। शिशुकालमे जीवनरक्षा करनेवाली तथा कैशोर एव तरुणावस्थामे सम्पूर्ण पारिवारिक चिन्ताओसे मुक्ति-प्रदायिनी यह देवी भाईजीके जीवनके लिये रक्षा-कवच बनी हुई थी। अचानक ही प्रभुने यह छत्रछाया भी भाईजीके मस्तक परसे अपसारित करके इन्हे केवल अपने ही वरद हस्तकी शीतल शतम छायाके नीचे ले लिया और परम निरापद एव सुरक्षित बना दिया।

दादी रामकौर देवी अचानक बीमार पडी तथा बिना किसी विशेष कष्टभोगके ही वैशाख शु० १३, नृसिह-जयन्ती स० १९८०को परमतत्वमे लीन हो गयी। प्रत्यक्षदर्शी दर्शकोका कथन है कि उसने अन्तिम क्षणोमे भी 'सोऽह, सोऽह'का जाप करते हुए ही देहत्याग किया था। भाईजीने अपनी इस जननी, सरक्षिका तथा गुरुस्वरूपा दादी रामकौर देवीकी अन्त्येष्टि एव श्राद्धकर्म शास्त्रोचित रीतिसे सम्पन्न किये।

हृदय-विदारक प्रसङ्गोकी इस शृङ्खलामे भी भाईजीने भगवत्कृपाकी मधुर छविके दर्शन ही किये। विपत्तिकालमे ही भगवन्निष्ठजनोकी निष्ठाकी गम्भीरताका पता लगता है। प्रसिद्ध रामभक्त महात्मा बनादासजीने पुत्रशोकके प्रसङ्गमे अपने हृदयोद्गार नीचे लिखे पद्यरूपमे व्यक्त किये थे---

कृपापात्र को रुज मिले निर्धनता-अपमान ।
कुल-कुटुंब को नास, भै, अति करुना भगवान ॥
अति करुना भगवान बंस को छेदन कीना ।
ममता रही न कहूँ, सिथिल मन, तन सुठि खीना ॥
बनादास पीछें दिए दृढ़ता, आतम-ज्ञान ।
कृपापात्र को रुज मिले निर्धनता-अपमान ॥

'राखनहार जु हे भुजचारि' (चतुर्भुजद्वारा प्राणरक्षा)

भक्तका जीवन भगवान्‌का होता है। अतएव उसकी रक्षा एव उसका भरण-पोषण भगवान् करते हैं। भूकम्पमे किस प्रकार भगवान्‌ने भाईजीकी रक्षा की थी, यह पहले वर्णन किया जा चुका है। बम्बई-जीवनमे भी भगवान्‌ने दो बार इनके प्राणोकी रक्षा करके अपनी अद्भुत भक्तवत्सलताका परिचय दिया।

बम्बई आये कुछ ही दिन हुए थे तथा व्यापारका ढग भी अभी पूरी तरहसे बैठ नही पाया था। दूकानसे निवास-स्थान दूर पडता था। धधेका काम निवटाकर घर जानेमे रात हो जाती थी। इसी आवागमनमे एक दिन एक लोमहर्षक घटना हो गयी। इस प्रसङ्गको भाईजीने स्वय लिखकर 'कल्याण'के 'ईश्वराङ्क'मे पृष्ठ ६१४पर प्रकाशित किया है। नीचे हम उन्हीके शब्दोको उद्धृत कर रहे है--

सन् १९१९की बात है, मैं बम्बईमें रहता था। रातको अपने फूफा श्रीनवलचंदजी लोहियाके घरपर जो बम्बईसे कुछ दूर बी० बी० ऐंड० सी० आई० रेलवेके सान्ताक्रुज स्टेशनके समीप पं० श्रीशिवदत्तरायजी दमाणीके बँगलेमें रहते थे जाकर खाया और सोया करता था। एक दिनकी बात है। रातको करीब आठ बजे थे; कृष्णपक्षकी अँधेरी रात थी। मैं लोकल ट्रेनसे जाकर सान्ताक्रुजके प्लेटफार्मपर उतरा। अब तो दोनों ओर स्टेशन है उस समय एक ही ओर था और रोशनीका प्रबन्ध नहीं था न इंजनमें सर्चलाइट थी। श्रीशिवदत्तरायजीके बँगलेमें जानेके लिये रेलवे लाइन पारकर उस ओर जाना पड़ता था। मैंने बेवकूफी की। इंजनके सामनेसे लाइन पार करने लगा। लोकल ट्रेन एक-दो मिनट ही ठहरती थी। मैं मन था। मैंने समझा गाड़ी छूटनेसे पहले ही मैं लाइन पार कर जाऊँगा। परन्तु ज्यों ही मैंने लाइनपर पैर रखा त्यों ही गाड़ी छूट गयी। ईश्वरीय प्रेरणा और प्रबन्धसे उसी समय किसी अज्ञात पुरुषने मेरा हाथ पकड़कर जोरसे खींच लिया। मैं दूसरी लाइनपर जाकर गिर पड़ा। गाड़ी सर्राटेसे निकल गयी। तीन काम साथ हुए—मेरा लाइन पारकर जाना, गाड़ीका छूटना और किसी अज्ञात व्यक्तिद्वारा खींचा जाना। एक-दो सेकेंडके विलम्बसे मेरा शरीर चकनाचूर हो जाता। परन्तु बचानेवाले प्रभुने उस अँधेरी रातमें उसी जगह पहले ही मुझे बचानेका प्रबन्ध कर रखा था। मैं थरथर काँप रहा था। ईश्वरकी दयालुतापर मेरा हृदय गद्गद हो रहा था। आँखोंसे आँसू बह रहे थे। मैंने स्टेशनके धुँधले प्रकाशमें देखा—एक नौजवान बोहरा मुसलमान खड़ा हँस रहा है और बड़े प्रेमसे कह रहा है—'आइन्दा ऐसी गलती न करना। आज भगवान्‌ने तुम्हारे प्राण बचाये।' मैंने खूब अभिवादन किया, कृतज्ञता प्रकट की। लाइनपर बिछे रोड़ोंमें जा गिरा था परन्तु दाहिने पैरमें एक रोड़ेके जरा-सा गड़नेके सिवा मुझे कहीं चोट नहीं आयी। मैं दौड़कर घर चला गया और ईश्वरको याद करने लगा।

आजानुबाहुने इस प्रकार अपने आश्रितजनके जीवनकी रक्षा की। यह घटना इनके बढ़ते हुए भगवद्-विश्वासको पुष्ट करनेमें बड़ी सहायक हुई।

भगवत्कृपाके दर्शनका एक और प्रसङ्ग उपस्थित हुआ। इस प्रसङ्गको भी भाईजीने स्वयं लिखकर 'कल्याण'में प्रकाशित किया था। प्रसङ्ग इस प्रकार है—'सन् १९२९ ई० की बात है। मैं लक्ष्मणगढ़ (जयपुर) के सेठ श्रीलच्छीरामजी चूड़ीवालाके धन और परिश्रमसे स्थापित ऋषिकुलके उत्सवमें शरीक होनेके लिये बम्बईसे जा रहा था। अहमदाबादसे दिल्ली एक्सप्रेसके द्वारा रवाना हुआ। मैं सेकंड क्लास (द्वितीय श्रेणी)में था। मेरे साथ एक छोटा ब्राह्मण-बालक ऋषिकुलमें भर्ती होने जा रहा था। मैं इधरकी एक सीटपर सोया था और सामनेकी सीटपर वह सोया था। दूसरे दिन सुबह अंदाज पाँच बजे थे। ब्यावर स्टेशनपर एक टी० टी० ई० (टिकट परीक्षक) महोदय हमारे डिब्बेमें सवार हुए। मैं जिस सीटपर सोया था उसी सीटपर मेरे पैरोंके पास वे बैठ गये। मैं जग रहा था। अपने पैरोंके पास किसीका बैठना मुझे अच्छा नहीं लगा। शिष्टाचारके नाते मैं उठ बैठा। सोया था, तब मेरा सिर सीटकी अन्तिम खिड़कीके पास था, जागकर उठ बैठा तो वह खिड़की खाली हो गयी। मैं बीचकी खिड़कीके पास बैठ गया और टी० टी० ई० महोदय इधरकी तीसरी खिड़कीके पास बैठे थे। तीनों खिड़कियाँ बंद थीं। मैं टी० टी० ई० महोदयके साथ बातें कर रहा था। इतनेमें ही पीछेसे बड़े जोरसे आवाज हुई और दूसरी सीटपर सोये हुए ब्राह्मण-बालकने एक चीख मारी। हमलोग भौंचक्के रह गये। पीछे घूमकर देखा तो पता चला कि एक बहुत बड़ा पत्थर खिड़कीके काँचको लगा। खिड़कीका बहुत मोटा शीशा टूटकर चूर-चूर हो गया और उसके टुकड़े उछल-उछलकर सब तरफ बिखर गये। उसीका एक जरा-सा टुकड़ा बालकके सरपर लगा था। इसीसे उसने चीख मारी थी। मैं सोया होता तो अवश्य ही खिड़कीके पास मेरा सिर रहता और वह जरूर ही पत्थर और काँचकी चोटसे टूट जाता, परन्तु बचानेवालेने टी० टी० ई० महोदयको भेजकर मुझे उठनेकी प्रेरणा की। मैं बैठा हो गया और बच गया। यह घटना अजमेरके पास मदरेरा और दउना स्टेशनके बीचकी है।'

—ईश्वराङ्क, पृष्ठ ६९६

टी० टी० ई० महोदयने इस घटनापर भाईजीसे कहा था—'ऐसी घटनाएँ इस लाइनपर होती रहती है। आपको भगवान्‌ने बचा लिया। आप उठकर बैठ गये, नही तो आपका सिर बुरी तरह घायल हो जाता।'

भाईजी जब लक्ष्मणगढ पहुँचे, तब रात्रिमे इन्हे एक स्वप्न हुआ, जिसमे भगवान्‌ने कहा—'देखो, तुम्हे कई बार बचा चुका हूँ। तुम निश्चिन्त रहो, तुमसे मुझे अपना कार्य कराना है।' इस यात्राके थोडे दिन बाद 'कल्याण'का प्रकाशन आरम्भ हुआ और भगवान्‌ने भाईजीको अपना यन्त्र बनाकर उनसे जो आध्यात्मिक प्रचार करवाया, वह सर्वविदित है।

दैन्यका आविर्भाव

भगवत्कृपाकी विविध रूपोमे अनुभूति प्राप्त करनेसे भाईजीको भगवान्‌की कृपाशीलतापर अखण्ड विश्वास हो गया। वे प्रभुके आर्ति-हारी स्वभावका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर कृतज्ञतासे गद्‌गद हो गये। उसकी महत्ताके प्रकाशमे अपनी हीनताका बोध होते ही इनका हृदय दैन्यसे भर गया। भाईजीने अपनेको पूर्णरूपसे भगवच्चरणोमे अर्पित कर दिया। इनके द्वारा निम्नाङ्कित पदकी रचना इसी स्थितिमे हुई थी—

अब हरि एक भरोसो तेरो।
नहिं कछु साधन ग्यान-भगति को, नहिं बिराग उर हेरो॥
अघ ढोवत अघात नहि कबहूँ, मन बिषयन को चेरो।
इंद्रिय सकल भोगरत संतत, बस न चलत कछु मेरो॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-सरिस अति प्रबल रिपुन तें घेरो।
परवस परचो, न गति निकसन की, जदपि कलेस घनेरो॥
परखे सकल बंधु, नहि कोऊ बिपदकाल को नेरो।
दीनदयाल दया करि राखहु, भव-जल बूड़त बेरो॥

पद-रचनाका आरम्भ यहीसे हुआ। सचमुच हृदय जब विगलित हो जाता है, तब वह वाणीके रूपमे प्रवाहित हो उठता है।

साधना-समितिकी स्थापना

भाईजी स्वय तो साधनामे तत्परतासे जुटे हुए थे ही—अविराम गतिसे उनकी मन-बुद्धि, इन्द्रियाँ मानव-जीवनके परम लक्ष्य श्रीभगवान्‌की ओर दौड रही थी, साथ-ही-साथ अपने साथियोकी ओरसे भी ये उदासीन नही थे, क्योकि 'सर्वभूतहिते रता—सब प्राणियोके हितमे स्वाभाविक लगे रहना'—भाईजीका जीवन था।

सत्सङ्गियोके जीवनको साधनाकी ओर उन्मुख करनेके विचारसे भाईजीने एक 'साधक-समिति'की स्थापना की। उसमे पचाससे अधिक सदस्य थे। प्रत्येक साधकके लिये समितिके निम्नाङ्कित नियमोका पालन करना अनिवार्य था—

(१) प्रातःकाल उठते ही भगवन्नामका स्मरण करना।
(२) स्नानके पूर्व अशुचि अवस्थामे भी कम-से-कम एक बार भगवन्नामका स्मरण करना।
(३) स्नान करते समय कम-से-कम एक बार भगवन्नामका स्मरण करना।
(४) कम-से-कम एक कालकी सध्या करना।
(५) गायत्री-मन्त्रकी कम-से-कम एक माला जपना।
(६) श्रीगीताजीके प्रधान-विषयोका पाठ करना।
(७) श्रीगीताजीके कम-से-कम एक अध्यायका अर्थसहित पाठ करना।
(८) श्रीगीताजीका पाठ करते समय श्रीभगवन्मूर्तिका चिन्तन करना।
(९) कम-से-कम पाँच मिनट ध्यान करना।

(१०) 'कर प्रणाम तेरे चरणोमे' 'पत्र-पुष्प'के इस पदका अर्थ समझते हुए प्रातःकाल पाठ करना।
(११) कम-से-कम पाँच मिनट व्यायाम करना।
(१२) अपनेसे बडे जो घरमे हो (माता-पिता आदि), उनके चरणोमे प्रणाम करना।
(१३) सत्सङ्ग अथवा सच्छास्त्रोका कम-से-कम आधा घटा स्वाध्याय करना।
(१४) षोडश-नामके मन्त्र (हरे राम हरे राम)की कम-से-कम पाँच माला जपना।
(१५) भोजन करते समय भगवन्नामका चिन्तन करना।
(१६) वलिवैश्वदेव करना।
(१७) शयन करते समय भगवन्नामका स्मरण करना।
(१८) विदेशी मिलोके वने एव हिंसायुक्त रेशमी वस्त्रोका न पहनना।
(१९) मादकद्रव्यो—भाँग, गाँजा, सुल्फा, तम्बाकू, बीडी आदिका सर्वथा त्याग करना।

भाईजीने इन नियमोका आचरण स्वय अपने जीवनमे दृढतापूर्वक किया। उन्हे साधनाके क्रममे यह निश्चित हो गया कि मनुष्यको साधना-मार्गसे विचलित करनेवाला मात्र चञ्चल मन है। अत आरम्भमे इनके द्वारा उपदिष्ट सदाचार-पद्धतिका मूलाधार वना मनोनिग्रहका प्रयास। 'मनको वशमे करनेके कुछ उपाय' नामकी पुस्तक इसी स्थितिकी देन है।

सामूहिक जपयज्ञका श्रीगणेश

जेल-जीवनसे भगवन्नामके प्रति भाईजीकी निष्ठा दृढ हो चली थी। शिमलापाल-जीवनमे नाम-जप वडी तत्परतासे होता रहा। वम्बई आनेके पश्चात् भी नाम-जपका वह क्रम वरावर चलता रहा तथा नाम अपना विलक्षण प्रभाव प्रकटकर इन्हे अपनी ओर खीचता चला जा रहा था। भाईजीको यह अनुभव होने लगा कि वर्त्तमान समयमे नाम ही परम साधन है, परम आश्रय है—जिसकी शरणमे आकर जीव लोक-परलोककी ऊँची-से-ऊँची वस्तुको प्राप्त कर सकता है। अतएव उन्होने समाजमे भी नाम-प्रचारकी योजना वनायी। सवत् १९७९मे सत्सङ्गका कार्यक्रम आरम्भ होनेपर इन्होने सामूहिक 'जपयज्ञ'का श्रीगणेश किया। इस जपयज्ञकी पूर्णाहुति होलीके समय हुई। उस अवसरपर वडे उत्साहसे समारोह मनाया गया—ब्राह्मण-भोजन, भजन, कीर्तन आदिकी व्यवस्था सुचारुरूपसे की गयी। इस जपयज्ञका यह प्रभाव हुआ कि हजारो व्यक्ति नाम-परायण हो गये। कुछ मास नियमितरूपसे जप करनेपर लोगोपर नामका अद्भुत प्रभाव प्रकट हो गया और उन्होने नाम-जपको अपनी दैनिक साधनाका प्रधान अङ्ग वना लिया। आगे चलकर 'जपयज्ञ' नियमितरूपसे चलने लगा और इसे वार्षिक पारमार्थिक योजनाका रूप दे दिया गया। 'कल्याण'के प्रवर्त्तनके पश्चात् इसका प्रचार देशके कोने-कोनेमे ही नही, विदेशोमे भी हुआ और आजतक वह अक्षुण्णरूपसे चल रहा है।

साधनामें उन्नतिके कारण

श्रद्धेय श्रीसेठजीके सत्सङ्गके प्रति समाजमे वडी रुचि वढ रही थी। हजारो स्त्री-पुरुष उनके सत्सङ्गमे लाभान्वित हो चुके थे। स० १९७८-७९मे श्रीसेठजीने विचार किया कि उत्तराखण्डकी पवित्र भूमिमे कुछ दिनोके लिये सत्सङ्गका आयोजन किया जाय। ऋषिकेशका गङ्गातट इसके लिये चुना गया। सत्सङ्ग-प्रेमियोको सूचना दी गयी और चुने हुए श्रद्धालु व्यक्ति वहाँ पहुँचे। उस समयका ऋषिकेश आजका ऋषिकेश नही था, वह वास्तवमे तपस्या-भूमि था। सत्सङ्गमे जानेवालोके लिये न ठहरनेके लिये स्थानकी ठीक व्यवस्था थी न अन्य सुविधाएँ ही उपलब्ध थी। भाईजी भी तीन दिनके लिये उस सत्सङ्गमे सम्मिलित हुए। श्रीसेठजीने कुछ साधकोको उत्साहित करनेकी दृष्टिसे कह दिया कि 'हनुमानकी तरह साधनामे तत्परतासे लगना चाहिये। उसकी निराकारके ध्यानकी स्थिति ऐसी है।' श्रीसेठजीके मुखसे ऐसी वाते सुनकर लोगोकी लालसा जगी कि भाईजीमे साधनामे उन्नतिके हेतुओकी जानकारी की जाय। लोग भाईजीसे प्रेमपूर्वक आग्रह करने लगे। भाईजी वडे

ही सकुचित हो गये, पर लोग माननेवाले नही थे। आखिर इन्होने उसका रहस्य खोलते हुए निम्नलिखित छ वाते वतायी—

'(१) भगवान्, शास्त्र तथा महापुरुषके वचनोमे अविचल श्रद्धा एवं विश्वास करना।
(२) वे जैसे कहे, उसीके अनुसार प्राणपर्यन्त साधन करना।
(३) परमात्माकी अनिर्वचनीय कृपाका हर समय अनुभव करना।
(४) भगवान्के नामका निरन्तर जप करना।
(५) अपनी साधनाका किचित् भी अभिमान न करना।

—इन पाँच वातोसे साधनामे मुझे बहुत लाभ हुआ। इनके अतिरिक्त एक बातसे मुझे और सहायता मिली—जब श्रद्धालु श्रोता मुझसे मिलते थे, अपने-आप अन्तःकरणमे बहुत ऊँची-ऊँची बाते स्फुरित होती थी और मै उन्हे कहता था। कहनेके वाद स्वाभाविकरूपसे ही उन कही हुई बातोके अनुसार अपना जीवन बनानेका प्रयत्न होता था। इन्हे ही मेरी साधनाकी कुजी समझे।'

भाईजी तीन दिन ऋषिकेश रहे, पर इतने अल्पकालमे उन्होने सत्सङ्गियोमे श्रद्धा-प्रेमकी नदी बहा दी। भाईजीने कुछ भगवच्चर्चा की। अपने अनुभवकी बातोको उन्होने वडे ही विनम्र एव मधुर शब्दोमे रखा। सत्सङ्गी भाई-वहनोपर उस चर्चाका बडा प्रभाव पडा।

श्रीविष्णु दिगम्बरकी राग-सेवा

वम्वई-जीवनकी विशेप उपलब्धियोमे प्रसिद्ध सगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्वर पलुस्कर महाराजका स्नेह-सम्वन्ध भी है। भाईजीके साथ इनका बडा घनिष्ठ सम्वन्ध था। महाराजजी भाईजीके स्नेहशील, सेवा-परायण एव आध्यात्मिक जीवनसे वहुत प्रभावित थे। वे भाईजीके घर आते रहते थे। एक वार उनके मनमे आया कि वे भाईजीको थोडा सगीत सिखा दे। उन्होने भाईजीके सामने अपना मन्तव्य व्यक्त किया। भाईजीने उनके कृपापूर्ण प्रस्तावको हृदयसे स्वीकार किया, पर समयका सकोच बताया। श्रीविष्णु दिगम्वर महाराजको तो इन्हे सगीत सिखाना था। उन्होने कहा—'मै स्वय प्रतिदिन नियमितरूपसे तुम्हारे घरपर तुम्हे सगीत सिखाने आया करूँगा।' और वे वरावर आने लगे। पर भाईजीका उस समयका जीवन साधना एव सेवाका जीवन था। अतएव वे महाराजजीकी कृपासे लाभ नही उठा सके। महाराजजी पूरे दो महीने वराबर आये, पर भाईजीको ठीकसे समय ही नही मिल पाया। इस विवशताके कारण भाईजी सगीत नही सीख पाये। परतु श्रीविष्णु दिगम्वर-के साहचर्यसे वे विभिन्न राग-रागिनियोसे यत्किचित् परिचित हो गये थे। इनके रचे हुए पद विभिन्न राग-रागिनियोमे गेय है।

श्रीविष्णु दिगम्वरके सगीत-ज्ञानकी चर्चा करते हुए भाईजी कहा करते थे—'वे सगीतके इतने बडे ज्ञाता थे कि एक ही पदमे एक साथ छतीसो रागिनियाँ गा सकते थे—एक-एक शव्दमे राग बदल सकते थे।'

श्रीविष्णु दिगम्वर महाराज रामायणकी वडी ही सरस कथा कहते थे। सवत् १९८०के पुरुषोत्तम (अधिक ज्येष्ठ) मासमे सत्सङ्ग-भवनमे भाईजीने उनकी कथाका आयोजन किया। वे रामचरितमानसकी कथा साज-वाज और भजन-कीर्तनके साथ करते थे। इसके अतिरिक्त विशेप अवसरोपर भी उनकी कथा सत्सङ्ग-भवनमे होती रहती थी।

कथाके पूर्व जिस समय वे 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम'का सकीर्तन साज-वाजके साथ आरम्भ करते थे, उनकी रस-परिप्लुत स्वर-लहरी सारे वातावरणको राममय वना देती थी—श्रोता भाव-विभोर हो झूम उठते थे। गाधीजी प्रत्येक काग्रेस-अधिवेशनमे श्रीविष्णु दिगम्वरको वुलाकर आरम्भमे 'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम'का सामूहिक कीर्तन कराते और उसको राष्ट्रीय कीर्तनके नामसे पुकारते थे।

भाईजीसे परिचय होनेके वाद श्रीविष्णु दिगम्वरकी यह भक्ति-निष्ठा और दृढ होती जा रही थी। भाईजीका 'मेरे एक राम-नाम आधार' प्रतीकवाला पद उन्हे अत्यन्त प्रेरणाप्रद लगा। वे इससे इतने प्रभावित हुए कि

इसीके आदर्शपर उन्होने 'राम-नाम-आधार-मण्डल' नामक एक सस्था स्थापित की। इसमे उनके अनुरोधसे भाईजीके कई प्रवचन हुए। भाईजीका उक्त पद इस मण्डलमे नित्य गाया जाता था।

अपने जीवनके पिछले दिनोमे श्रीविष्णु दिगम्बरने यह नियम बना लिया था कि जो भी सगीतकी शिक्षा लेने आये—'चाहे वह हिंदू, मुसलमान, ईसाई या पारसी, कोई भी हो, उसे सतोके पदोके गायनद्वारा ही सगीत सीखना पड़ेगा।'

अन्तिम अवस्थामे उन्होने यह नियम बना लिया था कि उनके कानोमे निरन्तर—'रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम' कीर्तनकी ध्वनि पहुँचती रहे। उनके बहुत शिष्य थे। जहाँ वे रहते, वहाँ दो-दो शिष्य बराबर बैठे इस कीर्तनका गान करते रहते थे। यह क्रम दिन-रात समानरूपसे चलता रहता था।

श्रीविष्णु दिगम्बरने सगीत-शिक्षाके लिये एक गान्धर्व-महाविद्यालय खोल रक्खा था। वह बम्बईमे सगीत-शिक्षाकी प्रमुख सस्था थी। आयका कोई सबल स्रोत न होनेके कारण उसपर ७५ हजार रुपयेके लगभग ऋण हो गया। पण्डितजी उसके लिये चिन्तित रहने लगे। भाईजीको इसका पता चला। पण्डितजीकी एतद्विषयक उद्विग्नता देखकर ये बहुत दुखी हुए, किंतु इनके अपने पास इतना रुपया था नही। अत उससे मुक्तिका कोई मार्ग तत्काल इन्हे न सूझ पड़ा। इन्होने इसके लिये ऋण लेनेका निश्चय किया। अपने कतिपय मित्रो और परिचितोसे अपने नाम ऋणरूपमे ७५ हजार रुपये एकत्रकर श्रीविष्णु दिगम्बरको ऋणमुक्त करा दिया। इस ऋणका शोधन बारह वर्ष बाद स० १९९२मे गोरखपुर आनेके पश्चात् हो पाया। उपर्युक्त ऋणदाताओमे जिन लोगोने दानरूपमे गान्धर्व-महाविद्यालयको ऋणका धन प्रदान कर दिया, उन्हे छोडकर शेप सभीका पैसा भाईजीने पाई-पाई चुका दिया, कुछ लोगोको सूद भी दिया।

भाईजीका श्रीविष्णु दिगम्बरसे यह स्नेह-सम्बन्ध उनके अन्तिम क्षणतक बना रहा। भाईजीके सुनाये हुए उनके अनेक सस्मरण है, जो समयसे प्रकाशित हो सकते है।

'भाईजी' नामका श्रीगणेश

अपने स्नेहशील, सेवापरायण स्वभावसे ये इतने लोकप्रिय हो गये थे कि गरीब-अमीर, छोटे-बडे, धार्मिक-अधार्मिक—सभी लोग इन्हे अपना मानने लगे तथा ये सबको अपने स्वजनकी भाँति अनुभव होने लगे। सभीको ऐसा लगने लगा था कि 'ये ऐसे व्यक्ति है, जो सभी प्रकारके भेद-भावोसे ऊपर है। ये छोटेके लिये छोटे हैं, बडेके लिये बडे है, सुखीके साथ सुखी है, दुखीके साथ दुखी है। इनका हृदय धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि सभी प्रकारकी सकीर्णताओसे रहित है। ये पूर्ण सदाचारी होते हुए भी पथ भूले हुए भाई-बहनोके प्रति उसी प्रकार स्नेहसे भरे है, जैसे एक साधुपुरुषके प्रति। अपने लिये नियमोके पालनमे कट्टर हैं, पर दूसरोको उसके लिये बाध्य नहीं करते। ये किसीको भी सकोचमे डालने या विवश करनेके पक्षमे नही है। ये सभीके अपने हैं—स्वजन है। अतएव किसीको भी अपने हृदयकी चाहे-जैसी बात—पूर्ण विश्वासके साथ इनके सामने रखनेमे तनिक भी सकोच नही होता।' इस प्रकार सबके विश्वासभाजन, स्नेहभाजन, प्रीतिभाजन, श्रद्धाभाजन, आत्मीय होनेके कारण लोग स्वभावत इन्हे अपने सगे भाईके रूपमे अनुभव करने लगे। श्रीश्रीलालजी याज्ञिक इनके मित्रोमेसे थे। श्रीयाज्ञिकजी हिंदू विश्वविद्यालयके प्राध्यापक प० श्रीजीवनशकरजी याज्ञिकके मौसेरे भाई थे। इनके सम्पर्कमे आनेवाले व्यक्तियोसे श्रीश्रीलालजीका बराबर मिलना-जुलना होता था। उन्हे सभी व्यक्तियोमे इनके प्रति एक ही प्यार एव स्नेहभरी भावनाके दर्शन हुए—'पोद्दारजी हमारे भाई है।' श्रीश्रीलालजीको इसकी स्वय अनुभूति थी ही। बस, वे इनको 'भाईजी'के नामसे पुकारने लगे। फिर तो समाजमे छोटे-बडे, सभी उन्हे 'भाईजी' कहकर पुकारने लगे। इनका 'भाईजी' नाम 'पोद्दारजी', 'हनुमानप्रसादजी' आदि नामोसे भी अधिक प्रचलित हो गया—कारण, सबके हृदयकी स्वाभाविक अनुभूति इनके प्रति भाईके रूपमे ही थी।

गीतामे भगवान्‌ने कहा है—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**'—'मै प्राणिमात्रका अहैतुक स्नेही हूँ।'—इसका उदाहरण 'श्रीभाईजी'ने अपने जीवन एव व्यवहारद्वारा उपस्थित कर दिया। 'भाईजी'—'सुहृद्' शव्दका पर्याय है और यह भगवान्‌के उस दिव्य स्वभावका परिचायक है, जो भक्तोका अवलम्वन है।

एकनिष्ठ प्रेमी श्रीगम्भीरचंदजी दुजारी

समुद्रकी ओर वढती हुई सुरसरिमे यहाँ-वहाँसे झरते हुए झरने आ-आकर मिल जाते है, अपने प्रेष्ठ जलधिसे मिलनकी आकाङ्क्षा लेकर, और अपना अस्तित्व खोकर—सुरसरिमे विलीन होकर वह चलते है उसीके साथ। यदि अपनी स्वतन्त्र सत्ताको वनाये रखनेकी कामना उनमे रहे तो प्रेष्ठसे मिलनकी साध कभी पूर्ण होनी सम्भव नही। अञ्जलिभर जल लेकर वे कितनी दूर वढेगे ? चट्टानोको कैसे वे भेदकर चलेगे ? कैसे वालुकामय प्रदेशको परितृप्त करते हुए—उसकी प्यासको वुझाते हुए अपनी गतिको वनाये रखनेमे समर्थ होगे ? पर सुरसरिका सगम उनको निश्चिन्त कर देता है इन सव वाधाओकी चिन्तासे। इसी प्रकार जव कोई महापुरुप—कोई प्रेमी सत धराधाममे पधारते है, अनन्तजन्मोकी साध लिये हुए कुछ महाभाग-जीव उन महापुरुषो—प्रेमी भक्तोका सङ्ग प्राप्त करते है एव उनके दर्शनसे, स्पर्शसे, सम्पर्कसे अपने जीवनको पवित्र करते हुए प्राप्तव्यको प्राप्त कर लेते है। भाईजीसे ऐसे अनेको सस्कारी जीवोका सम्पर्क हुआ और उन्होने अपने योग्यतानुसार उनसे आन्तर-वाह्य सम्वन्ध स्थापित कर यथाधिकार भगवत्प्रेमको प्राप्त किया। इन्ही परम वडभागी महानुभावोमे श्रीगम्भीरचदजी दुजारीका नाम विशेप उल्लेखनीय है। ये महानुभाव स० १९८०मे २२ वर्षकी अल्पायुमे भाईजीसे आकर मिले और सदाके लिये इनके हो गये।

सत्सङ्गके प्रति वाल्यकालसे विशेष रुचि रहनेके कारण ये अपना अधिकाश समय सत्सङ्ग-भजनमे ही लगाते थे। अपने व्यापारका कार्य वहुत कम सँभालते थे। भाईजीसे मिलते ही इन्हे अपने जन्म-जन्मान्तरका सम्वन्ध स्मरण हो आया और इन्होने भाईजीको ही अपना सर्वस्व स्वीकार कर लिया। भाईजीकी सेवा करना, उनके जीवनकी छोटी-छोटी क्रियाओ एव घटनाओको देखना, उनके पत्रोको पढना, प्रतिलिपि रखना, भाईजीके सम्वन्धमे लोगोसे चर्चा करना और अत्यन्त दैन्यके साथ भाईजीसे उनके जीवनकी वातोको पूछना, जानना और अपनी टूटी-फूटी भाषामे उसे लिपिवद्ध करना—इसीको उन्होने अपने जीवनका लक्ष्य वना लिया। भाईजी-को यह रुचिकर नही हुआ। ये वार-वार इन्हे इससे विरत करने लगे, पर पहाडसे उतरती हुई नदीके प्रवाहको रोकना जिस प्रकार असम्भव होता है, उसी प्रकार दुजारीजीको इस प्रयत्नसे रोकना सम्भव नही हुआ। भाईजीने इनके इस कार्यमे अनेक वाधाएँ डाली, लोगोको इनसे अपने सम्वन्धमे कुछ भी वतानेसे रोका, पर दुजारीजी भाईजीके जीवनकी छोटी-से-छोटी वातको भी अपने ढगसे लिखते रहे। जव प्रेमपूर्वक समझानेका इनपर कोई भी प्रभाव लक्षित नही हुआ, तव भाईजीने अपने स्वभावके विपरीत इनका तिरस्कार करना प्रारम्भ किया, पर ज्यो-ज्यो यह सव-कुछ होता गया, त्यो-ही-त्यो इनकी अपने कार्यके प्रति लगन वढती गयी। पचासो कापियाँ भर गयी। रात-दिन ये पुरानी वातोको पढने और नवीनके सग्रह करनेमे लगे रहे। निष्ठाके सामने पत्थर भी पिघल जाते है, फिर भाईजी तो नवनीत-हृदय ठहरे। सव प्रकारका विरोध करते हुए भी कभी-कभी इनके आँसुओसे द्रवित होकर भाईजी इन्हे अपने जीवनकी वाते—गुह्य वाते भी वता देते थे—यह आदेश देते हुए कि 'उन्हे अपने-आपतक ही सीमित रखियेगा।' जिसको पारस प्राप्त हो जाता है, वह उसे छिपाना चाहता है, क्योकि उसे उसके छिन जानेका भय रहता है। परतु जिसे सतके रूपमे दिव्य पारस प्राप्त हो जाता है, वह मुनादी पीटता हुआ घूमता है—'हे जगत्‌के जीवो! देखो, इधर देखो, तुमलोगोको निर्मल एव भाग्यशाली वनानेके लिये—तुम्हारे समस्त दु ख-क्लेशोको शान्त करनेके लिये—तुम्हे अपनी प्रीतिके सुधार्णवमे निमग्न करानेके लिये भगवान्‌ने कृपा करके एक पारस प्रकट किया है', क्योकि वह जानता है—इस पारसको कोई चुरा नही सकता, कोई छीन नही सकता और इसकी शक्ति एव प्रभाव कभी कम नही हो सकते। दुजारीजीने भी यही किया—जो-जो व्यक्ति उनके सम्पर्कमे आये, उनको प्रेमपूर्वक, सम्मानपूर्वक—कभी-कभी थोडा खीझकर, उपालम्भ देकर भी—भाईजीके जीवनकी वाते सुनाते और उनका सम्वन्ध भाईजीमे वनाते। 'कल्याण' और गीताप्रेमकी

सेवामे लगे प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियोको इस ओर लगानेका श्रेय उन्हीको है। श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी-जैसे वरिष्ठ एव एकनिष्ठ सेवकोके जुटानेका श्रेय भी उन्हीको है। उपर्युक्त कार्योके अतिरिक्त वे नाम-प्रचार, कीर्तन-आयोजन, सत्सङ्ग-आयोजन, साधु-सेवा तथा 'कल्याण'के कार्यमे भी भाईजीका सहयोग करते रहे। 'श्रीभगवन्नामाङ्क'के कार्यमे उनका विशेष सहयोग रहा। 'कल्याण'के उन्होने हजारो सदस्य बनाये। आज जगत्को भाईजीके जीवनके विषयमे जो कुछ तथ्य ज्ञात है, वे उन्हीके सत्प्रयत्नका फल है। वे भाईजीके जीवनवृत्तको ससारके समक्ष प्रकाशित करना चाहते थे, किंतु इस उत्कट अभिलाषाको लिये हुए ही सवत् २०१८मे वे भगवान्के चरणोमे समर्पित हो गये।

पारसी प्रेतके लिये श्राद्ध-व्यवस्था

भाईजीका बम्बई-प्रवास आध्यात्मिक चमत्कारोका विशाल भडार है। साधनात्मक उपलब्धियोके साथ-साथ इनकी भी वृद्धि होती गयी। नीचे भाईजीके ही शब्दोमे एक ऐसी घटना वर्णित है, जिसमे विभिन्न देवयोनियोकी सत्यता प्रमाणित होती है। यह घटना सवत् १९८२के आस-पास घटित हुई थी। एक प्रसङ्गमे भाईजीने यह घटना सुनायी थी——

"साधना प्रारम्भ होनेपर उसमे बडी तीव्रता आने लगी। मै प्रतिदिन सायकाल भोजन करनेके पश्चात् लगभग आठ बजे घरसे निकल जाता था और चौपाटी स्ट्रैंडमे जो बहुत-सी बेचे पडी रहती थी, वहाँ बैठकर नाम-जप एव भगवच्चिन्तन करता था। वह स्थल बिल्कुल एकान्त था तथा प्रकाश अधिक न रहनेसे वहाँ अँधेरा-सा रहता था। यह मेरा प्रतिदिनका काम था। एक दिन मै एक बेंचपर बैठा नाम-जप कर रहा था। अचानक मेरी बेंचके ठीक सामने मेरे पैरोकी तरफ एक पारसी सज्जन खडे दिखायी दिये। वे सफेद कपडे पहने हुए थे। पारसियोमे जो पुरोहित होते है, वे विशेष प्रकारकी पोशाक पहनते है। वे वैसी ही पोशाक पहने हुए थे। मै अपना नाम-जप करता रहा और वे सज्जन सामने खडे रहे। वे बहुत देरतक उसी रूपमे खडे रहे, पर मै चुप रहा और नाम-जप करता रहा। बहुत देर होनेपर मनमे आया कि 'एक भले आदमी सामने खडे है और इन्हे इसी प्रकार खडे बहुत देर हो गयी है, अतएव इनको बैठनेके लिये कह दिया जाय।' ऐसा विचार आते ही मैने उनसे कहा——'साहेबजी,[1] आप बैठ जाइये। खडे-खडे आपको बहुत देर हो गयी।' मेरे इतना कहनेपर वे बोले——'आप डरियेगा नही, मै प्रेत हूँ।' उन सज्जनने ज्यो ही अपनेको 'प्रेत' बतलाया, मै भयभीत हो गया। मुझे पसीना हो आया। वे समझ गये कि मै डर रहा हूँ। उन्होने फिर कहा——'आप डरिये नही, मै आपका अनिष्ट नही करूँगा। मै तो आपसे सहायताकी याचना करने आया हूँ। आपका मङ्गल होगा।' उनके इस आश्वासनसे मै कुछ आश्वस्त हुआ। पीछे उन्होने कहा——'यदि आप मुझसे पहले बात नही करते तो मै बोल नही पाता, क्योकि मुझमे ताकत नही है कि बिना किसीके पहले बात किये मै अपनी ओरसे यहाँके लोगोसे बोल सकूँ। यही हेतु है कि मै इतनी देर प्रतीक्षा करता रहा कि आप बोले। प्रेतलोकमे अनेक स्तर है। प्रेतोके अनेक प्रकारके अधिकार है, उनकी विभिन्न शक्तियाँ है। कोई प्रेत सभी जगह आ-जा सकते है, कोई नही आ-जा सकते। कोई अनेक काम कर सकते है, कोई नही कर सकते। जैसे इस लोकमे मनुष्योके अलग-अलग अधिकार है, शक्तियाँ है, बल है, वैसे ही वहाँपर है। मै प्रेतयोनिमे हूँ। मै सब जगह जा सकता हूँ, हर एकको दिखायी दे सकता हूँ, पर मुझसे पहले कोई बोले नही तो मै बोल नही सकता। मै पारसी हूँ, पर मेरी हिंदूशास्त्रोमे श्रद्धा है। मेरी मृत्यु अभी हालमे ही हुई है। प्रेतलोकमे मेरी स्थिति अच्छी नही है, आप कृपा करके किसीको गया भेजकर मेरे लिये पिण्डदान करवा दे तो मेरी सद्गति हो जायगी।' मैने उनसे प्रश्न किया——'गयामे हिंदुओके द्वारा श्राद्ध किया जाता है। आप पारसी है, आपलोग श्राद्धपर विश्वास नही करते, फिर श्राद्ध करानेकी बात कैसे कहते है?'

"प्रेतने उत्तर दिया——'सत्य यदि सत्य है तो वह जाति-सापेक्ष नही है। भिन्नता जातिमे होती है। जाति तो यहाँके व्यवहारको लेकर है, जीवमे जातिका भेद नही होता। जीवमे पारसी, हिंदू, ईसाईका सवाल नही। जिस जीवको प्रेत बनना होता है, वह बनता ही है।'

---

[1] पारसियोमे सम्मानार्ह व्यक्तियोको 'साहेबजी' कहकर सम्बोधित करते है।

"पीछे तो मैने उनसे बहुत-सी बाते पूछी—जैसे प्रेतलोककी स्थितिके सम्बन्धमे, वहाँके जीवनके सम्बन्धमे, कर्मोके फलके बारेमे आदि-आदि। उन्होने सब बातोका सविस्तर उत्तर दिया। अब मै उन बातोको भूल गया हूँ। पर मुख्य बात मुझे स्मरण है। उन्होने बताया—'किसीके प्रति वैर लेकर मरनेवालेकी बहुत दुर्गति होती है। उसे नरकोमे बडा कष्ट होता है।' मैने उनसे पूछा—'क्या नरक सत्य है?' बोले—'हाँ, सब सत्य है।' फिर उन्होने कहा—'जीवनमे किसीके प्रति द्वेष रहा हो तो मरनेसे पहले उससे क्षमा माँग ले तथा अपने मनसे उसके प्रति वैरभावका त्याग कर दे। इसके अतिरिक्त जो धनके लिये किसी दूसरेकी हत्या करता है, उसकी बडी दुर्गति होती है। किसीको आश्वासन देकर न देनेवालेकी भी दुर्गति होती है। ब्राह्मण और गरीबका धन अपहरण करनेवालेकी बहुत दुर्गति होती है। माता-पिता और गुरुका अपमान करनेवालेकी बडी दुर्गति होती है। व्यभिचारीकी भी बडी दुर्गति होती है।' इस प्रकार उन्होने मुझे बहुत-सी बाते बतायी। उन्होने यह भी बतलाया कि 'प्रेत-लोकमे बहुत-से सद्भावनायुक्त प्रेत है, बहुत-से दुर्भावनायुक्त। बहुत-से सात्त्विक वृत्तिके है तथा बहुत-से तामस वृत्तिके। वृत्तिके अनुसार उनके स्वभाव एव कर्म होते है। इस जीवनके ममता तथा राग-द्वेषके सम्बन्ध उनको स्मरण रहते है और वैसा ही वे यहाँके व्यक्तियोको मानते है तथा उसी प्रकारका बर्ताव उनके साथ करनेकी चेष्टा करते है। परतु सभी प्रेम या द्वेषका बर्ताव नही कर पाते, इसलिये दुखी रहते है। अच्छे प्रेतोको कुछ दिन वहाँ रखकर पितृलोकमे भेज दिया जाता है, जो प्रेतलोकका ही एक अङ्ग है। वहाँ उन्हे कर्मानुसार अच्छी-बुरी स्थिति प्राप्त होती है। वहाँ भी पहलेका किया हुआ भजन स्मरण रहता है और भजनकी वृत्ति बनी रहती है। पहलेके अभ्यासके अनुसार वहाँ भजनकी प्रवृत्ति होती है और भजन होता है। प्रेतलोकमे शान्त प्रेत भी बहुत है, जो किसीका बुरा करना नही चाहते। किसी दुष्कर्मवश उनको प्रेतत्वकी प्राप्ति हो गयी रहती है। प्रेतलोकके प्राणियोके लिये अन्न-जल-वस्त्रादिका दान उनके नामपर घरवालो एव मित्रोको सदा करते रहना चाहिये, वहाँ उनके अदर वासना होती है, जो यहाँ दान देनेसे ही पूर्ण होती है। प्रेतोके उद्धारके लिये तथा उनको सद्गतिकी प्राप्ति करानेके लिये श्राद्ध एव पिण्डदान, गयाश्राद्ध, भागवत-पारायण, विष्णुसहस्रनामके पाठ, गायत्री-जप और अपने-अपने धर्मानुसार भगवान्‌की प्रार्थना करनेसे उन्हे बहुत लाभ होता है।'

"और भी बहुत-सी बाते उन्होने बतायी। फिर उन्होने अपने बम्बईके स्थानका नाम-पता बतलाया। इतना वार्तालाप करनेके पश्चात् वे अन्तर्धान हो गये। मै लौट आया। दूसरे दिन उनके कथनानुसार मैने उनका पता लगाया। वे बम्बईके बादरा नामक अञ्चलमे रहते थे। छ महीने पहले उनकी मृत्यु हुई थी। उनका नाम आदि सब मिल गया। वे पारसी होनेपर भी गीताका पाठ किया करते थे। सब बातोका ठीक-ठीक पता लग जानेपर मैने अपने पास रहनेवाले एक ब्राह्मणको, जिनका नाम हरिराम था, उनका गयामे श्राद्ध एव पिण्डदान करनेके लिये भेजा। उन्होने गयामे जाकर उन पारसी सज्जनका पिण्डदान और श्राद्ध किया। जिस दिन गयामे उनके लिये पिण्डदान हुआ, उसी दिन चौपाटीमे ही उनके फिर दर्शन हुए और उन्होने कहा—'मै आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने आया हूँ। आपने मेरा काम कर दिया। अब मै प्रेतलोकसे उच्चलोकमे जा रहा हूँ।' मुझे उनकी बात सुनकर बडा सतोष हुआ।

"पहले मै श्राद्ध-तर्पण आदिपर थोडा सदेह करने लगा था, सुधारवादियोके साथ रहनेके कारण ही इस प्रकारकी वृत्ति हो चली थी। पारसी प्रेतसे मिलने तथा उससे वार्त्तालाप होनेके पश्चात् श्राद्ध-तर्पणपर मेरी दृढ आस्था हो गयी। उसके बाद मैने शिशिरकान्ति घोषके पुत्र श्रीपीयूषकान्ति घोषकी 'मृत्युर् पर पारे' ('मृत्युके उस पार') नामक ग्रन्थ तथा इस विषयकी अन्य पुस्तके देखी। इस अध्ययनसे भी श्राद्ध आदिमे निष्ठा बढी और हमारे घरमे बडी श्रद्धाके साथ श्राद्ध-कर्म होने लगा।"

चैत्र कृष्ण १०, २०२४ (४ अप्रैल, १९६७)को गीताभवनमे प्रवचन देते हुए भी प्रसङ्गवश भाईजीने ऐसी ही बाते कही थी—'हम श्राद्ध-तर्पणपर बहुत जोर देते है। इसके हमे नये-नये अनुभव प्राप्त हुए है। यह बिल्कुल सच्ची बात है, मानो ऋषियोने यह सब देखकर लिखा हो—उन लोकोमे जा-जाकर लोकोकी स्थिति देख-देखकर लिखा हो। ऐसी बात नही है कि लोगोको रोचक और भयानक बाते बताकर अच्छे काममे लगाया गया हो। श्राद्ध-तर्पण और पितरोके लिये हमेशा दान करना चाहिये। यह केवल शास्त्रकी

बात नहीं है। बम्बईमें प्रेतसे मेरी बात हुई थी, मैंने बहुत-सी बातें उससे जानीं। फिर तो मैंने इसका पता लगाया। यह बात सबके सामने कहनेकी नहीं है, पर मैंने बहुत-से लोकोंका पता लगाया और उनमें अब भी मेरा कुछ सम्बन्ध है। विभिन्न लोकोंसे, वहाँके कुछ तत्त्वोंमें मेरा सम्बन्ध अब भी है। अब भी वहाँकी कुछ बातें जाननी होती हैं तो जाननेकी चेष्टा की जाती है। कोई जाननेमें आती हैं, कोई नहीं आती। कोई देरसे आती है, कोई बिल्कुल नहीं आती, क्योंकि उनपर अपना वश तो है नहीं। वहाँपर अपनी कोई ताकत तो चलती नहीं। वहाँ किसीके जरिये काम करना पड़ता है। पर यह बात नितान्त सत्य है कि श्राद्ध-तर्पण करना चाहिये।'

इसी प्रकार एक अन्य प्रवचनमें भाईजीने बताया था कि 'मनुष्यके मरते ही उस (जीव)का पाञ्चभौतिक स्थूलशरीरसे सम्बन्ध छूट जाता है और उसे तुरत एक आतिवाहिक देहकी प्राप्ति होती है। मृत्युका अर्थ है—पाञ्चभौतिक स्थूलदेहसे केवल सम्बन्ध-विच्छेद। मृत्युमें स्थूलशरीर तो छूट जाता है, पर आतिवाहिक देहमें सूक्ष्मशरीर रहता है। कुल पाँच प्रकारके शरीर होते हैं—(क) पाञ्चभौतिक देह, जो मृत्युलोकके मानव या मानवेतर प्राणियोंको कर्मफलानुसार प्राप्त होती है। (ख) वायुप्रधान देह, जो पितरोंको या प्रेतोंको पितृलोकके भोग या प्रेतलोककी यातना भोगनेके लिये मिलती है। (ग) तेजप्रधान देह, जो देवोंको या देवलोकमें जानेवाले जीवात्माओंको स्वर्गके दिव्य भोग भोगनेके लिये मिलती है। (घ) चिन्मय देह, जो भगवान्‌को या भगवान्‌के नित्यपार्षदोंको प्राप्त रहती है। और (ङ) भावदेह, जो गोपियोंको महारासमें जानेके पूर्व प्राप्त हुई थी और जिससे गोपियाँ श्रीराधामाधवकी सेवामें नित्यलीन रहती हैं—

"मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः।"

'व्रजके गोपोंने देखा कि उनकी-उनकी पत्नियाँ उनके-उनके पास ही हैं।' गोपियोंका पाञ्चभौतिक शरीर घरपर था। वस्तुतः उनका भाव-वपु ही रासमें गया था।'

प्रेत-दर्शनकी इस घटनासे भाईजीकी परलोकके सम्बन्धमें जिज्ञासा बढ़ी और उन्होंने अपने साधन-बलसे वहाँकी कुछ आत्माओंसे सम्पर्क स्थापित कर लिया। उनके माध्यमसे ये यदा-कदा परलोकगत आत्माओंकी स्थितिका विवरण ज्ञातकर मृतकोंके सम्बन्धियोंको सान्त्वना प्रदान करते थे। श्रीभाईजीके महाप्रयाणके १० मास पूर्व एक सम्भ्रान्त विद्वान् जिज्ञासुने प्रेतसे भेंट होनेकी घटनाका उल्लेख करते हुए भाईजीसे पूछा—'क्या आपका दिव्यलोकोंसे सम्बन्ध है?' भाईजी सकुचा गये, पर उनका आग्रह देख तथा आत्मीयतापर मुग्ध होकर उन्होंने बताया—"मेरा कुछ लोकोंसे सम्बन्ध है। वहाँके कुछ प्राणियोंसे भी सम्बन्ध है। अमुक आदमीकी मृत्युके बाद क्या स्थिति है, इसका पता लगाना होता है तो वहाँके वासियोंसे कहा जाता है। वे प्राणी अमुक नाम एवं अमुक गोत्रवाले अमुक आदमीकी अमुक स्थानपर मृत्यु हुई तथा उसका दाह-संस्कार अमुक स्थानपर हुआ—ये जानकारियाँ प्राप्त करके वहाँ उस व्यक्तिका पता लगाते हैं और पता लगनेपर मुझे बता देते हैं। बहुत लोग मिलने-जुलनेवाले आते हैं। वे अपने स्वजनों-मित्रों आदिकी गतिके विषयमें पूछते रहते हैं। इस प्रकार १०-२० केस बराबर पता लगानेके लिये रहते हैं। मैं उन लोकोंके प्राणियोंको वह केस बता देता हूँ। उनके प्रयत्नसे कुछ व्यक्तियोंका ठीक-ठीक पता लग जाता है, कुछका अधूरा पता लगता है और कुछका बिल्कुल ही पता नहीं लगता। उन लोकोंके प्राणियोंके द्वारा वहाँकी बहुत-सी बातें ज्ञात होती रहती हैं। अमुक मृत व्यक्तिके लिये क्या उपाय करवाना चाहिये, जिससे उसकी सद्गति हो जाय—इसका संकेत भी उनसे प्राप्त हो जाता है। पीछे उस व्यक्तिके लिये वैसा उपाय करवा दिया जाता है और उसकी सद्गति हो जाती है।

"दो-तीन वर्ष पूर्व बनारसके एक होटलमें एक सज्जनने अपने एक स्वजनकी हत्या कर दी थी। मृत व्यक्तिकी पत्नी गोरखपुरकी ही लड़की है। वह बहुत दुःखी थी। उसने अपने पतिके विषयमें मुझसे जानना चाहा। मैंने उन लोकोंके प्राणियोंसे पता लगाया और उनका बताया हुआ उपाय करवाया। उस व्यक्तिकी सद्गति हो गयी। और भी बहुत-सी बातें हैं, जो बतानेकी नहीं हैं। परलोकमें गये हुए कई व्यक्तियोंसे मेरा वार्तालाप हुआ है, पर सब बताया नहीं जा सकता। गोरखपुरके एक सज्जनके पुत्रकी मृत्यु बहुत वर्षों पहले हुई थी, उसकी भी इसी प्रकार सद्गति हो गयी।

"मान ले यहाँ अमुक शहरमे या प्रान्तमे हमारे कोई परिचित है। हम उन्हे उस शहर या प्रान्तके किसी व्यक्तिके विषयमे पता लगानेके लिये कहे तो वे परिचित व्यक्ति उनका पता लगानेका प्रयत्न करते है, परतु प्रान्त और शहरकी सीमा बहुत बडी होनेसे वे किसीका पता लगा पाते है, किसीका नही। कही कोई व्यक्ति उस प्रान्तको छोडकर दूसरे प्रान्तमे चला जाता है तो उस प्रान्तमे रहनेवाले अपने किसी मित्रको उनका पता लगानेके लिये कहा जाता है। वे मित्र कभी प्रयत्न करते है, कभी नही भी करते। यही स्थिति अन्य लोकोकी भी है। जिन व्यक्तियोसे हमारा परिचय है, वे अपने लोकमे हमारे बताये हुए नामके व्यक्तिका पता लगाते है। वहाँ पता न चलनेपर वे अपने परिचित अन्य लोकोके व्यक्तियोको अपने लोकोमे पता लगानेके लिये कहते है तो कभी वे पता लगाकर बताते है, कभी नही भी बताते। इधर एक स्वजनने अपनी नानोके विषयमे पता लगानेके लिये कहा था। मैने प्रयत्न किया था, पर अभीतक उनका पता नही लग पाया है।

"हमारे पृथ्वीलोककी भाँति उन लोकोमे भी सभी तरहके प्राणी होते है। प्रेतोमे भी कुछ बडे ईमानदार होते है और कुछ यहाँके स्वभावके अनुसार धोखा देनेवाले भी होते है। उन लोकोसे सम्पर्क स्थापित करनेकी कई विधियाँ है, जिन्हे मै बताना नही चाहता, किंतु इसमे कोई सदेह नही कि वहाँके लोकोसे सम्पर्क स्थापित हो सकता है।"

यह तो प्रेतलोक आदिकी बात हुई। भाईजीकी पहुँच ऊँचे-से-ऊँचे लोकोतक थी। भाईजीके एक श्रद्धालु श्रीरामनिरजनजी रूँगटाका २१ अगस्त, १९६१को शरीर शान्त हो गया। इसकी सूचना फोनद्वारा भाईजीको गोरखपुर प्राप्त हुई। इन्होने सूचना प्राप्त होते ही कहा—'श्रीरूँगटाजीका श्रीकृष्णके दिव्यधाममे उनके एक परम-निकटस्थके रूपमे प्रवेश हो गया', और अपने हाथसे इस आशयका तार लिखकर अपने सेवकको दे दिया। यहाँ हम भाईजीके हाथके लिखे तारके मजबूनका छायाचित्र दे रहे है—

(श्रीरूँगटाजीके निधन-सवादसे यहाँ सभीको बडा दुख हो रहा है। वैसे विशुद्ध प्रेमी जगत्मे दुर्लभ है।

राधाष्टमी-उत्सव-प्रासादका तो एक आधारस्तम्भ ही टूट गया। तथापि इस बातसे बडा आनन्द है कि उनका श्रीकृष्णके दिव्यधाममे उनके एक परमनिकटस्थके रूपमे प्रवेश हो गया, जो अत्यन्त दुर्लभ है। उनकी पत्नी और उनके पुत्र-पुत्रवधुओंमे मेरी हार्दिक सहानुभूति ।

हनुमान)

सामाजिक सुधारोमे योगदान

वम्वई-जीवनमे भाईजीके द्वारा होनेवाले अनेकविध सामाजिक कार्योमे वृद्ध-विवाहको रोकनेका प्रयत्न भी था। एक घटना है—नासिकके एक वृद्ध मारवाडी सज्जन पैसेके वलपर विवाह करना चाह रहे थे। उनका रुईका वडा काम था और समाजमे अच्छी प्रतिष्ठा थी, इससे कोई विरोध नही कर पा रहा था । भाईजीको जव उसकी सूचना मिली, तव ये अपने कुछ साथियोको लेकर नासिक पहुँच गये। ये लोग सत्याग्रह करनेकी तैयारी करके गये थे। भाईजीने कोर्टसे इजक्शन करवा लिया और शादी नही होने दी। उस समय वडे दिनोकी छुट्टियाँ चल रही थीं, कोर्ट खुलते नही थे, अत जजके घर जाकर इजक्शन-आर्डर करवाना पडा। लडकीके नकली माँ-वाप आये, उन्हे पकडवाया गया।

इन कार्योके कारण वम्वईके लोग भाईजीको 'सुधारकोका नेता' मानने लगे थे। यद्यपि भाईजी पूरे सुधारक तो नही थे—इनपर प्राचीनताके प्रवल सस्कार थे, तथापि किसी भी वुराईका सुधार करानेमे ये अगुआ रहते थे।

अग्रवाल-महासभा, फतेहपुर

भाईजीका 'मारवाडी-अग्रवाल-महासभा'के साथ समाज-सेवाकी दृष्टिसे सम्वन्ध था। उनकी परमार्थ-साधनामे इससे वाधा आती थी। फिर भी ये प्रत्येक अधिवेशनमे जाया करते थे। उसमे हेतु था—लोगोका विश्वास, प्रेम तथा आकर्षण। कई लोग तो इन्हे अपने-से-अपना मानते थे। महासभाका ७वाँ अधिवेशन चैत्र शुक्ल १, स० १९८२को फतेहपुर (राजस्थान)मे हुआ था। श्रीशिवनारायणजी नेमाणी उसके सभापति थे। नेमाणीजीका इनपर इतना विश्वास था कि सभापतिकी हैसियतसे दिया जानेवाला भाषण उन्होने इनसे ही तैयार करवाया। इस वार सभाके प्रति भाईजीने भी वडी रुचि प्रकट की। कई प्रस्ताव किये। अधिवेशनके साथ ही कवि-सम्मेलन हुआ था। लोगोने वडे आग्रहसे इन्हे ही सभापति वनाया। हिंदी-साहित्यकी रक्षाके सम्वन्धमे इन्होने वडा ही मर्मस्पर्शी भाषण दिया तथा भाषणके अन्तमे स्वरचित एक कविताका पाठ किया। साहित्य-प्रेमी श्रोता कविता सुनकर आनन्दमग्न हो गये।

मनकी अधीरता

सवत् १९८२के आरम्भमे भाईजीकी साधनाकी यह स्थिति थी कि भगवत्प्राप्तिके लिये मन अधीर होने लग गया था। परतु इन्हे एक त्रुटि अनुभव हो रही थी। प्रथम वर्षोमे ध्यानकी जो स्थिति वडी तीव्रतासे उत्पन्न हुई थी, उसमे अव विशेष प्रगति नहीं हो रही थी, वह रुकी हुई प्रतीत होती थी। ये सोचते थे—'अवतक जो उन्नति हुई, उसमे मेरा पुरुषार्थ सर्वथा हेतु नहीं है, वह तो भगवत्कृपाका ही परिणाम है। परतु क्या अव भगवत्कृपा उस रूपमे नहीं है ?' इस उधेड-वुनकी स्थितिमे भाईजीने श्रीसेठजीको एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार है—

"मेरा साधन एव प्रेम तो पहले भी ऐसा ही था, फिर क्या कारण है कि उस वर्ष तो एक ही सालमे इतना साधन वढा और उसके वाद साधन वहीं ठहर गया। मुझमे जैसा वल उस समय था, वैसा अव भी है। फिर साधन क्यो रुक गया ? मुझे तो यही जान पडता है कि उस समय मेरे साधनकी उन्नतिमे मेरा वल, प्रेम कुछ भी नहीं था। जो कुछ हुआ, सव प्रभुके अद्भुत अनुग्रहसे ही हुआ, नहीं तो इतने अल्पकालमे इस प्रकार कैसे होता ?

"मेरा ही वल कुछ कर सकता तो अव वह क्यो नही करता ? परतु आश्चर्य तो इस बातका है कि प्रभुने दया करके इतना योग प्रदान किया और अवतक उसका क्षेत्र-विस्तार भी बराबर हो रहा है। फिर क्या कारण है कि वचा हुआ 'योग' प्राप्त होनेमे विलम्ब हो रहा है। अतएव इसमे कहीपर दोष है तो वह मेरी अनन्यतामे ही है। नित्याभिमुख हुए विना 'योगक्षेम'का वहन परमात्मा क्यो करे ? परतु फिर वही प्रश्न आता है कि अनन्यता तो पहले भी नही थी, नित्याभिमुख तो मै पहले भी नही था। फिर क्या कारण है कि उस समय तो इतना हुआ और अव नही होता ? क्या प्रभुके अनुग्रहमे विपमता है ? नही, यह तो असम्भव वात है। वहाँ अगर विपमता होती तो पहले ही इतनी दया क्यो होती ? कही-न-कही मेरा ही कोई महान् दोप है, जो प्रभुकी पद-पदपर प्रकट होनेवाली अपार कृपाका अनुभव नही होने देता। पर इस दोषको दूर करना भी प्रभुके ही अधिकारमे है। यदि मै ही दोष हटा सकता तो अवतक हटा क्यो नही देता ? अत सब तरहसे दोषी-निर्दोष, साधक-असाधक––जो कुछ भी क्यो न समझा जाऊँ वा होऊँ, अव तो वेडा पार होना ही चाहिये।

"माना कि प्रेम-परीक्षा होती है, पर मै कब कहता हूँ कि मुझमे प्रेम है। प्रेम होता तो विना मर्जीके ही प्रभुको बँधना पडता। फिर तो इतनी अनुनय-विनय करनेकी आवश्यकता ही मुझे नही होती। गरज होती, प्रेमकी भूख होती तो स्वय सूरदासजीके कृष्णकी भाँति उन्हे मेरे पीछे-पीछे फिरना पडता। परतु यहाँ तो प्रेमहीनको अपनाकर जवर्दस्ती प्रेमी वनाना है। फिर प्रेमकी परीक्षा क्यो होती है ? प्रेम हो तो परीक्षा हो, पता नही, इसका क्या अर्थ है ? मुझे तो कभी आश्चर्य होता है और कभी हर्ष।"

भाईजीके हृदयमे साधनकी तीव्रताके लिये कितनी छटपटाहट थी तथा भगवान्‌की कृपाको सक्रिय करने-वाला दैन्य भी कितनी मात्रामे उनमे पनप चुका था, यह इस पत्रसे स्पष्ट हो जाता है। भक्तकी आतुरता, अधीरता, दैन्य आदि ही भगवान्‌को अपनी कृपाका प्रकाश करनेके लिये विवश करता है। फिर भगवान् भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु है, भक्तके हृदयमे छटपटाहट हो और वे व्यवस्था न करे, यह सम्भव नही है। भगवान् भाईजीकी अन्तर्व्यथाको देख-सुन रहे थे और उसीके अनुरूप घटनाचक्र घुमा रहे थे। पर यह सव हो रहा था पर्देके पीछेसे।

श्रीसेठजीके स्वास्थ्य-लाभके लिये अनुष्ठान

भाद्रमास १९८३मे श्रीसेठजी अकस्मात् अस्वस्थ हो गये। उपचार हुए। किंतु उनसे कोई लाभ देखनेमे नही आया तो स्वजनो एव शुभचिन्तकोको चिन्ता हुई। वीकानेर-निवासी प० श्रीगणेशदत्तजी व्यास सेठजीके यज्ञो-पवीत-गुरु थे। उनका ज्योतिप तथा तन्त्रशास्त्रपर अच्छा अधिकार था। उन्होने श्रीसेठजीकी जन्मपत्री देखी तथा ग्रहोका विचार किया तो उन्हे पता चला कि ग्रह वहुत कडे है, उनकी शान्ति आवश्यक है, अन्यथा शरीरकी हानि हो सकती है। उनका विचार हुआ कि रोगशमनके लिये ग्रहशान्तिके निमित्त अनुष्ठानकी व्यवस्था करनी चाहिये। उन्होने यह वात श्रीसेठजीके कुटुम्वियोसे कही, किंतु किसीने उन्हे इस कार्यके लिये प्रोत्साहित नही किया। श्रीव्यासजीका श्रीसेठजीपर वडा स्नेह था, वे यह भी जानते थे कि भाईजीकी श्रीसेठजीपर अगाध श्रद्धा है। अत उन्होने यह सवाद एक पत्रद्वारा इनके पास पहुँचाया। पण्डितजीने उसमे लिखा था––'अनुष्ठान तो हम कर देगे, किंतु व्यय तुम्हे वहन करना होगा।' भाईजीने श्रीव्यासजीके प्रस्तावका सहर्ष अनुमोदन करते हुए उसके व्ययका सारा प्रवन्ध अपनी ओरसे कर दिया तथा किसीसे भी इसकी चर्चा नही की। भगवान्‌की कृपा, अनुष्ठान पूर्ण होते-होते श्रीसेठजी स्वस्थ हो गये।

'कल्याण'का प्रवर्त्तन

वम्वई-जीवनकी सवसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है––'कल्याण'का प्रवर्त्तन। सवत् १९८२की वात है। उन दिनो भाईजीके निर्गुण-निर्विशेषका ध्यान चल रहा था तथा उसमे भाईजीकी पर्याप्त प्रगति भी हो गयी थी। साथ ही उनकी अपनी स्वतन्त्र पारमार्थिक इच्छा भी नही रही थी। अपने हृदयके भावोका परिचय देते हुए एक पत्रमे भाईजीने श्रीसेठजीको लिखा था––

"साधकके अन्तरकी प्रत्येक भावना और चित्त-तरगकी प्रत्येक क्षुद्र-से-क्षुद्र लहरीको अन्तर्यामी प्रभु जानता है, साधक तो, बस, प्रभुके इङ्गितके अनुसार चलता रहे'—यह उपदेश इस वार सत्सङ्गमे सुना, तबसे न आशा है न निराशा, न इच्छा है न अनिच्छा। न बन्धनका पता है न मोक्षकी अभिलाषा।"

इस प्रकार अपनी उन्नतिकी चाह न होनेपर भी भाईजीके कोमल हृदयमे एक अन्य चाह बलवती हो चली थी कि 'सासारिक जीव कैसे सुखी हो ?' जीवोके दु खका चित्र इनके सामने आता था और ये उनके दु खका ठीक-ठीक अनुभव करते हुए उसके निराकरणके लिये बडे चिन्तित हो जाते थे। इस अवस्थामे स० १९८२के चैत्रमासमे भाईजीने श्रीसेठजीको एक पत्रमे लिखा—'देखा जा रहा है कि ससारके जीव बहुत दु खी हो रहे है। किसी भी दशामे उन्हे शान्ति नही है। देश-देशमे, घर-घरमे कलह हो रहा है। जीव एक-दूसरेका अनिष्ट कर रहा है। ऐसी स्थितिमे इन जीवोका उद्धार अवश्य होना चाहिये। जगत् तो इस दु ख-दावानलमे दग्ध हो रहा है। ऐसी स्थिति बनी रही तो थोडे ही दिनो बाद घर-घरमे, भाई-भाईमे भयानक मार-काट होनी सम्भव है। लोगोमे भगवान्‌के प्रति विश्वास उठता जा रहा है। दिन-पर-दिन जगत्‌का भविष्य—कम-से-कम एक बारके लिये तो अत्यन्त भयानक दीखता है। ऐसी स्थितिमे जीव कबतक पडा रहेगा ? भगवत्कृपाका अनवरत प्रवाह बहाये बिना, भला, किस प्रकार उन्हे शान्ति मिल सकती है। यदि जीवको अपने ऊपर रहनेवाली नित्य भगवत्कृपाका सरलतासे अनुभव होने लगे तो जीव कृतार्थ हो जाय। पर मायाकी कितनी प्रबल शक्ति है। परमात्माकी असीम कृपाका पद-पदपर प्रत्यक्ष दर्शन करता हुआ भी मोहावृत्त जीव बार-बार भूल जाता है। पर वह प्यारा अपनी मनोहर छटा दिखलाकर बारबार आता है। यदि जीव उसे पकड ले तो वह अपनेको पकडवानेको भी तैयार जान पडता है। पर आश्चर्य तो यह है कि जीव उसे पकडता नही, हाथमे आये हुएको छोड देता है। जिस समय वह किसी और रूपमे अपनी सत्ता दिखलाता है, उस समय तो इसे कुछ आनन्द-सा होता है, पर उस आनन्दमे आनन्दरूपको न पहचानकर जीव उसे छोड देता है। फिर पश्चात्ताप होता है। मालूम नही, वह पश्चात्ताप असली होता है या बनावटी। असली होता तो क्यो नही उसे पकड लेता ? वह तो बारबार पकडवानेका मौका देता है। ऐसी स्थितिमे जीवका मोह कैसे नाश हो ? किस जादूसे जीव मोहसे छूट सके ? जिस उपायसे जीवके अन्तरमे तत्काल बिजली-सी दौड जाय, उसे चेतना हो जाय और वह उस चेतनाको पकड ले, उन्हे किसी भी तरह छोडे ही नही, किसी भी भुलावेमे वह न भूले—यह उपाय होना ही चाहिये।'

यह थी भाईजीके हृदयमे जगत्‌के जीवोके दु खनिवारणके लिये व्यथा। भक्तके हृदयमे उत्पन्न व्यथा भगवान्‌मे प्रतिबिम्बित हो जाती है। भक्तकी करुण पुकारपर ही तो भगवान् अवतार लेते है। भाईजीकी अन्त-र्व्यथापर भगवान्‌की कृपाशक्ति सक्रिय हो गयी और एक वर्षके पश्चात् अर्थात् चैत्र शुक्ल ९, स० १९८३को 'कल्याण'के प्रवर्त्तनकी व्यवस्था हो गयी तथा श्रावण कृष्ण ११, स० १९८३को उसका प्रथम अङ्क प्रकाशित हुआ। भगवान् भाईजीके द्वारा विविध रूपोमे सेवा ग्रहण कर ही रहे थे, अब उन्होने उसका एक ठोस रूप 'कल्याण'के रूपमे प्रस्तुत किया और भाईजी भगवान्‌के हाथके यन्त्ररूपमे उनकी सेवामे लग गये। प्रथम अङ्कने ही देशके बडे-बडे मनीषियो, सतो, महात्माओ, विद्वानो, भक्तो, व्यापारियो आदिको मुग्ध कर दिया। उसके प्रवर्त्तनकी गाथा विस्तारपूर्वक आगे दी जायगी।

गङ्गातटवासकी अभिलाषा

भगवान् भाईजीके जीवनको तीव्रतासे अपनी ओर खीच रहे थे। भगवान् जिसके जीवनको अपनी ओर खीचना चाहे—वह, भला, जगत्‌मे कैसे फँसा रह सकता है। उसके मनमे स्वत जगत्‌के प्रपञ्चमे वितृष्णा उत्पन्न हो जाती है। फिर तो बाँध टूटनेपर जल-प्लावनका प्रवाह जैसे बडे वेगसे आकर गाँवोको बहा ले जाता है वैसे ही विषयतृष्णाका बाँध टूट जानेपर प्राणोमे भगवत्प्रेमके जिस प्रबल उन्मत्त वेगका सचार होता है वह सारे बन्धनोको एव प्रतिबन्धोको तत्काल ही छिन्न-भिन्न कर डालता है। अपने प्रेमीके अभिसारमे दौडनेवाली प्रेमिकाको

भाँति उसे रोकनेमे किसी भी सासारिक प्राणी-पदार्थ-प्रलोभनकी शक्ति समर्थ नही होती । वह अनन्तका यात्री अनन्त परमानन्द-सिन्धु-सगमका पूर्ण प्रयासी बन जाता है। यही स्थिति भाईजीकी हो रही थी। उनका मन जगत् तथा जगत्के कार्योसे हट रहा था--काम-धधेसे उन्हे उपरामता हो रही थी। 'परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थसे मेरी तृप्ति होगी ही नहीं'--यह धारणा उनकी दृढ बन गयी थी । अतएव उनकी समस्त क्रियाएँ परमात्माकी प्राप्तिके लिये होने लगी। परमात्माकी प्राप्तिकी उत्कण्ठा भाईजीको उन्मत्त बनाने लगी--परमात्माको पानेके लिये इनके प्राण छटपटाने लगे। अत इन्होने समस्त सासारिक बन्धनोको तिलाञ्जलि देकर सन्यास ग्रहण करनेका विचार कर लिया और अपने लिये कमण्डलुकी भी व्यवस्था कर ली । पर, **'तेरे मन कछु और है, कर्ताके कछु और'**--ये स्वतन्त्र नही थे, भगवान् अपने इच्छानुसार यन्त्रवत् इनका सचालन कर रहे थे। भगवान्से सन्यास ग्रहण करनेकी स्वीकृति नही मिली। अत विवशत गङ्गातटपर किसी एकान्त स्थानमे रहकर परमात्माको प्राप्त करनेकी साधना करनेका मनमे निश्चय किया गया । अब उस दिनकी प्रतीक्षा होने लगी, जिस दिन यह सुयोग सघटित हो जाय। हृदयकी आकुलता वाणीमे मुखरित हो गयी और ये गा उठे--

होगा कब वह सुदिन, समय शुभ, मायावी मन बनकर दीन।
मोहमुक्त हो, हो जायेगा पावन प्रभु-चरणोमे लीन ॥
कब जगकी झूठी बातोसे हो जायेगी घृणा इसे।
कब समझेगा उसे भयानक, मान रहा रमणीय जिसे ॥
पुण्यभूमि ऋषिसेवितमे कब होगा इसका निर्जन-वास।
गङ्गाकी पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नाश ॥
कब साधनके प्रखर तेजसे सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषयविमुख हो, हरिकीविमल भक्तिको पायेगा ॥
कब यह मोह-स्वप्न छूटेगा, कब प्रपञ्चका होगा बाध।
पर-वैराग्य प्रकट कब होगा, कब सुख होगा इसे अगाध ॥
कब प्रतिबिम्ब बिम्ब होगा, कब नही रहेगा चित्-आभास।
निजानन्द निर्मल अज-अव्ययमे कब होगा नित्य निवास ॥

('कल्याण' वर्ष १, पृष्ठ ३६२)

अग्रवाल-महासभाका कलकत्ता-अधिवेशन

बढती हुई उपरामताको तीव्र करनेकी अभिसधिसे भगवान्ने कलकत्तामे 'मारवाडी-अग्रवाल-महासभा'के अधिवेशनकी व्यवस्था की।

सवत् १९८४के चैत्र शुक्लमे यह अधिवेशन बडे गरम वातावरणमे हुआ। इस बार महासभाके दोनो परस्परविरोधी वर्ग आमने-सामने आ गये--एक था सुधारवादी और दूसरा परम्परावादी, जिसे पचायत-पार्टीके नामसे भी अभिहित किया जाता था। सुधारवादी लोग विधवा-विवाह, विलायत-यात्रा आदि प्रगतिशील सामाजिक प्रथाओके समर्थक थे और पचायत-पार्टी इनको आर्य-सस्कृतिके लिये घातक मानती थी। पचायत-पार्टीके सदस्योने श्रीसेठजीके पास तार भेजकर अपने विरोधियोद्वारा आहूत कलकत्ता-सम्मेलनको सहयोग न देनेका उनसे अनुरोध किया। श्रीसेठजीने परामर्श करनेके लिये भाईजीको बाँकुडा बुलाया। वहाँ इनसे तथा अन्य मित्रोसे परामर्श करके अन्ततोगत्वा कलकत्ता-सम्मेलनमे भाग लेनेके पक्षमे निर्णय हुआ। श्रीसेठजी और भाईजी कलकत्ता गये। कलकत्तामे महासभामे सम्मिलित होनेके लिये बाहरसे आनेवाले प्रतिनिधियोके समक्ष विरोधीदलके लोग उग्र प्रदर्शन कर रहे थे । अतएव ये लोग हवडा स्टेशन न उतरकर एक स्टेशन पहले ही उतर गये और वहाँसे कलकत्ता चले गये। कलकत्तामे ये लोग 'गोविन्द-भवन'मे ठहरे । प्रात काल पहुँचते ही नित्यकर्मसे निवृत्त होकर भाईजीने दोनो दलोमे आपसमे द्वेष मिटे--मित्रता हो, इस उद्देश्यसे बडा ही विचारपूर्ण भाषण दिया। दोनो ओरके लोगोपर

इस भाषणकी बहुत ही सुन्दर प्रतिक्रिया हुई। महासभाका अधिवेशन तीन दिन हुआ। तीनों दिन ही भाईजीका अधिकांश समय समझौता करवानेमें व्यतीत हुआ। दोनों पार्टियोंके लोगोंको ये बड़े ही प्रेमसे खूब समझाते रहे पर समझौता न हो सका। हाँ भाईजीके बीचमें पड़ जानेसे यह लाभ अवश्य हुआ कि जो अधिक गड़बड़ होनेकी आशङ्का थी वह न होकर अधिवेशनका कार्य सानन्द सम्पन्न हो गया।

श्रीसेठजी सैद्धान्तिक प्रश्नको लेकर अधिवेशनमें सम्मिलित नहीं हुए। पर भाईजी उदार स्वभावके थे। अतएव अधिवेशनवालोंके विचारोंसे असहमत होते हुए भी महासभाके कार्यमें अवाञ्छनीय अशान्ति न हो—इस उद्देश्यसे वे उसमें सम्मिलित हुए। सचमुच इनकी उपस्थितिमें अधिवेशनका कार्य शान्तिपूर्वक पूर्ण हो गया।

इस सम्मेलनमें समाजके धनी-मानी तथाकथित कर्णधारोंके राग-द्वेष चुगली-निन्दा, दुर्वाक्य-प्रलापादिका नग्न ताण्डव देखकर भाईजीको आन्तरिक कष्ट हुआ। उनके मनमें आया कि 'इस प्रकारके जातीय अधिवेशन आत्म-विज्ञापन पद-लोलुपता तथा दुर्वृत्तियोंकी रङ्गभूमि बन गये हैं। अतः ऐसी संस्थाओंके कार्य-कलापोंमें सक्रिय भाग लेनेसे अपनेको विरत कर लिया जाय।

अधिवेशनके पश्चात् भाईजी अपनी जन्मभूमि आसाम गये। इनके सास-ससुर गौहाटीमें रहते थे और उन दिनों उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। भाईजी गौहाटी पहुँचे। कलकत्ताके राग-द्वेषके नग्न दृश्यको देखनेसे व्यवहार-सङ्कोच करनेकी वृत्ति बड़ी प्रबल हो उठी थी। इन्होंने वहीं निश्चय कर लिया कि बम्बईसे इनको अलग होना है और दुकानवालोंको तार दे दिया कि दुकानके धरू सौदे (माथे और सावे)को बराबर कर दो।

व्यापारिक जीवनकी इतिश्री

बम्बई रहकर भाईजीने लाखों रुपयोंका व्यापार किया नफा-नुकसान हुआ पर इनकी पारमार्थिक साधना ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी त्यों-ही-त्यों इन्हें बम्बईके प्रपञ्चमय जीवनसे उपरामता होने लगी। अब इन्हें बम्बईमें एक-एक दिन भारी लगने लगा। पर इन्हें अभी 'चिरंजीलाल हनुमानप्रसाद' फर्मसे अपना हिस्सा निकालना था। यद्यपि इनके पास उस समय पूँजी एकत्रित नहीं हुई थी, तथापि फर्ममें उस समय कुछ लाभ था। इसलिये इनके साझेदारसे इन्होंने अपना हिस्सा निकालनेका प्रस्ताव बड़ी ही नम्रतापूर्वक किया। साझेदार इनके व्यवहारसे इतने मुग्ध थे कि वे इनको छोड़नेको तैयार नहीं हुए पर जब इन्होंने विशुद्ध परमार्थ-साधनके लिये ऐसा करनेकी बात उन्हें समझायी तो वे राजी हो गये। भाईजीकी उपरामवृत्तिसे वे अच्छी प्रकार परिचित थे। साझेदार व्यावहारिक व्यक्ति थे। मनमें भाईजीके प्रति स्नेह एवं सम्मान होते हुए भी उन्हें अपना स्वार्थ प्रिय था। अतएव उन्होंने हिसाबमें इच्छानुसार जमा-खर्च किया। भाईजीको इसकी कुछ भी परवाह न हुई। इनकी एकमात्र यही कामना एवं चेष्टा रही कि सद्भावपूर्वक काम सलट जाय। साझेदारने जैसे-जैसे लिखापढ़ी करनेको कहा, इन्होंने वैसे-वैसे सब कर दी और व्यापारके क्षेत्रसे अलग हो गये—सदाके लिये। फिर जीवनभर कोई भी काम आजीविका-उपार्जनका इन्होंने नहीं किया।

संसारकी नश्वरताकी अनुभूति

भाईजीका मन पारमार्थिक साधनाकी ओर बढ़ रहा था और भगवत्कृपासे बम्बईके प्रपञ्चमय जीवनसे उन्हें उपरामता होने लगी थी। दैवप्रेरणासे जगत्की नश्वरताके विविध चित्र इनके सामने आ रहे थे। उसी समय एक विशेष चित्र सामने आया। भाईजीके एक मित्र थे, वे बड़े ही शौकीन थे। अपने शरीरकी सार-सँभालका वे बड़ा ध्यान रखते थे। पर दैवकी गति विचित्र है। वे अचानक बीमार हुए और उनका शरीर छूट गया। परिवार एवं स्वजनोंके हृदय चीत्कार कर उठे। सबने रोते-रोते अर्थी तैयार की और शवको श्मशानघाट ले चले। भाईजी भी उस शव-यात्रामें थे। श्मशानघाटपर पहुँचनेपर चिता बनायी गयी और उसपर मित्रका शव रख दिया गया। आगका संयोग होते ही चिता धू-धू करके जल उठी और मित्रका वह शरीर जिसे वह दिनभर सजाया करता था जलने लगा। वे सुन्दर-सुन्दर केश फुर-फुर जलते हुए क्षणोंमें राख हो गये। भाईजी यह

सव दृश्य देख रहे थे। इनके हृदयमे एक अजीव-सा कम्पन हुआ। जगत्के इस नश्वर रूपको देखकर वैराग्यकी भावना प्रखर होने लगी। वही श्मशानभूमिमे जलती चिताकी ओर देखते हुए ये मन-ही-मन गुनगुनाने लगे और हृदयकी भाव-तरगोने वाणीका रूप ले लिया। वही श्मशानमे एक लबा पद बन गया, जो इस प्रकार है––

पलभर पहले जो कहता था, यह धन मेरा यह घर मेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
जिस चटक-मटक औ फैशनपर तू है इतना भूला फिरता।
जिस पद-गौरवके रौरवमे दिन-रात शौकसे है गिरता॥
जिस तडक-भडक औ मौज-मजोमे फुरसत नही तुझे मिलती।
जिस गान-तान औ गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानोसे छुट जायेगा रिश्ता तेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ १॥
जिस धन-दौलतके पानेको तू आठो पहर भटकता है।
जिन भोगोका अभाव तेरे अन्तरमें सदा खटकता है॥
जिस सबल देह, सुन्दर आकृतिपर तू इतना अकडा जाता।
जिन विषयोमे सुख देख रहा, पर कभी नही पकडे पाता॥
इन धन-जोबन, बल-रूप––सभीसे टूटेगा नाता तेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ २॥
जिस तनको सुख पहुँचानेको तू ऊँचे महल बनाता है।
जिसके विलासके लिये निरन्तर चुन-चुन साज सजाता है॥
जिसको सुन्दर दिखलानेको है साबुन-तेल लगाता तू।
जिसकी रक्षाके लिये सदा है देवी-देव मनाता तू॥
वह धूलि-धूसरित हो जायेगा सोने-सा शरीर तेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ३॥
जिस नश्वर तनके लिये किसीसे लडनेमे नहि सकुचाता।
जिस तनके लिये हाथ फैलाते, जरा नही तू शरमाता॥
जो चोर-डाकुओके डरसे नित पहरोके अंदर सोता।
जो छायाको भी भूत समझकर डरता है, व्याकुल होता॥
वह देह खाक हो पडा अकेला सूने मरघटमे तेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ४॥
जिन माता-पिता, पुत्र-स्वामीको अपना मान रहा है तू।
जिन मित्र-बन्धुओको, वैभवको अपना जान रहा है तू॥
है जिनसे यह सम्बन्ध टूटना कभी नही तैंने जाना।
है जिनके कारण अहंकारसे नही वडा किसको माना॥
यह छूटेगा सम्बन्ध सभीसे, होगा जगलमे डेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ५॥
है जिनके लिये भूल बैठा उस जगदीश्वरका पावन नाम।
तू जिनके लिये छोड़ सब सुकृत पापोका है बना गुलाम॥
रे भूले हुए जीव! ये सब कुछ पडे यही रह जायेंगे।
जिनको तैंने अपना समझा, वे सभी दूर हट जायेंगे॥

हो जा सचेत, अब व्यर्थ गवाँ मत, जीवन यह अमूल्य तेरा।
प्राणोके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा।। ६ ।।

—जगत्मे स्वजनो-मित्रोकी मृत्युके प्रसङ्ग बराबर आते है, पर भाईजीके सवेदनशील पवित्र हृदयपर इसका बडा प्रभाव पडा। बम्बईको सदाके लिये नमस्कार करनेकी इनकी बढती हुई प्रवृत्तिको इस प्रसङ्गने भी बढावा दिया।

एक महात्माकी सेवा

कलकत्तासे लौटनेपर भाईजीको एक महात्माकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त हुआ। राजस्थानके प्रसिद्ध सत श्रीउत्तमनाथजी महाराज बम्बई पधारे। नाथजी महाराजने 'अनुभव-प्रकाश' नामसे एक ग्रन्थ तैयार किया था। उस ग्रन्थको छपवानेके लिये वे बम्बई पधारे थे। महाराजजीकी इच्छा थी कि पुस्तक शुद्ध छपे। हिदी भाषाका ज्ञान महाराजजीको विशेष नही था। इसलिये 'प्रूफ-सशोधन' की सेवा भाईजीके ऊपर आयी। इनके पास समयका बडा सकोच था, फिर भी इन्होने नाथजी महाराजकी सेवा स्वीकार की। समय निकालकर ये वेकटेश्वर-प्रेसमे जाते तथा महाराजजीके सामने ही प्रूफ-सशोधन करते। आवश्यकता होनेपर महाराजजीकी सम्मतिसे भाषाका भी सुधार करते थे। नाथजी इनके साधु-स्वभावसे अतिशय प्रसन्न हुए। वे कृपा करके सत्सङ्ग-भवनमे नित्य प्रात पधारते तथा वहाँ उनका वेदान्त-विषयक सुन्दर प्रवचन होता। लगभग डेढ महीनेमे 'अनुभव-प्रकाश' छपकर तैयार हुआ। महाराजजीकी सेवा पूर्ण हुई और उन्होने अन्तर्हृदयसे भाईजीको आशीर्वाद दिया।

विदा-कालका भागवत-अनुष्ठान

बम्बईसे अब शीघ्र चलना तो था ही। अत प्रभुको एक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके लिये १०८ विद्वान् ब्राह्मणोद्वारा माधवबागमे श्रीमद्भागवतके १०८ सप्ताह-पाठका बृहत् आयोजन बिरला-बन्धुओकी तरफसे करवाया गया। उन दिनो बिरला-परिवारके सभी सज्जनोसे भाईजीका घनिष्ठ सम्बन्ध था। अनुष्ठानमे भाईजीने पण्डितोके साथ ऐसा सुन्दर व्यवहार किया कि सभी मुग्ध हो गये और सबने अपने अन्तर्हृदयका आशीर्वाद उन्हे प्रदान किया।]

भगवान् विष्णुका ध्यान

इधर कई वर्षोसे निराकारके ध्यानका अभ्यास खूब तेजीसे हो रहा था, पर भगवान्को इनके द्वारा ससारमे सदाचार, धर्म एव सगुण-भक्तिका प्रचार कराना था। इसलिये स० १९८४के ज्येष्ठ मासमे बिना किसी प्रकारकी चेष्टाके सहसा निराकारके ध्यानकी जगह शिमलापालकी भाँति श्रीविष्णुभगवान्की मूर्तिका प्रत्यक्षवत् ध्यान होने लगा। ये ध्यानमे मस्त रहते हुए 'कल्याण'के 'भगवन्नामाङ्क'का सम्पादन बडी तत्परताके साथ करने लगे।

'कल्याण'का प्रथम विशेषाङ्क 'भगवन्नामाङ्क'

'कल्याण'की लोकप्रियता बढ रही थी। भाईजी भी यन्त्रवत् उसके कार्यमे सलग्न थे। शास्त्रो एव सतोके चरित्रोका अध्ययन बडे मनोयोगपूर्वक हो रहा था। सस्कृत, हिदी, गुजराती, मराठी, अग्रेजी भाषाके अच्छे-अच्छे ग्रन्थ एकत्रित कर लिये गये थे और भाईजी रात-दिन उन्हीमे डूबे रहते थे। बडा उत्तरदायित्व सिरपर था—कोई ऐसी बात 'कल्याण'मे न प्रकाशित हो जाय, जो शास्त्रोको अभिमत न हो, जो परिणामत किसीका अहित करनेवाली हो, जिसके पालनमे किसीके साधनमे विकृति आ जाय आदि-आदि। यथासम्भव दैनिक व्यवहारको शुद्ध करनेवाली, दैवी सम्पदाको बढानेवाली, परस्पर प्रेम-सौहार्दकी वृद्धि करनेवाली, पर साथ ही जगत्की ओर बहनेवाली वृत्तिको भगवान्की ओर मोडनेकी प्रेरणा देनेवाली—जगत्के प्राणी-पदार्थ-परिस्थितियोकी ओरसे निराशा उत्पन्नकर भगवान्की आशाको उद्बुद्ध करनेवाली बातोको ही प्रधानता दी जा रही थी। साधनके रूपमे नाम-जप, भगवान्का पूजन तथा स्वरूपका ध्यान एव भगवान्की कृपापर विश्वास करनेकी प्रेरणा दी जा रही थी। 'जप-यज्ञ'का आरम्भ हो चुका था और पाठक-पाठिकाएँ नियमितरूपसे उसमे आहुति डाल रही थी। भाईजीकी यह दृढ आस्था एव अनुभव था कि नाम-परायण होनेसे परमार्थकी ऊँची-से-ऊँची स्थिति सहज ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव आगामी वर्षके प्रथम अङ्कमे 'भगवन्नाम'पर विशेष प्रकाश डालनेका निश्चय

किया गया। समाजमे शास्त्रोके प्रति आदर था, पर पढे-लिखे लोग उनको वर्त्तमान समयके लिये अनुपयुक्त समझते थे। अतएव आवश्यकता इस वातकी थी कि समाजका जिन व्यक्तियोके प्रति सद्भाव, सम्मान, श्रद्धा थी, उन लोगोसे भगवन्नामके महत्त्व एव प्रभावपर प्रकाश डलवाया जाय। इस हेतुसे प्रथम विशेषाङ्कके रूपमे 'भगवन्नामाङ्क' निकालनेका निश्चय किया गया। श्रीगम्भीरचदजी दुजारी इस कार्यमे उनके सहयोगी थे। भगवान्‌के स्वरूपको तथा भगवन्नामकी महिमाको प्रकट करनेवाले प्रसङ्गोके सुन्दर-सुन्दर चित्रोसे सुसज्जित तथा नामके महत्त्व एव प्रभावका उद्‌घोष करता हुआ 'भगवन्नामाङ्क' प्रकाशित हुआ। यह एक सर्वथा नवीन एवं विलक्षण वस्तु थी। जनताने उसका वडा आदर किया।

'भगवन्नामाङ्क'के प्रकाशनसे श्रीभाईजीकी लेखन–सम्पादनकी योग्यतापर विद्वान्, महात्मा एव भक्तलोग मुग्ध हो गये। चारो ओरसे वधाईके पत्र-सदेश भाईजीके पास आने लगे। भाईजी भीतर-ही-भीतर मुस्करा रहे थे कि भगवान्‌ने किस प्रकार उन्हे अपने हाथका यन्त्र बनाकर कार्य करवाया और अब किस प्रकार उसका सुयश दिलवा रहे है। साथ ही यह भी इनके मनमे था कि लोगोकी प्रशसासे कही गङ्गातटपर रहनेकी कामना दव न जाय। अतएव दोनो दृष्टियोसे इस प्रशसाके प्रति उनकी सहज वितृष्णा थी। पर श्रीसेठजी तथा सभी सत्सङ्गी भाई-वहन 'कल्याण'को उत्तरोत्तर उन्नत देखना चाहते थे। भाईजीने श्रीसेठजीसे 'कल्याण'-कार्यसे छुट्टी माँगी और शेष जीवन गङ्गातटपर रहकर भजन-साधनमे वितानेका अपना निश्चय वताया। श्रीसेठजी भाईजीकी सत्यता एव साधनकी लगनपर मुग्ध थे। उन्होने पत्रका उत्तर देते हुए अनुरोध किया कि "कल्याण'के सम्पादनका काम तो तुमको ही करना है—फिर तुम चाहे गङ्गातटपर रहो, चाहे और कही। हाँ, उसके मुद्रण एव वितरणकी व्यवस्था गीताप्रेस, गोरखपुरसे हो सकती है। अतएव तुम बम्बईसे एक बार गोरखपुर आ जाओ। दो-तीन महीने वहाँ रहकर 'कल्याण'का काम वहाँके लोगोको समझाकर पीछे तुम जहाँ जाना चाहो, चले जाना और वहीसे प्रतिमास छापनेकी सामग्री भेज दिया करना।" भाईजीको यह प्रस्ताव अपने मनके अनुकूल प्रतीत हुआ और इन्होने इसको स्वीकार कर लिया तथा उसीके अनुरूप व्यवस्था करनेमे वे जुट गये।

मित्रकी स्नेहभरी सीख

भाईजीके बम्वई छोडनेके निश्चयका समाचार पाकर उनके मित्र प० श्रीहरिवक्षजी जोशी उनसे मिलने आये। उन्होने भाईजीसे कहा—"भाईजी! आप हमे छोडकर जा रहे है, मन बडा भारी है। आपके जीवनकी सरलता, पवित्रता एव सत्यताकी मेरे हृदयपर गहरी छाप पडी है। मै चाहता हूँ कि आपका भावी जीवन भी ऐसा ही वना रहे और आप अपने साधनमे उत्तरोत्तर उन्नति करते रहे। मेरी समझसे इससे आपको एक वातमे वडा लाभ होगा—आप किसी भी 'सत्सङ्गी'से—जिसके साथ पारमार्थिक साधनाका सम्वन्ध हो—पैसेका सम्वन्ध कभी मत रखियेगा।" उनकी यह वात भाईजीने गाँठ वाँध ली और जीवनभर इन्होने इस वातका ध्यान रखा कि परमार्थ-सम्वन्धी सलाह लेनेवालो तथा सत्सङ्गके निमित्त आने-जानेवालोसे पैसेका सम्वन्ध न रखा जाय। श्रीजोशीजी महाराजकी इस सीखका उल्लेख कृतज्ञताभरे शब्दोमे भाईजी जीवनभर करते रहे—'इस नियमका पालन करनेसे मेरा वडा उपकार हुआ। कई वार इस तरहके मौके आये। लोगोने आग्रह किया, प्रलोभन दिया—'यह ले लो, वह ले लो,' पर श्रीजोशीजी महाराजकी सीखका ध्यान सदा रहा। लोगोके आग्रहके कुछ दिन वाद यह स्पष्ट भी हो गया कि यदि उस समय उनका आग्रह मान लिया जाता तो कितनी फजीहत होती। पैसेका सम्वन्ध रखता तो लोग यही समझते कि यह सत्सङ्ग इसीलिये कराता है कि यह हमसे पैसा ऐठना चाहता है। पैसा आता या नही —यह तो भगवान् जाने, पर आता भी तो वह गिरानेवाला होता। इस नियमने मेरी सव प्रकारसे रक्षा ही रक्षा की।"

वम्वईसे बिदाई

भाईजी कही एकान्त स्थानमे रहते हुए भजन करनेकी कामनासे वम्वईसे विदा ले रहे है—यह सवाद आगकी भाँति चारो ओर फैल गया। जो-जो इस सवादको सुनते, वे ही अधीर हो जाते कि क्या सचमुच भाईजी वम्वईसे हमलोगोको छोडकर जा रहे हैं। जहाँ दो-चार प्रेमी मिलते, वही चर्चा प्रारम्भ हो जाती—'भाईजी चले जायेगे, पीछे हमलोगोकी सँभाल कौन करेगा? कौन प्यार करेगा, कौन इतना मानेगा, कौन हमारे दु खमे

उत्तरयात्रा

परीक्षाकी घड़ियाँ

गोरखपुर पहुँचकर भाईजी 'कल्याण'के कामकी व्यवस्थामे लग गये। बम्बईसे इनके साथ श्रीशकरलाल नामक एक सज्जन आये थे, जो वहाँ 'कल्याण'के आफिसका कार्य करते थे। बम्बईके मित्रो-सत्सङ्गियोको भाईजीका अभाव अखरने लगा। कई व्यक्तियोके करुण पत्र आये। दूसरे, भगवान्को इनके सामने प्रलोभन फेककर इनकी चाहकी परीक्षा लेनी थी। सभी भक्तोके जीवनमे स्वरूप-दर्शनके पूर्व इसी प्रकारकी परीक्षाएँ हुई है। गोरखपुर आये १५ दिन भी नही हुए थे कि बम्बईसे एक स्वजनका बडा ही आग्रहपूर्ण बुलावा आया। उनकी व्यापारिक स्थिति अत्यन्त डाँवाडोल हो गयी थी, भाईजीके प्रयत्नसे उसके सरलतापूर्वक सुलझ जानेकी आशा थी। अतएव उन्होने भाईजीसे बम्बई आकर अपनी रक्षा करनेके लिये प्रार्थना की। भाईजीके हृदयमे उन स्वजनके प्यारके लिये एक विशेष स्थान था। अतएव—बम्बई गये और उन्होने स्वजनके सकटकी निवृत्तिमे पूर्ण सहयोग प्रदान किया। बम्बई जानेपर इनके सामने भगवान्के भेजे हुए कई प्रलोभन आये, किंतु ये अविचल रहे। इन प्रलोभनोकी चर्चा करते हुए भाईजीने एक बार बताया था—

"गोरखपुर आनेके १०-१५ दिन बाद '   'के कामसे मै बम्बई गया। श्रीजमनालालजी बजाज स्वय मिलने आये और बोले—'बापू (महात्मा गाधी) कहते है कि तुम गोरखपुर या और कही मत जाओ, यही रहो। बम्बईमे न रहना चाहो तो और कही रहो, पर हमारे (बापूके) साथ काम करो। तुम्हारे-जैसे व्यक्तियो-की इस समय आवश्यकता है।' मैने कहा—'कही भी काम करनेका मन नही है।' श्रीजमनालालजीने वचन लिया—'अच्छा ! पर यदि कही भी काम करो तो हमसे पूछकर करना, हमारी रायके बिना मत करना।' मैने उनके प्रेमपूर्ण आग्रहको स्वीकार किया और उन्हे वचन दिया—'कही भी काम करनेका मन हुआ तो आपको सूचित कर दूँगा।'

"एक प्रलोभन और आया—मेरे बम्बई पहुँचनेका समाचार पाकर श्रीरामनारायणजी रुइया बम्बई आये। वे उस समयके बडे व्यापारी थे। उनकी ३-४ बडी मिले थी। वे पूनाके पास लोनावलामे रहते थे। बम्बईमे उनका कारोबार था। बहुत वृद्ध हो गये थे। मेरे पास आकर कहने लगे—'भाईजी ! देखे, मै तो बूढा हो गया हूँ। मेरे ३-४ लडके है, वे अभी काममे होशियार नही हुए है। आप उनके सरक्षक (गार्जियन) बन जाइये। आपको सालमे एक लाख रुपया मिल जायगा। रहनेके लिये अच्छा बँगला है, मोटरगाडी है। आपको कुछ करना नही है, केवल इनको सँभालना है।' मैने निवेदन किया—'रुपयेका तो प्रश्न मेरे सामने नही है। पर आपके प्रेमपूर्ण आग्रहके सामने मै क्या कहूँ, मै आपके सामने बच्चा हूँ, पर मेरा विचार न तो बम्बईमे रहनेका है और न कोई काम करनेका। गोरखपुर कुछ दिनके लिये 'कल्याण'का काम सँभालनेके उद्देश्यसे जाना हुआ है। वहाँसे गङ्गातटपर एकान्तमे भजन करनेका मन है।' श्रीरुइयाजीको मेरी बात जँच गयी और वे लौट गये।"

ऋद्धि-सिद्धिकी प्राप्तिके लिये लोग क्या-क्या नही कर डालते। परतु भाईजीने द्वारपर आयी हुई लक्ष्मीको लौटा दिया। प्रभुने परीक्षा ली, पर ये सर्वथा उत्तीर्ण हो गये।

भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा

इस प्रकार भगवान्ने परीक्षा लेनी चाही, पर भाईजी भगवान्की कृपा एव वत्सलतासे ही इस परीक्षामे सर्वथा उत्तीर्ण हुए। बम्बईका काम पूरा करके भाईजी भाद्र शुक्ल ३, स० १९८४को पुन गोरखपुर आ गये और 'कल्याण'के दूसरे वर्षके दूसरे अङ्कके कार्यमे जुट गये। ऊपरसे ये सब कार्य कर रहे थे, किंतु इनके अन्तरमे भगवद्दर्शनकी लालसा पल-प्रतिपल तीव्र होती जा रही थी। मन छटपटा रहा था—'नाथ ! तुम यह क्या खेल खेल रहे हो—जो दीखते हुए भी नही दीखते, निकट होते हुए भी हाथ नही आते ? मन्द-मन्द मुस्कराते

हो और मनको लुभाते हो, किंतु सामने आकर मुझे हृदयसे नही लगा लेते—अपने प्यारसे मुझे अभिषिक्त नही कर देते ? नाथ ! अव तो तुम्हारे सिवा कुछ भी नही चाहिये। शीघ्र आओ—मेरे सामने चले आओ। विलम्ब न करो। मैं कवसे तुम्हारी वाट देख रहा हूँ। अव तो शीघ्र प्रकट होकर अपनी दिव्य ज्योति तथा भक्तचित्त-तापहारी छटा दिखलाओ। अव मुझसे रहा नही जाता—विना तुम्हे देखे मन किसी प्रकार भी नही मानता।' हृदय भावोसे उद्वेलित हो रहा था। उस समय इनके तन-मन-प्राणकी क्या स्थिति रही होगी, उसकी कल्पना भी हम ससारी जीव नही कर सकते। जिस महाभाग्यशाली व्यक्तिके हृदयमे ऐसी लालसा जगती है, वही उसको जानता है। भगवान्‌के दर्शनके लिये भाईजीके आकुल प्राणोकी व्यथा मारवाडी भाषाकी निम्नलिखित काव्यमयी पङ्क्तियोमे मुखरित हो उठी—

अव तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तुही मन भावै है।
तनै मिलण नै आज मेरो, हिवडो उझल्यो आवै है॥
तळफ रह्यो ज्यूँ मछली जळ बिन, अब तूँ क्यूँ तरसावै है।
दरस दिखाणै मै देरी कर क्यूँ अब और सतावै है॥
पण जो इसी वात मै तेरो चित राजी होतो होवै।
तो कोई भी ऑट नही, मनै चाहै जितणो दुख होवै॥
तेरै सुख सै सुखिया हूँ मै, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातर, प्रियतम ! अपणै सुख मै मत कॉटा बोवै॥
पण या निश्चय समझ, तने मिलणै की खातर मेरा प्राण।
छिन-छिन मै व्याकुल होवै है, दरसण की है भारी टाण॥
बॉध तुडाकर भाग्या चावै, मानै नहीं किसी की काण।
आठूँ पैहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलक की समझै हाण॥
पण, प्यारा तेरी राजी मै है नित राजी मेरो मन।
प्राणाधिक दोनूँ लोकॉ को, तूँ ही मेरो जीवन-धन॥
नहीं मिलै तो तेरी मरजी, पण तन-मन तेरै अरपण।
लोक-बेद है तूँ ही मेरो, तूँ ही मेरो परम रतन॥
चातक की ज्यूँ सदा उडीकूँ, कदे नही मुँह नै मोडूँ।
दुख देवै, मारै, तळफावै, तो भी नेह नही छोडूँ।
तरसा-तरसाकर जी लेवै, तो भी तनै नहीं छोडूँ।
झॉकूँ नही दूसरी कानी, तेरै मै ही जी जोडूँ॥

('कल्याण', वर्ष २, पृष्ठ १६४)

हृदय जब उद्वेलित होता है, तब भावोका प्रभाव फूट पडता है अनन्त स्रोतोके रूपमे। यही स्थिति थी भाईजीकी। ये उस दिव्य रूप-माधुरीको प्राप्त करनेके लिये अपना सर्वस्व होमनेको तैयार थे—

मिलनेको प्रियतमसे जिसके प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरीको वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता किंचित् भी शत-शत बाधा-विघ्नोकी ओर।
दौड़ छूटता जहॉं वजाते मधुर बॉंसुरी नन्दकिशोर॥
मिली हुई जो कहीं भाग्यवश उसको हैं ऑंखें होती।
वही जानता कीमत, जो उस रूप-माधुरीकी होती॥
कुछ भी कीमत हो, परतु है रूप-रसिक जन जो होता।
दौड पहुँचता लेनेको तत्काल, नहीं पलभर खोता॥

सचमुच इनके तन-मन-प्राण भगवान्‌की रूप-माधुरीके दर्शनके लिये छटपटा रहे थे—न दिनमे चैन था न रातमे नीद। अजीव-सी आकुलता हृदय और आँखोमे छायी हुई थी!

भगवान् श्रीविष्णुके दर्शन

भक्तके हृदयकी छटपटाहट भगवान्‌के हृदयमे प्रतिविम्बित हो जाती है और वे अपने प्राकटचकी भूमिकाका निर्माण कर देते है। श्रद्धेय श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) स्वास्थ्यलाभके लिये जसीडीह (विहार)मे विराज रहे थे। श्रीसेठजीको भाईजीके हृदयकी आकुलताका परिचय मिला। उन्होने तार देकर भाईजीको अपने पास वुलाया। भाईजी जसीडीह पहुँचे और इन्होने श्रीसेठजीसे एकान्तमे वडे ही प्रेमसे वाते की। इन्होने भगवान्‌के दर्शनकी अपनी एकान्त अभिलाषाको उनके समक्ष रख दिया। भाईजीके प्रेमी मित्र श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया उस समय वही थे। भाईजी उनसे भी अपने हृदयकी लालसाको छिपा न सके। कानोडियाजीने भाईजीको और भी उत्साहित किया। सजातीय प्रेरणा प्राप्तकर लालसा तीव्रतर हो गयी। सवत् १९८४, आश्विन कृष्ण ६, शुक्रवारके दिन भाईजी श्रीसेठजीके पास बैठे हुए थे। श्रीसेठजी अस्वस्थ थे, अत वे पलगपर लेटे हुए थे। भाईजीके समीप श्रीघनश्यामदासजी जालान बैठे थे। ध्यानविषयक चर्चा चल पडी। भाईजीने वताया कि किस प्रकार शिमलापालमे खुली आँखोसे भगवान् विष्णुका ध्यान होने लगा था, पीछे कुछ समयके लिये निर्विशेप व्रह्मका ध्यान हुआ, इसी वीच भगवान् श्रीरामचन्द्रके ध्यानमे दर्शन हुए तथा इस समय पुन भगवान् विष्णुका ध्यान होता है। श्रीसेठजीने कहा—'भगवान्‌का दर्शन होनेके वाद तत्वज्ञान उसी समय हो जाना चाहिये। यदि कोई प्रतिवन्ध होता है तो उस समय नही होता। किंतु उसका भार भगवान्‌पर आ जाता है और वे पुन एक, दो, चार वार दर्शन देकर उसको तत्वज्ञान करा देते है। जिसको एक बार भगवान्‌के दर्शन हो गये, उसकी मुक्तिमे तो कोई सशय रहता ही नही।'

इसके पश्चात् श्रीसेठजीने भाईजीसे पूछा—"तुमको जो विष्णुभगवान्‌का ध्यान होता है, उसके सम्बन्धमे तुम्हारी क्या धारणा है? तुम उसको ध्यान मानते हो या साक्षात् दर्शन?"

भाईजी—"बातचीत होने या स्पर्शके सिवा वह साक्षात्‌के-जैसा ही होता है।"

श्रीसेठजी—"यदि तुम उसको साक्षात् समझते हो तो चरणस्पर्श करनेकी कोशिश नही की क्या? यह तो तुम्हारी दृढ भावना ही लगती है।"

भाईजी—"मुझे भी दृढ भावना ही लगती है। जवतक मै ध्यान करता हूँ, तभीतक मूर्ति दिखलायी देती हे। परतु भगवान्‌के साथ आस-पासकी चीजे भी दिखलायी देती है।"

इतना सुननेपर श्रीसेठजीने कहा—"इसे तो ध्यानकी गाढ-स्थिति समझना चाहिये।"

श्रीसेठजीके सोनेका समय हो गया था, अतएव भाईजी और श्रीघनश्यामदासजी वहाँसे उठ गये।

इस प्रकार सामान्य चर्चा हुई, किंतु इससे भाईजीके हृदयमे भगवान्‌के दर्शनोकी जो उत्कण्ठा थी, वह वडी तीव्र हो गयी। श्रीकानोडियाजीसे श्रीसेठजीके प्रभाव और महत्वकी वाते ये सुन चुके थे। अतएव भाईजीके मनमे प्रवल इच्छा हुई कि भगवान्‌के साक्षात्कारके लिये श्रीसेठजीसे प्रार्थना करनी चाहिये। भाईजीने अपनी इच्छा श्री-घनश्यामदासजीसे व्यक्त की और वे दोनो दिनमे लगभग २ वजे श्रीसेठजीके पास गये। भाईजी अपनी इच्छाको श्रीसेठजीके सामने व्यक्त नही कर पाये थे कि श्रीसेठजीने कहा—'आज ध्यानके लिये पहाडीपर चलनेका विचार है।' दस-बारह व्यक्ति और आ गये और सव लोग पहाडीपर गये। आगे-आगे श्रीसेठजी चल रहे थे। कई स्थानो-पर दृष्टि गयी तथा साथियोको वे स्थान पसद भी आये, किंतु श्रीसेठजीने उनके लिये अपनी स्वीकृति नही दी। पीछे श्रीसेठजीने एक स्थान पसद किया जो श्रीमहेन्द्र सरकारकी कोठीके दक्षिण-पूर्वभागमे सीताफलके वृक्षके समीप था। सव लोग वहाँ वैठ गये। श्रीसेठजीके सामने भाईजी वैठे और इनके अगल-वगल श्रीज्वालाप्रसादजी और श्रीघनश्यामदासजी थे।

श्रीसेठजीने भाईजीसे कहा—हनुमान ! आँख खोले हुए जिस तरह भगवान्‌का ध्यान किया करते हैं उसी तरह करना चाहिये और ध्यानकी बात कहनी चाहिये। भाईजी चुप रहे किंतु श्रीसेठजीका पुनः आदेश पाकर इन्होंने वन्दनाके चार श्लोकोंका पाठ किया—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम्।
सहारवक्षःस्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

पीछे थोड़ी देर चुप रहकर भाईजी बोले—"मुझे जिस प्रकार भगवान्‌के रूपका दर्शन हो रहा है उसके अनुसार बोल रहा हूँ। आपलोग भी उसी प्रकार ध्यान करें।

भाईजी कमलासीन श्रीविष्णुभगवान्‌के स्वरूपका वर्णन करने लगे। थोड़ी देर बाद बोले—'चरणस्पर्श करनेके लिये मैं आगे हाथ बढ़ाना चाहता हूँ परंतु बढ़ते नहीं हैं। हाथ रुक गये हैं।—इतना कहकर ये चुप हो गये तथा पुनः बोले—'हाथ तो बढ़ते हैं पर भगवान् पीछेकी ओर सरक गये हैं।' फिर थोड़ी देर बाद बोले—'यह देखो भगवान्‌के चरण मेरे समीप आ गये हैं मैं स्पर्श कर रहा हूँ आप भी स्पर्श करें।' इतनेमें ही ये जोरसे बोले—"भगवान् तो अन्तर्धान हो गये।

पग डगमगा रहे थे। निवास-स्थानपर लानेके बाद लोगोने इन्हे तख्तपर लिटा दिया। लेटे-लेटे हुए भी ये भावकी स्थितिमे बोल रहे थे—"भगवान् शेषशय्यापर लेटे हुए है।" आदि-आदि।

रात्रिमे भाईजीको नीद नही आयी। रातभर ये एक विशेष प्रकारके आनन्दमे मस्त रहे। भाईजीकी यह आनन्दमग्न विचित्र स्थिति देखकर उपस्थित सभी बन्धु इनके भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। कुछ लोगोने तो कहा—"हमारा भी भाग्योदय कब होगा, जब हमे इस प्रकार भगवान्के साक्षात् दर्शन होगे ?"

उस दिन भगवान्के जो दर्शन भाईजीको हुए, उससे इनके तन-मन-प्राण शीतल हो गये। उस दिव्य रूप-छटाके दर्शनकर इनकी स्थिति विलक्षण हो गयी। भगवान्का जो रूप इन्होने देखा, वह सर्वथा अचिन्त्य था, वाणीमे उसका वर्णन होना सम्भव नही है। परतु भाईजीके हृदयका वह दर्शनोल्लास वाणीके रूपमे प्रकट हो गया और उसने एक पदका रूप ले लिया—

है जो त्रिगुणातीत, नित्य, अज, अव्यय, नाम-रूप-गति-हीन।
हिममे नीर-सदृश जो व्यापक सबमे, सबसे परे, अलीन ॥
अद्वय कारण, अद्वय, जिसमे है सबका अत्यन्ताभाव।
शुद्ध बोधघन, सत्य, स्वस्थ, सनातन, रहित भावमय भाव ॥

रवि-शशि-अनल प्रकाशित होते जिसका तेज अंश पाकर।
व्योम, वायु, रस, भूमि, अग्निका एकमात्र जो है आकर ॥
अधिष्ठान सब जगका, निज मायामे रचता नाना वेश।
परद्रष्टा, अनुमन्ता, जो भर्ता, भोक्ता ईश्वर, परमेश ॥

सुधा-सने सौन्दर्य-राशिका है जो अति अनुपम सागर।
त्रिभुवनकी सब रूप छटा है जिसकी नन्ही-सी गागर ॥
कर अधीन निज-प्रकृति, योगमायासे अघटन घटनाकर।
है नित नूतन वेष धारता, विश्वविमोहन बाजीगर ॥

सबका जो सर्वस्व, आत्मवित्, भक्तोका जो जीवन-धन।
जिसके परमानन्द रूपसे, नित्यानन्दित है निज-जन ॥
प्राणाधिक आराध्यदेव जो, नित नव-नव आनँद-निर्झर।
भक्तवश्य साकार सगुण, जन-मन-पङ्कजका जो दिनकर ॥

जीवन-मन-तन-सुधि-हर होती जिसकी मधुर मन्द मुसकान।
जिसकी सुन्दर छटा निरखकर छुटती लोक-वेद-कुल-कान ॥
देव, दनुज, मुनि, ऋषि, जिसके दर्शनको संतत ललचाते।
विविध भाँति तप-साधन करते, नही सहजमे है पाते ॥
जन्म-जन्मसे लगी हुई थी जिनके दर्शनकी आशा।
रूप-सुधा-वारिधि-अवगाहनकी जिसके थी अभिलाषा ॥
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमे।
विरहानल था धधक उठा, जिससे उसके सारे तनमे ॥
वही ब्रह्म साकार प्रकट हो, अद्भुत दर्शन है देता।
सत्वर अगणित जन्मोकी अघराशि पूर्ण है हर लेता ॥
यह साधन-विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा पारावार ॥

उनकी प्रेम-रज्जुसे हरिको बँधना पडा स्वयं तत्काल।
रखनी पडी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल॥
कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पडा करना।
चरण-स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख-हरना॥

उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमे वाणी लाचार।
मापा कभी न जा सकता है हाथोसे आकाश अपार॥
भाग्यवती जिन आँखोने वह देखी रूप-छटा अनुपम।
तृप्त हो गयीं, नहीं वता सकती हैं, वर्णनमे अक्षम॥

वाणी कुछ प्रयास करती है, नेत्रोका सहाय लेकर।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमे मन देकर॥
उस स्मृतिमे जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता॥

रुकी लेखनी, बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके, सब करिये उनका प्रेमाह्वान।
जिससे सत्वर पुन प्रकट हो सबके सम्मुख श्रीभगवान॥

इन घटनाके ३ दिन पश्चात् भाईजीको पुन श्रीविष्णुभगवान्‌के दर्शन हुए। दूसरे दिन भाईजीने ीसेठजीसे इन घटनाओंके सम्बन्धमे बाते की। भाईजीने प्रश्न किया—'भगवान्‌ने कृपा करके सबके सामने इस कारका अपूर्व प्रभाव दिखाया। जो कार्य बहुत एकान्तमे होता है, वह इतने लोगोके समक्ष क्यो हुआ और केवल झे ही दर्शन क्यो हुए?

श्रीसेठजीने उत्तर दिया—इससे जगत्‌का लाभ ही होगा। यह काम समझकर ही हुआ है।

भाईजी—मैं तो पूछता हूँ कि इतना प्रत्यक्ष प्रभाव सब लोगोके सामने होनेमे हेतु क्या है?

श्रीसेठजीने उत्तर दिया—'जिसके द्वारा भगवद्भक्तिके प्रचारकी अधिक सम्भावना होती है, उसको भगवान् स प्रकारसे दर्शन देते है। दर्शन तो औरोको भी देते है, परतु यो सबके सामने नही देते। उदाहरणके लिये गवान् श्रीरामचन्द्रजीने सीताकी खोजमे वानरोको भेजते समय केवल श्रीहनुमान्‌को ही अँगूठी दी। वे जानते कि इसीके द्वारा काम होनेवाला है, इसी प्रकार परमात्मा जिसके द्वारा विशेष काम होनेवाला समझते है, सीको अपना दिव्य रूप दिखाकर प्रभावान्वित करते है।'

अपने स्वजनों, मित्रों, प्रेमियोंको इस घटनाकी सूचना दे दी। भाईजीके सामने सचमुच बडे ही सकोचकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। इसी सकोचकी स्थितिमे आश्विन शुक्ल २, सवत् १९८४को भाईजीने श्रद्धेय श्रीसेठजीको एक पत्र लिखा—

श्रीहरि.

गोरखपुर
आश्विन शुक्ल २, सवत् १९८४

परम पूज्यवर,

हृदयसे प्रणाम।

सर्वसाधारणके सामने ऐसी अलौकिक घटना हो जानेसे बडा हल्ला-सा मच गया है। सम्भव है कि कुछ लोग इसमे मेरा कुछ प्रभाव समझे या बडाई करे, जैसे कि लक्षण दीख रहे है। वास्तवमे मुझे इसमे कोई भी अपनी बडाईकी बात नही दीखती। इसमे मै तो जो कुछ उचित समझता हूँ, वह लोगोसे कहता ही हूँ, पर यदि लोग किसी तरहसे इस बातका यथार्थ तत्त्व जान जायँ कि इस घटनामे मेरा कोई बल, सामर्थ्य या प्रेम कारण नही है, इसमे केवल भगवत्कृपा ही प्रधान कारण है, तो सम्भवत बडाईका कलङ्क दूर हो सकता है। लोगोके पूछनेपर मै कोई बात नही कहता तो ये दु खित होते है और समझते है कि यह बात छिपाता है। इधर, कहनेमे अन्त करण और वाणीमे सकोच होता है तथा उन लोगोका या मेरा कोई लाभ नही दीखता। इस स्थितिमे मुझे क्या करना चाहिये? यदि इतने जोरका आन्दोलन न होता तो इतनी बात नही होती, परतु प्रभुके सदिच्छानुसार जो हुआ, वह बडे ही मङ्गलके लिये हुआ है—इसमे कोई भी शङ्का नही है। इस सम्बन्धमे अन्त करणमे जो भाव उठते है, सिर्फ वे ही आपकी सेवामे लिखे गये है।

आनन्दमय, आनन्दमय, आनन्दमय!

अनुगत—
हनुमान

जसीडीहमे भगवान्के दर्शन देनेकी बात कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई आदि स्थानोमे फैल गयी। लोगोके पत्र भाईजी और श्रीसेठजीके पास आने लगे। उधर भगवान्ने पुन दर्शन देकर भाईजीको कृतार्थ किया। उस दिनकी घटनाको भाईजीने अपनी डायरीमे लिख लिया था, जो इस प्रकार है—

श्रीहरि

"सं० १९८४ वि०, आश्विन शुक्ला ६, रविवार ता० २-१०-१९२७ ई०

स्थान—शान्तिबाबूका बगीचा (गोरखपुर शहरके बाहर), दक्षिण तरफके कमरेके पासवाला बीचका (बडा) कमरा।

श्रीहरि

गोरखपुर

आश्विन शुक्ल ७, स० १९८४

पूज्य चरणोमे,

हार्दिक प्रणाम ।

यहाँ प्रतिदिन प्रात काल ध्यानकी बाते होती है। कल प्रात काल ध्यानके समय करीब छ-सात मिनट आँखे खुले हुए, जसीडीहकी तरहसे ही श्रीभगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहे। कोई बुलाने या दर्शन करनेकी भावना भी जाग्रत् नही हुई थी, परतु बडा ही विलक्षण आनन्द रहा। बुलानेकी इच्छा तो नही होती, परतु अब ऐसा विश्वास होता है—जब इच्छा हो, तभी भगवान्‌के दर्शन और उनसे वार्तालाप हो सकते है।

अनुगत—

हनुमान

इस प्रकार भगवान्‌ने तीन बार प्रकट होकर भाईजीके नेत्रोको सफल किया। जब भगवान् किसीपर कृपा करने लगते है, तब वे कृपा करते हुए अघाते नही। आश्विन शुक्ला द्वादशीको पुन भगवान्‌ने प्रकट होकर दर्शन दिये। इस घटनाको भी भाईजीने अपनी डायरीमे लिख लिया था, जो इस प्रकार है—

"म० १९८४ वि०, मिति आश्विन शुक्ला १२, शनिवार ता० ८–१०–१९२७ ई०।

स्थान—कान्तिबाबूका बगीचा, दरवाजेके सामनेवाली दक्षिणाभिमुखी कोठरी, जिसमे आफिस था।

"दिनके करीब १२ बजे उपरामताने जोर पकडा। मैं बाहर बैठा हुआ था। घरमे चूना पोतनेवाले मजदूरोका काम देखनेकी चेष्टा कर रहा था कि अचानक किसीके द्वारा खीचा-सा जाकर कोठरीके अदर चला गया और मैंने अदरसे किवाड बद कर लिये। उत्तरकी खिडकीके पास कुर्सीपर बैठ गया और मनकी भावनाके अनुसार किसीके बैठनेके लिये सामने एक कुर्सी और रख ली। अकस्मात् प्रकाश हो गया। महान् शान्ति-सी प्रतीत होने लगी। मेरी उस समयकी अवस्थाका मै वर्णन नही कर सकता। तत्काल ही भगवान्‌का आविर्भाव हो गया। मेरे सामनेकी कुर्सीपर एक बार उनका चरण-स्पर्श हुआ। फिर आकाशमे ही उनकी स्थिति रही। मैं मन्त्रमुग्ध-सा हो रहा था। मेरे आनन्दका पार नही था। प्रभु मेरे सामने स्थित हुए करुणा और प्रेमके साथ महान् आनन्दकी वर्षा कर रहे थे। मै कुछ बोल नही सका, न स्तुति कर सका, चरणस्पर्श मैंने उसी समय कर लिये। मन-ही-मन भगवान्‌की इस अयाचित कृपाको देखकर परम आह्लादित हो रहा था। बहुत देरतक यह स्थिति रही। फिर भगवान् बोले, मानो आनन्दका समुद्र उमडा—'तेरी कुछ इच्छा बाकी है?' बडी हिम्मतसे एक-दो वाक्य मेरे मुँहसे निकले—'कुछ नही, केवल आप '

इस समय भगवान्‌की मधुर मुस्कान कुछ अनोखी ही थी। भगवान्‌ने हँसकर मानो मेरा समर्थन किया। फिर धीरे-धीरे बीच-बीचमे रुककर कुछ बाते कही—

'१ दर्शनोकी बाते गुप्त रखनेमे ही अधिक लाभ है।

२ धर्मके नामपर परस्पर लडनेवाले मेरा प्रभाव नही जानते।

३ मेरे अवतारका समय अभी बहुत दूर है।

४ जगत्‌का कुछ भला करना हो तो भेद छोडकर नामका प्रचार कर। लोगोसे कह दे कि इस कालमे नामसे ही सब कुछ हो जायगा। मेरे अवतारमे भी नाम ही हेतु होगा।

५ जो लोग नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते है, उनको सावधान कर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नही कर सकता।

६ पापोके नाश तथा भोगोकी प्राप्तिके लिये भी नामका प्रयोग करना मूर्खता है। पापका नाश तो

फलभोग और प्रायश्चित्तसे भी हो जाता है। क्षणिक भोगोकी परवाह नही करनी चाहिये। भोगोके आने-जानेमे लाभ-हानि ही क्या है।

७ नाम तो प्रियसे भी प्रियतम वस्तु है। इसका प्रयोग तो इसीके लिये करना चाहिये।

८ दम्भ बहुत बढ गया है। दम्भ मेरी प्राप्तिमे सबसे बडा बाधक है। दम्भियोसे सावधान रह और उनको भी सावधान कर दे कि उनकी बुरी गति होगी। काम-क्रोधसे भी दम्भ बुरा है।

९ किसीको भी मेरे दर्शनोका पक्का आश्वासन मत दे।

१० जसीडीहमे हुई बातोके सिवा मेरी कही हुई बातोका मेरे नामसे प्रचार कर।

११ अब इस तरह नही आऊँगा। तेरे बिना बुलाये ही दो बार आ गया। मुझे ये बाते कहनी थी, इसलिये अब जब भी चाहे, स्मरण कर बुला सकता है।'

इसके बाद भगवान् चुप हो गये। मै बडे हर्षके साथ उनकी ओर ताकता रहा। उस समय जगत्मे मुझे उनके सिवा मानो कुछ नही भासता था। किसीकी स्फुरणातक नही थी। अकस्मात् श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये। मेरी स्थिरदृष्टि विचलित हो गयी। मै देखता हूँ कि पूर्व औरकी खिडकीसे 'श्री ' ताककर देख रहे है। मैने सामनेकी कुर्सीको अलग हटाकर किवाड खोल दिया। उस समय घडीमे करीब सवा-दो बजे थे। इसके बाद करीब चालीस घटेतक उपरामता बनी रही।"

× × ×

जब भाईजीको भगवान्की कृपा प्राप्त हुई, उस समय उनकी धर्मपत्नी उनके पास नही थी। वे रतनगढ थी। भगवद्दर्शनका शुभ सवाद सुनकर वे अपनी सासके सहित रतनगढसे गोरखपुर आ गयी। जब वे एकान्तमे अपने पतिदेवसे मिली, तब उनके नेत्रोसे हर्ष एव दुख-मिश्रित आँसू बहने लगे—हर्ष तो इस बातका कि उनके पतिदेवको सुर-मुनि-दुर्लभ भगवान्के अलौकिक स्वरूपका दर्शन हुआ और दुख इस बातका कि भगवान्के दर्शनके पश्चात् अब उसे इनके चरणोकी सेवाका कैसे सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा! भाईजीने उसके आँसू देखे और बडे स्नेहसे पूछा—'तुम रोती क्यो हो?' धर्मपत्नीने अपनी व्यथा उनसे निवेदन की—'आपको भगवान् प्राप्त हो गये। आप निहाल हो गये। पर मेरा तो ससार लुट गया।' भाईजी पत्नीके अन्तर्भावको समझ गये। उन्होने रोती हुई धर्मपत्नीके सिरपर अपना दाहिना हाथ रक्खा और कहा—'अरी, मै तो तेरे लिये वैसा ही हूँ, जैसा पहले था।'

हाथका स्पर्श होना था कि धर्मपत्नीको अन्तरिक्षमे चतुर्भुज भगवान् विष्णुके दर्शन हुए। उनकी अन्तर्व्यथा-का शमन हो गया। भगवान्ने कृपाकर अपने स्वरूपकी वह झाँकी उनके समक्ष लगभग ६ मासतक उसी रूपमे प्रकट रखी। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते—सब समय, सब काम करते हुए भगवान्का वह स्वरूप उन्हे अन्तरिक्षमे प्रकट दिखायी पडता। इस प्रसङ्गसे कुछ अवधारणा की जा सकती है भाईजीपर भगवान् श्रीविष्णुकी कितनी कृपा थी।

भगवद्दर्शनके पश्चात् एक अजीब मस्ती भाईजीके तन-मन-प्राणोमे छा गयी। उनके नेत्रोकी विलक्षणताके सम्बन्धमे तो कुछ कहा ही नही जा सकता। जिन भाग्यशाली व्यक्तियोको उस समय उनके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, वे परम धन्य है।

आश्विन कृष्ण द्वादशीको भगवान्ने अपने नामके प्रचारका जो आदेश दिया था, उसके पालनकी चेष्टामे भाईजी जुट गये। उन्होने जसीडीह जाकर श्रद्धेय श्रीसेठजीसे इसके लिये परामर्श किया। भगवान्के आदेशका प्रचार करनेके लिये भाईजीने उसको एक पुस्तिकाके रूपमे तैयार किया, जो गीताप्रेससे 'दिव्य सदेश'के नामसे प्रकाशित है।

जसीडीहसे लौटनेपर भगवान्ने भाईजीपर पुन कई बार कृपा की। उक्त घटनाके सम्बन्धमे उन्होने श्री-सेठजीको पत्र लिखा, जिसका कुछ अश इस प्रकार है—

श्रीहरि

गोरखपुर
कार्तिक कृष्णा १४,१९८४

श्रीपूज्यचरण,

हृदयसे प्रणाम।

गत शुक्रवार (कार्तिक कृष्णा ११, १९८४)को मै यहाँ पहुँच गया था। आपके आज्ञानुसार प्रश्नोका उत्तर जाननेकी भावना मनमे थी। कार्तिक कृष्णा १२, १९८४, शनिवारको प्रातःकाल करीव साढे पॉच वजे स्नान-सध्याके उपरान्त मैं एकान्तमे वैठा था। वैठे-वैठे ही नीद या वेहोशी-सी हो गयी। उसमे श्रीभगवान् दीख पडे। उन्होने मानो इस भावके शब्द कहे—

'१ जिन सात विषयोके प्रचारकी वात तुमलोगोने तय की है, उनका प्रचार जितने अधिक देशो और अधिक लोगोमे हो, वैसी चेष्टा करो। लोगोको समझा दो कि उनके माननेसे ही कल्याण हो सकता है।

२ अन्य धर्मावलम्वियोके किसी भी धर्मग्रन्थका नाम न लेकर गीतोक्त भक्तियुक्त निष्कामकर्मका भाव ग्रहण करके लिये कहो।

३ एक वार जिसने मेरा नाम ले लिया, उसका भला होनेमे कोई शङ्का नही करनी चाहिये।

४ मेरी प्रेरणाके अनुसार कितना प्रचार हुआ है और हो रहा है, उसका पता पीछे लगेगा।

५ मेरे मिलनेकी इन वातोको प्रकाशमे लानेसे हानि है।'

इतनी वाते सुननेके वाद मुझे चेत हो गया। ऊपर जो वाते लिखी है, उनके शब्द तो कुछ दूसरे ही थे, पर भाव यही था।

× × ×

आज सोमवार, प्रातःकाल करीव साढे छ वजे मै तथा कुछ सत्सङ्गी भाई ध्यानके लिये वीचवाले वडे कमरेमे वैठे थे। भगवान्‌को स्मरण करनेका विचार एकान्तमे था, परतु न जाने क्यो पहलेसे ही ऐसी प्रेरणा होने लगी थी—इसी समय स्मरण किया जाय। तदनुसार प्रश्नोका उत्तर जाननेके लिये भगवान्‌का स्मरण और आह्वान किया गया। थोडी ही देरमे भगवान् वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। लोगोको ध्यानमे आज विशेष शान्ति मिली।

भगवान्‌से जिन वातोके पूछनेकी मनमे भावना हुई थी, वे इस प्रकार है—

१ पहले प्रेरणा करनेपर भी सतोपजनक कार्य क्यो नही हुआ?

२ नामका प्रचार किस तरह किया जाय? क्या सन्यास लेनेसे अधिक प्रचार हो सकता है?

३ किस नामका प्रचार किया जाय?

प्रश्नोका उत्तर निम्नलिखित मिला—

'१ कल कहा ही था—कार्यका पता पीछे लगेगा। डाले हुए वीजोका विस्तार फल लगनेपर ज्ञात होगा। असतोप मत करो, कार्य करो।

२ कलके कहे अनुसार जितना अधिक लोगोमे प्रचार कर सको, उतना करो। स्थान-स्थानपर कीर्तन होना वहुत अच्छा है। सन्यासकी अभी आवश्यकता नही, आगे चलकर विशेष लाभ हो सकता है।

३ कोई खास नाम नही है। मेरे भावसे कोई-सा भी नाम मनुष्य ले सकता है।'

इसके वाद इतना और कहा—'कल सकेतसे प्रश्नका उत्तर दे दिया गया था। आज फिर स्मरण किया, इसलिये आना हुआ, परतु मुझे वुलानेके भावसे स्मरण नही करना चाहिये। यह नीचा भाव है। उस दिनका सकेत तू समझा नही। उचित समझनेपर हम स्वय आ सकते है। इन सव वातोको इस प्रकार प्रकाशित करनेमे हानि है।'

इतना कहते ही भगवान् अन्तर्धान हो गये। कोई आधे घटेतक दर्शन होते रहे। यही आजकी घटना है।

एक बार तो इस घटनाको लेकर स्वय आपकी सेवामे उपस्थित होनेका विचार हुआ था, परतु पीछे यही ठीक समझा कि रजिस्ट्री चिट्ठीके द्वारा ही यह विषय लिखकर भेज दिया जाय। भगवान्की प्रेरणा जैसे प्रकाशित करना ठीक समझे, वैसे कर सकते है। मेरी समझसे तो अभी इसका प्रकाशित न किया जाना ही भगवान्की प्रेरणाके अनुकूल है।

सात बातोके सम्बन्धमे मेरी ऐसी स्फुरणा हुई कि इनके सम्बन्धमे तीन-चार पृष्ठका एक लेख लिखा जाय, जिसमे इन सात बातोका खुलासा हो और उस लेखका बगला, मराठी, गुरुमुखी, गुजराती, तमिल, उर्दू और अग्रेजी आदि भाषाओमे अनुवाद करवाके लाखोकी सख्यामे ट्रेक्ट (पैम्फ्लैट) छपाये जायँ और वे बहुत कम मूल्य या बिना मूल्य भारतके प्राय सभी प्रान्तोमे ओर इगलैड, अमेरिका आदि देशोमे भी प्रचारित किये जायँ।

भारतके और विलायतके प्राय बहुत-सी भाषाओके पत्रोमे भी प्रकाशित करवानेकी चेष्टा की जाय तो बहुत लोगोके पास इस सदेशके पहुँचनेमे सुगमता हो सकती है।"

× × ×

इन घटनाओके पश्चात् इस प्रकारकी घटनाओको भाईजीने अपनी व्यक्तिगत डायरीमे लिखना बद कर दिया। इन्ही दिनो उनको भगवान्ने यह प्रेरणा की—'उन्हे अपने जीवनको बाहरी रूपसे बिल्कुल साधारण रखना चाहिये, जिससे कोई उन्हे पहचान न सके।' किंतु जिसके हृदयमे आनन्दका समुद्र लहरा रहा हो, उसके आनन्दके कुछ सीकर बरबस विकीर्ण हो ही जाते हैं। नित्य-प्रति सत्सङ्ग होने लगा और रात्रिमे सकीर्तन। सत्सङ्ग और सकीर्तनमे भाग लेनेवाले सभी महानुभाव बडे ही प्रेमी और श्रद्धालु थे। भाईजी 'जय हरि गोविन्द राधे गोविन्द'की ध्वनिके साथ सकीर्तन करवाते और प्रेम-विभोर हो जाते थे। कार्तिक कृष्णा ३०, १९८४ दीप-मालिकाके दिन श्रीलक्ष्मीदेवीके पूजनके पश्चात् भाईजीने सकीर्तन प्रारम्भ किया। नित्य-प्रति ग्यारह-बारह बजे सकीर्तन समाप्त हो जाता था, परतु उस दिन भाईजी अजीब मस्तीमे थे और रात्रिके पौने दो बजेतक सकीर्तन करवाते रहे। सकीर्तनके पश्चात् इन्होने सकीर्तनकी महिमाके सम्बन्धमे कहा—

"भगवान्के नामका कीर्तन करनेसे अनन्त लाभ होता है। कीर्तनसे कीर्तन-समाधि हो जाती है, क्योकि इसमे सब इन्द्रियाँ एकाग्र हो जाती है। कीर्तनकी ध्वनि जितनी दूर जाती है, वहाँतककी वायु, स्थान, पृथ्वी, लकडी, पत्थरके सहित सुननेवाले सभी जीव-जन्तु पवित्र हो जाते है। यह तो स्थूल दृष्टिकी बात हुई। सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर पता चलता है कि जैसे हजारो कोस दूरके शब्द रेडियोद्वारा सुनायी देते हैं, वैसे ही भगवन्नामरूपी शब्द सर्वत्र फैलकर सारे ससारको पवित्र बना देता है। वास्तवमे कीर्तनकी महिमा अनिर्वचनीय है। पापोको जलानेके लिये सकीर्तनके समय ताली बजानी चाहिये। सत तुकारामजीने कहा है—'करतल सो ताली देत, राम मुख बोली, जली पाप ज्यूँ की होली।' स्वामी रामकृष्ण परमहस कहा करते थे—'यदि पापोका नाश करना चाहते हो तो प्रात-साय ताली बजाकर नाम लिया करो। जैसे ताली बजानेसे वृक्षके पक्षी उड जाते है, उसी प्रकार जहाँ हरिनाम लिया जाता है, वहाँ पाप ठहर नही सकता।' बडे आश्चर्यकी बात तो यह है कि भगवन्नामके रहते हुए भी लोग ससारकूपमे पडे हुए है।"

इस प्रकार श्रीभगवान्के आदेशसे भाईजी भगवद्भक्ति एव भगवन्नामके प्रचारमे तत्परतासे जुट गये। पीछे तो इन्होने देशके विभिन्न भागोकी लबी-लबी यात्राएँ की और भगवान्के सदेशको दूर-दूरतक प्रसारित किया।

× × ×

इस प्रकार सच्चिदानन्दघन, जगन्नियन्ता, सर्वलोकमहेश्वर भगवान्ने विष्णुरूपमे प्रकट होकर भाईजीके सामने अपने निर्गुण-सगुणतत्त्वके रहस्यका उद्घाटन किया और अपनी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार, नाम-महिमा आदिके प्रचारका महान् कार्य करनेके लिये उन्हे योग्य यन्त्र बना लिया। भगवान्के आदेशकी प्राप्तिके पश्चात् भाईजीने अपने सन्यास-ग्रहण तथा एकान्त-वासके सकल्पका एक प्रकारसे विसर्जन ही कर दिया तथा वे गोरखपुरको ही अपनी कर्म-भूमि बनाकर 'कल्याण' एव गीताप्रेसके प्रकाशनोके माध्यमसे जगत्रूप प्रभुकी सेवामे प्राण-पणसे जुट गये। 'कल्याण'का छोटा-सा पौधा भाईजीके आध्यात्मिक-रससे सिञ्चित होकर एक विशाल बोधि-वृक्ष बन गया और वह देश-विदेशमे छा गया। गीताप्रेसका कार्य-विस्तार होने लगा और भाईजीके कुशल लेखन एव सम्पादनसे उसके

द्वारा उपनिषद् पुराण, महाभारत गीता, रामायण, स्तोत्रग्रन्थ भक्तचरित्र तथा ज्ञान-वैराग्य एवं भक्तिका मर्म समझानेवाले निबन्ध-ग्रन्थों तथा पद्यात्मक साहित्यका छोटे-बड़े रूपोंमें प्रकाशन हुआ जो भारत एवं विदेशोंके लाखों-करोड़ों नर-नारियोंके हृदयोंमें भगवद्भाव एवं भगवद्विश्वासकी प्रतिष्ठा करनेमें समर्थ हुआ। इनके साथ-साथ भाईजी अपने विश्वरूप प्रभुकी तन-मन-धनसे भी अहर्निश सेवा करते रहे। उनके द्वारा अभावग्रस्त एवं आर्त प्राणियोंकी सेवाका जो लोकोत्तर कार्य हुआ वह सर्वविदित है।

भगवद्दर्शनके पश्चात् भक्तके लिये फिर कुछ करनेको शेष नहीं रह जाता, भगवान् उनके तन-मन-प्राणोंमें छा जाते हैं और उनके मनके द्वारा सहज रूपमें उनकी स्मृति होती है और प्रत्येक इन्द्रियसे जो कुछ भी होता है, वह भगवत्सेवाका कार्य ही होता है—यहाँतक कि भक्तकी श्वास-प्रश्वास-क्रिया भी भगवत्सेवारूप ही होती है। भाईजीकी ऐसी ही स्थिति हो गयी थी। परंतु भगवान्‌को इतनेसे संतोष नहीं हुआ। वे भाईजीको अपने वृन्दावनस्वरूपका दर्शन कराकर महाभाव-रसराजके लीला-समुद्रमें डुबा देना चाहते थे। भाईजी बम्बई-प्रवासमें श्रीहरिवक्षजी जोशीके सम्पर्कमें रहनेके कारण उनके द्वारा भागवत सुनते थे तथा स्वयं भी उसका अध्ययन एवं चिन्तन करते थे। वहाँ सत्सङ्ग-भवनमें ये प्रतिदिन जो प्रवचन करते थे, उसमें गीताकी मधुसूदनी नामकी भक्तिपरक टीकाका विशेष आधार लेते थे। मधुसूदनी टीकामें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी महिमा गायी गयी है। उसी समय इन्होंने शिशिरकुमार घोषद्वारा लिखित सम्पूर्ण 'अमिय निमाईचरित' पढ़ा। उसमें श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुका जीवन-वृत्त है। गौडीय सम्प्रदायके ऐसे ही कुछ और ग्रन्थ भी इन्होंने पढ़े। इन सब ग्रन्थोंके अध्ययन एवं चिन्तनसे इनके मनमें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया था, पर साधना भगवान् विष्णुकी ही चलती रही। भगवान् विष्णुके दर्शनके कुछ दिन पश्चात् एक दिन भगवान् विष्णुका ध्यान हो रहा था कि इनके मनमें आया—'भगवान्‌की लीला भी देखनेको मिले।' यह वृत्ति उत्पन्न होते ही इन्हें ऐसा भान हुआ कि भगवान् कह रहे हैं—'मेरे विष्णुरूपमें तो दो ही प्रकारकी लीलाएँ होती हैं—अवतार-लीला या वैकुण्ठकी नित्य लीला। इस स्वरूपमें कोई मानव-लीला नहीं है। मानव-लीला सर्वोच्च रूपमें और पूर्णरूपमें हुई है—श्रीकृष्णस्वरूपमें। तुमको अब श्रीकृष्ण स्वरूपका अनुभव होने लगेगा।' उस रातको इनके मनमें बड़ा आनन्द रहा और स्वप्नमें श्रीकृष्णके दर्शन हुए। पहले गीतावक्ताके दर्शन हुए, पीछे वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णके दर्शन। श्रीकृष्णस्वरूपके साथ राधाके दर्शन नहीं हुए। उसी समय ऐसा भान हुआ कि वे कह रहे हैं—'जो गीतावक्ता हैं, वे ही वृन्दावनविहारी हैं। इनकी तुमपर बड़ी कृपा है। इन्होंने तुमको अपना मान लिया है। इनकी लीला अब तुम्हें देखनेको मिलेगी। दूसरे दिन भगवान् विष्णुके ध्यानके समय इन्हें विष्णुके स्थानपर अपने-आप वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णका ध्यान होने लगा और उसके पश्चात् यही ध्यान होता रहा। विष्णुका ध्यान बंद हो गया। उन दिनों यह बात इनके मनमें दृढ़ हो गयी थी कि तत्त्व एक ही है—जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं, वे ही राम हैं, वे ही कृष्ण हैं, और वे ही दुर्गा हैं आदि-आदि। अतएव चाहे राधाकृष्ण कहो, चाहे सीताराम, चाहे शिव-पार्वती—बात एक ही है। परंतु ध्यान श्रीकृष्णका होता था। ध्यान होते-होते वृन्दावनकी लीलाओंके दर्शन भी होने लगे। आरम्भमें वात्सल्य-लीलाओंके दर्शन हुए, कुछ समय बाद सख्य-लीलाके दर्शन हुए। पीछे तो श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंके दर्शन होने लगे और वे उन्हींमें डूब गये—महाभाव-रसराजके अनन्त लीलार्णवमें इतने गहरे निमग्न हो गये कि इनका अन्तर्बाह्य सब कुछ श्रीराधा-कृष्णमय हो गया। वे ही इनमें अवस्थित होकर इनके लोक-व्यवहारका निर्वाह करने लगे। भाईजीका वह लोक-व्यवहार कितना मधुर कितना सरस, परहित-निरत तथा लोकहितसे पूर्ण था—यह सर्वविदित है।

भाईजीके अन्तर्मानसमें दिव्य भगवल्लीलाएँ चलने लगीं और वे भावराज्यमें ही अवस्थित रहने लगे। भाव-समाधि इसी स्थितिका बाह्य स्वरूप था। यह स्थिति लोकचक्षुसे सर्वथा अतीत तथा मन-बुद्धि-चित्तसे भी परेकी है। अतएव प्राकृत मन-बुद्धिद्वारा उसका आकलन शब्दोंमें तथा स्थूल वाणी अथवा लेखनीद्वारा उसका व्यक्तीकरण सम्भव नहीं, भगवत्कृपाका विशेष प्रकाश होनेपर ही उसका यत्किंचित् आभास मिल सकता है। भगवान्‌की कृपा हुई तो भविष्यमें भाईजीके विस्तृत जीवन-वृत्तमें उनके आगेके जीवनके साथ-साथ भीतरी जीवनका भी कुछ दिग्दर्शन कराया जायगा। भगवान् हमें उसके लिये शक्ति प्रदान करें।

●

गोरखपुर-आगमनसे महाप्रयाणतक

(जीवनयात्रा तिथिक्रमके अनुसार)

भाद्र, स० १९८४	'कल्याण-कार्यालय'का बम्बईसे गोरखपुर स्थानान्तरण, गीताप्रेससे उसके प्रकाशनका आरम्भ।
मार्गशीर्ष, सं० १९८४	भगवन्नाम-प्रचारार्थ सत्सङ्ग-मण्डलीके साथ भ्रमण (गोरखपुरसे हवडा, कलकत्ता, नलबाडी, गौहाटी, शिलग, तिनसुकिया, डिब्रूगढ, नौगॉव, कलकत्ता, भागलपुर, गोरखपुर, झाँसी, खडवा, बम्बई, अहमदाबाद, वोरावड, मूंडवा, बीकानेर, रतनगढसे गोरखपुर।)
वैशाख शु० ४, स० १९८५	गोरखपुरमे साधन-कमेटीकी स्थापना।
आश्विन शु० -२, स० १९८६	महात्मा गाधीका गोरखपुर-आगमन और गीताप्रेसमे भाषण।
पौष शु० १३, स० १९८६	प्रयागके कुम्भमे गीता-ज्ञानयज्ञका आयोजन, मालवीयजीद्वारा शुभारम्भ। प० श्रीविष्णु दिगम्वर पलुस्करकी नियमित कथा आदि
फाल्गुन शु० १, स० १९८६	गोरखपुरमे हिंदी-साहित्य-सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन, साहित्यकारोका आतिथ्य।
आषाढ शु० १, स० १९८७	गोरखपुर जिलेमे वाढ-पीडितोकी सहायता।
कार्तिक कृष्ण ४, स० १९८८	परमहस विशुद्धानन्दका काशीमे दर्शन।
स० १९८९	गोरखपुर-जेलमे देवदास गाधीकी सेवा।
आश्विन कृ० २, स० १९८९	गीता एव रामायण-परीक्षा-समितिकी स्थापना।
स० १९९०	श्रीचिम्मनलाल गोस्वामीका 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादनकार्यके लिये गोरखपुर-आगमन।
स० १९९१	विहार-भूकम्प-पीडितोकी सहायता।
श्रावण-भाद्र, स० १९९१	गोरखपुर जिलेमे वाढ-पीडितोकी सेवा।
आषाढ शु० १, स० १९९३	गोरखपुरमे एक वर्षका वृहत् अखण्ड-सकीर्तन।
आषाढ, स० १९९३	प० जवाहरलाल नेहरूका बाढ-निरीक्षणके सम्वन्धमे गोरखपुर-आगमन और गीतावाटिकाकी कीर्तन-झॉकीको नमन।
शरद् पूर्णिमा स० १९९३	स्वामी चक्रधरजीका गोरखपुर-आगमन।
माघ कृ० १, २, स० १९९३	प० मदनमोहनजी मालवीयका गीतावाटिकामे आगमन और निवास।
स० १९९५	राजस्थानमे आकालसेवाकी व्यवस्था।
स० १९९६-९७	एकान्त-साधनाके लिये दादरी (हरियाणा)मे निवास।
स० १९९७	वगालके भीपण अकालमे सहायता।
मार्गशीर्ष शु० १०, स० १९९८	पुत्री (श्रीसावित्रीवाई)का विवाह।

पौष शु० ४, स० १९९८	द्वितीय विश्वयुद्धमे कलकत्तासे भागकर आये हुए हजारो यात्रियोकी रतनगढ रेलवे-स्टेशनपर सेवा-व्यवस्था ।
पौष, स० १९९८	रतनगढमे चक्षुदान-यज्ञका आयोजन ।
भाद्र, स० १९९९	बीकानेर राज्यमे अतिवृष्टिसे पीडित जनताकी सेवा ।
चैत्र कृष्ण ३, स० १९९९	रतनगढमे वृहत् सकीर्तन एव विष्णु-यज्ञका आयोजन ।
कार्तिक, स० २०००	भाईजीकी अस्वस्थता——रतनगढमे चिकित्सा-व्यवस्था ।
पौष शु० १५, स० २००१	हिंदूकोड-बिल-विरोधी अभियान ।
स० २००३	नोआखाली-काण्डसे पीडित हिदुओकी सहायताके लिये गीता-प्रेस-सेवक-मण्डल-द्वारा व्यापक व्यवस्था ।
मार्गशीर्ष, स० २००३	मालवीय श्राद्ध-अङ्कका प्रकाशन ।
पौष शु०, स० २००६	रामजन्मभूमि, अयोध्यामे मूर्तिप्राकटचके अनन्तर अखण्ड-कीर्तन आदिकी व्यवस्था ।
वैशाख कृष्ण ६ से ९, स० २०१०	गो-सेवक-परिषद्, दिल्लीके अध्यक्षपदसे भाषण । प्रयाग-कुम्भमे सत्सङ्ग
स० २०११	पूर्वी उत्तरप्रदेशके बाढ-पीडितोमे सहायता-कार्य ।
वैशाख शु० ८, स० २०१२	राष्ट्रपति डा० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीद्वारा गीताप्रेसके नये द्वार तथा लीलाचित्र मन्दिरका उद्घाटन ।
स० २०१३	धर्म-प्रचारार्थ सम्पूर्ण भारतवर्षके तीर्थोकी ६०० व्यक्तियो-सहित रेलसे यात्रा ।
भाद्र कृष्ण ८, स० २०१५	श्रीकृष्ण-जन्मभूमि, मथुराके मन्दिरका उद्घाटनोत्सव
माघ शु० ९, स० २०१६	शिमलापाल (प० बगाल)की दूसरी यात्रा ।
माघ शु० १०, स० २०२१	'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'की स्थापनामे योगदान ।
माघ शु० ११, स० २०२१	श्रीकृष्ण-जन्मभूमि मथुरामे विशाल भागवत-भवनकी योजना एव शिलान्यास ।
कार्तिक कृ० ९, स० २०२३	गोरक्षा-आन्दोलनका सयोजन ।
स० २०२३	विहारके अकालमे सेवा ।
स० २०२५-२६	राजस्थानके भीषण अकालमे मनुष्यो और गो-वशकी प्राणरक्षाके लिये वृहत् सेवाका आयोजन ।
स० २०२६	आसामके तूफानग्रस्त क्षेत्रोमे सेवा-कार्य ।
स० २०२७	पाकिस्तानके तूफान-पीडितोकी सहायता ।
सन् १९२८से १९७२तक	गोरखपुरमे निवास करते हुए 'कल्याण' एव गीताप्रेससे प्रकाशित पुस्तकोका सम्पादन एव मौलिक साहित्यका सृजन ।
महाप्रयाण	गीतावाटिका, गोरखपुरमे २२ मार्च, १९७१ (चैत्र कृष्ण १०, स० २०२७) प्रात ७ बजकर ५५ मिनटपर ।
अन्त्येष्टि	दौहित्र सूर्यकान्तद्वारा गीतावाटिका, गोरखपुरमे ।

चिर-विश्रामकी पूर्व-भूमिका

विश्वलीला-सूत्रधार, जगन्नियन्ता प्रभु सतोके जीवनसे, क्रियासे, वाणीसे जगत्मे एक आदर्शकी स्थापना करवाते है। अतएव सतोके अवतरणके समान ही उनका महाप्रयाण भी विश्वके जीवोके लिये परममङ्गलकारी, भगवद्भाववर्धक एव आदर्शस्वरूप होता है। मायावद्ध जीव देहको ही सब कुछ मानता है, परतु सतके लिये इस देहका एक धूलिकणसे अधिक महत्त्व नही होता। इसके अतिरिक्त प्राय सतोकी महाप्रयाण-लीला घोर यातनापूर्ण होती हैं, जिससे उसे देखकर जगत्के जीवोको यह प्रत्यक्ष अनुभव हो जाय कि जगत् दु खालय एव दु ख-स्वरूप है। साथ ही उनको यह ज्ञान भी हो जाय कि भगवान्ने सतोकी जिस स्वाभाविक स्थितिका दिग्दर्शन गीता आदि ग्रन्थोमे यह कहकर कराया है—'दु खेष्वनुद्विग्नमना'—'भीषण-से-भीषण दु खमे भी वे विचलित नही होते'—वह केवल कहनेकी चीज नही, सतोका जीवन उसका प्रत्यक्ष उदाहरण होता है।

यही हेतु है कि विश्वमे आजतक जितने भी बडे-बडे सत, भक्त एव विचारक हुए है, प्राय सभीने शरीर छोडनेके पूर्व भयकर व्याधि एव कष्टका भोग किया है। 'भाष्य' लिखते समय श्रीआद्यशकराचार्य इतने भीषण और तीव्र वेदनायुक्त बवासीरसे पीडित हो गये कि रक्तस्राव अत्यधिक होनेके कारण उनका शरीर निरे अस्थि-पञ्जरके रूपमे दिखायी पडता था। श्रीरामकृष्ण परमहस अन्तिम अवस्थामे गलेके कैंसरसे पीड़ित रहे। शिष्योने उनसे जगन्माता कालीसे रोग-मुक्तिके लिये प्रार्थना करनेको कहा, परतु उन्होने इसे माँका आशीर्वाद माना और शिष्योके आग्रहको अस्वीकार कर दिया। यही स्थिति अरुणाचलके सत श्रीरमण महर्षिकी थी। उनके हाथमे कैंसर हो गया था और जब डाक्टरोने उनके हाथ और भुजाकी शल्यक्रिया करनी चाही, तब वे उस प्रस्तावसे इस शर्तपर सहमत हुए कि रोगसे आक्रान्त भागको या सम्पूर्ण शरीरको चेतनाशून्य नही किया जायगा। सम्पूर्ण भुजा और हाथको शल्यक्रिया करके खोल दिया गया, जब कि पूज्य महर्षि उस क्रियाको इस सहजभावसे देख रहे थे, जैसे मृत-पशुकी खाल निकाली जा रही हो।

भाईजी सतोकी इसी परम्परामे थे। अतएव भगवान्की इच्छा थी कि उनका पार्थिव शरीर भी ऐसी भयकर व्याधिसे ग्रस्त हो, जिससे वे विदा होते-होते लाखो-लाखो स्वजनो-भक्तोको यह प्रदर्शित कर सके कि हम शरीर नही, आत्मा है और आत्मा इस शरीरसे भिन्न है—केवल 'द्रष्टा' है। शरीरकी दृष्टिसे लगभग दो वर्षोतक श्रीभाईजीने भीषण व्याधिका उपभोग किया, पर भीषण कष्टकी इस लबी अवधिमे भी वे उससे सर्वथा अप्रभावित रहे। न उन्हे कोई भय था न चिन्ता, न दु ख न विषाद। वे सर्वथा शान्त, सुस्थिर, अविचल, अम्लान रहे—अपनी मस्तीमे मस्त रहे। ऐसा लगता था, जैसे वे इस भीषण व्याधिके द्रष्टामात्र हो।

घोर-से-घोर शारीरिक यन्त्रणाको भाईजीने कितनी प्रसन्नतापूर्वक सहन किया, किस प्रकार कठिन परीक्षाकी घडियोमे भी उन्होने अपने सिद्धान्तोका हनन नही होने दिया, परम भयावह मृत्युवेष सजकर पधारे अपने प्रियतम प्रभुका किस उल्लासके साथ—हँसते-हँसते स्वागत किया, पूर्ण विवशतामे भी दूसरोकी सुख-सुविधाका कितना ध्यान रखा—नीचेकी पक्तियोसे इसका कुछ ज्ञान पाठकोको होगा।

जिस भीषण बीमारीका निमित्त बनाकर श्रीभाईजीने अपनी इह-लीलाका सवरण किया, उसके सर्वप्रथम दर्शन २२ अप्रैल, सन् १९६९को ऋषिकेशमे हुए थे। पीछे उसके दौरे बराबर आते रहे। इस दौरेके समय उनके पेटमे दाहिनी ओर पित्ताशय (GALL BLADDER) एव वृक्क (KIDNEY) के बीच एक गोला-सा बन जाता था तथा उसमे और पेटके ऊपरी भागमे भीषण पीडा होती थी। दर्दका शमन होनेके साथ-साथ वह गोला भी अदृश्य हो जाता था। कई प्रकारसे एक्सरे (X-RAY) लिये गये, पाखाना, पेशाब, खून आदिकी कई प्रकारसे जाँच की गयी। पर डाक्टर-वैद्य किसी निष्कर्षपर नही पहुँच पाये कि इस पीडाका वास्तविक कारण क्या है। पित्ताशय एव मूत्राशयमे पथरी है, यह तो सभी डाक्टरोकी निश्चित राय थी, पर पेटमे जिस स्थानपर गोला बनता था, वह इन दोनोके कारण हो—ऐसा वे निश्चितरूपसे निदान नही कर सके। पेटकी जितनी भीषण व्याधियाँ हो सकती है, सभीकी आशङ्का किसी-न-किसी रूपमे बतलायी जाती थी—जैसे आँतका मुड जाना, पेटमे फोडा बनना,

आँतके किसी भागका सडना, वायु-गुल्म, वृक्कका अपने स्थानसे हट जाना आदि। कैंसर होनेका भी संदेह हो रहा था। ४ नवम्बर १९७०को जो भीषण दौरा हुआ था, उसके बादसे गोलेका पूर्णतया शमन हुआ ही नही। यद्यपि उसकी आकृति दौरेके शमन हो जानेपर कुछ कम हुई थी, फिर भी उसका स्पष्ट अनुभव होता था तथा उसे दबानेसे पीडा होती थी। इससे डाक्टरोका यह अनुमान और भी पुष्ट हो गया कि पेटमे कैंसर पनप रहा है। १६ फरवरी, सन् १९७१के पश्चात् पीलियाका अनुभव होने लगा—पेशाब पीला हो गया, आँखे पीली हो गयी तथा शरीर भी पीला हो गया। जो गोला बना हुआ था, वह बहुत कडा हो गया और समूचा पेट अस्वाभाविक स्थितिमे रहने लगा। अन्तिम दिनोमे बीच-बीचमे श्वास-कष्टका अनुभव होने लगा, जिससे भी यह स्पष्ट अनुमान होता था कि पेटमे कैंसर ही है। पर पेटको खोले बिना यह किसीके लिये निश्चितरूपसे कहना सम्भव नही था कि रोग क्या है।

जनवरी मासके अन्तिम सप्ताहकी बात है—

रोग बढता जा रहा था। स्थानीय डाक्टर महोदय, जिन्हे श्रीभाईजीके परिवारका एक अङ्ग ही समझना चाहिये, बडे चिन्तित हो रहे थे। बीच-बीचमे उनकी आँखे सजल हो जाती थी। उनकी इस विवशताकी स्थितिको देखकर श्रीभाईजीने उनसे कहा—'आपलोग मुझे प्रेमसे देखनेके लिये आते है तो मैं भी प्रेमसे दिखा देता हूँ, दवा आदि ले लेता हूँ। जब आपलोगोको जाँचसे कोई गम्भीर बात ज्ञात होती है, तब आपलोग बडे गम्भीर हो जाते है, आपसमे धीरे-धीरे परामर्श करने लग जाते है, पर मुझपर रोगकी गम्भीरताके ज्ञानका कुछ भी प्रभाव नही है। मेरा दृढ विश्वास है कि जो होना है, वह होगा ही, पहलेसे ही उसके लिये रोने क्यो बैठे ? मृत्यु जब आनी होती है, तभी आती है, मनुष्य चिन्ता और भयसे बार-बार क्यो मृत्युको प्राप्त हो ? शरीरकी अस्वस्थताको दूर करनेके लिये आपलोग पूरे प्रयत्नशील है ही, मै भी दवा ले रहा हूँ। बीमारी जब ठीक होनेको होगी, तभी होगी, जब बढनी होगी, तब बढेगी ही। आपलोग अपनी समझसे अच्छे-से-अच्छे उपचार कर रहे है। इसपर भी बीमारी बढती जा रही है। भीषण कष्ट है, पर अंदर-ही-अंदर मुझे बडा आनन्द है। पीडाके रूपमे भगवान्‌के सम्पर्ककी अनुभूति हो रही है। कष्ट-पीडाके रूपमे भगवान् ही याद आते है—कष्ट-पीडा भी तो भगवान्‌के ही रूप है।'

चन्दनके समीप चाहे जिस भावनासे पहुँचा जाय, चन्दन पास आनेवालेको सौरभ ही देता है। संतोके जीवनमे इसके प्रत्यक्ष उदाहरण प्राप्त होते है। श्रीभाईजी भी अपने उपचारके लिये पधारे हुए डाक्टर महोदयोका 'उपचार' करना चाहते थे। उन्हे डाक्टर महोदयोके 'भवरोग'की चिन्ता थी। वे जानते थे कि 'डाक्टर महोदयोके पास समयका अत्यन्त अभाव रहता है, अतएव एकान्तमे बैठकर भजन-पूजन करना उनके वशकी बात नही। इन्हे ऐसा ही साधन बतलाना चाहिये, जिससे ये लोग अपना चिकित्साका कार्य करते हुए ही जीवनके चरमोद्देश्य—भगवत्प्राप्तिको चरितार्थ करनेमे सफल हो सके।' जिस दिन अस्पतालके विश्रामका दिन होता था, उस दिन श्रीभाईजी डाक्टर महोदयोको प्रेरित करते हुए कहते—"आपलोगोके पास जो रोगी आते है, उनकी सेवा भगवान्‌की सेवा है। भगवान्‌ने गीतामे आदेश दिया है—

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव ।' (१८।४६)

'अर्थात् जिसके जिम्मे जो काम हो, वह अपने उसी कामके द्वारा भगवान्‌की सेवा करे।' आपलोगोके जिम्मे रोगियोकी सेवाका काम है। वास्तवमे रोगीके रूपमे भगवान् ही आपसे सेवा चाहते है। रोगीको देखते, उससे बात करते, उसको दवा देते समय यह भाव आपलोगोको मनमे रखना चाहिये कि भगवान् ही हमसे इस रूपमे सेवा ले रहे है। जहाँ रोगीके रूपमे भगवान्‌की अनुभूति हुई, वहाँ उसका उपचार सुन्दर-से-सुन्दर रूपमे होगा और वह क्रिया भजन बन जायगी तथा वह भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाली हो जायगी।" डाक्टर महोदय इस प्रकार व्यावहारिक भजनका तरीका प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाते थे।

दूसरे दिन श्रीभाईजी उसी प्रसङ्गको आगे बढाते हुए फिर कहने लगे "भगवान्ने गीतामे कहा है—

'तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचार।' (३ । ९)

'अपने कर्तव्यका पालन करो—नही, नही, 'समाचर' अर्थात् भली प्रकार ठीक-ठिकानेसे उसका आचरण करो।' 'कैसे करो ?' 'मुक्तसङ्ग'—आसक्ति-ममतारहित होकर—लगाव (Attachment) न रखते हुए करो।' 'क्यो करो ?' 'तदर्थम्'—अर्थात् भगवान्की प्रसन्नताके लिये करो। आप समझे, 'रोगीके रूपमे स्वय भगवान् है, इनकी सेवा आसक्ति-ममतासे रहित होकर अपनी पूरी समझ-बूझके साथ करनी चाहियें।"

इस प्रकार भीषण स्थितिमे भी वे अपने रोगको विस्मृतकर डाक्टर महानुभावोके 'भवरोग'की निवृत्तिकी चिन्ता करते और उसकी निवृत्तिका सरल मार्ग बताते। डाक्टर महानुभाव आश्चर्यचकित थे कि ये कैसे व्यक्ति है, जो सर्वथा लाचारी एव भीषण चिन्ताकी स्थितिसे भी अप्रभावित रहकर अपने आदर्श स्वभाव एव 'कर्तव्य'का पालन करते है।

फरवरीके प्रथम सप्ताहमे—

डाक्टर महानुभावोको अपने विषयमे चिन्तित देखकर श्रीभाईजीने उनसे कहा—'आपलोग जब देखने आते है, उस समय मुझे रोग याद आता है, अन्यथा जब मै दिनमे कमरा बद किये अकेला रहता हूँ, तब रोगकी स्मृति मुझे प्राय नही रहती। मै अपने काममे, भगवत्-स्मरणमे लगा रहता हूँ।'

श्रीभाईजी पुन बोले—"शरीर ही बीमार होता है, आत्मा बीमार थोडे ही होता है। हमने शरीरके साथ अपना तादात्म्य कर रक्खा है, इससे शरीरकी अस्वस्थताके साथ हम अस्वस्थ हो जाते है। दूसरे, हमारे विचारोका शरीर एव स्वास्थ्यपर बडा प्रभाव पडता है। मैने फ्रासके एक प्रसिद्ध डाक्टरकी लिखी पुस्तक अग्रेजीमे पढी है। उन्होने यह समझानेके लिये कि 'विचारोका शरीरकी स्वस्थता-अस्वस्थतापर कितना प्रभाव पडता है।' लिखा है—मेरा एक रोगी ठीक हो गया था। मै उसे देखने उसके कमरेमे गया तो मैने पाया कि वह प्राय स्वस्थ हो गया है। मैने उसे देखकर कह दिया कि 'आप प्राय ठीक हो गये है। आपकी रिपोर्ट तैयार है, मँगवा लीजियेगा।' उधर मेरा एक दूसरा रोगी उसी दिन बहुत अधिक अस्वस्थ हो रहा था। मै पहले रोगीको देखनेके बाद उस रोगीको देखने उसके कक्षमे पहुँचा। रक्त, पेशाब आदि लेकर जब मै अस्पताल गया और मैने उन चीजोकी जाँच करवायी तो मुझे लगा—यह रोगी अब जल्दी ही बिदा होनेवाला है। मैने तुरत उसकी रिपोर्ट तैयार की और उसमे लिखा कि अब 'आप जल्दी ही बिदा होनेवाले है। जो काम आपको करना हो, कर लीजिये, बसीयतनामा (WILL) लिखना हो तो वह लिख लीजिये।' मैने रिपोर्ट अपने सहायकको दे दी। उससे रिपोर्ट भेजनेमे भूल हो गयी। उसने मरणासन्न रोगीकी रिपोर्ट ठीक होनेवाले रोगीके पास भिजवा दी। ठीक हुए रोगीने रिपोर्ट पढी तो वह घबरा गया। रिपोर्टमे स्पष्ट लिखा था—'अब तुम्हारे बचनेकी कुछ भी आशा नही है।' बेचारा रोगी यह रिपोर्ट पढते ही हक्का-बक्का रह गया और वह सचमुच बिदा होनेकी स्थितिमे आने लगा। घरवाले अचानक उसकी ऐसी स्थिति देखकर घबरा गये। दौडकर वे अस्पतालसे मुझे लिवा ले गये और उन्होने बताया कि 'जबसे रोगीने आपकी भेजी रिपोर्ट देखी है, तभीसे उसकी हालत इस प्रकार गम्भीर हो गयी है।' मैने अपनी भेजी रिपोर्ट माँगी और उसे देखते ही मै समझ गया कि किस प्रकार कम्पाउडरकी भूलसे दूसरे मरणासन्न रोगीकी रिपोर्ट इनके पास पहुँच गयी है। मैने रोगीको तथा उसके घरवालोको समझाया—'यह रिपोर्ट भूलसे यहाँ आ गयी है। आपकी रिपोर्ट अस्पतालमे रखी हुई है। आप बिल्कुल ठीक है, आप घर लौट सकते है।' इतना ही नही, मैने झटपट आदमीको भेजकर उनकी रिपोर्ट मँगवायी और उन्हे दिखायी। अपनी सही रिपोर्ट देखकर वह व्यक्ति प्रफुल्लित हो उठा और मृत्युके भयके कारण उसके शरीरमे जो-जो विकृतियाँ उत्पन्न हुई थी, वे सब ठीक हो गयी। विचारोका इतना प्रभाव पडा।"

इसी प्रकार रतनगढ (राजस्थान)की एक घटना श्रीभाईजीने सुनायी थी—"एक सामान्य ब्राह्मण-परिवारमे स्त्रीने श्रावणी पूर्णिमाके दिन श्रवणकुमारकी आकृति द्वारपर अङ्कित करनेके लिये एक लोटेमे गेरू घोलकर रक्खी।

पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल सूर्योदयके पश्चात् जल्दी ही भद्रा* लगनेवाली थी। अतएव उसने रात्रिमे ही गेरूको पीसकर पानीमे घोलकर लोटेमे रख दिया था, जिससे सवेरे उठते ही वह भद्रासे पहले श्रवणकी प्रतिकृति अङ्कित कर ले। चारपाईके नीचे लोटा रखकर वह सो गयी। पासकी चारपाईपर उसके पति सोये थे। प्रात सूर्योदयसे पूर्व उन्हे शौच जानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। वे उठे और उन्होने चारपाईके नीचे रखा हुआ लोटा उठा लिया और शौचके लिये पासके जगलमे चले गये। मलत्याग करनेपर जव उन्होने अपवित्र अङ्गको धोया, तव देखा—सारी जमीन लाल हो गयी है, उनको लगा—पाखानेके रास्ते इतना खून गिरा है। 'इतना खून गिरा है'—यह वात मनमे आते ही वे घवरा उठे और वेहोश होकर वही गिर पडे। कुछ देर वाद किसी पडोसीने उन्हे वहाँ जगलमे अचेत अवस्थामे पडे देखा और वह जैसे-तैसे उन्हे घर लाया। उनकी हालत गम्भीर होने लगी। इधर स्त्रीने देखा कि 'आज त्योहारका दिन है, ये वीमार हो रहे है। त्योहारकी पूजा नही हो पायेगी तो और अपशकुन होगा। भद्रा लगनेवाली है, उचित यही है कि जल्दीसे श्रवणकी आकृति अङ्कित कर दी जाय।' इसके लिये वह गेरूका लोटा ढूँढने लगी, पर लोटा उसे वहाँ नही मिला। वह वहुत दुखी हो गयी और घवरायी हुई कहने लगी—'अरे! चारपाईके नीचेसे लोटा किसने लिया?' ब्राह्मणको कुछ होश हो चला था, उसने पत्नीकी वात सुनी। उसने हिम्मत करके जैसे-तैसे उत्तर दिया—'चारपाईके नीचे रखा लोटा तो मै शौचके लिये ले गया था।' स्त्रीने कहा—'रात्रिमे उसमे गेरु घोलकर रखी गयी थी, जिससे भद्रा लगनेके पूर्व श्रवणकी आकृति वना दी जाय।' गेरूकी वात सुनते ही ब्राह्मणमे चेतनता आ गयी। वह हठात् उठ वैठा और पूछने लगा—'क्या सचमुच उसमे घोली हुई गेरु थी?' ब्राह्मणीने उत्तर दिया—'हाँ! उसमे गेरु ही थी।' लोटेमे गेरु ही थी—इतना निश्चय होते ही ब्राह्मणकी कायरता दूर हो गयी। वह उठ वैठा और कहने लगा—'अरे, वह सव गेरूका रग था, मुझे कुछ भी नही हुआ है, मेरे शरीरसे खून नही गिरा है।' और वह ब्राह्मण ठीक हो गया। इस प्रकार हम देखते है कि विचारोका, मनके भावोका शरीरपर कितना गहरा प्रभाव पडता है।"

भाईजीने आगे वताया—'क्रोधके आवेशसे रक्तचाप वढ जाता है, हृदयकी धडकन वढ जाती है। जो व्यक्ति हृदयकी तकलीफसे वचना चाहता हो, वह क्रोध करना छोड दे।'

'इन तथ्योको ध्यानमे रखते हुए डाक्टरको चाहिये कि जव वह रोगीको देखे, तव मुखकी मुद्राको कभी गम्भीर न वनाये। हँसमुख रहे। इससे रोगीका वहुत कुछ रोग तो विना दवा ही ठीक हो जाता है।'

डाक्टर महोदय श्रीभाईजीके इस गम्भीर विवेचनसे वडे प्रभावित हुए और अपने लिये एक सुन्दर उपदेश प्राप्त करके प्रसन्न हो गये।

१७ फरवरीकी वात है—

डाक्टर महोदयोके प्यार एव स्नेहसे गद्‌गद हुए श्रीभाईजीने कहा—'आपलोगोका प्रयत्न सफल नही हो रहा है, इसका आपलोग कुछ विचार न करे। आप सद्भाव एव प्यार दे रहे है—हमे उससे वडा वल मिलता है। सद्भाव एव प्यारभरे हृदयका वडा प्रभाव होता है। यह वात केवल कहनेकी नही है, सत्य है।'

मुँहद्वारा पथ्य प्राय नही जा पा रहा था। अतएव पोपणके लिये नसद्वारा ग्लूकोज सैलाइन चढाया जाता था। २५ फरवरीको ग्लूकोज सैलाइन चढने (Transfusion)के समय श्रीभाईजीने कहा—"प्रार्थनाका वडा चामत्कारिक प्रभाव होता है। हमने अपने जीवनमे इसका वहुत वार अनुभव किया है। प्रार्थनासे भीपण-से-भीपण रोग ठीक हो सकते है, इसकी एक घटना स्मरण हो आयी है। कलकत्तामे श्रीरुडमलजी गोयन्दका एक प्रसिद्ध व्यवसायी हुए है। एक वार उनको प्लेग हुआ। १०४-५ डिग्री वुखार और दोनो जाँघोमे वडी-वडी गिल्टियाँ निकल आयी थी। उस समय कलकत्तामे सर कैलासचन्द्र वोस वडे प्रसिद्ध डाक्टर थे। उन्हे वुलाया गया। उन्होने देखकर कहा—'वचनेकी आशा विल्कुल नही है। रात निकलना कठिन है। सावधान रहना चाहिये।' वे यह कहकर चले गये। श्रीरुडमलजी सस्कृतके पण्डित थे। भागवत पढा करते थे। भागवतके माहात्म्यमे एक जगह नारदजीने श्रीसनकादिसे उनकी प्रशसामे यह कहा कि "आप सदा वालकरूपमे इसलिये वने रहते है कि आप 'हरि शरणम्' मन्त्रका जप नित्य करते है।" श्रीरुडमलजीको वह प्रसङ्ग स्मरण हो आया। उन्होने अपने सेवक गोविन्द-

* ज्योतिपशास्त्रका एक योग, जिसमे शुभ कार्य नही किये जाते।

को बुलाया और कहा—'गङ्गाजल लाओ, शरीर पोछेंगे।' गङ्गाजल आ गया। उन्होने अँगौछेको गङ्गाजलमे भिगोकर सारा शरीर पोछवाया। कमरा वद करके भगवान् श्रीकृष्णकी मूर्ति सामने रख ली और श्रीकृष्णमे मन लगाकर 'हरि शरणम्' मन्त्रका जप करने लगे। १२ घटेतक तो वे जप करते रहे, पीछे उन्हे स्मरण नही रहा कि क्या हुआ। लगभग ४ वजे जब चेतना हुई, तव उन्हे लगा—शरीर हल्का है, वुखार नही है। उन्होने टटोलकर देखा—दोनो गिल्टियाँ भी गायव है। तव उन्होने उठकर एव चलकर देखा—विल्कुल स्वाभाविकता अनुभव हुई। तब उन्होने कमरेका दरवाजा खोला और नौकरको आवाज दी। नौकर आया और सेठजी अपने दैनिक कृत्यमे लग गये। अब वे विल्कुल स्वस्थ थे।

"दूसरे दिन प्रातःकाल सर कैलास श्रीरूडमलजीके पडोसमे एक अन्य रोगीको देखने आये। रोगीको देखनेपर डाक्टर साहवने सेठजीके परिवारके एक सज्जनसे पूछा—'आपलोग रात्रिमे कितने वजे श्मशानसे लौटे? उन्होने पूछा—'किसकी अन्त्येष्टिकी वात कह रहे है?' डाक्टर साहव वोले—'श्रीरूडमलजीकी हालत रातमे वहुत अधिक खराव थी, रात्रिमे उनका शरीर शान्त हो गया होगा और अन्त्येष्टि भी हो गयी होगी। आपको पता नही चला क्या?' सेठजीने कहा—'हमे तो कुछ भी पता नही है।' तव डाक्टर साहव पता लगाने श्रीरूडमलजीके घरपर आये। आते ही उन्होने देखा कि श्रीरूडमलजी चॉदीकी चौकीपर चॉदीके थालमे पीताम्वर पहने प्रसाद पा रहे है। उन्हे इस प्रकार खाते देख डाक्टर साहवको वडा ही आश्चर्य हुआ। उन्हे लगा—इन्होने रात जैसे-तैसे निकाल दी है और अव ये सन्निपातकी अवस्थामे खाने वैठ गये है।' डाक्टर साहवने पूछा—'सेठजी! किसके कहनेसे खा रहे है?' सेठजी वोले—'जिसकी दवासे ठीक हुए है?' इतना सुननेपर भी डाक्टर साहवको लगा—ये सन्निपातमे ही वोल रहे है। डाक्टर साहव घरवालोको सावधान करके चले गये कि 'आपलोग ख्याल रक्खे, ये सन्निपातमे खा रहे है।' पर श्रीरूडमलजी तो पूर्ण स्वस्थ हो गये थे। उन्होने छककर प्रसाद पाया और पूर्ण स्वस्थ रहे।

"पीछे श्रीरूडमलजीने स्वय पूरी वात सुनायी कि 'जव डाक्टर साहवने कह दिया कि रात्रि निकलनी कठिन है, तव हमे मरनेका सोच तो रहा नही। भागवत-माहात्म्यके अन्तर्गत श्रीनारद-सनकादिका प्रसङ्ग स्मरण हो आया और हमने श्रीसनकादिके प्रिय मन्त्र 'हरि शरणम्'का जाप शुरू कर दिया।

"ऐसे अनेको प्रसङ्ग हमने देखे-सुने तथा अनुभव किये है कि 'भगवान्पर विश्वास हो और सच्चे हृदयसे भगवान्से प्रार्थना की जाय तो भगवान्के यहॉ सव कुछ सम्भव है।' पर मेरे यह सव सुनानेका अर्थ यह नही कि आपलोग मेरे लिये प्रार्थना करे। मेरे मनमे न जीनेको इच्छा होती है न मरनेकी। जैसा भगवान्ने रच रक्खा है, वही होना चाहिये। हम शरीर तो है नही, हम है आत्मा। शरीरके जानेसे आत्माका कुछ वनता-विगडता नही। पीडा शरीरमे होती है। कभी अनुभव होती है, कभी नही भी होती। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ और निश्चय कर ले तो कलसे दवा वद कर दे। फिर जैसा होना होगा, हो जायगा। उसके लिये भगवान्के विचारको वदलनेकी हमलोग चेष्टा ही क्यो करे? भगवान्से प्रार्थना हो तो उनके विधानके अनुकूल हो। यदि कही भगवान्के विधानके विरुद्ध हमारी इच्छा हो तो उसे वे पूरी न करे—यह प्रार्थना करनी चाहिये।"

श्रीभाईजीके भौतिक कलेवरका भगवान्के विधानानुसार अव अवसान होना था। अतएव शरीर उस ओर अग्रसर हो रहा था। कोई भी उपचार सफल नही हो पा रहा था। भौतिक साधन तभी सफल होते है, जव उनकी सफलता भगवान्के विधानके अनुसार अभिप्रेत होती है। भगवान्के विधानके प्रतिकूल जगत्की किसी भी शक्तिका कोई भी प्रयत्न कारगर नही हो सकता। पर अन्तिम श्वासतक सात्विक प्रयत्न करते रहना शास्त्र एव सतोके आदेशानुसार कर्तव्य है।

श्रीभाईजीकी शारीरिक स्थितिमे जब कोई सुधार लक्षित नही हो रहा था, तब स्थानीय डाक्टर महानुभावोके आग्रहसे गोरखपुरमे बाहरके योग्य डाक्टर महानुभावोको बुलाया गया। २९ फरवरीको कानपुर मेडिकल कालेजके सर्जरीके प्रोफेसर डा० ताराचन्दजी विशुद्ध आत्मीयताके नाते श्रीभाईजीको देखनेके लिये पधारे। डा० ताराचन्दजी श्रीभाईजीका निरीक्षण करनेपर चिन्तित हो उठे। वे रोगकी भीषणतासे परिचित थे। उन्होने बडे गम्भीर एव चिन्तासूचक स्वरमे अपनी अनुभवयुक्त राय दी—'तत्काल ऑपरेशन किया जाना चाहिये, अन्यथा जीवनको खतरा है। इतना गम्भीर ऑपरेशन यहाँ होना सम्भव नही। बाहर जाना चाहिये।' डाक्टर साहबकी राय सुनकर घरवाले, स्वजन एव स्थानीय डॉक्टर महानुभाव—सभी घबरा गये। प्राय सभी ऑपरेशनपर जोर देने लगे। बाहर जानेका निश्चय तत्काल होना चाहिये, सब ओरसे यही माँग आने लगी। सबकी भय एव चिन्तासे अभिभूत मन स्थिति देखकर श्रीभाईजीने डॉक्टर श्री एम० एन० चक्रवर्ती महोदयको अपने पास बुलाकर धीरेसे कहा—'मेरी शरीरसे आस्था नही है। शरीर जब जाना होगा, जायगा। कर्त्तव्य है कि जबतक शरीर है, तबतक इसकी सँभाल करनी चाहिये।' पीछे श्रीभाईजी बँगलामे बोलने लगे—

'आमार शरीरेर सङ्गे सम्बन्ध रयेछे बलिया वेदनार बोध हय। जखन शरीरेर सङ्गे आमार सम्बन्ध थाके ना, तखन व्यथा अनुभव करिबार प्रश्नइ उठे ना।'

—हमारा जब शरीरके साथ सम्बन्ध रहता है, तब वेदनाका बोध होता है, पर जब शरीरसे अपनेको पृथक् अनुभव करता हूँ, तब कष्टके अनुभवका प्रश्न ही नही रहता। पर यह बात आपसे कहनेमे सकोच नही है, कारण, आप श्रीरामकृष्ण परमहसके भक्त है। बाहर जानेपर वहाँके स्वजनो एव डाक्टरोके सामने यह बात कहनेमे हमे सकोच होगा। अपनेमे तनिक भी अभिमान व्यक्त न हो तथा डाक्टर महानुभावोका अपमान भी न हो—इसपर ख्याल रखना है। मेरे उपर्युक्त कथनमे लोगोको अभिमान दीखेगा और डाक्टर महानुभाव अपना अपमान मानेगे कि हमारे चिकित्सा-विज्ञान-सम्मत परामर्शको ये लोग भावुकतावश अस्वीकार कर रहे है। इसके अतिरिक्त, रोगीके शरीरकी लाचारीकी स्थितिमे आवश्यक उपचार करना डाक्टर महानुभावोका कर्त्तव्य है। हम अपने सिद्धान्तकी दृढतासे डाक्टर महानुभावोके आवश्यक उपचार करनेके मार्गमे बाधा उपस्थित करके उन्हे कर्तव्यच्युत करे—हमे इस बातका भी सकोच है।'

इस प्रकार अपने सिद्धान्तकी रक्षाके साथ दूसरेके कर्तव्यपालनका इतना ध्यान इस लाचारीकी स्थितिमे भी श्रीभाईजी रख रहे है—यह देखकर डाक्टर चक्रवर्तीकी आँखे सजल हो उठी।

श्रीभाईजीने आगे कहा—"भगवान्पर विश्वास करके अपनी जो मान्यता है, सिद्धान्त है, उसके अनुसार इलाज किया जाय। किसीका तिरस्कार न हो जाय—मुझे यह सकोच बना है। बाहर जानेपर हमारा सकोच और बढेगा। वहाँ डाक्टरोने परिस्थितिकी गम्भीरताको समझकर कोई बात कही और हम उसे न मान पाये तो उनका तिरस्कार होगा। वे लोग इन्सुलिन-जैसी अशुद्ध, अपवित्र, हिंसायुक्त औषध देगे, सब लोग कहेगे—'शरीर बचाना धर्म है, पीछे प्रायश्चित्त कर लिया जायगा।' इस प्रकार अशुद्ध ओषध सेवनकर पीछे प्रायश्चित्त करनेकी बात छोडिये। वह हमे किसी भी रूपमे मान्य नही है। इन सभी कारणोसे बाहर जानेमे हम हिचकते है। पर इसका अर्थ यह नही है कि हम ऑपरेशनसे डरते है। ऑपरेशन करानेमे हमे कोई डर नही है। ऑपरेशन करानेवाले बहुत लोग अच्छे होते है, हमारा रोग अच्छा नही होगा, कौन कह सकता है। अच्छा होना होता है तो हो जाता है, नही होना होता तो नही होता। चिकित्सा कर्तव्य है, करनी चाहिये, पर दवा रोगीको बचा नही सकती। इसके अतिरिक्त हम जानते है, शरीरसे हमारा सम्बन्ध नही, शरीरकी बीमारीसे आत्मा बीमार नही होता—यह मरेगा नही और शरीर जबतक है, तबतक यह बीमार है, रहेगा—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवन जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(गीता २।१३)

"जैसे जीवात्माकी इस देहमे बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है।' ये सब बाते जीवनभर कही है, पढी है, ये सब अपने लिये नही है क्या ? वास्तवमे हमलोगोको मोह हो गया है। नाम-रूपको लेकर हमने मान लिया है कि 'मै देह हूँ' और अपनेको बीमार अनुभव करने लगे है। न 'यह' देह है, न 'यह' बीमार है।"

डा० चक्रवर्त्ती महोदय श्रीभाईजीके इन शब्दोको सुनकर आत्मविभोर हो गये।

उसी दिन सायकाल घरवालो, डाक्टरो एव स्वजनोके सामने प्रातःकालके प्रसङ्गको दोहराते हुए श्रीभाईजीने बोलनेकी शक्ति क्षीण होनेके कारण बीच-बीचमे विराम लेते हुए कहा—"हम बाहरवालोके समक्ष भी अपने सिद्धान्त-पर दृढ रह सकते है, पर उसमे उनका तिरस्कार होनेका मनमे सकोच है। पीडा शरीरमे है। जब हम उसे स्मरण नहीं करते, तब पीडा अनुभव नही होती। अभी हमारे पेटमे बहुत दर्द था और है, पर जबतक आपलोगोसे बात की, तबतक उसका कुछ भी अनुभव नही रहा, दर्दको भूले रहे। बाहर जानेपर बाहरके डाक्टरो—मित्रोका तिरस्कार न हो जाय, हमे इसीकी विशेष चिन्ता है। इसके अतिरिक्त हमारे मनमे आता है कि बाहर जानेकी बात तभी होती है, जब आपलोगोके उपचारसे लाभ न हो, पर आपलोगोके विशुद्ध प्यारसे भरे हृदयमे तो भगवान् प्रकाश नही देगे, बम्बई-कलकत्ताके बडे-बडे डाक्टर, जो पैसेको प्रधानता देकर आयेगे तथा सब काम करेगे, उनको भगवान् प्रकाश देगे—यह तो केवल आस्तिकताका जनाजा है—उपहास है। जगत्‌की दृष्टिमे जो अच्छे-से-अच्छे साधन उपलब्ध हो, उनको किया जाय, पर विश्वास भगवान्‌के मङ्गलविधानपर रहे। हमारा विचार तो निश्चित है—किसी भी हालतमे 'इन्सुलिन' नही लेना है, चाहे प्राण रहे या जायँ।

डॉ० श्रीघनश्यामदास सिहल बनारस हिंदू विश्वविद्यालय मेडिकल कॉलेजमे सर्जरीके रीडर है। फरवरीके अन्तिम सप्ताहमे वे प्रातः ७ बजे श्रीभाईजीसे मिलने पधारे। आते ही अभिवादनके पश्चात् डाक्टर साहबने श्रीभाईजीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमे जानना चाहा। श्रीभाईजीने सक्षेपमे उन्हे अपने स्वास्थ्यका परिचय दिया। पीछे वे अपने सेवकसे बोले—'पहले डाक्टर साहबके शौच-स्नानकी व्यवस्था करो और इन्हे जलपान कराओ।' डाक्टर साहब यह सुनते ही बोल पडे—'मै सुबह ३॥ बजेकी गाडीसे आया था। वही वेटिंगरूममे ठहर गया। स्टेशनपर शौच-स्नानसे निवृत्त होकर, चाय पीकर आया हूँ। आपको कोई कष्ट नही करना है।'

बीचमे ही बातको विराम देते हुए गम्भीर स्वरमे श्रीभाईजीने कहा—'आपने यह कष्ट दे दिया न कि चाय पीकर यहाँसे आये है।' डाक्टर साहब भाईजीका आत्मीयताभरा उत्तर सुनकर सकुचित हो गये और उन्होंने नीचे जाकर चाय ली और जलपान किया।

रात्रिमे जब डाक्टर सिहल वाराणसी लौटने लगे, तब वे श्रीभाईजीको प्रणाम करने गये। श्रीभाईजीने कहा—'नारायण' नाम लेकर जाइये' और मालवीयजी महाराजकी बात सुनाने लगे कि किस प्रकार उन्हे यह मन्त्र महात्मासे प्राप्त हुआ था। पीछे बोले—'मेरे लिये चिन्ता मत कीजियेगा।' डा० सिहलने कहा—'भाईजी ! घरवाले, मित्र, स्वजन, जनता डाक्टरलोग—सभी चिन्तित है। इस भीषण स्थितिमे यदि कोई निश्चिन्त है तो आप। आपपर इस साघातिक स्थितिका तनिक भी प्रभाव नही है।'

श्रीभाईजी आदर्श गृहस्थ सत थे, अतएव शरीरकी अस्वस्थतामे उपचार करवाते थे, पर इस बातका वे बराबर ध्यान रखते थे कि जो औषध वे ले रहे है, उसमे किसी भी रूपमे कोई जान्तव पदार्थ या अन्य कोई अशुद्ध वस्तु न हो। आजकल पशु-पक्षियोकी हत्या कर उनके रक्त, मास एव विभिन्न अङ्गोके रसोसे अनेक प्रकारकी औषधोका निर्माण हुआ है, जो अनेक भीषण रोगोमे बहुत लाभप्रद भी सिद्ध हुई है। परन्तु श्रीभाईजी इस प्रकारकी औषधोसे सदा सर्वथा सावधान रहे। वे प्रयोग की जानेवाली प्रत्येक औषधमे सम्मिलित किये गये पदार्थोके विषयमे पूरी जानकारी करनेके पश्चात् ही उसका सेवन करते थे। किसी औषधमे यदि तनिक भी कोई जान्तव पदार्थ सम्मिलित पाया जाता तो वे उसे नही लेते थे, फिर चाहे वह कितनी ही लाभकर क्यो न हो।

लगभग बीस वर्षोसे उन्हे मधुमेह (डायबिटीज)की बीमारी थी। इसके लिये वे अपने भोजनपर बराबर नियन्त्रण रखते थे तथा आवश्यक होनेपर कुछ दवा भी ले लिया करते थे। मित्रोने तथा डाक्टरोने 'इन्सुलिन' का इन्जेक्शन लेनेके लिये अनेक बार कहा, पर वे जानते थे कि 'इन्सुलिन' पशुओके किसी अङ्गविशेषके रससे बनता है। अतएव उन्होने कभी उसका सेवन नही किया।

रोग सुरसाकी भाँति अपना रूप-विस्तार करता जा रहा था और उसके विकराल रूपको देखकर डाक्टर महानुभाव चिन्तित होते जा रहे थे। २७ फरवरीको दिल्लीके प्रसिद्ध सर्जन डा० मेहरा श्रीभाईजीको देखनेके लिये पधारे। उन्होने भी परिस्थितिकी गम्भीरताको समझकर अपनी राय दी—'घरवाले इनका जीवन महीनो-वर्षोतक देखना चाहते है, पर वर्तमान परिस्थितिमे ये कुछ ही दिनोके मेहमान है। ऑपरेशन करनेसे आशा है, कुछ लाभ हो। पर रक्तमे शर्करा (Sugar) रहनेके कारण ऑपरेशन खतरेसे खाली नही होगा। हम पूरा प्रयत्न रक्खेगे कि इनके सिद्धान्तकी रक्षाके लिये इन्हे 'इन्सुलिन'के इन्जेक्शन न दिये जायँ।' स्थानीय डाक्टरो तथा कतिपय स्वजनोने श्रीभाईजीपर दबाव डाला कि वे ऑपरेशनके लिये तैयार हो जायँ, पर श्रीभाईजीने सर्जन महोदयसे पूछा—"ऑपरेशनके बाद यदि मधुमेहके कारण घाव नही भरा तो आप क्या करेगे ?" सर्जन महोदय श्रीभाईजी-जैसे सतके सामने सच्ची बात न छिपा सके। उन्होने कहा—'उस स्थितिमे हम आपकी जीवन-रक्षाके लिये आपसे छिपाकर 'इन्सुलिन' दे देगे। उस समय हमारा कर्तव्य किसी भी उपायसे आपके जीवनको बचाना होगा। पेटके ऑपरेशनमे 'इन्सुलिन'के इन्जेक्शनके सिवा मधुमेहके नियन्त्रणके लिये दूसरा कोई साधन हमारे पास नही है।' इसपर श्रीभाईजीने कहा—"इन्सुलिन'का प्रयोग करके अपना जीवन बचाना मैं नही चाहता। जीवन तो एक दिन जाना है ही। फिर किसी प्राणीकी हिंसासे बने 'इन्सुलिन'को लेकर इसे बचानेका पाप क्यो स्वीकार किया जाय ?" और उन्होने ऑपरेशन न करानेका अपना निश्चय सब डाक्टरो और स्वजनोको सुना दिया। सर्जन महोदय श्रीभाईजीकी इस दृढताको देखकर चकित रह गये। उन्होने कहा—"भाईजी! आपकी महानताका यही हेतु है कि आप सिद्धान्तको जीवनसे भी श्रेष्ठ मानते है। अन्यथा हम जानते है कि बडे-बडे धार्मिक लोग 'इन्सुलिन'का प्रयोग बिना किसी हिचकके बराबर कर रहे है।'

अहिंसाका उपदेश तो सभी करते है, पर समयपर उसका पालन कोई बिरला ही कर पाता है। श्रीभाईजीकी यह आचारनिष्ठा जगत्‌को पवित्र करती रहेगी।

× × ×

उपचार चल रहा था, पर स्थितिमे सुधार होनेके स्थानपर वह निरन्तर बिगडती जा रही थी। डाक्टर महानुभावोकी चिन्ता बढ रही थी। उसे देखकर श्रीभाईजीने कहा—'देखिये, विपरीत स्थितिमे भगवान्‌पर विश्वास बढता रहे, यही तो आस्तिकता है। मै अभी सोच रहा था कि व्यष्टि एव समष्टिमे भी ऐसे अवसर आते है, जब चारो ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता है। जहाँ भी हाथ डालिये, निराशा, असफलता ही मिलती है। जिनसे सुरक्षाकी आशा करते है, उससे पराभव प्राप्त होता है। इसी प्रकार शरीरकी ऐसी स्थिति हो रही है कि जो कुछ भी दिया जाता है, वह विपरीत फल दिखाता है। आपलोग अपनी समझसे पूर्ण सद्भावनासे उपचार कर रहे हैं। आपलोगोके स्नेह-प्यारको देखकर मै आपलोगोका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। प्यार-स्नेहका बदला नही दिया जा सकता। भगवान् उसका बदला देते है। आपलोग विश्वास रखे, यह भगवान्‌का विपरीत रूप है, भगवान्‌का भयानक रूप भी होता है। मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ। जब कष्ट अधिक होता है, तब उसका अनुभव होता है, पर मेरे मनमे चिन्ता नही है। अपने कर्तव्यमे कमी नही करनी चाहिये। अभी रोग और बढ सकता है—सम्भव

हो सकता है, वीकोलाई (B-coli) हो सकती है। जब राजा कमजोर होता है, तब छोटे-छोटे शत्रु भी सिर उठाने लग जाते हैं। ऐसी ही इस शरीरकी दशा हो रही है। वह अत्यधिक कमजोर हो गया है। अतएव नये-नये रोग प्रकट हो रहे हैं। आपलोग चिन्ता न करें, जैसा होना है, होगा और उसमें मङ्गल ही होगा।'

रोगकी निरन्तर बढती स्थितिको देखकर सबका चित्त बडा उदास रहने लगा, जो भी श्रीभाईजीके दर्शनार्थ आता, उसकी आँखें छलक पडती। श्रीभाईजी इस अधीरताको कम करना चाहते थे, अतएव वे उद्बोधन करते हुए कहते—'भगवान्‌ने गीतामें कहा है—**'जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ।'** (१३।८)

"जन्म, मृत्यु, बुढापा और रोग निरन्तर शरीरके साथ लगे हैं, इन सबको देखकर शरीरसे वैराग्य करना चाहिये। . संसारका अर्थ है—**'संसरति इति संसारः।'** अर्थात् जो गतिमान् है, चल रहा है, उसका नाम 'संसार' है। यहाँकी कोई भी स्थिति स्थायी नहीं है। हमलोगोंका बचपन बीता, युवावस्था बीती, बचपनकी वे उमगें, वे विचार मर गये, इसी प्रकार वृद्धावस्था भी मर जायगी।

"शरीरके प्रति 'मैं'पन तथा 'मेरा'पन हो रहा है, इसीसे दुःख-सुख होते है। यह 'मैं-मेरापन' हटा कि फिर कुछ भी नहीं है। बस, प्रतिकूलतामें, विपरीततामें, भगवान्‌पर विश्वास बना रहे, बढता रहे—यह विश्वास कि जो हो रहा है, भगवान्‌के मङ्गलविधानसे ठीक हो रहा है।"

स्वजन, मित्र, डाक्टर आदि महानुभाव रोगकी निरन्तर बढती एवं गम्भीर होती हुई स्थितिमें भगवान्‌की मङ्गलमयताके दर्शन करनेमें अपनी असमर्थता अनुभव कर रहे हैं, इस तथ्यसे श्रीभाईजी परिचित थे। अतः वे जब भी कुछ बोलनेकी शक्ति अनुभव करते, इसी बातको दोहराते। ३ मार्चको अपने पुराने सहयोगी, स्वजन, बन्धु डॉ० भुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'की आँखोंमें जब उन्हें अश्रुबिन्दु दिखायी दिये, तब उन्हें सान्त्वना देते हुए श्रीभाईजीने कहा—'प्रतिकूलतामें भगवान्‌की मङ्गलमयतापर विश्वास हो, तभी तो विश्वास है। शरीर रहे चाहे न रहे, उनसे यह न कहा जाय कि आप इस प्रतिकूलताको बदलिये।'

श्रीभाईजीके २६ फरवरीके उपर्युक्त स्पष्टीकरणके बाद गोरखपुरसे बाहर जाकर ऑपरेशन करानेकी बात तो समाप्त हो गयी थी। पर बाहरसे डाक्टर बुलाकर परामर्श करनेका आग्रह सब ओरसे हो ही रहा था। ४ मार्चको एक कैंसरके विशेषज्ञ महानुभावको बम्बईसे बुलानेकी चर्चा चली। श्रीभाईजीको इस बातकी जानकारी हो गयी। वे घरवालोंसे बोले—'डाक्टरोंको बाहरसे क्यों बुला रहे हो? वे लोग बाहरसे आयेंगे, वही बात बतायेंगे जो यहाँके डाक्टर महानुभाव बतला रहे हैं। बाहरसे डाक्टरोंको बुलानेमें जो रुपया खर्च कर रहे हो, वह गरीबोंकी सेवामें खर्च करना चाहिये।'

६ मार्चको दर्दका भीषण दौरा आया। कई तरहके इंजेक्शन देनेके बाद लगभग एक घंटेमें दर्द कुछ शान्त हुआ। डा० लाहिडी महोदय आजके दर्दकी भीषणताको देखकर बहुत ही चिन्तित एवं व्यथित हो रहे थे। घरवाले एवं स्वजनोंकी आँखें बरस रही थीं। श्रीभाईजी इस गम्भीरताको कम करनेके उद्देश्यसे बोले—

"भगवान् कहते हैं—

आमि तोमार कथा सुनिबो ना,
आमि तोमार कथा मानिबो ना,
आमि यथेच्छाचारी,
जा इच्छा होवे करिबो,
तातेइ तोमार कल्याण।

मैं तुम्हारी बात सुनूँगा नहीं, मैं तुम्हारी बात मानूँगा नहीं, मैं यथेच्छाचारी हूँ जो मनमें आयगा, करूँगा और उसीमें तुम्हारा मङ्गल है।' भगवान् जो करते हैं, उसमें मङ्गल-ही-मङ्गल है। आपलोग प्यारसे, सद्भावसे हितदृष्टिसे जो कर रहे हैं, करते रहिये। वह सफल नहीं हो रहा है तो क्या, आपकी भावनाके कारण वह मङ्गलमय है। भावना ही किसी कार्यको शुभ-अशुभ रूप देती है। यज्ञ भी किया जाय तो वह अशुभ भावनासे अमङ्गलकारी हो सकता है। आपलोग रोगीका ऑपरेशन करते हैं, उसका अङ्ग काटते हैं, पर उसमें रोगीकी हित-भावना होनेसे आपकी वह क्रिया मङ्गलमयी होती है।'

× × ×

७ मार्चको अपने परिवारके व्यक्तियोके समक्ष श्रीभाईजीने कहा—

'जबसे मैंने होश सँभाला है, किसीका बुरा नही किया है, न चाहा है। सबमे भगवान्‌को देखनेका प्रयत्न किया है। इसमे कही सफल हुआ हूँ, कही असफल भी। शत्रु तो मेरा कोई है ही नही। शरीरमे कष्ट होनेसे मुझे उसकी अनुभूति होती है, पर मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

१० मार्चको रात्रिमे साढे ग्यारह बजे श्रीभाईजीका जी घबराने लगा। पासमे बैठी दौहित्री राधाने कहा—'नानाजी! आपका जी घबरा रहा है?' श्रीभाईजीने कहा—'हाँ, जी घबराता है, पर मेरा क्या लेता है।' दौहित्रीने उत्तर दिया—'नानाजी! आपका जी घबराना देखकर हमलोगोका तो जी घबराता है।' 'श्रीभाईजी पुन बोले—'न जीनेका अर्थ है न मरनेका अर्थ है, सब व्यर्थ है। जो जीको अपना मानता है, उसका जी घबराता है। मैं जीको अपना नही मानता तो मेरा जी क्यो घबरायेगा?'

× × ×

श्रीभाईजीकी अनुभूति थी कि भगवान्‌के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुकी कोई सत्ता नही है। उनकी यह अनुभूति 'कल्याण'के जन्मसे पूर्वसे ही थी। अपनी इस मान्यताको उन्होने विक्रम-सवत् १९८०से पूर्व एक पदमे अभिव्यक्त किया था, जो इस प्रकार है—

देख दु खका वेष धरे मै नही डरूँगा तुमसे, नाथ!
जहाँ दु ख, वहाँ देख तुम्हें मै पकडूँगा जोरोके साथ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमे।
मै लूँगा पहचान तुम्हे इक कोनेमे, जग सारेमे॥
रोग-शोक, धनहानि, दु ख, अपमान घोर, अति दारुण क्लेश।
सबमे तुम, सब ही तुममे है, अथवा सब तुम्हरे ही वेष॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, तब फिर मै किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दु ख-वेष धारणकर, नाथ!
जहाँ दु ख, वहाँ देख तुम्हे मै पकडूँगा जोरोके साथ॥

इसके पश्चात् 'कल्याण'के माध्यमसे तथा प्रवचनोद्वारा अपनी इस अनुभूतिको उन्होने सहस्रो बार दोहराया। जीवनके अन्तिम वर्षोमे तो उनकी स्थिति विचित्र-सी हो गयी थी। उस समयकी उनकी अनुभूतिके विषयमे मुझ-जैसा सामान्य प्राणी क्या लिखे। रोग बढता जा रहा था एव पोषण-तत्व किसी भी रूपमे शरीरमे नहीं पहुँच पा रहा था। इससे उन्हे बोलनेमे कष्ट हो रहा था। ८ मार्चको अचानक उनके मनमे आया—अपनी इस अनुभूतिको लिखितरूपमे जगत्‌को दे जाऊँ। उन्होने सर्वथा अशक्तिकी अवस्थामे भी काँपते हुए हाथोसे कलम पकडी और लेटे-लेटे दो पद लिखे, जो उनकी उस समयकी मन स्थितिके सजीव चित्र है। जगत्‌के लिये उनके वे अन्तिम लिखित उपदेश है, पर दु खकी बात है कि उन्होने वे दोनो पद बँगला लिपिमे लिखे। शारीरिक भीषण अशक्तिसे हाथ काँपनेके कारण उन पदोकी लिखावट अस्पष्ट है। बहुत प्रयत्न करनेपर भी अभीतक वे दोनो पद पूरे पढनेमे नही आये। उनका जितना अश स्पष्ट हो पाया है, वह नीचे दिया जा रहा है—

अबकी बार व्याधि पीडा सज प्रिय तुम आये।
बीच-बीचमे स्वाँग बदलते रहते तुम मनभाये॥
देख तुम्हारी इस आकृतिको घरवाले थर्राये।
. .. . ॥
... . ।
. . . . ॥
छोड शरीर तुम्हें पा नित मै सानँद मौन समाऊँ।
. . . . मै सुख-सग सिधाऊँ॥

चिर-विश्राम के एक सप्ताह पूर्व काव्य-रचनामें संलग्न

पर कैसे बच्चो, मित्रों, घरवालोंको समझाऊँ।
कैसे आश्वासन दूँ, कैसे उन्हें रहस्य बताऊँ॥

× ×

मेरी करुण प्रार्थना सुनकर इन्हे तुम्ही समझा दो।
..................सबको कुछ अपना मर्म जता दो॥
हो जायें ये निहाल जानकर गूढ़ रहस्य तुम्हारा।
मिट जाये तुरंत इनका भ्रम-शोक, मोह-दुख सारा॥

पा जाये ये तुमसे, प्यारे! ज्ञान-प्रेम सुख-आलय।
सदा-सर्वदाको मिट जाये मायामय दुःखालय॥
तुमसे होता नही अमङ्गल कभी किसीका, प्यारे!
करते नित मङ्गल........................॥

भोक्ता-भोग्य-भोग—सब कुछ ही यहाँ बने हो तुम ही।
खेल-खिलौना बने............खेलते तुम ही॥
कभी...........सब बन स्वयं नाचते-गाते।
कभी व्याधि.....दुख-शोक-मोह सज पड़े सिसकते॥

लीलामय! तुम नित मनमानी लीला करते रहते।
... ... ॥
क्यो वैसी रचना करते हो, मजा तुम्हे क्या आता।
होता कोई......तो इसे समझ कुछ पाता॥

× × ×

१३ मार्चको रात्रिमे श्रीभाईजी डा० चक्रवर्तीसे बोले—'आप जो कर रहे है, वह भगवान्‌की सेवा कर रहे है और भगवान्‌की सेवा करनेवालेको भगवान् ही मिलते है।' इसके पश्चात् परिवारवालो, स्वजनो एव मित्रोके प्यारकी चर्चा करते हुए वे बोले—'श्रीगोस्वामीजी (चिम्मनलालजी) जबसे आये है, तबसे सर्वथा मेरे अनुकूल रहकर सब काम कर रहे है। बाबा (स्वामी चक्रधरजी)के सम्बन्धमे मै क्या कहूँ, वे मेरे भक्त है, मै उनका भक्त हूँ।' अपने जीवनके सम्बन्धमे उन्होने उन्ही बातोको दोहराया, जो ७ मार्चको उन्होने कही थी। अन्तमे बोले—'जिन-जिनको मैने भगवद्धाम-प्राप्तिका आश्वासन दिया है, उन्हे निश्चितरूपसे उसकी प्राप्ति हो जायगी, उन्हे विश्वास रखना चाहिये।' उस दिन उनके कहनेमे सबको ऐसा लगा, जैसे वे सबसे बिदाई ले रहे हो। उनकी बाते सुननेपर सभीके नेत्र बरस पडे। वातावरण अत्यन्त गम्भीर हो गया। पर क्या उपाय था?

१४ मार्चको सायकालसे शरीरकी स्थिति गम्भीर होने लगी। रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) बहुत कम हो गया, नाडी रुक-रुककर चलने लगी, हृदयकी ध्वनिमे परिवर्तन आ गया, श्वासकी गतिमे विकार आ गया। डाक्टर-वैद्योकी रायमे श्रीभाईजीके लिये प्रभातका दर्शन कठिन था, पर इस गम्भीर स्थितिमे भी श्रीभाईजी निश्चिन्त थे, शान्त-सुस्थिर थे।

रात्रिमे साढे बारह बजे जब डाक्टर चक्रवर्ती उनकी नाडी अनुभव करनेकी असफल चेष्टा कर रहे थे, श्रीभाईजीने बहुत ही मन्द स्वरमे धीरेसे कहा—'विचार-शक्ति बिल्कुल ठीक है, स्मरण-शक्ति कभी ठीक रहती है, कभी नही। मुँहसे बोला नही जाता।' इतना कहकर उन्होने अपने कॉपते हुए दाहिने हाथको धीरेसे ऊपर किया और डाक्टर साहबसे इशारेसे पूछा—'आपने भोजन किया कि नही?' जहाँ घडी-पल गिने जा रहे थे, वहाँ श्रीभाईजीको डाक्टर साहबके भोजनकी चिन्ता बनी थी! यह है उनकी वास्तविक स्थितिकी एक झलक।

भगवान्के विधानसे शरीरको अभी एक सप्ताह और रहना था। दूसरे दिन प्रातःकाल स्थितिमें सुधार हो गया। नाडी पुनः अपने स्थानपर आ गयी, श्वासकी गति स्वाभाविक हो गयी, पर यह स्थिति २४ घंटे बाद पुनः परिवर्तित होने लगी। २-३ दिन बाद तो कई भीषण उपद्रव बढ गये, पर शरीरकी उस सर्वथा लाचारीकी अवस्थामें तथा भीषण कष्टमें भी श्रीभाईजीके मुखपर, आँखोंमें वही प्रसन्नता, वही गम्भीरता, वही स्थिरता, वही निश्चिन्तता, वही प्यार झलक रहा था। उनकी विचारशक्ति पूर्णरूपमें ठीक थी तथा वे अपने मनको अपने इष्टमें स्थिर किये हुए थे। जब पीडा अधिक होती, तब उनके मुखसे 'राम-राम' या 'नारायण-नारायण' नामका उच्चारण होता था। श्रीभाईजीकी श्रीभगवान्के नामपर सबसे अधिक निष्ठा थी। एक बार उन्होंने ऋषिकेशके सत्सङ्गमें कहा था—'मैं भगवान्के नामके जपपर जोर क्यों देता हूँ ? इसका कारण यही है कि मैंने जीवनभर यही किया है। जो कुछ भी अच्छी बात जीवनमें आयी है, वह नाम-जप एवं भगवत्कृपाके प्रतापसे। पारमार्थिक जीवनका प्रारम्भ नाम-जपसे हुआ और जीवनमें साधना भी इसीकी हुई। मैं नाम-महिमाको अर्थवाद नहीं मानता। मैंने नाम-जपसे बहुत-बहुत बडे कार्य सफल होते देखे हैं और स्वयं मेरे जीवनमें हुए हैं। नामकी जो महिमा कही जाती है, वह सत्य है और अनुभवकी वस्तु है। अतः इसे बलपूर्वक कहनेमें कोई संकोच नहीं।'

श्रीभगवन्नामकी इस निष्ठाका वे अन्तिम श्वासतक निर्वाह करते रहे। २० मार्चकी रात्रिकी बात है—श्रीभाईजीके नीचेके होठ हिल रहे थे, मानो उनमें कम्पन हो रहा हो। डा० चक्रवर्ती महोदयके मनमें आया कि मुँहमें दाँत न होनेके कारण होठ काँप रहा है। यदि इस प्रकार बराबर होठमें कम्पन होता रहा तो दुर्बलता बढती जायगी। वे श्रीभाईजीके समीप बैठकर बोले—'भाईजी ! आपका होठ काँप रहा है, दाँत लगा दिये जायँ, जिससे काँपना बंद हो जाय। कम्पन दुर्बलता बढायेगा।' डा० साहबकी प्यारभरी सलाहसे श्रीभाईजीका हृदय भर आया और उन्होंने अपनी वास्तविक बात उन्हें बतला दी। बोले—'जप करछि—जप कर रहा हूँ।' यह उस समयकी बात है, जब कि उनके शरीरका प्रत्येक कोष (Cell) पानीकी एक-एक बूँदके लिये तरस रहा था, मुँहमें '*थ्रश*' ('Thrush'—एक रोग-विशेष, जिसमें जीभ, मसूढों एवं गलेमें घाव हो जाते हैं, उनपर सफेद पापडी आ जाती है)के कारण ड्रॉपरसे बूँद-बूँद करके पानी जीभपर डाला जा रहा था और उसके ६ दिन पहलेसे नसद्वारा ग्लूकोज आदि नहीं जा पा रहा था—अर्थात् ट्रांस्फ्यूजन (Transfusion) भी बंद था।

विधिका विधान ! २१ तारीखके दोपहरमें कलाईके समीपसे नाडी लुप्त हो गयी, रक्तचाप बहुत कम हो गया, श्वास-कष्ट बढ गया तथा पेटमें भीषण दर्दका दौरा आ गया। इंजेक्शन दिये गये, पर दर्द कम नहीं हुआ। धीरे-धीरे नाडीने कोहनीका स्थान भी छोड दिया, पर श्रीभाईजीकी विचार-शक्ति वैसी ही बनी हुई थी। सभी डाक्टर-वैद्य आश्चर्यचकित थे। रात्रिमें लगभग ११ बजे (अर्थात् शरीर छूटनेके ९ घंटे पूर्व) जब डाक्टर चक्रवर्ती एवं डाक्टर शर्मा महोदय श्रीभाईजीको देख रहे थे, तब श्रीभाईजीने साहस करके अपना दाहिना हाथ काँपते-काँपते थोडा-सा उठाया और इशारा करके पूछा—'आपलोगोंने भोजन किया है कि नहीं ?' श्रीभाईजीकी इस प्यारभरी सँभालने डाक्टरोंके हृदयको मथ दिया और उनके नेत्रोंसे आँसू बरस पडे। आज भी जब डाक्टर महानुभाव इस प्रसङ्गको स्मरण करते हैं, तब वे अधीर हो जाते हैं।

जैसे-तैसे २२ तारीखका प्रातःकाल हुआ। सब घरवालोंने अनुभव किया, अब शरीरके अवसानका समय आ पहुँचा है। उन्होंने श्रीभाईजीसे बडे ही दैन्य एवं करुणभावसे प्रार्थना की। श्रीभाईजी शान्तचित्तसे सबकी प्रार्थना सुनते रहे और अन्तमें उन्होंने अपने काँपते हुए दोनों हाथ उठाये और उन्हें मिला लिया—सबसे विदाई ले ली ! इससे ठीक दस मिनट पश्चात् एक हिचकी आयी, मुँहसे रक्तका एक कुल्ला निकला और श्रीभाईजी चिरनिद्रामें सो गये भगवान्की नित्यलीलामें लीन हो गये। उनका दाहिना हाथ आशीर्वादकी मुद्रामें ऊपर उठा हुआ था तथा नेत्रोंमें वही प्यार, वही वात्सल्य, वही करुणा भरी थी। ऐसा लगता था—जाते-जाते वे सबपर अपने आशीर्वाद एवं प्यारकी वर्षा कर रहे हैं।
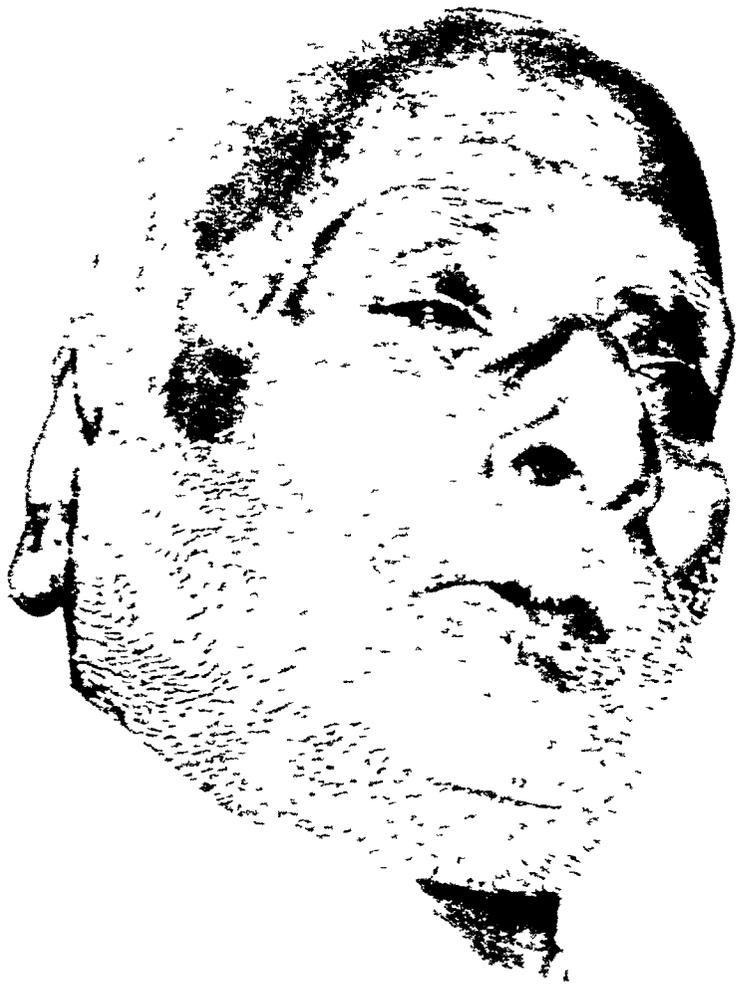
विखण्डित वीणा—रोता रव

श्रीमती राधादेवी भालोटिया

[श्रीतुलसीदासजीने संतोके विषयमे कहा है—'बिछुरत एक प्रान हर लेही।' सचमुच संत अपने महाप्रयाणकालमे अपने स्वजन-स्नेही-आत्मीयजनोको कल्पनातीत दुःख-महार्णवमे निमग्न करके इस लोकसे बिदा होते है। वे स्वयं तो सुख-दु.खसे अतीत होते है—कुसुमाधिक कोमलता एवं वज्राधिक कठोरता युगपत् उनके हृदयमे विद्यमान रहती है, पर जिनसे वे अकारण स्नेह पालते है—अहर्निश सीचकर जिनकी स्नेहवल्लीको पल्लवित, पुष्पित एवं फल-समन्वित करते है, उन्हें अचानक ही अदर्शन-तापसे जलाने-झुलसानेमे तनिक भी नही सकुचाते। अयोध्यावासी नर-नारियोको जो महाशोक भगवान् श्रीरामके वनगमनके समय अनुभव हुआ था, व्रजवासी गोप-गोपाङ्गनाओको जो विरह-वेदना भगवान् श्रीकृष्णके मथुरा-गमन-कालमे सहन करनी पड़ी, वैसी ही वियोग-व्यथाका अपने आत्मीय स्वजन-स्नेहियोको अनुभव करानेके लिये श्रीभाईजीकी महाप्रयाण-लीला सम्पन्न हुई। उस व्यथा-महार्णवके कुछ सीकरमात्र लेखनीद्वारा पत्रोके कलेवरमे चित्रित किये जा सकते है। 'विखण्डित वीणा—रोता रव'की पंक्तियाँ' सचमुच बहती हुई अविरल अश्रुधाराके प्रवाहके साथ-साथ ही लिखी गयी है। श्रीभाईजीके महाप्रयाणकालमे स्वजनोके हृदयोमे जो घनीभूत पीड़ा उत्पन्न हुई थी, उसका एक धूमिल-सा चित्र, आशा है, पाठकोको भी इन पंक्तियोमे उपलब्ध होगा।]

नानाजी हमको छोडकर चले गये ! सदा-सर्वदाके लिये हमे अनाथ करके, हम अभागोको बिलखता छोडकर नानाजी चले गये, चले गये नानाजी !! नानाजी हमको छोडकर चले गये !!! आँसू इस व्यथाका अनुमान नही लगा सकते। क्रन्दन आज शान्ति नही दे सकता।

वस्तुत शरीरमे प्राणकी अनुभूति ही अश्रु और क्रन्दनका सचार करती है। हमारे प्राणोकी आधारशिला तो थे हमारे नानाजी और आज जब वे ही नि स्पन्द, निश्चेष्ट होकर धरित्रीकी गोदमे लेटे है, तब हमारे प्राणोमे स्पन्दनका सृजन कौन करेगा ? कहाँसे गति आयेगी प्राणरहित देहमे ? पर हाय रे, हमारे निर्लज्ज प्राण स्पन्दनहीन नही हो सके—हम सबके नेत्रोमे अश्रु शृङ्खलाबद्ध होकर ऐसे टपक रहे है, मानो सम्पूर्ण व्यथाको बहा डालनेके लिये कृतप्रतिज्ञ हो। हृदयका हाहाकार चीत्कारमे परिणत हो गया है—कही हृदय फट न पडे, इस आशङ्कासे भीत हो उठा है।

वृक्ष, लता-वल्लरिया भी आज स्तब्ध है, किंतु आजकी स्तब्धतामे तो मानवीय मन-बुद्धिमे भी जडिमाका सचार कर देनेकी क्षमता है। पर नही, हमारे प्राणोमे जडिमाका विस्तार न हो सका।

वाटिकाके करुण क्रन्दनसे आकाश फटने लगा है, करुणाकी एक समवेत धारा फूट पडी है, जिसमे हम मनुष्य ही नही, पशु-पक्षी, कीट-पतग भी, लगता है, आपादमस्तक डूब चुके है। चारो ओर दीख रही है दर-दर बहती अश्रुधारा और सुन पड रहा है—अपना सब-कुछ खो चुकनेवाले अभागोका, सर्वस्व छिने हुए अनाथोका दर्दभरा चीत्कार ! पर कौन पोछे इन आँसुओको ? सान्त्वनाके शब्दोका कोष आज रिक्त जो हो चुका है। इस अनित्य—दुःखालय जगत्मे सुखकी अनुभूति यदि कही भी हुई तो वह नानाजीकी सन्निधिमे। जब वे ही छोड़कर चले गये, तब हाहाकारके अतिरिक्त बचा ही क्या ? अब तो आँसू ही हमारे चिरसङ्गी है और व्यथाका प्राङ्गण ही लीलास्थली है हमारी—नानाजी जो चले गये !

सोमवार, वाइस मार्च, १९७१ (तदनुसार चैत्र कृष्ण दशमी, स० २०२७ वि०)को प्रात सात वजकर पचपन मिनटपर नानाजीने हमको छोड दिया—दृष्टि घुमा ली उन्होने हम भाग्यहीनोकी ओरसे।

गत चार महीनोसे ही नानाजीका स्वास्थ्य ढीला था। तेरह फरवरीको म्यूनोमाइसिनके इजेक्शनकी अनिष्ट प्रतिक्रिया (रिऐक्शन) हो गयी थी और उस दिन भी शारीरिक स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी थी—एक परमादरणीयके शब्द है—'वे मृत्युके विन्दुको छूकर लौटे है।'

उस दिन भी नानाजीकी चेतना लुप्त हो चुकी थी—नाडी अपना स्थान छोड चुकी थी और श्वास मृत्युकालीन ऊर्ध्वश्वासके रूपमे परिणत हो चुके थे। परतु तत्क्षण डाक्टरोकी हाथ-की-हाथ प्राप्त हुई सहायतासे (दो इन्जेक्शनके अनन्तर) नाडी लौट आयी और लगभग पाँच-छ घटेके प्रयाससे वे प्राय ठीक हो गये थे।

महान् अनिष्टकी जो विभीषिका वातावरणमे अभी-अभी व्याप्त हुई थी, वेदना-सहिष्णुताकी जीवन्त प्रतिमा नानाजीको उठकर शौच जाते देखकर समाप्तप्राय हो गयी—अव इनका स्वास्थ्य ठीक है, इस सान्त्वनासे प्रत्येक व्यक्तिका मन उल्लसित हो उठा।

नानाजी महासिद्ध थे—उनपर कर्मजगत्का कोई भी प्रतिवन्ध वास्तवमे नही था। यह अतिशयोक्ति नही होगी कि जीवन-मरण उनके लिये समान अर्थ रखते थे।

मेरी अपनी मान्यता है, कदाचित् हम सवकी सम्मिलित अभिलाषा—उन्हे इस धराधामपर और भी कुछ दिन, मास, वर्ष रखनेकी लालसा सच्चे अर्थमे प्रवलतर, प्रवलतम हो जाती और वही अभिलाषा अपनी गरिमासे उनमे प्रतिविम्वित हो जाती तो वे इस कलेवरमे कुछ दिन, कुछ मास, कुछ वर्ष और भी विराजित रहते। परतु हम निष्ठाहीनोमे सचाई कहाँ ? अतएव नानाजी चले गये। हाँ, परिवार, स्वजन और श्रद्धालुओकी व्यथाका भी उन्हे पूरा-पूरा ठीक-ठीक ज्ञान था, अत उन्होने आँखमिचौनीका खेल प्रारम्भ कर दिया।

इसके अतिरिक्त महासिद्ध सतका जीवन—जीवनका कण-कण दूसरेके पीडा-निवारणके लिये उसकी पीडा-को, भयकर-से-भयकर कर्मजन्य भोगोको किस प्रकार हँसते-हँसते वरण कर लेता है, इसका भी अप्रतिम निदर्शन थे हमारे नानाजी। वे जानते थे, उनसे जुडे प्राणियोमे कुछके अतिरिक्त प्राय सवका जीवन ही वैसा वन ही नही सका, जिससे सभी हँसते-हँसते महाभाव-रससमुद्रमे गोते लगा सके। उनके अपने परिवारके सदस्य भी जगन्नियन्ताकी कसौटीपर खरे नही उतर सकेगे, इसका भी उन्हे ठीक-ठीक भान था। अत समवेत कर्मकी उस अपार राशिमेसे कुछ भीषण कर्मोका चयन उन्होने कर लिया और स्वय उन्हे भोगकर उनका समूल नाश करनेकी एक वृत्ति उनके परदु ख-कातर हृदयमे स्वाभाविक ही जाग्रत् हो उठी।

सतके हृदयका निश्चय और उसका मूर्त होना दो पृथक् वस्तुएँ नही है। किसी एकके अतिरिक्त कोई नहीं जान सका—क्यो उस इन्जेक्शनके वाद भी नानाजी स्वस्थ होनेके वदले वार-वार नयी-नयी व्याधिका उल्लसित हृदयसे आदर कर रहे है। नानाजीके पेटमे निरन्तर दर्द वना रहने लगा। यो तो वर्षोसे वे पूर्ण स्वस्थ नहीं रहते थे। मधुमेह (डायविटीज), रक्तचाप (व्लडप्रेशर), हृद्रोग (हार्ट ट्रवल) आदिके रोगी थे वे। अत निर्वलता—निरन्तर कमजोरीका अनुभव उनके शरीरको होता ही रहता था। पर उस स्थितिमे भी वे प्राय वीस घटे अपना लेखन-सम्पादन आदिका कार्य नियमित करते थे। कभी कोई व्यतिक्रम उन्हे जैसे सुहाता ही न था।

किंतु इस वार तो इस नाटकका पटाक्षेप भिन्न गतिसे होना था—शारीरिक दुर्वलता वढती ही चली गयी, 'कल्याण' आदिका कार्य भी शनै-शनै कम होने लगा, प्राय लेटे ही रहने लगे नानाजी।

तथापि कोई इसकी गन्धतक न पा सका कि वस्तुत कारण क्या है। दवा निरन्तर चल रही थी, लेकिन कोई लाभ नही हो पाता था।

गोरखपुरके सभी गण्य-मान्य डाक्टर उनके परिवारके सदस्य-से थे। डाक्टर उन्हे सम्बोधित भी करते थे—'वावूजी' अथवा 'भाईजी' कहकर ही—और विश्वबन्धु नानाजीके स्नेहपूरित नेत्र भी उन्हे सदा पुत्र या अनुजके रूपमे ही देखते थे। अत सम्पूर्ण डाक्टरोकी प्रतिभाका सम्मिलितरूपसे—साथ ही पारस्परिक विचारके सहित—उनके रोग-निवारणके लिये उपयोग होने लगा। उनके आरोग्य-लाभके लिये सवका हृदय वेदनासे मथित होने लगा। वावूजी आरोग्य-लाभ नही कर रहे है—कोई भी कर दे, कैसे भी कर दे—मेरे वावूजीको स्वस्थ कर दे—मेरे भाईजी स्वस्थ हो जायँ—इस भावनासे भावित होकर पूरे डाक्टरोके समुदायने नानाजी से प्रार्थना की—'आप बाहरसे किसी सुयोग्य, अनुभवी वडे डाक्टरको बुलाकर परामर्श अवश्य ले—यह हमारी इच्छा है, हमारी रुचि है।'

नानाजीके लिये इस आग्रहका कोई खास अर्थ नही था। वे जानते थे—मङ्गलमयका प्रत्येक विधान मङ्गलमय होता है। औषध भी लाभ-हानि तभी करती है, जब विश्वनियन्ताका विधान तदनुरूप होता है। साथ ही जगत्के धरातलपर अवश्य ही उनकी पार्थिव देह पञ्चतत्वोसे निर्मित थी, परतु वस्तुत तो वहाँ 'कृष्णतत्व'के अतिरिक्त कुछ था ही नही। फिर उनके लिये कहाँ स्थान था इन सब वातोका ?

तथापि दूसरेको तनिक-सी भी प्रसन्नताका जिसमे भान हो, उस वातका अनुमोदन—उसका आदर उनका नित्य स्वभाव था।

लखनऊ, दिल्ली, वाराणसी, कानपुर आदिसे कई वडे मान्य 'सर्जन' और 'फिजीशयन' आये और सबने अपनी-अपनी राय निस्सकोचरूपसे दी। पर उनकी रायका उपयोग नही किया जा सका, क्योकि निदानात्मक ऑपरेशन भी सवकी दृष्टिमे ही परिणामत अत्यन्त भयावह प्रतीत हो रहा था।

शरीर पीडाका अनुभव करता था—यदा-कदा कुछ कराहकी-सी ध्वनि भी मुखसे निस्सृत होती थी। परतु जब डाक्टरोकी टोली कमरेमे प्रवेश करती, नानाजीकी स्वाभाविक मुस्कान उनके होठोपर आ जाती थी। उन्हे तो सभी आनेवालोको अपनी स्नेह-सुधासे सिञ्चितकर भगवान्‌के नेह-नगरकी डगरपर चला देना ही मात्र अभीष्ट था। प्रभु-प्रेरित वे आते भी थे अपने किसी पूर्व-सुकृतके फलस्वरूप इस दिशाकी ओर देर-सवेर बढनेके लिये ही। इसे डाक्टर तो नही समझ पाते, परतु इस प्रकार मृत्युकी विभीषिकाका सहर्ष स्वागत करनेवाला, इस भीषण कष्टकी स्थितिमे भी मुस्कानेवाला, आनेवालेकी सुख-सुविधाका ध्यान रखनेवाला रोगी आजतक तो नही मिल सका था उन्हे और—यह आश्चर्यजनक स्थिति सहज ही एक विचित्र आदर-बुद्धिका उन्मेष कर देती थी आनेवालेके मनमे। वे नही जानते थे कि—

'देख दु खका वेष धरे मै नही डरूँगा तुमसे, नाथ !
जहाँ दु.ख वहाँ देख तुम्हे मै पकडूँगा जोरोके साथ ॥'

× ×

'तुम्हरे बिना नही कुछ भी जब, तब फिर मै किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ ॥'

—ये पक्तियाँ कवि-कल्पना नही थी, अपितु नानाजीके जीवनका कण-कण उस साँचेमे ढला हुआ था।

डाक्टरोके आनेका क्रम चलता रहा, और प्रत्येक डाक्टर ही आप्यायित-सा होकर लौटता रहा। परतु नानाजीके स्वास्थ्यमे सुधार नही आया। निदानरूपसे पेट खोलकर देखनेमे कई अडचने थी। एक अडचन यह थी कि नानाजी मधुमेह (डायविटीज)के रोगी थे, अत रक्तमे चीनीका अनुपात कम करनेके लिये 'इन्सुलिन' देना आवश्यक था और 'इन्सुलिन'मे सम्भवत गायके उदरका कोई रस-विशेष डाला जाता है। नानाजीने कडे शब्दोमे घोर विरोध कर दिया—'मै मर भले ही जाऊँगा, परतु इस औषधका प्रयोग नही करूँगा।' एक और माननीय व्यक्ति भी इसके कट्टर समर्थक थे—ऐसी दशामे कोई भी डाक्टर साहस ही नही बटोर सके, विना

इन्सुलिनके ऑपरेशन करनेका। और वस्तुत तो नानाजी और वे मान्य व्यक्ति—दोनो ही ऑपरेशनके सर्वथा विपक्षमे थे, क्योकि भविष्यका चित्र उनके सामने स्पष्ट था और किसी भी डाक्टरको नानाजी-जैसे सार्वभौम व्यक्तिके उपचारमे असफल होनेके कारण लाञ्छित होना पडे, यह तो उन्हे कदापि सह्य था ही नही। अस्तु,

नानाजीके स्वास्थ्यकी स्थिति शनै-शनै बिगडती ही चली गयी । भोजन आदि तो दूर, फल-रस आदि भी सर्वथा वद हो गये। आगे चलकर शरीर-रक्षाके लिये दो तीन आउस जल भी चौबीस घटेमे वे नही ले पाते थे।

सम्पूर्ण शरीरमे भयकर दाह उत्पन्न हो गया था। गलेमे भीषण जलन थी—जलके स्पर्शसे भी जलन बढ जाती थी। इस कारणसे प्यासकी आत्यन्तिक अनुभूति निरन्तर बनी रहनेपर भी वे जलतक नही पी पाते थे। परतु उस कष्टकी स्थितिमे भी उनके अन्तस्तलमे अखण्ड शान्ति विराजित थी। क्यो न हो—इस प्रपञ्च-राज्यमे शान्ति-सुखका आभास भी जिन सुख-सागर, अखण्ड शान्तिके आगार, सुखकद श्रीकृष्णचन्द्रके प्रतिबिम्बकी छायाकी छाया मात्र है—वे स्वय नानाजीके अस्तित्वके अन्तरालमे नित्य अभिव्यक्त थे।

अपनेसे मिलने आनेवालोका वे दोनो हाथ जोडकर अभिवादन करते तनिक-सा भी शारीरिक कष्ट अपेक्षाकृत कम रहनेकी स्थितिमे उनसे कुशल-प्रश्न करते—उनके भोजनादिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमे परिवारके सदस्योको प्रेरणा देते । स्नेहका, दूसरेके सुख-सयोजनका ऐसा निदर्शन जगत्मे कहाँ मिलेगा ?

जो हो, स्वाभाविक करुणावश स्वीकृत की हुई अन्यकी कर्मराशिके परिणाम-स्वरूप नानाजीने जगत्की सबसे भीषण अचिकित्स्य व्याधि कैन्सरको वरण किया था । परतु वह भी ठीक-ठीक प्रमाणित न हो सके, घरवाले स्वजनोका मानसिक सतुलन अस्त-व्यस्त न हो उठे—इस ओर भी उन्होने ध्यान रक्खा। उक्त रोगके अधिकाश लक्षण तब प्रगट होने लगे—जब उनका शरीर सर्वथा अशक्त हो चुका था—और एक विशेष परीक्षण (बायप्सी) के लिये भी, जिससे कैन्सरका असदिग्ध निर्णय हो सके, अवकाश नही रह गया था।

छ मार्चको दिनके लगभग बारह बजेसे पेटमे असह्य पीडा आरम्भ हो गयी। वे चाहते तो इसे भी अप्रकट रख सकते थे, परतु अब तो दृश्य-परिवर्तनका समय आ चुका था। वेदना सह्यताकी सीमाका अतिक्रमण कर चुकी थी—नानाजीके मुखसे भी कराहनेकी-सी आवाज आने लगी। पर उस समय भी वे बार-बार 'नारायण, हे राम' आदि भगवान्के मङ्गलमय नामोका ही उच्चारण कर रहे थे।

कुछ देर बाद रक्तमिश्रित वमन प्रारम्भ हो गया। दो-दो, तीन-तीन मिनटके अन्तरसे उल्टियाँ होने लगी और उनमे पर्याप्त रक्त बाहर आने लगा।

परिवारके, स्वजनोके प्राण रो उठे—कण-कणमे व्यथाकी भीषण तरगे उठने लगी—हे करुणावरुणालय ! अशरणशरण ! हमारे भाईजी, हमारे बाबूजी, नानाजीको स्वस्थ कर दो—मनकी सचाई लेकर सब नत-मस्तक थे सर्वसमर्थ प्रभुके सामने । अब तो मात्र वे ही अवलम्बन थे।

नानाजीने उस गम्भीर स्थितिमे परिवारके सदस्योको एकत्रितकर उन्हे आश्वासन दिया, समझाया, न रोनेके लिये कहा। परतु स्थितिका गाम्भीर्य धैर्यके बाँधको तोड चुका था।

'बाई' (माँ)का हृदय फटने लगा—नानाजीने भी जीवनमे बाईकी रुचिका सदा अनुमोदन किया था—'उन स्नेहशील पिताकी स्नेहकी छत्र-छायासे विरहित मै न हो जाऊँ', इस कल्पनामात्रसे बाईके प्राण रो रहे थे।

श्रीराधामाधवकी नित्य-क्रीडा-स्थली, समर्थ पिताके हृद्देशपर अपना सिर रखकर बाई बिलख उठी—'बाबूजी ! मै आपकी बेटी हूँ, पिता अपनी कन्याको सदा-सर्वदा देता ही रहता है, फिर मेरे तो आधार ही केवल आप है। आप-सा समर्थ दाता पिता क्या किसीका होगा ? बाबूजी ! मैं झोली फैलाकर आपसे भीख माँगती हूँ—आपमे आपको माँगती हूँ । आप ठीक हो जाइये मुझे निराश न करिये। यदि आप ही नहीं देगे तो मुझे देनेवाला इस जगत्मे और कौन है । बाबूजी ! आपने ससार बसाया था मेरे लिये '
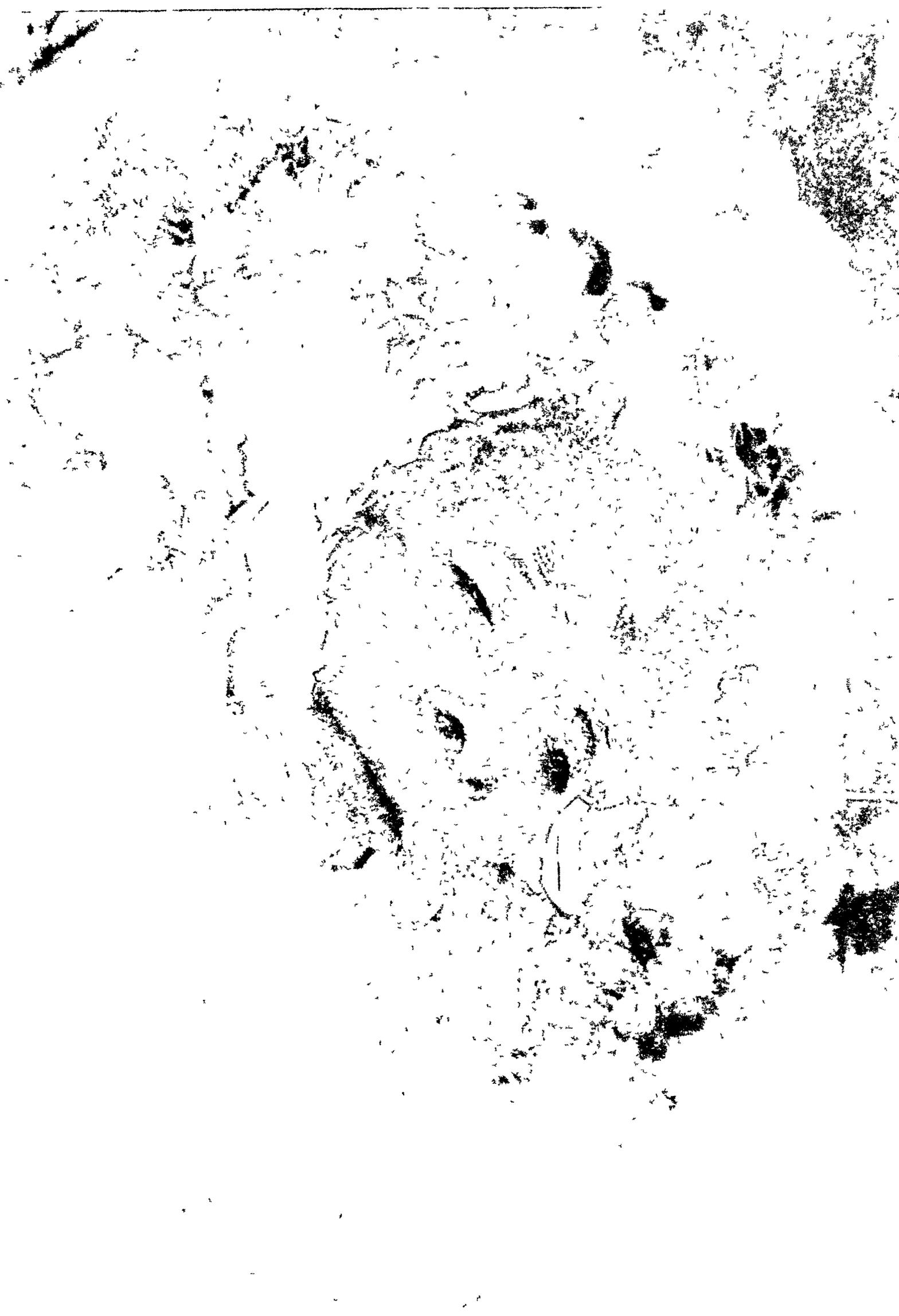
इस उपवनको सीचा था मेरे लिये। इसे आप ध्वस्त न करे आप सब कुछ मेरे लिये करते रहे है—बाबूजी! इस बार भी मेरे लिये आप अपनेको रख लीजिये। मै अनाथ हो जाऊँगी आपके अतिरिक्त मेरे जीवनमे सुखका सृजन कौन करेगा? बाबूजी बाबूजी बाबूजी ।' आँखोसे आँसूकी झडी लग गयी . कण्ठ रुद्ध हो गया ।

वीतराग पिताके नयन-कगारोसे भी स्नेह-करुणाकी दो बूँदे ढलक पडी। वे जानते थे, जाना अनिवार्य है, तथापि रोती हुई अपनी लाडिली बेटीके सिरपर हाथ रखकर बोल पडे नानाजी—'बेटी! मै चेष्टा करूँगा, मैं चेष्टा करूँगा। तुमलोग चुप हो जाओ।'

नानाजी प्रयत्न करेगे—तब तो असम्भव भी सम्भव हो सकता है, मृत्यु क्या छू सकेगी इन्हे! मनके इस अडिग विश्वासके कारण सहज ही मनमे धीरज आ गया और बाबूजी अब ठीक हो जायेगे, इस विश्वासने बाईके आँसू भी पोछ दिये। और लगभग एक घटेके बाद रक्तके स्थानपर सफेद कफ आने लगा तथा फिर उल्टी भी बद हो गयी। यश अवश्य मिल गया किसी औषधको।

स्वय भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन और नानाजी—दो पृथक् अस्तित्व तो रखते थे नही। नानाजीने कौशलका आवरण देकर सत्यका भी पूर्ण आदर करते हुए घरवालोको उपर्युक्त बात कही थी। वास्तवमे यह आश्वासन नही था। 'चेष्टा करूँगा' यह उक्ति मायाके अन्तरालसे हम सबको आवृत कर गयी थी। नानाजी इस वार इस आँखमिचौनीमे भी सफल हो गये और हमारे क्रन्दनमे पुन शैथिल्य आ गया।

दूसरे दिन पुन वमन हुआ फिर कुछ घटोके बाद ठीक हो गया। परीक्षणसे ज्ञात हुआ—उसमे कुछ रक्त भी था, परतु पित्तकी अधिकता थी। यह उनके खेलकी दूसरी कडी थी।

एक औरको आगेकी घटनाओका पता था। उनके सकेतके अनुसार कलकत्तासे 'ऑक्सीजन-सिलिन्डर' खरीदवा-कर मँगवा लिया गया था । गोरखपुरमे भाडेपर एक सिलिन्डर प्राप्त हो सकता था, किंतु अपनी चीज हो तो ठीक रहे—न जाने अविरामरूपसे उसके प्रयोगकी कब आवश्यकता पड जाय, अत उसकी स्वतन्त्र व्यवस्था कर दी गयी थी।

नानाजीकी शारीरिक दुर्बलता अत्यधिक बढ चुकी थी। दस मार्चतक तो वे विस्तरसे उठकर शौचालयमे शौच जाते रहे, परतु इस श्रमको शरीर अब सहन नही कर पाता था। ग्यारह मार्चके दिन उन्हे तीन-चार दस्त लगे और तब सभी घरवालोके अत्यधिक आग्रह करनेपर उन्होने कमरेमे शौच जानेकी स्वीकृति दी। कमरेमे ही कमोडपर वे दो-एक बार उठकर बैठे, परतु वह शक्ति भी क्रमश क्षीण-क्षीणतर होती चली गयी और अन्तमे उन्होने 'बेड-पैन' लेना स्वीकार किया। किंतु वह सेवा भी वे घरके कतिपय सदस्योके अतिरिक्त किसीसे नही लेते थे।

बारह तारीखको रात्रिमे हठात् उनके पेटमे पुन असह्य पीडा आरम्भ हो गयी—कई इन्जेक्शन आदि दिये गये। उन्हे लाभ हुआ या नहीं—यह तो अन्तर्यामी जाने, पर 'घरवाले, बाबा, डाक्टर—सब इस समय-तक मेरे कारण जग रहे है, उन्हे कष्ट हो रहा है'—इस प्यारकी भावनासे अभिभूत होकर वे शान्त होकर लेट गये। परिवारके लोग पुन व्यामोहमे फँस गये—अपना समाधान कर लिया—'अब शायद पीडा उपशम-की ओर है।'

रजनी बीती, प्रात आया—स्वास्थ्य वैसा ही था। दिनमे ग्यारह-बारह बजे उन्होने एक बार उठकर बैठनेकी इच्छा प्रकट की। सहारा देकर—तकिया-मसनद आदि लगाकर उन्हे बैठाया गया। किंतु उतने श्रमसे ही उनकी नाडी अत्यधिक अस्त-व्यस्त हो गयी। स्वास लेनेमे कष्टका अनुभव होने लगा। तुरत ऑक्सीजनका प्रयोग आरम्भ हुआ। आजकी स्थिति अन्य दिनोकी अपेक्षा अधिक गम्भीर थी। नानाजीकी अद्भुत सहिष्णुताका, निरुपम धैर्यका प्रतिबिम्ब नानीपर भी है, परतु आज उसकी धीरता भी उसे छोड गयी। अन्तरका दुख बाहर व्यक्त हो उठा—बिलख उठी वह—'अब क्या होगा?'

आधे घटेके बाद स्थिति पुन ठीक हो गयी—निराशाके घने अन्धकारमे फिर आशाकी क्षीण-क्षीणतर किरण चमक उठी , पर यह सब भ्रमजाल मात्र था, मायाका पर्दा था, नानाजीके प्रयाणकी पूर्व-भूमिका थी, जिमे कोई भी अन्ततक समझ ही नही पाया।

नानाजीकी शारीरिक पीडा हम सबोके हृदयको मथे डालती थी, प्राणोमे आकुलता—वेदनाका सृजन कर रही थी, फिर भी मनमे यही विश्वास बना हुआ था—'नानाजी अवश्य ठीक हो जायेगे।'

रात्रिमे पुन नानाजीने घरके सभी सदस्योको एकत्रितकर अपने स्नेहिल आदेशोकी पुनरावृत्ति की।

इससे पूर्व नानाजी अपनेसे सम्बद्ध सभी आर्थिक हिसाब-किताबोका निपटारा कर चुके थे। घरके प्रबन्धक, सचालक, कर्ता भी वे ही थे। उनके सामने हम सभी अबोध शिशुकी भाँति चिन्ताशून्य रहते थे। आज नानाजीने वह सारा घरका भार भी बाबूजीको सँभला दिया हमारा वज्र-निर्मित हृदय उस समय भी नही फटा, जब अपने इन जागतिक सम्पूर्ण उत्तरदायित्वको नानाजी दूसरेके कधेपर डाल रहे थे। लगभग पैंतीस सस्थाएँ नानाजीके सरक्षणमे चलती थीं। यद्यपि उनमेसे कई सस्थाओमे तो नानाजीने नाम मात्रके लिये ही पद ग्रहण कर रखा था, तथापि सबका सचालन होता था उनके अमोघ आशीर्वाद और महती कृपाके अन्तरालसे ही। इन सबसे भी—एक-दोके अतिरिक्त—कुछ समय पूर्व ही वे सम्बन्ध-विच्छेद कर चुके थे।

वातावरण क्रन्दनके कोलाहलसे प्रतिनादित हो उठा। सबके हृदय फटने लगे, प्राणोमे हाहाकार उत्पन्न हो गया। नानाजी नही रहेगे—यह कल्पना ही मानो प्राण-हरण करनेवाली-सी सिद्ध होने लगी। घरवाले नानाजीकी शय्याको चारो ओरसे घेरकर रो रहे थे—अपने दुर्भाग्यको। बाहर राशि-राशि जनसमूह **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की जीवन्त प्रतिमाके शरीरकी यह स्थिति देखकर आँसू बहा रहा था।

वाटिकाके कोने-कोनेमे आर्तनाद व्याप्त हो गया । नानाजीने मानो सोचा—अभी समय उपयुक्त नही। पुन कुछ सुधारकी भ्रान्ति होने लगी हमे। नानाजीके जीवनकी आशा, हमलोगोके बीच बने रहनेका आश्वासन—इसके मिथ्या आवरणने पुन भ्रमका सृजन किया।

जगत्के धरातलपर औषध-विज्ञान जहाँतक सहायता कर सकता है, वहाँतक उन सभी उपकरणोका पूरा-पूरा ध्यान रखा गया। कदाचित् रक्तकी अत्यधिक अल्पताके कारण बाहरसे रक्त-सचारकी आवश्यकता किसी क्षण हो जाय—इस सम्भावनासे बहुत-से व्यक्तियोका रक्त-परीक्षण भी करवा लिया गया था। रक्त-परीक्षक डाक्टर चकित देख रहा था—झुड-के-झुड लोग प्राणोका उल्लास लिये चले आ रहे थे। प्रत्येककी अभिलाषा यही थी—मेरे रक्तका कण-कण भी उन स्नेहमूर्तिकी सेवामे लग जाय तो मेरा जीवन-धारण धन्य हो जाय—मेरे साँस लेनेका अप्रतिम-सुन्दर विनियोग हो जाय।

कुछ व्यक्तियोका रक्त नानाजीके समान श्रेणी (Group)का पाया गया और जिनका रक्त उस श्रेणीका नहीं मिला, उनमे जो अन्तर्दाह जग उठा, उसे चित्रित नही किया जा सकता।

किंतु नानाजीके लिये यह सम्भव कहाँ कि अपनी प्राण-रक्षाके लिये ऐसे आधुनिक उपचारका आश्रय वे ले सके और इसीलिये वह अवसर ही नही आया। हाँ, इस अभिलाषासे रक्तका परीक्षण करानेवालोका उल्लास और एकका रक्त-सचय—उन सबके जीवनके लिये परम शुभ अदृष्टका निर्माण कर ही गया। इस प्रकार मङ्गल-सृजनकी प्रच्छन्न शैली भी उनके जीवनके अन्ततक साथ रही।

कुछ भी आहार शरीरमे न जा सकनेके कारण उन्हे 'ग्लूकोज ड्रिप' दिया जाता था—उससे लाभ होता था या नही—यह प्रश्न दूसरा है, किंतु नानाजी उसका प्राय विरोध नही करते—सबका मन रखनेके लिये ही।

चौदह तारीखके प्रात तीन बार प्रयास किया गया नसमे सूई डालनेका, पर चेष्टा सफल न हुई और इस प्रकार उस दिन ड्रिप नही दिया जा सका। परतु इसके अन्तरालमे भी नानाजीकी कृपा ही व्यक्त हुई। उस दिन स्वास्थ्य फिर बिगडना जो था। यदि ग्लूकोज चढ गया होता तो उस अस्वस्थतामे हेतु माना जाता यह ग्लूकोज ही, अकारण चिकित्सकवर्ग भी अयशका पात्र बन जाता। सबको बचा लिया नानाजीने इसमे।

दोपहरमे नानाजीके स्वास्थ्यने पुन गम्भीर रूप धारण कर लिया। डाक्टर-वैद्य सर्वथा निराश हो गये—औषध बद-सी हो गयी। नाडीका स्पन्दन कुछ सख्याओके बाद क्षणिक विरमित हो जाने लगा—तथा अन्यान्य

लक्षण भी पर्याप्त चिन्ताजनक बन गये । डाक्टर-वैद्योके अनुसार कुछ प्रहरोके ही मेहमान मान लिये गये थे मेरे नानाजी ।

उनकी यह दशा देखकर हम सबके मनकी क्या स्थिति हुई, इसे लेखनी अङ्कित नही कर सकती । इस महादु खकी काली घटामे आशाकी एकमात्र रश्मि थे एक कोई । परिवारके सभी सदस्योने जाकर उन्हे घेर लिया । रोते-रोते हिचकियाँ बँध गयी सबकी, और वे भी विवश-से हुए, अश्रुपूरित नेत्रोसे देखते रहे हम सबकी ओर । हमारी माँग थी—'नानाजीका वरद हस्त हमारे सिरपर बना रहे ।' और इस माँगकी पूर्ति ही हमे अभीप्ट थी । किंतु

कैसे हुआ, क्या हुआ, इसे कहना बनता नही, परतु कुछ हुआ अवश्य । उससे पहले नानाजीके पास भी हम भिखारियोका दल रो-रोकर अपनी माँग रख चुका था और करुणाके रससे सिक्त एक लहरी उनके मनमे भी सम्भवत उत्थित हो चुकी थी । जो हो करुणाने आज फिर पासा पलट दिया ।

रात शान्तिसे बीत गयी और प्रात काल नानाजी और दिनोकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ-से प्रतीत हुए । यह हम सबोके भ्रमसे आवृत होनेका तीसरा प्रसङ्ग था । वे जानते थे—'जाना है', किंतु उनके जीवनकालमे हम अभागोको अवसर भी नही मिल सका खुलकर रोनेका ।

नानाजीके सम्पूर्ण अङ्गोमे असह्य प्रदाह तो ज्यो-का-त्यो बना हुआ था ही, बर्फसे स्पृष्ट हाथोका स्पर्श उन्हे शीतलताका भान कराता था, पर वे अब भी जल नही पी पाते थे ।

विचित्र-सी स्थिति थी । बाहरसे स्नेहीजनोके टेलीफोन-तार आनेपर उनका ठीक-ठीक उत्तर देना सम्भव नही हो रहा था । आधी घडी कुछ ठीक-सी अवस्था और तुरत उससे विपरीत । इस झूलेपर झूल रहे थे हम सभी और व्यामोहवश मान बैठे थे इसे सुधारकी दिशा,—जब कि यह अवस्था प्रयाणकी भूमिका प्रशस्त करती जा रही थी ।

नानाजीकी वाणी क्रमश मन्द-मन्दतर होती चली जा रही थी । स्पष्ट बोल नही पाते थे वे । इसी बीच मुँहमे 'थ्रश फगस्' नामक नवीन उपद्रव सृप्ट हो गया । सारे मुखमे सफेद झिल्ली-सी एकत्रित हो गयी और उसमे जलन और वेदनाका तो कहना ही क्या था ।

यह तो निश्चित ही है—औषधसे लाभ तभी सम्भव है, जब विधाताका विधान सहयोग करे । उस रोगमे दो-तीन दिनोतक तो कुछ भी लाभ नही हुआ । जैतूनके तेल (Olive oil) से वस्त्रको सिक्तकर मुखके भीतरी अशको पोछ दिया जाता, पर कुछ देरके अन्तरालसे नवीन उजली झिल्ली पुन व्यक्त हो जाती । तिनकेमे रुई लपेटकर कण्ठके भीतरतक झिल्लीके मार्जनका प्रयास हुआ, परतु विशेष लाभकी प्रतीति नही हुई । उधर पेटमे वायुका वेग बढकर भीपण आध्मानका सचार करता ही रहता । वायु-निस्सारणके लिये नलिका (फ्लैटस ट्यूब)का उपयोग किया गया उन्हे आराम पहुँचानेके लिये । दो-दो सौ, ढाई-सौतक बुलबुले देखे गये एक बार तो । तथापि सब उपचार लाभका भ्रम ही सृजन करते रहे । सचमुच कोई लाभ हो नही रहा था ।

एकको अनुभूति हुई—बीस तारीखको प्रात पाँच बजेके लगभग । अप्रतिम मधुस्यन्दी स्वरमे नानाजी उनसे कह रहे है—'जानेका समय हो गया है ।' नानाजीके पार्थिव कलेवरके अन्तरालसे ऐसा म्रदिमा एव रससे पूर्ण स्वर उन्होने इसके पूर्व कभी नही सुना था । किंतु उनका जीवन है— 'तुम्हारी रुचि ही मेरी रुचि है ।' स्वाभाविक ही उनके प्राणोसे यही उत्तर झकृत हो उठा— 'आपको जिसमे अधिक-से-अधिक सुखका अनुभव हो, वही करे ।' इस प्रकार नानाजी अपनी महायात्राकी सुस्पष्ट सूचना भी दे ही गये । यह घटना घटी थी उस क्षण, जब कि दोनोमे देशगत व्यवधान था कम-से-कम साठ-सत्तर गजका ।

अब तो अग्रिम दृश्यकी प्रतीक्षा थी । नानाजीको शारीरिक दृष्टिसे अत्यन्त कप्ट था । उनकी दशाको देखनेपर कलेजा फटने लगता था, परतु स्वयकी दृष्टिसे नानाजी वास्तवमे इन कष्टोसे सर्वथा परे थे ।

बीस तारीखकी रात्रिमे उनसे पूछा गया—'क्या जी घबरा रहा है ?' एक मधुर स्मित उनके मुँहपर आया । बडे प्यारसे बोले—'मेरा तो जी नही घबराता, जी अवश्य घबराता है, पर वह मेरा क्या लेता है । मेरा जी बिल्कुल नही घबराता ।'

सचमुच अहताका आत्यन्तिक विलय हो चुका था नानाजीके जीवनमे। अपना सर्वस्व स्वाहा करनेके अनन्तर, उसके भस्मावशेषपर जो नृत्य कर सके, वही पथिक वन सकता है राधा-भावके पथका। और मेरे नानाजी इसी महाभावके युगपत् शान्त एव उच्छलित महासमुद्रमे निरन्तर डूवते-उतराते रहते थे। महाभाव-रस-समुद्रकी उत्ताल तरगे आत्मसात् किये रहती थी नानाजीके पार्थिव कलेवरको भी। अत भौतिकतासे वे सहज पृथक् थे। हॉ, हम सव भॉप न सके इस स्थितिको।

नानीको तीन-चार वार अनुभूति हुई—नानाजीका शरीर अलग शय्यापर अवस्थित है और वे इससे पृथक् अपनेमे लीन है।

वाणी स्पष्ट न रहनेके कारण उनके मनोभाव पूरे-पूरे समझे नही जा पाते—वेदना होती—हम सव जान नही पा रहे है इनके इङ्गितको और इन्हे वार-वार वोलनेका प्रयास करना पडता है। किंतु निरुपाय थे हम सव। इसपर भी वे हमे प्रवोध देते—'दोप मेरा है, मै ठीक वोल नही पाता और कठिनाई होती है तुम सवोको समझनेमे।' वे स्नेहस्यन्दी अस्फुट शव्द अव कर्णपुटोमे अमृत नही उडेल पायेगे। भाग्यमे यही वदा था।

उस कष्टकी भयकरतम स्थितिमे भी उनका दैनदिन उपासना-क्रम मानसिक रूपसे निर्वाध चलता रहता। पैर सिमटकर विस्तरपर लेटे-लेटे भी कई वार पद्मासनकी मुद्रा उनकी स्वत वन जाती थी।

इक्कीस तारीखको साय पुन नानाजीके उदरमे भीषण पीडा आरम्भ हुई । नानाजी यो छटपट कर रहे थे, मानो व्यथा उनके सहनेकी शक्तिको अतिक्रमित कर गयी थी। फिर भी हम चेत न सके कि आज सहसा यह परिवर्तन क्यो। हृदयको वल देनेके लिये कई इन्जेक्शनके उपयोग हुए। नानाजीने कहा—'मुझे जल्दी नीदके लिये इन्जेक्शन लगा दीजिये—दर्द सहन नही हो रहा है।'

वावा एव डाक्टरोके परामर्शसे नीदका इन्जेक्शन दिया गया। पर नीद ही नही आयी, दर्द भी कम नही हुआ—और नानाजी वैसे ही तडपते रहे।

नानाजीसे एक वार पूछा गया था—'आपके कहॉ कष्ट है, वताइये।' इसपर उनका यह उत्तर मिला था—'भैया! कोई ऐसा स्थान ही नही, जहॉ पीडा न हो। कहॉ-कहॉ वताऊँ?' पर वे ही नानाजी आज इम भॉति तडप रहे थे। हम नही समझ सके, हमारी अधी ऑखे नही देख सकी, पर अव तो इस नाटचके अन्तिम पटाक्षेपका समय आ चुका था। हॉ, उस कष्टमे भी नानाजीको पूरा वाह्य ज्ञान था। डाक्टरोको देखकर उन्होने पूछा—'आपलोगोने भोजन किया या नही? एक चिकित्सककी ऑखोसे अनायास ऑसू टपक पडे।'

उन भीपण कष्टके क्षणोमे भी परिवारके छोटे शिशुओको देखकर नानाजी अपने अप्रतिम प्यारसे उन्हे स्नान करा ही देते थे। ऐसा स्नेहदानी अव कहॉं?

इससे पूर्व कतिपय स्नेही-स्वजनोको, परिवारके एक व्यक्तिको विभिन्न स्वप्नोमे नानाजीकी ओरसे यह स्पष्ट सकेत भी मिल चुका था कि 'अव विदाका क्षण आ रहा है।' तथापि आशाकी मरीचिका विश्वास करने नही देती थी इन सकेतोपर। अपितु वे सकेत ही भ्रामक प्रतीत होते थे। पर वह भ्रम ही सत्यरूपमे परिणत हुआ।

नानाजीका कष्ट वढता गया। नाडी कोहनीपर उपलव्ध हो रही थी, वहॉ भी उसकी गति विपम थी। श्वास लेनेमे कष्ट हो रहा था । धीरे-धीरे श्वासकी गति वढ गयी, परतु नानाजीके मुख-सरोजपर सहज आनन्दके लक्षण उस समय भी स्पष्ट परिलक्षित हो रहे थे।

एक अन्तिम भ्रमका सृजन इस रूपमे हुआ—यह चरम परीक्षा है, यह पर्यवसित होगी नानाजीके स्वास्थ्य-लाभमे। सारी रात इसी प्रकार वीत गयी। रातमे एक वार वायु-निस्सारणके लिये ऐलोपैथिक उपचार किये गये, पर उससे भी कोई लाभ नही हुआ अपितु दर्द अधिक वढ गया।

वाईस मार्चको प्रात लगभग पॉच वजे श्वासकी गति पहलेसे भी अधिक वढ गयी। श्वास लेनेमे पर्याप्त कष्टका अनुभव होने लगा। नानाजीसे पूछकर उन्हे ऑक्सीजन दिया गया फल कुछ भी न निकला। शय्याके चारो ओर वैठे हम सव अभागे उस दारुण कष्टकी स्थितिको देख रहे थे, परतु थे सर्वथा निरुपाय।

लगभग साढे छ वजे वाईको भान हुआ—वावूजी खडे है—उसके सिरपर अपना वरद-हस्त

अन्त्येष्टिके पूर्व शास्त्रोचित कर्म आरम्भ हुए

सर्वप्रथम श्रीराधाष्टमीके पंडालमें भाईजीकी अर्थी लायी गयी।
पंडालका एक-एक स्तम्भ—रजः कण तक रो उठा।

हजारो नर-नारियो द्वारा अन्तिम दर्शन

स्नेह-पुंज चिताकी ज्वालामें

स्नेह-दुर्गके अवशेष
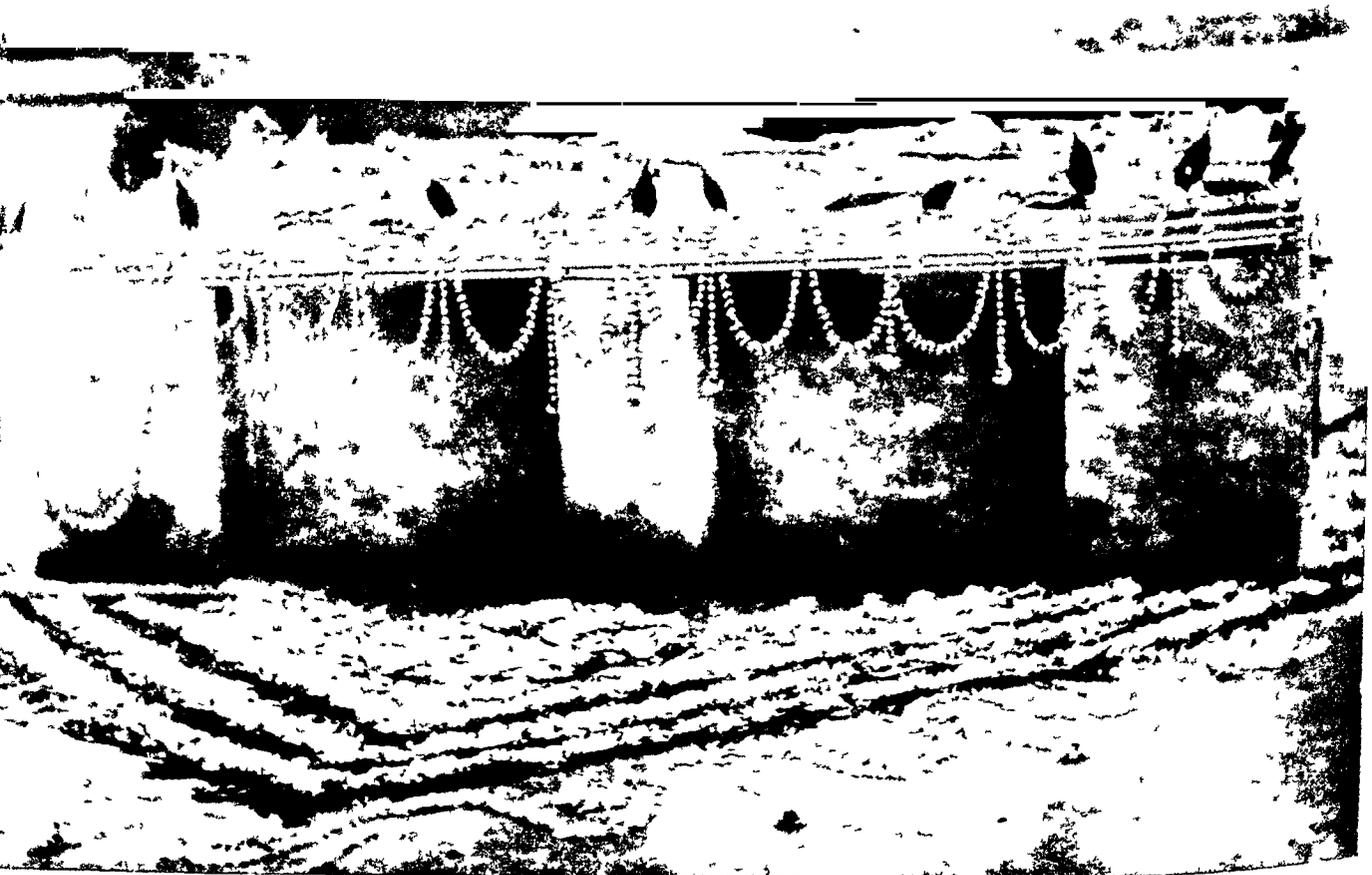
भाव-प्रसूनोंसे अर्चित नित्यलीलालीनकी समाधि

रखकर कह रहे है—'बेटी ! इस परिस्थिति-विशेषसे मै आठ दिन और जीया, और अब मै यह करके जा रहा हूँ।' बाई दूसरी जगह बैठी आँसू बहा रही थी—दौडकर नानाजीके पास आयी ।

बाबूजीकी सर्वसमर्थतापर बाईका, परिवारका पूर्ण विश्वास था। सब घेरकर बैठे ही थे। रोते हुए बाईने फिर अपने बाबूजीके हाथ पकडे—आँसुओसे उनकी अर्चना की और बिलबिला उठी—"बाबूजी ! आपने कहा था —'मैं चेष्टा करूँगा।'" मै उसीपर अपना मन टिकाकर, आशा लगाये बैठी थी, अब आप ठीक हो जाइये, बाबूजी !' समर्थ बापके सामने दीना पुत्री अपनी झोली फैलाकर भीख माँग रही है।" नानी भी फूट पडी—'आप हमारी तरफ न देखे, हम तो अनन्त दोषोसे भरे हुए है, पर आपके है। जब आप ही हमे छोड देंगे, तब क्या होगा ? आपका कष्ट अब नही देखा जाता, अब इस कष्टकी लीलाको बदल दीजिये।'

हम सबने भी अपनी-अपनी सामर्थ्यके अनुसार अपने-अपने दामन फैलाये, परतु आज नानाजी मौन रहे। पौन घटेतक अनवरत यह याचना चलती रही, तथापि नानाजी अडिग ही रहे। लगभग साढे सात बजे बाबा भी आ गये—अश्रुपूर्ण नेत्रोसे वे स्थितिको देखते रहे। नानाजीके नेत्र स्थिर थे।

सात बजकर पैंतालीस मिनटपर दरवाजा खोल दिया गया—डाक्टर परीक्षा करनेके लिये भीतर आये . । वे देख ही रहे थे कि नानाजीके मुखसे रक्तका एक कुल्ला निकला और हिचकी-सी आयी। उन्हे शय्यासे उतारकर नीचे लिटाया गया। और सात बजकर पचपन मिनटपर वे नेत्र, जिनसे स्नेहकी अनवरत वर्षा होती रहती थी—जो करुणाका अक्षय कोष थे, मुँद गये सदा-सदाके लिये . । नानाजी हमको छोडकर चले गये . ।

जो नानाजी हमारा एक आँसू देखनेमे असमर्थ थे—हमारा सुख ही जिनके लिये अपना सुख था—वे चले गये। हम अनाथोको बिलखता, बिलबिलाता छोडकर नानाजी चले गये।

सहस्रोकी सख्यामे एकत्रित जन-समूहके कण्ठसे करुण नाद फूट पडा और आँखोसे आँसुओकी अजस्र धारा बह चली। किंतु अब नानाजीने अपने कान बद कर लिये थे वे अब हमलोगोके आर्तनादको सुनने नही आयेंगे।

हमारा सर्वस्व लुट गया। जगत्को भी मुँह दिखानेयोग्य थे हम नानाजीके कारण ही और परमार्थका तो आधार ही थे वे। अब रहा ही क्या है ?

आज हजारो दीन-हीन विधवाओको अपने वैधव्य-दुखकी सच्ची अनुभूति हो रही थी। पतिके न रहनेपर नानाजीके रूपमे सच्चे पिताका सरक्षण तो उन्हे प्राप्त हो गया था और वे निश्चिन्त हो गयी थी। पर आज उनके लिये भी बच गया था घना अन्धकार । लोक-परलोक दोनोकी रक्षाके लिये जो अपार विशुद्ध स्नेहभरी निर्मलतम मूर्त छत्रछाया थी, वह उनपरसे अपसारित हो चुकी थी। सबके आँसू तो बाँध तोड चुके थे। पर हाय रे ! उन आँसुओको पोछनेवाले अपनी आँखे निमीलित किये सामने निश्चेष्ट थे। ऐसा ही होता है विधिका विधान ।

दिशाएँ रो रही है, आकाश रो रहा है। पशु-पक्षी, कीट-पतग, जड पदार्थ भी आज मानो आँसू बहा रहे है। सबका एकमात्र स्वजन जो चला गया, दूर—अत्यन्त दूर—अब लौटकर नही आयेगा !! हम बाबाको घेरकर सिर पटक रहे है और बाबाके नेत्रोसे भी अजस्र धारा चल रही है। और एक तरफ चरणोके निकट बैठी वेदनाकी मूर्ति बनी नानी आँसू बहा रही है उसका हृदय फट जाना चाहता है।

किंतु सान्त्वना कौन दे—अश्रु-मार्जन कौन करे ? बाबाका भी सर्वस्व तो नानाजीके साथ ही विलीन हो चुका था !

सब चीत्कार कर रहे है—आँसूकी नदी बह चली है। पर अब नानाजी आकर अपने अङ्कमे स्थान नही दे रहे है।

आज प्रीतिका सूर्य अस्त हो गया—सर्वत्र घटाटोप तिमिरमयी अमा-निशाका साम्राज्य फैला है । अब प्रकाश नही ! पथ नही दीखता और चारो ओर जीवन-विध्वसक गहन कान्तार घेर चुका है हम सबको। भावके दिनमणि अब हमे एक क्षीण रश्मिका दान भी नही करने आ रहे है।

इस अतिशय क्रूर वज्रपातके बाद भी जागतिक धरातलके बहुत-से कार्य अभी अवशिष्ट थे। 'अन्त्येष्टि' होनी थी—उनकी 'अन्त्येष्टि' जिनके शरीरके अंशसे हमारा अस्तित्व निर्मित हुआ, जिसने अनुपम प्यारकी अनाविल धारामें निरन्तर हमें अभिषिक्त किया—गोदमें लेकर लाड लडाये, जिसके वरद-हस्तकी शीतल शतम छायामें हम पल्लवित-पुष्पित हो सके, जिनके वात्सल्यपूरित स्मित हमारे लिये सुखका सृजन कर देते थे, जिनकी करुणाभरी चितवनने अपार दुःखोका पहाड पलक गिरते-न-गिरते अदृश्य हो जाता था, जिनकी मधुस्यन्दी गिरा अनजानमें हमारे नारकीय जीवनके कण-कणको भगवान्‌के परम पावन, सच्चिन्मय प्रतिबिम्बके माध्यमसे उद्भासित कर देती थी, जो हमारे—शत-सहस्रोके जीवनकी आधारशिला था। इतिहासके पन्नोको आँसुओंसे सिक्त करनेवाली अन्त्येष्टि थी यह—दूसरे शब्दोमें हमारे सुख-स्वप्नोकी—हमारे जीवन-निर्माणकी अन्त्येष्टि ही यह थी। पर शरीरकी बात तो दूर, हमारे निर्लज्ज मन-प्राण भी अन्तिम बिन्दुतक अपना अस्तित्व विलुप्त न कर सके और अग्रिम कृत्योका भान भी रह-रहकर होता ही रहा।

उस पावन कलेवरको हुताशनमें समर्पित करनेसे पूर्व शास्त्रोचित कर्म आरम्भ हुए। घरके कल्याण-परिवारके सभी वयोवृद्ध छातीपर पत्थर रखकर इस कार्यकी ओर अग्रसर हुए।

गोरखपुर शहरमें मुनादी पिटवा दी गयी थी—'जो भी अन्तिम दर्शनके लिये आना चाहें आ सकते हैं। साय तीन बजेतक ही पार्थिव देहके दर्शन होगे।

शत-सहस्र नर-नारियोकी अपार भीड गीता-उद्यानकी ओर बढ चली—प्राणोका हाहाकार साथ लिये। सबके पास ही अर्चनके उपकरणरूपमें अश्रुकण थे। अश्रुके पाद्य-अर्घ्यके साथ प्रकृतिके दिये हुए कुसुम भी कुछ हाथोमें थे और मालाएँ भी थीं। और नित्यलीलालीन नानाजी उनकी इस अर्चनाको स्वीकार भी कर रहे होंगे—भले ही मेरी फूटी आँखें, टूटा हुआ मन और कलुषसे भरा हृदय इसे अनुभव न करे।

दो बज गये ... स्नानादि कृत्योका समापन करके नानाजीको अर्थीपर विराजित करनेका समय हो चुका था ...।

जीवनके लंबे पचाससे अधिक वर्षोतक जिनका अहर्निश संयोग था, जो उनकी चिरसङ्गिनी थी उनके ही शरीरका आधा अङ्ग थी—सहगामिनी थी, सहधर्मिणी थी ... आज उसके प्राणोका हाहाकार कहाँ किसके हृदयपर प्रतिबिम्बित हो? धक्-धक् जलते हुए हृदयकी मूर्ति नानीकी समय-समयपर वेदनाको हर लेनेवाला और सुखकी प्रवाहिणी सृजन करनेवाला इस समय चिरमौन जो हो चुका था!

स्नान-कृत्य आरम्भ होनेसे पूर्व नानाजीके चरणोमें सिर रखकर अपने आँसुओंसे चरणोको स्नान करा दिया था नानीने—इसे बाह्य जलकी आवश्यकता नहीं थी—अन्तरकी व्यथाका स्रोत उमड रहा था वही पर्याप्त था। जीवनभरकी साधनाको समर्पणको, अपने आपको उसने नानाजीके चरणोमें डाल दिया, एक चीत्कारके अन्तरालमें मन-ही-मन यह कहते हुए—'आप मुझे छोडकर चले गये, पर मेरा अस्तित्व तो इन चरण-नख-चन्द्रोंमें ही है।' अपनी बरसती आँखोंमें चरण-रज-कणिका आँजकर उमडते हृदयमें चरणोकी चिर-स्मृति सँजोकर वह वेदनाकी पुत्तलिका कक्षसे बाहर आ गयी।

नानाजीकी एकमात्र परम लाडिली बेटी देख रही है—सर्वसमर्थ पिता अपनी सारी सामर्थ्य-शक्तिको संवरण करके निःस्पन्द हो गया है। वे वरद हस्त, जिनके समुज्ज्वल वितानके परम सुखद आश्रयमें बाईके जीवनके चालीससे अधिक वर्ष बीते थे आज वे हाथ सक्रिय नहीं है। जिन नयनोंसे सतत उसके लिये—सबके लिये स्नेहका निर्झर प्रसरित रहता था, वे आज सदाके लिये गतिहीन हो गये हैं ...! चीत्कार निस्सृत हो रहा है—'बाबूजी! बाबूजी!! बाबूजी ...' किंतु अब बाबूजी नहीं बोलेंगे, कण्ठसे लगाकर अपने स्नेह-पयोनिधिमें निमग्न नहीं कर देंगे। बेटी फूट-फूटकर रो रही है ...! सम्पूर्ण स्वजन, सम्बन्धी-स्नेहियोकी आँखें बरसकर वक्षःस्थलको सिक्त कर रही हैं ...। वे शिशु और प्रौढ शिशु, जिन्होंने नानाजीसे केवल और केवल स्नेहका दान पाया था, बिलख रहे हैं, पर आज उन करुणावारिधिके गाम्भीर्यमें विकम्पन नहीं होता ... नानाजी द्रवित नहीं होते, नहीं ढुलकते ...।

'वे ही जब चले गये, मुझपर अब कौन दया कर दे, प्रियतम!'

अर्थी बँध गयी   ऊपर नानाजीके कमरेमे नीचेके अलिन्द (पोर्टिकोसे सम्बद्ध बरामदे) मे ले आयी गयी—हजारोकी सख्यामे जनसमूह एकत्रित था। चन्दन-पुष्पसे सुसज्जित नानाजीका स्नेहिल मुख-सरोरुह आज भी स्नेहकी दिव्य आभासे देदीप्यमान था—अधरोपर शान्त स्मित रेखाका आभास अब भी था, अर्धनिमीलित नयनोसे अव्यक्तरूपमे कृपाका दान भी अक्षुण्ण था।

परिक्रमा करके प्रत्येक व्यक्ति चरणोमे प्रणाम कर रहा है। महिलादलसे आवेष्टित परिवारकी स्त्रियाँ—निराश्रिता पत्नी, अनाथा बेटी-बहुएँ एक ओर प्रतीक्षा कर रही है।

पति ही आर्य-रमणीका शृङ्गार है—सुहागकी लालिमा है, सौभाग्यका सविता है। यो तो आज हम सबके सौभाग्यकी सध्या हो चुकी है, परतु नानीके लिये तो अब कुछ भी शेष नही रहा। अपने हाथोकी चूडियाँ उतारकर नानाजीके चरणोपर चढा दी उसने   जागतिक सम्पूर्ण सुखोको—अपने मङ्गलको उतारकर, अपनेसे वियुक्तकर उन्हींके चरणोमे अर्पित कर दिया   । उस क्षण उपस्थित सभी प्राणोमे आर्तनादका एक ऐसा पाषाणभेदी करुण प्रवाह फूट पडा, जिसे शब्द चित्रित कर ही नही सकते   बाबाकी आँखोसे अश्रुकी दर-दर प्रवाहिणी प्रसृत हो रही थी। पर यह सब था अरण्य-रोदन ही।

नानाजीकी शीतल, अभय, वरद भुजाओकी छायाके स्थानपर आज सिरपर सफेद वस्त्र-खण्ड बाँधे अनाथ बालकने, अन्य सभी घरके बच्चोने, श्वसुर-पिता—नही-नही अपना सर्वस्व खो डालनेवाले पुत्र-दामादने, बाबाने, अपने हाथोपर, कधोपर अर्थीको विराजित किया। 'हरे राम हरे राम   कृष्ण हरे हरे' के करुण नाम-कीर्तन और हृदयके हाहाकारसे ओत-प्रोत अन्य भगवन्नाम-ध्वनियोके साथ सभी चल पडे—अन्त्येष्टिके लिये निर्दिष्ट स्थान—कुटियाके सामने स्थित गिरिराज-परिसरकी ओर   ।

सर्वप्रथम श्रीराधाष्टमीके पडालमे नानाजीकी अर्थी लायी गयी   । पडालका एक-एक स्तम्भ—रज कणतक रो उठा। आज सम्पूर्ण उत्सवके प्राणकी चिर-विदाई जो है   । आगे उत्सव हो सकते है, पर होगे प्राण-रहित   वाद्य बज सकते है, पर मधुर-स्वर-लहरीके स्थानपर क्रन्दनके रव ही झकृत होगे, पद-कीर्तन भी हो सकते है, परतु गायकके प्राणोमे उल्लासके स्थानपर भरी रहेगी प्राणहारिणी वेदना ही।

गिरिराज-परिसरमे ८'×१०'की एक तीन फुट ऊँची वेदी बनायी गयी थी   प्रत्येक व्यक्ति अपने प्राणाधारके नि स्पन्द कलेवरको अग्निके समर्पित होते देख सके, मात्र इसी भावनाको लेकर   ।

पुन नानाजीको स्नान कराया गया और उनके भौतिक शरीरको काष्ठ-चन्दनसे निर्मित चितापर विराजित किया गया   और काँपते हाथोसे उसपर काठका अम्बार लग गया। छलछलाती आँखोसे बाबाने भी नानाजीके दिव्य ज्योतिके रुद्ध हुए निर्झर-रूप दोनो नयनोपर पटीरके दो छोटे-छोटे खण्डोको सजा दिया। कदाचित् उनकी जीवनभरकी अर्चनाका उपसहार ही यह था।

चितासे हुतभुक्का विधिवत् सयोग हुआ। कदाचित् उसमेसे नानाजीको निकाल पाती और स्वय कूद पडती—व्यथाका यह रूप अन्तर्मनमे रहा अवश्य होगा, किंतु अभी साँस पूरी जो नही हुई थी। मेरे कलुषित हृदयमे इस साहसका सचार कैसे होता?

सबकी आँखे अविरल अश्रु-धारा बरसा रही है। करुण चीत्कारमे कीर्तनका स्वर विलीन हो गया है   । हाहाकार, क्रन्दन और आँसुओकी अविरल प्रवाहिणीके अन्तरालसे हृदय-प्राणोपर अँधेरा-सा मूर्त होता जा रहा है। अवश्य ही बाहर अस्ताचलकी ओर जाते हुए दिनकरकी रश्मियाँ, रश्मियोकी लाली—रक्तिमाके सदृश पावककी अरुण शिखाएँ चमक रही है   ।

एक ओर अंशुमाली क्षितिजकी ओटमे जा रहे थे—प्रकृतिका साम्राज्य तमस्मे विलीन हो रहा था—दूसरी ओर भाव-भास्कर भी अपनी किरणोको समेटकर, इनके पूर्व ही, पर आज ही अन्तर्धान हो चुके थे—दृश्य-प्रपञ्च-पर अब अवशिष्ट था स्नेहशून्यताका दुर्भेद्य घनतम तिमिर मात्र। कुछ क्षण पूर्व नीले अम्बरमे उन ज्योतिपुञ्जके विकीर्णकी लालिमा थी और धरापर चमक रही थी इन स्नेहपुञ्जकी चितामे निस्सृत लाल-लाल लपटे। किन्तु दोनो दिशाओकी अरुणिमाके अन्तरालमे आवाहन था घोर तमिस्रका, कराल कृष्ण निशाका।

'वह उजड गया वन था, जिसमे बहती रसकी धारा, प्रियतम!'

●

जीवनकी कुछ महत्त्वपूर्ण स्फुट बाते

साधनाके दो गुरु

[१]

श्रीभाईजा भगवान्के विशेष यन्त्रके रूपमे जगत्मे अवतीर्ण हुए थे। अतएव उनके जीवनका सचालन पूर्णरूपसे भगवान्के द्वारा ही हुआ। व्यावहारिक जीवनमे उन्हे अपनी साधनामे दो महापुरुषोसे बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई और इस हेतु दोनो महापुरुषोको वे अपने गुरु मानते थे। एक थे बगाली महात्मा—श्रीदयालु साधु और दूसरे थे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका। श्रीदयालु साधु कलकत्ता-जीवनमे इनसे मिले थे। वे उनके पिताजीके पास आते थे और उनपर बडा स्नेह और कृपा रखते थे। वे उन्हे एकान्तमे ले जाते और साधनकी बहुत-सी बातें बताते। पीछे श्रद्धेय श्रीगोयन्दकाजीसे भेट होनेपर उनकी बतायी हुई बातोसे भाईजीको अपनी साधनामे सहायता प्राप्त होती रही। भगवान् विष्णुका ध्यान और मानसिक पूजा—वे श्रीसेठजीके निर्देशके अनुसार करते थे। पीछे बम्बई जानेपर निर्गुण-निर्विशेषकी साधनामे भी उन्हे श्रीसेठजीसे बडी सहायता मिली। उन दिनो श्रीभाईजीने भगवद्रूप गुरुकी वन्दनामे एक पद लिखा था, जिसमे उन्होने अपने इन दोनो गुरुओका स्मरण सकेतरूपसे एक साथ किया है—

जय देव जय देव जय दयालु देवा।
परम गुरु परम पूज्य परम देव देवा॥
सब विधि तव चरन सरन आय परयो दासा।
दीन हीन, मति मलीन, तदपि सरन आसा॥

पातक अपार किंतु दया को भिखारी।
दुखित जानि राखु सरन, पाप-पुंज हारी॥
अब लौं के सकल दोष छमा करहु स्वामी!
ऐसो करो, जाते पुनि हौं न कुपथ गामी॥

पात्र हौं, कुपात्र हौं, भलें अनधिकारी।
तदपि हौं तिहारो, अब लेहु मोहि उधारी॥
लोग कहत, हौं तिहारौ, मनहु कहत सोई।
करिये सत्य सोइ नाथ! भव-भ्रम सब खोई॥

मोरि ओर जनि निहारो, देखिय निज तनही।
हठ करि मोहि राखिय, प्रभु! सतन पग पनही॥
बिनवें कहा बार-बार, जानहु सब भेवा।
जयतु, जयतु जय दयालु, जय दयालु देवा॥

निर्गुण-निर्विशेषके ध्यानकी साधनाके पश्चात् भाईजीको पुन विष्णुभगवान्का ध्यान होने लगा और पीछे भगवान् विष्णुके साक्षात् दर्शनोका भी सौभाग्य उन्हे प्राप्त हुआ। इस सौभाग्यके समय श्रद्धेय श्रीसेठजी उपस्थित थे। भगवान् विष्णुके दर्शनके कुछ समय पश्चात् श्रीभाईजीको भगवान् श्रीकृष्णकी अनुभूति हुई और उसके बाद भगवती राधाकी। श्रीराधाकृष्णकी उपासना और उनकी कृपाकी प्राप्ति गुरुकृपाका फल न होकर, प्रिया-प्रियतमकी अहैतुकी कृपाका ही फल था। उक्त दोनो महापुरुषोका इसमे कोई सम्बन्ध नहीं था। श्रीभाईजी अपने जीवनके अन्तिम क्षणोतक अपनी साधनाकी प्रारम्भिक अवस्थाके दोनो पूज्य गुरुजनोको परम सम्मान और आदरके साथ स्मरण करते रहे।

[२]

श्रीभाईजीके सम्बन्धमें लोगोंकी कुछ अलौकिक अनुभूतियाँ

[सच्चे सत विनय एव दैन्यकी मूर्ति होते है। वे अपनेमे कोई गुण नही देखते, अपितु उन्हे सभी अपनेसे अच्छे दिखायी पडते है, कारण उन्हे सव ओर अपने प्रियतमका स्वरूप ही दृष्टिगोचर होता है। परतु भगवान् अपने भक्तका महत्त्व प्रकट करनेके लिये—जगत्‌को उनके स्वरूपका कुछ परिचय कराकर उनसे वास्तविक लाभ उठानेके लिये प्रेरित करते रहते है। श्रीभाईजीके महत्त्वके सम्वन्धमे भी देश-विदेशके असंख्य लोगोको समय-समय-पर अनुभव हुए हैं तथा महाप्रयाणके पश्चात् आज भी अनेको भाग्यशाली महानुभावोको उनकी कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। ऐसे अनेक महानुभावोने अपनी अनुभूतियोको लिखकर भेजा था, परतु श्रीभाईजी अपने आपको सर्वथा छिपाये रखनेकी दृष्टिसे उन पत्नोको नष्ट कर डालते थे। फिर भी अनेको पत्न उनकी पुरानी फाइलोमे प्राप्त हुए है। नीचे हम केवल पाँच पत्न प्रकाशित कर रहे है—तीन पत्न भावुक भक्तोके है तथा दो पत्न वर्तमान भारतके दो प्रसिद्ध लोकनायकोके है, जो अपने समयके मूर्धन्य मनीषी तथा उच्च कोटिके वुद्धिवादी थे। पाठक इन्हे पढे और स्वय अनुभव करे कि श्रीभाईजीके रूपमे कितनी महान् विभूति हमलोगोके वीच विद्यमान रही है।]

(क)

वहिन कृष्णाकुमारीको स्वप्नमे श्रीवृन्दावनविहारीका श्रीभाईजीसे उपदेश लेनेका आदेश

६-५-३५

श्रीयुत सम्पादकजीको कृष्णाकुमारीका 'ॐ नम कृष्णाय' ज्ञात हो। मुझे तारीख २-५-३५ को स्वप्न हुआ। मैने स्वप्नमे देखा—भगवान् वृन्दावनविहारी आज्ञा दे रहे है कि 'मुझे पानेके लिये और मुझमे प्रेम होनेके लिये हनुमानप्रमादसे उपदेश लो 'जात पाँत पूछे नहि कोई। हरिको भजे सो हरि का होई॥' वस, इतना ही मैंने सुना कि आँख खुल गयी। करीव २ वजे थे। मैने सोचा 'हनुमानप्रसाद' किसका नाम है। यहाँपर तो मैने किसीका नाम हनुमानप्रमाद नही सुना। किसीका नाम होगा तो उसका मुझसे परिचय नही है। मैने अपने मनमे सोचा कि अच्छा होता, अगर मैं पूछ लेती कि कौन हनुमानप्रसाद, कहाँपर रहते है। मुझे वहुत दु ख हुआ। अन्तमे यही सोचते-सोचते निद्रा आ गयी और फिर मुझे स्वप्नमे ऐसा सुनायी पडा कि 'तुझे भ्रम हो गया कि कौन हनुमानप्रसाद है। अरे, वही हनुमानप्रसाद पोद्दार, कल्याण-सम्पादक, गोरखपुर।' वस, फिर क्या था। मुझे परम आनन्द हुआ। अव आपसे मेरी वार-वार यही प्रार्थना है कि अपनी पुत्री समझकर समय-समयपर आप मुझे उपदेश देते रहिये। भूल-चूक क्षमा कीजिये।

गोरखपुर
ज्येष्ठ सुदी १२, स० १९९२

श्रीभाईजीका उत्तर वहिन कृष्णाकुमारीको

प्रिय वहिन,

सप्रेम हरिस्मरण।

आपके पत्न आये वहुत दिन हो गये। मैं समयपर उत्तर नही लिख सका, इसलिये आप क्षमा करें। स्वप्नकी घटना ज्ञात हुई। जिनको स्वप्नमे श्रीवृन्दावनविहारीकी वाणी सुननेको मिलती है, वे सर्वथा धन्य है। मेरा तो यह निवेदन है कि आप श्रीवृन्दावनविहारीसे ही उनके साक्षात् मिलनेका उपाय पूछिये। उनसे प्रार्थना कीजिये कि दूसरे किसीका नाम वतलाकर क्यो छलते है। मेरा तो यह विश्वास है कि यदि आपकी प्रार्थनामे करुणा और उत्कट इच्छा होगी तो वे स्वय अपने मिलनेका उपाय आपको वतला सकते है। भगवान् श्यामसुन्दर इतने दयालु है कि वे अपने वँधनेकी रस्सी आप ही दे देते है और आकर स्वय वँध जाते है। वस, आप यही प्रार्थना कीजिये और दृढ विश्वास रखिये कि वे जरूर दर्शन देगे। जिन्होंने आपको स्वप्नमे मुझसे मिलनेकी

आज्ञा दी है, वे आपको सच्ची उत्कण्ठा होनेपर नहीं मिलेंगे—ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिये। मेरा तो यही निवेदन है।

अपका भाई
हनुमानप्रसाद

(ख)

नागपुरके पासके किसी ग्रामसे एक सज्जन श्रीदेशपाण्डेजी लिखते हैं—'मैं खाटपर सो रहा था। स्वप्नमें किसी महात्माने मुझे 'साधन-पथ'की पुस्तक दी और जागनेपर वह पुस्तक मुझे बिछावनपर मिली। उस महात्माकी आकृति शिवजीकी-सी थी।

यह पत्र भाईजीने नष्ट कर दिया। श्रीभाईजीने उनके पत्रका जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार है—

गोरखपुर,
वैशाख कृ० ८, १९९२

श्रीदेशपाण्डेजी,

सप्रेम हरिस्मरण।

आपका पत्र मिला। आपके पत्रमें लिखी बात यदि सत्य है तो बड़े ही आश्चर्यकी बात है। इससे मैं आपके लेखकी सत्यतामें संदेह करता हूँ—ऐसी बात नहीं समझना चाहिये। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मुझे इस सम्बन्धमें कुछ भी पता नहीं है। आपका यह पत्र मिलनेसे पूर्व मैं इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता था। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझमें कोई भी सिद्धि नहीं है। 'साधन-पथ' नामक पुस्तक स्वप्नमें किसी महात्माने आपको दी और जागनेपर वह आपके बिछावनपर मिली—यह आपकी ही श्रद्धाका फल होगा। वे महात्मा कौन थे, मैं कुछ भी नहीं जानता। इसमें क्या रहस्य है, मुझे कुछ भी पता नहीं है। आप कृपया यह अवश्य लिखिये कि उन महात्माने आपको और कुछ कहा या नहीं, कहा तो क्या कहा? आपने उनकी जो आकृति लिखी है, वह तो भगवान् शिवकी-सी मालूम होती है। आप भाग्यवान् हैं, जो स्वप्नमें महात्माने आपको दर्शन दिया। 'साधन-पथ'में जो कुछ लिखा गया है, वह सब शास्त्रोंके आधारपर ही लिखा गया है। मेरा उसमें क्या है। मैं देखता हूँ तो मुझमें वे बातें सब नहीं मिलती। अतएव मैं आपको क्या उपदेश दूँ? उपदेश देनेका तो मेरा अधिकार भी नहीं है। 'साधन-पथ' पढनेसे आपको शान्ति मिलती है, इसको आप महात्माका प्रसाद समझिये। मेरा कुछ भी न समझिये। आप साधन करके भगवान्को प्राप्त करना चाहते हैं, यह बड़े आनन्दकी बात है।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(ग)

'श्रीराधाकृष्ण प्रेम भिखारी' नामक सज्जनको 'हृषीकेश' नामक बालकके दर्शन

१८-१-३५

श्रद्धेय सम्पादकजी,
'कल्याण', गोरखपुर

करीब ११ वर्षका 'हृषीकेश' नामका साँवरे रंगका परम सुन्दर बालक आज करीब १२ बजे दोपहरको आया। उस समय यह 'श्रीराधा-कृष्ण प्रेम-भिखारी' पौष मासके 'कल्याण', भाग ९ (वर्ष ९) संख्या ६को बड़े ध्यान और प्रेमसे पढ रहा था। बड़ी नम्रतापूर्वक उस बालकने इस भिखारीसे एक छोटी तावीजी साइजकी गीता माँगी और कहा कि "गीता अध्याय ९के २२वें श्लोकको पढा दीजिये एवं समझा दीजिये।" ज्यों ही यह

भिखारी **'अनन्याश्चिन्तयन्तो मां'** पढने लगा, त्यो ही वह कहने लगा कि "गीता भगवान्का एक स्वरूप है, इसमे तनिक भी सदेह नही।" इस भिखारीने हृषीकेशसे पूछा—"भाई! तुम कहाँ रहते हो और क्या करते हो?" उसने प्रेम तथा आनन्दाश्रुओसहित बडी नम्रतासे उत्तर दिया—"मै तो 'कल्याण'मे रहकर 'कल्याण'-द्वारा सब प्राणियोकी चिन्ता किया करता हूँ। भक्त ही मेरे चिन्तामणि है। भगवान्, भक्त और भागवत—तीनो एक ही है।" तब इस भिखारीने उनसे पूछा—"भाई! तुम्हारा घर कहाँ है?" उन्होने धीमी स्वर-माधुरीसे कहा—"मेरा निवास-स्थान वृन्दावन, सेवाकुञ्जमें है। वहाँके श्रीराधाकृष्ण मेरे इष्टदेव है।" इतना सुनकर उन्हें कुछ जलपान करानेकी मेरी इच्छा हुई। तुरत ही यह भिखारी अन्तरङ्ग-विभागमे कुछ जलपान लानेके लिये गया। लौटकर देखा—हृषीकेश कही चले गये है। अनुमानत ५ मिनटका समय लगा होगा। इस भिखारीने बहुत चेष्टा की और स्वय ४ मीलतक दौडा गया, परतु कही कुछ पता न चला। जब इस भिखारीसे हृषीकेशका साक्षात्कार हुआ, तब उस स्थानपर सयोगवश कोई नही था। बस, इतना ही आप कृपया सूचित कर दे कि हृषीकेश नामक कोई बालक आपके कार्यालयमे कार्य करता है। क्या वह सेवाकुञ्ज, वृन्दावनमे रहता है? इस कृपाके लिये यह भिखारी आपका अत्यन्त कृतज्ञ होगा।

आपका विनीत शरणागत,
राधाकृष्ण-प्रेम-भिखारी

श्रीभाईजीका 'श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारीजी'को उत्तर

गोरखपुर
दिनाङ्क २०-१-३५

सम्मान्य श्रीराधाकृष्ण-प्रेम-भिखारीजी,
सादर हरिस्मरण!

आपका तारीख १७-१-३५का पत्र मिला। 'कल्याण'मे 'हृषीकेश' नामक कोई परम सुन्दर ब्राह्मण बालक नही रहता। सेवाकुञ्ज-विहारी श्रीश्याम-सुन्दर सर्वत्र रहते ही है। इसलिये वे 'कल्याण'-कार्यालयमे भी जरूर रहते है। 'कल्याण'मे विशेषरूपसे रहते हो तो वे जाने। हमलोगोको तो कभी उन्होने ब्राह्मण-बालकके रूपमे दर्शन दिया नही। सचमुच वे हृषीकेश आपको प्रेम-भिक्षा देनेके लिये यदि आपके समीप पधारे हो तो आप बडे भाग्यवान् है। आपने यह भूल अवश्य की, जो उनको पकड नही लिया और अपने साथ ही जलपान करानेको नही ले गये। उन्होने आपको हृषीकेश नाम कब और कैसे बतलाया, लिखनेकी कृपा कीजियेगा।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(घ)

श्रीगोविन्दवल्लभजी पंत, गृहमन्त्री—भारत सरकारको श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अलौकिक अनुभूति

(श्रीपंतजीका पत्र श्रीभाईजीने नष्ट कर दिया, नीचे श्रीभाईजीद्वारा लिखा गया उत्तरमात्र दिया जा रहा है।)

श्रीहरि

गीतावाटिका
गोरखपुर

माननीय श्रीपतजी,
सादर प्रणाम!

आपका कृपापत्र मिला। आप सकुशल दिल्ली पहुँच गये, यह आनन्दकी बात है। आपके इस नये ढगके पत्रको पढकर बडा आश्चर्य हो रहा है। पता नही, भगवान्के मङ्गल-विधानमे क्या होनेवाला है।

आपने जो स्वप्न तथा प्रत्यक्ष चमत्कार देखनेकी वात लिखी, वह मेरी समझमे तो आयी नही। हाँ, आपके अज्ञात मनके किन्ही सस्कारके ये चित्र हो सकते हैं। मेरे वावत आपने जो कुछ देखा-लिखा, उसके सम्वन्धमे तो इतना ही कह सकता हूँ कि 'मैं न योगी हूँ, न सिद्ध महापुरुष हूँ, न पहुँचा हुआ महात्मा हूँ न किसीको दिव्य दर्शन देकर कृतार्थ करनेकी या वरदान देनेकी ही मुझमे शक्ति है।' मैं साधारण मनुष्य हूँ, मुझमे कमजोरियाँ भरी हैं। भगवान्‌की अहैतुकी कृपा मुझपर अनन्त है, इसमे मेरा विश्वास भी है। मुझे इस पत्रसे पहले आपके स्वप्न तथा जाग्रत्‌मे चमत्कार देखनेका कुछ भी पता नही था। अतएव मैं क्या कहूँ। अवश्य ही आपके निकट भविष्यमे देहावसानकी जो सूचना इसमे मिली है, उससे मुझे चिन्ता हो रही है। आप उचित समझे तो स्वय मृत्युञ्जयमन्त्रका जप कीजिये और किन्ही विश्वासी शिवभक्तके द्वारा सवा लाख जप करा दीजिये। मैं यह जानता हूँ—आप आस्तिक हैं। भगवान्‌मे और शास्त्रमे आपका विश्वास है। आपने लिखा—'जवाहरलाल भी, ऊपरसे कुछ भी कहे, आस्तिक है', सो ठीक है, उनके वारेमे मैं भी यही मानता हूँ।

आपने मेरे लिये लिखा कि—'आप इतने महान् है, इतने ऊँचे महामानव हैं कि भारतवर्षको क्या, सारी मानवी दुनियाको इसके लिये गर्व होना चाहिये। मैं आपके स्वरूपके महत्त्वको न समझकर ही आपको 'भारतरत्न' की उपाधि देकर सम्मानित करना चाहता था। आपने उसे स्वीकार नही किया, यह वहुत अच्छा किया। आप इस उपाधिसे वहुत-वहुत ऊँचे स्तरपर हैं, मैं तो आपको हृदयसे नमस्कार करता हूँ।' आपके इन शब्दोको पढकर मुझे वडा सकोच हो रहा है। पता नही, आपने किस प्रेरणासे यह सव लिखा है। मेरे तो आप सदा ही पूज्य हैं। मैं जैसा पहले था, वैसा ही अव हूँ, जरा भी नही वदला हूँ। आप सदा मुझपर स्नेह करते आये है और मुझे अपना मानते रहे है। मैं चाहता हूँ—वैसा ही स्नेह करते रहे और अपना मानते रहे। मैं आपकी श्रद्धा नही चाहता, कृपा तथा प्रीति चाहता हूँ—स्नेह चाहता हूँ। मेरे लायक कोई सेवा हो तो लिखे। आपके आदेशानुसार पत्र जला दिया है। आप भी मेरे इस पत्रको गुप्त ही रखियेगा। शेप भगवत्कृपा।

आपका,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

(६)

श्रीपुरुषोत्तमदासजी टंडनको श्रीभाईजीके सम्बन्धमें अलौकिक अनुभूति

(श्रीटंडनजीका पत्र श्रीभाईजीने नष्ट कर दिया। नीचे श्रीभाईजीद्वारा लिखा गया उत्तर दिया जा रहा है।)

श्रीहरि

गीतावाटिका
गोरखपुर

पूज्यचरण वावूजी,
सादर प्रणाम।

आपका कृपापत्र मिला। मैंने कभी यह कल्पना भी नही की थी कि आपके द्वारा मुझको कभी ऐसा पत्र मिलेगा। सात पेजके पत्रमे शुरुमे अन्ततक केवल मेरे दिव्य स्वरूपकी महिमा, दिव्य दर्शनसे परमानन्द तथा उससे प्राप्त लाभ और मेरे गुणोकी वार-वार वहुत ही वढे-चढे रूपमे स्तुति भरी है। आप-सरीखे माप-तौलकर वोलने-वाले सत्यवादी पुरुष मिथ्या लिखेंगे—यह सोचनेका भी साहस नही होता और लिखेंगे भी क्यो—मुझ नगण्यसे आपको क्या लेना है, पर जो कुछ आपने लिखा है, उसका अधिकाश तो मेरी कल्पनासे भी वाहरकी चीज है। कुछ वातें ऐसी हैं, जो मुझसे वहुत अधिक सहस्रो लोगोमे हैं, अत उनका महत्त्व ही क्या है। मैंने आपके हाथके लिखे इस पत्रको रखना वडे जोखिमका काम समझा, कही इसके माध्यमसे मान-वडाईके चक्करमे पडकर व्यक्तिपूजा न कराने लगूँ, कमजोर जो ठहरा। इसीलिये जैसे कई वर्षो पूर्व गङ्गातटपर मेरे साथ रहनेवाले मौनी

भावोदधि मे निमग्न—

'पता नही कब रात दिवसका, पता नही कब संध्याभोर'

स्वामीजीके मेरे सम्बन्धमे अपने अनुभवके आधारपर लिखे वर्णनके ढेर-के-ढेर कागज मैने अग्निदेवताके अर्पण कर दिये थे, वैसे ही आपके इस पत्रको भी मैने अग्निरूप दे दिया।

आपने लिखा—'गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा ट्रेनके प्रयाग पहुँचनेपर झूसीमे श्रीब्रह्मचारीजीके यहाँ आपको मेरे स्वरूपके कुछ अस्पष्ट दर्शन हुए थे, तभीसे आप इस प्रयत्नमे थे कि आप मुझे पूर्णरूपसे देख पाये और इस वार आपका वही प्रयत्न पूर्णरूपसे सफल हुआ है।'

अत जो कुछ भी हुआ हो, आप जाने और आपका प्रयत्न जाने। मेरा स्वरूप तो स्पष्ट सबके सामने है। मैं तो समझता हूँ—आपकी दृढ धारणाने ही मूर्तरूप लेकर आपको यह कौतुक दिखलाया है। मेरा इससे कोई सम्बन्ध नही है। मै तो आपका बच्चा हूँ, आपके स्नेहका पात्र तथा अधिकारी हूँ। सदा ही स्नेह पाता रहा हूँ। वही स्नेह, वही वात्सल्यभाव, वही आत्मीयता रखिये। मुझे सदा अपना बालक मानिये। शिक्षा देते रहिये और आशीर्वाद दीजिये, जिससे जीवनमे मेरेद्वारा ऐसा कोई भी काम न हो, जो आपके निजजनके द्वारा नही होना चाहिये और सदा-सर्वदा—मृत्युके अन्तिम क्षणतक भगवान्‌की मधुर पवित्र स्मृति बनी रहे।

कुम्भमे आया और आप वहाँ रहे तो श्रीचरणोके दर्शन करूँगा।

आपका,
हनुमानप्रसाद

[३]

भाव-समाधि

प्रत्याहृत्य मुनिः क्षणं विषयतो यस्मिन् मनो धित्सते
बालासौ विषयेषु धित्सति ततः प्रत्याहरन्ती मनः।
यस्य स्फूर्तिलवाय हन्त हृदये योगी समुत्कण्ठते
मुग्धेयं किल पश्य तस्य हृदयान्निष्क्रान्तिमाकाङ्क्षति॥ (विदग्धमाधव)

'मुनिगण अपने मनको विषयोसे खीचकर जिन श्रीकृष्णचन्द्रमे क्षणभरके लिये लगानेकी इच्छा करते है, उन्ही श्रीकृष्णमे लगे हुए मनको वहाँसे हटाकर श्रीराधा विषयोमे लगाना चाहती है। ओह, हृदयमे जिन श्रीकृष्णकी लवमात्र स्फूर्तिके लिये योगी उत्कण्ठित होते है—यत्न करते है, फिर भी जिनकी स्फूर्ति नही होती, उन्हीको हृदयसे हटानेके लिये श्रीराधा यत्न करती है, पर हटा नही पाती।'

श्रीराधारानीकी जिस भावनाका परिचय इस श्लोकमे दिया गया है, उसकी कुछ झलक हमे श्रीभाईजीके जीवनके अन्तिम कुछ वर्षोंमे प्राप्त हुई थी। उन दिनो उनके अन्तर्मानसमे दिव्य भगवल्लीलाऍं चलने लगी थी और वे भावराज्यमे ही अवस्थित रहने लगे थे। वास्तवमे यह स्थिति लोक-चक्षुसे सर्वथा अतीत तथा मन-बुद्धि-चित्तसे परेकी है। अतएव प्राकृत मन-बुद्धिद्वारा प्राकृत शब्दोके माध्यमसे उसका वास्तविक स्वरूप नही समझा जा सकता। वह तो नितरा अनुभवगम्य ही है। शब्दोके माध्यमसे उसका जितना परिचय प्राप्त हो सकता है, उसे देनेका प्रयत्न किया जा रहा है—

उस स्थितिका किंचित् परिचय महामहोपाध्याय प० श्रीगोपीनाथजी कविराज महाशयको दिसम्बर १९७० मे लिखे गये श्रीभाईजीके एक पत्रकी निम्नाङ्कित पक्तियोसे प्राप्त किया जा सकता है, जो मूलत बँगला भाषामे लिखा गया था—

"मै सदा-सर्वदा इस प्रकारका अनुभव करता हूँ कि भगवान्‌की दिव्य कृपासुधाका वर्षण मेरे ऊपर नित्य हो रहा है । वर्त्तमान समयमे बहुत दिनोसे मेरा शरीर अस्वस्थ है। पर भगवत्कृपासे शरीरकी इस अस्वस्थ अवस्थामे भी मै विलक्षण आनन्द-लाभ कर रहा हूँ। प्राय एकान्तमे रहता हूँ और उस समय एक ऐसी स्थिति रहती है, जो सर्वथा अनिर्वचनीय तथा अचिन्त्य है।"

अपनी उस स्थितिका कुछ सकेत श्रीभाईजीने श्रीविश्वनाथदासजी, मुख्यमन्त्री, उड़ीसाको भी १९६९मे एक

पत्र लिखकर दिया था। श्रीदास महोदय श्रीभाईजीसे 'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'के सयुक्त मन्त्रीपदपर वने रहनेका आग्रह कर रहे थे और श्रीभाईजी उस उत्तरदायित्वसे मुक्त होना चाहते थे——

"इधर वहुत वर्षोसे मेरा अन्तर्मन निवृत्तिप्रिय हो रहा है। इसीसे मै प्राय प्रतिदिन ही अधिक समय एकान्त वद कमरेमे रहता हूँ। लोगोसे मिलने-जुलनेकी वृत्ति नही होती। साथ ही इधर कुछ वर्षोसे भगवत्प्रेरित ही एक विचित्र परिस्थिति और आ गयी है। उसे मै प्रकाश नही करना चाहता और इसीलिये मैने उसको 'मस्तिष्क ठीक न रहना'की सज्ञा दे रखी है। वात यह है कि अकस्मात् ऐसा हो जाता है कि इन्द्रियोकी, मनकी सारी क्रियाएँ वद हो जाती है। जगत्का सर्वथा लोप हो जाता है, केवल प्राण चलते रहते है। शरीर जिस अवस्थामे इस प्रकारकी स्थिति होनेके आरम्भमे था, वैसे ही वैठा या पडा रहता है। आँखे खुली हो तो भी दीखता नही, क्योकि कोई देखनेवाला ही नही रहता। इसको समाधि कहिये या और कुछ। पहले तो किसी समय ऐसी स्थितिकी मैं चाह करता था——उसके लिये प्रयत्न करता था, अव कोई भी प्रयत्न न करनेपर भी, वर कभी-कभी तो वृत्तियोको वलात्कारसे ससारमे लगानेकी चेष्टा करनेपर भी अकस्मात् ऐसा हो जाता है और यह स्थिति कुछ मिनटोसे लेकर १५-२० घटोतक भी रह जाती है। उस समय शरीर-मन-वुद्धि सर्वथा अक्रिय रहते है। पहले यह स्थिति कई दिनो वाद हुआ करती थी, अव तो वहुत जल्दी-जल्दी हो जाती है। इससे वहुत सँभलकर रहना पडता है। वस्तुत इस स्थितिमे प्रवृत्तिके कार्योका सर्वथा त्याग ही सुविधाजनक तथा वाञ्छनीय है। पर मे प्रवृत्तिके कार्योमे रहता हूँ, इससे कई वार वृत्तियोको वलात् ससारमे वनाये रखनेका प्रयत्न करना पडता हे।"

अहा, कितनी विलक्षण भगवत्कृपाका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि वृत्तियोको वलात्कारसे ससारमे लगानेकी चेष्टा करनेपर भी भाव-समाधिकी स्थिति अनायास प्राप्त हो जाती है!

× × ×

श्रीभाईजीकी इस भाव-समाधिकी स्थितिका कुछ विशेष परिचय १६ अप्रैल, १९६८को स्वर्गाश्रममे प्राप्त हुआ। उस दिन प्रात काल ८ वजेसे ही श्रीभाईजी भाव-समाधिमे विलीन हो गये थे। उनको ९ वजे गीताभवनमे 'सत्सङ्ग' के लिये जाना था। इससे वे अपना कमरा खोलकर वैठे हुए काम कर रहे थे कि अचानक वृत्तियाँ लुप्त हो गयी। घरवालोने तथा गीताभवनमे सत्सङ्गकी व्यवस्था करनेवाले महानुभावोने प्रयत्न किया कि उन्हे वाह्य जगत्का भान हो जाय और वे सत्सङ्गमे चले जायँ, पर श्रीभाईजी भाव-समाधिमे लीन थे। दिनमे लगभग ३ वजे उनकी भाव-समाधिमे कुछ परिवर्तन हुआ, वे वीच-वीचमे आँखे खोलकर देखने लगे तथा पूछने लगे——'कितने वजे है?' पर अभीतक उनके मन-वुद्धिने जगत्को पूरा नही पकडा था। सयोगसे एक भावुक विद्वान् वहाँ वैठे थे। वे श्रीभाईजीकी इस भाव-समाधिदशाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनके मनमे आया——शास्त्रोमे इस प्रकारकी स्थितिका वर्णन सुना है, पर इस प्रकारकी स्थितिवाले पुरुषके दर्शन तो आज ही हो रहे हे। वे चुपचाप श्री-भाईजीके कमरेमे वैठे-वैठे इस अनिर्वचनीय स्थितिका आनन्द लेने लगे। उन्होने देखा कि किस प्रकार लगभग ६-७ घटे पश्चात् श्रीभाईजीकी भाव-समाधिमे कुछ परिवर्तन हुआ है और वे आँख उठाकर इधर-उधर देखने लगे ह तथा पूछने लगे है——'कितने वजे है?' घरवालोने वतलाया——'तीन वजे हैं', पर फिर कुछ देरके लिये वे निश्चल हो गये। कुछ देर पश्चात् पुन वाह्य वृत्ति आयी और फिर वही प्रश्न किया——'कितने वजे है?' इस प्रकार वाह्य वृत्ति कभी आती थी, कभी पुन लुप्त हो जाती थी।

विद्वान् महोदयने इस स्थितिका लाभ उठाया और उन्होने धीरेसे वडी विनम्रताके साथ प्रश्न किया——'भाईजी, इस प्रकारकी स्थितिके विपयमे शास्त्रोमे पढा-सुना हे, पर जीवनमे आज पहली वार दर्शन करके में कृतार्थ हो गया। मैं आपकी स्थितिका वहुत मनोयोगपूर्वक अवलोकन करता रहा। आप घटो एक ही स्थितिमे वैठे रहे——न आपकी आँखें सक्रिय थी, न आपके शरीरमे कोई स्पन्दन था। घरवालोद्वारा आपको स्पर्श करके हिलानेपर भी आप उसी निश्चेष्ट स्थितिमे अवस्थित थे। ऐसा लगता था कि आपको स्पर्शका भी भान नही था। इस प्रकार आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियाँ सर्वथा निष्क्रिय प्रतीत होती थी। इस स्थितिको देखकर मेरे मनमे यह जाननेकी तीव्र जिज्ञासा है कि आपकी इस अवस्थामे इन्द्रियोकी क्या स्थिति रहती है।'

श्रीभाईजीने कहा—'आपकी जिज्ञासा तो ठीक है, पर मैं उस स्थितिके विषयमे बतलानेमे लाचार हूँ। भगवत्कृपासे कैसा क्या होता है—भगवान् जाने। मै तो अपनेको एक अनिर्वचनीय आनन्दकी स्थितिमे पाता हूँ। ऐसी स्थिति होनेकी सम्भावना होते ही मै कमरा वद कर लेता हूँ, पर आज हठात् सव इन्द्रियोका कार्य एकाएक वद हो गया, इससे मै कमरा वद नही कर सका। इसी कारण आपलोग यहाँ वैठे रह गये। इस समय वृत्ति जगत्को पूरा नही पकड रही है, पर फिर भी आपने जो पूछा है, उसका उत्तर देनेका प्रयत्न करता हूँ। कही मेरे वोलनेमे आपको कुछ अटपटापन अनुभव हो तो क्षमा कीजियेगा। उस अवस्थामे आँखे खुली रहनेपर भी दिखायी नही पडता, कानोसे सुनता नही, त्वक्से स्पर्शका अनुभव नही होता। इस प्रकार जव इन्द्रियोका कार्य होना वद हो जाता है, तव मन निष्क्रिय हो जाता है और मनके निष्क्रिय होनेसे वुद्धि निष्क्रिय हो जाती है। इन्द्रियोके कार्य वद होनेका अर्थ है—कार्य करनेकी वृत्तिका न रहना। वृत्ति रहनेसे ही तो इन्द्रियाँ कार्य करती है।'

प्रश्न—क्या इसके लिये पहले कोई सकल्पका उदय होता है। ?

उत्तर—पहले मैं वृत्तियोको अन्तर्मुख करने, मनको निष्क्रिय करनेका सकल्प करता था, अभ्यास करता था, पर अव तो विना सकल्प किये यह स्थिति हो जाती है।

प्रश्न—क्या सव इन्द्रियोका कार्य एक साथ वद होता है या इसका कोई क्रम है ?

उत्तर—कभी सव इन्द्रियोका कार्य एकाएक एक साथ ही वद हो जाता है, और कभी एक-एक इन्द्रियका कार्य वद होते-होते सव इन्द्रियोके कार्य वद हो जाते है। कार्य वद होनेमे क्रम नही है। कभी पहले किसी इन्द्रियका कार्य वद होता है और कभी किसी इन्द्रियका।

प्रश्न—वृत्ति नही रहती तो वृत्ति क्या करती है ?

उत्तर—वृत्ति इन्द्रियोसे हटकर 'उधर'मे केन्द्रित हो जाती है।

प्रश्न—'उधर'का क्या अर्थ या स्वरूप है ?

उत्तर—'उधर'का अर्थ या स्वरूप समझाया नही जा सकता। जव वाह्य ज्ञान पूरा हो जाता है, तव 'उधर'की स्मृति नही रहती और जव अधूरा वाह्य ज्ञान होता है, तव 'उधर'की कुछ स्मृति तो रहती है, पर वह वाणीमे आ नही सकती और जितनी वाणीमे आ सकती है, उसको भी वताना सहज नही है।

प्रश्न—किसी कार्यविशेषके लिये मनमे पहलेसे सकल्प किया हुआ रहता है तो उसकी स्मृति होती है क्या ?

उत्तर—कोई प्रवल सकल्प किया रहता है तो कभी-कभी उसकी स्मृति वीचमे जाग्रत् हो जाती है। पर प्राय नही होती। उस अवस्थामे भी क्षीण-सी स्मृति आनेसे जैसे मैने कमरा वद होनेमे उसके किवाड खोल तो दिये, पर वृत्ति काम नही करती कि किसलिये किवाड खोले। पर यह भी तभीतक होता है, जवतक वृत्तिमे 'इधर'का—वाह्य जगत्का कुछ अश रह जाता है।

जव इन्द्रियोमे कार्य होना वद होने लगता है, तव मै अपना कमरा वद कर लेता हूँ। पर कभी-कभी सव इन्द्रियोमे एक साथ कार्य होना वद हो जाता है, तव उस अवस्थामे जैसे हूँ, वैसे ही रह जाता हूँ। वृत्तिके लौटनेमे भी कभी थोडी-थोडी वृत्ति आती है, कभी एक साथ सारी वृत्ति आ जाती है।

जव वृत्ति जाती है, तव यह भी स्मरण नही रहता कि कहाँ हूँ, सामने कौन है। पर यह भी उस समयकी वास्तविक स्थिति नही है, क्योकि इन्द्रियोके कार्योका रुक जाना, मन-वुद्धिकी वृत्तियोसे जगत्का सर्वथा त्याग हो जाना और पूर्णतया वृत्तिका 'उधर' लग जाना ही 'भागवती स्थिति' नही है। जवतक वृत्तिजन्य 'इधर'का त्याग और वृत्तिजन्य 'उधर'का ग्रहण है, तवतक प्रकृतिराज्यमे ही स्थिति है। 'भागवती स्थिति'मे मन-वुद्धि-अहकी सत्ता नहीं रहती, उसके स्थानपर भगवत्सत्ता आ जाती है, जिसका ज्ञान भी भगवत्सत्तामे ही होता है, अन्य किसीको नहीं। जव वृत्तिजन्य 'उधर'का ही अर्थ या स्वरूप नही समझाया जा सकता, तव इन्द्रिय-मन-वुद्धिसे अतीत भगवत्सत्ताके स्वरूपको समझाना असम्भव है।

प्रश्न—जाग्रतमे भी क्या यह स्थिति हो जाती है ?

उत्तर—हाँ ! चाहे जब, चाहे जहाँ हो जाती है। यात्रामे भी यह स्थिति होती है, तो वाणीकी क्रिया बद हो जाती है। मैं चुप हो जाता हूँ, लोग समझते है ऐसे ही चुप हो गये होंगे। थोडी देर बाद जब स्थिति बदल जाती है, तब मैं बोलने लग जाता हूँ।

प्रश्न—'उधर'की तथा उससे भी परे 'भागवती स्थिति'की प्राप्तिके लिये कभी आपने साधना की थी या वह भगवत्कृपासे अपने-आप होने लगी ?

उत्तर—नाम-जपकी साधना तो पहलेसे ही कुछ थी, पर जेलमे उसमे वृद्धि हुई। पीछे शिमलापालमे ध्यानका आरम्भ हुआ और उसमे अच्छी सफलता मिली। वहाँ विष्णुभगवान्‌का ध्यान करता था। पीछे मै बम्बई चला गया। ध्यानका अभ्यास चलता रहा, पर विष्णुभगवान्‌के स्थानपर अव्यक्त तत्त्वका ध्यान होने लगा। फिर, 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेके एक-दो महीने पहले अपने-आप अव्यक्तके स्थानपर विष्णुभगवान्‌का ध्यान होने लगा। उन दोनो ध्यानोमे मुझे कोई अन्तर नही लगता। जो अव्यक्त है, वही व्यक्त है, जो निर्गुण-निराकार है, वही सगुण-साकार है।

पद्मपुराणमे मैने पढा था—भगवान् श्रीशिवके प्रश्न करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपने स्वरूप-तत्त्वका वर्णन किया है—'मैं किस प्रकार निर्गुण हूँ तथा किस प्रकार सगुण हूँ।' इसी वर्णनके अनुसार अनुभव होता है—अद्वैत ही लीलाद्वैतके रूपमे लीलायमान है। श्रीराधा कृष्णसे अभिन्न है। एक ही तत्त्व लीलाके लिये दो रूपोमे लीलायमान है। श्रीराधा यदि श्रीकृष्णसे भिन्न कोई और तत्त्व होती तो वह बात नही रहती। **'रसो वै स.'**—'रस वही है', 'रस' और 'रसवाला' दो पृथक्-पृथक् नही है।

भगवान् सगुण नही है, क्योकि वे प्राकृतिक 'गुण'-युक्त नही है, वे साकार नही है, क्योकि वे पाञ्चभौतिक 'आकार' युक्त नही है। वे अपने स्वरूपभूत गुणोसे गुणवान् है तथा अपने स्वरूपभूत आकारसे आकारयुक्त है। उनके प्रत्येक अङ्गसे प्रत्येक कार्य सम्भव है, क्योकि वे सच्चिन्मय है। इस तत्त्वको न समझनेसे ही तो विवाद खडे होते है।

प्रेम निर्गुणतत्त्वमे होता है, प्रेम स्वय निर्गुण है। 'गुणो'को लेकर प्रेम होना प्रेम नही है, क्योकि वह तो गुणोसे प्रेम है।

प्रश्न—आपकी जो स्थिति होती है, इस स्थितिवाला कोई व्यक्ति कभी आपको मिला है क्या ?

उत्तर—ठीक स्मरण नही है।

प्रश्न—इस स्थितिका शरीरपर कुछ प्रभाव आता है क्या ?

उत्तर—शरीरपर इसका कोई खास प्रभाव नही आता। हाँ ! कभी किसी ऐसे 'पोज'मे घटो बीत जाते है कि जो अस्वाभाविक है, तो बाह्यवृत्ति आनेपर कुछ असुविधा होती है। जैसे बाह्यवृत्ति लुप्त होनेपर पैर अस्वाभाविक 'पोज'मे रहा तो बाह्यवृत्ति आनेपर जब पैर सीधा करता हूँ या चलता हूँ, तब कुछ देरके लिये कुछ असुविधा अनुभव होती है। यदि स्वाभाविक 'पोज'मे बैठे-लेटे रहनेपर वृत्ति लुप्त होती है तो घटो बीत जानेपर भी शरीरपर उसका कुछ प्रभाव नही आता।

प्रश्न—आजकल आपकी क्या स्थिति है ?

उत्तर—आजकल वृत्ति जगत्‌को कम पकडती है, 'उधर' अधिक जाती है और फिर 'भागवती स्थिति' हो जाती है। कई बार तो अधिक ससारकी वृत्ति शुरू होते ही वृत्ति ससारको छोडकर 'उधर' चली जाती है।

× × ×

भाव-समाधिके कारण श्रीभाईजी प्राय प्रतिदिन जगत्‌के कार्य करनेमे असमर्थ हो जाते थे। स्वजनो-मित्रो आदिके पत्र आते, पर वे उनका उत्तर नही लिख पाते। इससे पत्र लिखनेवालोके मनमे विचार हो जाता। वे श्रीभाईजीको पत्र न देनेके लिये उपालम्भ देते। लोगोंके मनके क्षोभको शमन करनेके लिये विवश होकर श्रीभाईजीको अपनी विवशताकी स्थितिका कुछ परिचय उन्हे कराना पडता। इस प्रकार आत्मीयजनोको लिखे पत्रोमे भी श्रीभाईजीकी इस भाव-समाधि-दशाका कुछ परिचय उपलब्ध होता है। कुछ पत्रोके अश नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं—

श्रीभाईजीको अपनी वृत्तिको जबरन संसारमे लगानेकी चेष्टा करनी पडती थी और उसके फलस्वरूप आन्तरिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता था। अपनी इस विवशताका परिचय उन्होने श्रद्धेय श्रीसेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)को अप्रैल १९६२मे एक पत्रमे दिया था—

"कलकत्ता जानेके पूर्वतक मस्तिष्ककी स्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई एक धारामे चल रही थी। अधिक समय बाहरी ज्ञान नही रहता था—शरीर बेसुध बैठा रहता था। इस धारामे यहाँ कोई बाधा नही थी, कलकत्ता जानेपर बाधा आयी। दिनभर लोगोसे मिलना, बातचीत करना, जाना-आना आदि करना पडता। मस्तिष्क चाहता—किसी भी ऐसी परिस्थितिका स्पर्श न हो—ससार सर्वथा विस्मृत हो जाय और परिस्थिति ससारमे बँधे रहनेको बाध्य करना चाहती थी। बड़ा द्वन्द्व-युद्ध चलता रहता था। दिनमे बात करते-करते गड़बडी हो जाती। वृत्तिको जबरदस्ती ससारमे लगानेकी चेष्टा करनी पड़ती। भूले होती, उन्हे सँभालनेकी चेष्टा करनी होती। लोगोके सामने किसी ऐसी चीजके आनेपर एक तमाशा न बन जाय—इव भावनासे वृत्तियोको ससारमे रहनेके लिये जबरदस्ती करनी पडती। इसका परिणाम यह हुआ कि उस सहज धारामे तो बाधा आयी ही, साथ ही चित्तमे एक विचित्र अशान्ति पैदा हो गयी। रातको १२-१ बजे जब सोने जाता, तब दिनभरकी आघात पायी हुई वृत्ति जबरदस्ती ससारको त्याग देती। संसार नही रहता, तब ससारकी नीद भी नही रहती। लोग समझते, सो रहा है। इस प्रकार राते बीती। कलकत्तेमे शायद ही दो-तीन राते ऐसी बीती होगी, जिनमे मै २-३ घटे सो पाया हूँ।"

श्रीभाईजीकी इस विचित्र विवशताका परिचय उनके इस पत्रसे और भी स्पष्ट हो जाता है—

श्रीहरि

गीताप्रेस, गोरखपुर
दिनाङ्क २४-९-६७

प्रिय भैया,

इस समय भौतिक जगत् बहुत नीचे स्तरपर है और क्रमश नीचेकी ओर ही जा रहा है। इसका परिणाम और भी दुखप्रद होगा। मेरा तो मन आजकल बहुत ही उपरत-सा रहता है। बेचारे लोग आते है—अपनी-अपनी समस्या लेकर पत्रादि भी लिखते है। सभीमे भगवान् है—सबका आदर करना चाहिये, पर मैं कर ही नही पाता। बहुतोकी तो बाते ही आजकल मेरी समझमे नही आती। मन उनको ग्रहण ही नही करना चाहता, मानो ससारकी बातोके ग्रहण करनेकी दृष्टिसे मनको लकवा मार गया हो। दृष्टिकोण ही बदल गया। जो लोग आते है, वे अपने दृष्टिकोणसे अपनी बात ठीक ही कहते है, पर उस दृष्टिकोणके अभावमे मुझे उनकी बातका न कोई महत्व दीखता है न निराकरण ही। बडी विचित्र स्थिति है। इसीसे अधिक समय सर्वथा अकेला कमरेके किवाड बद करके रहता हूँ। न किसीसे मिलनेका मन करता है न किसीको देखनेका ही। कोई आते है, तब बहुत सँभल-सँभलकर बात करता हूँ, जिससे वे अन्य कुछ न समझे, पर उसमे कठिनाई होती है। जीवन-मृत्युमे कोई भेद नही दिखायी देता। पर न मैं अपनी बात किसीको समझा सकता हूँ न कोई समझ ही पाता है। आवश्यकता भी नही है। सबसे यथायोग्य।

तुम्हारा भाई,
हनुमान

अपनी इस विवशताको उन्होने कविता-रूपमे भी लिपिबद्ध किया और उसे 'कल्याण'मे प्रकाशित किया था—

नाथ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान!
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान॥
नही रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोडकर तुमको एक।
मिथ्या जगमे रमनेवाले, रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक॥

आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओकी बात।
सुलझानेका उन्हें पूछते साधन, सविनय कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मै, जब न दीखता कुछ सत्, सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

('कल्याण' वर्ष ४१, अङ्क १०)

'कल्याण'-सम्पादकीय-विभागके सदस्य श्रीशिवनाथजी दुबेको गीताभवनसे ३-६-६८के अपने पत्रमे श्रीभाईजीने लिखा—'आजकल मेरे मस्तिष्ककी जो स्थिति है और जो उत्तरोत्तर बढ रही है, उसे देखते सम्पादनका काम मै कर सकूँगा—यह नही कहा जा सकता। प्रतिदिन ही ५-७ घटे बाह्य चेतना सर्वथा लुप्त रहती है। चेतनाके समय भी बार-बार यहाँका सब कुछ लुप्त होता रहता है।

इसी प्रकार अपनी इस विवशताका विस्तृत परिचय उन्होने अपने एक स्वजनको एक पत्रमे दिया था—

श्रीहरि

गीताभवन
१७-६-६९

प्रिय भैया

सप्रेम हरिस्मरण।

तुम्हारे पत्रादि मिले। भैया, मेरी स्थिति कुछ विचित्र-सी हो रही है। आजकल मस्तिष्क अधिक खराब रहता हे। यहाँ बहुत लोग घरमे ठहरे हुए है। गीताभवनमे भी बहुत भीड है। बहुत लोग मिलना—बात करना चाहते है। मै उनके सामने मस्तिष्कवाली कोई बात प्रकट करना नही चाहता, सबके सतोषके लिये यथासाध्य अपनी स्थितिको छिपाता हुआ सबके साथ मिलना तथा ठीक-ठीक बाते करना चाहता हूँ—इसलिये कई बार बडी कठिनता होती है। सारी वृत्तियाँ जगत्को सर्वथा छोडना चाहती है, दूसरी एक वृत्ति चाहती है—'ऐसा न हो, ठीक चेतना बनी रहे।' अत उस समय बाहरी काम, बाह्य चिन्ता आदिकी ओर वृत्तियोको जबरदस्ती लगाना चाहता हूँ। किसी-किसी बार तो इसमे सफल हो जाता हूँ, परतु अधिक बार यही होता है कि बाह्य-चेतना नही होती। अपने-आप ही लोगोको निराश होना पडता है। जब बाह्य-चेतना आती है, तब चेतना आनेपर भी प्राय कोई वृत्ति जगत्को ग्रहण करना नही चाहती। उस समय ऐसा लगता है कि कभी बाह्य-चेतना हो ही नही—जबतक इस शरीर तथा प्राणका सम्बन्ध है, केवल और केवल वही स्थिति बनी रहे, उससे व्युत्थान हो ही नही। जब बाह्य-चेतना पूरी रहती है, तब भी आजकल बहुत दिनोसे ऐसा ही मन करता है—बडी प्रबल इच्छा होती है कि मै अकेला ही रहूँ। कमरा बद रहे। जहाँ रहूँ, वहाँ भीड-भाड हो ही नहीं। कमरा खुला भी हो तो न कोई मेरे पास आये न मुझसे जगत्की—जगत्के विषयकी, किसी भी प्रकारकी कोई बात की जाय। मेरे सामने कोई विषय-चर्चा ही न हो। मै अकेलेमे मन हो तो कोई काम कर लूँ, नही तो अपने परमार्थ-चिन्तनमे ही लगा रहूँ।

पर अबतकका जीवन बडा भीड-भाडका रहा है। घरके ही नही—सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, सेवा, सहायता, कई ट्रस्ट तथा सस्थाएँ, सत्-साहित्य-प्रचार आदि अनेक विषयोके सैकडो-हजारो झझट अपने ही स्वभावदोपसे ही लगे रहे हे। हजारो-लाखो आदमियोसे परिचय है, पत्र-व्यवहार हुआ हे, कभी कही मिलना हुआ हे। अत स्वाभाविक ही बडे सद्भावसे अपनी-अपनी समस्याओको लेकर लोग मिलना चाहते हैं, पत्र-व्यवहार करना चाहते है। मिलनेपर कोई घरकी बात करता है, कोई अपनी समस्याका समाधान चाहता है, कोई किसी विषयमे परामर्श चाहते है, सहायता चाहते है, सिफारिश चाहते हें, साधनकी बात पूछते है, कोई अपना दु ख सुनाकर दु ख-अशान्तिसे त्राण पानेका उपाय पूछते हैं, कोई धर्म, अध्यातम, राजनीति आदिके सम्बन्धमे सम्मति, सहायता, सहयोग चाहते है। ऐसे हजारो-हजारो प्रश्नोको लेकर लोग मिलते है। मेरा सदाका स्वभाव हे—

किसीको मना करनेमे बडी कठिनता प्रतीत होती है। यह भी ध्यान रहता है कि इन सभी रूपोमे भगवान् है, फिर मै इनका तिरस्कार कैसे करूँ ? भगवान्‌की तो पूजा करनी चाहिये, भगवान् उन सबमे निश्चय हे ही। वहुत-सी वाते सकोचसे ऐसी भी स्वीकार कर लेता हूँ, जो मेरी लौकिक शक्तिसे बाहरकी है। सबसे बडी कठिनाई होती है एक ही कि मै इतने सब रूपोमे भगवान्‌का स्वागत न कर पाकर अकेले ही—सर्वथा अकेलेमे ही अपने भगवान्‌को देखना चाहता हूँ। जन-समूहसे वृत्ति प्रवलतासे हटती रहती है। कभी-कभी ऐसा होता है और आजकल तो रोज ही दिनमे कई वार होता है—मै बात कर रहा हूँ, वृत्तियाँ जगत्‌को छोडने लगी। दीखना-सुनना वद होने लगा। किससे क्या कह रहा था, स्मृति नष्ट हो गयी। कौन थे, यह भी भूल गया। कौन क्या कहता है—समझमे नही आता। इस अवस्थामे वात करते-करते रुक जाना पडता है। कभी तो वृत्ति लौटकर जगत्‌मे आ जाती है—मन-इन्द्रियोका काम सामान्यरूपसे चलने लगता है और फिर ठीक-ठीक व्यवहार होने लगता है। कभी-कभी रही-सही वाह्य-चेतना भी चली जाती है। उस दिन एक सज्जन व्यापारकी बात कहकर राय पूछ रहे थे। दो-चार बाते करके ही मै रुक गया। उन्हे पता नही चला कि मेरे क्या हुआ। कुछ देर वैठकर वेचारे निराश-उदास होकर चले गये। दूसरे दिन आये, तव मैने उनको प्रकारान्तरसे समझाया। एक दिन एक सज्जन अपनी लडकीके विवाहमे शामिल होनेके लिये कह रहे थे, दोनो स्त्री-पुरुष साथ थे। वहुत परिचित—वहुत प्रेम रखनेवाले। मै बात करते-करते रुक गया। आँखे खुली थी। बाहर कोई परिवर्तन नही, पर ससारका अभाव हो गया। इन्द्रियोकी क्रिया वद हो गयी। मै वोलता-वोलता रुक गया। उन्होने मुझे नाराज समझा और वे दुखी होकर चले गये। ऐसी परिस्थितिमे मेरे मनमे आता है कि यदि मुझसे स्नेह रखनेवाले, मेरे प्रति कृपा करनेवाले, मेरे घर-परिवारके लोग ऐसी व्यवस्था कर देते, जिससे मुझे सर्वथा अकेलेमे रहनेकी सुविधा होती, जगत्‌की वात मेरे सामने आती ही नही या वहुत अच्छा होता—जैसे कोई पागल हो जाय, मर जाय तो उससे फिर कोई कुछ आशा नही रखता, वैसे ही।

शरीरकी बीमारीमे ऐसी कुछ शान्ति सहज ही मिल जाती है। लोग स्वाभाविक ही कम मिलते-जुलते है। घरवाले भी डिस्टर्ब करना नही चाहते—आनेवालोको भी वे समझा देते है—उस समय ऐसा मन होता है कि शरीरकी नीरोगतासे तो यह रोग ही अच्छा—यही बना रहे तो कुछ तो राहत मिले।

ऐसी स्थितिमे क्या किया जाय, कुछ समझमे नही आता। अभी रातके साढे तीन बजे है। बीच-बीचमे वृत्तियाँ चेतनाको छोड रही है। बडी मुश्किलसे रुक-रुककर ऊपरकी पङ्क्तियाँ लिख पाया हूँ। तुम सोचना—मेरी कैसे क्या व्यवस्था हो ? लोगोको भी दुख न हो और मेरा **'अरतिर्जनससदि'** का भी निर्वाह हो जाय।

तुम्हारा भाई,
हनुमान

यह है श्रीभाईजीकी भाव-समाधि-दशाका सक्षिप्त परिचयमात्र। भगवान्‌की कृपा हुई तो भविष्यमे इसपर विशेष प्रकाश डाला जायगा।

[४]

एक सम्मान्य महात्माको श्रीभाईजीद्वारा अपनी स्थितिके सम्बन्धमे लिखा गया पत्र

(एक अच्छे सन्यासी महात्मा श्रीभाईजीके पास कभी-कभी आते थे तथा उनसे एकान्तमे वार्ता करके चले जाते थे। समय-समयपर वे पत्रद्वारा भी श्रीभाईजीसे कुछ पूछते रहते थे। श्रीभाईजी उनसे अपने जीवनकी, साधनाकी, अनुभूति आदिकी बाते प्राय छिपाते न थे। उन महात्माके पत्रोका उत्तर लिखते समय भी वे वहुत खुल जाते थे। नीचे उन्ही महात्माको श्रीभाईजीद्वारा लिखा गया पत्र दिया जा रहा है। इस पत्रसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भाईजी भगवान्‌के 'विशेष कार्य'के लिये ही धराधामपर पधारे थे।)

श्रीहरि

गीताभवन, स्वर्गाश्रम
आषाढ शुक्ल ५, स० २०२६

सम्मान्य श्री

सादर प्रणाम।

आपका पत्र मिला था। आपने मेरे शरीरके सम्बन्धमे चिन्ता प्रकट की, यह आपकी कृपा है। आप जानते है—पाञ्चभौतिक शरीर विनाशी है। इससे वास्तवमे हमारा क्या सम्बन्ध है। यह तो नाश होगा ही। इसके लिये कुछ भी चिन्ता नही है। भगवत्कृपा तथा आप गुरुजन-स्नेहियोकी सद्भावनासे मैं 'स्वस्थ' हूँ। फिर, मेरा तो यहाँ वास्तवमे अब कोई काम भी नही रहा, जिस कार्यके लिये इस पाञ्चभौतिक शरीरके माध्यमसे मुझे भेजा गया था, उनका वह कार्य पूरा हो गया। जो कुछ मेरेद्वारा होना अभीष्ट था, वह हो गया। उसका फल निश्चय ही बहुत ही श्रेयस्कर—'उनके' इच्छानुसार हुआ है, पर वह क्या है, आगे क्या होगा, यह जाननेकी न मुझे आवश्यकता है न इच्छा। यन्त्रको तो जैसे घुमाया, घूम गया। क्यो घुमाया, घुमानेका क्या परिणाम होगा—यह घुमानेवाले यन्त्री जाने। इसके अतिरिक्त एक बात और है—इस समय जगत् पतनोन्मुख है। कोई क्षेत्र भी ऐसा नही है—आध्यात्मिक कहे जानेवाले उच्चस्तरसे लेकर चोरी-डकैती, अनाचार-व्यभिचारके निम्न स्तरतक—जिसमे दम्भ, नीच स्वार्थ, राग-द्वेष, काम-लोभ, मद-अभिमान, ईर्ष्या-वैर आदि न आ गये हो। अत इस ससारमे—इस देहमे मैं रहना भी नही चाहता। यद्यपि सब भगवान्की ही लीला है या मायामात्र है, तथापि देह व्यावहारिक जगत्मे है और वह व्यावहारिक जगत् इस समय गिरते-गिरते बहुत नीचे स्तरपर आ गया है, और उसके नीचे गिरनेकी गति रुकी नही है, वर उत्तरोत्तर जोर पकड रही है। ऐसी स्थितिमे इस व्यावहारिक जगत्मे, इस देहमे रहना भी निरर्थक है। ऐसी कोई कामना तनिक भी नही है कि शरीर जल्दी चला जाय, या रहे, पर जल्दी चला जाय—यह अच्छा लगता है। न जायगा तो भी प्रसन्नता है।

मेरी यथार्थ स्थिति और जीवनकी घटनाओका किसीको भी पूरा पता नही है। लोग मेरे प्रेमी बने श्रद्धासे मेरी जीवनी या सस्मरण लिखते है, पर उनमे वे यथार्थसे बहुत दूर—केवल बच्चोकी-सी अपने मनोऽनुकूल बातोको—सो भी अपनी दृष्टिके अनुसार लिखते है। उनसे यथार्थ वस्तुका पता कभी नही लग सकता। रही श्रीराधामाधवकी अनुभूतिकी, सो जब मेरी ही बात लोग नही जानते, तब श्रीराधामाधवके स्वरूपकी बात कैसे जानेगे?

आजकल अधिकतर मेरा इस जगत्से कोई सम्बन्ध भीतरसे नही है। कार्यकालमे—बाहर भी बहुत ही थोडा है। और जब जगत्की सर्वथा अनुभूति मिट जाती है, उस समय तो भीतर-बाहर कही भी जगत् नही रह जाता। एकमात्र वे ही रह जाते है। यह कोई ध्यान या समाधि नही है, जिसका किसी अभ्याससे सम्बन्ध हो, न किसी क्रियाका ही फल है। यह तो उनकी अपनी लीलाकी एक विलक्षण स्फूर्ति है या उनकी लीलाकी लीला है—जो अत्यन्त ही दुर्लभ है। यही वास्तवमे ठीक-ठीक स्वरूपका साक्षात्कार होता है। कई बार ऐसा विचार होता है कि इस लीलाकी कुछ, किसी अशमे अनुभूति अमुक-अमुकको भी हो जाती, पर लीलामयका सकेत इसे स्वीकार नही करता और वह जो कुछ कहता है, वही ठीक है।

जगत्का क्या होगा—इस स्तरमे उसे जाननेकी न इच्छा है न आवश्यकता। सृजन-सहार इसका स्वरूप ही है। जैसा कुछ उनकी बाह्यलीलाका विधान बन चुका है, वह सामने आता जायगा। कोई यदि चाहे और क्षमता हो तो उसे देखता रहे। नही तो, अलग जहाँ है, वही बना रहे। इसकी ओर देखे ही नही।

आपके प्रश्न तो बहुत है, और है भी महत्वके, पर इतनेमे ही उनका उत्तर समझ ले। आपके सामने—किसीके सामने भी उन सब चीजोको प्रकट करनेका निषेध है। जिन बातोको आपके सामने प्रकट करनेमे सकोच न करनेका आदेश है, वे बाते वहीतक लिखी गयी है। इसके आगे बढनेका सकेत नही है।

जितना, जो कुछ, जिसके लिये मुझसे करवाना अभीष्ट था, उतना वे मुझसे करवा चुके। इसका परिणाम भी वैसे बहुत ही मङ्गलमय हुआ है तथा दूरतक एव दीर्घकालतक व्यापक होगा, पर अभी अव्यक्तरूपसे स्थित है। कभी शायद प्रकट हो, या न भी हो। मुझे यह जाननेकी इच्छा नही है।

वस, इतना ही।

आपका—

हनुमानप्रसाद पोद्दार

[५]

श्रीभाईजीको श्रीनारदजीके दर्शन

एक सामान्य जिज्ञासुने मई सन् १९७०मे श्रीभाईजीसे प्रश्न किया—

प्रश्न—आपके लेखोमे पढा है कि नारद आदि ऋषियोके दर्शन आज भी होते है। आपने यह वात अपने विश्वाससे लिखी है, या अनुभवसे ?

उत्तर—पहले मेरा यह विश्वास था, पीछे मुझे इसका अनुभव भी हुआ। सन् १९३६मे यहाँ गोरखपुरमे गीतावाटिकामे एक वर्षके लिये अखण्ड सकीर्तन हुआ था। शिमलापालमे नारद-भक्तिसूत्रोपर मैने एक विस्तृत टीका लिखी थी। वह टीका उन दिनो प्रकाशित हो रही थी। भागवतकी कथामे भी नारदजीका प्रसङ्ग सुन रखा था। इन सव हेतुओसे उन दिनो नारदजीके प्रति मनमे वडी भावना पैदा हुई। मनमे वार-वार नारदजीके दर्शनोकी लालसा जगने लगी।

एक दिन रात्रिमे स्वप्नमे दो तेजोमय ब्राह्मण दिखायी दिये। मै उन्हे पहचान न सका। परिचय पूछनेपर उन्होने वतलाया कि वे नारद और अङ्गिरा है। पीछे उन्होने कहा—'हम कल दिनमे ३ वजे तुमसे मिलनेके लिये प्रत्यक्षरूपमे आयेगे।' यह स्वप्न प्राय जाग्रत् अवस्थाके समयका था और इतना स्वाभाविक था कि मुझे उसमे कोई सदेह नही रहा। मैंने पीछे वगीचेमे इमलीके पेडके नीचे एक कुटिया साफ करवाकर उसके सामने एक वेच लगवा दी और उसपर दो आसन लगा दिये। मैने किसी व्यक्तिसे भी इसकी चर्चा नही की। मै स्वय अपने निवास-स्थानके वाहर वरामदेमे वैठ गया और उनकी प्रतीक्षा करने लगा। ठीक ३ वजे दो ब्राह्मण आये और उन्होने मुझसे मिलना चाहा। मै उन्हे पहचान गया। ठीक वही आकृति, वही स्वरूप, जो स्वप्नमे मैने देखा था। मै पीछे वगीचेमे वढने लगा और वे मेरे पीछे-पीछे चलने लगे। हमलोग उस एकान्त कुटिया-पर पहुँचे। उन दोनोको मैने वेचपर लगे हुए आसनोपर वैठा दिया, मै नीचे वैठ गया। दोनो ब्राह्मण सफेद कपडे पहने हुए थे। पर आसनपर बैठते ही दोनोका वास्तविक रूप प्रकट हो गया। वडा ही भव्य दर्शनीय रूप था। वे कुछ देर वैठे रहे और उन्होने मुझे कुछ वाते कही। पीछे उन्होने कहा—'जव कभी याद करोगे, तव हम आ जायँगे।' परतु उसके बाद मुझे इसकी कभी जरूरत नही पडी और मैने उन्हे याद नही किया।

नारदजीसे वार्तालाप होनेके पहले मेरे मनमे यह वात आती थी कि भगवान्का सगुण रूप दिव्य है, चैतन्य है, भगवद्रूप है। परतु कभी-कभी अद्वैतके प्रवचनोको सुननेसे उसमे थोडा सदेह हो जाता था कि भगवान् विष्णु, राम, कृष्ण—इनका स्वरूप कही मायिक तो नही है। अद्वैत-प्रवचनोमे यह सुननेको मिलता था कि एकमात्र ब्रह्मतत्व ही सत्य है। इसीसे यह सदेह उत्पन्न होता था। गोरखपुर आनेके वाद यह सदेह वहुत कुछ नष्ट हो चुका था, पर फिर भी कभी-कभी इस प्रकारकी वृत्ति आ जाती थी।

नारदजीने वताया कि—'सत्य एक है, तत्व एक है, वही सत्य—वही तत्व इन भगवत्स्वरूपोमे नित्य प्रकट है। वे स्वरूप कभी प्रकट होते है, फिर मिट या मर जाते है—ऐसी वात नही है। महाप्रलय त्रिगुणात्मक प्रकृतिमे होता है। त्रिगुणात्मक प्रकृति जव साम्यावस्थामे आती है, तव महाप्रलय होता है और प्रकृतिजनित पदार्थ उसमे लय हो जाते है और प्रकृतिके सम्बन्धको लेकर जो जीव-जगत् है, वह उस समय उस प्रकृतिमे आकर खो

जाता है। फिर भगवान्‌के सङ्कल्पसे प्रकृतिकी सृष्टि आरम्भ होती है। तब वह जीव-जगत् अपने पूर्वके अवशेष कर्मोंको लेकर प्रकृतिसे फिर प्रकट होता है और ये जगत्‌के व्यापार फिरसे चालू हो जाते हैं। दिव्य जगत्‌के जो भगवत्स्वरूप हैं, उनको किसी स्थानकी आवश्यकता नहीं है। दिव्य जगत्‌के जो दिव्य लोक हैं, वे एक ही लोकके विभिन्न नाम और विभिन्न स्वरूप हैं और वहाँ जो भगवत्स्वरूप हैं उनको किसी मायिक आधारकी आवश्यकता नहीं है। वे नित्य हैं, सत्य हैं उनके लोक नित्य और सत्य हैं। उन लोकोंमें समस्त पदार्थ भगवत्स्वरूप ही हैं। वे प्रलयमें नष्ट नहीं होते। वे अनादि हैं—अनन्त हैं, यह बात निश्चितरूपसे मान लेनी चाहिये। व्यासने ऐसा ही माना है शङ्कराचार्यने भी ऐसा ही माना है और पहलेके ऋषि तो यह मानते ही थे।'

नारदजीके उपदेशके बाद इस सत्यपर दृढ़ निश्चय हो गया और फिर तो अनुभव भी कुछ होने लगा कि ये भगवत्स्वरूप नित्य हैं चिन्मय हैं, इनमें कोई भेद नहीं। मायाका इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं। जितने भी भगवत्स्वरूप हैं, उनमें जो परस्पर द्वन्द्व दिखायी पड़ता है—पुराणोंमें जो कहीं शिवकी महिमा, कहीं विष्णुकी महिमा, कहीं देवीकी महिमा, कहीं श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन है, वह वहाँ-वहाँपर उन-उन स्वरूपके महत्त्वको बतलानेके लिये है न कि भगवत्स्वरूपोंमें परस्पर ऊँचा-नीचा भाव दिखलानेके लिये। बहुत स्थलोंपर ऐसी बात कही जाती है कि 'जो विष्णु हैं, वे ही शिव हैं, देवी हैं और जो देवी हैं शिव हैं, वे ही विष्णु हैं, आदि-आदि।' अर्थात् सभी भगवत्स्वरूप चिन्मय हैं—एक ही भगवत्स्वरूपके अनेक नित्य स्वरूप हैं। अनेक स्वरूप बनते हों, यह बात नहीं है। श्रीकृष्ण बनते हैं, राम बनते हैं, दुर्गा बनती हैं—ऐसी बात नहीं है। वे सब नित्य स्वरूप हैं और सब एक ही भगवान्‌के स्वरूप हैं। एक ही विभिन्न रूपोंमें लीलायमान हैं। अतएव किसी भी स्वरूपको छोटा-बड़ा नहीं मानना चाहिये। जो जिस भगवत्स्वरूपकी उपासना करता है उसे उस उपासनाको छोड़ना नहीं चाहिये। उसे यह समझना चाहिये कि सब स्वरूप हमारे उपास्यदेवके ही हैं। इस मान्यतासे अपने स्वरूपके प्रति अनन्यता हो गयी और अन्य स्वरूपोंके प्रति विरोध भी नहीं हुआ। श्रीनारदजी महाराजके उपदेशके पश्चात् मेरे जो प्रवचन होते थे तथा मैं 'कल्याण'में जो कुछ भी लिखता था, उसमें इस मान्यताका प्रतिपादन हुआ है। शैव वैष्णवोंका विरोध करते हैं और वैष्णव शैवोंका शाक्तोंका—यह सब अज्ञान है। किसीका विरोध करनेकी आवश्यकता नहीं है। अपना इष्ट ही विभिन्न भगवत्स्वरूपोंमें विद्यमान है। निर्गुण ब्रह्म भी वे ही हैं। निर्गुण ब्रह्म शक्तिरहित नहीं हैं। शक्ति और शक्तिमान्‌में अभेद है। जहाँ शक्ति है वहाँ शक्तिमान् है और जहाँ शक्तिमान् है, वहाँ शक्ति है, दोनों एक ही वस्तु हैं। साकार रूपमें प्रकट होनेपर शक्ति जहाँ क्रियारूपमें लीला करती है, वहाँ शक्तिके दर्शन होते हैं, निर्गुण तत्त्वमें ऐसी क्रिया नहीं दिखायी देती। वहाँ शक्ति अन्तर्निहित है—शक्तिका अभाव नहीं है। इसीको निर्विशेष स्वरूप कहते हैं—निर्विशेषका अर्थ 'शक्तिरहित' नहीं है।

प्रश्न—नारद वीणा लिये हुए थे क्या? वे आपसे किस भाषामें वार्तालाप कर रहे थे?

उत्तर—नारदजी वीणा लिये हुए नहीं थे। वे मुझ-जैसी वाणीमें बोल रहे थे। वे जिस व्यक्तिके सामने प्रकट होते हैं, उससे वे उसकी समझमें आनेवाली भाषामें बोलते हैं—बंगालीके सामने बँगलामें बोलते हैं, अंग्रेजी समझनेवालेके सामने अंग्रेजीमें बोलते हैं संस्कृत जाननेवालेके सामने संस्कृतमें। वे समस्त भाषाएँ बोल सकते हैं।

[६]

शिव-शक्तिकी कृपा-प्राप्ति

श्रीभाईजीको भगवान् शङ्करकी भी कृपा प्राप्त हुई थी। संवत् १९९०के आरम्भकी बात है। श्रीभाईजी रतनगढ़में थे। शिवाङ्कका सम्पादन हो रहा था। एक दिन इनके मनमें प्रश्न उठा कि 'शिवतत्त्व ब्रह्मतत्त्वसे और विष्णुतत्त्वसे पृथक् है या एक है? शास्त्रोंमें कहीं एकताकी बात आयी है और जहाँ-तहाँ पार्थक्यकी भी। कहीं विष्णुकी महिमा आती है, कहीं शिवकी महिमा। मनमें ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि उसी दिन भगवान् शङ्कर दिखायी दिये और देखते-देखते विष्णु हो गये और विष्णुसे फिर शिव हो गये तथा हँसते रहे दोनों ही रूपोंमें।

ऐसी अनुभूति होनेसे इनको यह निश्चय हो गया कि शिव और विष्णु या ब्रह्म एक ही है। इस अनुभूतिके आधारपर श्रीभाईजीने 'शिवाङ्क'मे यही प्रतिपादित किया कि शकर और विष्णु एक ही है, कभी शिव विष्णु-की उपासना करते है और कभी विष्णु शिवकी।' पीछे तो इनको इसका प्रमाण रामचरितमानसमे उपलब्ध हो गया––'सेवक स्वामि सखा सिय पी के।' पद्मपुराणमे भी देखनेको मिला कि भगवान् राम शिवकी उपासना करते है और भगवान् शिव रामकी। शिवपुराणमे भगवान् शिवका वाक्य मिला––'मै ही विष्णु बन जाता हूँ और मै ही शिव बन जाता हूँ। दोनो एक ही है।' भागवतमे भी आया है कि भगवान् श्रीकृष्णने शिवकी उपासना ही नही, सकाम उपासना की। इस प्रकार शिव-विष्णुकी एकताका ज्ञान हुआ।

वैसे भाईजी बचपनमे भागवान् शिवकी उपासना करते थे। कलकत्तामे इनके घरके बगलमे शिवजीका मन्दिर था। वहाँ ये प्रतिदिन जाते, थोडी देर बैठते, शिवजीपर बिल्वपत्र चढाते, पूजा करते और 'ॐ नम शिवाय'की एक-दो मालाका जप करते। पर शिवके सम्बन्धमे इन्हे कोई अनुभव नही हुआ था।

इसी प्रकार जब 'शक्ति-अङ्क'की तैयारी हो रही थी, उन दिनो भाईजीको शक्ति-तत्वकी भी कृपा प्राप्त हुई थी। उसी अनुभूतिके आधारपर श्रीभाईजीने 'शक्ति-अङ्क'मे शक्ति-तत्वपर लिखा था।

[७]

महामना मालवीयजीके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध

(श्रीभाईजीके शब्दोमें)

"प्रात स्मरणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय लगभग सन् १९०६से था। उस समय मै कलकत्तामे रहता था। वे जब-जब पधारते, तब-तब मै उनके दर्शन करता। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढती ही गयी। उनके साथ कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया था। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मै उन्हे परम आदरणीय पितासे भी बढकर मानता। इस नाते मै उन्हे 'पण्डितजी' न कहकर सदा 'बाबूजी' ही कहता। घरकी सारी बाते वे मुझसे कहते। कुछ समय तो मै उनके बहुत ही निकट-सम्पर्कमे रहा, इसलिये मुझको उन्हे बहुत समीपसे देखने-समझनेका अवसर मिला। उनकी बहुमुखी प्रतिभा थी और उनका कार्यक्षेत्र भी बडा विस्तृत था। वे परम धार्मिक होनेके साथ ही बहुत सुलझे हुए राजनीतिक थे। शिक्षा-विस्तार––प्राचीन सनातनधर्मकी रक्षा करते हुए जनतामे सत्-शिक्षाका प्रसार तो उनके जीवनका प्रधान कार्य था। यहाँ उनके पवित्र जीवनके कुछ सस्मरण सक्षेपमे लिखकर मै अपनेको पवित्र करता हूँ––

१––वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रात काल मै उनके चरणोमे बैठा था। वे अकेले ही थे। बडे स्नेहसे बोले––"भैया ! मै तुम्हे आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमे प्राप्त किया था। बडी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नही दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमे चीज छोटी-सी दीखेगी, पर है महान् 'वरदानरूप'।" इस प्रकार प्राय आध घटेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढती गयी। मैने आतुरतासे कहा––'बाबूजी ! जल्दी दीजिये, कोई आ जायेगे।'

तब वे बोले––"लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मै अपनी माताजीके पास गया ओर बडी विनयके साथ मैने उनसे यह वरदान माँगा कि 'मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मै कही भी जाऊँ, सफलता प्राप्त करूँ।'

"माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रक्खा और कहा––'बच्चा ! बडी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कही भी जाओ, तब जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।'

मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो, मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—मेरी माताकी दी हुई परम दुर्लभ वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।' यों कहकर महामना गद्गद हो गये।

मैंने उनका वरदान सिर चढाकर स्वीकार किया और इससे बडा लाभ उठाया। अब तो ऐसा हो गया है कि घरभरमें सभी इसे सीख गये हैं। जब कभी घरसे बाहर निकला जाता है, तभी बच्चे भी 'नारायण-नारायण' उच्चारण करने लगते हैं। इस प्रकार रोज ही—किसी दिन तो कई बार 'नारायण'की और साथ ही पूज्य मालवीयजीकी पवित्र स्मृति हो जाती है।

२—जब मैं बम्बईमें रहता था, अमृतसरमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। लोकमान्य तिलक उसके अध्यक्ष थे। मैं अपने एक तरुण मित्रके साथ बम्बईसे अमृतसर पहुँचा। दिसबरका अन्त था। उस साल कुछ ही दिनों पहले अमृतसरमें भयानक वर्षा हुई थी। पंजाबकी सर्दी प्रसिद्ध है और इस वर्षाके कारण वहाँ सर्दी बहुत ही बढी हुई थी। हमलोगोंने बम्बईमें सर्दी देखी नहीं थी, इससे साधारण कपडे ले गये थे। दोनोंके पास ओढने-बिछानेके लिये एक-एक चद्दर और एक-एक हल्का-सा कम्बल था।

अमृतसरमें हमलोग महामना मालवीयजीके डेरेपर जाकर ठहरे। एक बडी धर्मशालामें वे ठहराये गये थे। शायद महात्मा गांधीजी भी उसीमें ठहरे थे। रातको हम दोनों दो चारपाइयोंपर सो गये। शरीर ठिठुर रहा था। छातीपर घुटने दिये पडे थे। कम्बलसे मुँह ढक रक्खा था, पर शरीर काँप रहा था। रातको ९ बजे होंगे। महामना मालवीयजी सबको सँभालते हुए हमलोगोंकी चारपाइयोंके पास आये। मुँह ढके सिकुडे सोये देखकर उन्होंने पूछा—'कौन हो? कहाँसे आये हो? खाया कि नहीं?' मैंने मुँहपरसे कपडा हटाया। तुरत उठकर खडा हो गया और चरणस्पर्श किया। मेरे साथीने भी उठकर चरणस्पर्श किया। हमलोग काँप रहे थे। उन्होंने मुझे पहचानकर पूछा—'कपडे कहाँ हैं?' मैंने कहा—'बिछा-ओढ रक्खे हैं न?' वे बोले—'बस, ये कपडे हैं? तुम्हें पता नहीं था क्या, यहाँ कितने कडाकेका जाडा पडता है? अमृतसरको बम्बई समझ लिया?' यह कहते-कहते ही उन्होंने अपने साथ आये हुए एक पंजाबी सज्जनसे कहा—'जल्दी आठ कम्बल लाइये।' फिर पूछा—'खाया कि नहीं?' मैंने कहा—'खा लिया।' फिर बोले—'देखो, तुमने बडी गलती की, जो मुझसे कहा नहीं। यह तो मैं आ गया, नहीं तो तुमलोगोंको रातको बडा कष्ट होता और पता नहीं, इसका क्या नतीजा होता। क्यों इतना संकोच किया?' मैं क्या उत्तर देता। इतनेमें दो-तीन आदमी आठ मोटे कम्बल ले आये। दो-दो कम्बल हमारी चारपाइयोंपर बिछा दिये गये और दो-दो हमलोगोंके ओढनेके लिये रख दिये गये। गरम चाय मँगवाकर दोनोंको पिलायी। जबतक हमलोग चाय पीकर सो न गये, तबतक वे वहीं एक कुरसीपर बैठे रहे। हमलोग उनके जानेपर ही सोना चाहते थे, पर उन्होंने कहा—'तुमलोग ओढकर सो नहीं जाओगे, तबतक मैं नहीं जाऊँगा।' इसलिये हमें सोना पडा। उनकी यह ममता देखकर हमलोगोंका हृदय भर आया।

३—मालवीयजीके चार लडके थे—रमाकान्त, राधाकान्त, मुकुन्द और गोविन्द। इनमेंसे मुकुन्दको मालवीयजीने मेरे पास बम्बई भेज दिया था—वे वहाँ बहुत दिनोंतक रहे। पीछे दूसरे लडके राधाकान्त भी वकालतको छोडकर इलाहाबादसे बम्बई चले गये—सट्टेका व्यापार करने। राधाकान्तजीको एक ज्योतिषी मित्रने बताया—'आपको सट्टेमें बहुत पैसा मिलेगा।' मित्रकी सलाहपर विश्वास करके राधाकान्तजी सट्टेका व्यापार करने लगे। राधाकान्तजी बरबाद हो गये। इन्हीं दिनों मेरा काशी जाना हुआ। मैं मालवीयजीसे मिलने गया। वे राधाकान्तकी बरबादीके कारण बहुत दुःखी थे।

मेरे वम्बई पहुँचनेके वाद शीघ्र ही मालवीयजीका एक तार मिला, जिसमे लिखा था,—"तुम राधाकान्तको कहो, विश्वासपूर्वक आर्तभावसे 'गजेन्द्रमोक्षस्तोत्र'का पाठ करे, ऋण उतर जायगा।" मैने मालवीयजीका यह आदेश राधाकान्तको वतला दिया, किंतु उन्होने इसपर कोई ध्यान नही दिया। पीछे मालवीयजीका एक पत्र भी मिला। उसमे उन्होने 'गजेन्द्रमोक्षस्तोत्र'-पाठके महत्त्वविषयक अपने अनुभवोकी चर्चा करते हुए लिखा था—'मै नाकतक ऋणमे डूब गया था। मैने गजेन्द्रमोक्षका विश्वासपूर्वक आर्तभावसे पाठ किया और मेरा ऋण उतर गया।'

४—श्रीवालूरामजी 'रामनामके आढतिया'के साथ हमलोग गाधीजीके पाससे मालवीयजीके यहाँ गये थे। मालवीयजी राजा गोविन्दलालजी पित्तीके मकानमे ठहरे हुए थे। जाकर हमलोगोने उन्हे प्रणाम किया। मालवीयजीने पण्डितजीका परिचय पूछा। मैंने उनका पूरा परिचय दिया और उनको साथ लिवा लानेका हेतु वताया। मालवीयजीने वडे ही प्यारसे पूरा विवरण सुना, वार-वार पूछा और पण्डितजीकी वडी प्रशसा की। पीछे उन्होने अपने हस्ताक्षर कर दिये। वे वडे चतुर थे। ठीक उन्हीके शब्द है—'जवसे मैने होश सँभाला है, तवसे प्रतिदिन नाम-जप करता हूँ और जवतक होश रहेगा, प्रतिदिन करता रहूँगा।'

मालवीयजीके प्यारकी और भी अनेक स्मृतियाँ है।"

[८]
वापूके साथ आत्मीयताका सम्बन्ध

"वापूके साथ मेरा वहुत अधिक सम्पर्क रहा है और मैने उनको वहुत निकटसे देखनेके सुअवसर प्राप्त किये है। उनसे परिचय तो मेरा वहुत पुराना (सन् १९१५से) था और निकटका था, पर जव मै वम्वईमे रहता था, तव महात्माजी सावरमती आश्रम, अहमदावादमे निवास करते थे। उस समय मै वीच-वीचमे कई वार आश्रममे भी जाया करता था। वे जव वम्वई पधारते, तव स्वर्गीय भाई जमनालालजी वजाजके साथ व्यावसायिक कार्य करनेके कारण उनकी ओरसे महात्माजीके सारे आतिथ्यका काम मेरे ही जिम्मे रहता था। महात्माजी वम्वईमे मेरे घरपर भी कई वार पधारे थे। उनका मेरे साथ सम्वन्ध प्राय वैसा ही कौटुम्विक था, जैसा उनके अपने पुत्र भाई देवदासके साथ था।"

वापूके सम्वन्धकी अनेको मधुर स्मृतियाँ है। कुछ यहाँ दी जा रही है—

१—"गाधीजी वम्वई पधारे हुए थे और जुहूमे ठहरे थे। उस समय वे कुछ वीमार थे। मै और शान्तिदेवी वहिन गाधीजीसे मिलनेके लिये गये। उन दिनो गाधीजीका एक पत्र 'नवजीवन' गुजरातीमे निकलता था। जव हमलोग जुहू जा रहे थे, तव रास्तेमे हमे 'नवजीवन'की प्रति मिली। उसमे छपा था—'गाधीजी वीमार है, उनसे मिलनेके लिये कोई न जाय।' हमलोग उस समयतक जुहूके समीप पहुँच गये थे। मनमे आया—'समीप आ गये है, वँगलेतक हो आये, फिर लौट जायेंगे, मिलेगे नही।' गाधीजीके निवासपर पहुँचनेपर भाई देवदास हमे नीचे मिले। हमलोगोंने उनसे वापूके स्वास्थ्यके विषयमे पूछा और लौटने लगे। भाई देवदासने कहा—'आपलोग आये है, वापूको खवर तो दे दूँ। उतनी देरीतक ठहरिये, लौटते क्यो है?' भाई देवदास ऊपर गये और लौटकर वोले—'आपलोगोंको वापूने ऊपर वुलाया है।' अव तो हमलोग विवश थे। हमलोग ऊपर गये और वापूको प्रणाम किया। वे हँसकर डाँटते हुए वोले—'लौट क्यो रहे थे?' मैने कहा—'वापू! 'नवजीवन'मे छपा है, इसलिये लौट रहा था।' वोले—'यह धनवालोके लिये छपा है क्या? देवदास यहाँ नहीं रहेगा क्या?' फिर उन्होने समझाया—'सो यह तो उनलोगोंके लिये है, जो यहाँ आये और शिष्टाचारके नाते उनसे मुझे वोलना ही पडे—चाहे मुझे वोलनेमे कष्ट ही हो। मैं यदि उनसे न वोलूँ तो उनको कष्ट हो, दुःख हो। इसलिये उनलोगोंको आनेसे रोक दिया है। तुम आओ, तुमसे मैं एक शब्द भी न वोलूँ। तुम वैठे रहो, तुमसे न वोलूँ तो तुम्हे उससे

तनिक भी विचार नही होगा। अतएव तुम्हारे आनेमे मुझे क्या सकोच है ? आये हो, कुछ देर बैठो।' हमलोग कुछ देर बैठे, फिर लौट आये।"

२—"बापू बम्बई पधारे थे लेवरनम रोडपर ठहरे थे। उस समय मेरे साथ बालूरामजी नामके एक सज्जन, जो राजस्थानके थे और 'रामनामके आढतिया' कहलाते थे, ठहरे हुए थे। श्रीजमनालालजी बजाज भी बम्बईमे थे। मैं, जमनालालजी बजाज तथा रामनामके आढतिया—तीनो गाधीजीके पास गये। गाधीजीने पण्डितजीका पूरा परिचय पूछा। बालूरामजीने अपनी बही खोलकर सामने रख दी और बोले—'इसपर सही करो और नाम-जप करो।' वे ऐसे ही बोलते थे। हमलोगोने गाधीजीको सब बात बतायी। वे बडे प्रसन्न हुए। बोले—'भगवान्मे लोगोको लगाना बडा अच्छा काम है।' थोडी देर रुककर बोले—'देखिये, आप कहे तो मैं सही कर दूं। पर एक बात है—जब मैं अफ्रीकामे था, तब सख्यासे नाम-जप करता था, पर अब तो मेरा दिनभर नाम-जप चलता है। जब उसकी सख्या नही है, तब उसको सख्यामे क्यो बाँधते है ?' इसपर जमनालालजीने कहा—'बापू ! आपको सही करनेकी आवश्यकता नही है।' बापूने सही नही की।"

३—"'कल्याण'का 'भगवन्नामाङ्क' निकलनेवाला था। सेठ जमनालालजीको साथ लेकर मैं बापूके पास गया, रामनामपर कुछ लिखवानेके लिये। बापूने हँसकर कहा—'जमनालालजीको साथ क्यो लाये हो। क्या मैं इनकी सिफारिश मानकर लिख दूँगा ? तुम अकेले ही क्यो नही आये ?' सेठजी मुस्कराये। मैंने कहा—'बापूजी, बात तो सच है, मैं इनको इसीलिये लाया था कि आप लिख ही दे।' बापू हँसकर बोले, 'अच्छा, इस बार माफ करता हूँ, आइन्दा ऐसा अविश्वास मत करना। फिर कलम उठायी और तुरत नीचे सदेश लिख दिया—

'नामकी महिमाके बारेमे तुलसीदासजीने कुछ भी कहनेको बाकी नही रक्खा है। द्वादश मन्त्र, अष्टाक्षर इत्यादि सब इस मोहजालमे फँसे हुए मनुष्यके लिये शान्तिप्रद हैं। इसमे कुछ भी शङ्का नही है। जिससे जिसको शान्ति मिले, उस मन्त्रपर वह निर्भर रहे। परतु जिसको शान्तिका अनुभव ही नही है और जो शान्तिकी खोजमे है, उसको तो अवश्य राम-नाम पारसमणि बना सकता है। ईश्वरके सहस्र नाम कहे जाते है, इसका अर्थ यह है कि उसके नाम अनन्त है गुण अनन्त हैं। इसी कारण ईश्वर नामातीत और गुणातीत भी है। परतु देहधारीके लिये नामका सहारा अत्यावश्यक है और इस युगमे मूढ और निरक्षर भी रामनामरूपी एकाक्षर मन्त्रका सहारा ले सकता है। वस्तुत 'राम' उच्चारणकी दृष्टिसे एकाक्षर ही है और ओकारमे और राममे कोई फरक नही है। परतु नाम-महिमा बुद्धिवादसे सिद्ध नही हो सकी है, श्रद्धासे अनुभवसाध्य है।'

सदेश लिखकर मुस्कराते हुए बापू बोले—'तुम मुझसे ही सदेश लेने आये हो जगत्को उपदेश देनेके लिये या खुद भी कुछ करते हो ? रोज नामजपका नियम लो तो तुम्हे सदेश मिलेगा, नही तो मैं नही दूँगा।' मैंने कहा—'बापू, मैं कुछ जप तो रोज करता ही हूँ, अब कुछ और बढा दूँगा।' बापूने यह कहकर कि—'भाई, बिना कीमत ऐसी कीमती चीज थोडे ही दी जाती है'—मुझे सदेश दे दिया। सेठजीको कुछ बाते करनी थीं। वे ठहर गये। मैंने चरणस्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके लौट आया।"

४—"गोरखपुर आने (अर्थात् अगस्त १९२७)के पश्चात् किसी कामसे मैं बम्बई गया था और वहाँसे रतनगढ जा रहा था। उस समय अहमदाबाद होकर गाडी जाती थी। बम्बईसे चलकर जब गाडी बदलनेके लिये मैं अहमदाबाद उतरा, तब गाधीजीके दर्शनार्थ उनके आश्रमपर गया। अहमदाबादके निकट ही गाधीजीका साबरमती आश्रम था। मैं आश्रमपर पहुँचा। मेरे हाथमे 'कल्याण'का अङ्क था। सयोगकी बात, उस अङ्कमे 'भगवन्नाम-जप'की प्रार्थना छपी थी। गाधीजीने 'कल्याण'का अङ्क अपने हाथमे ले लिया और उसे देखने लगे। 'भगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना'—लेख देखकर पूछने लगे—'यह क्या है ?' मैंने बताया कि किस प्रकार 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥' भगवान्के इस षोडश नाम-मन्त्र-जपके लिये प्रतिवर्ष 'कल्याण'मे प्रार्थना प्रकाशित की जाती है और किस प्रकार पाठक-पाठिकाएँ बडे उत्साहसे नाम-जप करती है।' इतना सुनते ही पूछने लगे—'कितना जप हो जाता है ?' मैंने कहा—'कई करोड हो जाता है।'

इसपर वे वडे प्रसन्न हुए और वोले—'तुम वडा अच्छा करते हो। इसमे १०-१५ व्यक्ति भी यदि सच्चे भावसे जप करते होगे तो उनका उद्धार हो जायगा।' फिर वोले—'देखो, मै भी नाम-जप करता हूँ", और उन्होने गोल तकियेके नीचेसे तुलसीकी माला निकाली और दिखाते हुए वोले—'इसीके सहारे रात्रिके समय जप करता हूँ।' सयोगसे उनकी वह माला टूटी हुई थी और मेरी जेवमे तुलसीकी एक नयी माला थी। मेरे मनमे आया—इनकी टूटी मालाकी जगह नयी माला वदल दूँ। मैने वापूसे प्रार्थना की—'वापू! आपकी यह माला तो टूट गयी हे, इसे आप मुझे दे दीजिये और आप नयी माला ले लीजिये।' और मैने अपनी जेवमेसे नयी माला निकालकर उनकी ओर वढायी। वापू वडे विनोदी थे, उन्होने वडा प्रेमभरा विनोद किया, वोले—'तुम मुझे माला देने आये हो? अर्थात् मुझे चेला वनाने आये हो?' मै तथा पास वैठे सबलोग हँस पडे। मैने कहा—'वापू! माला टूट गयी है, इससे वदलना चाहता था, आपको माला मै क्या दूँगा।' मेरे उत्तरसे वे वडे प्रसन्न हुए, फिर वोले—'मुझे नयी माला दोगे तो तुम्हे साथमे कुछ दक्षिणा भी देनी होगी। दानके साथ दक्षिणा भी होती है।' मैने कहा—'आपकी कृपा है, वोलिये तो क्या देना पडेगा?' तव उन्होने गम्भीर होकर कहा—'तुम अभी जितना नाम-जप करते हो, उसके सिवा एक माला जप और अधिक कर लिया करो। तव हम तुम्हारी माला लेगे।' मैंने कहा—'क्या हर्ज है।' वापूने प्रसन्नतापूर्वक नयी माला रख ली। उस दिनसे मै अपने जपके अतिरिक्त एक माला जप और करता हूँ। आजतक वह नियम अक्षुण्णरूपमे निभता चला आता है।"

५—"सन् १९३२की वात है। भाई देवदास गाधी गोरखपुर जेलमे कैद थे। जेलमे वे वीमार हो गये—टाइफायड हो गया था उनको। जेल अधिकारी भाई देवदासकी सँभाल ठीकसे न कर सके। बापूको पता चला। उन्होने मुझे लिखा—'देवदास गोरखपुर जेलमे वीमार है। उसकी देखभालका, चिकित्सा आदिका सारा भार तुमपर है।'

वापू उस समय यरवदा जेलमे थे। वापूका आदेश प्राप्त होते ही मै भाई देवदासकी सेवामे लग गया। कानूनन प्रतिदिन जेलमे जाकर मिलना सम्भव नही था, पर मेरे प्रति यहाँके अधिकारियोकी सदासे ही वडी सद्भावना रही हे। उन्होने मुझे प्रतिदिन भाई देवदाससे मिलनेकी अनुमति दे दी। कुछ दिनोमे भाई देवदास ठीक हो गये और जेलसे छोड दिये गये। मै उन्हे पहुँचाने वाराणसीतक साथ गया था।

मैं तार-पत्रद्वारा वापूको वरावर भाई देवदासकी स्थितिका परिचय कराता रहता था। वापू मेरी इस तुच्छ सेवासे इतने मुग्ध हो गये कि उन्होने एक पत्रमे लिखा—

यरवदा मदिर
२१-७-३२

भाई हनुमानप्रसाद,

आपका पत्र मिला और आज तार भी। देवदासके लिये चिन्ता नही करूँगा, क्योकि आप वहाँ हे और देवदासने मुझको भी (है) कि आपने उससे वडा प्रेम किया था। डाकतार तो अच्छा है। आपके पत्रकी आजकल हमेशा आजकल प्रतीक्षा करता रहूँगा।

वापूके आशीर्वाद

× × ×

६—"'कल्याण'के साथ वापूकी स्मृति जुडी हुई है। 'कल्याण'मे वाहरी विज्ञापन न छापने और पुस्तकोकी समालोचना न करनेका सिद्धान्त उन्हीकी सम्मतिसे स्वीकार किया गया था, जो अवतक भगवत्कृपासे चल रहा है।"

× × ×

वापू और श्रीभाईजीमे समय-समयपर विचारोका आदान-प्रदान भी होता रहा हे। ऐसे अनेक पत्र श्रीभाई-जीकी पुरानी फाइलोमे उपलब्ध हुए हैं। यहाँ वापूद्वारा प्रेपित कुछ पत्र दिये जा रहे है। पाठक स्वय अनुभव करे कि वापूका श्रीभाईजीके प्रति कितना प्यार एव विश्वास था।

(क)

भाई हनुमानप्रसाद

देवदासकी चिन्ता तुम्हारे सिरसे उतरी, मुझे सब खत मिले हैं। मैं अनुग्रह क्या मानूं। क्यों मानूं। ऐसी सेवा मूक रहकर लेना ही मुझे तो नम्रता प्रतीत होती है। सब सच्ची सेवाका बदला मनुष्य नहीं दे सकता है। ईश्वर ही दे सकता है।

२-८-३१ — बापूके आशीर्वाद

(ख)

भाई हनुमानप्रसाद,

तुम्हारे पत्र मुझको हमेशा प्रिय लगते हैं। अबके पत्र अधिक प्रिय लगते हैं क्यों उनमेंसे तुम्हारी सत्य-परायणताका और भी अनुभव मिलता है। बुद्धिके प्रयोग करके मैं अब मेरी बात नहीं समझा सकूंगा। इतना मानो कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ ऐसा लगता है वह मैं नहीं कर रहा हूँ। मुझको कोई करा रहा है। वह मेरी दृष्टिसे निरंजन निराकार राम है, लेकिन दशमुख रावण भी हो सकता है। इसका पता तो मृत्युके बाद ही जहाँतक शक्य है मिल सकता है, और थोड़े परिणाममें मिल सकता है। पूर्णतया तो मिल ही नहीं सकता है क्योंकि मनुष्य हृदयकी बात अन्तर्यामीके सिवा कोई जानता ही नहीं है।

तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा हो रहा होगा। मुझको लिखा करो।

१६-१२-३२ — बापूके आशीर्वाद

(ग)

भाई हनुमानप्रसाद,

मैंने अखबारमें ही देखा था कि   कृष्णकान्तके सामने खड़ी होगी। मुझे किसीने पूछा भी नहीं था। इलेक्शनके मामलेमें मैं पड़ता ही हूँ थोड़ा और कांग्रेस छोड़नेके बाद तो खतम हो गया।

× × ×

कुछ मतभेद होते हुए भी तुम्हारे प्रेममें कुछ भी न्यूनता नहीं आ सकती है, यह मैं जानता हूँ। यही हाल कई मित्रोंके है। यह ज्ञान मुझे नम्र बनाता है।

वर्धा, १४-५-३५ — बापूके आशीर्वाद

(घ)

भाई हनुमानप्रसाद

तुम्हारा खत मिला, तुम्हारे विचारोंको पढ़कर मेरेको बड़ी खुशी होती है और सन्तोष भी। कभी-कभी ऐसा दिल भी करता है कि तुम जैसा आदमी मेरे साथ रहता, भाई जमनालालजी भी ऐसा ही चाहते हैं। पर जहाँपर भी तुम रहो मन साथ है तो साथ ही हो। तुम कल्याण और गीताप्रेसमें जो काम करते हो वह ईश्वरकी बड़ी सेवा है। तुम्हारी सेवामें मैं भी अपना हिस्सा मानता हूँ। क्योंकि तुम मुझको अपना समझते हो, वैसा ही मैं भी समझता हूँ।

कल्याणमें जो तस्वीर छपती है उससे मुझको सतोष नहीं है। इसमें दार्शनिक[१] और शृंगार ईश्वरको क्यों, मैंने रामदासको भी इस बाबत लिखा था।

वर्धा १६-५-३५ — बापूके आशीर्वाद

(ङ)

भाई हनुमानप्रसाद,

हिंदी साहित्य सम्मेलन परीक्षाके लिये जो मुझे लिखा है सो समितिको लिखा जाय तो अच्छा होगा। काका साहबको आज प्रयाग भेज रहा हूँ। तुम्हारे पत्रका वे उपयोग करेंगे। मैंने सोचा कि तुम्हारे

---

१ नानूराम

जैसे सज्जन समितिमे सदस्य होगे और उसको पत्रद्वारा भी मदद देते रहेगे तो भी अच्छा होगा। कितना भी काम है, कोई-कोई समय तो हाजरी भरना भी सम्भव होना चाहिये। हिंदी भाषाकी उन्नति हिंदी साहित्यकी शसुद्धि तुम्हारा विषय भी तो है और जो कामके लिये मेरे लिखनेका एक अर्थ था उसका उल्टा राघवदासजीने वना लिया। कुछ लिखनेकी इच्छा नही होती है। लेकिन तुमको मै क्या कहूँ? यह मेरा एक वाक्य, लेख—योगोके सम्राट् निष्काम कर्मयोग है।

हरिजन पानी फडके पैसे दिल्ली ही भेज दीजिये।

मगनवाडी, वर्धा
१२-७-३५

बापूके आशीर्वाद

(च)

भाई हनुमानप्रसाद,

तुम्हारा वर्णन हृदयद्रावक है, बावा राघवदासका वर्णन भी आ गया है। तुम सव पारमार्थिक कार्म कर रहे है। अच्छा है, ईश्वर तुम्हे सराहेगा और हजारो गरीबोकी रक्षा होगी।

४-८-३६

बापूके आशीर्वाद

[९]

मन्त्रानुष्ठानके सम्बन्धमे श्रीभाईजीका अनुभव

स्वामी श्रीयोगानन्दजी अनुष्ठान-साधनाके एक मर्मज्ञ महात्मा हो गये है। बम्बईमे भेट होनेपर उन्होने इस विद्याके सहारे श्रीभाईजीकी कुछ सहायता करनेकी इच्छा प्रकट की थी, किंतु श्रीभाईजी सकाम साधनाके विरोधी थे, अत सहमत न हुए। आगे चलकर उन्होने अपने एक मित्रको आपद्ग्रस्त देखकर उनके कष्ट-निवारणार्थ स्वामीजीद्वारा निर्दिष्ट मन्त्रानुष्ठान किया। उसका विवरण श्रीभाईजीके ही शब्दोमे पढिये—

"उत्तरप्रदेशमे अनूपशहरके आस-पास गङ्गातटपर निवास करनेवाले वगाली महात्मा श्रीयोगानन्दजी सरस्वतीसे भी वम्बईके जीवनमे परिचय हुआ। यह परिचय पण्डित श्रीश्रीलालजी याज्ञिकके द्वारा हुआ। एक बार ये वम्बई भी पधारे थे। वडे सिद्धि-प्राप्त महात्मा थे और मन्त्रानुष्ठानके मर्मज्ञ थे। मेरे साथ वहुत निकटका सम्वन्ध होनेसे ये जान गये थे कि उस समय मुझे कुछ अर्थकी आवश्यकता थी। उन्होने मुझे भगवान् शकरका एक मन्त्रानुष्ठान लिखकर भेजा और कहलाया—'इस मन्त्रानुष्ठानके प्रयोगसे भगवान् शकरका प्रत्यक्ष होगा और तुम्हारे अभाव पूर्ण हो जायेगे।' मैने उनसे कहलाया—'मै अपने लिये सकाम अनुष्ठान नही करता। हाँ, मेरा इन अनुष्ठानोपर पूरा विश्वास है।' पर वे वरावर लिखते रहे और समझाते रहे। उनका मेरे प्रति वडा वात्सल्यभाव था। उन्होने लिखा—'जैसे वैद्यकी दवा ली जाती है, वैसे ही इस अनुष्ठानको कर लो। क्या आपत्ति है?' मै उनकी वात स्वीकार नही कर सका। किंतु भगवान्की माया वडी विचित्र है। मेरे एक मित्रकी आर्थिक स्थिति कुछ समय वाद वहुत कमजोर हो गयी। मित्रका वह आर्थिक सकट वडा भयानक था। उनके प्रति मेरे मनमे वडा प्यार था। वे वरावर अपनी परीशानियाँ मुझे वताते थे। मेरे मनमे आया कि स्वामी श्रीयोगानन्दजीका वताया हुआ शिवजीका अनुष्ठान अपने लिये तो नही करना है, पर मित्र-के लिये कर दिया जाय। उस समय मै गोरखपुरमे था। इसी गीतावाटिकामे रहता था। मै ऊपरके पूर्ववाले कमरेमे रहता था। मैने उसी कमरेमे अनुष्ठान आरम्भ किया। वडी विधि एव श्रद्धाके साथ २१ दिनोतक वह अनुष्ठान चलता रहा। २१वे दिन वडे भयानक रूपमे भगवान् शकरका प्राकट्य हुआ। उनका वह भयानक रूप देखकर मैं काँपने लगा। उन्होने कहा—'तुम्हारा मन्त्रानुष्ठान सफल हो गया, परतु तुमने उसका प्रयोग कर वहुत अनुचित किया। भविष्यमे इस मन्त्रका अनुष्ठान करोगे तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। तुम फिर कभी

इसका अनुष्ठान नहीं करना। और सम्भव है, तुम इस मन्त्रको भूल जाओगे। जिसके लिये यह अनुष्ठान किया है उसे कह देना कि फिर किसी बहुत बडे व्यापारको न करे, उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।' इतना आदेश देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। उस समय ' ' सट्टा किया करते थे। चीनमें बड़े पैमानेपर सट्टा होता था। मुझे ठीक स्मरण नहीं है कि उन्होंने चाँदी बेचनेको लिखा था या लेनेको, पर वे जो लिखना चाहते थे, भाग्यसे उससे उल्टा लिखा गया। अर्थात् लेनेकी जगह बेचना और बेचनेकी जगह लेना लिखा गया और उसीके अनुसार वहाँ सौदा हो गया। सौदा होनेके पश्चात् जब वहाँसे तार आया, तब उनके मनमें बडी घबराहट हुई। उन्होंने समझ लिया कि हम जो चाहते थे, उससे उल्टा हो गया है। अतएव उन्होंने जैसे सौदा हुआ था, उससे उल्टा सौदा करनेके लिये तार दिया। पर भगवान्की माया विचित्र, वह तार भी उल्टे सौदेका लिखा गया और वह भी जितना वे सौदा करना चाहते थे, उससे दूना हो गया। भगवान्को रुपये देने थे, उनकी इच्छाके विपरीत दुगुना उल्टा काम होनेपर भी उस काममें उन्हें ३० लाख रुपये एक महीनेमें मिले। वह मन्त्रानुष्ठान कुछ दिनों बाद मुझे विस्मृत हो गया। उन अनुष्ठानकी क्रिया तो मुझे स्मरण रही, पर मन्त्र मैं सर्वथा भूल गया। इस मन्त्रानुष्ठानके प्रयोगसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि इस युगमें भी देवता सिद्ध होते हैं, उनके दर्शन होते हैं तथा उनकी आराधनासे नवीन-प्रारब्धका निर्माण होकर कार्य सिद्ध हो जाता है।"

[१०]
उपाधियोंके मोहसे सर्वथा परे

श्रीभाईजीकी अन्तरङ्ग साधना तथा निष्काम सेवासे लोकमान्यता अनायास खिंच आयी। ज्यों-ज्यों उन्होंने उससे दूर भागनेका प्रयत्न किया, वह दूने-चौगुने और फिर अनन्तगुने आकर्षकरूपमें पीछा करती रही। आरम्भ हुआ 'रायसाहबी'से। इसके प्रस्तावक थे—गोरखपुरके तत्कालीन कलक्टर पेडले साहब और बाबू आद्याप्रसाद, नगरपालिकाके अध्यक्ष।

श्रीभाईजीने उनसे हाथ जोडकर कहा—'महोदय, मैं इसके लायक नहीं हूँ।' छुट्टी मिल गयी। इसके बाद स्थानीय अंग्रेज कमिश्नर होबर्ट साहबने 'रायबहादुर' बनानेकी इच्छा प्रकट की। श्रीभाईजीने उसे भी अस्वीकार कर दिया। फिर संयुक्त-प्रान्त (उत्तरप्रदेश)के गवर्नर सर हैरी हेगने 'सर' (नाइटहुड)का जाल फेंका। वह भी खाली गया। गवर्नर साहबने इसपर प्रसन्नता व्यक्त की। श्रीभाईजीकी सर हैरी हेगसे मैत्री-सी हो गयी थी। श्रीभाईजी बेतकल्लुफीसे बोले—'आप यह उपाधि देकर क्या समझते हैं?' गवर्नर साहबने हँसते हुए जवाब दिया—'कुत्तेके गलेमें पट्टा डालते हैं'। इस वाक्यका अन्तिम शब्द पूरा नहीं हुआ था कि श्रीभाईजी बोल उठे—'फिर आप पट्टा डाल रहे थे?' गवर्नर साहबका उत्तर था—'आपने अस्वीकार कर दिया, तब हम कहते हैं, नहीं तो आपका सम्मान करते, आपको धन्यवाद देते कि आपने इसे स्वीकार कर लिया। बडा अच्छा किया।'

अन्तमें ब्रह्मास्त्ररूपमें 'भारतरत्न'के सधानका डौल बना और उसके सधाताकी भूमिका निभानेका दायित्व ब्रह्मकुलाग्रणी प० श्रीगोविन्दवल्लभजी पतको सौंपा गया। पतजी उन दिनों भारतके गृहमन्त्री थे। यह उनके शरीर छोडनेके कुछ पहलेकी बात है। वे गोरखपुर आये और स्टेशनके पास नहर-विभागके अतिथि-गृहमें ठहरे थे। भाईजी उनसे मिलने गये। कुछ देरतक बातें हुई, फिर वे भाईजीकी कलम लेकर पैडपर कुछ लिखने लगे। लिखनेके बाद बोले—'यह कलम हम प्रसादरूपमें ले जायँ।' भाईजीने कहा—'इसमें भी पूछना है क्या?' कलम जेबमें चली गयी। फिर पतजीने एक कागज निकालकर भाईजीको दिया और कहा—'हम इसे भारत सरकारके पास भेज रहे हैं, आपकी स्वीकृति लेने आये थे।' कागजमें भारतरत्नकी उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव था और उसके निमित्त भाईजीकी स्वीकृति माँगी गयी थी। भाईजीने असहमति व्यक्त करते हुए पतजीको इसके कारण विस्तारसे समझाये। भाईजीके अन्तर्हृदयकी व्यथाको देखकर पतजी मान गये और कहा—'ठीक है, नहीं भेजेंगे।' इसके बाद दिल्ली पहुँचनेपर पतजीने एक पत्र भाईजीको वहाँसे भेजा। उसमें लिखा था—'इसमें मुझे यह अनु-

भव हुआ है कि आप उस उपाधिसे वहुत ऊँचे है।' इस प्रकार 'उपाधि'को 'व्याधि'का सहोदर मानकर भाईजीने किसी प्रकार अपना पिण्ड छुडाया। आधुनिक युगमे सॉस लेनेवाले जीवोके लिये अबतक **'प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा'** पुस्तकोकी सूक्तिमात्र थी, कर्मयोगी भाईजीने उसे व्यवहारभूमिपर ला प्रतिष्ठित किया।

[११]

एक बड़ा प्रलोभन

(श्रीभाईजीके शब्दोमे)

"गोरखपुर आनेके वाद एक वडा प्रलोभन आया। तत्कालीन सरकारमे शायद रेवन्यू विभागके एक उच्च अधिकारी श्रीमेहताजी थे। उनसे मेरा अच्छा परिचय था। वे मुझे वडा सम्मान देते थे। उस समय मालवीयजी-के पुत्र श्रीराधाकान्तके पास कोई काम नही था। मेहताजी मालवीयजीके प्रति श्रद्धा रखते थे। श्रीराधाकान्तने मेहताजीको कोई काम देनेको कहा। मेहताजीने कहा—'एक बहुत वडा सरकारी काम है। वह काम हम आपको दे सकते है, पर वह काम हम भाईजीके नामसे देगे, आपके नामसे नही। भाईजी अपना नाम देनेको तैयार हो तो काम मिल जायगा।' वहुत वडा काम था। लाखो रुपये सालकी आमदनी थी। मेहताजीका पत्र लेकर मालवीयजीका आदमी मेरे पास गोरखपुर आया। मालवीयजीने मौखिक रूपसे कहलवाया—'तुम इस कार्यमे अपना नाम दे दो तो तुम्हारे पास पैसा आ जायगा, राधाकान्तके पास भी आ जायगा।' पर मैने तो यह निश्चय कर लिया था कि कोई भी काम नही करना है। मैंने मालवीयजी महाराजको वडे विनम्र शब्दोमे कहला दिया—'मै कोई भी काम करनेमे लाचार हूँ।' भगवान्ने परीक्षा लेनी चाही और उन्होने ही रक्षा की।"

[१२]

श्रीभाईजीकी काव्य-रचनाकी पृष्ठभूमि

[सन् १९५६मे तीर्थयात्रासे लौटनेके पश्चात् श्रीभाईजी कई मास वहुत अस्वस्थ रहे। उस अस्वस्थताकी स्थितिमे उन्होने व्रजरस-सम्वन्धी तथा दैन्यभावके कुछ पदोकी रचना की थी। सन् १९५८मे स्वजनोके आग्रहसे उन पदोको एक पुस्तिकाके रूपमे मुद्रित कराया गया। उसकी भूमिकाके रूपमे श्रीभाईजीने जो शब्द लिखे थे, वे नीचे दिये जा रहे है। यह भूमिका कम्पोज हो चुकी थी, पर पीछे भाईजीने इसे रोक लिया और दूसरी साधारण भूमिका लिखकर उसमे दे दी। श्रीराधाकृष्ण-लीला-सम्वन्धी पद इसी स्थितिमे लिखे गये है। पाठक स्वय उन पदोके महत्वका अनुमान लगावे।]

"मङ्गलमय भगवान् अनन्त कृपासिन्धु है। उन्होने कृपा करके मङ्गलमय रोग भेजा। महीनो विछौनेपर पडे रहना पडा। डाक्टर-वैद्योने सम्मति दी—'पूर्ण एकान्तमे पूरे आरामसे रहना चाहिये, लोग मिलने-जुलने न पाये, कोई काम न करने दिया जाय।' अत लोगोका मिलना-जुलना प्राय वद हो गया। काम रहा नही। सहज ही अधिक समय अकेले रहनेका सुअवसर मिल गया। चिकित्सा-औषध-पथ्यादिके समयको छोडकर शेप समय अकेला ही वद कमरेमे रहता। अकेलेमे रोगका चिन्तन न करके मन दूसरे काममे लगता। वह काम था—आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण। जीवनके सभी तरहके चित्र आते—लोग वडा सत, भक्त या महात्मा मानते है। ओह, कितना वडा धोखा है। जीवनमे कितनी अपार दुर्वलताएँ है, कितनी मलिनताएँ है और कितने दोष-कलुष भरे है।' यह सव देखकर हृदय भर आता, सहज दैन्यभावका उदय होता। ऑखोमे ऑसू छलक आते, मन दयासागर, अकारण कृपालु, सहज सुहृद् पतितपावनके पवित्र पादपद्मोमे लोट जाता एव वार-वार करुणा-पूर्ण भावसे अपने दोप वता-वताकर अपनी अत्यन्त दीन दशाकी ओर दीनवन्धुकी दयादृष्टिको आकर्पित करता। कभी स्वय ही अपनेको प्रवोध देने लगता।

"इसी वीच मन्द-मन्द मुस्कराते हुए विश्व-जन-मन-मोहन अनन्त आनन्दाम्वुधि श्रीश्यामसुन्दर आते—हँसकर सिरपर वरद हस्त रखकर कहते—'मूर्ख, क्यो रो रहा है? क्यो दीन-हीन वनकर दुखी हो रहा है? चल, मेरे

साथ व्रजमें, देख वहाँ मेरी दिव्य लीला और परमानन्द-सागरमें निमग्न हो जा।' श्रीश्यामसुन्दर व्रजेन्द्रनन्दन आनन्द-कदकी मधुरतम वाणी सुनते ही मनका दैन्य भाग जाता। मन मन्त्रमुग्धकी भाँति उसी क्षण चल पड़ता उनके पीछे-पीछे। वे उसे परमरम्य क्षेत्रमें छोडकर चले जाते और लग जाते अपने लीलाविहारमें।

"मन स्वच्छन्द विचरण करता—कभी नन्दबाबाके आँगनमें, कभी यशोदा मैयाके प्राङ्गणमें, कभी गोष्ठमें, कभी सखाओंके हास्य-विनोदमें, कभी वनसे लौटकर आवनीमें, कभी कालिन्दीके कूलपर, कभी रासमण्डलमें, कभी प्रेममयी गोपाङ्गनाओंके समुदायमें, कभी अकेली गोपीके घरमें, कभी किसी अकेली सखीके मनमें, कभी सखियोंकी मधुर प्रेमचर्चामें, कभी वशीवटपर, कभी रासमण्डलमें, कभी श्रावणके झूलोंमें, कभी शारदीय झूलोंमें, कभी होलीके रगमें, कभी नव प्रफुल्लित कुसुम-सौरभित वृन्दा-काननमें, कभी श्रीमतीके पास, कभी श्रीश्यामसुन्दरके पास, कभी निभृत निकुञ्जोंमें, कभी किशोर-किशोरीकी लीला-विहारस्थलीमें, कभी उनके परस्पर होनेवाले मधुरतम उच्च प्रेमालापोंमें, कभी उद्धव-गोपी-मिलनमें, कभी मथुरामें होनेवाले श्रीकृष्ण-उद्धव-मिलनमें, कभी मथुरा जानेके पश्चात् राधा तथा गोपाङ्गनाओंकी प्रेमविरह-दशामें—इस प्रकार प्रतिदिन-दिनरात महीनोंतक यह दैन्य और लीला-दर्शनका प्रवाह अबाध चलता रहा। मनने शत-शत विविध विचित्र लीलाएँ एव श्रीराधाकृष्णकी अनूप रूप-माधुरी देखी, समझी और किसी-किसी लीलामें सम्मिलित होनेका सौभाग्य प्राप्त किया। कभी-कभी सौन्दर्य-सुधासागरमें जाकर अपने-आपको खो दिया। वहाँ जो देखा, वह सर्वथा अलौकिक, दिव्य, मन-वाणीसे अतीत था, अत्यन्त विलक्षण था। उसका पूर्ण वर्णन सम्भव नहीं है। उसके लिये शब्द नहीं हैं। परतु जितना कुछ शब्दोंमें आ सकता था, उसके बहुत ही थोडे अशका तथा दैन्यभावकी स्थितिमें प्रकट मनके बहुत ही थोडे-से उद्‌गारोंका इन तुकबदियोंमें चित्रण करनेका प्रयास किया गया है।"

[१२]

समर्पणका एक अनुपम आदर्श

१९५६में जब तीर्थयात्रा ट्रेन द्वारा श्रीभाईजी दक्षिण भारत पहुँचे—शायद बेजवाडाके आस-पास, तब वे वहाँके एक प्रतिष्ठित वकीलके घर मिलनेके लिये गये। उन वकील महोदयने बताया कि 'उनके पडोसीकी प्रौढा लडकी बडी भजनपरायणा है, दिन-रात पूजा-पाठमें लगी रहती है। उससे अवश्य मिलना चाहिये।' भाईजी उससे मिलने गये। साथके लोगोंको बाहर बैठा दिया, भीतर वे अकेले ही गये। जाकर देखते हैं—एक बडे सात्विक स्थानपर उसने अपने ठाकुरजीका विग्रह विराजमान कर रखा है और उसीके पास काँचमें मँढा हुआ एक फोटो है। भाईजीने उससे पूछा—'ये कौन है?' तब उसने बताया—'बहुत वर्षों पूर्व मैंने इनके बारेमें एक पत्रमें पढा था। तबसे मेरा इनके प्रति समर्पणका भाव हो गया। मैंने इनके फोटोके लिये प्रयत्न किया तो बम्बईसे मुझे यह फोटो मिल गया। तबसे मैं इन्हें अपने इष्टदेवके रूपमें पूज रही हूँ।' भाईजीने कहा—'क्या तुम कभी इनसे मिली हो? इन्हें जानती हो? ये कहाँ रहते हैं?' उस महिलाने उत्तर दिया—'मैं इनका नाम जानती हूँ, पर कभी इनसे मिली नहीं हूँ और न मेरा इनसे कोई परिचय है। मैंने इनके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर दिया है, अब मुझे इनसे मिलनेकी आवश्यकता नहीं है और न मैं इनका पता-ठिकाना ही जानना चाहती हूँ।' भाईजीने पहचान लिया, यह फोटो उन्हींका था—बम्बईका। उन्होंने बडे सकोचके साथ उन देवीसे कहा—'बहनजी, अपनी इस फोटोको देखकर मेरी ओर देखिये।' उन्होंने सकोचके साथ फोटोको देखा और भाईजीकी ओर देखा—उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि ये महापुरुष वही हैं, जिनको उसने अपने-आपको समर्पित कर रखा है। वह रोमाञ्चित हो गयी और उसने भाईजीके चरणोंमें अपना मस्तक टेक दिया। कुछ देर बाद वह उठी और चन्दन-पुष्प लेकर पहले उसने भाईजीके मस्तकपर तिलक किया, पीछे चरणोंपर चन्दन चढाकर पुष्प अर्पण किये और प्रणाम करके बोली—'आप जा सकते हैं। भाईजीने कहा—'देवी! तुम्हारा परिचय मैं जान लेना।' देवीने उत्तर दिया—'मेरे परिचयकी आवश्यकता नहीं है। आप मेरा परिचय जो आपको मिला है उसे भी अपने किसी व्यक्तिको मत दे दीजियेगा, नहीं तो मेरे यहाँ भीड हो जायगी।' भाईजीने उसे अपना

पता-ठिकाना नोट करनेके लिये कहा, पर उसने उत्तर दिया—'मुझे उसकी आवश्यकता नही। मेरे मनमे एक साध थी—कभी इन महापुरुषके दर्शन मुझे हो पायेगें कि नही? वह साध अन्तर्यामी प्रभुने बडे ही विचित्र ढगसे पूरी कर दी। अव मुझे कुछ नही चाहिये। बस, मेरा यह समर्पण अन्ततक निभ जाय।'

श्रीभाईजी उसके भावको देखकर आत्मविभोर हो गये और मन-ही-मन देवीको आशीर्वाद देते हुए बाहर चले आये। १० वर्ष बाद अपने एक अन्तरङ्ग सेवकको भाईजीने यह घटना बतायी थी। उस देवीका नाम है—चिन्मयी देवी। पर उसके स्थानका नाम-पता अन्ततक श्रीभाईजीने किसीको भी नही बताया। पूछनेपर कहते थे—'वह नही चाहती कि जगत्‌का कोई भी व्यक्ति उसके निष्काम मूक समर्पणको जान पाये, ऐसी स्थितिमे तुमलोगोको जाननेके लिये आग्रह नही करना चाहिये।'

धन्य है चिन्मय देवी और धन्य है उसका मूक समर्पण!

[१४]

श्रीकृष्ण-प्रेमसे भावित एक मुसलमान बहनको लिखा गया पत्र

एक परम सम्मान्या मुसलमान बहनने, जो उन दिनो श्रीकृष्ण-प्रेमसे भावित थी, श्रीभाईजीको श्रीकृष्णके प्रेमीके नाते अपना धर्मभाई मानकर पत्र लिखा था। श्रीभाईजीने उनके पत्रका जो उत्तर दिया था, उसीका कुछ अश यहाँ दिया जा रहा है—

श्रीहरि

डालमिया दादरी (जिन्द स्टेट)
२८-११-३९

प्यारी वहिन,

आपने अपनी ही वाते की, वहुत अच्छा किया। परायी वातोमे क्या रखा है? अपनी वात वही है, जिसमे अपने—सवसे वढकर अपने—एकमात्र अपने श्रीकृष्णकी मधुर चर्चा हो। आपकी अपनी वाते श्रीकृष्णकी माधुरीसे रँगी है, सनी है, इसलिये वडी ही मधुर है। श्रीकृष्णकी माधुरी हृदयको और दिमागको बेकाबू कर देती है, बहा देती है एक आनन्दकी अनोखी धारामे—समुद्रमे भी बाढ आ जाती है और वह भी वहने लगता है।

श्रीकृष्णके एक वडे प्रेमीभक्त भगवत-रसिकजी कहते है—

लखी जिन लाल की मुसुकान।
तिनहि बिसरी बेद बिधि, जप, जोग, संजम, ध्यान॥
नेम, ब्रत, आचार, पूजा, पाठ, गीता-ग्यान।
'रसिक भगवत' दृग दई असि ऐंचि कै मुख-म्यान॥

वडे-वडे तपस्वियोको मोहित करनेवाली सद्‌गुरुकी हँसी, जगत्‌मे आनन्दका समुद्र वहा देनेवाली सतोकी हँसी, भगवान्‌के नामपर प्राणोकी वलि चढानेवाले शहीदोकी हँसी, अपनी शूरतापर हर्षित न होनेवाले वीरोकी हँसी, सफलतापर आनन्दको न पचा सकनेवाले सकाम पुरुषोकी हँसी, वहुत वडे साधकोके चित्तको हिला देनेवाली अप्सराओकी हँसी, महात्मा गाधी-जैसे पुरुषोको आनन्द-मुग्ध कर देनेवाली शिशुओकी हँसी—जितने प्रकारकी हँसी—अनादिकालसे अवतक नित्य नवीन रूपोमे, सदा ताजी होकर, लोगोके मनोको मोहती है, उन सारी हँसियोको एक स्थानमे एकत्र करनेपर भी वह श्रीकृष्णकी मधुर हँसीके सामने समुद्रके सामने एक नन्ही-सी वूँदकी तुलनामे भी नही आ सकती। श्रीकृष्णकी उस हँसी, उस मुस्कान, उस माधुरीकी महिमा कौन कह सकता है? जगत्‌की सारी मधुरिमा, सारा सौन्दर्य जिस नटनागरकी हँसीकी छायाकी छाया नही कही जा सकती, वह हँसी कैसी होती है—इस वातको वे ही जानते है, जिन्होने कभी उस हँसीका—उसकी छायाका भी साक्षात्कार किया है। परतु यह निश्चय है, जिन्होने वह हँसी देखी है, उनका सव कुछ उस हँसीने हर लिया है, वहन, मै उस हँसीकी वात क्या

कहूँ ? यह भी नहीं कह सकता कि मैंने कभी उसकी छाया नहीं देखी है, यह भी नहीं कहते बनता कि देखी है। सचमुच देखी होती तो आज कुछ और ही स्वरूप होता आपके इस नाचीज भाईका।

सचमुच वे सब कुछ हैं, सब कुछसे परे भी वे ही है, वे सर्वेश्वर हे, सर्वलोकमहेश्वर हे, योगेश्वरेश्वर है, सृष्टि-स्थिति-प्रलय उनके विनोदकी रेखाएँ मात्र है। वे हिंदुओके ईश्वर, वेदान्तियोके ब्रह्म मुसल्मानोके अल्लाह, ईसाइयोके गॉड, प्रेमी क्रिश्चियन संतोके 'Beloved' सूफियोके माशूक, आस्तिकोके अस्तित्व, नास्तिकोकी नास्ति, वैज्ञानिकोके नियम और जो कुछ भी कहे—वे सब कुछ है, परंतु 'सब कुछ' होते हुए भी वे 'मेरे श्रीकृष्ण' हे। मेरा उनसे 'मेरे'का नाता है। ओर आप उस 'मेरे कृष्ण'को 'बन्धु कान्हा' कहकर पुकारती है और वे आपको—'बन्धु'के रूपमे आकर्पित करते है। आप मेरी बहन तो थी ही, इस नातेसे बहुत ही सम्माननीय, बहुत ही प्यारी, बहुत ही नजदीकी एक माँके पेटसे जन्मी हुई—से भी अधिक नजदीकी बहन है। वे आपके 'बन्धु' है, ठीक है। बहुत अच्छी बात। मेरे तो वे 'सर्वस्व' है। वे जिस-किसी भी नातेसे मुझे आकर्षित कर, मैं उसीके लिये तैयार रहना चाहता हूँ। यह तैयारी भी उन्हीके कराये होती है। वे बडे लीलामय है। न मालूम कैसी-कैसी रगते दिखलाते ह। सचमुच आपके सामने मै बे-पर्द हो गया। पता नही, श्रीकृष्णकी क्या मन्शा है, उन्होने क्यो मेरे जीवनकी गुप्त-से-गुप्त बात किसी अशमे स्पष्टतौरपर आपके सामने कहलवा दी। मैं, बहन, शरीरसे तो पक्का सनातनी—वर्णाश्रमी हिंदू हूँ, परतु मैं वस्तुत कुछ भी नहीं हूँ। मैं तो 'मेरे' श्रीकृष्णका हूँ—क्या हूँ, सो पता नही है। यदि श्रीकृष्ण मुझे अपना बनाया रखे—तो यहाँ कुछ भी हो, कैसी भी हालत हो, नरकका स्थान मेरे लिये सुरक्षित रहे, जगत्की गालियोकी बौछार सदा सिरपर बरसती रहे, मुझे मजूर है। और उनको छोडकर ऊँची-से-ऊँची पदवी, बडे-से-बडा सौभाग्य भी मेरे लिये दुर्भाग्य है। फिर हिंदू-मुसलमानके भेदकी तो बात ही क्या है ? यह सारा भेद यदि तत्वत देखें तो केवल शरीरको लेकर ही है और यदि मार्ग दिखानेवालोकी नजरसे देखे तो उस एक ही 'सत्य'को प्राप्त करनेके ये अपने-अपने अलग-अलग अनुभूत रास्ते है। जिसने जिस रास्तेसे सफर की, और वहाँ पहुँचा, वह उसी रास्तेका बयाँ करता है और ठीक ही करता है। सच्चा सम्बन्ध तो आत्माका है। श्रीकृष्ण आत्माके भी आत्मा हैं, वे हमारे सब कुछ है। इसलिये उनके सामने, उनकी तुलनामे किसी भी धर्मकी कोई महत्ता नही हे। ये मजहब तो बहुत ही इधरकी चीज है। श्रीकृष्णका प्रेम तो **'सर्वधर्मान् परित्यज्य'**से ही शुरु होता हे। गोपियोकी चरण-रजकी इच्छा करते हुए उद्धवजीने श्रीमद्भागवतमे कहा है—

आसामहो चरणरेणुजुषामह स्या वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यज स्वजनमार्यपथ च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

'अहा, कैसे इन गोपियोकी चरण-धूलि मेरे मस्तकपर पडे ? भगवान् मुझे इस वृन्दावनकी कोई बेल, कोई ओषधि, कोई नन्हा-सा झाड बना दे, जिसपर इनके कदमोकी धूलि पडती है। इन गोपियोने श्रीकृष्णके लिये—जिनका छोडना बहुत ही कठिन है, उन स्वजनोको और सनातन धर्मको भी छोड दिया और मुकुन्दके उन चरणोका अनुसरण किया, जिनकी खोज सदा वेद करते रहते है, परतु पाते नहीं।'

कृष्ण-प्रेम-पथ पथिक कें, रहि न सकै कुल-कान।
मेड मिटी, फाजिल भए, वेद-पुरान-कुरान॥

यह वेद-पुरान-कुरानका अपमान नहीं है—वेद-शास्त्र अपना फल देकर उसपरसे अपना अधिकार हटा लेते हैं। नारदजीने कृष्णप्रेमीकी व्याख्या करते हुए कहा हे—

वेदानपि सन्यस्यति, केवलमविच्छिन्नानुराग लभते।

'वह वेदोका भी भलीभाँति त्याग कर देता हे। वही अखण्ड, असीम श्रीकृष्ण-प्रेमको प्राप्त होता है।'

ह भी यही बात। नावपर सवार उस पार घर पहुँच गये, फिर नावको सिरपर ढोकर ले चलनेकी क्या जरूरत ? परतु यह प्रेम जबानकी चीज नहीं है। श्रीकृष्ण-कृपासे ही मिलता हे। आपने ठीक ही लिखा है—

'इन्सान तो इतना ही कर सकता है कि उनको याद करे'—परंतु वह याद भी उनकी कृपासे ही कर सकता है। मैं उन्हे रो-रोकर पुकारता हूँ, ऐसी बात नही है। मेरे आँसू तो सूख गये है। लोगोके सामने तो मै कभी रो ही नही सकता। एकान्तमे—वे रुलाते है तो रोता हूँ, हँसाते है तो हँसता हूँ। इस समय आँखोमे आँसू आ गये। अब तो वह चले है

आप अपनेमे श्रीकृष्णप्रेम नही देखती। कहती है—'श्रीकृष्णप्रेम, ओ भाई साहब, वह मुझे कब मिलेगा ?' यही तो प्रेमियोके दिलका फोटो है। उन्हे कभी यह महसूस होता ही नही कि हमारे अदर भी प्रेम है। इसीसे तो प्रेमका स्वरूप है—**'प्रतिक्षणवर्धमानम्'**—प्रतिक्षण बढता ही रहता है। जिस प्रेममे 'बस' है, जो प्रेम यह कहता है कि 'मै तुझमे पूरा आ गया,' वह तो प्रेम ही नही है। ज्ञानियोकी भाँति प्रेमी यह नही कहता कि 'बस, अब कुछ भी मिलना बाकी नही है। सब मिल चुका, सब कर चुका।' वह खामोश नही हो जाता, वह तो एक-एक क्षणमे अनुभव करता रहता है—अपनी प्रेमकी कमीका। उसमे ज्ञानका अभाव नही है। वह प्रेमास्पद प्रियतम श्रीकृष्णके स्वरूपको जानता है, तभी तो सब-कुछ छोडकर—सबसे नाता तोडकर उनसे प्रेमका सम्बन्ध स्थापित करता है। परतु प्रेममे ज्ञान अलग स्वरूपस्थ होकर नही रहता, वह प्रेममे घुल-मिलकर छिप जाता है। इसीसे प्रेमी सदा तृप्त होकर भी अतृप्त रहता है। वह देखता हुआ भी नही देखता—देखना ही चाहता है, सुनता हुआ भी सुनना ही चाहता है, मिलता हुआ भी मिलना ही चाहता है। यही तो उसका पागलपन है। एक प्रेमिका गोपी अपनी आँखोकी दशापर कहती है—

नित के जागत मिटि गयौ वा सँग सुपन-मिलाप।
चित्र-दरसहू कौं लग्यौ आँखिनि आँसू पाप॥
इन दुखिया अँखियान कौं, सुख सिरजौ ही नाँहि।
देखत बनै न देखते बिनु देखे अकुलाँहि॥

'रातको कभी नीद आती ही नही, इससे सपनेमे—ख्वाबमे कभी मिलाप हो जाता था, वह भी नही होता। और दिनमे आँखोमे आँसुओका पाप लग गया, जो उनका चित्र भी नही देखने देता। विधाताने इन दुखियारी आँखोके लिये सुख रचा ही नही, देखते समय देखना बन नही पडता, और बिना देखे ये व्याकुल रहती है।'

यह सच है कि किसी दिलमे जब उनकी प्रेमभरी याद भडकने लगती है, तब वे आकर उस व्यक्तिके रोम-रोममे व्याप्त हो जाते है और फिर तमाम वायुमण्डल कृष्णमय ही हो जाता है। इसीसे तो प्रेमियोकी यह घोषणा है—

नारायन जाके हिएँ सुंदर स्याम समाय।
फूल-पात-फल-डारमे ताकौं वही दिखाय॥
दर-दिवार दरपन भए, जित देखौं, तित तोहि।
काँकर पाथर ठीकरी भए आरसी मोहि॥

कानन दूसरौ नाम सुनै नहि, एकहि रंग रँगौ यह डोरौ।
धोखेहु दूसरौ नाम कढै, रसना मुख बाँधि हलाहल बोरौ॥
ठाकुर प्रीति की रीति यही, हम कैसेहुँ टेक तजै नहि भोरौ।
बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ, जो साँवरौ छाँडि निहारति गोरौ॥

तमाम वायुमण्डल उनसे भर जाता है, वे ही दीखते है। फिर भी प्रेमीकी तृप्ति नही होती। वह सबको भूल जाता है। **सबमे** उनको देखना तो **सबको** याद रखना है। वह तो, बस, एक उन्हीको लेकर, उन्हीसे मिल-जुलकर, उन्हीके साथ बातचीत कर, उन्हीमे मन-तन रमाकर अपने आपको भुला देता है। एक 'नारायन' नामके पागल कृष्ण-प्रेमी हुए है—पजाबी शरीर था—वृन्दावन वास करते थे—श्रीकृष्णके बडे प्यारे थे। वे कहते है—

जाहि लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग, परत कितेहीं, भूलि जाय सुधि धाम की॥
छवि निहारि नहि रहत सार कछु, निसि-दिन-पल-छिन-जाम की।
जित मुँह उठै तितेही धावै, सुरति न छाया-घामकी॥
अस्तुति निंदा करौ भलेंहीं, मेड तजी कुल-ग्राम की।
'नारायन' बौरी भइ डोलै, रही न काहू काम की॥

जरूर वे 'माशूके-आलम' है, परतु प्रेमी—आशिक तो उन्हे, वस, अपने ही 'माशूक' देखना चाहता है। वह अकेला ही उनके प्रेमकी वह 'मोनॉपली' (एकाधिकार) चाहता है। वह कहता है—

आवहु प्रीतम नैन मे पलक वद करि लेउँ।
ना मै देखूँ और कौ ना तोहि देखन देउँ॥

इसीसे तो प्रत्येक प्रेमिका गोपीके साथ रास-मण्डलमे अलग-अलग श्रीकृष्ण थे। आज भी वही वात है। प्रेमियोंके लिये वे वैसे ही है।

वस, आज वे इतना ही करने देते है। वहन, क्या लिखूँ—उनकी एक-एक वातमे रग भरा है। अनन्त—अजीव आनन्दके फव्वारे छूटते है। वे किसके साथ कव, कैसे खेलते है, किसको कव, किस खेलमे लगाते है—वे ही जाने। विचित्र है, अनूठी है उनकी लीला। वलिहारी है, जै जै।

आपका भाई,
हनुमानप्रसाद

[१५]

श्रीभाईजीका कार्यरत जीवन

श्रीभाईजीका दैनिक जीवन वडा ही व्यस्त था। प्राय प्रात ४ वजेसे रात्रिके १२ वजेतक वे कार्य करते रहते थे। 'कल्याण'के विशेषाङ्कके दिनोमे तो वहुधा उन्हे रात्रिके डेढ-डेढ दो-दो वजेतक कार्य करते देखा गया है। वे अपने कागज-पत्र अपने तकियेके नीचे तथा आस-पास रखे रहते थे और जव सोना हुआ, तव वहीं सो जाते थे। भोजनके समय भोजन आनेमे कुछ विलम्व हुआ तो पुन काम करने लग जाते थे। भोजन करते समय एक हाथसे डाक उलटते रहते थे। भोजनके उपरान्त विश्राम करते समय लेटे-लेटे या करवट लिये काम करते रहते थे। वीमारीके दिनोमे पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखते थे। उस अवस्थामे भी वे प्रूफ देखने तथा पत्र लिखनेका कार्य किया करते थे। यात्रामे ट्रेनके रवाना होते ही प्रूफ-पत्र निकालकर वैठ जाते थे। प्लेनसे यात्रा करते समय पत्र लिखनेमे व्यस्त रहते थे। स्वजनोके यहाँ उत्सव या विवाह-शादीमे जाते समय प्रूफ अपने साथ ले जाते थे और जव भी थोडा अवकाश मिलता, एक ओर वैठकर काम करने लग जाते।

सायकाल लगभग छ-साढे छ वजे प्रेससे डाक एव प्रूफ आया करते थे। डाक आते ही उनका कार्यालय चालू हो जाता। जितना प्रूफ आता, वह प्रातकाल ७ वजे तैयार होकर प्रेस चला जाता, चाहे उसके लिये उनको रात्रिमे अधिक जगना पडे। लेखोमे जो भी श्लोक या उद्धरण होते, उनको वे स्वय मूलग्रन्थोसे मिलाते और जिन श्लोकोकी पक्तियाँ अधूरी रहती, उन्हे पूरी करते। ग्रन्थका नाम, अध्याय और श्लोक-सख्या वैठाते, जिसमे पाठक कुछ देखना चाहे तो उस सदर्भसे आसानीसे देख सके। प्राय लेखक स्मृतिके आधारपर चौपाइयाँ-श्लोक आदि लिख देते है, जो मूलमे कुछ-न-कुछ भिन्न होते है। उन्हे वे स्वय ठीक करते।

मिलने आनेवाले व्यक्तियोका हाथ जोडकर मधुर मुस्कानके साथ स्वागत करते। आनेवाला व्यक्ति यदि सुपरिचित होता तो उसे कह देते—'तुम अपनी वात कहते चलो' और स्वय प्रूफ देखने एव पत्र लिखनेमे लगे रहते। जव वह अपनी वात कह चुकता, तव वे धीरे-से उसका उत्तर दे देते। पहले लगता कि उनका मन अपन

कार्यमे व्यस्त है, कहनेवाला अपनी वात कहता जा रहा है, पर जब उसकी वातका सही उत्तर और वह भी विचार-कर निश्चित किया हुआ दिया जाता, तव आश्चर्य होता कि किस प्रकार विचारने तथा सुननेकी—दोनो क्रियाएँ उनके लिये एक साथ सम्भव थी। अपने किसी भी सहयोगीके किये हुए कामको बिना सरसरी नजरसे देखे वे नही भेजते थे। अपने दायित्वका पूरा निर्वाह करते थे। 'कल्याण'के मूललेख देखते, गैली-प्रूफ देखते तथा पेज-प्रूफ देखते—इस प्रकार तीन वार पूरी सामग्री उनकी नजरसे गुजरती थी।

समयका वे अमूल्य निधिकी भाँति उपयोग करते थे। किसीको जो समय दे देते थे, उसका निर्वाह बडी तत्परतासे करते थे। कई वार देखा गया कि सभाओमे वे समयसे पहुँच जाते और वहाँ कोई भी नही मिलता। सभी लोग आधा घटा–एक घटा वाद आते। साथीलोग कहते—'हमलोगोको भी देरसे चलना चाहिये,' पर वे स्वीकार नही करते। उनका उत्तर यही रहता—'जो समय निर्धारित हुआ है, उसपर पहुँच जाना चाहिये, और लोग आये चाहे न आये।' गाडीपर समयसे कुछ पूर्व पहुँचनेकी चेष्टा रखते थे तथा दूसरोको भी यही शिक्षा देते थे कि 'समयसे पहुँचकर गाडीपर सवार होना चाहिये। यह नही कि इजन सीटी दे रहा है और आप सवार हो रहे है।'

जहाँतक होता, अपने व्यक्तिगत पत्नोका उत्तर वे स्वय देते और वह भी अपने हाथसे लिखकर। सहायताके पत्न तथा दुःखी व्यक्तियोके पत्नोका उत्तर तो वे किसी दूसरेसे लिखवाते ही नही थे। ऐसे पत्न वे स्वय चिपकाते भी थे। वैसे भी पत्नोके चिपकानेमे वे बहुत सावधान थे। गोद-पानी इस प्रकार लगाना, जिससे पत्नपर कही धव्वा या दाग न लग जाय—इसका वे विशेष ध्यान रखते थे। जव कोई पासमे बैठा स्वजन कहता—'लाइये, पत्न मैं चिपका दूँ', तव वे उसे एक पत्न चिपकाकर समझाते कि 'इस प्रकार सफाईसे पत्न चिपकाइये।' इतना ही नहीं, इसके साथ वे श्रीमालवीयजी महाराजका एक सस्मरण सुना देते कि किस प्रकार महामना पत्नोको चिपकानेमे सावधानी वरतते थे। महामना अपने इस कार्यके लिये श्रीशिवप्रसादजी गुप्तके अतिरिक्त अन्य किसीपर विश्वास नही करते थे।

आनेवाले पार्सलोको खोलनेमे वे बडी सावधानी वरतते। पार्सलपर वँधी हुई रस्सीकी गाँठको खोलना और उसे समेटकर रखना, इनका सहज स्वभाव था। पार्सलपर लगा हुआ कपडा भी वे वडे जतनसे सहेजकर रखते थे और उसे अपनी कलमको पोछने आदिके काममे लेते थे। इसी प्रकार पुरानी आलपिन-क्लिपोको भी वहुत सँभालकर रखते थे। कागजके छोटे-छोटे सादे टुकडोको भी सँभालकर रखते थे। डाकमे आनेवाले पुराने लिफाफोको सँभालकर एक वडे लिफाफेमे रख लेते थे और प्रेस सामग्री भेजते समय उनका उपयोग करते थे। साथी लोग उन्हे उन कामोके लिये नये लिफाफे देते, पर वे स्वीकार नही करते।

इस प्रकार श्रीभाईजी अपने अत्यन्त व्यस्त जीवनमे भी छोटी-छोटी वातोपर ध्यान देनेसे नही चूकते थे।

[१६]

प्रेमपूर्वक गरीबोका पेट भरनेवाले

१६ जुलाई, १९६५ की वात है—प्रेसके प्रत्येक विभागके प्रधान कर्मचारी श्रीभाईजीके पास अपनी माँगे लेकर गये। श्रीभाईजीने सवको नमस्कार किया तथा वडे आदरसे वैठाया। सवने कहा—'भाईजी! हम आपके दर्शन करने आये है, अपनी माँग वताने नही आये है। जो जीवनके आरम्भसे गरीवोके आँसू पोछता आया है, जिसके यहाँसे प्रतिदिन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षमे अनेको गरीवोकी सहायता होती रहती है, उस व्यक्तिसे हम अपनी माँग क्या कहे? वह गरीवोके दुःख-दर्दको जितना जानता है, हम उससे अधिक और क्या कहेगे? वस, हम आपके दर्शन करके कृतार्थ हो गये। आप अपनी ओरसे जो करेगे, वह हमारी माँगसे अधिक ही होगा और उससे हमे पूर्ण सतोष होगा।'

श्रीभाईजीने कहा—'आप अपनी-अपनी कठिनाइयाँ कहिये, सकोच न करे। देखे, गीताप्रेस किसी व्यक्तिकी

चीज नहीं है, वह तो भगवान्‌की चीज है, भगवान्‌का काम है। प्रेस मकान और मशीनोंका नाम नहीं है आपलोग प्रेस हैं, प्रेस जितना हमारा है, उतना ही आपका भी। वास्तवमें तो यह भगवान्‌का है। रही कष्टकी बात, आपलोगोंका कष्ट हमारा ही कष्ट है।

कर्मचारी श्रीभाईजीकी बात सुनकर आप्यायित हो गये। उनका हृदय भर आया। सबने कहा—'भाईजी ! अब हम कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। आप जो करेंगे, वही हमारे लिये हितप्रद होगा।' इतना कहकर सबने श्रीभाईजीसे विदा ली।

कर्मचारियोंके जानेके बाद प्रेसके अधिकारीलोग श्रीभाईजीसे मिलनेके लिये आये। श्रीभाईजीने अधिकारियोंसे कर्मचारियोंके आने तथा उनसे हुई बातकी चर्चा की और कहा—'आप देखते हैं, कर्मचारियोंका कष्ट वास्तवमें सच्चा है—समय कितना कठिन है। मेरी राय तो यह है कि आपलोग 'कल्याण'का चंदा आठ आने और बढ़ा दें तथा उससे जो ६०-७० हजार रुपये आवें वे कर्मचारियोंको बाँट दें। बेचारे भूखे हैं। दूसरे प्रेसोंमें अपने प्रेसका वेतन-स्केल अच्छा है इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अपना स्केल अच्छा है। हमलोग अपनी ओरसे अपने कर्मचारियोंका पे-स्केल और अच्छा बनावें। यह प्रस्ताव मैं तो कई बार लिखितरूपसे श्रीसेठजी आदिको भेज चुका था और अब भी कहता हूँ। मैं कोई बात किसीपर लादना नहीं चाहता। सबकी रायसे ही काम होना चाहिये।'

इसके पश्चात् श्रीभाईजी कुछ उत्तेजित होते हुए-से बोले—'मैं तो मनसे हिंदुस्तानी कम्युनिस्ट हूँ। राग-द्वेषसे पेटवालोंको खतम करना नहीं चाहता, प्रेमपूर्वक गरीबोंका पेट भरना चाहता हूँ।'

अधिकारी लोग अवाक्-से हुए श्रीभाईजीकी बातें सुन रहे थे।

[१७]
श्रीभाईजीका दैन्य

सन् १९६५की २१ फर्वरीको सायंकाल ६ बजे वृन्दावन नगरपालिकाकी ओरसे श्रीभाईजीका अभिनन्दन किया गया। पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी उस आयोजनके अध्यक्ष थे। नगरपालिकाके प्रधानने अपने भाषणमें श्रीभाईजीके विषयमें बहुत बातें कहीं। अन्तमें उन्होंने कहा—'विनयकी मानो भाईजी मूर्ति हैं।' अध्यक्षके भाषणके पश्चात् श्रीभाईजीका भाषण हुआ। भाईजीने वन्दनाका श्लोक बोलकर कहा—''यहाँ उपस्थित आप सब व्रजवासी महानुभाव, जिनकी चरण-रजका लाभ लेनेका भी मैं अधिकारी नहीं नीचे बैठे हैं और मैं यहाँ स्टेजपर बैठ गया हूँ—वर्तमान प्रथा ही ऐसी है।

'मैं यहाँ व्रजमें किसी भावको लेकर आता हूँ। मेरे लिये वृन्दावनका प्रत्येक परमाणु आदरणीय-वन्दनीय है।

मैंने 'अभिनन्दन-पत्र प्रदान करने तथा स्वीकार करनेका विरोध किया है। सम्भव है मेरी चेष्टा अधिक मान पानेका प्रयास हो। मनुष्यके अंदर एक छिपी कामना होती है—मान और बड़ाई पानेकी। बहुत बड़े-बड़े त्यागी महात्मा जो जगत्‌के समस्त पदार्थोंका त्याग कर चुकते हैं, उनमें भी न कहनेपर न चाहनेपर, अपितु मना करनेपर भी मान-बड़ाईकी अभिलाषा छिपे रूपमें रहती है। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके शब्द हैं—'**सम्मानं कलयातिघोरगरलं नीचापमानं सुधाम्**'। मैंने अभिनन्दन-पत्रके लिये विरोध किया, इसके बदलेमें मानके और शब्द सुननेको मिले। इससे चित्तमें प्रसन्नता नहीं हुई होगी यह अन्तर्यामी प्रभु ही जानता है। आप सब आशीर्वाद दें—यह मान चाहने-का बड़ाई चाहनेका मनोरथ आप सबके आशीर्वादसे दूर हो जाय तथा जैसे पुष्पोंकी माला पहननेमें सुख-प्रसन्नता होती है वैसे ही जूतोंकी माला पहननेमें भी सुख-प्रसन्नताकी अनुभूति हो।

'महाभारतकी कथा है जिसका सार यह है—बड़ोंकी हत्या तलवारसे नहीं होती, बड़ोंके मुँहपर उनकी निन्दा कर देना उनकी हत्या है तथा अपने मुँह अपनी प्रशंसा करना या अपने कानोंसे अपनी प्रशंसा सुनना आत्महत्या है।'

"यदि मान-बडाईकी चर्चा सुनना मीठा न लगता तो पूजनीय श्रीब्रह्मचारीजी महाराज आज्ञा ही नही देते कि मै चुपचाप सब स्वीकार करता रहूँ। वास्तवमे मेरी निर्बलता ही इसमे हेतु है।

"आपलोगोने जो कुछ पढकर सुनाया अथवा यो ही कहा, मै उसे अपनी भावनाके अनुसार आशीर्वाद मानता हूँ। आप श्रीकृष्णके है।"

[१८]
श्रीभाईजीका पुस्तक-प्रेम

श्रीभाईजी आदिसे अन्ततक अकिचन रहे। इस अकिचन महापुरुषने यदि कुछ सग्रह किया है तो वह है—विपुल साहित्य। सस्कृत, हिंदी, बँगला, गुजराती, मराठी, राजस्थानी और अग्रेजी भाषाके अच्छे-अच्छे ग्रन्थोको मँगाना और उनका अध्ययन-मनन करना—यह उनका सबसे प्रिय व्यसन था। जहाँ-कही जाते, अच्छे ग्रन्थोको प्राप्त करनेकी चेष्टा रखते। कलकत्ता-जीवनमे उपयोगी ग्रन्थोका एक अच्छा सग्रह उनके पास था और शिमलापालके नजरबदी-कालमे वहाँके स्कूलके अध्यापक महोदयके पास उन्हे विपुल बँगला साहित्य उपलब्ध हुआ। बम्बई-जीवनमे उन्होने गुजराती-मराठी साहित्यका तथा अग्रेजीके अपने विषयके अनुकूल ग्रन्थोका अच्छा सग्रह किया तथा उनका अध्ययन भी। गोरखपुर आनेके पश्चात् तो उनका ग्रन्थोका सग्रह बहुत विशाल हो गया। जब कभी वे कलकत्ता जाते, तब अपने व्यस्त कार्यक्रममेसे समय निकालकर वे कॉलेजस्क्वेयरमे पहुँचते और फुटपाथपर बैठे, पुरानी पुस्तकोको बेचनेवाले पुस्तक-विक्रेताओसे अलभ्य पुस्तके खरीदकर लाते। देशके अच्छे-अच्छे प्रकाशकोके सूचीपत्र उनके आस-पास पडे रहते थे और वे उनमेसे अपने विषयके उत्तम-उत्तम ग्रन्थ बराबर मँगवाते रहते थे। इस व्यसनके परिणामस्वरूप 'कल्याण'के सम्पादकीय विभागका पुस्तकालय एक सम्पन्न पुस्तकालय है। इतना ही नही, श्रीभाईजीका अपना एक निजी पुस्तकालय भी है, जो उनके पैतृक स्थान रतनगढमे है। उसमे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर ग्रन्थोका सग्रह है।

मुद्रित पुस्तकोके अतिरिक्त हस्तलिखित पुस्तकोके सग्रहका भी श्रीभाईजीको व्यसन था। 'कल्याण'मे वे बराबर हस्तलिखित पुस्तकोके लिये अपील प्रकाशित करते रहते थे। 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाएँ उस अपीलके अनुसार प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ सुरक्षाकी दृष्टिसे श्रीभाईजीको भेजते रहते थे। श्रीभाईजी इस प्रकार आये हुए ग्रन्थोको स्वय देखते तथा उन्हे बडे जतनसे सँभालकर रखवाते। साथी लोग कई बार बिखरे पन्नोको तथा जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थोके प्रति उपेक्षा दिखाते, किंतु श्रीभाईजीको वे चीजे अमूल्य निधि अनुभव होती और वे स्वय समय लगाकर उनको सँभालकर रखवाते। सम्पादकीय विभागमे तथा रतनगढके पुस्तकालयमे हस्तलिखित ग्रन्थोका अच्छा सग्रह है। अपने परिवारके बच्चोको वे बहुधा कहा करते थे—'मेरी सम्पत्ति तो ये ग्रन्थ है। बेटा, तुम इन्हे सँभालकर रखना और इनका उपयोग करना।'

अपने रात-दिनके कार्यरत जीवनमे भी श्रीभाईजी पुस्तकोके अध्ययनका समय निकाल ही लेते थे। लगभग ५०० पत्र-पत्रिकाएँ विभिन्न भाषाओकी उनके पास आती थी और वे सभी पत्रिकाओपर एक नजर अवश्य डाल लेते थे और जहाँ उन्हे अपने उपयोगकी सामग्री दिखायी देती, वे उसे छाँटकर अलग कर लेते थे। इसी प्रकार जो-जो ग्रन्थ उन्हे भेटस्वरूप प्राप्त होते थे, उनको थोडा-बहुत अवश्य देखते थे। अपनी रुचिसे मँगवाये ग्रन्थोको तो वे अच्छी प्रकार देखते ही थे। इस प्रकार विभिन्न भाषाओके विपुल-साहित्यका उन्होने अध्ययन किया और उसका उपयोग 'कल्याण'के लिये लेख तैयार करने तथा उसका सम्पादन करनेमे हुआ। श्रीभाईजीको विभिन्न भाषाओके ग्रन्थोकी बहुत अधिक जानकारी थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'के विशेषाङ्कोके समय वे बडी सरलतासे विभिन्न भाषाके साहित्यसे उस वर्षके विशेषाङ्कके उपयोगकी सामग्री जुटा लेते थे। इस प्रकार 'कल्याण'के प्रत्येक विशेषाङ्कमे उस विषयमे सम्बन्धित प्राय सभी भारतीय भाषाओ तथा अग्रेजी भाषाके ग्रन्थोका सार सगृहीत हो गया है।

[१९]

श्रीभाईजीका वसीयतनामा

(२६-२७ दिसम्बर १९६९को श्रीभाईजीका स्वास्थ्य बहुत अधिक खराब हो गया था। गोरखपुरके डाक्टर सभी निराश हो गये थे। दिल्ली ऑपरेशनके लिये जानेकी बात तय हो रही थी। अचानक भगवान्की कृपासे स्थितिमे सुधार हो गया। क्या, कैसे हुआ, भगवान् जाने। उसी दिन रात्रिके प्रथम प्रहरमे श्रीभाईजीने एक पैड माँगा और उसपर चुपके-चुपके कुछ लिखना आरम्भ किया। थोडा-थोडा करके लगभग एक मासमे, अर्थात् २७ जनवरी १९७०को उन्होने उसे 'मेरा वसीयतनामा' कहकर पूर्ण किया। उसका आवश्यक एव सर्वसाधारणके लिये उपयोगी अश यहाँ दिया जा रहा है।)

श्रीहरि

प्रस्तावना

गोरखपुर

दिनाङ्क—२७-१२-६९

कल ज्यादा दर्द था, आज कुछ कम है। मेरे मनमे आया कि मै अपनी कुछ मान्यताओ और इच्छाओको—हो सके तो लिख दूँ। तदनुसार लिखना शुरु किया है। मनकी बाते सारी तो लिखी ही नही जायँगी। कुछ बाते लिखी जा सकती है। लिखनेके समय मनमे जो चित्र होगा, सत्य-सत्य उसीको अङ्कित करनेका विचार है। कही कोई भी राग-द्वेष तथा अन्य कोई भी हेतु नही है। लिखा जानेपर जिनको मिले, वे स्वय अपने लिये कुछ लाभकी बात दीखे और इच्छा हो तो उसे ग्रहण कर सकते है।

उम्र ७८ वर्षकी हो गयी। भारतमे प्राय ६० वर्षकी उम्र मृत्युकी उम्र मानी जाती है। तदनुसार मेरा शरीर तो अधिक टिक रहा है। शरीर छूटनेवाला है ही। इसकी जरा भी चिन्ता या दुख नही होना चाहिये। आत्माका कभी नाश नही होता, शरीर नष्ट हुए बिना रहता नही। यह अपरिहार्य है। मनुष्य मोहवश अधिक जीना चाहता है। वास्तवमे उसे न तो शरीरको अधिक रखनेकी इच्छा करनी चाहिये और न शरीरके जल्दी नष्ट हो जानेकी। कर्मवश सहज जो कुछ होना है, होता रहे। बस, सावधानी तो केवल एक ही बातकी रखनी है कि हर स्थितिमे भगवान्का स्मरण होता है या नही।

शरीरमे कही भी पीडा होगी और वह जिस मात्रामे होगी—उसका अनुभव तो होगा ही, अन्तर इतना ही होता है कि जो शरीरसे अपनेको पृथक् देखता है, उसे पीडाके साथ-साथ होनेवाला दुख नही होता—वह इस बातसे दुखी नही होता कि 'मै बीमार हो गया, भयानक बीमारी है, कब अच्छा होऊँगा, मर तो नही जाऊँगा—इत्यादि,' क्योकि वह नाम-रूपवाले शरीरको 'मै' नही मानता, आत्माको मानता है, आत्मा नित्य नीरोग तथा अमर है। पर उसको (शरीरमे अपनेको पृथक् देखनेवालेको) पीडाका ज्ञान—पीडाजनित स्थितियोका भोग तो होगा ही। इस प्रकार मुझे भी पीडाका बडा अनुभव हो रहा है। पेटका असह्य दर्द सहन करनेमे कष्ट होता है। पता नही, शरीर जायगा या रहेगा। वैसे इसकी अब आवश्यकता भी नही रही। 'विशेष कार्य' समाप्त हो चुका। अब तो शरीरका प्रारब्ध, जो 'विशेष कार्य'के कारण रुक गया था, समाप्त होते ही शरीर चला जायगा। घरवालोको, स्वजनोको, मुझमे किसी भी कारणसे राग रखनेवालोको मोहवश दुख होगा ही, पर विधाताका अमिट विधान समझकर दुख नही करना चाहिये और मानव-जीवनकी यथार्थ सफलताके लिये मेरे भावोके अनुसार या जँचे जैसे ही प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

'मेरा वसीयतनामा'

गोरखपुर

२७—१—७०

मेरी कोई स्वतन्त्र इच्छा नही है। भगवान्के मङ्गलविधानके अनुसार जो कुछ हुआ है, हो रहा है और होगा—वही ठीक है और वही मेरी इच्छा है।

तथापि मेरे मनमे ऐसी बात आयी थी कि मेरे जीवनकी कुछ अनुभूतियाँ, कुछ खास मान्यताएँ, कुछ परिस्थितियाँ, कुछ कामनाएँ, कुछ विचार——सकेतसे या सक्षेपमे लिख दूँ, जिससे जो लोग कुछ जानना चाहते है——जिज्ञासा रखते है, जान-समझकर उससे लाभ उठा सके।

मेरे पास अपना न तो एक पैसा कही जमा है, न मेरे कहीसे कोई आमदनी ही है। रतनगढमे कुछ मकान आदि है। उसका वसीयतनामा पहले लिख दिया गया था। अब सम्पत्तिके रूपमे——'ये मेरे कुछ विचार मात्र' है, जिन्हे लिख रहा हूँ। ये सर्वसाधारण——पब्लिकमे प्रचारके लिये नही है। परिवारके, घरके तथा निकट-सम्पर्कके जो लोग है, वे इन्हे पढे और जिनको कुछ लेना हो, वे अपना अधिकार समझकर अवश्य ले ले——यह निवेदन है।

मेरे आध्यात्मिक उत्तराधिकारीका कोई एक नामनिर्देश नही किया जा सकता, मेरे लिये सभी स्नेहपात्र है, पर किसीको उतना ही और वैसा ही उच्चस्तर या मध्यस्तरका अश प्राप्त होगा, जितनी उसकी मेरे प्रति विशुद्ध भावना रही होगी और जो जितनी आध्यात्मिक भूमिकापर आरूढ होगा। हाँ, जिन्होने दम्भ किया, मुझे ठगने या मुझसे केवल लौकिक भोग-सुख-साधनके लिये सम्पर्क रक्खा है, उनको शायद ही कुछ मिलेगा, किसीको मिलेगा तो वह बहुत ही कम हिस्सा। दम्भी और दूसरोको ठगनेकी चेष्टा करनेवाले तो स्वय आत्मवञ्चना करते है, उनको कुछ भी प्राप्त होना प्राय असम्भव है।

मुझमे जिनकी जरा भी श्रद्धा, प्रीति या सद्भावना हो, उनसे मेरा निवेदन है कि वे सभी नर-नारी परम सात्विक, त्यागोन्मुखी, भगवत्सम्बन्धयुक्त जीवन बनाये। 'कल्याणकारी आचरण' नामक पुस्तकमे मेरे जो विचार छपे है, उनका यथासाध्य पूरा पालन करे तो अवश्य ही उनको भगवत्कृपासे परमवस्तुकी प्राप्ति होगी।

× × ×

जीवनके शिशुकालमे मुझे अपनी दादीजी श्रीरामकौर देवीसे——मेरी माताजीके बहुत पहले ही परलोकवासी हो जानेके कारण, जिन्होने मुझे मातासे कही अधिक स्नेह-वात्सल्य देकर पाला-पोसा था——बहुत अच्छी शिक्षा मिली। वे साधुओकी वडी भक्त थी। महान् सत श्रीवखन्नाथजी महाराजकी कृपा मुझे दादीजीके कारण ही प्राप्त हुई थी। स्वामी हरिदासजी आदि महात्माओका प्रसाद भी उन्हीके कारण मिला था।

पिताजी भी वडे सात्विक पुरुष थे, उनसे भी सयमकी शिक्षा मिली। यो जीवनके प्रारम्भसे ही मुझे भोग-सुखके विरुद्ध त्याग तथा सयमका क्रियात्मक सजीव पाठ मिला। तदनन्तर कलकत्तामे स्वदेशी-युगके क्रान्तिकारी आन्दोलनसे भी बहुत वडी नियमानुवर्तिता, सयम, त्याग, सादगीकी क्रियात्मक शिक्षा मिली, क्योकि उस समय आन्दोलनका उद्देश्य ही था——देशके लिये तन-मन-धन——सर्वस्व अर्पण कर देना।

राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, व्यापारिक——विभिन्न क्षेत्रोके महानुभावोसे वार-वार मिलने, किन्ही-किन्हीके साथ अत्यन्त न्यून तथा किन्ही-किन्हीके विशेष अन्तरग सम्पर्कमे आनेका सुअवसर मिला। उससे मुझे त्यागमय जीवन-निर्माणमे वडी सहायता मिली। उसके कुछ बाद ही महामना प० मदनमोहन मालवीय, डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसाद, वावू पुरुषोत्तमदास टडन, लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी आदिसे निकटका सम्बन्ध हो गया। राजनीतिक जगत्के अन्य महानुभावोसे भी मिलना हुआ, पर उपर्युक्त महानुभावोसे बहुत समीपता हो गयी। खासकर पूज्य मालवीयजी, महात्मा गाधी और श्रीटडनजीसे तो एक प्रकारका पारिवारिक सम्वन्ध-सा हो गया। ये मुझे अपने परिवारका अत्यन्त विश्वस्त वालक समझते थे। इन लोगोसे मुझे वहुत कुछ मिला। वीच-वीचमे श्रीजयदयालजी गोयन्दका कलकत्ता पधारते, तव उनके सत्सङ्गका लाभ मिलता। यो आध्यात्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियोके साथ मेरी धार्मिक प्रवृत्तियाँ भी चलती रही।

× × ×

गोरखपुर आनेपर 'कल्याण'के कारण देशभरके सभी प्रान्तोके वहुत वडे सम्मान्य साधु-महात्माओ, आचार्यो, विद्वानो, लेखको, विभिन्न धर्मोके माननेवाले महानुभावोसे मेरा सम्पर्क हो गया। 'कल्याण'के सम्पादन-कार्यमे भगवत्कृपासे सभीका अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ।

सन् १९२७में व्यापारके सारे काम-काजसे सम्बन्ध तोड़कर जब मैं बम्बईसे चला, तब यही निश्चय किया था कि एक बार गोरखपुर जाकर फिर सदाके लिये कहीं पवित्र गङ्गातटपर एकान्त निवास करके जीवनके शेष दिन केवल भजनमें ही बिताने हैं। पर होता वही है, जो श्रीभगवान्‌के मङ्गलमय विधानके अनुसार होना होता है। 'कल्याण'को गीताप्रेससे प्रकाशित करानेकी व्यवस्था हो जाय—इतने ही कामके लिये मैं गोरखपुर आया था, पर 'प्रेस' तथा 'कल्याण'का काम उत्तरोत्तर बढ़ता गया। आसक्ति या मोहनावश उसीमें मेरा मन अधिक-से-अधिक लगने लगा और मेरी एकान्तवासकी इच्छा धरी रह गयी और मैं गोरखपुरका ही हो गया—'करी गोपालकी सब होय।'

× × ×

इसके बाद गोरखपुरमें सावित्रीका जन्म हुआ। मेरा बन्धन और भी दृढ़ हो गया। सावित्रीको बड़े ही प्यारसे पाला-पोसा गया तथा सुसंस्कृत बननेका यथासाध्य प्रयास किया गया। फल भी हुआ। सावित्रीका शील-स्वभाव बहुत ही श्रेष्ठ है। उनमें ईश्वर-विश्वास है, त्याग है, संयम है, बुद्धि है भजन तथा सेवामें अभिरुचि है। कर्त्तव्यपरायणता, श्रमशीलता है, उदारता है और अध्यात्मकी ओर झुकाव है। और भी बहुत-से गुण हैं, जो आजके युगमें बड़ी कठिनतासे प्राप्त होते हैं। मेरा उसके प्रति सहज ही अत्यन्त आकर्षण और स्नेह है और मैं उनके लिये सब कुछ करनेको तैयार हूँ। उसपर भगवान्‌की वस्तुत बड़ी कृपा है।

मेरे जामाता हैं श्रीपरमेश्वरजी। उनपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है। वे सच्चे मनसे पूर्ण समर्पण करना चाहते हैं। वे अपना अधिक समय भगवच्चिन्तनमें लगाते हैं। व्यर्थ-चर्चा नहीं करते। श्रीपरमेश्वरजी कहीं फालतू आते-जाते नहीं, सिनेमा कभी नहीं देखते, खान-पान, वेष-भूषामें भारतीयता और पवित्रताका ध्यान रखते हैं। मनमें उदारता है, दानवृत्ति है, पैसेका मोह नहीं है, सीधा-सादा जीवन है, अपने लिये बहुत कम खर्च करना चाहते हैं। जो कुछ मैं दे सकता हूँ, मैंने उनको दे दिया है। उसका अभी प्रकाश नहीं दीखता, समयपर दीखेगा।

सावित्रीके चार बच्चे हैं—राधा, सूर्यकान्त, पुष्पा और चन्द्रकान्त। चारों ही अच्छे स्वभावके हैं। आजकलके अनुशासनहीन, स्वेच्छाचारी बच्चोंको देखते ये कहीं बहुत श्रेष्ठ हैं। इन बच्चोंके सम्बन्धमें यह एक निवेदन है कि जीव-जीवनगत न्यूनाधिक दुर्बलताओंके होनेपर भी इन बच्चोंमें कोई ऐसा 'विलक्षण शुभ' अवश्य है, जिसके कारण इन्होंने हमारे घरमें या हमारी लड़कीके यहाँ जन्मग्रहण किया है। अतएव जो लोग मेरे प्रति वास्तविक श्रद्धा-प्रीति रखते है, वे भगवद्भावसे सहज ही इन सबके प्रति सद्भाव रखते तथा इनके हित-सुख-सम्पादनका कार्य करते रहते हैं और करते रहेंगे। पर जो 'सहज भाव'से नहीं कर सकते, उनका यह कर्त्तव्य है कि वे इनके साथ सद्भाव रखें और इनके हित-सुख-सम्पादनका (मेरी प्रसन्नता तथा प्रीतिके लिये ही) प्रयत्न करें। ऐसा करनेसे उनके कर्त्तव्यका पालन होगा और उन्हें निश्चित लौकिक-पारमार्थिक लाभ होगा।

सावित्रीके जामाता श्रीजगदीशजी और श्रीदिलीपजी बहुत अच्छे हैं। मुझे दोनों ही बहुत प्रिय हैं।

निकट परिवारके, घरके तथा मेरे निकट एवं मेरे साथ रहनेवाले अन्यान्य सभी, जो मेरे प्रति न्यूनाधिक आत्मीयता, स्नेह-श्रद्धा रखते हैं, मुझे बहुत ही प्रिय हैं। सभीमें न्यूनाधिक सद्गुण हैं, मेरी उन सभीके प्रति सच्ची शुभकामना है। वे सभी मेरे भाव तथा विचारोंका उत्तराधिकार यथायोग्य प्राप्त करें—मेरे साथ भाव-साम्य प्राप्त करके भगवान्‌के मार्गमें आगे बढ़ें—मैं यह हृदयसे चाहता हूँ और उन सबसे सस्नेह अनुरोध करता हूँ कि वे ऐसा अवश्य करें, इससे उनका कल्याण होगा।

कदाचित् मेरा शरीर पहले छूट जाय और सावित्रीकी माताका बना रहे—तो मैं कहूँगा कि जिनकी मेरे प्रति श्रद्धा-प्रीति सद्भावना, सहानुभूति या कृपा है, वे सब घरवाले तथा बाहरवाले भी मन-तन-वचनसे ऐसी चेष्टा करें, जिनसे सावित्रीकी माँको सुख पहुँचे। वह बड़ी ही सात्विक स्वभावकी छल-कपट-शून्य, सरल हृदयकी सती साध्वी है। सावित्रीकी माँने मेरी जितनी सेवा की है, जिस परम निष्कामभावसे—उसकी तुलना कहीं नहीं है। उसने कई ऐसे आदर्श गुण हैं, जो मुझमें नहीं हैं। अतएव उसकी सेवा मेरी सेवासे बढ़कर मुझको सुख देनेवाली है। वास्तवमें जो ऐसा करेंगे, उनका बड़ा ही सौभाग्य होगा।

× × ×

बाबा चक्रधरजी पू० श्रीजयदयालजीकी प्रेरणासे कृपापूर्वक यहाँ पधारे और अबतक मेरे साथ ही है। बाबासे मेरा जो कुछ सम्बन्ध है, उसे किन्ही शब्दोमे नही बतलाया जा सकता। न किसी 'सकेत' या 'न्याय'से ही बतलाया जा सकता है। उन्होने मेरी जो कुछ सेवा की है, वह अतुलनीय है। मेरे द्वारा किये हुए अपमान तथा दुर्व्यहारको जितना सहा है, उतना सहकर शायद ही कोई अपनेको सुस्थिर रख सके तथा प्रेमका निर्वाह कर सके। उनकी स्थिति क्या है, मै नही बता सकता। इतना जानता हूँ कि वे महान् है और सर्वथा 'मेरे अपने' है और मुझे वे सर्वथा 'अपना' मानते है।

मेरा देहत्याग पहले हो जाय और मेरे बाद उनका शरीर रहे, तब तो मै चाहता ही हूँ। पहले भी चाहता हूँ कि उनका भीतरी-बाहरी स्वरूप एक-सा 'मूर्तिमान् अध्यात्म' हो—उनके रोम-रोमसे, उनके शरीरको स्पर्श करके जानेवाले वायुसे—लोगोको अमोघ आध्यात्मिक प्रकाश मिले तथा विशुद्ध आध्यात्मिक बल मिले। उनकी वाणी (चाहे वह मौन भाषामे बोलती हो, चाहे अमौनमे) भगवत्प्रेम-सुधाका प्रवाह बहा दे। पुण्यात्मा अधिकारियोको ही नही, सर्वथा अनधिकारियोको भी अधिकारी बना दे। आपामर—महान् पातकीतकको भगवान्के प्रेमार्णवमे डुबो दे जबर्दस्ती। कोई किसी प्रकार भी सम्पर्क-लेशको प्राप्त कर ले, वही परम अधिकारी बन जाय। उनकी क्रियामे भगवान्की लीला मूर्तिमान् हो। उनके श्वास-श्वाससे विशुद्ध प्रेमानिलका प्रवाह बहे। ऐसा नाट्य-कौशल हो कि बिना ही रङ्गमञ्चके दिव्य सहज रङ्गमञ्च बन जाय और दर्शकमात्र आप्यायित होकर ही जायँ। इस सिंहनीका दूध ही ऐसा हो, जो बूँद गिरते ही दिव्य स्वर्णपात्र तैयार कर दे। सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान्, भगवत्प्रेम-ही-भगवत्प्रेम—एकमात्र भगवत्प्रेम ही छा जाय। केवल प्रेम ही सुनायी दे, प्रेम ही दिखायी दे, प्रेमका ही स्पर्श हो, प्रेमका ही सौरभ प्राप्त हो और सर्वत्र प्रेमका ही मधुर रसास्वादन हो। भगवान् कही मेरा यह सुख-स्वप्न सत्य करे।

× × ×

मै गीताप्रेस-गोरखपुरमे रहनेके लिये नही आया था पर भगवान्के मङ्गलविधानसे रहना हो गया। मै आया था, उस समय बहुत छोटे रूपमे काम था। एक बडी, एक छोटी—केवल दो छपाईकी हाथ-मशीने थी। गीता, प्रेमभक्तिप्रकाश, ध्यानसे भगवत्प्राप्ति—पुस्तके निकली थी। भगवान्की प्रेरणासे फिर काम बढता गया। गोविन्दभवनके ट्रस्टियोमे साहित्यके जानकार केवल एक पुरुष थे—श्रीज्वालाप्रसादजी कानोडिया। और सब लोग पूज्य श्रीसेठजी श्रीजयदयालजीके भक्त थे, उनके आदेशानुसार ट्रस्टी बने थे। काम देखते थे श्रीघनश्यामदासजी जालान। मेरे आनेके बाद साहित्य-प्रकाशनका कार्य बढा। लेखक-अनुवादक-सम्पादक मिलते गये। साहित्य-प्रकाशन होता गया।

यह जो मेरेद्वारा गीताप्रेस और 'कल्याण'का कार्य हुआ, हो रहा है—इसमे वास्तवमे मेरा कृतित्व कुछ भी नही है। मै यदि इसके लिये गर्व करूँ तो वह सर्वथा मिथ्याचार और अपराध होगा। मै तो 'साहित्यसगीत-कलाविहीन', 'अज्ञानतिमिरान्ध' साक्षात् एक 'जन्तुमात्र' था। भगवान्ने अपने-आप स्वाध्यायका दीर्घकालीन सुयोग दिया, सत-महात्मा-भक्त-विद्वानोका सङ्ग प्राप्त हुआ, निर्बाध असीम क्षेत्र मिला, बताने, सिखाने तथा सहायता देनेवाले समर्थ साथी मिले। यह सब भगवत्कृपा तथा भगवत्प्रेरणासे ही हुआ।

बिना किसी योजनाके जिस प्रभुने अपनी इच्छासे तुच्छको विशाल किया—गीताप्रेसके कार्यको इतना बढाया, उसकी चतुर्दिक् प्रगति की, वे प्रभु जबतक इसे रखना और चलाना चाहेगे, तबतक किसी भी बाधा-विघ्न या साक्षात् विध्वसक भावसे भी इसका कुछ नही बिगडेगा और यह चलता रहेगा। और जिस क्षण प्रभु इसे रखना नही चाहेगे, उस दिन कोई भी शक्ति इसे बचा नही सकेगी।

इस भगवद्विश्वासके सभी अधिकारी है और सभीको इससे लाभ उठाना चाहिये।

× × ×

गोरखपुरमे कई सार्वजनिक सस्थाएँ बनी, उनसे सम्पर्क स्थापित हुआ। इस समय दो सस्थाएँ काम कर रही है—(१) 'कुष्ठ सेवाश्रम', (२) 'मूक-बधिर विद्यालय'। दोनो ही मानव-सेवा करनेवाली सस्थाएँ है, दोनोमे

ही बडा उपयोगी कार्य हो रहा है। इन सस्थाओकी जो कुछ सेवा बन सकी है—उस सेवाके उत्तराधिकारी बहुत लोग हो सकते हैं।

इनके अतिरिक्त एक अखिल-भारतीय सस्था है—'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'। उत्तरप्रदेशके तत्कालीन राज्यपाल साधुमना श्रीविश्वनाथदासजीके मनोरथ तथा प्रयासके फलस्वरूप इसकी प्रतिष्ठा हुई थी। श्रीअनन्तशयनम् आयगर महोदय इसके अध्यक्ष हे और श्रीविश्वनाथदासजी और मै—इसके सयुक्त-मन्त्री। इस सस्थाके सेवाकार्यका मेरा उत्तराधिकार भी घरवाले तथा मेरे मित्रोमेसे कोई भी ले सकते है।

× × ×

यो तो मेरे जीवनपर उपनिषदोका, ऋषियोका, श्रीमद्भागवतका तथा वैष्णवग्रन्थोका बडा प्रभाव हे, महान् आचार्य श्रीशकराचार्य तथा भगवान् श्रीचैतन्यदेवसे मुझे सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है। पर यदि सत्य कहा जाय तो मेरे जीवनपर बहुत बडा प्रभाव श्रद्धेय पूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका है। मेरे जीवनको बहकने तथा एक ही अध्यात्मपथपर सुरक्षित रखनेका सारा श्रेय उन्हीकी कृपाको है। उनको मेरे पास भगवान्ने ही भेजा था। यद्यपि सम्बन्धमे वे मेरे मौसेरे-भाई होते थे, तथापि दूर-दूर रहनेसे मिलनेका काम नही पडा था। कलकत्तेमे पारख कोठीमे पिताजीके साथ हमारी दूकानपर वे स्वय आने लगे और उन्होने मुझे अपनी ओर खीचा। यह लगभग सन् १९१०की बात है, तबसे शरीरके अन्ततक उनकी कृपा बराबर बनी रही। मैने कई बार गीताप्रेस और 'कल्याण'के कामको छोडकर भागना चाहा, पर उनकी प्रबल कृपाशक्तिने नही भागने दिया। उनसे मुझे जो कुछ मिला, उसकी कही तुलना नही हो सकती। यो कहना चाहिये कि मुझमे यदि कही कोई अच्छापन हे तो यह भगवान्के एव उनके कृपादानका फल है। बुराई सारी मेरी है।

मुझे जो कुछ लाभ हुआ, उसमे उपर्युक्त सत-कृपाके साथ-साथ तीन चीजोकी प्रधानता हे—

१ सबमे भगवान्को देखना।

२ भगवत्कृपापर अटूट विश्वास।

३ भगवन्नामका अनन्य आश्रय।

यही 'मेरी अतुल सम्पत्ति' है और यह इतनी विशाल है कि असख्य लोगोके द्वारा इसके ग्रहण किये जानेपर भी यह कम नही होगी। आप जो कोई मेरे यथार्थ उत्तराधिकारी बनना चाहे, सबमे भगवान् देखकर सबका हित-सुख-सम्पादन तथा सम्मान करे। निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाकी अहेतुकी अनन्त सुधाधारामे सराबोर रहे और अनन्य निष्ठा-विश्वासके साथ भगवन्नाम-जप-कीर्तन करते रहे। ये तीनो करेगे तो अवश्य ही पारमार्थिक लाभ होगा।

× × ×

मुझमे जीवनमे घरके एव बाहरके इतने लोग मिले है, जिनकी सख्या नही की जा सकती। इनमे पूर्व-जन्मोके सम्बन्धके कारण सम्पर्कमे आकर कर्मानुसार अनुकूल-प्रतिकूल फल देने-लेनेवाले, किसी हेतुसे नये सम्पर्कमे आनेवाले, अनायास सहज ही मिल जानेवाले, किसी लौकिक कार्यके लिये मिलनेवाले, लौकिकके साथ-साथ विधाताके विधानमे किसी अज्ञात 'विशेष कार्य'मे भी सहयोग देनेवाले और केवल 'विशेष कार्य'के लिये ही न्यूनाधिकरूपमे सम्पर्कमे आनेवाले—सभी प्रकारके लोग है।

शिलग, कलकत्ता, शिमलापाल, रतनगढ, बम्बई, गोरखपुर तथा अन्यान्य स्थानोमे—पूज्य महात्मा, सन्यासी, पूज्य आचार्य, सरकारके उच्च अधिकारी, न्याय-शासन-विभागके अधिकारी, शिक्षा-विभागके महानुभाव, गीताप्रेस, 'कल्याण' तथा 'कल्याण'-सम्पादन-विभागके कार्यकर्ता, सेवा-सहायता आदि कार्योसे सम्बन्धित, घरमे रहनेवाले, घरके कर्मचारी, सेवक, मित्र, साहित्यिक क्षेत्रमे सम्पर्कमे आनेवाले, 'कल्याण'के लेखक आदिके रूपोमे मिलनेवाले—इनमे भी बहुत लोग है, जिनका न्यूनाधिकरूपसे भगवान्के 'विशेष कार्य'से सम्बन्ध है। यह आवश्यक नही कि उस 'विशेष कार्य'का सबको पता हो। कुछ नाम ये है—

द्वारका शारदापीठके जगद्गुरु शकराचार्य, पुरी गोवर्धनपीठके जगद्गुरु शकराचार्य, शृंगेरीमठके जगद्गुरु शकराचार्य, बदरीनाथमठ (ज्योतिर्मठ)के जगद्गुरु शकराचार्य, श्रीरामानुज-सम्प्रदायके जगद्गुरु श्रीअनन्ताचार्यजी महाराज, श्रीराघवाचार्यजी महाराज, वल्लभ-सम्प्रदायके आचार्य श्रीगोकुलनाथजी महाराज, महात्मा श्रीभवानीशकरजी, श्रीरघुनन्दनप्रसादसिहजी, स्वामी भोलेनाथजी, स्वामी प्रज्ञानपादजी, स्वामी माधवानन्दजी, योगिराज स्वामी प्रज्ञानाथजी, स्वामी अखण्डानन्दजी (सस्तुँ साहित्यमण्डलवाले), स्वामी प्रेमानन्दतीर्थजी, स्वामी ज्ञानानन्दजी (भारतधर्म महा-मण्डल), स्वामी सकर्षणदासजी, बाबा रामकृष्णदासजी, स्वामी गौराङ्गदासजी, स्वामी चिदानन्दजी सरस्वती, स्वामी पुरुषोत्तमानन्दजी, श्रीगोमतीदासजी, स्वामी मङ्गलनाथजी, स्वामी स्वयज्योतिजी, स्वामी गङ्गेश्वरानन्दजी, श्रीब्रह्मबाबा, प० रामवल्लभाशरणजी, श्रीरूपकलाजी, श्रीअञ्जनीनन्दनशरणजी, श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी, श्रीसतीशचन्द्र मुखर्जी, श्रीप्राणकिशोर गोस्वामी, गो० दामोदरजी शास्त्री, श्रीकृष्णप्रेमजी, सत तुकडोजी, श्रीरसिक-मोहन विद्याभूषण, श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय, श्रीजीव न्यायतीर्थ, श्रीहीरेन्द्रनाथ दत्त, श्रीऐनी बेसेन्ट, श्रीगोपीनाथजी कविराज, महात्मा सीताराम ओकारनाथ, प० हाराणचन्द्र शास्त्री, श्रीरामदासजी गौड, श्रीरामनाथजी सुमन, डॉ० रघुबीर, डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी, डॉ० राधाकमल मुकर्जी, डॉ० श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, श्रीश्यामा-प्रसाद मुकर्जी, श्रीवसन्तकुमार चट्टोपाध्याय, श्रीबलदेव उपाध्याय, श्रीआनन्दशङ्कर बापूभाई ध्रुव, श्रीजीवनशकरजी याज्ञिक, श्रीगगाशकरजी मिश्र, श्रीजुगलकिशोरजी बिरला, सर पन्नालाल, श्री एन० सी० मेहता, श्री वी० एन० मेहता, श्री ए० जी० गेरिफ, कमिश्नर बनारस, बीकानेरकी राजमाता सुदर्शना देवी, सर जॉन वुडरफ, श्रीमाधव हरि अणे, श्रीरगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, श्रीअनन्तशयनम् आयगर, श्रीअयोध्यादासजी वार-ऐट्-ला, श्री आद्याप्रसादजी श्रीवास्तव, श्रीचारुचन्द्र दास बैरिस्टर, श्रीजुगलसिहजी खीची, बार-ऐट्-ला आदि।

× × ×

जबसे मैने होश सँभाला है—जहाँतक मुझे याद है—मैने राग-द्वेषवश, जान-बूझकर ऐसा कोई काम प्राय नही किया है, जिससे किसीको दुख पहुँचे, या किसीके भी हितका नाश हो।

कलकत्तेमे क्रान्तिकारी महत्वपूर्ण पत्र 'युगान्तर', 'सध्या' तथा विप्लववादियोके साहित्यके अध्ययन तथा विप्लववादी महान् त्यागपूर्ण जीवनवाले नवयुवकोके सङ्गसे मेरा मन उनके तथा उस आन्दोलनके प्रति आकृष्ट हो गया था। भारतकी स्वतन्त्रताके क्रान्तिकारी आन्दोलनके समय अवश्य ही अग्रेजी शासनके प्रति मेरे मनमे द्वेष हो गया था और कुछ अग्रेज उच्चाधिकारियोके प्रति भी था—यह केवल भारतकी स्वतन्त्रताको लेकर, पर वह महात्मा गाधीके विशेष सम्पर्कमे आनेपर नष्ट हो गया।

इसके बाद गाधीजीके जीवनकालमे ही मुसल्मानोकी हिदू-विरोधी चेष्टाओके कारण मुसल्मानोकी उस नीतिके प्रति भी—किसी व्यक्तिके प्रति नही—मेरे मनमे विरोध हो गया था, जो कई वर्षोतक रहा।

इस विरोधी वृत्तिमे भी मेरे मनमे स्वय बलिदान होकर उनका सुधार करनेकी स्फुरणा होती थी। इसीसे भगवान्की कृपासे मेरे द्वारा किसी प्रसङ्गको लेकर ऐसा कोई कार्य नही हुआ, जिससे किसी अग्रेज या मुसल्मानको व्यक्तिगत हानि हुई हो। मेरे बहुत-से ईसाई-मुसल्मान मित्र है, जो मुझे भाईके समान प्यार करते है। ईसाइयोमे पादरी श्री सी० एफ० एण्ड्रूज महोदय, श्रीआर्थर मैसी मुझपर बडी कृपा रखते थे। मुसल्मानोमे, डॉ० मोहम्मद सैयद हाफिज, श्रीसैयद कासिम अली, श्रीबदरुद्दीन आदिका मेरे साथ बडा प्रेमका सम्बन्ध था, और है। गोरखपुरके कई ईसाई विद्वान् तथा मुसल्मान भाई मेरे साथ बहुत ही प्रेम तथा आत्मीयताका व्यवहार करते थे, रखते है। मै उन सभीका कृतज्ञ हूँ।

जान-बूझकर बुरी नीयतसे कुछ न करनेपर भी मेरे द्वारा मत-सिद्धान्तके आग्रहके कारण, मोह-ममतावश, देशके, समाजके, जातिके, परिवारके, घरके—बहुत लोगोका बहुत बार अपमान-तिरस्कार हुआ है। मेरे रूखे-कडे बर्तावसे, असत् व्यवहारसे, कभी-कभी असत् न दीखनेवाले सत्-व्यवहारसे भी, बहुतोको दुख पहुँचा है, इसके लिये घर-बाहरके सभीसे सच्चे हृदयसे क्षमा चाहता हूँ। वे सभी मुझपर कृपा करे और मेरे अपराधोके लिये क्षमा कर दे।

× × ×

भारतवर्षमें तथा बाहर जितने भी ईश्वरोन्मुखी धर्म हैं तथा जिनमें किसी भी नामसे दैवी सम्पदाको प्रथम स्थान है, वे सभी धर्म शुभ हैं, उनमें फलकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं मानना चाहिये। मेरा तो यह निश्चय है कि परमतत्त्व, सत्य, परमात्मा, भगवान् या आत्मा 'एक—अद्वितीय' है। वह नित्य अपने ही आपमें, अपनेसे ही लीलायमान है। जितने भी ईश्वरवादी दैवी-सम्पत्तिवान् धर्म हैं, सब विभिन्न दिशाओंसे तथा विभिन्न मार्गोंसे बहती हुई एक ही समुद्रकी ओर जानेवाली विभिन्न नदियोंके समान भगवत्प्राप्तिके मार्गरूप हैं। विभिन्न धर्मों तथा विभिन्न आचार्यों-मतोंके तत्त्व-निरूपणमें जो भेद दिखायी देता है, वह तो अवश्यम्भावी है। आसामसे, पजाबसे, दक्षिणसे और हिमालयसे काशी जानेवालोंके मार्ग, काशी एक होनेपर भी, एक-से नहीं हो सकते। इसी प्रकार जो महात्मा जिस मार्गसे तत्त्वधामके अन्तर्द्वारतक बुद्धिके द्वारा पहुँचे हैं, उनकी उन्हें वहाँ पहुँचाकर वापस लौटी हुई बुद्धि उनके नामसे उसी मार्गका वर्णन करेगी और अन्तर्द्वारको ही तत्त्व बताकर उसीका निरूपण करेगी। असलमें जहाँ तत्त्वकी उपलब्धि है, वहाँ तो न प्रश्न है न उत्तर है, कुछ भी बोलना-चालना नहीं है वहाँ। और जहाँ बोलना-चालना है, वहाँ तत्त्वकी उपलब्धि—तत्त्व-स्वरूपता नहीं है। अतएव तत्त्वका वर्णन तो होता ही नहीं, वर्णन होता है—साधन-मार्गका, और साधन-मार्गमें विविधता अवश्यम्भावी है। पहुँचे हुए सभी महात्माओंकी बुद्धि—चाहे वे किसी धर्म-सम्प्रदायके हों—सत्यका ही वर्णन करती है और वह सत्य वहींतक होता है, जहाँतक बुद्धि पहुँच पाती है, देख पाती है।

अतएव मैंने जहाँतक बना है, किसी भी मत-सम्प्रदायके महात्माओंका और उनकी दैवी-सम्पदायुक्त साधन-पद्धतिका कभी विरोध नहीं किया। मुझे ऐसा लगता है कि 'एक ही सत्य विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त है।' मैं यह चाहता हूँ कि मेरी इस मान्यता तथा उपलब्धिके भी लोग उत्तराधिकारी बनें और जो सच्चे मनसे बनना चाहते हैं, उन्हींको मैं यह उत्तराधिकार देता हूँ।

× × ×

पता नहीं, भगवान्‌की किस प्रेरणासे मेरे जीवनमें गरीब, अनाथ, विविध कष्टोंसे पीडित नर-नारियोंकी तथा गौ आदि पशु-जातिकी सेवाके सुअवसर प्राप्त होते रहे हैं—और उनमें अनायास ही अबतक इतनी अपार 'धनराशि'का उपयोग हुआ है, जिसकी सख्यापर विश्वास करना कठिन है। फिर आश्चर्य यह है कि बाढ़-अकाल आदि सार्वजनिक सेवाके कुछ कार्योंके अतिरिक्त कहीं किसी सेवाका विज्ञापन नहीं हुआ है और न ऐसे सेवाकार्यके लिये कभी किसीसे कुछ माँगा ही गया है। भगवान्‌की प्रेरणासे भगवान्‌की वस्तु भगवत्स्वरूप महानुभावों तथा देवियोंसे प्राप्त होती रही और भगवत्स्वरूप अभावग्रस्त नर-नारियोंकी सेवामें यथायोग्य लगती रही। मेरी अनुभूतिमें इसमें सभी दिशाओंसे केवल भगवान्‌की मङ्गलमयी प्रेरणाने काम किया। प्रत्येक सत्कर्ममें जरा भी अभिमान न करके उसका एकमात्र कारण मङ्गलमयी भगवत्प्रेरणाको ही मानना चाहिये। मैंने ऐसा मानने तथा अनुभव करनेकी चेष्टा की है। यही सभीको करना चाहिये।

× × ×

मेरी यह दृढ मान्यता तथा अनुभूति है कि अपने ही किये हुए कर्मोंके फल-स्वरूप अनिष्टकारक प्रारब्ध हुए बिना कोई किसीका अनिष्ट नहीं कर सकता, पर दूसरेका अनिष्ट करनेका विचार और कार्य करके वह स्वयं अपने नवीन 'पाप-कर्म'का कर्ता अवश्य बन जाता है। अतएव किसी भी प्राणीका किसी प्रकारसे भी कुछ भी अनिष्ट करनेकी बात न सोचनी चाहिये न वैसा कोई कार्य ही करना चाहिये। हाँ, दूसरेका हित-सुख-सम्पादन करनेका विचार तथा प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। वह 'हित-सुख-सम्पादन' भी होगा, उसके प्रारब्धके अनुसार ही। 'पर-हित-सुख-सम्पादन'का हमारा विचार तथा कार्य—हमें पुण्यकर्मका कर्ता बना देगा, जो हमारे लिये शुभ फलका उत्पादक होगा और यदि वही 'पर-हित-सुख-सम्पादन'का विचार और कार्य निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ या उनकी अर्चारूप होगा तो मानव-जीवनके एकमात्र उद्देश्य—'भगवत्प्राप्ति'में सहायक होगा।

कभी अपने किसी 'अनिष्ट'मे दूसरे किसीका हाथ दिखायी दे तो दृढतासे यह समझना चाहिये कि हमारा 'अनिष्ट' हमारे अपने कर्मजनित प्रारब्धके सिवा दूसरा कोई भी, कभी भी कर नही सकता। जिसका हाथ दिखायी देता है, वह तो 'निमित्तमात्र' है और यदि उसने ऐसा किया है तो नया पापकर्म करके अपना ही अनिष्ट किया है, सब जो अपना अनिष्ट करता है, वह पागल है। पागल सदा ही दयाका पात्र है। अतएव उसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि भगवान् उसे 'क्षमा' कर दे। कभी उसका बदलेमे 'अनिष्ट' तो चाहे ही नही।

किसीको बिना ही जनाये उसका उपकार करना, उसको जनाकर करना, उसके घरवालोको जनाकर करना, बहुतोंको बताकर करना अथवा विज्ञापन करके करना—सभी परोपकार उत्तम है तथा किसी भी रूपमे हो, उन्हे करना कर्तव्य है। पर इनमे एक-से-दूसरा नीचे दर्जेका है।

उपकार करके बदलेमे प्रशसा चाहना, कृतज्ञता चाहना, समयपर बदलेमे उपकारकी आशा रखना, यश-कीर्ति चाहना, उपकारके अहसानसे दबाकर उससे मनमाना काम करवानेकी चाह करना, भगवान्‌से बदलेमे सुख चाहना, परलोकमे बदला चाहना—ये सब 'सकाम भाव' है। इनमे जो निर्दोष हो, वे सकाम भाव भी रहे तो भी 'उपकार' करना कर्तव्य है।

पर यह सब 'उपकार' है—'प्रेम' नही है। प्रेमी कुछ भी करके प्रेमास्पदका उपकार नही करता, वह तो अपने ही लिये अपना ही काम करता है। इससे प्रेमास्पद या किसीको जताने-बतलानेका तो प्रश्न ही नही उठता, वर प्रेमीके मनमे कभी यह भी नही आता कि मेरा प्रेमास्पद यह जान भी ले कि मेरा प्रेमी मेरे दुखसे दुखी है। प्रेमी प्रेमास्पदके दुखमे उसके सामने बैठकर रोता नही, दूसरोके सामने भी अपनी मानसिक वेदनाको प्रकट नही करता। इसका अर्थ यह नही कि उसको वेदना कम होती है। बडी वेदना होती है, पर वह अपनी वेदनाका विज्ञापन तो करता ही नही, अपनी किसी भी चेष्टासे—भाव-भङ्गिमासे भी प्रेमास्पदपर यह असर भी नही डालना चाहता कि 'मेरा प्रेमी मेरे लिये इतना दुखी है', क्योकि वह समझता है कि इससे भी प्रेमास्पदपर एक अहसानका भार पडेगा। अतएव वह चुपचाप जो कुछ भी अधिक-से-अधिक कर सकता है, करता है। जैसे अपने दुख-निवारणके लिये कोई स्वाभाविक ही चेष्टा करता है, वैसे ही वह करता है। इतनेपर भी अपने दुख-निवारणकी चेष्टामे और प्रियतमके दुख-निवारणकी चेष्टामे एक महत्त्वका अन्तर रहता है। अपना दुख तो मनुष्य सह भी लेता है, कभी-कभी उसकी उपेक्षा भी कर बैठता है, दूसरोसे भी उसके निवारणकी आशा करता है, पर प्रियतम-का दुख न तो वह सह सकता है, न उसकी उपेक्षा कर सकता है और न उसकी निवृत्तिके लिये दूसरोकी ओर ही ताक सकता है। जो कुछ भी वह कर सकता है, तुरत तथा पूर्णरूपमे करता है। ऐसे प्रेमीने ही वास्तवमे प्रेमका पाठ पढा है। मुझे भी ऐसे एक-दो प्रेमी प्राप्त है, यह मेरे लिये आनन्दकी बात है। वास्तवमे जिनको प्रेमका सेवन करना हो, उन्हे ऐसा बनना चाहिये।

× × ×

वास्तवमे इस पाञ्चभौतिक शरीरसे अपने कर्मके अतिरिक्त, मेरे द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करवानेकी योजना थी। जिनकी, जैसी जितनी योजना थी, उनकी कृपा तथा शक्तिसे उनका काम बहुत अशमे पूरा हो गया, यद्यपि मैंने जितना चाहा था, जैसे चाहा था, वैसा नही हो पाया। यो तो जितने लोग मेरे सम्पर्कमे आये है, उनका कुछ-न-कुछ कल्याण तो अवश्य ही हुआ है और होगा, पर जिन लोगोने मेरे द्वारा स्वार्थवश अनुचित कार्य करनेकी इच्छा तथा चेष्टा की, वे प्राय वञ्चित ही रह गये। उनकी प्रगति तो रुक ही गयी, कई किसी अशमे पथभ्रष्ट भी हो गये। भगवान् उनका कल्याण करे।

यद्यपि जगत्‌के मङ्गलके लिये जो कुछ हुआ है, वह बहुत दूर-दूरतक हुआ है तथा उसका प्रभाव व्यापक और दीर्घकालतक रहेगा। 'वह क्या है, कैसा है'—यह न मैं पूरा जानता हूँ न जाननेकी इच्छा है। हाँ, इतना जानता हूँ कि यह प्रभुका कार्य है और महान् है।

मुझसे भक्त-प्रीति-विश्वास रखनेवाले बहुत-से स्त्री-पुरुष है। उनमेसे कई सर्वथा सच्चे है, उनको उनकी श्रद्धा, प्रीति, विश्वासके अनुसार भगवान् यथायोग्य फल देंगे—निश्चित ही। पर जो लोग अपनेको ऐसा मानते

हुए या वतलाते हुए भी वास्तवमे श्रद्धा-प्रीति-विश्वासयुक्त हृदयसे भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम न चाहकर केवल भोगलिप्मा रखते है, उनको मिथ्या आचारके कारण भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेमकी प्राप्ति नही होगी।

वस्तुत मुझमे कुछ भी नही है। जो कुछ है, भगवान्मे है। भगवान्के सम्पर्कको लेकर जो मेरे माध्यमसे भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम चाहते है, उनके अन्त करणकी सत्यताके फलस्वरूप भगवत्कृपासे उनकी प्रेम-कामना पूर्ण होगी। पर मेरे साथ उनका सम्वन्ध केवल भगवत्-सम्पर्कयुक्त ही होना चाहिये, किसी प्रकारकी लौकिकताका सम्मिश्रण उसमे नही होना चाहिये। इसलिये मै इस वातको जानता हूँ कि मुझसे दूर-दूर रहनेवाले कई स्त्री-पुरुप मुझमे भगवत्सम्पर्कित निष्ठा रखनेके कारण भगवत्प्राप्तिके समीप पहुँच रहे है, और मेरे पास, सदा मेरे समीप रहनेवाले वहुत-से लोग भाव न रखनेके कारण आत्मवञ्चित हो रहे है। इसका यह अभिप्राय नही कि पास रहनेवालोमे सभी ऐसे है। कई ऐसे लोग है—जिनका नाम वताना वर्जित है, जिनको यथार्थ लाभ हो रहा है और होगा।

जो लोग मेरे पास रहकर भी मुझसे दूर-दूर रहते है, उनको कुछ भी हाथ नही लगता, वे विकृति ही देखते ह, पर जो दूर रहकर भी अन्तरङ्ग रहते है, जिनका श्रद्धापूत हृदय भावसारूप्य पा लेता है, वे भीतरके वहुत कुछ रहस्योको जान लेते है और सत्सङ्गका वस्तुत उन्हीको लाभ प्राप्त होता है। मेरे जीवनमे भी ऐसे ही दोनो प्रकारके लोगोसे सम्पर्क रहा है। मैं जिन्हे देना भी चाहता था, प्रयत्न भी मैंने किया था देनेका, हृदयसे परे रहनेके कारण वे कभी उसे ग्रहण नही कर सके, पर ऐसे लोग, जिनके लिये मेरी अपनी ओरसे कोई चेप्टा नही हुई, हृदयसे भावसारूप्य प्राप्तकर वे वहुत कुछ ले गये। अपनेको जगत्के सामने अपना जाहिर करनेवाले कोरे रह गये और जिनके विपयमे किसीको पता भी नही है कि उनसे मेरा कोई सम्पर्क हे, वे पा गये। जो पा गये, वे अव भी पा रहे है और चूँकि उनका मार्ग मुक्त हो गया है, अतएव वे आगे भी यथाधिकार पाते रहेगे। अतएव जवतक जीवन है, तवतक जिनको कुछ भी पानेकी इच्छा हो, उन्हे अन्तरङ्ग वननेकी—पास रहने, न रहनेको कोई महत्त्व न देकर—मेरे मनोनुकूल साधनामे नित्य प्रवृत्त रहनेकी चेप्टा करनी चाहिये, जिससे कम-से-कम उनका ग्रहणद्वार मुक्त हो जाय। नही तो उन्होने अवतक जो विकृति देखी है, आगे भी वह विकृति ही देखते रहेगे, उल्टे घाटेमे रहेगे।

मेरे पास जितने लोग आये है—आते है—सभी कुछ-न-कुछ देने आते है और देकर जाते है। भक्ति, श्रद्धा, प्रेम, सद्भाव, शिक्षा, परामर्श, विनय, नम्रता, क्षमा, अहकार मिटानेवाली दक्षता, दोप दिखानेवाली निन्दा, कर्तव्यका ज्ञान करानेवाली चेतावनी—जिनके पास जो कुछ होता है, दे जाते है। लाखो-लाखो नर-नारी ऐसे है, जो मेरे पास आये नही हे, पर इसी प्रकारसे उन्होने मुझको सदा दिया है और अनवरत दे रहे ह। इसलिये मुझपर तो सभीका उपकार है और मै सभीका कृतज्ञ हूँ। विभिन्न प्रकारके अनुकूल-प्रतिकूल भावोको धारण करके आनेवाले सभी लोग एक वहुत वडा उपकार करते है, यह कि—'मधुर और भयानक सभी रूपोमे—अनुकूलता और प्रतिकूलताकी पोशाकमे एक भगवान् ही आते हे'—इस वातको मैं कभी न भूलूँ और राग-द्वेपसे वचकर सदा-सर्वदा हर रग-रूपमे छिपे हुए उनको पहचान लूँ। इस दृप्टिसे भी सभी मेरे अत्यन्त आदरके पात्र हैं—सभी भगवत्स्वरूप है, मै सभीका हृदयसे नमन करता हूँ। मैने इस भावके पोपण तथा सवर्द्धनकी चेप्टा सदा की है और मैं चाहता हूँ, मेरे इस भावको मेरे उत्तराधिकारी ग्रहण करे।

× × ×

घरके तथा वाहरके उनलोगोमे, जो केवल परमार्थ-साधनके उद्देश्यसे ही मेरे सम्पर्कमे आये है, दो प्रकारके नर-नारी है—

१ पूर्वजन्मसे साधनमे लगे हुए।

२ इस जन्ममे साधनमे लगनेवाले।

इनमे भी दो तरहके है—

१ पूर्वजन्ममे मेरे सम्पर्कमे आये हुए।

२ इस जन्ममे सम्पर्कमे आये हुए।

इस जन्ममे अथवा पूर्वजन्ममे मेरे सम्पर्कमे आये हुए लोग भी चार प्रकारके है—

१ केवल परमार्थ-साधनमे लगे हुए।

२ न्यूनाधिकरूपमे लौकिक वासनासे मिश्रित परमार्थ-साधनमे लगे हुए।

३ लौकिक वासनाकी प्रधानतावाले तथा

४ केवल लौकिक वासनावाले नाममात्रके साधक।

मै सबका कल्याण चाहता हूँ, पर भगवान्‌के नियमानुसार उनको पूर्ण सफलता, आशिक सफलता या असफलता मिलेगी—उनके भावानुसार ही।

केवल परमार्थ-साधनकी दृष्टिसे मेरे साथ भावसाम्य करके जो लोग मेरे अधिक सम्पर्कमे है, उनकी सफलता निश्चित है, पारमार्थिक सफलतामे समर्पणकी प्रधानता है। अनुकूल आचरण करनेमे अपनी जानमे शक्तिभर कमी न रक्खे—पर अपने पुरुषार्थका अभिमान कभी न करे। जिनको समर्पण किया है, सर्वतोभावसे उनकी कृपाका पूरा विश्वास रक्खे—सफलता निश्चित है। जो लोग इस स्तरपर है, उन्हे और भी वढना चाहिये। जो इस स्तरसे कुछ नीचे है या विल्कुल नही है—उन्हे शीघ्र प्रयत्न करके लगना चाहिये। जो लोग शुद्धभावसे अनुकूल सेवामे सलग्न है, उनका विशेष भार भगवान् वहन करते है। सत्सङ्गी साधकोको निराश न होकर भगवान्‌की अहैतुकी कृपाके बलपर निरन्तर यथासाध्य भगवान्‌के अनुकूल कार्योमे (यही साधन है) लगे रहकर यह विश्वास करना चाहिये कि भगवान्‌ने उनको अपना लिया है—सर्वथा स्वीकार कर लिया है।

× × ×

मेरे कुछ स्नेही सज्जन, जो मेरे प्रति श्रद्धा तथा सद्भाव रखते है, मेरी जीवनी लिखना चाहते है या लिख रहे है। जहाँतक उनका शुद्ध भाव है, मै उसका आदर करता हूँ और उनके स्नेहके लिये कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, परतु उनसे मेरा अनुरोध है कि वे इसपर पुन विचार करे।

प्रथम तो हाड-मासके पाञ्चभौतिक अनित्य 'शरीर' तथा उसके कल्पित 'नाम'की जीवनी लिखकर उसको सम्मान प्रदान करना—एक प्रकारसे प्रत्यक्ष ही 'नाम-पूजा' है, जो सर्वथा अवाञ्छनीय है। मै उस श्रेणीका पुरुष तो हूँ नही, परतु वास्तवमे आत्मस्थित कोई भी पुरुष इस मिथ्या नाम-रूपकी जीवनी तथा उसके महत्वका समर्थन नही करते।

दूसरे, लेखक जीवनको, यथार्थ रहस्यको, कार्यके प्रेरक विचारोको—जो कर्त्ताके जीवनका सच्चा दर्शन कराते है—जानते नही। फिर, बाहरकी बातोमे भी जीवनी-लेखक प्राय उन्ही बातोका उल्लेख करते है, जिनसे उनका महत्त्व प्रकट होता है। उनकी भूलो तथा कमजोरियोको छोड देते है या छिपा देते है, क्योकि जीवनीके लेखकका उद्देश्य यथार्थ जीवन-चित्र उपस्थित करना नही, अपितु बडे ही सद्भावसे उनके गुणोका प्रचार-प्रसार करके अपनी श्रद्धा प्रकट करना और उन गुणोके प्रचारद्वारा जगत्‌को लाभ पहुँचाना होता है। पर ऐसा करनेमे जीवनी एकाङ्गी होती है, सच्ची नही होती। और असत्यके आश्रयमे तो 'विकृति'की पूरी सम्भावना है ही। इसलिये भी जीवनी लिखनेका समर्थन नही किया जा सकता।

तीसरे, मेरा पाञ्चभौतिक शरीर सर्वथा प्राकृत तथा कर्मजनित होनेपर भी इसके द्वारा कुछ 'विशेष कार्य' करानेकी कोई दैवी प्रेरणा थी। उसको न तो मै वतला सकता हूँ और न कोई लेखक जान ही सकता है। उस 'विशेष कार्य'को लेकर जीवनमे कब-कब, कैसे-कैसे, कौन-कौन-से विचार आये, कैसी-कैसी क्रियाएँ हुई—यह लेखक नही जानते। न मै ही उनको बता या लिख सकता हूँ। इस अवस्थामे कोई भी जीवनी-लेखक मेरी यथार्थ जीवनी नही लिख सकते। मेरे पाञ्चभौतिक 'शरीर तथा नाम'वाले जीवनमे साधारण लोगो-जैसी ही कम-

जोरियाँ है। अनेक अवाञ्छनीय चेष्टाएँ हुई है, होती है। उन्हे छिपाया जायगा तो जीवनी मिथ्या होगी और वताया जायगा तो वह जगत्के लिये और भी हानिकारक कार्य होगा। इसलिये जीवनी लिखकर उसके द्वारा मेरे प्रति सम्मान-प्रदर्शन करनेकी तथा जगत्को लाभ पहुँचानेकी इच्छा नही करनी चाहिये।

मेरा सच्चा सम्मान तथा मेरे द्वारा जगत्को लाभ पहुँचानेका साधन है—मेरे भावो, विचारो तथा सम्मति-उपदेशादिके अनुसार जीवनको सयम, त्याग, सेवा, विनय, अनवरत भगवच्चिन्तन, भगवत्-सम्वन्धी वार्तालाप तथा क्रिया-कलाप एव प्रत्येक कार्यको भगवान्का स्मरण करते हुए (कर्म तथा भोगमे आसक्ति-कामना-ममता न रखते हुए) भगवान्की पूजाके लिये ही करना—इस प्रकारका जीवन वनाना, प्राणिमात्रमे भगवान्को देखकर सवका हित-सुख-सम्पादन करना तथा भगवत्सेवाका जीवन वनाना। यही मेरे भावोका उत्तराधिकार है और यही मेरी सच्ची सेवा तथा सच्चा सम्मान है एव इसे मेरे शरीर छूटनेपर ही क्यो, मेरे जीवनकालमे ही—मुझपर स्नेह-श्रद्धा करनेवाले—सभी भाई-वहिन करे। इससे मुझे वडी प्रसन्नता होगी और उनका वास्तवमे कल्याण होगा।

× × ×

वास्तवमे निर्दोष आत्माकी दृष्टिमे निन्दा-स्तुतिका कोई अर्थ नही है, व्यावहारिक जगत्मे इनका स्थान हे। पर मनुष्यको निन्दासे सर्वथा लाभ उठाने तथा स्तुतिसे होनेवाले नुकसानसे वचनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मैने वार-वार निन्दाका आदर करके उससे लाभ उठानेकी चेष्टा की है और मेरा यह अनुभव है, निन्दा करने-वालोमे ७०से ८० प्रतिशततक सच्चे होते है, और हमे लाभ पहुँचाते है। इसके विपरीत प्राय २५से ४० प्रतिशत प्रशसा करनेवाले अतिशयोक्तिपूर्ण एव मिथ्या वचन वोलते हे—कुछ जान-वूझकर किसी स्वार्थवश और कुछ भ्रान्त धारणाके कारण—और ये हमे नुकसान पहुँचाते है। यथार्थमे तो स्तुति-निन्दा, दोनोमे ही हर्ष-विषादयुक्त होना अनुचित है, पर स्तुतिका अनादर करना चाहिये और निन्दाके शव्दोपर गहराईसे ध्यान देकर अपनी त्रुटियोको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। निन्दा करनेवालेका अनादर तो कभी करना ही नही चाहिये। मेरी इस मान्यता-को जो ग्रहण करना चाहे, वे ही इस मान्यताके उत्तराधिकारी हो सकते है और वे अनेक हो सकते है।

मेरे जीवनमे भी वहुत-सी कमजोरियाँ है। मुझसे अपराध वने है, उनके लिये मुझे पश्चात्ताप हे। परतु उनका उत्तराधिकारी मै किसीको नही वनाना चाहता। मैं वडे आग्रहसे सवसे यह अनुरोध करता हूँ—मेरी वुराइयोकी नकल कभी कोई भी किसी भी हालतमे न करे। मेरे उन्ही आचरणोकी नकल करे, जो शास्त्रानुसार वास्तवमे कल्याणकारी हो, जो जरा भी गिरानेवाले हो, उनको किसी भी रूपमे तनिक भी स्वीकार न करे।

मेरे प्रिय चौपाई-दोहे-श्लोक

सीय राममय सव जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(मानस १।७।१)

उमा जे राम चरन रत विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥
(मानस ७।११२ ख)

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमत।
मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत॥
(मानस ४।३)

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थित.।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥
(गीता ६।३१)

यावद् भ्रियेत जठर तावत्स्वत्व हि देहिनाम् ।
अधिक योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ।।
(भागवत ७ । १४ । ८)

ख वायुमग्नि सलिल मही च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशोद्रुमादीन् ।
सरित्समुद्राश्च हरे शरीर
यत्कि च भूत प्रणमेदनन्य ।।
(भागवत ११ । २ । ४१)

श्रूयता धर्मसर्वस्व श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।।
आत्मन॰ प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् ।
(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड १९ । ३५५-५६)

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत् ।।
(गरुडपुराण २ । ३५ । ५१)

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्य ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।
(गीता १८ । ६५)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ।।
(गीता १८ । ६६)

दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह ।
वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।
(गीता २ । ५६)

न प्रहृष्येत्प्रिय प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थित. ।।
(गीता ५ । २०)

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् य स मे प्रियः ।।
(गीता १२ । १७)

ईशा वास्यमिद सर्व यत्कि च जगत्या जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम् ।।
(ईशावास्योपनिषद् १)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मान ततो न विजुगुप्सते ।।
(ईशावास्योपनिषद् ६)

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवाभूद्विजानत ।
तत्र को मोह क शोक एकत्वमनुपश्यत ।।
(ईशावास्योपनिषद् ७)

वे स्वयं ही एक संस्था थे

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥
(कठोपनिषद् २ । ३ । १४)

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥
(कठोपनिषद् १ । २ । २३)

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥
(गीता २ । ७१)

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥
(गीता ५ । २९)

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(गीता ४ । ३९)

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबही आजु ।
होहु राम को, नाम जपु, 'तुलसी' तजि कुसमाजु ॥
'तुलसी' ममता राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख दास भए भव पार ॥
(दोहावली)

[२०]

श्रीभाईजीका पावन कक्ष

जिस मठाकाशसे निस्सृत शब्दब्रह्मने सम्पूर्ण महाकाशको परिव्याप्त कर लिया है, जिस छोटे-से कक्षमेंसे प्रस्फुटित दिव्यवाणीको समग्र विश्वमें हिंदू-धर्म, संस्कृति तथा तत्त्वचिन्तनकी गरिमाको पुनः-प्रतिष्ठित करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और जिस कमरेकी प्राचीरोंने क्रमशः बढते-बढते सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने अंदर समाहित कर लिया है, वर्षोतक प्रायः १८ घंटे प्रतिदिन साधनामें रत रहनेवाले कर्मयोगी, दिव्य भगवत्प्रेमकी रसधारा बहानेवाले प्रेमी भक्त एवं माँ भारतीके ज्ञानकोषको अक्षय बनानेवाले ज्ञान-वारिधिने जिस कक्षको धन्य बनाया है, जिसमें बैठकर संतप्रवर श्रीभाईजीने आर्तसेवा, लोक-व्यवहार तथा अन्यान्य क्षेत्रोंमें नवादर्शोंकी स्थापना की है, उसके साथ जुडी हुई स्मृतियोंकी अमर कहानी दीर्घकालतक कही-सुनी जायगी, यह निश्चित है ।

सहस्रों व्यक्ति खिन्न, निराश, दुःखी प्राणियों एवं पापी-तापी जीवोंके रूपमें प्रविष्ट होकर, प्रफुल्ल, आशान्वित, सुखी एवं पुण्यात्मा बनकर जिस कक्षसे बाहर निकलते दिखायी देते थे, जिसमें श्रीभाईजीको अपने परमाराध्यके अगणित बार दर्शन हुए हैं, प्रेमालाप हुआ है, जहाँ वे प्रिया-प्रियतमकी रसमयी मधुर लीलाओंमें नित्य-निमज्जित रहते थे, उनके कई-कई दिवस और रात्रियाँ भाव-समाधिमें सहज ही व्यतीत हो जाया करती थीं, और जहाँ भाव-विह्वल अवस्थामें उनके अन्तरतमके भाव छन्दोबद्ध होकर अनायास ही फूट पडते थे, उस कक्षके भाग्यकी सराहना कौन करे ?

११'×१८'का यही सामान्य-सा कक्ष उनका कार्यालय, वाचनालय तथा पत्रालय था, और औषधालय भी । यही उनका विश्राम-कक्ष और यही स्वागतकक्ष था । पूजन-गृह और भोजन-गृह तो वह था ही । यदा-कदा सत्सङ्ग-भवन भी बन जाता था । यही था उनका कोषागार और यही शयनागार भी । इसी कक्षकी दीवारोंसे सटकर कतिपय भाग्यवान् उनकी मुख-माधुरी तथा मधुरस्मितका पान करते हुए अघाते नहीं थे । घंटों एकटक निहारनेके पश्चात् भी उन्हें सतत देखते रहनेकी प्यास बनी ही रहती थी । 'देखत-देखत जनम सिरानो, तऊ नैंन नित तरसत'-जैसी स्थिति थी ।

महाप्राण श्रीभाईजीके जीवनकी साध्यवेलामे उनकी हृदय-विदारक शारीरिक स्थिति, प्राणहारी व्याधि एव असह्य वेदनामे भी उनकी अखण्ड धीरता, विलक्षण शान्ति तथा सतत स्वरूप स्थितिका दर्शन करनेका अवसर अन्य भग्न-हृदय अभागोके साथ इन निर्जीव प्राचीरोको ही सर्वाधिक प्राप्त हुआ है। और अन्ततोगत्वा इसी कक्षमे नित्यलीलालीन श्रीभाईजीने अपने नित्यधामकी ओर महाप्रस्थान भी किया। उस भाग्यवान् कक्षमे नित्य अवस्थित उन प्रेमपुञ्ज, करुणासागरके दिव्य परमाणु तथा उनकी शय्यापर विराजित उनकी छायामूर्तियाँ अशान्त, क्लान्त जीवोको चिर-शान्तिका दान करती रहती है और भावी पीढियोको भी करती ही रहेगी, उनकी मनोव्यथा हरती ही रहेगी—इसमे सदेह नही है।

आज भी इस कक्षसे निस्सृत होनेवाली **'प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे'** की मञ्जुमयी ध्वनि सुनने-वालोको भावविभोर कर देती है। उनमे नवजीवन और नव-आशाओका पुन सचार सहज ही हो उठता है। उस पावन कक्षको, उस कक्षकी पावन सामग्रीको, उसके निर्माणमे उपादानरूपमे प्रयुक्त पावन कण-कणको, पावन अणु-अणुको हमारा कोटि-कोटि नमन, कोटि-कोटि प्रणाम !

[२१]

नव-तीर्थस्थली गीतावाटिका

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा

'गोधन' पत्र, जिसके सम्पादनका सौभाग्य मुझे प्राप्त है—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति-अङ्क' प्रकाशित किया जा रहा था। स्मृति-अङ्कके लिये कुछ चित्र और लेख-सामग्री श्रद्धेय भाईजीके सहयोगियोसे प्राप्त करनेकी दृष्टिसे मैं दिनाङ्क १२ जुलाई, १९७१को गोरखपुर पहुँचा। गोरखपुरकी यह मेरी प्रथम यात्रा थी। गीता-वाटिकामे प्रवेश करते ही ऐसा प्रतीत हुआ कि मै प्राचीन ऋषि-मुनियोके किसी आश्रममे आ पहुँचा हूँ। गीता-वाटिकामे मै तीन दिन रहा और वहाँके नैसर्गिक सौन्दर्य और वहाँके निवासियोके त्याग, तप और साधनामय जीवनको देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। मैने श्रद्धेय श्रीभाईजीकी समाधिके दर्शन किये। जिस चबूतरेपर श्रीभाईजीका अन्तिम सस्कार हुआ था, वही उनके पार्थिव शरीरके अवशेष सुरक्षित रखे गये है और उन्हे एक सुन्दर पारदर्शी आवरणसे आच्छादित कर दिया गया है, ताकि वर्षा आदिका उनपर कोई प्रभाव न हो सके। मैने पूज्य श्रीभाईजीके अवशेषोके दर्शन करके उन्हे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। जब मैं श्रीभाईजीकी समाधिपर पुष्प अर्पित कर रहा था, तब मुझे ऐसा लगा कि श्रद्धेय श्रीभाईजी स्वय उपस्थित होकर मेरी पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर रहे है—बडे स्नेहके साथ मेरा अभिवादन स्वीकार कर रहे है।

श्रद्धेय भाईजीकी ३५ वर्षकी दीर्घकालीन तपश्चर्या, ऋषि-मुनियोकी तरह उनके सात्विक और समर्पित जीवन तथा सतत साधनासे गीतावाटिका एक तीर्थस्थल बन गयी है। वहाँ निवास करनेवाले श्रीभाईजीके सभी सहयोगी बडे विद्वान्, सहृदय और समर्पित जीवनवाले महानुभाव है। श्रीभाईजीके स्नेहपूर्ण व्यवहारके कारण अनेक विद्वान् गीताप्रेस और 'कल्याण'के कार्यमे योगदान करते रहे है।

श्रीभाईजीके निधनके पश्चात् गीतावाटिका और भी दर्शनीय स्थल बन गयी है। यह हर्षकी बात है कि जिस तपोभूमिके कण-कणमे श्रीभाईजीका सम्पर्क रहा है, जिसके निर्माण और विकासमे उन्होने मनोयोगपूर्वक योगदान किया, जहाँ बैठकर ३५ वर्षतक निरन्तर 'कल्याण' पत्रका सम्पादन करके देश-विदेशमे आध्यात्मिक ज्ञानकी धारा प्रवाहित की, वही श्रीभाईजीका महाप्रयाण हुआ और वही अन्त्येष्टि-सस्कार उनके दौहित्र श्रीसूर्यकान्त फोगला-द्वारा किया गया।

श्रीभाईजीका यो तो राष्ट्रव्यापी परिवार है, किंतु उनके पार्थिव शरीरसे सम्बन्धित परिवारमे उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रामदेई बाई, सुपुत्री श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला, उसके पतिदेव तथा बच्चे है। श्रीभाईजीका यह छोटा-सा परिवार उनके पुनीत विचारो तथा सस्कारोसे दीक्षित है। श्रीभाईजीकी धर्मपत्नी, जिन्हे सब 'माँ' कहकर सम्बोधित करते है, एक अत्यन्त सहृदया, धर्मनिष्ठ पतिपदपरायणा महिला-रत्न है। भाईजीके आध्यात्मिक,

सास्कृतिक और सार्वजनिक जीवनके विकासमे पूजनीया माँका वहुत वडा योगदान है। माँकी तरह उनकी सुपुत्री श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला भी अपने पिता श्रीभाईजीकी उदात्त भावनाओ और प्रभुनिष्ठाकी प्रतिमूर्ति है। श्रीभाईजीके जीवनमे जो गरिमा और सद्गुण थे, वे श्रीमती सावित्रीदेवीमे पूर्णतया विकसित हुए है और यह वडे सौभाग्यका विषय है कि श्रीमती सावित्रीदेवी एक सुयोग्य पितृनिष्ठ उत्तराधिकारी पुत्रकी भाँति श्रीभाईजीके उद्देश्यो ओर विचारोके प्रचार तथा प्रसारमे सलग्न है।

गीतावाटिकामे हमे श्रीभाईजीके अनन्य सहयोगी और अभिन्न स्नेही स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराजके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य स्वामीजी वडे तपोनिष्ठ, परम विद्वान् और अन्तर्मुखी विभूति है। अपने आरम्भिक जीवनमे आप स्वाधीनता-सग्रामके अग्रगण्य सेनानी रहे और इधर वर्पोसे भाईजीके साथ साधना और प्रभुचिन्तनमे तल्लीन है।

श्रीभाईजीकी यह साधना-स्थली—गीतावाटिका चिरकालतक भाग्यशाली जीवोको आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करती रहेगी।

[२२]

श्रीभाईजीकी जीवनधाराके सहायक स्रोत

डा० श्रीभगवतीप्रसाद सिंह

लोकवन्द्य भाईजीकी जागतिक लीलाका प्रकाश असख्य तत्वो और व्यक्तियोके माध्यमसे हुआ। उनकी जीवनयात्रामे समय-समयपर पूर्वसस्कारोकी प्रेरणासे कितने ही भाग्यवान् उनके सम्पर्कमे आये, उनके द्वारा आयोजित महानाटकमे अपना अशदान किया और मञ्चसे तिरोहित हो गये, कितने ही पटाक्षेपतक अपनी भूमिका निभाते रहे। एक पूर्वनिश्चित योजनाके अनुसार अदृष्ट सूत्रधार इन सवको यथाशक्ति, यथासमय और यथास्थान भाईजीकी अर्चनाका अवसर प्रदानकर कृतार्थ करता रहा—अपने-अपने सेवाधिकारके क्रमसे। इनमे वडे-छोटे, ऊँच-नीच, स्वजन-परिजन, दूर-निकटका कोई भेद नही था। भेदातीत व्यक्तित्वके सस्पर्शसे लोककी कल्पित और यथार्थ—सारी सीमाएँ स्वत अपना अस्तित्व खो देती थी।

भाईजी यो तो सर्वरसवैद्य थे, सर्वभाव-प्रपूरक रूपमे विख्यात थे, किंतु उनके जीवनमे विशेषतया दास्य, सख्य और माधुर्यकी तरगे निरन्तर उच्छलित होती रहती थी। उनके स्वरूपावेशके ये तीन मूल तत्व थे। कर्मयोग तथा भक्तियोगके क्षेत्रमे उनके सम्पर्क एव सेवाका सुयोग पानेवाले कुछ महानुभावोमे इन तत्वोका विशेप विकास दिखायी पडा—वे एक प्रकारसे इनके मूर्त प्रतीक-से हो गये। उनके कार्यव्यापारसे ही नही, इङ्गित और चेप्टाओतकसे इन भावोकी सतत अभिव्यक्ति होती रहती है। अनेक सम-विषम परिस्थितियोकी कसौटीमे ये खरे उतरते रहे है। परीक्षा, ताप और सघर्पने इन्हे अद्भुत कान्ति प्रदान की। इनके जीवनका आदर्श ही वन गया—

'देवो भूत्वा यजेद्देवम्'

मेरी दृप्टिमे श्रीभाईजीके स्वरूपमे उक्त तीन प्रकारकी निप्ठाओके प्रतिनिधि है—समर्पणमूर्ति माँजी, जनम-जनमके साथी राधावावा एव सर्वात्मना अनुगत गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी और अनन्य सेवक श्रीरामसनेहीजी। भाईजीके जीवनमे इनका विशिप्ट स्थान है, इनके सम्वन्धमे स्वय भाईजीको कदाचित् यह घोपणा करनेमे सकोच न होता—

'ये सव सखा सुनहु मुनि मोरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥'

अत इनके सम्पर्क, सूत्र तथा भावासक्तिका किंचित् दिग्दर्शन अप्रासङ्गिक न होगा।

(१) समर्पणमूर्ति माँजी

श्रीभाईजीकी जीवन-जाह्नवीमे उनकी सङ्गिनी माँजीका व्यक्तित्व सरस्वतीकी भाँति विलीन है, उनका पथक् अस्तित्व रहा ही नही, इसलिये उनपर अलगसे कुछ कहने या लिखनेका प्रश्न ही नही उठता। पतिकी जीवन-तरगोके साथ ही उनका आरोह-अवरोह होता रहा। क्रान्तिके झझावातोके थपेडे वे मूकभावसे झेलती

रही, सिमलापालकी नजरबंदीमे पतिकी साधना तथा जनसेवामे सर्वात्मना सहयोग देती रही, बम्बईके व्यापारिक जीवनकी देव-नियोजित असफलताओके बीच सदा प्रसन्न रहकर आत्मदेवको अनवरत अविचल रहनेका अवसर देती रही और गोरखपुरमे जीवनके उत्तरकालकी यश, समृद्धि, मानादिकी अजस्र वर्षामे परिवारकी सँभाल जिस स्थितप्रज्ञतामे वे करती रही—वही भारतीय नारीका चिरतन आदर्श है।

भाईजीके विश्व-बन्धुत्व, करुणाशीलता तथा शरणागत-वत्सलताके आदर्शको व्यवहारमे परिणत करनेमे माँजीका अपार योगदान रहा है। गीतावाटिकामे भाईजीका सानिध्य प्राप्त करनेके लिये हजारो लोग आये, उनके साथ अपने व्यक्तिगत दुःख-सुख तथा गुण-अवगुणोको लिये हुए कुटुम्बी एव इतर जन भी आये। माँजीने उनकी निजी अयोग्यताओंकी ओर न देखकर उनको सदैव वात्सल्यभावमे अपनाया, उनके भौतिक अभावको दूर किया और सान्त्वना तथा स्नेहकी अविरल धारासे उनकी मानसिक चिन्ताओ एव अन्तर्मलको धोया। उनकी ममतामयी मूर्ति तथा समताप्रेरित व्यवहारका स्मरण कर अल्प सम्पर्कमे आये महानुभाव भी भाव-विभोर हो जाते है। स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजका श्रीभाईजीके परिवारसे दीर्घकालसे सम्बन्ध रहा है, वे तो अपने प्रवचनो-मे प्रसङ्ग-वश माँजीके असीम गुणोका बखान करते नही अघाते।

माँजीके बाह्यरूपका यह आंशिक परिचय मात्र है, उनका आन्तरिक स्वरूप भाईजीके साथ एकाकार है—दुग्धमे धवलता तथा जलमे शीतलताकी भाँति। भाईजीका पावन-स्मरण इस दृष्टिसे उन्हीका स्मृत्यर्चन है—महर्षि वाल्मीकिने कहा था—

'कृत्स्नं रामायणं काव्यं सीतायाश्चरितं महत्'

(२) स्वामी श्रीचक्रधरजी

स्वामी श्रीचक्रधरजी महाराजका भाईजीसे बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भावका सम्बन्ध रहा है—इनमे कौन बिम्ब है, कौन प्रतिबिम्ब—कहा नही जा सकता। स्थिति-भेदसे दोनो ही दोनो भावोका यथेच्छ आजीवन आस्वादन करते रहे—भावलोकमे ही नही, व्यावहारिक भूमिमे भी। इस सम्बन्धमे भाईजीके मुखसे समय-समयपर निकले अनेक उद्‌गार स्वतःप्रमाण है—

—'बाबाके लिये मै क्या कहूँ? बाबा मेरे भक्त है—मै बाबाका भक्त हूँ।'

—'मेरी तो सम्पत्ति बाबा ही है।'

—'बाबा ही तो हमारी पूँजी है, और पूँजी ही क्या है?

—'बाबासे मेरा जो कुछ सम्बन्ध है, उसे किन्ही शब्दोमे नही बतलाया जा सकता। उनकी स्थिति-क्या है, मै नहीं बता सकता। इतना जानता हूँ कि वे महान् है और सर्वथा मेरे अपने है।'

इस महान् व्यक्तित्वका भाईजीसे सम्पर्क किस प्रकार हुआ, इसकी अपनी एक कहानी है।

बाबाका शरीर ग्राम—फरवरपुर (गया-बिहार)का है। परम्परागत वैदुष्यसम्पन्न 'मिश्र'-उपाधिधारी ब्राह्मण कुलमे इनका आविर्भाव पौष कृष्ण ९, सवत् १९६९को हुआ था। भाईजीकी भाँति आरम्भिक जीवनमे इनका भी उग्र राजनीतिसे सम्बन्ध रहा है। उससे इन्हे सहसा उन्नतिशील अध्ययन-व्यवस्थाका परित्याग कर सवत् १९८८-८९मे बदी-जीवनकी असह्य यातनाएँ सहनी पडी। कारागारसे मुक्त होनेके पश्चात् भगवान्की विशेष इच्छासे ये सन्यासी हो गये और बडे ही विरक्तभावसे रहने लगे। कलकत्ताके फुटपाथोपर भिखमगो एव कोढियोके बीच पडे रहते थे। पीछे श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके साथ ये बाँकुडामे रहने लगे। श्रीसेठजीने वर्षोतक बडे ही स्नेह-प्यारसे इन्हे रखा। उन दिनो ये निर्गुण-निर्विशेष तत्वके उपासक थे और श्रीसेठजी निर्गुण-निर्विशेष तत्वके पूर्ण ज्ञाता होते हुए भी सगुण-साकार तत्वका भी विवेचन किया करते थे। इन्हे वह रुचिकर नहीं होता था। श्रीसेठजीसे ये शास्त्रार्थ करने लग जाते। श्रीसेठजीने इन्हे शास्त्र-प्रमाणोसे बहुत समझाया, पर ये उनके तर्कोको स्वीकार नहीं कर पाये। श्रीसेठजीने कहा—'आप एक बार भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारसे मिल ले।' पर इन्होंने पोद्दारजीसे मिलनेकी अनिच्छा प्रकट की। किंतु विधिका विधान! श्रीसेठजी गोरखपुर आनेवाले थे। उन्होंने स्वामीजीसे कहा—'आप अमुक तिथितक गोरखपुर पहुँच जाइये, मै भी वहाँ आता हूँ।' ये गोरखपुर

आ गये, पर किसी विशेष अडचनके कारण श्रीसेठजी गोरखपुर नही पहुँच पाये। आश्विन पूर्णिमा स० १९९३ को ये गोरखपुर आये। गीताप्रेस जानेपर पता चला कि श्रीसेठजी अभी नही पहुँचे है। इन्होने पोद्दारजीका निवास-स्थान पूछा और प्रेसके कर्मचारियोके निर्देशानुसार ये गीतावाटिका आये।

श्रीपोद्दारजीने स्वामीजीको देखते ही गद्‌गद भावसे आसनसे उठकर चरण-स्पर्श करके प्रणाम किया। श्रीभाईजीके चरण-स्पर्श करते ही स्वामीजीको ऐसी विचित्र अनुभूति हुई, जैसे 'विश्वका सम्पूर्ण व्रजरस उनके मानसमे उडेल दिया हो ?' उस दिन रास-पूर्णिमाका महापर्व था। अपने पूर्व जीवनमे कट्टर वेदान्ती होते हुए भी स्वामीजी रासेश्वरीके दिव्य आकर्षणसे अपने उपार्जित सस्कारोका परिवर्त्तन रोक न पाये। आये थे योगी सन्यासी वनकर, हो गये चिरवियोगिनी राधाके अनुगत अविरल भक्त।

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

—की भक्ति-साहित्यके इतिहासमे महिमामयी पुष्टि एव पुनरावृत्ति हो गयी।

इसके बाद स्वामीजीने गीतावाटिकामे ही पीछेकी ओर इमलीके पेडके नीचे कुछ दिनोतक वास किया। उन दिनो गीतावाटिकामे वर्षभरका अखण्ड सकीर्त्तन चल रहा था। आगन्तुकोकी भीडसे साधनामे वाधा होते देखकर ये वहाँसे हटकर नगरके दूसरे छोरपर हनुमानगढीके पास जाकर रहने लगे। यहाँ चार-पाँच महीने विताकर श्रीसेठजीके अनुरोधसे उनके साथ चूरू (राजस्थान) गये और फिर गीताकी टीकाके कार्यसे श्रीसेठजीके सानिध्यमे कुछ दिन वाँकुडामे विताये।

इस वीच भगवत्कृपासे स्वामीजीको श्रीभाईजीके स्वरूप और उनसे अपने सम्वन्धका यथार्थ बोध हो गया। सन् १९३९मे 'गोविन्द भवन' (कलकत्ता)मे ये भाईजीसे मिले। श्रीभाईजीने स्वामीजीसे प्रस्ताव किया—'महाराज! हम दोनो साथ-साथ इस भाँति रहे कि किसी प्रकारका भेद लक्षित न हो।' स्वामीजीने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और ११ मई १९३९से वावाका 'क्षेत्र-सन्यास' लेकर श्रीपोद्दारजीके साथ अखण्डरूपसे वास करनेका महाव्रत आरम्भ हुआ।

श्रीभाईजीसे वावाका जन्म-जन्मान्तरका रहस्यपूर्ण भाव-सम्वन्ध शनै-शनै व्यक्त होने लगा और कालान्तरमे वह इतना प्रगाढ हो गया कि वावा और भाईजी—दो शरीर एक प्राण हो गये। श्रीभाईजी और वावा एक दिनके लिये भी कभी अलग नही हुए, सदा साथ रहे। श्रीभाईजीने बावाके इस व्रतका आजीवन निर्वाह किया और उसे इस खूवी और खूवसूरतीके साथ निभाया कि लोकदृष्टि किचित् अशमे भी उनकी पृथक्ताका सधान नही कर पायी। श्रीभाईजीके लीलालीन हो जानेपर बावाने उनके तथा अपने—दोनोके उत्तरदायित्वका भार अपने कधोपर धारण कर रखा है—श्रीभाईजीकी समाधिके समीप स्थल-सन्यास लेकर।

वावा अनेक भाषाओ—सस्कृत, हिदी, बँगला, अग्रेजीके प्रकाण्ड पण्डित है। उनका शास्त्र-ज्ञान अगाध है। सगीत-शास्त्रका भी उनको अच्छा ज्ञान है और उनकी वाणीमे भी बडा प्रवाह एव आकर्षण है। श्रीभाईजीकी रुचिका अनुसरण करते हुए उन्होने वर्षोतक वाणीका पूर्ण सयम रखा और उन्हीकी प्रेरणासे 'श्रीकृष्णलीला-चिन्तन' नाममे श्रीकृष्णकी वाल एव पौगण्ड लीलाओका वडा ही मनोहर शब्द-चित्र प्रस्तुत किया, जो वर्षोतक धारावाहिक रूपसे 'कल्याण'के साधारण अङ्कोमे छपता रहा और अभी हालमे गीताप्रेससे पुस्तकरूपमे प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके तीन और छोटे ग्रन्थ 'सत्सङ्ग-सुधा', 'प्रेम-सत्सङ्ग-सुधा-माला' और 'महाभागा व्रजदेवियाँ' नामसे गीताप्रेससे छप चुके है, जो प्रेमी साधकोके लिये वडे उपयोगी है।

परमश्रद्धेय गुरुदेव महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज वावाकी साधनधाराके वडे ही प्रशसक है। मै जव कभी उनसे मिला, या गीतावाटिकासे सम्वद्ध गोरखपुरका जव कभी कोई व्यक्ति उनके दर्शनोके लिये उपस्थित हुआ, तव भाईजीके कुशलक्षेमके साथ ही वे वावाके स्वास्थ्यके सम्वन्धमे भी वडे ही उल्लासके साथ जिज्ञासा व्यक्त करते रहे है। जवसे भाईजीका तिरोधान हुआ, वे वावाके वारेमे सम्वद्ध लोगोसे वरावर पूछते रहते है और यदा-कदा अपने कृपापात्रोको उनके दर्शनकी प्रेरणा भी देते है।

श्रीभाईजीकी अन्तिम साध थी—"मेरा देहत्याग पहले हो जाय और मेरे बाद उनका (बाबाका) शरीर रहे, तब तो मैं चाहता ही हूँ पहले भी चाहता हूँ कि उनका भीतरी-बाहरी स्वरूप एक-सा 'मूर्तिमान् अध्यात्म हो। उनके रोम-रोमसे उनके शरीरसे स्पर्श करके जानेवाले वायुसे लोगोको अमोघ आध्यात्मिक प्रकाश मिले . एकमात्र भगवत्प्रेम ही छा जाय।' बाबाका वर्त्तमान जीवन सर्वप्रकारेण तद्भावभावित होकर श्रीभाईजीके इसी स्वप्नको साकार करनेकी दिशामे गतिशील है।

(३) गोस्वामी श्रीचिम्मनलालजी

वर्त्तमान 'कल्याण'-सम्पादक गोस्वामीजी बीकानेरकी सत्सङ्ग-गोष्ठियो (सं० १९८५)मे भाईजीकी वाग्धारा एव लोकोत्तर आध्यात्मिक व्यक्तित्वके दर्शनसे आकृष्ट होकर अनुगत हुए।

ये महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराजके छात्र रह चुके है। उन्हीके अन्तेवासीके रूपमे इन्होने हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसीमे एम० ए० किया और फिर बीकानेर-राज्यमे उच्च पदपर नियुक्त हो गये। बीकानेरमे श्रीभाईजीका एक-दो दिनोका सानिध्य इनके भावी जीवनका नियामक बन गया।

स० १९९०मे ये बीकानेर-राज्यकी नौकरी छोडकर 'कल्याणके सम्पादन-विभागमे कार्य करनेके लिये सपत्नीक गोरखपुर आ गये। और तबसे इन्होने ममताके सारे बन्धनोको समेटकर स्थायीरूपसे भाईजीके साथ दृढ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। 'कल्याण-कल्पतरु'का विकास इन्हीके श्रम एव तत्परतासे हुआ। भाईजीको 'कल्याण'के सम्पादनमे भी इनका अनवरत सहयोग प्राप्त हुआ।

इनकी अंग्रेजी, संस्कृत तथा हिंदी भाषाकी प्रकाण्ड विद्वत्ताका प्रसाद गीताप्रेसको अनेक रूपोमे प्राप्त हुआ जैसे—श्रीसेठजीकी 'गीता-तत्त्वविवेचनी टीका', रामचरितमानस, श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकि-रामायण (लङ्का-काण्डतक) आदि ग्रन्थोके प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद सरल सुस्पष्ट तथा परिमार्जित भाषामे। श्रीभाईजीकी परम्पराका निर्वाह इनके द्वारा किस सीमातक सफल हो सकता है, 'श्रीरामाङ्क'का प्राकट्य इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

श्रीगोस्वामीजीके विषयमे अधिक लिखनेमे सकोच हो रहा है, कारण वे हमारे साथ इस ग्रन्थके सम्पादनमे है। उपर्युक्त पङ्क्तियाँ भी उनके हृदयको व्यथित करेगी—यह मै जानता हूँ, परतु इनके लिये तो मैं सर्वथा विवश हूँ।

(४) 'दादा' श्रीरामस्नेही

अपने अनन्य सेवक श्रीरामस्नेहीको 'दादा'की उपाधि स्वय भाईजीने दी थी और उसके अनन्य सम्बोधन-कर्त्ता भी वे ही थे।

श्रीस्नेहीने अपने आविर्भावसे कानपुर जिलेके एक कायस्थ परिवारको पवित्र किया था और सवत् १९९८ मे ये श्रीभाईजीकी सेवामे आये तथा एकान्त सेवकके रूपमे उनके अन्तिम श्वासतक परिचर्यामे सलग्न रहे।

श्रीरामस्नेहीका सेवादर्श—लोकातीत है। भक्तिशास्त्रमे—पौराणिक कालमे दास्यभावनाके जिन भक्तोकी चर्चा है और मध्यकालीन भक्ति-साहित्यमे उनके व्रती जिन सत-महापुरुषोका उल्लेख मिलता है, उसके स्वरूपका प्रत्यक्ष दर्शन सेव्यके चरणोमे इनके आत्मलयी व्यक्तित्वके साक्षात्कारसे हो जाता है। रात-दिन भाईजीकी सब प्रकारकी टहलमे व्यस्त रहना—उनके सकेतो और कभी-कभी उनके अभावमे स्वानुभूतिजन्य प्रेरणासे ही आवश्यकताओकी पूर्ति करना, अत्यन्त स्वल्पाहार और शीत-ताप-लज्जा-निवारणमात्रके लिये नितान्त आवश्यक मात्रामे सादे वस्त्र धारण करना, भाईजीके पास आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उनकी ही भाँति समादर देना और उन्हींका प्रतीक मानना—श्रीरामस्नेहीका जीवन रहा है। सर्वदा प्रसन्नवदन, स्वल्प-सम्भाषी, एकोन्मुखी चेतन जगत्के साथ अचेतनवत् असम्पृक्त श्रीरामस्नेही ही भाईजीकी सेवाके यथार्थ अधिकारी थे और हैं। उनका जीवनादर्श त्याग, श्रद्धा एव सेवाकी दिव्य किरणोके इस तर्कगुम्फित और ज्ञानमुग्ध युगके सहस्रो नर-नारियोका आन्तर तम दूर कर सकता है।

●

पद्मपत्रमिवाम्भसा की सजीव-प्रतिमा

वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे ।
परदुःखे उपकार करे, तोये मन अभिमान न आणे रे ।।
सकल लोक माँ सहुने वंदे, निन्दा न करे केनी रे ।
वाच-काछ-मन निश्चळ राखे, धन-धन जननी तेनी रे ।।
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी, पर-स्त्री जेने मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ।।
मोह-माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मन माँ रे ।
राम नाम सुँ ताळी लागी, सकल तीरथ तेना तन माँ रे ।।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम-क्रोध निवार्या रे ।
भणे नरसैयो, तेनु दरसन करताँ कुळ एकोतेर तार्या रे ।।

○

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

संतोंका लोकाराधन

'सत' शब्द संस्कृतके 'सत्' शब्दका विगडा हुआ रूप है। 'सत्'का अर्थ है—'जिसका अभाव कभी न हो, जो सदा रहे'। गीतामे भी यही बात कही गयी है—'असत्' (जो है नही, जिसकी सत्ता ही नही है) तो कभी होता नही और 'सत्'का कभी अभाव (नाश) नही होता—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।'** आत्मा अथवा परमात्मा ही 'सत्' है, कारण उसका कभी विनाश नही होता। भगवान्‌ने गीतामे कहा है—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिद ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥ (२।१७)

'अविनाशी तत्व उस आत्माको ही जानो, जिसने इस सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त कर रखा है। इस आत्माका नाश कोई करना भी चाहे तो नही कर सकता।'

इसलिये गीतामे 'ब्रह्म' अथवा परमात्माका एक नाम ही 'सत्' कहा गया है—**'ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।'**—''ओम्', 'तत्' और 'सत्'—ये तीन ब्रह्मके ही नाम है।''

यह ब्रह्म आकाशकी भॉति सूक्ष्म, अव्यक्त, अनन्त, असीम एव सर्वव्यापक है। ऐसा कोई काल अथवा देश नही है, जहॉ परमात्मा न हो। वही आकाश जव किसी स्थूल आवरणसे आवृत हो जाता है, तव उसे भिन्न-भिन्न नामोसे पुकारा जाता है। इसी प्रकार एक ही सर्वव्यापक आत्मा जव भिन्न-भिन्न शरीर और मन-बुद्धि आदिसे अपनेको परिच्छिन्न (सीमित) मान लेता है, तब उसकी 'जीव' सज्ञा हो जाती है, वस्तुदृष्टिसे है वह अपरिच्छिन्न आत्मा ही। जो जीव अपने इस आत्मस्वरूपको यथार्थरूपमे पहचानकर उसके साथ एक हो जाता है, अपनेको शरीर आदि जड उपाधियोसे—जो उससे सर्वथा भिन्न है—अलग कर लेता है, उसीको 'सत' कहते है। 'सत्' नामके परमात्मासे अभिन्न हो जानेके कारण ही—उस व्यक्तिको सत (सत्) कहा जाता है। ऐसे सतका फिर कोई पृथक् अस्तित्व नही रह जाता। जैसे नदीका जल समुद्रमे मिल जानेपर समुद्र ही वन जाता है, अथवा जैसे घडेके फूट जानेपर घडेके अदर रहनेवाला आकाश सर्वव्यापक आकाशसे एक हो जाता है, उसी प्रकार भगवत्प्राप्त जीव भी भगवत्स्वरूप ही हो जाता है। हम अज्ञानियोकी दृष्टिमे ही उसका पृथक् अस्तित्व रहता है, वास्तवमे तो वह सर्वव्यापक सत्तामे विलीन हो जाता है। इसीलिये जीवमात्रमे वह अपनेको ही व्याप्त देखता है, सबके सुख-दुःख उसके अपने सुख-दुःख हो जाते है और उसके द्वारा किसीकी जो भी सेवा होती है, उसे वह अपनी ही सेवा समझता है। अपनी सेवा अपने हाथसे करनेपर अथवा स्वय अपनेको सुख पहुँचानेपर क्या हम अभिमान करते है या अपनेपर अहसान करते है ? इसी प्रकार सतके द्वारा की हुई जगत्‌की सेवा—प्राणिमात्रकी सेवा अपनी ही सेवा होती है। इसके लिये उसे प्रयास नही करना पडता—केवल इतनी ही वात नही है, 'मुझे अमुककी सेवा करनी है'—यह सोचना भी नही पडता। अपने अङ्गोकी सेवाकी भॉति वह सर्वथा स्वाभाविक

होती है। अपने किसी अङ्गको मच्छर काटने लगे तो क्या हम सोचते है कि उसे उडा देना चाहिये ? हम चाहे जैसा भी आवश्यक कार्य कर रहे हो, हमारा हाथ अपने-आप उसे उडा देनेके लिये उठ जाता है। हमारे शरीरमे घाव हो जानेपर जैसे हम अनायास ही उसकी मरहम-पट्टी करनेमे लग जाते है, भूख अथवा प्यास लगनेपर उस भूख अथवा प्यासको शान्त करनेकी स्वाभाविक ही चेष्टा करते है, उसी प्रकार सतके द्वारा दूसरोके दु खको दूर करनेकी—जहाँ-कही अन्न-जलका अभाव अथवा कष्ट हो, वहाँ अन्न-जल पहुँचानेकी, व्याधिग्रस्त प्राणियोके औपध, चिकित्सा आदिके द्वारा रोग-निवारणकी, बाढ-अकाल-भूकम्प-महामारी-अग्निदाह आदि दैवी प्रकोपोसे पीडित मानवो एव पशुओ आदिकी सहायतामे जुट जानेकी स्वाभाविक ही प्रवृत्ति होती है। दूसरोको सम्मान देनेकी, अपराध करनेवालोको क्षमा कर देनेकी ही नही, अपितु अपकारके बदले उनको प्यार देने एव सुख पहुँचानेकी चेष्टा भी उसके द्वारा स्वाभाविक ही होती है। इन सबके लिये उसे प्रयास नही करना पडता। इसलिये सतके अदर गीताके सोलहवे अध्यायमे वर्णित दैवी गुणोका स्वाभाविक ही विकास होता है, क्योकि वह जो कुछ करता है, अपने लिये ही करता है, उसके लिये कोई 'दूसरा' होता ही नही। वह प्राणिमात्रके अदर अपने आत्माका ही दर्शन करता है। और अपना अनिष्ट कोई कैसे करेगा, अपनेपर कोई कैसे आक्रोश करेगा। अपना अपमान, अपने प्रति असद्व्यवहार कोई कर ही नही सकता। सतके सतत्वका मूलस्रोत उसकी सबके प्रति आत्मदृष्टि ही है। यह आत्मदृष्टि जितनी दूरतक जिसकी हो चुकी है, उतनी दूरतक उसके अदर सतोचित गुणोका विकास होगा ही। जहाँ सूर्य है, वहाँ प्रकाश होगा ही, जहाँ अग्नि है, वहाँ उष्णता अपने-आप आयेगी ही, जहाँ बर्फ होगी, वहाँ ठडक पहुँचेगी ही। अस्तु !

सतकी सर्वत्र वास्तविक आत्मदृष्टि हो जानेके कारण उसका अपने शरीरके साथ लगाव—आत्मबुद्धि सर्वथा नही रह जाती। इसीलिये वह कष्टसहिष्णु होता है, शीतोष्ण एव सुख-दु खमे उसकी समता हो जाती है, मानापमान उसके लिये कोई अर्थ नही रखते, उसके लिये शत्रु-मित्र समान हो जाते है, ऊँच-नीच कुछ नही रह जाता—'दुख-सुख सरिस प्रसमा-गारी।' इसीलिये उसके काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि सारे विकार नष्ट हो जाते है। उसके लिये लोभनीय अथवा आकर्षणकी कोई वस्तु रह ही नही जाती। क्रोध करे तो वह किसपर करे ? उसकी दृष्टिमे प्रतिकूलता नामकी कोई वस्तु रहती ही नही। शरीरमे तादात्म्य —आत्मबुद्धि न रह जानेके कारण बडे-बडे बलिदान उसके लिये सहज-सुकर हो जाते है। भर्तृहरि राज्यका अनायास त्याग कर देते है। सूफी सत मसूर हँसते हुए सूलीपर चढ जाते है, सुकरात हँसते हुए जहरका प्याला पी जाते है, महात्मा जडभरत राजा रहूगणकी पालकी ढोना स्वीकार कर लेते है, राजा शिवि कबूतरकी रक्षाके लिये अपने शरीरका मास कटवा देते है, दधीचि देवताओकी रक्षाके लिये अपने शरीरके चमडेको जगली गायोसे चटवा देते है, राजा रन्तिदेव अडतालीस दिनोके उपवासके बाद प्राप्त हुए अन्न-जलका एक चण्डाल एव उसके कुत्तोके लिये परित्याग कर देते है, राजा हरिश्चन्द्र स्वप्नमे दिये हुए वचनकी रक्षाके लिये अपना राज्य त्याग देते है, चण्डालकी दासता स्वीकार करते है और अपने इकलौते पुत्रका दाह तबतक नही होने देते, जबतक अपनी पत्नीके शरीरका आधा वस्त्र नही उतरवा लेते। सतोद्वारा ये सब बलिदान इसीलिये सम्भव होते है कि उनकी अपने शरीरमे अहबुद्धि और उससे सम्बन्धित धन-जनके प्रति ममता नही रह जाती।

सतोके मुख्यतया दो विभाग होते है—एक तो वे ज्ञानमार्गी सत, जिनकी सर्वत्र आत्मबुद्धि होती है, जो अपने अस्तित्वको सर्वव्यापक सत्तामे विलीन कर देते है, जिनका अपना कोई अस्तित्व नही रह जाता, दूसरे वे प्रेमी सत, जो अपने उपास्य भगवान्से पृथक् बने रहकर उनकी सेवाको ही परम साध्य मानते है, जो उनमे विलीन होना नही चाहते, अपितु उन **'रसो वै सः'**के आस्वादक ही बने रहना चाहते है। इन दूसरी कोटिके सतोके बारेमे ही स्वय भगवान्के ये वाक्य है—

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ॥

(श्रीमद्भागवत)

'मेरी प्रेममयी सेवाको छोडकर मेरे प्रेमी भक्त सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोको भी नही चाहते, मेरी सेवा ही चाहते है।' ऐसे भक्त अपने प्रभुको ही सर्वत्र व्याप्त देखते है और अपनेको उनसे अलग—उनका सेवक मानते है। इसीका नाम 'अनन्य भक्ति' है, जिसका वर्णन रामचरित-मानसमे स्वय भगवान् रामने हनुमान्के प्रति इन शब्दोमे किया है—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ॥

इस श्रेणीके सत जगत्को भगवद्‌रूप मानकर, अथवा यो कहे कि प्राणिमात्रको अपने इष्टदेवका स्वरूप मानकर, उनकी सेवा करते है। अपने आपकी तो कभी मनुष्य उपेक्षा अथवा अवहेलना भी कर देता है, परतु अपने स्वामी, अपने जीवनसर्वस्व, अपने प्रियतम प्राणवल्लभकी क्या कोई कभी उपेक्षा कर सकता है? ऐसे भक्त-कोटिके—भगवत्प्रेमी सतोके द्वारा जगत्की जो प्रेममयी सेवा होती है, उसकी कही तुलना नही है। श्रीभाईजी इसी कोटिके सत थे, इसीलिये उनके द्वारा अपने विश्वरूप प्रभुकी जो सेवा हुई है, वह अनुपम है, निराली है। यही है सतका लोकाराधन।

एक बात और है। ऐसे सत भगवान्के हाथके यन्त्र होते है। वे सर्वथा कर्तृत्वाभिमानशून्य होते है। कर्म जितने और जिसके द्वारा भी होते है, मन-बुद्धि-अहकारसे प्रेरित होते है और ऐसे सतोके मन-बुद्धि-अहकार निश्शेषरूपसे भगवदर्पित हुए रहते है। गीतामे भक्तका लक्षण ही बताया गया है—**'मय्यर्पितमनोबुद्धिः।'** जिसके मन-बुद्धि-अहकार सर्वथा भगवान्को अर्पित हो चुके—उनपर जिसका अपना कोई अधिकार नही रह गया, उसकी क्रियामात्र फिर भगवत्प्रेरित होती है, क्योकि उसके पाञ्चभौतिक ढाँचेका चालक फिर भगवान्के अतिरिक्त कोई नही रह जाता। इसीलिये कहा जाता है कि ऐसे भगवान्के यन्त्र स्वय भगवत्स्वरूप ही होते है। ऐसे लोगोके लिये ही देवर्षि नारदने अपने भक्तिसूत्रमे कहा है—**'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।'** (भगवान्मे और उनके भक्तमे कोई अन्तर नही रह जाता।) उनकी दृष्टि भगवन्मयी हो जाती है, उनके नेत्रोसे भगवान् ही झाँकते है। उनकी वाणी भगवद्वाणी होती है। उनकी सारी इन्द्रियाँ भगवद्-रूप हो जाती है। इसीलिये भक्तिके परमादर्श श्रीगोपीजनोके लिये स्वय भगवान् श्रीकृष्णके वचन है—**'ता मन्मनस्का मत्प्राणाः'**—श्रीगोपीजनोका मन मेरा ही मन है, उनके प्राणोमे भी मैं ही बसता हूँ, उनके रूपमे मै ही साँस लेता हूँ। उनके कर्म भी भगवान्के ही कर्म होते है—**'मत्कर्मकृत्।'**

श्रीभाईजी ऐसे ही थे और इसी दृष्टिसे हमे उनके जीवन और कृतित्वको देखना चाहिये।

●

श्रीभाईजीकी सेवाका आदर्श

श्रीभाईजीकी सेवाभावना सर्वविदित है। सेवा उनका प्राण था, उनका जीवन था, उनका सहज स्वभाव था। श्रीभाईजीके पास अपना एक पैसा भी नही था, पर इन सेवा-कार्योके लिये उन्हे कभी धनकी कमी नही रही। गोरखपुरके सेट ऐड्रूज कॉलिजके प्रिन्सिपल महोदय मिस्टर चाकोने एक वार अपने कॉलिजके महोत्सवमे श्रीभाईजीका परिचय देते हुए ईसाईधर्मके प्रमुख व्यक्तियोके सामने कहा था—"श्रीभाईजीको सभी 'भाईजी'के नामसे पुकारते है। मैंने अपने अनुभवसे पाया कि वे सही अर्थोमे सभीके 'भाईजी' है। उनकी आत्मीयता जाति, धर्म एव देशकी सीमामे आवद्ध नही है, वह सवको सहज ही सुलभ है। उनके विचार एव व्यवहारमे 'पर' कोई है ही नही। वे सवके 'भाईजी' है। दूसरे, श्रीभाईजीके पास अपना कुछ भी नही है, पर सेवा-कार्योके लिये उन्हे कभी धनकी कमी अनुभव नही होती है—"He has no money, but be lacks no money" सचमुच श्रीभाईजीको सेवा-कार्योके लिये कभी धनकी कमी अनुभव नही हुई। वे वरावर कहते थे—'सेवा करनेवालोकी कमी है, धनकी नही। वह तो आयेगा ही ईश्वरकी कृपासे। पर सेवा होनी चाहिये सच्चे अर्थमे।'

देशके प्राय सभी भागोसे उनके पास प्रतिदिन अनेको पत्र ऐसे व्यक्तियोके आते थे, जो अपनी या अपने परिवारकी चिकित्साके लिये, वच्चोकी परीक्षाकी फीस देने या पुस्तके खरीदनेके लिये, अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करनेके लिये, कन्याके विवाहके लिये, अपनी गायोके लिये अन्न-घासकी व्यवस्था करने आदि कार्योके लिये उनसे आर्थिक सहयोगकी प्रार्थना करते थे। उन पत्रोको श्रीभाईजी स्वय पढते और यथासाध्य सहायता भिजवानेका प्रयत्न करते थे—किसीको मनीआर्डरद्वारा, किसीको वीमाद्वारा। प्रतिदिन अनेको व्यक्ति उनके यहाँ पधारकर अपनी माँग रखते थे और उनमेसे एक भी खाली हाथ नही लौटता था। श्रीभाईजी सभीको कुछ-न-कुछ सेवा करके ही विदा करते थे। इसके अतिरिक्त वाढ, अकाल, भूकम्प आदि दैवी-प्रकोपोके समय श्रीभाईजीके द्वारा देशके विभिन्न भागोमे सेवाका वहुत अधिक कार्य हुआ है। उन सवका विवरण दिया जाय तो एक वडा ग्रन्थ तैयार हो जाय।

श्रीभाईजीकी यह सेवा इतनी सहज, शान्त एव प्रच्छन्न रूपमे सम्पन्न होती रही है कि उनके परिवारके सदस्य एव अत्यन्त निकटके स्वजन भी उसे जान नही पाते थे। 'दाहिना हाथ जो दे, उसे वायाँ हाथ न जान पाये'—यह उक्ति श्रीभाईजीपर पूर्णरूपसे चरितार्थ होती है। इतना ही नही, जव कभी वे प्रत्यक्षमे किसीको कुछ देते थे, तव उनके मुखपर दैन्य, करुणा, कृतज्ञता, सकोच आदिके भाव इतने स्पष्ट होते थे कि सामनेवालेका हृदय उनके प्रति श्रद्धासे नत हो जाता था कि यह दाता भी कितना विचित्र है कि देते समय 'सकुचित' हो रहा है।

यह उदारतापूर्ण सेवावृत्ति श्रीभाईजीमे जीवनके आरम्भसे ही थी। जव वे व्यवसाय करते थे, तव भी उनका स्वभाव इसी प्रकार उदार एव सेवामय था। 'कल्याण' एव गीताप्रेसकी सेवाओमे लगनेके पश्चात् तो उनके शरीरका एक-एक कण तथा जीवनका एक-एक श्वास विश्वरूप प्रभुकी सेवामे नियोजित रहा। 'कल्याण' एव गीताप्रेसके प्रकाशनोद्वारा वे ज्ञानका तो मुक्तहस्तमे वितरण करते ही थे, साथ ही वे भौतिक पदार्थो—साधनोद्वारा 'आर्तनारायण'की सेवा करनेमे निरन्तर सलग्न रहे। अन्तिम वीमारीमे भी जवतक उनमे कुछ शक्ति रही, वे अपने

नाम आये अभावग्रस्त व्यक्तियोके पत्र स्वयं पढते-सुनते रहे और अपने स्वजनोके द्वारा उन्हे सहायता भिजवाते रहे। यह क्रम १३ मार्च, सन् १९७१ तक चलता रहा। लगता है, उस दिन श्रीभाईजीको यह अनुभव हो गया था कि अब उनका शरीर भगवान्‌के विधानानुसार रहनेका नही है। और तब उनमे बोलने, ठीकसे सकेत करनेकी भी सामर्थ्य अवशेष नही रह गयी थी, अतएव उस रात्रिमे उन्होने अपने सेवाके हिसाबकी सब कापियाँ नष्ट करवा दी एव जो धन-राशि अवशेप थी, उसकी वितरण-सूची लिखवा दी। इसके पश्चात् उन्होने बडे विनम्र शब्दोमे—अपने परिवार एव स्वजनोको सेवाभावनाको अक्षुण्ण रूपमे अपनाये रखनेके लिये प्रेरित करते हुए अपने सेवा-आदर्शका स्वरूप सक्षेपमे बताया—

"गोरखपुर आनेके पश्चात् (सन् १९२८से) अर्थकी दृष्टिसे मै नि स्व रहा हूँ—न मेरे पास अपना एक पैसा है, न कही कुछ जमा है, न मैने कुछ कमाया है। गीताप्रेस, 'कल्याण' या अन्य किसी भी सस्थासे मेरा आर्थिक सम्बन्ध नही रहा है। न मैने भेट-पूजा-उपहारके रूपमे किसीसे भी एक पैसा कभी लिया है। अवश्य ही मेरेद्वारा विभिन्न सस्थाओकी, भूकम्प, बाढ, अकाल, अग्निदाह आदि दैवी प्रकोपोसे पीडित प्राणियोकी एव विधवा बहनो-की सहायतामे प्रचुर अर्थ व्यय हुआ है—(कई करोड रुपये अबतक व्यय हो चुके होगे), पर वस्तुत उसमे मेरा कुछ भी नही है। यह सब हुआ है, उन लोगोके भाग्यसे और दाताओके भगवत्प्रेरित या स्वेच्छाप्रेरित दानसे। इसके लिये भी किसीपर दबाव डालनेकी बात ही नही। मैने न तो किसीसे माँगा है न अपील की है, वर परिस्थितिवश कभी-कभी दानकी रकम पूरी-की-पूरी या अधूरी वापस कर दी है। जब 'भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास'का निर्माण हुआ और उसके लिये दानकी अपील प्रकाशित हुई, तब उसमे सब ट्रस्टियोके साथ मेरा नाम भी प्रकाशित कर दिया गया। पर मैने उसमेसे अपना नाम निकलवा दिया और तब उन पत्रोको भिजवाया। मैने कभी अर्थके लिये की जानेवाली अपीलमे अपना नाम नही दिया है। इस प्रकारकी सहायताके लिये जो पैसे आते थे, उनमेसे मैने एक-एक पैसेका हिसाब रखा है, किसकी सेवामे वे पैसे लगे, यह भी बराबर लिखता रहा हूँ। तीन वर्षतक उस हिसाबको रखता था। तीन वर्षके पश्चात् उस हिसाबको नष्ट कर डालता था। कहाँसे पैसा आया, किस-किसको दिया गया—इसको मैने यथासम्भव किसीपर प्रकट नही होने दिया। मनीआर्डर-बीमा जिन स्वजनोकी मार्फत करवाता था, उन्हे भी यथासम्भव नाम-ज्ञान नही होने देता था। कारण, मैने जिसको जो कुछ दिया है, वह भगवद्भावसे दिया है, वह मेरी अर्चाका एक स्वरूप रहा है। जिस कार्यके लिये जितने पैसे प्राप्त होते थे, उस कार्यमे उतने पैसे अवश्य लगा देता था। चेष्टा तो यह रखता था कि उसमे कुछ अपने पाससे भी सम्मिलित कर दूँ। मेरे पासका अर्थ है—मेरे ऐसे साथी, ऐसे स्वजन, जिनका मुझसे कोई अलगाव न रहा हो।"

श्रीभाईजीकी सेवाकी भावना इतनी प्रबल थी कि कभी पैसा पास नही होता तो वे अपनी पत्नीके गहनोकी भी बिक्री कर डालते थे। नीचे श्रीमोहनलाल सारस्वत, रतनगढको लिखे गये एक व्यक्तिगत पत्रका कुछ अश उद्धृत किया जा रहा है, जो इस बातका प्रमाण है—

श्रीहरि

गोरखपुर
ज्येष्ठ वदी २, २०१०

प्रिय श्रीमोहनजी,

सादर सप्रेम हरिस्मरण।

आपका ता० २७-५-५३ का पत्र मिला। एक कार्ड जयपुरसे मिला था। की पत्नीको १५) रु० मासिक देकर रसीद लेते रहियेगा।

गीताप्रेसके विकासमें योगदान

गोरखपुरमे गीताप्रेसकी स्थापनाका मूल उद्देश्य गीतोपदिष्ट तत्त्वज्ञानका सदेश भारतके कोने-कोनेमे पहुँचाना था। इसके आदि प्रवर्त्तक थे श्रद्धेय सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका। वे स्वय तत्त्वज्ञानी महापुरुष थे—गीता-अनुशीलनमे उनका समस्त साधनापूर्ण जीवन व्यतीत हुआ था। उनको दिव्य आत्मप्रकाशकी प्राप्ति भी इसी माध्यमसे हुई। श्रीसेठजीकी यह आन्तरिक अभिलाषा थी कि उनके द्वारा उपार्जित इस अपौरुषेय ज्ञानका व्यापक प्रसार हो।

गीताका स्वाध्याय करते हुए जब वे गीताके १८वे अध्यायमे पहुँचे, तब उन्हे गीताके उपसहार-प्रकरणमे भगवान्‌की घोषणाके ये दो श्लोक मिले—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८। ६८-६९)

'जो पुरुष मुझमे परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोमे कहेगा, वह मुझको प्राप्त होगा—इसमे कोई सदेह नही है। उससे बढकर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योमे कोई भी नही है, तथा पृथ्वीभरमे उससे बढकर मेरा प्रिय दूसरा कोई होगा भी नही।'

बस, श्रीसेठजीके हृदयमे भगवान्‌की वाणी गूँजने लगी। उन्हे अपने जीवनकी साधना मिल गयी। 'जो परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोमे कहेगा'—भगवान्‌की इस आज्ञाके पालनके लिये यह आवश्यक हो गया कि पहले स्वय उस शास्त्रके मर्मको हृदयगम किया जाय। श्रीसेठजीने गीताके अर्थ और भावोको समझनेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

गीताका पाठ, चिन्तन और मनन करते हुए सेठजीको विचित्र अर्थ उद्भासित होने लगे, जिनका प्रकाशन उनके सत्सङ्ग और प्रवचन-गोष्ठियोमे शनै-शनै होने लगा। गीता अब उनके जीवनसूत्रकी सचालिका बन गयी और वे सर्वात्मना उसीमे तल्लीन रहने लगे। देखते-देखते वह स्थिति आ गयी, जब उनकी इच्छा महदिच्छामे परिणत होकर इस महावाणीके रूपमे स्पष्टत सुनायी देने लगी—'मेरी वाणी गीताका प्रचार करो।' फिर तो श्रीसेठजीके लिये गीताका प्रचार भगवत्कार्य हो गया और अपने धर्मनिष्ठ स्वभावके अनुसार उन्होने उसे इतनी गम्भीरतासे ग्रहण किया कि इस कार्यको व्यावहारिक रूप देनेमे वे प्राणपणसे जुट गये। उनका अपना व्यक्तित्व तो गीतामय था ही, उन्होने अपनी सीमित शक्ति और साधनोके अनुसार मानवताके एक वृहदशको उसी साँचेमे ढालनेका सकल्प किया। गीताप्रेसकी स्थापना इसी सकल्पको पूरा करनेके उद्देश्यसे हुई। यह योजना किन सोपानोको पार करते हुए वर्त्तमान स्थितितक पहुँची, इसकी कहानी बडी रोचक है। सक्षेपमे वह इस प्रकार है—

सेठजीके पास गीताकी पदच्छेद-अन्वयसहित एक पुस्तक थी, वह नवलकिशोर प्रेस, लखनऊसे प्रकाशित हुई थी और उसके टीकाकार थे श्रीजालिमसिहजी। आरम्भमे सेठजीका प्रवचन उसी पुस्तकके पाठपर आधारित होता था। श्लोकोंकी व्याख्या तथा तत्त्वनिरूपण वे अपने ढगसे करते थे। सत्सङ्गियोको श्रीसेठजीद्वारा की गयी व्याख्या रुचिकर लगी और उनके आग्रहपर श्रीसेठजीने उसे लिखवाकर 'वणिक् प्रेस', कलकत्तासे पुस्तकाकार छपवा दिया।

पुस्तकके छप जानेपर उनमे छपाईकी प्रचुर भूले देखकर उन्हे बडा खेद हुआ। उनके मनमे आया कि इस दोपसे बचनेके लिये अपना प्रेस होना आवश्यक है। श्रीघनश्यामदासजी जालान श्रीसेठजीके अनन्य श्रद्धालु भक्तोमेसे थे। श्रीघनश्यामदासजी जालानने श्रीसेठजीकी इच्छा-पूर्तिमे सहयोग देनेके उद्देश्यसे प्रस्ताव किया कि 'यदि यह प्रेस गोरखपुरमे खोल दिया जाय तो मैं उसकी व्यवस्था देख लूंगा।' निदान गोरखपुरमे प्रेस खोलना निश्चित हो गया। साथ ही यह भी तय हुआ कि यह प्रेस श्रीसेठजीद्वारा स्थापित कलकत्ताकी प्रसिद्ध समाजसेवी संस्था 'गोविन्द-भवन-कार्यालय'के तत्त्वावधानमे सचालित होगा और इस मुद्रणालयका नाम होगा—'गीताप्रेस।'

गोरखपुर लौटकर श्रीघनश्यामदासजी इस विचारको व्यावहारिक धरातलपर लानेमे सलग्न हो गये। उन्होने प्रेसके लिये उर्दू (अब हिंदी) बाजारमे दस रुपये मासिक किरायेपर एक छोटा-सा मकान लिया। प्रारम्भमे पाँच रुपये मासिक वेतनपर गाँव-गाँव जाकर गीताकी पुस्तक बेचने और उसका प्रचार करनेके लिये एक ब्राह्मण देवताकी नियुक्ति हुई, जिनका नाम था प० श्रीसभापतिजी मिश्र। वे गाँवोके मन्दिरो, विद्यालयो और संस्कृत-पाठशालाओमे घूम-घूमकर गीता-प्रचार करते थे। श्रीघनश्यामदासजी जालानने व्यवस्था कर दी थी कि 'जो भी विद्यार्थी गीताका एक अध्याय कण्ठस्थ करके सुना देगा उसे आठ आनेका पुरस्कार दिया जायगा।' उन दिनो आठ आनेका आजके दस रुपयेसे भी अधिक महत्त्व था, वह भी गाँवके विद्यार्थियोके लिये, जिन्हे एक पैसा भी कठिनाईसे ही कभी मिलता था। इस प्रकार पुरस्कारके प्रलोभनसे भी छोटे विद्यार्थी गीता कण्ठ करते थे। इस गीता-प्रचारके लिये गीताकी पुस्तके कलकत्तासे मँगायी जाती थीं।

मकान किरायेपर लेनेके पश्चात् २९ अप्रैल १९२३ (वैशाख शुक्ल १३, स० १९८०) को उसके एक कमरेमे प्रेसका शुभारम्भ हुआ, जिसका नाम रखा गया—गीताप्रेस। २४ सितम्बर १९२३को ६००) रुपयेमे छपाईकी मशीन खरीदी गयी और कलकत्तासे टाइप तथा टाइपकेस आदि आ गये। छपाईका काम प्रारम्भ हो गया। कुछ ही दिनोमे यह अनुभव हुआ कि हैंडप्रेससे कुशलतापूर्वक और अच्छी छपाई सम्भव नहीं है। इसके लिये कम्पोजिग-विभागमे कम्पोज करवाकर रायगज मोहल्लेमे स्थित 'भारत प्रिंटिग प्रेस'से छपाईका काम करवाया जाने लगा। वह व्यवस्था भी सतोषजनक प्रतीत नहीं हुई। अत अक्तूबर १९२३ ई० को २,००० रुपयेमे एक ट्रेडिल मशीन खरीदी गयी। इसे उर्दू बाजारवाले पुराने कमरेमे ही बैठाया गया। अब कम्पोजिग और छपाई साथ-साथ होने लगी। किंतु कार्य-प्रसार तीव्रगतिसे होता जा रहा था। अत इस व्यवस्थामे भी न्यूनताका अनुभव हुआ और उसे दूर करनेके लिये जनवरी १९२४ ई० को एक बडी मशीन खरीद ली गयी। इसी अवधिमे तीन पुस्तिकाओका प्रकाशन हुआ—(१) त्यागसे भगवत्प्राप्ति, (२) गजल-गीता और (३) प्रेमभक्ति-प्रकाश।

भगवान्की इच्छासे कार्यका निरन्तर विस्तार होता गया और जुलाई १९२६मे हिंदी बाजारमे गीताप्रेस अपने वर्तमान स्थानमे स्थानान्तरित हो गया। अगस्त १९२७मे श्रीभाईजी बम्बई छोडकर गोरखपुर आ गये तथा 'कल्याण'का प्रकाशन गीताप्रेससे आरम्भ हो गया। बस, गीताप्रेसका कार्य-विस्तार होने लगा और बढते-बढते आज उसने एक विशाल मुद्रणालयका रूप ले लिया है। लगभग २ दर्जन वृहदाकार स्वय-चालित मशीनोद्वारा प्रतिदिन लाखो ताव (पेपर शीट) मुद्रित हो रहे हैं। सन् १९७०मे ८,२३,५६,०२५ इम्प्रेशन्स हुए थे। इससे उसके विशाल कार्यका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। आज लगभग पौने छ सौ पुस्तके विभिन्न आकार-प्रकारोमे मुद्रित होकर देश-विदेशमे भगवद्भाव एव दैवी-सम्पदाका प्रचार-प्रसार कर रही हैं। गीताप्रेसद्वारा अबतक जितना विपुल साहित्य प्रकाशित हो चुका है, उसके आँकडे आगे दिये जा रहे हैं। गीताप्रेसकी पुस्तकोकी प्रामाणिकता, शुद्धता, सरलता, आकर्षक-रूप आदिका परिचय जन-जनको है। अत उसके सम्बन्धमे क्या कहा जाय। पुस्तकोकी भाँति गीताप्रेसने भगवान्के विभिन्न स्वरूपो एव देवी-देवताओके हजारो प्रकारके रंगीन चित्र प्रकाशित किये हैं, जिनके माध्यमसे लोगोको अपनी उपासनामे बडी सहायता प्राप्त हुई है।

गीताप्रेसके इस विपुल सत्साहित्यके निर्माण, प्रकाशनमे श्रीभाईजीकी साधना, आध्यात्मिक स्थिति, ऋषि-जीवन, सूझ-बूझ, लेखन-शक्ति, सम्पादन-प्रतिभा, व्यवहार-कुशलता, विद्वानो-महात्माओके प्रति भक्तिभावकी ही देन

है। समूचे साहित्यकी प्रत्येक पङ्क्ति, प्रत्येक शब्द श्रीभाईजीके दृष्टि-पथसे निकला है। प्रत्येक चित्र उनकी भावना एव अनुभूतिका प्रसाद है। वस्तुत. गीताप्रेस एव श्रीभाईजी पर्याय है।

गीताप्रेसके विकासमे श्रीघनश्यामदासजी जालानका भी विशेप योगदान था। गीताप्रेसके सचालन एव व्यवस्थाके साथ उनका इतना तादात्म्य हो गया था कि मानो वे मूर्तिमान् गीताप्रेस थे। गीताप्रेसके छोटे-से-छोटे तथा वडे-से-वडे कार्यसे आपका शरीरके अवयवो तथा क्रियाओके सदृश अभिन्न क्रियात्मक सम्बन्ध था। श्रद्धेय श्रीसेठजीके प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा और भक्ति थी, उन्हीकी पावन सन्निधिमे ज्येष्ठ शुक्ला ६, स० २०१५ को स्वर्गाश्रममे पवित्र गङ्गातटपर आप भगवान्के चरणोमे समर्पित हो गये।

श्रीभाईजीके महाप्रयाणतक अर्थात् ३१ मार्च, १९७१तक गीताप्रेस, गोरखपुरद्वारा प्रकाशित साहित्य

हिंदी-संस्कृत

(१)	श्रीमद्भगवद्गीता	१,४६,७०,८००
(२)	श्रीरामचरितमानस	६२,५८,४५०
(३)	अन्य रामायण	२,१४,५००
(४)	महाभारत	२,२५,०००
(५)	श्रीमद्भागवतपुराण	४,६५,२५०
(६)	उपनिषद्	५,७१,४६०
(७)	नारद-भक्तिसूत्र	६,८७,२५०
(८)	स्तोत्रादि	३१,६७,२५०
(९)	सूर-साहित्य	१,३५,०००
(१०)	मानसेतर तुलसी-साहित्य	३६,६०,०००
(११)	श्रीमद्भगवद्गीता-सम्बधी साहित्य	८,२३,५००
(१२)	तुलसी-सम्बन्धी साहित्य	७,३६,२००
(१३)	अन्य पुराण	३२,२५०
(१४)	व्रज-रस-साहित्य	३,१२,२५०
(१५)	सत-चरित	२५,५०,८५०
(१६)	सत-वाणी	७४,७७,०००
(१७)	महिलोपयोगी साहित्य	२६,९३,५००
(१८)	वालोपयोगी साहित्य	३,९८,१३,२५०
(१९)	प्रकीर्ण	१,७२,०६,८५०
		१०,५३,०३,६४०

अंग्रेजीमे प्रकाशित साहित्य

(१)	श्रीमद्भगवद्गीता	७,४१,२५०
(२)	श्रीरामचरितमानस	५,०००
(३)	वाल्मीकि-रामायण—खण्ड—१	२,०००
	खण्ड—२	२,०००
(४)	प्रकीर्ण	८,८१,५००
		१६,३१,७५०
	महायोग—	१०,६९,३५,३९०

'कल्याण'का जन्म और विकास

भाईजीकी जीवन-व्यापिनी साधनाके व्यक्त-प्रतीक 'कल्याण' मासिक पत्रका बीजारोपण बड़े ही सहज ढंगसे हुआ—अनियोजित, अलक्षित और अघोषित। घटना इस प्रकार है—

संवत् १९८३ (चैत्र शुक्ल १, २ और ३को मारवाड़ी अग्रवाल महासभाका वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमें हुआ। इसके सभापति थे, सेठ जमनालालजी बजाज और स्वागताध्यक्ष श्रीआत्माराम खेमका। आरम्भमें खेमकाजीने कुछ कारणोंसे स्वागताध्यक्ष होना अस्वीकार कर दिया। पीछे सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके आग्रहसे वे राजी हो गये। अधिवेशन जल्दी होनेवाला था। प्रश्न उठा स्वागत-भाषण लिखनेका। खेमकाजी संस्कृत विद्वान् थे पर उन्हें हिंदी लिखनेका अभ्यास नहीं था। उन्होंने श्रीसेठजीसे भाषण तैयार करवा देनेकी प्रार्थना की। श्रीसेठजीने दिल्ली जाकर भाईजीको भाषण तैयार कर देनेका आदेश दिया। श्रीभाईजी दिल्ली गये और उन्होंने २४ घंटेके अंदर अत्यन्त मार्मिक भाषण लिखकर मुद्रित करवा दिया। लोग उसमें व्यक्त किये गये विचारोंसे बहुत प्रभावित हुए।

अधिवेशनमें भाग लेनेके लिये सेठ घनश्यामदास बिड़ला भी आये थे। उनका यद्यपि भाईजीके विचारोंसे पूरा मेल नहीं था तथापि यह भाषण उन्हें भी पसंद आया। दूसरे दिन अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने भाईजीसे कहा—'भाई! तुमलोगोंके विचार कहाँतक ठीक हैं इसकी आलोचना हम नहीं करते हैं। पर इनका प्रचार तुमलोगोंके द्वारा समाजमें हो रहा है। जनता उन्हें दूरतक मानती भी है। यदि तुमलोगोंके पास अपने विचारों और सिद्धान्तोंका एक पत्र होता तो तुमलोगोंको और भी सफलता मिलती। तुमलोग अपने विचारोंका एक पत्र निकालो।'

भाईजीने उक्त प्रस्तावके महत्त्वका समर्थन करते हुए भी पत्रकारिताके सम्बन्धमें अपना अनुभव न होनेसे उसे व्यावहारिक रूप देनेमें असमर्थता प्रकट की। उस समय तो यह चर्चा यहीं समाप्त हो गयी किंतु आगे चलकर यही 'कल्याण'के आविर्भावका कारण बनी।

अधिवेशन समाप्त होनेपर सबोंने अपने-अपने गन्तव्य स्थानको प्रस्थान किया। श्रीभाईजी बम्बईकी ओर चले। उन दिनों दिल्लीसे बम्बई जानेके लिये रेवाड़ी होकर अहमदाबाद जाना पड़ता था और वहाँसे गाड़ी बदलकर बम्बई। भाईजी दिल्लीसे रेवाड़ी गये। उस समय श्रीजयदयालजी गोयन्दका चूरूसे भिवानी आये हुए थे। रेवाड़ीसे भिवानीके लिये आधे घंटेका रास्ता था। श्रीभाईजी उनके दर्शनार्थ रेवाड़ीसे भिवानी गये।
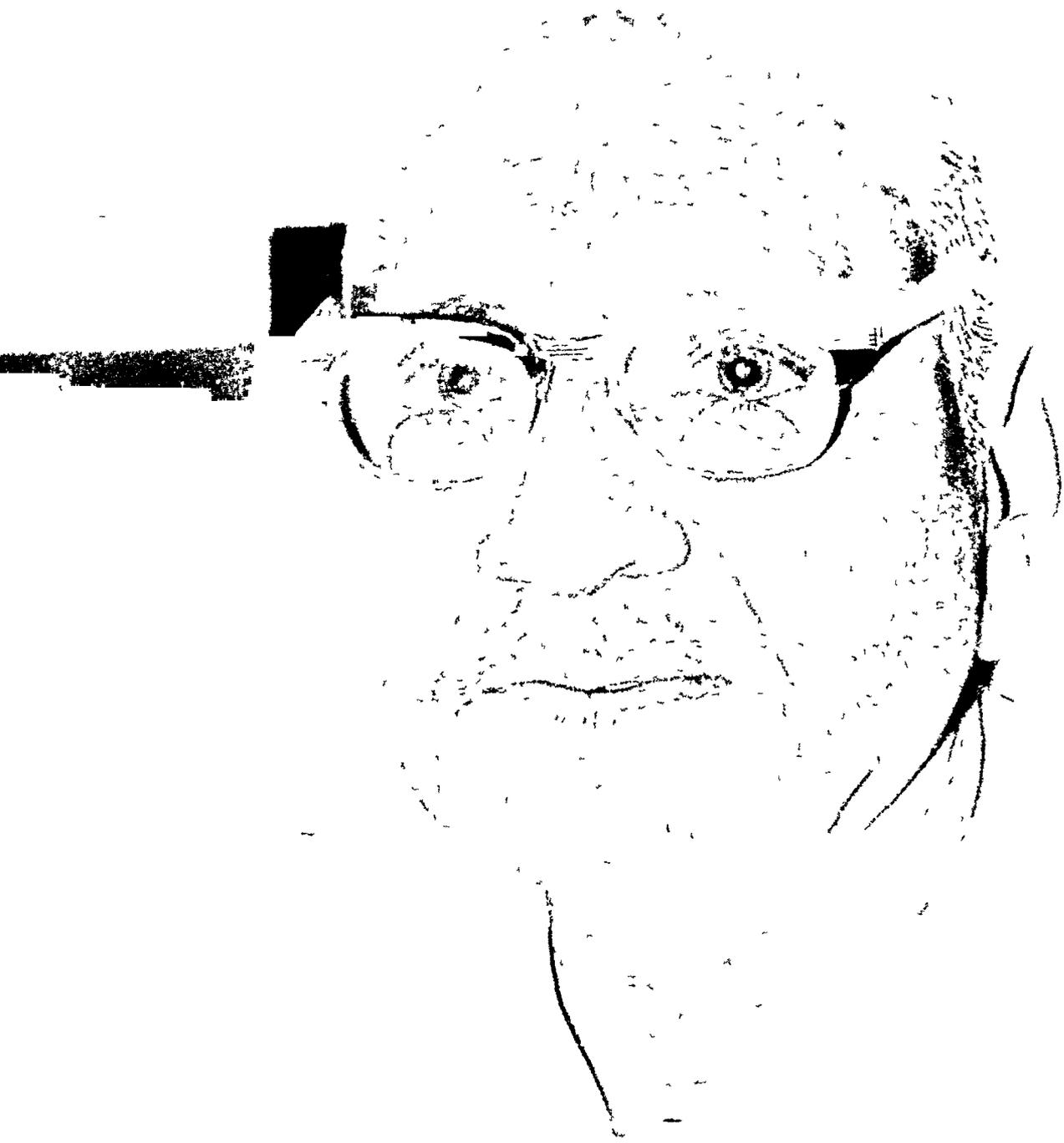
श्रीसेठजी बाँकुडाको और भाईजी बम्बईको। भाईजी बम्बई आकर अपने काममे लग गये। अक्षयतृतीया आयो और चली गयी, अङ्क नहीं निकल पाया।

एक दिन 'श्रीखेमराज श्रीकृष्णदास प्रेस'के मालिक श्रीकृष्णदासजी भाईजीसे मिलने आये। बातचीतके दौरान 'कल्याण' निकालनेकी चर्चा आयी। श्रीकृष्णदासजी बोले—'भाईजी, पत्र अवश्य निकालना चाहिये।' भाईजीने उत्तर दिया—'मुझे पत्र निकालनेका न अनुभव है और न सम्पादनकी योग्यता ही।' श्रीकृष्णदासजी बोले—'हम तो बैठे है, भाईजी। हमारे प्रेस है, हम सब कर देगे। आप केवल लेख दे दे।' भाईजीने बहुत टाल-मटोल की, पर वे माने नही। अन्तमे उन्होने आवेशमे आकर कहा—'देखिये, भाईजी! आपको भगवान्‌ने आसाममे भूकम्पसे बचाया और यहाँ रेलवे इजनसे बचाया। इन घटनाओमे आप अपनेसे बचे हो, यह बात नही है। भगवान्‌ने ही आपको बचाया। आपसे भगवान्‌का कोई बडा काम करवाना चाहते है। इसीलिये उन्होने आपको बचाया है।' उनके इस तर्कके सामने भाईजी मौन हो गये। श्रीकृष्णदासजीने 'कल्याण'के रजिस्ट्रेशनकी व्यवस्था कर दी। इसके बाद लेख इकट्ठे किये गये, उनका सम्पादन हुआ और पुन लिखकर उन लेखोको प्रेसमे छपनेके लिये दे दिया गया। श्रावण कृष्ण ११, स० १९८३को 'कल्याण'का पहला अङ्क निकला। इस प्रथम अङ्कमे प्रथम पृष्ठपर 'बदौ चरन सरोज तुम्हारे' प्रतीकवाला सूरदासजीका पद था, दूसरे पृष्ठपर सम्पादकीय निवेदन, जिसका प्रारम्भिक अश इस प्रकार था—"'कल्याण'की आवश्यकता सबको है। जगत्‌मे ऐसा कौन मनुष्य है, जो अपना कल्याण नहीं चाहता। उसी आवश्यकताका अनुभव कर आज यह 'कल्याण' भी प्रकट हो रहा है। जिसको इस 'कल्याण'के सम्पादनका भार दिया गया है, वह इस बातको भलीभाँति जानता है कि उसमे 'कल्याण'के सम्पादनकी योग्यता और सामर्थ्य नहीं, वह अभी कल्याणसे दूर है, परतु कल्याणकामी अवश्य है। इस 'कल्याण'की किंचित् सेवासे उसकी कल्याण-कामनामे बहुत कुछ सहायता प्राप्त हो सकती है। इसी विश्वाससे वह सब प्रकारसे अपनी अयोग्यताका अनुभव करता हुआ भी परमात्माकी पल-पलपर प्रकट होनेवाली अपार अनुकम्पाका और पूजनीय महापुरुषोकी विशाल कृपाके भरोसे इस कार्यका भार उठा रहा है।"

इस अङ्कमे श्रीसेठजीके दो लेख और एक पत्र तथा गाधीजीका एक लेख दिया गया था। शेष पृष्ठोमे नये-पुराने सतोकी वाणी, शास्त्रोसे उद्‌बोधक सामग्रीका सकलन तथा भाईजीकी अपनी रचनाएँ थी। प्रकाशक था—'सत्सङ्ग-भवन'। लोगोने अङ्कको बहुत पसंद किया। चारो ओरसे उसकी प्रशसा होने लगी। पीछे अपने-आप लेखक उसकी ओर आकृष्ट हुए और लेख जुटने लगे। भाईजीके इस प्रयासमे विद्वानो और महात्माओके आशीर्वाद प्राप्त हुए, लेखकोका अयाचित सहयोग मिलने लगा, जिससे सारी व्यवस्था अपने-आप बैठने लग गयी। प्रारम्भमे इसके १६०० ग्राहक थे—सभी बनाये हुए, बने हुए नहीं।

'कल्याण'के लिये गांधीजीका आशीर्वाद तथा सुझाव

'कल्याण'के लोकोपकारी रूपकी प्रतिष्ठाके लिये भाईजी उसके आविर्भाव-कालसे ही प्रयत्नशील रहे। नवोदित पत्रके लिये देशके जाने-माने नेता और विद्वानोकी सद्भावना प्राप्त करनेके उद्देश्यसे इन्होने समकालीन अध्यात्मनिष्ठ, राष्ट्रसेवकोमे अग्रगण्य महात्मा गाधीसे भी सम्पर्क स्थापित किया था। इस सम्बन्धमे श्रीभाईजीने बताया था—

"'कल्याण'के लिये गाधीजीका आशीर्वाद प्राप्त करने मै एव सेठ जमनालालजी बजाज दोनो गये थे। गाधीजी बडे प्रसन्न हुए और बोले—'कल्याण'मे दो नियमोका पालन करना—'बाहरी कोई विज्ञापन नहीं देना तथा पुस्तकोकी समालोचना मत छापना।' विज्ञापन न छापनेके सम्बन्धमे उन्होने हेतु यह बताया कि 'तुम अपनी जानमे पहले-पहले यह देखकर विज्ञापन लोगे कि वह किसी ऐसी चीजका न हो, जो भद्दी हो और जिसमे जनताको धोखा देकर ठगनेकी बात हो। पर जब तुम्हारे पास विज्ञापन आने लगेगे और लोग उनके लिये अधिक पैसे देने लगेगे, तब तुम्हारे विरोध करनेपर भी साथी लोग कहेगे—'देखिये, इतना पैसा आता है, क्यो न यह विज्ञापन स्वीकार कर लिया जाय?' बस, पैसेका प्रलोभन आया कि फिर जनताके लाभ-हानिकी बात

एक ओर रह जायगी। अतएव आरम्भसे ही यह नियम बना लो कि बाहरी विज्ञापन स्वीकार करना ही नही है। समालोचनाके सम्बन्धमे यह बात है कि—जो लोग समालोचनाके लिये अपनी पुस्तके तुम्हारे पास भेजेगे, उनमेसे अधिकाश इसलिये भेजेगे कि तुम्हारे पत्रमे उनके ग्रन्थकी प्रशसा निकले। यथार्थ समालोचना करानेके लिये अपनी पुस्तक भेजनेवाले विरले ही होते है। ऐसी स्थितिमे पुस्तके चाहे जैसी हो, या तो उनकी झूठी प्रशमा करनी होगी या उन साहित्यकारो, लेखकोसे झगडा मोल लेना पडेगा। इसलिये समालोचना मत छापना।' मैने कहा—'बापू! आपका आशीर्वाद चाहिये, भगवान् शक्ति देगे। इन दोनो नियमोका दृढताके साथ पालन होगा।' बापूने 'कल्याण'की सफलताके लिये हृदयसे आशीर्वाद दिया। तबसे आजतक 'कल्याण'की वही नीति चली आ रही है। गाधीजीने जो आशङ्का व्यक्त की थी, आगे चलकर वह सामने आ गयी। ज्यो-ज्यो 'कल्याण'का प्रचार बढने लगा, त्यो-त्यो विज्ञापनवालोके आग्रह आने लगे। जब इसके एक लाख ग्राहक हो गये, तब तो लोग खूब अधिक पैसा देकर विज्ञापन छपानेको तैयार हो गये। समालोचनाके लिये भी बहुत-सी पुस्तके आयी, बहुत तरहमे दबाव डाले गये। पर भगवान् रक्षा करते चले आ रहे है।"

●

श्रीभाईजीकी साहित्यिक सेवाएँ

१३ महीनेतक 'कल्याण' बम्बईमे निकला। पीछे श्रीभाईजीका मन एकान्तवासके लिये छटपटाने लगा। वे गङ्गाके तटपर एकान्तमे रहकर साधना करना चाहते थे। बम्बईका कारोबार उन्होने बद कर दिया। श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको उन्होने अपनी एकान्तवासकी इच्छा लिखी। श्रीसेठजीने उत्तर दिया—"'कल्याण'का काम तुमको ही करना है। कही भी एकान्तमे रहकर उसका सम्पादन तुम वहाँसे कर देना। परतु एक बार 'कल्याण'के प्रकाशन एव वितरणकी व्यवस्था समझानेके लिये तुम गोरखपुर जाकर तथा कुछ महीने रहकर वहाँके व्यवस्थापकोको काम समझा दो।" श्रीभाईजीको यह बात रुचिकर हुई। वे गोरखपुर आकर 'कल्याण' के कामकी व्यवस्था ठीक करनेमे लग गये। इसी बीच श्रीभाईजीको भगवान् श्रीविष्णुकी कृपा प्राप्त हुई और उन्होने आदेश दिया कि 'सन्यास नही लेना चाहिये। गोरखपुर रहकर मेरी भक्तिका तथा नामका प्रचार करना चाहिये।' भगवदिच्छाके सामने भाईजीकी इच्छा विलीन हो गयी और वे यही रह गये। 'कल्याण'द्वारा जो विश्वरूप प्रभुकी सेवा हुई है, वह सर्वविदित है।

४४ वर्षकी लबी अवधिमे 'कल्याण'के माध्यमसे लाखो-लाखो देशवासी उनके उपदेशामृतका पानकर भगवान्‌की ओर आकृष्ट हुए है और उन्होने जीवनके परम लक्ष्य—भगवान् या भगवान्‌के प्रेमकी प्राप्तिके महत्वको समझा है और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये किस प्रकार सुगमतासे बढा जा सकता है, इसकी शिक्षा ग्रहण की है। हजारो-हजारो निराश व्यक्तियोने आशा, उत्साह, स्फूर्ति, नवीन चेतना प्राप्त की है और उत्साहहीनता, निराशा और विनाशके गर्तमे गिरकर वे अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी कुचेष्टासे विरत हुए है। आपसके मनो-मालिन्यको धोकर परस्पर प्रेमकी प्रतिष्ठा करनेकी प्रेरणा कितने परिवारोको, कितने स्वजनोको, कितने मित्रोको प्राप्त हुई है—इसका हिसाब लगाना असम्भव है। मानव-स्वभावकी दुर्बलताओसे घिरे रहकर सन्मार्गमे फिसलते हुए कितने-कितने साधक, गृहस्थ, विरक्त, नवयुवक भगवान्‌की सौहार्दमयी पतितपावनताका परिचय प्राप्तकर, पापपङ्कमे निकलकर सत्त्वगुणकी ओर अग्रसर हुए और उन्नतिके शिखरपर पहुँचे है। जीवनकी ऐसी कौन-सी गुत्थी, समस्या, पहेली, उलझन है, जिसका समाधान श्रीभाईजीकी लेखनी या वाणीसे निकले शब्दोसे प्राप्त न हुआ हो। यही हेतु है कि २२ मार्च १९७१को प्रातःकाल जब ये महामानव अपनी इहलौकिक लीलाका सवरण कर भगवान्‌की नित्यलीलामे लीन हो गये, तब देशके एक कोनेमे दूसरे कोनेतक विषादकी एक तीव्र लहर दौड गयी और अच्छे-अच्छे विरक्त महात्माओतक, जिनकी दृष्टिमे जगत्‌का अस्तित्व ही नही है, श्रीभाईजीके तिरोधान-से मर्माहत हो उठे और उनके नेत्रोमे अश्रुप्रवाह बह चला। देशके एक सिरेसे दूसरे सिरेतकसे अगणित लोगोके

करुण पत्र, तार, टेलीफोन आये है और अबतक आ रहे है, जिनको देखकर पता चलता है कि श्रीभाईजीका 'परिवार' कितना विस्तीर्ण, कितना विशाल है। सहस्रो व्यक्तियोको अपने सगे-स्वजनो, गुरुजनो, प्रेमियोकी विदाईसे जितनी पीडा नही हुई, उतनी पीडा उन्हे श्रीभाईजीकी बिदाईसे हुई है। यही उन महामानवकी सार्वभौमता है।

श्रीभाईजीने 'कल्याण' मासिक पत्रद्वारा पत्रकारितामे नया कीर्तिमान स्थापित किया है। बिना किसी प्रकारके विज्ञापन एव प्रचारके विशुद्ध आध्यात्मिक एव धार्मिक चर्चाके आधारपर 'कल्याण' प्रतिमास १,६५,०००की सख्यामे प्रकाशित होता है और भारतवर्षके हिंदी-अहिंदी सभी प्रान्तोमे समानरूपसे समादृत है। विदेशोमे भी इसकी पर्याप्त प्रतियाँ जाती है। उसके प्रतिवर्षके विशेषाङ्क अपने-अपने विषयके विश्वकोष है। सहस्रो अहिंदीभाषी जनोने 'कल्याण' पढनेके लिये हिंदी सीखी है।

'कल्याण' एक विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र है, अतएव इसके सम्पादकका जीवन पूर्णतया अध्यात्मनिष्ठ होना चाहिये। 'कल्याण'के विकासमे परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक स्थिति ही प्रधान हेतु रही है। उनका जीवन भगवद्विश्वास, भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति, ज्ञान एव निष्काम कर्मका मूर्तिमान् आदर्श था। गीताके सोलहवे अध्यायमे वर्णित दैवी-सम्पदाके गुण सहज एव स्वाभाविकरूपसे उनमे प्रतिष्ठित थे। जो कुछ वे 'कल्याण'मे लिखते थे, वह सब उनमे था। उनके पवित्र जीवन, पवित्र वाणी, पवित्र लेखनी, पवित्र दृष्टि, पवित्र विग्रहसे नित्य-निरन्तर भगवद्रसकी विश्वपावनी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती थी और वह जगत्के जीवोको सहज ही अमृतत्व प्रदान करती थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'का छोटा-सा पौधा सहजरूपसे विकसित होता हुआ आज इस रूपमे जनता-जनार्दनकी सेवा कर रहा है। 'कल्याण'की सेवामे श्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवनका क्षण-क्षण तथा शरीरका कण-कण होम दिया था। वास्तवमे 'कल्याण' और श्रीभाईजी पर्याय हो गये है। 'कल्याण'-के लिये की गयी उनकी सेवाओका वर्णन कोई क्या कर सकता है, वह तो अनुभवगम्य है, उसका वाणीमे आना असम्भव ही है।

'कल्याण'के अबतकके प्रकाशित विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्कका नाम	संवत्	प्रकाशित प्रतियाँ
१	(इस वर्ष विशेषाङ्क नही निकला)	——	
२	भगवन्नामाङ्क	१९८४	११,०००
३	भक्ताङ्क	१९८५	१५,०००
४	श्रीमद्भगवद्गीताङ्क	१९८६	१६,५००
५	श्रीरामायणाङ्क	१९८७	२०,२५०
६	श्रीकृष्णाङ्क	१९८८	१७,५००
७	ईश्वराङ्क	१९८९	२१,०००
८	शिवाङ्क	१९९०	२२,५००
९	शक्ति-अङ्क	१९९१	२५,६००
१०	योगाङ्क	१९९२	३४,१००
११	वेदान्ताङ्क	१९९३	३७,५००
१२	सत-अङ्क	१९९४	३५,०००
१३	मानसाङ्क	१९९५	९३,६००
१४	गीतातत्त्वाङ्क	१९९६	५०,६००
१५	साधनाङ्क	१९९७	५५,६००

१६	भागवताङ्क	१९९८	६५,१००
१७	संक्षिप्त महाभारताङ्क	१९९९	८०,६००
१८	संक्षिप्त वाल्मीकि-रामायणाङ्क	२०००	५७,६००
१९	संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क	२००१	६०,१००
२०	गो-अङ्क	२००२	१,०१,३००
२१	संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क	२००३	१,०१,४००
२२	नारी-अङ्क	२००४	१,१५,६००
२३	उपनिषद्-अङ्क	२००५	१,०७,०००
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	२००६	१,२५,२००
२५	संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क	२००७	१,१०,६००
२६	भक्त-चरिताङ्क	२००८	१,२०,४००
२७	बालकाङ्क	२००९	१,१५,६००
२८	संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क	२०१०	१,१६,६००
२९	संत-वाणी-अङ्क	२०११	१,२३,७००
३०	सत्कथाङ्क	२०१२	१,२१,१००
३१	तीर्थाङ्क	२०१३	१,२०,७००
३२	भक्ति-अङ्क	२०१४	१,१५,०००
३३	मानवताङ्क	२०१५	१,१५,०००
३४	संक्षिप्त देवीभागवताङ्क	२०१६	१,२५,०००
३५	संक्षिप्त योगवासिष्ठ-अङ्क	२०१७	१,३१,०००
३६	संक्षिप्त शिवपुराणाङ्क	२०१८	१,५१,०००
३७	संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्तपुराणाङ्क	२०१९	१,४१,०००
३८	श्रीकृष्णवचनामृताङ्क	२०२०	१,३५,०००
३९	श्रीभगवन्नाम-महिमा और प्रार्थनाङ्क	२०२१	१,४२,०००
४०	धर्माङ्क	२०२२	१,५०,०००
४१	श्रीरामवचनामृताङ्क	२०२३	१,५०,०००
४२	उपासनाङ्क	२०२४	१,५०,०००
४३	परलोक और पुनर्जन्माङ्क	२०२५	१,६०,०००
४४	संक्षिप्त अग्निपुराण-गर्गसंहिताङ्क	२०२६	१,६५,०००
४५	संक्षिप्त अग्निपुराण, गर्गसंहिता-नरसिंहपुराणाङ्क	२०२७	१,७५,०००
४६	श्रीरामाङ्क	२०२८	१,६५,०००

'कल्याण-कल्पतरु' अंग्रेजी मासिक पत्रिकाकी सेवा

हिंदी-मासिक पत्र, 'कल्याण'की तरह अंग्रेजीमे 'कल्याण-कल्पतरु'का प्रकाशन सवत् १९९१ वि० (जनवरी सन् १९३४ ई०)मे प्रारम्भ हुआ। 'कल्याण-कल्पतरु'के प्रकाशनका उद्देश्य वही है, जो 'कल्याण'का है। 'कल्याण'से केवल हिंदी-भाषा-भाषी ही लाभान्वित हो पाते थे। 'कल्याण'-पत्रिकाद्वारा दिया जानेवाला सदेश अंग्रेजी-भाषा-भाषी जन-समुदायतक भी पहुँच सके, इस हेतुसे अंग्रेजी मासिक पत्रिका 'कल्याण-कल्पतरु'का मुद्रण एव प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसकी प्रतिमास लगभग पाँच हजार प्रतियाँ प्रकाशित होती है। अनेक कठिनाइयोके कारण 'कल्याण-कल्पपरु'के प्रकाशनको कुछ मासके लिये स्थगित करनेके दो-तीन बार अवसर आये, परतु भगवान्‌की कृपासे वह अपने पाठकोके हाथमे सदा पहुँचता रहा है। इसके सम्पादक है—श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, एम० ए०, शास्त्री तथा श्रीभाईजी इसके कट्रोलिंग एडीटर रहे। उनकी देख-रेखमे तथा परामर्शसे पत्रिकाका कार्य होता रहा है। विदेशोमे इसकी माँग अच्छी है और लोग इससे बहुत लाभान्वित हुए है। अबतक 'कल्याण-कल्पतरु'के निम्नलिखित विशेषाङ्क प्रकाशित हो चुके है।

List of the Special Numbers of 'Kalayana-Kalpataru'

No.	Title	Year
1.	The God-Number	1934
2.	The Gita-Number	1935
3	The Vedanta Number	1936
4	The Sri Krishna-Number	1937
5	The Divine Name Number	1938
6.	The Dharma-Tattva Number	1939
7	The Yoga Number	1940
8.	The Bhakta Number	1941
9	The Sri Krishna-Leela Number, Part I	1942
10	The Sri Krishna-Leela Number, Part II	1944
11.	The Cow Number	1945
12	The Gita-Tattva Number, Part I	1946
13	The Gita-Tattva Number, Part II	1947
14	The Gita-Tattva Number, Part III	1948
15	The Manasa Number, Part I	1949
16	The Manasa Number, Part II	1950
17	The Manasa Number, Part III	1951
18	The Bhagavata Number, Part I	1952
19.	The Bhagavata Number, Part II	1954
20.	The Bhagavata Number, Part III	1955
21.	The Bhagavata Number, Part IV	1956
22.	The Bhagavata Number, Part V	1957
23	The Bhagavata Number, Part VI	1959
24	The Valmiki-Ramayana Number, Part I	1960
25.	The Valmiki-Ramayana Number, Part II	1961
26.	The Valmiki-Ramayana Number, Part III	1962
27.	The Valmiki-Ramayana Number, Part IV	1963
28.	The Valmiki-Ramayana Number, Part V	1965
29.	The Valmiki-Ramayana Number, Part VI	1966
30.	The Valmiki-Ramayana Number, Part VII	1967
31.	The Valmiki-Ramayana Number, Part VIII	1969
32	The Valmiki-Ramayana Number, Part IX	1970

‘महाभारत’ मासिक पत्रिकाका सम्पादन

इन प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रन्थोकी उपलब्धि जनताको हो सके, इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये ‘महाभारत’ नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन नवम्वर १९५५से आरम्भ किया गया। श्रीभाईजी इसके सम्पादक थे। पत्रिकामे ग्रन्थके मूल श्लोक तथा उसका हिंदी अर्थ दिया जाता था। किंतु कई अपरिहार्य कारणोसे ‘महाभारत’ मासिक पत्रका प्रकाशन स्थगित करना पडा। महाभारत कुल सात वर्षतक—कार्तिक स० २०१२ वि० (नवम्वर सन् १९५५ ई०)से स० २०१८ (सन् १९६२)तक प्रकाशित होता रहा और प्रतिमास औसतन ७,५०० प्रतियाँ उसकी छपती थी। इस अवधिमे इसके अङ्कोमे क्रमश सम्पूर्ण महाभारत, हरिवश नामक उसका खिलभाग, सनत्सुजातीय (शाकरभाष्य), जैमिनीयाश्वमेधपर्व और सम्पूर्ण वाल्मीकि-रामायणका प्रकाशन हुआ। ‘महाभारत’ पत्रिकाके लिये शास्त्र-ग्रन्थोका प्रामाणिक एव सुन्दर अनुवाद प० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री करते थे।

श्रीभाईजीका साहित्य

परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीने लगभग २५ हजार पृष्ठोका अपना मौलिक साहित्य दिया है, जिसमेसे लगभग ९ हजार पृष्ठोका साहित्य स्वतन्त्र पुस्तकरूपमे प्रकाशित हो चुका है। वाकी साहित्य ‘कल्याण’के अङ्कोमे विखरा पडा है, लोगोके पास पत्ररूपमे है तथा गीताप्रेससे प्रकाशित विभिन्न पुस्तकोमे सगृहीत है। इस विखरे साहित्यको स्वतन्त्र पुस्तकरूप देनेका कार्य हो रहा है। इस साहित्यमे निवन्ध, पारमार्थिक एव व्यावहारिक गुत्थियोको सुलझानेवाले निदशोसे पूर्ण पत्र तथा भक्तो एव सतोके जीवन-वृत्त आदि है। साथ ही उन्होने व्रजभाषा, खडी वोली एव राजस्थानी भाषाओमे लगभग दो हजार पदोकी रचना भी की है, जिनमे अनुभूतिकी तीव्रता दर्शनीय है। ये सभी हिंदी साहित्यकी अमूल्य निधियाँ है। टीकाकारके रूपमे उन्होने रामचरितमानस, विनयपत्रिका आदि प्रसिद्ध ग्रन्थोकी टीकाएँ भी की है, जिनका समाजमे वहुत ही आदर हुआ है। वे लाखोकी सख्यामे छप चुकी है। श्रीभाईजीकी विवेचन-शैली एव भाषा इतनी सुवोध एव लालित्यपूर्ण है कि पाठक उसे पढते-पढते अपूर्व आनन्दमे विभोर हो जाता है और गहन-से-गहन विपयोको भी हृदयगम कर लेता है। नीचे हम उनके पुस्तकरूपमे मुद्रित मौलिक साहित्यकी सूची दे रहे है—

निवन्ध-संग्रह

	पुस्तकका नाम	अवतक प्रकाशित प्रतियाँ
१	भगवच्चर्चा—भाग–१ (तुलसीदल)	३८,०००
२	भगवच्चर्चा—भाग–२ (नैवेद्य)	३२,२५०
३	भगवच्चर्चा—भाग–३	४०,०००
४	भगवच्चर्चा—भाग–४	१०,०००
५	भगवच्चर्चा—भाग–५	१०,०००
६	भगवच्चर्चा—भाग–६ (पूर्ण समर्पण)	११,०००

साधना-साहित्य

३६	मानव-धर्म	१,२९,०००
३७	साधन-पथ	१,००,०००
३८	श्रीराधा-जन्माष्टमी-व्रत-महोत्सवकी प्राचीनता, महिमा ओर पूजाविधि	५,०००
३९	मनको वशमे करनेके कुछ उपाय	३,०५,०००
४०	श्रीभगवन्नाम	१,३१,२५०
४१	दिव्य सदेश	३,६०,०००
४२	गीतामे विश्वरूपका दर्शन	२५,०००
४३	ब्रह्मचर्य	४२,०००
४४	सत्सङ्गके विखरे मोती	७०,२५०
४५	मनुष्य सर्वप्रिय और सफल-जीवन कैसे वने ?	२०,०००
४६	जीवनमे उतारनेकी सोलह वाते	६०,०००
४७	कल्याणकारी आचरण	३०,०००
४८	प्रार्थना	१,०५,२५०
४९	गोपी-प्रेम	१,४५,२५०
५०	रस और भाव	८,०००
५१	रासलीलाका रहस्य	५,०००
५२	श्रीकृष्ण-महिमाका स्वरूप	५,०००
५३	पूर्णपरात्पर श्रीकृष्णका आविर्भाव	५,०००
५४	भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप-तत्त्व	५,०००
५५	स्वय भगवान् कव और क्यो आते है	५,०००
५६	श्रीराधाका प्रेम-स्वरूप-गुण-तत्त्व	५,०००

उद्वोधक साहित्य

(जीवनमे आशा, स्फूर्ति और उत्साह प्रदान करनेवाला साहित्य)

५७	कल्याण-कुञ्ज भाग–१	१,०२,०००
५८	कल्याण-कुञ्ज भाग–२	४५,०००
५९	कल्याण-कुञ्ज भाग–३	४०,०००
६०	मानव-कल्याणके साधन (कल्याण-कुञ्ज भाग–४)	१५,०००
६१	दिव्य सुखकी सरिता—(कल्याण-कुञ्ज भाग–५)	१५,०००
६२	सफलताके शिखरकी सीढियाँ (कल्याण-कुञ्ज भाग–६)	१५,०००
६३	दैनिक कल्याण-सूत्र	३५,०००
६४	आनन्दकी लहरे	३,९०,२५०
६५	दीन-दुखियोके प्रति कर्त्तव्य	३५,०००
६६	सात वाते	४३,९००

भक्त-गाथा-साहित्य

६७	उपनिषदोंके चौदह रत्न (गीताप्रेससे प्रकाशित भक्त-चरित्रोंमे अधिक चरित्र उन्हींके लिखे हुए है।)	८४,२५०

टीका-साहित्य

६८	प्रेम-दर्शन (श्रीनारद-भक्तिसूत्रोंकी विस्तृत व्याख्या—हिंदीमे)	६४,२५०

श्रीभाईजीकी हिंदी पुस्तकोका संस्कृत-अनुवाद

६९	श्रीप्रेमदर्शनम् (प्रेमदर्शनका अनुवाद)	५,०००
७०	रसभावविमर्श (श्रीराधामाधव-प्रेमतत्त्वका विशद विवेचन)	८,०००
		५३,६४,०००

Shri H P Poddar's Writings reproduced in English

71	The Philosophy of Love	43,250
72	Way to God-Realization	72 250
73	Gopi's Love for Sri Krishna	68,250
74	Our Present-Day Education	5,750
75	The Divine Name and Its Practice	65,250
76	Wavelets of Bliss	74,250
77	The Divine Message	98,000
78	Transcendent Bliss and Love	8,000
89	Nectarean Bliss of Sri Radha-Madhava	5,000
80	Fountain of Bliss	5,000
81	Path to Divinity	5,000
82	Turn to God	5,000
83	Look Beyond the Veil	5,000
		4,60,000

श्रीभाईजीद्वारा अनूदित साहित्य

८४	श्रीरामचरितमानस–मोटा टाइप (टीकासहित)	६८,८५०
८५	श्रीरामचरितमानस–मझला साइज (टीकासहित)	७,६५,०००
८६	विनय-पत्रिका (टीकासहित)	३,६०,०००
८८	दोहावली (टीकासहित)	२,३४,०००

श्रीराधाकृष्णकी प्रेमाभक्तिका प्रचार

श्रीराधाकृष्णकी प्रेमाभक्तिका प्रचार ही श्रीभाईजीके जीवनका मुख्य उद्देश्य था, जिसके लिये उनका आविर्भाव इस धराधामपर हुआ था।

भक्ति-रसमे व्रज-रसकी माधुरी अनुपमेय है। भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दनने व्रजमे प्रकट रहकर रसकी जो मधुरातिमधुर धारा वहायी, उसकी जगत्मे क्या, विश्व-ब्रह्माण्डमे कोई तुलना नही है। वडे-वडे योगीन्द्र-मुनीन्द्र तथा ज्ञानी-विज्ञानी इस रसके लिये तरसते है। भाईजीने समय-समयपर मधु रसपर अथवा दूसरे शब्दोमे श्रीराधा-कृष्णके कामगन्धलेशशून्य अलौकिक प्रेमपर 'कल्याण'के लिये लिखे गये लेखोमे, विशेप अवसरोपर पढे गये लिखित व्याख्यानोंमे तथा व्यक्तिगत पत्रोके रूपमे जो कुछ लिखा हे तथा दैनिक सत्सङ्गमे अथवा अन्य समारोहोमे मौखिक-रूपसे जो कुछ कहा है, वह आध्यात्मिक जगत्की एक अमूल्य निधि है।

श्रीभाईजीने राधाके स्वरूपका एव प्रेमका वडा ही सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। व्रज-रसके प्राण श्रीव्रजराजकुमारकी आत्मा श्रीराधिका है—**'आत्मा तु राधिका तस्य।'** एक रूपमे जहाँ श्रीराधा श्रीकृष्णकी आराधिका—उपासिका है, दूसरे रूपमे वे उनकी आराध्या—उपास्या भी है—**'आराध्यते असौ इति राधा।'** शक्ति और शक्तिमान्मे वस्तुत कोई भेद न होनेपर भी भगवान्के सविशेष रूपोमे शक्तिकी प्रधानता है। शक्तिमान्की सत्ता ही शक्तिके आधारपर हे। शक्ति नही तो शक्तिमान् कैसे ? **'रस्यते असौ इति रस.'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार रसकी सत्ता ही आस्वादके लिये है। अपने-आपको अपना आस्वादन करानेके लिये ही स्वय रसरूप (**'रसो वै स.'**) श्रीकृष्ण 'राधा' वन जाते है। इसीलिये व्रज-रसमे 'राधा'की विशेष महिमा है। श्रीकृष्ण प्रेमके पुजारी है, इसीलिये वे अपनी पुजारिनकी पूजा करते है, उन्हे अपने हाथो सजाते-सँवारते है, उनके रूठ जानेपर उन्हे अपने प्राणोके निर्मञ्छनद्वारा प्रसन्न करते है। 'चॉपत चरन मोहनलाल' तथा—

'देख्यौ दुर्यौ मै कुज कुटीर मे बैठ्यौ पलोटत राधिका पायन।'

श्रीभाईजीने श्रीराधाके दिव्यातिदिव्य स्वरूप, उनके प्रेमकी अलौकिक महिमा, श्रीकृष्णके साथ उनका पवित्रतम सम्वन्ध आदि दुरूह एव गूढ विपयोका वडा ही मार्मिक विवेचन किया है तथा प्रसङ्गवश श्रीराधाके विपयमे तथा श्रीराधाकृष्णके प्रेम-सम्वन्धमे उठायी गयी विविध शङ्काओका वडे ही सुन्दर ढगसे समाधान किया है। आधुनिक विपय-विमोहित एव काम-सुखको ही सव-कुछ माननेवाले भौतिकवादी जगत्को श्रीभाईजीकी यही सवमे वडी और महनीय देन है।

श्रीराधाकी भाँति श्रीकृष्णकी पूर्ण भगवत्ता, उनका परम दिव्य स्वरूप, उनका सच्चिदानन्दमय भगवद्देह, श्रीकृष्णके प्राकट्यकी महिमा तथा उनका जन्म-महोत्सव, उनकी विरुद्धधर्माश्रयता, उनकी सर्वमान्यता, श्रीकृष्ण-चरितकी उज्ज्वलता तथा उनको प्रियतमरूपमे प्राप्त करनेकी साधना आदि विपयोपर भी उन्होने प्रचुर प्रकाश डाला है।

उनके 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' आदि ग्रन्थमे श्रीराधा-कृष्णके स्वरूपको, उनके परस्परके पवित्रतम सम्वन्धको, उनकी विभिन्न मधुर लीलाओको—जिनमे प्रणय, मान एव विरह, सभी है—ठीकसे समझनेका 'मापदण्ड' प्राप्त होता है। साथ ही श्रीराधा-कृष्णके सम्वन्धमे अवतक जो भी साहित्य सस्कृत, हिंदी तथा अन्य भापाओमे प्राप्त है, उसके अध्ययन, मनन एव आलोचनकी 'कसौटी' वह ग्रन्थ प्रस्तुत करता है। विना एक 'कसौटी'को सामने रक्खे—श्रीराधा-माधवके स्वरूप तथा उनकी पारस्परिक मधुर लीलाओंके तत्त्वका यथार्थ ज्ञान न होनेके कारण ही—न केवल हिंदी-साहित्यमे प्राप्त रचनाओ अपितु सस्कृत साहित्यकी भी एतद्विपयक रचनाओके अध्ययनके सम्यक् आनन्दमे हम अभीतक वहुत अशोमे वञ्चित रहे हैं तथा हमने अनेको भ्रान्त धारणाओका सृजन कर लिया है।

जगज्जननी श्रीराधा
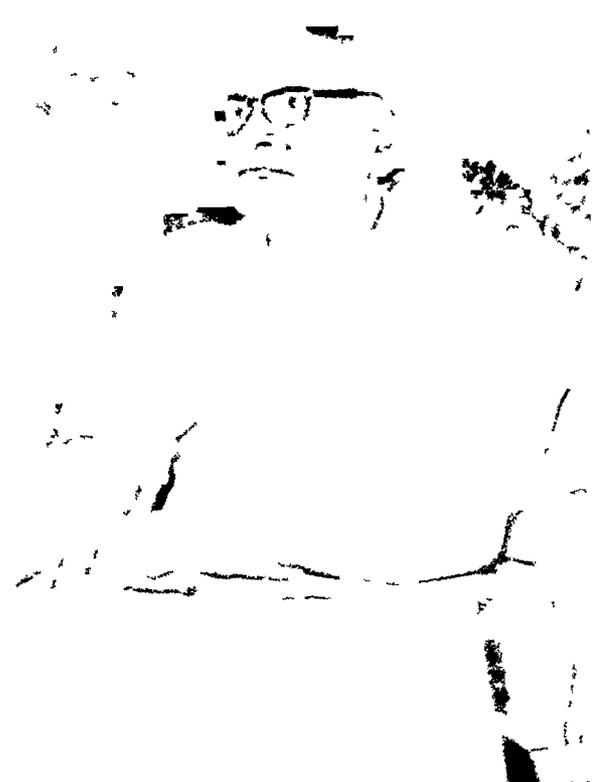
उन्नत प्रासादकी आधार-शिला एवं उत्तुंग शिखर

मंचकी सुसज्जा देख सूत्रधार खिल उठा

कलेवर, महोत्सवके मंच पर, मन नित्योत्सवमें

श्रीराधा महिमा पर गहन रसानुभूति पूर्ण प्रवचन

समर्थ पिता और लाडिली बेटी उत्सवका संचालन करते हुए
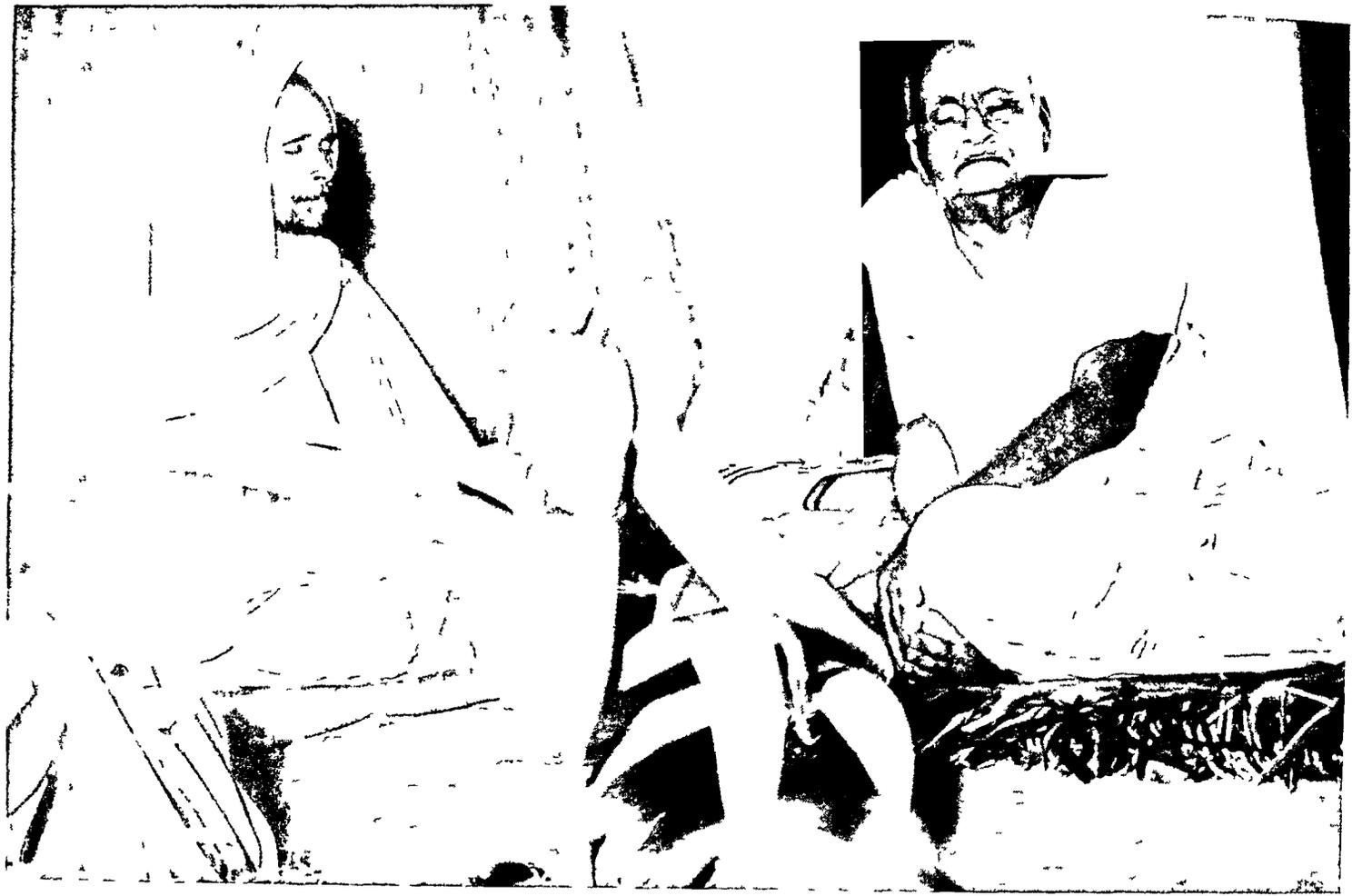
श्रीराधा प्राकट्यकी प्रतिक्षामे

कर्पूर एव वस्त्रसे नीराजन

अपनी मानी हुई कसौटीके आधारपर ऐसा करके जहाँ एक ओर हमने अपनी हानि की है, वहाँ दूसरी ओर श्रीराधा-कृष्णविषयक प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थो एव कवि-लेखकोके प्रति अन्याय भी किया है।

साहित्यके अध्ययन करनेवालोकी भाँति ही, साहित्य-प्रणेताओके समक्ष भी श्रीराधा-कृष्णके स्वरूप एव उनकी लीलाओके सम्बन्धमे एक 'सैद्धान्तिक मापदण्ड' न रहनेके कारण सूरदास आदि कुछ भक्तकवियोको छोडकर शेप कवि, जिन्होने श्रीराधामाधवको अपने काव्यका विपय वनाया, बहुत कुछ पथ भूल गये है। अत श्रीराधा-कृष्णविपयक साहित्यके प्रणेता कवि एव लेखकोसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे श्रीभाईजीद्वारा रचित ग्रन्थोमे प्रस्तुत किये गये श्रीराधाकृष्णके पवित्रतम स्वरूप एव सम्बन्धको अपने सामने रखकर साहित्यका सृजन करेंगे तो ऐसा सात्विक साहित्य प्रकट होगा, जो भक्तिक्षेत्रकी तो अमूल्य निधि होगी ही, समाजके पतनोन्मुख नैतिक स्तरको भी उन्नत करनेमे सक्षम होगा।

इसी प्रकार श्रीभाईजीने भावराज्यकी लोकोत्तर महिमा, ज्ञानराज्यकी सीमाको पार करनेपर भावराज्यमे प्रवेशके लिये अधिकारकी प्राप्ति, भावराज्यमे प्रिया-प्रियतमका नित्य लीलाविहार, भगवदवतारका रहस्य तथा श्रीकृष्णकी माखनचोरी, चीरहरण एव रासक्रीडा आदि मधुरातिमधुर, किंतु तर्कशील व्यक्तियोको भ्रमित कर देनेवाली विविध दिव्य लीलाओका मर्म बडी ही सुन्दर एव सुवोध शैलीसे समझाया है, जिसे पढकर उनके सम्बन्धमे अज्ञानवश की जानेवाली अनेकानेक शङ्काओका सम्यक्तया निराकरण हो जाता है। रासलीलाके सम्बन्धमे प्राचीन आचार्यो एव अन्य महानुभावोके कई मत हैं। कुछ लोग इसे आध्यात्मिक रूपक मानते है, कोई-कोई इसे काम-विजयकी लीला कहते है—इत्यादि। इन सभी मतोकी समीक्षा करते हुए श्रीभाईजीने यह बतलाया है कि 'यह तो भगवान्‌का आत्मरमण—अपनी स्वरूपभूता श्रीगोपीजनोके साथ रमण है, जिसके द्वारा प्रभुने यह दिखलाया है कि लोक-वेद—सबका त्याग करके उनपर अपने आपको न्योछावर कर देनेवाले भक्तोको किस प्रकार वे अपना स्वरूप-दान करते है, सर्वथा उनके अधीन हो जाते है। श्रीकृष्णका यह रमण वस्तुत 'स्वरूप-वितरण' ही है।' इसी प्रसङ्गमे यह भी वताया गया है कि भगवान् श्रीकृष्णका सम्पूर्ण चरित्र परमोज्ज्वल एव आदर्श होनेपर भी उनकी सभी लीलाएँ अनुकरणीय नही है तथा सवका अनुकरण करने जाकर मनुष्य पतनके महान् गर्तमे गिर जायगा। भक्त-शिरोमणि सम्राट् परीक्षित्‌के द्वारा रास-लीलाके प्रसङ्गमे शङ्का उठाये जानेपर श्रीमद्भागवतके वक्ता स्वय शुकदेव मुनि इस प्रकारकी चेतावनी बहुत पहले हम लोगोको दे गये है।

प्रेमतत्वकी श्रीभाईजीने वडी ही मार्मिक एव अधिकारपूर्ण व्याख्या की है तथा प्रेमके रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव एव महाभाव—इन स्तरो एव उनके अवान्तर भेदोको बडे ही सुन्दर ढगसे समझाया है। 'प्रेम' शब्दका प्रयोग आजकल लौकिक पति-पत्नीके पारस्परिक सम्बन्धके अर्थमे होने लगा है। कही-कही तो अवैध आसक्तिको भी 'प्रेम' कहा जाता है, जिससे इस शब्दकी सात्विकता एव पवित्रता नष्ट हो गयी है और लोग 'प्रेम' नामसे ही नाक-भौ सिकोडने लगते है। श्रीभाईजीके साहित्यिक अध्ययनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पति-पत्नीके लौकिक सम्बन्धका नाम 'प्रेम' नहीं 'काम' है, जिसका आधार है, भोग—निजेन्द्रिय-तृप्ति, जब कि प्रेमका आधार है, त्याग—प्रेमास्पद-सुखैक-लालसा। भगवत्प्रेमी इस लोक और परलोकके भोगोसे ही नही, मोक्षतकके सुखसे बहुत पहले ऊपर उठ जाता है। इसीलिये प्रेमियोने भगवत्प्रेमको अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—इन चारोसे ऊँचा, पञ्चम पुरुपार्थ माना है। इसमे स्व-सुख-वासनाका लेश भी नही होता। इस प्रेमकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति ही 'श्रीराधारानी' है। भगवत्प्रेमकी प्राप्ति उत्कट चाहसे तथा भगवत्कृपासे ही सम्भव है, त्यागकी भित्तिपर ही प्रेमके दिव्य प्रासादका निर्माण होता है, प्रेमके लिये विषय-वैराग्यकी परम आवश्यकता है—इत्यादि विषयोपर भी श्रीभाईजीने अद्भुत प्रकाश डाला है।

प्रेमकी चरम परिणति श्रीगोपीजनोमे ही हुई है। इन्हे प्रेमका मूर्तिमान् विग्रह कहे तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। इसीलिये 'प्रेमतत्व'के साथ-साथ गोपाङ्गनाओपर भी श्रीभाईजीने विस्तृत साहित्य दिया है। श्रीभाईजीने बताया है कि श्रीगोपाङ्गनाएँ श्रीराधाकी ही अगभूता अथवा कायव्यूहरूपा है। इनका एकमात्र कार्य है—श्रीप्रिया-

प्रियतमका परस्पर मिलन कराना एव दोनोकी प्राणपणसे प्रेममयी सेवा करना। **'तत्सुखसुखित्वम्'** ही इनका आदर्श है, जो प्रेमका मूलमन्त्र है। इसीलिये देवर्षि नारदने अपने भक्तिसूत्रोमे इन्हीको भक्तिका सर्वश्रेष्ठ आदर्श माना है—**'यथा व्रजगोपिकानाम्।'** जिनकी चरण-रजकी कामना स्वय जगत्पिता ब्रह्माने ही नही, उद्धव-जैसे भक्ताग्रगण्योने की है, जिनका दर्जा भगवान्ने ब्रह्मा, शकर, भगवान् सकर्षण, भगवती लक्ष्मीसे—यहाँतक कि अपनेसे भी ऊँचा बताया है—**'न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शकर'। न च सकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥'** उन गोपीजनोकी महिमा क्या कही जाय। इन गोपीजनोके सहस्रश यूथ है और सखी, सहचरी, प्रियनर्मसखी, मञ्जरी, दूती आदि अनेको भेद है। इन सवके स्वरूप, सेवा, प्रेम तथा गोपीभावकी साधना आदि अत्यन्त गूढ एव रहस्यपूर्ण विषयोकी वडी ही समीचीन एव साङ्गोपाङ्ग व्याख्या श्रीभाईजीने की है। इसी प्रसङ्गमे उन्होने यह भी बताया है कि गोपीभावकी साधना केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हो, ऐसी बात नही है। सुतरा, इसके लिये स्त्रियोचित वेष सजनेकी कोई आवश्यकता नही है। जो लोग ऐसा करते है, वे गोपीभावका एक प्रकारसे उपहास ही करते है। वस्तुत यहाँ स्त्री-पुरुष-सम्बन्धकी तो कोई कल्पना ही नही है। यह तो एक पवित्रतम अप्राकृत भाव है, जो सर्वथा राग-गन्धसे शून्य है।

स्वकीया एव परकीया भावोको लेकर भी साधनाक्षेत्रमे तथा साहित्यिक क्षेत्रमे श्रीराधा-माधवके पवित्रतम सम्बन्धके प्रति अनेक भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित है। श्रीभाईजीके इस ग्रन्थमे स्वकीया और परकीया भावका यत्र-तत्र जो विवेचन हुआ है, उसे दृष्टिमे रखकर श्रीराधामाधव एव गोपी-कृष्णके प्रेम-सम्बन्धके विषयमे विचार करनेपर हृदय उसकी पवित्रतम एव उज्ज्वलतम आभासे उद्भासित हो उठता है।

सचमुच श्रीभाईजीका साहित्य व्रज-रस—मधुररसका एक अमूल्य आकर है। हमारी धारणाके अनुसार इस विषयपर ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण, सुगम, सरस और प्रामाणिक विवेचनात्मक साहित्य कदाचित् किसी भी भाषामे आजतक नही लिखा गया है। सस्कृत-साहित्यमे अवश्य ही इस प्रकारकी सामग्री प्रचुररूपमे उपलब्ध है, परतु वह यत्र-तत्र इतनी बिखरी पडी है कि उसके मर्मको हृदयगम करते हुए उसका सम्यक्तया विश्लेषण तथा उपयोग करके समन्वित रूप देना श्रीभाईजी-जैसे पुरुषका ही काम था। श्रीभाईजीके साहित्यमे भक्तिशास्त्रका मर्म एव व्रज-साहित्यका निचोड बहुत कुछ आ गया है। श्रीभाईजीने जो कुछ लिखा है, वह वैष्णव-शास्त्र एव रसिक सम्प्रदायके सिद्धान्तोद्वारा पूर्णतया सम्मत तो है ही, उसमे सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उनके प्रत्येक शब्दपर अनुभवकी पुट लगी है। अत स्वाभाविक ही श्रीभाईजीके साहित्यके मनोयोगपूर्वक अध्ययन-मननसे एव उसमे वर्णित सिद्धान्तोको अपने जीवनमे उतारनेसे मनुष्य परम दुर्लभ मोक्षको भी लघु बना देनेवाले भगवत्प्रेमके मार्गमे अनायास ही अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार मधुर-भावकी साधना करनेवालोके लिये श्रीभाईजीका साहित्य बहुत उपयोगी है। मधुरभावकी उपासनाके नामपर व्यक्तिगत जीवनमे तथा समष्टिरूप समाजमे बहुत गदगी आयी है और आनेकी सम्भावना है। कारण, मधुर-रसका 'पारा' यदि विधिपूर्वक सेवन न किया गया तो वह फूट पडता है और सारे शरीर और मनको क्षत-विक्षत कर डालता है। श्रीभाईजीके इस ग्रन्थमे प्रस्तुत मधुर-भावकी उपासनाके सिद्धान्तोको पकडकर चलनेवालेका नैतिक स्तर निरन्तर उन्नत होता जायगा और वह सासारिक भोगोके दलदलसे—नीच कामके चगुलसे निकलकर विशुद्ध प्रेम-राज्यमे प्रवेश कर पायेगा।

श्रीभाईजीके श्रीराधाकृष्ण-सम्बन्धी साहित्यपर कतिपय गण्यमान्य विद्वानो, भक्तो एव महात्माओके विचार, जो कई वर्ष पूर्व प्राप्त हुए थे, नीचे दिये जा रहे है—

आचार्य श्रीहजारीप्रसादजी द्विवेदी

"श्रीभाईजीके 'राधामाधव-चिन्तन'मे भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनका अद्भुत समन्वय है। यह भाईजी-जैसे भक्तकी लेखनीसे ही लिखा जा सकता था। शास्त्रका अध्ययन इसमे बडी गहराईसे स्थित है। निरन्तर चिन्तन-मनन और स्वानुभूतिसे पवित्रीकृत हृदयमे ही शास्त्र ऐसा रूप ग्रहण कर सकता है। श्रीराधारानीके दिव्य रूप और भगवान् श्रीकृष्णके चिद्घनविग्रह रूपका विवेचन इस प्रकारकी सहज वाणीमे वही कर सकता है, जिसने उन्हे पाया है, सौ-सौ रूपोमे उनका साक्षात्कार किया है।"

षोडशगीतके प्रणेता और उसके यथार्थ ग्राहक

व्रजसाहित्यके मर्मज्ञ श्रीप्रभुदयालजी मित्तल

"श्रीभाईजीकी रसवती लेखनीसे निस्सृत श्रीराधा-माधव-सम्बन्धी इस साहित्य-सरितामे अवगाहन कर अतीव आनन्द प्राप्त किया। महाभाव और रसराज-स्वरूप श्रीराधा-कृष्णके तत्वका जैसा साङ्गोपाङ्ग विवेचन इन रचनाओ-मे हुआ है, उससे श्रीभाईजीके दीर्घकालीन अध्ययन और गहन चिन्तन-मननका प्रत्यक्ष परिचय मिलता है।

श्रीराधा-कृष्ण-तत्व वास्तवमे व्रजकी वस्तु है। व्रजके महात्माओने अपनी दीर्घकालीन साधनाके फलस्वरूप इसे प्रकट किया था और व्रजके विद्वानोने ही अपनी प्रकाण्ड विद्वत्तासे इसका प्रसार-प्रचार किया था। किंतु श्रीभाईजीकी इन रचनाओमे इस विषयका जैसा मर्मस्पर्शी कथन हुआ है, उससे व्रजके बडे-से-बडे विद्वान्को भी अब नूतन प्रकाश मिलेगा।"

श्रीस्वामीजी श्रीश्रीकमलनयनाचार्यजी शास्त्री, श्रीधाम वृन्दावन

"यद्यपि महानुभावोने प्रेमका **'गुणरहितं कामनारहितं सूक्ष्मतरमनुभवरूपं प्रतिक्षणवर्धमानम्'** यह लक्षण माना है, तथापि 'श्रीराधामाधव-चिन्तन'मे लेखकने प्रेमतत्वका जो चित्र खीचा है, वह यथार्थमे श्रीविहारिणीजी एव श्रीविहारीजीकी अपनी देन प्रतीत होती है, क्योकि लेखककी हृदयभित्तिपर पहले पूर्वरागका उदय था, अब प्रौढरागरञ्जित राकेशका समुदय हृदयगगनपर हो रहा है।

पोद्दारजीके तत्तत् व्याख्यानो एव लेखोकी शृङ्खलासे यह प्रतीत होता है कि ये सज्जन उस पवित्रतम भूमिकापर समारूढ है, जहाँ परमैकान्तिक जन—श्रीस्वामिनीवल्लभके कृपाकटाक्षसे प्लावितहृदय ज्ञानी महानुभाव रम-मानसमे मरालवत् विहार करते है। यथा च—

ज्ञानी तु परमैकान्ती तदायत्तात्मजीवनः।
तत्संश्लेषवियोगैकसुखदुःखस्तदैकधीरिति ॥

इस भावनामे पगे हुए श्रीपोद्दारजीका जीवन ही मानो परम शेषी श्रीदिव्य-दम्पतिके मुखविकासार्थ एव परमामोदके लिये ही ससारमे है, अन्यथा इनका शरीर-धारण करना निजकृत कर्माकर्म-भोगके लिये सिद्ध नही हो रहा है।"

शास्त्रार्थमहारथी पं० श्रीमाधवाचार्यजी

"श्रीराधामाधव-चिन्तन, आदि साहित्य निश्चित ही किसी व्यक्तिविशेषकी अपनी कृति नही हो सकता। मुझे तो ऐसा अनुभव होने लगा कि मानो भाईजीके माध्यमसे श्रीराधारानीने स्वय ही अपने कुछ मार्मिक उद्गार भक्तोको वरदोपहारके रूपमे प्रदान किये है। श्रीभाईजीपर करुणामयी रासेश्वरी महारानीकी असीम कृपा मालूम पडती है, तभी वे इस निगूढ तत्त्वके प्रतिपादनमे सक्षम हो पाये है।"

श्रीराधामाधव-रस-सुधा (षोडश-गीत)

श्रीभाईजीके श्रीराधाकृष्ण-सम्बन्धी साहित्यमे 'श्रीराधामाधव-रस-सुधा' पुस्तिकाका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'श्रीराधामाधव-रस-सुधा' श्रीभाईजीके १६ गीतोकी एक छोटी-सी पुस्तिका है। इन सोलह गीतोमे श्रीप्रिया-प्रियतमके परस्पर प्रेमालापका सुमधुर चित्रण किया गया है। इनमेसे आठ पदोमे श्रीकृष्णके श्रीराधाके प्रति प्रेमोद्गार और शेप आठमे श्रीराधाके श्रीकृष्णके प्रति प्रेमोद्गार वर्णित है। रस-साहित्यमे अधिकाश रचनाएँ ऐसी ही उपलब्ध होती है, जिनमे श्रीकृष्ण प्रेमास्पदके रूपमे और श्रीराधा प्रेमिकाके रूपमे चित्रित की गयी है। इन सोलह गीतोमे आठ पद ऐसे है, जिनमे श्रीकृष्ण श्रीराधाको अपनी प्रेमास्पदा मानकर उन्हे प्रेमकी स्वामिनी ओर अपनेको प्रेमका कङ्गाल स्वीकार करते है और उनके उत्तररूपमे आठ पद श्रीराधाके द्वारा कहे गये है, जिनमे श्रीराधा अपनेको अत्यन्त दीना और श्रीकृष्णको प्रेमके घनीरूपमे स्वीकार करती है। इस प्रकार इन सोलह पदोमे प्रेमिगत दैन्य और प्रेमास्पदकी महत्ताका उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगत होता है। पदोके आमुख-रूपमे दिये गये महाभाव-रसराज-वन्दना शीर्षक पाँच दोहे श्रीराधाकृष्णके स्वरूप एव उनके परस्पर सम्बन्धका सूत्ररूपमे दिग्दर्शन कराते है और अन्तमे 'पुष्पिका'के नामसे लिखे गये पाँच दोहे भी उनके उसी पारस्परिक प्रेमकी महत्ता, त्यागमयता तथा अहकार-शून्यताकी ओर इङ्गित करते है।

श्रीराधामाधवके स्वरूप एव सम्बन्धपर श्रीभाईजीकी उक्त पोडशगीतकी भूमिकाके रूपमे लिखी गयी निम्नाङ्कित पक्तियाँ मननीय हैं—

"सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका आनन्दस्वरूप या ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधाके रूपमे प्रकट है। श्रीराधाजी स्वरूपत भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्धतम प्रेमकी ही अद्वितीय घनीभूत नित्य स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधाजी मूर्तिमती मादनाख्य महाभावरूपा हैं। वे प्रत्यक्ष साक्षात् ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम नित्य वर्द्धनशील प्रेमकी आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं। कामगन्धहीन, स्वसुख-वाञ्छा-वासना-कल्पना-गन्धसे सर्वथा रहित, श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी श्रीकृष्णसुखजीवना श्रीराधाका एकमात्र कार्य है—त्यागमयी पवित्रतम नित्य सेवाके द्वारा श्रीकृष्णका आनन्दविधान। श्रीराधा पूर्णतमा शक्ति हैं, श्रीकृष्ण परिपूर्णतम शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान्मे भेद तथा अभेद दोनो ही नित्य वर्तमान हैं। अभेदरूपमे तत्त्वत श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त, नित्य एक हैं और प्रेमानन्दमयी दिव्य लीलाके रसास्वादनार्थ अनादिकालसे ही नित्य दो स्वरूपोमे विराजित हैं। श्रीराधाका मादनाख्य महाभावरूप प्रेम अत्यन्त गौरवमय होनेपर भी मदीयतामय मधुर स्नेहसे आविर्भूत होनेके कारण सर्वथा ऐश्वर्यगन्ध-शून्य है। वह न तो अपनेमे गौरवकी कल्पना करता है न गौरवकी कामना ही। सर्वोपरि होनेपर भी वह अहकारादि-दोष-लेश-शून्य है। यह मादनाख्य महाभाव ही राधा-प्रेमका एक विशिष्ट रूप है। राधाजी इसी भावसे आश्रयनिष्ठ प्रेमके द्वारा प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवा करती है। उन्हे उनमे जो महान् सुख मिलता है, वह सुख, श्रीकृष्ण 'विषय' रूपसे राधाके द्वारा सेवा प्राप्त करके जिस प्रेमसुखका अनुभव करते हैं, उससे अनन्तगुना अधिक है। अतएव श्रीकृष्ण चाहते हैं कि मैं प्रेमका 'विषय' न होकर 'आश्रय' बनूँ, अर्थात् मैं सेवाके द्वारा प्रेम प्राप्त करनेवाला 'विषय' ही न बनकर सेवा करके प्रेमदान करनेवाला भी बनूँ। मैं आराध्य ही न बनकर, आराधक भी बनूँ। इसीसे श्रीकृष्ण नित्य राधाके आराध्य होनेपर भी स्वय उनके आराधक बन जाते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, वहाँ श्रीराधा उनकी प्रेमास्पदा हैं और जहाँ श्रीराधा प्रेमिकाके भावमे आविष्ट हैं, वहाँ श्रीकृष्ण प्रेमास्पद हैं। दोनो ही अपनेमे प्रेमका अभाव देखते हैं और अपनेको अत्यन्त दीन और दूसरेका ऋणी अनुभव करते हैं, क्योंकि विशुद्ध प्रेमका यही स्वभाव है। पाठक विशेष गहराईमे जाकर इन पदोके भावोको ग्रहण करनेका प्रयास करेंगे तो उन्हे पता लगेगा कि श्रीराधाकृष्णके प्रेमका स्वरूप कितना पवित्रतम समर्पणपूर्ण तथा दिव्य है। इसी प्रेमको आदर्श मानकर प्रेममार्गके साधक अपना मार्ग निश्चय करे और श्रीराधा-माधवके चरणोमे प्रेम प्राप्त करे, इसी हेतु इन पदोका प्रकाशन किया गया है।"

इन पोडश-गीतोमे एक राधाकृष्णप्रेमी सतने विलक्षणता और स्थायी गुण देखे हैं उन्होने इन पदोको श्रीधाम वृन्दावनके एक प्रमुख देवालय श्रीराधारमण-मन्दिरमे तथा श्रीपुरीधामके श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमे उक्त मन्दिरके अधिकारियोकी अनुमतिसे व्रजभाषाके अनुवादसहित सगमरमरके प्रस्तरखण्डोमे उत्कीर्ण करवाया है। पुरीके मन्दिरमे उनका उत्कल भाषामे अनुवाद भी मूल-गीतोके साथ उत्कीर्ण किया गया है।

इतना ही नहीं, वन्दना और पुष्पिकासहित इन पदोको व्रजभाषा एव अग्रेजी-भाषान्तरोके साथ ताम्रपट्टोपर भी उत्कीर्ण कराके गोरखपुरमे सुरक्षित रखा गया है। साथ ही व्रजभूमिके श्रीवृन्दावन एव जतीपुरा—इन दोनो प्रमुख तीर्थस्थानोपर तथा बीकानेर (राजस्थान)मे भी भक्तोद्वारा पोडश-गीत-भवनोका निर्माण कराके उनमे मूल-गीतोके ताम्रपट्ट विग्रहरूपमे स्थापित किये गये हैं, और उनकी नियमितरूपसे पूजा और रात्रिमे २ से ४॥ बजेतक पाठ होता है। गोरखपुरकी गीतावाटिकामे तथा अन्य कई स्थानोपर भी नियमितरूपसे व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूपमे भावुक-भक्तगण इनका रात्रिमे २ से ४॥ बजेतक पाठ करते हैं और उनमेसे कइयोको इस पाठके फलस्वरूप श्रीराधामाधवकी विशेष कृपाके दर्शन भी हुए हैं।

'श्रीराधामाधव-रस-सुधा'के सस्कृत, तमिल, तेलुगु, मलयालम्, कन्नड, अग्रेजी, फ्रेंच एव जर्मन भाषाओमे अनुवाद श्रीराधामाधव-सेवा-सस्थानके द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। 'श्रीराधा माधव-रस-सुधा'के खडी बोली, बँगला, सिंधी, उडिया, मराठी, उर्दू तथा रशन (रूसी) भाषाओमे भी अनुवाद हो चुके हैं और ये अनुवाद सस्थानसे यथासमय ही प्रकाशित होंगे।

श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सवके कर्णधार

श्रीराधाष्टमी-महोत्सव

एक महोत्सव-प्रेमी

श्रीराधाष्टमी-महोत्सव श्रीभाईजी और पूज्य बाबा (स्वामी चक्रधरजी)का अपने हाथोसे वपन किया हुआ तथा अपने अन्तरकी छलकती स्नेह-सुधासे सिञ्चित किया हुआ साधनाका वह अमर बोधिवृक्ष है, जिसकी सघन छायामे आकर लाखो-करोडो व्यक्ति आश्रय पा सकते—शान्ति अनुभव कर सकते है—और मानव-जीवनके चरम लक्ष्यकी ओर अग्रसर हो सकते है। महाभाव-रस-समुद्रमे अवगाहन करनेकी अभिलाषा रखनेवालोके लिये यह सागरके गर्भमे स्थित वह प्रकाश-स्तम्भ है, जो दिशा और गतव्यका सही मार्ग-दर्शन करता है। उन्ही दक्ष एव पावन हाथोसे भावके इस गगनचुम्बी प्रासादका शिलान्यास हुआ है, जिसके चमचमाते शिखर युगोतक त्रस्त मानवताको भावकी ओर आकर्षित करते रहेगे, जिसके विशाल द्वार कभी ऊँच-नीच, गरीव-अमीरके भेदकी ओर दृष्टिपात नही करते, जहाँसे याचक खाली हाथ नही लौटता। इसके निर्माणका श्रेय उन महासतको है, जिनके लिये अनुकूलता, प्रतिकूलता, सुख-दुख समान अर्थ रखते थे, महाभावके युगपत् शान्त एव उच्छलित सागरमे जो निरन्तर डूबते-उतराते रहते थे, जिनकी उपस्थिति ही उस महोत्सवका प्राण थी—जिनका सक्रिय सहयोग ही उत्सवकी आधारशिला थी। पर हाय रे-अकरुण नियति—आज इस महामहोत्सवके प्राणोकी चिर-विदाई हो चुकी है—श्रीभाईजीकी सशरीर सनिधिका अप्रतिम सुख हमसे छिन चुका है। परतु श्रीराधाष्टमी-महोत्सवमे हमारे भाईजी आज भी उसी रूपमे हम अभागोपर कृपावृष्टि करनेके लिये उपस्थित रहते ही है—भले ही हमारी अधी आँखे उन्हे न देख सकती हो।

सदा ही रुग्ण रहनेवाले भाईजीके दुर्वल शरीरमे श्रीराधाष्टमी-महोत्सवके समय अपरिमित उल्लास भर जाता था—एकान्त कक्षमे बैठे अपने लेखन-कार्यमे व्यस्त-से प्रतीत हो रहे भी भाईजीको उत्सव सुचारुरूपसे साङ्गो-पाङ्ग सम्पन्न हो सके, यही अभिप्रेत था और उनकी यह इच्छा ही सवपर उसी रूपमे मूर्त हो उठती थी। सभी प्राणपणसे इस प्रयासमे जुट पडते—और भाईजीकी भूरि-भूरि प्रशसा कार्यकर्ताओको मत्त वना देती—हाँ, वह नही समझ पाता, इस सफलताके अन्तरालमे है भाईजीका अनुपम स्नेह और कृपा ही।

दो-तीन दिन पहलेसे विभिन्न नगरोसे आनेवालोका ताँता वँध जाता था—आस-पासके सभी स्थानोमे यथासम्भव आगन्तुकोके ठहरनेकी व्यवस्था करनेपर भी समुचित व्यवस्था नही हो पाती और गीतावाटिकासे दूर अन्यान्य स्थानोपर भी प्रवन्ध करना पडता। प्रत्येक आगन्तुकसे वे स्वय मिलते, उसकी आवास-व्यवस्थाके सम्बन्धमे उससे प्रश्न करते और घरवालोको आगन्तुकोका उचित आदर और उनकी समुचित व्यवस्थाके लिये वार-वार आदेश देते। हजारोकी सख्यामे लोग एकत्रित होते और भाईजीका स्नेह पाकर धन्य हो उठते। प्रात और साय कीर्तन, पद, प्रवचन आदिका आयोजन होता और भाईजी ही उसका सचालन करते। भाईजीकी मूर्त सनिधि वाद्य-यन्त्रोकी मधुर झकृति और गायकका आलाप वातावरणको सात्विकताके ऐसे रगमे रँग देते कि मानस स्वत सत्की ओर अग्रसर होनेका प्रयास करता—और उस भूमिपर पडा भाईजीके प्रवचनका अमोघ बीज निश्चय ही सत्को अकुरित करेगा, भले ही कालमान उसका कुछ भी हो।

भजन आदिकी व्यवस्थाके सम्बन्धमे भी भाईजी पूर्ण सतर्क रहते। सर्वत्र भगवद्दर्शन उनको सहज होता था और प्रभुकी साङ्गोपाङ्ग अर्चना करना उनका नित्य-स्वभाव था—उसमे त्रुटि उन्हे सहन हो ही कैसे सकती थी।

उत्सवके लगभग एक मास पूर्वसे पडालकी सज्जा आरम्भ हो जाती—चित्रकार, राजमिस्त्री, बढई आदि सब दत्तचित्तसे उसमे लग जाते। भाईजी भी उन्हे उत्साहित करनेको प्रात और साय नियमितरूपसे पडालमे आते और वस्तुओको देखते हुए उनके सम्बन्धमे आदेश देते। उनके स्नेह-भीने शब्दोको सुनकर श्रम तो सर्वथा दूर हो ही जाता, प्राणोमे अनुपम उल्लास-सा भर उठता और समयका वन्धन तोडकर सब लगे रहते। रात-दिन कार्य चलता—परतु भाईजीके स्नेहपूरित वचनोका सम्मोहन ही था, जो कभी किसीको श्रान्तिका अनुभव ही होने नही देता था।

अष्टमीको प्रात ४॥ बजेसे शहनाई-वादन प्रारम्भ होता और उस शहनाईके साथ ही भाईजीका स्नेहभीना स्वर सुन पडता। कक्षसे बाहर आकर वे छतपर खडे हो जाते। कार्यकर्ताओंके प्राणोंमे अभिनव स्फूर्ति आ जाती और वातावरणमें आनन्द-सा छा जाता।

प्रभात-फेरी प्रारम्भ होती ५॥ बजेसे 'राधिका रमण' 'अम्बुज नयन'का 'मधुर स्वर कानोमे रस-सुधा उडेलने लगता और 'हरे राम हरे राम' सकीर्तन प्रारम्भ होता। भाव-विभोर—उन्मत्त-से नृत्य करते लोग ऊपर भाईजीके पास जाते और भाईजी भी अपने कमरेसे बाहर छतपर आकर खडे हो जाते। मुखपर स्वाभाविक मुस्कान, श्वेत खादीके वस्त्र और मस्तकपर पीत चन्दनका गोल टीका—दोनो हाथ जोडे भाईजी खडे है—नेत्र सजल है। कीर्तन करनेवाले गाते-नाचते उनके चरणोमे ढुल पडते और भाईजीका वरद-हस्त मस्तकपर पा कृतकृत्य हो जाते। ऐसा अनुपम दृश्य उपस्थित हो जाता, जो मात्र अनुभवगम्य ही था—शब्द उसका चित्राङ्कन नही कर सकते।

लगभग ८॥ बजे विशाल पडालमे बिछी दरीपर आकर गरिमाके मूर्तिमान् रूप भाईजी भी जाकर बैठ जाते—वही सादा वेष, स्वाभाविक मुस्कान और स्नेहिल नयन। न ऊँचा आसन है, न ऊँचा मञ्च, सहसा देखकर विश्वास हो नही पाता कि यही है वे ?। एक मूक प्रश्नचिह्न लिये श्रोता मन्त्रमुग्ध-से बैठे रहते। भाईजीका प्रवचन प्रारम्भ हो गया—एक होड-सी लगी है सबमे उनका प्रवचन रिकार्ड करनेकी। सामने काठकी चौकीपर दस-बारह माइक लगे है—टेपरिकार्डरोकी लाइन लगी है—परतु भाईजीको इससे कोई प्रयोजन नही, उन्हे तो भगवद्भावका वितरण करना ही मात्र अभिप्रेत था और उसे वे करते रहते।

प्रवचनके उपरान्त भाईजी कुटियासे बाबाको ले आते—और दोनो मञ्चपर विराजमान हो जाते। दोनो महापुरुषोके नेत्र पूर्णत उन्मीलित हो हम अभागोपर अनुपम कृपाकी वर्षा करते। हमारी साधनाकी सर्वोपरि सिद्धि यही थी—हमारे सम्पूर्ण आयोजनका अभिलषित यही था। आँखे बद किये सभी ५ मिनटतक जन्मकी प्रतीक्षा करते और बारह बजे शङ्ख, घटा, घडियालके स्वरसे दिशाएँ निनादित हो उठती। केटिया पहने, हाथमे कपूरकी आरती लिये भाईजी नीराजन करते—और अन्तरके किसी कोनेमे गूँज उठता—'हाँ-हाँ आज श्रीराधाका जन्म हुआ है और हम सब इस मङ्गलमय घडीमे उनकी सन्निधिमे है।'

लगभग ४ बजेतक कार्यक्रमका समापन होता—और फिर प्रसाद-वितरण। भाईजी भी इसके उपरान्त ही विश्राम करते। रात्रिमे भी पद-कीर्तन होता और भाईजी उसमे पूरा सहयोग देते। दूसरे दिन होता है—दधिकाँदो। दधि-कर्दम उत्सवका विशिष्ट अङ्ग है—सनो दहीके साथ हरिद्रा, केशर, कपूर, इत्र, गुलाबजल आदि मिलाकर यह तैयार किया जाता—श्रीराधाकुमारीके अर्पण होनेके उपरान्त सब भाव-विभोर होकर दही एव मक्खनको एक दूसरेपर डालते, उछलते और कीर्तन करते। सचमुच दधिकी कीच-सी मच जाती थी। इसके लिये निर्दिष्ट स्थानमे सम्पूर्ण रात्रि अल्पना की जाती और सवेरे भाईजी अपने हाथसे उसका पूजन करते। दधि-कर्दमका प्रारम्भ होता उद्दाम कीर्तनसे। उद्दाम सकीर्तन भाईजीको विशेष प्रिय था। वे कहते थे—उद्दामका अर्थ है—उद्दण्ड, जिसमे नियमका कोई बन्धन न रहे—लोग सब कुछ भूलकर भावमे विभोर होकर नृत्य करे, बस, अन्य कुछ भी स्मरण न रहे। और भावुक हृदयोको अनेक अनुभूतियाँ भी उस नृत्यके अन्तरालमे होती रही है। भाईजी अपने प्रवचनमे सदा ही कहा करते थे—श्रीराधाका जन्म-महोत्सव, जिसे आज हम मना रहे हैं, कोई खेल नही, बडी उच्चकोटिकी साधना है—और यहाँ जो जिस भावसे आयेगा, उसे वही मिलेगा। तमाशा देखनेवालोके लिये यह तमाशा है और दोष देखनेवालोको इसमे दोष भी बहुत मिल जायेगे। पर वस्तुत है यह साधनाकी ऊँची-से-ऊँची वस्तु।

उत्सव सम्पन्न होनेपर भाईजी भावभीनी विदाई सबको देते। वे कहते—आज यह उत्सव सम्पन्न हो रहा है—खतम नही—खतम तो यह होता ही नही, यह तो नित्य चलता रहता है। आजके इस शुभ अवसरपर हम कामना करे—हमे भी श्रीराधारानीकी कृपाका एक सीकर प्राप्त हो जाय। आनेवाले सब कष्ट उठाकर आये हैं, उनका स्नेह है, कृपा है। कार्यकर्ताओने कार्य किया है, वह भी सराहनीय है, पर धन्यवाद किसे दूँ ? सभी तो अपने है। मैं तो सबसे यही प्रार्थना करूँगा कि सब ऐसी कृपा करे, जिससे मेरा मन भी श्रीराधाकी ओर बढ चले।

श्रीराधा कुमारीका पूजन

पूजनकी सम्पन्नता साष्टांग प्रणमनसे

अल्पना-स्थली की अर्चना
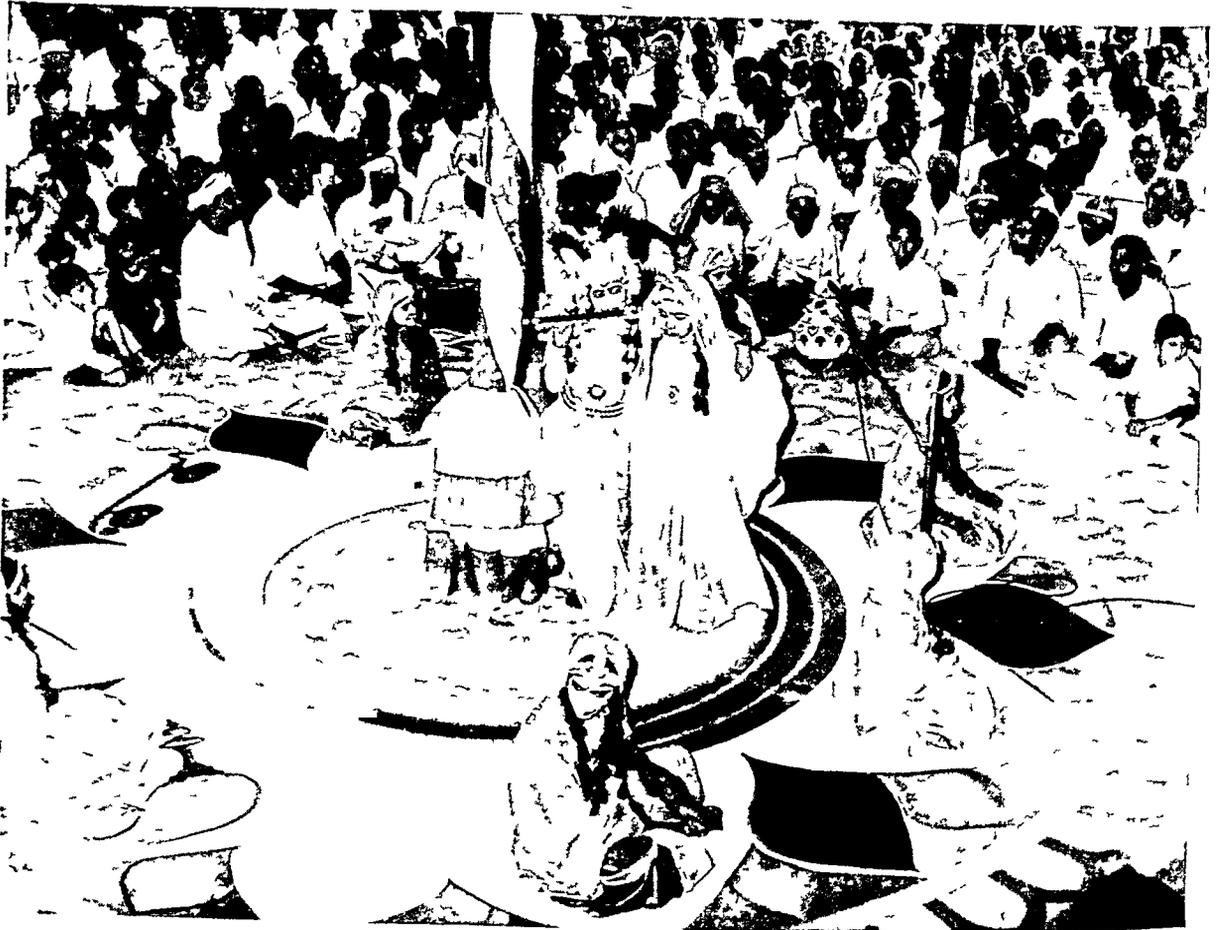
डाँडिया नृत्यके लिये प्रस्तुत स्वरूप एवं उत्सुक दर्शक

भुजाएँ उठती

रस का प्रवाह फूट पड़ता

सब उन्मत्त हो नाच उठते—स्मृतिपथमे रहता—राधे राधे राधे राधे......

श्रीराधाष्टमी नगर संकीर्तनका नेतृत्व करते हुए

राधिका रमण कञ्जुज नयन नन्दनन्दन नाथ हे।
गोपिका प्राण मन्मथ मथन, विश्व रञ्जन कृष्ण हे॥

पर अब तो हम अभागोंके पास रह गयी है मात्र उनकी स्मृति ही। अवश्य ही यह उत्सव हमारे भाईजीद्वारा सञ्चालित एक परम्परा है—उनकी अभिलषित वस्तु है—उनकी रुचिका कार्य है। वे चाहते थे स्थान-स्थानपर, नगर-नगरमें इसका प्रचार-प्रसार हो और धूमधामसे श्रीराधा-प्राकट्यका उत्सव मनाया जाय।

आज यह उत्सव प्राणरहित हो गया है—भाईजीकी मूर्त उपस्थितिके अभावमें उत्सवकी प्रत्येक सज्जा, प्रत्येक अङ्ग अपूर्ण है। हर्ष और उल्लासके स्थानपर हैं अश्रु और क्रन्दन। सज्जाके सौन्दर्यसे कसक बिखर रही है—गायकके कण्ठमें रुदनका स्वर फूट रहा है, वाद्य-यन्त्रोंसे पीडा झंकृत हो रही है—मञ्चका सूनापन मन-प्राणोंको वेध रहा है। आँखें ढूँढ रही हैं एक और केवल एकको—उनको जो उत्सवके प्राण थे, सर्वस्व थे। पर हाय रे! वे ही अदृश्य हो चुके हैं। जो सबके अपने थे, वे ही चले गये। रह-रहकर मनमें आता है—भाईजीकी रुचिके अनुरूप हम चल सकें। यही तो हमारा लक्ष्य है—और यह उत्सव भाईजीकी रुचिका ही प्रतीक है। उनकी चलायी हुई परम्पराका निर्वाह ही हमारे जीवनका केन्द्र-विन्दु बना रहना चाहिये। साथ ही यह भी नितान्त सत्य है कि भाईजी आज भी इस उत्सवमें पधारकर हमपर कृपाकी वर्षा करते ही हैं।

× × ×

श्रीराधाजीका सम्बन्ध लौकिक लीलासे कम रहा। भगवान्‌की ह्लादिनी—आनन्दरूपा निजशक्ति होनेके कारण उनका श्रीकृष्ण-आनन्द-विधानसे ही विशेष सम्बन्ध रहा, अत जैसे भगवान् श्रीकृष्णकी विभिन्न रूपोंमें तथा विभिन्न भावोंमें सर्वत्र पूजा-उपासना हुई, उनका प्राकट्य-महोत्सव जैसे सर्वत्र मनाया जाने लगा, श्रीराधाजीका महोत्सव स्वाभाविक ही उस प्रकार नहीं मनाया गया। परंतु भगवत्प्रेमके उच्चतम साधनराज्यमें तो श्रीराधाजीके दिव्य आदर्शको सामने रखनेकी परम अनिवार्य आवश्यकता है ही, विश्वजगत्‌के मानवप्राणीके लिये भी पारस्परिक प्रेमकी वृद्धिके हेतु जिस त्यागकी आवश्यकता है और जिसके बिना प्रेम एक केवल मोहका पर्यायवाची बना रहता है, वह त्याग भी राधाजीके परम त्यागमय जीवनको आदर्श मानकर चलनेसे शीघ्र सिद्ध हो सकता है। इसके लिये श्रीराधाजीके दिव्य प्रेमका, दिव्य भावोंका, उनके महान् त्यागका, उनकी दिव्य जीवनचर्याका और उनके स्वरूप-तत्त्वका स्मरण परम आवश्यक है और इसी महान् उद्देश्यको लेकर हमारे परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन श्रीभाईजीने लगभग ३० वर्ष पूर्व प्राचीन परम्परागत राधा-जन्म-महोत्सवको देशभरमें व्यापकरूप देने, उनकी महान् शिक्षाके प्रचार-प्रसारके द्वारा क्षुद्र 'स्व'की सेवामें लगे हुए और पशुता तथा असुरताकी ओर जाते हुए एवं अधोगामी मनुष्यको ऊपर उठाकर उसको वास्तविक मानव बनाने तथा साधनाके उच्च स्तरपर पहुँचानेके लिये इस आयोजनका एक महोत्सवके रूपमें अपने यहाँ प्रारम्भ किया था। भगवान् श्रीराधामाधवकी कृपासे इस आयोजनमें उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त होती गयी और यह आयोजन एक साधनाके विशाल बोधिवृक्षके रूपमें परिणत हो गया। इतना ही नहीं, यहाँके महोत्सवसे प्रेरणा ग्रहणकर तथा 'कल्याण'में प्रकाशित इन महोत्सवोंपर दिये गये परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके अनुभूतिपूर्ण, सारगर्भित प्रवचनोंसे प्रभावित होकर देशके कोने-कोनेमें श्रीराधारानीका यह प्राकट्य-उत्सव मनाया जाने लगा है। इसकी व्यापकता दिन-प्रतिदिन बढ रही है। परिणामस्वरूप श्रीराधारानी तथा श्रीगोपाङ्गनाओंके सम्बन्धमें फैले हुए मोहजनित दुर्भावोंका नाश होकर उनके परमोच्च दिव्य जीवनकी भी झाँकी कहीं-कहीं होने लगी है। आध्यात्मिक जगत् परमश्रद्धेय श्रीभाईजीके इस परम पावन प्रयासके प्रति सदा ऋणी रहेगा।

प्रतिवर्षकी परम्पराके अनुसार इस वर्ष भी श्रीराधाष्टमी-महोत्सव बड़े ही समारोह एवं उत्साहके साथ मनाया गया, यद्यपि श्रीभाईजीके वियोगजन्य दुःखकी छाया उसपर अवश्य थी। श्रीभाईजी अमूर्तरूपसे उत्सवमें सम्मिलित रहे। श्रीराधारानीने चाहा तो आगे भी प्रतिवर्ष श्रीराधा-जन्म-महोत्सव गोरखपुरमें इसी प्रकार मनाया जाता रहेगा। हमारी श्रीराधारानीके भक्तोंसे विनम्र प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानपर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूपमें प्रतिवर्ष इस महोत्सवका आयोजन करें और श्रीराधारानीकी कृपा प्राप्त करें। साथ ही परमभागवत श्रीभाईजीद्वारा प्रचालित साधना-जगत्‌की एक महती परम्पराको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें अपना सहयोग प्रदानकर पुण्यके भागी बनें।

श्रीभगवन्नाम-प्रचार

श्रीमुकुन्द गोस्वामी

श्रीभगवन्नामपर श्रीभाईजीकी रुचि जीवनकालके प्रारम्भसे ही थी। आस्तिक परिवारमें जन्मग्रहण करनेसे तथा दादी रामकौर देवीकी शिक्षाओंके कारण वे बाल्यकालसे ही भगवन्नामका जप किया करते थे। फलतः बाल्य जीवनमें उन्हें नामजपकी महिमाके चमत्कारोंके दर्शन भी यदा-कदा होते थे।

सन् १९१६में क्रान्तिकारी दलकी प्रवृत्तियोंमें सहयोग देनेके कारण जब तत्कालीन अंग्रेजी सरकारने उन्हें अचानक ही बंदी बनाकर कलकत्तेके डुलण्डा हाउस-स्थित अलीपुर जेलमें बंद कर दिया, तब एक बार उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया।

श्रीभाईजीने वहाँ 'हरे राम ' के षोडशनामात्मक महामन्त्रका जप प्रारम्भ कर दिया और तत्काल ही उन्हें शान्ति-लाभ हो गया। निराशाके बादल हट गये, हृदयमें शान्ति, आनन्द तथा भगवद्विश्वासकी ज्योति जगमगाने लगी।

अलीपुर जेलसे श्रीभाईजी शिमलापाल नामक बंगाल प्रान्तके एक छोटे-से गाँवमें नजरबंदके रूपमें स्थानान्तरित कर दिये गये। शिमलापालके अपने २१ माहके बंदी-जीवनमें भी उनकी नामजपकी साधना चलती रही। इस समय नामजपके प्रति उनकी रुचि इतनी अधिक बढ़ी कि जब कोई व्यक्ति उनसे मिलने आता, तब उन्हें ऐसा लगता मानो कोई 'बाधा' आ गयी हो। वे सोचते कि व्यवहारके नाते उन्हें उससे कुछ बातचीत करनी पड़ेगी तथा उतने समय मुखसे नामजप छूट जायगा, जो उन्हें असह्य था। शिमलापालमें नामजपके फलस्वरूप श्रीभाईजीके अनेकों संकट टले, प्रतिकूलता अनुकूलतामें परिवर्तित हो गयी तथा ध्यानयोगमें सुदृढ़ स्थिति प्राप्त हो गयी।

आगे बम्बईके प्रवासकालमें श्रीभाईजीका परिचय 'रामनामके आढ़तिया' श्रीबालूरामजीसे हुआ। श्रीभाईजीसे उनका परिचय शीघ्र ही प्रगाढ़ आत्मीयताके रूपमें परिणत हो गया और ऐसे नाम-प्रेमी एवं भगवद्विश्वासीका सम्पर्क श्रीभाईजीको स्वाभाविक ही रुचिकर हुआ।

सत्सङ्गमें श्रीभाईजीने भगवन्नाम-जपके साधनपर ही सर्वाधिक बल दिया। उनका कहना था—'भगवान्के मङ्गलमय नामसे ऐसा कौन-सा कार्य है, जो सिद्ध नहीं हो सकता, ऐसा कौन-सा महापाप है, जिसका नाश नहीं हो सकता, ऐसी कौन-सी परम गति या मुक्ति है, जो नामसे नहीं मिलती? परन्तु विचारनेकी बात तो यह है कि नामका उपयोग कहाँ करना चाहिये। क्या नाम ऐसा तुच्छ पदार्थ है, जो केवल पापोंके धोनेमें ही लगाया जाय या इस लोक अथवा परलोककी किसी नाशवान् भोग्य वस्तुकी प्राप्तिके लिये उसका प्रयोग किया जाय? जो पाप प्रायश्चित्तसे या सत्कर्मोंसे नाश हो सकते हैं, जो क्षणभङ्गुर भोग्य पदार्थ पुण्यबलसे मिल सकते हैं, उनके लिये नामका प्रयोग करना चमकीले पत्थरोंके लिये महारत्न दे देनेके समान मूर्खताका कार्य है। भगवन्नाम तो प्यारी-से-प्यारी वस्तु है। उसके जपसे नामरूपी बड़े-से-बड़े आदरणीय अतिथि हमारे जिह्वाद्वारसे आकर उपस्थित होते हैं, जिनकी चरणरज मस्तकपर चढ़ानी चाहिये। ऐसे परम पूजनीय अतिथिसे झाड़ू दिलवाकर घरका मैला साफ करवाना क्या बुद्धिमानीका काम है? क्या यह हीनता नहीं है? जिसके स्वागतके लिये सब जगहकी सफाई और सजावट करनी चाहिये, उसीसे घरका आँगन साफ करवाना क्या नीचापन नहीं है? यदि है तो फिर नामका प्रयोग पापोंके नाशमें नहीं करना चाहिये।'

श्रीभाईजीकी नाम-प्रीतिने जगत्के जीवोको भी नाम-परायण होकर भगवत्प्रीतिके परम लाभसे लाभान्वित होनेकी प्रेरणा देनेको प्रेरित किया। समाजमे भी नाम-प्रचारकी योजना वनी। स० १९७९मे सर्वप्रथम जपयज्ञका श्रीगणेश हुआ, जिसकी पूर्णाहुति होलीके अवसरपर हुई। जपयज्ञका समापन-समारोह वडे उत्साहसे मनाया गया, जिसमे ब्राह्मण-भोजन, भजन-कीर्तन आदिका आयोजन हुआ। जपयज्ञके फलस्वरूप हजारो व्यक्ति नाम-परायण हो गये। कुछ मासके नियमित जपसे उनको नामके अद्भुत प्रभावका अनुभव हो गया तथा उन्होने नामजपको अपनी दैनिक साधनाका प्रधान अङ्ग वना लिया। आगे चलकर इसी जपयज्ञकी आयोजना प्रतिवर्ष नियमित रूपसे होने लगी।

स० १९८३मे 'कल्याण'का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। 'कल्याण'के माध्यमसे माघ स० १९८३मे प्रकाशित उसके प्रथम वर्षके ७वे अङ्कमे उसी वर्षकी फाल्गुन पूर्णिमातक अर्थात् २ मासके अल्प समयमे षोडश-मन्त्रके साढे तीन करोड नामजप करनेकी प्रार्थना श्रीभाईजीने 'कल्याण'के प्रेमी पाठक-पाठिकाओसे की। सच्चे नाम-प्रेमीकी प्रार्थनाका अद्भुत प्रभाव होना ही था। 'कल्याण'-प्रेमियोने नामजपमे इतना उत्साह प्रदर्शित किया कि साढे तीन करोड मन्त्र-जपके स्थानपर लगभग पैंतीस करोड मन्त्रोका जप हुआ। इसके पश्चात् तो श्रीभाईजी नाम-प्रचारपर तुल गये और उन्होने 'कल्याण'का प्रथम विशेषाङ्क ही (श्रावण, १९८४ वि०मे) 'श्रीभगवन्नामाङ्क' प्रकाशित किया, जिसमे नाम-महिमापर शास्त्रके वचन एव सतोके अनुभवपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। इस अङ्कके पठन-मननसे सहस्रो व्यक्ति नाम-परायण हुए। इसके अनन्तर श्रीभाईजी प्रतिवर्ष 'कल्याण'मे नाम-जपके लिये प्रार्थना प्रकाशित करने लगे, जिसका देशके कोने-कोनेमे ही नही, अपितु विदेशोतकमे आदर तथा पालन होता। फलस्वरूप करोडोकी सख्यामे प्रतिवर्ष नामजप होने लगा, जो अबतक भी हो रहा है।

'कल्याण'मे भगवन्नाम-जपकी प्रार्थना प्रकाशित कर लोगोको नामपरायण करनेके प्रयासका देशके सभी सत-महात्माओ, विद्वानो एव धार्मिक प्रवृत्तिके जननेताओने हार्दिक स्वागत किया। महात्मा गाधीजी भी रामनामके पुजारी थे तथा उन्होने भी श्रीभाईजीके इस नाम-प्रचारकी प्रशसा की।

श्रीभाईजी इस नामजप-प्रचार-यज्ञको कलिकालमे जीवोके उद्धारका एकमात्र सुलभ, सरल एव सर्वोत्कृष्ट साधन मानकर किये जा रहे थे। उनके नाम-प्रचार-कार्यसे प्रसन्न होकर तथा श्रीभाईजीको अपने आदेशसे जीवनपर्यन्त इस कार्यमे प्रवृत्त करानेके उद्देश्यसे गोरखपुरस्थित कान्तिवावूके वगीचेमे आश्विन शुक्ला १२, स० १९८४ वि०, तदनुसार दिनाङ्क ८ अक्तूवर, १९२७को दिनके १२ वजे साक्षात् दर्शन देकर भगवान्ने आदेश दिया कि 'जगत्का कुछ भला करना हो तो भेद छोडकर मेरे नामका प्रचार कर। लोगोसे कह दे कि इस कालमे नामसे ही सब कुछ हो जायगा। भविष्यमे होनेवाले मेरे अवतारमे मेरा नाम-प्रचार ही हेतु होगा। जो लोग मेरे नामका सहारा लेकर पापको आश्रय देते है, उनको सावधान कर कि उनकी शुद्धि यमराज भी नही कर सकता।'

साक्षात् भगवदादेशको शिरोधार्य कर श्रीभाईजी नाम-प्रचार-कार्यमे प्राणपणसे प्रवृत्त हो गये।

जसीडीहमे श्रीभाईजीको भगवद्दर्शन तथा गोरखपुरमे भगवन्नाम-प्रचारकी भगवदाज्ञाका सवाद ज्यो-ज्यो विभिन्न शहरोमे वसे भाईजीके प्रेमी भगवदनुरागी सज्जनोको प्राप्त होने लगा, त्यो-ही-त्यो विभिन्न स्थानोसे उन्हे भगवन्नामके प्रचारहेतु पधारनेका प्रेम तथा आग्रहयुक्त निमन्त्रण प्राप्त होने लगा। प्रेमी भक्तोका प्रवल आग्रह देखकर कलकत्ते तथा आसाम-प्रान्तके स्थानोमे जाकर भगवन्नाम-जप एव सकीर्तनके प्रचार करनेकी प्रार्थना श्रीभाईजीने स्वीकार कर ली। श्रीभाईजीकी भगवन्नाम-प्रचार-यात्राका सवाद जानकर अनेक प्रेमी भक्त उनके साथ चलनेको प्रस्तुत हो गये। गोरखपुरसे कलकत्तेके लिये १६ सकीर्तन-प्रेमियोकी मण्डलीने मार्गशीर्ष कृष्णा १० स० १९८४ वि०को प्रस्थान किया। कलकत्तेके दो दिनोके प्रवासकालमे भाईजीका अधिकाश समय भगवन्नाम-सकीर्तन तथा नाममहिमा-प्रवचनमे ही व्यतीत हुआ।

श्रीभाईजी श्रीभगवन्नाम-जपके सम्बन्धमे कहते थे—"मै भगवान्‌के नामपर जोर क्यो देता हूँ? इसका कारण यही है कि मैंने जीवनभर यही किया है। जो कुछ भी अच्छी बात जीवनमे आयी है, वह नामजप एव भगवत्कृपाके प्रतापसे। पारमार्थिक जीवनका प्रारम्भ नामजपसे हुआ और जीवनमे साधना भी इसीकी हुई।

"मै नाम-महिमाको अर्थवाद नही मानता हूँ। मैने नामजपसे बहुत बडे-बडे कार्य सफल होते देखे हैं और स्वय मेरे जीवनमे हुए हैं। नामकी जो महिमा कही जाती है, वह सत्य है और अनुभवकी वस्तु है। अत इसे बलपूर्वक कहनेमे कोई सकोच नही।"

जो वाणी सत्यकी अनुभूतिसे प्राणान्वित होती है, उसका श्रोताओपर तत्काल प्रभाव होता है। श्रीभाईजीकी सत्य-समन्वित वाणीने सहस्रो लोगोमे नाम-प्रेमकी ज्योति जगा दी, जिसके फलस्वरूप उनके जीवनकी धारा भगवान्‌की ओर प्रवाहित हो उठी।

मार्गशीर्ष कृष्णा १२ सवत् १९८४ वि०को श्रीभाईजी अपनी सकीर्तन-मण्डलीके सहित आसामकी यात्राके लिये रवाना हो गये।

श्रीभाईजीके साथ नाम-सकीर्तन-प्रचार-मण्डल नलवाडी, गौहाटी आदि स्थानोमे प्रेमीभक्तोके घरोमे, सार्वजनिक स्थानोपर तथा शहरकी गलियो, सडको तथा बाजारोमे एव स्टेशनके प्लेटफार्मो एव यात्राके समय रेलगाडीके डिब्बेमे सर्वत्र भगवन्नामकी मधुर ध्वनिसे वातावरणको पवित्र बनाता रहा। जगह-जगह श्रीभाईजीकी सलाह तथा प्रार्थना मानकर अनेक लोगोने भगवन्नामजपका नियम ग्रहण किया तथा दुर्गुणोके त्यागका सकल्प लिया। मार्गशीर्ष कृष्ण ३० सवत् १९८४ वि०को प्रात श्रीभाईजी अपनी मण्डलीके साथ अपनी प्रिय जन्म-भूमि शिलगके लिये रवाने हुए।

शिलगमे सत्सङ्गके लिये एकत्रित प्रेमीजनोके समूहमे प्रवचन करते हुए श्रीभाईजीने कहा—"शिलग आनेपर मेरे हृदयमे नये-नये भाव उत्पन्न हो रहे है, क्योकि यह मेरी जन्म-भूमि है। मैं यहाँ केवल एक सदेश लेकर आया हूँ और वह है 'श्रीभगवन्नाम'। शास्त्रोका कथन है, महापुरुषोका उपदेश है, अनेको बडे-बडे महात्माओके अनुभव है श्रीभगवान्‌की दिव्य वाणी है और मेरा विश्वास तथा अनुभव है। वर्तमान समयके देशके सबसे बडे दो नेता—महात्मा गाधी तथा महामना मालवीयजी भगवन्नामके बडे भक्त है। रामनामके सम्बन्धमे किसी प्रमाणकी कोई आवश्यकता ही नही है। इस घोर कलिकालमे नामके समान अन्य कोई सहारा नही।"

शिलगसे गौहाटी, तिनसुकिया, डिबरूगढ, शिवसागर, नौगाँव आदि स्थानोमे भगवन्नाम-सकीर्तनकी पावन मन्दाकिनी बहाते हुए तथा भगवन्नाम-जपकी महिमापर प्रकाश डालते हुए अपनी आसाम-प्रान्तकी यात्रा समाप्तकर श्रीभाईजी अपने कीर्तनमण्डलसहित कलकत्ता लौट आये।

श्रीभाईजीकी यह नाम-साधना जीवनभर चलती रही। मन्त्र भी उन्होने परिवर्तित नही किया। जीवनभर षोडशमन्त्रका जप करते रहे। वर्तमान समयके लिये भगवन्नाम-स्मरणको ही श्रीभाईजी एकमात्र साधन मानते थे। एक स्थानपर उन्होने लिखा है—'इस समय नामके सिवा ससारसागरसे पार कर देनेवाला दूसरा कोई भी सहज साधन मुझे दृष्टिगोचर नही होता मैं भगवन्नामकी महिमा क्या लिखूँ? मैं तो नामका जिलाया जी रहा हूँ।' श्रीभाईजीका अनुभव था कि भगवन्नामकी साधनामे भगवान्‌की सहायता बराबर मिलती रहती है। नाम-साधनामे लगे एक सन्यासी महात्माको आश्वस्त करते हुए उन्होने कहा था—'भगवान् भले ही दूसरी प्रार्थना सुननेमे थोडी देर भी कर दे, पर यदि कोई सचमुच चाहे कि उसके द्वारा निरन्तर नामजप हो और इसके लिये वह भगवान्‌से प्रार्थना करे तो यह प्रार्थना निश्चय ही तत्क्षण पूरी हो जायगी।'

श्रीभाईजीने स० २०२४ वि० मे एक बार अपने प्रवचनमे कहा था—'भगवन्नामके अनुभव मैं क्या बताऊँ? जीवनमे जो कुछ भी अच्छापन है, वह केवल भगवन्नाम और भगवत्कृपाकी महिमा है। बाकी सारी बुराई मेरी

है। मैं सच कहता हूँ, मेरे पास अगर कोई धन है तो भगवन्नाम और भगवत्कृपाका। इसका मुझे अभिमान है। अभिमान होना नही चाहिये, पर अभिमान है कि मुझपर भगवान्की अनन्त कृपा बरस रही है। यह मुझे निरन्तर भान होता है, आजसे नही, बहुत पहलेसे ऐसा भान होता है कि मुझपर भगवान्की अनन्त कृपा बरस रही है। तुलसीदासजीके एक पदकी अन्तिम दो पक्तियोको मैने अपने जीवनमे बहुत अच्छा समझा और उसको उतारनेकी चेष्टा की—

सकल अग पद बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है।
है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है॥

"सारे अङ्ग, हे नाथ! आपके चरणोसे विमुख है। केवल जीभने नामकी ओट ले रखी है और एक ही विश्वास है—'प्रभु-मूरति कृपामई है'।" बडे-बडे सकट आये—सकटोकी अवधि नही। जिस समय पकडा गया, उस समय घरपर बडा सकट था। उसके बाद एक व्यापारमे घाटा लगा, उसका बडा सकट था। एक बार हमारे कुछ दोस्तोने एक कान्स्पिरेसी (षड्यन्त्र) की और एक बहुत बडे निन्दनीय अपराधमे फँसाना चाहा। बिलकुल झूठी चीज थी। उसमे भी भगवान्की कृपाने बचाया। आप सबको अपने अनुभवके रूपमे केवल दो ही बाते मै कह सकता हूँ—एक तो भगवत्कृपापर विश्वास और एक भगवन्नामका आश्रय। उसके सिवा न बुद्धि है, न विद्या है, न कला है। मै कुछ नही जानता। साहित्यका मुझे क्या पता? मै लिखा-पढा नहीं, परतु सभी जगह बडे-बडे साहित्यिक लोगोने मुझपर कृपा की। हिदुस्तानके मूर्धन्य बडे-बडे लेखकोका 'कल्याण'मे सहयोग मिला। श्रीविष्णु दिगम्बर-सरीखे महान् सगीताचार्य मुझे सगीत सिखानेके लिये महीनोतक घरपर आये, पर मै अभागा कि नहीं सीखा। इतना उनका प्रेम मेरे प्रति था। देशके बडे-बडे मूर्धन्य व्यक्ति, जैसे मालवीयजी (लोग मालवीयजीको पण्डितजी कहते थे, परतु मै उनको 'बाबूजी' ही कहा करता था), उन मालवीयजीके परिवारका मै था। गाधीजीने मुझे अपने परिवारका माना। श्रीअरविन्दके साथ मेरा सम्बन्ध रहा। मेरे अयोग्य होते हुए भी क्यो इतनी बाते हुई? मैने अनुभव किया, मेरी अयोग्यताकी अपेक्षा भगवान्की कृपा कही अधिक बडी शक्ति रखती है और वह कृपा मुझपर निरन्तर बरसती रहती है। उस कृपाके भरोसे मुझे अशान्तिके स्थानपर शान्ति मिली। दुख और निराशा जहाँ चारो ओर मँडरा जाते, ऐसी अवस्थामे मुझे आशा मिली, विषादसे निकलनेका पवित्र और सरल मार्ग मिला। और यह सब हुआ केवल भगवत्कृपा और भगवन्नामसे।"

श्रीभाईजी तो अपने सत्सङ्गमे नामजपके महत्वपर सदैव प्रकाश डाला ही करते थे, व्यक्तिगतरूपसे साधना पूछनेवालोको भी वे नामजपकी साधना अवश्य बताते थे। तुलसीदासजीकी ये पक्तियाँ उन्हे अत्यन्त प्रिय थी—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबही आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

कोई भले ही अपनेको कितना ही पापी, अपराधी बताता, श्रीभाईजी उसे प्रेमपूर्वक नामजपकी सलाह देते तथा कहते कि 'जितनी शक्ति भगवन्नाममे पाप-नाशकी तथा कल्याण करनेकी सनिहित है, उतनी शक्ति पापोके समूहमे नही, उनके इस आश्वासनसे प्रेरणा प्राप्तकर अनेको पापमग्न जीवोकी नामजपमे प्रवृत्ति हुई तथा उनके जीवनमे आमूलचूल परिवर्तन हो गया।

श्रीभाईजी जहाँ-कहीं जाते, भगवन्नाम-संकीर्तनका आयोजन अवश्य होता। उनके रतनगढ़-प्रवासकालमें उद्दण्ड नाम-संकीर्तन तथा सत-समारोहके मधुर पावन प्रसङ्गोंकी स्मृति वहाँकी जनता कभी नहीं भुला सकती। गोरखपुरमें उनके निवासस्थान गीतावाटिकामें वर्षव्यापी अखण्ड नाम-संकीर्तन-यज्ञका आयोजन (सन् १९३६में)अत्यन्त ही भगवत्प्रीतिवर्धक एवं उल्लासपूर्ण रीतिसे सम्पन्न हुआ था। उनसे प्रेरणा प्राप्तकर अनेकों गृहस्थ, विरक्त, आबाल-वृद्ध नर-नारियोंने भगवन्नाम-जपका व्रत ग्रहण किया तथा उससे लाभान्वित हुए। उनके ही प्रेमपूर्ण आग्रहको मानकर उनके निकटस्थ बाबा चक्रधरजी प्रतिदिन तीन लाख नामजपका व्रत वर्षोंतक अखण्डरूपसे पालन करते रहे। श्रीभाईजीके जीवनकालके अन्तिम वर्षोंमें उनके निवासस्थान गीतावाटिकामें अखण्ड मधुर 'हरे राम' नामका संकीर्तन होता रहा तथा वे बड़े ही मनोयोगसे उसे सुना करते थे। वे अपने सत्सङ्गमें कहा करते थे—'गीतावाटिकामें इस समय एक ही सर्वोत्तम बात हो रही है और वह है—अखण्ड भगवन्नाम-संकीर्तन।' यह नाम-संकीर्तन उनके जीवनके अन्तिम क्षणतक होता रहा तथा आज भी हो रहा है। उनके निर्देशनमें मनाये जानेवाले श्रीराधाजन्म-महामहोत्सवके आयोजनमें जो प्रतिवर्ष गीतावाटिकामें सम्पन्न होता रहा, नाम-संकीर्तन एक विशेष महत्त्व रखता था। यह उद्दाम नाम-संकीर्तन श्रीराधाष्टमीके दिन तथा उससे अगले दिन मनाये जानेवाले दधिकर्दमोत्सवके दिन भी किया जाता। उसमें भाव-विभोर होकर नाचने लग जानेवाले तथा बैठे रहकर ही कीर्तन करनेवाले सहस्रों आबाल-वृद्ध नर-नारियोंको घटोंतक जगत्‌की विस्मृति होकर सर्वथा एक अभिनव भवव्रमकी अनुभूति होती। इस उद्दाम नाम-संकीर्तनका दृश्य विलक्षण ही होता। कहीं कोई उदरपर्यन्त लंबी श्वेत दाढ़ीवाला वृद्ध पुरुष देह-ज्ञान भूलकर नृत्यपरायण हो रहा है तो कहीं युवक, किशोर एवं अल्पवयस्क बालक अपनी सुधि भूलकर उन्मत्तसे बने नाच रहे हैं। इस कीर्तनमें सम्मिलित लोग आयु, वर्ग शिक्षा, सम्पन्नता तथा पदके समस्त भेदोंको भूलकर एक साथ भगवन्नामका अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे उच्चारण करते हुए नाचते थे। उद्दाम संकीर्तनमें नाचनेवाले व्यक्तियोंमें ऊँची-से-ऊँची डिग्री-प्राप्त शिक्षित वर्ग भी होता तथा अक्षर-ज्ञान-शून्य भावुक लोग भी होते, बड़े-बड़े धनपति भी होते तथा परम अकिंचन एवं मध्यवित्तीय स्थितिके लोग भी। उच्च न्यायालयके जज प्रोफेसर, डाक्टर तथा राज्य-अधिकारी लोग भी होते तथा साधारण ग्रामीण लोग भी। ऐसी विभिन्न योग्यता, पद, वर्ग तथा रुचिके लोगोंको एक ही स्तरपर भेद-ज्ञान-शून्य बनाकर भगवान्‌के पावन नामोंका उच्चारण करवाते हुए जगत्‌की विस्मृति कराके नचा देनेकी सामर्थ्य श्रीभाईजी-जैसे लोकोत्तर महापुरुषमें ही थी।

ऐसे भावपूर्ण दृश्य देखकर श्रीभाईजीको 'अभिनव चैतन्य'के नामसे पुकारनेको जी चाहता था। वे भगवन्नाम-प्रीतिके साक्षात् विग्रह थे। वे स्वयं अन्तिम श्वासतक नाम-जप करते रहे तथा असंख्य लोगोंको नाम-परायण बनाया। उनका कथन था—'प्रेमपूर्वक किये गये नाम-जपकी महिमा तो अपार है ही, लेकिन यदि कोई अनजाने भूलसे किसीके आग्रहको मानकर या अवहेलनासे ही एक बार भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, उसका भी उद्धार हो जायेगा। सूअरके द्वारा आहत होनेपर एक यवनके मुखसे मरते समय जो गाली निकली —'हराम' उसमें भी 'राम' शब्दके निकलनेसे उसकी मुक्ति हो गयी। इस कथाको अपने विश्वासके साथ वर्णन करते-करते श्रीभाईजी एक बार भावावेशमें देह-ज्ञानशून्य हो गये थे तथा कई घंटों बाद बाह्य चेतना प्राप्त हुई। उस देह-ज्ञानशून्य अवस्थामें उन्हें भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए। यह प्रसङ्ग विस्तारसहित अन्यत्र दिया गया है।

श्रीभाईजीका नाम-प्रेम अपूर्व था। वे सबको सदैव दो ही बातें बताते थे—भगवन्नामका आश्रय तथा भगवत्कृपापर विश्वास। श्रीभाईजीके पुण्यस्मरणसे इस पावनकालमें हमें भी चाहिये कि हम भगवन्नाम-जपका व्रत ले।

●
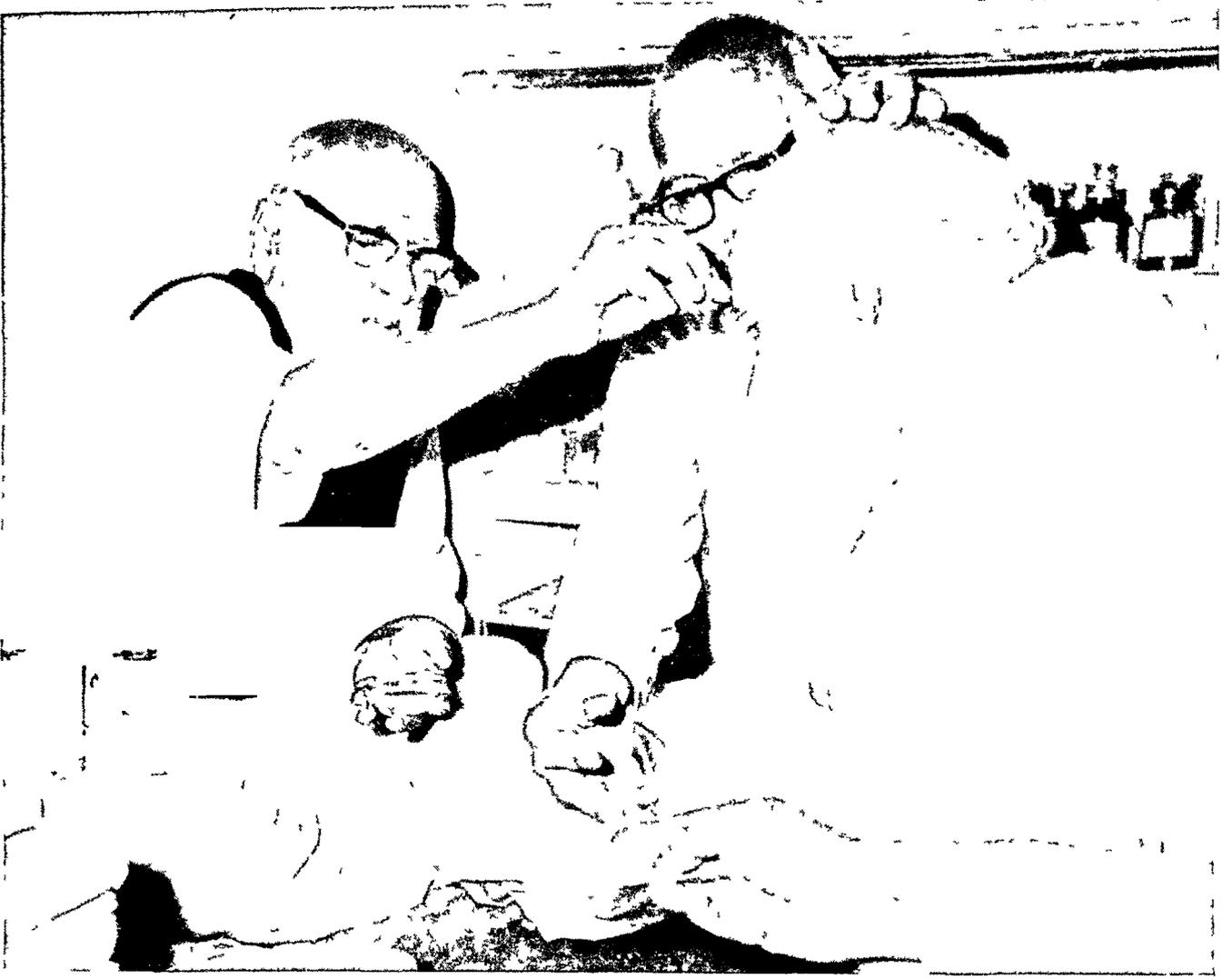
आदर्श ब्रह्मण्यता
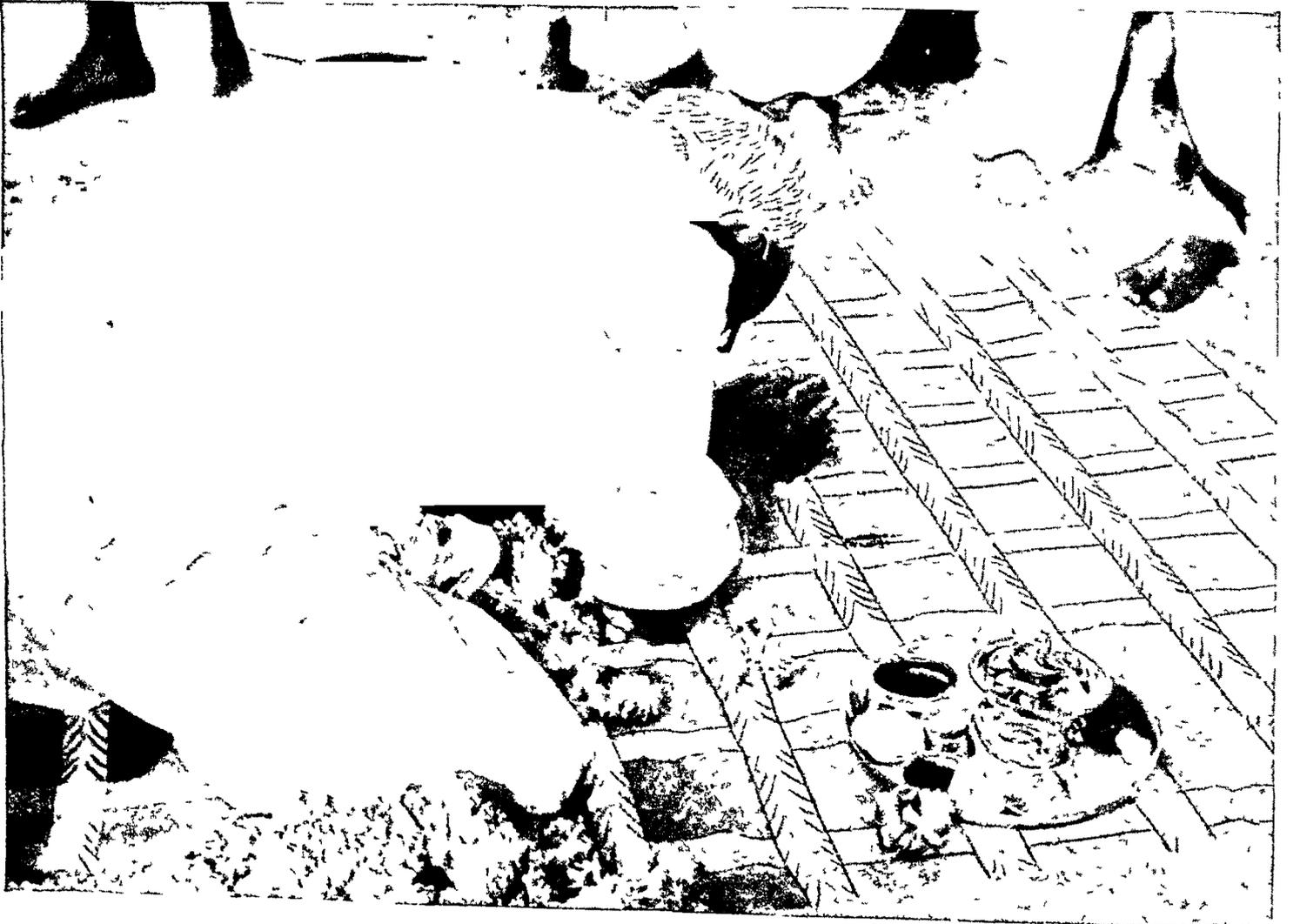
सीयराममय सब जग जानी करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी
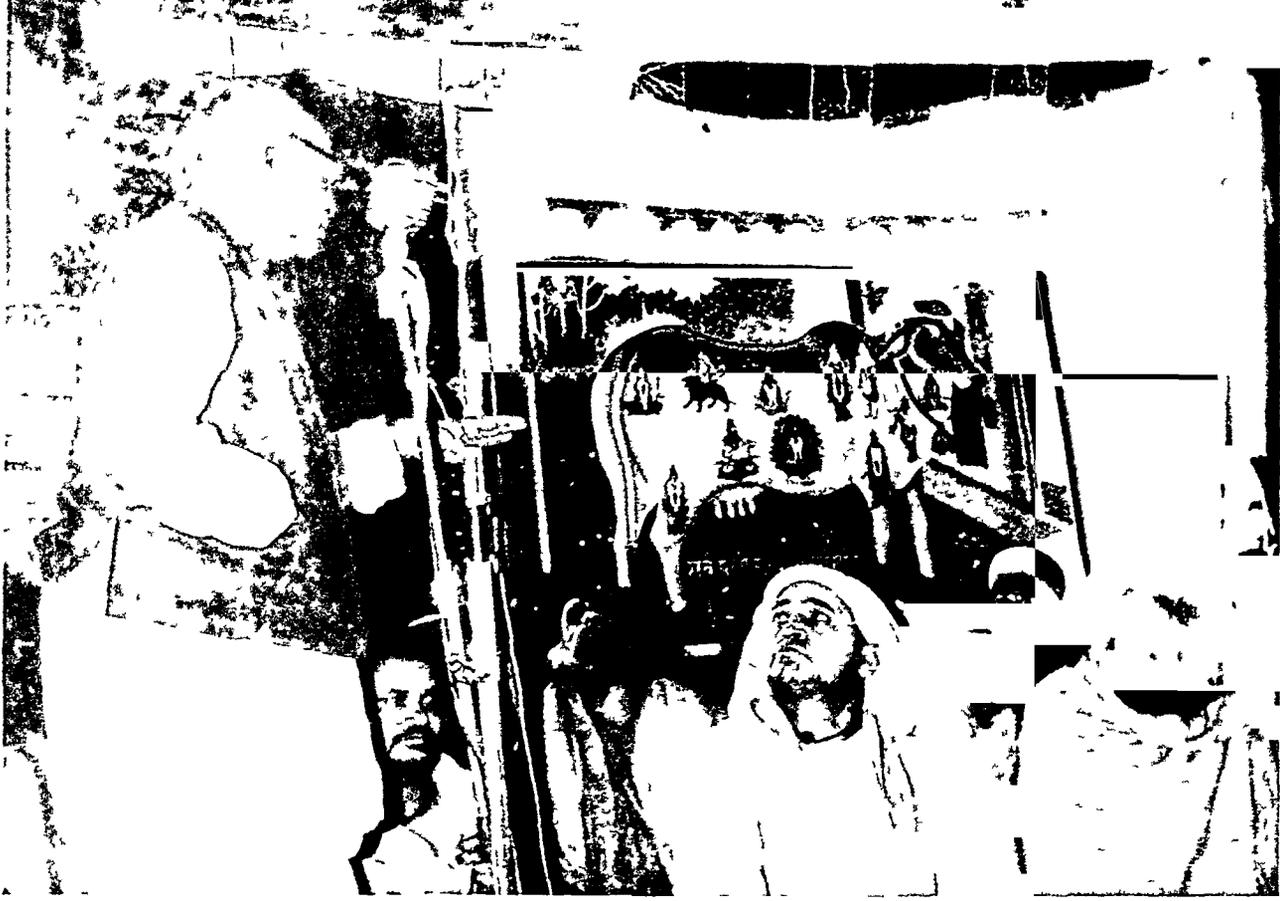
गोरक्षा महाभियान समितिके प्रमुख संचालक

गोरक्षार्थ आमरण अनशनव्रती महात्माके समीप विचारमग्न

गोरक्षा-आन्दोलनके प्राण—भाईजी

श्रीविश्वम्भरप्रसादजी शर्मा
मन्त्री—गोरक्षा महाभियान समिति, दिल्ली

श्रद्धेय श्रीभाईजी देशकी एक विभूति थे। उनका जन्म ही लोककल्याण तथा धर्म और संस्कृतिके उन्नयनके लिये हुआ था। गोमाताकी रक्षा एवं संवर्धनमें श्रीभाईजीका योगदान विशेष महत्त्वपूर्ण है। श्रीभाईजीके रोम-रोममें गोभक्ति समायी हुई थी। स्वराज्य होनेके बाद भी भारतवर्षमें गोहत्याका कलङ्क न मिटनेसे उनका हृदय अत्यन्त दुःखी था। यद्यपि भाईजी संत-पुरुष थे, किसी प्रकारके संघर्ष और आन्दोलन या राजनीतिक वितण्डावादमें उनकी कभी रुचि नहीं रही, परंतु गोहत्याके कलङ्कके निवारणार्थ वे चाहते थे कि गोभक्त लोग अधिक-से-अधिक बलिदान करें। उन्होंने अपने एक लेखमें लिखा था कि—"भारतवर्ष ऋषि-मुनियोंकी भूमि और धर्मका क्षेत्र है। यहाँ गोहत्याकी कल्पना नहीं होनी चाहिये। यहाँ आज भारतीयोंकी स्वतन्त्र सरकार होनेपर भी भारतवासी अत्यन्त दुःखपूर्ण हृदयसे प्रतिदिन लगभग ३० हजार गौओंकी नृशंस हत्या देख रहे हैं और सरकारसे इस महापापका परित्याग कर देनेके लिये अनुरोध कर रहे हैं। धर्मप्राण भारतमें गोहत्या-निवारणके लिये आन्दोलन करना तथा साधु-महात्माओंको जेल जाना और प्राणोत्सर्ग करना पड़ रहा है। यह वास्तवमें लज्जा और दुर्भाग्यकी बात है। महात्मा गांधीजीने कहा था कि 'मैं गोरक्षाको स्वराज्यसे भी बढ़कर मानता हूँ।' उन्हीं गांधीजीके देशमें और उन्हींके अनुयायी कहलानेवाले लोगोंके शासनमें अबाध-रूपसे गोहत्या चलती रहे और गोहत्याबंदीके लिये शान्तिमय आन्दोलन करने और बिना किसी उपद्रवके अपना प्राणोत्सर्ग करनेवाले साधु-महात्माओंके प्रति अवाञ्छनीय व्यवहार किया जाय, यह तो वास्तवमें हमारा घोर पतन है। मैं किसी भी राजनीतिक दलसे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। गोहत्याका पाप सदाके लिये बंद हो जाय, केवल इसी पवित्र उद्देश्यसे केन्द्रीय सरकारसे प्रार्थना करता हूँ कि वह शीघ्र ही संविधानमें उचित परिवर्तन, परिवर्धन करके केन्द्रद्वारा ही कानूनन सर्वथा गोवंशका वध बंद कर दे और अपने तथा देशके परमकल्याणमें कारण बने। अपनी-अपनी रुचि तथा शक्तिके अनुसार देशके सभी लोगोंको केन्द्रीय सरकारपर निर्दोष, परंतु प्रभावशाली ऐसा दबाव डालना चाहिये, जिससे सरकार आगामी गोपाष्टमीसे पहले-पहले सम्पूर्ण गोहत्याबंदीकी घोषणा कर दे।"

श्रीभाईजीने सन् १९६६-६७के गोरक्षा-आन्दोलनमें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। यों तो स्वराज्य-प्राप्तिके पश्चात् जब कभी गोहत्या-निवारणके लिये शान्तिमय सत्याग्रह-आन्दोलन हुआ, तभी श्रीभाईजीने उसमें सक्रिय सहयोग दिया। स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजद्वारा संचालित 'समस्त गोरक्षा सत्याग्रह आन्दोलन'में भी भाईजीका पूर्ण संरक्षण प्राप्त हुआ। गोलोकवासी लाला हरदेवसहायजीद्वारा संचालित गोहत्या-निरोध-आन्दोलनमें भी भाईजीका पूरा सहयोग मिला। सन् १९६६-६७के आन्दोलनमें भी श्रीभाईजीने पूर्ण मनोयोगसे भाग लिया और आन्दोलनका सम्पूर्ण आर्थिक उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया तथा उसका सुन्दर रूपमें निर्वाह किया। श्रीभाईजी आरम्भसे ही गोरक्षा-आन्दोलनको दृढ़ताके साथ चलाये जानेके पक्षमें थे और 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान-समिति'के संगठनके निर्माणमें उनका प्रमुख हाथ था। सन् १९६६में श्रद्धेय भाईजीके ऋषिकेशस्थित निवास-स्थानपर ही इस संगठनकी भूमिका तैयार की गयी थी और पूज्य स्वामी श्रीकरपात्रीजी तथा श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीको एक-दूसरेके साथ सम्पर्कमें लाने और इस संगठनको खड़ा करनेका श्रेय श्रीभाईजीको ही प्राप्त है। स्वास्थ्य अनुकूल न होनेपर भी आप 'सर्वदलीय गोरक्षा-महाभियान समिति'की बैठकोंमें भाग लेते रहे और उसके संचालनमें सहयोग देते रहे। आप अपने पत्रोंद्वारा बराबर आन्दोलनके संचालनमें प्रोत्साहन और मार्गदर्शन प्रदान करते रहे। आपने सरकारकी उपेक्षा-नीतिपर खेद व्यक्त करते हुए एक बार लिखा—"सरकारका चाहे जो रुख हो, आन्दोलनको जारी रखना ही उचित है। आगे चलकर सम्पूर्ण गोवंशकी हत्या तो बंद होगी ही, इस सरकारके सिरपर सदाके लिए कलङ्कका टीका लग जायगा। और जो पाप होगा, उसका फल तो बाध्य होकर इसके कर्णधारोंको भोगना ही पड़ेगा। गोरक्षा-समितिके संचालक यदि शिथिल होकर तपस्या छोड़ देंगे तो वे भी कर्त्तव्यच्युत ही होंगे। मङ्गलमय भगवान् सबको सद्बुद्धि दें—सबका मङ्गल करें।"

श्रीभाईजी आरम्भमे ही इस पक्षमे थे कि गोरक्षाके निमित्त अनशनद्वारा सत-महात्मा तथा अन्य सज्जन अपने प्राणोको सकटमे न डाले। लेकिन यदि एक बार अनशन करनेका निश्चय कर लिया जाय और अनशन आरम्भ हो जाय तो फिर उसे उद्देश्य पूर्ण हुए बिना नही छोडना चाहिये। पिछले गोरक्षा-आन्दोलनके समय पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी और जगद्गुरु श्रीशकराचार्यजी, पुरी—स्वामी श्रीनिरजनदेवतीर्थजी महाराजद्वारा जो आमरण अनशन किया गया, उसके सम्बन्धमे भी भाईजीका यही अभिमत रहा। उन्होने 'कल्याण'मे लिखा था—

"मनुष्य बिना मृत्युके मरता नही और मृत्युकाल आनेपर बचता नही। और यदि किसी मृत्युमे निमित्त महान् गौरवयुक्त हो—धर्मयुक्त हो, भगवदर्थ, धर्मरक्षार्थ किसीके प्राण विसर्जित होते हो तो वह बहुत बडा सौभाग्य है तथा आदर्श तो है ही। मेरा परमपूज्य आचार्यजी (श्रीशकराचार्यजी) तथा श्रीब्रह्मचारीजीके जीवनसे मोह है तथा मैं इनके जीवनमे देश तथा धर्मका बडा लाभ मानता हूँ। इससे मै निश्चय ही यह चाहता था कि इनके जीवनकी रक्षा हो। वे जब अनशनव्रत करनेको प्रस्तुत हुए थे, उस समय भी मेरा मन सर्वथा उनके अनुकूल नही था। पर जब व्रत ले लिया गया, तब इनकी जीवन-रक्षाके साथ ही इनके जीवनके व्रतकी रक्षाका प्रश्न जीवन-रक्षाके प्रश्नमे भी अधिक महत्वका हो गया। इसीसे मैं चाहता था कि इनके जीवनकी रक्षा तो हो, पर वह हो उनके वचनानुसार सरकारके द्वारा सम्पूर्ण गोवशकी रक्षा होनेपर ही—कम-से-कम सम्पूर्ण गोवशकी रक्षाके लिये कानून बनानेके सिद्धान्तको मान लेनेका पूर्ण आश्वासन मिलनेपर ही। दु खकी बात है कि वैसा नही हुआ।"

श्रीशकराचार्यजीके अनशनके समय श्री एस० के० पाटिलने कहा था—'यदि शकराचार्यजीकी मृत्यु हो गयी तो वह हिंदूधर्मपर कलङ्क होगा।' इसपर भी भाईजीने 'कल्याण'मे लिखा था—"शकराचार्यजीकी मृत्यु नही हुई, उनका अनशन टूट गया, पर हम श्रीपाटिलकी बातसे सहमत नही हैं। शकराचार्यजीकी मृत्यु होती तो वह हिंदू-धर्मका कलङ्क नहीं होता, प्रत्युत वर्तमान राजसत्तापर कलङ्क होता, जिसके कारण शकराचार्यजीकी मृत्यु होती। साथ ही मृत्यु होती तो हिंदू-धर्म कलङ्कित नहीं होता, प्रतिष्ठित होता। जिसके अनुयायियोमे अपनी माँगके लिये आत्मसमर्पण करनेकी इतनी विशाल शक्ति है, यह तो धर्मके प्रभावका द्योतक होता न कि कलङ्कका। श्रीशकराचार्यजीका जीवन-कार्य भी अमर और प्रभावी हो जाता।"

यद्यपि श्रीभाईजी 'गोरक्षा-महाभियान-समिति'की सम्पूर्ण गोहत्याबदीकी माँग पूरी न होनेसे क्षुब्ध थे और उन्हे यह सदेह था कि वर्तमान सरकार सम्पूर्ण गोहत्याबदीकी माँगको स्वीकार करेगी, फिर भी वे निराश न होकर ईश्वरकी शक्तिपर विश्वास करते हुए आन्दोलनको जारी रखनेके पक्षमे थे। उनका यह विश्वास था—"भगवान् सर्वशक्तिमान् है, उनकी कृपासे सबमे सद्बुद्धि उदय हो जाय तो निश्चय ही भारतवर्षसे गोवशके वधका पाप दूर हो सकता है और साथ ही गोरक्षाका समुचित प्रबन्ध भी। कानूनके द्वारा गोवशकी हत्याकी सर्वथा बदी चाहनेवाले लोग भगवान्पर भरोसा रखते हुए तथा सबका भला चाहते हुए अपने शान्त एव अहिसा-पूर्ण प्रयत्नोको सतत चालू रखे—न कभी उत्साहमे शिथिलता आने दे, न प्रयत्नमे, सचाईके साथ साधनामे सलग्न रहे। फल तो भगवान्के हाथ है।"

गोरक्षा-आन्दोलनको इस प्रकार श्रीभाईजीका प्रखर मार्गदर्शन और सरक्षण प्राप्त होता रहा। सन् १९५३-५४ मे मैंने अपने पत्र 'आलोक'मे गोवशकी आर्थिक महत्तापर एक लेख लिखा था। उसकी भाईजीने अपने पत्रद्वारा सराहना की थी। उसके बाद तो गोरक्षा-आन्दोलनके सिलसिलेमे अनेक बार ऐसे प्रसङ्ग आये कि भाईजीके साथ बराबर सम्पर्क होता रहा। पूज्य लाला हरदेवसहायजीके गोलोकवासके पश्चात् जब मेरे ऊपर 'भारत गोसेवक समाज'के कार्य और 'गोधन' पत्रके सम्पादनका भार डाला गया, तब भाईजीका निरन्तर मार्गदर्शन मिलता रहा। सन् १९६६-६७के गोरक्षा-आन्दोलनका सारा कार्य 'भारत गोसेवक समाज'के कार्यालयद्वारा सचालित होनेपर तो भाईजीके साथ बहुत ही निकट-सम्पर्क आया और उस समय मुझे उनके विशाल हृदय और महानताके दर्शन करनेका अवसर मिला।

पूज्य भाईजीके निधनसे न केवल गोरक्षा-आन्दोलनकी, बल्कि समग्र राष्ट्रकी अपरिमित क्षति हुई है और जो आध्यात्मिक ज्योति असख्य लोगोके पथको आलोकित कर रही थी, वह विलुप्त हो गयी। मुझे विश्वास है कि उनका महान् जीवन सदा श्रद्धालुजनोको प्रेरणा देता रहेगा।

●

चतुर्धाम वेद भवन न्यास के योजनाकार—श्री भाईजी एवं श्री विश्वनाथ दास

भारतीय चतुर्धाम वेद-भवन-न्यास

डा० श्रीकमलादत्तजी त्रिपाठी, संयुक्त मन्त्री

विश्ववाङमयकी सर्वप्रथम कृतिके रूपमे वेदोका सर्वोच्च स्थान और सर्वत्र पुनीत आदर है। आस्तिक-जन तो वेदको नित्य, अपौरुषेय तथा भगवान्का नि श्वासरूप मानते है। भारतीय समाजका यह परम सौभाग्य है कि वेदके कारण ही आध्यात्मिकताके क्षेत्रमे भारतकी गणना शीर्षस्थानीय है।

वैदिक ज्ञानके आलोकका विस्तार, वैदिक सस्कृतिका भारतमे पुन विशेष प्रचार, वेदोका देश-विदेशमे प्रसार, वेदोका अध्ययन-अध्यापन, वेदो एव वैदिक साहित्यका प्रकाशन, वैदिक ऋचाओका नित्य गान एव पाठ, वैदिक सत्योके उद्घाटनार्थ शोधकार्य आदि कार्योको करनेकी स्फुरणा भारतीयताकी मूर्ति सम्माननीय श्रीविश्वनाथ दासजीके हृदयमे श्रीबदरीनाथ-धामकी यात्रा करते समय हुई थी। उस समय श्रीदास महोदय उत्तरप्रदेशके राज्यपाल थे। उनके मित्र श्रीपरेशचन्द्रजी चटर्जी भी इस यात्रामे उनके साथ थे। श्रीदास महोदयने अपने विचार अपने आदरणीय मित्रके समक्ष व्यक्त किये। श्रीचटर्जी महोदयने इन विचारोकी सराहना की तथा पुरीमे वेद-भवनके निर्माणके लिये पचास हजार रुपये देनेका वचन दिया। उस यात्रामे जगन्नाथपुरीमे वेद-भवनकी स्थापनाका निश्चय हो गया।

श्रीबदरीनाथधामकी यात्रासे लौटनेपर श्रीदास महोदयका जब गोरखपुर आना हुआ, तब उन्होने इस सम्बन्धमे भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे चर्चा की। श्रीपोद्दारजीको श्रीविश्वनाथदासजीके विचार बडे ही महत्त्वपूर्ण लगे और उन्होने उनको कार्यान्वित करनेकी मुक्तकण्ठसे सम्मति दी। पहले विचार केवल श्रीजगन्नाथपुरीमे ही वेद-भवनकी स्थापनाका था, पर श्रीभाईजीने निवेदन किया—'केवल जगन्नाथपुरीमे ही क्यो, भारतकी चारो दिशाओके चारो धामो—बदरीनाथ, जगन्नाथ, रामेश्वरम् और द्वारका—मे वेद-भवनकी स्थापना होनी चाहिये।' श्रीदास महोदयको योजनाका यह व्यापक रूप बडा प्रिय लगा। तभी यह निश्चय हो गया कि वैदिक ज्ञानके प्रचार-प्रसारके लिये व्यापक योजना बनाकर अवश्य सोत्साह कार्य करना चाहिये। भाईजीने गोरखपुरके गोरक्षपीठाधिपति पूज्य महन्त श्रीदिग्विजयनाथजीसे इस कार्यमे साथ रहनेकी प्रार्थना की। उन्होने इसे सहर्ष स्वीकार किया। फिर श्रीश्रीप्रकाशजीसे भी सहयोग चाहा गया। वे भी इसके लिये तैयार हो गये। फलत गोरखपुरके श्रीगोरखनाथ-मन्दिरके पवित्र स्थानमे दिनाङ्क २७ जनवरी, १९६५के पावन दिन सम्मिलित विचार-गोष्ठीमे इस न्यासकी नीव पडी। इस सस्थाके महासचिवके रूपमे श्रीविश्वनाथजी सक्रिय हो गये। समाजके व्यक्तियोसे मिलकर कार्यकी महानतासे अवगत कराना तथा कार्यके सचालनके लिये धन-सग्रह करना श्रीविश्वनाथदासजीका मुख्य कार्य हो गया और सयुक्त-मन्त्रीके रूपमे सहयोग दे रहे थे श्रीभाईजी। भाईजी कई स्थानोपर उनके साथ गये। कई व्यक्तियोने धनका दान दिया केवल यही देखकर कि श्रीभाईजी इस कार्यमे रुचि ले रहे है। दो विभूतियोके सम्मिलित प्रयाससे जून १९६८तक लगभग आठ लाख रुपये सगृहीत हो गये।

श्रीदास महोदय एव श्रीभाईजीके प्रयाससे जगद्गुरु श्रीशकराचार्योने 'सरक्षक-पद' स्वीकार किया, विद्वानोने सदा सत्परामर्श दिया, उद्योगपतियोने धन एव वस्तुसे सहयोग दिया, सामाजिक नेताओने समुचित वातावरणका निर्माण किया, कर्मठ कार्यकर्ताओने अपने तपसे कार्यको आगे बढाया। आज अनेक स्थानोपर वेद-भवनकी शाखाएँ अपने उद्देश्यकी पूर्तिमे सलग्न है। वर्तमान मुख्य केन्द्र इस प्रकार है—(१) श्रीबदरीनाथ वेद-भवन, बदरीनाथ, (२) वेद-भवन महाविद्यालय, रुद्रप्रयाग, (३) पुरी वेद-भवन, जगन्नाथपुरी, (४) श्रीजगन्नाथ वेद-कर्माङ्ग विद्यापीठ, जगन्नाथपुरी, (५) रामेश्वरम् वेद-भवन, रामेश्वरम्, (६) वेद-भवन महाविद्यालय, रामेश्वरम्, (७) द्वारका वेद-भवन, द्वारका, (८) राजकीय शुक्लयजुर्वेद पाठशाला, द्वारका, (९) वेद-भवन विद्यालय, कालडी (केरल), (१०) वेद-भवन विद्यालय, गोकर्ण (मैसूर), (११) वेद-भवन विद्यालय, श्रीरगम् (तमिलनाडु) एव (१२) वेद-भवन विद्यालय, प्रयाग (उ०प्र०)।

इन विद्यालयोंमें वैदिक विषयोंके अध्ययनके साथ-साथ अन्य विषयोंका भी अध्ययन कराया जाता है। जगन्नाथ-पुरीमें नित्य यज्ञ होता है। विद्यालयोंमें वैदिक मन्त्रका पाठ सिखाया जाता है तथा चारों धामोंके मन्दिरोंमें वैदिक ऋचाओंका प्रतिदिन पाठ होता है—अवश्य ही शीत ऋतुमें बदरीनाथके स्थानपर रुद्रप्रयागमें नियमका निर्वाह किया जाता है। श्राद्ध-तर्पण-योजनाके अन्तर्गत ५००) दान देनेवाले व्यक्तिके सम्बन्धीकी निधन-तिथिपर श्राद्ध-पक्षमें एक दिन श्राद्ध करनेकी भी व्यवस्था श्रीबदरीनाथमें चालू है। अनेक योजनाओंका क्रियान्वय अभी शेष ही है। अब संयुक्त मन्त्री होनेके नाते मुझे भी कुछ समय देना ही पड़ता है। श्रीसत्यदेवजी ब्रह्मचारीकी कर्मठतासे तथा अन्य हितैषियोंके सहयोगसे वेदभवनके पौधेको जिसका वपन श्रीदास महोदय तथा श्रीभाईजीके कर-कमलोंसे हुआ था विकसित-पल्लवित होते देखकर मनका प्रसन्न होना स्वाभाविक है।

●

श्रीरामजन्मभूमि, अयोध्याके उद्धार-कार्यमें श्रीभाईजीका योगदान

श्रीगोपालसिंहजी विशारद
वादी—श्रीरामजन्मभूमिवाद, अयोध्या

आर्य-वसुधरा आदिकालसे ही आस्तिकोंकी आवास-स्थली रही है और तपोभूमिके साथ-साथ अवतारभूमिके रूपमें भी प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके अवतार हमारे आस्तिकी आकाशके परमोज्ज्वल प्रकाशपुञ्ज पूर्णेन्दु हैं।

भारतीय संस्कृतिके समष्टि रूपका दर्शन यदि हमें कहीं मिलता है तो वह त्रेताकालीन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके चरित्रमें। इस परम पुरुषका पावन-चरित्र चिरकालसे जातीय जीवनका प्रधान प्रेरणा-केन्द्र रहा है, जो उनकी लोक-प्रियताका ही परिणाम है। भगवान् श्रीरामका ऐतिहासिक जन्म-स्थान, अयोध्यामें 'श्रीराम-जन्म-भूमि'के नामसे विश्व-विदित है। चैत्र शुक्ल नवमीके शुभ मुहूर्त्तमें उनका आविर्भाव हुआ था। उसी शुभ दिवसपर प्रत्येक वर्ष भारतके कोने-कोनेसे बिना सूचना अथवा निमन्त्रणके लाखोंकी संख्यामें आर्यजनता अयोध्या आकर उस पावन भूमिके दर्शन करती है।

उत्थान और पतनके बारी-बारीमें अपने दिन देखते हुए आर्य-वसुधराने प्रतापशाली महाराज वीर विक्रमादित्यको जन्म दिया। महाराजा विक्रमादित्यने प्राचीन पवित्र स्थानों एवं तीर्थोंके उद्धारार्थ भारत-भ्रमण किया। भग्नावस्थामें स्थित अनेक स्थानोंका उद्धार करते हुए वे इस स्थलपर भी पहुँचे, जहाँपर एक लंबे समयतक बड़े-बड़े प्रतापी रघुवंशी नरेशोंकी राजधानी अयोध्यानगरी थी। यहाँ पहुँचकर उन्होंने एक आश्रमवासी संतके सांकेतिक आधारपर रामजन्म-भूमिका परिज्ञान किया और उसी भूमिपर ८४ कसौटीके कलापूर्ण स्तम्भोंपर एक भव्य मन्दिर निर्माण करवाया, जिसके अवलम्बसे वह वन-खण्ड पुनः बस्तीके रूपमें रूपान्तरित होने लगा और कुछ कालोपरान्त वह एक ग्रामके रूपमें हिंदुओंका तीर्थ बन गया। कहा जाता है कि सन् १५२८में मुगल सम्राट् बाबरने धर्म-मदान्धताके कारण सम्राट् विक्रमादित्यद्वारा निर्मित श्रीराम-मन्दिरको ध्वस्त करवा दिया। तबसे उस पवित्र स्थानके लिये हिंदू-मुस्लिम अनेकों विद्रोह हुए, किंतु आर्य-जाति किसी-न-किसी प्रकार अपना अधिकार जमाये ही रही। १५ अगस्त १९४७ ई०को भारत स्वतन्त्र हुआ। भारतका भाग्य-निर्णय पुनः भारतीयोंके हस्तगत हुआ। अच्छा अवसर समझकर जन्म-भूमिके विरुद्ध मुसल्मान फिर सिर उठाने लगे। इधर २३ दिसम्बर सन् १९४९के ब्राह्म मुहूर्त्तकी शुभवेलामें जन्म-भूमि-मन्दिरमें स्थापित मूर्तिसे एक ऐसी चामत्कारिक दिव्य छिटकी, जिसकी शान्त एवं सुखमयी प्रभासे प्रभावित भक्तजन आनन्दविभोर हो गये। वह शुभ समाचार विद्युत्-प्रवाहकी भाँति चारों ओर फैल गया। मामला कोर्टमें गया। श्रीवीरसिंहजी सिविल जज, फैजाबादने सरकारको आदेशात्मक सूचना दी कि 'जबतक वादका अन्तिम निर्णय न हो जाय, तबतक जहाँपर मूर्ति विराजमान है, वहींपर वह सुरक्षित रहे और विधिवत् उसकी सेवा-पूजादिक हो।'

उक्त चामत्कारिक घटनाकी सूचना श्रीभाईजीको दी गयी तथा उनसे इस कार्यमें सहायताकी प्रार्थना की गयी। श्रीभाईजी इस संवादसे बड़े प्रसन्न हुए। वे अयोध्या पधारे और अपने प्रवचनों एवं उपदेशोंद्वारा उन्होंने

सस्कारकी गति-विधियोमे निराग जनता और कार्यकर्त्ताओको प्रोत्साहित किया एव आशान्वित किया। उस अवसर-पर वहाँ लगभग १५०० रु० मासिक व्ययकी आवश्यकता थी। अभियोग-सम्बन्धी व्यय इससे पृथक् था। इस समस्त व्ययका भार श्रीभाईजीने सानन्द और सहजहीमे उठा लिया। श्रीराम-जन्म-भूमिके इस महान् कार्यके लिये आपने देशके धन-पतियोका ध्यान इस ओर आकर्षित किया। इससे अर्थकी व्यवस्था होनेमे बडी सुविधा हुई।

जन्म-भूमि-सम्बन्धी साधारण व्ययोके अतिरिक्त कभी-कभी विशेष व्यय की भी आवश्यकता पड जाती थी। उसके लिये सबसे सरल तथा सीधा मार्ग हमारे लिये गीतावाटिकाका ही द्वार था।

अभियोगके सम्बन्धमे श्रीभाईजीने अनेक ऐसे शिक्षित तथा इस्लामधर्मके ज्ञाता मुसलमानोकी खोज की, जो तर्कत जन्म-भूमिको मुस्लिम पूजा-गृह मानना मुस्लिम धर्मके विरुद्ध सिद्ध करते थे। जन्म-भूमिके पक्षमे वातावरण-निर्माणके लिये उन मुस्लिम भाइयोमेसे २-१को अयोध्या भी भेजा। उन्होने वहाँ पहुँचकर वक्तव्य देकर उन विचारोको जनताके समक्ष व्यक्त किया तथा समाचारपत्रोमे भी प्रकाशित कराया। कुछने हिंदू-पूजागृहके विरोधी मुसलमानोके विरुद्ध दिल्ली जाकर अनशनकी भी धमकी दी और जन्म-भूमि-विरोधी मुसलमानोकी इस सम्बन्धमे भर्त्सना की। इसके अतिरिक्त भाईजीने देशके प्रधान राज्याधिकारियो, जननेताओ एव विद्वानोको बार-बार पत्र लिखकर इस पुनीत काममे सहयोग देनेकी प्रेरणा दी। इस प्रकार हम तो कहेगे, जिस प्रकार उस युगमे वनवासी श्रीरामजीके सहायक सतप्रवर हनुमान्‌जी हुए थे, उसी प्रकार इस युगमे इस अवसरपर जन्म-भूमिमे मूर्तिरूपमे विराजमान बाल भगवान् श्रीरामके सहायक गीतावाटिकावासी सतवर श्रीहनुमानप्रसादजी (भाईजी) हुए।

श्रीभाईजीने अयोध्यास्थ श्रीराम-जन्म-भूमिकी अपूर्व सेवाएँ की है। राम-जन्म-भूमि भारतका एक राष्ट्रीय तीर्थ और भगवान् श्रीराम भारतीय भावनाके प्रतीक है। पवित्र राम-जन्म-भूमि ५० करोड हिंदू जनताका प्रिय प्राण हे और है भारतीय सस्कृतिका प्राण। भारतीय जनता श्रीभाईजीकी इन सेवाओको चिरकालतक कृतज्ञताभरे हृदयसे स्मरण करती रहेगी।

●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवासंघके कार्यमें श्रीभाईजीका योगदान

श्रीराम-जन्म-भूमिकी भाँति भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-स्थानके कार्यमे भी श्रीभाईजीका योगदान बडा महत्त्वपूर्ण है। अपनी ओरसे कुछ न कहकर हम जन्मस्थान सेवासघकी कार्यकारिणीद्वारा पारित प्रस्ताव ही यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

(श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान सेवासंघकी कार्यकारिणी द्वारा पारित प्रस्ताव)

"पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने गीताप्रेसद्वारा धार्मिक एव आध्यात्मिक जगत्‌की जो सेवा की है, उसे भारतकी धर्मप्रिय जनता ही क्या, विश्व भी युगोतक याद रखेगा। श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान सेवासघको उनसे जो प्रेरणा, शक्ति एव सहयोग प्राप्त हुआ है, उसे व्यक्त कर पाना हमलोगोके वशकी बात नहीं है। हम तो यही कह सकते है कि श्रीकृष्ण-जन्म-स्थानकी अबतक जो भी प्रगति हुई है, वह पूज्य श्रीभाईजीकी प्रेरणा तथा उनकी शक्तिसे ही हुई है। सघके प्रारम्भसे ही उपाध्यक्षके रूपमे उन्होने जो मार्गदर्शन किया, वह तो अविस्मरणीय है ही, उन्हींकी प्रेरणासे यहाँ श्रीकेशवदेव-मन्दिरका निर्माण हुआ, जिसका उद्घाटन स० २०१५मे उनके कर-कमलोद्वारा सम्पन्न हुआ। उन्हींकी प्रेरणासे यहाँ स० २०१९मे 'कृष्ण-चबूतरा'का निर्माण हुआ और उन्हींके योजनानुसार 'भागवत-भवन'का विशाल मन्दिर साकार बनता जा रहा है। स० २०२१मे भागवत-भवनका शिलान्यास करते समय उन्होने कहा था—

'भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे भागवत-भवनका निर्माण प्रारम्भ हुआ है। भगवान् श्रीकृष्ण ही इसके सस्थापक है और वे ही अपने जन्मस्थानका पुनरुद्धार-कार्य करवा रहे है।'

उनके इस वाक्यमे कर्मको अकर्ममे परिवर्तित करनेकी पुनीत प्रक्रिया है, जो कर्मयोगका सार है। वे अब हमारे मध्य नहीं है, इसपर सहसा विश्वास नहीं होता। हम तो केवल यही कामना करते है कि वे सनातन श्रीकृष्णके जन्मस्थानिन्दोके साथ हमारा मार्ग निरन्तर प्रशस्त करते रहे।"

मन्त्री—श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-सघ, मथुरा

●

मूक-वधिर बच्चोंकी शिक्षामें श्रीभाईजीका योगदान

श्रीमदनमोहनजी त्रिपाठी
प्रिंसिपल—मूक-वधिर विद्यालय, गोरखपुर

कोई भी समाज या देश तभी उन्नतिशील माना जाता है, जब उस देश अथवा समाजका प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक नागरिक हो। हर एक उन्नतिशील देशोंने अपने देशकी उन्नतिके लिये देशके अपंगो तथा असहायोका औषधिक एव शैक्षिक उपचार करके तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण आदि देकर समाजके योग्य नागरिक बनानेका अत्यधिक प्रयास किया है। भारतवर्षने भी अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद इस दिशामे विशेष कदम उठाया है। परतु आवश्यकताको देखते हुए प्रयास नगण्य है। ऐसी स्थितिमे समाज-सेवियोका सर्वप्रथम कर्तव्य होता है कि वे सरकारकी सहायता करे। भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी एक बहुत बडे समाज-सेवी थे। उन्होंने भी जीवनभर अपगो तथा असहायोकी अप्रतिम सेवा की है। अत श्रीभाईजीने इन सेवाओमे सहयोग देनेकी भावनासे १९५५ ई०मे गोरखपुर नगरमे एक 'मूक-वधिर विद्यालय'की स्थापना की, जिसमे मूक-वधिरोको उचित शैक्षणिक उपचार एव व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदानकर समाजके योग्य नागरिक बनानेका प्रयत्न किया जाता है।

सामान्यतया लोगोकी धरणा है कि मूक और वधिर व्यक्ति अलग-अलग होते हैं, तथा उनको शिक्षा अलग-अलग दी जाती है। परतु मूक-वधिर एक ही व्यक्ति होता है, जिसमे मूकता एव वधिरता दोनो व्याप्त होती है। हमारी वाणी अत्यधिक मात्रामे हमारे श्रवणपर निर्भर करती है, अर्थात् हम जो कुछ सुनते हैं, वही बोलते है। यदि न सुने तो नही बोलेगे। इस प्रकार श्रवणहीन व्यक्ति मूक हो जाता है। इसके अतिरिक्त मूकताका कारण मानसिक एव वाणी-इन्द्रियोकी खराबियाँ भी है।

भारतवर्षमे लगभग दस लाख मूक-वधिर हैं। उत्तरप्रदेशमे मूक-वधिरोकी सख्या लगभग ६५,००० है तथा उत्तरप्रदेशके पूर्वी जिलोमे इनकी सख्या लगभग ४,००० है। भारतवर्षमे मूक-वधिरोकी सेवामे रत ७५ सस्थाएँ हैं, जिनमे कुछ सरकारी तथा अन्य लोकसेवी एव प्राइवेट हैं। ये सस्थाएँ दस हजार मूक-वधिरोको प्रशिक्षण प्रदान कर रही हैं। उत्तरप्रदेशमे ऐसी शिक्षण-सस्थाओकी सख्या लगभग २७ है।

गोरखपुरके 'मूक-वधिर विद्यालय'मे २५ बच्चोंने प्रशिक्षण प्राप्त करना प्रारम्भ किया तथा यह सस्था एक किरायेके भवनमे चालू हुई थी। पर श्रीभाईजीके सहयोग एव प्रयत्नसे इसकी एक प्रबन्ध-समितिका गठन हो गया तथा पजीकरण भी। श्रीभाईजीने बच्चेकी तरह इस सस्थाको पाला-पोसा। सन् १९६५मे विद्यालयके लिये एक भवनका निर्माण कराकर उसे उसमे स्थानान्तरित करवा दिया। इस समय विद्यालयमे ६० बच्चे प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। इनके प्रशिक्षण-हेतु विद्यालयमे सात अध्यापक नियुक्त है, जिनमे तीन साहित्यिक शिक्षामे तथा शेष व्यावसायिक शिक्षामे प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। सभी अध्यापक योग्य एव प्रशिक्षित है। विद्यालयमे अबतक लगभग ४० बच्चे प्रशिक्षित हो चुके हैं तथा विभिन्न व्यवसायोमे कार्य करते हुए सुखद जीवन-यापन कर रहे हैं।

●

कुष्ठ-रोगियोंके मौन सेवक श्रीभाईजी

श्रीविजयनाथजी त्रिपाठी,
सुपरिटेण्डेण्ट—कुष्ठ-सेवाश्रम, गोरखपुर

'कुष्ठरोगमे केवल चिकित्साका ही प्रश्न नही, वल्कि रोगीके निराशामय जीवनको आशामय वनानेका भी प्रश्न है, जिसके लिये त्यागमय सेवाकी आवश्यकता है।'

—गांधीजी

गाधीजीके निधनके 'पश्चात् गाधी-स्मारक-निधि'ने वापूके जिन रचनात्मक कार्यो एवं विभिन्न प्रवृत्तियोके विकासकी योजनाएँ वनायी, उनमे कुष्ठ-निर्मूलनको भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। श्रीश्रीदेवदास गाधी तथा प्रमुख समाज-सेवी श्रीकृष्णदास जाजूजीकी प्रेरणासे कुष्ठ-निर्मूलन-योजनाके निमित्त 'गाधी-स्मारक-निधि'मेसे एक करोड रुपये अलग कर दिये गये। कुष्ठरोगकी समस्याकी ओर गाधीजीका ध्यान सर्वप्रथम पुरुलिया (विहार) स्थित 'मिशन टु लेपर्स'के सेक्रेटरी श्रीडोनाल्ड मिलरने आकर्षित किया था। गाधीजीको यह काम अतिप्रिय लगा और इसे उन्होने अपने रचनात्मक कार्योमे सम्मिलित कर लिया।

युग-युगसे अभिशप्त कुष्ठरोगियोको देखकर प्रसिद्ध समाज-सेवी बाबा राघवदासजीका हृदय करुणासे अभिभूत हो जाता था। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके वाद उन्होने इस ओर अधिक ध्यान देना शुरू किया। उन्होने इसाई मिशनरियोद्वारा सचालित कुष्ठरोग-अस्पतालोको देखा, उनके सचालकोसे बाते की। 'सल्फोन' नामक औषधद्वारा कुष्ठरोगका निर्मूलन सम्भव जानकर वावाजीने एक कुष्ठ-आश्रमकी स्थापनाका निश्चय किया। उनके प्रयत्नसे 'गाधी-स्मारक-निधि'की उत्तरप्रदेश-शाखाने जनवरी १९५१मे यह निश्चय किया कि उत्तरप्रदेशमे एक कुष्ठ-सेवाश्रमकी स्थापना की जाय। एक प्रस्ताव स्वीकृतकर मुझे उसके लिये उपयुक्त स्थानकी खोज करनेका भार सौपा। मैने उत्तरप्रदेशके सब स्थानोको देखा, आखिर तराई एव पहाडी क्षेत्र कुष्ठरोगसे अधिक प्रभावित होनेके कारण गोरखपुरमे कुष्ठ-सेवाश्रमकी स्थापनाका निश्चय हुआ। इस क्षेत्रमे कुष्ठ-रोगी ३ प्रतिशत है।

वावाजीका श्रीभाईजीसे वहुत पुराना निकटका सम्वन्ध था। वे श्रीभाईजीकी जीवदया, प्राणी-सेवासे अच्छी प्रकार परिचित थे। अतएव इस योजनाको कार्यान्वित करनेके समय उन्होने श्रीभाईजीसे भी सहयोग लिया। मार्च १९५१मे गोरखपुरके कलक्टर महोदयके यहाँ कुष्ठाश्रमकी स्थापनाके सम्बन्धमे एक सभा वुलायी गयी, जिसमे श्रीभाईजीके अतिरिक्त गोरखपुर शहरके सभी प्रमुख समाज-सेवियो एव प्रसिद्ध डाक्टर महानुभावोने भाग लिया।

वावाजीने 'मिशन टु लेपर्स' सस्थाके प्रमुख मिशनरी कार्यकर्ता डा० पी० जे० चाण्डी महोदयसे सम्पर्क स्थापित किया। अगस्त, सन् १९५१को 'तिलक-जयन्ती'के पुण्य पर्वपर कुष्ठ-सेवाश्रमकी स्थापना हो गयी। इस कार्यमे श्रीभाईजी प्रथम सहयोगीके रूपमे उनके साथ थे। प्रारम्भमे इस आश्रममे १५ रोगियोको रखनेकी व्यवस्था हुई तथा दो कार्यकर्त्ता—श्रीविजयनाथजी त्रिपाठी तथा श्री पी० रत्नस्वामी। मासिक व्यय ३०० रु० था, जो चदेके रूपमे उदार सज्जनोसे प्राप्त होता था।

अगस्त १९५१मे श्रीविनोवाजीके उत्तरप्रदेशमे प्रवेशके साथ ही वावाजी भूदान-ग्रामदान-कार्यमे उनके साथ लग गये। फरवरी १९५२तक आश्रमके लिये सकटका काल था। मार्च १९५२मे श्रीकृष्णदासजी जाजूके गोरखपुर आगमनपर कुष्ठ-सेवाश्रमकी समस्या उनके सामने रखी गयी। श्रीजाजूजीने प्रस्ताव रखा कि 'काम तो अच्छा है। यदि इस सस्थाका दायित्व श्रीभाईजी सँभाल ले तो वे 'गाधी-स्मारक-निधि' से सहायता दिला सकेगे।' श्रीजाजूजी, वावाजी और मै श्रीभाईजीसे मिले। श्रीभाईजी तो इस प्रकारके सेवा-कार्योके लिये सदा तैयार रहते ही थे, उन्होने अपनी व्यस्तताको देखते हुए भी इस सेवा-कार्यमे सहयोग देनेकी स्वीकृति प्रदान कर दी। १-२ वर्षतक श्रीजाजूजीके प्रभावसे ७५० रु० मासिक सहायता 'गाधी-स्मारक-निधि'से मिलती रही, वादमे वह वद हो गयी। १९५३मे भाईजीने प्रयत्न करके इस सस्थाको 'कुष्ठ-सेवाश्रम'के नामसे एक रजिस्टर्ड सस्था वना दिया।

आज कुष्ठ-सेवाश्रम गोरखपुरका स्थान देशकी महत्वपूर्ण संस्थाओंमें है। बिना किसी प्रकारके प्रचारका साधन अपनाये अपने कार्यकारी उपाय-योजनाओंकी सफलताके कारण इस संस्थाकी प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ रही है। सार्वजनिक क्षेत्रमें जो कुष्ठ-सेवाका कार्य हुआ है, उसका आकलन करें तो उत्तरप्रदेशके समस्त पूर्वी जिले —गोंडा, वाराणसी, गाजीपुर, बलिया प्रभृति सभी इस संस्थाकी प्रेरणा एवं प्रभाव-क्षेत्रमें आते हैं। इसके अतिरिक्त बिहारके पश्चिमी भागमें जो प्रशंसनीय सेवा-कार्य हो रहा है, उसका प्रारम्भ भी इसी संस्थाके माध्यमसे हुआ था। बस्ती, देवरिया, गोंडा आदि जिलोंमें जो-कुछ कार्य हो रहा है, प्रारम्भमें वर्षोंतक उसके संचालनके उत्तरदायित्वका निर्वाह इसी संस्थाने किया है। तदनन्तर प्रत्यक्ष प्रेरणा, सलाह, सहायता एवं मार्गदर्शनके साथ ही प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओंका प्रबन्ध भी किया है। इस सेवाश्रमकी कार्य-व्यवस्थाको देखकर स्थानीय लोगोंकी सेवा-भावना तथा प्रेरणासे कुछ समाजसेवी संस्थाएँ भी स्थापित हुई हैं। यह पौधा आज विशाल वट-वृक्षके सदृश अपनी छायामें सहस्रों कुष्ठ-रोगियोंको स्वास्थ्य एवं सुख-शान्ति प्रदान करता जा रहा है। आज इस सेवाश्रमके विभिन्न उप-चिकित्सा-केन्द्रोंमें कुष्ठ-रोगियोंको उपचारके साथ-साथ नवीन जीवनदृष्टि और सुखद-भविष्यकी आशा प्राप्त होती है।

कुष्ठ-सेवाश्रम, गोरखपुरके इस विकासमें कौन-सा ऐसा तत्त्व था, कौन-सी ऐसी शक्ति थी, जो इसको नित्य अनुप्राणित करती रही है—संजीवनी-शक्तिसे भरती रही है ? जब इस प्रश्नपर विचार करता हूँ, तब पूज्य श्रीभाईजी सामने आ जाते हैं। यह कहना बड़ा कठिन है कि उनका योगदान इस संस्थाके लिये कितना रहा है। समझमें नहीं आता कि प्रारम्भसे अबतक उनके किस कामको गिनाया जाय, किसे छोड़ा जाय। उनके सतत प्रयत्नोंसे ही आज पूर्वी उत्तरप्रदेशमें कुष्ठ-रोगियोंकी सेवाका कार्य विधिवत् और सफलतापूर्वक चल रहा है। संस्थाके सम्पत्ति-निर्माण, इसके संचालनमें प्रशासनको बल और सेवाकी प्रेरणा—सभीमें तो श्रीभाईजीका वरद-हस्त प्रमुख रहा। राजनीतिक दलदल और कीचड़से अबतक यह संस्था अछूती रही है, यह भी उन्हींके प्रभावका फल है। जिस प्रकार हरी-भरी खेतीके लिये धरतीका महत्व है, उसी प्रकार श्रीपोद्दारजीका महत्व इस आश्रमके लिये है ऐसा कहें तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी।

श्रीभाईजीने इस आश्रमके बारेमें सदा यही कहा—'काम करनेवालोंकी कमी है धनकी नहीं, वह तो आयेगा ही ईश्वरकी कृपासे। काम होना चाहिये सही ढंगसे।' और इसी आश्वासनपर काम बढ़ता रहा, कठिनाइयाँ आती रहीं और दूर होती रहीं।

सामाजिक कार्योंमें आर्थिक कठिनाइयाँ आती ही हैं किन्तु श्रीभाईजी अपने सहज विश्वास और सहयोगसे ऐसी समस्याओंका समाधान बराबर करते रहे। सुहृद्-मित्रोंसे सहायता दिलवाते रहे। कुष्ठ-सेवामें उनका निजी योगदान तो अप्रतिम है ही।

एक भगवद्भक्त सेवापरायण जन प्रभुके सब जीवोंसे प्रेम करता है। उसके संवेदनशील हृदयमें दीन-हीनोंके लिये कोमल भावना और सहज करुणा होती है। व्यापक मानव-प्रेम ही उसकी ईश्वर-पूजा है। श्रीभाईजी इसके आदर्श उदाहरण थे। यश और कीर्तिसे दूर और निर्लिप्त मनोवृत्तिवाले श्रीभाईजीके अमूल्य योगदानको, अन्य लोगोंकी तो छोड़िये, लाभान्वित होनेवाले रोगी तथा इस कार्यमें संलग्न अधिकांश कार्यकर्त्ता भी नहीं जानते हैं। यह है मूक सेवाका आदर्श।

× × ×

एक बार श्रीभाईजी स्वर्गाश्रम जा रहे थे। राहमें 'मुनिकी रेती'में इन्हें सैकड़ों कुष्ठ-रोगी जीर्ण-शीर्ण कुटीरोंमें निवासी पड़े। उनके अस्त-व्यस्त दुखी जीवनको देखकर श्रीभाईजीका हृदय करुणार्द्र हो उठा—'पर दुख द्रवैं सन सुपुनीता।' चिकित्साकी कोई व्यवस्था न थी। उनके अभाव और कष्टको दूर करनेके लिये भाईजीने एक चिकित्सा-गृहकी सत्वर व्यवस्था अपने एक स्वजनसे करा दी और जीवन-पर्यन्त उनकी हित-चिन्ता करते रहे।

× × ×

श्रीभाईजीका जीवन-उद्देश्य—प्रेम-वितरण

श्रीभीमसेन चोपड़ा

परम श्रद्धास्पद श्रीभाईजीके २२ मार्च १९७१, तदनुसार चैत्र कृष्ण दशमी, संवत् २०२७के दिन तिरोधानके पश्चात् उनके पवित्र जीवन, कार्य तथा स्वरूपके विषयमें प्रचुर सामग्री पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तक-पुस्तिकाओंके रूपमें प्रकाशित हो चुकी है, हो रही है और भविष्यमें भी होती ही रहेगी। क्योंकि अपने दिव्य, भव्य जीवनमें उन्होंने अनेकविध क्षेत्रोंके अन्तर्गत जिस-किसी कार्यमें हाथ डाला, उसीमें वे सर्वप्रथम रहे। नवीन कीर्तिमानकी प्रतिष्ठा की, नवादर्शोंकी स्थापना की, चाहे वह कार्य साहित्य-सर्जन अथवा पत्रकारितासे सम्बन्ध रखता हो, आर्त तथा दीन-दुःखियोंकी सेवा हो, आध्यात्मिक साधना हो, धर्म-जागरण तथा गोरक्षाका कार्य हो, अथवा कर्मठ जीवन, ज्ञान और भक्तिका समन्वय प्रस्तुत करना हो, या आदर्श लौकिक व्यवहारका स्वरूप अपने प्रत्यक्ष जीवनसे सबके सम्मुख रखना हो। सभी दृष्टियोंमें उनका सूक्ष्म निरीक्षण करनेपर उनके सभी कार्य सर्वाङ्गपूर्ण और अनूठे दिखायी देते हैं।

परंतु उनके सम्पूर्ण जीवन, कार्यकलाप तथा स्वरूपमें अनुस्यूत एवं गुम्फित एक ऐसा विलक्षण तत्त्व विद्यमान है, जो उन सबका अधिष्ठान है, शक्ति है, और नियामक तो वह है ही। इसके अतिरिक्त वही साध्य, साधना और सिद्धि भी है। उसीका मधुर रव उनके समग्र व्यक्तित्वकी गरिमामें झंकृत हो रहा है। उसीकी सरस मधु-धारा उनके जीवनसे निस्सृत होकर जन-जनको प्लावित, आप्यायित और उनके तन-मन-प्राण शीतल करती दिखायी देती है। उसीकी प्राप्ति तथा उन्मुक्त-हस्तसे वितरण—श्रीभाईजीके समग्र जीवनका प्रेरणास्रोत था, महत् उद्देश्य था। पग-पगपर उनके व्यक्तित्वको तथा सम्पूर्ण जीवनको उसीने आच्छादित कर रखा था। वह है—भगवत्प्रेम। श्रीभाईजीके धर्ममय, भक्तिपूत जीवन-संगीतका मूल स्वर यही प्रेम है।

चौबीस वर्षकी आयुमें सुदूर बंगालके एक छोटे-से गाँवमें नजरबंद रहकर, उन्होंने अपने प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णको जिस सौरभमय प्रेम-पुष्पसे रिझाया, उस रसिक-शेखरकी प्राण-वल्लभा, महाभावरूपा श्रीराधाके गीत गाये और एकाकी, निरपेक्ष, निर्मल प्रेमकी प्रतिमा श्रीव्रज-गोपियोंकी महिमाका बखान किया, उनकी वह सर्वप्रथम कृति ही थी—'प्रेम-दर्शन', जिसकी रचना गीताप्रेस अथवा 'कल्याण'के आरम्भ होनेसे बहुत पूर्व सन् १९१६ में हुई थी। उनकी यह कृति प्रेम-लक्षणा भक्तिके आदि आचार्य देवर्षि नारदके भक्तिसूत्रोंकी सरस, सुमधुर व्याख्या है। 'प्रेम-दर्शन'से आरम्भ कर आजीवन प्रेमकी आदर्शस्वरूपा इन गोप-सुन्दरियोंका गुणगान करके उन्होंने अपनी लेखनी एवं वाणीको धन्य बनाया है। उनका यह प्रेमाराधन नित्य नवायमान होकर सतत बढ़ता ही चला गया और अन्ततोगत्वा इसीने उन्हें अपने परम सुसेव्य प्रेमके साथ तन्मय बना दिया—एकाकार कर दिया। इसी दिव्य प्रेमने भक्त और भगवान्के अन्तरकी खाई पाट दी, मनुष्य और ईश्वरको जोड़ दिया।

इस विलक्षण प्रेमीकी अखण्ड, गुह्य-प्रकट प्रेम-साधनाने उनकी लेखनी और वाणीको ओज दिया, मधुरिमा दी। इसी दिव्य प्रेमने ही इनके शब्दोंको सरसता दी, प्रेमपूत दृष्टि दी, व्यक्तित्वमें आकर्षण दिया, आभा दी, प्रतिभा दी, गौरव दिया, गरिमा दी, भक्ति दी, शक्ति दी, यश दिया, कीर्ति दी। इस प्रेमने श्रीभाईजीको क्या नहीं दिया? और जो भी दिया, प्रचुर दिया। श्रीभाईजीने भी उस प्रेमको जी भरकर खूब लुटाया—झोलियाँ भर-भर बाँटा, उन्मुक्त हृदयसे वितरित किया। परंतु जितना फेंका, उससे कईगुना बढ़कर वह पुनः इन्हींके पास लौट आया। आधुनिक युगमें प्रेमकी इस प्रतिमाके प्राकट्यसे वसुंधरा हर्षोन्मत्त हो उठी, सत्पुत्रवती भारत-भूमी गोत्र सार्थक हुई।

इस प्रेमने श्रीभाईजीको वह अलौकिक दिव्य प्रज्ञा तथा कार्यशक्ति प्रदान की, जिसने सम्पूर्ण विश्वको झकझोर दिया। हिंदू संस्कृति एवं धर्मके इतिहासमें इस अलौकिक प्रेमी सन्तप्रवरका जीवन-काल सर्वाधिक गौरव-

पूर्ण है। हिंदू धर्म, संस्कृति एवं तत्त्वदर्शनके ज्ञानकोषको अक्षय बनानेकी दिशामें और इसकी कीर्ति-पताकाको दसों दिशाओंमें फहरानेके लिये आजतक जितने प्रयास हुए हैं, उन सबको यदि एक स्थानपर संकलित कर दिया जाय, तो भी जातीय जीवनके सुदीर्घ कालखण्डमें उन सब प्रयत्नोंकी तुलनामें श्रीपोद्दारजीके प्रेममय जीवनकी घड़ियाँ अधिक महिमामयी हैं, अधिक गौरवपूर्ण हैं, अनूठी हैं, अमूल्य हैं। इस प्रेमीके जीवनमें प्रेममय आदर्श आचरणका सजीव सौन्दर्य और महत्ता उस समस्त सौन्दर्यसे कहीं अधिक है, जिसकी कभी मानवने कल्पना की, सपने देखे अथवा उसके संग्रहकी साध अपने अन्तर्हृदयमें सँजोयी है।

श्रीपोद्दारजीके विमल यशोमन्दिरका निर्माण हुआ है—भगवत्प्रेमकी भित्तिपर। प्रेममयी भावभूमिपर अधिष्ठित इस मन्दिरकी नींव तो प्रेम है ही, प्रेम ही उपादान है, उपकरण है, कक्ष है, प्राङ्गण है, शिखर है, ध्वजा है और इस दिव्य प्रेम-मन्दिरमें प्रतिष्ठित प्रेम-विग्रहकी ही रसमयी उपासना इस प्रेम-पुजारीने प्रेमपूत हृदयसे प्रेम-प्रसूनोंद्वारा की है। प्रेमाश्रुओंसे अर्घ्य-आचमन देकर प्रेमकी बत्तीसे ही नीराजन करते हुए, प्रेममय हृदयका नैवेद्य अर्पितकर, आजीवन प्रेमार्चा की है। फलतः परम प्रेमास्पद, प्रेममय, प्राण-प्रियतमने अपने स्निग्ध दर्शन, स्पर्श, मधुस्मित एवं संलापद्वारा अपने इस प्रेमीको परितृप्त किया है। रससागर नटनागरने अपने प्रेमपाशमें कसकर, भुजाओंमें भरकर, अपने इस प्रेमीको रसरूप बना दिया और वही रस उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा कार्यमें, वाणीमें, व्यवहारमें, चितवनमें, चालमें, श्वासमें, प्रश्वासमें छलकता दिखायी देता है।

प्रेमकी इस उच्छलित, सरस धाराकी भाव-तरंगोंके साथ, प्रेमपूत निर्झर (लेखनी)से झरे सुधा-सीकरोंके संयोगने उस अक्षय, अशोष्य प्रेम-सरिताका आकार ले लिया, जो आगे चलकर जन-जनको आप्यायित करनेके लिये अनेक धाराओंमें फूट पड़ी।

पतितपावनी, जन-जन-कल्याणी, करुणामयी उस प्रेम-सरिताकी ही एक धाराने जीवमात्रके अशेष कल्याणके लिये 'कल्याण'का आकार ले लिया। कदाचित् अनेकोंको उबारनेवाली कल्याण-धाराको प्रवाहित करनेकी अभिसंधि लेकर प्रेमघन, साँवले-सलोने घनश्यामने, अपने नामको सार्थक करनेके लिये ही अपने नामधारी श्रीभाईजीके क्रांतिकारी जीवनके सहचर घनश्याम (घनश्यामदास बिरला)की वाणी बनकर यह कहा था—'आपलोग अपने विचारोंकी एक पत्रिका निकालें।' और यही प्रेरणा 'कल्याण'-धाराके रूपमें फूट पड़ी। नीरस-शुष्क, अशान्त-क्लान्त जीवोंकी दशासे द्रवित हो, उन्हें सान्त्वना देने, रससिक्त करनेकी भावनासे वे स्वयं घनसे तरल बनकर इस धाराको आकण्ठ पूरित करनेके लिये मचल पड़े और कभी 'मधुर'के रूपमें छन्दोबद्ध होकर, और कभी आशुतोष 'शिव' बनकर उसमें समा गये और राग-द्वेषके पुतले, भोगासक्त प्राणियोंको सचेत-सावधान करनेके लिये सतत—'याद रक्खो' 'याद रक्खो' की रट लगाते रहे।

कालान्तरमें हिंदू-तत्त्व-चिन्तनके मानस-सरसे निस्सृत अनेकानेक छोटे-बड़े नदी-नालोंने इसी धारामें मिलकर इसे बृहदाकार बना दिया। इसमें अवगाहन करके श्रममुक्त होनेवालों, दर्शन-पान-स्पर्श-अभिषेकसे अपनी प्यास बुझानेवालों और शान्तिका अनुभव करनेवालोंकी संख्या लाखों-करोड़ोंसे कम नहीं है। जितने विस्तीर्ण क्षेत्रको अपने जलसे सिञ्चितकर इस धाराने शस्यश्यामल बनाया है, और जितनी दूरतक यह बहती चली गयी है तथा अब भी बहती चली जा रही है, 'कल्याण'के विशेषाङ्कोंके रूपमें जो पावन तीर्थ इसके तीरपर निर्मित हो गये हैं, उनका आयाम और विस्तार देखकर यही प्रतीत होना नितान्त स्वाभाविक है कि कदाचित् इसे भूतलपर उतारकर जीवोंका कल्याण करनेके प्रयोजनसे ही श्रीभाईजीका आविर्भाव इस धराधामपर हुआ था। भगवत्प्रेरित, भगवदीय प्रयोजनके लिये सम्पादित तथा भगवदीय शक्तिसे सम्पन्न इस कार्यका श्रेय भी यद्यपि श्रीभगवान्‌ने अपने इस प्रेमीको दिया है और उस विमलकी कीर्तिमें चार चाँद लगा दिये हैं, तो भी इस प्रेमीके आगमनका मुख्य प्रयोजन था और है—प्रेमकी उपलब्धि और उसका वितरण। अनन्त-सौन्दर्य-सुधानिधि और असंख्य रसरूपोंमें अभिव्यक्त अपने परमाराध्यमें सम्पूर्णतया विलीन होकर—रसार्णवमें मिलकर तद्रूप हो जाना और रस बनकर बरस पड़ना उनके अन्तरतमकी एकमात्र साध थी। अतः निर्मल, विशुद्ध प्रेमकी अजस्र मूल धारा स्वतन्त्र प्रवाहके रूपमें

मत्र विघ्न-बाधाओंको लाँघती हुई, अपने प्राण-प्रियतमका गुणगान करती, उससे मिलनेके लिये अधीर होकर आतुर हृदयसे मनन बढ़ती ही चली गयी।

'चरैवेति', चरैवेति', प्रवाहिणीका धर्म है, स्वभाव है। सरसता, गति और लय उसका जीवन है। श्रीभाईजी-के हृद्देशमे सहज प्रसूत, स्नेहकी क्षीणधारा क्रमश कभी मन्थरगतिसे और कभी वेगसे, बल खाती, इठलाती कल-कल करती, श्रवणपुटोमे रस उडेलती, बाधाओके साथ खेलती, विपदाओको भुजबन्धन देती चली जा रही है, चली जा रही है, सतत प्रवहमाण दिखायी देती है। जिसे अपने प्राण-वल्लभ रसार्णवसे मिलनेकी चाह चढी है, वह क्या जाने मार्गकी दूरी, पथकी बाधा। सतत गतिमान् प्रेमकी इस अजस्र धाराकी प्रेम-साधना और सिद्धिका ही यह वर्णन है। नवोदिता, नवेली प्रेमिकाको प्रियतमके लुभानेका, नवोढाकी छटपटी, प्रतीक्षा, आँख-मिचौनी और अन्तमे उस रसिकप्रवरमे मधुर-मिलनका यह यत्किंचित् क्रमबद्ध विवरण है, विवेचन है। उस छलियाने रहस्यमय ढगसे इस अल्हड बालिकाको लुभानेके लिये जो जाल रचा, उसका इतिहास है।

रससागर नटनागर अपनी मनोहर छवि जिस प्रेमीके मनोदर्पणमे प्रतिबिम्बित देखनेके लिये अधीर थे, वह तो क्रान्तिकारी, राजनीतिक और सामाजिक हलचलोमे आकण्ठ डूबा हुआ था। विविध दिशाओसे आगत झकोरोसे दर्पण बुरी तरह हिल रहा था। न जाने कितनी स्वकल्पित मान्यताओका मल उसे मलिन बना रहा था। उसे शान्त, स्थिर तथा स्वच्छ करना अनिवार्य था। अत उस नटवरने श्रीभाईजीको अनिष्ट ग्रहोकी नजरसे बचानेके लिये सब हलचलोके केन्द्रसे दूरवर्ती शिमलापालमे ले जाकर नजरबद कर दिया। उस करुणावारिधिने भटकते मनको शान्त एव स्थिर तथा जन्म-जन्मान्तरके मनोमलको धो-पोछकर निर्मल कर देनेवाली अचूक रामबाण औषध नाम-अमृतका सतत सेवन करनेकी प्रेरणा दी। श्रद्धासेवित इस महौषधने श्रीभाईजीको अल्पकालमे ही अपने चमत्कार दिखलाने आरम्भ किये। इसके अतिरिक्त अपने भक्तको अपने प्रेममय स्वरूपका साङ्गोपाङ्ग दर्शन एव रसास्वादन करानेकी व्यवस्था उसने पहले ही कर रखी थी। कलिपावनावतार प्रेमविग्रह श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमलक्षणाभक्ति-सम्बन्धी विपुल बँगला रस-वाङ्मय-सरोवरको प्यासेके पास पहुँचा देनेका प्रबन्ध कर दिया था। परिणामत हृदयस्थ क्षीण स्रोत, नामामृतका सयोग पाकर, इस रस-सरोवरसे रस बटोरकर, सरसती-सरसाती धाराके रूपमे अपने गन्तव्यकी ओर चल पडा। यह कृश धारा पुराने सस्कारोके उद्बुद्ध हो पडनेपर पुन कहीं पङ्किल न हो जाय, अत उस लीला-विहारीने श्रीभाईजीको बगालसे निष्कासित कर देनेमे ही उनका हित देखा।

कारागारमे बदी बनाकर, बन्धु-बान्धवो और स्वजन-सखाओसे उनका बिछोह कराकर, धनका नाश करके तथा अन्ततोगत्वा निर्वासन-जैसा भयानक रूप धरकर उस अनन्त दयालुने इन प्रतिकूलताओके अन्तरालसे जो अमूल्य धन इस अकिंचनको दे दिया, उसका गद्गद कण्ठसे, कृतज्ञताभरे हृदयसे उल्लेख वे आजीवन करते रहे। मङ्गलमय प्रभुकी इस अनुकम्पाका स्मरण करते हुए उनकी आँखे भर-भर आती थीं।

दृढ साधन-भूमिपर अधिष्ठित होकर, भक्ति और रस-साहित्यके आलोडन, अनुशीलन एव मन्थनसे 'प्रेम-दर्शन'के रूपमे जो नवनीत श्रीभाईजीने नजरबदीकी स्थितिमे निकालकर स्वय चखा था, उसके मुक्तहस्त वितरण-का समय कदाचित् अभी आया नहीं था। अभी उस प्रेम-सरिताको गुप्त रखकर, उसे अन्तरायोसे बचाते हुए, गहन गम्भीर और व्यापक बनानेके साथ ही प्राणप्रेष्ठको यह भी अभीष्ट था कि अन्यान्य आध्यात्मिक साधनाओके ज्ञान तथा अनुभवोमे निष्णात बनाकर, इन्हे समन्वित-दृष्टि-सम्पन्न किया जाय, अर्थोपार्जन तथा सचयकी असारता इनके मनपर अङ्कित हो जाय, राजनीतिक तथा सामाजिक सेवाके प्रसुप्त एव दुबके हुए सस्कारोको बाहर निकालकर उनका उन्मूलन किया जाय, सबका सर्वप्रिय 'भाईजी' बनाकर उसके भावी भव्य कार्यका मार्ग प्रशस्त किया जाय। अत निष्काम कर्म एव ज्ञानके देदीप्यमान सूर्य, प्रात स्मरणीय सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका वरद-हस्त उनके सिरपर रख दिया। प्रेमके आधार नामरूपी धन बटोरनेमे सिद्धहस्त रामनामके आढतियाका साहचर्य दे दिया। अन्यान्य सभी क्षेत्रोके प्रमुख नेताओका नैकट्य देकर, सयोजित कर वृहद् जप-यज्ञके आयोजनमे सत-महात्माओका सहयोग देकर, नम्नता चस्का लगाकर अन्तमे इनके अदर सब कुछ त्यागकर केवल उसीकी जी-हुजूरी करनेकी तीव्र

लालसा जगानेका सारा कार्य उस छलियाने बम्बईमे ही लुके-छिपे रहकर और बीच-बीचमे अपनी झॉकी दिखाकर सहज ही सम्पन्न कर डाला।

और इधर यह नाटकीय सूत्रधार अपनी अघटघटनापटीयसी नटीकी सहायतासे भावी नाट्यमञ्चकी तैयारीमे छिपे-छिपे पहलेसे ही ताना-बाना बुन रहा था। उसे तो अपने इस प्रेमपात्रकी कायाको माध्यम बनाकर कितने ही उद्देश्य पूरे करके उसके मत्थे यश मढना था। जीव-कल्याण, नाम-प्रचार, प्रेम-वितरण, आर्तसेवा, गो-रक्षा, लौकिक आदर्श-व्यवहारकी प्रतिष्ठा—न जाने कौन-कौन-से पापड इस प्रेमीके पार्थिव कलेवरसे विलवानेकी उसे सनक सवार हो गयी थी। और अपनी मनमानी करते समय किसीकी सुनना-मानना उसने आजतक सीखा ही नही।

प्रेमकी सतत वर्धनशील सरस मधुर धाराके प्रवाहको स्थिर गतिसे बढ चलनेके लिये लवण-सागरसे दूर किसी तपपूत सपाट विस्तीर्ण भूमिकी आवश्यकता थी। और योगिराज गोरक्षनाथकी साधनासे पावन बनी हुई गोरखपुरकी धरती इसके लिये सर्वथा उपयुक्त थी। सृष्टिके आरम्भसे लेकर अभीतक घटी हुई और आगे घटने-वाली समस्त लीलाओकी नियोक्त्री, अलक्ष्य नटी लीलाशक्ति सूत्रधारका निर्देश पाकर श्रीभाईजीको बहलाकर, फुसलाकर, कभी सहलाकर और कभी धमकाकर, येन-केन-प्रकारेण सफल-मनोरथ करनेपर तुल चुकी थी। वह, भला, उन्हे सन्यासी बनकर कमण्डलु हाथमे लिये किसी निर्जन स्थलपर कुटिया बनाकर रहने कैसे देती।

श्रीभाईजीके हृदयमे अपने प्राण-प्रियतम प्रभुसे मिलनेकी चाह क्रमश तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम होती चली जा रही थी। तन-मन-प्राण विरहज्वालासे दग्ध हो रहे थे। भगवन्नामजपके बृहद् यज्ञ और 'भगवन्नामाङ्क'का प्रकाशन तथा सत्सङ्ग-मण्डलीके साथ सकीर्तन-प्रचारार्थ देश-भ्रमण—ये सब हवन-सामग्री बनकर इस अग्निको तीव्र करनेका काम कर रहे थे। इसी स्थितिमे श्रीभाईजीको षडैश्वर्य-सम्पन्न चतुर्भुज भगवान् विष्णुके दर्शन जसीडीहमे हुए। उनके तन-मन-प्राण पुलकित हो उठे, ज्वाला जल बन गयी, परतु उनका मन तो कही और फँस चुका था। सकलगुणधामके पादपद्मोमे श्रद्धासे सिर नवाकर, उन्हे प्रणाम करके पुन यह प्रेम-सरिता—चोरजार-शिखामणि, रसीले, हठीले, रसिकशेखर, द्विभुज, मुरली-मनोहर, नराकृति भगवान्से एकान्त-मिलनके लिये पुन चल पडी। इन्ही दिनो आहृतकाम श्रीभाईजीके पार्थिव कलेवरसे भावी लीलाओके सगठनके लिये एकमात्र पुत्रीरत्न सावित्रीका जन्म हुआ।

श्रीभाईजीके हृदय तथा नयनोमे चित्तवित्तहारी नराकृति श्रीकृष्ण बस चुके थे। उनसे नित्य-मिलनकी लालसा उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। भाव-सरिता रस-सागरमे मिलनेके लिये अधीर हो उठी थी। इसी स्थितिमे 'कल्याण-कल्पतरु'के सम्पादनका भार सँभालनेके लिये श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी गोरखपुर आ पहुँचे। कुछ और प्रेमी भक्त भी जुटने लगे। बाह्य प्रकाशसे शून्य बद कक्षमे श्रीगोस्वामीजीके सुमधुर कण्ठसे 'टेर सुनो ब्रजराज-दुलारे' की स्वर-लहरी तथा अन्यान्य पदगायन एव भावपूर्ण सकीर्तनसे समॉ बँध जाता था, सिसकियो, रुदन और अश्रुजलसे वातावरण आर्द्र हो उठता था। उस समयकी श्रीभाईजीकी लोम-हर्षिणी दशाकी स्मृति आज भी रोमाञ्चित कर देती है।

प्रेमार्चना उत्तरोत्तर बढती जा रही थी। दिन-रात अपने प्यारेके चिन्तन-मनन-ध्यान-गुणगानसे श्रीभाईजीके तन-मन-प्राण एव समस्त इन्द्रियॉ अपने परमाराध्य ब्रजराज-कुँअरके प्रेममय जीवन-सॉचेमे ढलती जा रही थी। प्राणप्रेष्ठके साथ मिलकर रसरूप हो जानेकी यह प्रक्रिया भृङ्गीकीट-न्यायके अनुसार सहज ही साधित हो रही थी, क्योकि प्रेम-वितरणका समय क्रमश निकट आता जा रहा था। उच्च-कनिष्ठ, आन्तरिक तथा बाह्य जीवन एव प्रकृति तथा पुरुषको समन्वित करनेवाली सारग्राही दृष्टि तो केवल प्रेमकी ही देन है—उसीकी सामर्थ्य है। परतु अपने हृदयधन प्राण-प्रियतम ब्रजराज-कुँअरद्वारा स्थापित प्रेममय जीवनके आदर्शके अनुरूप उनके पदचिह्नोपर चल पानेकी यत्किचित् पात्रता केवल प्रेमके बलपर ही अर्जित हो सकती थी और इस प्रेम-सरिताका उद्भव अपने प्यारेकी नर-तनु धरकर की गयी लीलाओके रहस्यको अन्तर्भेदी दृष्टिसे देख पानेपर, मन्त्र-मुग्ध स्थितिमेसे हुआ था।

व्रजराज-दुलारेने टेर सुन ली थी। रससागर सरिताके आलिङ्गनके लिये अधीर हो उठा था। प्रवाहिणी अपने अनन्त प्रेममार्गपर गतिमान् थी। अब वह बद कक्षसे निकलकर उन्मुक्त वाटिकामे प्रविष्ट हो गयी थी। इस निर्मल स्वधारामे अवगाहन तथा निमज्जन करनेकी अभिसधि लेकर, अथवा प्यारेके निर्देशपर उसे समृद्ध बनानेके मनोभावसे प्रेम-लक्षणा भक्तिके आदि आचार्य देवर्षि नारद और भगवान्के दूसरे उत्कृष्ट सदेशवाहक ब्रह्मर्षि अङ्गिरा आ पहुँचे। एकान्तमे कुछ वार्ता हुई, प्रेम-तत्त्वपर परिचर्चा हुई। और वे निरपेक्ष निर्मल प्रेमकी प्रतिमा गोप-ललनाओंका गुणगान करते हुए, उन्हींके रागका अनुगमन करनेकी प्रेरणा देकर **'यथा व्रजगोपिकानाम्'** कहते हुए, वीणा बजाते, हरिगुण गाते चल दिये। जाते-जाते यह कहना वे न भूले कि आवश्यकता पडनेपर हम पुन यहाँ आ सकते है। परन्तु श्रीभाईजीको आजीवन पुन इसकी आवश्यकता नही पडी।

इसी वर्ष सन् उन्नीस सौ छत्तीसमे गीतावाटिकामे एक वर्षका अखण्ड सकीर्तन चल रहा। सकीर्तनके सर्वेसर्वाके पदपर अधिष्ठित किये गये थे श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, जिन्होंने प्रेमावतार श्रीश्रीचैतन्यके जीवन-चरित्रकी हिंदीमे रचना की थी। उस ग्रन्थकी प्रत्येक पक्ति तथा शब्द प्रूफ देखते-देखते ही कम-से-कम दो बार तो श्रीभाईजीके दृष्टिपथसे निकल ही चुका था। सतत आँखोके सम्मुख झूलती दोनो हाथ उठाकर सकीर्तन करते हुए महाप्रभुकी मञ्जुल मूर्ति, विरहवेदनासे तडपते-छटपटाते, बिलखते-सिसकते, दहाडे मारते महाप्रभुकी भावोन्मादकी दशाके स्मरणमे प्राणोमे उत्ताप था, उष्णता थी। श्रीभाईजीके नयन-कगारोसे जल बनकर सतत बहते रहनेपर भी यह विरहाग्नि निरन्तर प्रदीप्त रहती थी।

मूलत अत्यन्त मृदु, स्निग्ध, सुचिक्कण एव मधुर वारिधाराका एक अजस्र स्रोत इसी अवसरपर सरितासे आ मिला—स्वामी श्रीचक्रधरजी गोरखपुर आ पहुँचे। वैराग्यकी बर्फीली हवाके झकोरोसे युक्त हिमवान्की हिमकन्दराओमे तपस्यारत ऋषि-मुनियोद्वारा सेवित तन-मन-प्राण-श्रमहारी शीतल उपनिषद्-ज्ञानकी गङ्गामे डुबकियाँ लगा-लगाकर सत्-चित्-आनन्दघनका चिन्तन करते-करते यह प्रवहमाण सरस स्रोत कुछ पग चलकर तरलसे घन बन चुका था, तरलता, सरसता हिममे परिवर्तित हो चुकी थी। हिमशिलाके नीचे सचित सुमधुर जल लक्ष-लक्ष तृषितो, श्रमितोकी प्यास बुझानेके लिये फूट पडनेका द्वार टोह रहा था, वह चलनेके लिये अधीर होकर भीतर-ही-भीतर हिलोरे ले रहा था। अलक्षित भगवदीय विधान अथवा लीलाशक्तिकी योजनासे हिमशिलाका आकस्मिक सयोग विरहज्वालासे जलते हुए हृदयके अग्नि-पुञ्जसे होते ही चमत्कार घटित हुआ। तत्क्षण हिमखण्डको विदीर्ण करते हुए अपने उद्धारकर्ताका अभिषेक करनेकी अभिसधि लेकर पूरे वेगके साथ स्रोत फूट पडा और कृतज्ञताभरे हृदयके साथ नवजीवनदायिनी सरितामे अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको सर्वथा विलीनकर उसीमे समा जानेकी आन्तर साध लेकर अपने वशिष्टचके साथ प्रेमकी मूलधारामे आ मिला। श्रीभाईजी-जैसे विनीत सद्गृहस्थके उस प्रथम स्पर्शमे—चरण छूकर किये गये प्रणाममे सन्यासी स्वामी श्रीचक्रधर-जैसे वेदान्तपरिनिष्ठितको क्या मिला, क्या दीखा—यह गोपनीय है, उनकी निजकी वस्तु है, अप्रकाश्य है।

इस सर्वसमर्पणमयी, नवीन शीतल मधुधाराका सस्पर्श और उसमे अन्तर्निहित विलक्षण माधुर्यका रसास्वादन करके श्रीभाईजीका हृदय-कमल खिल उठा। अपने प्रेमसूत्रको भविष्यमे वहन कर सकनेकी पात्रता रखनेवाले, समर्थ साथीको अन्तर्भेदी दिव्य दृष्टिसे पहचान लेनेके कारण उन्हे एक अनिर्वचनीय विलक्षण सुखकी अनुभूति हुई। इस नवधाराको अङ्कमे लिये-लिये दूने वेग एव उल्लासके साथ यह भाव-सरिता पुन बढ चली अपने अलक्ष्य लक्ष्यकी ओर, निर्मल निरपेक्ष प्रेमका आदर्श प्रस्तुत करती, प्रेमके स्वभाव एव स्वरूपको अपने प्रत्यक्ष जीवनसे, आचारसे स्नेहिल व्यवहारसे विशद करती हुई एकरूप, एकाकार होकर जन-जनको आप्यायित एव प्लावित करनेके लिये द्रुतगतिसे बह चली।

सिन्धुके स्तनोमे छलछलाता प्रेमक्षीर झर पडनेके लिये मचल रहा था। स्तन दुग्धभारसे पीडित थे। पर इस क्षीरको ग्रहण करनेके लिये स्वर्णपात्र ही कहाँ था? श्रीकृष्णके सुख-सयोजनके लिये व्रजगोपियोके सर्वस्व-त्याग, न्यारा प्यार, विलक्षण दैन्य, विरहविकल दशा, अनन्यता, विमल त्याग, तपपूत जीवनका जो भव्य रूप

श्रीभाईजीके अन्तर्हृदयमे घर किये हुए था, उनके प्राण उसे प्रत्यक्षत अपने जीवनमे चरितार्थ कर दिखानेके लिये, प्रेमका मूर्तिमान् प्रतीक बनकर प्रेमके उच्चतम आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये छटपटा रहे थे। जीव-कल्याण तथा अन्यान्य लौकिक कर्त्तव्यो और लौकिक प्यारका पूरा-पूरा निर्वाह करते हुए, भगवत्प्रेम एव प्रभु-भक्तिके साथ उनका सामञ्जस्य स्थापित करना और नवादर्शकी प्रतिष्ठा कर दिखाना कदाचित् उनके जीवनका सबसे दुष्कर कार्य था। क्योकि प्रेमपाशमे बँधे हुए प्राणियोके स्नेहसूत्रको छिन्न करनेवालोमे उनकी गणना नही थी। बच्चोको रिझा-लुभाकर चुपके-से अपनी झोलीमे डालकर चल देनेवाले मदारी वे नही थे, अथवा फुसलाकर साधु बनानेवालोमे भी उनका स्थान नही था। वे तो ससारी प्राणियोको अपना परिवार, घर-द्वार, नगर-ग्राम न छोडते हुए, जल-कमलवत् जगत्मे रहकर, जगत्से निर्लिप्त रहनेकी परिपाटीके प्रवक्ता थे। इस सम्पूर्ण अन्तर्द्वन्द्वका समुचित हल कदाचित् कोई गृहत्यागी, सयासी, वैरागी निकाल पाता अथवा नही, इसमे सदेह है। परतु श्रीकृष्णके प्रेमी भक्तने, प्रेमतत्त्वके विनीत सदेशवाहकने इसे अपने जीवनमे प्रत्यक्ष कर दिखाया। इस गुत्थीको सुलझानेमे श्रीस्वामी चक्रधरजीके मिलनने अपूर्व योग दिया।

कनकपात्र आ पहुँचा था। अब तो उसमे रखी सामग्री निकालकर, मृदु हाथसे मल-धोकर, हलचल-लुढकना रोक, धूल-धक्कड और बिल्ली-कुत्तोके हाथसे बचाकर, क्षीरको सुरक्षित कर देनेकी व्यवस्थामात्र कर देनेका कार्य ही अवशिष्ट रह गया था। खिलाडी अपने खेलमे सिद्धहस्त था। रमते योगी, बहते पानीसे इस जीवनमे बिलग न होनेका उसने प्रण ले लिया, मन्त्रमुग्धकारी भाषणकलाका मोह छुडाकर मौन धारण करनेकी आज्ञा दे दी, निरन्तर नाम-जपमे आपादमस्तक तल्लीन कर दिया। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व सर्वथा विलीनकर, निज हाथोकी कठपुतली बनाकर, प्रेम-साधनाके विविध सोपानोको द्रुतगतिसे पार कराते हुए, तीव्र वैराग्यके निदर्शन, सर्वथा अकिंचन बन चुके बाबाको आप्यायित करनेके उद्देश्यसे उसे दैनिन्दिन हलचलके केन्द्र गोरखपुरसे दूर ले जानेकी योजना बना ली और दादरीमे कुछ मास पूज्य बाबाके साथ एकान्त साधनामे बिताकर पितृभूमि रतनगढकी मरुभूमिको रससिक्त करने वे चल दिये।

हीरा तो वह मूलत था ही। रत्नपारखी जौहरी हीरेन्द्रके लिये उसे सानपर चढाकर धूल झाडने, बेडौल अङ्ग काटने, और पहलू भर बनानेकी देर थी कि बस, वह हजार-हजार पहलुओसे प्रकाश-विकिरण करने लगा। दर्शकोकी आँखे चौधिया गयी। प्राण-प्रियतमकी विरहाग्निके तापमे, अकल्पनीय अनूठे वैराग्यकी ज्वालामे तपकर पात्र पूर्णत निखर चुका था। सुधा-क्षीरके भारकी पीडा सिहनीके स्तनोको असह्य हो गयी। बस, सुमधुर-सुमिष्ट पीयूष-धारा, पात्रको आपूरित करनेके लिये वेगसे झर पडी। उस धारके प्रत्यक्ष स्पर्श-ग्रहणसे पात्रको क्या मिला—इसे तो पात्र ही जाने। वह वाणीका विषय है ही कहाँ। परतु उस पात्रकी मौन स्थितिमे, उसकी आकृति, स्मित, चाल, चितवन, मधुर हास-परिहास, ठहाके, दर्शन, स्पर्श और सलापने जिसको जो दिया, उसे और उसकी मधुर स्मृतिको उन भाग्यवानोने कृपणके धनके समान आज भी अपनी छातीसे लगा रखा है। पात्र छलछला रहा था और रसिकशेखर अपने ही प्राणोका रस उसमे उँडेलकर एकके पश्चात् दूसरा प्याला ढालते चले जा रहे थे। उनकी उस मदमत्त स्थितिका बखान कौन करे?

श्रीभाईजीने अपने अन्तर्हृदयमे महामहिमामयी व्रज-गोपिकाओका, उनकी जीवन-सर्वस्वभूता महाभावरूपा श्रीराधाका, जो उज्ज्वलतम स्वरूप सँजो रखा था, श्रीकृष्णका सुख ही जिनका जीवन है, उन व्रजगोपियोके निर्मल आदर्शका जो स्वरूप उनके मनमे था, धर्मशास्त्रो तथा रागानुगा-भक्ति-सम्बन्धी रससाहित्यके स्वाध्याय एव श्रीनारदजीसे हुए वार्तालापमे उन्होने प्रेमतत्त्वको जिस रूपमे हृदयगम किया था, उसका ज्वलन्त निदर्शन आधुनिक कालमे जगत्के सम्मुख प्रस्तुत करनेकी बलवती अभिलाषा पूरी होनेका समय निकट आ रहा था। गोपीभावकी साधनाका यथार्थ चित्रण कर सकनेवाले सत्साहित्यके अभावमे, अनेकविध भ्रान्तियोका बीहड वन तैयार हो जानेके कारण, उस सरिताको, बाधाओके पहाड और भ्रान्तियोके वनमे निकालनेके मार्गमे जो कठिनाइयाँ थी, उस भावकी अवधारणा कर पानेके मार्गमे जो अडचने थी, उन्हे निरस्त करने, भाव-सरिताको पुन अपने गन्तव्यकी ओर ले जानेकी वेला आ गयी थी।

बाबा सर्वोच्च भाव-शिखरपर आरूढ हो चुके थे। वे श्रीभाईजीकी कसौटीपर पूरे खरे उतर चुके थे। अपने सर्वस्वके भस्मावशेषपर नाच सकनेवाला प्रेमी आ पहुँचा था। उसने श्रीकृष्णसुखार्थ अपना सर्वस्व अर्पण करके,

निर्जीव काष्ठवत् अपने-आपको श्रीकृष्णके लिये सुखकर किसी भी भूमिकाका निर्वाह करनेके लिये स्वयको पूर्णत सौंप दिया था। श्रीकृष्णकी रुचिके अनुरूप उसे सुखदान करनेके लिये, अपने जीवनके कण-कण तथा क्षण-क्षणका नियोजन उनका स्वभाव बन गया था। श्रीकृष्णके हाथकी कठपुतली बना डाला था बाबाने अपने आपको। श्रीभाईजीके पार्थिव कलेवरके अन्तरालमे अभिव्यक्त कोई भी इच्छा, कोई भी चेष्टा, उनकी दृष्टिमे श्रीकृष्णकी इच्छा थी। उनके इस व्यवहारने श्रीभाईजीको मन्त्रमुग्ध बना डाला था। वे भी कालान्तरमे उनके हाथकी कठपुतली बने दिखायी देते है। जगत् और प्रेमीभक्तोकी दृष्टिमे यह जोडी सर्वथा विलक्षण थी। दोनो दो थे कि एक थे, एक थे या दो थे—यही समझ पाना कठिन हो गया था। कौन यन्त्र है, कौन यन्त्री, कौन सेवक है, कौन सेव्य, कौन आराध्य है, कौन आराधक—इसे हृदयगम कर पाना निकटतम व्यक्तियोके लिये भी सहज नही था और आज भी नही है। प्रेमकी अटपटी भाषामे कहे तो दोनो ही एक दूसरेके चातक थे, घन थे, दोनो ही परस्पर चन्द्र थे, चकोर थे, जल थे, मीन थे, अलि थे, पङ्कज थे। एकके बिना दूसरेकी स्वतन्त्र सत्ताको स्थान नही था। दूसरेके बिना पहलेकी कल्पना नही की जाती थी। दोनो एकरूप होकर बहने लगे थे—भाव रस बन गया था और रस भाव, स्रोत सरिता बन चुका था और सरिता सागर। दोनोके मधुर मिलनपर उत्थित भाव-लहरियोका नर्तन, हिलोरे, भँवर, उत्ताल तरङ्गे—सभी-कुछ तो मधुर था, लोभनीय था, दर्शनीय था।

पर अब इस सचित माधुर्य एव प्यारके मुक्तहस्त दान और जगत्के सम्मुख प्रेमतत्त्वके निगूढ रहस्यके उद्घाटन एव स्वरूप-वितरणका समय निकट आ रहा था। अचिन्त्य लीला-महाशक्ति विश्वरूपी रङ्गमञ्चपर इस नाटकके अभिनयके लिये उपयुक्त भूमिका प्रस्तुत करनेके कार्यमे व्यस्त थी। साथ ही व्यावहारिक जगत्मे, व्यापक स्तरपर श्रीभाईजीके प्रेममय स्वरूपकी अमिट छाप जन-जनके हृदयपर सदैवके लिये अङ्कित करना, उनके आराध्य लीलातनुधारी श्रीविहारीको अभीष्ट था। सरितामे ज्वार आ चुका था। सभी बाँध किनारे तोड-फोडकर तटवर्ती भूमिको रससिक्त करनेकी उसकी लालसा अदम्य बन चुकी थी। सरितामे कल्लोल करनेवाले तनिष्ठ जीवोको ही इस सुख-दानमात्रसे उन्हे परितृप्ति नही थी।

प्रेमकी अधिष्ठात्री करुणामयी श्रीराधाकिशोरीकी प्रेरणासे बहुत छोटे रूपमे उनके जन्मदिवसपर श्रीराधाष्टमी-महोत्सवका सूत्रपात हुआ। अल्पकालमे ही इसने वृहदाकार धारण कर लिया। देशके हर कोनेसे प्रतिवर्ष हजारोकी सख्यामे साधक, भक्त, सत-महात्मा, गुणी-ज्ञानी, अशान्त-क्लान्त, पापी-तापी—सभी इसमे डुबकी लगानेके लिये आने लगे। पात्र छलक उठा था। सरिता उमड पडी थी। बाँध टूट चुका था। अपने निर्जीव शुष्क प्राणोको सरस बनाने, स्नेह-प्रेम और करुणाका पाठ पढने, सहस्र-सहस्र श्रमित, थकित, तृषित प्राणी उमड पडे। उत्सव-मञ्चसे श्रीभाईजीके श्रीमुखसे झरते हुए सुधा-सीकरोसे सम्पूर्ण वायुमण्डल रससिक्त रहता था। महाभावरूपा श्रीराधाके नामको अहर्निश निरन्तर रटते-रटते, उसीकी भाव-दशाका चिन्तन-मनन एव ध्यान करते-करते बाबा तन्मय बन चुके थे। उनकी भाव-विह्वल स्थिति अपने-आपमे अत्यन्त सशक्त मूक व्याख्यान थी। रसमत्त, बेसुध, भावविभोर राधाबाबाका हाथ पकडे छडी टेकते श्रीभाईजी जब उत्सवके पडालमे पग धरते थे, तब उन्हे अपना जीवन-सर्वस्व माननेवाले प्रेमियोकी जो मनोदशा हुआ करती थी, उसे शब्दोमे अङ्कित कर पाना किसीके वशकी बात नही। सतत कई दिनकी रसवर्षामे रसकी बाढ आ जाती थी और इस बाढमे 'जो डूबा सो पार हो गया।'

श्रीराधामाधवकी रसमयी लीलाओमे नित्यनिमज्जित श्रीभाईजीके श्रीमुखसे श्रीराधाष्टमी-महोत्सवपर जो रसधारा बहा करती थी, अपनी स्वानुभूतियो तथा गहन अध्ययनके आधारपर श्रीकृष्ण, श्रीराधा, राधाकृष्ण-युगल, गोपीभाव एव प्रेमतत्त्वके निगूढ रहस्योके विषयमे जो सरस और सारगर्भित प्रवचन उनके द्वारा हुआ करते थे—उन्हे सुनकर एव उनकी मुख-माधुरीका दर्शन कर भक्तोके हृदय-कमल खिल उठते। उनकी अर्द्ध भावसमाधिकी अवस्थामे अनायास कुछ सुधा-सीकर सरस पदो एव छन्दोके रूपमे यदा-कदा बरस पडते थे। इसके अतिरिक्त भी अनेको सरस पदोकी रचना श्रीभाईजीके द्वारा हो चुकी थी। उत्सवके अवसरोपर इन पदोके साथ-साथ अन्यान्य रसिक सतोके पद-गान एव भावुक भक्तोकी मधुर तानमे सम्पूर्ण वातावरण स्निग्ध हो उठता था। श्रीराधाजीके जन्मकी आरती करते तथा दधिकर्दमके समय भूमिपर निर्मित राममण्डलकी अर्चना करते हुए श्रीभाईजीकी बेजबान मस्ती जो दशा हुआ करती थी, उसको शब्दोमे व्यक्त कर पाना कठिन है। श्रीभाईजीके

सकीर्तनपर उद्दाम नृत्यके लिये अधीर भक्तोके भालपर स्वकरसे दधिलेपन करते देखकर सभी अपने भाग्यकी सराहना करते नहीं थकते थे। परंतु अब तो उन दिनोकी मधुर-स्मृति टीस बनकर रह गयी है। स्मरण आते ही अश्रुप्रवाह रोक पाना असम्भव हो जाता है। उनके मधुर सम्भाषण, उस युगल जोडीकी उपस्थितिमे पद-गायन, कीर्तन एव नर्तन, उनके करकमलोद्वारा नीराजन एव दधिलेपनकी कहानी मात्र शेष रही है, जो उनकी स्नेहमयी, सरस, शीतल छायामे पले, बढे बडभागियोको आजीवन रुला-रुलाकर उनके कलुषित हृदयका मल धोती रहेगी।

श्रीराधाष्टमी-महोत्सवको निमित्त बनाकर, प्रेमतत्त्वके अति गुह्य रहस्योको सहज ढगसे प्रकट करनेके लिये श्रीभाईजीने जो पीयूषधारा अपने प्रवचनो, लेखो, गीतो तथा पदोके रूपमे बहायी है, उसका कुछ अश 'श्रीराधा-माधव-चिन्तन'-जैसे अद्वितीय ग्रन्थके रूपमे जगत्के सम्मुख है। प्रेमतत्त्व-विषयक एव भक्ति-विषयक उनका विशाल, सरस सत्साहित्य यत्र-तत्र पुस्तक-पुस्तिकाओ, पत्र-पत्रिकाओ, 'मधुर' शीर्षकसे लिखे प्रेम-काव्य और अपने अन्तरङ्ग भक्तोको व्यक्तिगत रूपसे लिखे गये सहस्रो पत्रोमे सचित है। श्रीभाईजीकी प्रेरणा-आग्रहसे पूज्य बाबा श्रीचक्रधरजीने भी 'श्रीकृष्णलीला-चिन्तन'-जैसे अनुपम ग्रन्थकी रचना की है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त ललित-भाषामे अन्य कुछ साहित्य भी उनकी रसमयी लेखनीद्वारा लिखा गया है। यह सम्पूर्ण सग्रह छलछलाता, लहराता, मधुर रससे पूरित 'अक्षय प्रेम-सरोवर' बन गया है, जो युग-युगान्ततक श्रद्धापूर्वक अभिषेक, निमज्जन, अवगाहन एव दर्शन करनेवालोको भावसागरमे निमग्न करके सुख-शान्ति देता रहेगा।

अलौकिक भावपूर्ण लीलाओमे सतत लीन श्रीभाईजीकी इसी स्नेहमयी मूल प्रेमधारामेसे जीव-कल्याण, नाम-प्रचार, धर्म-जागरण, आर्त्त-सेवा, गौ-रक्षा एव साहित्य-सृजन-जैसी कितनी ही छोटी-बडी सर-सरिताएँ फूट पडी थीं, परतु उन सभीमे आधाररूपसे उनके हृदय-देशसे निस्सृत मूल प्रेमधाराका अमृत ही छलक रहा है—रस-रूप भगवान् श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही उनमे ओत-प्रोत होनेके कारण श्रीभाईजी इन समस्त क्षेत्रोमे नव-आदर्शोकी प्रतिष्ठा करनेमे सफल हुए है। लौकिक व्यवहारके क्षेत्रमे उनका जो रूप जगत्के सम्मुख है, उसने न जाने कितने लोगोको पागल बना रखा है। अत उनका स्मरण आते ही यदि धैर्य छूट जाय, लेखनी रुक जाय, बुद्धि कुण्ठित होकर विचार करना छोड दे, हृदय भर आये और कोई फूट-फूटकर रो पडे तो इसमे आश्चर्य ही क्या है।

भाव-भास्कर श्रीभाईजीकी स्नेहिल छविका दर्शन, उनके साथ किंचित् प्रेमालाप तथा उनके द्वारा प्रवाहित प्रेमाभक्तिकी सरस मधुधारामे अवगाहन करनेके लिये विविध प्रसङ्गोपर देशके कोने-कोनेसे सहस्रश भावुक भक्त, गुणी, ज्ञानी और साधक आते रहते थे। उनके साथ-साथ उत्सवके मिससे मायिक थपेडोसे जर्जरित, थकित, श्रमित एव खिन्न महानुभाव भी आते ही थे। उत्सवमे श्रीभाईजीका सकेत प्राप्त होते ही सकीर्तन आरम्भ होनेपर समस्त लोक-लाज, पद-प्रतिष्ठा भूलकर नृत्यके लिये उनके पग थिरकने लगते। उस वट-वृक्षकी शीतल छायामे सबका अवसाद विलुप्त हो जाता था। उनके सतत स्नेहसे पूर्ण रसछके नैन-कगारोसे सतत निर्झरित मधुरिमा और स्नेहामृतका पान करनेके लिये हृदय छटपटाता रहता था। उनकी मधुर छविको अपने अन्तरतमसे सँजो लेनेके लिये, अमूल्य थाती बना लेनेके लिये, आँखे तरसती रहती थीं, उनके दो शब्द सुनते ही अपने भावी जीवनका उन्हे पाथेय बनाकर पुन सभी चल पडते थे।

पतितपावनी कलकल करती गङ्गाके क्रोडमे स्थित गीताभवनके सत्सङ्गमे इन विदेह सद्गृहस्थके चरण-प्रान्तमे बैठकर कितने ही सन्यासी, यति, विद्वान्, साधक, भक्त ज्ञानी और कर्मयोगी इस मानव आकृतिके उस पारसे अभिव्यक्त किसी दिव्य विभूतिकी सुधारसमयी अमृतवाणीका पान करनेके लिये लालायित रहते थे। आबाल-वृद्ध, नर-नारी, सिद्ध-साधक, पण्डित-मूर्ख, पापी-पुण्यात्मा—सभी जिनके मुख-सरोरुहके दर्शन करनेके लिये आतुर रहते थे, उस महाभागने अनेकविध उपलब्धियोद्वारा जन-जनके हृदयपटलपर जो अमिट छाप अङ्कित की है, जो स्नेह-दिलदान और प्यार पाया तथा बिखेरा है, लक्षावधि लोगोको भगवान्की ओर उन्मुख करके भजन-साधनमे प्रवृत्त किया है, अपने निस्स्पृह मानवहितकारी कार्य-कलापोद्वारा सेवा-भावका जो आदर्श और कीर्तिमान प्रस्तुत किया है उन सबकी स्मृतिमात्रसे अभी भी अनेकोकी आँखे झरती-झरती रहती है। उन प्रेम-वारिधि श्रीभाईजीके पाद-पद्मोमे हमारे कोटि-कोटि प्रणाम—कोटि-कोटि वन्दन।

●

श्रीभाईजीके अभिनन्दनकी विभिन्न योजनाएँ

श्रीभाईजीकी विविध अप्रतिम सेवाओंसे जनमानस इतना उपकृत हुआ कि अपने कृतज्ञता-ज्ञापनके लिये उसने श्रीभाईजीके अभिनन्दनकी अनेक विशाल योजनाएँ बनायी, किंतु अमानित्वकी साकार मूर्ति श्रीभाईजीने किसीको भी सफल नहीं होने दिया। जिस प्रकार अंग्रेजी सरकार और देशकी स्वतन्त्र सरकारद्वारा बडी-से-बडी उपाधियोंके प्रस्तावोंको उन्होंने सहजरूपसे अस्वीकार कर दिया, उसी प्रकार अभिनन्दन-आयोजनको भी उन्होंने विफल बना दिया। वैसे भी, आजकलकी जो अभिनन्दन-परिपाटी है, उसको वे बडा हेय समझते थे।

सर्वप्रथम १९५३में आचार्य प० श्रीसीतारामजी चतुर्वेदीने 'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थ समिति'का सगठन किया, जिसके समर्थकोंमें महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज, डॉ० राजबलीजी पाण्डेय आदि वरिष्ठ महानुभाव सम्मिलित थे। इस आयोजनको कार्य-रूप देनेके लिये श्रीचतुर्वेदीजी महाराजने अभिनन्दन-की रूपरेखाको एक ट्रैक्टके रूपमें प्रकाशित करवा लिया था, किंतु जब श्रीभाईजीको इस आयोजनकी जानकारी हुई, तब उन्होंने बडी विनम्रता, किंतु दृढताके साथ इसका विरोध किया। उन्होंने अपने १७-१२-५३ के पत्रमें लिखा—

"मेरे प्रति आप महानुभावोंका जो अकृत्रिम प्रेम है, उसके लिये मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ। परतु आपलोगोंने मेरे सम्मानके लिये जो कार्य आरम्भ किया है, आपके सद्भावके प्रति सिर झुकाकर आदर प्रकट करते हुए भी मुझे खेद है कि मैं उसका समर्थन किसी हालतमें नहीं कर सकता। आपलोगोंके हृदयको ठेस पहुँचे, यह मेरे लिये बडे खेदकी बात है, तथापि मेरा यह निश्चित मत है कि मुझे इस प्रवृत्तिका सर्वथा विरोध ही करना है। महाभारतमें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है कि 'अपने मुखसे अपनी प्रशसा करना आत्महत्या करना है।' वैसे ही अपने प्रयत्नसे मित्रोंके द्वारा अपनी प्रशसा करवाना, उसमें सहयोग देना और उसे सुनना भी आत्महत्या ही है। आप मेरे हितैषी हैं, मुझपर स्नेह रखते हैं, मुझे प्रसन्न देखना चाहते हैं, इसलिये मेरी प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक ऐसा कोई भी प्रयत्न न करें, जिससे मुझे दुःख हो और मेरा अहित हो।

जिन पूजनीय श्रीकविराजजी आदि महानुभावोंने इसका समर्थन किया है, वे बडे सहृदय पुरुष हैं और वास्तवमें सम्मान तथा अभ्यर्थनाके सुयोग्य पात्र तो वे ही लोग हैं। उनका मेरे प्रति स्नेह है और वे महान् आशय हैं, इससे उन्होंने इसका समर्थन किया है, परतु मैं तो सचमुच इसके सर्वथा अयोग्य हूँ। आपलोगोंकी, मधुर स्नेह रखनेवालोंकी गुणदर्शिनी दृष्टि ही मुझमें गुण दिखलाती है। आपलोगोंके हृदयकी विशालता है, जिससे आपको मुझमें गुण दीखते हैं। पर मुझमें कितने दोष हैं और मैं कितनी दुर्बलताओंसे भरा हुआ एक तुच्छ प्राणी हूँ, इसको मैं जानता हूँ और मेरे अन्तर्यामी जानते हैं। अतएव मैं इस सम्मानका पात्र कदापि नहीं हूँ। आप यदि यह न भी मानें—यद्यपि यह सर्वथा सत्य है, मैं केवल नम्रता दिखानेके लिये नहीं लिख रहा हूँ—तो भी उपर्युक्त सिद्धान्तके अनुसार मैं किसी भी रूपमें आपके इस कार्यका समर्थन नहीं कर सकता। न इसमें सहयोग दे सकता हूँ और न दूसरे किसीको भी सहयोग देनेकी प्रेरणा दे सकता हूँ। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं मान-बडाईकी कामनासे मुक्त हूँ। कौन जानता है कि यह सम्मान-विरोध भी मैं सम्मान पानेके लिये नहीं कर रहा हूँ? यह मेरी कमजोरी है, पर सम्मानमें मेरा पतन है, यह तो सत्य ही है। अतएव आपलोगोंसे हाथ जोडकर मैं बडी विनयके साथ प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपया इस कार्यको सदाके लिये तुरत त्याग दीजिये। मुझे बडा सुख होगा, उसे मैं आपके द्वारा दिया हुआ परम सम्मान समझूँगा, हृदयसे किया हुआ अभिनन्दन मानूँगा, जो इससे अधिक मूल्यवान् होगा और आपलोगोंका कृतज्ञ होऊँगा। आशा है, आप मेरी विनीत प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।

यदि आप मेरी इस प्रार्थनाको नही सुनेगे तो मुझे इसका खुला विरोध करनेके लिये वाध्य होना पडेगा, जो मेरे लिये वडे सकोचकी वात होगी। आपलोगोकी पवित्र और प्रेमभरी सद्भावनाका इस प्रकार तिरस्कार करता हूँ, इसका मुझे वडा खेद है और इसके लिये मैं हाथ जोड़कर क्षमा चाहता हूँ।"

इसके पश्चात् सन् १९६२मे उनके कतिपय श्रद्धालुजनो और स्वजनोने उनके वृहद् जीवन-वृत्त-प्रकाशनकी योजना वनायी, किंतु जव श्रीभाईजीको इसकी जानकारी हुई, तव उन्होने आयोजकोको दिसम्बर ६२मे पत्र लिखा—"मेरे जीते-जी जीवनी लिखने, लिखवानेकी वात सोचना, करना मेरे लिये मरनेके समान ही है। मुझे इससे वडा दुख होता हे। अत मैं हाथ जोडकर प्रार्थना करता हूँ कि इस कामको ही नही, इस विचारको ही सर्वथा त्याग दे।" आयोजकोको चुप हो जाना पडा।

तीसरी वार, श्रीभाईजीके स्वजन एव प्रिय सहयोगी सम्मान्य डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'ने श्रीभाईजीके जीवन-वृत्त तैयार करनेका निश्चय किया। श्रीभाईजीने सितम्वर १९६३मे एक वडा ही आत्मीयता-पूर्ण और मर्मस्पर्शी पत्र लिखा और उनसे आग्रह किया कि "लोकप्रथाके अनुसार मेरा समादर करके लोकसेवाका जो प्रयास आप कर रहे है, अत्यन्त प्रीतिके साथ, जरा भी दुखका अनुभव न करते हुए गम्भीरतापूर्वक मेरी मनोवृत्तिपर और इस कार्यके दोषोपर विचार करके उसे त्याग दे।" श्रीमाधवजीने, जो जीवनभर भाईजीके अनुगत रहे, इस पत्रको पाकर जीवनी लिखनेका अपना विचार स्थगित कर दिया।

चौथी वार, श्रीभाईजीके अभिनन्दनकी एक विशाल योजना उनके घनिष्ठ मित्र तथा प्रसिद्ध समाजसेवी कलकत्तानिवासी श्रीओकारमलजी सराफने वनायी। उसमे चतुसूत्रीय आयोजन करनेका निश्चय किया गया—प्रथम—'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार अभिनन्दन-ग्रन्थका प्रकाशन, द्वितीय—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार हीरकजयन्ती समारोह, तृतीय—कलकत्ता नगरमे 'श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मृति-भवन'की स्थापना एव निर्माण और चौथा—श्रीभाईजीके जीवन-सदर्भमे गीतापर एक फिल्मका निर्माण। इसके लिये उन्होने कार्य भी आरम्भ कर दिया और लगभग १०-१५ हजार रुपये इसमे अपने पाससे लगा दिये। श्रीभाईजीने २०-४-६८को एक वडा ही स्नेहभरा पत्र उनको लिखा, जिसमे उन्होने आग्रह किया—"भाई ओकारमल! मै तुम्हारे स्नेहपर भरोसा करके तुमसे यह विनम्र अपील करता हूँ कि तुम इस आयोजनको तुरत वद कर दो। तुम्हारा काम वहुत आगे वढ चुका हे, यह ठीक है। तुम चाहो तो यह घोषणा कर दो कि 'हनुमानके दुराग्रहसे यह वद करना पडा।' यह मै तुमसे नम्रतासे, जोरसे, हाथ जोडकर, तुम्हारा हाथ पकडकर तुमसे अनुरोध करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, वलपूर्वक आग्रह करता हूँ—कुछ भी समझो, इसे वद कर दो। मेरी लाज अव तुम्हारे हाथ है। अधिक क्या लिखूँ।" सच्चे मित्रको अपने मित्रके अन्तर्हृदयके इस अनुरोधको स्वीकार करना पडा।

पाँचवाँ प्रयास सम्मेलन-पत्रिका, प्रयागके सम्पादक प० श्रीज्योतिप्रसादजी मिश्र 'निर्मल'ने दिसम्बर १९६८मे किया। श्रीभाईजीने अपने चिर-सहयोगी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीद्वारा श्रीमिश्रजीको वडी विनम्रतापूर्वक इस कार्यसे विरत होनेके लिये लिखवा दिया। श्रीमिश्रजीको विवश होकर इस आयोजनको स्थगित करना पडा।

छठी वार, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी ओरसे श्रीभाईजीको हिंदी-जगत्की सर्वोच्च सम्मानित उपाधि प्रदान करनेका प्रस्ताव सम्मेलनके प्रथम शासन-निकायके सचिव श्रीमौलिचन्द्रजी शर्माने माघ शु० ८, सवत् २०२५को रखा। श्रीभाईजीको इस अवसरपर आमन्त्रित किया गया था, पर उन्होने उपाधिदानका ही विरोध किया। फलत अध्यक्षने यह कहकर कि 'पोद्दारजी आज इस समारोहमे उपस्थित नही है, उनकी उपाधि उन्हे भेज दी जाय'—श्रीभाईजीको 'साहित्य-वाचस्पति'की उपाधि प्रदान कर दी। किंतु श्रीभाईजीने इस उपाधिका एक दिन भी उल्लेख अपने नामके साथ नहीं किया।

सातवी बार, सितम्बर १९७०मे 'साप्ताहिक हिंदुस्तान'के सम्पादक श्रीगोविन्दप्रसादजी केजडीवालने डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'मे एक सुन्दर लेख श्रीभाईजीपर लिखवाकर प्रकाशित किया तथा कुछ स्वजनोकी प्रेरणासे अनेको पत्र-पत्रिकाओमे श्रीभाईजीकी ७८वी जयन्तीके अवसरपर उनके जीवन एव कार्योके सम्वन्धमे सम्मान्य विद्वानोके लेख प्रकाशित हुए। श्रीभाईजीको जव इन प्रकाशनोकी जानकारी हुई, तव उन्हे वडा दुख हुआ। उन्होने अपने स्वजन श्रीमाधवजीको २७-९-७०मे एक वडा ही मार्मिक पत्र लिखा, जिसके अन्तमे उन्होने ये विचार व्यक्त किये —'फूलोका हार पहननेमे जो आनन्द हो, वही जूतोकी माला पहननेमे भी हो, तव तो इस प्रकारके आयोजनोके सम्वन्धमे मुझे नही वोलना चाहिये था, पर ऐसी स्थिति नही है। अतएव आपलोगोको मेरे विचारोकी, सिद्धान्तोकी रक्षामे मेरी सहायता करनी चाहिये।' अन्य सम्मान्य महानुभावोसे भी श्रीभाईजीने इस कार्यमे विरत होनेकी वडी ही दैन्यभरी प्रार्थना की।

आठवी बार, अप्रैल १९७०मे पटनाके श्रीगुरुगोविन्दसिह कॉलेजके हिंदी विभागके डॉ० श्रीकृष्ण उपाध्यायने डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव'के निर्देशानुसार एक विशाल अभिनन्दन-योजनाका निर्माण किया, जिसमे पूज्य श्रीकविराजजी, डॉ० हजारीप्रसादजी द्विवेदी, डॉ० श्रीवलदेव उपाध्याय आदि महानुभावोको सम्पादक-मण्डलमे लिया गया था। उक्त महानुभावोने इस कार्यमे सहयोग करनेके लिये अपनी कृपापूर्ण स्वीकृति भी प्रदान कर दी थी, परतु श्रीभाईजीने इसको भी सफल नही होने दिया।

नवाँ प्रयास महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगोपीनाथजी कविराजसे आशीर्वाद लेकर गोरखपुर विश्वविद्यालयके हिंदी-विभागके रीडर डॉ० श्रीभगवतीप्रसादसिहजीने अप्रैल-मई १९७०मे किया। भाग्यसे उनको इस कार्यमे श्रीभाईजी-के विशेष स्नेहभाजन एव कृपापात्र एक सेवकका सहयोग उपलव्ध हो गया। डॉ० साहव श्रीभाईजीसे प्राय प्रतिदिन मिलने लगे और उनसे अपने जीवन एव साधना आदिकी वातोका परिचय प्राप्त करने लगे। श्रीकविराज-जीके प्रति श्रीभाईजीकी विशेष श्रद्धा थी। अतएव उनका आशीर्वाद इस आयोजनमे होनेसे श्रीभाईजी खुलकर इसका विरोध नहीं कर सके। इतना ही नही, अपने सेवकके प्रेमाग्रहके कारण श्रीभाईजीने अपने जीवनकी वहुत-सी ऐसी अन्तरङ्ग वाते, जो उन्होने आजतक किसीको नही वतायी थी, प्रकट कर दी। किंतु उन्होने उक्त दोनो व्यक्तियोसे यह आग्रह किया था कि उनके जीवनकालमे उन तथ्योका प्रकाशन न हो, परतु कार्य चलता रहा। श्रीभाईजीने १२ जनवरी १९७१ को अपने सेवकको एक पत्र लिखा, जिसमे ये शब्द थे—"भैया! मेरी प्रार्थना है कि तुम इस विषयपर फिरसे विचार करो और इस कार्यको यही रोक दो। मेरे इस निवेदनको पढकर सम्भव है, तुम्हे दुख हो। मुझे भी इसका वडा सकोच है, पर कठिन धर्मसकट आ गया है, इसीसे मैने तुम्हारे दुखकी सम्भावना समझकर भी ऐसा किया है।" दोनो ही सज्जनोकी स्थिति किंकर्तव्यविमूढकी-सी हो गयी। वे विचार कर ही रहे थे कि क्या किया जाय, इसी वीच श्रीभाईजी अधिक अस्वस्थ हो गये और देखते-देखते २२ मार्चको सदाके लिये भगवान्की लीलामे लीन हो गये।

इस प्रकार इस महामनीषीने अपने सर्वथा निस्पृह एव अमानी स्वभावके कारण वडी ही विनम्रतासे प्रार्थना एव आग्रह करके सम्मान्य महानुभावो, स्वजनो, मित्रो एव सेवको आदि किसीके भी अभिनन्दन-प्रयासको सफल नही होने दिया। अन्तिम प्रयासमे अपने सेवकके प्रेम-सकोचके कारण उन्होने अपने जीवनकी जो अन्तरङ्ग वाते प्रकाशित की, वे निश्चय ही परम महत्त्वपूर्ण और अलौकिक है। उन तथ्योके आधारपर इस ग्रन्थमे यथावसर लिखा गया है। उनके वृहद् जीवन-वृत्तमे, भगवान्ने चाहा तो, उन तथ्योका पूर्ण समावेश होगा।

●

प्रवासी भारतीयोंको मार्गदर्शन

[श्रीभाईजीकी रचनाओसे, 'कल्याण' एवं 'कल्याण-कल्पतरु'से तथा गीताप्रेससे प्रकाशित साहित्यसे प्रवासी भारतीयोको विदेशोमे रहते हिंदू-धर्म, संस्कृति, आचार-विचार आदिको बनाये रखनेमे कितनी सहायता प्राप्त हुई है--इसका कुछ दिग्दर्शन इन श्रद्धाञ्जलियोसे प्राप्त किया जा सकता है।]

गोरखपुरके भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजीके निधनसे भारतवर्षके एक अत्यन्त जाज्वल्यमान रत्नकी हानि तो हुई ही है, सम्पूर्ण विश्वकी भी इस कारणसे अपार क्षति हुई है।

हम ऐसे युगमे जीवन धारण करनेके कारण अतिशय सौभाग्यशाली है, जिस युगमे मेरे पितास्वरूप श्रीभाईजी-जैसी एक अति महान् आत्माने चतुर्दिक् अपना दिव्य प्रकाश प्रसारित किया। इस प्रकाशकी शक्ति इतनी महान् है कि इससे केवल भारतवर्ष ही उद्भासित नही हुआ, अपितु लाखो अन्य लोगोने हजारो मील सुदूर विदेशोमे सत्प्रेरणा ग्रहण की तथा अपने जीवनको सुधारकी दिशामे परिवर्तित किया। यह सत्प्रेरणा इन महान् आत्माके द्वारा दिये गये सदुपदेशोसे, उनके लेखोसे ही नही, अपितु उनके जीवनके पल-पल, क्षण-क्षणसे प्राप्त हुई है। उनका जीवन नश्वर देहपर विजय लाभ करके परब्रह्मकी प्राप्तिके लिये समर्पित हुआ। उनका जीवन क्षुद्र स्वार्थको लेकर नही था। वे मात्र अपने लिये नही जीवित थे, उनके जीवनका ध्येय मानवताकी सेवा था तथा उन्होने इसका निर्वाह जीवनके अन्तिम क्षणतक किया। अपने जीवनके लिये उन्होने कभी सिद्धान्तोका हनन नही किया। यही किसीके जीवनकी महानतम परीक्षा होती है।

मेरी सबसे बडी आकाङ्क्षा थी कि मै किसी भगवत्प्राप्त पुरुषके जीवन्त रूपमे दर्शन करके उनके सदुपदेश श्रवण कर सकूँ। मैने इसी निमित्त ट्रिनीडाड (दक्षिण अमेरिका) से भारतकी यात्रा (जुलाई-अगस्त १९७० मे) की। मै पवित्र भारत देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक भ्रमण करती रही, तब कही अन्तत गोरखपुरमे मेरी आँखे ऐसी पवित्रात्माके दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो सकी, जो वस्तुत जीवन्मुक्त थी। मुझे ऐसा सौभाग्यपूर्ण अवसर प्राप्त हुआ कि मैने उनके समाधिलीन अवस्थामे दर्शन किये, जब वे देहज्ञान-शून्य होकर भगवत्सयोगमे तल्लीन थे। मुझे उनके उस समयके भी दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ, जब वे समाधिकी स्थितिसे बाहर आ गये थे तथा ऐसी भाषामे बोलने लगे, जिसका अनुभव ही किया जा सकता था। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि यद्यपि वे भौतिक धरातलत पर स्थित थे, तथापि उनकी वचनावली इस जगत्की नही थी। ऐसा लगता था कि इस विश्वप्रपञ्चके कार्यकलापोसे उनका कोई प्रयोजन न था, अपितु उनका जीवन विशुद्ध आध्यात्मिक था। मै परम सौभाग्यशालिनी रही कि उन्होने प्रसन्नतापूर्वक मुझे अपनी 'पुत्री'के रूपमे स्वीकार किया। यद्यपि मै उनके अभावसे दुखित तथा शोकाकुल रहती हूँ, तथापि जब-जब मै उनका स्मरण करती हूँ, नेत्रोसे निसृत अश्रुधाराको रोकनेमे अपनेको असमर्थ पाती हूँ। यद्यपि अब मै पितृविहीना हो गयी हूँ, तथापि मै अपने हृदयके अन्तस्तलमे अनुभव करती हूँ कि उनका सर्वसमर्थ परमात्माके लीलाराज्यमे प्रवेश हो गया है। मै असदिग्धरूपसे अनुभव करती हूँ कि जब भी मुझे आध्यात्मिक पथपर अग्रसर होनेमे आवश्यकता होगी, वे मुझे सहायता प्रदान करेगे।

मै उनके अभावको अपने लिये अपूरणीय क्षति अनुभव करती हूँ। अपने मधुर पिता श्रीभाईजीके परमधाम चले जानेके कारण मै भगवत्प्राप्तिकी अपनी दीर्घकालसे पोषित आकाक्षाको अपूर्ण लिये हुए ही इस ससारसे विदा हो जाऊँगी। मै अनुभव करती हूँ कि इस विषयमे मैं अकेली ही ऐसी नही हूँ, मेरे प्यारे पतिदेव भी, जिन्होने उन्हे अपने 'नाना'के रूपसे ग्रहण किया था, उनके वियोगसे भग्नहृदय हो गये है। जब-जब हम उनके विषयमे कुछ पढते है अथवा विचार करते हैं, हमारा हृदय भर आता है। सत्य ही पूज्य बाबूजी हमारी जानकारीमे आये हुए पुरुषोमे महानतम थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ईश्वरीय प्रशस्तिगानकी स्वरलहरी है—वह भगवान् श्रीकृष्णकी

वेणुके सदृश है। अब यह वेणु हमलोगोके हाथो सौंपी गयी हे। हम परम निष्ठासहित प्रार्थना करते हे कि जिनपर यह उत्तरदायित्व आ पडा है, वे सब सनद्ध होकर इस महान् तथा भव्य कर्तव्यको पूर्ण करे। हमारी जीवन-ज्योति लुप्त हो गयी। परतु उन्होने जो ज्योति जलायी है, वह कभी मन्द नही हो सकेगी, कारण वह आत्माका दीप पूज्य बाबूजीकी स्वयकी आत्माद्वारा जलाया गया था। मेरी अभिलाषा है कि यह दीप अनन्तकालतक प्रकाशोज्ज्वल रहकर विश्वको प्रकाशित करता रहे।

पूज्य बाबूजीके अभावमे गोरखपुर शहर अत्यन्त उदास एव श्रीहीन हो गया होगा। आह ! हमारी कितनी अभिलाषा है कि वे पुन लौट आते और हम उनके दर्शन करते। पूज्य बाबूजीके तिरोधानसे भारत-वर्षकी तथा सम्पूर्ण विश्वकी कितनी अपार क्षति हुई है, इसे कोई जान नही सकता।

देवकीदेवी शिवनारायण
ट्रिनीडाड (दक्षिण अमेरिका)

● ● ●

महान् आत्मा श्रीपोद्दारजीके प्रयाणसे हम बडे दु खी ह और उनके परिवार तथा साथियोके प्रति अपनी महती श्रद्धा एव हार्दिक सहानुभूति प्रेषित करते हे। उनके जानेसे हमारी परिषद्को भी क्षति पहुँची है। प्रवासमे रहते हुए हम भारतीयोको उनकी स्मृति चिरस्मरणीय रहेगी। उनके अभावकी पूर्ति होना सर्वथा असम्भव हे।

पण्डित तिलकधारी
अरौका, ट्रिनीडाड (दक्षिण अमेरिका)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजीकी आत्मा बहुत ऊँची थी। उनकी लगन, नि स्वार्थ सेवा, परमार्थकी भावना, हिंदू-संस्कृतिकी सेवा तथा शान्ति प्रदान करनेवाली उनकी रचनाएँ उन्हे सदा अमर रखेगी।

हमलोग १९ वर्षोसे विदेशोमे है। हमे दु ख हे कि उन महान् सतके दर्शन हमे केवल लेखोके रूपमे प्राप्त हुए, हम गीताप्रेस, गोरखपुर जाकर उनके दर्शन नही पा सके और न पा सकेगे।

श्रीपोद्दारजीके विचारोकी जो छाप हमारे जीवनपर पडी हे, उसका शब्दोमे वर्णन नही किया जा सकता। 'कल्याण'मे प्रकाशित उनके विचार, प्रकाश-स्तम्भकी भाँति तूफानो, चट्टानो-जैसी बाधाओसे हर तरहसे बचाते रहे हैं। उन्होने हमे सहारा दिया है, स्थिर एव सजग रखा हे, वरना हम कभीके अपनी नौकाओको टकरा-टकरा-कर तोड डालते, अथाह समुद्र—विदेशी विचार एव पश्चिमी सभ्यतामे डूबो देते और खुद डूबकर दु खी होते, जैसा हम अनेको भाई-बहिनोको देखते है। अलबर्टा, कनाडामे 'हिंदू-सोसाइटी' नामकी एक सस्था है। हिंदू-त्योहारो-को मनाना, भजन-कीर्तन करना, गीताका पाठ, रामायण-पाठ—ये सब उसके साधारण साप्ताहिक कार्यक्रम हैं। इस सस्थाकी स्थापना, सचालन एव उसे आजके रूपमे सक्रिय करनेका जो कुछ भी काम मैंने किया हे, वह सब श्रीभाईजीके विचारोसे प्रभावित होकर, या यो कहिये कि उनकी प्रेरणासे ही किया है।

परमपितासे प्रार्थना हे कि श्रीभाईजीद्वारा प्रवर्तित 'कल्याण'को वे उसी प्रकार चालू रखे एव गीताप्रेसको शक्ति दे कि उसकी किरणे उस महान् आत्माके आशीर्वादसे—जो जाते समय उसे हाथ उठाकर दे गये थे—सबको प्रकाश देती रहे और हम अपनी जीवन-नौकाको गन्तव्य स्थानपर ले जानेमे समर्थ हो।

विष्णु नारायण कटारे
अलबर्टा, कनाडा

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारका जीवन एक ग्रन्थ है। वे देवताओके देव थे। वास्तवमे महापुरुषोकी महिमाका वर्णन नही हो सकता। उनका भगवान्पर अगाध विश्वास और अपने कार्यके प्रति अटूट लगन उनके व्यावहारिक

एव साधनात्मक जीवनका वास्तविक परिचय देते है, साथ ही भारतीय सस्कृति एव धर्मकी गौरवपूर्ण गाथाका एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते है। हमारी हिंदू सभ्यता और सस्कृति हजारो वर्षोकी श्रमसाध्य उपलब्धियाँ है, जो जीवनको समृद्ध और उन्नत करती है। हम-जैसे भारतसे बाहर रहनेवालोके लिये 'कल्याण' तथा गीता-प्रेसके प्रकाशनोके रूपमे श्रीपोद्दारजीका आदर्शवादी साहित्य अत्यधिक सहायक हुआ है। वे सच्चे अथमे कर्म-योगी थे।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके प्रति हमारी और हमारे परिवारकी ओरसे श्रद्धा-सुमनाञ्जलि अर्पित है।

श्रीमती बृज कटारे
अलबर्टा, कनाडा

● ● ●

परमश्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भारतीयताके उज्ज्वल आदर्शके रूपमे प्रत्येक भारतीयको सदैव स्मरण रहेगे। हम भारतीय भौगोलिक दृष्टिसे भारतसे दूर होनेपर भी भारती और भारतीयतासे कभी दूर नही हो सकते। श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने भक्ति, ज्ञान, सदाचारकी ऐसी गङ्गा बहायी, जिसमे अवगाहन कर प्रत्येक जन-मन अपनी कालिमाको कभी भी धो सकता है।

भारतकी पवित्र भूमिने अगणित दिव्य विभूतियोको जन्म दिया है। मानवको मानवताके निकट लानेमे भारतमाताके जिन सपूतोने प्रयास किये है, उनमे 'कल्याण'-प्रेमी ससार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको कभी नही भुला सकेगा। श्रीभाईजी शरीररूपमे नही रहे तो क्या, उनकी प्रेरणा हम भारतीयोके लिये सदैव साथ है। हम भारतसे कितनी ही दूर क्यो न हो, हम सदा-सर्वदा अपनेको उनके निकट मानते है।

श्रीप्रेमचन्द सूद
वेद-सदेश-सभा, आर्यसमाज, लदन (पूर्वी)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी स्मृतिमे अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर पाना मेरे लिये सौभाग्यकी बात है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उनके प्रति मेरी कोई श्रद्धाञ्जलि, मेरे हृदयका कोई उद्गार मुझे उनके महान् ऋणसे मुक्त नही कर सकता। उनके प्रेरणादायी प्रकाशन मेरे निर्माणके प्रारम्भिक दिनोमे मार्गदर्शक प्रकाशस्तम्भ सिद्ध हुए और उन्होने मुझे प्रेम, भक्ति एव आध्यात्मिक उन्नतिका पथ दिखाया।

जिस परम्परासे मै सम्बद्ध हूँ, उसके अध्यात्मोपदेशक देवस्वरूप श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महाराज कहा करते है कि एक मृदङ्गकी पवित्र ध्वनि अधिकाधिक २०० गजतक पहुँच सकती है, जब कि मुद्रित शब्दमे ससारके सुदूर कोनेमे भी पहुँचकर उन सभी लोगोके मनको शुद्ध करनेकी क्षमता है, जो उसे पढनेकी इच्छा रखते है। श्रीभाईजीसे प्रत्यक्षत मेरी कोई भेट नही हुई और न इसकी कोई आवश्यकता ही थी, क्योकि मुझे अन्धकारसे प्रकाशमे और वासना तथा अज्ञानके पथसे सत्पथपर लानेके लिये पिछले लगभग २५ वर्षोसे 'कल्याण'के माध्यमसे उनके मुद्रित शब्द प्रतिमास मेरे पास पहुँचते रहे है। पश्चिमी जगत्मे सब ओर व्याप्त दुर्भेद्य भौतिकवादसे सघर्ष करनेमे उनकी पुस्तकोने विशेषरूपसे मुझे सहायता पहुँचायी है। वे इतने दयालु थे कि अध्ययन, अनुशीलन एव प्रचारके लिये गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित पुस्तकोका पूरा सेट उन्होने मुझे निर्मूल्य भेज दिया था। इन पुस्तकोकी अगली खेपे भी लन्दन पहुँची और पश्चिमी जगत्के अनेक मन्दिरो एव घरोमे इन्हे स्थान प्राप्त हुआ।

श्रीभाईजी जन्मसे व्यवसायी-कुलसे सम्बद्ध थे, जो जीवनका परम ध्येय धन-सचय करना मानता है। परतु उन्होने उच्चतम ब्राह्मणोद्वारा अभिलषित आध्यात्मिक गरिमाको प्राप्त कर लिया था।

मैं एक बार पुन उस महान् आत्माके सम्मानमे विनयपूर्वक नतमस्तक हूँ, जिसने भारत एव विदेशोमे रहनेवाले लाखो नर-नारियोके हृदयोमे भगवत्प्रेमकी ज्योति जगायी।

श्रीक्षीरोदकशायीदास अधिकारी
श्रीकृष्णभक्तिरस-भावित-मतिका अन्ताराष्ट्रीय सघ, लदन

● ● ●

यद्यपि श्रीपोद्दारजीसे मेरा साक्षात्कार कभी नही हो पाया, तथापि गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित उद्बोधक आध्यात्मिक सत्साहित्य 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु' नामकी मासिक पत्रिकाओद्वारा उपलब्ध धार्मिक ज्ञानके माध्यमसे मै सदैव उनका सानिध्य अनुभव करता रहा हूँ।

मेरी धारणा है कि श्रीपोद्दारजी इस भ्रान्त जगत्की परिधिसे परे थे। न केवल आन्तर-बाह्य दृष्टिसे ही वे अनन्त थे, अपितु कालाधीन घटनाओको महत्व देनेकी उनकी प्रवृत्ति नही थी। उनके सम्मुख एक लक्ष्य था और वह लक्ष्य भगवदीय था, जिसे उन्होने तात्त्विक दृष्टिसे हृदयगम करते हुए अपने आचरणमे प्रत्यक्ष कर दिखाया और हम सब लोगोके अनुसरणके लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।

हिंदू-अहिंदू—सभीको समानरूपसे आध्यात्मिक दृष्टिसे प्रबुद्ध करना एव हिंदू-सस्कृति तथा परम्पराओकी गरिमाको विदेशोमे और विशेषतया लदनमे अङ्कित करना यहाँके समस्त हिंदू-सगठनोका प्रधान उद्देश्य है। इस सदेशके प्रचार-प्रसारका मुख्य श्रेय गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित सत्साहित्य तथा मासिक-पत्रिकाओमे प्रकाशित श्रीपोद्दारजी-जैसे सतोकी दिव्य वाणीको ही है। सतत तथा निर्पेक्ष भक्ति और दैवीकार्यके लिये समर्पणका जो पाठ मने 'कल्याण' एव ग्रन्थोमे प्रकाशित श्रीपोद्दारजीके लेखोसे सीखा है, उसको तथा उसके महत्त्वको मै विस्मृत नही कर सकता। अन्य बातोके अतिरिक्त लदनमे श्रीराधा-कृष्णके मन्दिरकी स्थापना करनेमे मुझे उन्ही लेखोसे विशेष सहायता मिली। मै आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि उन महान् सतके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि केवल इसी रूपमे दी जा सकती है कि हम भारतकी महान् परम्पराको विश्वके कोने-कोनेमे प्रसारित करनेके महद् उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उत्साह-पूर्वक कठिन श्रम करनेके लिये उद्यत हो जायँ।

बी० के० गोयल
लदन

● ● ●

'कल्याण'ने हमेशा मेरा मार्ग-दर्शन किया तथा श्रीपोद्दारजीके विचार सदा मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहे है।

एक दिन मुझे एक लाख फ्रैंकका भुगतान करना था। उसी दिन पूज्य श्रीपोद्दारजीकी पुस्तके मुझे प्राप्त हुई। परेशान एव दु खी मनसे मै एक किताब खोलकर बैठा तथा पूज्य श्रीपोद्दारजीका गीतापर लेख पढा। उसे पढकर मेरा मन शान्त हो गया। मनमे यही विचार आया कि भगवान् रक्षा करेगे। जानते है क्या हुआ ? दूसरे दिन वेतिजयम सरकारने मुझे एक लाख फ्रैंकका भुगतान दिया।

आज जब मै लदनमे बैठा हुआ पत्र लिख रहा हूँ, उस समय मेरे सामने एक भयकर समस्या व्यापारकी है, मगर पूज्य श्रीपोद्दारजीके लेखको याद कर मन शान्त है। पूर्ण विश्वास है—भगवान् रक्षा करेगे।

'कल्याण' महान् कार्य कर रहा है। मेरा खयाल है कि एक लाख मन्दिर वह कार्य नहीं कर सकते, जो 'कल्याण' कर रहा है। मेरे लिये 'कल्याण' एक मन्दिर है, न कि पत्रिका।

विपिनचन्द्र तिवारी
वेतिजयम

● ● ●

श्रीपोद्दारजीके साथ मेरा वैयक्तिक परिचय नही हो सका, किंतु उनकी आत्मिक सन्तान 'कल्याण' एव गीताप्रेसके द्वारा उनकी भारतीय सस्कृतिके प्रति की गयी अमूल्य सेवाओसे मै परिचित हूँ।

उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना मुझ-जैसे प्रवासीके लिये तीर्थयात्राके समान पुनीत कार्य है।

श्रीधर्मेन्द्र नाथ
नैरोबी (अफ्रीका)

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजीका जीवन एक धूपबत्तीके समान था। आपने आजीवन हिंदू-धर्म और सस्कृतिके प्रचारके लिये अविरल प्रयत्न किया और उन्हीके प्रयत्नोके फलस्वरूप गीताप्रेस और 'कल्याण' एव 'कल्याण-कल्पतरु' आज वर्षोसे भारतीय सस्कृति और हिंदू-धर्मका प्रचार कर रहे है।

हम सब प्रवासी भारतीय है। भारतसे हजारो मील दूर पीढियोसे हम यहाँ बसे है। यहाँ हिंदू भारतीयो-की सख्या बहुत कम है। ऐसी विपरीत परिस्थितियोमे हिंदू-धर्म और भारतीय सस्कृतिके साथ सम्पर्क बनाये रखनेका एक ही रास्ता हमारे लिये है। वह है धार्मिक साहित्य मँगाकर उसका अभ्यास करना। 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु' आज कई वर्षोसे—भारतमे ही नही—दुनियाके सभी देशोमे, जहाँ भारतीय बसते है—अनुपम सेवा कर रहे है। 'कल्याण' और अन्य कल्याणकारी सामयिकोकी कृपासे जो हिंदू-धर्म और भारतीयता विदेशोमे भी टिकी है, अब वे स्थायी स्वरूप प्राप्त कर विकसित हो रही है।

श्रीपोद्दारजीके निधनसे एक महान् विभूतिने सदाके लिये हमसे विदा ली है। किंतु उनका स्थूलशरीर न होते हुए भी उनका कार्य सदा जीवित रहेगा और धूपबत्तीकी तरह सुगन्ध फैलाता रहेगा।

रजनीकान्त मास्टर
रामकृष्ण वेदान्त सोसाइटी, जोहान्सबर्ग (दक्षिणी अफ्रीका)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार अन्ताराष्ट्रीय ख्यातिके महापुरुष थे, जो मानवताकी सेवाके निमित्त जीवित रहे। उन्होने विश्वभरके करोडो हिंदुओकी महती सेवा की है। अपने धर्मके प्रति उनकी निष्ठा हम सभीके लिये प्रेरणादायी स्रोत है।

'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु' नामक दो प्रसिद्ध धार्मिक मासिक पत्रोके सस्थापक-सम्पादक श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दारने ऐसी ज्ञान-ज्योति प्रज्वलित की है, जिसके प्रकाशने लोगोके हृदयसे अज्ञानान्धकार दूर कर दिया है। अपने बन्धुओकी सेवाके निमित्त उनकी प्रवृत्तिने विश्वभरमे, जहाँ भी हिंदूलोग निवास करते है, हिंदू-धर्मकी शिक्षाओके प्रचार-प्रसारमे पर्याप्त मात्रामे सहायता पहुँचायी है। हिंदू धर्म, सस्कृति एव परम्पराके सम्बन्धमे इन पत्रोमे प्रकाशित उनकी अमूल्य रचनाएँ देश एव विदेशोमे स्थित हिंदुओके लिये प्रकाश-स्तम्भके समान सिद्ध हुई है। जहाँ-जहाँ उनके पत्रोका प्रचार हुआ, हिंदू-धर्म वहाँ पनपा। उनकी शिक्षाएँ एव निर्देश कभी भी विस्मृत नही होगे। वास्तवमे वे एक महान् व्यक्ति थे।

'गायना सनातन-धर्म महासभा'के सदस्य हमलोग यद्यपि भारत-मातासे हजारो मील दूर है, तथापि उनके निधनसे हमे गहरा दुःख है।

यू० भरत
जनरल सेक्रेट्री, सनातन-धर्म महासभा, गायना

● ● ●

श्रीभाईजीके निधनमे भारतके साथ मारीशसके लाखो भारतीय प्रवासियोने भी अपना एक धार्मिक पथ-प्रदर्शक खो दिया।

स्वामी कृष्णानन्द
मारीशस

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी धर्मके साकार विग्रह थे। उनका सम्पूर्ण जीवन धर्मकी अनवरत सेवासे युक्त था। इसे दूसरे ढगसे यो कहा जा सकता है—उस धर्मने ही श्रीपोद्दारजीके माध्यमसे अपनी सेवा करायी।

आधुनिक जगत्मे—विशेषतया वर्तमान भारतमे—धर्मकी रक्षा करना कितना कठिन एव दुस्साध्य कार्य है, इसका अनुमान लगाना सरल नही है। आजके जगत्मे भगवान्के अतिरिक्त अन्य कोई भी धर्म-ध्वजाको ऊँचा नही उठा सकता। श्रीहनुमानप्रसादजी ऐसे ही भगवान्के द्वारा चुने गये माध्यम थे। निस्सदेह श्रीहनुमान-प्रसादजीके रूपमे स्वय भगवान्के ही एक अशने धर्मकी पुन स्थापना-सम्बन्धी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है।

ससारमे जहाँ-कही भी जाता हूँ, मै भारतवर्षकी दो शक्तिशाली भुजाओ—सनातनधर्मकी दो भुजाओ—'कल्याण' (हिंदी) और 'कल्याण-कल्पतरु' (अग्रेजी)को उनलोगोके घरोमे वर्तमान पाता हूँ। भारतसे बाहर जहाँ भी हिंदू रहते है, उन्हे कल्याण'से ही सच्ची प्रेरणा प्राप्त होती है।' हिंदू-धर्मके विदेशी प्रशसकगण अग्रेजी 'कल्याण-कल्पतरु' के माध्यमसे हिंदू-अध्यात्मज्ञानकी दीक्षा लेते है। ये दोनो पत्रिकाएँ ही श्रीहनुमानप्रसादजीकी प्रिय सन्ततियाँ है। कितने स्नेह एव कितनी निष्ठासे उन्होने इनका सवर्धन किया है! ये दोनो प्रेमके स्थायी स्मारक-स्वरूप वर्तमान रहेगी।

श्रीपोद्दारजीकी अथक परिश्रमशीलता धन्य है, जिसके फलस्वरूप ससारके प्रत्येक हिंदू-घरमे भगवद्गीता वर्तमान है। 'कल्याण-कल्पतरु'मे प्रकाशित श्रीमद्भागवत एव श्रीवाल्मीकि-रामायणके अनुवादोने भारतसे दूर ऐसी आध्यात्मिक सामग्री उपलब्ध करायी है, जिसने हमारी प्रभु-भक्तिका पोषण किया है। श्रीपोद्दारजी अपनी महान् कृतियोके रूपमे सदैव अमर रहेगे।

श्रीस्वामी वेंकटेशानन्द
रोज हिल, मारीशस

● ● ●

श्रीपोद्दारजी अपने जीवन-कालमे अपना सम्पूर्ण समय हिंदू-धर्मके उत्थान-कार्योमे लगाते रहे। एक समय था, जब विभिन्न विश्वासो, विचारो और मत-मतान्तरोका पारस्परिक सघर्ष चारो ओर व्याप्त था तथा मानव-जीवनके सभी पहलुओ और मानवीय गति-विधियोके सभी क्षेत्रोसे उठते हुए मत-वैषम्यके बादलोकी काली छायामे मनुष्य सत्रस्त था। ऐसे कालमे श्रीपोद्दारजी 'कल्याण' और 'कल्याण-कल्पतरु'के प्रकाशनके माध्यमसे परम प्रकाशके उदयके अग्रदूत बनकर आये। इन दोनो प्रकाशनोके माध्यमसे उन्होने महाभारत, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदोके तत्त्वज्ञानको चतुर्दिक् प्रसारित किया।

उन्होने आध्यात्मिक ज्ञानके अमृत-रसको चारो ओर दूर-दूरतक फैलानेका प्रयत्न किया। हम प्रवासी भारतीय निस्सदेह उस नैतिक शिक्षासे विशेष लाभान्वित हुए है, जिसमे मनुष्यको दु ख और अज्ञानकी अतल गहराइयोमे निकालकर देवत्वकी उच्च गरिमातक पहुँचा देनेकी क्षमता है। 'कल्याण', 'कल्याण-कल्पतरु' तथा गीताप्रेसके अन्य प्रकाशनोमे हमे जो प्रेरणा एव सहायता मिली है, उसके लिये हम सचमुच बहुत आभारी है। यह एक सचाई है कि सनातनधर्मके उत्थानके लिये गीताप्रेसके प्रकाशनोद्वारा जिस ज्ञानका प्रचार किया गया, उस ज्ञानके द्वारा भारतसे बाहर रहनेवाले हिंदू-समाजको अपनी परम्परा, धर्म और सस्कृतिको जीवित रखनेमे बल और सहयोग मिला है।

महान् उपदेशकोंकी भाँति ही श्रीपोद्दारजीने भी केवल शिक्षा ही नहीं दी, अपितु शिक्षाओंको अपने प्रतिदिनके जीवनमें व्यवहृत करते हुए उन्होंने उसका एक प्रखर उदाहरण भी हमारे सामने रखा।

श्रीजनार्दन चौबे नकछेदी
मारीशस

● ● ●

'कल्याण'के माध्यमसे हम श्रीभाईजीसे पूर्ण परिचित हैं। जिस किसीको भारतीय संस्कृति, धर्म आदिका परिचय पानेकी इच्छा होती है, वह तत्काल गीताप्रेससे पुस्तक-पुस्तिकाएँ मँगवाता है। इस प्रेसको इतना विशाल साहित्य प्रकाशित करनेमें सर्वाधिक सहयोग श्रीपोद्दारजीसे ही प्राप्त हुआ था। मारीशसमें पिछले दशकोंमें अपूर्व जागरण हुआ है, जिसके फलस्वरूप हिंदूतत्व जहाँ पहले समस्त जन-सख्याका कुल अड़तालीस प्रतिशत था, वहाँ अब बावन प्रतिशत हो गया। यदि हम कहें कि मारीशसवासी हिंदुओंकी इस प्रगतिमें पूज्य श्रीपोद्दारजीका हाथ है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। यहाँके 'लालमाटी' नामक ग्राममें जो 'प्रेमचन्द पुस्तकालय' है, उसकी शोभाकी वृद्धि गीताप्रेसकी उत्तमोत्तम पुस्तकोंसे हुई है और इसके लिये हम श्रीपोद्दारजीके चिर-ऋणी रहेंगे।

टेकानन्द ठाकुर
मारीशस

● ● ●

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनके समाचारसे हम हिंदू-प्रवासियोंमें मातम छा गया। यहाँके उनके कितने भक्तगण इस दुःखद खबरसे अचेत पड़े रहे। हमलोगोंने शोक-सभा की और उस महाप्राण सतको श्रद्धा-सुमन चढाये। हमारा श्रीपोद्दारजीसे सम्बन्ध बहुत दिनोंसे है। हमलोगोंने गीताप्रेससे पुस्तकें मँगवायी हैं तथा 'कल्याण'के कितने ही विशेषाङ्क हमारे पास हैं।

श्रीपोद्दारजी कुछ भी करनेके पहले भगवान्‌का स्मरण करते थे। परमात्माके गुणोंको गाकर वे अपनेको धन्य मानते थे। उनके लेख आध्यात्मिकतासे ओत-प्रोत थे। धर्मकी व्याख्या वे कैसे सरल शब्दोंमें करते हैं—'धर्म वस्तुतः वही है, जो मनुष्यकी जीवनधाराका मुख भोग-जगत्‌से मोड़कर भगवान्‌की ओर कर दे और जिससे सतत अविराम, अविच्छिन्न गतिसे जीवन-प्रवाह निरन्तर समुद्रकी ओर बहनेवाली गङ्गाजीकी धाराके सदृश उसी ओर—भगवान्‌की ओर बहता रहे।' श्रीपोद्दारजी अपनी महान् सेवाओंके कारण चिरस्मरणीय रहेंगे।

श्री जी० ठाकुर
मारीशस

● ● ●

परमपूजनीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके निधनसे हम श्यामदेशके हिंदू स्तब्ध हो गये। हिंदू-जातिके लिये उनका पार्थिव शरीर परमावश्यक था। उससे वञ्चित हो जाना हम हिंदुओंके लिये अपूरणीय क्षति है।

चिन्तामणि त्रिपाठी
प्रधान—धर्म-विभाग, हिंदू धर्मसभा
बैंकाक (थाईलैण्ड)

● ● ●

श्रीपोद्दारजी एक महान् आत्मा थे। हालाँकि उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेका सौभाग्य हमें नहीं मिला था, लेकिन उनकी जीवनी एवं उनके द्वारा किये गये सेवा-कार्योंका वर्णन समय-समयपर पत्रिकाओंमें पढ़नेको मिलता रहता था। आपका जीवन महान् था। आप सच्चे रूपमें कर्मयोगी थे। जब, जहाँ भी आवश्यकता पड़ी, आपने सदैव तन-मन-धनसे सहयोग दिया। बर्मावासी हम हिंदुओंके अंदर धार्मिकताका विकास होता रहे, इसके लिये आप निःशुल्क साहित्य भेजकर एक महान् कमीकी पूर्ति करते रहे।

शिवदास वर्मा
मन्त्री, सनातन-धर्म-साहित्य-प्रचार-समिति
माण्डले (बर्मा)

● ● ●

बर्मामे हिंदुओंकी सख्या लगभग पॉच लाख है। ये हिंदू हिंदी, तमिल आदि भारतीय भाषाओके माध्यमसे अपने धर्म, संस्कृति और सभ्यताकी शिक्षा पाते आये हैं। यह कहना अयुक्ति न होगा कि विदेशी सभ्यताके प्रचार-प्रसारसे हिंदू-संस्कृति और सभ्यता कुण्ठित होती जा रही थी। हिंदू-धर्मके प्रचार-प्रसारका जो भी कार्य हो रहा था, वह नक्कारखानेमे तूतीकी आवाज-जैसा ही था। इसी बीच आजसे ४५ वर्ष पूर्व गीताप्रेसका 'कल्याण' बर्माके हिंदुओंके बीच पहुँचा और विभिन्न विषयोपर उसके विशेषाङ्क भी उपलब्ध होते रहे। इसके अलावा हिंदू-धर्मकी अनेक धार्मिक पुस्तक-पुस्तिकाएँ भी हमे प्राप्त होती रही।

ब्रह्मदेशकी हिंदू-जनता गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित इन धार्मिक ग्रन्थो एव पत्रिकाओके लेखो तथा कथाओसे अपनेको कृतकृत्य करती आयी है और यह स्वीकार करती है कि इस तिमिराच्छन्न युगमे, जब हम अपने धर्म, सस्कृति और परम्पराओको भूलते जा रहे थे, हमारा आध्यात्मिक मार्ग अवरुद्ध होता जा रहा था, तभी पूज्यपाद भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने 'कल्याण'के रूपमे एक ऐसी ज्योति जगायी, जो विश्वके विभिन्न भागोमे बसे हुए हिंदुओका ही नही, अपितु मानवमात्रके कल्याणका साधन बन रही है।

प्रधान—सनातन-धर्म-साहित्य-प्रचार-समिति

माडले (बर्मा)

● ● ●

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा ज्ञात अथवा अज्ञात रूपमे जितना मार्ग-दर्शन मुझे प्राप्त हुआ है, उसका अशमात्र भी वर्णन कर सकना मेरे लिये सम्भव नही है। अपने नामको सार्थक सिद्ध करनेवाले 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'से मैं ही क्या, बर्मामे बसनेवाले मेरे परिचित अनेको हिंदू लाभान्वित हुए है। श्रीपोद्दारजी-द्वारा लिखित एव सम्पादित छोटी-बडी पुस्तकोद्वारा हम प्रवासी भारतीय हिंदुओको धर्म, सस्कृति तथा हिंदुत्वका व्यावहारिक ज्ञान होता रहा है। बालक-बालिकाओ तथा महिलाओके उपयोगके लिये लिखी गयी पुस्तकोसे हमे विशेष लाभ पहुँचा है। इस उपयोगिताके कारण श्रीपोद्दारजीकी सत्कृतियोकी हमारे यहाँ बहुत माँग है। हिंदुत्वमय इन्ही प्रकाशनोकी देन है कि आज भी बर्मा-निवासी हिंदू हिंदी भाषा-भाषी है और पूर्णरूपेण भारतीय है। बर्मामे सर्वसाधारण हिंदू-जनताके लिये तो 'गीताप्रेस' और 'हिंदू-धर्म' पर्याय-से हो गये है और श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार इनके अमर प्रहरी।

श्रीपोद्दारजीद्वारा सम्पादित श्रीरामचरितमानसमे दी गयी पाठ-विधिपर तो यहाँ इतनी आस्था है कि बहुत बडे पैमानेपर सामूहिकरूपमे मानसके नवाह्न तथा पाक्षिक पाठ तथा मानस-कथाके आयोजन आये दिन यहा होते रहते है। इसमे सम्भावित लाभ तो हर मानस-प्रेमीको ज्ञात ही है।

मै बर्मानिवासी सभी भारतीय साथियोके साथ श्रीपोद्दारजीके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

सियाराम आर्य

इनसेन (बर्मा)

● ● ●

पूज्य श्रीपोद्दारजीके पार्थिव शरीरके दर्शनोका सौभाग्य मुझे कभी प्राप्त नही हुआ, परतु उनके लेखोके माध्यमसे उनके विचारोसे अवगत होनेका सुअवसर सदा ही प्राप्त होता रहता था। अपने प्रयत्नसे धार्मिक सत्साहित्य इतने सस्ते मूल्यपर प्रकाशित कराकर तथा जन-साधारणके लिये उसका वितरण करके उन्होने एक असाध्य कार्य साध्य कर दिखाया। गीताप्रेसद्वारा भारतमे ही नही, विदेशोमे भी धर्मकी सस्थापना और हिंदू-सस्कृतिके प्रचारमे बहुत सहायता प्राप्त हुई है। ब्रह्मदेशकी बीसियो सस्थाओ और व्यक्तियोको उन्होने समय-समयपर धार्मिक साहित्य नि:शुल्क भेजकर उपकृत किया है।

परम आदरणीय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारको उनके द्वारा किये गये हिंदू-धर्मके प्रसारके लिये ब्रह्मदेशके प्रवासी हिंदू अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। उनका 'कल्याण' वर्षोसे इस भूमिके धर्मप्राण भारतमूलक सनातन-

धर्मावलम्बियोके लिये धर्म-पिपासा बुझानेका एकमात्र साधन रहा है। हमने अनेक सम्भ्रान्त लोगोके घरोमे 'कल्याण'की वार्षिक सुन्दर जिल्दे आलमारीमे अति प्रेमसे सजाकर रखी देखी है। धार्मिक पर्वोपर लेख या प्रवचन तैयार करनेमे 'कल्याण'के विशेपाङ्क वहुत उपयोगी तथा चुनी हुई सामग्री प्राप्त कराते है। यह सव श्रीहनुमानप्रसादजीका ही शुभ कार्य है। मैने अनेक वृद्ध-पुरुषो तथा स्त्रियोको नाकपर ऐनक टिकाये वडे ध्यानसे टटोल-टटोलकर इन पुस्तकोको पढते देखा है। इस प्रकार श्रीभाईजीने सहस्रो मील दूर वैठे लोगोकी भी जो सेवा की है, उसे कौन भुला सकता है।

श्रीपोद्दारजीकी पावनस्मृतिमे हम ब्रह्मदेशके हिंदू श्रद्धा-सुमन अर्पितकर अपनेको धन्य मानते है।

डा० ओमप्रकाश
रगून (ब्रह्मदेश)

● ● ●

अपने हिंदू-धर्ममे अडिग विश्वास रखनेके कारण मै 'कल्याण' वरावर मँगाता रहा हूँ। मै तथा मेरे सभी वच्चे इसे वडे चावसे पढते है। प्रत्येक मास 'कल्याण'का अङ्क आनेपर परिवारका प्रत्येक सदस्य जवतक उसे पूरा नही पढ लेता, चैन नही लेता। 'कल्याण'से हमे प्रेरणा एव शक्ति मिलती है। एक महान् कर्मयोगी, सत एव धर्मोपदेशकके रूपमे श्रीहनुमानप्रसादजीके प्रति हमारे हृदयमे वडा सम्मान है।

टी० ओ० भाटिया
दुवाई (अरव खाडी)

●

सार्वभौम संतप्रवर श्रीभाईजी

देवोपम अतिमानवीय सद्गुणराशिसे विभूपित उस विश्ववन्द्य विभूतिके स्मरणमात्रसे लेखनी हाथसे छूट जाती है, प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है, मन भर आता है, आँखे रिसने लगती है और साहस हतप्रभ हो उठता है—कुछ सूझता नही।

अतल महासागरकी नाप-जोख करके जगत्के सम्मुख उसकी गहराई और लवाई-चौडाईका लेखा-जोखा प्रस्तुत करनेका दुस्साहस कोई नमकका पुतला करे तो भी कैसे ? कदाचित् उस अथाह सागरमे घुल-मिलकर अपनी स्वतन्त्र सत्ताको सर्वथा विलीन करके उसका कोई कणाश तलतक पहुँच भी जाय, तो भी विश्वको उसकी गहराईका व्योरा प्रस्तुत करनेके लिये वह ऊपर तो आ ही नही सकता।

इसी प्रकार उस स्नेहसागर, निस्सीम करुणाके आगार, परम सत, अखण्ड परम साधनारत महायोगीने अनेक शक्तियोसे अपनी जीवनदायिनी चिन्तन-धारासे विमुख, अनभिज्ञ, मूर्च्छित एव प्रसुप्त पडी हुई हिंदूजाति तथा उसकी भावी पीढियोके लिये ही नही, वर मानवमात्रके लिये भगीरथ वनकर हिंदू-दर्शनकी ज्ञानसलिला पुन प्रवाहित कर दिखायी है, तथा उसे नव-जीवन देकर, उसकी गौरवगरिमाको अक्षुण्ण वनानेका आधार जिसने प्रस्तुत कर दिया है, कुछ इने-गिने मनीपियो, विद्वानो, पण्डितो, यतियो अथवा साधको और पुस्तकालयोकी परिमित परिधिके स्वर्गमे आवद्ध हिंदू-जीवन-दर्शनकी ज्ञानगङ्गाको भूतलपर उतारकर उसे विस्तीर्ण, उन्मुक्त, विशाल मैदानोमे, देश-विदेश, नगर-नगरकी डगर-डगरतक, ग्राम-ग्रामके द्वारतक पहुँचानेका महत् कार्य जिस महापुरुषकी अनवरत अखण्ड साधनासे सम्भव हो पाया है, उस निस्सीमके स्वरूपका वर्णन ससीम शव्दोमे प्रस्तुत करनेका कार्य कितना कठिन हे, इसका अनुमान कोई भी कर सकता है।

शास्त्र-सम्मत आचार-निष्ठाके प्रवल समर्थक, उस परम्परावादी, सनातनी हिंदूकी जरा कल्पना तो करे, जिन्हे हिंदू-समाजके अन्तर्गत परस्पर विरोधी दिखायी देनेवाले शैव-शाक्त, वैष्णव-सनातनी, आर्यसमाजी, जैन तथा सिक्ख—इसी प्रकार सभी मत तथा सम्प्रदाय तो अपना ही मानकर श्रद्धा एव पूज्य भावसे देखते ही थे, परतु उनकी विशालहृदयता, औदार्य तथा व्यापक दृष्टिकोणके कारण उन्हे ईसाइयो, मुसल्मानो तथा विदेशियोके द्वारा

भी जो विश्वास, आत्मीयता और प्यार मिला है, वह भी कुछ कम मूल्यवान् नही है। पुराणो तथा धर्मशास्त्रोके आधुनिक युगके उद्घारकर्त्ता श्रीभाईजीका निजी कक्ष अनेक वर्षोतक मशीहके एक आकर्षक चित्रसे अलकृत था। उन विश्वमानवके अपनी देहलीला समेटनेपर गीतावाटिकामे करुण क्रन्दनरत चीत्कार करनेवाले आवाल-वृद्ध जन-समुदायके अन्तर्गत बुरका ओढे हुए कतिपय मुस्लिम देवियाँ भी सुबकियाँ भर-भरकर अश्रुपात कर रही थी। स्थानीय साम्यवादी नेता श्रीजामिन अलीका अश्रु-प्रवाह तो आज भी नही रुक पाता है।

देशभरमे सामाजिक, धार्मिक एव परस्पर-विरोधी राजनीतिक सस्थाओ, उन सस्थाओके अन्तर्गत विरोधी गुटोके सभी नेता पूज्य श्रीभाईजीको अपना निकटस्थ शुभचिन्तक मानकर परामर्श, मार्गदर्शन तथा सहायताके लिये आते ही रहते थे। सहयोग प्राप्त करनेके अतिरिक्त तीर्थस्वरूप श्रीभाईजीके दर्शन, एव किचित् वार्तालाप-की अभिरुचि भी उनके अन्तर्मनमे रहती ही थी। गोरखपुर आनेवाले केन्द्रिय अथवा प्रान्तीय शासनके नियन्ता, राज्यपाल, मन्त्री तथा उच्च शासकीय अधिकारी भी प्राय अपने कार्यक्रमकी योजना बनाते समय श्रीभाईजीसे भेटका प्रावधान रख ही लिया करते थे। नगरमे आयोजित होनेवाले किसी भी अखिल भारतीय स्तरके अथवा अन्य बृहद् आयोजनमे भाग लेनेके लिये आये हुए प्रतिनिधियोका आतिथ्य-सत्कार करनेका सौभाग्य श्रीभाईजी एव उनके परिवारको अवश्य प्राप्त हो जाता था। चाहे वह आयोजन धार्मिक हो, भूदान-सम्बन्धित हो, व्यापारिक सम्मेलन हो अथवा विश्वविद्यालयके अन्तर्गत उसके तत्वावधानमे आयोजित विज्ञान-काग्रेस, साहित्य अथवा अन्य विषयकी गोष्ठी हो, देशभरसे इन आयोजनोमे भाग लेनेवाले हर वर्ग तथा स्थितिके अभ्यागत बन्धु विशुद्ध हिंदू-पद्धतिमे किये गये उदार सत्कार एव पूज्य भाईजीके प्रेमिल व्यवहारकी मधुर स्मृति लेकर ही वापस लौटते थे।

श्रीभाईजीके जीवनकालमे इस प्रकार गोरखपुर आनेवाले महानुभावोमे अन्तिम स्थान था विभिन्न देशोसे आये हुए उन विदेशी अतिथियोका, जो विश्वभरमे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' महामन्त्रका अलख जगाकर योरप तथा अमेरिकाकी सडको और पार्कोमे हजारो-हजारो लोगोको कीर्त्तनकी ध्वनिपर नचाते फिर रहे है और जो श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचार-प्रसारके लिये कृतसकल्प गौडीय वैष्णव महात्मा स्वामी श्रीभक्तिवेदान्तजीके शिष्य हे। इस कार्यमे आरम्भसे ही श्रीभाईजीने उन्हे सब प्रकारका प्रोत्साहन एव सहायता तो दी ही थी, उनके गोरखपुर-आगमनपर लगभग पूरे एक मासतक उन सबके आवास, भोजन एव अन्य सुख-सुविधाओकी समुचित व्यवस्था वे अत्यन्त रुग्ण होते हुए भी करते रहे। वैसे भी आध्यात्मिक दृष्टिसे भारतमे आने तथा रहनेवाले विदेशियोका यथोचित सम्मान वे करते ही रहते थे। साधनामे रत, परतु निराश्रय एक अमेरिकन महिला तथा हिमालयकी कन्दरामे तपस्यामे लीन एक जर्मन बालिकाको नियमित सहायता भी वे प्रेषित करते ही रहे थे।

वर्ण-व्यवस्थाके कट्टर पोषक तथा समर्थक श्रीभाईजीकी उदार दृष्टिमे गीतावाटिकाके सडासोको झाड-बुहारकर स्वच्छ रखनेके कार्यमे नियुक्त उस बूढी मुसल्मान मेहतरानी तथा उसके परिवारका उतना ही आदर और सम्मान था, जितना पूजा-अर्चा एव कर्मकाण्डके लिये नियुक्त कुलपुरोहितका। भावमे किचित् अन्तर न रहनेपर भी उनकी सत्कार-विधिमे अवश्य ही तारतम्य था। उनका वह रूप बरबस ही हृदयको मोह लेता था, जिसमे कभी तो वे अपने रोगग्रस्त नौकरके सिरहाने बैठकर उसके माथेपर हाथ फेरकर उसकी परिचर्या तथा सँभाल किया करते थे और कभी अपने व्यस्त जीवनमे भी अबोध शिशुओके साथ खेलते एव उन्हे रिझाते हुए दृष्टिगोचर होते थे। उनकी दृष्टिमे देश, जाति, आयु, लिङ्ग, स्थिति या पदका भेद-भाव नही था, सभी रूपोमे वे सतत अपने इष्टकी ही मधुर छविके दर्शन किया करते थे। विविध रूप धरकर उनकी अर्चाको प्रत्यक्षरूपमे स्वीकार करनेके लिये आनेवाले अपने प्रियतम इष्टदेवके ही वे सब रूप थे। अत उनके सुखका विधान ही उनके जीवनकी साध थी, उनका सुख ही श्रीभाईजीका अपना सुख था।

श्रीभाईजीने जीवनभर दिया ही दिया, और देना तथा देते ही चले जाना केवल प्रेमका ही स्वभाव है। 'प्रेम'के ढाई अक्षरोको उस विलक्षण प्रेमीने ठीकसे पढा, हृदयगम किया, सँजोया और झोलियाँ भर-भरकर लुटाया। यह प्रेम ही उनके समस्त कार्य-कलापोका नियामक था। प्रेमने ही उन्हे दिव्य प्रज्ञा तथा प्रतिभा दी। सर्वश्रेष्ठ

भक्तोसे अधिक भक्ति दी, सर्वाधिक धनी-मानियो, मूर्धन्य धर्माचार्यो एव राजनेताओसे बढ-चढकर प्रभाव, प्रतिष्ठा तथा शक्ति दी। अतुलित औदार्यके साथ ही अद्‌भुत दैन्य तथा नम्रता दी, रचनाओको सरसता दी। इसी प्रेमने उनकी वाणी, नेत्रो एव सम्पूर्ण व्यक्तित्वमे वह माधुर्य एव सौन्दर्य भर दिया, जिसने लक्षावधि लोगोको विमुग्ध बना डाला और जिसकी स्मृति अभी भी अन्तर्हृदयको कचोटती रहती है।

'प्रेम-दर्शन'के नामसे नारद-भक्तिसूत्रोके भाष्यकार इस अद्वितीय प्रेमीके प्रेम-दानमे कोई वैपम्य नही था, सभी उनके अपने थे। अपना-पराया, हिंदू-अहिंदू, जातीय-विजातीय, देशी-विदेशी, वरिष्ठ-कनिष्ठ, पापी-पुण्यात्मा एव अधिकारी-अनधिकारीके भेद-भावको वहाँ कोई अवकाश ही नही था। न जाने कितने ही पापरत प्राणियो एव अपराधियोको पुचकारकर, दुलारकर, सहलाकर और अपनाकर क्या-से-क्या बना डाला, इसे विरले ही जानते है। उनकी आँखोमे तो सतत अपने प्राणप्रेष्ठ श्रीकृष्ण ही बसे रहते थे, सभी रूपोमे उन्हे केवल वही दिखायी देते थे और उनकी प्रत्येक लीला उनके लिये मधुरतम थी, सुखका सृजन करती थी। उनके इस प्यार-दानमे कोई विपमता न रहनेपर भी, उस प्यारको अपनी साध, मनोरथ, अधिकार एव स्तर अर्थात् झोलीकी लवाई-चौडाई तथा शक्ति-सामर्थ्यके अनुपातमे ही सब सहेज पाये, यह स्पष्ट ही है। उस कल्पवृक्षको जिसने जितना अधिक अपना माना, उतना ही अधिक पाया।

इन अजातशत्रु, अलौकिक सार्वभौम सतप्रवरके व्यक्तित्वकी गरिमा शब्दोमे अङ्कित कर पाना सहज नही। वे तो, बस, वे ही थे। उनका प्रबोध, अमरोपदेश, शिक्षाएँ एव अनुभूतियाँ, विश्वके प्रत्येक प्राणीके लिये उपयोगी है, सुलभ है, सर्वकालिक है।

युगपत् शिक्षाविहीन-विज्ञ, अकिंचन-धनी, दीन-दृढ, अनन्य-उदार, कोमल-कठोर, सेवक-सेव्य और सन्यासियो-तकको प्रवुद्ध करनेवाले इस गृहस्थके जीवनमे आन्तर तथा बाह्य जगत्, क्रिया एव विचार, राग तथा वैराग्य, दैन्य तथा प्रभुत्व, त्याग एव प्राचुर्यका जो समन्वय एव परस्परविरुद्ध गुणधर्म-आश्रय परिलक्षित होता है, अपने परमाराध्य श्रीकृष्णके अनन्य उपासक होकर भी अन्य सब साधन-पद्धतियो, धर्मो तथा सम्प्रदायोको उचित सम्मान देकर उनके उपास्य इष्टदेवमे भी अपने ही परमप्रियतमके दर्शन करनेकी जो उदारता है, विशालहृदयता है, दृष्टिकोणकी व्यापकता है, वह अनुपमेय है, अनोखी है, निराली है, अद्‌भुत है, विलक्षण है और हठात् कहे बिना रहा ही नही जाता कि 'न भूतो न भविष्यति'।

यह सभी उस भगवत्प्रेमकी ही देन है, जो उनके जीवनका साध्य था और वही सर्वोच्च पुरुपार्थ भी है। प्रेम ही समस्त साधनाओकी चरम परिणति है, साधन-पथका अन्तिम सोपान है, और भगवान् तथा मनुष्यमे विद्यमान खाईको पाटकर तद्‌रूप बना देना इस प्रेमका सहज स्वभाव है और यह प्रेम उन्हे सहज था। अत वह प्रेमकी प्रतिमा श्रीकृष्णमय हो चुकी थी।

वे तो **'वसुधैव कुटुम्बकम्'**की जीवन्त प्रतिमा थे। **'सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥'**—उनके हृदयकी साध थी।

कल-कालमे—क्षुद्रहृदयता, ईर्ष्या एव कृतघ्नताके वर्त्तमान युगमे—इस कोटिके महापुरुषकी अवस्थिति एव आविर्भाव एक वरदान है। उनके व्यक्तित्वकी गरिमा, चरित्र, स्वरूप, क्रिया एव व्यवहार, इङ्गित तथा स्मितका चित्रण निर्जीव लेखनीद्वारा कर पाना सम्भव नही। उन अजातशत्रु निर्विवाद महापुरुपके जीवनके जिस-जिस रूपको या पक्षको जिस-जिसने जितना देखा-सुना-समझा है, उसे कजूसके धनके समान छातीसे लगाकर, जीवनकी परीक्षाकी घडियोमे कसौटी बनाकर चल पडनेपर जीवनयात्रा अपने लक्ष्यपर पहुँचा ही देगी—यही आस्था है, यही विश्वास है।

अनन्त अगोचर आकाशकी थाह लेनेका मानस लेकर कोई पक्षी बडे उत्साह और उल्लासके साथ अपने पर तौलकर उडान भरता है, परतु कुछ ही कालतक पख फडफडाकर, थक-हारकर अपनी इस चेष्टाका स्वय ही उपहास करते हुए पुन वह धरतीकी ओर लौट पडता है। जितनी ऊँचाई और दूरीतक उसके पँखोकी शक्ति उसे उडाकर ले जा सकती है और जो कुछ वह देख पाया है, उतनेमे ही सतोप करनेके लिये वह विवश हो जाता

ह स्वयंको कृतकृत्य मान लेता है, और पुन नित्य-प्रतिकी दिनचर्याका अनुसरण करने लगता है। ऐसी ही कुछ दशा हमारी भी है। पूज्य श्रीभाईजीका जीवन भी उस आकाशके सदृश ही विस्तृत है, विशाल है, दिव्य है, भव्य है, विभु है, भूमा है, अनन्त है, अगोचर है।

चमत्कारोंकी दुनियाको वहुत पीछे छोड देनेके पश्चात् भी उनके जीवनमे ज्ञात-अज्ञात चमत्कारोका अभाव नहीं रहा, वल्कि उनका सम्पूर्ण जीवन तथा कार्य-कलाप अपने-आपमे एक वहुत वडा चमत्कार है। श्रीभाईजीने जो कुछ कर दिखाया है, वह भगवदीय शक्ति-सामर्थ्यसम्पन्न किसी लोकोत्तर महापुरुषद्वारा ही सम्भव है। उन सत्य-सकल्पके सम्मुख कठिनाइयोके पहाड विदीर्ण होते, ढलते, गलते और वहते दिखायी देते है। असम्भव सम्भव वनकर मूर्त हो जानेके लिये मचलता दीखता है।

कदाचित् भावी पीढियाँ इसपर विश्वास ही न कर सके कि वीसवी शतीमे 'हनुमानप्रसाद पोद्दार' नामकी एक ऐसी विलक्षण तपपूत विभूतिका भी आविर्भाव हुआ था, जिसने एक ही जीवनमे हिन्दू-दर्शनके अगम्य, अथाह विशाल महासमुद्रके तलमे पैठकर, कृष्णद्वैपायन व्यासके पश्चात् उसीके सदृश प्रच्छन्न व्यास वनकर, युग-युगान्ततकके लिये यह रत्नराशि सुरक्षित कर दी है। अव वहुमूल्य ग्रन्थोकी होली जलाकर हमाम गर्म करनेवाले आततायियोंके अत्याचारोसे उनके नष्ट हो जानेकी सम्भावना शताब्दियोके लिये—नही-नही, सदा-सदाके लिये समाप्त हो गयी है। क्योकि अव भारतीय सस्कृतिके अमरपुजारी, माँ भारतीके अद्वितीय सपूतने देश-देशान्तरमे 'कल्याण'के वृहदाकार विशेषाङ्कोंके रूपमे लक्ष-लक्ष गीता-रामायणकी प्रतियो तथा अन्य सत्साहित्यके रूपमे उसे असख्य हाथोतक पहुँचा देनेका अप्रतिम कार्य कर डाला है।

धन्य है वह धरती, वह कोख, वह कुल, जिसने इस महामानवको जन्म दिया, लालन-पालन किया और लाड-लडाया। हमारा कोटिश नमन है उस तपोभूमिके प्रत्येक रज कणको, जिसमे अखण्ड साधनारत इस सतप्रवरने निवास करके उसे पावन वना दिया है और किसी अचिन्त्य सयोगसे अन्ततोगत्वा उनके पार्थिव कलेवरको चिर-विश्राम देनेका सौभाग्य भी जिस पुण्यस्थलीको प्राप्त हुआ है। उस पावन गीतावाटिकाके प्राङ्गणमे जिस स्थलपर उनके पार्थिव कलेवरका अन्तिम सस्कार सम्पन्न हुआ है और जहाँ उनके भौतिक शरीरके भस्मावशेष सुरक्षित है, उस स्थलपर अनुपम अखण्ड शान्तिका अनुभव सतत होता ही है। इसी प्रकार उनके साधना-कक्षमे उनके दिव्य परमाणु अभीतक चिन्तित, थकित और खिन्न प्राणियोको सान्त्वना देकर उनमे विचित्र सुख और शान्तिका सृजन करते रहते है।

पुन हमारा नमन है—उन महाप्राणकी सच्ची जीवन-सहचरी, सती साध्वी आर्यनारीकी जीवन्त प्रतिमा उनकी जीवन-सङ्गिनीको और योग्यतम एकमात्र सतान, पितृस्नेहविहीना, दीना, खिन्नवदना पुत्रीको, जिसने अपने सत पिताके पास देश-देशान्तरसे प्रतिवर्ष हजारोकी सख्यामे दर्शन देकर कृतार्थ करनेवाले भगवान्के विविध रूपोका उदारतापूर्वक आतिथ्य-सत्कार अपने अलौकिक पिताके स्वरूप, भाव तथा रुचिके अनुरूप करनेमे कुछ भी उठा नही रखा।

पुन हम वन्दन करते है—अभिनन्दन करते है, उस गीताप्रेस प्रतिष्ठानका, श्रीभाईजीके सहयोगी सहकारी तथा सेवकोका, जिनके सहयोगके विना यह महत् कार्य हो पाना सम्भव नही था। हमारा कोटि-कोटि नमन है श्रीभाईजीके गुरुतुल्य प्रेरणा-स्रोत, अग्रपुरुष, गीताप्रेसके प्रवर्तक ब्रह्मलीन श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाको, जिनका नियमन-नियन्त्रण न रहनेपर पूज्य श्रीभाईजीका वह रूप कदाचित् नही रह पाता, जो आज दृष्टिगोचर है—वे हमे एक गृहस्थ सतके रूपमे कदाचित् उपलब्ध न हो पाते, किसी कन्दरामे, तीर्थमे अथवा किसी नदीके एकान्त निर्जन तटपर किसी कुटियामे वास करते दिखायी देते अथवा उनका पता ही किसीको न चल पाता। क्योकि उन दिनो श्रीभाईजी सन्यास ग्रहण करने तथा अज्ञातवासके लिये मचल रहे थे। इसी उद्देश्यसे एक कमण्डलु भी वे ले आये थे, जो आज भी उनकी अमूल्य स्मृतिके रूपमे उपयुक्तपात्रके पास सुरक्षित है।

जो जाति, राष्ट्र, समाज अथवा व्यक्ति उसे समुन्नत, समृद्ध एव सम्पन्न बनानेवाले प्रात स्मरणीय महापुरुषोकी सेवाओका उचित आदर तथा सम्मान नही करता, ऋषि-ऋण नही चुकाता, कृतज्ञताभरे हृदयसे पितृ-ऋणका शोधन करके अपने पूर्वजोका योग्य उत्तराधिकारी नही बनता, उसके उज्ज्वल भविष्यकी आशा-आकाक्षा एक दुराशा है, भग्न स्वप्न है अथवा कोरी कल्पना है।

भौतिकवादी कलहग्रस्त मानवकी एकमात्र आशा-केन्द्र, प्राणिमात्रमे एक ही आत्माका दर्शन करनेवाली अपनी गरिमासे भारतके चरणोमे जगत्को नत करनेवाली अमर भारतीय सस्कृति तथा विशाल वाङ्मयकोशको जिस सत्पुत्रने आगामी अनेक शतियोके लिये अक्षय तथा सुरक्षित बना दिया है, भारतमाताके इस उज्ज्वलतम रत्नका यथोचित सम्मान करके अपनेको धन्य बनाना चाहिये।

उस आदर्श प्रेमी, आदर्श सत, आजीवन किसीको अपना शिष्य न बनानेवाले आदर्श परम गुरु, आदर्श नि स्पृह विदेह सद्गृहस्थ, आदर्श अभिभावक, आदर्श सेवक——इस प्रकार जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे नव-आदर्शके प्रतिष्ठाता तथा हमारे सभी कुछ श्रीभाईजीके श्रीचरणोमे हमारा कोटि-कोटि नमन है।

जिनकी मधुर मुस्कान, विमल व्यवहार तथा सभी दृष्टिसे आदर्श जीवनकी स्मृतिमात्रसे, अन्तर्हृदयका कलुप धुल-धुलकर नेत्रमार्गसे निकल पडनेके लिये अधीर हो जाता है, मन दर्पण स्वच्छ एव निर्मल बन जाता है; उस विलक्षण प्रेमीके स्मरणमात्रसे ही जगत्मे व्याप्त स्नेहशून्यता, स्वार्थपरता तथा अहताकी दुर्भेद्य, दुर्गम, दुर्लभ प्राचीरे ध्वस्त हो जायँ, सौहार्द एव स्नेह, निश्छलता तथा निष्कपटता, सहिष्णुता और परस्पर क्षमाशीलता छा जाय, उनके विमल प्रेमकी पावन अजस्र मधुधारा प्रवाहित हो, जिसमे अवगाहन तथा निमज्जन करके जन-जनके मन-प्राण शीतल एव पुनीत हो जायें। हृदयके अन्तरतमसे यह स्वर-लहरी झकृत हो उठे, हाथमे हाथ डालकर कधे-से-कधा मिलाकर यो गाते हुए सभी चल पडे——

जिसका कोई न हो, हृदयसे उसे लगावे,
प्राणिमात्रके लिये प्रेमकी ज्योति जगावे।
सबमे विभुको व्याप्त जान सबको अपनावे,
है बस ऐसा वही भक्तकी पदवी पावे॥

× × ×

श्रीभाईजीके द्वारा हुए लोकाराधन——विश्वरूप अपने इष्टदेवकी अर्चनाका सकेतमात्र इन पृष्ठोमे प्रस्तुत हुआ है। श्रीभाईजीका जीवन अर्चनामय था——उनके श्वास-प्रश्वाससे, उनकी सहज उपस्थितिसे, उनकी पावन दृष्टिसे, प्रभुपूत हृदय-मन-बुद्धिसे निरन्तर विश्वरूप अपने इष्टदेवकी अर्चना ही होती रहती थी। उस अर्चनाका परिचय भौतिक मन, बुद्धि, वाणी, भाषाद्वारा होना सम्भव नही, और न वह लोकके लिये हुई ही है।

बाह्यरूपमे भी श्रीभाईजीके द्वारा जितने विविध रूपोमे सेवा हुई है, उसका भी लेखा-जोखा प्रस्तुत करना सम्भव नही। जो कुछ विवेचन हुआ है, वह केवल उस महती सेवाका सकेतमात्र है। उनके अपने साहित्यके द्वारा, सम्पादित साहित्यके द्वारा, उनके प्रवचनोद्वारा, व्यक्तिगत पत्रोद्वारा तथा उनके जीवनके द्वारा देश-विदेशके करोडो व्यक्ति पिछले ८० वर्षोसे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपमे लाभान्वित होते रहे है। आज देशका कोई भी प्रबुद्ध व्यक्ति ऐसा नही मिलेगा, जिसके जीवनपर इन माध्यमोसे श्रीभाईजीका कोई उपकार, चाहे वह बहुत छोटे रूपमे हो, न हो।

स्थूलरूपमे भी श्रीभाईजीकी सेवाके विविध रूप थे। जब भी किसी ऐसे परिवारके व्यक्ति, जिसके किसी सदस्यको फाँसीकी सजा सुनायी जा चुकी है, श्रीभाईजीके पास पहुँचते, तब उन दुखी प्राणियोकी करुण कहानी वे बडे मनोयोगसे सुनते। परिवारके दुखी व्यक्तियोके साथ उनकी आँखे भी भर आती और वे उसे मृत्युदण्डसे मुक्ति दिलानेके लिये प्रयत्न करनेमे लग जाते। देशके सभी राष्ट्रपति श्रीभाईजीके प्रति बडा आदर-भाव रखते आये हैं। श्रीभाईजी उन्हे मानवताके नाते फाँसीकी सजावाले व्यक्तिपर करुणा करके उसे फाँसीकी सजासे मुक्ति

दिलानेके लिये प्रेरित करते। साथ ही उस व्यक्तिके परिवारवालोमे भगवान्‌को पुकारनेकी प्रार्थना करते। इस प्रयत्नमे श्रीभाईजीको तीन-चार बार सफलता प्राप्त हुई और फाँसीके तख्तेपर झूलनेका आदेश पाये हुए व्यक्ति कुछ वर्षोकी सजा भोगकर पुन अपने परिवारमे लौट आये, और उन्होने अपने जीवनको अच्छे कार्योमे लगाया।

इसी प्रकार जब कभी किसी राज्य-कर्मचारीपर अथवा किसी व्यापारिक फर्मके कर्मचारीपर कोई सकट आता और वह श्रीभाईजीके पास सहायताके लिये पहुँचता, तब वे अपने बडप्पनका भान भूलकर सम्बन्धित अधिकारीको—चाहे वह परिचित हो या अपरिचित—सत्य बात लिखकर उस व्यक्तिके मामलेपर पुन विचार करनेकी प्रार्थना करते। ऐसे मामलोमे श्रीभाईजीके लिखनेकी सत्यतापर विश्वास करके अधिकाश व्यक्तियोकी नौकरियाँ बहाल कर दी जाती थी। इसी प्रकार किसी योग्य व्यक्तिकी नौकरीके लिये लोगोको पत्र लिखनेमे वे सकुचाते नही थे। इजीनियरिंग कॉलेज आदिमे प्रवेश-प्राप्तिके लिये वे हर वर्ष अनेको छात्रोके लिये पत्र लिखते।

श्रीभाईजीसे प्रेरणा प्राप्तकर कितने ही व्यक्ति आवेशमे आकर घर छोडने, आत्महत्या करने, मारपीट करने, मुकदमेबाजी करनेसे विरत हुए है। पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यापारिक कितनी ही कटुताओको श्रीभाईजीने देखते-देखते धो डाला। कितने ही सम्पन्न परिवार श्रीभाईजीकी पचायतीके कारण आज फूल-फल रहे है, अन्यथा फूटके कारण वे विनाशको प्राप्त हो जाते।

देशमे जब भी अनैतिकताकी वृद्धि हुई धर्म एव सस्कृति-विरोधी किसी भी कार्यका सरकारी अथवा गैर-सरकारी तरीकेसे किया जाना निश्चित हुआ, श्रीभाईजीने बहुत ही सयत किंतु प्रभावपूर्ण भाषामे उसका विरोध किया। इसी प्रकार जब धर्म, सम्प्रदाय, भाषा, प्रान्त, पार्टी आदिको लेकर कलह एव वैमनस्यका वातावरण उपस्थित हुआ, श्रीभाईजीने उसको शान्त करनेकी, परस्पर सौहार्दकी स्थापनाकी भरसक चेष्टा की।

श्रीभाईजीकी करुणा मनुष्यतक ही सीमित नही थी, वह जीवमात्रतकपर व्याप्त थी। अतएव जब-जब मूक पशुओ, पक्षियो एव छोटे जीवोकी हत्या एव विनाशकी योजनाएँ बनी, श्रीभाईजीने उनका विरोध किया तथा दैवी प्रकोपोके समय प्राणिमात्रके भरण-पोषणके लिये उन्होने अपने सीमित साधनोमे व्यवस्था करनेका प्रयत्न किया। अपने पूत हृदयमे तो वे निरन्तर यह कामना करते ही थे—

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु खभाग् भवेत्॥

श्रीभाईजीके अन्तर्हृदयकी इस मङ्गलमयी प्रार्थनाद्वारा विश्वमे कितना मङ्गल और शुभका प्रसारण हुआ है, इसका ज्ञान उसीको हो सकता है, जिसकी आँखे खुल चुकी है। वास्तवमे श्रीभाईजी-जैसे विशुद्ध सतोके आविर्भावसे अनन्तकालतक विश्वमे मङ्गलका प्रसारण होता रहता है। ऐसे सतके लोकाराधनकी कोई सीमा नही—इयत्ता नही। श्रीभाईजीने अपने जीवनकालमे तो परममङ्गलका प्रसारण किया ही, उनके पावन साहित्यके द्वारा उनके पावन चरित्रके द्वारा, उनके पावन आदर्शोके द्वारा, उनकी पावन स्मृतिके द्वारा, उनकी पावन स्थली तथा उनके पावन शरीरके पावन भस्मावशेषोके दर्शन एव स्पर्शद्वारा अनन्तकालतक मङ्गलका प्रसारण होता रहेगा। हमलोग परम भाग्यशाली है कि ऐसे मङ्गलस्वरूप महापुरुषके दर्शन, स्पर्श, भाषण, सत्सङ्ग आदिका सौभाग्य हमे प्राप्त हुआ। इन पृष्ठोमे जो कुछ भी प्रस्तुत हुआ है, वह श्रीभाईजीके प्रति कृतज्ञता, श्रद्धा, प्यार, सम्मान, आत्मीयताभरे हृदयोके सहज उच्छ्वास है। हमारे श्रीभाईजी अपनी सहज उदारता और आत्मीयतासे इन उच्छ्वासोके रूपमे प्रकट हुई अर्चनाको स्वीकार करेगे, करेगे, करेगे—यह हमारा दृढ विश्वास है। हमारे हृदयकी तो, बस, निरन्तर यह ही पुकार है—

'प्रसीद मे नमामि ते, पदाब्ज भक्ति देहि मे।'

'हे श्रीकृष्णप्राण! आप प्रसन्न होइये और कृपा करके हमे अपने पादपद्मोकी भक्ति प्रदान कीजिये।'

●

अध्यात्म और धर्म के निष्ठावान प्रवक्ता

अमर संदेश

संतोंकी वाणी अन्धकारमें पड़ी हुई मानव-जातिको प्रकाशमें लानेके लिये कभी न बुझनेवाली अमोघ दिव्य-ज्योति है। दुःख-संकट और पाप-तापमें प्रपीड़ित प्राणियोंके लिये संत-वचन सुख-शान्तिके गम्भीर और अगाध समुद्र हैं। कुमार्गपर जाते हुए जीवनको वहाँसे हटाकर सच्चे सन्मार्गपर लानेके लिये संत-वचन परम सुहृद्-बन्धु हैं। प्रबल मोह-सरिताके प्रवाहमें बहते हुए जीवोंके उद्धारके लिये संत-वचन सुखमय सुदृढ़ जहाज है। मानवतामें आयी हुई दानवताका दलन करके मानवको मानव ही नहीं, महामानव बना देनेके लिये संत-वचन दैवी-शक्ति-सम्पन्न संचालक और आचार्य है। अज्ञानके गहरे गड्ढेमें गिरे हुए चिर-संतप्त जीवोंको सहज ही वहाँसे निकालकर भगवान्‌के तत्त्व-स्वरूपका अथवा मधुर मिलनका परमानन्द प्रदान करनेके लिये संत-वचन तत्त्वज्ञान और आत्यन्तिक आनन्दके अटूट भंडार हैं। आपातमधुर और विषय-विषसे जर्जरित जीवसमूहको घोरपरिणामी विष-व्याधिसे विमुक्त करके सच्चिदानन्दस्वरूप महान् आरोग्य प्रदान करनेके लिये संत-वचन दिव्य सुधा-महौषध हैं। जन्म-जन्मान्तरोंके संचित भीषण पाप-पादपोंसे पूर्ण महारण्यको तुरंत भस्म कर देनेके लिये संत-वचन उत्तरोत्तर बढ़नेवाला भीषण दावानल है। विषयासक्ति और भोग-कामनाके परिणामस्वरूप नित्य-निरन्तर अशान्तिकी अग्निमें जलते हुए जीवोंको विशुद्ध भगवदनुरागी और भगवत्कामी बनाकर उन्हें भगवत्-मिलनके लिये अभिसारमें नियुक्तकर प्रेमानन्द-रस-सुधा-सागर सच्चिदानन्दविग्रह परमानन्दघन विश्वविमोहन भगवान्‌की अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी परम मधुरतम मुखच्छविका दर्शन करानेके लिये संत-वचन भगवान्‌के नित्यसङ्गी प्रेमी पार्षद हैं।

संत-वाणीसे क्या नहीं हो सकता। संत-वाणी मानव-हृदयको तमोऽभिभूत, अवनत और पतित परिस्थितिसे उठाकर सहज ही अत्यन्त समुन्नत और समुज्ज्वल कर देती है। संत-वाणीसे वासना-कामनाके प्रबल आघातोंसे चूर्ण-विचूर्ण दुर्बल हृदयमें विद्युच्छक्तिके सदृश नवीनतम नित्य-पराभवरहित भगवदीय बलका संचार हो जाता है। संत-वाणीसे भय-शोक-विह्वल, चिन्ता-विषाद-विकल, मानमर्दित, म्लान मुखमण्डल सत्यानन्दस्वरूप श्रीभगवान्‌की सच्चिदानन्द ज्योतिर्मयी किरणोंसे समुद्भासित और सुप्रसन्न हो उठता है। संत-वाणीसे त्रिविध तापोंकी तीव्र ज्वाला, दुःख-द्वन्द्व-राशिचयकी दावाग्नि, मानसिक अशान्तिका आन्तर आवेग प्रशान्त होकर परम सुखद शीतलता और शाश्वत शान्तिकी अनुभूति होने लगती है। संत-वाणीसे अज्ञानतिमिराच्छन्न अन्तस्तल भगवान् भास्करकी प्रबलतम किरणोंसे छिन्न-भिन्न होकर प्रनष्ट हुए मेघसमूहके सदृश अज्ञानतिमिरके आच्छादनसे मुक्त होकर विशुद्ध अद्वय-भास्करके प्रकाशसे आलोकित हो उठता है और नित्य-निरन्तर विषय-मल-मलिन निम्नप्रदेशमें बहनेवाली विषय-दुर्गन्ध-दूषित चित्तवृत्ति-सरिता दिव्य प्रेमामृत-प्रवाहिणी मधुर मन्दाकिनीके रूपमें परिणत होकर सुषमा-सौगन्ध्यवती और ऊर्ध्वगामिनी-पदार्थ-प्रतिगामिनी बनी हुई सदा-सर्वदा परम-विशुद्ध-प्रेमघन श्रीनन्दनन्दनके पावन पाद-पद्मोंको विधौत करनेके लिये केवल उन्हींकी ओर बहने लगती है।

'शिव'

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

अमर संदेश

[सत भगवान्‌को प्राप्तकर उन्हीके स्वरूप हो जाते है; अतएव वे अपने पावन चरित्रसे, श्वास-प्रश्वाससे, कल्याणमयी दृष्टिसे, शुभ भावनासे निरन्तर परम मङ्गलका प्रसार करते रहते है। यही मङ्गल साक्षर संतोकी लेखनीसे भी प्रकट होता है। श्रीभाईजी इसी कोटिके संत थे। अतएव उन्होने अपने जीवन, व्यवहार, वाणी और लेखनीसे जगत्‌को परम मङ्गलमय सदेश प्रदान किया है, जो चिरकालतक जगत्‌का अशेष मङ्गल करता रहेगा। उनकी पावन लेखनीसे लगभग २५,००० पृष्ठोका सत्साहित्य निस्सृत हुआ है। उसका एक-एक अक्षर परम मङ्गलमय है। उसी विशाल शब्द-राशिमेसे कुछ रत्न नीचे दिये जा रहे है।]

मानव-जीवनके साध्य—भगवान् एवं भगवत्प्रेम

मनुष्य-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है—भगवत्प्राप्ति अथवा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति। इस उद्देश्यको निरन्तर सामने रखकर ही हमारे सारे कार्य, सारे व्यवहार, सारे विचार, सारे सकल्प-विकल्प और मन-बुद्धि तथा शरीरकी सारी चेष्टाएँ होनी चाहिये। सबकी अबाध गति निरन्तर श्रीभगवान्‌की ओर हो। यही साधन है। भगवान् साध्य है और यह जीवन उसका साधन है। इसीमे जीवनकी सार्थकता है। अतएव बुद्धि, मन, प्राण और इन्द्रियाँ —सबको सर्वभावसे श्रीभगवान्‌की ओर अनन्यगतिसे लगा देना चाहिये। हम कुछ भी काम करे, कुछ भी विचार करे, 'भगवान् ही हमारे जीवनके एकमात्र लक्ष्य है'—यह स्मृति सदा जाग्रत् रहनी चाहिये।

× × ×

मानव-जीवनकी सफलता

याद रखो—मानव-जीवनकी सफलता भगवत्प्राप्तिमे है, विषयभोगोकी प्राप्तिमे नही। जो मनुष्य जीवनके असली लक्ष्य भगवान्‌को भूलकर विषयभोगोकी प्राप्ति और उनके भोगमे ही रचा-पचा रहता है, वह अपने दुर्लभ अमूल्य जीवनको केवल व्यर्थ ही नही खो रहा है, वर अमृत देकर बदलेमे भयानक विष ले रहा है।

याद रखो—बहुत जन्मोके बाद बडे पुण्यबल तथा भगवत्कृपासे जीवको मानव-शरीर प्राप्त होता है। इन्द्रियोके भोग तो अन्यान्य योनियोमे भी मिलते है, पर भगवत्प्राप्तिका साधन तो केवल इसी शरीरमे है, इसको पाकर भी जो मनुष्य विषयभोगोमे ही फँसा रहता है, वह तो पशुसे भी अधिक मूढ है।

याद रखो—यदि तुमने इस जीवनमे भगवान्‌को नही प्राप्त किया—कम-से-कम भगवत्प्राप्तिके पथपर नही आ गये तो तुम्हे पीछे इतना पछताना पडेगा कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। अत हाथमे आये हुए इस महान् सुअवसरके एक-एक क्षणको बडी ही सावधानीके साथ जीवनके असली लक्ष्य भगवत्प्राप्तिके साधनमे ही लगाना चाहिये।

× × ×

श्रीकृष्णमे प्रेम होना ही मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वस्तुत जिसका श्रीकृष्णमे प्रेम नही, वह मनुष्य व्यर्थ ही जीवन खो रहा है। मनुष्यके कर्त्तव्यका पर्यवसान केवल श्रीकृष्ण-प्रेममे ही होना चाहिये। परतु प्रेमका पथ है बडा कण्टकाकीर्ण। त्यागका और विषय-विरागका कवच आपादमस्तक पहनकर ही कोई इस पथपर चल सकता है। अपना सब कुछ प्रेमास्पद श्रीकृष्णके चरणोमे समर्पण करके उसका अनन्य और अविच्छिन्न चिन्तन करनेपर ही यह परम दुर्लभ प्रेमधन मिलता है।

× × ×

भगवत्प्रेमके पथिकोका एकमात्र लक्ष्य होता है—भगवत्प्रेम। वे भगवत्प्रेमको छोडकर मोक्ष भी नही चाहते—यदि प्रेममे बाधा आती दीखे तो भगवान्‌के साक्षात् मिलनकी भी अवहेलना कर देते है, यद्यपि उनका हृदय मिलनके लिये आतुर रहता है। जगत्‌का कोई भी पार्थिव पदार्थ, कोई भी विचार, कोई भी मनुष्य, कोई भी स्थिति, कोई भी सम्बन्ध, कोई भी अनुभव उनके मार्गमे बाधक नही हो सकता। वे सबका अनायास—बिना ही किसी सकोच, कठिनता, कष्ट और प्रयासके त्याग कर सकते हैं। ससारके किसी भी पदार्थमे उनका आकर्षण नही रहता। कोई भी स्थिति उनकी चित्तभूमिपर आकर नही टिक सकती, उनको अपनी ओर नही खीच सकती। शरीरका मोह मिट जाता है। उनका सारा अनुराग, सारा ममत्व, सारी आसक्ति, सारी अनुभूति, सारी विचारधारा, सारी क्रियाएँ एक ही केन्द्रमे आकर मिल जाती हैं—वैसे ही जैसे विभिन्न पथोमे आनेवाली नदियाँ एक ही समुद्रमे आकर मिलती हैं। वह केन्द्र होता है, केवल भगवत्प्रेम। शरीरके सम्बन्ध, शरीरके रक्षण-पोषणका आग्रह, शरीरकी आसक्ति, (अपने या पराये) शरीरमे आकर्षण, (अपने या पराये) शरीरकी चिन्ता—सब वैसे ही मिट जाते हैं, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार। ये तो बहुत पहले मिट जाते है। विषय-वैराग्य, काम-क्रोधादिका नाश, विषाद-चिन्ताका अभाव, अज्ञानान्धकारका विनाश भगवत्प्रेम-मार्गके अवश्यम्भावी लक्षण है। भगवत्प्रेमका मार्ग सर्वथा पवित्र, मोहशून्य, सत्वमय, अव्यभिचारी, त्यागमय और विशुद्ध होता है। भगवत्प्रेमकी साधना अत्यन्त बढे हुए सत्वगुणमे ही होती है। उसमे दीखनेवाले काम, क्रोध, विषाद, चिन्ता, मोह आदि तामसिक वृत्तियोके परिणाम नही होते। वे तो शुद्ध सत्वकी ऊँची अनुभूतियाँ हैं, जिनका स्वरूप बतलाया नही जा सकता।

प्रेमका अनुभव होता है मनमे और मन रहता है सदा अपने प्रेमास्पदके पास। फिर, भला, मनके अभावमे वाणीको यत्किंचित् भी वर्णन करनेका असली मसाला कहाँसे मिले? अतएव प्रेमका जो कुछ भी वर्णन मिलता है, वह केवल साकेतिकमात्र है—बाह्य है। प्रेमकी प्राप्ति हुए बिना तो प्रेमको कोई जानता नही और प्राप्ति होनेपर वह अपने मनसे हाथ धो बैठता है।

ईश्वर

आजतक ईश्वरके सम्बन्धमे जितना वर्णन हुआ है, वह सब मिलकर भी ईश्वरके यथार्थ स्वरूपका निर्देश नही कर सकता, क्योकि ईश्वर मनुष्यकी बुद्धिके परे है, वह परम वस्तु मनुष्यकी बुद्धिमे नही समा सकती। बुद्धि प्रकृतिका कार्य होनेसे जड और परिच्छिन्न है, वह उस अनन्त, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वान्तर्यामी, नित्य ज्ञानानन्दघन चेतनका आकलन किस प्रकार कर सकती है। जो वस्तु ज्ञानका विषय होती है, वह सीमित, प्रमेय और धर्मी वस्तु ही होती है। जो सीमित है, जिसका परिमाण हो सकता है, जो किसी धर्मवाली है, वह वस्तु ईश्वर नही हो सकती। बुद्धि या ज्ञान जिस पदार्थका निरूपण करता है, उस पदार्थका कोई एक निश्चित रूप ज्ञानमे रहता है, ऐसा ज्ञेय पदार्थ सबका प्रकाशक, सबकी आधारज्योति नही हो सकता। जिसका प्रकाश बुद्धि करती है, वह बुद्धिको प्रकाश देनेवाला कैसे हो सकता है। परमात्मा ईश्वर ज्ञेय नही है, प्रमेय नही है, प्रकाश्य नही है, वह तो स्वय ज्ञाता, प्रमाता, चेतनज्योतिरूप, सबका प्रकाशक, स्वयप्रकाश है। वह किसी भी बुद्धिका चिन्त्य विषय नही है, सारी बुद्धियोमे चिन्ताप्रवणता उसीसे आती है। वह स्वय प्रमाणरूप और ज्ञानरूप है। वस्तुत ऐसा कहना भी उसको सीमाबद्ध करना है—उसका माप करना है। उसे कालातीत-गुणातीत कहना भी उसका परिमाण बाँधना है। वस्तुत ईश्वरका तत्व ईश्वर ही जानता है, वह स्वानुभवरूप है, दूसरा कोई उसे जान ही नही सकता, तब वर्णन कैसे कर सकता है। जबतक दूसरा रहता है, तबतक जानता नही और दूसरा न रहनेपर वर्णनका प्रसङ्ग ही असम्भव है।

भगवान्‌का निर्गुण-सगुण-स्वरूप

भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी, निराकार भी है, साकार भी। वे निष्क्रिय, निर्विशेष, निर्लिप्त और निराधार होते हुए ही सृष्टि-स्थिति-सहार करनेवाले, सविशेष, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं। साख्योक्त परस्पर

विलक्षण अनादि पुरुष और प्रकृति, चेतन और अचेतन—दोनो शक्तियाँ, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न होता है, भगवान्‌की ही परा और अपरा प्रकृतियाँ है। इन दो प्रकृतियोके द्वारा वस्तुत भगवान् ही अपनेको प्रकट कर रहे है। वे सबमे रहकर भी सबसे परे है। वे ही सबको देखनेवाले उपद्रष्टा है, वे ही यथार्थ सम्मति देनेवाले अनुमन्ता है, वे ही सबका भरण-पोषण करनेवाले भर्ता है, वे ही जीवरूपसे भोक्ता है, वे ही सर्वलोकमहेश्वर है, वे ही सबमे व्याप्त परमात्मा है और वे ही समस्त ऐश्वर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण भगवान् है। वे एक होनेपर भी अनेक रूपोमे विभक्त हुए-से जान पडते है। अनेक रूपोमे व्यक्त होनेपर भी एक ही है। व्यक्त-अव्यक्त और अव्यक्तसे भी परे सनातन अव्यक्त वे ही है, क्षर, अक्षर और अक्षरसे भी उत्तम पुरुषोत्तम वे ही है। वे अपनी ही महिमासे महिमान्वित है, अपने ही गौरवसे गौरवान्वित है और अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है।

इन भगवान्‌का यथार्थ स्वरूपज्ञान या दर्शन इनकी कृपाके बिना नही हो सकता। ये जिनपर अनुग्रह करके अपना ज्ञान कराते है, वे ही इन्हे जान सकते है और इनकी कृपा भक्तोपर ही व्यक्त होती है। भक्तिरहित कर्मसे, अथवा प्रेमरहित ज्ञानसे भगवान्‌का यथार्थ स्वरूप नही जाननेमे आता। निष्काम कर्मसे भगवान्‌का ऐश्वर्य-रूप जाना जाता है और तत्वज्ञानसे उनका अक्षर परब्रह्मरूप, परतु उनके मधुरातिमधुर पुरुषोत्तम भावका तो अनन्य प्रेमभक्तिसे ही साक्षात्कार होता है।

सत्य—परमात्मा एक है

सत्य-तत्व या परमात्मा एक है। वे निर्गुण होते हुए ही सगुण, निराकार होते हुए ही साकार, सगुण होते हुए ही निर्गुण तथा साकार होते हुए ही निराकार है। उनके सम्बन्धमे कुछ भी कहना नही बनता, और जो कुछ कहा जाता है, सब उन्हीके सम्बन्धमे कहा जाता है। अवश्य ही जो कुछ कहा जाता है, वह अपूर्ण ही होता है। पूर्णका वर्णन किसी भी तरह हो नही सकता। परतु परमात्मा किसी भी हालतमे अपूर्ण नही है, उनका आशिक वर्णन भी पूर्णका ही वर्णन होता है, क्योकि उनका अश भी पूर्ण ही है। इन्ही परमात्माको ऋषियोने, सतोने, भक्तोने नाना भावोसे पूजा है और परमात्माने उन सभीकी विभिन्न भावोसे की हुई पूजाको स्वीकार किया।

× × ×

वे परात्पर सच्चिदानन्दघन एक परमेश्वर ही परम तत्व है। वे गुणातीत है, परतु गुणमय है, विश्वातीत है, परतु विश्वमय है। सबमे वे ही व्याप्त है और जिनमे वे व्याप्त है, वे सभी पदार्थ—समस्त चराचर भूत उन्हीमे स्थित है। वे ही परात्पर प्रभु विज्ञानानन्दघन ब्रह्म, महादेव, महाविष्णु, महाशक्ति, अनन्तानन्दमय साकेताधिपति श्रीराम और सौन्दर्यसुधासागर गोलोकाधीश्वर श्रीकृष्ण है। ये सभी विभिन्न स्वरूप सत्य और नित्य है। परतु अनेक दीखते हुए भी वस्तुत ये है सदा-सर्वदा एक ही।

अवतार

अवतारका अर्थ है—अवतरण, परब्रह्मका उतरना। भगवान् सर्वातीत है, सर्वमय है, सर्वव्यापक है, सदा-सर्वत्र विराजित है, पर उन्होने अपनी 'सर्वभवनसामर्थ्य'से—मायासे—योगमायासे अपनेको ढक रखा है। अपनी इच्छासे ही सबके सामने प्रकट होते है, यही उनका अवतरण है। इसीका नाम 'अवतार' है। यह अवतार स्वय अक्षर ब्रह्मका भी होता है, भगवान् विष्णुका भी होता है और शुद्ध सत्वको आधार बनाकर ही होता है। जो लोग यह कहते है कि 'कोई मनुष्य अपनी उन्नति करते-करते जब महान् गुणोसे सम्पन्न होकर उच्च स्तरपर पहुँच जाता है, तब उसीको भगवान्‌का अवतार कहते हैं', उनका यह कहना ठीक नही है। यह तो 'आरोहण' है—चढना है, अवतरण—उतरना नही। भगवान् तो अवतरित होते है।

भगवान्‌के जन्म कर्म

भगवान्‌का वस्तुत न तो प्राकृत जीवोकी भाँति जन्म होता है और न उनका कर्मजनित, रजोवीर्यसम्भूत पाञ्चभौतिक देह ही होता है। भगवान्‌का मङ्गलमय शरीर सर्वथा भगवत्स्वरूप है वह स्थूल, सूक्ष्म और कारण—त्रिविध मायिक देह नही है। उसका न कभी जन्म होता है न मरण होता है। वह कभी बनता नही, कभी

नष्ट नहीं होता। वह नित्य, सत्य, चिन्मय भगवद्देह है, जो जन्म लेता हुआ-सा तथा अन्तर्धान हुआ-सा दिखायी देता है। इसीसे भगवान्‌ने अपनेको अजन्मा, अविनाशी तथा सबका ईश्वर रहते हुए ही अपनी इच्छासे प्रकट होनेवाला बताया है और कहा है कि 'जो मेरे इस दिव्य (अप्राकृत भगवत्स्वरूप) जन्म और कर्मको तत्वसे जान लेता है, वह शरीर त्यागकर फिर जन्म धारण नहीं करता, मुझ भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है।' जिस जन्म-कर्मका रहस्य जान लेनेपर जाननेवाला जन्म-मृत्युके बन्धनसे सदाके लिये मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, वह जन्म-कर्म कितना विलक्षण तथा कैसा है—इसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता।

× × ×

संसारमे जो कुछ भी ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, शक्ति, श्री, शौर्य, सुख, तेज, सम्पत्ति, स्नेह, प्रेम, अनुराग, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, रस, तत्व, गुण, माहात्म्य आदि देखते हो, सब वहीसे आता है, जहाँ इनका अटूट भडार है। अनादिकालसे अबतक इस भडारमेसे लगातार इन सारी वस्तुओका वितरण हो रहा है और अनन्त-कालतक होता रहेगा, परतु इस महान् वितरणसे उस भडारका एक तिलभर स्थान भी खाली न होगा। वह सदा पूर्ण, अनन्त और असीम ही रहेगा। वह भडार है भगवान् और वे सभी जगह है, उनका महत्व और उनका तत्व जाननेकी चेष्टा करो। जरा-सी भी उनके महत्वकी झाँकी हो जायगी, उनके तत्वका ज्ञान हो जायगा, तो फिर तुम्हे दूसरी कोई चीज सुहायेगी ही नहीं। उनके सौन्दर्य-माधुर्यकी जरा-सी छाया भी कही दीख जायगी तो फिर जगत्‌का सारा सौन्दर्य-माधुर्य चित्तसे सदाके लिये हट जायगा।

आत्माकी शक्ति

याद रक्खो, आत्मामे अनन्त शक्ति है। मोहकी गहरी चादरसे वह ढक रही है, इसीसे तुम अपनेको मन और इन्द्रियोके वशमे पाते हो, इसीसे तुम्हारे अदर वासना, कामना और विषयासक्तिने अपने डेरे डाल रक्खे है, इसीसे तुम पाप-तापके आक्रमणसे पीडित हो। यदि तुम किसी तरह उस चादरको फाड सको तो फिर तुम्हारी अनन्त शक्तिके सामने किसीकी भी शक्ति नही, जो ठहर सके और तुम्हे किसी प्रकार भी सता सके।

विभिन्न धर्म एक ही सत्यको पानेके मार्ग

एक ही सत्यको पानेके अनेक मार्ग है। विविध दिशाओसे उस एककी ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। जो जिस दिशामे है, वह अपनी दिशासे ही उसकी ओर चलेगा। सब एक दिशामे नही चल सकते, क्योकि सब एक दिशामे है ही नहीं। हाँ, सबका लक्ष्य वह एक ही है, इसीलिये अन्तमे सब उस एकहीमे पहुँचेगे, परतु दिशाभेदके अनुसार मार्ग तो भिन्न-भिन्न होगे ही। तुम जिस मार्गसे चलते हो, वह भी ठीक है और दूसरा जिससे चलता है, वह भी ठीक हो सकता है। तुम्हारा और उसका लक्ष्य तो एक ही है। फिर विवाद किस बातका? इसलिये अपने मार्गपर चलो, सावधानीके साथ अग्रसर होते रहो, दूसरेकी ओर मत ताको। न किसीको गलत समझो और न अपने निर्दिष्ट मार्गको छोडो।

भगवत्प्रेम

प्रेम भगवान्‌का स्वरूप ही है। प्रेम न हो तो रूखे-सूखे भगवान् भाव-जगत्‌की वस्तु रहे ही नहीं। आनन्दस्वरूप यदि आनन्दके साथ इस प्रकार आनन्दरसका आस्वादन न करें, उनकी आनन्दमयी आह्लादिनी शक्ति उन्हे आनन्दित करनेमे प्रवृत्त न हो तो केवल स्वरूपभूत आनन्द बडा रूखा रह जाता है। उसमे रस नही रहता। इसलिये वे स्वय ही अपने ही आनन्दका अनुभव करनेके लिये अपनी ही स्वरूपभूता आनन्दरूपा शक्तिको प्रकट करके उसके साथ आनन्द-रसमयी लीला करते है। यह आनन्द बनता नहीं, पहले नही था, अब बना—ऐसी बात नहीं है। प्रेम नित्य, आनन्द नित्य—दोनो ही भगवत्स्वरूप है। आनन्दकी भित्ति प्रेम और प्रेमका विलक्षण

रूप आनन्द ! इस प्रेमका कोई निर्माण नही करता। जहाँ सर्व-त्याग होता है, वही इसका प्राकट्य—उदय हो जाता है। जहाँ त्याग, वहाँ प्रेम और जहाँ प्रेम, वही आनन्द। भगवान् प्रेमानन्दस्वरूप है। अतएव भगवान्की यह प्रेमलीला अनादिकालसे अनन्तकालतक चलती ही रहती है। न इसमे विराम होता है, न कभी कमी ही आती है। इसका स्वभाव ही वर्धनशील है।

गोपीका स्वरूप

श्रीराधा-माधवके सुखकी सामग्री एकत्र कर देना जिसके जीवनका स्वभाव है, वह है गोपी। अपनी बात कही नही है, जगत्की स्मृति नही है, ब्रह्मकी परवाह नही है, ज्ञानका प्रलोभन नही है, अज्ञानका तिमिर तो है ही नही। वहाँ केवल एक ही बात है, दूसरी चीज है ही नही। गोपी केवल एक ही बातको लेकर जीवित रहती है कि वह राधा-माधवको कैसे सुखी देख सके।

गोपीमे निजसुखकी कल्पना ही नही है, फिर् अनुसधान तो कहाँसे होता। उसके शरीर, मन, वचनकी सारी चेष्टाएँ और सारे सकल्प अपने प्राणाराम श्रीश्यामसुन्दरके सुखके लिये ही होते है, इसके लिये उसे चेष्टा नही करनी पडती। यह प्रेम न तो साधन है, न अस्वाभाविक चेष्टा है, न इसमे कोई परिश्रम है। प्रेमास्पदका सुख ही प्रेमीका स्वभाव है, स्वरूप है। 'हमारे इस कार्यसे प्रेमास्पद सुखी होगे'—यह विचार उसे त्यागमे प्रवृत्त नही करता। समर्पितजीवन होनेसे उसके लिये त्याग सहज होता है। गोपीमे श्रीकृष्ण-सुख-काम स्वाभाविक है, कर्तव्यबुद्धिसे नही है। उसका यह 'श्रीकृष्ण-सुख-काम' उसका स्वरूपभूत लक्षण है।

गोपीका जीवन

प्राणप्रियतम भगवान् श्यामसुन्दरका सुख ही गोपीका जीवन है, इसे चाहे 'प्रेम' कहे या 'काम'। यह 'काम' परम त्यागमय सहज प्रेष्ठसुखरूप होनेसे परम आदरणीय है, मुनिमनोभिलषित है। गोपियोका 'काम' है—एकमात्र 'श्रीकृष्ण-सुख-काम' और यह काम उनका सहज स्वरूप हो गया है। इसलिये यह प्रश्न ही नही उठता कि गोपियाँ कही यह चाहे कि हमारे इस 'काम'का कभी किसी कालमे भी नाश हो। यह काम ही उनका स्वरूप है। इसका नाश चाहनेपर तो गोपी गोपी ही नही रह जाती। वह अत्यन्त नीचे स्तरपर आ जाती है, जो कभी सम्भव नही है।

गोपीका स्वभाव

गोपीकी बुद्धि, उसका मन, उसका चित्त, उसका अहकार और उसकी सारी इन्द्रियाँ प्रियतम श्यामसुन्दरके सुखके सहज साधन है। न उसमे कर्तव्यनिष्ठा है न अकर्तव्यका बोध है, न ज्ञान है न अज्ञान, न वैराग्य है न राग, न कोई कामना है न वासना—बस, श्रीकृष्ण-सुखके साधन बने रहना ही उसका स्वभाव है। यही कारण है कि परम निष्काम, आत्मकाम, पूर्णकाम, अकाम, आनन्दघन श्रीकृष्ण गोपी-प्रेमामृतका रसास्वादन करके आनन्द प्राप्त करना चाहते है।

साधनाकी दो धाराएँ

साधनाकी दो धाराएँ है—अनादिकालसे। एक धारामे 'अह'के परिणामकी चिन्ता है, 'अह'के मङ्गलकी भावना है, दूसरी धारामे 'अह'का सर्वथा समर्पण है। जिस धारामे कर्मकी और ज्ञानकी प्रधानता है, उस धारामे आत्मपरिणामकी चिन्ता है, 'अह'के मङ्गलकी भावना है। भगवान्ने गीताके अन्तिम उपदेशमे कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच.॥

(१८।६६)

इन उपदेशमें 'पापनाशका प्रलोभन' है—'तुम्हारे पापोंका नाश मैं कर दूँगा, तुम चिन्ता न करो।' साधक सोचता है कि 'मेरे पापका नाश कैसे होगा, मेरा मङ्गल कैसे होगा ?' इसमें 'अहं'के मङ्गलकी भावना है, 'अहं'के परिणामकी चिन्ता है।

इससे और आगे बढ़ते हैं तो कहते हैं कि 'हमारा बन्धनसे छुटकारा हो जाना चाहिये, मुक्ति मिल जानी चाहिये।' 'मैं बन्धनमें हूँ और मैं छूट जाऊँ।' यह जो बन्धनका बोध है, इसमें 'अहं'के मङ्गलकी आकाङ्क्षा लगी है। इसीमें जहाँ कोई प्रलोभन नहीं, जहाँ ऐसी कोई भावना नहीं, इसके बादकी स्थिति बतलाते हैं—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
(गीता १८।५४)

यहाँ 'पापनाशका प्रलोभन' नहीं है। यहाँ तो साधक 'ब्रह्मभूत' है, 'प्रसन्नात्मा' है। उसे न शोच है न आकाङ्क्षा है। स्वयमेव अपने-आप भगवान् आते हैं, भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है—**'मद्भक्तिं लभते पराम्।'** पर यहाँ भी भक्तिलाभकी आकाङ्क्षा है। जहाँ कोई आकाङ्क्षा नहीं, जहाँ कोई वासना नहीं, जहाँ 'अहं'का सर्वथा विस्मरण—समर्पण है, जहाँ केवल प्रेमास्पदके सुखकी स्मृति है और कुछ भी नहीं—वह एक विचित्र धारा है और उस धाराका मूर्तिमान् रूप ही 'श्रीराधा' है। जितनी और सखियाँ हैं, जितनी और गोपाङ्गनाएँ हैं, वे सब राधा-व्यूहके अन्तर्गत आती हैं और राधा इस भावधाराकी मूर्तिमती सजीव प्रतिमा है। राधाका आदर्श, राधाका जीवन इसीलिये 'ब्रह्मविद्या'के लिये भी आकाङ्क्षित है।

श्रीराधा-भाव क्या है ?

भगवान्‌के स्वरूपका एक भाव है—'आनन्द।' यह अंश नहीं, आनन्दांश नहीं। सत् भगवान्‌का स्वरूप, चित् भगवान्‌का स्वरूप, आनन्द भगवान्‌का स्वरूप। तो भगवान्‌का जो स्वरूपानन्द है, उस स्वरूपानन्दका वैष्णव-शास्त्रोंमें नाम है—'आह्लादिनी शक्ति'। इस आह्लादिनीका जो सार है, जो सर्वस्व है, उसे कहते हैं 'प्रेम'। उस प्रेमका जो परम फल है, उसे कहते हैं 'भाव' और वह भाव जहाँ जाकर परिपूर्ण होता है, उसे कहते हैं 'महाभाव'। यह महाभाव ही 'श्रीराधा' हैं।

भावके अनेक स्तर हैं—रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव। ये सभी आह्लादिनी शक्तिके ही भाव हैं। इन सारे भावोंका जहाँ पूर्णतम प्रकाश, अनन्त प्रकाश है, वह 'श्रीराधा-भाव' है।

यह कोई नहीं बता सकता कि राधा क्या है। राधा है—श्रीकृष्णका सुख। राधा है—श्रीकृष्णका आनन्द। राधा न हो तो श्रीकृष्णके आनन्द-रूपकी सिद्धि ही न हो। श्रीकृष्णके आनन्दका नाम है—'राधा'। इन राधाके अनेक स्तर हैं, अनेक स्वरूप हैं, अनेक विकास हैं।

जैसे मूर्तिमान् रसराज श्रीकृष्णके द्वारा ही समस्त रसोंका अस्तित्व और प्रकाश है, वैसे ही एकमात्र मूर्तिमती महाभावस्वरूपा श्रीराधाके द्वारा ही अमूर्त-समूर्त—सभी भावोंका विकास और विस्तार है तथा उन-उन विभिन्न भावोंके अनुसार ही तदनुरूप रसतत्त्वका ग्रहण होता है। एक ही विद्युत्-ज्योति विविध विभिन्न वर्णोंके बल्बों—विद्युत्-प्रकाश-आधारोंके सम्पर्कमें आकर जैसे विभिन्न वर्णवाली दिखायी देती है, वैसे ही एक ही भाव विभिन्न आधारोंके द्वारा उन-उनके अनुकूल रसतत्त्वका अनुभव करवाता है। एक ही रसका जो विभिन्न रूपोंमें आस्वादन है, उसमें आधार-भेदकी यह भाव-विभिन्नता ही कारण है। वैकुण्ठ आदिकी श्रीलक्ष्मी आदि, द्वारकाकी पट्टमहिषी आदि और विभिन्न-भावसमन्वित श्रीगोपाङ्गनाएँ—सभी इन मूल-महाभावरूपा ह्लादिनी (राधा)के ही विभिन्न-विचित्र विकास हैं। इनमें गोपीभाव परम और चरम त्यागमय होनेके कारण सर्वश्रेष्ठ है।

× × ×

मेरी राधा ऐसी है, जिनके पवित्रतम प्रेमराज्यमे मलिन काम और भोगकी कल्पना-लेशका भी कभी कहीं प्रवेश नही है। वे विलक्षण शृङ्गार धारण करती है, परतु उसमे कही तनिक भी आसक्ति नही है; उनका पवित्र करनेवाला प्रेम मोहसे सर्वथा रहित है। उनमे ममता है, परतु वह स्व-सुख-इच्छासे विरहित है। उनके अपने योगक्षेम पूर्णरूपसे प्रियतम श्रीकृष्णमे समर्पित है। वे खाती-पीती है, पर स्वादके लिये नही। वे अत्यन्त मानवती हैं, किंतु अभिमानसे रहित है। उनमे भोगोका बाहुल्य है, पर भोग-दृष्टिसे वे नित्य भोगरहित है। वस्तुत वे केवल अपने प्रियतमके ही पवित्रतम सुखकी खान है। उनका इन्द्रियसमूह, उनका शरीर, उनका मन, उनके प्राण, उनकी बुद्धि और उनका अह—सभी कुछ प्रियतमके लिये ही है। उनसे उनका अपना कुछ भी काम नही है, वे सब सदा प्रियतमके कार्यमे ही लगे रहते है। श्रीराधासे जगत्मे जगत्के सारे व्यवहार होते है, पर होते है वे सहज ही सयमपूर्ण। उनका किसीसे अपना कोई सम्पर्क नही है, केवल प्रियतमका सुख ही उनके जीवनका सार-सर्वस्व है। मेरे जीवनकी साध्य वे त्रिभुवनपावनी श्रीराधा ऐसी है, जो नित्यतृप्त भगवान् श्रीमाधवकी भी पवित्रतम परमाराध्या है।

× × ×

श्रीराधाका जीवन परम त्यागमय तथा सर्व-समर्पणमय है और स्वरूपत श्रीराधा श्रीमाधवसे सर्वथा अभिन्न रहती हुई ही दिव्य-लीला-विहारिणी है।

परम और चरम त्यागका, सर्वसमर्पणमय उज्ज्वलतम प्रेमका, स्वसुखवाञ्छाविरहित प्रियतम-सुखेच्छामय स्वभावका और 'अह'की चिन्ता, मङ्गलकामना ही नही, 'अह'की स्मृतिसे भी शून्य प्रियतम-स्मृतिमय जीवनका कैसा स्वरूप होता है—श्रीराधाने अपने प्रत्यक्ष जीवनसे इसका एक नित्य चेतन, क्रियाशील, मूर्तिमान् उदाहरण उपस्थित करके जगत्के इतिहासमे एक अभूतपूर्व दान किया है।

जैसे सच्चिदानन्दघन भगवान् श्रीकृष्ण नित्य है, समय-समयपर इस भू-मण्डलमे उनका आविर्भाव-तिरोधान हुआ करता है, इसी प्रकार सच्चिदानन्दमयी भगवती श्रीराधा भी नित्य है। वास्तवमे भगवान्की निजस्वरूपा-शक्ति होनेके कारण वे भगवान्से सर्वथा अभिन्न है और समय-समयपर लीलाके लिये आविर्भूत-तिरोभूत हुआ करती है।

× × ×

श्रीराधारानी भगवान् श्रीकृष्णका ही एक दूसरा स्वरूप है और उन्हीकी भाँति उनमे समस्त भगवदीय गुणोका प्राकट्य है। प्रेमकी परमोच्च सीमास्वरूप महाभावरूपा होनेपर भी वे नित्य-निरन्तर अपनेमे प्रेमका अभाव देखती है। अतएव उनका वह दिव्य प्रेम प्रतिपल नित्य वर्द्धनशील है, वह कभी पूरा होता ही नही। वे नित्यपरिवर्द्धनशील, नित्यनवायमान सौन्दर्य-माधुर्यका अगाध, अपरिसीम, अनन्त भडार होनेपर भी अपनेमे कुरूपता देखकर कभी भी अपनेको प्रियतम श्यामसुन्दरके योग्य अनुभव नही करती और सदा सकुचाती रहती है। अनन्त-अचिन्त्य-अनिर्वचनीय सहज दिव्य भगवत्स्वरूपा होनेपर भी वे अपनेको दोषागार मानकर लज्जाका अनुभव करती है। शिव-ब्रह्मादि देवगण, नारद-सनत्कुमार आदि मुनि, वसिष्ठ-व्यासादि महर्षि, याज्ञवल्क्य-शुकदेव आदि ज्ञानी, अनसूया-अरुन्धती आदि सती-पतिव्रताशिरोमणियो एव ब्रह्मविद्या आदि प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति देवियो आदिके द्वारा उपासित, आराधित, परमगौरवमयी, महामहिमामयी, नित्य निर्मल-प्रेमाकरस्वरूपा होनेपर भी वे अपनेको गौरव-महिमा-विहीन और विकारिहृदय-सम्पन्न बतलाती है और नित्य सहज अनुगत होनेपर भी पुन-पुन वक्रगतिका अवलम्बन करती है। इस प्रकार उनमे नित्य-निरन्तर अनन्त-अचिन्त्य निरतिशय परस्पर-विरोधी धर्म एव भावोका विकास रहता है।

× × ×

श्रीराधा और श्रीकृष्ण अभिन्न होनेपर भी विलक्षण-प्रेम-सम्बन्धसे सम्बन्धित है। वे परस्पर प्रेमी भी है ओर प्रेमास्पद भी। परतु अधिकाशमे श्रीराधा ही आश्रयालम्बनस्वरूपा बनी हुई श्रीकृष्णकी आराधना करके उन्हे सुख पहुँचाती रहती है। श्रीराधामे अनन्त गुण है। उनके स्वरूप-गुणोको यथार्थत पूरा कोई नही जानता।

× × ×

पवित्र प्रेमकी प्राप्तिके लिये जिस त्यागकी आवश्यकता है, उससे भी कहीं अधिक त्याग श्रीराधामें स्वाभाविक है। वास्तवमें श्रीराधाजी दिव्य प्रेमस्वरूपा ही हैं, पर आदर्शके लिये उनका त्याग परमोज्ज्वल है और गोपाङ्गनाएँ भी उसीका अनुकरण करती हैं। श्रीकृष्णका सुख ही उनका जीवन है। उन्हें न त्यागका भय है न त्यागकी आकाङ्क्षा, इसी प्रकार न वे भोग-वासना रखती हैं और न वे किसी निज-कल्याण-कामनासे भोग-त्याग करती हैं। उनका अपना न कोई काम है न उनके लिये कोई काम्य वस्तु है। वे केवल और केवल अपने श्यामसुन्दरको जानती हैं और अपने सहज सर्व-समर्पणद्वारा अनवरत उनको सुख पहुँचाया करती हैं। यही उनका जीवन-सार है—

सर्वत्यागमय पूर्ण समर्पण, दोषबुद्धि-विरहित व्यवहार।
भोग-मोक्ष-इच्छा-विरहित प्रियतम-सुख केवल जीवन-सार॥

—इस परम मधुरतम प्रेममें मोक्ष-सुखकी इच्छाको भी 'काम' माना जाता है, अतः उसका भी सहज त्याग हो जाता है, फिर जगत्‌के तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है। इस प्रेम-सुधाकी पवित्र मधुर धारा प्रतिक्षण बढ़ती हुई असीमकी ओर प्रवाहित होती रहती है।

जलकी धारा जबतक प्रवाहित रहती है, उसका गंदापन नष्ट होकर उसका वह जल निर्मल, शुद्ध बनता चला जाता है, परंतु शुद्ध जल भी यदि एक गड्ढेमें भरकर बंद कर दिया जाता है तो वह अत्यन्त मलिन हो जाता है, सड़कर वह गंदे कीड़ोंकी विहार-स्थली बन जाता है और नाना प्रकारके रोग-विस्तारमें कारण बनता है। इसी प्रकार जबतक सर्वलोक-कल्याणकारिणी भारतीय आर्य-संस्कृतिके अनुसार मानवकी जीवनधारा—विचार-कर्म-धारा अपने 'अहं'को अखिल विश्व-प्राणियोंके 'अहं'में मिलाकर—अपने 'स्व'को सबमें देखकर सबके सुख-हित-सम्पादनमें अखण्डरूपसे प्रवाहित थी, तबतक सबका कल्याण ही अपना कल्याण समझा जाता था तथा सर्वहितकारी विचार एवं क्रिया-कलाप चलते थे। परंतु जबसे मानवका 'स्व' छोटे-से सीमाबद्ध दायरेमें रुककर संकुचित और सीमित हो गया है, तभीसे उस 'स्व'का अभिलषित 'अर्थ'—'स्वार्थ' भी बहुत ही संकुचित होकर अत्यन्त निम्नस्तरपर आ गया। इसी नीच स्वार्थके कारण सर्वत्र त्यागका अभाव बढ़ता जा रहा है और मनुष्य विभिन्न कारणोंकी उद्भावनासे एक-दूसरेका शत्रु बनकर अपने ही विनाशपर तुल गया है। आज केवल राजनीतिमें ही नहीं, प्रायः सभी क्षेत्रोंमें, हमारा ही जीवन नहीं, व्यक्तिगत जीवनसे लेकर समस्त विश्वगत मानव-जीवनतक प्रायः इसी विनाशकी भयानक भूमिपर आ गया है। इसीलिये लोक-कल्याणकारी विज्ञानका भी मानवकी विपरीत-दर्शिनी तामसी बुद्धिके अवाञ्छनीय जन-विध्वंसकारी उद्दण्ड प्रलयकाण्डोंमें प्रयोग किया जा रहा है। ऐसे दुस्समयमें त्यागकी महिमा बतलानेवाले साधनकी—त्यागमय पवित्र चरित्रके अध्ययन, परिचय, दर्शन और तदनुरूप जीवन-निर्माणके पुनीत कार्यकी बड़ी आवश्यकता है।

आध्यात्मिक जगत्‌के साधन-क्षेत्रमें तो सर्वोच्च साधन-पदपर समारूढ़ तीव्र मुमुक्षु—मोक्षकामी पुरुष भी बन्धन-मुक्तिके स्वार्थवश मोक्षकी कामना करता है। यद्यपि यह कामना कामना नहीं मानी जाती—वह त्याज्य नहीं, वरं बड़े पुण्यफलोंसे प्राप्त, आदरणीय और वरणीय है, तथापि स्वार्थ-त्यागकी अत्युच्च भूमिकापर पहुँचनेके लिये इस कामनाका त्याग भी परमावश्यक है। इसके लिये भी ऐसे पुनीत चरित तथा परम पावन साधनके परिचयकी अनिवार्य आवश्यकता है। ऐसा त्यागमय जीवन सर्वत्यागमयी 'श्रीराधा'का है और इस प्रकारका साधन स्वसुख-वाञ्छा-कल्पना-लेशगन्धसे शून्य पवित्रतम 'प्रेम' है।

श्रीराधा तथा गोपाङ्गनाओंके पुनीत चरितमें इसी परम त्यागमय पुनीत साधन तथा साध्यस्वरूपके दर्शन प्राप्त होते हैं। अतएव उसका गम्भीर हृदयमें संयतेन्द्रिय होकर जितना भी स्मरण-चिन्तन-मनन किया जाय, उतना ही मङ्गल है।

भगवान्‌की कृपा

याद रक्खो—तुमपर भगवान्‌की कृपा नित्य-निरन्तर बरस रही है। वह सदा सब ओरसे तुम्हें नहला रही है। ऐसा कोई क्षण नहीं जाता, जिस समय तुम भगवान्‌की कृपासे वञ्चित रहते हो। वञ्चित रहते भी कैसे?

तुम उनकी अपनी प्यारी-से-प्यारी रचना जो ठहरे। तुमपर वे कृपा क्या करते, उनके हृदयमें तो पल-पलमें स्नेह उमड़ा आता है। सचमुच विश्वास करो—जबसे तुम हुए, न जाने किस अज्ञातकालसे, तभीसे उन्होंने तुम्हें अपनी गोदमें ले रखा है। एक क्षणके लिये भी कभी उन्होंने तुमको दूर नहीं किया। उनका कल्याणमय कर-कमल निरन्तर तुम्हारे सिरपर रहता है और निरन्तर तुम उनका शीतल-मधुर स्पर्श पा रहे हो।

विश्वास करो—भगवान् तुम्हारे लिये कृपाकी मूर्ति ही हैं—**प्रभु-मूरति कृपामई है।'** उनके पास इस कृपाके विपरीत या इसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं, तब फिर तुम क्यों डरते हो कि कभी भगवान्की अकृपा हो गयी या कृपा न हुई तो जाने क्या होगा? जब तुम्हें देनेके लिये उनके पास कृपाके अतिरिक्त दूसरी वस्तु है ही नहीं, तब वे देंगे कहाँसे और तुमको वह मिलेगी भी कैसे?

विश्वास करो—जहाँ-कहीं दुःख-संकट या पीडा-यातनाकी प्रतीति होती है, वहाँ वस्तुतः उनकी कृपा ही उस रूपमें प्रकट होकर तुम्हारा महान् हित-साधन कर रही है, जिसको तुम जानते नहीं और इसीलिये उससे बचना चाहते हो। परंतु वे दयालु प्रभु तुम्हें उससे वञ्चित नहीं करना चाहते।

भगवान् मङ्गलमय है, हमारे परम हितैषी हैं, सर्वज्ञ हैं, किस बातमें कैसे हमारा हित होता है—इस बातको जानते हैं। अतएव उनके प्रत्येक विधानका स्वागत करो। खुशीसे सिर चढ़ाकर उसे स्वीकार करो। उनके हाथके दिये जहरमें अमृतका अनुभव करो, उनके हाथकी तलवारमें शान्तिकी छवि देखो, उनके कोमल करस्पर्शमें महिमाको पाये हुए सुदर्शनमें परमसुखके शुभ दर्शन करो और उनकी दी हुई मौतमें अमरत्वको प्राप्त करो। उनके प्रत्येक मङ्गलविधानमें उनको स्वयमेव अवतीर्ण देखो।

भगवान्का सौहार्द

ऐसा कोई स्थान नहीं है और ऐसा कोई समय नहीं है, जिसमें भगवान् न हों, एवं ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिसपर भगवान्की कृपा न हो, जिसको भगवान् अपनानेमें इनकार करते हों।

याद रखो—भगवान् स्वभावसे ही सुहृद् है, वे कृपाके ही मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उनमें किसी भी पापीके प्रति कभी घृणा नहीं होती। किसने पहले क्या किया है, कौन क्या कर रहा है, किस देश-वेषका है, किस जाति-कुलका है, किस धर्म-सम्प्रदायका है—यह कुछ भी वे नहीं देखते। वे देखते हैं—केवल उसके वर्तमान मनको, उसके मनकी वर्तमान परिस्थितिको, उसकी सच्ची चाहको। कोई भी, कभी भी, किसी भी समय अनन्य मनसे उनकी चाह करता है, उनकी कृपा, प्रीति या दर्शन पानेके लिये एकान्त लालायित हो जाता है, भगवान् उसके इच्छानुसार उसपर कृपा करते, उसे प्रीतिदान करते या दर्शन देकर कृतार्थ कर देते हैं।

याद रखो—दुनियामें दो ही चीजें हैं—भगवान् और भगवान्की लीला। जड-चेतन सब कुछ भगवान् हैं और जगत्में जो कुछ हो रहा है, सब उनकी लीला हो रही है। एवं जब भगवान् कल्याणमय—मङ्गलमय हैं, तब उनकी लीला भी वस्तुतः कल्याणमयी—मङ्गलमयी ही है।

विश्वास करो—भगवान् सदा ही तुम्हारे अत्यन्त समीप हैं, तुम्हारी प्रत्येक स्थितिको जानते हैं, तुम्हारी दुःख आवाजको सुनते हैं। बस, विश्वासपूर्वक पुकारनेकी देर है। वे तुरंत तुम्हारी पुकार सुनेंगे और तुम्हें गोदमें छिपा लेंगे। विश्वास करो—भगवान् तुम्हारे परमसुहृद् हैं, निकट-से-निकटतम स्वजन हैं। तुम्हारा दुःख देखकर वे स्थिर नहीं रह सकेंगे। सच्चे मनसे उन्हें अपना परमसुहृद् समझकर पुकारो, तत्काल तुम्हारी सुनवायी होगी और भगवत्कृपासे तुम दुःखोंसे तर जाओगे।

विश्वास करो—भगवान् परम आश्रय है, चाहे सारा ससार तुम्हे भूल जाय, चाहे घर-परिवारके सभी लोग तुमसे मुख मोड ले, चाहे तुम सर्वथा निराश्रय हो जाओ, एक बार हृदयसे उनके परम आश्रयत्वपर विश्वास रखके मन-ही-मन उनका स्मरण करो। देखोगे, तुम्हे कितना शीघ्र और कितना मधुर ओर निश्चित आश्रय मिलता है।

विश्वास करो—भगवान् सर्वशक्तिमान् है, तुम्हारा दुख चाहे कितना ही प्रबल हो, तुम्हारे सकट चाहे कितने ही पहाड-जैसे हो ओर तुम्हारी विपत्ति चाहे किसीसे भी न टलनेवाली हो, भगवान्‌की शक्तिके सामने सभी तुच्छ है। तुम विश्वास करके सर्वशक्तिमान्‌को पुकारो—उनकी शक्ति अविलम्ब तुम्हारी सहायता करेगी और तत्काल तुम्हारे पहाड-से दुख-कष्ट काजलके ढेरकी तरह उड जायँगे।

अपने आपको पहचानो

मनमे निश्चय करो—शरीरके नाशसे तुम्हारी मृत्यु नही होती, तुम शरीर नही हो, इस शरीरके पहले भी तुम थे और पीछे भी रहोगे। तुम आत्मा हो, तुम्हारा स्वरूप नित्य है। जो वस्तु नित्य होती है, वही सर्वगत, अचल, स्थिर और सनातन होती है। इस नित्य, सनातन, सर्वव्यापी स्वरूपमे न जन्म है न मरण है, न विषमता है न विषाद है, न राग है न रोग है, न दोष है न द्वेष है, न विकार है न विनाश है। यह सत् है, चेतन है और आनन्दमय है।

मोहकी चादर फाडनेका प्रधान साधन है—आत्मशक्तिमे विश्वास, आत्मबलका निश्चय। विश्वासकी ज्योतिसे मोह-तमका नाश तत्काल ही हो सकता है। तुम विश्वास करो, निश्चय करो कि तुम्हारे अदर अनन्त शक्ति है। मन, इन्द्रियाँ—सब तुम्हारे सेवक है, तुम्हारी अनुमतिके बिना उनमे जरा भी हिलने-डुलनेकी सामर्थ्य नही है। तुम्हारी ही दी हुई जीवनी-शक्तिमे वे जीवित है और तुम्हारे ही बलपर सारी चेष्टाएँ करते है। तुमने भूलमे अपनेको उनका गुलाम मान लिया, तुम अपने स्वरूपको भूल गये, इसीसे तुम्हारी यह दुर्दशा है। आत्माके स्वरूपको सँभालो, फिर तुम अपनेको अपार शक्ति-सम्पन्न पाओगे।

सात बाते

भगवान् और भोगमे बडा अन्तर है। उनके स्वरूप, साधन और फलके सम्बन्धमे सात बाते स्मरण रखे—

भगवान्	भोग
१ भगवान्‌की प्राप्ति इच्छासे होती है।	१ भोगोकी प्राप्ति कर्मसे होती है, इच्छासे नही होती।
२ भगवान् प्राप्त होनेपर कभी बिछुडते नही।	२ भोग बिना बिछुडे कभी रहते नही।
३ भगवान्‌की प्राप्ति जब होती है, पूरी होती है।	३ भोगोकी प्राप्ति सदा अधूरी ही होती है।
४ भगवान्‌को प्राप्त करनेकी इच्छा होते ही पापोका नाश होने लगता है।	४ भोगोको प्राप्त करनेकी इच्छा होते ही पाप होने लगते है।
५ भगवान्‌को प्राप्त करनेकी साधनामे शान्ति मिलती है।	५ भोगोको प्राप्त करनेकी साधनामे अशान्ति बढती है।
६ भगवान्‌का स्मरण करते हुए मरनेवाला सुख-शान्ति-पूर्वक मरता है।	६ भोगोका स्मरण करते हुए मरनेवाला अशान्ति और दुखपूर्वक मरता है।
७ भगवान्‌का स्मरण करते हुए मरनेवाला निश्चय ही भगवान्‌को प्राप्त होता है।	७ भोगोका स्मरण करते हुए मरनेवाला निश्चय ही नरकोमे जाता है।

इन सात भेदोको समझकर मनुष्यको चाहिये कि वह नित्य-निरन्तर भगवान्‌का भजन ही करे।

व्यवहार और परमार्थ

मनकी नीरोगता ही सच्ची नीरोगता है। जिसका शरीर बलवान् और हृष्ट-पुष्ट है, परन्तु जिसके मनमे बुरी वासना, असद्विचार, काम, क्रोध, लोभ, घृणा, द्वेष, वैर, हिंसा, अभिमान, कपट, ईर्ष्या, स्वार्थ आदि दुर्गुण

और दुष्ट विचार निवास करते हैं, वह कदापि नीरोग नहीं है। उसकी शारीरिक नीरोगता भी बहुत जल्द नष्ट होनेवाली है।

जगत् चाहे हमें सफल-जीवन और बड़भागी समझे, परंतु यदि हमारे मनमें दोष भरे हैं, कामनाकी ज्वाला जल रही है और भगवत्प्रेम-सुधाका प्रवाह नहीं बह रहा है तो निश्चय समझो हमारा जीवन सर्वथा निष्फल ही है। परंतु जिनको कोई नहीं जानता अथवा जिनको निष्फल-जीवन समझकर लोग जिनसे घृणा करते हैं और नाक-भौं सिकोड़ते हैं, उनमें हमें ऐसे पुरुष मिल सकते हैं, जो वास्तवमें सफल-जीवन हैं, दिव्यत्वको प्राप्त हैं।

जगत्को कुछ भी दिखानेकी भावना न रखकर हृदयको शुद्ध बनाओ, बुरी वासना और दुर्गुणोंको हृदयसे निकालकर उसे दैवी गुणों और भगवत्प्रेमसे भर दो। अपनेको अपने सर्वस्व और अपनेपनसहित भलीभाँति भगवान्के प्रति समर्पण कर दो। तुम्हारे अंदर भागवती शक्ति अवतीर्ण हो जायगी। श्रद्धापूर्वक चेष्टा करो, भगवान्की कृपासे कुछ भी कठिन नहीं है। विश्वास करो, तुम्हें अवश्य सफलता होगी, तुम इसी शरीरसे दिव्यत्वको प्राप्त हो जाओगे।

जगत्में जो कुछ है, सब भगवान्की ही मूर्ति है—यह समझकर सबसे प्रेम करो, सबकी पूजा करो, अपना जीवन सबके लाभके लिये समर्पित कर दो। भूलकर भी ऐसा काम न करो, जिससे सबमेंसे किसी एकका भी अहित हो, एकके भी कल्याणमें बाधा पहुँचे।

× × ×

दीन-हीन, सरल, असहाय बच्चे माँको ज्यादा प्यारे हुआ करते हैं, भगवान्-रूपी जगज्जननीको भी उसके गरीब बच्चे अधिक प्रिय हैं। इसलिये यदि तुम माताका प्यार पाना चाहते हो तो माताके उन प्यारे बच्चोंसे प्रेम करो, उन्हें सुख पहुँचाओ, माता आप ही प्रसन्न होकर अपना वरद हस्त तुम्हारे मस्तकपर रख देगी, तुम सहज ही कृतार्थ हो जाओगे।

याद रखो, विश्वके रूपमें साक्षात् भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं। जीवके रूपमें शिव ही विविध लीला कर रहे हैं। इसलिये तुम किसीसे घृणा न करो, किसीका कभी अनादर न करो, किसीका अहित मत चाहो। निश्चय समझो—यदि तुमने स्वार्थवश किसी जीवका अहित किया, किसीके हृदयमें चोट पहुँचायी तो वह चोट तुम्हारे भगवान्के ही हृदयमें लगेगी। तुम चाहे जितनी देर अलग बैठकर भगवान्को मनाते रहो, जबतक सर्वभूतोंमें स्थित भगवान्पर तुम स्वार्थवश चोट करते रहोगे, तबतक भगवान् तुम्हारी पूजा कभी स्वीकार नहीं कर सकते।

पापको छोटा समझकर उससे कभी बेखबर न रहो। याद रखो, आगकी जरा-सी चिनगारी बड़े भारी शहरको जला देती है, एक छोटा-सा बीज बड़े भारी जंगलका निर्माण कर सकता है। यह मत समझो कि काम-क्रोध-लोभका क्षणिक आवेश हमारा क्या बिगाड़ सकेगा, इनको समूल नष्ट करनेका सतत प्रयत्न करते रहो।

जिसका मन वशमें है, वही यथार्थमें स्वाधीन है। देहका बन्धन बन्धन नहीं है, असली बन्धन है—मनका बन्धन। एक आदमी देहसे स्वतन्त्र है, परंतु यदि वह मनके अधीन है तो उसे सर्वथा पराधीन ही समझना चाहिये। मनपर विजय प्राप्त करनेवाला ही यथार्थ विजयी है। अतएव मनको वशमें करो।

× × ×

मनको वशमें करनेके लिये यदि तुम्हें विधि या नियमोंके बन्धनमें रहना पड़े तो अपना सौभाग्य समझो, यह बन्धन ही तुम्हें मनकी गुलामीसे मुक्त करेगा। उच्छृङ्खलता बन्धनकी गाँठोंको और भी कस देती है, अतएव नियमोंकी शृङ्खलामें बँधे रहनेमें ही मङ्गल समझो।

जहाँतक बने, विषयोंका संग्रह न करो, विषयोंका चिन्तन न करो, विषयी पुरुषोंका सङ्ग न करो, विषया-सक्ति बढ़ानेवाले दृश्य न देखो, बात न सुनो और इस तरहके ग्रन्थ न पढ़ो। जिसके कारण मानका, धनका, रूपका

लोभ उत्पन्न होता हो, ऐसे हर एक सङ्गसे भरसक दूर रहो। लोकमे मान न हुआ, धन न बढा तो इससे तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी। यदि संसारके सारे सुखोमे वञ्चित रहकर भी, संसारके दुख और कष्टोसे सर्वदा पीडित रहकर भी तुम अपने जीवनको भगवान्की ओर लगाये रख सको तो समझो कि तुम्हारा जीवन सार्थक है। इसके विपरीत यदि तुम सब प्रकारसे धन-सम्पत्ति, मान-यश और लौकिक विद्या-बुद्धिसे भरपुर हुए, लेकिन तुम्हारा हृदय भगवत्प्रेमसे रहित है, तो तुम निश्चय समझो कि तुम्हारा जीवन विषयी लोगोकी दृष्टिमे चाहे जितना ऊँचा हो, बडे गौरवका हो, असलमे वह सर्वथा व्यर्थ है—व्यर्थ ही नही, अगले जन्ममे आनेवाले महान् कष्टोका कारण भी है। अतएव विषयोमे मनको हटाकर भगवान्मे लगाओ और मानव-जीवनको सफल करो।

घरमे अपनेको मालिक मत समझो, वर एक सेवक समझो और यथासाध्य ईमानदारीके साथ भगवत्सेवाके भावमे घरके काम करो। अपना व्यवहार दूसरेके घरमे कुछ समयके लिये टिके हुए अतिथिका-सा रखो। इस घरको अपना स्थायी घर, घरकी चीजोको अपनी चीजे, घरके सेवकोको अपने सेवक और घरकी सम्पत्तिको अपनी सम्पत्ति मत समझ बैठो। सावधान ! तुम्हारे व्यवहारमे किसीके दिलपर चोट न पहुँचे।

× × ×

बदला लेनेकी भावना कभी मनमे मत आने दो। अपना बुरा करनेपर, गाली देनेपर, निन्दा करनेपर, मारनेपर भी किसीका कभी न बुरा करो, न बुरा चाहो, न बुरा होते देखकर प्रसन्न होओ, उसको हृदयसे क्षमा कर दो। सबमे अपने आत्माको समझकर जैसे अपने अपराधपर आप दण्ड नही देना चाहता—क्षमा चाहता है, उसी प्रकार सबपर क्षमा करो। बदला लेनेकी भावना बहुत बुरी है। बदला लेनेकी भावना मनमे रखनेवाला मनुष्य इस जीवनमे कभी शान्ति, सुख और प्रेम नही पाता तथा मरनेपर पिशाच होता है। वह स्वय डूबता है और वैरभावके बुरे परमाणु वायुमण्डलमे फैलाकर दूसरोका भी अनिष्ट करता है।

मनमे सदा पवित्र भाव रखो, सबका हित चाहो, सबको उत्तम परामर्श दो, कभी न वाणीसे बुरी सम्मति दो, न अपनी करनीमे बुरी बात सिखाओ और न मनमे बुरी बात रखकर उसे वायुमण्डलमे जाने दो। जो दूसरोमे बुरे भाव फैलानेमे सहायक होता है, वह बहुत बडा पाप करता है, उसका कभी हित नही हो सकता।

स्मरण रखो—जिस कार्यमे परिणाममे अपना और दूसरोका हित हो, वही धर्म है और जिससे परिणाममे अपना और दूसरोका अहित हो, वही पाप है।

अपने आपको निरन्तर देखते-परखते रहना चाहिये। दूसरे हमको प्रेमी भक्त कहते है या दुरात्मा—इसकी ओर हमे कुछ भी ध्यान नहीं देना चाहिये। लोग हमे संत, प्रेमी, या महात्मा भी कहे, हमारे मनमे यदि सांसारिक विषयोका मनोरथ और चिन्तन बना है तो हम किसी भी हालतमे महात्मा नही है। अतएव वाणीके द्वारा पर-चर्चाका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये और एक-एक क्षणको भगवान्के नामजपमे लगानेका सावधानीके साथ प्रयत्न करना चाहिये। मनमे जहाँतक बने, ऐसे विषयोको ही प्रविष्ट कराना चाहिये, जो भगवान्की स्मृति लानेवाले हो और निरन्तर मनको बार-बार प्रयत्न करके भगवान्के नाम एव गुण-चिन्तनमे ही लगाना चाहिये। शरीरके द्वारा भी जिन कार्योके करनेकी हमारे निर्दोष सांसारिक निर्वाहके लिये आवश्यकता नहीं, ऐसे कार्योमे सर्वथा बचना चाहिये।

दुःखी-गरीब भाई-बहनोके साथ विशेष प्रेम और नम्रताका बर्ताव करो। उनकी सेवा करनेमे न तो ऐसा खयाल करो और न कभी यह उनपर प्रकट ही होने दो कि तुम बडे आदमी या समर्थ हो, इससे उनका उपकार कर रहे हो या उनपर एहसान कर रहे हो। गरीब-भाई-बहनोकी कोई भी सेवा तुमसे बन जाय तो उनको कभी भूलकर भी उसका स्मरण तो कराओ ही मत, बल्कि मन-ही-मन उनका उपकार मानो कि उन्होंने तुम्हारी सेवा स्वीकार की। परन्तु इस कृतज्ञताको भी अपने मनमे ही रखो। उनपर प्रकाश न करो। नहीं तो, शायद वे समझेंगे कि तुम अपने उपकारकी उन्हे याद दिला रहे हो, इससे उन्हे सकोच होगा और अपनी

गरीवीको याद करके वे दुखी हो जायँगे। जो गिनानेके लिये किसीकी सहायता करता है, वह तो उसे जलानेके लिये आग जलाता है, उसका ताप मिटानेके लिये नही।

असावधानी विनाशको वहुत शीघ्र बुला लाती है। सचेत रहो, सावधान रहो, जीवन-महलके किसी भी दरवाजेसे काम-क्रोध-रूपी किसी भी चोरको अदर न घुसने दो और सावधानीके साथ, जो पहले घुसे वैठे हो, उन्हे दृढता और शूरताके साथ निकालनेकी प्राणपणसे चेष्टा करते रहो। सावधानी ही साधना है।

जीवनके एक-एक क्षणको मूल्यवान् समझो और वडी सावधानीके साथ प्रत्येक क्षण भगवच्चिन्तन या आत्म-चिन्तन करते हुए लोकहितके कार्यमे विताओ। तुम्हारा कोई क्षण ऐसा नही जाना चाहिये, जिसमे किसीका तुम्हारेद्वारा अहित हो जाय। अहित वाणी और शरीरसे ही होता हो, यह वात नही है, यदि तुम्हारे मनमे वुरा विचार आ गया तो मान लो, तुम अपना और दूसरोका अहित करनेवाले हो गये। बुरा विचार कभी मनमे न आने दो, यदि पूर्वसस्कारवश आ जाय तो उसको तुरत निकाल वाहर कर दो। बुरे विचारको आश्रय कभी मत दो, उसकी ओरसे लापरवाह न रहो।

मनको मौन करो। मुँहसे वोलनेका नाम ही मौन नही है, मौन कहते है चित्तके मौन हो जानेको। चित्त जगत्का मनन ही न करे, जगत्का कोई चित्र चित्तपटलपर रहे ही नही, वस, एकमात्र परमात्मामे ही चित्त रम जाय, वह उसीमे प्रविष्ट हो जाय। विश्वास करो—यह स्थिति होती है, तुम्हारी भी यत्न करनेपर हो सकती है। ऐसा ध्यान हो सकता है, ऐसी समाधि सम्भव है, जिसमे जगत्की तो बात ही क्या, तन-मनकी भी सुधि नही रहती, अधिक क्या, ध्यान करनेवाला स्वय ध्येयमे समाकर खो जाता है।

प्रतिध्वनि ध्वनिका ही अनुसरण करती है और ठीक उसीके अनुरूप होती है, इसी प्रकार दूसरोसे हमे वही मिलता है और वैसा ही मिलता है, जो और जैसा हम उनको देते हैं। अवश्य ही वह मिलता है बीज-फल-न्यायके अनुसार कईगुना बढकर।

सुख चाहते हो, दूसरोको सुख दो, मान चाहते हो, मान प्रदान करो, हित चाहते हो, हित करो और वुराई चाहते हो तो वुराई करो। याद रखो, जैसा बीज वोओगे, वैसा ही फल मिलेगा। फलकी न्यूनाधिकता जमीनके अनुसार होगी।

जवतक तुम्हे अपना लाभ और दूसरेका नुकसान सुखदायक प्रतीत होता है, तबतक तुम नुकसान ही उठाते रहोगे।

जवतक तुम्हे अपनी प्रशसा और दूसरेकी निन्दा प्यारी लगती है, तवतक तुम निन्दनीय ही रहोगे।
जवतक तुम्हे अपने सम्मान और दूसरेका अपमान सुख देता है, तवतक तुम अपमानित ही होते रहोगे।
जवतक तुम्हे अपने लिये सुखकी और दूसरेके लिये दुखकी चाह है, तवतक तुम सदा दुखी ही रहोगे।
जवतक तुम्हे अपनेको न ठगाना और दूसरेको ठगना अच्छा लगता है, तबतक तुम ठगाते ही रहोगे।
जवतक तुम्हे अपने दोष नही दीखते और दूसरेमे खूब दोष दीखते हैं, तवतक तुम दोषयुक्त ही रहोगे।
जवतक तुम्हे अपने हितकी और दूसरेके अहितकी चाह है, तवतक तुम्हारा अहित ही होता रहेगा।

याद रखो—जो लोग दिन-रात अशुभ सकल्प करते रहते है, वे स्वय तो दुखी रहते ही है, जगत्को स्वाभाविक ही अपने अशुभ भावोका दान देकर—उन्हे फैलाकर सबको न्यूनाधिकरूपसे दुखी करते है। इसी प्रकार शुभ सकल्प करनेवाले पुरुष स्वय सुखी होते है और ससारके सव प्राणियोको भी सुखी करते है।

याद रखो—सारे शुभका परम आधार है—ईश्वरमे विश्वास, समस्त शुभ विचार, शुभ सकल्प, शुभ गुण और शुभ भाव ईश्वर-विश्वाससे ही उदय होते और टिकते है। जिसका ईश्वरमे विश्वास नही, वह शुभ सकल्प और शुभ पदार्थोका उत्पादन, सग्रह-सवर्धन और सरक्षण नही कर सकता। उसका चित्त वरवस अशुभकी ओर प्रवृत्त होगा।

चेतावनी

तुम वर्तमान घर-द्वार, पुत्र-कन्या, भाई-बहन, माता-पिता, पति-पत्नीको अपने मानते हो—तुम्हारा यह भ्रम ही है। तुम जन्मके पहले जन्ममें भी तुम कहीं थे। वहाँ भी तुम्हारे घर-द्वार, सगे-सम्बन्धी—सब थे। कभी पशु, कभी पक्षी, कभी देवता, कभी राक्षस और कभी मनुष्य—न जाने कितने रूपोंमे तुम ससारमे खेले हो, परतु वे पुराने—पहले जन्मोंके घर-द्वार, साथी-सगी, स्वजन-आत्मीय अब कहाँ है? उन्हे जानते भी हो? कभी उनके लिये चिन्ता भी करते हो? तुम जिनके बहुत अपने थे, बडे प्यारे थे, उनको धोखा देकर खेलके बीचमे ही उन्हे छोड आये, वे रोते ही रह गये और अब तुम उन्हे भूल ही गये हो। उस समय तुम भी आजकी तरह ही उन्हे प्यार करते थे, उन्हे छोडनेमे तुम्हे भी कष्ट हुआ था, परतु जैसे आज तुम उन्हे भूल गये हो, वैसे ही वे भी नये खेलमे लगकर, नये घर-द्वार, सगी-साथी पाकर तुम्हे भूल गये होगे। यही होता है। फिर तुम इस भ्रममे क्यो पडे हो कि इस ससारके घर-द्वार, इसके सगे-सम्बन्धी, यह शरीर, सब मेरे है?

पूर्ण—अखण्ड सुख परमात्मामें है

ससारमे सुख सभी चाहते हे, परतु किसीको पूर्ण, अखण्ड, स्थायी सुख नही मिलता। सुखके लिये भटकते-भटकते जीवन बीत जाता है और सुख आगे-से-आगे सरकता जाता हे। इसका कारण यही है कि मनुष्य जिन प्राकृतिक वस्तुओंमे सुख चाहता हे, उनमे वह पूर्ण, अखण्ड, स्थायी सुख हे ही नही। अतएव यदि तुम सुख चाहते हो तो पूर्ण, अखण्ड, नित्य, सत्य सुखस्वरूप भगवान्‌को भजो।

सबमें भगवद्भाव करे

सदा-सर्वदा भगवान्‌का स्मरण बना रहे, इसलिये समस्त कार्य भगवत्सेवाके भावसे करने चाहिये तथा सब भूत-प्राणियोमे भगवद्भाव करना चाहिये और सबको मन-ही-मन प्रणाम करना चाहिये। यह बहुत ही श्रेष्ठ साधन है। जिससे भी हमारा व्यवहार पडे, उसीमे भगवद्‌भाव करे। न्यायाधीश समझे कि अपराधीके रूपमे भगवान् ही मेरे सामने खडे है। उन्हे मन-ही-मन प्रणाम करे और उनसे मन-ही-मन कहे कि 'इस समय आपका स्वाँग अपराधीका है और मेरा न्यायाधीशका। आपके आदेशके पालनार्थ मै न्याय करूँगा और न्यायानुसार आवश्यक होनेपर दण्ड भी दूंगा। पर प्रभो! न्याय करते समय भी मैं यह न भूलूँ कि इस रूपमे आप ही मेरे सामने है ओर आपके प्रीत्यर्थ ही मै आपकी सेवाके लिये अपने स्वाँगके अनुसार कार्य कर रहा हूँ।' इसी प्रकार एक भगिन-माता सामने आ जाय तो उसको भगवान् समझकर मन-ही-मन प्रणाम करे और स्वाँगके अनुसार बर्ताव करे। यो ही वकील मुअक्किलको, दूकानदार ग्राहकको, डॉक्टर रोगीको, नौकर मालिकको, पत्नी पतिको, पुत्र पिताको और अपराधी न्यायाधीशको, भगिन उच्चवर्णके लोगोको भगवान् समझकर व्यवहार करे—बर्ताव करे स्वाँगके अनुसार, पर मनमे भगवद्भाव रखे, तो बर्तावके सारे दोष अपने-आप नष्ट हो जायँगे। अपने-आप सच्ची सेवा बनेगी। भगवान्‌की नित्य-स्मृति बनी रहेगी। यो मनुष्य दिनभर अपने प्रत्येक कार्यके द्वारा भगवान्‌की पूजा कर सकेगा। भगवान्‌ने कहा हे—'**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव**।—अपने कर्मके द्वारा भगवान्‌को पूजकर मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता हे।'

सर्वथा निश्चिन्त हो जाओ

समस्त चिन्तनोंमे चित्तको मुक्त कर दो। जैसे छोटा शिशु माँकी गोदमे जाकर निश्चिन्त हो जाता है, वैसे ही प्रभुके दास बनकर निश्चिन्त हो जाओ। जिसके रखवाले राम हे, उसे किस बातकी चिन्ता होनी चाहिये। सब कुछ छोडकर, सबकी आशा त्यागकर, भगवान्‌के सामने सबको तुच्छ मानकर, उस दिव्यातिदिव्य मधुर सुधारस-के सामने जगत्‌के सारे रसोको फीका समझकर, उस कोटि-कोटि-कदर्प-दर्प-दलन, सौन्दर्यसार श्यामसुन्दरके स्वरूपके सामने जगत्‌की समस्त रूपराशिको नगण्य मानकर उसीके भजनमे लग जाओ, चित्तको उसीके अर्पण कर दो, सब प्रकारसे उसीपर निर्भर हो जाओ। मनमे उसीका स्मरण करो, बुद्धिमे उसीका विचार करो, वाणीमे उसीके गुण

गाओ, कानोंसे उसीके गुण और लीलाओंको सुनो, जीभसे उसीके प्रसादका रस लो, नासिकासे उसीकी पद-पद्म-परागको सूँघो, शरीरसे सर्वत्र उसीके स्पर्शका अनुभव करो, नेत्रोंसे उसी छविधामकी छविको सर्वत्र—सर्वदा देखो, हाथोंसे उसीकी सेवा करो, तन-मन-धन—सब उसीके अर्पण कर दो।

जबतक तुम जगत्के पदार्थोंको अपना मानते रहोगे, उनमे ममत्व रखोगे, तबतक कभी निश्चिन्त नही हो सकोगे, ये नाशवान्, क्षणभङ्गुर परिवर्तनशील पदार्थ कभी तुम्हे निश्चिन्त नही होने देगे। इनपरसे ममत्व और आसक्तिको हटा लो; ये जिनकी चीजे है, उन्हे सौप दो। बस, जहाँ तुमने इनको भगवान्के समर्पण किया कि वही निश्चिन्त हो गये, फिर न नाशका भय है, न अभावकी चिन्ता है और न कामनाकी जलन है।

सबसे बड़ी विपत्ति

मनुष्यके जीवनके एक क्षणका भी पता नही है, न जाने, किस पलमे प्रलय हो जाय, कब मृत्यु आ जाय। इसलिये 'अमुक स्थिति हो जानेपर भगवान्का भजन करूँगा', ऐसी धारणा छोड देनी चाहिये और अभी जो जिस अवस्थामे हे, उसे उसी अवस्थामे भगवान्की कृपाका आश्रय करके साधन आरम्भ कर देना चाहिये। आधे क्षणका भी विलम्ब नही करना चाहिये।

पलक मारते-मारते मृत्युके ग्रास बन जाओगे, फिर कब करोगे? यह मत समझो कि 'अभी छोटी उम्र है—खेलने-खाने और विषय भोगनेका समय है, बडे-बूढे होनेपर भजन करेगे।' कौन कह सकता है कि तुम बडे-बूढे होनेसे पहले ही नही मर जाओगे? मौतकी नगी तलवार तो सदा ही सिरपर झूल रही है।

जरा-सा भी समय भगवान्के भजनके बिना नही बिताना चाहिये। जो समय भगवद्भजनमे जाता है, वही सार्थक है, शेष सब व्यर्थ है। समयका मूल्य समझकर एक-एक साँसको खूब सावधानीके साथ कजूसके परिमित पैसोंकी भाँति केवल भगवच्चिन्तनमे ही लगाना उचित है। भजनहीन काल ही वास्तवमे हमारे लिये भयंकर काल है। वही सबसे बडी विपत्ति है।

भगवान्की पूजाके पुष्प

भगवान्की पूजाके लिये सबसे अच्छे पुष्प है—श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, दया, मैत्री, सरलता, साधुता, समता, सत्य, क्षमा आदि दैवी गुण। स्वच्छ और पवित्र मन-मन्दिरमे मनमोहनकी स्थापना करके इन पुष्पोंसे उनकी पूजा करो।

जो इन पुष्पोंको फेक देता हे और केवल बाहरी फूलोंसे भगवान्को पूजना चाहता है, उसके हृदयमे भगवान् आते ही नही, फिर वह पूजा किसकी करेगा?

वास्तविक उत्थान

उन्नति तथा उत्थानका वास्तविक अर्थ है—चरित्रका उत्थान, मानस उच्चता और तदनुरूप व्यवहार-बर्तावकी विशुद्धि। यही वास्तविक जीवन-संस्कार या संस्कृति है। हमारे अदरके दुर्विचारो, दुर्गुणो तथा दोषोंका नाश होकर अन्तरके भावोंका सात्त्विक सुधार हो जाय, वासना, कामना आदि विशुद्ध हो जायँ, उनमेंसे भोगासक्ति, हिंसा, असत्य, उच्छृङ्खलता आदि दोष निकल जायँ, जीवन विशुद्ध, सयमपूर्ण तथा पर-सुख-हित-स्वरूप बन जाय और विचारोंके अनुसार ही आचार भी सत्य शिव सुन्दर हो जाय—तभी उसकी संस्कृतिका उदय समझना चाहिये। आज तो हमारी सारी संस्कृति समाजके हिताहितकी दृष्टिसे शून्य—केवल कला-प्रदर्शक सगीत, वाद्य, अभिनय तथा नृत्य और उनके सहयोगी सहभोज-पानमे ही सीमित हो गयी है। इसी संस्कृतिका प्रदर्शन करनेके लिये हमारे नृत्य-वाद्य-सगीत-कुशल कलाकारोंकी 'सांस्कृतिक पार्टियाँ' विदेशोंमे भी संस्कृति-प्रदर्शनके लिये जाया करती हैं। समाजमें गीत-वाद्य, नाट्य-नृत्यका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, ये बडी मनोहर और उपयोगी कलाएँ हैं। पर हैं तभी, जब इनके साथ संस्कृतिका निवासस्थान पवित्र-संस्कृत अन्तःकरण हो। केवल 'कला' तो 'पाप' बन जाती है।

प्रकाश छा ही जाता है। इसी प्रकार जहाँ भक्तिरूपी सूर्यका उदय हो गया है, वहाँ उसका प्रकाशरूप दैवी सम्पत्ति अवश्य फैल जायगी।

भूल जाओ

तुम्हारे द्वारा किसी प्राणीकी कभी कोई सेवा हो जाय तो यह अभिमान न करो कि मैंने उसका उपकार किया है। यह निश्चय समझो कि उसको तुम्हारे द्वारा बनी हुई सेवासे जो सुख मिला है, वह निश्चय ही उसके किसी शुभ कर्मका फल है। तुम तो उसमें केवल निमित्त बने हो, ईश्वरका धन्यवाद करो, जिसने तुम्हें किसीको सुख पहुँचानेमें निमित्त बनाया और उस प्राणीका उपकार मानो, जिसने तुम्हारी सेवा स्वीकार की।

दूसरोंके द्वारा तुम्हारा कभी कोई अनिष्ट हो जाय तो उसके लिये दुःख न करो, उसे अपने पहले किये हुए बुरे कर्मका फल समझो, यह विचार कभी मनमें मत आने दो कि 'अमुकने मेरा अनिष्ट कर दिया है।' यह निश्चय समझो कि ईश्वरके दरबारमें अन्याय नहीं होता। तुम्हारा जो अनिष्ट हुआ है या तुमपर जो विपत्ति आयी है, वह अवश्य ही तुम्हारे पूर्वकृत कर्मका फल है।

याद रखो

तुम्हारे द्वारा किसी प्राणीका कभी कुछ भी अनिष्ट हो जाय या उसे दुःख पहुँच जाय तो इसके लिये बहुत ही पश्चात्ताप करो। यह खयाल मत करो कि 'उसके भाग्यमें तो दुःख बदा ही था, मैं तो निमित्तमात्र हूँ। मैं निमित्त न बनता तो उसको कर्मका फल ही कैसे मिलता, उसके भाग्यसे ही ऐसा हुआ है, मेरा इसमें क्या दोष है।' उसके भाग्यमें जो कुछ भी हो, इससे तुम्हें मतलब नहीं। तुम्हारे लिये ईश्वर और शास्त्रकी यही आज्ञा है कि तुम किसीका अनिष्ट न करो। तुम किसीका बुरा करते हो तो अपराध करते हो और इसका दण्ड तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। उसे कर्म-फल भुगतानेके लिये ईश्वर आप ही कोई दूसरा निमित्त बनाते, तुमने निमित्त बनकर पापका बोझ क्यों उठाया?

दूसरेके द्वारा तुम्हारा तनिक-सा भी उपकार या भला हो अथवा तुम्हें सुख पहुँचे तो उसका हृदयसे उपकार मानो, उसके प्रति कृतज्ञ बनो। यह मत समझो कि 'यह काम मेरे प्रारब्धसे हुआ है, इसमें उसका मेरे ऊपर क्या उपकार है, वह तो निमित्तमात्र है।' बल्कि यह समझो कि उसने निमित्त बनकर तुमपर बड़ी ही दया की है। उसके उपकारको जीवनभर स्मरण रखो, स्थिति बदल जानेपर उसे भूल न जाओ, सदा उसकी सेवा करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करो, काम पड़नेपर हजारों आदमियोंके सामने भी उसका उपकार स्वीकार करनेमें सकोच न करो।

भलाई अपनी तरफसे शुरू करें

मनुष्यको चाहिये कि अपनी भूल देखे और अपनी तरफसे भलाई शुरू कर दे, दूसरा क्या करता है, इसको न देखे। जो मनुष्य यह प्रतीक्षा करता है कि दूसरा भलाई करेगा तब मैं करूँगा, वह वास्तवमें भलाई करना नहीं चाहता—उसकी भलाईमें प्रीति नहीं है। दूसरा करे या न करे, अपने भलाई करना ही है। यदि बिच्छू डंक मारना नहीं छोड़ता तो क्या संत उसको बचानेका स्वभाव छोड़ दे? सूर्य क्या कभी प्रतीक्षा करता है कि कोई प्रकाश देगा तब मैं प्रकाश दूँगा। इसी प्रकार भलाई करनेवाला मनुष्य स्वभावसे निरन्तर भलाई चाहता है और करता है, उसकी भलाई दूसरोंको भलाईमें प्रवृत्त करती है। कदाचित् न करे तो भी उसकी बुराई तो हुई नहीं, भलाईमें सत्कर्म हुआ और उसका सुन्दर फल भी उसे मिलेगा ही। किसीकी बुराई बिना उसके प्रारब्धके कोई कर नहीं सकता। पर जो बुराई करना चाहता है, उसके द्वारा असत्कर्म बनता है और उसके फलस्वरूप उसको दुःख अवश्य मिलता है। अतएव अन्तरसे किसीकी बुराई नहीं सोचकर भलाई सोचनी-करनी चाहिये। अपनी ओरसे विष देनेवालेको भी अमृत देना चाहिये, संताप देनेवालेको भी शान्ति देनी चाहिये। भलाई करनेवालेकी भलाई नहीं करना तो पाप है और भला करना मानवता है। महत्व तो बुरा करनेवालेकी भलाई करनेमें है शत्रुका हितचिन्तन कर एवं उसका हित करके उसे मित्र बनानेमें है।

कामनाकी अग्नि

याद रखो—भोगोमे सुख वैसे ही नही है, जैसे पानीमे घी नही है, बालूमे तेल नही है, मृगतृष्णाके मैदानमे जल नही है और अग्निमे शीतलता नही है। अत जो कोई भी भोगोसे सुखकी आशा रखता है, उसे सदा निराश ही रहना पडता है। तथापि मनुष्य मोहमे पडकर भोगोमे सुखकी सम्भावना मानकर उनके अर्जन तथा सेवनमे लगा रहता है और फलस्वरूप नित्य नये-नये रूपोमे दु खोसे—तापोसे जलता रहता है।

अग्नि जितनी वडी होती है, उतनी ही उसकी गर्मी दूर-दूरतक जाती है। इसी प्रकार कामनाकी अग्नि जितनी बढी हुई होती है, उतनी ही अधिक वह अपनेको तथा अपने सम्पर्कमे आनेवाले पार्श्ववर्तियोको जलाती है। इतना ही नही, कुछ भी सम्वन्ध न रखनेवालोको भी कभी-कभी उससे बडा सताप मिलता है। यह कामनाकी अग्नि विपयोकी प्राप्तिसे नही बुझती, इसे बुझानेके लिये तो वैराग्यरूपी धूल और भगवत्प्रेमरूपी अजस्र अमृत जल-धारा चाहिये। वह वैराग्य तभी प्राप्त होगा, जब भोगोमे दु खोके दर्शन होगे। भोग सुखरहित, दु खालय और दु खयोनि ही है, पर भ्रमवश—मोहवश उनमे सुखकी मान्यता हो रही है और जैसे शरावके नशेमे चूर मनुष्य गदे नालेमे पडा हुआ भी अपनेको सुखी बतलाता है, वैसे ही उसे भोगोमे सुखोकी मिथ्या अनुभूति होती है। शरावीका जैसे वह प्रलाप होता है, वैसे ही उसका भी प्रलाप होता है।

याद रखो—जबतक तुम भगवान्को पीठ दिये, भोगोकी ओर मुख किये चलते रहोगे, तबतक तुम्हे सुख-शान्ति नही मिलेगी। जितना-जितना अधिक तुम भोगोकी ओर अग्रसर होओगे, स्वाभाविक ही भोग-मार्गमे स्थित, भोग-क्षेत्रसे उदित, भोगोकी सहज परिणामरूपा निराशा, भय, विपाद, चिन्ता, राग, द्वेप, वैर, अशान्ति, द्रोह, दम्भ, परिग्रह, हिसा, कामना, वासना, ममता आदि दुर्गुण-दुर्विचारोसे घिरे रहकर सदा-सर्वदा दु ख-सागरमे डूबे रहोगे। जहाँ-जहाँ तुम सुखकी आशासे जाओगे, वही तुम्हे भयानक दु खराशिके दर्शन होगे, क्योकि वहाँ—भोग-राज्यमे ये ही वस्तुएँ है। भोग-राज्यमे फँसा मनुष्य कितनी ही शान्तिकी, सुखकी, वैराग्यकी, निष्कामभावकी चर्चा करे, वह कभी भी शान्ति-सुखको प्राप्त नही हो सकता। अशान्ति-दु ख उसके नित्य सङ्गी बने रहेगे। अतएव जैसे भी हो, भगवान्की ओर मुड जाओ, जबर्दस्ती ही मुड जाओ।

मृत्युके रूपमें भगवान्के दर्शन

जो मृत्युको निर्वाण मान लेता है, उसे मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। अत मृत्युको मोक्षदायिनी मानकर उसका स्वागत करना चाहिये। इतना ही नही, वस्तुत मृत्युका स्वाँग रचकर स्वय भगवान् ही आते है—ऐसा अनुभव करके, मृत्युकी भयानकतामे भगवान्की सौन्दर्य-माधुर्यपूर्ण रूपसुधाका पान करके उन्हीके चरणोमे अपनेको समर्पण करना तथा उनमे घुल-मिल जाना चाहिये—

मृत्यु ! भयानक आयी तुम, ले प्रियतम प्रभुका मधु सदेश।
तोड़ सभी मायाके बन्धन, की मिथ्या ममता निःशेष ॥
रहने कही न दिया तनिक भी झूठे अहंकारका लेश।
चला दिया तुरंत उस पथपर, जो जाता प्रियतमके देश ॥
जन्म-मरणके क्लेश, भविष्यत्के कर सभी नष्ट सविकार।
अमर बनाया, दिला दिया प्रभु-पदमे नित निवास-अधिकार ॥
मुक्तिदायिनी प्रभु-पद-प्रेम-प्रदायिनि मृत्यु परम सुखरूप।
करो कृतार्थ मुझे तुम, लेकर निज प्रभावमें अमल अनूप ॥
स्वागत-अर्घ्य कृतज्ञ हृदयका करो कृपा करके स्वीकार।
करता मैं शुचि सुरभित मन-सुमनोसे पूजन बारंबार ॥

× ×

भूला मैं, पहचान न पाया मृत्यु-वेषमे तुमको, नाथ !
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्युका, आये करने मुझे सनाथ ॥
लीलामय-लीला विचित्र अति, कोई भी न पा सका पार ॥
तुम्हीं पिलाते स्वय कृपा कर, रूप-सुधा निज मधुर अपार ।
कर आवरणभङ्ग, तुमने ही मायाका कर पर्दा छिन्न ।
देकर मुझे गाढ आलिङ्गन, किया सदाके लिये अभिन्न ॥

पाप-पुण्य

पाप और पुण्यकी सीधी-सी परिभाषा यह है कि जिस भावना या क्रियासे परिणाममे अपना तथा दूसरोका अहित होता हो, वह 'पाप' है, और जिस भावना या क्रियासे परिणाममे अपना तथा दूसरोका हित होता हो, वह 'पुण्य' है। जिससे दूसरोका हित नहीं होता, उसमे अपना हित कदापि नही होगा और जिससे दूसरोका हित होता है, उससे अपना कभी अहित नही होगा—यह सिद्धान्त निश्चयरूपसे मान लेना चाहिये। हमारा वास्तविक हित दूसरोके हितमे ही समाया है। जो मनुष्य ऐसा मानते है कि हम दूसरोका अहित करके या दूसरोके हितकी उपेक्षा करके अपना हित करते है या कर लेगे, वे वस्तुत बडे मूर्ख है। वे अपना हित कभी कर ही नही पाते। यह मान्यता ही भ्रम है कि दूसरोके हितकी उपेक्षा या उनका अहित करनेसे हमारा हित हो जायगा। यथार्थमे वे मनुष्य बडे ही अभागे हैं, जो दूसरोके अहितमे अपना हित और दूसरोके दुखमे अपना सुख समझते है। ऐसे मनुष्य ही 'असुर-मानव' है, जिनका जीवन दूसरोकी बुराईमे ही लगा रहता है। वे दूसरोकी बुराई करने जाकर अपनी ही बुराई करते है।

पाप मनुष्य स्वयं करता है, भगवान् नहीं कराते

भगवान् किसी पापी या अन्यायीका हाथ नही रोकते। यह उन्हीका बनाया हुआ नियम है कि मनुष्य कर्म करनेमे स्वतन्त्र है। जैसे गवर्नमेट जब किसीको बदूकका लाइसेस देती है, तब उसे बदूक रखने या चलानेकी कानूनी बाते समझाकर स्वतन्त्र कर देती है। फिर वह अपने इच्छानुसार उस शस्त्रका उपयोग करता है। वह चाहे तो कानूनका पालन करते हुए उसका उपयोग कर सकता है अथवा चाहे तो कानून तोडकर भी उपयोग कर सकता है। जिस समय कानूनके विरुद्ध वह उस शस्त्रको चलाता है, उस समय भी वह उसका हाथ पकडने नही आती, फिर भी उसके कानून-भङ्ग करनेका दण्ड उसे यथासमय अवश्य देती है तथा शस्त्र भी जब्त कर लेती है। इसी प्रकार भगवान् जब जीवको मानव-शरीररूपी शस्त्र देकर ससारमे भेजते है, तब शास्त्ररूपी कानून साथ रख देते है और कहते है—'शास्त्रके अनुसार चलनेसे तुम्हे लाभ होगा, पुरस्कार प्राप्त होगा।' जो शास्त्रके विरुद्ध चलता है, उसका वे हाथ नही पकडते, केवल उसके अन्यायको स्मरण रखते है और उसका यथोचित दण्ड समयपर उसे देते हैं।

मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र, किंतु फलभोगमें परतन्त्र है

भगवान्ने प्रत्येक मनुष्यको कर्म करनेमे स्वतन्त्र बना रखा है। अतएव उसके कार्यकी जिम्मेदारी उसीपर है। वह कर्म करनेमे स्वतन्त्र, किंतु फलभोगमे परतन्त्र है। मनुष्यके अन्तःकरणमे दो प्रधान शत्रु हैं—काम और क्रोध। ये ही सारे अनर्थोकी जड हैं। इन्हीकी प्रेरणासे मनुष्य पापकर्ममे प्रवृत्त होता है। ये दोनो शत्रु अपने मनमे रहते है और हम ही इनको प्रोत्साहन देते है। अत इनके द्वारा होनेवाले कर्म भी हमारे ही किये हुए समझे जाते है। अतएव कोई भी मनुष्य, जो राग-द्वेष या कामनाके वशीभूत होकर कर्ममे प्रवृत्त होता है, अपने किये हुए कर्मोके उत्तरदायित्वसे मुक्त नहीं हो सकता। उसे उनका फल अवश्य भोगना ही पडेगा।

× × ×

कर्मोका फल अवश्य भोगना पडता है और कर्मानुसार जन्मान्तरकी प्राप्ति होती रहती है, एव जबतक भगवत्प्राप्ति या मुक्ति नहीं हो जाती, तबतक यह जन्म-मरणका प्रवाह चलता ही रहता है। मरनेपर कर्मानुसार

जीव आतिवाहिक देह प्राप्त करके तेजप्रधान देव-देहसे स्वर्गादि लोकोमे अथवा वायुप्रधान पितृ-प्रेतादि देहसे पितृ-प्रेत-लोकोमे जाता है। परतु हिंदू-सस्कृतिके सिद्धान्तमे अनन्तकालीन स्वर्ग या नरक नही है। स्वर्ग या नरकादि-के सुख-दुख भोगकर जीव पुन अपने कर्मानुसार अच्छी-बुरी योनियोमे जन्म लेता है।

मनुष्य कर्म करनेमे स्वतन्त्र है और फलमे परतन्त्र है। निषिद्ध कर्माचरणसे अन्धकारमय दुखप्रद नरकादि लोक और नीच पशु-पक्षी आदि योनियाँ प्राप्त होती है और पवित्र वैध कर्मोके फ़लस्वरूप सुखमय स्वर्गादि लोक और उत्तम श्रेष्ठवर्णकी मानव-योनि प्राप्त होती है।

लोकसेवा

जबतक तुम्हारे मनमे यह बात है कि 'मेरे बिना ससारका भला कैसे होगा', तबतक ससारका तुमसे भला नही होगा। जबतक तुम यह समझते हो, 'मै उत्तम हूँ, मुझमे सद्गुण है, मै ऊँचा हूँ, दूसरे लोग निकृष्ट है, दुर्गुणी है, नीच है,' तबतक तुम जगत्का कल्याण नही कर सकोगे। जबतक तुम यह चाहते हो कि 'मै दुनियाका भला करूँ और दुनिया मुझे अपना नेता माने, अपना पूज्य समझे, अपना सेव्य समझे और मेरा सम्मान करे, मेरी सेवा-पूजा करे और मेरी बडाई हो,' तबतक तुम उसका यथार्थ कल्याण नही कर सकते, क्योकि तुम्हारे मनमे नेता, पूज्य और सेव्य बननेकी जो चाह है', वह तुम्हारे अदर एक ऐसी कमजोरी पैदा करती रहती है, जिससे तुम दुनियाके सामने सच्ची भलाईकी बात नही कह सकते।

याद रखो—जबतक तुम मान-बडाईके लिये लोकसेवा करते हो, लोकसेवा करके मान-बडाई पानेपर प्रसन्न होते हो, तबतक तुम्हारे मनमे लोकसेवाके साथ-ही-साथ मान-बडाईकी एक ऐसी चाह छिपी है, जो धीरे-धीरे तुम्हे लोकसेवासे हटाकर लोकरञ्जनकी ओर ले जाती है। और जब तुम्हारे मनमे लोकरञ्जनका भाव हो जायगा—तुम्हारा उद्देश्य लोकरञ्जन हो जायगा, तब तुम्हे लोकसेवा बरबस छोडनी पडेगी। फिर तो तुम वही करोगे, जिसमे लोकरञ्जन होगा।

सुधारका ठेका मत लो

सुधारका ठेका मत लो। न अपने मतको सर्वथा उपकारी समझकर किसीपर लादनेका हठ करो। सुधारका सच्चा रूप जो तुम समझते हो, सम्भव है, वह न हो, और तुम्हे मोह, परिस्थिति, स्वार्थ या द्वेषवश वैसा दीखता हो। सावधान, कही सुधारके नामपर सहार न कर बैठो। सुधार तुम्हारे किये होगा भी नही, सच्चे सुधारक तो भगवान् है, जो प्रकृतिके द्वारा निरन्तर ध्वस और निर्माणके रूपमे सुधार करते रहते है। स्वार्थरहित, जीवोके सुहृद्, सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होनेके कारण भगवान्का किया हुआ सुधार परिणाममे निश्चय ही कल्याणकारी होता है, और मोहवश इच्छा न करनेपर भी बाध्य होकर उसे सबको स्वीकार भी करना ही पडता है।

सेवाका आदर्श

'अपनी सारी, सब प्रकारकी सम्पत्तिपर सबका—विश्वरूप भगवान्का अधिकार मानकर, जहाँ-जहाँ दीन है, जहाँ-जहाँ गरीब है, जहाँ-जहाँ अभावग्रस्त है, असमर्थ है, वहाँ-वहाँ उपयोगी सामग्रीके द्वारा उनकी सेवामे लगाते रहो। मनुष्यके व्यवहारमे—मानव-जीवनमे एक बात अवश्य आ जानी चाहिये कि अपने पास विद्या, बुद्धि, धन, सम्पत्ति, भूमि, भवन, तन, मन, इन्द्रिय—जो कुछ है, उससे जहाँ-जहाँ अभावकी पूर्ति होती हो, वहाँ-वहाँ उन्हे लगाता रहे। ऐसा करना ही पुण्य है—सत्कर्म है, धर्म है।

जहाँ अन्नका अभाव है, वहाँ भगवान् अन्नके द्वारा तुम्हारी सेवा चाहते है, जहाँ जलका अभाव है, वहाँ जलके द्वारा, जहाँ वस्त्रका अभाव है, वहाँ वस्त्रके द्वारा और जहाँ आश्रयका अभाव है, वहाँ आश्रयके द्वारा।

इस बातको खूब याद कर ले कि हमारे पास जो कुछ है, वह दीनोके लिये, अनाथोके लिये और गरीबोके लिये ही है, उन्हींके हककी चीज है। गीतामे भगवान् कहते है कि 'अपनी शक्ति, सम्पत्ति, जीवन—सबको देकर

उनके बाद जो कुछ बचे, उनमे अपना काम निकाले। यह जो बचा हुआ है, वही 'यज्ञावशेष' है। इस प्रसादको व्यवहारमे लानेसे सारे पापोंका नाश होता है—

'यज्ञशिष्टाशिन सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै.।'

पर 'जो अपने लिये ही सब कुछ करते हैं, कमाते-खाते है, वे पाप खाते है'—

'भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।'

'जो इन्द्रियाराम है, वह पापमय-जीवन है, वह व्यर्थ ही जीता है'—

'अघायुरिन्द्रियारामो मोघ पार्थ स जीवति।'

वह पाप खाता है। अत पाप मत खाइये। सबको सबका हक देकर, सबका स्वत्व देकर, बचे हुएसे अपना निर्वाह कीजिये। वह अमृत है। वही यज्ञावशेष है। यह कभी मत मानो कि 'मेरे पास जो सम्पत्ति है, वह मेरी है।' तुम उसके ट्रस्टी हो, व्यवस्थापक हो, मैनेजर हो, उसे भगवान्‌की समझो और उसे भगवान्‌की सेवामे यथायोग्य लगाकर धन्य हो जाओ। तभी तुम भगवान्‌के ईमानदार सेवक हो। और यदि तुमने उसको अपनी माना और अपने उपयोगमे लिया, तो तुम चोर हो, पापी हो, उसका दण्ड तुम्हे मिलेगा।

आजके युगमे सहायताका विज्ञापन पहले किया जाता है, सहायता पीछे की जाती है। यह निन्दनीय और हानिकारक चीज है। चाहिये तो यह कि हम जैसे अपने दु खको दूर करनेमे लगते है, वैसे ही दूसरेके दु खको दूर करनेमे लग जायँ। कोई अपने दु खको दूर करनेमे क्या गौरव मानता है? क्या वह अपने ऊपर उपकार मानता है? बाढ आनेवाली हो और हम अपनी झोपडीकी चीजे बाहर सुरक्षित स्थानमे ले जायँ, इसमे गौरवकी बात क्या है? ऐसा किये बिना हम रह ही नहीं सकते। ठीक इसी प्रकार अपने द्वारा होनेवाली दीनोकी सेवाके लिये मनमे तनिक भी गौरव-बुद्धि न हो—अहताका तनिक भी स्पर्श न हो, उनका स्वत्व मानकर सेवा करे। यह ध्यान रहे कि हमारी सेवा किसीके सिरको कभी नीचा न कर दे। 'मै गरीब, सहायताका पात्र हूँ और ये मेरे सहायक हैं'—हमारे किसी बर्तावमे ऐसा उसके मनमे न आने पाये।

जहाँतक हो सके, सेवाको प्रकट न होने दो, प्रकट करनेकी चेष्टा मत करो। प्रकट हो जाय तो सकुचाओ और सच्चे मनमे उसका श्रेय भगवान्‌की कृपाको दो।

सेवा करके अभिमान न करो, जिसकी सेवा करते हो उससे कुछ चाहो मत, उससे किसी बातकी आशा न करो। वह हमारा कृतज्ञ हो, ऐसी कल्पना मनमे मत उठने दो। उसपर कोई एहसान न जनाओ। उसपर अपना अधिकार न मानो। उसके दोषोंको—अभावोंको देखकर घबराओ मत। उसपर झुंझलाओ मत। उसका तिरस्कार न करो।

सेवा करके विज्ञापन न करो, जिसकी सेवा की है, उसपर बोझ मत डालो। नही तो तुम्हारी सेवा पुन स्वीकार करनेमे उसे सकोच होगा और पिछली सेवाके लिये, जो उसने स्वीकार की थी, उसके मनमे पछतावा होगा।

अपराध कैसे बंद होंगे?

जबतक अपराधको अपराध न माना जाय, अपराधका भयकर फल परलोकमे भोगना पडेगा—यह विश्वास न हो, 'मेरे अपराधको सर्वव्यापी भगवान् देखते है'—यह निश्चय न हो, तबतक किसी भी बाहरी क्रियासे, कानूनसे या दण्डसे अपराधोंका अन्त नही हो सकता। धर्मके सिद्धान्तमे विश्वास होनेपर जब मनुष्य अपराधको पाप समझेगा, तब एकान्तमे भी वह अपराध नहीं करेगा। मनमे भी अपराधके भाव आनेपर वह अन्तर्यामी प्रभुसे सकोच करेगा, उनसे डरेगा। नहीं तो, चोरोको दण्ड देनेका काम करनेवाला मनुष्य भी स्वय चोरीका धन लेनेमे नहीं हिचकेगा, किसीको खूनका अपराधी सिद्ध करके उससे घृणा करनेवाला भी स्वय स्वार्थवश खून करने-करानेमे पश्चात्तापका अनुभव नहीं करेगा। और दूसरेको व्यभिचारी बताकर उसकी घोर निन्दा करनेवाला भी स्वय व्यभिचारमे रम लेगा। वस्तुत अपराधके मूलस्रोतका नाश होना चाहिये। वह रहता है मनमे, उसका नाश धर्मकी अग्निसे ही होता है।

पहले अपना सुधार करो

दुनियाके सुधार और उद्धारकी चिन्ता छोडकर पहले अपना सुधार और उद्धार करो। तुम्हारा सुधार हो गया तो समझो कि दुनियाके एक आवश्यक अङ्गका सुधार हो गया। यदि ऐसा न हुआ, तुम्हारे हृदयमे उच्च भावोंका सग्रह नही हो सका, तुम्हारी क्रियाएँ राग-द्वेष-रहित, पवित्र नही हुई और तुमने दुनियाके सुधारका बीडा उठा लिया, तो याद रखो, तुमसे दुनियाका सुधार होगा ही नही। यह मत समझो कि तुम लोकसेवक हो, लोक-सेवा करते हो तो फिर तुम्हारे व्यक्तिगत चरित्रसे इसका कोई सम्बन्ध नही है। तुम्हारा चरित्र कलुषित या दूषित होगा तो तुम लोकसेवा कर ही नही सकते। लोकसेवा तुम उस सामग्रीसे ही तो करोगे, जो तुम्हारे पास है। दुनियाके सामने तुम वही चीज रखोगे, उसको वही पदार्थ दोगे, जो तुम्हारे अदर है। दुनियाको तुम स्वाभाविक ही वही क्रिया सिखलाओगे, जो तुम करते हो। इससे दुनियाका कल्याण कभी नही होगा।

सुननेवाले लाखो है, सुनानेवाले हजारो है, समझनेवाले सैकडो है, परतु करनेवाले कोई विरले ही है। सच्चे पुरुष वे ही है और सच्चा लाभ भी उन्हीको प्राप्त होता है, जो करते है।

उपदेश करो अपने लिये, तभी तुम्हारा उपदेश सार्थक होगा। जो कुछ दूसरोसे करवाना चाहते हो, उसे पहले स्वय करो, नही तो तुम्हारे उपदेश नाटकके अभिनयके सिवा और कुछ भी नही है।

विश्वप्रेमका आधार

आज जो समस्त विश्व-मानसमे एक भयानक द्वेष, परसुख-असहिष्णुता, भीषण कलह तथा हिसाकी आग जल उठी है, एव पता नही, वह कब भयानक मूर्तरूपमे भडककर मानव-जातिका विनाश कर देगी, इसका प्रधान कारण है—स्वार्थका अत्यन्त सकुचित—सीमित हो जाना, मानवका एक छोटी-सी परिधिमे ही सुखकी कल्पना करना और स्वसुख-वासनाको ही एकमात्र जीवनका ध्येय बना लेना। विश्वबन्धुत्व या विश्वप्रेमकी कितनी ही लबी-चौडी बाते की जायँ, विशाल योजनाएँ बनायी जायँ, सह-अस्तित्व या पञ्चशीलके नारे लगाये जायँ—जबतक मानव परसुखको ही निजसुख नही मानेगा, जबतक निजसुखका त्यागी और परसुखका विधायक नही बनेगा, तबतक सच्चे अर्थमे विश्वप्रेमका उदय कभी नही होगा।

समता-विषमता

याद रखो—जगत्मे विषमता कभी मिट नही सकती। जगत् भगवान्का लीलाक्षेत्र है। लीलामे समता हो जाय तो लीला ही न रहे। जगत्मे यदि प्रकृति साम्यभावको प्राप्त हो जाय तो जगत् ही न रहे। अतएव भगवान्की लीलाके लिये चित्र-विचित्र विभिन्न भावो, गुणो, आकृतियो और क्रियाओकी आवश्यकता है। पर इन सारे भावो, गुणो, आकृतियो और क्रियाओमे सर्वत्र समभावसे भगवान् भरपूर है। जो इन भरपूर भगवान्को देखकर, पहचानकर जगत्मे व्यवहार करता है, उसमे जगत्की दृष्टिसे व्यावहारिक यथायोग्य विषमता करते हुए ही जिसका व्यवहार वस्तुत समत्वपूर्ण होता है, जिसका बाह्य विषम व्यवहार आभ्यन्तरिक समतासे उत्पन्न और समतासे युक्त है, वही सच्चा साम्यवादी है। पर जो केवल बाहरसे सम व्यवहारका प्रयत्न करता है, अदर विषमता रखता है, वह तो समताका रहस्य ही नही समझता। ऐसे विषमतासे उत्पन्न और विषमतासे युक्त साम्यवादसे सदा दूर रहो।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन. ॥
(गीता ५ । १८)

'वे पण्डितजन विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मणमे, चण्डालमे तथा गौ, हाथी और कुत्तेमे भी समदर्शी होते है ।'

यहाँ कोई कह सकते है—'ब्राह्मण और चण्डाल—दोनो ही मनुष्य हे। इनमे समदर्शन ही क्यो, समान व्यवहार भी हो सकता हे (यद्यपि यह सम्भव नहीं) ।' उनसे यह कहना हे कि 'मनुष्यकी बात तो ठीक हे—पर गाय, हाथी, कुत्तेके साथ भी क्या सम व्यवहारकी बात कभी सोची जा सकती हे ?' पर व्यवहारमे विपमता होते हुए भी प्राणिमात्रमे एक ही आत्मा—एक ही भगवान् सदा विराज रहे हे, इस बातको हिंदू देखता हे। वह ब्राह्मणके साथ ब्राह्मणोचित, चण्डालके साथ चण्डालोचित तथा गो, हाथी और कुत्तेके साथ उनके योग्य व्यवहार करता हे, परतु उनमे नित्य एक ही परमात्माको देखनेके कारण किसीके साथ असद्व्यवहार नही करता और न व्यवहारकी विपमतासे उसके प्रेम और परमात्मभावमे ही न्यूनता आती हे ।'

जिस प्रकार अपने मस्तक, हाथ-पैर आदि अङ्गोमे आत्मभाव समान होनेपर भी मनुष्य उनके व्यवहारमे भेद रखता है—मस्तिष्कमे विचार करता है, मुँहसे खाता हे और बोलता है, हाथोसे आदान-प्रदान करता ह, लिखता-पढ़ता है और पैरोसे चलता है, एक अङ्गसे दूसरे अङ्गका काम नही लेता, क्योकि वह जानता हे कि यह सम्भव ही नहीं हे, परतु सबके दुःख-सुखका समानरूपसे अनुभव करता हे और समस्त शरीरमे समान प्रेम करता ह, उसी प्रकार व्यवहारमे भेद रखता हुआ भी हिंदू प्रत्येक प्राणीके साथ आत्माके नाते सदा समभावापन्न रहता और वह जैसे अपने योगक्षेम तथा कल्याणके लिये प्रयत्न करता हे, वैसे ही अन्यान्य जीवोके लिये भी करता है।

यदि कही किसीके साथ कभी व्यवहारमे युद्धादि-जैसी क्रूर क्रिया करनी पडती हे तो वैसे ही जैसे मनुष्य अपने किसी सडे अङ्गका विकार निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया (ऑपरेशन) कराता हे ।

व्यावहारिक अनेकतामे तात्त्विक एकता और प्रकृति-जनित जगत्की विपमतामे परमात्माकी नित्य समता देखना हिंदू-संस्कृतिकी विशेपता हे ।

× × ×

आत्मवत् व्यवहारमे—अपने ही शरीरके दाये-बाये और ऊपर-नीचेके अङ्गोके साथ और उनके द्वारा होनेवाले व्यवहारकी भाँति—क्रियामे भेद रहेगा, क्योकि बाह्यव्यवहार सारे-के-सारे प्रकृतिमे हे, और प्रकृतिमे भेद है ही। इस प्रकृतिभेदके कारण ही समस्त संसारमे विपमता नजर आ रही है। न सबका वर्ण एक-सा हे, न बुद्धि एक-सी है, न ढाँचा एक-सा हे, न शरीरकी ताकत एक-सी हे, न चेहरा एक-सा हे, कुछ-न-कुछ भेद अवश्य ह। इस भेदमय संसारमे अभेद देखना ही तो आत्मबुद्धि हे—शुद्ध ज्ञान हे।

विचार-स्वातन्त्र्य

विचार-स्वातन्त्र्यका अर्थ मनमाना आचरण करना नही हे। 'मेरे मनको जो अच्छा लगेगा, मेरी इन्द्रियाँ जिसमे सुख मानेंगी, मैं वही करूँगा, किसी भी नियम-संयममे, बन्धनमे नही रहूँगा। किसीकी हानि हो या लाभ, अपना भी नैतिक पतन हो या उत्थान, मै उसकी परवाह नही करूँगा। मेरी स्वतन्त्रताके आगे किसीका भी कोई मूल्य नहीं है'—ऐसा मानना विचार-स्वातन्त्र्य नहीं हे। यह तो यथेच्छाचार हे और प्रत्यक्ष ही मन-इन्द्रियोकी गुलामी है। जो मन-इन्द्रियोका गुलाम बनकर उनकी तृप्तिके लिये विवेकशून्य यथेच्छ आचरण करता है, वह स्वतन्त्र कहा है, असलमे तो वही परतन्त्र हे। जो शरीरमे परतन्त्र ह, पर मन-इन्द्रियोपर जिसका अधिकार हे, जो उनके वशमे नहीं है, पर वे ही जिसके वशमे ह, वही वस्तुत स्वतन्त्र हे। इस स्वतन्त्रताके लिये नियमोकी आवश्यकता है, संयमकी आवश्यकता ह एव नित्य अंदर छिपे रहनेवाले काम-क्रोध, ईर्ष्या-असूया, राग-द्वेष, दम्भ-हिंसा आदि शत्रुओके पूर्ण दमनकी आवश्यकता हे। जो मन-इन्द्रियोको दोपोसे रहित और नित्य संयमके बन्धनमे

रखता है, वही बन्धनसे छूटता है। यह बन्धन मुक्तिके लिये होता है और इस बन्धनसे छूटना नित्य-बन्धनमे बँधना होता है।

असुर-मानव

याद रखो—भगवान्‌को जीवनकी परम गति न मानकर जो केवल भोगोके प्राप्त करने और उन्हे भोगनेमे ही जीवनकी इतिकर्त्तव्यता मानता है, कामोपभोग ही जिसके जीवनका सिद्धान्त है, वह असुर है। वह असुर-मानव, दम्भ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोर वचन तथा अज्ञानको अपनी सम्पत्ति माने रहता है। यथार्थमे कौन-सा कर्म करना चाहिये, कौन-सा नही करना चाहिये—इसको वह जानता ही नही; इसलिये उसके जीवनमे न तो बाहर-भीतरकी शुद्धि रहती है, न श्रेष्ठ आचरण रहते है और न सत्यका व्यवहार या दर्शन ही। वह मानता है—'ससारका कोई न तो बनानेवाला है न कोई आधार है, प्रकृतिके द्वारा अपने-आप ही यह उत्पन्न हो जाता है। स्त्री-पुरुषोका सयोग ही इसमे प्रधान हेतु है। अतएव ससारमे भोग भोगना ही जीवनका सार-सर्वस्व है।' इस प्रकार मानकर वह असुर-मानव अपने मानव-भावको भी खो देता है। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, दूसरेका बुरा करनेमे ही वह अपना स्वार्थ समझता है। ऐसा कोई उग्र-क्रूर कर्म नही, जो वह नही कर सकता हो, दूसरे चूल्हे-भाडमे जायँ, उसका स्वार्थ सिद्ध होना चाहिये।

× × ×

याद रखो—मानव-नामधारी प्राणी जब अनेक नाम-रूपोसे अभिव्यक्त प्राणियोको एक आत्मभावसे न देखकर पृथक्-पृथक् देखता है, तब अपने और पराये सुख-दुखको भी पृथक्-पृथक् मानता है। इससे वह अपने दुख-निवारण तथा अपने सुख-सम्पादनके लिये सचेष्ट और सक्रिय होता है और यह व्यष्टि-सुखसचयकी इच्छा तथा प्रयत्न दूसरोके सुखहरण और घोर दुखोत्पादनका कारण बनता है। जितना-जितना मानवका 'स्व' सकुचित होता है, उतना-उतना ही उसका स्वार्थ भी सकुचित होता है, तथा जितना-जितना 'स्व' विस्तृत होता जाता है, उतना-उतना ही स्वार्थ भी महान् होता जाता है। सकुचित स्वार्थ—एक स्थलपर एकत्र पडे जलकी भाँति सड जाता है, उसमे दुखरूपी कीडे पड जाते है और विस्तृत स्वार्थ प्रवाहित जल-धाराकी भाँति पवित्र, कीटाणुरहित, नीरोग होकर सबको स्वास्थ्य-सुख प्रदान करता है।

× × ×

याद रखो—जो मनुष्य मनुष्यतक ही केवल आत्माको देखता है, दूसरे चेतन प्राणियोमे नही, वह मनुष्य-जातिके सुखके लिये पशु-पक्षी, कीट-पतगोकी हिसा-हत्या करनेमे सकोच नही करता, बल्कि आवश्यक मानकर मानव-सुख या मानव-हितके भ्रमसे उनकी बिना सकोच हिसा करता है। वह इतना निर्दय होता जाता है कि उन मूक प्राणियोको प्राण-वियोगके समय पीडासे छटपटाते देखकर आनन्द-लाभ करता है, मनोरञ्जन करता है और हँसता है। वह मानव-शरीरमे एक प्रकारका क्रूर 'असुर' ही है।

भक्त-मानव

मानवताके मङ्गलमय स्वरूपकी एक बडी सुन्दर अनुभूति है—मानव सभी प्राणियोमे अपने परम इष्टदेव, अपने परमाराध्य भगवान्‌के दर्शन करता है, तथा इस दृष्टिसे प्राणिमात्रको सदा-सर्वदा परमपूज्य, परम सम्मान्य, परम आदरणीय तथा नित्य सेवनीय मानता है। वह अपनेको अनन्य सेवक और प्राणिमात्रको अपने स्वामी श्री-भगवान्‌का स्वरूप समझकर सदा सबके नमस्कार, पूजन तथा सेवामे लगा रहता है। सबके सामने सदा नत रहकर अत्यन्त विनय-विनम्रताका व्यवहार करता है, सबका सम्मान-सत्कार करता है, और अपने सब कुछको भगवान्‌की सम्पत्ति मानकर सर्वस्वके द्वारा उनकी सेवा करता रहता है। इस सेवा-स्वीकारको वह उनकी कृपा मानता है। सेवा-बुद्धि प्रदान करने, सेवामे निमित्त बनाने तथा सेवा स्वीकार करनेमे भगवान्‌की कृपाको ही कारण समझकर वह सदा-सर्वदा कृतज्ञ हृदयसे भगवान्‌का स्मरण-चिन्तन करता रहता है। उसके पवित्र तथा मधुर अन्तःकरणमे सदा निर्मल समर्पणकी पवित्र मधुर सुधा-धारा बहती रहती है। वह केवल चेतन प्राणीमे ही

अपने भगवान्‌को नहीं देखता, जड प्राणियोंमें भी वह अपने भगवान्‌के नित्य दर्शन करके प्रणाम, पूजन तथा समर्पण आदिके द्वारा उनकी सेवा करता रहता है। ऐसा मानव 'भक्त-मानव' है। इसकी मानवता सर्वथा आदर्श तथा महान् है।

हिंदू-विवाहका स्वरूप

हिंदू-विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है, एक महान् यज्ञ है। मनुष्य पशुकी भाँति अमर्यादित स्वेच्छाचारी न हो जाय, उसकी इन्द्रिय-चरितार्थताकी वासना संयमित हो, भोगलालसा मर्यादित रहे, भावमें विशुद्धि बनी रहे, संतानोत्पादनके द्वारा वंशकी रक्षा और पितृ-ऋणका शोध हो, भोगका तत्व जानकर संयमके द्वारा मनुष्य क्रमशः त्यागकी ओर अग्रसर हो सके, प्रेमको केन्द्रीभूत करके उसे पवित्र बनानेका बल प्राप्त हो, स्वार्थका संकोच और परार्थ-त्यागकी वृद्धि जाग्रत् होकर वैसे ही परार्थ-त्यागमय जीवनका निर्माण हो और अन्तमें मानव-जीवनकी सफलतारूप भगवत्प्राप्ति हो जाय—इन्हीं सब पवित्र उद्देश्योंको लेकर हिंदू-विवाहका पावन विधान है। विवाहमें विलास-वासनाका सूत्रपात नहीं होता, वरं संयम-नियमपूर्ण जीवनका प्रारम्भ होता है।

इस जगत्‌की रचना पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे हुई है और जबतक जगत् रहेगा, यह प्रकृति-पुरुषका संयोग-सम्बन्ध भी बना रहेगा। पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं। पुरुषके संसर्गसे प्रकृति ही समस्त प्राणि-जगत्‌को, समस्त विकारोंको और अखिल गुणोंको उत्पन्न करती है।

प्रकृति शक्ति है, पुरुष शक्तिमान् है। शक्तिके बिना शक्तिमान्‌का अस्तित्व नहीं और शक्तिमान्‌के बिना शक्तिके लिये कोई स्थान नहीं। शक्ति-शक्तिमान्‌का अविनाभाव-सम्बन्ध है। यही नारी और नरके सम्बन्धका मूल तत्व है। नर पुरुषका और नारी प्रकृतिका प्रतीक है। नारीका नाम ही 'प्रकृति' है। एकके बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनोंके कर्त्तव्य तथा कर्मक्षेत्र पृथक्-पृथक् होनेपर भी वे एक ही शरीरके दक्षिण और वाम—दो अङ्गोंकी भाँति एक ही शरीरके दो संयुक्त भाग हैं और इन दोनोंके कार्य भी एक दूसरेके पूरक तथा एक ही शरीरकी स्थिति, समृद्धि, सुव्यवस्थितता, पुष्टि और तुष्टिके कारण हैं। एकके बिना दूसरेका काम नहीं चल सकता। अपने-अपने क्षेत्रमें दोनोंकी ही प्रधानता और श्रेष्ठता है, पर दोनोंकी श्रेष्ठता एक ही परम श्रेष्ठकी पूर्तिमें संलग्न है। दोनों मिलकर अपने-अपने पृथक् कर्त्तव्योंके पालनद्वारा परस्पर सुख प्रदान करते हुए जीवनके परम और चरम लक्ष्य भगवान्‌को प्राप्त कर सकते हैं। नर भगवान्‌की प्राप्ति करता है—पतिव्रता नारीके दिव्य त्यागमय पवित्र आदर्शको सामने रखकर भगवान्‌के प्रति सम्पूर्णतया आत्मसमर्पण करके और नारी उसी भगवान्‌की सहज ही प्राप्ति करती है—अपने अभिन्नस्वरूप स्वामीका सर्वाङ्गपूर्ण अनुगमन करके—स्वामीको परमेश्वर मानकर सहज ही भगवदाकार वृत्ति बनाकर। यह नर और नारीका स्वरूप, कर्त्तव्य और उनकी विवाह-साधनाका परिणाम है। नारी पतिगतचित्ता तथा पतिगतप्राणा होकर अपने क्षेत्रमें ही अपने दृष्टिकोणसे पतिकी सेवा करती है—भगवत्प्राप्तिके लिये और नर भी अपने क्षेत्रमें रहकर अपने क्षेत्रके अनुकूल कार्योंद्वारा नारीकी सेवा करता है—भगवत्प्राप्तिके लिये। क्षेत्र तथा कार्यमें भेद रहनेपर भी दोनोंका लक्ष्य एक ही है और दोनोंके ही स्थान तथा कर्त्तव्य एक-दूसरेके लिये अत्यन्त प्रयोजनीय, महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य अभिनन्दनीय हैं एवं दोनों ही अपने लिये परम आदर्श-स्वरूप हैं।

नारी नरकी पत्नी होनेपर भी उसकी स्वामिनी, सखी और सेविका है। इसी प्रकार नर नारीका पति होनेपर भी उसका सेवक, सखा और स्वामी है। नारी पतिव्रता है और उसका यह पातिव्रत्य है—यथार्थमें परम पति परमात्माकी अथवा उनके परम प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही। यही नारीकी विशेषता है और इसी स्वीकृतिमें ही पुरुषकी महत्ता है। नारी सेविका होते हुए भी स्वामिनी है और नर स्वामी होते हुए भी सेवक है। दोनों ही स्वतन्त्र और दोनों ही स्वेच्छया परतन्त्र हैं। यह परतन्त्रता उनकी स्वतन्त्रताकी शोभा है। अवश्य ही दोनोंकी स्वतन्त्रताके क्षेत्र और पथ पृथक्-पृथक् हैं। यही दोनोंका स्वधर्म है। नारी घरकी रानी है, सम्राज्ञी है।

रोगोंकी वृद्धिका कारण

जहाँ डाक्टर-वैद्योंका व्यवसाय खूब चलता हो, दवाओंके कारखाने तथा बाजार उत्तरोत्तर प्रगति करते हों, दवा-व्यवसाय बहुत लाभदायक हो, वहाँ निश्चित ही बीमारोंकी तथा बीमारियोंकी सख्या बढी हुई है और लोग सयमी न रहकर दवा-दास हो रहे है। हमारे भारतमे इस समय दवा-उद्योग उत्तरोत्तर उन्नत होता चला जा रहा है। आयुर्वेदिक औषध-निर्माणके बडे-बडे व्यवसाय चल ही रहे थे, अब करोडोकी पूँजी लगाकर सरकार एंटीबायोटिक औषधोंके निर्माणके बहुत बड़े कारखाने खोलने जा रही है। इनमे करोडो रुपयोकी दवाइयाँ बनेगी। अधिक-से-अधिक औषधोका निर्माण (Production) होगा और अधिक-से-अधिक उनकी खपत तथा माँग होगी, तभी ये कारखाने लाभप्रद हो सकते है—तभी यह उद्योग (Industry) सफल हो सकता है। इनके लिये रोगी और रोगोका बढना आवश्यक है। ये कारखाने इसलिये तो बन ही नही रहे है कि देशमे लोग सयमी हो जायँ, रोगोकी कमी हो जाय और इन कारखानोको घाटा लगे। ये तो बनाये ही जाते है मुनाफेके लिये। अतएव स्वाभाविक इनका प्रचार-कार्य होगा—जिससे इनकी दवा अधिक-से-अधिक बिके। अतएव स्वाभाविक ही रोग और रोगियोकी सख्या देशमे बढे—यही इच्छा और प्रयत्न इनका होगा, उसका प्रकार कुछ भी हो।

देशभक्तिका स्वरूप

'देशभक्त' और 'देश'के स्वार्थमे जब कही विरोध होता है और वहाँ यदि देशभक्तका 'स्वार्थ' देशके स्वार्थपर विजय प्राप्त कर लेता है तो वहाँ देशकी सेवा नाम-मात्रकी रह जाती है और यही आज हो रहा है। हमलोगोमे अधिकाश ऐसे हैं, जिनका मन देशके 'स्वार्थ'से हटकर व्यक्तिगत स्वार्थमे सीमित हो गया है। उसका परिणाम तो 'बीजफल-न्याय'से अनिष्ट ही होना सम्भव है।

चोर-पूजा

हमारी ईमानदारीका इतना ह्रास हो गया है कि सभी वर्गोंके लोग धनके लिये चोरी, बेईमानी, छल-कपट, मिलावट, परस्वापहरण, हिंसा आदि करनेमे बुद्धिमानी मानने लगे है। ईश्वर-धर्मका कोई भय नही, कानूनका बचाव होना चाहिये, और जहाँ कानून मनवानेवाले और माननेवाले समझौता करके भागीदारी कर लेते हैं, वहाँ तो कुछ कहने-सुननेकी बात ही रह नही जाती। व्यापारियोमे तथा अधिकारीवर्गमे चोरी-घूसखोरी आगकी तरह बढ रही है और पैसा हो जानेपर यह नही देखा जाता कि पैसा किस साधनसे आया है। किसी तरह भी हो, पैसा आया कि उसे समाजके नेता होनेका, विद्वानोद्वारा आदर पानेका, अधिकारियोद्वारा सम्मान पानेका, समाजमे परम सत्कार तथा उच्चस्थान पानेका अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस 'चोर-पूजा'से समाजका बडा ही अहित हो रहा है।

आज उन्नतिके नामपर 'सह-भोजन', 'सह-शिक्षा', होटलोमे सब कुछ तथा सब तरहसे बने हुए पदार्थोका 'अभक्ष्य आहार', 'उच्छिष्ट भोजन', 'निर्लज्ज तथा अमर्यादापूर्ण डान्स' आदि चलते है। 'सिनेमा' तथा 'इन्द्रियोमे अनुचित उत्तेजना पैदा करनेवाला साहित्य' अपना अलग प्रभाव डालते हैं। परिणाम यह होता है कि आज कोई 'धर्म'के नामसे घृणा करता है, कोई सम्प्रदाय कहकर मखौल उडाता है, कोई धर्मकी बात सोचकर व्यर्थ समय नष्ट करना समझता है। और कोई-कोई तो धर्मको उन्नतिका सर्वथा विघातक समझता है। धर्महीन विचार, धर्महीन शिक्षा, धर्महीन बाहरी छोटे-बडे आचार-व्यवहार—सब मिलकर आज मनुष्यको मानवतासे गिराकर, उसे पशुता और असुरतामे परिणत कर रहे हैं। इस प्रकार द्रुतगतिसे जो 'धर्महीन समाज'का निर्माण हो रहा है, उसका परिणाम कितना भयानक होगा—इसपर गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है।

भारतवर्षका यह सनातनधर्म ही था, जो चराचर विश्वमे एक भगवान् या एक आत्माके दर्शन कराकर सबमें सहज प्रेमका विस्तार कर सकता था। प्रेम त्यागसे होता हे और अपने हितके लिये मनुष्य सहज ही त्याग करता है। जब सर्वत्र आत्मदृष्टि हो जाती हे, तब सबका हित ही अपना हित हो जाता है, फिर कैसे कोई किसी-का अहित-चिन्तन या अहित-साधन कर सकता है ? इसीसे मनीषियोका यह मत है कि 'जगत्‌के सब मत नष्ट हो जायँ तो हर्ज नहीं है, सबमे एक आत्माका दर्शन करनेवाला यह विश्वमानवका 'सनातनधर्म' जीवित रहेगा तो सब जीवित रहेंगे—सबका कल्याण होगा। पर यही धर्म यदि नही रहेगा, (यद्यपि इसकी सम्भावना नही है, क्योकि यह 'सत्य है, और सत्य कभी मरता नहीं, वह किसी-न-किसी अशमे रहता ही है) तो समस्त विश्वका विध्वस हो जायगा और वर्तमानमे इसी सनातनधर्मका ह्रास हो रहा है।' इस 'सनातनधर्म' और 'हिंदू-सस्कृति'के स्वरूपको जानने-माननेवालोकी सख्या दिनो-दिन घटती जा रही है, इसकी शिक्षाका अभाव हुआ जा रहा है। सनातनधर्म तथा सनातन हिंदू-इतिहासका अज्ञान बढा जा रहा हे। यह विश्वके भविष्यके लिये बडे भारी खतरेकी चीज है। अत यदि विश्वकल्याणके साथ ही भारतको तथा मनुष्यमात्रको राष्ट्रका, देशका, समाजका तथा व्यक्तिगत अपना कल्याण इच्छित है, तो इस सनातनधर्मको समझना, समस्त शिक्षालयोके शिक्षाक्रममे सनातनधर्मकी शिक्षाकी व्यवस्था करना, सनातनधर्मकी महत्ता, उदारता, सर्वजीवहितैषिताकी सत्-शिक्षाका प्रचार-प्रसार करना, इसकी शिक्षाका ग्रहण करना, इसे जीवनमे क्रियारूपमे उतारना और समस्त विश्वको इसका मङ्गल-सदेश देना परम आवश्यक और अविलम्ब अनिवार्य कर्त्तव्य है।

जीवनस्तरको ऊँचा उठाओ

आजकल एक नया रोग फैला है—'जीवनके स्तरको, रहन-सहनको ऊँचा उठाओ।' त्याग, तपस्या, सयम, सादगी, सेवा, सदाचार, मितव्ययिता आदिमे नही, भोग, उच्छृङ्खलता, यथेच्छाचार, विलासिता, आरामतलबी, अनाचार, फिजूलखर्ची आदिमे। इसका आदर्श है—अनावश्यक आवश्यकताओको बढाते रहो। अधिक-से-अधिक वस्तुओका उपयोग करो, मौज-शौककी चीजे बरतनेकी आदत डालो, हाथ-पैरसे कामकाज न करो, श्रम करनेमे अपमान समझो, सिनेमा-रेडियो आदिसे आनन्द लूटो, जीवनको भोगमय या इन्द्रियोका गुलाम बना लो। फिर उन बढी हुई आवश्यकताओकी पूर्तिके लिये जीवनका सारा समय तथा सारी विवेक-बुद्धिको लगाते रहो। इस ऊँचे स्तरके निर्माणमे मिथ्या अभिमान, फैशन, विलासिता, बाहरी दिखावा, बेहद खर्च, समयका नाश और इन्द्रियो-का दासत्व कितना बढ जाता हे, साथ ही शारीरिक रोग भी कितने बढते है—इसका जरा भी ध्यान न करके हमलोग आज नकली आवश्यकताओको बढाते जाते है। हमारे छात्र-छात्राओमे यह रोग बहुत तेजीसे बढ रहा है, जो देशके लिये अत्यन्त घातक है।

हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप

जीवनके सभी क्षेत्रोमे व्याप्त सनातन-परम्परासे चली आती हुई अध्यात्मप्रधान धर्ममय सुसस्कृत विचार और आचार-प्रणालीका नाम ही 'हिंदू-सस्कृति' है। हिंदू-सस्कृतिकी यह निर्मल धारा अत्यन्त प्राचीन कालसे अवि-च्छिन्नरूपमे प्रवाहित है। अतएव हिंदू-सस्कृति सबसे प्राचीन और अपरिवर्तनीय सनातन भारतीय आर्य-सस्कृति है, यही वास्तवमे मानव-सस्कृति है। इस सस्कृतिमे मनुष्य-जीवनका प्रधान और एकमात्र लक्ष्य है—मोक्ष, ज्ञान अथवा भगवत्प्राप्ति। इसीसे इसमे जीवनकी प्रत्येक क्रिया और चेष्टा इसी लक्ष्यपर ध्यान रखकर की जाती है। इसीलिये हमारे पुरुषार्थ-चतुष्टयमे अन्तिम स्थान 'मोक्ष'को दिया गया है—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। हमारा अर्थ और काम (उपभोग) धर्मके द्वारा सयमित—नियन्त्रित होता है। धर्मरहित अर्थ और धर्मरहित उपभोग (काम) महान् अनर्थ करके मनुष्यका विनाश कर देते है। केवल 'अर्थ' और 'काम'से युक्त जीवन तो पशु-जीवन है। हिंदू-सस्कृतिमे अर्थ तथा कामका त्याग नहीं है। उनकी भी उपादेयता है, पर वे होने चाहिये धर्मके आश्रित और उनका लक्ष्य हो मोक्ष।

— ० —

अर्पण

तुम हो यन्त्री, मै यन्त्र; काठकी पुतली मै, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार ॥
मै करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र; न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक्; मै अकल खिलौना, तुम खिलार ॥

क्या करूँ, नही क्या करूँ——करूँ इसका मै कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हे, सो प्रिय विहार ॥
अनबोल, नित्य निष्क्रिय, स्पन्दनसे रहित, सदा मै निर्विकार।
तुम जब जो चाहो, करो सदा बेशर्त, न कोई भी करार ॥

मरना-जीना मेरा कैसा, कैसा मेरा मानापमान।
है सभी तुम्हारे ही, प्रियतम ! ये खेल नित्य-सुखमय महान ॥
कर दिया क्रीडनक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल ॥

इतना मै जो यह बोल गयी, तुम जान रहे——है कहाँ कौन।
तुम ही बोले भर सुर मुझमें मुखरा-से, मै तो शून्य मौन ॥

❀ ❀ ❀

प्रेरक तुम, प्रेरणा तुम्हारी, रस-रति-भाव तुम्हारे रूप।
करके तुम्हीं दिखाते, स्वयं लिखाते लीला तुम्हीं अनूप ॥
देते खोल भाव अनुपम, शब्दोंका शुचितम तुम भंडार।
रचना तुम करवाते, सुनते तुम्हीं उसे फिर कर मनुहार ॥

विमल भाव-मुख निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हे हो रहा है अर्पण ॥
भली-बुरी यह वस्तु तुम्हारी, तुम्हीं सर्वथा स्वामि अनन्य।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य ॥

सर्वात्मसमर्पण

सौप दिये मन-प्राण तुम्हीको, सौप दिये ममता-अभिमान ।
जब जैसे जी चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान ।।
मत सकुचाओ मनकी करते, सोचो नही दूसरी बात ।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात ।।
मान-अमान, दु ख-सुखसे अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध ।
तुम्ही एक कैवल्य मोक्ष हो, तुम ही केवल मेरे बन्ध ।।
रहूँ कही, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य ।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य ।।
एक तुम्हारे चरण-कमलमे हुआ विसर्जित सब ससार ।
रहे एक स्वामी, बस, तुम ही, करो सदा स्वच्छन्द विहार ।।

श्रीराधाकृष्णार्पणमस्तु ।

लेखकानुक्रमणिका

य

र

ल